प्रकार स्वयं भी लिखने का प्रयत्न करें। आलोचना की दृष्टि से तो इस गाइड में कोई कवि छोड़ा ही नहीं गया। कवियों का विवेचनात्मक अध्ययन के दोनों भागों में से प्रत्येक महाकवि पर विस्तार से लिखा गया है। इस पत्र में हमने 'अन्य कवि' के नाम से कुछ विशेष कवियों का जीवन परिचय तथा उनकी साहित्यिक आलोचना भी दी है। यह इस गाइड की एक प्रमुख विशेषता है और विद्यार्थियों के लिये यह बहुत अधिक उपयोगी है। इन कवियों में से भी परीक्षा में एक प्रश्न अवश्य पूछा जाता है।

आलोचना के इन प्रश्नों में एक बात ध्यान देने योग्य है कि परीक्षा में कवि के विषय में जब तक उनके 'बचपन' आदि के विषय में न पूछा जाये तब तक उनके माता-पिता का नाम जन्म-मरण-स्थान का उल्लेख व्यर्थ [illegible] जाता है। इसी प्रकार प्रसङ्ग-निर्देश के प्रश्नों में भी विद्यार्थी को सतर्क [illegible] चाहिए, यदि प्रसङ्ग पूछे गए हैं तो अवश्य ही उनका निर्देश आवश्यक है [illegible] अपना समय खोने से कोई लाभ नहीं है। तुलनात्मक प्रश्नों में [illegible] कवियों की साहित्य-सम्बन्धी विशेषताओं का उदाहरण सहित उल्लेख [illegible] चाहिए।

अन्त में [illegible] विद्यार्थियों को हमारा यह परामर्श है कि इन पुस्तकों की [illegible] अवश्य करें। [illegible] माधुरी' की भूमिका में विद्यार्थियों को [illegible] साहित्य की विभिन्न प्रवृत्तियों तथा धाराओं का ज्ञान होगा [illegible] [illegible] बहुत आवश्यक है।

[illegible] गाइड में उपरोक्त सभी बातें यथास्थान दी गई हैं। विद्यार्थी [illegible] प्रमुख कवियों की कविताओं की प्रसङ्गपूर्ण आलोचना भी [illegible]।

काव्य-कादम्बरी

चन्द वरदाई

अति सुविकट वन ग्रह चढ़े संग्राम न होई।
अश्वपाय, गजपाय चढन किहि ठौर न कोई।
वन विकट जूह पर्वत गुहा वरवेहर वंकम विषम।
दारु भयानक अति सरल वर प्रस्तर जल नहिं सुषम।

प्रसग—कवि चन्द ने हिमालय की दुर्गमता का वर्णन प्रस्तुत पद्य में किया है।

भावार्थ—यहाँ अत्यन्त ही भयानक जगलो के समूह है—इस पर चढकर भी लडाई का आयोजन कठिन है। अश्वारोहियो और गजारोहियो के चढ पाने योग्य कोई मार्ग नही है। जगलो का भयानक समूह (तो है ही) पर्वत की गुहाए और भी अधिक वीहड तथा टेढी, ऊँची-नीची है। भयानक देवदार और ऊँचे चीड़ के पेड है। (मार्ग मे) विशालकाय चट्टाने है और (झरनो का) जल भी कभी नही सूखता।

कुटिल केस सुदेस पौहप रचियत पिक्क सद्द।
कमल गध वय संध, हंस गति चलिय मंद मंद।
सेत वस्त्र सोहे सरीर नख स्वाति बुंद जस।
भमर भवहिं भुल्लहि सुभाव, मकरन्द वास रस।
नैन निरखि सुख पाय सुक, यह सुदिन मूरति रचिय।
उमा प्रसाद हर हेरियत, मिलहि राज प्रथिराज जिय।

प्रसंग—प्रस्तुत प्रसग पद्मावती के रूप और तोते के चिन्तन से सम्बन्ध रखता है। तोता विचार करता है कि यह सुन्दरी सब प्रकार पृथ्वीराज के योग्य है।

भावार्थ—(इसके) बाल घुघराले हैं, सुन्दर हैं। कोयल के समान उसकी रसीली बोली फूलो की वर्षा करती है। (शरीर से) कमल की गंध आती है, अवस्था भी वय सधि (शैशव और जवानी के बीच) की है, हस की चाल से धीरे-धीरे चलने वाली है। (उसके शरीर पर) उज्ज्वल वस्त्र शोभा बढाते है, नख स्वातिबून्द (लक्षणार्थ मे मोती) जैसे चमकदार हैं। (इतना ही

क्यो शरीर से जो भी गंध निकल रही है उस से) भौंरे अपना स्वाभाविक ज्ञान भूल गए है—उन्हे पराग और गंध की पहचान रह गई है (नारी की काया को वास्तव मे उन्होने कमल पुष्प समझ लिया है) फिर उसकी आँखो को देख कर—तोते को (अपार) सुख मिला (उसने कहा—विधाता ने) सुदिन विचार कर—अच्छी तिथि मे उस मूर्ति की रचना की है। हृदय मे होता है कि देवी पार्वती की प्रसन्नता और भगवान् शिव की कृपा से यह (रमणी) राजा पृथ्वीराज को प्राप्त हो।

लडं वग्ग कैंमास वीरं अमान। धमके धरा तोप गज्जे गुमानं।
उतं उप्परी वाग तत्तारषान। मिले हिन्दु मीर दोऊ दीन मान।
बजे राग सिन्धू सुमारूअ बज्जै। गज्जे सूर सूरं असुर सुभज्जै।
चढे व्योम विम्मान देषत देव। बढे स्वामि कज्जै सुसज्जै उभेव।

प्रसंग—घमासान लडाई का यह एक चित्र पृथ्वीराज के उस संग्राम से सम्बन्ध रखता है जिसमे जयचन्द शहाबुद्दीन की सहायता लेकर पृथ्वीराज से लडने आया था। पृथ्वीराज के एक सामत कैंमास ने उस समय अपूर्व जौहर का परिचय दिया था।

भावार्थ—(सेना की) बागडोर महान् वीर कैमास ने अपने हाथ में ली। जब गर्व में भरी तोपे गरज पडी तो पृथ्वी कांपने लगी। उधर की (शत्रु पक्ष की) बागडोर तत्तार खाँ ने सभाली। (इस प्रकार) वे दोनो हिन्दू और मुसलमान परस्पर आ मिले और एक ने दूसरे को मान [illegible] सिन्धु-राग बजने लगे, मारू बाजा भी (जिससे मार-मार रव गूंजता उठा। वीर हृदय तो वीर को सामने पाकर हुंकार उठे किन्तु जो [illegible] युद्ध भूमि से भाग चले। (लड़ाई के उस दृश्य को) देवता आकाश मे विमानों पर चढे देखने लगे और दोनो ओर के सजे हुए योद्धा अपने स्वामि-काज की सिद्धि के लिए (विजय की कामना से) आगे बढे।

दल तक्यौ श्री राम, सेन सादर तब बध्यौ।
दल तक्यौ सुग्रीव, बालि जिह साटह सध्यौ।
दल तक्यौ लछिमन्न सूर मडल अलि बेध्यौ।
दल तक्यौ नरसिंह अगाकस नष उर छेद्यौ।

छलवल करन्त दूपन न कोई किस्न कलह कंस हकरिय ।

सोमेस राज तकि अप्प विधि रत्तिवाह छल मन धरिय ।

प्रसंग—मालवाधीश महीपाल के द्वारा जब अजमेर घेर लिया गया तो सोमेश्वर ने अपने मन्त्रियो को बुलाकर पूछा कि "शत्रु प्रबल है, ऐसे अवसर पर अपना क्या कर्तव्य उचित है ?" मन्त्रियो तथा सामतो की राय मे यह बात जची कि निशा युद्ध मे छलपूर्वक महीपाल को समाप्त करा दिया जाय किन्तु सोमेश्वर ने कहा—छलपूर्वक रात्रि मे युद्ध करना अधर्म है, इससे बडी निन्दा होगी। राजा सोमेश्वर के कथन पर मन्त्रियो-सामतो ने पौराणिक प्रमाण देकर [illegible] का भी औचित्य बताया। प्रस्तुत प्रसग मन्त्रियो तथा सामतो के तर्क से सबद्ध है।

[illegible]र्थ—जब श्री रामचन्द्र ने छल का सहारा लिया तभी सागर पर [illegible] का निर्माण सभव हुआ (नल को मुनि से मिले शाप का लाभ उन्होने [illegible]या) फिर जब छल का सहारा सुग्रीव ने लिया तब वह बाली के हृदय मे [illegible] बाण लगवा सका (श्री रामचन्द्र को वृक्ष की ओट मे खडा करवाना, [illegible]य लडाई के लिए उसे ललकारना छल ही तो है)। लक्ष्मण ने भी मेघनाद का वध किया और तो और नृसिंह ने भी जब छल का सहारा लिया तभी हिरण्यकश्यप का हृदय [illegible] से छेदा जा सका (हिरण्यकश्यप को वरदान प्राप्त था कि वह न दिन मे मरेगा न रात मे, न घर मे मरेगा न घर के बाहर और [illegible]ह मनुष्य के हाथो मरेगा न पशु के द्वारा मरेगा, न ही वह पृथ्वी पर मरेगा [illegible]आकाश पर मरेगा फलत नृसिह भगवान् ने उसे मारने को अपना रूप—[illegible] और पशु दोनो का सम्मिलित बनाया, उसे संध्या काल मे दहलीज पर [illegible] मे रखकर मार डाला। वरदान की बाते असफल हो गई)। [illegible] ही क्यो) कृष्ण ने भी कस का अन्त छलपूर्वक किया—(इसलिए) छल [illegible] लडाई मे कोई दोष नही है। हे राजा सोमेश्वर, आप भी अपना उपाय सोचकर रात्रिकाल में छलपूर्वक लडने का निश्चय अपनाइए।

नर करनी कछु और करै करता कछु औरै।

अन चिन्तन करै ईस जीय सु नर औरै दौरै।

रचे रचन नर कोरि, जोरि जम पाइ वस्त सह।

छिनक मध्य हरि हरै केलि किरतव्व कम्म [illegible]।

जु कछु लिख्यो लिलाट सुख्ख अरु दुष समतह।
धन विद्या सुन्दरी, अग आधार अनतह।
कलप कोटि टरि जाहिं मिटै न न घटै प्रमानह।
जनन जोर जो करै रच न न मिटै बिनानह

(प्रभाकर, नवम्बर १९५८)

प्रसंग—कवि चन्द ने प्रस्तुत पद्य मे भाग्यवाद का महत्व बताया है। मनुष्य का सोचा हुआ कुछ नहीं होता, होता वही है जो परमात्मा की इच्छा होती है।

भावार्थ—मनुष्य का काम कुछ और तरह का होता है तो ईश्वर कुछ और ही तरह का काम करवा है, मनुष्य के हृदय मे कुछ और इच्छा होती है तो विधाता वह कर बैठता है जिसकी बावत मनुष्य कभी सोच भी नहीं सका था। मनुष्य (अपनी समझ मे) करोड़ो प्रकार की रचनाएँ रचता है, सका या सग्रह करता है किन्तु ईश्वर सब कुछ पल भर मे ही छीन लेता है, धन-वस्तु क्रीडा तथा काम के ढग ऐसे ही है। भाग्य लेख मे जो लिखा होता है, उसकी विद्या, सुन्दरी, शरीर के आधार—भूषण, वसन आदि (मे भी सुख, दुख, धर्म, होते है)। सने ही करोडो कल्प क्यो न व्यतीत हो जो लिखे होते है (वही प्राप्त मे कोई घटी-बढी की बात नहीं आती। कोई अपने दाँव, इन नियत परिणाम सबो न करे—भाग्य लेख बिना भोगे मिटने का नहीं है, से कितने ही उपाय अधिक है)।

कबीर

दुलहनी गावहु मंगलाचार।
हम घरि आये हो राजा राम भरतार।
तन रत करि मैं मन रत करि हू, पंच तत मोर बराती।
राम देव मोरे पाहुँने आए, मैं जीवन मैं माती।
सरीर सरोवर बेदी करिहू, ब्रह्मा बेद उचारा।
राम देव संग भावर लैहू, धनि-धनि भाग हमारा।
सुर तैंतीसू कौतिग आए, मुनिवर सहस अठासी।
कहै 'कबीर' हम ब्याहि चले है पुरिष एक अविनासी।

प्रसंग—जीव परमात्मा का अंश माना गया है, परमात्मा से पृथक्त्व

अपना कर ही वह ससार का दुःख भोगता है किन्तु कभी वह घड़ी भी साधक के सम्मुख आती है जब फिर से जीव को परमात्मा का तादात्म्य सुलभ होता है। प्रस्तुत पद मे ऐसी ही मिलन घड़ी का वर्णन है।

भावार्थ—हे सखियो, अब तो तुम मगलाचार प्रारम्भ कर दो। (तुम्हे यह नही ज्ञात कि) मेरे राजा राम (परमात्मा) पति बन कर आ गए है—(युग युग का विरह-क्लेश आज मिटने जा रहा है)। मै अपने को शरीर से उनमे मिला दूँगी, मन से भी एक कर दूँगी (मेरा पृथक् अस्तित्व नही रह जायगा) और पाँचो तत्व (पवन, भूमि, आकाश, अग्नि तथा जल—जिन से मेरा शरीर निर्मित है) बराती होगे। राम देव मेरे लिए वर बन कर आ पहुँचे। इधर मै भी उत्सुकता से भरी हूँ (मेरी साधनाएँ भी चरमोत्कर्ष अपना चुकी है)। आज मै शरीर रूपी सरोवर को ही व्याह की वेदी बनाऊँगी, ब्रह्मा वेद का गान करेगे (तात्पर्य यह है कि मेरा शरीर ही मिलन का माध्यम बनेगा और ब्रह्म (ज्ञान) वेद (परिणय-मिलन) का मन्त्र पढेगे। यह मेरा अहोभाग्य है कि आज राम देव (परमात्मा) के साथ भावर पूर्ण होगा। (इधर तो देखो) ये तैंतीस कोटि देवता मेरो व्याह देखने के आकर्षण से एकत्र हो गये है, अठासी हजार मुनियो का भी झुण्ड जमा हो गया है। (जीव की ओर से) कबीर कहते है कि (मुझे इन सबसे क्या) मुझे तो एक अविनाशी—चिरन्तन पुरुष व्याह कर साथ ले जा रहे है।

> तनना बुनना तज्या कबीर। राम नाम लिखि लिया सरीर।
> जब लगि भरौं नली का बेह। तब लग टूटे राम सनेह।
> ठाढी रोवे कबीर की माय। ए लरिका क्यूं जीवैं खुदाय।
> कहै 'कबीर' सुनहुँ री माई। पूरन हारा त्रिभुवन राई।

प्रसग—परमात्मा मे उनको रमा देने के पश्चात् सासारिक गोरख-धन्धा स्वयं छूट जाता है, महात्मा कबीर प्रस्तुत पद्य मे अपनी उसी एकात्म भावना का वर्णन करते हैं। पद्य में ताना-बाना लौकिक कर्म का सूचक है। कबीर की माँ यहाँ माया है। कबीर ने अपने दर्शन में उसे कई बार स्पष्ट कर देने का प्रयास किया है। इतना ही नही, उन्होने माया को रखकर उसे माँ और पत्नी दोनो ही माना है। यदि जीव को ब्रह्म का रूप माना जाय तो पत्नी माया बन जाती है।

भावार्थ—अब तो कबीर ने ताना-बुनना—सांसारिक कार्यों को सर्वथा छोड़ दिया, अपने शरीर में—राम-नाम लिख लिया, उसे इस शरीर से केवल परमात्मा का चिन्तन करना है। वह जब तक नली में धागा भरेगा (सांसारिक कर्मों में अपने को उलझावेगा) तब तक के लिए उसके राम का प्रेम टूट जायगा (ऐसी स्थिति में पड़कर वह अपनी भावना में क्यों बाधा डालेगा?)। आज कबीर की माता खड़ी-खड़ी रो रही है कि हे भगवान, यह लड़का संसार में किस प्रकार जी सकेगा (माता इस चिन्ता में खिन्न है कि यह तो संसार के बन्धनों को ही तोड़ रहा है)। किन्तु कबीर कहता है अरी माँ सुनो माँ (तुम व्यर्थ ही चिन्ता क्यों कर रही हो) आवश्यकताओं की पूर्ति करने वाला (जीव का पेट भरने वाला) त्रिभुवन का मालिक परमात्मा है।

बहुरि हम काहे कूं आवहिंगे।
बिछुरे पंच तत्त की रचना, तब हम रामहि पावहिंगे।
पृथी का गुण पाणी सोष्या, पाणी तेज मिलावहिंगे।
तेज पवन मिलि, पवन सबद मिलि, सहज समाधि लगावहिंगे।
जैसे बहु कंचन के भूषण ये कहि गालि तवावहिंगे।
ऐसे हम लोक वेद के बिछुरे, सुन्नहिं माहिं समावहिंगे।
जैसे जलहि तरंग तरंगिनी ऐसे हम दिखलावहिंगे।
कहै कबीर स्वामी सुख सागर हंसहि हंस मिलावहिंगे।

प्रसंग—पञ्चतत्व की काया (भौतिक शरीर) को छोड़कर किस प्रकार आत्मा को परब्रह्म से मिलाया जा सकता है—कबीर ने इस क्रिया का वर्णन यौगिक आधार ले कर किया है। पद्य में अभेद भाव का रंग है।

भावार्थ—(इस संसार में फिर से लौटकर हम क्यों आने चले? (हमें अपना निश्चित मार्ग मिल गया है)। जब हम इस पंच तत्व के खेल से छुटकारा पा लेंगे तभी तो राम से मिल सकेंगे। (हम जानते हैं) पृथ्वी तत्व के गुण को जल तत्व हरण कर लेगा फिर हम जल तत्व को अग्नि तत्व से मिला देंगे। (इतना ही नहीं) अग्नि तत्व को पवन तत्व में मिला कर और पवन तत्व को शब्द ब्रह्म से संयोग कराकर सहज समाधि में मग्न हो जायंगे। जैसे सोने के आभूषण अपने रूपों से तो पार्थक्य (अलगाव) रखते हैं किन्तु जब उन्हें ताप देकर गला (पिघला) दिया जाता है, उस समय उनका द्वैत सर्वथा मिट

जाता है उसी प्रकार हम लोक-वेद से दूर (सासारिक नियम तथा वैदि आचरणो से मुक्त) होकर शून्य मे अपने को विलीन कर देगे (मेरा पृथ अस्तित्व नही रह जायगा)। जैसे नदी और तरगे—केवल जल मात्र है, उ प्रकार हमारा स्वरूप होगा (जीव और परमात्मा का पृथक्त्व मिट जायगा) कबीर कहते है—सुख के सागर परमात्मा हमारे स्वामी है (हमे अब विय पालना नही है) हम तो अपने जीव को परब्रह्म से मिला ही देगे।

तेरा जन एक आध है कोई।
काम क्रोध अरु लोभ विवर्जित हरि पद चीन्हैं सोई।
राजस, तामस, सातिग तीन्यूं, ये सब तेरी माया।
चौथे पद कौं जे जन चीन्हैं, तिनहि परम पद पाया।
असतुति निन्द्या आसा छांडै तजै मान अभिमाना।
लोहा कंचन सम करि देखै ते मूरति भगवाना।
च्यन्ते तो माधो च्यता मणि हरि पद रमै उदासा।
त्रिस्ना उर अभिमान रहित है, कहे कबीर सो दासा। (प्रभाकर,नवम्बर १९५८)

प्रसंग—भगवान् के दास मे तथा साधारण मानव मे मौलिक भेद है। दोनो की प्रवृत्तियाँ कभी एक समान नही हो सकती। महात्मा कबीर ने यहाँ भगवान् के दास की विशेषता की ओर ध्यान खीचा है, 'राजस, तामस, सातिग तीन्यूं, ये सब तेरी माया' कहकर तथा इन तीनो से ऊपर उठने की बात सामने रख कर उन्होने कृष्ण के उस उपदेश को महत्त्व दिया है जिसमे 'त्रैगुण्यविषया वेदा निस्त्रैगुण्यो भवार्जुन।" का निर्देश है। कबीर यहाँ चौथे गुण को समझने का सकेत देते है—"चौथे पद कौ जे जन चीन्हे, तिनहि परम पद पाया।"

भावार्थ—तुम्हारा (वास्तविक) सेवक तो कोई विरला ही है (बाकी सब के सब तो केवल नाम मात्र के भगवद्भक्त कहलाते है)। जो व्यक्ति काम, क्रोध और लोभ—तीनो से दूर हो चुका है वही भगवान् के चरणो की पहिचान रख सकता है (भक्ति का रसानुभव वही कर सकता है। राजस, तामस और सात्विक गुण जो भी है वे तो तुम्हारी माया के रूप है (उनके सहारे माया से ऊपर उठना कठिन है)। सच तो यह है कि इनसे प्रथक् जिसने चतुर्थ गुण (अभिन्न भक्ति) को पहिचान लिया उसे ही मुक्ति मिली। जो प्रशंसा से

यह तन विष की बेलरी, गुरु अमृत की खान।
सीस दिये जो गुरु मिले, तौ भी सस्ता जान॥

ताका पूरा क्यो पड़ै, गुरु न लखाई बाट।
ताको बेडा बूडिहै, फिर फिर औघट घाट॥

प्रसंग—सन्त कबीर की भावना मे गुरु का स्थान परमेश्वर से भी ऊँचा है। इन दोहो मे उन्होंने गुरु की महत्ता का वर्णन किया है।

भावार्थ—कबीर कहते हैं कि वह मनुष्य अन्धा है (अज्ञानी है) जो गुरु को पराया कहता है, (सच तो यह है कि) यदि परमात्मा भी रुष्ट हो जाय तो गुरु के पास आश्रय लिया जा सकता है किन्तु गुरु के रूठने पर ससार में कही भी स्थान नही है।

कबीर कहते हैं, परमात्मा के रूठने पर गुरु की शरण मे जाकर रक्षा मिल सकती है किन्तु गुरु के रुष्ट होने पर परमात्मा भी सहायता नही कर सकते।

यह शरीर विष की लता है (इसका गुण ही जीव का सर्वनाश है) किन्तु गुरु अमृत की खान है (उनके समीप पहुँचकर कोई भी मृत्यु भय से मुक्त हो सकता है) इसलिये यदि सिर की कीमत चुका कर भी गुरु की प्राप्ति होती है, तो उस सौदे को सस्ता ही समझना चाहिए।

उस व्यक्ति की साधना कैसे पूरी हो सकती है जिसे गुरु से मार्ग-निर्देश नही मिला (गुरु की भक्ति के अभाव मे सिद्धि की बात ही असम्भव है) उसकी नाव तो बार-बार कुठौर स्थान मे डूबेगी।

हिरदै भीतर दव बलै, धुंआ न परगट होय।
जाके लागी सो लखे, की जिन लागी होय॥
मूए पाछे मत मिलौ, कहे कबीरा राम।
लोहा माटी मिलि गया, तब पारस केहि काम॥
राम रसाइन प्रेम रस, पीवत अधिक रसाल।
कबिरा पीवन दुलभ है, मागे सीस कलाल॥
कबिरा भाठि कलाल की, बहुतक बैठे आइ।
सिर सौंपे सोइ पिवे, नही तो पिया न जाइ॥

प्रसग—प्रस्तुत दोहो मे सन्त कबीर ने प्रेम तत्व पर प्रकाश डाला है।

प्रेम का प्याला पीना सबका काम नही है। प्रेम की दुनिया मे अपने को न्योछावर कर देने की हिम्मत चाहिए।

भावार्थ—(कबीर कहते है प्रेम की) आग हृदय के भीतर सुलग रही है किन्तु प्रकट मे कही धुआ नही दिखाई पडता, इस आग को तो वही देख सकता है जिसके हृदय मे प्रेम की आग है या वही अनुभव कर सकता है जिसके हृदय में लगी है।

कबीर कहते है—हे राम, मेरे मर जाने के बाद तुम यदि दर्शन ही दोगे तो क्या लाभ ? (मै मानता हूँ, पारस मे लोहे को सोना बना देने का चमत्कार है) किन्तु जब लोहा गलकर मिट्टी मे मिल जायगा तब पारस का चमत्कार क्या काम करेगा ?

प्रेम का रस—राम-रसायन (जीवनदायक) है, पीने मे भी अपूर्व स्वाद देता है किन्तु कबीर कहते है कि उसका पीना ही तो कठिन है, कलाल उसके बदले मे सिर की कीमत चाहता है (कोई भी जब तक अपना अस्तित्व नही मिटा देता प्रेम का आनन्द नही पा सकता है।

कबीर कहते है—कलाल की भट्टी मे (गुरु के समीप) अनेको ही पीने वाले (साधक) इकट्ठे है किन्तु इस मदिरा को वही पी सकता है (ऐकात्म्य भाव को वही पा सकता है) जो अपना सिर (मै का द्वैत) काट कर कीमत अदा करे, अन्यथा पीना ही कठिन है।

सूरदास

तब ऊधो हरि निकट बुलायौ।
लिखि पाती दोउ हाथ दई तिहिं औ मुख वचन सुनायौ।
ब्रजवासी जावत नारी नर, जल थल द्रुम बन पात।
जो जिहि विधि तासौ तैसे ही, मिलि कहियो कुसलात।
जो सुख स्याम तुमहिं पै पावत, सो त्रिभुवन कहुँ नाहिं।
'सूरज' प्रभु दई सौह आपुनी, समुभत हो मन माहि।

प्रसंग—महाकवि सूरदास के 'भ्रमर गीत' मे उद्धव का दौत्य भगवान् के व्रज प्रेम का परिचायक है—मथुरा आकर भी भगवान् व्रज को नही भूल सके, बाबा नन्द, माता यशोदा तथा गोपियो की याद उन्हे सदा ही सताती रही। खासकर गोपियो के प्रेम में जब वे एकदम बेचैन हो उठे तो उन्हे उद्धव को

गोकुल भेजना पड़ा। उद्धव को गोकुल भेजते समय के दृश्य का वर्णन प्रस्तुत पद्य में है।

भावार्थ—तब भगवान् कृष्ण ने (सखा) उद्धव को अपने समीप बुलाया (गोकुल के लिए) उनके दोनों हाथों में पत्र तो दिया ही मौखिक रूप में भी सन्देश दिया। (भगवान् कृष्ण ने कहा—हे सखा) ब्रज के जितने भी स्त्री-पुरुष हैं तथा जल-थल के पेड़-जंगल आदि में जितने स्थावर-जंगम रह चुके हैं, सभी—जिस प्रकार मेरा कुशल कहा जा सकता है उस प्रकार कहना। (उनसे यह भी कहना कि) कन्हैया को जो सुख तुम्हारे बीच प्राप्त था, वह उन्हें तीनों लोक में कठिन है। सूरदास कहते हैं—स्वामी ने अपना शपथ देकर बात कही है यह मैं मन में समझ रहा हूँ।

> उमंगि ब्रज देखन को सब धाए।
> एकहि एक परस्पर बूझति मोहन दूलह आए।
> सोई ध्वजा पताका सोई जा रथ चढ़ि जु सिधाए।
> स्रुति कुंडल अरु पीत बसन छवि वैसोई साज बनाए।
> आइ निकट पहिचाने ऊधो, नैन जलज जल छाए।
> सूरदास मिटी दरसन आसा, नूतन विरह जगाए।

प्रसंग—यह वर्णन उस समय का है जब कृष्ण-सखा उद्धव उनका सन्देश लेकर ब्रज में आते हैं और ब्रजवासी उद्धव के रथ को दूर से आता देखकर भगवान् के आगमन का विश्वास अपनाए दौड़ पड़ते हैं। समीप आने पर वास्तविकता ज्ञात होती है तो उनका वियोग और भी नवीन हो उठता है।

भावार्थ—परस्पर एक दूसरे से यह पूछते हुए कि प्रियतम मोहन आ गए क्या? सम्पूर्ण ब्रजवासी उन्हें देखने को दौड़ पड़े (कन्हैया मथुरा से लौट कर ब्रज में आ जाएं और लोग शान्त बैठे रहें यह कैसे सम्भव हो सकता था, सबके सब अनुमान लगाने में व्यग्र दिखाई पड़ने लगे कि) वही ध्वजा, वही पताका और रथ भी तो वही है जिस पर चढ़कर वह यहाँ से गए थे (इतना ही क्यों) आने वाले की आकृति भी तो वैसी ही है, कानों में कुण्डल, शरीर पर पीताम्बर, सारी वेष-भूषा वही है। (सभी ने यही सोचा कि आने वाला भगवान् के अतिरिक्त दूसरा नहीं हो सकता किन्तु) समीप आकर जब उन्होंने पहिचान लिया कि आने वाला उद्धव है तब तो उनके कमल जैसे नेत्रों में जल

(आँसू) भर आया। सूरदास कहते हैं—उनके हृदय से दर्शन की आशा मिट गई, पुराना वियोग और भी नवीन हो उठा।

कह्यो कान्ह सुनि जसुमति मैया।
आवेंगे दिन चार पांच में हम हलधर दोउ भैया।
मुरली, बेंत, विषान हमारौ कहुँ अबेर सवेरौ।
लै जनि जाइ चुराइ राधिका, कछुव खिलौना मेरौ।
जा दिन ते हम तुम सौं बिछुरे काहु न कह्यो कन्हैया।
प्रात न कियौ कलेऊ कबहूं, सांझ न पय पियौ धैया।
कहा कहौं कछु कहत न आवै, जननी जो दुख पायौ।
अब हम सौं वसुदेव देवकी, कहत आपनो जायौ।
कहियो कहा नन्द बाबा सौं, बहुत निठुर मन कीन्हौं।
सूर हमहिं पहुँचाय मधुपुरी, बहुरि न सोधौ लीन्हौ।

प्रसंग—बाबा नन्द और माता यशोदा के यहाँ पहुँचकर उद्धव को ऐसा ज्ञात हुआ कि वह अपने ही पिता-माता के सम्मुख है। दोनो का ही वात्सल्य प्रेम देखकर उद्धव गद्गद् हो गए। फिर नन्द जी ने स्वागत से पूछा कि "हे उद्धव, कभी कन्हैया को हमारी याद भी आती है या वे हम दोनो को एक दम ही भूल गए?" माता यशोदा तो अपने पुत्र का कुशल पूछते-पूछते व्यग्र हो उठी। ऐसे ही समय में उद्धव ने उन्हे भगवान् का यह सन्देश सुनाया।

भावार्थ—हे माता यशोदा, सुनो (आपके पुत्र) कन्हैया ने (यह सन्देश) कहा है कि हम और बलराम दोनो भाई चार-पाँच दिनो में ही (ब्रज मे) आएँगे। (फिर भी हो सकता है कुछ विलम्ब हो जाय) ऐसी हालत में मेरी वंशी, मेरी छडी और मेरी शृ गी (तुरही) कही राधा चुरा कर न ले जाय, कुछ और भी मेरे खिलौने है (उन सबका ध्यान रखना जरूरी है)। (फिर उन्होने यह भी कहलवाया है कि) मैं जिस दिन से तुम से पृथक् हुआ किसी ने मुझे प्यार से 'कन्हैया' कहकर नहीं पुकारा। मैंने कभी प्रभात काल मे कलेवा भी नही किया और नही सन्ध्याकाल मे दूध ही पी सका। (यहा मेरी खोज-खबर करने को कौन है?)। हे माता (तुम से अलग होकर) मैंने इधर जो दु.ख पाया वह वर्णन के योग्य नही है और अब इतने पर वसुदेव और देवकी कहते है कि मैं उनकी सन्तान हूँ (इन लोगो में सन्तान के लिए प्रेम तो है नही

और मुझे अपनी सन्तान बताते है) । और मैं पिता नन्द जी ने क्या कहूँ, उन्होंने मेरे प्रति अपना हृदय बहुत कठोर बना लिया है। (सूरदास कहते है कि) वे तो हम दोनो को मथुरा पहुँचा गए और फिर कभी भूलकर खोज खबर नही ली

ब्रज मे पाती पढन न आवै ।
सुन्दर स्याम लाल पठई, कोउ न बांचि सुनावै ।
जो निरखत सो लेत सास भरि लोचन नीर बहावै ।
न जानौ का है इहि महियां, लै उर सौं लपटावै ।
गूंगो को गुर कियौ सबनि मिलि अबलनि को जु भुलावैं ।
सूरदास गोकुल के वासी विरही क्यो सचु पावै।

प्रसग—ब्रज की गोपिकाए कन्हैया के पत्र को लिए चारो ओर मारी-मारी फिरती है किन्तु एक भी व्यक्ति ऐसा नही मिलता जो पत्र पढकर उन्हे सुना दे । जिसके भी हाथो मे पत्र पडता है वही कन्हैया की याद मे अपनी सुधि खो देता है। उनकी दशा ही कुछ और हो जाती है, अब पत्र पढे तो कौन ?

भावार्थ—(गोपियों का कथन है कि) इस ब्रज मे किसी को पत्र पढना नही आता है (लगता है जो भी अपने को पढा बताते है वे अपढ हैं)। हाय, सुन्दर श्याम का भेजा पत्र कोई पढकर हमे नही सुना रहा। जो भी इसे देखता है वही आहे भरने लगता है और आँखो से आँसू बहाने लगता है। पता नही, इस पत्र मे ऐसी कौन सी बात लिखी है कि एक-एक व्यक्ति इसे अपनी छाती से लगाने लगता है। इसे सभी ने जैसे गूँगे का गुड बना रखा है (खाने को तो गूंगा गुड खा लेता है किन्तु स्वाद बताने की घडी मे सिर हिलाने लगता है, वही हालत इस पत्र की है) या ऐसा भी हो सकता है कि लोग हमें स्त्री समझकर भ्रम मे टाल रहे है (सच्ची बात नही बताते)। सूरदास कहते है (इस परिस्थिति मे गोकुल के विरही प्राणी किस प्रकार शाति पा सकते है।

सुनु गोपी हरि को सन्देस ।
करि समाधि अन्तर गति चितवौ प्रभु कौ यह उपदेस ।
वै अविगत, अविनासी पूरन घट-घट रहे समाय ।
तिहि निश्चय कै ध्यावहु ऐसे सूचित कमल मन लाय ।
यह उपाय करि विरह तजौगी मिलै ब्रह्म तब आइ ।
तत्व ज्ञान बिनु मुक्ति न होइ निगम सुनावत गाइ ।

सुनत सन्देश दुसह माधव के गोपी जन बिलखानी।
'सूर' बिरह की कौन चलावै, नयन ढरत अति पानी।

प्रसग—कृष्ण-सखा उद्धव वास्तव मे योग का सन्देश देने ही ब्रज में आए थे। उन्हें विश्वास था कि वे निर्गुण ब्रह्म का उपदेश कर गोपियो के विरह-ताप को कम कर देंगे। फलत उन्होने गोपियो से बताया कि वे कन्हैया के सगुण रूप के बदले निर्गुण ब्रह्म का ध्यान करे। प्रस्तुत कथन भक्त उद्धव का ही है।

भावार्थ—(उद्धव ने गोपियो से कहा—) हे गोपी, तुम (अपने लिए) ज्ञान का सन्देश सुनो। (तुम्हे सगुण रूप का ध्यान छोड देना है) तुम तो (तुम्हे) [illegible]ा कर (चित्तवृत्ति को सभी ओर से रोककर) हृदय के भीतर उस आत्म-रूप का पहिचानो, यह भगवान् कृष्ण की शिक्षा है। वही (आत्म-रूप निर्गुण परमात्मा) अविगत, अविनाशी—सदा एक रूप, चिरतन और पूर्ण है, वही घट-घट मे—प्रत्येक जीव में व्याप्त है; तुम तो निष्ठापूर्वक शुद्ध हृदय से उसी का ध्यान करो। इसी प्रयत्न से तुम्हारा विरह-ताप घटेगा और तुम्हे ईश्वर की प्राप्ति भी होगी। यह तो वेद का गान है कि तत्व ज्ञान के विना (आत्म-रूप को पहचाने और द्वैत को मिटाये विना) मुक्ति नही मिलने की। सूरदास कहते है—भगवान् कृष्ण का यह दुख दायक—असह्य सन्देश सुनकर गोपियाँ रो पडी। विरह की तीव्रता की बात कौन कहे उनकी आँखो से आँसू की धारा बह चली।

सब जग तजे प्रेम के नाते।
तऊ स्वाति चातक नहिं छाँडत प्रकट पुकारत ताते।
समुझत मीन नीर की बातें तऊ प्रान हठि हारत।
सुनत कुरंग नाद रस पूरन जदपि व्याध सर मारत।
निमिष चकोर नयन नही लावत, ससि जीवत जुग बीते।
कोटि पतंग जोति वपु जारे भऐ न प्रेम घट रीते।
अब लौं नहिं बिसरी वे बातें सँग जो करी ब्रजराज।
सुनि ऊधौ! हम 'सूर' स्याम को छाँडि देहिं केहि काज॥

(प्रभाकर, जून १९५८)

प्रसग—प्रस्तुत पद महाकवि सूरदास द्वारा रचित 'सूरसागर' में भ्रमर

पिक चातक बन बसन न पावहिं, बायस बलिहिं न खात।
सूर स्याम सँदेसन के डर पथिक न वा मग जात।

प्रसंग—गोपियों के विशुद्ध प्रेम के सम्मुख जब उद्धव का निर्गुण-ज्ञान व्यर्थ सिद्ध हुआ तब वे गोपियों से स्वयं प्रेम-धर्म की दीक्षा लेकर मथुरा लौट आये। भगवान् को प्रथम बार उद्धव से अपनी आशा के विपरीत बात सुनने को मिली। उद्धव ने ब्रज की दशा का जो वर्णन किया उसे सुनकर भगवान् कंपित हो उठे। यह कथन उद्धव का है।

भावार्थ—(उद्धव ने भगवान् से बताया कि) ब्रज की बात कहाँ तक कही जाय (यह मैं नहीं सोच पाता)। हे श्याम! तुम्हारे अभाव में उनकी जो अवस्था है—जिस प्रकार उनके दिन व्यतीत होते हैं उसे सुनो। गोपी, ग्वाल, गाएं तथा बछड़े सबके मुख मलिन तथा काया दुर्बल हो रही है। वे इस प्रकार दीन-दुखी हो रहे हैं जैसे सर्दी में पाले से मारे गए पत्रविहीन कमल होते हैं। वे जिस किसी को आते देखते हैं तो उसे ही (रोककर) तुम्हारी कुशल-वार्ता पूछने लगते हैं। उसे आगे नहीं बढ़ने देते, प्रेम से व्याकुल उनके हाथ पैरों से लिपट जाते हैं। कोयल तथा पपीहे जंगल को छोड़ गए हैं (तुम्हारे बिना उनकी 'पी' पुकार किसी को भाती नहीं, उनकी बोली सुनकर ही लोग उन्हें खदेड़ देते हैं, कौए बलि नहीं खाते (लोगों को उनका शकुन भी झूठा जच चुका है, अतः उनके प्रति किसी की मान्यता नहीं रह गई है)। सूरदास कहते हैं (उद्धव ने भगवान् से बताया कि) सन्देश का भार उठाने के भय से उस राह से कोई राही नहीं जाता है।

ऊधो मोहि ब्रज बिसरत नाहीं।
हँस सुता की सुन्दरि कगरी अरु कुंजन की छाहीं।
वै सुरभी, वै बच्छ दोहनी खरिक दुहावन जाहीं।
ग्वाल बाल सब करत कुलाहल, नाचत गहि गहि बाहीं।
यह मथुरा कंचन की नगरी, मनि मुक्ताहल जाहीं।
जबहिं सुरति आवत वा सुख की जिय उमगत तनु नाहीं।
अनगन भाँति करी बहु लीला, जसुदा नन्द निबाहीं।
सूरदास प्रभु रहे मौन ह्वै, यह कहि-कहि पछिताहीं।

प्रसंग—गोपियों के प्रेम और विरह का वर्णन सखा उद्धव के मुँह से

सुनकर भगवान् भी अन्त मे अपने मन की बात कहने को विवश हुए। उन्होने बताया कि हे उद्धव, ब्रज की याद मुझ से भुलाए नही भूली जाती। जब वहाँ की याद जगती है, मैं अपने को सम्हाल नही पाता हूँ। उद्धृत पद्य मे भगवान् कृष्ण के मनोभावो का वर्णन है।

भावार्थ—(भगवान् ने उद्धव से कहा) हे उद्धव, मुझे भी ब्रज भूला नही जाता है (ब्रज में कुछ आकर्षण ही ऐसा है, तुम्हारा कथन सही है)। यमुना की वह सुन्दर कछार और झुरमुटी (कुंजो) की छाया, वह गाये, वह बछडे, वह मटकी और वह गौशाला मे दूध कढवाने जाना (कितना आनन्द प्रदायक थे, कहना कठिन है)। सभी गोप बालक (मेरे जाते ही वहाँ) शोर मचाने लगते थे और मेरी बाहें पकडकर नाचने लगते थे। (मैं मानता हूँ) यह मथुरा स्वर्ण-धन से पूर्ण नगरी है, मणि और मुक्ताओ की यहाँ प्रचुरता है किन्तु फिर भी जब वहाँ के सुख की याद आती है, हृदय उमगो से भर जाता है, मैं (भावनाओ में) विदेह बन जाता हूँ। मैंने वहाँ अनेको प्रकार के खेल किए (कितने ही प्रकार के भले-बुरे काम किए), यशोदा और नन्द ने सभी को अपने सिर झेला (किसी को बुरा नही माना)। सूरदास कहते है, भगवान् (इतना कह कर) मौन हो गए (लगता था हृदय की बात कहने के बाद) वह पश्चाताप करने लगे।

जो जन ऊधौ! मोहि न बिसारत, तिहि न बिसारौं एक घरी।
मेटौं जनम जनम के सकट, राखौं सुख आनद भरी।
जो मोहि भजै भजौं मैं ताकौ यह परिमिति मेरे पाइँ परी।
सदा सहाय करौं वा जन कौ गुप्त हुती सो प्रकट करी।
सूरज दास ताहि डर काकौ निसि बासर जो जपत हरी।

(प्रभाकर, नवम्बर १९५६)

प्रसग—प्रस्तुत पद्य मे भगवान् अपने स्वभाव का वर्णन करते है—"हम भक्तन के भक्त हमारे" का भाव ही उद्धव को बता रहे है।

भावार्थ—हे उद्धव, मेरा जो भक्त मुझे भुलाता नही है मैं भी उसे एक क्षण के लिए नही भूलता (यह मेरी आदत है ठीक समझो) मैं उसे जन्म-जन्मातर के दुःखो से दूर कर देता हूँ और सुख-आनन्द से पूर्ण रखता हूँ। जो मुझे भजता है (बदले मे मैं भी उसी प्रकार) भजता हूँ, मर्यादा बन्धन मे मेरे पैर जकडे हुए है (इससे आगे मैं बढ नही सकता)। मैं उस भक्त की

सहायता सर्वदा करता हूँ। (सुनो मेरे हृदय में) जो गुप्त बात थी वह मैंने आज प्रकट कर दी। गुरुनानक कहते हैं (भगवान् का भजन एकमात्र सत्य है) उसे निश्चय भय है जो रात-दिन भगवान् का स्मरण करता है।

जायसी

एक दिवस पून्यो तिथि आई। मानसरोदक चली नहाई।
पदमावति सब सखी बुलाई। जनु फुलवारि सबै चलि आई।
कोइ चंपा कोइ कुन्द सहेली। कोइ सुकेत, करना रसबेली।
कोइ सु गुलाल सुदरसन राती। कोइ सो बकावरि-बकुचन भाँती।
कोइ सो मौलसिरि पुहुपावती। कोइ जाही जूही सेवती।
कोइ सोनजरद कोइ केसर। कोइ सिंगार हार नागेसर।
कोइ कूजा सद बर्ग चमेली। कोइ कदम सुरस रसबेली।
चलीं सबै मालति संग, फूलीं कँवल कुमोद।
बेधि रहे गन गंधरब, बास परमदामोद।

मिलहिं रहसि सब चढहिं हिंडोरी । झूलि लेहिं सुख बारी भोरी ।
झूलि लेहु नैहर जब ताईं । फिर नहिं झूलन देइहि साईं ।
पुनि सासुर लै राखहि तहां । नैहर चाह न पाउब जहा ।
कित यह धूप कहां यह छाहां । रहब सखी बिनु मन्दिर मांहा ।
गुन पूछिहि औ लाइहि दोसू । कौन उतर पाउब तह मोखू ।
सासु ननद के भौह सिकोरे । रहब संकोच दुवौ कर जोरे ।
कित यह-रहसि जो आउब करना । ससुरेइ अन्त जनम दुख भरना ।
कित नैहर पुनि आउब, कित ससुरे यह खेल ।
आपु-आपु कहँ होइहि, परब पंखि जस डेल ।

प्रसंग—मायके मे लडकियाँ झूले से अपना मन बहलाती है, पद्मावती और उसकी सहेलियाँ झूले की तैयारी मे है । वे कहती है, यह सुख तो नैहर मे ही सम्भव है, ससुराल पहुँच कर यह सब कुछ नही रहने का । पद्य का आध्यात्मिक दृष्टिकोण ले तो नैहर का अर्थ ससार होगा और ससुराल अथवा पति का घर परलोक ।

भावार्थ—(पद्मावती से सखियाँ कहती है) आओ भी, हम सब प्रसन्न चित्त मिले और,झूले पर चढे । झूलकर हम भोली बालाएँ कुछ सुख उठा ले । (अरी) जब तक नैहर मे हो तब तक झूला झूल लो, फिर तो स्वामी (ससुराल मे) झूलने नही देगा (यह निश्चित है) । फिर तो वे (हम सबो को) ससुराल मे ही रख लेगे । वहा नैहर की उमगे प्राप्त कहा होगी । यह धूप और यह छाया वहा कहाँ मिलेगी, वहाँ सहेलियो के बिना ही महल मे (बन्द) रहना पडेगा । वे (ससुराल वाले) हर समय गुण की ही खोज करेंगे (यही पूछेगे कि तू क्या करना जानती है?) और (कामो मे) दोष निकालेगे । छुटकारे के लिए कोई उत्तर भी नही मिलेगा । सास और ननद के सदा ही भौह चढाये रहने से दोनों हाथ बाधे सकुचित होकर रहना पडेगा (वाचालता वहा नही दिखाई जा सकती) । वहा यह आनन्द मनाना कहाँ होगा । ससुराल में तो अतिम घडी तक दुःख ही उठाना है ।

फिर कब नैहर आना सम्भव हो सकेगा (जीवन तो ससुराल में काटना पडेगा) और सुसराल मे यह खेल कहाँ? वहाँ तो (सब ही) अकेली-अकेली ही होगी । जिस प्रकार पक्षी बांस की टोकरी में परतन्त्र दिन काटता है (उसी

प्रकार सबो को परतन्त्रता मे समय व्यतीत करना है।

पदमावति पुनि पहिरि पटोरी। चली साथ पिउ के होइ जोरी।
सूरज छिपा रैन होइ गई। पूनो ससि सो अमावस भई।
छोरे केस मोतिन लट छूटी। जानहु रैनि नखत सब टूटी।
सेंदुर परा जो सीस उधारा। आगि लागि चहुँ जग अंधियारा।
यही दिवस हौं चाहति नाहा। चलो साथ, पिउ! देहि गलबाँहा।
सारस पंखि न जिए निनारे। हौं तुम्ह बिनु का जिऔं पियारे।
नेवछावरि कै तन छहरावौं। छार होउँ सग बहुरि न आवौं।
दीपक प्रीति पतग जेउँ, जनम निबाह करेउँ।
नेवछावरि चहुँ पास होइ, कठ लागि जिउ देउँ।

प्रसग—जब देवपाल से युद्ध करते हुए राजा रतनसेन वीरगति को प्राप्त हुए तब उनकी दोनो ही सती साध्वी पत्निया—पद्मावती और नागमती उनके साथ सती हो गईं। यह वर्णन उसी समय का है। रानिया अपने मन का भाव प्रकट करती है।

भावार्थ—फिर तो रानी पद्मावती रेशमी साडी पहिनकर पति के साथ जोड़ी बन कर चल पडी। (ऐसा लगा कि उन रानियो के जीवन का)सूर्य छिप गया—एक बार ही रात हो गई (सब सुख ही खो गया) और रात भी ऐसी कि जो पूर्णिमा के चन्द्र को खोकर अमावस बन गई हो। (उन्होंने अपने बाल खोल लिए, मोतियो की लडी भी टूट कर इस प्रकार बिखर गई जैसे रात मे सभी तारे टूट कर गिर गए हो। नगे सिर पर सिन्दूर की लालिमा ऐसी लगती थी मानो अधकार ने पूरित ससार मे आग लग गई हो। (ऐसी ही घडी में रानी पद्मावती ने कहा—) हे स्वामी मैं उसी दिन की कामना पालती थी कि प्रियतम के गले मे बाहे डाल कर साथ चलूँ। जब पक्षी होकर भी सारस बेजोडी नही जीते तो मैं तुम्हारा अभाव अपनाकर क्या जी सकूँगी (ऐसा कभी भी सम्भव नही है)। अत मैं तुम्हारे ऊपर अपनी काया को न्यौछावर कर बिखरा दूँगी। तुम्हारे साथ ही भस्म हो जाऊँगी, फिर लौट कर (ससार में) नही आऊँगी।

दीपक के प्रति जिस प्रकार पतग प्रेम निभाता है मैं भी (तुम्हारे साथ उसी प्रकार) जीवन निबाहूँगी। मैं चारो ओर से तुम पर न्यौछावर होकर, तुम्हारे ही गले से लगकर जीवन उत्सर्ग कर दूँगी।

सर रचि पुन्नि दान बहु कीन्हा । सात बार फिर भांवरि लीन्हा ।
एक ज भांवरि भई बियाही । अब दूसरे होइ गोहन जाही ।
जियत कन्त तुम हम गर लाई । मुये कंठ नहिं छोडहिं साई ।
औ जौ गांठि कंत तुम जोरी । आदि-अन्त लहि जाइ न छोरी ।
यह जग काह जो अछहि न आथी । हम तुम नाह दूहूं जग साथी ।
लेइ सर ऊपर खाट बिछाई । पौढी दुऔ कन्त गर लाई ।
लागी कण्ठ आगि देइ होरी । छार भई जरि अंग न मोरी ।

रानी पिउ के नेह गई, सरग भएउ रतनार ।
जो रे उवा सो अत्थवा, रहा न कोइ संसार ।

प्रसंग—यह वर्णन रानी पद्मावती तथा नागमती के चितारोहण का है । किस प्रकार रानियाँ पति के साथ सती हो गई--किस प्रकार अग्नि में भी सर्वथा अविचलित रही ।

भावार्थ—चिता रचकर रानियो ने अनेको प्रकार के दान-पुण्य किए, फिर सात बार उसकी परिक्रमा की । एक भावर तो तब पढा, जब वे ब्याही गई थी, अब दूसरी बार के भावर मे लगता है गौना कराकर जा रही है। (रानियो ने कहा) हे स्वामी, जीवन मे तो तुमने हमे गले से लगाया, मरने पर अब हम कठ नही छोडेंगी । और हे स्वामी तुमने जो गाँठ (विवाह के समय) बाँध दी थी वह तो कभी भी—आदि से अन्त तक खोली जाने वाली नही है । यह ससार है जो नष्ट हो जाने को है (आज न कल किसी न किसी दिन इसे छोडना ही है) किन्तु हम तुम तो उभय लोक दोनो दुनिया के साथी है (हमारा सम्बन्ध शाश्वत है) । (ऐसा कह कर) चिता के ऊपर उन्होने खाट बिछा दी और दोनो ही अपने स्वामी को गले से लगाकर सो गईं । कठ से लगकर और (चिता मे) आग देकर उन्होने होली मनाई । वे जलकर भस्म हो गई किन्तु उन्होने अपने अगो को नही मोडा (तनिक भी विचलित नही हुई) ।

दोनो ही अपने पति के स्नेह मे रगी (ससार से विदा हो गई) उनको पाकर स्वर्गलोक चमक उठा । (यह ससार ऐसा ही परिवर्तनशील है) जिसका यहाँ उदय हुआ उसका अन्त भी हुआ, यहाँ कोई भी तो (स्थिर) न रहा ।

तन चितउर मन राजा कीन्हा। हिय सिंघल बुधि पदमिनी चीन्हा।
गुरु सुआ जेइ पंथ दिखावा। बिनु गुरु जगत को निरगुन पावा।
नागमती यह दुनिया धंधा। बांचा सोइ न एहि चित बंधा।
राघव दूत सोइ सैतानू। माया अलाउदी सुलतानू।
(प्रभाकर, नवम्बर, १९५६; जून १९५८)

प्रसंग—कवि जायसी अपनी कथा के आध्यात्मिक रूप की व्याख्या करते हुए कहते हैं कि पद्मावती की कथा तो कथा के रूप में है ही किन्तु इसका एक रूप और है, चित्तौड़ गढ़, राजा रत्नसेन, पद्मिनी रानी, तोता तथा नागमती का दर्शन मनुष्य अपने बीच भी कर सकता है। दूत राघव, चेतन और अलाउद्दीन भी उनसे अलग नहीं हैं। इन सबको देखने के लिए विचार की आँखें चाहियें।

भावार्थ—यह शरीर ही चित्तौड़ गढ़ है तथा मनुष्य का मन ही राजा रत्नसेन है। (उसका अपना हृदय ही सिंहल द्वीप है, और बुद्धि ही पद्मिनी (पद्मावती) के रूप में है। गुरु तोता है जिसने मार्ग दिखाया है, बिना गुरु के कौन है जो निर्गुण परमात्मा को पा सका? और यह भी जानने की बात है कि) संसार की उलझनें हैं, इनसे केवल वही बच सका, जिसका मन इस जाल में नहीं घिरा। (रत्नसेन पद्मावती रूपी बुद्धि को पाकर भी दुनिया की उलझनों को त्याग नहीं सका इसीलिए उसकी दुर्गति हुई) और दूत राघव ही तो शैतान है (वही माया का जाल फैलाता है) और अलाउद्दीन ही माया है (जिसके द्वारा मन का सर्वनाश होता है)।

मुहमद कवि यह जोरि सुनावा। सुना सो पीर प्रेम कर पावा।
जोरी लाइ रकत कै लेई। गाढ़ी प्रीति नयनन्ह जल भेई।
औ मैं जानि गीत अस कीन्हा। मकु यह रहै जगत महँ चीन्हा।
कहाँ सो रतनसेन अब राजा। कहाँ सुआ अस बुधि उपराजा।
कहाँ अलाउदीन सुलतानू। कहँ राघव जेइ कीन्ह बखानू।
कहँ सुरूप पदमावति रानी। कोइ न रहा जग रही कहानी।
धनि सोई जस कीरति जासू। फूल मरै पै मरै न बासू।
केइ न जगत जस बेचा केइ न लीन्ह जस मोल।
जो यह पढ़ै कहानी, हम्ह सवँरै दुइ बोल।

प्रसग—अन्तिम विनय के रूप मे ग्रन्थ की समाप्ति पर कवि ने अपनी भावना प्रकट की है। ससार मे मनुष्य सदा नही रहता, उसके यश-अपयश की कहानी रह जाती है। कवि को विश्वास है कि हम भले ही नही रहेंगे किन्तु जो कोई यह कहानी पढेगे हमें अवश्य याद करेगे।

भावार्थ—यह (पद्मावत ग्रन्थ) कवि मुहम्मद जायसी ने रचकर सुनाया है। जिस किसी ने भी इसे सुना उसी ने प्रेम की पीडा प्राप्त की। (इसकी पक्तियो को) मैंने रक्त की लेई से जोडा है और इसमे जो प्रेम है उसे आखो के आसू से भिगो कर सवारा है। और मैंने ऐसे गीत इसीलिए रचे कि शायद ससार में मेरी एक निशानी रह जाय (लोगो के हृदय मे इसे स्थायित्व प्राप्त हो जाय)। (वैसे यह दुनिया नश्वर है यह मैं जानता हूँ) आज वह रत्नसेन राजा कहाँ है और बुद्धि देने वाला वह गुरु रूपी तोता ही कहाँ है? कहाँ वह सुन्दरी पद्मावती रानी है? (सच तो यह है कि) ससार मे कोई नही रहा केवल सभी की कहानी रह गई। वही व्यक्ति धन्य है जिसका यश और कीर्ति शेष है, फूल नष्ट हो जाय तो नष्ट हो जाय किन्तु सुगन्ध बची रहे (शरीर नष्ट हो जाने के बाद भी यदि कीर्ति बची है तो वह मर कर भी अमर है)।

इस ससार मे किसी ने अपने यश का विक्रय नही किया और न किसी ने यश को खरीदा ही (वह तो जिसे भी प्राप्त हुआ अपने कर्त्तव्य से प्राप्त हुआ)। (मेरी तो केवल इतना ही आशा है कि) जो भी मेरी इस गाथा को पढेगे वे दो शब्दो मे मुझे याद कर लेगे।

मीरा

बरजी मैं न काहू की रहूं।
सुनो री सखी, तुम सो या मन की साँची बात कहूं।
साधु संगति करि हरि सुखी लेऊँ जग ते दूरि रहू।
तन धन मेरो सबही जावौ, भल मेरो सीस लहूं।
मम मन लाग्यो सुमरन सेती, सब को मैं बोल सहू।
मीराँ के प्रभु गिरधर नागर, सतगुरु सरण गहूं।

प्रसग—प्रस्तुत पद्य मे मीरा के हृदय की दृढ भक्ति की आभा है। वह धन वैभव से भी अधिक सत्सगति और ईश्वर के भजन को महत्व देती है।

भावार्थ—मैं किसी के मना करने पर मानने की नही हूँ। अरी मेरी

—सखी, सुनो भी, मैं तुम से इस मन की सच्ची बात कह रही हूँ। मैं तो साधुओं की संगति अपनाकर भगवान को प्राप्त करने का सुख प्राप्त करूँगी। इस संसार से मुझे दूर ही रहना है। मेरा तन, मन, धन क्यों न नष्ट हो जाय (यह विद्वेषी संसार) भले ही मेरा सिर भी काट ले (मैं अपने निश्चय से टलने की नहीं)। मेरा मन तो भगवान् के स्मरण में लग गया है, मैं लोगों से सबकी मीठी-तीखी बातें सह लूंगी। मीरा कहती है कि मेरे स्वामी तो चतुर गिरिधारी हैं मैं सद्गुरु के चरणों का ही आश्रय लूंगी।

कोई दिन याद करोगे रमता राम अतीत।
आसण माँडि अडिग होइ बैठा याही भजन की रीति।
मैं तो जाणूँ जोगी संग चलि हूँ, छाँड़ि गयो अध बीच।
आत न दीसे जात न दीसे, जोगी किसका मीत।
मीरा के प्रभु गिरधर नागर चरण न आवे चीत।

प्रसंग—मीरा का विरह वही विरह है जो परमात्मा से पृथक्त्व अपनाकर तीव्र अनुभव करता है। भक्ति की सीमा में मीरा अपने नियतम (परमात्म) को स्वभाव से उलाहना सुनाने की अधिकारिणी है—वह कहने को ठीक ही कह जाती है कि एक न एक दिन तुम्हें भी मेरी याद करनी पड़ेगी। तुम मुझे सदा ही भुलाए रहो, यह सम्भव नहीं।

भावार्थ—हे मेरे विरक्त और रमते योगी! किसी दिन तुम भी मेरी याद करने को विवश होगे (मेरी भावना एक न एक दिन तुम्हें मेरे पास खींच ही लाएगी, तुम्हें मेरे आकर्षण में बंध कर मेरे समीप तक आना ही पड़ेगा)। (पता नहीं तुम किस देश में) आसन जमा कर निश्चल बैठ गये हो, यह तो भजन की प्रणाली नहीं है (मैं तो तुम्हारी याद में पल-पल बेचैन रहूँ और तुम मेरी याद ही न करो यह भी कोई बात है)। मैं सोचती थी कि मेरा योगी साथ होगा किन्तु तुम मुझे बीच राह में छोड़ गये। तुम तो कहीं आते-जाते भी दिखाई नहीं देते; (ठीक ही है) योगी किसका साथी हुआ? फिर भी मीरा के स्वामी चतुर गिरिधारी ही हैं—मेरा हृदय बार-बार उन्हीं चरणों की ओर दौड़ता है।

मेरे मन राम नामहिं बसी।
तेरे कारण स्याम सुन्दर सकल लोगां हँसी।

कोई कहे भई बौरी, कोई कहे कुल नसी।
कोई कहे मीरा दीप आगरी नाम पिया सूँ रसी।
खाडे धार भक्ति की न्यारी, कहि हैं जम-फँसी।
मीरां के प्रभु गिरिधर नागर सब्द सरोवर धँसी।

(प्रभाकर, नवम्बर १६५६)

प्रसंग—मीरा की इस भावना एकात्मनिष्ठा का गहरा रंग है। वह स्पष्ट कह देती है कि उसका मन तो भगवान् के चिन्तन मे तल्लीन हो गया है, अब वह दूसरी जगह लगे तो कैसे ?

भावार्थ—मेरा मन भगवान् के नाम-चिन्तन में रम गया है (दुनिया की बाते उसे आकर्षित करे तो कैसे ?)। हे मेरे श्यामसुन्दर, तुम्हारे कारण (कहिए तुम से स्नेह जोड़ कर) मैं सब लोगो की हँसी का पात्र बन चुकी हूँ (ऐसा कोई भी नही जो मेरी हँसी न उडाता हो)। कोई कहता कि मैं पगली हो गई हूँ और कोई कहता है कि मैंने अपने कुल को नष्ट कर दिया—उसे कलंकित बनाया है। किन्तु कोई यह भी कहते है कि मीरा दीपक की लौ के समान अपने को जला कर और को प्रकाश दे रही है वह प्रियतम (परमात्मा) के नाम का आनन्द पा गई है। (मुझे किसी की भली-बुरी बातो पर कुछ सोचना नही है, मैं तो इतना ही जानती हूँ) भक्ति तलवार की अनोखी धार है (उनसे) मेरे ऊपर जो यमराज का फन्दा है, वह कट जायगा। मीरा के स्वामी तो चतुर गिरिधारी कृष्ण है और वह उनके नाम के सरोवर मे पैठ चुकी है) वह सभी प्रकार से नाम-भक्ति के क्षेत्र मे अपने को स्थिर कर चुकी है।

भाभी बोलो बचन विचारी।
साधाँ की संगत दुख भारी मानो बात हमारी।
छाप तिलक गलहार उतारो, पहिरो हार हजारी।
रत्न जटित पहिनो आभूषण, भोगो भोग अपारी।
मीरा जी थे चलो महल में, थाने सोगन म्हारी।

+ + +

भाव भगत भूषण सजे, सील संतोस सिंगार।
ओढ़ी चूनरि प्रेम की, गिरधर जी भरतार।

उदा बाई मन समझ, जाओ अपणे धाम।
राज पाट भोगो तुम्हीं, हमें न तासूं काम।

प्रसंग—मीरा के वैराग्य से परिवार के लोग कितने असन्तुष्ट थे, यह बताने की आवश्यकता नहीं। कहा तो यहाँ तक जाता है कि रुष्ट राणा जी ने मीरा के लिए विष का प्याला भेजा था। जो हो प्रस्तुत प्रसंग—ननद ऊदा बाई और मीरा से सम्बन्ध रखता है। ऊदा बाई गार्हस्थ्य जीवन को महत्व देकर मीरा से घर लौट जाने का आग्रह करती है। शेष मे मीरा का अटल उत्तर है।

भावार्थ—(मीरा की ननद ऊदा बाई कहती है—) हे भाभी कुछ विचार कर अपनी राय दो (तुम्हारा यह वैराग्य का निर्णय ठीक नहीं)। तुम मेरी बात मानो भी कि साधु की संगति मे महान कष्ट ही है। तुम छापा-तिलक और गले की माला को दूर हटाओ (एक रानी को इन सब चीजों की क्या आवश्यकता), तुम तो कीमती हार धारण करो। रत्नो से जड़े आभूषण—गहनो को ग्रहण करो, महान भोगों को भोगो (राज्य, धन, ऐश्वर्य का सुख उठाओ)। हे मीरा जी, तुम तो अब महलो को लौट चलो, मुझे तुम्हारा विछोह सता रहा है (मेरी खुशी के लिए ही सही तुम फिर से महलो को वापस चलो)।

(उत्तर मे मीरा कहती है—)मैंने तो भाव और भक्ति के आभूषण पहन रखे है, शील और संतोष ही मेरा शृङ्गार है (फिर मुझे कीमती हार और रत्नजटित आभूषणों से क्या आकर्षण ?) मैंने प्रेम की चूनर ओढ ली है, गिरधारी कन्हैया मेरे स्वामी हैं (तुम्हारे भाई के महलो मे अब मेरा नाता नहीं रह गया है)।

हे ऊदा बाई, तनिक मन से मेरी बातों को समझने का प्रयत्न करो (मैं जो कुछ कर रही हूँ उसमे मेरा दृढ निश्चय काम कर रहा है)। तुम तो अपने घर लौट जाओ। जो भी राज्य-वैभव है तुम उसे अपने ही व्यवहार में लाओ, मुझे उनसे कोई प्रयोजन नहीं है।

यहि विधि भक्ति कैसे होय।
मन की मैल हिय तें न छूटी, दियो तिलक सिर धोय।
काम कूकर लोभ डोरी, बाँधि मोहि चण्डाल।
क्रोध कसाई रहत घट में कैसे मिले गोपाल।

विलार विषया लालची रे, ताहि भोजन देत।
दीन हीन ह्वै छुधा रत से, राम नाम न लेत।
आप ही आप पुजाय केरे, फूले अंग न समात।
अभिमान टीला किये बहु कहु जल कहाँ ठहरात।

(प्रभाकर, जून १६५८)

प्रसंग—प्रस्तुत पद में मीरावाई ने बताया है कि काम, क्रोध, लोभ मोह, तथा गर्व मे लीन रह कर मनुष्य भगवान् की भक्ति नही कर सकता। भगवान् की भक्ति करने के लिए इन सब का त्याग करना अति आवश्यक है।

भावार्थ—मीरावाई कहती है कि इस प्रकार भगवान् की भक्ति कैसे हो सकती है ? हृदय की मलीनता (कलुषता) तो दूर नही हो सकी और तुमने सिर को धो कर अर्थात् स्नान करके माथे पर तिलक लगा लिया है। जब तक तुम्हारे हृदय मे मोह रूपी चाँडाल काम रूपी कुत्ते को लोभ की रस्सी मे बाँधे हुए है और क्रोध रूपी कसाई भी उसे अपना निवास बनाये हुए है तब तक वहाँ तुम्हे श्रीकृष्ण की मूर्ति किस प्रकार दिखाई पडेगी ? जिस प्रकार विलाव मास का आकर्षण नही छोडता है उसी प्रकार तुम्हारा मन रूपी विलाव भी विषय-वासना के लालच मे पडा है और तुम उसे भोजन पहुँचाते हो अर्थात् असंयम और इन्द्रियो की निरकुशता के कारण तुम्हारा मन दिनो-दिन विषयासक्त ही होता जाता है। विषय-वासना की भूख कभी मिटने वाली नही होती। अत. भूखे व्यक्ति के समान दीन-हीन बना वह भगवान् का नाम तक नही लेता है। अरे तुम तो स्वय अपने को पूजा का पात्र बता कर—लोगो से अपनी पूजा करवा कर खुशी से फूले नही समाते, किन्तु कभी यह भी सोचते हो कि तुम पूजा के पात्र हो भी या नही ? तुम अभिमान का टीला बनाकर उस पर भक्ति रूपी जल को ठहराना चाहते हो यह कहाँ से होगा ? भक्ति का जल तो हृदय में तभी ठहर सकता है जब तुम हृदय को गहरा बनाओगे और अपने आप को नम्रता का पुजारी बनाओगे।

भाव यह है कि दर्प के आकण्ठ में डूबकर भगवान की भक्ति नहीं की जा सकती है। भक्ति के क्षेत्र मे आत्मसंयम तथा नम्रता की आवश्यकता है।

माई म्हारी हरिहू न बूझी बात।
पिंड मां सूं प्राण पापी निकसि क्यूं नहिं जात।
पट न खोल्यो मुख न बोल्यो सांझ भई परभात।
अबोलणां जुग बीतल लागो तो काहे की कुसलात।
सावण आवण कह गया रे हरि आवण की आस।
रैन अंधेरी बीजरी चमकै तारा गिणत निरास।
लेइ कटारी कंठ सारूं मरूंगी विष खाइ।
मीरा दासी राम राती लालच रही ललचाइ।

प्रसंग—प्रियतम के दर्शन की भूखी मीरा अपने विरह के दर्द का वर्णन करती हुई कहती है कि भगवान् ने मेरी व्याकुलता को नहीं समझा। मुझे अब तक उनका समागम नही प्राप्त हो सका, मैं कितनी अभागी हूँ। पद्य मे उत्कंठा का भाव प्रबल है।

भावार्थ—अरी मेरी मैया, भगवान् ने भी मेरी बात नही समझी (उन्होंने भी मुझे विस्मृत कर दिया)। हाय मेरे इस शरीर से प्राण निकलते क्यो नही (विरह से इस प्रकार मुक्ति तो पा जाती, शरीर का बन्धन ही मुझे उनसे पृथक् रख रहा है)। अब तक उन्होंने न एक बार दरवाजा ही खोला, न सामने आकर मुँह मे दो बाते ही की। प्रतीक्षा-प्रतीक्षा मे ही सन्ध्या प्रातःकाल होने को आ गया। जब उनसे दो बाते किये बिना ही युग बीतने को आ गया तब कुशलता (सुन्दर जीवन) की बात किस प्रकार समझूँ। प्रियतम सावन महीने मे आने की बात कह गए थे अतः मैं भगवान् के आने की आशा मे भूली रही। हाय, इस अंधेरी रात मे बिजली चमक रही है, मैं निराश मन से (अकेली बैठी) आकाश के तारे गिन रही हूँ। (सोचती हूँ) कटारी लेकर गले में मार लूँगी या विष खा कर प्राण त्याग दूँगी किन्तु यह मीरा तो भगवान् की भक्ति में रंगी है उसे दर्शन का लाभ आकर्षित कर जीवित रख रहा है।

जोगिया जी दरसण दीज्यो आइ।
तेरे कारण सब जग ढूंढ्या घर-घर अलख जगाइ।
खान-पान सब फीका लागै नैणां नीर न माइ।
बहुत दिनों के बिछुरे प्यारे, तुम देख्यां सुख पाइ।
'मीरा' दासी तुम चरणां की मिलज्यो कंठ लगाइ।

प्रसंग—'हरि दर्शन की प्यासी' मीरा प्रस्तुत पद्य मे अपनी व्याकुलता का चित्र प्रस्तुत कर दर्शन देने की प्रार्थना करती है। दर्शन ही तो उसके जीवन का सर्वस्व हैं।

भावार्थ—हे मेरे, विरक्त योगी (रूठे प्रियतम) अब तो आकर अपना दर्शन देना (अब तक की प्रतीक्षा ही कम नही है और अधिक प्रतीक्षा में मत रखो)। तुम्हारे दर्शन के कारण मै सारी दुनिया मे भटकती फिरी, घर-घर जा कर अलख जगाया। तुम्हारे विरह मे मुझे खाना-पीना भी अरस—स्वादहीन हो रहा है, मेरी आँखो मे (रोते-रोते अब तो) आँसू भी नही रहे। मैं तुमसे बहुत दिनो की बिछुडी हुई हूँ (पता नही तुमसे पृथक् होकर कितने जन्म से मिलने को व्यग्र हूँ) मुझे तो तुम्हे देख लेने के पश्चात् ही सुख मिल सकता है। (सुनो भी प्यारे) मीरा तो तुम्हारे चरणो की दासी है (सभी प्रकार तुम पर ही आश्रित है) उसे कण्ठ से लगाकर मिलो।

तुलसीदास

खल परिहास होइ हित मोरा। काक कहहिं कलकंठ कठोरा।
हसहिं बक, दादुर चातक ही। हँसहिं मलिन खल बिमल बतकही।
कवित रसिक न रामपद नेहू। तिन्ह कहँ सुखद हास रस एहू।
भाषा भनिति मोरि मति भोरी। हँसिबे जोग हँसे नहीं खोरी।
प्रभु पद प्रीति न सामुझि नीकी। तिन्हहि कथा सुनि लागिहि फीकी।
हरि हेर पदरति मति न कुतरकी। तिन्ह कहँ मधुर कथा रघुबर की।
राम भगति भूषित जिअ जानी। सुनहहिं सुजन सराहि सुबानी।
कवि न होऊँ नहिं बचन प्रबीनू। सकल कला सब बिद्या हीनू।
आखर अरथ अलंकृति नाना। छन्द प्रबन्ध अनेक विधाना।
भाव भेद रस भेद अपारा। कवित दोष-गुन विविध प्रकारा।
कवित विवेक एक नहिं मोरे। सत्य कहौं लिखि कागद कोरे।
भनिति मोर सब गुन रहित, बिस्व बिदित गुन एक।
सो विचारि सुनहहिं सुमति, जिन्ह के बिमल बिवेक।

प्रसंग—महात्मा तुलसीदास जी 'रामचरितमानस' के प्रारम्भ मे आत्म-विनय का सहारा लेकर अपनी असमर्थता पर प्रकाश डालते है। अपनी कविता मे सम्पूर्ण काव्य-गुणो का अभाव बताकर एक गुण-राम यश-वर्णन

ही वताते है। सर्वत्र दैन्य का भाव है, नम्रता का साम्राज्य है।

भावार्थ—(महात्मा तुलसीदास का कथन है कि) दुष्ट जनो की निन्दा से मेरा उपकार ही होगा (यदि वे मेरी रचना को निकृष्ट वतायेंगे तो सज्जन उसे उत्कृष्ट मानेंगे कारण) कौए मधुरभाषी कोयल को कठोर स्वर का वताते है। वगुले हस की और मेढक पपीहे की बुराई करते है। और कलुषित हृदय वाले दुष्ट निर्मल वाणी की हसी उडाते हैं। जो न काव्य कला के प्रेमी है और न जिनको भगवान् राम के चरणो मे ही स्नेह है, उन्हे (यह मेरी रचना) हास्य का रस प्रदान कर सुख देने वाली होगी (उनकी हँसी का साधन मान कर भी मैं इसे सफल मान लूँगा)। पहले तो यह लोक-भाषा मे रची गई रचना है फिर वुद्धि भी भोली (अनजान) है, अत यह हसने की वस्तु ही है उस पर हसने मे कोई दोष नही और जिसका न भगवान् के चरणो मे स्नेह है, नही समझ ही अच्छी है उन्हें यह कथा सुनने पर फीकी (रसहीन) जचेगी। हाँ, जिनकी प्रीति विष्णु तथा शिव के चरणो मे है और जिनकी वुद्धि वुरे तर्कों में नही फँसी है उन्हे तो यह श्री रामचन्द्र का चरित्र मीठा लगेगा। जो सज्जन हृदय हैं, वे अपने मन मे इसे श्री रामचन्द्र की भक्ति से अलकृत जानकर सुनेंगे तथा प्रिय वचनो मे इसकी सराहना भी करेंगे। मैं न कवि हूँ और न वाक्य चातुर्य ही मुझ मे है, मैं तो सब कला और सब विद्याओ से शून्य हूँ। वर्ण और अर्थ के सहारे (अपनी वाणी की) सजावट तथा छन्द रचना के अनेकानेक नियमो का ज्ञान, भाव और रसो के अगणित भेद तथा कविता के गुण-दोषो की तरह-तरह समीक्षा आदि जो काव्य ज्ञान है वे मुझ मे एक भी नहीं हैं, यह वात मैं कोरे कागज पर लिख कर कह रहा हूँ।

मेरी रचना सभी गुणो से विहीन है, फिर भी उसमे ससार-प्रसिद्ध एक गुण है (वह है भगवान् का चरित्र वर्णन) अत जिनको निर्मल ज्ञान प्राप्त है वे बुद्धिमान प्राणी इसे श्रवण करेंगे।

सुठि सुन्दर संवाद वर, विरचे बुद्धि विचार।
तेइ येहि पावन सुभग सर, घाट मनोहर चार।
सप्त प्रबंध सुभग सोपाना। ज्ञान नयन निरखत मन माना।
रघुपति महिमा अगुन अबाधा। बरनब सोइ बर बारि अगाधा।
राम सीय जस सलिल सुधा सम। उपमा बीचि बिलास मनोरम।

पुरइन सघन चारु चौपाई । जुगति मंजु मनि सीप सुहाई ।
छंद सोरठा सुन्दर दोहा । सोइ बहु रङ्ग कमल कुल सोहा ।
अरथ अनूप सुभाव सुभाषा । सोइ पराग मकरन्द सुबासा ।
सुकृत पुंज मँजुल अलि माला । ज्ञान विराग विचार मराला ।
धुनि अवरेन कवित गुन जाती । मीन मनोहर ते बहु भाँती ।
अरथ धरम कामादिक चारी । कहब ज्ञान विज्ञान विचारी ।
नव रस जप तप जोग विरागा । ते सब जलचर चारु तडागा ।
सुकृति साधु नाम गुण गाना । ते विचित्र जल विहँग समाना ।
सत सभा चहु दिशि अमराई । श्रद्धा रितु बसन्त सम गाई ।
भगति निरूपन विविध विधाना । छमा दया दम लता विताना ।
सम जम नियम फूल फल ज्ञाना । हरि पद रति रस बेद बखाना ।
औरो कथा अनेक प्रसङ्गा । तेइ सुक पिक बहु बरन विहङ्गा ।

प्रसंग—'रामचरितमानस' नाम की सार्थकता दिखाने के लिये महात्मा तुलसीदास जी उसकी तुलना मानसरोवर से करते है। मानसरोवर का सक्षिप्त रूप ही मानस है तो यहाँ उन्होने मानसरोवर के विविध अगो को अपनी रचना रामचरितमानस मे आरोपित किया है।

भावार्थ—(महात्मा तुलसीदास कहते है—) बुद्धि के सहारे तथा विचार-पूर्वक जो (चार) श्रेष्ठ और सुन्दर सवाद की रचना इसमें है वही इस पवित्र तथा शोभाप्रद सरोवर के चार मनोहर घाट है (रामचरितमानस मे चार सवाद प्रकट है—काक-भुशुण्डि सवाद, शिव-पार्वती सवाद, याज्ञवल्क्य-भारद्वाज सवाद तथा तुलसीदास और सतो का सवाद)।

सात काण्ड (बाल, अयोध्यादि) इस की सुन्दर सीढियाँ है, जो ज्ञान की दृष्टि से देखने पर मन को रुचने लगती है। श्री रामचन्द्र की गुणहीन (सत्व, रज, तम जैसे गुणो से दूर) तथा अबाध (रुकावट रहित) वर्णन ही इसका स्वच्छ गम्भीर जल है और राम तथा सीता के यश को लेकर वह जल अमृत की समानता करता है, उसमें उपमा (अलकार विशेष) की मनोहर लहरे उठ रही है। सुन्दर चौपाइयाँ (छन्द विशेष) कमल की घनी लताये है और सुन्दर युक्तियाँ ही मणि वाली सुहावनी सीपियाँ है। छन्द, सोरठा और सुन्दर दोहे (क्या है) वही तो रंग-बिरगे कमल (पुष्प) के समूह बन कर शोभा पा रहे है।

फिर भी अनुपम अर्थ, सुन्दर भाव तथा सुन्दर भाषा की विशेषता है, उन्हें ही पराग, मकरन्द और सुगन्ध समझिए। पुष्पों की ढेरी ही सुन्दर भौरों की पंक्तियाँ हैं तथा ज्ञान, वैराग्य एवं विचार ही हंस हैं। (इसकी कविता की) जो ध्वनि अवरेब (वक्रोक्ति आदि कथन) है, गुण (माधुर्य, ओज, प्रसादादि) तथा जातियाँ (विभिन्न शैलियाँ) हैं वे ही तरह-तरह की मछलियाँ हैं। धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष— इन चार फलों का निरूपण, ज्ञान-विज्ञान का विचारपूर्ण कथन नव रस (शृंगार-करुण आदि) का परिपाक तथा जप तप, योग और वैराग्य आदि का वर्णन—ये ही इस मोहक सरोवर के जलचर जीव हैं। पुण्यात्मा (नरों), संतों तथा भगवान् राम नाम के गुणों का गान ही (सरोवर के) जलीय पक्षियों के समान है। संतों की मंडली ही (तट के चारों दिशाओं की) अमराई (आम की बगीची) है जिसमें श्रद्धा वसन्त ऋतु बन कर फैल रही है और अनेकों प्रकार से भक्ति का प्रतिपादन तथा क्षमा, दया, संयम आदि की भावना ही लताओं के मंडप हैं। यदि शम (शान्ति), यम (अहिंसा, सत्य, अस्तेय, ब्रह्मचर्य और अपरिग्रह) एवं नियम (शौच, सन्तोष, तप, स्वाध्याय तथा ईश्वर स्मरण) पुष्प रूप हैं तो ज्ञान ही फल है फिर भगवान् के चरणों का स्नेह ही उसका वेदों द्वारा कथित रस है। अन्य-अन्य अनेकों प्रसंग की जो कथाएँ हैं, वे ही तोते, कोयल आदि अनेकों पक्षी हैं।

चतुर गंभीर राम महतारी। बीचु पाइ निज बात सँवारी।
पठइ भरतु भूप ननिऔरे। राम मातु मत जानव रौरे।
सेवहि सकल सवति मोहि नीकें। गरबित भरत मातु बल पी कें।
सालु तुम्हार कौसिलहि माई। कपट चतुर नहि होइ जनाई।
राजहिं तुम्ह पर प्रेमु बिसेखी। सवति सुभाउ सकइ नहिं देखी।
रचि प्रपञ्चु भूपहि अपनाई। राम तिलक हित लगन धराई।
येहु कुल उचित राम कहुँ टीका। सबहि सोहाइ मोहि सुठि नीका।
आगिल बात समुझि डर मोहि। देउ दैउ फिरि सो फलु ओही।

(प्रभाकर, नवम्बर १९५९)

प्रसंग—मन्दमति मन्थरा कैकेई की बुद्धि पर पर्दा डालना चाहती है, उल्टा-सीधा पढ़ा कर भगवान् राम के राज्य तिलक में बाधा डालना चाहती है इसका चित्रण इन पंक्तियों में है। मन्थरा स्पष्ट कहती है कि राम का राज्य

तो षड्यन्त्र रचकर कौशल्या करा रही है। मन्थरा की मन्त्रणा का यह अंश वाक्य-चातुरी का प्रमाण है।

भावार्थ—मथरा रानी कैकेई से कहती है—हे स्वामिनि ! आप नही जानती रामचन्द्र की माता कौशल्या बडी चतुरा और अपने भाव को प्रकट नही होने देने वाली है, उसने अवसर पाकर अपनी बात बना ली है (कार्य सिद्ध कर लिया है)। राजा ने जो भरत को ननिहाल भेजा वह आप जान ले—रामचन्द्र की माता की राय से ही भेजा है। (कौशल्या जानती है कि) मेरी अन्य सौत तो अच्छी तरह निभाती है किन्तु भरत की माता अपने पति के बल पर गर्व दिखाती है (उसे गर्व है कि राजा उसे सभी रानियो से अधिक प्यार करते हैं) तुम (सच्ची मानो) माता कौशल्या ही तुम्हारे लिए काटा बन रही है, वह छल करने मे चतुरा है अत उसका रूप जानने मे नही आता। राजा का तुम पर अधिक प्रेम है (यह बात उसे खलती है) वह सौतिया डाह के कारण इसे सहन नही कर सकती। (इसीलिए उसने) षड्यन्त्र रच कर राजा पर अपना अधिकार कर लिया है और रामचन्द्र के तिलक के लिए लग्न निश्चित करा लिया है। (यह सही है कि) इस कुल में श्री रामचन्द्र का राजतिलक ही उचित है। यही बात सबको अच्छी लगने वाली है फिर मेरे लिए भी अच्छी-भली ही है। सच पूछिए तो मुझे आगे की बात सोच कर ही भय हो रहा है, परमात्मा करे वह फल उसे ही उलट कर मिले (भरत पर कोई आपत्ति न आवे)।

बिलपहिं बिकल भरत दोउ भाई। कौसल्या लिए हृदय लगाई।
भांति अनेक भरतु समुझाए। कहि बिबेक बर बचन सुहाए।
भरतहुं मातु सकल समुझाए। कहि पुरान श्रुति कथा सुहाई।
छल बिहीन सुचि सरल सुबानी। बोले भरत जोरि जुग पानी।
जे अघ मातु पिता सुत मारे। गाइ गोठ महिसुर पुर जारे।
जे अघ तिय बालक बध कीन्हें। मीत महीपति माहुर दीन्हें।
जे पातक उप पातक अहहीं। करम बचन मन भव कबि कहहीं।
ते पातक मोहि होहु बिधाता। जौ यह होउ मोर मत माता।

प्रसंग—श्री राम, लक्ष्मण तथा सीता के वन-गमन और राजा दशरथ की मृत्यु के पश्चात् भरत अपनी ननिहाल से अयोध्या आते है। अयोध्या की

परिवर्तित स्थिति को देख कर वह सर्वथा स्तब्ध रह जाते हैं उन्हें कुछ सूझता ही नहीं। माता कैकेयी के कार्यों के लिए उनकी भर्त्सना तो करते ही हैं, शत्रुघ्न तो मथरा को लात मारते हैं। फिर दोनो भाई श्री राम-जननी कौशल्या के पास जाते हैं। उससे अपनी स्थिति प्रकट करते हैं। प्रस्तुत प्रसग भरत-अनुनय से सम्बन्ध रखता है।

भावार्थ—दोनों भाई—भरत और शत्रुघ्न (कौशल्या की वाणी सुनकर) विकल हृदय हो रो पडे। (उनकी यह दयनीय स्थिति देख कर) कौशल्या ने अपनी छाती से लगा लिया। फिर ज्ञान की श्रेष्ठ और सुहावनी बातें कह कर अनेकों प्रकार से भरत को प्रबोध दिया। भरत ने भी वेद और पुराणो की सुन्दर कथाएँ कह कर माताओ को समझाया। भरत अपने दोनो हाथ जोड़ कर प्रार्थनापूर्वक छलरहित पवित्र, सीधी तथा मधुर वाणी बोले—(हे माता) जो पाप माता, पिता और गुरु के वध करने से होता है, जो पाप गोशाला और ब्राह्मण के गाव जलाने मे होता है। जो पाप स्त्री और बालक की हत्या से लगता है, जो पाप मित्र और राजा को विष देने से लगता है तथा जितने भी पाप और उप-पाप हैं और ससार में जितने भी मन, वचन और कर्म के द्वारा कविगण बताते है, वे सभी पाप परमेश्वर मुझे दे यदि हे माता, इस काम मे मेरी सम्मति हो।

तिमिरु तरुन तरनिहि मकु गिलई। गगनु मगन मकु मेघहिं मिलई।
गोपद जल बूड़हिं घटजोनी। सहज छमा बरु छाड़इ छोनी।
मसक फूंक मकु मेरु उडाई। होइ न नृप मदु भरतहि भाई।
लखन तुम्हार सपथ पितु आना। सुचि सुबन्धु नहि भरत समाना।
सगुनु खीरु अवगुन जलु ताता। मिलइ रचइ परपंचु विधाता।
भरतु हँस रबि बस तडागा। जनमि कीन्ह गुन दोष बिभागा।
गहि गुन पय तजि अवगुन बारी। निज जस जगत कीन्हि उजियारी।
कहत भरत गुन सीलु सुभाऊ। प्रेम पयोधि मगन रघुराऊ।

सुनि रघुबर बानी बिबुध, देखि भरत पर हेतु।
सकल सराहत राम सो, प्रभु को कृपा निकेतु।

प्रसंग—जब भरत पुरवासियों के साथ भगवान् रामचन्द्र से मिलने पंचवटी पहुँच रहे थे तो लक्ष्मण जी को आशंका हुई कि कहीं भरत कुछ और

सोचकर तो यहाँ नही आ रहे है। उन्होने अपनी भावना श्री रामचन्द्र पर प्रकट भी कर दी। किन्तु भरत के हृदय को समझने वाले भगवान् रामचन्द्र ने कहा—भरत के लिए किसी प्रकार की आशका ठीक नही। दुनिया मे बडा से बड़ा परिवर्तन हो सकता है, असम्भव भी सम्भव हो सकता है, फिर भी भरत पर आशका नही करनी चाहिए।

भावार्थ—(भगवान् रामचन्द्र कहते है कि हे लक्ष्मण) चाहे अन्धकार (दोपहरी के) प्रचण्ड सूर्य को आत्मसात् करले, चाहे आकाश अपने को बादलों में विलीन कर दे, चाहे गाय के खुर से बने गढे के जल मे अगस्त्य ऋषि डूबने लगे, चाहे पृथ्वी अपनी क्षमा के स्वाभाविक गुण को छोड दे, चाहे मच्छर की फूक से पर्वत उडने लगें किन्तु भरत के हृदय में राजमद की बात नही आ सकती। हे लक्ष्मण, मै तुम्हारी तथा पिता की शपथ खाकर कहूँगा कि भरत के समान पवित्र हृदय और स्नेही भाई दूसरा नही मिलने का। ब्रह्मा तो अच्छे गुण रूपी दूध और अवगुन रूपी जल को मिला कर इस दुनिया की रचना रचता है किन्तु भरत ने तो इस सूर्य वश रूपी सरोवर में जन्म लेकर गुण और दोप को पृथक् कर दिया है। उन्होने गुण रूपी दूध को ग्रहण कर अवगुण स्वरूप जल का त्याग किया है और अपनी कीर्ति से ससार में उजाला फैलाया है। (इस प्रकार) भरत के गुण, शील (श्रेष्ठ आचरण) और स्वभाव का बखान करते हुए श्री रामचन्द्र प्रेम के समुद्र मे डूब गए (आत्मविभोर हो गए)।

श्री रामचन्द्र जी की वाणी सुनकर और भरत के ऊपर उनका स्नेह देखकर सभी देवता प्रशसा करने लगे कि रामचन्द्र के समान दया का भडार स्वामी दूसरा कौन है?

> नव पल्लव भये बिटप अनेका। साधक मन जस मिले बिवेका।
> अर्क जवास पात बिनु भयऊ। जस सुराज खल उद्यम गयेऊ।
> कृपी निरावहिं चतुर किसाना। जिमि बुध तजहिं मोह मद माना।
> ऊसर बरपै तृन नहिं जामा। जिमि हरिजन हियँ उपज न कामा।
> बिबिध जन्तु संकुल महि भ्राजा। प्रजा बाढ़ जिमि पाइ सुराजा।

(प्रभाकर, जून १६५८)

प्रसंग—श्री रामचन्द्र जी ने अपने अनुज लक्ष्मण जी के साथ प्रवर्षण गिरि पर वर्षा ऋतु के दो महीने व्यतीत किये। कवि वर्षा ऋतु का वर्णन

करते हुए कहता है कि—

भावार्थ—वर्षा ऋतु मे अनेकानेक वृक्षो मे इस प्रकार नवीन पत्ते निकल आए है, जिस प्रकार साधको के मन को ज्ञान की प्राप्ति होती है, परन्तु अकवन और जवासा के पौवे इस प्रकार पत्ते से रहित हो गए है जिस प्रकार न्यायी राजा के राज्य मे दुष्टो का उत्पात मिट जाता है। इस ऋतु मे चतुर किसान अपने खेतो की निकौनी इस प्रकार करते हैं जैसे बुद्धिमान् पुरुष अज्ञान, मतवालापन और अभिमान को अपने से दूर कर देते है। अधिक वर्षा होने पर भी ऊसर बजर भूमि मे घास इस प्रकार नही जम पाती, जिस प्रकार भगवान् के भक्तो के हृदय में काम वासना नही पैदा होती है। भाँति-भाँति के जीवो से भरी पृथ्वी इस प्रकार शोभा पा रही है मानो अच्छे राज्य में प्रजा की उन्नति हो रही हो।

सुखी मीन जे नीर अगाधा। जिमि हरि सरन न एकौ बाधा।
फूले कमल सोह सर कैसा। निर्गुन ब्रह्म सगुन भए जैसा।
गूंजत मधुकर मुखर अनूपा। सुन्दर खग रव नाना रूपा।
चक्रवाक मन दुख निसि पेखी। जिमि दुर्जन पर संपति देखी।
चातक रटत तृषा अति ओही। जिमि सुख लहइ न शकरद्रोही।
सरदातप निसि ससि अपहरई। सत दरस जिमि पातक टरई।
देखि इन्दु चकोर समुदाई। चितवहिं जिमि हरिजन हरि पाई।
मसक दंस बीते हिम त्रासा। जिमि द्विज द्रोह किएँ कुल नासा।
भूमि जीव संकुल रहे, गए सरद ऋतु पाइ।
सदगुर मिले जांहि जिमि, ससय भ्रम समुदाय।

प्रसंग—सीता हरण के पश्चात् राम और लक्ष्मण अपना समय प्रवर्षण पर्वत पर बिताने को बाध्य हुए। वर्षा ऋतु के व्यतीत होने पर ही तो सीता का अनुसधान किया जा सकता था—फलत राम को शरद् काल की प्रतीक्षा करनी पड़ी। रामचरितमानस मे भगवान् के मुख से महात्मा तुलसीदास ने वर्षा और शरद् की ऋतुओं का सुन्दर वर्णन करवाया है। प्रस्तुत प्रसग शरद् वर्णन का है।

भावार्थ—वे तो मछलियाँ सुखी है—जिन्हे गहरा जल प्राप्त है, जैसे [illegible] पर एक भी आपत्ति कष्ट नही देती। कमल खिल रहे

है और उनसे तालाब इस प्रकार शोभित है जैसे निराकार परमात्मा साकार रूप अपना कर शोभा प्राप्त करता है। अनुपम स्वर सुनाने वाले भौंरे गुंजार कर रहे हैं और तरह-तरह के सुन्दर पक्षी भी अपना स्वर सुना रहे हैं। चक्रवाक (चकवे) के मन में रात के आगमन से इस प्रकार दुख हो रहा है, जैसे दुष्ट जनो को दूसरो की सम्पत्ति को देखकर क्लेश होता है। चातक अपनी प्यास की रट लगा रहा है, उसे आज भी बडी प्यास है जैसे भगवान् शिव के विद्वेषी प्राणी को कभी सुख की प्राप्ति नही होती। शरद काल में धूप की गर्मी को रात मे चन्द्रमा इस प्रकार हरण कर लेता है जैसे सन्तो—साधुओ के दर्शन से पाप दूर हो जाता है। चन्द्रमा को चकोरो का समूह इस प्रकार देखता है जैसे भगवान् के भक्त भगवान् को अपलक देखने लगते हैं। जाडे के भय से मच्छरो का दर्शन इस प्रकार समाप्त हो गया जिस प्रकार ब्राह्मण से वैर करने पर वंश का नाश हो जाता है।

(वर्षा काल मे) पृथ्वी जीवो से भर रही थी किन्तु शरद ऋतु के आने से वे इस प्रकार नष्ट हो गए जैसे श्रेष्ठ गुरु की प्राप्ति से (हृदय मे) सन्देह और भ्रमो का समूह मिट जाता है।

ऐसी मूढ़ता या मन की

परिहरि राम भगति सुर सरिता आस करत ओस कन की।
धूम समूह निरखि चातक ज्यों तृषित जानि मति घन की।
नहिं तह सीतलता न बारि पुनि हानि होत लोचन की।
ज्यों गच काच बिलोकि सेन जड छाह आपने तन की।
टूटत अति आतुर अहार बस छति बिसारि आनन की।
कह लौं कहौं कुचाल कृपा निधि जानत हौं गति जन की।
तुलसिदास प्रभु हरहु दुसह दुख, करहु लाज निज पन की।

प्रसंग—'विनय-पत्रिका' महात्मा तुलसीदास की अन्यतम कृति है। कवि ने इसमे विविध देवों की अभ्यर्थना की है। प्रस्तुत पद मे उन्होंने अपनी मूढ़ता को आगे रख कर भगवान् से करुणा की याचना की है।

भावार्थ—हाय, इस मन की मूर्खता ऐसी है (कि वह भूल पर भूल ही करता है) भगवान् राम की भक्ति स्वरूपिणी गंगा को छोड कर वह ओस की बूंदो से (तृप्ति की) आशा करता है। वह तो धुए के गुब्बार को बादल समझते

हुए चातक की भांति टकटकी लगाता है और अपनी तृषा (प्यास) को मिटाना चाहता है किन्तु उसे वहाँ न तो शान्ति मिलती है और न जल की ही प्राप्ति होती है उल्टे (उन धुँए से) उन की आंखों को हानि पहुंचती है (वह सांसारिक माया-बन्धनों में सुख तो पाता नहीं उल्टे अपने अमूल्य जीवन को अवश्य बर्बाद कर देता है)। (उनकी अवस्था ठीक वैसी है) जैसे मूर्ख बाज पक्षी कांच के गच (फर्श) में अपने शरीर की छाया देख कर (उसे दूसरा पक्षी मान लेता है और) उसे अपना आहार बनाने को उस पर अत्यन्त व्यग्र होकर आक्रमण करता है— यह भूल जाता है कि इस प्रकार उसके मुख को चोट पहुँचेगी। हे कृपा के सागर! मैं कहाँ तक (अपने मन की अवस्था का) वर्णन करूं, तुम तो अपने सेवक की हालत से परिचित हो। तुलसीदास कहते हैं हे स्वामी! अपनी प्रतिज्ञा की लज्जा रखो और इस असहनीय दुःख को दूर करो (तुम्हारा व्रत ही दूसरों का दुःख दूर करना है, इसे भूलो मत)।

काज कहा नर तनु धरि सार्यो।
पर उपकार सार श्रुति को जो सो धोखेहु न विचार्यो।
द्वैत मूल, भय सूल, सोग फल, भवतरु टरै न टार्यो।
राम भजन तीछन कुठार लै सो नहिं काटि निवार्यो।
संसय-सिन्धु नाम बोहित भजि निज आत्मा न तार्यो।
जनम अनेक विवेकहीन बहु जोनि भ्रमत नहिं हार्यो।
देखि आन की सहज सम्पदा द्वेष अनल मन जार्यो।
सम दम दया दीन पालन सीतल हिय हरि न संभार्यो।
प्रभु गुरु पिता सखा रघुपति तैं मन क्रम बचन बिसार्यो।
तुलसिदास यहि आस सरन राखिहि जेहि गीध उधार्यो।

प्रसंग—इस विनय के पद में तुलसीदास मानव जीवन के कर्त्तव्यों को स्मरण कराते हैं कि न तो तुम ने पर उपकार के काम हुए न भगवान् का भजन ही, इसलिए द्वैत-बन्धन से भी तुमने छुटकारा नहीं लिया, माता-पिता और गुरु को भी सदा विस्मृत किए रहा। अब तो तुम्हें अपनी शरण में वही रख सकता है जो पतितों का उद्धार करने वाला है। नवीन में करुणा-भाव है।

भावार्थ—हे जीव, तुमने मनुष्य का शरीर पाकर कौन सा कार्य सिद्ध किया। दूसरों का उपकार—जो वेदों के उपदेश का निचोड़ है, उन पर-उपकार

को धोखे से भी हृदय मे नही लाया। और जिसकी जड द्वैत भावना (अपने-पराए का भेद) है, जिसमें भय के काटे एव शोक का फल लगता है ऐसा ससार रूपी वृक्ष (जन्म-मरण की परम्परा) को हटाने मे तुम्हारे प्रयत्न विफल रहे। राम के भजन को तीक्ष्ण कुल्हाडा वनाकर तुम उसे काट न सके और न भ्रमो के समुद्र मे भगवान् के नाम को जहाज वना कर ही तुम अपनी आत्मा को उस पार पहुचा सके (तुमने नाम माहात्म्य का आधार लेकर भी अपने को आत्म-विश्वासी नही वनाया) तुम अनेको जन्म ग्रहण कर सदा अज्ञानी ही रहे—अनेको योनियो में भटकते हुए भी थके नही। दूसरो को सरलता के साथ सपति प्राप्त करते देख अपने मन को द्वेष भाव की आग में जलाते रहे। तुमने शान्ति, आत्म-सयम, दया, दरिद्र का प्रतिपालन तथा शीतल हृदय से कभी भगवान् का स्मरण नही किया। स्वामी, गुरु, पिता तथा साथी—एकमात्र श्री रामचन्द्र ही है, इस सत्य को तुमने मन, कर्म तथा वचन—तीनो से ही भुला दिया। तुलसीदास कहते है—अब तुम्हे इस त्रास से छुटकारा देने वाले और आश्रय देने वाले वही (भगवान् राम) हो सकते है जिन्होने गिद्ध (जटायू) का उद्धार किया था।

राम हौं ! कौन जतन घर रहिहौं।
बार बार भरि अंक गोद लै ललन कौन सों कहिहौं।
एहि आंगन विहरतमेरे बारे ! तुम जो संग सिसु लीन्हें।
कैसे प्राण रहत सुमिरत सुत बहु विनोद तुम कीन्हें।
जिन्ह स्रवननि कल वचन तिहारे सुनि-सुनि हौं अनुरागी।
तिन्ह स्रवननि वन गमन सुनति हौं, मो ते कौन अभागी।
जुग सम निमिष जाहिं रघुनन्दन-वदन-कमल बिनु देखे।
जो तनु रहे वरष बीते वलि, कहा प्रीति यहि लेखे।
तुलसीदास प्रेमवस श्रीहरि देखि विकल महतारी।
गद गद कंठ, नयन जल, फिर फिर आवन कह्यो मुरारी।

प्रसंग—महात्मा तुलसीदास की गीतावली का यह पद भगवान् राम की वन-यात्रा से सम्बन्ध रखता है। प्यारे पुत्र को अचानक वन जाने के लिए प्रस्तुत देख कर माता कौशल्या स्तब्ध रह जाती है। उसे अपने पुत्र की पिछली बाल-क्रीडाएँ याद आने लगती है—वह कहती है मै तुम्हारे विना अकेली यहाँ

किस प्रकार रह सकूंगी, मुझे तो एक पल एक युग के समान जान पड़ेगा। ऐसी अवस्था मे चौदह वर्ष कैसे कट सकेंगे।

भावार्थ—(माता कौशल्या कहती है कि) हे राम, मैं किस प्रकार घर मे रहूंगी (तुम तो मुझे छोड कर जगल जा रहे हो)। मै किसे बार-बार छाती से लगाऊंगी और किसे गोद मे लेकर बेटा सबोधन से पुकारूंगी? हे मेरे शिशु, तुम इस आगन मे सदा अपने साथी बालको को लेकर दौड़ते रहे और अनेको प्रकार की क्रीडा करते रहे उनकी याद कर ये प्राण किस प्रकार टिके रहेंगे (तुम्हारी प्यारी याद मेरे प्राणों के साथ ही मिटेगी)। जिन कानो से तुम्हारी प्यारी बोली सुन-सुन कर मै आसक्ति अपनाती रही, उन्ही कानो मे तुम्हारे वन जाने की बात सुन रही हूँ भला मुझ जैसी भाग्यहीन और कौन होगी? हे रघुनन्दन, जब तक मै आखो से तुम्हारे कमलसदृश मुख को देख नही लेती, मेरा एक पल युग के समान बीतता है। यदि यह शरीर वर्ष दिन तक तुम्हे बिना देखे ही रह जाय तो भला इस प्रीति का क्या मूल्य? तुलसीदास कहते है कि माता को इस प्रकार प्रेम मे विकल देख कर, रुंधे गले और आँखों मे जल भर कर मुरारी (मुर राक्षस को मारने वाले विष्णु के अवतार श्री राम) ने कहा (हे माता विश्वास रखो) मैं लौट आऊँगा।

कहौ तुम्ह बिनु गृह मेरो कौन काजु?
बिपिन कोटि सुरपुर समान मोको जो पै प्रिय परिहर्यो राजु।
बलकल बिमल दुकूल मनोहर कंद मूल फल अमिय नाजु।
प्रभु पद कमल बिलोकिहौं छिनछिन, इहि ते अधिक कहा सुख-समाजु?
हौं रहौं भवन भोग लोलुप ह्वै पति कानन कियो मुनि को साजु।
तुलसिदास ऐसे बिरह-बचन सुनि कठिन हियो बिहरो न आजु।

प्रसग—वनवास के लिए अयोध्या छोड़ते समय भगवान् राम तथा जगज्जननी सीता के बीच होने वाले सवाद मे यदि भगवान् की ओर से उन्हें घर मे रहने का आग्रह हुआ तो उन्होंने यह भी तर्क रखा कि आपके बिना रहे घर से मेरा क्या नाता, वहाँ मेरा काम ही क्या है? प्रस्तुत पद में जगज्जननी सीता का मार्मिक उत्तर है।

भावार्थ—(जगज्जननी सीता ने कहा—हे स्वामी) बताओ तो तुम्हारे बिना घर में मेरा क्या काम है, यदि प्रियतम ने राज्य त्याग कर वनवास लिया

तो मेरे लिए भी जगल ही करोडो देवपुरी (स्वर्ग के) समान है। वल्कल (पेडो के छाल ही) मेरे लिए स्वच्छ तथा मनोहर वस्त्र है, और कन्द, मूल, फल ही अमृत तुल्य भोजन पदार्थ हैं। (साथ रह कर वहाँ) मे क्षरण-क्षरण मैं स्वामी के चरण-कमलो को देख सकूँगी, मेरे लिए इससे बढ कर सुख का समूह और क्या होगा? (यह कैसे उचित कहा जायगा कि) पति तो वन-गमन के लिए मुनियो का वेप सजा चुके और मैं भोगो की अनुरागिणी (सुख की इच्छा रखने वाली बन कर घर मे रहूँ? तुलसीदास कहते हैं (जगज्जननी ने बताया—कि यही आश्चर्य है) जो इस प्रकार की विरह-वाणी सुन कर भी आज यह कठोर हृदय फटा नहीं।

मैं तुम्ह सौं सति भाव कही है।
बूझति और भांति भामिनि कत, कानन कठिन कलेस सही है।
जो चलिहौ तो चलौ चलि कै वन, सुनि सिय मन अवलम्ब लही है।
बूडत विरह वारिनिधि मानहु नाह बचन-मिस बांह गही है।
प्राणनाथ के साथ चली उठि अवध सोक-सरि उमंगि बही है।
तुलसी सुनि न कबहुँ काहू, कहुँ तनु परिहरि परिछांह रही है।

प्रसग—भगवान् राम को अत मे स्वीकार करना ही पडा कि जगज्जननी भी चाहे तो साथ चल सकती हैं। जगल के क्लेशो की बात जो मैंने कही यह तो सही रूप में ही कही है। जगज्जननी को और क्या चाहिए—वह तो वन-गमन की स्वीकृति को ही आधार मानती थी। प्रस्तुत पद मे पतिप्राणा नारी के हृदय-भावो का उत्कृष्ट चित्रण है।

भावार्थ—(श्री रामचन्द्र जी ने कहा कि) मैंने तुम से जो भी कहा वह सच समझ कर ही कहा है। हे प्रिये, तुम इसे अन्य रूप मे (भरमाने के भाव में) किस प्रकार ले रही हो, जगल मे सचमुच ही कठिन कष्टो का सामना करना है। (फिर भी) यदि तुम चलना ही चाहो तो पैरो से चलकर मेरे साथ वन को चलो—(पति की ऐसी बात) सुनकर सीता ने मन में समझा कि अवलम्ब मिल गया। (वह सन्तुष्ट हो गई) उन्हे ऐसा लगा जैसे विरह के समुद्र में डूबते समय स्वामी ने (स्वीकृति की इस) वाणी के बहाने बाह पकड ली हो। (वह तो) अपने प्राणपति राम के साथ उठकर चल पडी किन्तु अयोध्या मे शोक की नदी उमड कर वह चली। तुलसीदास कहते है कि (श्री राम के साथ जगज्जननी का

जाना ठीक ही है) कारण कभी किसी ने ऐसा नहीं सुना कि शरीर को छोड़ कर शरीर की छाया पृथक् रही हो।

नन्ददास

सुनत स्याम कौ नाम, ग्राम-गृह की सुधि भूली।
भरि आनन्द-रस हृदय प्रेम बेली द्रुम फूली।
पुलकि रोम सब अंग भये, भरि आये जल नैन।
कंठ घुटे गदगद गिरा बोले जात न बैन।

प्रसंग—नन्ददास जी की 'भँवर गीत' कृति उद्धव और गोपियों के मार्मिक सम्वाद को लेकर अपना विशिष्ट महत्व रखती है। भगवान कृष्ण ने मथुरा से उद्धव को गोपियों के बीच इसलिए भेजा था कि वह उनके विरह को अपने निर्गुण उपदेश से कम करें किन्तु जब उद्धव ब्रज मे आए तो उन्हें वहाँ अजीब ही दृश्य देखने को मिला। प्रस्तुत पद्य में उस समय के दृश्य का चित्रण है जब उद्धव के मुख से श्याम कन्हैया का नाम सुनकर गोपियाँ आत्म-विस्मृत हो गईं।

भावार्थ—श्यामसुन्दर का नाम सुनते ही गोपियाँ अपने गाँव-घर की याद भी भूल गईं (उन्हें यह भी ध्यान नहीं रहा कि इतने ग्रामीण और परिवार के लोगों के बीच इस प्रकार की व्याकुलता का प्रदर्शन अच्छा होगा कि बुरा?)। उनके हृदय में आनन्द का रस भर गया प्रेम की लताएँ और वृक्ष (फिर से) फूल उठे। (कहिए सभी गोपिकाएँ प्रेम में उत्फुल्ल हो उठीं)। उनके सारे अंगों के रोए-रोए पुलकित हो उठे। आँखों में आँसू भर आए, कंठ रुद्ध हो गया, वाणी भर आई। उनके मुँह से बोली नहीं निकलती थी।

वे तुम तै नहिं दूरि ग्यान की आँखिन देखौ।
अखिल विश्व भर पूरि, ब्रह्म सब रूप बिसेखौ।
लौह दारु पाषान में जल-थल माँहि अकास।
सचर अचर बरतत सबै जोति ब्रह्म परकास।

प्रसंग—उद्धव ने अवसर पाकर गोपियों के हृदय को निर्गुण ब्रह्म की ओर मोड़ना चाहा—कन्हैया की कुशल कहानी कहते हुए उन्होंने ब्रह्म का रूप बताना आरम्भ कर दिया जो चर-अचर सर्वत्र व्याप्त है। इसी की पुष्टि में उद्धव कह रहे हैं कि हे गोपी, तुम ज्ञान की दृष्टि से देखो वह तुम से दूर नहीं

है निर्गुण रूप में तुम्हारा कन्हैया तुम्हारे पास ही है।

भावार्थ—(उद्धव कहते है हे गोपी) तनिक ज्ञान की आँखे खोलकर देखो, श्री कृष्ण तुम से दूर नहीं है (साकार रूप का मोह छोड दो)। वे सारे ससार में व्याप्त है, निश्चित समझो कि सारा ससार उस ब्रह्म का ही रूप है—वही सब मे व्याप्त है। लोहे, लकडी और पत्थर में, पानी, मिट्टी और आकाश मे, चेतन और जड मे, सबमें ब्रह्म की ज्योति ही प्रकाशित है (कोई पदार्थ उससे रिक्त नही है)।

कौन ब्रह्म की ज्योति ? ग्यान कासों कहौ ऊधौ।
हमरे सुन्दर स्याम, प्रेम को मारग सूधौ।
नैन बैन श्रुति नासिका, मोहन रूप दिखाइ।
सुधि-बुद्धि सब मुरली हरी, प्रेम ठगौरी लाइ।

प्रसंग—उद्धव के कथन पर गोपियाँ कहने को बाध्य हुई कि तुम ब्रह्म की ज्योति किसे कहते हो, तुम अपने ज्ञान की बाते किसे सुना रहे हो? हम तो अपने मोहन रूप वाले कृष्ण को ही अपना सर्वस्व मान चुकी हैं।

भावार्थ—(गोपियो ने कहा) हे उद्धव, ब्रह्म की ज्योति क्या होती है (यह हमे नही मालूम)? फिर तुम अपना ज्ञान किसके सामने सुना रहे हो (हम ग्वालिनो को ज्ञान की बातो से क्या मतलब)? हमारे तो श्यामसुन्दर कृष्ण ही एकमात्र आराध्य है, हमारे प्रेम का मार्ग एकदम सीधा है। हमारे श्री कृष्ण ने हमें अपनी आँख, मुँह, कान, नाक वाला मोहक रूप दिखाया है तथा बाँसुरी बजाकर और प्रेम का जादू चलाकर हमारी सुधि-बुद्धि हरण कर ली है (हमारा मन उसके निर्गुण रूप की ओर कैसे जायगा ?)।

जो गुन आवै दृष्टि मांझ नश्वर हैं सारे।
इन सबहिन तैं वासुदेव अच्युत हैं न्यारे।
इन्द्री दृष्टि विकार तैं रहत अधोक्षज जोति।
शुद्ध सरूपी ग्यान की प्रापति तिन कौं होति।

प्रसंग—गोपियों के उत्तर सुनकर भी उद्धव ने फिर से उन्हें समझाना चाहा। यह कथन उद्धव का ही है, यहाँ उन्होंने दृष्टि में आने वाली सभी वस्तुओं को नश्वर बताया है और निराकार वासुदेव को इन सब से पृथक् बताया है।

प्रसंग—गोपियो के हृदय के प्रेम ने उद्धव के तर्क को समाप्त कर दिया तो एक वार वे प्रेम के रग में सरावोर हो गए। उन्होंने गोपियो को अपना गुरु मान लिया। प्रस्तुत प्रसग में उद्धव की परिवर्तित भावना का चित्र है।

भावार्थ—गोपियो के प्रेम की प्रशसा करते हुए (उद्धव के) हृदय मे जो शुद्ध भक्ति का प्रकाश हुआ उससे उसका सारा सन्देहात्मक ज्ञान, खिन्नता और मलिनता नष्ट हो गयी। वे कहने लगे—निश्चय गोपिकाए ही भगवान् के रस को समझने वाली हैं। मैं तो इनके दर्शन मात्र से कृतार्थ हो गया।

जो गोपिया इस प्रकार कुल की मर्यादा को मिटाकर (लोक-लाज छोड कर) श्री कृष्ण की ओर दौडती है, वे प्रेम के ऊँचे पद को क्यो नही प्राप्त करेगी। ज्ञान, भोग आदि सभी कर्मो से प्रेम ऊपर है और सत्य है। मै हीरे के सम्मुख काच को तुलना के लिए नही रख सकता।

करुनामय है रसिकता, तुम्हारी सब झूठी।
सब ही लौ लहे लाख, जबहि लौं बांधी मूठी।
मैं जान्यौ ब्रज जाइकै, निर्दय तुम्हारो रूप।
जो तुम कौ अवलम्बहीं, तिनकौं मेलो कूप।
सुनत सखा के बैन, नैन भरि आये दोऊ।
बिबस प्रेम आवेस, रही नाही सुधि कोऊ।
रोम-रोम प्रति गोपिका, ह्वै रही सांवरे गात।
कल्प तरोवर सावरौ, ब्रज बनिता भई पात।

प्रसंग—उद्धव गोपियो के प्रेम के रग मे रगकर मथुरा लौट आए, भगवान् से वहाँ की अवस्था का वर्णन करते हुए वे गोपियो का गुण ही नही गाने लगे उन्हे खरी-खोटी भी सुना गए। उद्धव की बाते सुनकर भगवान् गोपियो की याद मे इस प्रकार डूबे कि वे सर्वथा गोपीमय हो गए।

भावार्थ—(उद्धव ने भगवान् को सुनाया) हे दयामय, तुम्हारी सब प्रेम-भावना झूठी है। (कोई तुम से) तभी तक लाख की सम्पति की आशा रख सकता है जब तक मुट्ठी बधी हुई है (जब तक तुम्हारे प्रेम की परीक्षा नही होती तभी तक तुम्हारा प्रेम सराहनीय कहा जा सकता है। अवसर आया नहीं कि तुम्हारी पोल खुली नही)। मैं तो ब्रज जाकर तुम्हारे निष्ठुरपने को समझ सका। (सच तो यह है कि) जो तुम्हे अपना आधार बनाता है (तुम्हारा

आश्रय लेता है) तुम उसी को कुँए मे ढकेलते हो (उन प्रेम-प्यासी, विशुद्ध-हृदय गोपियो को तुमने कहीं का नहीं रखा)।

सखा उद्धव की (ऐसी बेरोक, खरी) बात सुनकर भगवान् कृष्ण की दोनो आँखें आसू मे भर गई, वे प्रेम की अधिकता से बेसुध हो गए—उनकी चेतना खो-सी गई। उस समय श्री कृष्ण के श्याम शरीर मे रोम-रोम मे गोपियो का निवास हो गया। कन्हैया यदि कल्पतरु बन गए तो गोपियाँ उस वृक्ष के पत्ते बन गईं (तात्पर्य यह कि दोनो ही एकात्मही हो गए)।

आज बनि-ठनि फाग खेलन निकस्यो नन्ददुलारो।
फब्यौ है ललित भाल लाल के जटित लाल टिपारो।
ढहरे बंक बिसाल, नयन छबि भरे इतराहीं।
बन्यौ है मंजुल मोर मुकुट, चलत देख परछाहीं

प्रसंग—होली खेलने जाते समय कन्हैया की छवि कैसी हो रही है, इसी का वर्णन प्रस्तुत पद मे है।

भावार्थ—आज नन्द के पुत्र श्री कृष्ण सजधज कर होली खेलने निकले हैं। सुन्दर सिर पर लालो से जड़ा लाल रंग का टोपा शोभित है। उनके टेढ़े और बड़े-बड़े नेत्र सुन्दरता से भरे गर्वित दिखाई पड़ते है। सुन्दर मोर मुकुट बनाए अपनी परछाईं निहारते चले जा रहे हैं (इनके पैर अलमस्ती में उठ रहे हैं)।

और कहाँ लगि कहिये, खेल परम रस की मूली।
गावत सुक, सारद, नारद, संभु समाधि भूली।
जिहि जिहि हरि चरित अमृत सिंधु सौं रति मानी।
नन्ददास ताहि मुकति लौन कौ सौं पानी।

प्रसंग—वही होली वर्णन। भगवान् की होली परम रस की जड़ है—इसके सम्मुख मुक्ति भी कोई वस्तु नहीं।

भावार्थ—और कहाँ तक कहा जाय, भगवान् का यह होली का खेल अत्यधिक रस का उद्गम है। मुनि शुक देव, देव ऋषि नारद तथा स्वयं सरस्वती इस खेल का गान करते हैं, (इसे देखकर) शिव भी अपनी समाधि भूल जाते है (उनका ध्यान भी भंग हो जाता है)। नन्ददास कहते हैं कि जिसने श्री कृष्ण के चरित्र रूपी अमृत के सागर से अपना स्नेह लगाया, उसके लिए मुक्ति का भी महत्त्व नहीं है,वह भी उसके लिए खारे पानी के समान त्याज्य है।

केशव

मैथिली समेत तो अनेक दान मैं दियो।
राजसूय आदि दै अनेक यज्ञ मैं कियो।
सीय त्याग पाप ते हिये सु हौं महा डरौं।
और एक अश्वमेध जानकी बिना करौं।

प्रसंग—आचार्य कवि केशवदास की 'राम चन्द्रिका' का यह अंश भगवान् राम के अश्वमेध यज्ञ से सम्बन्ध रखता है। सीता के परित्याग के बाद भगवान् के मन में अश्वमेध यज्ञ करने की इच्छा हुई। प्रस्तुत पद्य मे भगवान् अपनी वह इच्छा मुनि विश्वामित्र तथा वशिष्ठ के सामने प्रकट कर रहे हैं।

भावार्थ—(भगवान् राम ने मुनि विश्वामित्र तथा वशिष्ठ से कहा) मैथिली—जानकी के साथ मिलकर तो मैंने अनेकों प्रकार से दान किए है, राजसूय आदि अनेकों यज्ञ भी मैंने किए फिर भी जानकी के परित्याग के पाप से हृदय मे भय खा रहा हूँ। एक और अश्वमेध यज्ञ जानकी के नही रहते हुए भी करना चाहता हू।

राघव की चतुरंग चमूचय को गनै 'केशव' राज समाजनि।
सूर तुरंगन के उरझै पग, तुंग पताकनि की पट साजनि।
टूटि परै तिनते मुक्ता धरणी उपमा वरणी कविराजनि।
बिन्दु किधौं मुख फेनन के किधौं राज सिरी स्रवै मंगल लाजनि।
राघव की चतुरंग चमू चपि धूरि उठी जलहू थल छाई।
मानो प्रताप हुतासन धूम सो केशवदास अकाश न माई।
मेटि कै पंच प्रभूत किधौं विधि रेणुमयी नवरीत चलाई।
दु:ख निवेदन को भुव-भार को भूमि किधौं सुरलोक सिधाई।

प्रसंग—प्रस्तुत पद्यो मे कवि ने भगवान् राम की चतुरंगिणी सेना की प्रबल शक्ति का वर्णन किया है।

भावार्थ—केशवदास कहते हैं—श्री रामचन्द्र की चतुरंगिणी सेना तथा (साथ में बढने वाले) राजाओ के समाज की गिनती कौन कर सकता है ? सेना मे उडने वाली ऊंची पताकाओ के वस्त्र से सूर्य के घोडो के पैर उलझे पडते हैं (तात्पर्य यह है कि वे पताकाएँ आकाश को छूने वाली हैं)। इतना ही क्यो वे पताकाएँ जो सूर्य के घोडो के पैर से उलझती है—और इस प्रकार उलझने से

उनके मोती टूट-टूट कर पृथ्वी पर गिरते हैं उसकी उपमा देते हुए श्रेष्ठ कवि कहते हैं कि वे मोती ऐसे लगते हैं मानो भगवान् राम की सेना के घोड़े के मुख से निकले हुए झाग की बूंदें हैं या राज्यलक्ष्मी (विजय की कामना से) मंगल-खीलो को बिखेर रही है। केशवदास कहते हैं श्री रामचन्द्र की चतुरंगिणी सेना के चलने से जल-थल सभी जगह इस प्रकार धूल छा गई मानो वह श्री रामचन्द्र के प्रताप (शौर्य) की अग्नि का धुआ हो और आकाश तक फैल रही हो। फिर ऐसा ज्ञात होता था कि शायद ब्रह्मा ने पृथ्वी, पानी, आकाश, अग्नि और वायु इन पच भूतो की दुनिया मिटाकर केवल धूलि की सृष्टि रखने की परम्परा चलाई है, अथवा संसार के भार का कष्ट निवेदन करने के लिए पृथ्वी स्वर्ग लोक जा रही है।

> गाहियो सिन्धु सरोवर सौं लेहि बालि बली बर सो बर पेर्यो।
> डाहि दिये सिर रावण के गिरि से गुरु जात न जानन हेर्यो।
> ताल समूल उखारि लिये लवनासुर पीछे ते आड़े सो टेर्यो।
> रावन कौ दल मत्त करी सुर-अंकुस दै कुस के शव फेर्यो।

(प्रभाकर, नवम्बर १६५६)

प्रसंग—जब अश्वमेध के घोड़े को वाल्मीकि के आश्रम में लव-कुश ने पकड़ लिया तो स्वभाव से श्री रामचन्द्र की सेना और लव-कुश मे युद्ध छिड़ गया। प्रस्तुत पद्य में कुश की उस वीरता का वर्णन है जिसके सन्मुख उमड़ती हुई राम की सेना को पीछे लौटना पड़ा।

भावार्थ—(केशवदास कहते हैं कि रामचन्द्र की उस सेना को) जिसने तालाब की भाँति समुद्र को पार किया, जिसने बाली के समान बली को बल-पूर्वक पीस डाला, जिसने पर्वत के समान रावण के सिर को इस प्रकार गिरा दिया कि वह मरते समय पुत्रों को देख भी नहीं सका, जिसने ताल वृक्ष को जड़ समेत (सुग्रीव को विश्वास दिलाने के लिए) उखाड़ लिया था और जिसने (लंका विजय के पश्चात्) लवणासुर जैसे वीर को ललकारा था, उस मदमत्त हाथी रूपी सेना को कुश ने ललकारस्वरूप अंकुश के बल पर पीछे को लौटा दिया।

> भूलत हैं कुल धर्म सबै तब ही, जब ही यह आनि असै जू।
> 'केशव' वेद-पुराननि को न सुनै, समुझै न, त्रसै न, हंसै जू।
> देवन तें नरदेवन तें नर वें अर बानर ज्यौं बिलसै जू।
> जन्त्र न मन्त्र न मूरि गनै, जग जीवन काम पिसाच बसै जू।

प्रसग—कामदेव के प्रभाव पर प्रकाश डालने वाला यह पद्य कवि की वैराग्य-भावना का भी परिचय देता है। कवि का कथन है कि जब पिशाच रूपी कामदेव मनुष्य के सिर पर चढ़ता है तो वह अपने को सर्वथा पतन-गर्त मे डाल देता है।

भावार्थ—लोग अपने कुल की मर्यादा को उसी घडी भुला देते हैं जिस क्षण यह आकर ग्रस लेता है, केशवदास कहते हैं, फिर तो वे न वेद-पुराणो को सुनते हैं, न समझते है, न (पापो से) भय खाते हैं, उलटे और हँसते हैं। (इसके प्रभाव में) देवताओ, श्रेष्ठ मानवो और मानवो की ऐसी गति हो जाती है कि वे बन्दर के रूप में दिखाई देने लगते हैं, जब यह पिशाच रूपी कामदेव लोगों के सिर पर चढता है तो न यंत्र काम करता है, न मन्त्र ही फल दिखाता है और न जड़ी-बूटियो का ही असर होता है।

विलोकि सिरोरुह सेत समेत तनोरुह कोविद यों गुण गायो।
उठे किधौ आय की औधि के अंकुर शूल की शुष्क समूल नसायो।
जरैं किधौं 'केशव' व्याधिन की किधौं आधिकैं आखर अन्त न पायो।
जरा शर-पंजर जीव जर्यो कि जरा जर कँबर सो पहिरायो।

प्रसंग—वृद्धावस्था का वर्णन करते हुए कवि ने बताया है कि आज इस काया की पहचान भी कठिन हो रही है। पता नही चलता कि आखिर यह मानव-काया है या और कुछ ?

भावार्थ—सिर तथा शरीर के बालो को भी सफेद देखकर विद्वानो ने उनका गुणगान इस प्रकार किया कि ये या तो आयु की सीमा के अकुर है (उनकी समाप्ति के चिन्ह है) या (शरीर रूपी पेड के) सूखे काटे है जो उस के समूल (जड़ सहित) नष्ट होने की साक्षी देते है। केशवदास कहते है—या तो ये बीमारियो की जडे है या मन की रुग्णता के अक्षर (अविनाशी रूप) है जिनका अन्त नही मिला। या वृद्धावस्था ने बाणो के पिंजडे मे जीव को बन्द कर दिया है या जीव को वृद्धावस्था ने जरी का काम किया हुआ कम्बल उढ़ा दिया है (जिससे उसकी सूरत पहिचानी नही जाती)।

निसि-वासर वस्तु विचार करैं, मुख सांच, हिये करुना धनु है।
अघ निग्रह, संग्रह धर्म कथानि, परिग्रह साधुन को गनु है।

कहि 'केशव' जोग जगै हिय भीतर, बाहर भोगन सों तनु है।
मनु हाथ सदा जिनके, तिनके, बन ही घर है, घर ही बनु है।

प्रसंग—कवि ने प्रस्तुत पद्य मे यह बताया है कि जिन्होंने अपने मन को वश मे कर लिया है उन्हें ससार का माया चक्र भटका नही सकता चाहे वे घर मे या वन मे निवास करें।

भावार्थ—जो रात दिन तत्व ज्ञान (आत्मा-परमात्मा के रूप) के चिन्तन मे लगे रहते है, जिनके मुख से सदा सत्य भाषण ही निकलता है, जिनके हृदय मे दया का वास है, जो पापो से विरक्त रहते है, जो धर्म-कथाओ से अनुरक्ति रखने वाले है, साधु-सन्तों का समूह जिनका परिवार है—केशवदास कहते हैं—देखने मे वे भले शरीर से भोगी दिखाई पड़ते हैं किन्तु भीतर हृदय मे योग का भाव भरा है और जिनका मन वश में है, उनके लिए जगल भी घर के समान है (वन में भी उन्हे उदासी नहीं सता सकती) और घर भी उनके लिए जंगल के समान है (घर में भी उन्हे आसक्ति नही घेर सकती)।

दिग पालन की भुव पालन की लोक पालन की किन मातु गई च्वै।
कत भांड भये उठि आसन तें कहि 'केशव' शंभु-सरासन को छ्वै।
धस काहु चढायो न काहु नवायो न काहु उठायो न आंगुरहू द्वै।
कछु स्वारथ भो न भयो परमारथ आए हैं वीर चले वनिता ह्वै।

प्रसग—जानकी के स्वयवर में जब कोई भी शिव के धनुष को तोड न सके तो राजा जनक को चिन्ता-सी छा गई। निराशा की लहर मे उन्होंने सब की आलोचना कर दी। प्रस्तुत पद्य मे राजा जनक के मनोभाव व्यक्त हैं।

भावार्थ—(हाय, स्वयवर में आने वाले) इन दिक्पालो (इन्द्र, यम, अग्नि आदि), राजाओ (देश-देश के नरपतियों) और लोकपालों (ब्रह्मा आदि देवों) की माताओ के गर्भ क्यों नही नष्ट हो गये, केशवदास कहते हैं कि (राजा जनक निराशा से बोले) ये अपनी जगह से उठकर और शिव धनुष को छू कर क्यों हँसी के पात्र बने (पहले ही सोच लेते कि आखिर यह धनुष हम से टूट भी सकेगा या नहीं)? इसे तो न कोई चढा सका, न झुका सका, न दो अगुल उठा ही सका। इन सबो से न तो कोई स्वार्थ का काम बन पडा (न ये जानकी का वरण कर सके) न कुछ परमार्थ का ही साधन हो सका (मेरी चिन्ता दूर करने का पुण्य भी ये नहीं ले सके)।

सब जाति फटी दुख की दुपटी, कपटी न रहैं जहं एक घटी।
निघटी रुचि मीचु घटी हूँ घटी, जग जीव जतीन कि छूटी तटी।
अघ ओघ कि बेरि कटी विकटी, निकटी प्रकटी गुरु ज्ञान गटी।
चहुँ ओरनि नाचति मुक्ति-नटी, गुन धूरजटी वन पंच वटी।

प्रसग—कवि ने प्रस्तुत पद्य में पचवटी को शिव के रूप मे प्रस्तुत किया है। भगवान् शिव के सारे गुण पचवटी मे आरोपित किए गए है।

भावार्थ—जहाँ आकर दुखो की दुपटी (जन्म-मरण की ओढनी) फट जाती है, जहाँ एक घडी के लिए भी छली मनुष्य का निवास कठिन है। जहाँ आकर रुचि (आसक्ति—माया-मोह की बातें) मिट गई, (इतना ही क्यो) जहाँ आने से मौत की घडी भी टल गई और जो ससार के जीवो (स्थावर-जगम प्राणी) तथा योगी-यतियो की स्वतन्त्र भूमि है। जहाँ आकर पापो के समूह की कठिन बेटी कट गई तथा अविलम्ब ही श्रेष्ठ ज्ञान की गुत्थी सुलझ गई। जहाँ चारो ओर मुक्ति रूपी नटी नाचती रहती है, वह पचवटी का विपिन (जगल) अपने गुणो मे शिव के समान है (जो गुण भगवान् शिव मे है वही गुण पचवटी वन मे है)।

भावै जहां व्यभिचारी, बैंदै रमै पर नारी,
द्विजगन दंड धारी, चोरी पर पीर की।
मानिनीन ही के मन मानियत मान भंग,
सिंधुहि उलंघि जाति कीरति शरीर की।
मूलै तो अधोगतिन पावत है 'केशवदास'
मीचु ही सौं है वियोग, इच्छा गंग नीर की।
बंध्या वासनानि जानु, विधवा सुवाटिका ही,
ऐसी रीति राजनीति राजै रघुवीर की।

(प्रभाकर, नवम्बर १६५८)

प्रसग—भगवान् रामचन्द्र के शासन मे किस प्रकार पाप कर्मो आधि-व्याधियो तथा दुर्गुणो का एकान्त अभाव था यही प्रस्तुत पद्य का वर्ण्य-विषय है।

भावार्थ—जहाँ (साहित्य के) भावो मे ही व्यभिचारी का अस्तित्व है

(सचारी और व्यभिचारी नामकरण कवि अपनी कृतियो में ही करते हैं), जहाँ वैद्य ही दूसरे की नाडी के साथ मन रमाते है (पराई स्त्री की ओर किसी का आकर्षण नही सुना जा सकता है), केवल ब्राह्मण समूह ही जहाँ दण्ड (लकुटी, लाठी) धारण करते है (दण्ड को सजा के रूप में धारण करने वाला कोई नहीं है) और जहाँ चोरी होती है तो एक दूसरे की पीड़ा हरने की चोरी ही होती है (पराए धन की चोरी कोई नही करता है)। मानिनी स्त्रियो के मन मे ही मान भग की बात जहाँ सभव है (रूठी नायिका का ही उसका नायक प्रार्थनापूर्वक मान भग कराता है, प्रजा मे किसी का अपमान कोई नहीं करता है)। (इसी प्रकार उल्लघन के लिए मर्यादा का उल्लघन नहीं सुना जाता) केवल मनुष्य-शरीर की कीर्ति ही समुद्र को भी लाघ जाती है। केशवदास कहते हैं जहां पेडो की जडें ही अधोगति प्राप्त करती हैं (कोई सचेतन प्राणी जहाँ निम्न पथगामी नही होता—कोई पतित अवस्था को प्राप्त नही करता) यदि कोई वियोग पालता है तो मृत्यु से ही (स्वजनो का वियोग किसी को नही होता)। फिरजहाँ किसी के मन में इच्छा है तो केवल गंगा के पवित्र जल की ही इच्छा है (धन-वैभव की चाह किसी के हृदय मे नही है)। (जहा स्त्रिया वन्ध्या नहीं होतीं) मनुष्य की वासनाए ही वन्ध्या होती है, उसी मे वृद्धि नहीं आती और (जहाँ विधवा कामिनियो का नाम नही सुना जाता किन्तु) सुन्दर वाटिकाएँ—बगीचे ही विधवा (धव के पेडो से हीन) होती हैं, ऐसी परम्परा और राजनीति श्री रामचन्द्र के राज्य मे है।

सुन्दरदास

जो दस बीस पचास भये सत होहिं हजारनि लाख मँगैगी।
कोटि अरब्ब खरब्ब असंखि पृथ्वी पति होन की चाह जगैगी।
स्वर्ग पताल को राज करौ तृसना अधिकी अति आगि लगैगी।
सुन्दर एक सँतोष बिना सठ, तेरी तो भूख न क्यौंहु भगैगी।

प्रसग—तृष्णा का अन्त अधिकाधिक प्राप्ति होने पर भी नही आता, इस के ऊपर सुन्दरदास ने अपना विचार प्रकट किया है और अपना निर्णय दिया है कि इसका अन्त एक सतोष से ही संभव है।

भावार्थ—यदि तुम्हारे पास दस-बीस या पचास रुपये हो तो सौ की, और

यदि सौ हो जाए तो हजार तथा लाख की माग करेगी (तृष्णा ऐसी ही है)। करोड़ हो तो अरब की इच्छा होगी और अरब की प्राप्ति होने पर खरब की, फिर असख्य धन की कामना पैदा होगी (इतना ही क्यों) बढते-बढते पृथ्वीपति (सम्राट्) बनने की चाह पैदा हो जायगी। (यदि संयोग से सम्राट् का पद भी मिल जाय तो) स्वर्ग से लेकर पाताल तक के राज्य की लालसा तुम्हारे हृदय में आग लगा देगी। सुन्दरदास कहते है कि हे मूर्ख, एक सतोष के अभाव में तुम्हारी भूख किसी प्रकार मिटने की नही है।

कार उहै अविकार रहै नित, सार उहै जु असारहि नाखै।
प्रीति उहै जु प्रतीति धरै उर, नीति उहै जू अनीति न भाखै।
तन्त उहै लगि अन्त न टूटत, सन्त उहै अपनौ सत राखै।
नाद उहै सुनि वाद तजै सब, स्वाद उहै रस 'सुन्दर' चाखै।

प्रसंग—प्रस्तुत पद्य मे महात्मा सुन्दरदास ने जीवन के विविध पहलुओ पर प्रकाश डाला है—सबो की सार्थकता और निरर्थकता का निर्णय दिया है।

भावार्थ—जीवन मे (सार्थक) काम वही है जिससे मनुष्य विकारों (दोषों) से बचा रहे फिर सार वस्तु (यथार्थ तत्व) वही है जिसे पाकर मनुष्य असार (माया) को त्याग दे। प्रेम भी वही है जिसके सहारे मनुष्य के हृदय में विश्वास आ सके और नीति वह है जिसमे अनीति की बात बोलनी न पड़े और सम्बन्ध वह है जो आखिरी समय तक टूटे नहीं तथा सन्त वह है जो अपने सत को—मर्यादा को बनाये रहे। सुन्दरदास कहते है कि नाद (शब्द रूपी ब्रह्म या अनहद नाद) वह है जिसे सुनकर मनुष्य सारे विवादो—मत-मतान्तरो को छोड दे और स्वाद वह है जो (रस) आनन्द की अनुभूति दे।

प्रीति की रीति नही कछु राखत जाति न पांति नहीं कुल-गारौ।
प्रेम के नेम कहूं नहि दीसत लाज न कानि लग्यो सब खारौ।
लीन भयौ हरि सौं अभिअन्तर आठहुं जाम रहै मतवारौ।
'सुन्दर' कोउ न जानि सकै यह गोकुल गांव कौ पैंडौ ही न्यारौ।

प्रसग—प्रेम के क्षेत्र मे द्वैत का स्थान नही रह जाता है, बाधा-विघ्नो की कुछ चलती नही। ऊच-नीच का भेद भी कोसो दूर रह जाता है। प्रस्तुत पद्य मे महात्मा सुन्दरदास इसी सत्य को सामने रखते है।

भावार्थ—प्रेम की रीति ही कुछ ऐसी है कि वह न जाति-पांति का

ध्यान रहने देती है और न यह सुधि रहने देती है कि इस व्यवहार में वंश को कलङ्क लगने का भय है। प्रेम का व्रत लेने वाला लज्जा और मर्यादा को भी नहीं देखता है, उसे तो ये सभी खारे—अग्राह्य लगते हैं। जो हृदय अपने को परमात्मा के प्रेम में डुबा देता है वह तो आठों पहर मतवाला रहता है। सुन्दरदास कहते हैं—इस प्रेम के मार्ग को कोई नहीं समझ सका है—यह तो गोकुल गाव जाने की एक अलग ही राह है (सब को इस राह का ज्ञान कठिन है, विरला प्रेमी ही इसकी जानकारी रखता है)।

जा शरीर मांहि तूं अनेक सुख मानि रह्यो
ताही तूँ विचार या में कौन बात भली है।
मेद मज्जा मास रग-रगनि मांहि रहत,
पेट हू पिटारी सी मे ठौर-ठौर मली है।
हाडनि सौं मुख भर्यौ हाडिहि में नैन-नाक,
हाथ पांव सोऊ सब हाड ही की नली है।
सुन्दर कहत याहि देखि जिनि भूलै कोइ
भीतरि भंगार भरी ऊपर तें कली है।

प्रसंग—मनुष्य को अपने शरीर से बड़ी आसक्ति होती है वह अपनी सुन्दर काया पर गर्व भी कम नहीं करता किन्तु क्या यह हाड-मांस का पुतला गर्व की वस्तु है। सुन्दरदास इसी रहस्य का उद्‌घाटन प्रस्तुत पद्य में करते हैं।

भावार्थ—(हे मनुष्य) जिस शरीर मे तुम अनेकों सुख का विश्वास किए बैठे हो, तुम तनिक विचारपूर्वक बताओ कि उसमे कौन-सी अच्छाई है? चरबी, मज्जा और मांस, फिर नस-नस मे लहू (और क्या है ?) पिटारी के समान पेट, उसमें भी जगह-जगह गदगी के ढेर। मुँह है तो वह भी हड्डियों से भरा है (दांत आखिर हड्डी ही है)। आंख और नाक भी हड्डी से ही निर्मित हैं और हाथ-पैर सभी तो हड्डी की ही नली हैं। सुन्दरदास कहते है—इस शरीर को देख कर कोई भूले मत, यह तो भीतर कूडे-करकट से भरा है, बाहर से कली जैसा दिखाई देता है।

विधि न निषेध कछु भेद न अभेद पुनि,
क्रिया सौं करत दीसे यौं हो नित प्रति है।

काहू कौ निकट राखै काहू कौ तौ दूरि भापै,

काहू सौं नीरे न दूर ऐसी जाकी मति है।

राग ही न दोष कोऊ शोक न उछाह दोऊ,

ऐसी विधि रहे कहूँ रति न बिरति है।

बाहिर ब्यौहार ठानै मन में स्वपन जानै,

'सुन्दर' ज्ञानी की कछु अद्भुत गति है।

(प्रभाकर, नवम्बर १९५८)

प्रसग—कवि ने इस पद मे ज्ञानी जनो की विशेपता बताई है।

भावार्थ—ज्ञानी पुरुप के लिए न तो कोई नियम विधान है और न किसी काम की मनाही है, वह न तो भिन्नता को मानता है और न ही अभिन्नता का पुजारी है। वह तो अपने आप ही समस्त कामो को करता दिखाई पडता है। वह न तो किसी को समीप रखता है और न किसी को दूर हटने को कहता है, वह न किसी के सम्पर्क मे है और न किसी से दूरी ही पालता है। उसकी बुद्धि सबको समान समझती है। उसे न किसी से प्रेम है, न किसी से शत्रुता ही, शोक और हर्ष—दो मे से एक भी नही है, वह इस प्रकार रहता है कि न उसमे आसक्ति है और न वैराग्य ही। वह वाहर से तो दुनिया के सारे काम-काज करता दिखाई पडता है, परन्तु मन में उन सबो को मिथ्या-स्वप्न मानता है। इस प्रकार ज्ञानी पुरुप का कुछ विचित्र ही आचरण देखने मे आता है।

तेल जरै बाती जरै, दीपक जरै न कोइ।

दीपक जरता सब कहै, भारी अचरज होइ।

भारी अचरज होइ, जरै लकरी अरु घासा।

अग्नि जरत सब कहैं, होइ यह बड़ा तमासा।

'सुन्दर' आतम अजर, जरै यह देह विजाती।

दीपक जरै न कोइ, जरत है तेल अरु बाती।

प्रसग—दुनिया की अटपटी वातो पर खिल्ली उडाते हुए प्रस्तुत पद्य में बताया गया है जिस प्रकार तेल और बत्ती के जलने पर लोग दीपक का जलना कहते है, उसी प्रकार शरीर के नष्ट होने को आत्मा का नाश होना कह देते हैं किन्तु आत्मा तो अजर-अमर है।

भावार्थ—(कितने आश्चर्य की बात है) जलता है तेल, जलती है बत्ती एक भी दीपक जलता नहीं है किन्तु सभी कहते हैं कि दीपक जलता है। (इसी प्रकार) लकडी और घास के जलने पर सभी आग का जलना कहते हैं, यह (दुनिया का) महान तमाशा है। सुन्दरदास कहते है—यह आत्मा अजर और अमर है वह जलने की वस्तु नहीं, जलता तो विजातीय (उसमे कोई सम्बन्ध नहीं रखने वाला) शरीर है। (कहना चाहिए) दीपक (आत्मा) नहीं जलता तेल और बत्ती (आयु और शरीर) को ही लोग जलते देखते हैं।

जो शुभ कर्मनि कौं करैं, तजे काम आसक्ति।
सकल समर्प्यैं ईश्वरहिं, तबही उपजै भक्ति।
पीछे बाधा कछु नहीं, प्रेम मगन जब होइ।
नव धाऊ तव थकि रहे, सुधि बुधि रहै न कोइ।
तब ही प्रगटै ज्ञान फल, समझैं अपनो रूप।
चिदानन्द चैतन्यघन, व्यापक ब्रह्म अनूप।
वेद-वृक्ष यौं वरनियो, याही अर्थ विचार।
कर्म पत्र ताके लगैं, भक्ति पुष्प निरधार।

(प्रभाकर, नवम्बर १९५६)

प्रसग—परमात्मा की प्राप्ति का सुगम मार्ग क्या है—इसी का वर्णन महात्मा सुन्दरदास ने इन दोहों में किया है। भक्ति को उन्होंने परमात्मा की प्राप्ति का प्रमुख साधन माना है।

भावार्थ—जब मनुष्य काम-वासना और आसक्ति-मोह को छोड देता है, शुभ कर्मो को अपना लेता है और अपना सब कुछ भगवान् को समर्पित कर देता है (कहिए एक मात्र उन्हे ही आधार मान लेता है) तभी उसमे भक्ति पैदा होती है।

फिर पीछे तो उसके सम्मुख कोई उलझन ही नहीं रहती (भक्ति की प्राप्ति होते ही सभी विकार, उससे दूर हट जाते हैं) और जब वह प्रेम में लीन हो जाता है, तब तो उसे अपनी दशा का भी स्मरण नहीं होता, नवधा भक्ति (श्रवण, कीर्तन, स्मरण, पाद-सेवन, अर्चन, वन्दन, सख्य, दास्य और आत्म-निवेदन) की बात भी ढीली पड़ जाती है।

(जब प्रेम में लीन होकर मनुष्य द्वैत भाव मिटा देता है) उसी समय ज्ञान रूपी फल प्रकट होता है, वह अपने शुद्ध रूप—अनुपम, व्यापक, ब्रह्म चेतन तथा आनन्द स्वरूप, आत्मा को पहचान लेता है (परब्रह्म में और उसमे कोई विभेद नही रह जाता है)

(सुन्दरदास कहते है—) इस प्रकार हमने वेद रूपी वृक्ष—ज्ञान विस्तार का वर्णन किया है। (इसे ही तत्व-विचार—आत्म-बोध भी कहा जाता है) यदि कर्म योग इस वृक्ष का पत्ता है तो भक्ति को इसका फूल समझो।

'सुन्दर' सूके हाड़ कौं, स्वान चचोरै आइ।
अपनौई मुख फोरि कै, लोही चाहै खाइ।
'सुन्दर' अपने भाव करि, आप कियौ आरोप।
काहू सौ संतुष्ट ह्वै, काहू ऊपर कोप।
काहू सौ अति निकट है, काहू से अति दूरि।
सुन्दर, अपनो भाव है, जहां तहां भरपूरि।

प्रसग—महात्मा सुन्दरदास के इन दोहो मे मनुष्य के भ्रम, उसकी भावना और भाव पर उपदेश है।

भावार्थ—कुत्ता यदि सूखी हड्डी को निचोडता है तो उस हड्डी से उसे क्या मिलता है, सुन्दरदास कहते है वह तो अपना ही मुँह घायल कर लेता है, अपना ही रक्त चाटता है (भ्रमवश वह उसे हड्डी की देन मानता है)। (यही हालत विषयो के आनन्द की है। मनुष्य अपने शरीर को मिटाकर ही उस आनन्द को प्राप्त करता है और उसे विषय का आनन्द मानता है।)

सुन्दरदास कहते है—मनुष्य अपने ही भावो का दूसरे पर आरोप करता है—जैसा उसका अपना भाव होता है, उसी के अनुसार दूसरे को भी मान लेता है, (यही कारण है कि) वह किसी पर सन्तोष प्रकट करता है तो किसी पर क्रोध दिखाता है (वास्तव मे उसका शत्रु या मित्र कोई नही है)।

मनुष्य किसी के अत्यन्त समीप है (उसका प्रेमपात्र बना है) तो किसी से बहुत ही दूरी पालता है (घोर उपेक्षा दिखाता है)। सुन्दरदास कहते है (इसका कारण कुछ भी नही है) उसके हृदय का सामीप्य ही उसे

किसी के समीप रखता है, स्नेह दिखाने को बाध्य करता है तो उसके हृदय की उपेक्षा ही किसी से उसे दूर किए रहती है, अपने हृदय के भाव को ही वह इधर-उधर भरा पा रहा है।

बिहारी

बड़े न हूजै गुननु बिनु, बिरद बड़ाई पाइ।
कहत धतूरे सौं कनकु, गहनौ गढ़्यौ न जाइ।
कनक कनक तैं सौ गुनौ, मादकता अधिकाइ।
उहिं खाएँ बौराइ, इहिं पाए ही बौराइ।
संगति सुमति न पावहीं, परे कुमति के धंध।
राखौ मेलि कपूर मैं, हींग न होइ सुगन्ध।
जात जात बितु होत है, ज्यौं जिय मैं सन्तोषु।
होत होत जौं होइ तौ, होइ घरी मैं मोषु।

प्रसंग—महाकवि बिहारीलाल जी के इन दोहों में नीति-सूक्ति का गहरा रंग है। बड़प्पन, गुण का महत्त्व, संगति के प्रभाव और सन्तोष पर महाकवि ने अपना प्रांजल विचार दिया है।

भावार्थ—ख्याति और बड़ाई पा कर भी गुणों के अभाव में मनुष्य बड़ा नहीं हो सकता। लोग धतूरे को भी 'कनक' कहते हैं (और 'कनक' नाम सोने का है) तो क्या धतूरे का आभूषण बनाया जा सकता है? (गुण के बिना नाम व्यर्थ है)।

(कनक) धतूरे से (कनक) सोने में सौ-गुनी मस्ती बढ़ी हुई है। मनुष्य धतूरे के खाने से पागल होता है परन्तु सोने को तो पाकर ही पागल हो जाता है।

बुरे विचारों में फँसे हुए मनुष्य अच्छी संगति पाकर भी श्रेष्ठ बुद्धि नहीं पा सकते—(क्योंकि संगति का असर भी प्रकृति के सहारे ही होता है) यदि हींग को कोई कपूर में मिलाकर भी रखे तो उसमें सुगन्ध नहीं आने की है।

जिस प्रकार सम्पत्ति के नष्ट होते समय मनुष्य के हृदय में सन्तोष होता है उसी प्रकार यदि सम्पत्ति के आते समय सन्तोष हो तो घड़ी भर में उसके दुःख मिट जाएँ।

[illegible]
[illegible]

कैसे छोटे नरनु तैं सरत बडनु के काम।
मढ्यौ दमामौ जातु क्यों कहि चूहे कै चाम।

जपमाला छापैं तिलक, सरै न एकौ कामु।
मन काचै नाचै वृथा, साचै राचै रामु।

घरु-घरु डोलत दीन ह्वै जनु-जनु जाचतु जाइ।
दियैं लोभ चसमा चखनु, लघु पुनि बडौ लखाइ।

प्रसंग—बिहारी की इन सूक्तियो मे तल्लीनता, छोटे-बडे के भेद, आडम्बर और तृष्णा पर व्यग्य है।

भावार्थ—वीणा का स्वर, कविता का रस, भावपूर्ण सगीत तथा काम-क्रीडा (प्रेम का रग)—इनकी अपनी विशेषता है—जिन लोगो ने अपने को इनमे लीन नही किया, वे ही डूबे (उनका ही जीवन निष्फल गया)।

छोटे (क्षुद्र) मनुष्यो से वडो का प्रयोजन किस प्रकार सिद्ध हो सकता है, भला कही चूहे के चमडे मे नगाडा मढा गया है।

जप, माला, छापा और तिलक (यदि हृदय पवित्र नही है तो) सभी व्यर्थ है इनसे एक भी काम पूरा होने का नहीं है। कच्चा मन व्यर्थ ही नाचता फिरता है जो सच्चा है वह भगवान् को प्रसन्न कर पाता है।

अरे मूढ, तू दीनतापूर्वक—अपनी गरीबी दिखाकर घर-घर में और एक-एक व्यक्ति से क्यों मांगता फिरता है (जो कुछ देने लायक हों उन्हीं के आगे अपने हाथो को फैला) लगता है तूने अपनी आंखो पर लोभ की ऐनक लगा रखी है, इसी से तुम्हें तुच्छ व्यक्ति भी महान् दिखाई पड रहा है।

कोटि जतन कोऊ करौ परै न प्रकृतिहिं बीचु।
नल बल जल ऊँचौ चढै अन्त नीच कौ नीचु।

गुनी गुनी सबकै कहैं निगुनी गुनी न होतु।
सुन्यौ कहूं तरु अरक तैं अरक समान उदोतु।

दुसह दुराज प्रजानु कौं क्यौं न बढै दुख-दंदु।
अधिक अंधेरौ जग करतु मिलि मावस रवि चन्दु।

प्यासे दुपहर जेठ के थके सबै जलु सोधि।
मरुधर पाइ मतीरहू, मारू कहत पयोधि।

प्रसंग—प्रकृति-स्वभाव, नाम साम्य, द्वैत शासन तथा आवश्यकता की महत्ता पर इन दोहों मे कवि ने भावपूर्ण विचार प्रकट किए है ।

भावार्थ—भले ही कोई करोडो प्रयत्न क्यो न करे किसी मनुष्य के स्वभाव मे परिवर्तन आना कठिन है (देखिए पानी का स्वभाव नीचे की ओर वहने का है) यदि वह नल का आधार पाकर ऊपर चढ भी जाता है तो अन्त मे नीचे का नीचे ही आ जाता है ।

किसी को यदि सब गुणी-गुणी पुकारते है तो वह गुणहीन गुणवान् नहीं बन जाता है, (लोगो के द्वारा अर्क (सूर्य) नाम पा जाने पर भी) अर्क—अकवन के पौधे मे सूर्य की रोशनी किसी के सुनने मे नहीं आई ।

असह्य द्वैत शासन मे—दो व्यक्तियो की व्यवस्था मे—प्रजाओं का दुख कष्ट क्यो नही बढ जायगा (प्रमाण मे लीजिए) अमावस के दिन सूर्य और चन्द्रमा एक राशि पर आकर ससार मे और भी अन्धकार बढ़ा देते हैं ।

जेठ की दोपहरी मे प्यास के मारे जब सभी ओर से जल की खोज ढूँढकर—थक जाते हैं तब मरुस्थल में तरबूज को ही मरुस्थल-निवासी समुद्र की सज्ञा देते है (वही उनकी आवश्यकता की पूर्ति कर उनसे सुयश पाता है) ।

पटु पाँखैं, भखु कांकरैं, सपर परेई संग ।
सुखी परेवा पुहुमि में एकै तुही विहंग ।
अरे, परेखो को करै, तुही विलोकि विचारि ।
किहि नर, किहि सर राखिये खरैं बढ़ैं परिपारि ।
कर लै, सूँघि, सराहि हूँ, रहै सबै गहि मौनु ।
गन्धी अंध, गुलाब की गंवई गाहक कौनु ।
भावरि अन भावरि भरे करौ कोरि बकबादु ।
अपनी अपनी भाँति को छुटै न सहजु सवादु ।

प्रसंग—प्रस्तुत दोहों मे सीमित-जीवन, वैभव-मद, निगुणी-गाहक तथा मानव प्र[illegible] पर नीति के वचन हैं ।

भावार्थ—पर ही तुम्हारे वस्त्र हैं, तुम कंकड़ियाँ खाकर भी दिन काट लेते हो, साथ मे तुम्हारी पत्नी भी साथ-साथ है, हे कबूतर, तुम्हारे जैसा सुखी पक्षी दुनियाँ मे एक तुम्ही हो ।

अरे कौन है जो (भले-बुरे की) परख करता है सभी देखते और [illegible]—

करो। अत्यधिक वृद्धि अपनाकर किस मनुष्य ने या किस तालाब ने मर्यादा की रक्षा की है (मर्यादा का ध्यान तो अभाव की घडी में ही होता है)।

हाथ मे लेते है, सूँघते और प्रशसा भी करते हैं किन्तु अन्त में सभी चुप्पी लगाकर ही रह जाते है, हे अन्धे गन्धी, इन निपट ग्रामीणो में तुम्हे गुलाब के इत्र का कौन ग्राहक मिलेगा (इसे तो वहाँ ले जाओ जहाँ इसकी गध को महत्त्व देने वाले गुणी हृदय हों)।

चाहे कोई पसन्दगी प्रकट करे या विरोध दिखावे, चाहे इस बात पर करोडो तरह से विवाद किया जाय, लोगो में जो अपने-अपने ढग की जन्मजात रुचि है, वह छूटने की नहीं है (मानव-प्रकृति में किसी प्रकार परिवर्तन कठिन है)।

नाहिन ए पावक प्रबल लुवैं चलैं चहुँ पास।
मानहु बिरह बसन्त के ग्रीषम लेत उसांस।
फिरि फिरि चितु उतही रहतु, टुटी लाज की लाव।
अङ्ग-अङ्ग छवि भौंर मे भयौ भौंर की नाव।
जोग-जुगति सिखए सबै मनो महामुनि मैन।
चाहत पिय अद्वैतता काननु सेवत नैन।
पीय बिछुरन कौ दुसहु दुखु हरपु जात प्यौसार।
दुरजोधन लौ देखियत तजत प्राण इहि बार।

प्रसंग—कविवर बिहारी की इन रसोक्तियो में वियोग, प्रेम, सुन्दरता तथा सुख-दुख के एकात्म्य का सरस चित्रण है।

भावार्थ—(कवि का कथन है कि) चारो ओर लुएँ नही चल रही है और न वह प्रचण्ड आग ही है, वह तो वसन्त के वियोग मे ग्रीष्म जो ऊँची सासे भर रहा है उसी की गर्मी है।

नायक का मन बार-बार उधर ही जाता है—लज्जा का बन्धन टूट चुका है। वह तो नायिका के अगो के सौंदर्य के भँवर मे नाव के समान चक्कर काट रहा है।

ऐसा लगता है महान् तपस्वी कामदेव ने (नायिका की आँखों को) योग की सारी युक्तियाँ बता दी हैं, तभी तो अपने प्रियतम मे अद्वैत भाव की इच्छा

रखकर वे कानों तक फैल गई हैं (प्रियतम को मन भर देख सके इसलिए उसने अपना विस्तार इतना बढ़ा लिया है कि वह कानों के समीप तक पहुँच गई हैं)।

(विशेष टिप्पणी—कविवर बिहारी ने कामदेव को महामुनि बनाकर और आँखों को योग की विधियाँ सिखाकर ब्रह्म और जीव की अद्वैतता, नायिका को प्रियतम से मिलाने में सिद्ध किया है अतः उनके लिए आवश्यक हो जाता था कि योग की भावना भूमि-वन का भी समावेश भी यहाँ करते। काननु सेवत से उसकी पूर्ति भी हो जाती है—श्लेष से काननु का अर्थ वन (जंगल) हो जाता है। महामुनि, योग युक्ति, अद्वैत भाव और वन का प्रयोग बहुत ही सार्थक रहा है।)

उसे अपने प्रियतम से अलग होने का असह्य दुख है फिर भी वह हर्ष के साथ (माता-पिता से मिलने की उमंग लेकर) मायके (पितृ-गृह) जा रही है। (नायिका की) इस समय ऐसी अवस्था हो रही है, जैसी अवस्था प्राण छोड़ते समय दुर्योधन की हुई थी (हर्ष और शोक के सम्मिश्रण से ही दुर्योधन को प्राण छोड़ने पड़े यह कथा लोक विश्रुत है। रण-भूमि मे घायल पड़े दुर्योधन की तुष्टि के लिए अश्वत्थामा पाँचों पाण्डवों के पुत्रों के सिर क्रम से काट लाया। दूर से दुर्योधन ने उन्हें पाण्डवों का सिर समझा, उसे हर्ष हुआ किन्तु समीप लाने पर ज्ञात हुआ कि वे सिर उसके भतीजों के हैं—फलतः व्यथा से व्यथित होकर उसने प्राण त्याग दिये)।

कौन सुनैं कासौं कहौं सुरति बिसारी नाह।
बदाबदी ज्यौं लेत हैं ए बदरा बदराह।
अलि, इन लोइन सरनु कौ खरौ विषम संचारु।
लगैं, लगाएं एक से दुहूनु करत सुमारु।
बिरह बिपति दिनु परत ही तजे सुखनु सब अंग।
रहि अबलौं अब दुखौ भये चला चलैं जिय संग।
मरनु भलौ बरु बिरह तैं यह निश्चय करि जोइ।
मरन मिटै दुखु एक कौ बिरह दुहूँ दुखु होइ।

प्रसंग—वर्षाकाल के विरह, नयन-बाणों की तीक्ष्णता, वियोग-वर्णन तथा विरह और मौत की तुलना पर कविवर बिहारी की भावना इन दोहों में प्रकट हुई है।

भावार्थ—(नायिका वर्षाकाल के असह्य विरह को लेकर कहती है) मेरी वेदना को कौन सुनने वाला है, किससे मैं अपनी अवस्था बताऊँ, प्रियतम ने तो मेरी याद ही भुला दी है। इधर ये कुमार्गगामी बादल होड बदकर (बाजी लगाकर) मेरे प्राण ले रहे है।

हे सखी, इन नेत्र रूपी बाणो का सचालन बडा ही कठिन होता है, ये लगते तो किसी एक को है किन्तु घायल दोनो को करते है (इन्हे चलाने वाला भी अपने को सुरक्षित नही मान सकता)।

(कोई नायिका अपने प्यारे के पास सन्देश भेजती है तुम शीघ्र आओ अन्यथा) विरह रूपी विपत्ति के दिन आते ही, सभी प्रकार के सुखो ने तो इस शरीर को छोड ही दिया था किन्तु अब तो जो दु ख मेरे साथ था वह भी जीवन के साथ ही जा रहा है।

वियोग से भला मरना है—यह तुम निश्चयपूर्वक समझ लो। मरने से तो एक का दु ख मिट ही जाता है किन्तु विरह दोनो को ही दु ख देता है। (विरह की अवस्था मे न नायक को चैन है न नायिका को ही शाति, दोनो ही क्लेश मे पडे रहते है)।

भूषण

मलय समीर परलै को जो करत महा,
जम की दिसा ते आयो जम ही को गोतु है।
सांपन को साथी न्याय चन्दन छुए ते डसै
सदा सहवासी विष गुन को उदोतु है।
सिन्धु को सपूत, कलप द्रुम को बन्धु,
दीन बन्धु को है लोचन, सुधा को तनु सोत है।
भूषण भनै रे भुव भूपन द्विजेस तैं,
कला निधि कहाइ कै कसाई कत होत है।

प्रसग—वीर रस के कवि भूषण ने शृगार रस की रचनाये भी की है, प्रस्तुत कविता उनकी ऐसी ही शृगार कविता है। इसमे उन्होने चन्द्रमा को उपालभ दिया है कि दक्षिणी हवा भले ही विरही जनो को दु ख दे—उसका सहवास बुरो के साथ है किन्तु तुम अपने कलाधर नाम को क्यो कलक्ति करते हो।

भावार्थ—(किसी वियोगिनी की उक्ति है कि) दक्षिणी वायु (मलय पर्वत की हवा) जो महान् विपत्ति ढा रही है, वह तो ठीक है, कारण वह

यमराज की दिशा (दक्षिण) से आती है अत. वह भी यम के परिवार की है फिर वह सर्पों के साथी चन्दन को छूती हुई ही आगे बढ़ती है और संसर्ग दोष से लोगो को डसती हुई विष का प्रभाव दिखाती है (उसके कार्यों को लेकर कोई आश्चर्य नहीं प्रकट किया जा सकता किन्तु) तुम्हें तो समुद्र का श्रेष्ठ पुत्र, कल्प वृक्ष का भाई, शिव का नेत्र और अमृत का उद्गम (मूल) कहा जाता है (समुद्र रत्नाकर—विश्व पालक है, कल्पवृक्ष का काम भी सबो की इच्छा पूर्ति है, शिव तो दैन्यहर ही हैं और अमृत का काम मृतको को जीवन देना है) अतः कवि भूषण कहते हैं कि हे संसार के आभूषण तथा द्विजन्मा ब्राह्मणो में अधिपति कहाने वाले चन्द्र ! तुम कला निधि (आनन्द देने वाली कलाओं का भंडार) पुकारे जाने पर भी अपने को वधिक क्यो बना रहे हो ?

मेचक कवच साजि, वाहन बयारि बाजि,
गाढ़े दल गाजि रहे दीरघ बदन के।
'भूषण' भनत समसेर सोई दामिनी है,
हेतु नर कामिनी के मान के कदन के।
पैदरि बलाका, धुरवान के पताका गहे,
घेरियत चहुँ ओर सूते ही सदन के।
ना करु निरादर, पिया सो मिलु सादर,
ये आए बीर बादर बहादुर मदन के।

प्रसंग—कवि ने प्रस्तुत पद्य मे बादलो को कामदेव के वीर सैनिक के रूप मे चित्रित किया है।

भावार्थ—अंधकार का कवच लगाये, हवा रूपी घोड़े पर सवार ये विशालकाय (बादल) विकट सेना सजा रहे हैं, कवि भूषण कहते हैं कि सुन्दरियों के मान को काटने के लिये, बिजली ही उसकी तलवार है। बकों की पंक्तियां बूंदों की ध्वजा फहराती हुई (दुनिया को) घरों में सोने की अवस्था में ही चारों ओर से घेर लेती हैं। इसलिये (हे सुन्दरी) तुम अपने प्रियतम का अपमान मत करो, उनसे आदरपूर्वक मिलो, देखो ये कामदेव के शूरवीर बादल घिर आए। (यह अवसर रूठने का, मान दिखाने का नहीं है—वर्षा काल में तुम अपने स्वामी को अलग रहने के लिये विवश मत करो, इस काल में तुम्हें ही कष्ट मिलेगा)।

देह देह देह फेरि पाइए न ऐसी देह,
जाँन दैन जो न जानै कौन कौन आइयो।

जेते मन मानिक हैं तेते मन मानिक हैं,
धरा ई में धरे तेते धराई धराइवो।
एक भूख राख, भूख राखे मत भूषन की,
यही भूख राख भूप भूषन बनाइवो।
गगन के गौन जम गिनन न दै है नग,
नगन चलैगो साथ नग न चलाइवो।
(प्रभाकर, नवम्बर १६५६)

प्रसंग—धन दौलत की सार्थकता उसके दान में है,संग्रह में नही—उसकी भूख जगाने के बदले लोगों को अपनी आत्मिक उन्नति की भूख ही जगानी चाहिये। धन दौलत कोई भी अपने साथ नहीं ले जा सकता फिर उसका मोह कैसा ? प्रस्तुत पद्य में विरक्ति का भाव है।

भावार्थ—दान करो, दान करो फिर फिर दान करो। तुम्हें यह मनुष्य शरीर पुनः नही मिलना है। (इतना ही क्यो) जो किसी प्रकार का ननुनच (हीला हवाला) नही सुनते, जानते हो वे कौन हैं, यमराज और, वही आने को है। (और भी समझो) जितने मन के मनोरथ हैं यदि उतने मणि-माणिक्य (रत्न-धन) तुम्हारे पास पृथ्वी में गडे है तो वे पृथ्वी में ही गड़े रह जायेंगे। (तुम्हारे लिए उनका कोई मूल्य नही रहेगा) इस लिए तुम तो एक ही भूख अपने मन मे रखो, आभूषणो की चाहना मत करो, तुम्हारी कामना तो अपने को राजाओ का भी भूषण (दानी राजा) बनाने की होनी चाहिए। तुम्हे परलोक (स्वर्ग) जाने के समय यमराज इन नगो (रत्नो) को गिनने नही देगा, तुम्हे यहाँ से नग्न होकर जाना है, तुम्हारे साथ ये (हीरे माणिक्य) रत्न नही जायेंगे।

आदि बड़ी रचना है विरंचि की जामे रह्यो रचि जीव जडो है।
ता रचना मंह जीव बडो अति काहे ते ता उर ज्ञान गड़ो है।
जीवनि में नर लोग बडो कवि 'भूषण' भाषत पैज बडो है।
है नर लोग में राज बडो, सब राजनि में शिवराज बडो है।

प्रसंग—कवि भूषण ने प्रस्तुत पद्य में महाराज शिवाजी की प्रशंसा की है। उन्हें सारे संसार में श्रेष्ठ सिद्ध किया है।

भावार्थ—सबसे प्रथम तो विधाता की यह सृष्टि अपना बड़प्पन रखती है जिसमें जीव (चेतन प्राणी) और जड (अचेतन) दोनों ही हैं। उस सृष्टि में भी जीव बडा है, कारण उसके हृदय में ज्ञान की स्थिति है। (अचेतन—जड़ में

ज्ञान की धारणा नही हो सकती)। कवि भूषण कहते हैं कि उन जीवो में भी मनुष्यो का स्थान श्रेष्ठ है क्योंकि उनमे प्रतिभा की विशेषता है। फिर मनुष्यो मे भी राजा महान् है और उन राजाओ मे शिवाजी महान् है।

दसरथ जू के राम भे, वसुदेव के गोपाल।
सोई प्रकटे साहि के श्री सिवराज भुवाल।
उदित होत सिवराज के मुदित भये द्विज देव।
कलियुग हट्यो मिट्यो सकल म्लेच्छन को अहमेव।
शिव प्रताप तव तरनि सम अरि पानिप हर मूल।
गरव करत केहि हेत है बडवानल तो तूल।
गरव करत कत चाँदनी हीरक छीर समान।
फैली इती समाजगत, कीरति सिवा खुमान।

प्रसग—प्रस्तुत दोहो मे महाराज शिवाजी की महत्ता और प्रचण्ड शौर्य का वर्णन है।

भावार्थ—(कवि भूषण कहते है कि) जो महाराज दशरथ के घर राम होकर प्रकट हुए और वसुदेव जी के यहाँ गोपाल कृष्ण होकर पैदा हुए वही (परमब्रह्म) साहजी के यहाँ महाराज शिवाजी होकर अवतरित हुए है।

महाराज शिवाजी के जन्म ग्रहण करते ही ब्राह्मण तथा देवतागण हर्ष मे भर गए। उन्होंने समझा कि अब कलियुग की आयु पूरी हो गई (अब धर्म कृत्यो मे कोई बाधा नही पडेगी) तथा (दुराचारी) यवनो का अहकार भी मिट गया।

हे शिवराज, (तुम धन्य हो) तुम्हारा शौर्य (तेज) सूर्य के समान है, वह शत्रुओ की आभा को—पानी को समूल (एकदम ही) नष्ट कर देता है, भला बडवानल अपने को पानी-शोषक मानकर गर्व क्यो कर रहा है वह तो तुम्हारे सम्मुख कोई तुलना नही रखता (वह तो रूई के समान हल्का पडेगा)।

हीरे और दूध की स्वच्छता अपना कर अरी चाँदनी तू क्यो अभिमान कर रही है (यह नहीं है कि तू बहुत ही निर्मल है) किन्तु तू देखती नही कि यहाँ के समाज मे खुमान शिवाजी की यह प्रभा फैल रही है (उनकी कीर्ति तुमसे भी अधिक निर्मल है)।

मतिराम

जाके लगे गृह काज तज्यो, न सखी सखियान कि सीख सिखाई।
बैर कियो सिगरे ब्रज गांव में, जाके लिये कुल-कानि गंवाई।

जाके लिये घर बाहर हू, 'मतिराम' रहे हंसि लोग चवाई।
ता हरि से हित एक ही बार गवारि मैं तोरत बार न लाई।

प्रसंग—कोई मानिनी गोपिका—आत्म परिताप की घड़ी में अपनी सहेली से कहती है कि मैं भी कैसी हूँ—मूर्खता में आकर एक बार ही उनसे सम्बन्ध तोड़ने में झिझक नहीं अपना सकी, जीवन-सर्वस्व से रूठ गई।

भावार्थ—जिनके लिए मैंने घर के कामो को छोड़ दिया, जिनके लिए सखी-सहेलियो की शिक्षा भी नहीं ग्रहण कर सकी (उन्होने कितना भी कहा कि कन्हैया का प्रेम छोड़ दे किन्तु मैं उन उपदेशो पर ध्यान न दे सकी) इतना ही क्यो, जिनके लिए मैंने सम्पूर्ण व्रज-गाँव में लोगो से शत्रुता कर ली और जिनके लिए वश की मर्यादा भी नष्ट कर दी, कवि मतिराम कहते है—(गोपी पछता रही है कि) जिनको लेकर घर-बाहर नर-नारी सब कोई ही मेरे ऊपर हँसी हँस रहे है, हाय, मुझ मूर्ख ने उन भगवान से एक बार ही प्रेम तोड़ने में तनिक देर न की (कुछ तो मुझे आगे-पीछे का विचार कर लेना था)।

जूथ पति बैठ्यो पानी पोषत प्रबल मद
कलभ करेनु कनि लीनैं सग सुख तें।
ग्राह गह्यो गाढ़े बैर पिछले के बाढ़े भयो,
बलहीन विकल करन दीह दुख तें।
कहे 'मतिराम' सुमिरत ही समीप लखे
ऐसी करतूति भई साहिब सुरुख तें।
दोउ बातें छूटीं गजराज की बराबर ही
पाँव ग्राह मुख तें पुकार निज मुख तें।

प्रसंग—कवि मतिराम ने प्रस्तुत पद्य में भगवान् की भक्तवत्सलता तथा गज-ग्राह की लड़ाई का वर्णन किया है।

भावार्थ—यूथपति (हाथियो के समूह का सरदार) अपने बच्चो और हथिनियो को साथ लिए सुख से पानी में बैठा अपना भारी अहंकार बढ़ा रहा था इतने मे पहले जन्म के बढे द्वेष के कारण उसे ग्राह ने दुख में विकल और बलहीन बनाने के उद्देश्य से बलपूर्वक आ पकड़ा। (ऐसे अवसर मे गजराज को अपनी रक्षा का कोई उपाय नही दिखाई पड़ा, भगवान् ही चाहे तो उसे बचा सकते है, यह सोचकर उसने भगवान का स्मरण किया) कवि मतिराम कहते है कि गजराज के स्मरण करने के साथ ही देखा गया कि (वे दयालु) पास ही खड़े है, कुछ ऐसी ही लीला करुणासागर स्वामी की ओर

से हुई। (इस दयालुता का भी कोई हिसाब है कि) गजराज की दोनों बातें एक साथ ही पूरी हुई, उसकी पुकार पूरी हुई नही कि ग्राह के मुँह से उसका ैर छूट गया।

बाजत नगारे जहाँ गाजत गयन्द तहाँ—
सिंह सम कीन्हो वीर संगर विहार हैं।
कहै 'मतिराम' कवि लोगनि कौ रीभि करि,
दीने तैं दुरद जे चुवत मद धार हैं।
शत्रु साल नन्दराव भावसिंह तेग त्याग,
तो से और औनितल आजु न उदार हैं।
हाथिन विदारिबे को हाथ है हथ्यार तेरे,
दरिद्द विदारिबे को हाथियै हथियार हैं।

प्रसंग—मतिराम जी की प्रस्तुत कविता उनके आश्रयदाता भावसिंह की प्रशस्ति मे है। राजा भावसिंह की वीरता तथा दानप्रियता दोनो की सराहना कवि ने की है।

भावार्थ—(जिस समर की भूमि मे) युद्ध के नगाड़े बजते थे, जहाँ हाथियो का घोर गर्जन होता था, वहाँ हे वीर, तुम ने सिंह के समान युद्ध-क्रीड़ाएँ की हैं (तुम्हारा प्रचण्ड प्रताप शत्रुओ को वैसा ही ज्ञात हुआ जैसा कि हाथियो को सिंह का तेज श्रीहत कर देता है)। कवि मतिराम कहते है—(तुम केवल वीर ही हो ऐसी बात नहीं) कवियो की कविता पर प्रसन्न होकर तुमने ऐसे हाथी दान दिये है जो मद की धार बहाते हैं (श्रेष्ठ जाति के हैं)। शत्रुओं को कष्ट देने वाले हे राजा भावसिंह तुम्हें छोड—तुम्हारे जैसा उदार आज पृथ्वी पर दूसरा नहीं है। यदि (शत्रुओं की सेना मे) हाथियो को नष्ट करने के लिए तुम्हारे हाथ मे शस्त्र है तो (कवियों की) दरिद्रता को नष्ट करने के लिए हाथी ही शस्त्र है। तात्पर्य यह कि उन्हे दान मे हाथी ही देकर तुम उनकी दरिद्रता को नष्ट कर देते हो।

मद-रस-मत्त मिलिन्द गन, गान मुदित गन नाथ।
सुमिरत कवि 'मतिराम' के, सिद्धि रिद्धि निधि हाथ।
राधा मोहन लाल कौ, जाहि न भावत नेह।
परियो मुठी हजार दस, ताकी आँखिनि खेह।
मंजु गुंज के हार उर, मुकुट मोर-पर-पुंज।
कुंज बिहारी बिहरिये, मेरे ई मन-कुंज।

गुन औगुन को तनिकऊ, प्रभु नहिं करत विचार।
केतकि कुसुम न आदरत, हर सिर धरत कपार।

प्रसग—कवि ने प्रस्तुत दोहो में, गणपति की वन्दना, कृष्ण भक्ति, कन्हैया की मनोहर छवि तथा भगवान की भक्तवत्सलता को महत्व दिया है।

भावार्थ—(गणपति की महिमा का बखान करते हुए) कवि मतिराम कहते है कि अपने ही मस्तक से बहने वाले मद से मतवाले भौंरो की गुंजार से प्रसन्न गणेश जी को जो स्मरण करता है उसके हाथो में ऋद्धि (सुख-सपत्ति), सिद्धि (अणिमा, गरिमा आदि आठ प्रकार की सिद्धि) तथा निधि (पद्म, महापद्म आदि) सदा प्राप्त रहती है।

जिसे राधा रानी तथा मनमोहन कन्हैया का प्रेम अच्छा नही लगता (वह सर्वथा भाग्यहीन है) उसकी आँखो में दस हजार मुट्ठी धूल पड़े (उसकी आँखें निष्फल है)।

हृदय के ऊपर सुन्दर गुंजाओ की माला हो, (सिर पर) मयूर पखो का मुकुट हो, हे कुंजविहारी (कुंजो मे क्रीड़ा करने वाले कृष्ण) आप इसी रूप में (मेरे मन के कुंज—लता-मडप मे) क्रीडा कीजिए।

मेरे स्वामी गुण-अवगुण (अच्छाई-बुराई) का विचार नही करते है (उन्हे केवल भक्त का उद्धार करना आता है)। जैसे शिव (परम सुगधित) केतकी (केवडे) के फूल को छोड कर सिर में कपालो की माला लिपटाए फिरते है।

देखत दीपति दीप की, देत प्राण अरु देह।
राजत एक पतग में, बिना कपट को नेह।
तिहि पुरान नव ह्वै पढे, जिहि जानी यह बात।
जो पुरान सो नव सदा, नव पुरान ह्वै जात।
सरल बान जानै कहा, प्राण हरन की घात।
बक्र भयंकर धनुष को, गुन सिखवत उत्पात।
फूलति कली गुलाब की, सखि यदि रूप लखै न।
मनो बुलावति मधुप कौ, दै चुटकी की सैन।

प्रसंग—कवि मतिराम के इन दोहो मे दीपक और पतंगे के प्रेम, नये-पुराने के भेद, धनुष और बाण की सगति तथा गुलाब की कली के खिलने पर सरस सूक्तियों का रस है। बड़े ही मार्मिक भाव कवि ने प्रकट किए हैं।

भावार्थ—दीपक की प्रभा को देख कर ही जो अपने प्राण और शरीर

को अर्पित कर देता है (कहना चाहिये) केवल उस पतग में ही छलरहित प्रेम निवास करता है।

सच पूछिये तो उसी ने अठारह (नव द्वै—नौ का दुगुना अठारह) पुराणो को पढ़ा, जिसने यह वात जान ली कि जो पुराना है वही सदा नवीन है (आत्मा शाश्वत होकर भी कभी पुराना नही होता, इसमे जीर्णता नही आती) और जो नया है वह पुराना हो जाता है (शरीर नया पैदा होने पर भी काल-क्रम मे जीर्ण—पुराना हो जाता है)।

वाण तो अपने आप मे सीधा (सरल) होता है, वह किसी के प्राण लेने की घात क्या जानने गया (उसके द्वारा किसी दुष्कर्म की आशका नही की जा सकती) वह टेढे और भयानक धनुष का ही गुण (असर—डोर) है जो उसे उपद्रव की सीख देता है।

हे सखि, यदि गुलाव की कली खिलते समय अपने रूप का प्रदर्शन करती है तो (यह मत समझो कि उसका वह प्रदर्शन भोलेपन का सूचक है) वह चुटकी (चटकने—खिलने) के इशारे से भौरो को अपने पास बुला रही है।

गुरु गोविन्दसिंह

जीत फिरै सब देस-दिसान को बाजत ढोल मृदंग नगारे।
गुंजत गूढ़ गजान के सुन्दर हींसत हैं हयराज हजारे।
भूत भविष्य भवान के भूपति कौन गिनैं नहि जात विचारे।
श्रीपति श्रीभगवान भजे विनु अंत को अन्तके धाम सिधारे।

प्रसग—भगवान् की भक्ति को महत्व देते हुए प्रस्तुत पद्य में गुरु गोविन्द-सिंह जी ने मानव की नश्वरता की ओर लोगो का ध्यान खीचा है। चाहे कोई कितना भी प्रतापी क्यो न हो—सभी को यमराज का ग्रास वनना है। जिसने भगवान् की भक्ति की उसी का जन्म सार्थक हुआ।

भावार्थ—जिन्होंने सभी देशो को जीता, जिन्होंने सभी दिशाओ मे विजय प्राप्त की, जिनके यहाँ ढोल, मृदग तथा नगाडो की ध्वनि फैली रही, जिनके यहाँ हाथियो के समूह चिघाड़ते रहे तथा हजारो ही श्रेष्ठ घोडे जिनके यहा हीसते रहे ऐसे राजा भूत, भविष्य तथा वर्तमान काल मे कितने हुए, उनकी गिनती कौन कर सकता है—विचार में भी वे नही आ सकते किन्तु लक्ष्मीपति श्री भगवान् विष्णु के भजन के अभाव मे सव के सव अन्तिम समय में घोर नरक गए (सब को ही निष्ठुर काल खा गया)।

कालहिं पाइ भयो भगवान सु जागत या जग जां कि कला है।
कालहिं पाइ भयो ब्रह्मा सिव कालहि पाय भयो जुगिया है।
कालहिं पाइ सुरासुर गंधर्ब जच्छ-भुजंग दिसा विदिसा है।
और सु काल सबै वसि काल के, एकहि काल अकाली सदा है।

प्रसग—प्रस्तुत पद्य में काल—समय की महानता तथा शक्ति का वर्णन गुरु गोविन्दसिंह जी ने प्रभावोत्पादक ढग से किया है। ब्रह्मा, विष्णु तथा महेश भी काल के प्रभाव से मुक्त नही कहे जा सकते तो औरो की क्या बात।

भावार्थ—(कवि की उक्ति है कि) काल (समय) का आधार प्राप्त कर ही भगवान् (विष्णु) वह भगवान् बन सके जिस की कला (ज्योति) इस ससार मे अपनी सुन्दर शोभा दिखा रही है। (काल [समय] न मिलता तो उन्हे अपना कर्त्तव्य दिखाने का अवसर कैसे मिलता)। ब्रह्मा और शिव भी काल (समय) का आधार पाकर ही विधाता बन सके (अखिल जड-जगम प्राणियो की रचना और सहार का अवसर उन्हे उसी से मिला)। बड़े-बडे योगी-तपस्वी जो हो सके उन्हें भी काल (समय) ने ही साधना का अवसर दिया है। (इतना ही क्यो) काल (समय) का सहारा पाकर ही देवता-दैत्य, गन्धर्व, यक्ष (पृथ्वी को धारण करने वाले) शेष नाग तथा दिशाए और विदिशाओ का अस्तित्व है और वह काल (मृत्यु) भी सभी प्रकार काल (समय) के ही आधीन है केवल एक काल (समय) ही अकाल (चिरन्तन—काल से मुक्त) है।

काहे को वस्त्र धरौ भगवे मुनि, ते सब पावक बीच जलैंगी।
क्यो इमि रीति चलावत हो दिन द्वैक चलै सबदा न चलैगी।
काल कराल कि रीति महा इह काहु जुगेस छली न छलैगी।
सुन्दर देहि तुम्हारि महामुनि अन्त्य मसान ह्वै धूर रलैगी।

प्रसग—पस्तुत पद्य में वैराग्य-भाव का प्रदर्शन है। ससार की नश्वरता मे कोई भी वस्तु, नियम-विधान टिकने को नही है, सुन्दर काया भी अन्त में धूल मे मिल जायगी।

भावार्थ—(कवि की उक्ति है—) हे मुनि, तुम यह भगवा (गेरुआ) वस्त्र किस लिए अपना रहे हो (सन्यास अपना कर भी यह ढोंग कैसा ?) समझो यह सब भी आग की लपटो मे जलने को ही है। तुम जो इस प्रकार की रीति-परम्परा चला रहे हो, वह दो दिनो तक ही चल सकेगी, सदा सर्वदा नही चलेगी। (लाख धोखा देने पर भी काल के हाथो से छूटना कठिन)। क्रूर काल का विधान अत्यन्त कठिन है, इसे किसी योगेश्वर का छल भी

धोखे मे नही डाल सकता है। हे महामुनि, तुम्हारी यह सजी-संवारी काया अन्तिम समय मे श्मशान की धूल मे मिल जायगी। (केवल भगवान की भक्ति ही इस ससार मे सार्थक है और कुछ नहीं)।

ताप के सहे ते जो पै पाइए अताप नाथ,
तापना अनेक तन घाइल सहत हैं।
जाप के किए ते जो पै पायत अजाप देव,
पूदना सदैव 'तुही' 'तुही' उच्चारत हैं।
नभ के उड़े ते जो पै नारायण पाइयत,
अनिल अकास पछी डोलबो करत हैं।
आग में जरे ते गत रांड की परत कर,
पताल के वासी क्यू भुजंग न तरत हैं।

प्रसंग—दुनिया मे ऐसे साधको की कमी नही जो शरीर को योग क्रियाओ में तपाकर मुक्ति की कामना रखते हैं—पचाग्नि सेवन, एकान्त जप, खेचरी मुद्रा (आकाश मे उडने की क्रिया) तथा भूमि मे समाधि लेने आदि की बातो को लेकर गुरु गोविन्दसिंह जी ने प्रस्तुत पद्य मे चेतावनी दी है।

भावार्थ—यदि शरीर को तापो में (पचाग्नि आदि में) कष्टित करने से ही त्रय तापो से रहित परमात्मा की प्राप्ति हो जाय तो उस घायल व्यक्ति को पहले ही प्रभु का दर्शन होना चाहिए जो अनेको प्रकार का कष्ट शरीर पर सहन करता है। यदि केवल जप करने से (नाम रटने से) अजपा भगवान् (जप-जाप से रहित ईश्वर) मिल जावें तो पोदना (चिड़िया) जो सदा 'तूही' 'तूही' की रट लगाती है पहले ही भगवान को पा जाती और यदि (खेचरी-मुद्रा की सिद्धि) आकाश मे उड़ने से भी नारायण की प्राप्ति होती तो हवा और आकाश मे विचरने वाले पछी भी उन्हे पा जाते। (इतना ही क्यों) यदि आग मे जलने से प्रभु दर्शन सम्भव होता तो विधवा जो अपने को आग मे जला देती हैं, उनकी हालत से परख कर लेनी चाहिए (उसे कहाँ प्रभु मिलते हैं ?) और यदि भूमि में समाधि लेने से, पाताल में निवास बनाने से ईश्वर मिलते तो सोचना चाहिए कि सदा ही पृथ्वी के नीचे रहने वाले सर्प क्यो नही मुक्ति पा जाते हैं।

जैसे एक आग ते कनूका कोटि आग उठे,
न्यारे-न्यारे ह्वै कै फेरि आग में मिलाहिंगे।
जैसे एक धूर से अनेक धूर पूरत है,
धूर के कनूका फेर धूर ही समाहिंगे।

जैसे एक नद ते तरंग कोटि उपजत है,

पानी के तरंग सबै पानी ही कहाहिंगे।

तैसे विश्व रूप ते अभूत भूत प्रकट ह्वै,

ताही से उपजि सब ताही में समाहिंगे।

(प्रभाकर, नवम्बर १९५६; नवम्बर-१९५८)

प्रसंग—यह सारा ससार एकमात्र परमात्मा से ही निकला है और कभी उसी मे लीन भी हो जायगा, इसी अद्वैत भाव का चित्रण प्रस्तुत पद्य में है।

भावार्थ—जिस प्रकार एक आग से चिनगारी उठती है और करोड़ों आग का रूप दिखाई पड़ता है और फिर पृथक्-पृथक होकर भी वे चिनगारियाँ एक आग मे ही मिल जाती है। जिस प्रकार एक धूलि से अनेको धूलि कण उठकर आकाश को भर देते है और वे धूलि कण फिर धूल में ही मिल जाते हैं फिर जिस प्रकार एक नदी में करोड़ो लहरें उठती है वे पानी की लहरे पानी ही कहलाती है (उनका अपना स्वतत्र अस्तित्व नही होता) उसी प्रकार विश्वरूप परमात्मा से जड और चेतन सम्पूर्ण जगत प्रकट होता है और जिनसे पैदा होता है उन्ही में फिर मिल जाता है।

रे मन ऐसो करि संन्यासा।

वन ते सदन सबै करि समझहु मन ही माहीं उदासा।

जत की जटा जोग को मजनु नेम के नखन बढाओ।

ज्ञान गुरु आतम उपदेसहु भाम बिभूति लगाओ।

अलप अहार सुलप सी निद्रा दया छिमा तन प्रीति।

सील सन्तोख सदा निरवाहिबौ ह्वै त्रिगुण अतीति।

काम क्रोध हंकार लोभ हठ मोह न मन सो त्यावै।

तब ही आतम तत्व को दरसे परम पुरुख कह पावै।

प्रसग—प्रस्तुत पद्य मे आत्मिक साधना और परमात्मा के चिन्तन का उपदेश है।

भावार्थ—अरे मन, तुम तो ऐसा सन्यास अपनाओ, (घर में रहते हुए ही) वन से बढ़कर घर को भयपूर्ण समझो (फिर उनके प्रति आसक्ति जगेगी नहीं) और उदासीनता (विरक्ति) को मन मे ही रहने दो, (बाहर प्रदर्शन मे कोई सार नही)। यम-संयम की जटा ही ठीक है (बाहर दिखाने के लिए बालों की जटा व्यर्थ है) स्नान-मजन करना हो तो योग के तीर्थ में स्नान-मंजन करो

तूरज बजाय सूर सूरज को वेधि जाय,
ताहि कहा सवद सुनावत हौ ढौंडी को।
ऊधौ, पूरे पारख हौ, परखे बनाय देव,
पार ही में बौरो पैरवैया धा औड़ी को।
मनु-मनिका दै हरि हीरा गांठि बांध्यो हम,
तिन्हें तुम वनिज बतावत हौ कौड़ी को।

प्रसंग—विरहिनी गोपियो के बीच निर्गुण का उपदेश देने वाले उद्धव के प्रति सगुण ब्रह्म का पक्ष गोपियो ने भी किस तर्कपूर्ण ढग से उपस्थित किया उसी का वर्णन इस पद्य मे है। गोपियाँ कहती हैं—हमने जो कन्हैया के प्रेम का सौदा किया है उसे तुम किस बुद्धि से व्यर्थ बता रहे हो ?

भावार्थ—(गोपियों की उक्ति है कि) जो अपनी आंखो में अंजन लगाती हैं, (देखने की लालसा से दृष्टि-शक्ति बढाना चाहती हैं) वे निरंजन (अदृष्ट—निराकार परमात्मा) को क्या जाने। जिन्होंने फल का रस (स्वाद) पा लिया है, उन्हें फूल का रस (स्वाद) फीका ही लगेगा। (हमने फल रूप कन्हैया का आनन्द उठाया है हमे निर्गुण स्वरूप परमात्मा की बातें सुनकर फूल का रस क्यों चखाना चाहते हो) जो वीर रण शृंगी (तूर्य) का स्वर गुंजित कर सूर्य मंडल को पार कर सकते हैं, उन्हें तुम डुगडुगी के शब्द क्या सुनाते हो (तात्पर्य यह कि हमने डके की चोट कन्हैया से प्रेम कर लोक-लज्जा का सूर्य-मंडल पार कर लिया है और अब तो हम ने परमलोक को अपना लिया है, हमें व्यर्थ का ज्ञान क्या सुनाते हो)। हे उद्धव, तुम पूरे पारखी हो (निरे बुद्धू हो) यह हमने भली भाँति परख लिया है (तुम्हारी बुद्धि की परीक्षा हो गई है) कवि देव कहते है—गोपियो का वचन है कि तुम तो हमे किनारे पर ही उल्टा तैरना बताकर डुबोना चाहते हो (वैसे हम किनारे लग चुकी हैं) हमने तो मन रूपी माला का एक दाना देकर हीरे जैसे कृष्ण को स्नेह मे बाँध लिया है और तुम हो कि इस व्यापार को दो कौडी का बता रहे हो। (श्री कृष्ण रूपी हीरे को अपने से अलग कर देने की सलाह दे रहे हो, धन्य है तुम्हारी अज्ञानता को।)

सूनौ कै परम पद ऊनौ कै अनन्त मद,
नूनौ कै नदीस नद इन्दिरा झुरै परी।
महिमा मुनीसन की सपत्ति दिगीसन की,
ईसन की सिद्धि ब्रजवीथी बिथुरै परी।
भादो की अँधेरी आधि राति मथुरा के पथ,
पाय कै संयोग 'देव' देवकी दुरै परी।
पारावार पूरन अपार पर ब्रह्म-रासि,
जसुदा के कोरै एक बार ही कुरै परी।

प्रसंग—प्रस्तुत कवित्त महाकवि देव की कविता से लिया गया है। इसमें कवि ने निर्गुण ब्रह्म की अवतारवार्ता को बड़े अनूठे भावपूर्ण ढंग से लिखा है। भगवान् कृष्ण के जन्मकाल में मथुरा में एक बार ही जो परिवर्तन आया उसका वर्णन करते हुए महाकवि देव कहते हैं—

भावार्थ—वैकुण्ठ को शून्य कर, परम आनन्द को कम कर, नदियों और समुद्रों के वैभव मान को नीचा दिखाकर, लक्ष्मी (शोभा) बरस पड़ी। (चारों ओर अनन्त वैभव दिखाई पड़ने लगा।) बड़े-बड़े मुनियो की महिमा, दिक्पालों की सम्पत्ति और गणेश आदि सिद्धि के स्वामियो की सिद्धि ब्रज की गलियो मे बिखर पड़ी। भादो के महीने की अँधेरी और आधी रात्रि मे मथुरा के मार्ग में सयोग पाकर (अपने प्रिय पुत्र श्री कृष्ण को) देवकी को त्यागना पड़ा। समुद्र की भाँति पूर्ण और सीमाहीन परब्रह्म रूपी सम्पत्ति की यशोदा की गोद मे ढेर लग गई अर्थात् चिरन्तन परमात्मा को पुत्र रूप में अपनी गोद में पाकर वह धन्य हो गई।

झहरि-झहरि झीनी बूँद है परित मानो,
घहरि-घहरि घटा घेरी हैं गगन मैं।
आनि कह्यो श्याम—मो सौं चली झूलिबे को आज,
फूली न समायी भई ऐसी हौं मगन मैं।
चाहत उठ्योइ उठि गई सो निगोडी नींद,
सोय गये भाग मेरे जागि वा जगन मैं।
आँखि खोलि देखौं तौं न घन हैं न घनस्याम,
वेई छाई बूँदें मेरे आँसु ह्वै दृगन मैं।

प्रसंग—कोई विरहिणी गोपी नीद में स्वप्न देख रही थी—उसने देखा कन्हैया उसे झूलने चलने का आग्रह कर रहे है, वह प्रफुल्ल मन साथ चलने को उठना ही चाहती थी कि नीद टूट गई—उसे रोना ही हाथ लगा। इसी को कहानी वह अपनी सहेली को सुना रही है।

भावार्थ—(अपने स्वप्न की कहानी कहती हुई विरहिणी गोपी कहती है) मुझे ऐसा लगा मानो झहरती हुई बूँदो की फुहारें पड रही है और घहराती हुई घटा आकाश मे घिर आई है। ऐसे ही समय मे श्यामसुन्दर कृष्ण ने मुझसे आकर कहा कि चलो आज झूला झूलने चलो। मैं तो यह बात सुनकर मन मे फूली नही समाई (मुझे इस बात से अत्यन्त प्रसन्नता हुई)। मै उनके साथ चलने को उठना ही चाहती थी कि बैरिन नींद पहले ही उठ खडी हुई, हाय, उस जगने मे मैं ऐसी जगी कि मेरा भाग्य ही सो गया, (स्वप्न का सार आनंद ही नष्ट हो गया। मैं अपनी आखो को खोल कर देखती हूँ तो न घनश्याम

कृष्ण थे, न घनश्याम काले वादल ही थे, हां स्वप्न मे पड़ने वाली वर्षा बू दें मेरी आखो में आसू की बू दें वन रही थी।

जाके न काम न क्रोध-विरोध न लोभ छुवै नहिं छोभ को छाहीं।
मोह न जाहि, रहै जग वाहिर, मोल जवाहिर तौ अति चाहीं।
वानि पुनीत ज्यों देव धुनी, रस आरद सारद कै गुन गाहीं।
सील ससी सविता छविता कविताहि रचै कवि ताहि सराहीं।

(प्रभाकर, प्रश्न पत्र नवम्बर १९५१)

प्रसंग—कविवर देव ने प्रस्तुत पद्य मे सत्कवि की प्रशंसा की है। उनकी दृष्टि मे सत्कवि वही है, जो काम-क्रोध से दूर है, जो ससार की प्रवचनाओ से मुक्त है और जिसकी वाणी पुनीत है।

भावार्थ—(सत्कवि की पहिचान बताते हुए कवि का कथन है कि) जिसमे काम, क्रोध, वैर तथा लोभ नही है और जिसे व्याकुलता की छाया भी नही छूती। मोह में जो फसा नही है (ससार मे रहते हुए भी जो ससार से निलिप्त है), मैं उस कवि का मूल्य हीरे से भी अधिक आकता हूँ, वह मुझे अत्यन्त ही प्रिय है। जिसकी वाणी (रचना) गगा के समान पुनीत है—पवित्र है, रस से पूर्ण है, सरस्वती के गुणो से निमज्जित है। जिसका आचरण (शील) चन्द्रमा के समान शीतल है और जो सूर्य के समान तेजस्वी कविता की रचना करता है, मै ऐसे ही कवि की प्रशसा करता हूँ।

धार में धाय धंसी निरधार ह्वै जाय फंसी, उकसीन उघेरी।
री, अगराय गिरी गहिरी, गहि फेरे फिरी न घिरी नहिं घेरी।
'देव' कछू अपनो वस ना, रस लालच लाल चितै भई चेरी।
वेगि ही बूडि गई पंखियां, अंखियां मधु की मखियां भई मेरी।

प्रसंग—कन्हैया की रूप-सरिता में डूबने-उतराने वाली एक गोपिका अपनी मनोदशा का वर्णन अपनी सखी से सुना रही है।

भावार्थ—हे सखी, (कन्हैया के रूप की) धारा मे दौडकर मेरी आँखें पैठ गई और वहाँ जाकर विना किसी अवलव के इस प्रकार फस गई कि प्रयत्न करने पर भी निकल न सकी। वे कुछ आगे वढकर और भी अधिक गहरे जल मे गिर गई कि न तो पकडकर निकालने से निकली, और घेरने से ही घेरे मे आ सकी (वचाव का कोई यत्न सफल न रहा)। कवि देव कहते है—गोपिका का कथन है कि अपना कुछ चारा ही क्या था, वे तो रूप-रस के लोभ मे कन्हैया को देखते ही उनकी दासी वन गई थी। (फिर क्या कहूँ) मेरी ये आंखें शहद की मक्खियां वन गई, उनकी पाखें श्री कृष्ण के रूप-मधु में जल्द ही डूब गई (एक वार कृष्ण के रूप मे फसकर मेरी आखें सदा के लिए उन्ही मे अपना अस्तित्व खो वैठी)।

काव्य-सरोवर

व्याख्या भाग

अध्ययन पद्यों की व्याख्या

भारतेन्दु हरिश्चन्द्र

होन चहत अब प्रात चक्रवाकिनि सुख पायो।
उड़े विहग तजि वास चिरैयन रोर मचायो॥
नव मुकुलित उत्पल पराग लै सीत सुहायो।
मन्थर गति अति पवन करत पडुर वन धायो॥
कलिका उपवन विकसन लगीं भवर चले सञ्चार करि।
पूरब पच्छिम दोउ दिसि अरुन तरुन अरुनकृत तेज धरि।

भावार्थ—हे श्रीकृष्ण, अब प्रात.काल होने वाला है, यह देखकर चकवे चकवी बहुत आनन्दित हो रहे हैं, क्योंकि रात के बिछुडे हुए वे अब मिल जायेंगे (चकवे और चकवी की प्रकृति है कि वे रात को एक दूसरे से बिछुड़ जाते हैं, चकवा एक किनारे और चकवी दूसरे किनारे चली जाती है—इस प्रकार विरह-युक्त दोनों एक-दूसरे को बुलाते रहते हैं और प्रात काल फिर वे मिल जाते हैं, इसीलिए यहाँ कहा गया है कि शीघ्र ही मिलने की आशा से चकवे और चकवी हर्षित हो रहे हैं)। पक्षीगण अपने घोसलो और कोटर आदि रैन-बसेरो को छोडकर उडने लगे हैं, चिडिया चहचहा रही हैं। सरोवरो के शीतल, नये, ताजा खिले हुए या अधखिले कमलो की पराग-पुष्परज को अपने साथ लिए मन्द गति से बहती हुई यह पवन जगलो के वातावरण को उस पुष्परज से धुन्धला—पीला और सफेद-सा—बनाती हुई मन्द-मन्द बह रही है। इस प्रकार यह प्रात काल की वायु शीतल भी है, सुगन्धित भी और मन्द भी (शीतल, मन्द, सुगन्धित वायु अत्यन्त आनन्ददायक होती है)। बागो और बगीचो में फूलो की कलियां चटचटाती हुई खिलने लगी है, उन पर भौरे मंडरा रहे हैं। प्रभात में नवोदित सूर्य के तेज को धारण कर पूर्व और पश्चिम दोनो दिशायें लाल हो गई है (पूर्व से सूर्य निकल ही रहा है और पश्चिम में सूर्य की किरणें पहुँच रही है, अत. पश्चिम दिशा भी लाल हो गई है।)

काव्य-सौन्दर्य—कवि ने यहाँ प्रभात का स्वाभाविक चित्र अंकित किया है। यहाँ प्रभात शोभा का स्वाभाविक वर्णन होने से स्वभावोक्ति अलंकार है।

नारद तुंबरु पट विभास ललितादि अलापत।
चारहु मुख सों वेद पढ़त विधि तुव जस थापत॥
इन्द्रादिक सुर नमत जुहारत थर थर कांपत।
व्यासादिक रिषि हाथ जोरि तुव अस्तुति जापत।
जय विजय गरुड़ कपि आदि गन खरे खरे मुजरा करत।
शिव डमरू लै गुन गाई तुव प्रेम–मगन आनन्द भरत॥

भावार्थ—महर्षि नारद तथा संगीताचार्य तुंबरु आदि गन्धर्वगण भैरव, मल्हार, श्री राग, हिन्दोल, मालकोष नामक छहों राग विभास आदि उपराग और ललिता आदि रागिनियां अलाप रहे हैं। ब्रह्मा जी चारों मुखों से वेद पढ़ते हुए आपका यश गा रहे हैं। इन्द्रादिक देवगण, झुक-झुक कर प्रणाम कर रहे हैं और थर-थर काँप रहे हैं, आपके जय-विजय और हनुमान जी आदि सब खड़े-खड़े नमस्कार कर रहे हैं। शिव जी डमरू बजाते हुए आपका गुणगान करते हुए प्रेम में मग्न होकर आनन्दित हो रहे हैं।

सीखत कोउ न कला, उदर भरि जीवत केवल।
पसु समान सब अन्न खात पीअत गंगा जल॥
धन बिदेस चलि जात तऊ जिय होत न चंचल।
जड़ समान ह्वै रहत अकिल हत रचि न सकत कल॥
जीवत बिदेस की वस्तु लै ता बिनु कछु नहिं करि सकत।
जागो जागो अब सांवरे सब कोउ रुख तुमरो तकत॥

भावार्थ—इन भारतवासियों में से कोई भी कला-कौशल सीखने का प्रयत्न नहीं करते, केवल पेट भरकर जीते रहना मात्र चाहते हैं। सब लोग पशुओं के समान केवल अन्न खा कर, गंगाजल पी कर मस्त रहते हैं। यद्यपि देश का सारा धन विदेशों में चला जा रहा है तो भी इनके मन में कुछ भी व्याकुलता नहीं रहती। ये मूर्खों के समान बने हुए हैं। इन लोगों की बुद्धि नष्ट हो गई है। ये लोग किसी प्रकार के यंत्र आदि का आविष्कार नहीं कर सकते।

विदेशो की वस्तुओ पर ही जी रहे हैं। उन विदेशों की वस्तुओ के बिना इन का कोई भी काम नहीं चल सकता। हे भगवान्, अब तो आप जागिये, जागिये, सब लोग आप ही का रुख देख रहे है तथा आपके कृपा-कटाक्षो की ही ओर सब का ध्यान लगा हुआ है।

यहा कवि की देश की दुर्दशा के प्रति हार्दिक वेदना व्यक्त हो रही है और ये धन का विदेश में जाना, भारतीयो का कला-कौशल आदि न सीखना, नवीन यंत्रो का आविष्कार न करना आदि सभी बातें ऐसी है जो कवि-हृदय के लिए अत्यन्त दुःखदायी है। कवि चाहता है कि देश स्वतंत्र हो जाय ताकि यहाँ का धन विदेश में न जाय और देश ज्ञान-विज्ञान, कला-कौशल, यन्त्र के द्वारा उन्नति की ओर अग्रसर हो।

सब देसन की कला सिमिट कै इतहि आवै।
कर राजा नहिं लेई प्रजन पैं हेत बढ़ावै॥
गाय दूध बहु देहिं तिनहिं कोउ न नसावै।
द्विज गन आस्तिक होइँ, मेघ सुभ जल बरसावै।
तजि छुद्र वासना नर सबै निज उछाह उन्नति करहिं।
कहि कृष्ण-राधिका-नाथ जय हमहू जिय आनन्द भरहिं॥
(प्रभाकर, नवम्बर १९५३)

भावार्थ—सब देशो की कला-कौशल इकट्ठी होकर यही आ जाए। राजा प्रजा से कोई टैक्स न ले और उसके साथ प्रेमपूर्वक वर्ताव करे। गाँएँ बहुत-सा दूध दें, उन्हें कोई मारे नहीं। ब्राह्मण ईश्वर-धर्म और परलोक के विश्वासी, आस्तिक तथा धर्मात्मा हो। मेघ समय पर सुन्दर जल बरसावें। सब लोग तुच्छ वासनाओ को छोड़कर उत्साहपूर्वक उन्नति करें। राधा-रमण श्रीकृष्ण की जय-जयकार करते हुए हम भी सदा आनंदित होते रहें।

इस पद में वेद के 'आ ब्रह्मन् ब्राह्मणो ब्रह्मवर्चसी जायताम्' आदि मन्त्र का कुछ भाव लिया गया है।

अयोध्यासिंह उपाध्याय

कैसे वृन्दा विपिन बिसरा क्यो लतावेलि भूली!
कैसे जो से उतर सगरी कुंज पुंजें गई हैं?

कैसे फूले विपुल फल से नम्र भूजात भूले !
कैसे भूला विकच तरु सो कालिंदी कूल वाला !!
(प्रभाकर, जनवरी १९५३)

भावार्थ—हे उद्धव जी ! श्रीकृष्ण को यह वन्दावन भला कैसे भूल गया, ये लता और बेलें कैसे विस्मृत हो गईं, ये कुञ्ज कैसे उसके ध्यान से उतर गये। फल और फूलों से लदे हुए होने के कारण सदा झुके रहने वाले ये वृन्दावन के वृक्ष उन्हें कैसे भूल गये और विशेष रूप से यमुना के तट का वह फूलों से खिला हुआ (कदम्ब) वृक्ष (जिसके नीचे खड़े होकर वह प्राय. वंशी बजाता और गौए चराया करता था) कैसे भूल गया ? भाव यह है कि जिन विविध स्थानों में, वृक्षों के नीचे या कुंज-पुञ्जों के बीच में श्रीकृष्ण नित्य नवीन लीलाएं करते हुए नहीं थकते, उन सबको भला वह सहसा कैसे भूल सकता है ?

काव्य-सौन्दर्य—एक ही भूलना क्रिया के द्योतक यहाँ अनेक शब्द आये है, अतः अर्थावृत्ति दीपक अलंकार है। भूला-भूला कई बार आने से पदार्थावृत्ति दीपक है। अनुप्रास तो है ही।

मैथिलीशरण गुप्त

तरु तले विराजे हुए—शिला के ऊपर
कुछ टिके, धनुष की कोटि टेक कर भूपर
निज लक्ष्य सिद्धि-सी, तनिक घूमकर तिरछे,
जो सींच रही थीं पर्णकुटी के बिरछे—
उन सीता को निज मूर्तिमती माया को,
प्रणय-प्राण को, और कान्त-काया को।

भावार्थ—चित्रकूट में अवस्थित भगवान् श्रीराम की एक झाँकी दिखाता हुआ कवि कहता है कि एक वृक्ष की छाया में सुन्दर-सी शिला पर धनुष के किनारे का सहारा लेकर बैठे हुए श्रीराम कुछ तिरछे घूमकर पर्णकुटी के पास-पास लगाये हुए पौधों को सींचती हुई अपने जीवन के उद्देश्य की सफलता अथवा अपनी साकार माया और पति-प्रेम को ही अपना प्राण समझने वाली सुन्दर शरीर वाली सीता को देख रहे थे।

काव्य-सौन्दर्य—यहाँ सीता के 'मूर्तिमती माया' और 'लक्ष्य-सिद्धि-सी'

आदि विशेषण बड़े भाव भरे हैं। श्रीराम के जीवन का लक्ष्य दुष्टों का संहार कर पृथ्वी का भार उतारना था। यह लक्ष्य सीता के द्वारा ही पूर्ण हुआ। साथ ही प्रत्येक मनुष्य के जीवन का कुछ-न-कुछ लक्ष्य होता है, जब उसे वह अपना लक्ष्य प्राप्त हो जाता है तो फिर कुछ प्राप्तव्य शेष नही रह जाता। मनुष्य के जीवन का चरम लक्ष्य मुक्ति है। राम के जीवन का लक्ष्य भी यही था, उन्होंने भी राष्ट्र या अपने देश को विदेशियों के शासन से मुक्ति दिलाई थी। वे स्वयं मुक्त होकर दूसरों के मुक्तिदाता भी थे। सीता उन्हें अपने जीवन की सफलता के समान लगती थी। सीता को पाकर वे सब कुछ पा गये। आशय यह है कि भगवती सीता प्रभु राम के जीवन की सर्वस्व हैं, उन्ही के कारण और उन्ही के साथ राम ने राक्षसो का संहार करने की ठानी थी।

सीता ही राम रूपी परब्रह्म की वस्तुतः मूर्तिमती माया थी। अपनी माया शक्ति के अभाव में 'शिव' भी 'शव' मात्र रह जाता है। इसी भाव को प्रदर्शित करने के लिये यहाँ सीता को मूर्तिमती माया कहा गया है, वह राम से अभिन्न होते हुए भी भिन्न है। उसकी इस भेदाभेद भावना को प्रदर्शित करने के लिए उसे प्रणय-प्राणा और कान्त-काया कहा गया है। सीता को विरछा सींचती हुई दिखा कर स्वावलम्बिनी और सतत कार्यरता व्यञ्जित किया गया है।

यों देख रहे थे राम अटल अनुरागी,
योगी के आगे अलख जोति ज्यों जागी!
भौंरों से भूषित कल्प-लता-सी फूली,
गाती थीं गुन गुन गान भान-सा भूली—
"निज सौध सदन में उटज पिता ने छाया!
मेरी कुटिया में राज-भवन मन भाया॥"

(प्रभाकर, जून १९५४)

भावार्थ—सीता के प्रति सच्चे और दृढ अनुराग वाले श्रीराम पौधे सींचती हुई सीता को इस प्रकार बड़ी प्यार भरी दृष्टि से देख रहे थे, मानो योगी के सम्मुख उसकी योग-साधना की सफलता के परिणामस्वरूप उस अलक्ष्य परब्रह्म की ज्योति प्रकट हो गई हो। ऊपर के पद में सीता को

राम रूपी ब्रह्म की मूर्तिमती माया बताया गया था। यहाँ राम को साधक योगिराज और सीता को उस योगी की साधना की सफलता स्वरूप प्राप्त होने वाली ब्रह्म की ज्योति कहा गया है। वह सीता उस समय गुनगुनाती हुई ऐसे प्रतीत होती थी, मानो भ्रमरो से मुखरित कल्पलता हो, सीता कल्पलता है और उसका गुनगुनाना भ्रमरो की गुञ्जार। वह सीता अपने-आपमें तन्मय गुनगुनाती हुई कुछ इस प्रकार गाती जा रही थी कि मेरे पिता महाराज जनक तो निष्काम कर्मयोगी है, वे राजमहल में रह कर भी जल में कमल-पत्र के समान विषय-भोगो में आसक्त नही होते, इसलिए राजप्रासाद भी उनके लिए तपोवनो के समान ही विरक्ति के भावो को बढाने वाले ही है, इस प्रकार उनके लिए तो राजभवन भी कुटिया के समान है किन्तु यहाँ मेरे लिए तो यह पर्णकुटी भी राजमहलो से अधिक आनन्ददायक है, क्योकि राजमहलो में जो कुछ सुख-सुविधाए हो सकती है, यहाँ मुझे उनमें से किसी का कोई अभाव नहीं खलता, सब प्रकार से मुझे यहां सुख-सन्तोष और आनन्द ही आनन्द आता है।

काव्य-सौन्दर्य—यहां उत्प्रेक्षा और विरोध अलकार है, 'कल्प-लता-सी फूली' में उपमा भी है।

> मैं पली पक्षिणी विपिन-कुञ्ज-पिंजर की
> आती है कोटर सदृश मुझे सुधि घर की,
> मृदु तीक्ष्ण वेदना एक-एक अन्तर की,
> बन जाती है कल गीति समय के स्वर की,
> कब उसे छेड़ यह कंठ यहाँ न अघाया।
> मेरी कुटिया में राज-भवन मन भाया॥
>
> (प्रभाकर, जून १९५६)

भावार्थ—सीता जी कहती है कि मैं इस तपोवन में कुञ्ज-लताओ के मण्डप रूपी पिंजरे में पली हुई पक्षिणी के समान हूं। जैसे पिंजरे में रहने वाली चिड़िया को कभी-कभी अपनी खोह या घोंसले की याद आ जाया करती है, वैसे ही मुझे भी यहां कभी-कभी अपने घर, मा, बाप, सास, ससुर और बहनों आदि की स्मृति हो आती है। मेरे हृदय की एक-एक मधुर तीखी कसक

समय के स्वर का सुन्दर संगीत बन जाती है। उस सुन्दर संगीत को छेड़कर या तान अलाप कर मुझे क्या तृप्ति प्राप्त नहीं होती, अर्थात् मैं खूब प्रसन्न होकर उस समय के स्वर का संगीत गाया करती हूँ। इस प्रकार मेरी कुटिया में भी राज-भवन आ गया है। राजमहल भी संगीत और मधुर ध्वनि से मुखरित रहता है और सीता भी सदा अपने हृदय की गीतिकाएं गाया करती है।

काव्य-सौन्दर्य—यहाँ पर 'मृदु, तीक्ष्ण वेदना' इस पद की ध्वनि विशेष रूप से दर्शनीय है। वन में रहते हुए सीता के हृदय में अनेक नई-पुरानी, कड़वी-मीठी स्मृतियाँ जागृत होती रहती हैं। उस कटु, मधुर संगीत की तान से हृतन्त्री सदा झंकृत रहती है और वे कड़वी बातें भी समय के बीतने के साथ-साथ भली-सी लगने लगती हैं, क्योंकि प्रकृति का नियम है कि समय हृदय के घावों को स्वयं भर देता है (Time heals the wounds) भाव यह है कि कैकेयी आदि का वह कटु व्यवहार भी अब मंगलजनक ही प्रतीत होता है। अब उनके प्रति हृदय में कोई बुरी भावना नहीं रह गई। हाँ, कभी-कभी ऐसी ही कुछ कड़वी-मीठी बातें याद अवश्य आ जाती हैं, पर वह स्मृति भी मेरे लिए आनन्ददायक है, उद्वेगजनक नहीं।

'विपिन-कुञ्ज-पिंजर' की व्यंजना भी बड़ी प्रभावशालिनी है। सामान्यतया पिंजरे में पड़ा हुआ पक्षी पराधीन होता है, पर यहाँ 'विपिन' 'कुञ्ज', 'पिंजर' शब्द सीता की पराधीनता को नहीं, प्रत्युत उसकी स्वतन्त्रता को व्यक्त करता है, क्योंकि यह पिंजरा लता-कुञ्जों का है। हाँ यह पिंजरा सीता को स्वतंत्रता प्रदान करता है, पर उच्छृंखलता नहीं। हमारी देवियाँ अपने कार्यों में स्वतन्त्र हों, पर उच्छृंखल नहीं। यहाँ रूपक, उपमा और विरोध आदि अनेक अलंकार हैं।

सब ओर लाभ ही लाभ बोध विनिमय में,
उत्साह मुझे है विविध वृत्त—संचय में,
तुम अर्द्ध नग्न क्यों रहो अशेष समय में,
आओ, हम कातें बुनें गान की लय में।

निकले फूलों का रंग, ढग से ताया।
मेरी कुटिया में राज-भवन मन भाया॥
(प्रभाकर, अगस्त १९५३)

भावार्थ—काव्य-सरोवर सग्रह के इस प्रसग में साकेत के अनेक महत्वपूर्ण पद बीच में से छोड दिए गए हैं। उन पदो को पढे बिना इसका सारा सौन्दर्य नष्ट हो जाता है। 'गुरु-जन-परिजन' आदि उक्त पद के पश्चात् सीता चित्रकूट के मोर, कोयल, तोता, राजहंसिनी, झरना, आदि के प्रति अपनी भावनाए व्यक्त कर फिर वनवासिनी, कोल-किरात और भील-बालाओं को सम्बोधित करते हुए कहती है—

ओ भोली कोल-किरात भिल्ल बालाओ,
मैं आप तुम्हारे यहाँ आ गई आओ।
मुझको कुछ करने योग्य काम बतलाओ,
दो अहो नव्यता और भव्यता पाओ।
लो मेरा नागर भाव भेंट जो लाया,
मेरी कुटिया में राजभवन मन भाया।

भाव यह है कि नागरिक-जन गावो में जाकर कुछ ग्रामवासियों को अपने ज्ञान-विज्ञान और कला-कौशल सिखाए और वे ग्रामवासियो से वहाँ के कुटीर-उद्योग, गृह-उद्योग आदि का ज्ञान प्राप्त करें, खेती बाड़ी सीखें, इस प्रकार ज्ञान के आदान-प्रदान द्वारा ग्रामीण और नागरिक दोनो व। उन्नत, समृद्ध और सुखी बने।

इस प्रकार सीता उन भीलनियो से कहती है कि मै तुम्हे कुछ सिखाऊं और तुम मुझे कुछ सिखाओ। ज्ञान के इस आदान-प्रदान मे मुझे सब ओर से लाभ-ही-लाभ दिखाई देगा। यहा पर विविध वृतान्तो के संग्रह में मुझे बडा उत्साह है। ऋषि-मुनि जो इतिहास-पुराण की नित्य नई कथाएं सुनाते है, भीलनिया प्रकृति के पदार्थों के नित्य नये गुण-दोष बताती है, उन सब वृतान्तो को मै बडे चाव से सुनती हू और हे बहनो, मैं देख रही हू कि तुम प्राय वल्कल वस्त्र पहने अर्द्धनग्न-सी रहती हो, क्योंकि तुम्हे सूत कातने और कपड़ा बुनने की कला नही आती, इसलिए आओ में तुम्हें यह कला

सिखाती हूँ। आओ, हम मिलकर गाती हुई चर्खा चलाएँ और सूत मे कपडे बुनें। इस प्रकार अपने खाली समय का सदुपयोग कर ले तो फिर अर्द्धनग्न हमे रहने की आवश्यकता नही पडेगी। वस्त्र बुनकर तैयार हो जाने पर हम उन वस्त्रो को फूलो से विधिपूर्वक तपाकर, रग निकाल कर, उस सुन्दर रग से रग लेगी।

भाव यह है कि जगली जातियो मे भी कातना, बुनना, रगना आदि घरेलू उद्योग-धन्धो का विकास होना चाहिए।

काव्य सौन्दर्य—ऊपर से देखने में प्रतीत होता है कि सामाजिक परिस्थितियो से प्रभावित होकर कवि ने यहा 'गाधीवाद' की अप्रासगिक रूप से अवतारणा की है किन्तु थोडा-सा ध्यान देने पर लक्षित होता है कि कुल मिलाकर पूरे प्रसग मे सीता की यह उक्ति अप्रासंगिक नही। अपने हृदय की बात सीता के मुख से कहलाने के लिए बडे कौशल से यथोचित प्रसग की अवतारणा की है। हा काव्य-सरोवर में—'ओ भोली कोल-किरात-भिल्ल बालाओ, आदि पद छोड दिया गया है, इसीलिए 'आओ हम कातें, बुने, गान की लय में' आदि पद अप्रासगिक प्रतीत होता है।

माखनलाल चतुर्वेदी

बन्दी सोते है, है घर घर श्वासो' का,
दिन के दुख का रोना है निश्वासो का,
अथवा स्वर है लोहे के दरवाजो का,
बूटों का, या सन्त्री की आवाजों का,
यों गिनने वाले करते हाहाकार।
सारी रातो है-एक, दो, तीन, चार-!
मेरे आँसू की भरी उभय जब प्याली,
बेसुरा मधुर क्यो गाने आयी आली ?

भावार्थ—हे कोयल, इस समय सब कैदी सो रहे है, यहा अन्य कोई भी ध्वनि सुनाई नही देती। सिवाय इसके कि या तो सोये हुए कैदियो के खर्राटे सुनाई दे रहे है। इन लम्बी-लम्बी श्वासो की घर-घर ध्वनि के रूप में दिन भर के दुःखो की आहे ही मानो व्यक्त हो रही है। इन खर्राटो के अतिरिक्त पहरेदार संतरी के द्वारा की गई कैद की कोठरी के लोहे के दरवाजो पर

खड़खड़ाहट की आवाज आती रहती है या उन पहरेदारों के भारी-भरकम बूटों की टाप सुनाई देती है, अथवा पहरेदार सारी रात भर 'जागते रहो जवान', 'होशियार' की आवाजें लगाते रहते हैं, उनकी ध्वनि सुनाई देती है, अथवा जब एक पहरेदार बदल कर दूसरा पहरेदार आता है तो उसे अपनी उपस्थिति की सूचना देने के लिए प्रत्येक कैदी को अपना नम्बर एक-दो-तीन आदि पुकारना पड़ता है, वह नम्बरों की ध्वनि सुनाई देती है। इस प्रकार सारी रात कभी बूटों की आवाज, कभी तालों की खड़खड़ाहट तो कभी गिनती की आवाजें आती रहती हैं। इन राजनैतिक बन्दियों की करुण अवस्था का ध्यान आते ही मेरी आंखों में जब आंसू भर आते हैं, ऐसे करुण समय में हे कोयल तूने अपना यह बेसुरा राग क्यों छेड़ा है ?

क्या ? देख न सकती जंजीरों का गहना ?
हथकड़ियां क्यों, यह ब्रिटिश राज का गहना ?
कोल्हू का चरकचूं ? जीवन की तान,
गिट्टी पर अंगुलियों ने लिक्खे गान।
हूं मोट पर खींचता लगा कर जूआ,
खाली करता हूं ब्रिटिश अकड़ का कूआ।
दिन में करुणा क्यों जगे, रुलाने वाली,
इसलिये रात में गजब ढा रही आली !

भावार्थ—हे कोयल, हम राजनैतिक बन्दियों के हाथों-पैरों में जो ये कठोर लोह-शृङ्खलाएँ पड़ी हैं, तुम उन शृङ्खलाओं से जकड़े हुए अपने हाथ-पैर देख कर उस कष्ट को सह नहीं सकती, इसीलिए हमारे साथ समवेदना-अपनी हार्दिक सहानुभूति—प्रकट करने के लिये ही मानो तुम इस प्रकार करुण ध्वनि में बोलने लगी हो। अरी भोली कोयल ! ये हथकड़ियां नहीं हैं, ये हथकड़ियां तो ब्रिटिश साम्राज्य ने हमें गहने पहनाये हैं। भाव यह है कि हम राजनैतिक कैदियों के हाथों में हथकड़ियां डालने से ब्रिटिश साम्राज्य की बड़ी भारी शोभा हो रही है। हमें रात दिन यहां कोल्हू चलाना पड़ता है, उस कोल्हू के चलते समय जो 'चरक चूं', की ध्वनि निकलती है, वही हमारे जीवन का संगीत बन गई है। इस जेल में हथकड़ियों और बेड़ियों के हमारे गिट्टी-टखनों और

कलाइयो पर जो निशान पड गए है वे मानो जीवन के गीत लिखे गए है। दिन भर मे यहाँ अपने कन्धे पर बैलो की तरह जूआ लगाकर कुँए का पानी नहीं, प्रत्युत उस कुंए के पानी के रूप मे ब्रिटिश साम्राज्य के दुरभिमान या अकड के कूए को खाली करता रहता हूँ (मूल पुस्तक में 'लगा पर जूआ' पाठ अशुद्ध छप गया है 'लगा कर जूआ' चाहिये) शायद तुम दिन मे इसलिये नही बोलती होगी कि मेरी करुण ध्वनि को सुनकर बन्दियो के हृदय मे यह करुण भावना क्यो जाग उठे, इसी विचार से शायद तुम रात की इस सूनी घडियो में बोलने लगी हो।

काव्य-सौन्दर्य—यहाँ हथकडियो मे ब्रिटिश राज्य के गहने के आरोप की व्यजना वडी तीव्र है। जेल मे राजनैतिक बन्दियो को भी कोल्हू चलाना, चरस खीचना आदि जो काम बैलो और भैसो आदि पशुओ के करने वाले है, करने पडते थे। इस प्रकार इस पद मे जेल के अत्यन्त करुण और कष्टमय जीवन का वडी ही मार्मिकता के साथ चित्र अकित हुआ। यहाँ अपह्नुति और उत्प्रेक्षा अलकार है।

तेरे 'माँगे हुए' न वैना, री, तू नहीं बन्दिनी मैना,
न तू स्वर्ण-पिजड़े की पाली, तुझे न दाख खिलाये आली!
तोता नहीं, नहीं तू तूती, तू स्वतन्त्र, बलि की गति कूती,
तब तू रण का ही प्रसाद है, तेरा स्वर बस शखनाद है।
(प्रभाकर, जून १९५६)

भावार्थ—ऊपर के पद्य में कोयल को कहा गया था कि तू विद्रोह के बीज बो रही है। अब उसे और भी स्पष्ट रूप में विद्रोह की प्रतीक बताता हुआ कवि कहता है कि हे कोयल ! तोता मैना आदि दूसरे पक्षियो की भाति तेरे शब्द दूसरो से उधार माँगे हुए नहीं है। न तू मैना के समान बन्दिनी—दूसरो के हाथो में कैदी ही है, तू तोते-मैना की भाति सोने के पिजरे में भी नही पलती। न तुझे कोई दाख, अगूर, अनार आदि मेवा ही खिलाता है, न तू तोता है, न तूती के समान परतन्त्र है, तू बलिदान के मार्ग को भली-भाति पहचानती है इसलिए तू तो युद्ध का ही प्रसाद है और इसलिए तेरी ध्वनि युद्ध को छेड़ देने वाली शंख की ध्वनि है।

काव्य-सौन्दर्य—यह पद अत्यन्त प्रभावशाली और भावपूर्ण है। इस पद के द्वारा व्यंजना शक्ति से ध्वनित होता है कि पुराने सब कवि रूपी कोकिल या इस समय के भी दूसरे कवि कोकिल दूसरे लोगों या विदेशियों के हाथों के इशारों पर नाचते और उनकी ही भावनाओं को अपनी वाणी के द्वारा अभिव्यक्ति प्रदान करते हैं। किन्तु स्वतन्त्रता के प्रेमी कवि-कोकिल तो बड़े-बड़े राजसिक भोगों के प्रलोभनों को लात मार कर भी अपनी स्वतन्त्रता को बनाये रखते हैं और जनता में विदेशी साम्राज्य के विरुद्ध विद्रोह का शंख फूंकते रहते हैं। अन्य कवि तोता-मैना के समान हैं, जो दूसरे लोगों के सोने के पिंजरों में बन्दी होकर दाख-मेवा खाते और उनकी पढ़ाई हुई बातें रटते रहते हैं, पर कोयल तो किसी के पिंजरे में बन्द नहीं होती। वह तो स्वतन्त्र रहकर अपने ही हृदय की आवाज सबको सुनाती है। इसके अतिरिक्त आज तक के कवियों ने कोयल को शृङ्गारिक प्रवृत्तियों या काम-वासनाओं के प्रतीक रूप में ही अंकित किया था, किन्तु चतुर्वेदी जी ने उसे युद्ध के प्रतीक के रूप में देखा है। यह कवि की सर्वथा नई उद्भावना है। यहाँ उत्प्रेक्षा अपह्नुति अलंकारों का सङ्कर है। रूपकातिशयोक्ति भी हो सकती है। सभी शब्द प्रायः लाक्षणिक या व्यंजक हैं।

फिर ! कुहू अरे बन्द न होगा गाना ?
इस अन्धकार में मधुराई दफनाना ?
नभ सीख चुका है कमजोरों का खाना।
क्यों बना रही अपने को उसका दाना ?
फिर भी करुणा-गाहक बन्दी सोते हैं।
स्वप्नों में स्मृतियों की श्वासें धोते हैं।
इन लौह-सीखचों की कठोर पाशों में।
क्या भर देगी ? बोलो, निद्रित लाशों में।

(प्रभाकर, जून १९५५)

भावार्थ—कवि कहता है कि हे कोयल, तुमने फिर 'कुहू', 'कुहू' करके तान छेड़ दी। तुम इस अन्धेरे में अपनी स्वर-माधुरी को व्यर्थ में मिट्टी में मिला रही हो, यह आकाश अर्थात् शक्तिशाली लोग तो दुर्बल व्यक्तियों को

खाना सीख गया है, फिर तुम भी अपने-आप को उसका शिकार क्यो बना रही हो। तुम अपने मधुर गीतो को अन्धकार मे व्यर्थ में क्यो गा रही हो। तुम्हारे करुण-भावो को ग्रहण करने वाले ये कैदी तो सोये पडे है और नीद मे पडे हुए पुरानी मधुर स्मृतियो को श्वासो के द्वारा धो रहे है, अर्थात् अपनी मीठी याद को नीद मे भुला रहे है। इस लोह की सीखचो के कठोर बन्धनो में पड़े हुए—सोये— लाश के समान संज्ञाहीन कैदियो के हृदयो पर तुम्हारे गीतो का कोई प्रभाव नही पड सकता। इसलिए तुम व्यर्थ ही मे क्यो 'कुहुक', 'कुहुक' की तान छेड रही हो ?

वह कली के गर्भ से, फल-रूप मे, अरमान आया।
देख लो मीठा इरादा, किस तरह, सिर तान आया।
डालियों ने भूमि रुख लटका दिये फल, देख आली।
मस्तकों को दे रही, सकेत कैसे-वृक्ष डाली।
फल दिये, या सिर दिये, तरु की कहानी।
गूथ कर युग में, बताती चल जवानी।

(प्रभाकर, जून १९५६)

भावार्थ—कली पुष्प रूप में विकसित होती है, उस फूल के बीच में एक कठोर सा अकुर रहता है। फूल की पखुडियो के झड जाने पर वह कठोर-सा अकुर ही धीरे-धीरे फल बन जाता है। प्रकृति के इसी नियम के आधार पर कवि कहता है कि कोमल कलिके, बीच में से जैसे कठोर फल का अंकुर अपना सिर ताने हुए प्रकट होना है, वैसे ही युवक के कोमल हृदय में दृढ सकल्प या निश्चय की भावना का विकास होता है. उस फल के प्रकट होते ही वृक्षो की शाखाए उसके आगे अपना सिर झुका देती है। वैसे ही दृढ निश्चयी मनुष्य के आगे सब लोग अपना सिर झुका देते है। यह वृक्षो की शाखाएं अपने फलो को धरती की ओर लटकाती हुई युवको को मातृ-भूमि पर अपने सिर चढ़ा देने के लिए प्रेरित और उत्साहित कर रही है। इन वृक्षो ने मातृ-भूमि के लिए अपने फल दिए है या फलो के रूप में अपने सिर ही समर्पित कर दिए है। इस प्रकार वृक्षो की कथा को अपने दोनो हाथो से गूंथे हुए हे जवानी, बताती चल अर्थात् वृक्षो से भी मनुष्य को बलिदान की भावनाएं सीखनी

चाहिए। कली को फल के रूप में विकसित होते देख युवक को दृढनिश्चयी बनना चाहिए।

विश्व है असि का—नहीं सकल्प का है,
हर प्रलय का कोण कायाकल्प का है,
फूल गिरते शूल सिर ऊंचा लिये हैं,
रसो के अभिमान को नीरस किये हैं।
खून हो जाये न तेरा देख, पानी,
मरण का त्योहार, जीवन की जवानी।

भावार्थ—यह ससार केवल कल्पना करने वाले या मन के मनसूबे बाँध लेने वाले का नही। यह तो तलवार अर्थात अपने बाहुबल का है, अर्थात् जिसमें शक्ति है, ससार उसी के सामने झुकता है, केवल बातें बनाने से काम नही चल सकता। साथ मे यह भी स्मरण रखना चाहिए कि प्रत्येक प्रलय के कोण में कायाकल्प होता है (मूल पुस्तक में 'दूर' पाठ अशुद्ध छपा है, 'हर' चाहिए)।

भाव यह है कि प्रत्येक बडे विनाश में कोई महान् निर्माण छिपा रहता है, इसलिए विनाश से कभी भयभीत न होना चाहिए कि हम क्रान्ति कर देंगे तो बडा भारी विनाश हो जायगा। सहार मे दूसरो के आगे झुक जाने वाले कोमल और नम्र पुरुषो को कोई नही पूछता, बलवान् ही की सर्वत्र पूछ होती है, जैसे कि हम प्रत्यक्ष देखते भी है कि बेचारे कोमल फूल तो मुरझा कर झड जाते है पर कॉटे रस के अभिमान को नीरस बना कर—फूलो की सरसता सुगन्ध और सुकोमलता को मिट्टी में मिलाकर अपना सिर ऊंचे किये हुए खडे रहते है। इसलिए तू भी ध्यान रख कि तेरा भी खून कही पानी न हो जाय क्योंकि अब मृत्यु का त्योहार—देश के लिए मर-मिटने का समय आ गया है। इस समय कहीं तू कायरता न दिखा देना।

जयशंकर प्रसाद

इस नील विषाद गगन में— सुख चपला सा दुख घन में,
चिर विरह नवीन मिलन में, इस मरुमरीचिका वन में—
उलझा है चचल मन-कुरग।

भावार्थ—अशोक सोचता है—इस संसार में जहाँ देखो, वहीं दुख ही दुख है, सुख तो कहीं-कहीं दिखाई देता है। इस विषाद—शोक और दुख के नीले आकाश में दुखो के बादल मे सुख तो बिजली के समान क्षणिक है, नवीन मिलन कुछ देर रहता है, किन्तु विरह अनन्त काल तक बना रहता है, क्षणिक मिलन के पश्चात् विरह की भावना स्थायी रूप से जीवन में बनी रहती है। इस संसार में सुख तो वैसे ही मिथ्या भ्रम मात्र है, जैसे मृग-तृष्णा मात्र हो। इस मृग-तृष्णा से भरे हुए सुख के रेगिस्तान में मनुष्य का मन रूपी हरिण इधर-उधर भटकता रहता है, पर उसे वास्तविक सुख कहीं भी उपलब्ध नही होता।

काव्य-सौन्दर्य—यहाँ 'सुख चपला-सा दुख-घन मे' की व्यञ्जना बडी मनोहर है। जिस प्रकार बादलो में बिजली क्षणिक होती हुई भी बडी सुन्दर प्रतीत होती है, वैसे ही सुख का महत्व और सौन्दर्य तो दुख में ही देखा जा सकता है, जब तक मनुष्य दुख अनुभव नही कर लेता, तब तक उसे सुख का वास्तविक मूल्य और महत्व समझ मे आ ही नही सकता। यहाँ रूपक अलकार स्पष्ट ही है।

संसृति के विक्षत पग रे।
यह चलती है डगमग रे।
अनुलेप सदृश तू लग रे।
मृदु दल बिखेर इस मग रे।
कर चुके मधुर मधु-पान-भृ ग।

भावार्थ—इसलिए अशोक कहता है—क्योकि ससार के पाँव दुखो और कष्टो से घायल हो रहे है, इसलिए यह लडखडाता हुआ चलता है। हे मानव! तू इस ससार के घायल पाँवो में मरहम के समान लग जा और इसे सुख तथा आराम पहुचा। इसके मार्ग में तू कष्टो के काँटे मत बिखेर, प्रत्युत सुख के सुमनो की वर्षा कर। अब तक भ्रमर तेरे जीवन के मधुर रस का पान कर चुके है, तेरी जीवन लीला समाप्त-प्राय है।

भाव यह है कि इस दुखी ससार की अधिक से अधिक सेवा कर, इसके दुख और कष्टो को मिटाने का प्रयत्न करना चाहिए।

काव्य-सौन्दर्य—यहाँ उपमा और रूपकातिशयोक्ति अलकार है।

भुनती वसुधा तपते नग,
दुखिया है सारा अग-जग,
कण्टक मिलते हैं प्रति पग,
जलती सिकता का यह मग,
बह जा बन करुणा की तरंग।
जलता है यह जीवन पतंग।

भावार्थ—यह पृथ्वी भी कष्टों से जल-भुन रही है, पर्वत भी सन्ताप से तप रहे हैं, इस प्रकार यह सारा जड़-चेतन संसार दुखिया है, यहां पग-पग पर कष्टों के कांटे ही कांटे मिलते हैं, इस मार्ग की रेत जल रही है, कहीं भी शीतलता का नाम नहीं। यह जीवन रूपी पतङ्ग—परवाना—तृष्णा की ज्वाला में जल रहा है, इसलिए हे मानव ! तू करुणा की शीतल धारा बनकर इस संसार में बह जा और लोगों के ताप को शान्त कर दे।

काव्य-सौन्दर्य—यहां रूपक और रूपकातिशयोक्ति अलङ्कार है।

त्रस्त पथिक, देखो करुणा विश्वेश की
खड़ी दिलाती याद तुम्हें हृदयेश की
शीतातप की भीति सता सकती नहीं
दुख तो उसका पता न पा सकता कहीं
श्रान्त क्लान्त पथिकों को जीवन-मूल है
इसका ध्यान मिटा देता सब भूल है
कुसुमित मधुमय जहां सुखद अलि पुंज है
शान्ति हेतु वह देखो करुणा कुंज है।

भावार्थ—हे संसार मार्ग पर भटकने वाले मानव रूपी भयभीत यात्री, इस भगवान् पावन जगदीश की करुणा तेरे सामने खड़ी तुझे याद दिला रही है प्रभु की शरण में चला जा लोगों पर करुणा कर, ताकि तू भी उसकी करुणा और कृपा का पात्र बन जाय। प्रभु की करुणा के शीतल आनन्ददायक साम्राज्य में पहुंच जाने पर सर्दी-गर्मी, मान-अपमान, राग-द्वेष आदि द्वन्द्वों के भय तुझे सता भी नहीं सकते। वहां पर राग-द्वेष-मूलक दुःख-क्लेश और कष्ट तो तेरा पता भी न लगा सकेंगे।

भाव यह है कि हे मानव ! तू प्रभु की शरण मे चला जा, प्रभु के कृपा-कटाक्ष पडते ही तेरे सब सङ्कट दूर हो जायेंगे । किन्तु इसके लिए तुझे दूसरो पर भी करुणाशील होना होगा । ज्यो ही तेरे हृदय में विश्व के प्रति करुण भावना आयी कि तेरा जीवन सब प्रकार से सुखी, सन्तुष्ट और निर्भय हो जायेगा ।

भावार्थ—अब कवि उस करुणा को शीतल सुखद कुञ्ज के रूप में चित्रित करता हुआ कहता है कि वह करुणा, कुञ्ज-लता मण्डप इधर उधर ससार पथ में भटके हुए और थके हुए यात्रियो के लिए जीवन प्रदान करने वाली सजीवनी औषधि है ।

भाव यह है कि जब मनुष्य को उस परमपिता प्रभु की कृपा और करुणा प्राप्त हो जाती है तो उसे जन्म मरण के चक्र मे बार-बार भटकते रहने का अपना यह अनन्त श्रम सफल प्रतीत होता है । प्रभु की वह कृपा ही मानव जीवन के लिए परम आधार है, इसलिए उस प्रभु-कृपा का ध्यान न रखना मानव जीवन की सबसे बडी भूल है । अत. मनुष्य को उस प्रभु कृपा को प्राप्त करने का प्रयत्न करते रहना चाहिए ।

इस प्रभु करुणा के कुञ्ज मे सदा पुष्पो से लदी हुई सुन्दर रसपूर्ण सुख-दायक वसन्त बनी रहती है । उन पुष्पो पर रसपान करते हुए कानो में अपनी सुन्दर गुञ्जार से अमृत रस बरसाने वाले भ्रमर गुञ्जार करते रहते हैं । ऐसी यह उस अखिलेश प्रभु की करुणा प्राणिमात्र को शान्ति प्रदान करने वाली है । इसलिए यदि तुम चाहते हो कि तुम्हारा जीवन सन्ताप रहित होकर शीतल, शात और सुखी हो जाय, तो तुम्हे उस प्रभु की करुणा की शरण लेनी चाहिए । दूसरो पर करुणा और कृपा करोगे तो तुम्हे भी उसकी करुणा प्राप्त होगी ।

किरण ! तुम क्यो बिखरी हो आज,
रंगी हो तुम किसके अनुराग,
स्वर्ण सरसिज किंजल्क समान,
उड़ाती हो परमाणु पराग ।

(प्रभाकर, अगस्त १९५२)

भावार्थ—कवि किरण की सुन्दरी के रूप में कल्पना करता हुआ कहता है कि हे किरण रूपी अप्सरा, तुम आज इस धरती पर इस प्रकार क्यों लेटी हुई हो। तुम किस अज्ञात प्रियतम के प्रेम के रंग में रंगी हुई हो और किस प्रियतम से होली खेलने के लिए सुनहरी कमल की केसर के समान इस पीत वर्ण की पराग के परमाणुओं को उड़ा रही हो।

विशेष—किसी छिद्र में से घर में जब सूर्य-किरण आती दिखाई देती है, तो उसमें छोटे-छोटे पीले-पीले असख्य धूलि-कण दिखाई देते हैं। उन सूक्ष्म पीत धूलि-कणो को ही परमाणु पराग कहते हैं।

काव्य-सौन्दर्य—किरण वास्तव में किसी के प्रेम के रंग में नहीं रंगी हुई है, फिर भी कहा गया है कि वह मानो किसी के अनुराग में रंगी हुई है, इसलिए यहां गम्या हेतूत्प्रेक्षा अलङ्कार है। 'स्वर्ण सरसिज किंजल्क समान' में उपमा भी है।

धरा पर झुकी प्रार्थना सदृश,
मधुर मुरली-सी फिर भी मौन,
किसी अज्ञात विश्व की विकल—
वेदना दूती-सी तुम कौन ?

भावार्थ—कवि किरण को सम्बोधित करता हुआ कहता है कि हे किरण! तुम प्रार्थना के समान पृथ्वी पर झुकी हुई मुरली की ध्वनि के समान मधुर हो, फिर भी मौन हो, किसी अज्ञात ससार की व्याकुल वेदना का सन्देश देने वाली सन्देश-वाहिका के समान तुम कौन हो ?

विशेष—यहा विशेषण-विपर्यय अथवा लाक्षणिक प्रयोगों का बाहुल्य है। पृथ्वी पर प्रार्थना नहीं झुकती, प्रार्थना करने वाला झुकता है, मुरली मधुर नहीं होती, मुरली की ध्वनि मधुर होती है, किन्तु अत्यधिक नम्रता या झुकाव और अत्यधिक मधुरता को व्यक्त करने के लिए किरण को प्रार्थना के समान झुकी हुई और मुरली के समान मधुर कहा गया है। प्रार्थना करते समय मनुष्य का हृदय अत्यधिक नम्र हो जाता है, मुरली की ध्वनि में अत्यधिक आकर्षण और मिठास है, किरण भी प्रार्थना के समान सर्वात्मना पृथ्वी पर झुकी हुई है और मुरली की ध्वनि के समान ही उसमें बड़ा भारी आकर्षण

है। साथ ही यह किरण इस भूलोक को किसी अज्ञात दिव्य लोक का सन्देश भी देती रहती है इसलिए कहा गया है कि वह किसी अज्ञात लोक के विरह-वेदना का सन्देश पहुँचाने वाली मानो वेदना-दूती है, फिर भी उसका कुछ रहस्य समझ मे नही आता कि वह वस्तुत है क्या ?

काव्य-सौन्दर्य—यहा पर एक ही उपमेय किरण के अनेक उपमान प्रार्थना और मुरली होने से भिन्नधर्मा मालोपमा अलकार है। 'वेदना दूती-सी' में उपमा नही प्रत्युत उत्प्रेक्षा अलकार समझना चाहिए। विरोध अलकार भी है।

गोपालशरण सिंह

अलौकिक शोभा का आगार,
सरस-सुन्दरता का सार।
मनोरम मुख पर मजु अपार,
बह रही रूप सुधा की धार।

(प्रभाकर, जून १६५६)

भावार्थ—कवि कहता है कि यह मुस्कान मानो अलौकिक दिव्य शोभा का भडार है, सरसता और सुन्दरता का तो सार ही है। मुस्कराहट के रूप मे मानो विश्व की सुन्दरता और मधुरता एकत्रित हो गई है अथवा यह मुस्कराहट रूपी अत्यन्त सुन्दर रूप रूपी अमृत की अपार धारा इस मनोहर मुख पर बह रही है।

भाव यह है कि मुस्कराहट सारे सौन्दर्य का सार ही है।

काव्य-सौन्दर्य—यहा भी उल्लेख, रूपक और सन्देह अलकार है।

क्यो न ले दृग-चकोर पहचान ?
कहेगा कौन उन्हें नादान ?
कला मुख कलानाथ की मान,
हो रहे उस पर मुग्ध महान।

भावार्थ—कवि मुस्कराहट के सम्बन्ध में एक और बडी सुन्दर कल्पना करता हुआ कहता है कि यह मुस्कराहट मानो मुख-रूपी चन्द्रमा की एक कला या किरण है, अत इस मुख-चन्द्र की कला को भला नेत्र रूपी चकोर क्यो न पहचान लेंगे, भला ससार में इन नेत्र-चकोरो को इतना बेसमझ कौन

कह सकता है कि अपने प्रिय मुख-चन्द्र की कला-स्वरूप इन मुस्कराहट को न पाए। ये इसे भली-भाति पहचानते है, इसीलिए उस पर अत्यन्त मोहित हो रहे हैं। चकोर चाँद पर मोहित होना ही है।

हुआ प्रकट उर में प्रेमानल,
जब जीवन सघर्ष हुआ,
मिटी मोह-माया प्राणों की,
जब मन का उत्कर्ष हुआ।

भावार्थ—(कवि की उक्ति है कि) जब जीवन में सङ्घर्ष का अवसर आया (सांसारिक उलझनो से लडते हुए जीवन व्यतीत करने की बारी आई) तभी हृदय में प्रेम की आग भी भडक उठी (चाहिए तो यह था कि सघर्षों के बीच प्रेम की भावना ही नही उठती किन्तु प्रकृति का नियम ही कुछ और है, विनाश की घडी में ही सृष्टि की इच्छा जगती)। इन प्राणो की ममता और आकर्षण का अन्त तो तब हुआ जब मन अपनी स्थिति को छोड़कर ऊपर उठा (ससार की बातो को भुलाकर परमात्मा के ध्यान में लीन हो सका)।

काव्य-सौन्दर्य—कवि ने उस स्वाभाविकता की ओर लोगो का ध्यान आकृष्ट करने का प्रयास किया है, जिसका परिचय अनुभव के बाद ही होता है। साधारणतया लोगो की धारणा इसके विपरीत ही होती है। एक बार यह बात लोगो को आश्चर्यप्रद ही लगेगी कि विरक्ति अपनाने से हृदय में और भी आकर्षण जोर पकड़ता है।

५. बालकृष्ण शर्मा 'नवीन'

बरसे आग, जलद जल जाए, भस्मसात् भूधर हो जाए।
पाप-पुण्य सद्सद् भावों की, धूल उड़ उठे दाए-बाए॥

भावार्थ—चारो ओर से आग दहक उठे, जल बरसाने वाले बादल स्वय जल जायें, ये बडे-बडे पर्वत जल कर राख ही जायें, पाप, पुण्य तथा भले और बुरे विचारो की राख चारों ओर उड़ने लगे। भाव यह है कि उचित और अनुचित आदि की जो सामाजिक रूढ़ियाँ है, उन रूढि-बन्धनो के कारण समाज का पतन हो रहा है, इसलिए भले-बुरे की जो कल्पित भावनाएं है, उन कल्पित नियमों—खोखले नियमो का सर्वनाश हो जाये। कहीं कोई सामाजिक रूढ़ि या प्रतिबन्ध ससार में न रहे।

नभ का वक्षस्थल फट जाय, तारे टूक-टूक हो जाए,
कवि, कुछ ऐसी तान सुनाओ, जिससे उथल-पुथल मच जाए।

भावार्थ—इस आकाश की छाती फट जाये और आकाश में जगमगाने वाले तारो के टुकड़े-टुकडे हो जाये। हे कवि, कुछ ऐसी तान सुनाओ कि सारी सृष्टि में प्रलय हो जाये और सर्वनाश का दृश्य उपस्थित हो जाये।

सूर्यकान्त त्रिपाठी निराला

तुम तुग-हिमालय शृंग, और मै चचल-गति सुर-सरिता।
तुम विमल हृदय-उच्छ्वास, और मे कान्त-कामिनी कविता॥

नोट—भावार्थ के लिए माधुरी को पढ़िए।

तुम प्रेम और मे शान्ति, तुम सुरा-पान-घन अन्धकार।
मैं हूँ मतवाली भ्रान्ति।

नोट—व्याख्या के लिए माधुरी को पढिए।

तुम रण ताण्डव उन्माद, नृत्य मै मुखर मधुर नूपुर-ध्वनि।
तुम नाद-वेद ओकार सार, मै कवि-शृगार शिरोमणि।
तुम यश हो, मै हू प्राप्ति। तुम कुन्द-इन्दु अरविन्द शुभ्र,
तो मै हू निर्मल व्याप्ति।

(प्रभाकर, जून १९५४)

नोट—व्याख्या के लिए माधुरी को पढिए।

उदयशंकर भट्ट

लहरों की मार्गें सवार कर ईंगुर देने क्षितिज चला है।
कलियो के सुहाग पर अर्पित करता शशि का हृदय गला है॥

(प्रभाकर, नवम्बर १९५५)

नोट—व्याख्या के लिए माधुरी को पढिए।

रजनी के होठों से मेरी वीणा का स्वर बह निकला है।
डोरी-हीन इन्द्र-धनुष से विजय निमत्रण मुझे मिला है॥

नोट—व्याख्या के लिए माधुरी को पढिए।

सुमित्रानन्दन पन्त

नीड बनाता डाली पर, फिर आंगन में कलरव भर,
उसे प्रीत के गीत सिखाने दग्ध कर दिया तुमने अन्तर।

नोट—व्याख्या के लिए माधुरी को पढिए।

उड़ता होता क्या न गगन में ! चुगता होता दाने भूधर पर ,
अपना उसे बनाने तुमने, लिए जीव के पख ही कुतर ।

भावार्थ—हे कवि रूपी पक्षी, तू भले ही आकाश में उडता रहता है, पर तू दाने तो पृथ्वी पर ही चुगता है। भाव यह है कि तू भले ही नानाविध कल्पनाओ की लम्बी-चौडी उडानें भरा कर, किन्तु उस कविता के लिए आधार-भूत ठोस सामग्री राष्ट्र और समाज की भावनाओ से ही प्राप्त करनी चाहिए किन्तु तूने तो उसका अपनी इच्छानुसार निर्माण करते-करते उसके पख ही काट डाले ।

(यहा अग्रेजी कवि शैले की प्रसिद्ध कविता स्काई लार्क (Sky Lark) से भाव लिया गया है ।)

तेरा कैसा गान,
विहगम तेरा कैसा गान ?
न गुरु से सीखा वेद-पुराण ,
न षड्दर्शन न नीति-विज्ञान ;
तुझे कुछ भाषा का भी ज्ञान ,
काव्य, रस, छन्दो की पहचान ?
न पिक-प्रतिभा का कर अभिमान ,
मनन कर, मनन, शकुनि-नादान !

भावार्थ—पुरानी परम्परा के कवि या आलोचक छायावादी कवि पन्त जी से पूछते हैं कि हे छायावादी कवि रूपी गीत-खग, यह तेरा काव्य रूपी गीत भी कैसा अनोखा और नया-सा है। तूने न तो गुरुजनो से विधिपूर्वक वेद-पुराणो का ही अध्ययन किया, न गुरु जी के चरणो में बैठकर षड्-दर्शन ही पढे, न नीति-शास्त्रो का ही अवलोकन किया। तुझे तो भाषा का भी ज्ञान नही है, क्योकि तू भाषा का अपनी इच्छानुसार जैसा चाहे प्रयोग करता है। इसलिये साधारण पाठक को तो तेरी भाषा भी समझ में नही आती कि तू यह लिखना क्या है। भला काव्यो के रसो या छदो को तो तुझे पहचान होगी ही क्या ?

भाव यह है कि तेरे गीतो में काव्य के रसो का भी कोई स्थान नहीं और

न तूने पुराने प्रचलित छन्दो को ही अपनाया है। केवल तू अपनी ही मौलिक सूझ-बूझ और वुद्धि के अनुसार काव्य में नित्य नये प्रयोग करता जा रहा है। किन्तु तुझे अपनी वुद्धि पर अभिमान नही करना चाहिए अथवा तेरी कविता भाव-प्रधान न होकर कल्पना-प्रधान है, इस कल्पनात्मक प्रतिभा पर तुझे अभिमान नहीं करना चाहिये। इसलिये हे अनजान भोले गायक पछी, कुछ चिन्तन कर, कुछ अध्ययन और अभ्यास कर और हमारी बात को जरा सोच कि हम जो कुछ कहते हैं, वह कहां तक ठीक है और तेरे लिये ग्राह्य है।

(मूल पुस्तक मे 'सीख' के स्थान पर 'सीखे' चाहिये।)।

हसते हैं विद्वान्
गीत-खग, तुझ पर सव विद्वान्!
दूर, छाया-तरु-वन में वास;
न जग के हास-अश्रु ही पास,
अरे, दुस्तर जग का आकाश,
गढ़ रे छाया-ग्रथित-प्रकाश;
छोड़ पखों की शून्य-उडान
धन्य-खग! विजन नीड़ के गान।

भावार्थ—हे गीत गाने वाले पछी (छायावादी कवि), तुझ पर सब विद्वान् लोग हसते है तूने अपना काव्य-क्षेत्र इस ससार के समाज को छोड़कर सघन छाया वाले वृक्षो के वन को वना लिया है, अर्थात् तू अपनी कविता में समाज की भावनाओ को वाणी न देकर केवल प्रकृति के गीत गाता फिरता है और इस प्रकार साहित्य मे छायावाद नामक नई शैली का प्रचार कर रहा है, तेरी कविता में समाज के हास और रुदन भी नही है (मूल पुस्तक मे 'नू जग के' पाठ अशुद्ध छपा है, 'न जग के' चाहियें)। भाव यह है कि तू समाज के सुख-दुखो की कहानी भी नही कहता, तेरा यह छाया और प्रकाश से युक्त कुछ स्पष्ट और अस्पष्ट-सा काव्य वड़ा रहस्यपूर्ण और दुर्बोध है, कुछ समझ मे नही आता कि तू क्या लिखता है। तेरे लिये जगत्-समाज के आकाश को पार कर जाना वडा कठिन है, तू समाज को छोडकर उससे वाहर कभी विचरण नही कर सकता, अथवा तू समाज की भावनाओ को उसके

हृदय के स्पन्दन को देख नही सकता। इसलिये अब तू शून्य में अर्थात् केवल कल्पना के लोक में अपनी प्रतिभा के पखो की उडान भरना छोड़ दे और हे जगल के पक्षी—प्रकृति के प्रेमी कवि, तू अपने निर्जन घोसले के गान—प्रकृति सम्बन्धी अपने हार्दिक उद्गारो को ही यत्र-तत्र-सर्वत्र मत गाता फिर।

काव्य सौन्दर्य—यहाँ 'गीत-खग' प्रतीक प्रकृति-प्रेमी छायावादी कवि के लिये प्रयुक्त हुआ है। 'छाया-तरु-वन' प्रतीक छायावाद के लिये है। अलकारवादियो की दृष्टि से देखने पर ऐसी कविताओ में अप्रस्तुतप्रशंसा अलकार तथा रूपकातिशयोक्ति अलकार हो सकते है।

इस प्रकार कवि ने यहाँ छायावादी कवियो पर या स्वय अपने ऊपर समालोचक वर्ग के द्वारा किये जा रहे आक्षेपों को बडे ही सुन्दर ढग से कवितावद्ध कर अपने पाठको के सामने उपस्थित कर दिया है।

दुख में मन करता क्यों चिन्तन, सुख में जीवन दर्शन!

भावार्थ—मनुष्य का मन जिस प्रकार दु:ख के समय में जीवन की अनेक उलझी हुई पहेलियो को सुलझाने का प्रयत्न करता है, वैसे ही सुख के समय में भी जीवन को समझने-समझाने के लिये वह चिंताशील रहता है। भाव यह है कि दु ख हो या सुख, मनुष्य दोनो अवस्थाओ में जीवन के सम्बन्ध में चिन्तन करता ही रहता है (उसी चिन्तन के इस कविता में भी कुछ दर्शन होते है)।

आज प्रौढ़ जीवन सध्यातप, सागर की लहरों में छप छप,
यौवन स्मृतियाँ उठतीं कप-कप, गर्जन करते घुमड़ घुमड़ घन,
त्रस्त क्षितिज पर, विद्युत द्युति से, चकित दृष्टि जाती है झप झप।
जो प्रकाश का प्रागण था मन वह छाया का आंगन।

(प्रभाकर, जून १९५५)

भावार्थ—कवि कहता है कि आज प्रौढ जीवन रूपी सध्या के सुनहरे प्रकाश से युक्त जीवन-सागर की सुन्दर लहरो मे यौवन की मधुर स्मृतियाँ रह-रहकर कापने लगती है और यह देख करके अब वह यौवन का आनन्द वैभव-विनाश समाप्तप्राय होता जा रहा है, हृदय-आकाश में अनेक प्रकार के परस्पर सघर्षशील भावो के बादल उमड़ते-घुमडते हुए गरजते रहते है,

अथवा प्राचीन युग का आनन्द, वैभव नष्ट होता जा रहा है और निराशा की रात्रि आने वाली है। सुदूर क्षितिज पर अर्थात् दूर भविष्य मे कौंधती हुई बिजली की चमक से चकित हुई दृष्टि और आखें बार-बार मुंद जाती है। बात यह है कि अब तो केवल दूर कही क्षणिक प्रकाश की रेखाओ से ही दृष्टि चकाचौंध हो जाती है, दिन का जो निरन्तर स्वाभाविक सम-प्रकाश था, वह अब नही रह गया है। अब तो हृदयाकाश या विश्व-जीवन के आकाश को उमड़ते घुमड़ते हुए निराशा के बादलो ने अन्धकारावृत कर डाला है।

भाव यह है कि पुराने समय में जो जीवन में स्थिर शांति-सुख का प्रकाश था, अब वह लुप्त होता जा रहा है। उस स्थायी सुखी, सतुष्ट जीवन के स्थान पर सदूर साम्यवादी देशो मे बिजली के तीव्र प्रकाश के समान आँखो को चुंधिया देने वाले साम्यवाद, समाजवाद आदि भौतिक वादो का तीव्र किन्तु क्षणिक प्रकाश दिखाई दे रहा है, अथवा ऐसे निराशा के समय में भी निकट भविष्य में आशा का प्रकाश दे रहा है।

मानव जीवन नहीं उदधि सा केवल कर्म फेन कल्लोलित,
लहरो की गति क्षण लहरो पर उठ गिर होती अवसित !

भावार्थ—कवि कहता है कि यह मनुष्य-जीवन कर्म रूपी झाग से लहराते हुए समुद्र के समान नही है। इसके कर्मों की यह लहरे तो क्षणिक है। वे एक दूसरे पर गिरकर एक क्षण भर में समाप्त हो जाती है। भाव यह है कि समाजवादी कहते है कि सब लोग बराबर काम करे। वे जीवन मे केवल शारीरिक श्रम या काम को ही महत्त्व देते है, उनके यहाँ चिन्तन, भावना, उपासना या ज्ञान का कोई मूल्य नही। किन्तु उन्हे स्मरण रखना चाहिए कि ये काम या कर्म तो समुद्र के ऊपर आए हुए झाग से युक्त तरगो के समान है जो क्षणिक है।

मानव जीवन नहीं अकूल अतलता ही मे सीमित,
वहा बूंद का मान उदधि से कहीं अधिक है निश्चित !

भावार्थ—समाजवाद के सिद्धान्तों की दो बडी त्रुटियो की ओर सकेत करने के पश्चात् कवि उसकी तीसरी त्रुटि का उल्लेख करता हुआ कहता है कि यह मनुष्य जीवन समुद्र के समान अपनी अनन्तता और अगाधता मे ही सीमित

नही है। यहाँ समुद्र से भी बूंद की महत्ता कही अधिक है। भाव यह है कि यह समाज तो समुद्र के समान है, जिसका कही आर-पार या छोर नही। लाखो, करोडो मानव समाज मे समाये हुए है, तो क्या हम सदा इस समाज रूपी समुद्र के बारे में ही सोचा करे। उसमें छोटी-सी बूंद के समान व्यक्ति को कुछ भी महत्व न दें, क्योंकि वास्तविक वस्तुस्थिति तो ऐसी है नही, यहाँ तो व्यक्ति की अपनी स्वतंत्र विचारधारा और चिंतन-पद्धति का मूल्य और महत्व पूरे समाज की सामूहिक विचार धारा व उन्नति से कही बढकर है। यदि व्यक्ति सुखी और समृद्ध और स्वतंत्र न हुआ तो समाज की समृद्धि और स्वतंत्रता का क्या लाभ ? इसलिए जहाँ जिस समाजवाद में व्यक्ति की किसी प्रकार की स्वतन्त्रता का अपहरण किया जाता हो, वह समाजवाद मानव के लिए कैसे हितावह हो सकता है। इसी बात को अगले पदो में और भी अधिक स्पष्टता के साथ व्यक्त किया गया है।

भगवतीचरण वर्मा

लपटें हो विनाश की जिनमें, जलता हो ममत्व का ज्ञान,
अभिशापों के अङ्गारो में झुलस रहा हो विभव विधान,
अरे क्रान्ति की चिनगारी से तड़प उठे वासना महान,
उच्छ्वासो के धूम्र पुंज से ढक जावे जग का अभिमान,
आज प्रलय की वह्नि जल उठे, जिसमें शोला बने विराग,
जल उठ ! जल उठ ! अरी धधक उठ ! महानाश सी मेरी आग !

(प्रभाकर, जनवरी १९५३)

भावार्थ—इस क्रांति की भयंकर विनाशक लपटो म ससार भर के ममता-मोह का ज्ञान जलकर भस्म हो जाए। यह विश्व का धन, वैभव और ऐश्वर्य, पीडित मानव के दुख, शोक और सतापों के अंगारो में जलकर राख हो जाए। इन बडे बडे धन-कुबेरो की ये विलास लीलाए उस क्रांति की शिखाओ में झुलस कर भस्मसात् हो जाए। पीडित, दलित और शोषित मानवो की आहो के धुएं के समूहो मे ससार के इन बडे-बडे धनी-मानी पूंजीपतियो के अभिमान ढक जाए। आज प्रलय ढाह देने वाली विश्व का सर्वनाश करने के लिए धधकती हुई प्रलय की ज्वालाएं जल उठे, जिनमें ससार की सम्पूर्ण उपेक्षा

की भावन ए चिनगारियो की तरह जलकर इधर-उधर उड जाए ।

भाव यह है कि ससार में माया-मोह और ममता का बोल-बाला है । म हूँ, मेरा है—इस भावना ने मानव के त्याग की भावना को दबा रखा है इसलिए कवि कहता है कि ससार की ममत्व की भावनाए नष्ट हो जाए मसार के पूँजीपति न जाने कितने-कितने भोग-विलास कर रहे है । इनके ये सब भोग-विलास शोषित की आहो में जलकर भस्म हो जाए ।

इस प्रकार कवि ने इस कविता में एक ओर तो क्रातिकारियो के परि धानो की प्रशंसा की है और उन्हे क्राति के लिए ललकारा है, दूसरी ओर पूंजीपतियो की भर्त्सना की है और बताया है कि जब क्राति की लपटें धधक उठेंगी तो उनके ये सब भोग-विलास उस क्राति की आग मे जल कर राख हो जाएंगे । साथ ही क्रातिकारी की योग्यता का निर्देश भी दिया गया है कि क्रातिकारी कौन बन सकता है । जो अपने प्राणो को हथेली पर धर विश्व मे प्र॰ य ढाहने के लिए प्रस्तुत हो जाए, वही क्रातिकारी हो सकते हैं ।

> वारिद-माला से ढकने पर, रवि ने समझा अपमान कहाँ
> नग पति के मस्तक पर चढ़कर, हिम ने पाया सम्मान कहाँ !
> मधु ऋतु ने अपने रंगो पर करना सीखा अभिमान कहाँ
> कह सकता है कोई किससे कब कसका है अज्ञान कहाँ ?
>
> (प्रभाकर, नवम्बर १९५५)

भावार्थ—सूर्य को ये छोटे-छोटे बादलो के झुण्ड आकर ढक लेते किन्तु उन बादलो से ढक जाने पर भी सूर्य उसमे अपना अपमान नही देखता । यह बर्फ पृथ्वी के सर्वोच्च स्थान, हिमालय के शिखर पर बहती है—पडी रहती है, पर इसने इतने ऊचे स्थान पर रहने के कारण कभी अपने आपको सम्मानित अनुभव नही किया । वसन्त ऋतु ने अपने सुन्दर रगो पर कभी अभिमान नही किया । इस प्रकार कोई नही कह सकता कि किस वस्तु में कहाँ कितना अज्ञान छिपा पडा है ।

भाव यह है कि प्रकृति के सूर्य, हिमालय, वसन्त आदि पदार्थो को कभी मान-अपमान सम्मान, अभिमान आदि अनुभव नही होता । यह मनुष्य ही है ज जरा-सी बात मे अपमान का अनुभव करता है, तो कभी थोड़ी-सी बात से बड

अभिमान करने लगता है। कभी किसी कारण से अपने-आप को बड़ा सम्मानित अनुभव करने लगता है। प्रकृति के इन पदार्थों से मनुष्य को सीखना चाहिए कि वह कभी मान-अपमान, सम्मान या अभिमान को अपने हृदय में स्थान न दे।

पर हम मिट्टी के पुतलो को जब स्पन्दन का अधिकार मिला,
मस्तक पर गगन असीम मिला! फिर तलवो पर ससार मिला!
उन तत्वो के सम्राट् बने जिनका हमको आधार मिला;
फिर हाय असह्-सा वही हमे यह मानवता का भार मिला?

भावार्थ—प्रकृति के पदार्थों को राग-द्वेष, शोक, सताप कुछ नही होता। किन्तु हम जो मिट्टी के पुतले मनुष्य हैं, उन्हे जब से हृदय की धड़कन का अधिकार मिला है, अर्थात् जब से हमें चेतनता प्राप्त हुई है, हमारे सिर पर यह अनन्त आकाश और अपने पावो के नीचे यह विशाल धरती मिली है। पृथ्वी, जल, वायु, अग्नि आदि जिन तत्वो के आधार पर हमारा जीवन टिका हुआ है, हम उन्हीं के स्वामी बन बैठे। उनको हम ने अपने पैरो के तले रौंद डाला और इन सबके साथ मानवता का असह्य भार हमारे सिर पर आ पडा।

भाव यह है कि मानवता के ज्ञान के कारण ही हमारे हृदय में हर्ष-शोक मान-अपमान, राग-द्वेष आदि की भावनाए भरी रहती है। यदि हम में यह मानवता की भावना न होती, तो हम भी प्रकृति के अन्य पदार्थों की भाति सर्वथा स्वच्छन्द और उन्मुक्त होते।

नारी के छविमय अगो की, छवि में मिल छविमय होने को।
पृथ्वी की छाती फाड लिया, हमने चांदी को, सोने को!
हमने सबको सम्मान दिया, पल-भर निज गुरुता खोने को,
पर हम निज बल भी दे बैठ, अपनी लघुता पर रोने को!

भावार्थ—हमने स्त्रियो के सुन्दर अगो की सुन्दरता मे मिलकर सुन्दर बनने के लिए इस धरती की छाती को फाड़कर धरती के अन्दर से खानें खोदकर चादी, सोना निकाला, ताकि चाँदी, सोने के आभूषण बनाकर उनसे नारी को अलकृत कर नारी के सौन्दर्य को बढ़ाया जाय। मनुष्य अपने बड़प्पन के अहकार में चूर होकर कही पागल न हो जाय, इसलिए क्षण भर

के लिए अपने बडप्पन से छुटकारा पाने के लिए उसने सारे ससार के दूसरे सब लोगों का यथोचित आदर-सत्कार किया, पर दूसरो को वडा मानते हुए और अपनी लघुता की भावना पर रोते-रोते यह मनुष्य अपना बल भी खो बैठा है।

भाव यह है कि इस सौन्दर्योपासक, कलाप्रिय मानव ने सुन्दरी के सौन्दर्य को वढाने के लिए पृथ्वी मे से सोना, चाँदी, रत्न आदि निकालकर नाना प्रकार के अलकार आदि गढ डाले और फिर अपनी स्वतन्त्र सत्ता को भी उसने उसी में मिला दिया।

> अपने बोझे से दवे हुए, मानव को कहां विराम यहां ?
> सुख-दुख की सकरी सीमा में, अस्तित्व बना नाकाम यहा !
> बनने की इच्छा का हमने, देखा मिटना परिणाम यहा !
> 'अभिलाषाओं की सुबह यहां, असफलताओं की शाम यहा !

भावार्थ—इस ससार में सब लोग अपने ही भार से दवे हुए है। मनुष्य को यहा कही शाति और विश्राम नही है। जीवन के सुख और दुख की तग सीमा में मनुष्य का अस्तित्व व्यर्थ हो गया है। बेचारा मनुष्य कुछ बनना चाहता है, पर वह वनता-वनता ही मिट जाता है। यहां प्रात.काल तो अनेक प्रकार की आशा लिए हुए आता है, पर सन्ध्या अपने साथ असफलतायें ही लाती है।

भाव यह है मनुष्य का जीवन इतना दुखमय है कि दु.खो के जजाल से निकल कर सुख के दर्शन करने के प्रयत्न में ही मनुष्य का सारा जीवन बीत जाता है। बेचारा मनुष्य प्रात.काल जब उठता है, तब तो वह अपने जीवन की नाना प्रकार की सुनहरी आशाएं लिए हुए आगे बढना चाहता है, पर जब सन्ध्या को घर लौटकर आता है तो निराशा के सिवाय उसके कुछ भी हाथ-पल्ले नही पड़ता, अथवा जीवन रूपी प्रभात का प्रारम्भ तो बडी आशा के साथ होता है, पर जीवन की सन्ध्या निराशा के अन्धकार से घिरी हुई आती है।

> इस दुख में पाओगी सुख की धुंधली एक निशानी,
> आहो के धुंधले शोलो में तुम्हें मिलेगा पानी।

रो रो रते मूर्ख यहां पर, हंस-हंस देते ज्ञानी,
अरी दीवानी, सोच समझ कर सुनना कसक कहानी।

भावार्थ—कवि अपनी दीवानी आत्मा को सम्बोधित करता हुआ कहता है कि—

संसार के कष्टों और विपत्तियों से घबराने की आवश्यकता नहीं है क्योंकि ध्यान से देखने पर इन दुःखों में भी सुखों की अस्पष्ट-सी छाया झलकती दिखाई देगी। मनुष्य की दुःख की आहों की धुंधली चिनगारियों में भी तुम्हें पानी मिल जायगा।

अर्थात् इन कष्टों की अग्नि-ज्वाला में भी सुख-शांति के शीतल जल के दर्शन हो जायेंगे।

संसार के इन विविध कष्टों और विपत्तियों को देखकर मूर्ख लोग घबराते और रोते हैं, किन्तु ज्ञानी अथवा तत्त्वदर्शी तो समझते हैं कि ये दुःख और सुख दोनों ही क्षणिक हैं। इसलिए वे उन दुःखों को देखकर भी हंसते ही रहते हैं। वे उनसे कभी घबराते नहीं। इसलिए हे मेरी दीवानी आत्मा, तू मेरी इन पीड़ा की व्यथा-कथा को सावधान होकर सुनने के लिए प्रस्तुत हो जा।

भाव यह है कि मनुष्यों को दुःखों से उद्विग्न नहीं होना चाहिए। विवेक की दृष्टि से देखने पर ज्ञात होता है कि दुःख में भी सुख छिपे रहते हैं।

काव्य-सौन्दर्य—'शोलों में तुम्हें मिलेगा पानी' में शोले और पानी, दुःख और शान्ति के प्रतीक रूप में आए हैं। चिनगारी में पानी मिलने में विरोध अलंकार है।

यहां प्रकृति है पाप, पुण्य आत्मा का पूर्ण दमन है,
स्वेच्छा है भ्रमपाश, यहां पर भक्ति नियम बन्धन है।
यहां पूज्य अज्ञात, उपेक्षित तर्क तथा दर्शन है,
अन्धकार ही अन्धकार, यह छोटा सा जीवन है।

भावार्थ—कवि एक ओर 'कसक' की कहानी बताता हुआ, कहता है कि यहां जो मानव को प्रकृति प्रेरणा देती है, उस प्रकृति की प्रेरणा के अनुसार कार्य करना तो पाप समझा जाता है। जिस बात को लोग, व्यवहार और शास्त्र-मर्यादा, पुण्य कह कर पुकारते हैं। उस पुण्य के अनुसार आचरण करने

मे तो अपनी आत्मा को उन्नत भावनाओ को दवाना पडता है, क्योकि पुण्य कार्यों में तो चारो ओर निषेध-ही-निषेध है । अपनी इच्छानुसार आचरण करना भ्रम के पाश में पडना है और नियमो में वधकर रहने को यहाँ भक्ति कहा जाता है । यहाँ जिस ईश्वर की पूजा का आदेश दिया जाता है, वह तो निर्गुण और निराकार होने के कारण ही अज्ञात है । इसलिए मनुष्यो की पहुच से परे है । तर्क के द्वारा किसी वात को निश्चय करना और सत्य दर्शन की वातो की यहाँ उपेक्षा की जाती है, अर्थात् कोई भी तर्क या दार्शनिक पद्धति से सत्य तत्व को समझने का प्रयत्न नही करता । इस प्रकार यह छोटा सा जीवन अन्धकार से भरा हुआ रह जाता है । इसका वास्तविक रहस्य किसी को कुछ समझ मे नही आता ।

भाव यह है कि स्वच्छद आहार-विहार, स्त्री-पुरुष का पारस्परिक मिलन आदि जो मानव की प्राकृतिक प्रवृत्ति है, उसे तो समाज पाप समझता है और यह मत खाओ, यह मत पीओ, इससे मत मिलो, उससे मत वोलो आदि जिन वातो से मानव की आत्मा का दमन होता है, उन्ही बातो को यहाँ लोग धर्म समझते है । जो कोई सामाजिक तथा धार्मिक नियम-वन्धनो को तोड कर स्वेच्छानुसार आचरण करता है, उसे भ्रम या धोखे में पडा हुआ अथवा मूर्ख समझा जाता है । यहाँ परलोक के भय के कारण ही परलोक में फल देने वाले, विधि विधानो और कार्यों को पूज्य समझा जाता है और आदर की दृष्टि से देखा जाता है । यही कवि के हृदय में खटकने वाली एक और बड़ी वात है ।

रुदन अधर का सुमधुर हास नव यौवन का विकृत विलास
एक व्यग या व्यग अजान या पतग का स्वप्न महान
दुख का उजड़ा हुआ प्रवास इस जीवन का है उपहास

भावार्थ—इस जीवन में कभी तो ओठ पर मधुर हँसी विखरती है, तो कभी रुदन का स्वर सुनाई देता है । कभी नवयौवन की शोभा चमकती है, तो कभी यौवन का विकार—वुढापा आ घेरता है । यह जीवन तो वैसा ही क्षणिक है, जैसे पतंगा दीपक की ज्योति पर जलकर मर मिटता है । वास्तव मे तो यह जीवन दुःख का एक उजडा हुआ प्रवास-मात्र है । यही सवसे वड़ी विडम्वना या व्यंग्य है ।

सुभद्रा कुमारी चौहान

अनुनय विनय नहीं सुनता है, विकट फिरंगी की माया,
व्यापारी बन दया चाहता था जब वह भारत आया,
डलहौजी ने पैर पसारे अब तो पलट गई काया,
राजाओं नव्वाबों को भी उसने पैरों ठुकराया।

भावार्थ—उस समय के विदेशी शासक अंग्रेजों के छल-कपट बड़े भयंकर थे। यह अंग्रेज शासक किसी की अनुनय-विनय-प्रार्थना या गिड़गिड़ाहट पर कुछ कान नहीं देता था। वह तो वही करता था जिसमें कि उसका स्वार्थ सिद्ध हो जाय। जब उसने सबसे पहले भारत में प्रवेश किया था, तब वह व्यापारी बन कर आया। उसने यहाँ के सम्राटों से यहां व्यापार करने की दया की भीख मांगी थी। किन्तु देखते-ही देखते उन अंग्रेजों की चालों की काया-पलट हो गई। उसमें बड़ा भारी परिवर्तन आ गया और डलहौजी ने सारे भारत में अपने पांव पसार दिए, अर्थात् सर्वत्र अंग्रेजी राज्य स्थापित करने का निश्चय कर लिया। बड़-बड़े राजाओं-नवाबों को भी उसने अपने पैरों से ठुकरा दिया, अर्थात् बड़े-बड़े राजा-महाराजा, नवाबों की भी उसने एक न सुनी। उन सबके राज्य एक या दूसरे बहाने से छीन लेने का प्रयत्न करने लगा।

भाव यह है कि अंग्रेज ने बड़ी चालाकी से भारत में धीरे-धीरे करके अपने पाँव जमाये थे। सर्वप्रथम सर टामस रो जहाँगीर के दरबार में अजमेर के किले में आया और उसने सूरत में कुछ अंग्रेजी कोठिया व्यापार करने के लिए बनाने की आज्ञा मांगी। इस प्रकार सर्वप्रथम अंग्रेजों ने भारत में व्यापार करने के बहाने से अपने पांव जमाए थे, किन्तु धीरे-धीरे वह यहां का शासक बन बैठा और डलहौजी ने तो सारे भारत को ही अंग्रेजी राज्य में मिला देने के लिए कमर कस ली। वह यहां के सब राजा-महाराजाओं के अधिकारों की अवहेलना करने लगा।

कुटियों में विषम वेदना, महलों में आहत अपमान,
वीर सैनिक के मन में था, अपने पुरखों का अभिमान,

नाना धुन्धु पन्त पेशवा जुटा रहा था सब सामान,
बहिन छबीली ने रण-चडी का कर दिया प्रकट आह्वान ।
(प्रभाकर, जून १६५६)

भावार्थ—इस प्रकार के अत्याचारो के कारण राजा और प्रजा दोनो ही का हृदय विक्षुब्ध हो उठा था । इसी भाव को व्यक्त करती हुई कवयित्री कहती है कि कुटियो म अर्थात् प्रजा-वर्ग मे भी भयकर दु ख की भावनाएं जाग्रत हो रही थी और राजमहल मे भी दु खपूर्ण अपमान की भावना व्याप्त हो रही थी और जो वीर सैनिक अभी तक अपने देश की स्वाधीनता क लिए लड रहे थे, उनके हृदयो मे भी पूर्वजो की वीरता की गौरव भावनाए जाग उठी थी । पेशवा धुन्धु पन्त और नाना साहब स्वातन्त्र्य सग्राम के लिए आवश्यक उपकरण जुटान म लगे हुए थे । इधर उनकी छबीली बहन (लक्ष्मीबाई) ने रणचण्डी का आह्वान कर दिया, अर्थात् स्वातन्त्र्य-युद्ध का शख फू क दिया ।

भाव यह है कि अग्रेजो के इन विविध अत्याचारो के कारण यहा के राजा और प्रजा दोनो का हृदय भी उद्विग्न हो उठा था । उस समय के वीर सैनिको के हृदय मे अभी अपने पूर्वजो का गौरव शेष था । सबसे पहले बिठूर मे बैठे हुए पेशवा नाना सहाब ने अ ग्रेजो की सत्ता को समाप्त करने के लिए प्रयत्न प्रारम्भ किए, इधर उसी समय झाँसी में लक्ष्मीबाई ने स्वाधीनता-युद्ध का बिगुल बजा दिया ।

महादेवी वर्मा

बीन भी हू मैं तुम्हारी रागिनी भी हू ।
नींद थी मेरी अचल निस्पन्द कण-कण में,
प्रथम जागृति थी जगत के प्रथम स्पन्दन में
प्रलय में मेरा पता पद चिन्ह जीवन में,
शाप हूँ जो बन गया वरदान बन्धन मे,
कूल भी हूँ कूलहीन प्रवाहिनी भी हूँ !

भावार्थ—प्रस्तुत पक्तिया रहस्यवाद की सर्वश्रेष्ठ कवयित्री श्रीमती महादेवी वर्मा के 'बीन भी हूँ' शीर्षक रहस्यवाद के उत्कृष्टतम गीत मे ली गयी है । इसमे आत्मा और परमात्मा के अभेद सम्बन्ध के साथ ससार के सुख और दुख के दोनो पक्षो मे एकरूपता का अनुभव कराया गया है । कवयित्री कहती है कि—

हे प्रियतम, मै तुम्हारी वीणा और रागनी दोनो हूँ, वीणा सदा साथ रहती हुई भी प्रियतम से भिन्न है, पर रागनी तो उसकी अभिव्यक्ति है—मूर्त रूप है । इसी प्रकार आत्मा-परमात्मा मे भी भेदाभेद सम्बन्ध है । चारो ओर स्थिर और शान्त पड हुए प्रकृति के कण-कण मे मेरी ही निद्रा थी और

जागृति की धड़कन में भी मैं ही समा रही हूं, अर्थात् सृष्टि के आरम्भ में जब सत्य, रज, तम ये तीनो गुण साम्यावस्था में थे और प्रकृति में किसी प्रकार विक्षोभ नहीं था, तो भी आत्मतत्त्व की सत्ता विद्यमान थी और सृष्टि के आरम्भ होने पर भी है। नाश और निर्माण दोनो में आत्मा एकरस है। नाश का शाप ही जीवन का वरदान है। मर्यादा में बंधने वाला तट और अनन्त गति वाली सरिता में भी वह तत्त्व समान है।

भाव यह है कि वादक के बिना वीणा का कोई मूल्य नहीं, कोई सत्ता नहीं। कलाकार की अंगुलियों का स्पर्श पाते ही वीणा झंकृत हो उठती है। वैसे ही उस परमात्म-तत्त्व के स्पर्श का अनुभव होते ही इस आत्मा के अन्तर के तार झंकृत हो उठते हैं। वह प्रभु प्रेरक और मैं प्रेरित हूँ। उसकी प्रेरणा से ही मुझ में यह गति और चेतना आई है। वीणा होकर उसका गान भी मैं ही हूँ। हे प्रियतम, तुम से वियुक्त होने के कारण मेरा जीवन शापमय है। अभिशप्त और दुःखी-सा है। किन्तु तुम्हारे इस विरह दुःख में भी एक अपूर्व सुख की अनुभूति होती है। साथ ही विरह के साथ मिलन भी अवश्यम्भावी है। इसलिए कहा गया है कि मैं वह शाप हूँ जो वरदान बन गया है।

काव्य-सौन्दर्य—रहस्यवाद सम्बन्धी अधिकतर कविताएं प्रतीक शैली में ही लिखी जाती हैं, क्योंकि साधारण भाषा उन गूढ़ भावों को अभिव्यक्त करने में समर्थ नहीं हो पाती। इसलिए इस कविता में भी आरम्भ से अन्त तक प्रतीकात्मक भाषा प्रयुक्त हुई है। इन प्रतीको पर जितनी गम्भीरता से विचार करें, जितना अधिक मनन करें, उतना ही रस प्राप्त होता है। प्रलय और जीवन, शाप और वरदान, कूल और कूलहीन में विरोधालंकार तो स्पष्ट है ही।

आग हूँ जिससे ढुलकते बिन्दु हिम जल के,
शून्य हूँ, जिसको बिछे हैं पांवड़े पल के,
पुलक हूँ वह जो पला है कठिन प्रस्तर में,
हूँ वही प्रतिबिम्ब जो आधार के उर में!
नील घन भी हूँ सुनहली दामिनी भी हूँ!

(प्रभाकर, अगस्त १६५२)

भावार्थ—मैं वह अग्नि हूँ जिससे बर्फ के शीतल जल की बून्दें ढलकती रहती हैं। मैं वह शून्य हूँ जिसमें पलकों के पांवड़े बिछे हुए हैं, मैं वह रोमांच हूँ जो कठोर पत्थर के हृदय में उत्पन्न हुआ है, मैं वह प्रतिबिम्ब हूँ जो आधार के हृदय में ही सदा समाया रहता है, मैं नीला बादल होते हुए भी सुनहरी बिजली हूँ।

भाव यह है कि यह आत्मा परम प्रियतम के विरह में सदा व्याकुल रहती है, उस वियोगाग्नि के जलते रहने के कारण इसको अग्निमय कहा गया है। साथ ही यह निरन्तर विरहाश्रु बहाती रहती है, इसलिए इसे हिमजल कहा गया है, पाँवड़े किसी आधार पर ही बिछ सकते है, शून्य में नही। किन्तु आत्मा तो उस प्रियतम के विरह के कारण सदा सूनेपन का अनुभव करती रहती है और उस शून्यता में पलको के पाँवडे बिछाकर उस प्रियतम की प्रतीक्षा करती रहती है। इसलिए कहा गया है कि मै वह शून्य हूँ जिसमें कि पलको के पाँवडे बिछ हुए है।

यह आत्म-तत्व उस परमात्म-तत्त्व का प्रतिबिम्ब है, फिर भी उसी का स्वरूप है। इसलिए बिम्ब और प्रतिबिम्ब दोनो ही एक हुए, यह आत्मा नील आकाश के समान अनन्त और माया से आवृत होते हुए भी ज्ञान की ज्योति से जगमगा रही है। इसलिए इसे नील घन और सुनहरी दामिनी कहा गया है।

जगन्नाथ प्रसाद 'मिलिंद'

हम पद्मनाल से छिपे विश्व-जीवन में
अपने ऊपर वैभव के कमल खिलाते,
शोभा, सौरव, मधु सब बाहर बटते है,
हम पक गर्त में, भीतर गलते जाते। (नवम्बर १९५३)

भावार्थ—शोषित श्रमिक फिर बहुत सुन्दर बात कहता है कि हम परिश्रम करने वाले श्रमजीवी लोग तो कमल की डंडी के समान इस विश्व के जीवन रूपी जल में छिपे पडे रहते है पर हमारे ही ऊपर ससार के ये सब सुख और ऐश्वर्यों के कमल खिलते है। हम तो नीचे कीचड से भरे गढो में पडे सडते गलते रहते हैं, पर हमारे ऊपर खिले हुए इन वैभव के कमलो म शोभा, सुगन्ध और रस बटते रहते है।

भाव यह है कि बेचारा परिश्रम करने वाला व्यक्ति रात-दिन परिश्रम कर जिस पूँजी का उत्पादन करता है, वह पूँजी तो इन बड़े-बडे पूँजापतियो की जेब में जाती है। वे उससे खब मौज लूटते है। बडे बडे महलो और बगलो में रहते है, पर उस सम्पत्ति को उत्पन्न करने वाला यह श्रमिक सडी-गली कोठरियो में पडा अपना समय काटता रहता है।

काव्य-सौन्दर्य—यहाँ उपमा, रूपक और रूपकातिशयोक्ति आदि अनेक अलकारो के चमत्कारो के कारण कविता का सौन्दर्य खूब निखर उठा है। पूर्णोपमा के द्वारा श्रमिक वर्ग के कार्यों और महत्त्व का जैसा सुन्दर और पूर्ण चित्र इस पद में अंकित हुआ है, वैसा बडी-बडी, लम्बी-लम्बी कविताओं में भी नही हो पाता।

हम जीवन के अगणित विभिन्न क्षेत्रों में
नाना रूपों से वंचित हैं, पीड़ित हैं,
समता का पाया एक सूत्र पर हमने
"वे सब समान हैं, जो जग में शोषित हैं।"
(प्रभाकर, जनवरी १९५२)

भावार्थ—इस प्रकार हम श्रमिक जीवन के अनन्त और विविध क्षेत्रों में नाना प्रकार से शोषित और पीडित हो रहे हैं। किन्तु हमने एक समानता का सिद्धान्त प्राप्त कर लिया है कि संसार में जो भी शोषित और पीडित हैं, वे सब समान हैं।

भाव यह है कि चाहे बौद्धिक श्रम करने वाला कलाकार, लेखक या क्लर्क हो और चाहे शारीरिक श्रम करने वाला मजदूर हो। इन अनेक रूपों में संसार के सभी श्रमजीवियों का पूंजिपतियों के द्वारा शोषण हो रहा है। इस शोषण के कारण आज के सब श्रमिकों के निश्चय कर लिया कि जो कोई जिस रूप में भी शोषित है, वे सब समान हैं।

इस विश्व-बन्धुता में पीड़ित मानवता
यदि आत्मत्राण की आशा-किरण न पाती,
तो नरक-तुल्य इस जीवन में रस भरने
क्या कभी प्रलय तक सुख की वेला आती।

भावार्थ—इस प्रकार यदि यह शोषित मानव संसार के सब पीड़ितों में समान भ्रातृत्व की भावना के रूप में आत्मरक्षा की आशा की किरण न पाते तो नरक के समान इस दुःखप्रद जीवन में प्रलय-काल तक भी क्या कभी सुख का समय आ सकता था? अर्थात् कभी नहीं आ सकता था।

भाव यह है कि आज के सम्पूर्ण शोषित मजदूरों ने यह अनुभव कर लिया कि कोई भी किसी भी रूप में जो पीडित है, वे सब आपस में भाई हैं। इस लिए वे सब एक-दूसरे की विपत्ति में आगे बढ़ कर हाथ बटाते हैं, सहायता पहुँचाते हैं। इस विश्व-बन्धुत्व की भावना के कारण ही शोषित मजदूर के जीवन में कुछ आशा की किरण दिखाई दे रही है।

हमने भी आहों का बन्धन पहचाना,
आंसू को अपना परिचित हमने जाना,
मुस्कानों पर सीखा सर्वस्व लुटाना,
आशा-इंगित पर स्वप्न भवन बनवाना,
सुख में दुःख में हम भी थे मानव-केवल।
पाया था हमने भी मानव-उर कोमल।

(प्रभाकर जून)

भावार्थ—अपनी प्राण-प्रिया पत्नी अथवा वात्सल्यमयी माता की प्रेम-भरी आहों का बन्धन कैसा दृढ होता है। आंसुओं की ममता के महत्व को हम भी पहिचानते थे। अपनी हृदय-वल्लभा प्रेयसी की मुस्कराहट पर हम भी अपना सर्वस्व न्यौछावर कर देना जानते थे। उस प्रिय की आशाओं और इशारों पर अपनी सुखी और समृद्ध भविष्य की मधुर सुनहरी कल्पनाओं में हम मस्त रह सकते थे। इस प्रकार सुख हो या दुःख, प्रत्येक अवस्था में हम भी केवल मानव ही थे और हमें भी मनुष्यों का कोमल हृदय मिला था।

भाव यह है कि अपने प्रियजनों को कुछ दिनों के लिए बिछुडते देख माता और पत्नी आदि प्रियजनों के हृदय से जैसे दुःख की आहें निकलती हैं और जिस प्रकार वे करुणा भरे नेत्रों से प्रेमाश्रु बहाने लगती हैं। उन आहों और आंसुओं के सामने मानव का वज्र-कठोर हृदय भी गल जाता है, तो हम तो उनसे सदा के लिए बिछुड कर जब क्रांतिकारियों के मार्ग पर अग्रसर हो सहर्ष मृत्यु का आलिंगन करने के लिए घर से निकलने लगे, उस समय उनकी आहों और आंसुओं से हमारा हृदय भी पसीज गया था, किन्तु हम उस प्रेम के सुकोमल अभेद्य बन्धन को छिन्न-भिन्न कर अपनी मातृ-भूमि के लिए सर्वस्व लुटाने को निकल पड़े। हमने अपने सुन्दर सुखी जीवन की आशाओं को स्वयं अपने हाथों कुचल डाला।

'गुमराह कहे चाहे फिर हमको ज्ञानी,
ठुकरावे हमको आत्म-तत्व-अभिमानी,
सर आंखों पर है उन सब की मनमानी,
कहते हम इतना नयनों में भर पानी—
रखते हैं हम भी एक हृदय लघु, निर्मल।
पाया था हमने भी मानव-उर कोमल।

भावार्थ—चाहे बड़े-बड़े ज्ञानी लोग हमें आतंकवाद का मार्ग अपनाने के कारण पथ-भ्रष्ट समझें और जो बड़ा भारी अपने-आपको आत्म-ज्ञानी कहते हैं, वे उपेक्षापूर्वक हमें ठुकराते रहें। उनकी यह सब मनमानी बातें हम सिर-माथे पर स्वीकार करते हैं। किन्तु अपने पुराने कष्टों की स्मृति आ जाने से अश्रुपूर्ण नेत्रों से हम इतना कहना चाहते हैं कि हमारे भी एक छोटा सा पवित्र कोमल हृदय है, अर्थात् हममें भी सुख-दुःख का अनुभव करने की भावना है और उस भावना से प्रभावित होकर ही हमने वह मार्ग अपनाया था। हम भी हृदय रखने वाले मानव थे। फिर अपने सुख-दुःख की कुछ भी परवाह न कर अपने देश और देश वासियों के लिए ही हम क्रांतिकारियों ने आतंकवाद के उस अत्यन्त विषम मार्ग पर चलने का निश्चय किया था।

हरिकृष्ण प्रेमी

नभ के पर्दे के पीछे करता है कौन 'इशारे' –
सहसा किसने जीवन के खोले हैं बन्धन सारे ?

भावार्थ—जब साधक के मानस में उस प्रियतम के साक्षात्कार के लिए ऐसी उत्सुकता का भाव जागृत हो उठता है तो उसे ऐसा अनुभव होता है कि मानो इस हृदय रूपी आकाश के अन्तर में छिपी हुई वह अज्ञात शक्ति अपने पर्दे में से उसे अपनी ओर आने के लिए संकेत कर रही है। उसके संकेत को पाकर हृदय कुछ ऐसा अनुभव करता है कि मानो साधक की आत्मा सब प्रकार से लौकिक व भौतिक बन्धनों से ऊपर उठ गई है।

भाव यह है कि जिज्ञासा के पश्चात् जब औत्सुक्य अपनी चरम सीमा पर जा पहुँचता है तो साधक की आत्मा में ऐसा भान होने लगता है कि अब उसे प्रियतम का साक्षात्कार होने ही वाला है और अज्ञात और अलक्ष्य रूप से उसे अपने पास पहुँचने के लिए कोई बुला रहा है। यह प्रिय-मिलन की पूर्वावस्था की सूचना देता है। उस स्थिति पर पहुँचने पर साधक सब प्रकार के बन्धनों से मुक्तसा हो जाता है। उसे प्रतीत होता है कि अब वह भौतिक और लौकिक विधि-निषेध के बन्धनों से ऊपर उठ गया है।

रुक सकी न इस कुटिया में, रह सकी न मैं मन मारे।
हो अब प्रवाह ही जीवन, छूटे सब कूल-किनारे !

भावार्थ—जब आत्मा में ऐसी अनुभूति जागृत होती है कि उसका प्रियतम उसे अपने पास बुला रहा है तो वह अपनी सब लौकिक मर्यादाओं को छोड़छाड़ कर उस प्रियतम के मिलने के लिए प्रयत्न करता है। अब भला वह चुपचाप मनमारे कैसे बैठा रह सकता है जब कि प्रियतम उसे अपने पास आने के लिए उसे संकेत कर रहा हो। अब तो साधक उस प्रिय-मिलन के मार्ग पर अग्रसर हो जाता है, इसलिए जब तक उसकी प्राप्ति न हो जाये तब तक चलते रहना ही उसका जीवन लक्ष्य बन जाता है। अब तट के बन्धन बहुत पीछे छूट जाते हैं, जहां वह चुपचाप खड़ा रह सके।

भाव यह है कि औत्सुक्य की चरम सीमा पर साधक के हृदय में जब ऐसा अनुभव होने लगता है कि प्रियतम उसे बुला रहे हैं तो वह भी सांसारिक माया-मोह के बन्धनों को तोड़-ताड़ कर उस अनन्त पथ पर चल पड़ता है।

मुझे होलिका चली जलाने स्वयं भस्म हो गई अभागिन।
स्वयं काल का ग्रास बन गई मुझको खाने वाली बाघिन।
जिस दिन जगत मारने मुझको भरकर लाया विष का प्याला।
उस दिन मुझ में अमर नशा बन झूम उठा जीवन मतवाला ॥

भावार्थ—कवि आत्मा की अमरता का प्रतिपादन करता हुआ कहता है कि यह आत्मतत्व तो नित्य और अमर है इसलिये इसका कोई नाश नहीं कर सकता। इस प्रकार आत्म-नित्यता का भान हो जाने पर मानव सहर्ष बलिदान के लिये प्रस्तुत हो जाता है। सत्य पर अटल रहने वाले व्यक्ति का संसार में कोई बाल बाका नहीं कर सकता, जैसे कि प्रह्लाद के रूप में आत्म-तत्व को जब होली जलाने को प्रस्तुत हुई तो वह मुझे तो न जला सकी परन्तु स्वय जल कर राख हो गई। जो शेरनी मुझे खाने को आई थी वह स्वय ही मृत्यु के मख में चली गई। और मुझे मारने के लिए जहर का प्याला पिलाया गया किन्तु उस विष के प्याले को पीकर मैं मरा नहीं, प्रत्युत मेरे जीवन में एक अमर नशा दिव्य मादकता का भाव भर गया।

भाव यह है कि प्रभुभक्त प्रह्लाद को जब उसका पिता दैत्यराज हिरण्य-कश्यप अन्य किसी प्रकार से भी अपने पथ से विचलित नहीं कर सका तो उसने उसे मार डालना चाहा। उसने अपनी बहन होलिका को आज्ञा दी कि वह प्रह्लाद को जला डाले। उसे जहर के प्याले पिलाये गये। किन्तु वह न तो अग्नि में जलकर ही मरा और न विष का प्याला पीकर ही। मीराबाई को जहर दिया गया था किन्तु वह उसे प्रभु का चरणामृत समझ कर पी गई और उसका कुछ न बिगड़ा।

अमर अनल पक्षी हू मैं तो, मुझको मरने का क्या भय है?
मेरी राख जी उठे फिर से, तो जग को क्यों विस्मय है?

भावार्थ—जिस प्रकार अग्नि का कीड़ा अग्नि में रहता हुआ भी नहीं जलता, वैसे ही यह आत्म-तत्व भी नित्य है और अग्नि-कीट की भांति ही इसे मृत्यु का भय नहीं। इसलिए बलिदान के मार्ग पर चलने वाले इन वीरों की यदि राख भी जी उठे तो भी कोई आश्चर्य नहीं।

भाव यह है कि—आत्मा को अमर मान कर मर मिटने की साध वाले देश-भक्त वीरो, क्रान्तिकारियो की मृत्यु के बाद उनकी राख से भी क्रान्ति की चिनगारियाँ फट पड़ती हैं और आततायियो को सदैव भय बना रहता है कि इन मतवाले वीरो की तो राख भी हमारा सर्वनाश कर देगी।

(मूल पुस्तक में 'हो जग को' के स्थान पर 'तो जग को' होना चाहिये।)

मेरी लाश गाड़ने को जब कब्र खोदने चली कुदाली।
बोली भूमि 'यहाँ तो जालिम के लाने की इच्छा पाली'॥
मेरा जीवन जग के कण-कण में व्यापक है मुझको मारे।
इतनी जान किसी में है क्या, आंखें खोल अरे हत्यारे॥

भावार्थ—देशभक्त जब फांसी के तख्ते पर झूल जाता है और उसकी लाश को गाड़ने के लिये कुदाली से कब्र खोदी जाने लगती है तो पृथ्वी ने

आवाज आती है कि अरे मेरे हृदय मे तो यह प्रबल आकांक्षा थी कि उस स्थान पर आततायी अत्याचारी की लाशें दफनाई जाये गी।

क्रान्तिकारी फिर कहता है कि हे अत्याचारी मेरा जीवन तो सृष्टि के अणु-अणु में व्याप्त हो रहा है फिर भला किसमें इतनी सामर्थ्य है कि कोई मुझे मार सके।

भाव यह है कि जिस स्थान पर आज देश-भक्तों के शवों का सत्कार हो रहा है, कल वहीं अत्याचारियो की लाशें पडी दिखाई देगी। यों तो देश-भक्त अपने आत्मतत्त्व को नित्य और व्यापक मानता है, प्रकृति के अणु-अणु मे आत्मा को समाया हुआ समझता है, फिर भला उसे कौन मार सकता है।

> "जो सुख की शैया पर सोते मुझको उनसे काम नहीं है।
> मुझे उन्हीं से कुछ कहना है जिन्हें प्राप्त धन-धाम नहीं।।
> मुझे उन्हें आंखें देनी है, निज अभाव जो देख न पाते।
> जो जुल्मों को भाग्य समझ कर निर्विकार हो सहते जाते।।
>
> मुझे विभव का क्या करना है,
> मैं तो उसका नाश करूंगी।
> आज तुम्हारे प्राणों मे मैं,
> सर्वनाश का राग भरूंगी।।

भावार्थ—जो सुख की नींद सोते हैं, मुझे उनसे कोई प्रयोजन नहीं। जिनके पास घर-बार, रुपया-पैसा कुछ भी नहीं, मुझे तो उन्हीं दीन-दु खी जनों से कुछ कहना है। जो पीडित मानव अपने अभावों और दुखों को भी नहीं देख पाते, मुझे तो उन्हीं को कुछ देख सकने की शक्ति देनी है। जो लोग साम्राज्य-वादियों के अत्याचारो को अपना भाग्य समझ कर चुपचाप सह रहे हैं उन्हीं के हृदय में उत्तेजना का भाव भरना है। मुझे धन-वैभव से क्या लेना। मैं तो इन धनिकों के वैभव का नाश करने आई हूँ। मैं तो आज तुम्हारे हृदय में भी संहारक गीत की ध्वनि गुंजा दूंगी।

रामधारीसिंह दिनकर

> समाना चाहती जो बीन उर में, विकल उस शून्य की झंकार हूँ मैं।
> भटकता खोजता हूं ज्योति तम में, सुना है ज्योति का आगार हूं मैं।।

भावार्थ—जो वीणा कलाकार के हृदय मे समा जाना चाहती है मैं उसी शून्य व्याकुल हृदय की झंकार हूँ। स्वयं प्रकाश अथवा ज्योति का भण्डार होते हुए भी मैं अन्धकार में प्रकाश को ढूंढता हुआ भटक रहा हूँ।

भाव यह है कि वह आत्मतत्त्व अथवा परमात्मतत्त्व स्वयं ही कारण है और कार्य भी वही है। उस प्रियतम के विरह में व्याकुल भी वही आत्मतत्त्व रहता

है, पर वह स्वयं ही उसका आत्म का है। वह स्वयं ही ज्ञानरूप और प्रकाश पुंज है, किन्तु मायाजन्य अज्ञान के कारण वह अपने उस ज्ञान-घन प्रकाशमय स्वरूप को भूलकर अज्ञान के अन्धकार में लिप्त होकर उस आत्म-ज्योति को कहीं बाहर ढूंढता फिर रहा है। क्योंकि आत्म-ज्योति का साक्षात्कार अभी नहीं हुआ है इसलिए अभी तक कवि का इस सम्बन्ध में आत्मानुभव कुछ भी नहीं है—इसीलिए, उसने कहा है कि—"सुना है ज्योति का आगार हूं मैं।"

सोहनलाल द्विवेदी

> हे युग द्रष्टा, हे युग स्रष्टा, पढ़ते कैसा यह मोक्ष-मन्त्र।
> इस राजतन्त्र के खण्डहर में, आता अभिनव भारत स्वतन्त्र॥

भावार्थ—हे राष्ट्र की वास्तविक स्थिति को समझने वाले तथा राष्ट्र का नवनिर्माण करने वाले! महानुभाव बापू! तुम संसार को स्वाधीन करने का यह कैसा उपदेश दे रहे हो। आज संसार के अनेक प्रदेशों में और भारत में जो राजतन्त्र-प्रणाली दीख रही है वह राजतन्त्र-प्रणाली समाप्त होने वाली है, उसकी नींव जीर्ण-शीर्ण और खोखली हो चुकी है। उन राजतन्त्र के पुराने खण्डहरों में से नवीन स्वतन्त्र भारत का जन्म हो रहा है।

भाव यह है कि अब देश अधिक समय तक परतन्त्र नहीं रह सकता। वह शीघ्र ही स्वतन्त्र राष्ट्र के रूप में अपना नव निर्माण करेगा।

सुमित्राकुमारी सिन्हा

> तारिकायें झिलमिला कर लाज दिखलाती रहेंगी।
> घन घटायें उमड कर जब तक प्रलय ढाती रहेंगी।
> फूल उर का द्वार खोले लूटते मधु अलि रहेंगे,
> वल्लरी के कान में पादप दिवाने कुछ कहेंगे॥
> (प्रभाकर, जून १६५३)

भावार्थ—उस प्रकृति के प्रणयपूर्ण वातावरण में चांदनी की छातियों पर से आँचल के खिसक जाने पर उसकी प्रेमातुरता को देख उसकी सहेलियों के समान यह तारिकाएँ झिलमिलाती हुई मानो कुछ लज्जा का-सा भाव दिखलायेंगी। उधर आकाश में मेघ-घटायें उमड-घुमड कर प्रणयी-युगल के हृदय में प्रलय का तूफान मचाने लगेगी। भौंरे कलियों के हृदय-पट खोल कर रस-पान करके मस्त हो जायेंगे और अपने शरीर में लिपटी लताओं के कानों में मस्त हुए तरुगण प्रेमालाप करते रहेंगे।

यहाँ समासोक्ति अलंकार के द्वारा आलिंगन, चुम्बन, स्मय, लज्जा, रति-केलि—आदि प्रणय के 'समस्त व्यापारों' का प्रकृति के 'माध्यम' में सजीव चित्रण दर्शनीय है।

प्यार का ससार स्वर्णिम चिर अमर जब तक रहेगा,
पुरुष का मोहक प्रकृति का मेल यह जब तक रहेगा।
प्रकृति के शाश्वत नियम का यह अनादर व्यर्थ मानव,
चार दिन हस खेल ले पथ में हो भले प्रलय का रव ॥
(प्रभाकर, जून १९५३)

भावार्थ—जब तक इस तरह प्यार का यह ससार चिर अमर रहेगा और मोहक प्रकृति तथा पुरुष का मेल रहेगा, तब तक हे मानव ! प्रकृति के इस अडिग नियम को ठुकराना सर्वथा व्यर्थ है। इसलिये कवयित्री कहती है कि भले ही तुम्हारे जीवनमार्ग में प्रलयकारी दृश्य क्यो न उपस्थित हो रहा हो फिर भी कुछ क्षणो के लिये कुछ प्रेम का खेल खेल लो।

भाव यह है कि साख्य और योगदर्शन के अनुसार प्रकृति-पुरुष के सयोग से ही सृष्टि चक्र का प्रवर्तन होता है। प्रकृति के ये समस्त व्यापार मानव को प्रेम का सन्देश देते है। इसलिये मानव को चाहिये कि वह इस क्षणिक विश्व में प्रेम के द्वारा अपने जीवन को सफल बनावे।

श्यामनारायण पाण्डेय

फिर लगी बरसने आग सतत उन भीम भयकर तोपों से।
जल जल कर राख लगे होने योधा उन मुगल प्रकोपों से।
भर रक्त तलैया चली उधर, सेना-उर में भर शोक चला।
जननी पद शोणित से धो-धो हर राजपूत हर-लोक चला ॥
क्षण भर के लिए विजय दे दी, अकबर के दारुण दूतो को।
माता ने अञ्चल बिछा दिया सोने के लिए सपूतो को ॥
विकराल गरजती तोपो से रुई सी क्षण-क्षण धुनी गयी।
उस महायज्ञ में आहुति सी राणा की सेना हुनी गयी ॥
(प्रभाकर, जून १९५६)

भावार्थ—जब मुगल सेना भागने लगी तो मानसिंह ने महाराणा प्रताप की सेना का संहार करने के लिये तोपें लगवाकर अपनी सेना को रोक लिया और इतना भयकर युद्ध हुआ कि ऐसा प्रतीत होता था मानो, महाप्रलय हो रही हो। उस समय उन बडी-बडी भयकर तोपो से अग्नि वर्षा हो रही थी और मुगलो के क्रोध से वीर राजपूत योद्धा जल-जल कर राख हो रहे थे।

राजपूतो के खून से तलैया भर-भर कर बहने लगी और राजपूती सेना शोकमग्न दिखाई देती थी। उस समय मातृ-भूमि के चरणो को अपने रक्त से धो-धोकर प्रत्येक राजपूत वीर स्वर्ग को सिधारने लगा। उस समय क्षण भर के लिये अकबर के अत्याचारी सैनिको को विजय प्राप्त हो गई। भारत माता ने अपने सुपुत्रो के सोने के लिये अपना पल्ला बिछा दिया। पल भर में उन

गरजती हुई भयंकर तोपों ने राजपूत सैनिकों को रुई के समान धुन डाला, अर्थात् राजपूतों की सेना का बहुत बुरी तरह संहार हुआ। उस युद्ध रूपी महायज्ञ में महाराणा की सेना आहुति के समान भस्म हो गई।

गिरि की उन्नत चोटी के, पाषाण भील बरसाते।
अरि-दल के प्राण पखेरू, तन पिंजर से उड़ जाते।
कोदण्ड चण्ड रव करते, वैरी निहारते चोटी।
तब तक चोटी वालों ने, बिखरा दी बोटी-बोटी।

भावार्थ—भील पहाड़ों पर चढ़कर पत्थरों की इतनी भयानक वर्षा कर रहे थे कि जिससे शत्रु सेना के प्राणरूपी पक्षी शरीररूपी पिंजरे से तुरन्त निकल जाते थे। भीलों के धनुष भयंकर शब्द करते थे, तो शत्रु (पहाड़ की) चोटी की ओर देखते थे और इतने में हिन्दू उनकी बोटी-बोटी काटकर भूमि में बिखेर देते थे।

उपेन्द्रनाथ अश्क

उल्लास और अवसाद मिले, काया छाया में क्षीण हुई।
स्मृति तन्मय होते होते सखि! विस्मृति में जाकर लीन हुई॥

भावार्थ—इस प्रकार जीवन में व्याप्त उदासी और अवसाद की भावनायें असीम उल्लास और उमंगों में परिवर्तित हो गईं। शारीरिक अथवा भौतिक सुख-दुख की भावनायें आध्यात्मिक अथवा कल्पना की भावनाओं के रूप में बदल गईं। हे सखि! मेरी संज्ञा, चेतना, सुध-बुध उस दिव्य आनन्द की अवस्था में विस्मृति के रूप में परिवर्तित हो गईं।

भाव यह है कि—प्रिय के स्पर्श को पाकर हृदय इतना तन्मय हो गया कि उसकी संज्ञा, चेतना या उसकी सुध-बुध जाती रही वह अपने को भूल गया। उसका तन-मन अपने प्रिय के रूप में ही लीन हो गया। इस दिव्य आनन्द की अवस्था पर पहुंच जाने पर दुःख व सुख दोनों की भावनाओं से वह ऊपर उठ गया।

शिवमंगल सिंह सुमन

आगे, पीछे, दायें, बायें,
जल रही भूख की ज्वाल यहां।
तुम एक ओर, दूसरी ओर,
चलते फिरते कंकाल यहां॥

भावार्थ—अब कवि उन वैभव-विलासों की ओर सम्बोधन करते हुए कहता है कि इस संसार में सब ओर, आगे, पीछे, इधर, उधर, सब लोग भूख की ज्वाला में जलकर मर रहे हैं। एक ओर तो यह वैभव-विलास है और

दूसरी ओर वह भूख से व्याकुल तड़पते हुए मनुष्य रूपी चलते-फिरते सजीव कंकाल बने पड़े हैं।

भाव यह है कि कुछ लोग तो वैभव और विलासपूर्ण जीवन व्यतीत कर रहे हैं किन्तु और बहुत से मनुष्य पेट की ज्वाला में मर रहे हैं उनको अपने पेट की क्षुधा शान्त करने के लिए भर पेट रोटी भी नहीं मिलती।

नश्वर समाधि की शैया पर, अपना चिर मिलन मना लूँगा।
जिनका कोई भी आज नहीं, मिट कर उनको अपना लूँगा॥

भावार्थ—मैं शीघ्र ही मृत्यु के उपरान्त समाधि की शैया पर प्रिय-मिलन मना लूँगा। जिन दीन हीन दुखियों का कोई भी सहायक नहीं, मैं उन के लिए अपना बलिदान करके उन्हें अपना लूँगा।

पद्मसिंह शर्मा 'कमलेश'

मैं देख रहा सोया नगपति छाती पर सौ सौ घाव लिये।
गंगा अपनापन भूल रही, लहरों में करुणा अभाव लिये॥
पानीपत, हिल्दी, अरवली मूक जौहर के ठण्डे चाव लिये।
डूबे विलास में पाण्डु-पत्र होता है मां का चीर हरण
मैं सोच रहा कैसे अपनी-माता की लाज बचाऊँ मैं?

विद्याभास्कर 'अरुण'

आओ युगयुग शोषित जन ! पीलो-पीलो मधु के कण।
पल-पल बीता जाता जीवन, जीवन की तुम में प्यास जगे।
जीने की उर में आस जगे, अपने ऊपर विश्वास जगे।
तुम तोड सको अपने बन्धन, अब दूर करो अपना विराग,
रे चिर मुद्रित दृग ! जाग ! जाग !

भावार्थ—हे युग-युगान्तर से पीडा पान वालो ! शराब की (नवीन विचारो की) बूँदे पीलो क्योकि इस जीवन का कोई भरोसा नही। कब रेत की दीवार के समान ढह जाये, इसलिये, अब तो अपने जीवन को सुखमय बना लो। तुम्हारे हृदय मे अब तो भली भाति जीवन-यापन की भावना उदय होनी चाहिये। तुम्हे अपने पर पूर्ण आत्म-विश्वास होना चाहिये, जिससे तुम अपने पराधीनता के बन्धन काट सको। अब तुम अपना इस उदासीनता को छोडो क्योकि अभी तक आप लोगो ने अपना जीवन अच्छा बनाने की ओर कभी ध्यान ही नही दिया था। हे देर मे सोये हुये दीन-दुखियो ! अब तो आखे खोलो।

विश्वप्रकाश दीक्षित 'बटुक'

जिसको अभाव कवि कहते हं अपना प्रभाव पहचान तनिक।
भावो की वह गगा उमड, बह जाय अतल, भू अम्बर दिक॥
क्या बारबार दुहराता है, एकाकी मन इकला दम है।
पर देख तनिक, एकाकी शिव हा पूर्ण प्रलय को क्या कम है॥
बढ सिद्धि सामने खडी हुई, बज रहा विजय का नूपुर है।
वह देख सामने नन्दन है, दो चार कदम पर सुरपुर है॥

भावार्थ—हे कवि ! ससार जिसे अभाव के नाम से पुकारता है वही तेरे लिये भाव वस्तु है। क्योकि उन वस्तुओं का अभाव जिसस दुखी होकर उन वस्तुओ पर कविता करत है। इसलिये उस "अभाव पर" ही तेरा प्रभाव है। तू अपनी कविता में ऐसे भाव भर जिससे आकाश-पाताल, दिशा-उपदिशा सब व्याप्त हो जायें। सब ओर तुम्हारी ओजपूण कविता का प्रभाव दिखाई पडे। तू यह अनुभव मत कर कि तू अकेला है। जरा मन मे विचार कर देख क्या भगवान् शकर अकेले प्रलय नही कर देते। अगर वे ससार का सहार करने मे असमर्थ हे तो तेरे मे भी इतनी शक्ति है कि अपनी कविता के द्वारा विश्व को सन्मार्ग दिखा सकता है। तू साहस कर आगे बढ। कार्य-सिद्धि तो तेरे सामने खडी है (तेरा कार्य तो सिद्ध हो चुका है) और विजय के बाजे वज रहे हे। सामने देख स्वर्ग का नन्दन वन दीख रहा ह और उससे थोड़ी दूर पर ही स्वर्ग है।

देवराज दिनेश

जिस दिन उसे अभाव खलेंगे, मस्ती वहीं टूट जायेगी।
शख पकड लेगा हाथो में, वीणा तभी छूट जायेगी।
भैरव स्वर से लग जायेगा, एक अमर सन्देश सुनाने।
दुनिया आज चली है कवि, रहा सहा सम्मान मिटाने॥

(प्रभाकर, अगस्त १९५२)

भावार्थ—जिम दिन कवि अपनी दीन-हीन दशा पर विचार करने लगेगा उसी दिन उसकी मस्ती नष्ट हो जायगी और वह हाथो में शंख लेकर जगत् में उथल-पुथल मचा देने वाली कविता का भैरवी नाद निकालने लगेगा। तब वह अपने आश्रयदाताओ को प्रसन्न करने वाली शृ गारमयी कविता करना छोड़ देगा। वह अपने भयानक शब्दो से दीन-दुखियो को उभारने का एक अमिट सन्देश देने लगेगा।

कवि में अमिट शक्ति है चाहे तो गीदड़ को सिंह बना दे।
कवि वह जादूगर है, चाहे तो सागर में आग लगा दे।
चुल्लू भर पानी से दुनिया आई आग बुझाने।
दुनिया आज चली है कवि को, माग-माग कर अन्न खिलाने।

भावार्थ—कवि अपने हृदय में बडी भारी शक्ति छुपाये हुए है। वह चाहे तो गीदड को शेर बना सकता है। कवि ऐसा दिव्य व्यक्ति है कि यदि वह मन में सोचे तो समुद्र में आग लगा सकता है। धनियों की दुनिया उसी कवि को तुच्छ धन से शान्त करने चली है उसे भला तुच्छ धन रूपी पानी से कैसे कोई बुझा सकता है।

रक्त स्वेद से सींच मनुज जो नई बेल था रहा उगा,
बडे जतन वह बेल बढी थी, लाल सितारा फूल लगा,
उस अकूर पर घात लगी तो मेरे आघातो का क्या ?

भावार्थ—मनुष्य अपने खून और पसीने से जिस सुख शान्ति की बेल को उगा रहा था, अत्यन्त यत्न के पश्चात् जब वह सुख-शान्ति की बेल बढने लगी, उसमें नवीन क्रान्ति के लाल पुष्प आने लगे, ऐसी अवस्था में मानव ने ही तब सुख-शान्ति की बेल के अकुर को ही मसल डालने का निश्चय कर लिया तब किसी एक व्यक्ति के दुख-दर्द या चोटो की तो बात ही क्या ?

भाव यह है कि ज्ञान-विज्ञान की प्रगति या राष्ट्र-सघ के रूप में जिस सुख-शान्ति की लता विश्व में फैल कर विश्व के जीवन को सुखी और समृद्ध बनाना चाहती थी, मनुष्य उसी को कुचल डालना चाहता है।

खौल रहे हैं सात समन्दर, डूबी जाती है दुनिया,
थाह लेता था जिससे गर्क हो रही वह दुनिया,
डूब रही हो सब दुनिया जब, तुझे डुबाता गम तो क्या।

भावार्थ—सातो समुद्रो में तूफान मचा हुआ है और उनमें सारा ससार डूब जाना चाहता है। जिस ज्ञान-विज्ञान के द्वारा ससार समुद्रो की गहराई की थाह लेना चाहता था वह ज्ञान-विज्ञान का ससार अब स्वय ही नष्ट हो जाना चाहता है। इस प्रकार जब सारा समार ही डूब रहा है तो मुझे अपने डूबने का दुख क्यो हो ? क्योकि मै अकेला तो बचा रह नही सकता।

मानव को ईश्वर बनना था, निखिल सृष्टि वश में लानी।
काम अधूरा छोड, कर रहा आत्मघात मानव ज्ञानी।
सब झूठे हो गये निशाने, तुम मुझसे छूटे तो क्या॥

भावार्थ—मनुष्य को ईश्वर बनकर सारी सृष्टि को अपने वश में करना था। अपने उस कार्य को अधूरा ही छोडकर यह ज्ञानी मनुष्य स्वय अपने हाथो अपना विनाश कर रहा है। इस प्रकार मानव के सब लक्ष्य और आदर्श व्यर्थ हो गये हैं। तब फिर मेरे उद्देश्य और लक्ष्य अधूरे रह गये तो उसमें क्या दुख है।

नरेन्द्र शर्मा

एक दूसरे का अभिभव कर, रचने एक नये भव को।
है सघर्ष निरत मानव अब फूक जगत गत वैभव को।
तहस नहस हो रहा विश्व, तो मेरा अपना आपा क्या॥

भावार्थ—हम एक दूसरे को दबा कर नई सृष्टि, एक नया सुखमय संसार बसाना चाहते है। उस ससार के ऐश्वर्य, सुख और वैभव को नष्ट कर आपस में ही सघर्ष में लगे हुए है। इस प्रकार जब सारा संसार ही नष्ट-भ्रष्ट हो रहा है तो मुझ बिचारे अकेले व्यक्ति की सत्ता ही क्या है।

भाव यह है कि मनुष्य और राष्ट्र एक दूसरे को कुचल कर ससार में सुख का साम्राज्य लाना चाहते हैं पर भला यह कैसे हो सकता है।

ओ मेरी मन बसी कामना ! अब मत रो चुपकी हो जा।
ओ फूलो से सजी कामना ! कुश के आसन पर सो जा
टूट फूट दुनिया कराहती मेरे सुख सपने ही क्या !
उजड़ रही अनगिनत बस्तियां मन मेरी ही बस्ती क्या॥

भावार्थ—हे मेरे मन में बसी कामनाओ ! तुम अब मत रोओ, चुप हो जाओ। हे फूलो से सजी हुई कामनाओ ! अब तुम फूल के कोमल प्यार को छोडकर कुशाओ के कटकाकीर्ण और कठोर आसनो पर सो जाओ। यह संसार ही घायल हो कराह रहा है तो मेरे यदि सुख-स्वप्न मिट्टी में मिल गये तो उनका मुझे दुख क्यो हो। यहां प्रतिदिन असख्य बस्तिया उजड़ रही है, तो फिर मेरी बस्ती की भला क्या पूछ है।

भाव यह है कि कवि अपनी अतृप्त वासना से कहता है कि हे मेरी सुन्दर-वर्ग सजाने की भावना ! यदि तू पूर्ण न हो पाई तो कुछ दुःख नही क्योकि

यहाँ तो सारा संसार ही अभावग्रस्त दिखाई दे रहा है। इस युग में किसी मानव को अपनी इच्छाओं के अतृप्त रह जाने का दुःख नहीं होना चाहिये, क्योंकि आज तो विश्व में सभी की यही दशा है।

मैं चलता था कितनों ही के नयनों की प्यास बुझाता-सा।
कितने ही आकुल प्राणों पर पल पल अमृत बरसाता-सा।
बस गयी न जाने कब मेरे नयनों में मन मोहन आभा।
जुड़ गया आप ही आप न जाने क्यों हृदयों से नाता-सा।

भावार्थ—उस समय यौवन और सौन्दर्य की ज्योति से जगमगाता मैं जिधर से निकल जाता उधर ही की सुन्दरियों की दर्शन-लालसा की प्यास को बुझाता जाता था। कितने व्याकुल हृदयों पर मैं अमृत बरसाता चलता था। मेरे मन में भी न जाने कब अज्ञात रूप से ही किसी प्रिय की कान्ति समा गई। न जाने क्यों दो हृदय का पारस्परिक सम्बन्ध अपने आप ही जुड़ गया।

भाव यह है कि—यौवन और सौन्दर्य की कान्ति से जगमगाता जब मैं कहीं निकल जाता तो मुझे देखने के लिये उत्सुक सुन्दरियों के नेत्रों को एक अनिर्वचनीय तृप्ति-सी प्राप्त होती। कई उत्सुक हृदयों को मुझे देख दिव्य आनन्द मिलता। उधर मेरा हृदय भी किसी सुन्दरी के यहां बिक चुका था। यौवन के पदार्पण करते ही मेरा हृदय किसी के हृदय के साथ अनजाने में ही मिल गया।

सुर्धान्त

छा गया चतुर्दिक समारोह पहुंचा था एकाकी, अवसन,
मैं तन्तुवाय बन गया और सब ओर गया जाला-सा तन।
था उलझ-उलझ जाता उसमें जब मैं सुलझाता था उलझन,
मैं तोड़ नहीं पाया बन कर निर्मम जग के कोमल बंधन।

(प्रभाकर, जून १९५३)

भावार्थ—मैं संसार में अकेला और उदास पहुंचा था, किन्तु मेरे संसार में पदार्पण करते ही चारों ओर आनन्द और उत्सव का समारोह छा गया। मैं मकड़ी के समान अपने आप अपने ही बनाये हुए जाले में फंस गया, मेरे चारों ओर जाला तन गया जिसमें निकलना बड़ा कठिन था, ज्यों-ज्यों मैं उस उलझन को सुलझाने का प्रयत्न करता त्यों-त्यों उसमें फंसता जाता था। मैं ममताहीन होकर संसार के माया-मोह के उन बन्धनों को तोड़ न सका।

भाव यह है कि जन्म लेने के पश्चात् मनुष्य अपने किए हुए बन्धनों जाल में ठीक वैसे ही फंस जाता है जैसे कि मकड़ी अपने बुने हुए जाले में। उन तन-बन्धनों को तोड़ने के लिये मनुष्य को सांसारिक ममता का परित्याग करना पड़ता है।

माधुरी

(व्याख्या भाग)

भारतेन्दु हरिश्चन्द्र

तरनि-तनूजा-तट तमाल तरुवर बहु छाये।
झुके कूल सो जल-परसन-हित मनहुँ सुहाये॥
किधौं मुकुर में लखत उझकि सब निज-निज सोभा।
कै प्रनवत जल जानि परम पावन फल लोभा॥
मनु आतम-वारन तीर को सिमिटि सबै छाये रहत।
कै हरि-सेवा हित नै रहे निरखि नैन मन सुख लहत॥

प्रसग—प्रस्तुत अवतरण भारतेन्दु-हरिश्चन्द्र रचित 'यमुना-वर्णन' शीर्षक कविता से उद्‌धृत किया गया है। कवि ने इस कविता मे प्रकृति का सुन्दर वर्णन किया है। आलकारिक भाषा मे प्राचीन रुढियो के अनुसार यमुना की छवि का वर्णन करते हुए कवि कहता है कि—

सरलार्थ—यमुना नदी (सूर्य पुत्री) के तट पर अनेको तमाल के वृक्ष फैले हुए है। वे नदी के तीर पर इस प्रकार झुके हुए ऐसे शोभायमान हो रहे है मानो कि वे जल को स्पर्श करना (छूना) चाहते है। या तो वे जल रूपी दर्पण मे झुक-झुककर अपनी शोभा को निहार रहे है या इस जल को बहुत अधिक पवित्र समझकर पुण्य प्राप्ति की इच्छा से उसे प्रणाम कर रहे है। ऐसा लगता है मानों वे सब यमुना तट के छत्र बनकर जल पर पडती हुई धूप को रोकने के लिए अपने आप को चारो ओर से समेट कर वहां पर फैले हुए है, या वे भगवान् कृष्ण की सेवा के लिए नीचे को झुके रहते है (क्योकि कृष्ण यमुना तट पर विहार किया करते थे) और यमुना के सौंदर्य को देखकर उनके मन तथा नेत्रों को सुख प्राप्त होता है।

काव्य-सौष्ठव—प्रस्तुत अवतरण मे शब्द चयन और कल्पनाओ का अच्छ

चमत्कार है। इनमे वृत्यनुप्रास (केवल प्रथम पक्ति मे), उत्प्रेक्षा तथा सदेह अलकार है।

> परत चन्द्र-प्रतिबिम्ब कहूँ जल मधि चमकायो।
> लोल लहर लहि नचत कबहु सोई मन भायो॥
> मनु हरि-दरसन हेत चन्द जल बसत सुहायो।
> कै तरंग कर मुकुर लिये सोभित छवि छायो॥
> कै रास रमन मे हरि-मुकुट-आभा जल दिखरावत है।
> कै जल-उर हरि-मूरति बसति वा प्रतिबिम्ब लखात है॥

प्रसग—पूर्व-निर्दिष्ट पद्य के समान ही है।

सरलार्थ—कही पर यमुना के जल मे पडता हुआ चन्द्रमा का प्रतिबिम्ब अति शोभायमान हो रहा है। कभी वह बिम्ब चचल लहरो मे नाचता हुआ-सा मन को बहुत ही अच्छा लगता है। मानो चन्द्रमा श्री कृष्ण के दर्शन करने के लिए जल में निवास करता शोभायमान हो रहा है, अथवा चन्द्रमा किरणरूपी हाथो मे लहरो का दर्पण लिए शोभायमान हो रहा है। अथवा ऐसा प्रतीत होता है कि रास रचाते कृष्ण का सुन्दर मुकुट जल में झलक रहा है अथवा यमुना के जल के हृदय में स्थित प्रभु की मूर्ति प्रतिबिम्बित हो रही है।

काव्य-सौष्ठव—यमुना के जल मे उठती हुई तरगो के मध्य चन्द्रमा के प्रतिबिम्ब के अनेक स्वरूपो का कवि ने अच्छा निरीक्षण किया है। इसमें कल्पनाओं का चमत्कार है। इसमे सदेह अलकार है।

> मनु जुग पच्छ प्रतच्छ होत मिटि जात जमुन-जल।
> कै तारागन ठगन लुकत प्रगटत ससि अविकल॥
> कै कालिन्दी नीर तरंग जितो उपजावत।
> तितनो ही धरि रूप मिलन हित तासों धावत॥
> कै बहुत रजत चकई चलत कै फुहार जल उच्छरत।
> कै निसिपति मल्ल अनेक विधि उठि-बैठत कसरत करत॥

प्रसग—पूर्व-निर्दिष्ट पद्य के समान ही है।

सरलार्थ—चन्द्र बिम्ब के कभी दिखाई देने और कभी छिप जाने से ऐसा

प्रतीत होता है कि दोनो पक्ष (कृष्ण पक्ष और शुक्ल पक्ष) यमुना के जल मे प्रकट होते हैं और फिर लुप्त हो जाते हैं। अथवा तारो को ठगने के लिए चन्द्रमा कभी प्रकट होता है और कभी छिप जाता है। अथवा यमुना के जल में जितनी तरगे उठती है, चन्द्रमा भी उतने ही रूप धारण करके उससे (जल से) मिलने के लिए आता है। अथवा चाँदी की अनेक चकई (एक प्रकार का गोल खिलौना) इधर से उधर चल रही है अथवा जल की फुहारे उछल रही हैं। अथवा चन्द्रमा रूपी पहलवान अनेक प्रकार से उठ बैठ कर कसरत कर रहा है।

काव्य-सौष्ठव—इसमे कल्पना का चमत्कार तथा उत्प्रेक्षा और रूपक अलकार है।

चारहु आश्रम बर्न बसैं मनि कंचन धाम अकास विभासिका।
सोभा नहीं कहि जाय कछू विधि ने रची मानो पुरीन की नासिका॥
आपु बसै गिरधारन जू तट, देव नदी बर वारि विलासिका।
पुन्य प्रकासिका पाप बिनासिका हीय हुलासिका सोहत कासिका॥

प्रसंग—प्रस्तुत अवतरण श्री भारतेन्दु हरिश्चन्द्र द्वारा रचित 'काशी महिमा' शीर्षक कविता से उद्धृत किया गया है। इसमे कवि ने काशी की महिमा का वर्णन किया है। कवि ने काशी को पापनाशिनी तथा मुक्तिदात्री बताया है।

सरलार्थ—काशी मे चारो वर्णो (ब्राह्मण, वैश्य, क्षत्रिय, शूद्र) के व्यक्ति निवास करते है। यहाँ पर चारो आश्रमो (ब्रह्मचर्य, गृहस्थ, वानप्रस्थ, सन्यास) का पालन किया जाता है। मणिकाचनमय धाम आकाश मे सुशोभित हो रहे है। इसकी शोभा का वर्णन नही किया जा सकता। ऐसा प्रतीत होता है मानो परमात्मा ने सब नगरो की नाक (प्रतिष्ठा बढाने वाली) के रूप में इसकी सृष्टि की है। स्वय कृष्ण भगवान् इसके तट पर निवास करते है। इसमे देवनदी (गगानदी) बहती है, अठखेलियाँ करती है। दर्शन, निवास आदि से पुण्यो को प्रकट करने वाली, पापो को नष्ट करने वाली तथा अपनी शोभा से दर्शको के हृदय को प्रसन्न करने वाली काशी नगरी शोभायमान है।

चपला की चमक चहुँधा सो लगाई चिता
चिनगी चिलक पटबीजना चलायो है।
हेती बगमाल स्याम बादर सुभूमिकारी
बीरबधू लहू बूँद भुव लपटायो है॥
हरीचन्द नीर धार आँसू सी परत जहाँ
दादुर को सोर रोर दुखिन मचायो है।
दाहन बियोग दुखियन को मरे यह
देखो पापी पावस मसान बनि आयो है॥

प्रसंग—प्रस्तुत अवतरण श्री भारतेन्दु हरिश्चन्द्र द्वारा रचित 'पावस वर्णन' शीर्षक कविता से उद्धृत किया गया है। कवि ने इसमें वर्षा का सुन्दर वर्णन किया है। सुन्दर वर्षा ऋतु जहाँ सर्व सुखकारी है, वहाँ वह विरहणियों के लिए महा दुःखदायिनी भी होती है। कवि विरह-विदग्धों के समक्ष वर्षा का वर्णन करते हुए कहता है कि :—

सरलार्थ—बिजली की चमक ही चारों ओर से सुलगाई गई चिता है। इधर-उधर घूमने वाले पटबीजने (जुगनू) ही उसकी चिनगारियाँ हैं। भूमि को उपजाऊ बनाने वाले श्याम मेघ ही मानो चिता की काली भूमि (श्मशान भूमि) है और वहाँ पर घूमने वाली बगुलों की पंक्तियाँ ही सगे सम्बन्धी हैं। चारों ओर घूमती हुई बीर बहूटी की खून की बूँदें पृथ्वी पर टपकी हुई हैं। कवि हरिश्चन्द्र जी कहते हैं कि जलधार इस प्रकार पड रही है जैसे अश्रुधारा पड़ती है। मेढकों का शोर मृतक के लिए रोने वालों का क्रन्दन-सा प्रतीत हो रहा है। यह पापी वर्षा ऋतु विरह की मारियों को जलाने के लिए श्मशान बन कर आई है।

काव्य-सौष्ठव—यह कवित्त कवि की रीतिकालीन परम्परा के अनुसरण का एक उदाहरण है। इसमें कवि की कल्पना-शक्ति का अच्छा परिचय प्राप्त होता है। उपमा और रूपक दो अलंकारों का इसमें प्रयोग हुआ है।

श्रीधर पाठक

धन्य नदी-नद्-स्रोत, विमल गगोद्-गोत जल।
सीतल सुखद समीर, वितस्ता तीर स्वच्छ जल ॥
धनि उपवन, उद्यान, सुमुन-सुरभित वन-वीथी।
खिलि रहि चित्र-विचित्र, प्रकृति के हाथनु-चीती।

प्रसग—प्रस्तुत अवतरण श्रीधर पाठक द्वारा रचित 'काश्मीर सुषमा' शीर्षक कविता से उद्धृत किया गया है। कवि ने इसमे काश्मीर की नदियो तथा वहाँ के पुष्पित उद्यानो का बहुत सुन्दर वर्णन किया है।

सरलार्थ—काश्मीर की रम्य भूमि पर बहने वाली नदियो, नालो तथा स्रोतो को धन्य है। इनका जल भी गगाजल के ही वश का है। कवि के यहाँ पर दो आशय हो सकते है—१. इन नदियो का जल भी वही से आता है जहाँ से गगाजल और २ दूसरा आशय यह हो सकता है कि इनका जल गगाजल की भाँति पवित्र है। यहाँ पर शीतल तथा सुखद (सुख देने वाली) वायु चलती है। वितस्ता नदी का तट अत्यन्त निर्मल भूमि है। यहाँ के बाग-बगीचे तथा पुष्पो से सुगन्धित वन मार्ग सभी धन्य है। इनमे रग-बिरगे पुष्प खिले रहते है और ऐसा प्रतीत होता है मानो स्वय प्रकृति ने अपने हाथो से इसे चित्रित किया हो।

काव्य-सौष्ठव—इसमे अतिशयोक्ति अलकार है, शब्द सौकुमार्य प्रशसनीय है।

काकौ उपमा उचित, दैन दोउन में काकी।
याकौं सुरपुर की' अथवा सुरपुर कौं याकी।
याकौं उपमा याही की मोहि देत सुहावै।
या सम दूजो ठौर सृष्टि में दृष्टि न आवै ॥

प्रसंग—प्रस्तुत पक्तियाँ श्रीधर पाठक द्वारा रचित कविता 'काश्मीर सुषमा' मे से उद्धृत की गई है। कवि काश्मीर के अनुपमेय सौंदर्य का वर्णन करते हुए कहता है कि:—

सरलार्थ—काश्मीर और स्वर्ग मे से किसकी उपमा किससे देनी चाहिए ? काश्मीर की स्वर्ग से अथवा स्वर्ग की काश्मीर से उपमा दी जाय। (कवि

इसी दुविधा मे पड़कर सोचता है कि यदि वह काश्मीर की उपमा स्वर्ग से देता है तो काश्मीर का सौंदर्य न्यून होता है, जो कि उचित नहीं है और यदि स्वर्ग की उपमा काश्मीर से दी जाय, तो काश्मीर स्वर्ग से श्रेष्ठ ठहरता है। कवि को यह भी अनुचित प्रतीत होता है क्योंकि जिस स्वर्ग को किसी ने देखा ही नहीं उसके विषय में कोई निश्चित विचार कैसे बनाया जा सकता है।) अन्त में कवि यही निश्चय करता है कि काश्मीर की उपमा काश्मीर से ही देना उचित है, क्योंकि इसके समान सुन्दर स्थान दूसरा तो समस्त विश्व में दिखाई नहीं देता है।

काव्य-सौष्ठव—इसमें कवि ने व्यंजना से काश्मीर को स्वर्ग से भी श्रेष्ठ माना है। इसमे संदेह तथा असम अलंकार है।

यही स्वर्ग सुरलोक, यही सुरकानन सुन्दर।
यही अमरन कौ ओक, यही कहुँ बसत पुरन्दर॥
ताहि रसिकवर सुजन अवसि अवलोकन कीजै।
मम समान मन मुग्ध ललकि लोचन-फल लीजै॥

प्रसंग—पूर्व-निर्दिष्ट पद्य के समान ही है।

सरलार्थ—कवि कहता है कि स्वर्ग लोक तथा देवताओं का सुन्दर वन (नन्दनवन) आदि जो कुछ भी है वह यही (काश्मीर) है। यही देवताओं का आवास है, देवता यही पर विहार करते हैं। यहीं पर पुरन्दर (इन्द्र) निवास करता है। हे रसिकवर (सहृदयजनों)! काश्मीर को अवश्य देखिए और मेरी भाँति अपने उत्सुक हृदय को उसके सौंदर्य से मुग्ध करो और अपने नेत्रों को सफल करो।

काव्य-सौष्ठव—अतिशयोक्ति अलंकार है।

अयोध्यासिंह उपाध्याय "हरिऔध"

ऊँचे-ऊँचे शिखर चित्त की उच्चता हैं दिखाते।
ला देता है परम दृढ़ता मेरु आगे दृगों के॥
नाना-क्रीड़ा-निलय-झरना चारु छींटे उड़ाता।
उल्लासों को कुँवर-वर के चक्षु में ल्याता॥

फूली सन्ध्या परम-प्रिय की कान्ति सी है दिखाती।
मैं पाती हूँ रजनि-तन में श्याम का रंग छाया॥
ऊषा आती प्रति-दिवस है प्रीति से रंजित्व हों।
पाया जाता वर-वदन सा ओप आदित्य में है॥

प्रसंग—प्रस्तुत अवतरण श्री अयोध्यासिंह उपाध्याय 'हरिऔध' द्वारा रचित कविता 'राधा का विवेक' मे से उद्धृत किया गया है। सृष्टि के पर्वतादि उपकरण श्रीकृष्ण जी के गुणो के उपमान है। यह सूचित करती हुई राधा कहती है कि—

सरलार्थ—पर्वतो के उच्च शिखर अपनी ऊँचाई के द्वारा श्री कृष्ण जी को हृदय की उच्चता (महानता) को प्रकट करते हैं। सुमेरु पर्वत अपनी अडिगता से हमारे नेत्रो के सामने श्रीकृष्ण जी के दृढ (अडिग) स्वभाव को उपस्थित करता है। अनेक क्रीडाओ का गृह पर्वत से गिरने वाला झरना छीटो की वर्षा करता हुआ श्रेष्ठ कृष्ण के विनोदो को हमारे नेत्रों के सामने ले आता है अर्थात् झरने की क्रीडा को देखकर हमे श्रीकृष्ण जी की लीलाओ का स्मरण हो आता है। विकसित कान्ति वाली सन्ध्या प्यारे श्रीकृष्ण के सौंदर्य का स्मरण कराती है। काली रात्रि के शरीर मे मुझे कृष्ण का ही श्याम वर्ण छाया हुआ दिखाई देता है। उषा प्रति दिन प्रेम से रगी हुई आती है, उसमे कृष्ण के ही राग की लालिमा है। सूर्य मे भी उनके सुन्दर मुख के समान ही तेज पाया जाता है।

काव्य-सौष्ठव—स्मरण अलकार है। इसमे श्रीकृष्ण के गुणो का स्मरण है।

जो होता है हृदय-तल का भाव लोकोपतापी।
छिद्रान्वेषी, मलिन, वह है तामसी वृत्तिवाला।
नाना भोग्यकलित, विविधा-वासना-मध्य डूबा।
जो है स्वार्थाभिमुख वह है राजसी-वृत्ति-शाली॥

निष्कामी है भव-सुखद है और है विश्व-प्रेमी।
जो है भोगोपरत वह है सात्विकी-वृत्ति-शोभी।

ऐसी ही है श्रवण करने आदि की भी व्यवस्था।
आत्मोत्सर्गी, हृदय-तल की सात्विकी वृत्ति ही है॥

(पंजाब बी० ए०, अप्रैल १६५८)

प्रसंग—प्रस्तुत पद अयोध्यासिंह उपाध्याय द्वारा लिखित "राधा का विवेक" शीर्षक कविता में उद्धृत किया गया है। इस पद में कवि ने भावों के तामस, राजस और सात्विक स्वरूपों का निरूपण किया है।

व्याख्या—मन का जो भाव संसार को दुःखदायक, दूसरों में दोष निकालने वाला तथा कलुषित होता है, उसे तमोगुण प्रधान स्वभाव का कहते हैं। जो भाव अनेक प्रकार के विषय भोगों में आसक्त हो तथा अनेक भोगों की कामनाओं में लिप्त हो, जो स्वार्थ के कारण प्रवृत्त हुआ हो, ऐसा प्रेम भाव राजस या रजोगुण प्रधान कहलाता है। जो भाव स्वार्थ रहित है, जगत् मात्र के लिए सुख पहुँचाने वाला है, संसार भर के प्रति जिसमें स्नेह हो, जो इस विषयोपभोग से हटा हुआ है, वह सत्त्वगुण प्रधान चेष्टाओं से शुभ होता है, अर्थात् ऐसा भाव सत्त्वगुण प्रधान कहलाता है। जिस प्रकार से मानसिक भाव सत्त्व रजस्तम से सम्बन्ध रखने के कारण त्रिविध होते हैं, इसी प्रकार सुनने देखने आदि ऐन्द्रिय व्यापारों का भी सात्विक, राजस, तामस इन तीन वृत्तियों में विभाजन है। जिसमें अपने सुख का त्याग हो, दूसरे के लिए अपने आपको त्याग देना हो, वह मानसिक व्यापार सात्विक ही कहलाता है।

जगन्नाथदास रत्नाकर

ल्याइ मनि मन्दिर बिठाइ पद चंदन कैं,
आगैं धरि धवल परात पूरे पाते सौं।
कहै रत्नाकर सुदामा कौ संकोच सोचि,
कछु छलकारि बोल रुचि-रस-राते सौं॥
बेगि घनस्याम कृपा-कामिनि दिखाइ आनि,
ठानि यह रीति प्रीति-नीति के सुनाते सौं।
एक पग जौ लौं रुकमिनि जल पारयौ सीत,
तौ लौं आप दूसरौ पखारयौ आँसु ताते सौं॥

प्रसंग—प्रस्तुत पद जगन्नाथदास रत्नाकर द्वारा रचित 'सुदामाष्टक' शीर्षक कविता से अवतरित है। कवि ने प्रस्तुत पद में श्रीकृष्ण के मित्र-प्रेम, दयालुता, आग्रह, उदारता, अतुल वैभव, अतिथि सत्कार तथा निरहकारता की सुन्दर अभिव्यक्ति की है।

व्याख्या—श्रीकृष्ण जी सुदामा जी को रत्नजटित महल मे ले गए और उन्हे चन्दन की चौकी पर बैठाकर उनके सामने जल से भरी हुई चाँदी की सफेद परात लाकर रखी। कवि कहता है कि प्रिय एव सुख भरे कुछ वचन कह कर सुदामा की अपने पैर धुलाने की झिझक को किसी प्रकार दूर किया। शीघ्र ही बादल के सदृश श्याम वर्ण वाले श्रीकृष्ण ने आकर अपनी दयारूपी बिजली दिखाई अर्थात् अपनी करुणा प्रकाशित की। उन्होंने प्रेम मार्ग का शुभ सम्बन्ध निभाते हुए सत्कार का यह मार्ग अपनाया। त्रिलोकीनाथ होते हुए अपने हाथो सुदामा के पैर धोकर उन्होंने प्रेम मार्ग के निभाने का यह आदर्श मार्ग स्थापित किया। जब तक रुक्मिणी ने सुदामा का एक चरण ठण्डे पानी से धोया, तब तक इन्होंने गर्म-गर्म आसुओ से दूसरा पैर धो दिया।

हेरत न नैंकु पौरिया कैं नम्र टेरत हूं,
कहत अबै ना सुर-सदन सिधै है हम ॥
कहै रतनाकर सुघर घरनी त्यौ आइ,
पाइ गहि बोली चलौ संसय सिरै है हम ॥
वैभव निहारि निरधारि पुनि हेत विप्र,
बदत विचारि सिद्धि केतिक कमै हैं हम ॥
तदुल दै बदलौ चने कौ तो चुकायो कछू,
संपति इतीक कौ प्रतीक कहाँ पै हैं हम ॥

प्रसंग—प्रस्तुत पद जगन्नाथदास रत्नाकर द्वारा लिखित "सुदामाष्टक" शीर्षक कविता से उद्धृत किया गया है। ऋद्धि-सिद्धियो के जाते ही सुदामा-पुरी का नक्शा ही बदल गया। झोपडी के स्थान पर सुदामा जी का महल खडा हो गया और वहा पर द्वारपाल और दास-दासियो की भीड लग गई। ब्राह्मणी (सुदामा की पत्नी) भाँति-भाँति के आभूषण पहने हुए थी। सुदामा उस महल में प्रवेश करने से झिझकते थे। कवि ने प्रस्तुत पद मे उस समय

की सुदामा की दशा का वर्णन किया है।

व्याख्या—द्वारपाल के नम्रतापूर्वक बुलाने पर भी सुदामा उस महल की ओर देखते भी नही थे। वे कहते थे कि हम अभी से देवलोक नही चलेंगे (सुदामा को भ्रम हुआ कि वह देवलोक का भवन है)। इसीलिए उन्होंने कहा कि अभी हमारी आयु शेष है, अभी स्वर्ग जाना नही चाहते। कवि कहता है कि उस समय सुदामा की पत्नी ने वहाँ आकर अपने पति के पाँवो मे पडकर कहा कि अन्दर चलिए, मैं तुम्हारा सारा सन्देह दूर कर दूँगी। सुदामा जी ने भीतर जाकर समस्त धन-सम्पत्ति देखकर यह निश्चय किया कि अवश्य ही यह श्रीकृष्ण की कृपा का फल है। सुदामा जी ने इस समस्त सम्पत्ति को देखकर यह विचार किया कि यह उनके (श्रीकृष्ण के) प्रेम का ही परिणाम है। यह सोचकर वे कहने लगे कि इससे हम कितनी सिद्धि पायेंगे अर्थात् इससे हमे कितना लाभ होगा। आज ये चावल देकर पहले चनो का तो थोड़ा ही बदला उतरा था, परन्तु इतनी सम्पत्ति के बदले में देने के लिए कोई वस्तु हमे कहाँ से मिलेगी अर्थात् हम इसका बदला कैसे चुकायेंगे ?

काव्य-सौष्ठव—इसमे कवि ने सुदामा के भ्रम, उनकी निस्पृहता, सकोच और निर्लोभता का सुन्दर वर्णन किया है। सुदामा के चरित्र की भी इसमे अच्छी अभिव्यक्ति हुई है।

सरग न चाहैं अपवरग न चाहैं सुनौ
भुक्ति मुक्ति दोऊ सौं विरक्ति उर आनैं हम।
कहै रतनाकर तिहारे जोग-रोग माँहि
तन मन साँसनि की साँसति प्रमानैं हम ॥
एक व्रजचन्द कृपा-मन्द-मुसकानि हीं मैं
लोक परलोक कौ अनन्द जिय जानैं हम।
जाके या वियोग-दुख हू मैं सुख ऐसौ कछु
जाहि पाइ ब्रह्म-सुख हू मैं दुख मानैं हम ॥

प्रसंग—प्रस्तुत पद में जगन्नाथदास रत्नाकर द्वारा लिखित "उद्धव के प्रति गोपियो का वचन" के पदो मे से अवतरित किया गया है। गोपियाँ वियोग मे ही प्रसन्न रहकर ब्रह्म प्राप्ति की अकिंचनता का भाव व्यक्त करती

हुई उद्धव से कहती है कि—

व्याख्या—हे उद्धव, न तो हमे स्वर्ग प्राप्ति की इच्छा है और न ही मुक्ति की। हम तो भोग तथा वैराग्य इन दोनो से ही अपने हृदय में वैराग्य धारण कर चुकी है। उनके कहने का तात्पर्य यह है कि उन्हे केवल भोग से ही वैराग्य नही है, अपितु उन्हे मोक्ष की भी इच्छा नही है। कवि कहता है कि गोपियाँ उद्धव से कहती है कि तुम्हारे इस योग रूपी रोग में हम तो शरीर, मन तथा साँसो का ही कष्ट मानती है अर्थात् तुम्हारा यह योग हमारी दृष्टि मे रोग है। इस योग रूपी रोग मे शरीर और मन को तो कष्ट देना ही पडता है। परन्तु इसके साथ साँस भी घोटना पडता है। हम तो ब्रज के चन्द्रमा श्री कृष्ण जी की दया की मद हँसी मे ही इहलोक तथा परलोक का आनन्द अपने मन मे अनुभव करती है। कृष्ण के विरह की इस वेदना मे भी ऐसा अद्भुत आनन्द प्राप्त होता है, जिस आनन्द को पाकर हमे तो ब्रह्मानन्द मे भी दु:ख का ही अनुभव होता है। अर्थात् कृष्ण वियोग की अनुभूति मे प्राप्त होने वाला सुख की तुलना में ब्रह्मानन्द भी दु ख देने वाला प्रतीत होता है।

काव्य-सौष्ठव—इस पद मे गोपियो ने कृष्ण के प्रेम को ही सर्वस्व बताया है और उनके प्रेम के सामने ब्रह्म प्राप्ति को ही तुच्छ बताकर कृष्ण के प्रति अपनी दृढ निष्ठा व्यक्त की है।

मैथिलीशरण गुप्त

कितने खग-मृग-कूकर बिडाल,
रखते हो तुम सप्रेम पाल,
ये तो फिर भी हैं मनुज बाल,
बन सकते हैं गोपाल-लाल,
क्या बहुत तुम्हें है तनिक प्यार?
ले लो ये शिशु कोई उदार।

प्रसंग—प्रस्तुत पद मैथिलीशरण गुप्त द्वारा लिखित "भू-भ्रष्ट" शीर्षक कविता से उद्धृत किया गया है। कवि कहता है कि यदि धनाढय व्यक्ति यह कहे कि हमारे ऊपर तो पहले ही सन्तान का उत्तरदायित्व है, फिर भला हम

एक बोझ और अपने ऊपर क्यो ले, तो इसके उत्तर में दीन भू-भ्रष्ट प्रार्थी कहता है कि—

व्याख्या—हे धनवानो ! तुम तो कितने ही पक्षी, हिरन, कुत्ते तथा बिल्लियाँ प्रेमपूर्वक पाल कर रखते हो ! जब तुम उनको पालते हो, तो फिर ये तो मानव शिशु है और बडे होकर ये भी गोपाल अर्थात् नन्द के दुलारे कृष्ण बन सकते है अर्थात् ये कृष्ण की भाँति महान् बन सकते है। अधिक क्या कहे ? क्या इतना कहने पर भी तुम्हारे हृदय में इन दीन बच्चो के प्रति प्रेम उत्पन्न हुआ है ?

काव्य-सौष्ठव—इस पद मे कवि ने धनवानो पर चोट करते हुए बताया है कि वे बिल्ली-कुत्ते पालने मे सहस्त्रो रुपये व्यय करके अपना शौक पूरा करते है, परन्तु वे समाज के दुःख-पीडित तथा असहाय दीन शिशुओ को नहीं पालते, उनके प्रति अपनी तनिक दया भी नही दिखाते हैं। इस प्रकार मानव आज पशु से भी अधिक गिर गया है।

यह आर्द्र-शुष्क, यह उष्ण-शीत,
यह वर्त्तमान, यह तू व्यतीत !
तेरा भविष्य क्या मृत्यु-भीत ?
पाया क्या तू ने धूम-धाम ?
ओ क्षण भंगुर भव, राम राम !

प्रसग—प्रस्तुत पद श्री मैथिलीशरण गुप्त द्वारा लिखित "महाभिनिष्क्रमण" शीर्षक कविता से उद्धृत किया गया है। सांसारिक विषयो की अनित्यता को व्यक्त करता हुआ कवि प्रस्थानोन्मुख सिद्धार्थ के मुख से कहलवाता है कि—

व्याख्या—ससार के द्वन्द भी दुःख के कारण है। यह गीला-सूखा और यह गर्म-ठंडा सभी अवास्तविक है अर्थात् जो अभी गीला था वह अब सूखा है, जो अभी गर्म था वह अब शीतल है, तू अभी तो प्रत्यक्ष विद्यमान था, परन्तु अभी बीत गया। जो वस्तु अभी कुछ देर पूर्व थी वह अब नहीं है और जो अब है वह कुछ देर पश्चात् नहीं होगी। इस प्रकार प्रत्येक सासारिक वस्तु नश्वर तथा अस्थायी है। ऐसी दशा में हे मृत्यु से भयभीत प्राणी ! क्या

कभी तू ने यह सोचा है कि तेरा अन्त क्या होगा ? परिणाम मे तेरी क्या दशा होगी ? तू ने इस ससार मे वार-वार जन्म लेकर और मर कर यहाँ क्या पाया है अर्थात् तुझे क्या लाभ हुआ है ? यहाँ पर बार-वार आना व्यर्थ ही रहा है। तेरा इससे छूटने में ही कल्याण है। इसलिए हे नश्वर ससार ! तुझ से विदा।

आ, मित्र-चक्षु के दृष्टि लाभ,
ला, हृदय विजय-रस वृष्टि-लाभ,
पा, हे स्वराज्य, बढ सृष्टि-लाभ,
जा दण्ड-भेद, जा साम-दाम।
ओ क्षण भगुर भव, राम राम !
तव जन्मभूमि, तेरा महत्त्व,
जब मैं ले आऊँ अमृत तत्त्व।
यदि पा न सके तू सत्य-सत्त्व,
तो सत्य कहाँ ? श्रम और श्राम !
ओ क्षण भंगुर भव, राम राम !

प्रसग—पूर्व-निर्दिष्ट पद के समक्ष ही है।

व्याख्या—सिद्धार्थ कहते है, "हे मित्र के नेत्रो के दर्शनो की प्राप्ति अर्थात् मित्र भाव से देखने की भावना, तू आ जा और तू अन्य व्यक्तियो के हृदय पर विजय प्राप्त होने से होने वाली प्रेम की वर्षा का लाभ ला। हे स्वराज्य ! तुम भी समस्त सृष्टि को प्राप्त करो। दण्ड, भेद-भाव (फूट उत्पन्न करने वाली नीति), साम-दाम तुम सब चले जाओ अर्थात् दूसरो को वश मे करने या जीतने के लिए साम-दाम, दण्ड-भेद की नीति का प्रयोग न हो , यहाँ पर केवल मित्रता की प्रधानता रहे। हे नश्वर ससार तुझ से विदा।

हे मातृ-भूमि ! तेरा महत्त्व तभी है जबकि मै अमरता का रहस्य ले आऊँ। यदि तुझे भी सत्य का सार प्राप्त न हो सके, तो फिर सच्चाई कहा प्राप्त होगी अर्थात् कही नही। फिर तो यह केवल धोखा तथा इधर-उधर भटकना ही है। कहने का तात्पर्य यह है कि सत्य का अस्तित्व मातृ-भूमि के आश्रय मे ही प्राप्त हो सकता है। मातृ-भूमि ही सत्य की जननी है।

हे नश्वर संसार ! तुझ से विदा !

जगती वणिग्वृत्ति है रखती,
उसे चाहती जिससे चखती;
काम नहीं, परिणाम निरखती, मुझे यही खलता है।
दोनों ओर प्रेम पलता है।

प्रसंग—प्रस्तुत पद मैथिलीशरण गुप्त द्वारा लिखित "दोनो ओर प्रेम पलता है" शीर्षक कविता से उद्धृत किया गया है। आत्म-बलिदान का भाव त्याग कर लोग प्रिय से अपने प्रेम का प्रतिदान चाहते हैं। ऐसे व्यक्ति वास्तव मे स्वार्थी हैं। इसी आशय को लेकर उर्मिला कहती है—

व्याख्या—इस संसार मे रहने वाले सभी व्यक्ति स्वार्थी हैं। उनका व्यापारी का स्वभाव है। वे उसी को प्रिय समझते हैं, जिसमे उन्हें कुछ रस प्राप्त होता है। मुझे यही बात अखरती है कि ससार मे लोग काम को नहीं देखते कि उन्हें क्या करना चाहिए और क्या नहीं, वे तो केवल उसके परिणाम को देखते है कि उससे उन्हे क्या लाभ होता है। मैं मानव की इस स्वार्थी मनोवृत्ति को बुरा समझती हूँ। प्रेम मे आत्म-समर्पण का भाव होना आवश्यक है। जहाँ सच्चा भाव होता है, वही हृदयो में प्रेम का विकास होता है।

आशय यह है कि सच्चा प्रेमी प्रतिपादन नहीं चाहता है, वह तो स्वयं अपने प्रेम की ज्योति से प्रकाशमान रहता है। जो लोग फल की आशा रख कर प्रेम करना चाहते हैं, और साधना नहीं करना चाहते, वे स्वार्थी हैं, प्रेमी नही हैं।

काव्य-सौष्ठव—इस पद मे कवि ने बताया है कि सच्चा प्रेम वह है जो पूर्ण रूप मे निस्वार्थ भाव मे हो।

जयशंकर प्रसाद

मेद-बुद्धि निर्मम ममता की
समझ, बची ही होगी,
प्रलय पयोनिधि की लहरें भी
लौट गई ही होंगी।

अपने मे सब कुछ भर कैसे
व्यक्ति विकास करेगा ?
यह एकान्त स्वार्थ भीषण है
अपना नाश करेगा।

प्रसंग—प्रस्तुत पक्तियाँ श्री जयशकर प्रसाद जी की कविता 'व्यष्टि और समष्टि' से अवतरित है। जब मनु भाग्य के विरुद्ध सघर्ष करके तथा अपनी शक्ति द्वारा पुरुषार्थ करके सुख प्राप्त करने को ही मानव का कर्त्तव्य बताता है, तब श्रद्धा मनु पर तीक्ष्ण व्यग्य करती हुई कहती है कि देवो की आत्मपरता के कारण ही प्रलय हुई किन्तु अभी तुम्हारा अह भाव दूर नही हुआ।

व्याख्या—अहमूलक छोटे-बडे के भेद-भाव की अभी समाप्ति नही हुई होगी। इस भेद-भाव को समाप्त करने के लिए ही प्रलयकालिक सागर ने समस्त सृष्टि को जलमय किया। परन्तु जब अपना उद्देश्य पूर्ण न होता देखा, तो वे लहरें वापिस चली गई होगी।

एक ही व्यक्ति समाज की सारी सत्ता, समस्त अधिकारो तथा सुखो को अपने आप में भर कर या केन्द्रित करके अपनी प्रगति कैसे कर सकेगा ? यह तो एक बहुत भारी तथा भयानक स्वार्थपरता है। ऐसा स्वार्थी बनकर तो वह अपना सर्वनाश कर लेगा।

भाव यह है कि एक व्यक्ति के लिए समाज के समस्त सुखो को अपने लिए केन्द्रित करना उसकी बडी भारी स्वार्थपरता है और ऐसी स्थिति में मानव का विकास नही हो सकेगा।

ये मुद्रित कलियाँ दल मे सब, सौरभ बंदी कर लें।
सरस न हो मकरन्द बिन्दु से, खुल कर तो ये मर लें।
सूखें, झडें और तब कुचले, सौरभ को पाओगे ,
फिर आमोद कहाँ से मधुमय, वसुधा पर लाओगे ?
सुख अपने संतोष के लिए, संग्रह मूल नहीं है ;
उसमे एक प्रदर्शित जिसको, देखें अन्य वहीं है।

(पजाब बी० ए०, अप्रैल १९५७)

प्रसग—पूर्व-निर्दिष्ट पद के समान ही है।

व्याख्या—पुष्पो का उदाहरण देकर विवक्षित अर्थ का स्पष्टीकरण करती हुई श्रद्धा कहती है कि यदि पुष्पो की मुँदी हुई कलियाँ अपनी पंखुड़ियो मे ही समस्त सुगन्धि को वन्द कर लें और उसे वाहर न जाने दें, तो ऐसी दशा मे खिल कर भी कभी ये मधु सीकरो से पूर्ण न हों और नष्ट हो जायें। (फूल यदि सुगन्धमय तथा मकरन्दपूर्ण न हो, तो वे विकसित नहीं हो पायेंगे और नष्ट हो जायेंगें।) पहले ये पुष्प सूख कर नीचे गिर पड़ेंगे, फिर उनकी सुगन्धि पैरो के नीचे कुचली जायगी अर्थात् सूखकर गिर पड़ने तथा पैरो के नीचे कुचले जाने से पुष्प की सुगन्धि समाप्त हो जायगी। फिर रस-भरी सुगन्ध पृथ्वी पर कहाँ मिलेगी ? ठीक इसी प्रकार समस्त सुखो को अपने आप मे केन्द्रित करने से मानव को लाभ नही हो सकता। सुख अपनी तृप्ति के साधनो का सग्रह करने से नही होता, जिसमे दूसरो के सामने प्रदर्शन का भाव हो, जिसको दूसरे लोग भी देख सकें और अनुभव कर सकें, वही वस्तुत सुख है; अर्थात् जो सवको अच्छा लगे, वही सुख है।

निर्जन में क्या एक अकेले तुम्हें प्रमोद मिलेगा ?
नहीं इसी से अन्य हृदय का कोई सुमन खिलेगा।

प्रसंग—पूर्व-निर्दिष्ट पद के समान है।

व्याख्या—श्रद्धा कहती है कि क्या तुम सबसे पृथक एकान्त मे रहकर सुख प्राप्त कर सकोगे ? क्या ऐसा करने से किसी अन्य का मन रूपी पुष्प विकसित हो सकेगा अर्थात् कोई प्रसन्न हो सकेगा ?

आशय यह है कि अकेले रहने से न सुख प्राप्त होगा और न किसी दूसरे को।

सागर लहरों सा आलिंगन
निष्फल उठकर गिरता प्रतिदिन
जल वैभव है सीमा-विहीन
वह रहा एक कन को निहार,
धीरे से वह उठता पुकार—
मुझको न मिला रे कभी प्यार !

प्रसंग—प्रस्तुत पद्य श्री जयशंकर प्रसाद जी की कविता "चिरतृषित कंठ

से तृप्त-विधुर'' मे से लिया गया है। समाज से उपेक्षित व्यक्ति जिसको कभी भी किसी से प्रेम प्राप्त नही हुआ, कहता है कि —

व्याख्या—प्रतिदिन सागर मे ऊँची-ऊँची लहरे ऊपर उठती है, परन्तु वे गगन का आलिंगन करने मे असफल होकर नीचे गिर पडती है। उनमे तो जल का अनन्त ऐश्वर्य है, परन्तु यह अकिंचन उस अनन्त जल राशि की ओर न देखकर केवल एक जल विन्दु की ओर देख रहा है। वडी-वडी लहरें तो ऊपर उठ जाती है, परन्तु एक जल कण ऊपर उठकर नीचे गिर कर रह जाता है। इस जल कण को देखकर वह पीडित व्यक्ति भी व्यथित हो कर कह उठता है कि मुझे कभी भी किसी से प्रेम प्राप्त नही हुआ।

काव्य-सौष्ठव—कवि ने प्रस्तुत पद मे मानव के विकास के मूलतत्त्वो पर विचार किया है और उच्च वर्ग द्वारा जो निम्न वर्ग की उपेक्षा होती है उस पर खेद प्रकट किया है। इसमे अन्योक्ति अलकार है।

तव लहरों सा उठ कर अधीर तू मधुर व्यथा-सा शून्य चीर,
सूखे किसलय-सा भरा पीर, गिर जा पतझड का सा समीर।
पहने छाती पर तरल हार।
पागल पुकार फिर प्यार प्यार !

प्रसग —प्रस्तुत पद श्री जयशकर प्रसाद द्वारा लिखित कविता "काली आँखो का अन्धकार" मे से उद्धृत किया गया है। कवि कहता है कि किसी की काली कजरारी आँखो से जो अन्धकार वरसता है वह स्वर्गिक आभाओ से भी सुन्दर होता है। नयनो का कजरारापन ही प्यार को जगाता है। सौदर्य प्रिय कलाकार तो उन्ही नेत्रो के मधुर अन्धकार को पीकर मतवाला हो जाता है। जव प्रेयसी की कज्जल भूषित आँखे प्रिय के हृदय पर प्रभाव डाल जाती है, उस समय प्रेमी की जो दशा होती है, उसका वर्णन करता हुआ कवि कहता है कि—

व्याख्या —उस समय तू (प्रेमी) अधीर होकर लहरो की तरह उठ कर, सभल कर, मादक-सज्ञाहीन करती हुई वेदना की तरह मन को और गगन को को चीर कर मर-मर की ध्वनि करते हुए शुष्क पत्र के तुल्य पीडा से पूर्ण हो कर पतझड़ की वायु पा कर वक्षस्थल पर आँसुओ का हार पहने हुए वेसुध-

सा हो कर गिर कर और दीवाना होकर प्यार-प्यार कह कर पुकार।

कवि के कहने का आशय यह है कि जिस प्रकार विकल लहरें ऊपर को उठती हैं, उसी प्रकार तू भी प्रबुद्ध हो। जिस प्रकार रह-रह कर उठने वाली वेदना हृदय को चीर देती है, इसी प्रकार तू भी अपने स्वर से आसमान को चीर कर गुंजा दे। जिस प्रकार पतझड़ में वायु के झोंके से सूखा पत्ता गिर जाता है, इसी प्रकार तू भी वेदना से भर कर मूर्छित हो कर गिर जा। उस समय तेरे सीने पर अश्रुओं का हार हो और तेरे मुख से प्यार-प्यार की आवाज निकल रही हो।

काव्य-सौष्ठव—इसमें कवि ने प्रेम की वेदना का मार्मिक चित्रण किया है।

अरी व्याधि की सूत्र धारिणी!
अरी आधि, मधुमय अभिशाप!
हृदय गगन में धूमकेतु सी,
पुण्य सृष्टि में सुन्दर पाप।
मनन करावेगी तू कितना?
उस निश्चिन्त जाति का जीव,
अमर मरेगा क्या? तू कितनी
गहरी डाल रही है नींव।

काव्य-सौष्ठव—मनु को चिन्ता के भय के कारण इस पद मे घोर निराशा हुई है।

सूर्यकान्त त्रिपाठी 'निराला'

"तम के अमार्ज्य रे तार-तार
जो, उन पर पडी प्रकाश-धार,
जग वीणा के स्वर के वहार रे, जागो,
इस कर अपने कारुणिक प्राण
कर लो सूक्ष्म ठेदीप्यमान—
दे गीत विश्व को रुको, दान फिर मांगो"

प्रसंग—प्रस्तुत पद सूर्यकान्त त्रिपाठी 'निराला' द्वारा रचित "तुलसी का ज्ञान वोध" शीर्षक कविता से उद्धृत किया गया है।

व्याख्या—कवि कहता है कि ससार में अज्ञानरूपी अन्धकार के कभी भी न मिटने वाले जाल थे, उन पर प्रकाश की धारा पडी और वे छिन्न-भिन्न हो गये। अब इन नयी झकृत होने वाली तुलसीदास की वाणी रूपी वीणा के स्वर-सदेशों की वहार! तुम जागो अर्थात् तुम सब स्थानो पर फैल जाओ। अपने एक हाथ मे ससार के प्रति दयापूर्ण प्राणो को लेकर और ससार को जगत् के हृदय परिवर्तन मे समर्थ उज्ज्वल गायन देकर अर्थात् सदेश देकर ही रुको। तत्पश्चात् दान माँगो अर्थात् कुछ प्राप्त करने की इच्छा करो।

काव्य-सौष्ठव—इसमे कवि ने रूपक अलकार द्वारा अज्ञानान्धकार के सूत्रो के नाश का सुन्दर वर्णन किया है।

'तुम तु ग हिमालय शृंग, और मैं चंचल-गति सुर सरिता।
तुम विमल हृदय उच्छ्वास, और मैं कान्त कामिनी कविता॥

प्रसंग—प्रस्तुत अवतरण सूर्यकान्त त्रिपाठी 'निराला' की रहस्यवादी कविता "तुम और मैं" से अवतरित है।

व्याख्या—कवि कहता है, "हे भगवान् यदि आप हिमालय के ऊँचे शिखर है, तो मैं उस हिमालय से निकलने वाली चचल गति वाली देवनदी गगा हूँ। हे प्रभो! आप यदि निर्मल हृदय के उच्छ्वास—आह और आहो से व्यक्त

होने वाले भाव हैं, तो मैं सुन्दर कविता कामिनी हूं।"

भाव यह है कि जिस प्रकार हिमालय का शिखर सर्वोच्च है, उसी प्रकार वह पारब्रह्म भी सर्वोच्च है। जिस प्रकार हिमालय दृढ, एकरस और स्थायी है, वैसे ही वह पारब्रह्म भी स्थिर, एकरस और अविचल है। जिस प्रकार गंगा हिमालय से निकलती है और वह सदा नीचे की ओर प्रवाहित होती है, उसी प्रकार आत्मा का विकास भी पारब्रह्म से हुआ है। वह सदैव आवागमन के प्रवाह मे प्रवाहित रहती हुई अधोमुखी चलती है। हिमालय भारत के भाल का मुकुट है, तो गंगा उसके चरणों को पखारती है। ब्रह्म शीर्षस्थानीय है तो जीव उसके चरणो का उपासक या पादस्थानीय है। हृदय की भावना के समान वह ब्रह्म भी निर्गुण निराकार है। किन्तु जिस प्रकार भावना से व्यक्त कविता का विकास होता है, वैसे ही ब्रह्म से इस आत्मा का प्रादुर्भाव होता है। परमात्मा अव्यक्त है और आत्मा कविता के समान व्यक्त। यहाँ भक्त और भगवान् का सम्बन्ध भी इन प्रतीको से प्रतिपादित हुआ है।

तुम प्रेम और मैं शान्ति, तुम-सुरा-पान-घन अन्धकार।

मैं हूं मतवाली भ्रान्ति।

प्रसंग—पूर्व निर्दिष्ट पद के समान है।

व्याख्या—हे भगवान् ! यदि आप पवित्र प्रेम के समान व्यापक और आनन्ददायक है, तो मै हृदय मे पवित्र प्रेम के प्रकाश हो जाने पर प्राप्त होने वाली शांति हूं। आप शराब पीने से उत्पन्न हुए नशे के घने अंधेरे के समान हैं, तो मैं मादकता से युक्त भ्रम हूँ। जिस प्रकार अन्धकार अथाह और अज्ञेय होता है, वैसे ही वह पारब्रह्म भी सर्वथा अज्ञेय तथा अथाह है, उसे कोई भी जान नही सकता कि वह क्या और कैसा है। वेदान्त के सिद्धांत के अनुसार ब्रह्म ही सत्य है। जीव और ब्रह्म की भेद-भावना मिथ्या भ्रान्ति पर ही आधारित है, इसलिए यहा आत्मा को भ्रान्ति कहा गया है, किन्तु इस भ्रान्ति मे भी एक आनन्द है, मस्ती है, इसलिए उस भ्रान्ति [illegible] मतवाली दिया गया है।

तुम आशा के मधुमास और मैं पिक-कल-कूजन तान,
तुम मदन पंच-शर-हस्त और मैं हू मुग्धा अनजान।
तुम अम्बर, मैं दिग्वसना, तुम चित्रकार, घनपटल श्याम,
मैं तड़ित तूलिका रचना।
(पजाब बी० ए०, सितम्बर १६५७)

प्रसंग—पूर्वोक्त पद के समान है।

व्याख्या—हे भगवन्! तुम मिलन की आशा को जाग्रत करने वाले वसत हो और मै उसमे गूँजने वाली कोयल की मधुर तान हूँ। तुम पॉच बाणो को धारण करने वाले कामदेव हो और मैं हाव-भाव न जानने वाली मुग्धा-नायिका हू। (मुग्धा-नायिका सोलह वर्षीया किशोरी होती है जो कि स्त्रियो के हाव-भाव अर्थात् नाज़ नखरे नही जानती है और न ही उसे भाव प्रकाशन करना आता है।) हे भगवन्! तुम वस्त्र हो और मैं उसकी इच्छा करने वाली नग्ना हूँ। तुम नीले घन-समूह रूप चितेरे हो और मैं बिजली रूपी कूँची से खींची हुई रेखा हूँ।

इस पद्यांश मे कवि ने आत्मा और परमात्मा का भावुकतामय सम्बन्ध दिखाया है। कोयल वसत में मतवाली हो जाती है, इसी प्रकार आत्मा भी परमात्मा के लिए तडप उठती है। काम और मुग्धा का शिकारी और शिकार जैसा सम्बन्ध होता है। यहाँ परमात्मा के अनुराग से आत्मा का विह्वल होना सूचित किया है।

तुम रण-ताण्डव-उन्माद नृत्य, मैं मुखर मधुर नूपुर-ध्वनि,
तुम नाद-वेद ओंकार सार, मैं कवि शृंगार शिरोमणि।
तुम यश हो, मैं हूं प्राप्ति, तुम कुन्द-इन्दु-अरविन्द शुभ्र,
तो मैं हूं निर्मल व्याप्ति।
(प्रभाकर, जून १६५४)

प्रसग—पूर्व निर्दिष्ट पद के समान।

व्याख्या—कवि प्रकृति का प्रतिनिधित्व करता हुआ कहता है, "हे भगवन्! तुम यदि भयानक युद्ध की विभीषिका प्रकट करने वाले प्रलयकर का उन्मादपूर्ण नृत्य हो तो मैं भी आवाज करने वाली नूपुर की मीठी स्वर

लहरी हूँ और यदि तुम वेद गान के तत्व रूप ओंकार हो तो मैं भी श्रेष्ठ शृंगार का वर्णन करने वाला कवि हूँ। (तुम से मैं कहीं भी पृथक नहीं हूँ। मेरा अस्तित्व तुम्हारे ही लिए है)। यदि तुम कीर्ति हो, तो मैं उनकी प्राप्ति हू (तुम्हारी प्रभा से ही मैं प्रकाश पाती हूँ, किन्तु मेरा जीवन तुम्हारे लिए ही होता है।) यदि तुम शुभ्रता के प्रतीक, निर्मलता की प्रतिमा, कुन्द पुष्प, चन्द्रमा और श्वेत कमल हो तो मैं उनका विकास हूँ (मैं तुम्हारी छाया बनकर चलने वाली हूँ)।

काव्य-सौष्ठव—जिन शाश्वत ऐकात्म्य का कवि ने चित्रण किया है, वह अद्वैत का परिचायक है। भावों का प्रवाह गिरि-निर्झर की भांति अबाध आगे बढता है।

कौन तम के पार ·· ·· ···· द्रवित जल नीहार। (पृष्ठ ४४)

(पंजाब बी० ए०, अप्रैल १९५८)

प्रसंग—यह निराला जी की एक रहस्य-भावना पूर्ण कविता है। कवि यह जिज्ञासा प्रकट करता हुआ कि इस अन्धकार सेपरे क्या है, कहता है कि—

व्याख्या—यह बताओ कि इस अन्धकार-स्वरूप ससार के दूसरे किनारे पर इसकी सीमा के पार क्या है ? समस्त पलों (समय के अंशों) का उद्गम, जो काल चक्र है वह, यह प्रकाशमान ससार और यह आकाश से गिरती हुई मेघों की मूसलाधार वर्षा, इन सबके पार क्या है ? अर्थात् इन सबसे परे कोई शक्ति अवश्य है और वह क्या है ?

कवि आगे कहता है कि सौरभमय सरोवर के तट बीच खिले कमलों के मुख पर लहरों की केशराशि बिखेर कर प्रसन्न मन भौंरा जो अपने स्पर्श रूपी बाण से कमल पर की जल बिन्दु को दूर करके बार-बार गूँजता है, क्या यह सत्य है ? क्या यह सारपूर्ण है अथवा वास्तविक सत्य कुछ और ही है ? अर्थात् प्रकृति में जो अद्भुत सौंदर्यमय व्यापार देखने में आता है, क्या इसमें कुछ वास्तविकता है ?

उन्नति के समय निराशारूपी अन्धकार का निराकरण हो जाता है। जब वे सुख के दिन समाप्त हो जाते हैं, जीवन के उस भाग में कोमल पलकें बन्द हो जाती हैं (क्योंकि दुःखी मानव नेत्र मूँद कर उदास हो बैठ जाता है),

रात्रि को प्रिय के हृदय से लगकर सुखपूर्वक सोना, इनमे कुछ तत्व है या ये सभी बातें निरर्थक हैं ? अर्थात् उन्नति के समय मे तो लोगो के नेत्र चमक उठते है, परन्तु पतन के समय वे शोक मे डूब जाते है। रात्रि को समस्त चिन्तायें भुलाकर प्रिय या प्रिया के सीने से लगकर सोते है, ये सभी व्यापर कुछ वास्तविकता लिए हुए है या सभी व्यर्थ है ?

कवि आगे कहता है कि इस ससार मे जिस प्रकार शांति देने वाले जल की वृष्टि होती है, उसी प्रकार यहा पर धूप भी पडती है। यहाँ पर कलुषित हृदय भी है और सुकुमार मन वाले मित्र भी है। यहाँ एक ओर वज्र की भाँति कठोर अमगल के बाण हैं, तो दूसरी ओर कल्याण के। यहा पर पिघलता जल भी है और वर्फ भी है। परन्तु इन सब मे सत्य क्या है, उसका ज्ञान कराओ। अर्थात् इस ससार में सुख-दुःख, शुभ-अशुभ, सभी कुछ है। इसमें सत्य क्या है और असत्य क्या है, इसका ज्ञान कराओ।

अस्ताचल रवि, जल छलछल-छवि, स्तब्ध विश्वकवि, जीवन उन्मन,
मन्द पवन बहती सुधि रह-रह, परिमल की कह कथा पुरातन।
दूर नदी पर नौका सुन्दर, दीखी मृदुतर बहती ज्यो स्वर,
वहाँ स्नेह की प्रतनु देह की, बिना देह की बैठी नूतन।
ऊपर शोभित मेघ छत्र सित, नीचे अमित नील जल दोलित;
ध्यान-नयन-मन, चिन्त्य प्राण-धन, किया शेष रवि ने कर अर्पण।

प्रसग—प्रस्तुत कविता में कवि ने नदी तटवर्ती सायकालिक दृश्य का वर्णन किया है।

व्याख्या—सूर्य अस्त गिरि को जा रहा है। जल अस्तगामी सूर्य की लाल-लाल किरणो के प्रतिबिम्ब से शोभायमान हो रहा है। इस सौंदर्य को देखकर ससार रूपी काव्य का कर्ता विधाता भी आश्चर्य चकित होकर निश्चल है। जीवन उदास है (दिन के विराम से मन में उदासीनता आ गई है)। धीमी-धीमी वायु बह रही है। वह प्राचीन सुगन्ध की कहानी कह कह कर उसकी याद दिला रही है। दूर नदी में सुन्दर छोटी नाव इस प्रकार दिखाई देती है जैसे जलधारा पर किसी का कंठ स्वर तैर रहा हो। वहाँ उस नाव पर कोई प्रणय की प्रतिमा, पतला शरीर रखे (मानो बिना देह की ही हो) एक सुन्दरी

बैठी हुई है। उस सुन्दरी के ऊपर आकाश में श्वेत मेघ रूपी छत्र शोभायमान हो रहा है और नीचे अपार नीला जल समूह लहरा रहा है सुन्दरी का मन और नेत्र अपने प्राणवल्लभ के ध्यान मे लीन है। सूर्य ने भी शेष किरण रूपी हाथ भेंट कर दिये अर्थात् सूर्य अस्त हो गया।

उदयशंकर भट्ट

कम चौड़ी दीवार दुर्ग सा
लम्बा एक पथ जीवन का,
जिसके दायें बायें गहरा
मोहक सागर बहा जलन का।

कोई एक हज़ारों में ही
पार पथ कर पाता मानव,
बाकी फिसल-फिसल कर सारे
चिल्लाते कराहते जब-तब।

प्रसंग—प्रस्तुत पद्यांश श्री उदयशंकर भट्ट द्वारा रचित कविता 'विवेचन' में से उद्धृत किया गया है। कवि मानव जीवन को एक दुर्गम पथ बताते हुए कहता है कि—

व्याख्या—मानव का जीवन लम्बा परन्तु एक ऐसी कम चौड़ी दीवार जिस पर कोई कठिनता से ही चल सके, की भाँति है। इस जीवन रूपी दीवार की दाईं तथा बाईं ओर अर्थात दोनों ओर जलन का लुभाने वाला गहरा सागर बहता है। कवि के कहने का तात्पर्य यह है कि जीवन मे आकर्षणों तथा अभावों के सागर है। मानव दीन अवस्था मे तो अभावों के कारण दुखी रहता है और जब उसके पास धन होता हो तो उसे उसकी रक्षा की प्रत्येक समय चिन्ता रहती है। इस प्रकार मानव किसी भी दशा मे सुखी व सन्तुष्ट नहीं है।

कवि आगे कहता है कि सहस्रों मनुष्यों में एक-आध ही इस कठिन मार्ग को पार कर पाता है। शेष सभी व्यक्ति इस मार्ग मे प्रलोभनों की ओर फिसल कर गिर पड़ते है और उनमे पड़कर चिल्लाते तथा आहें भरते हैं।

एक नदो की क्या बिसात है
मुझे प्यास है उदधि सुरा की,
इन प्राणो में आग भरी है
मेरे प्राण आग है साकी।

प्रसग—प्रस्तुत पक्तियाँ श्री उदयशकर भट्ट द्वारा लिखित कविता "नव निर्माण" मे से उद्धृत की गई हैं। कवि ने प्रस्तुत पद्याश मे बताया है कि एक-आध शोपक से बदला लेने से कोई लाभ नही होगा। हमे तो समस्त समाज को ही परिवर्तित करना है।

व्याख्या—कवि कहता है कि एक नदी की क्या हस्ती है, मुझे तो सुरा के सागर को पीने की इच्छा है। हे साकी! मेरे प्राणो मे असन्तोष की अग्नि भरी हुई है और मेरे प्राण तो अग्नि ही बन चुके है।

कवि के कहने का आशय यह है कि समाज के ठेकेदार ये पूँजीपति यदि मुझे कुछ प्रलोभन दे, तो भी मैं क्रान्ति की बात करूँगा, क्योकि मैं अपने एक के लिए वैभव तथा ऐश्वर्य नही चाहता, मुझे तो समस्त ससार के लिए सम्पत्ति चाहिए।

लहरो की मांगें सँवार कर,
ईंगुर देने क्षितिज चला है,
कलियो के सुहाग पर अर्पित,
करता शशि का हृदय गला है।

(प्रभाकर, नवम्बर १९५९)

प्रसंग—पूर्ववत्।

व्याख्या—यह क्षितिज दिशा रूपी सुन्दरी की लहरो की माग संवार कर उसमें सध्या की लालिमा रूपी सिंदूर भर रहा है और चन्द्रमा का यह पिघला हुआ हृदय अपने आप को फूलो की कलियो के सुहाग पर समर्पित कर रहा है।

भाव यह है कि रात्रि के समय पुष्पो की कलियो पर जो ओस की बूदें दिखाई देती है, वे ओस की बूंदे नही है, प्रत्युत चन्द्रमा का हृदय गल कर

समर्पित हो गया है और दिशा रूपी सुन्दरी की माँग भी प्रभात और सन्ध्या की अरुणिमा से भरी जा रही है। इस प्रकार प्रकृति आशा और प्रेम का संदेश देने लगी है। इससे ज्ञात होता है कि भविष्य अवश्य ही सुखद होगा।

काव्य-सौष्ठव—यहाँ रूपकातिशयोक्ति अलंकार है।

रजनी के ओठों से मेरी वीणा का स्वर वह निकला है,
डोरीहीन इन्द्रधनुष से विजय निमंत्रण मुझे मिला है।

प्रसंग—पूर्ववत्

व्याख्या—रात्रि के ओठों (सन्ध्या और उषा) से भी मेरी ही वीणा के स्वर निकल रहे हैं और यह जो डोरी से रहित इन्द्रधनुष खिंचा हुआ है, वह मुझे विजय के लिए प्रोत्साहित कर रहा है कि मैं उठूँ और सब प्रकार की आशा और निराशाओं को दूर भगा कर मैं विजय के लिए कमर कस लूँ।

मैंने देखा धधक रही है आग धर्म में आडम्बर की,
मैंने देखा धधक-धधक कर आग प्राण के भीतर सरकी।

प्रसंग—पूर्ववत्। प्रगतिवाद के अनुसार धर्म भी पूँजीवाद और साम्राज्यवाद का पोषक है। इसलिए उसके विरोध में कवि कहता है कि :—

व्याख्या—मैंने यह देखा है कि धर्म में आडम्बरों (दिखावों तथा ढोंगों) की अग्नि प्रज्ज्वलित हो रही है अर्थात् धर्म बाह्य आचार तथा पाखण्ड से पूर्ण हैं। मैंने यह भी देखा है कि यह असन्तोष की अग्नि सुलग-सुलग कर मेरे प्राणों के अन्दर चली गई है अर्थात् प्राणों में रम गई है। मुझे धर्म के पाखण्ड पर भी क्रोध आ रहा है।

सुमित्रानन्दन पन्त

आत्मा है सरिता के भी, जिससे सरिता है सरिता।
जल जल है, लहर लहर रे, गति गति, सृति सृति चिर-भरिता!

प्रसंग—प्रस्तुत पद सुमित्रानन्दन पन्त द्वारा लिखित "जीवन-रहस्य" शीर्षक कविता में उद्धृत किया गया है। नदी के प्रवाह से ही पुनः आत्मा की निरन्तर गतिशीलता का ज्ञान होता है। इसी आशय को लेकर कवि कहता है कि—

व्याख्या—नदी को सरिता कहते है और सरिता का अर्थ है गमन वाली। गमन वाली अर्थात् गतिशील होने का अर्थ यह होता है कि वह चेतन है अचेतन नही। इसलिए नदी को आत्मा तत्त्व से युक्त मानना पडेगा। जल जल ही है, लहर लहर हे, गति गति है और चिरकाल से धारण किया गया आगे बढने का स्वभाव रूप जो सृति है, वह पृथक् है।

कवि के कहने का आशय यह है कि जल की सत्ता पृथक् है। वह तरल पदार्थ है। वह जल स्वय जड या अचेतन है, परन्तु उसने उठने वाली लहरें उसकी चेतना का द्योतक है, क्योकि चेतन वस्तुओ मे ही विभिन्न अवस्थाओ मे एक हलचल होती है, जिसे क्षोभ कहते है। अचेतन वस्तुओ मे क्षोभ नही हो सकता। गति इस क्षोभ की उत्तरावस्था है। इसका आशय है जडता के विरुद्ध विद्रोह। गति से दूसरी अवस्था सरण अर्थात् आगे सरकना है। इस प्रकार जल, लहर, गति और सृति चारो का अर्थ समान नही है। जल को लहर या सरिता नही कहा जा सकता। इसी प्रकार प्राण धारण करने मात्र से ही जीवन नही कहा जा सकता है।

काव्य-सौष्ठव—इसमे कवि ने बडी कुशलता से उदाहरण के द्वारा जीवन के लिए विकासशील होना आवश्यक बताया है। यह अर्थान्तर सक्रमित वाच्य ध्वनि का अच्छा उदाहरण है।

सागर-संगम में है सुख, जीवन की गति में भी लय;
मेरे क्षण-क्षण के लघु कण, जीवन-मय से हों मधुमय!

प्रसंग—पूर्ववत्।

व्याख्या—कवि कहता है कि सागर और नदियो के मिलन में सुख है। इसी प्रकार जीवन की निरन्तर गति मे भी एक सगीत है। इसलिए मेरे जीवन का एक-एक क्षण और क्षण के भी छोटे अश जीवन के सगीत से पूर्ण हो।

कवि का आशय यह है कि सागर मे जल की गम्भीरता है और नदियो में प्रवाह और लहरो की चचलता है। सागर मे जाकर जल की गति रुक जाती है, परन्तु नदी मे उसका प्रसार होता है। तभी उसे सरिता कहते हैं। जीवन मे भी गति का प्रसार इसी प्रकार होता है। जीवन मे विकास होना

अति आवश्यक है। जीवन और मृत्यु, सुख और दुःख, प्रसाद और अवसाद इनका अकेले पृथक्-पृथक् अस्तित्व वाञ्छनीय नहीं है, उसमें कोई रस नहीं है, परन्तु दोनो का समन्वय सुखदायक हो सकता है।

आएगी मेरे पुलिनों पर
वह मोती की मछली सुन्दर,
मैं लहरों के तट पर बैठा
देखूँगा उसकी छवि जी भर !

प्रसंग—प्रस्तुत पद सुमित्रानन्दन पन्त जी की कविता "जीवन सरिता" से लिया गया है। कवि कहता है कि मुझे जीवन रूपी सागर मे डूबने से तो डर लगता है, इसलिए मैं उस आत्म तत्त्व रूपी सुन्दर मछली के हृदय रूपी तट पर आने की प्रतीक्षा करता रहूँगा और जब वह मुझे दिखाई देगी तो फिर मै उसके आनन्द मे मग्न हो सब कुछ भूल जाऊँगा।

व्याख्या—वह आत्म तत्त्व रूपी मोती वाली सुन्दर मछली जब मेरे हृदय पर स्वय ही आयेगी, उस समय मैं लहरो के किनारे पर बैठा हुआ उसके सौंदर्य को मन भर कर देखूँगा।

भाव यह है कि जब उस आत्म-तत्त्व का मेरे मन में प्रकाश होगा, तब मैं सभी भावो से पृथक् होकर, उदासीन न होकर उसका पूर्ण रूप से आस्वादन करूँगा।

काव्य-सौष्ठव—उक्ति-वैचित्र्य तथा भाव सौंदर्य दोनो ही दृष्टि से प्रस्तुत कविता बहुत सुन्दर है। इसमे रूपक योजना बहुत सफल हुई है। अन्तिम पद मे रूपकातिशयोक्ति है।

वह निर्विकल्प चेतना शृंग उठ स्वर्ग क्षितिज से भी ऊपर,
अन्तर्नीरव में समाधिस्थ अपनी ही सत्ता पर निर्भर !
वह ज्यों असीम सौंदर्य अमर जो तृण-तृण पर से रहा निखर,
वह रोमांचित आनन्द, नृत्य करता विमुग्ध भव जिस लय पर !

प्रसग—प्रस्तुत अवतरण सुमित्रानन्दन पन्त की कविता "हिमाद्रि और समुद्र" मे से लिया गया है। कवि ने इस पद में हिमालय के अन्तर्निगूढ आन-

न्दात्मक स्वरूप का वर्णन किया है।

व्याख्या—यह हिमालय पर्वत निर्विवाद चैतन्य रूप का शिखर है। यह स्वर्ग के क्षितिज से भी ऊँचा उठा हुआ है और यह आन्तरिक उच्चता मे ध्यानमग्न होकर अपनी ही सत्ता पर निर्भर है। हिमालय का अनन्त शाश्वत सौंदर्य प्रत्येक तृण, वृक्ष आदि से भासित हो रहा है। उसका यह सौंदर्य उस पुलकमय उल्लास के समान है जिसकी तान पर ससार मुग्ध होकर मस्ती मे नाचने लगता है।

काव्य-सौष्ठव—उत्प्रेक्षा एव रूपक अलकार है।

वह महाकाल सा रे, अलाघ्य,
जो शाश्वत स्वर्ग मर्त्य प्रहरी,
यह महादिशा सा ही अकूल
जिसमे विराट् संसृति लहरी!
हिमगिरि की गहराई ऊँची
सागर की ऊँचाई गहरी
छाया-प्रकाश की संसृति के
जीवन-रहस्य में है छहरी!

प्रसंग—पूर्ववत्। कवि ने इस एक ही पद मे हिमालय की उच्चता के कारण महानता तथा सागर की अथाह गहराई के कारण महानता का वर्णन किया है।

व्याख्या—कवि कहता है कि दोनो (सागर तथा हिमालय) महान् हैं। यदि हिमालय पर्वत महाकाल की भाति अलघ्य है अर्थात् लाघा नही जा सकता और वह सदैव ही स्वर्ग तथा पृथ्वी का प्रहरी अर्थात् रक्षक रहा है, तो उधर यह सागर भी महादिशा (व्यापक दिशा एकाकाश) की भाँति तटहीन है और इसमे विराट् ससार लहरा रहा है। हिमालय पर्वत की उच्चता गहन है तो सागर की गहराई बहुत अधिक है और इन्ही गुणो के कारण इनकी महानता है। दोनो की गहनतामय उच्चता तथा उच्च गहनता छाया और प्रकाश वाले इस ससार के जीवन तत्त्व मे फैली है।

काव्य-सौष्ठव—यह पद कवि की चिन्तनशीलता एवं भाव गरिमा का एक उदाहरण है।

अहे वासुकि सहस्रफन !

लक्ष अलक्षित चरण तुम्हारे चिन्ह निरंतर
छोड़ रहे हैं जग के विक्षत वक्ष-स्थल पर !
शत-शत फेनोच्छ्वसित, स्फीत फूत्कार भयंकर
घुमा रहे हैं घनाकार जगती का अम्बर !
मृत्यु तुम्हारा गरल दन्त, कन्चुक कल्पान्तर !
अखिल विश्व ही विवर
वक्र कुण्डल
दिङ्मण्डल !

प्रसंग—प्रस्तुत पद सुमित्रानन्दन पंत द्वारा लिखित 'निष्ठुर परिवर्तन' शीर्षक कविता से उद्धृत किया गया है। कवि इस पद में परिवर्तन पर सर्पराज वासुकि का आरोप लगाकर कहता है कि विध्वंस आदि सब कुछ उसी की फुंकार के कारण होता है।

व्याख्या—कवि कहता है कि हे सहस्रों फन वाले सर्पराज वासुकि ! तुम्हारे लाखों गुप्त पैर सदा जगत् के आहत वक्ष पर अपने चिन्ह छोड़ते जाते हैं। जिस प्रकार सर्प के लाखों पैर होते हैं, परन्तु वे दिखाई नहीं देते हैं और जिस व्यक्ति को काटकर सर्प उसकी छाती पर होकर निकलता है तो वह अपने पैरों के चिन्ह छोड़ जाता है, इसी प्रकार काल चक्र भी विध्वस्त संसार में अपने चिन्ह छोड़ जाता है। अनेक रूप से विध्वंस करने के कारण ही वह सहस्रों फण वाला कहलाता है। तुम्हारी सैकड़ों उठी झाग वाली लम्बी भयानक फुंकारें मेघों के रूप में इस पृथ्वी के आसमान को—इस पृथ्वी के वातावरण को घुमा रही हैं, चक्कर खिला रही हैं। मृत्यु ही तुम्हारा विषैला दन्त है, जिससे तुम संसार का विध्वंस करते हो। दूसरा कल्प बदलना तुम्हारी केंचुली है अर्थात् जिस प्रकार सर्प एक केंचुली छोड़ कर दूसरी धारण कर लेता है, ठीक इसी प्रकार तुम भी एक कल्प को नष्ट करके दूसरे कल्प की सृष्टि करते हो। समस्त विश्व तुम्हारा बिल है। दसों दिशाएँ तुम्हारा टेढ़ा कुण्डल

है। जिस प्रकार सर्प कुण्डली बाँधता है, उसी प्रकार दसो दिशाओ का गोल समूह तुम्हारी कुण्डली है।

काव्य-सौष्ठव—यहाँ सांग रूपक है। कवि ने काल चक्र मे सर्प का आरोप सुन्दर रूप से निभाया है।

अहे दुर्जेय विश्वजित्!

नवाते शत सुरवर, नरनाथ
तुम्हारे इन्द्रासन-तल माथ,
घूमते शत-शत भाग्य अनाथ
सतत रथ के चक्रों के साथ!

तुम नृशंस नृप-से जगती पर चढ़ अनियन्त्रित,
करते हो संसृति को उत्पीडित, पद मर्दित;
नग्न नगर कर, भग्न भवन, प्रतिमाएँ खण्डित,
हर लेते हो विभव, कला, कौशल चिर संचित!
आधि, व्याधि, बहुवृष्टि, वात, उत्पात, अमंगल,
वह्नि, बाढ, भूकम्प, तुम्हारे विपुल सैन्य दल,
अरे निरंकुश! पदाघात से जिनके विह्वल
हिल-हिल उठता है टलमल
पद-दलित धरातल।

प्रसंग—पूर्ववत्। इस पद मे कवि ने समय चक्र की विश्वविजयी राजा से उपमा दी है।

व्याख्या—हे अजेय तथा विश्वविजयी! सैकडो देवता तथा बादशाह तुम्हारे सिंहासन के नीचे अपना मस्तक झुकाते है अर्थात् उनके मस्तक तुम्हारे चरणो मे झुकते है। तुम्हारे रथ के पहियो के साथ सदैव उनके सैकडो असहाय भाग्य घूमते रहते है। तुम निर्दय राजा की भाँति ससार पर चढाई करते हो और समस्त ससार को सताते हो और पैरो के नीचे रौंद डालते हो। नगरो को उजाड कर नगा कर देते हो, महलो को नष्ट कर डालते हो, प्रतिमाओ की भी तोड-फोड डालते हो, और इस सहार मे बहुत दिनो से एकत्रित किए हुए ऐश्वर्य, कलाओ और शिल्प-नैपुण्य को छीन लेते हो।

मानसिक तथा शारीरिक रोग, अधिक वर्षा, आंधी, अशुभ उपद्रव, अग्नि काण्ड, बाढ़, भूचाल, ये सब तुम्हारी एक विशाल सेना है। हे निरकुश ! इन सैनिकों की लातों के प्रहार से व्याकुल तथा इनके पैरो से रौंदा हुआ यह भूमण्डल हिलकर विचलित हो जाता है।

कवि के यह कहने का तात्पर्य यह है कि जिस प्रकार एक महान् शक्तिशाली राजा आक्रमण करके सब कुछ नष्ट कर देता है और विजित को एक भयकर विपत्ति में डाल देता है, ठीक इसी प्रकार कुसमय भी रोग, भूकम्प, बाढ़ अग्निकाण्ड, तूफान आदि से ससार को नष्ट कर डालता है और वहाँ विध्वस मचा देता है। इस कुसमय के चक्र से देवता तथा मनुष्य कोई भी नहीं बच सकता है।

काव्य-सौष्ठव—इसमे रूपक अलकार है।

जगत का अविरत हृत्कंपन
तुम्हारा ही भय-सूचन;
निखिल पलकों का मौन पतन
तुम्हारा ही आमन्त्रण !
विपुल वासना विकच विश्व का मानस शत-दल
छान रहे तुम, कुटिल काल कृमि-से घुस पल-पल,
तुम्हीं स्वेद सिंचित संसृति के स्वर्ण शस्य-दल
दलमल देते, वर्षोपल बन वांछित कृषिफल !
अये सतत ध्वनि-स्पन्दित जगती का दिङ्मण्डल
नैश गगन सा सकल

भाति क्षण-क्षण में अनेक प्रकार की इच्छाओ से विकसित ससार के हृदय रूपी कमल को छेद देते हो अर्थात् तुम मनुष्यो के आशा भरे मन को निराशा के सागर मे डुबो देते हो। तुम्ही कृषक के रक्त से सिंचित, उसके मनचाही खेती के फलस्वरूप उत्पन्न सुनहरे धान्य को अचानक ओले बनकर नष्ट कर डालते हो। हे काल-चक्र! सदैव शब्दो से गूँजित जो पृथ्वी का एक-एक कौना है, वह रात्रि के समस्त अधकारमय आकाश की भाँति तुम्हारा ही समाधि मदिर है, अर्थात् जिस प्रकार रात्रि के समय चारो ओर निस्तब्धता छा जाती है, इसी तरह जब सदा मनुष्यो से पूर्ण भूप्रदेश वीरान हो जाता है तो समझ लेना चाहिए कि वहा पर काल ने समाधि लगाई हुई है।

काव्य-सौष्ठव—कवि ने प्रस्तुत पद मे काल-चक्र को बहुत ही निर्दय तथा विध्वसकारी के रूप मे चित्रित किया है। इसमें उत्प्रेक्षा रूपक तथा उपमा अलकार है।

अये, एक रोमांच तुम्हारा दिग्भू-कंपन,
गिर गिर पडते भीत पक्षिपोतों से उडुगन,
आलोडित अम्बुधि फेनोन्नत कर शत-शत फन,
मुग्ध भुजगम-सा, इंगित पर करता नर्तन!
दिक्-पिंजर में बद्ध, गजाधिप-सा विनतानन,
वाताहत हो गगन
आर्त करता गुरु गर्जन!

प्रसग—पूर्ववत्। कवि ने इस पद में बताया है कि काल-चक्र से चेतन ही नही, अपितु जड प्रकृति भी भयभीत होती है।

व्याख्या—हे परिवर्तन! तुम्हारा रोमाचित होने अर्थात् आनन्द से पुलकित होने से समस्त दिशायें तथा भूमि काँप उठती है। जिस प्रकार किसी भयकर गर्जन या बाज आदि के आक्रमण से डर कर पक्षियो के बच्चे अपने घोसलो से गिर पडते है, उसी प्रकार आसमान से तारे टूट-टूट कर नीचे गिर जाते है। लहरो से मथा हुआ सागर भी ऊँची-ऊँची लहरे उठाता हुआ झाग से ऊँचा उठा हुआ मानो सैकडो फण उठाए मन्त्र से वशीभूत सर्प की तरह तेरे सकेत पर नृत्य करता है। आसमान रूपी गज दिशाओ रूपी पिंजरे मे बधा हुआ

तथा आँधी रूपी चाबुक से तडित हो मुख नीचा किए हुए पीडित हो कर भयंकर गरजन करता है।

आशय यह है कि काल-चक्र के फेर में पड़कर समुद्र मे तूफान उठता है, आकाश में घनघोर गरजन होती है, उल्कापात होता है।

काव्य-सौष्ठव—इसमे उपमा तथा उत्प्रेक्षा अलंकार है।

यही तो है असार संसार,
सृजन, सिंचन, सहार !
आज गर्वोन्नत हर्म्य अपार,
रत्न दीपावलि, मन्त्रोच्चार,
उलूकों के कल भग्न विहार,
झिल्लियों की झनकार !
दिवस निशि का यह विश्व विशाल,
मेघ मारत का माया जाल !

प्रसंग—पूर्ववत्। इसमें कवि ने ससार की अनित्यता का वर्णन किया है।

व्याख्या—कवि कहता है कि असार अर्थात् तत्त्वहीन ससार यही तो है, जिसमे निर्माण, सिंचन अर्थात् पालन पोषण तथा सहार (नष्ट करना) ये ही तीन कार्य होते रहते है। आज अनेक शानदार एव गर्वशाली ऊँचे-ऊँचे महल खडे हुए हैं, उनमे रत्नो के दीपक प्रज्वलित हो रहे हैं, और मन्त्रो का उच्चारण किया जा रहा है, कल अर्थात् भविष्य मे ही वे महल उजड़ कर खण्डहर हो जायेंगे और वहाँ पर उल्लू निवास करेंगे और झिल्लियो की झनकार सुनाई देगी। दिन और रात्रि का यह ससार रूपी विशाल मेघ ही भारतवर्ष का माया प्रपंच है, अर्थात् भारतवर्ष मे इस ससार को वाष्प के प्रपच रूप मेघ के समान माया मात्र ही माना जाता है।

निस्तल यह जीवन-रहस्य
यदि थाह न मिले, वृथा है खेद !
सौ मुख से सौ बातें कह लें
लोग भले, तू रह अक्लेद !

प्रसंग—प्रस्तुत पंक्तियाँ सुमित्रानन्दन पन्त की 'हवाइयों' मे से अवतरित

की गई है। कवि ने इस पद में बताया है कि मानव जीवन के वास्तविक स्वरूप को विचार कर भी न जान सका।

व्याख्या—मानव जीवन का रहस्य बहुत गहन (गहरा) है। यदि इसके तल तक तू नही पहुँच पाया अर्थात् इसको नही समझ पाया, तो दु खी होना व्यर्थ है। चाहे लोग सौ मुखो से भी बाते कहें अर्थात् लोग चाहे इसके विषय में कितने ही प्रकार की बाते करे, परन्तु तू इससे पूर्णत अप्रभाविन ही रह।

आशय यह है कि जीवन का तत्त्व बहुत गूढ है। लोगो के तो जितने मुँह है, उतनी ही बातें है। तुझको उससे उदास अथवा निराश नही होना चाहिए।

सूक्ष्म हृदय इस मुक्ताफल को
कभी न कोई पाया बेध,
गोपन सत्य रहा नित गोपन,
भेद रहा चिर अविदित भेद !

प्रसंग—पूर्व-निर्दिष्ट पद के समान है।

व्याख्या—कवि कहता है कि इस जीवन रूपी मोती के अति सूक्ष्म हृदय को कोई भी नही बीध पाया है। सत्य जो कि गुप्त था वह गुप्त ही रहा, प्रकट न हो सका और जो रहस्य अज्ञात था, वह भी अज्ञात ही रहा। अत उसके न समझ पाने का दु.ख ही नही होना चाहिए।

काव्य-सौष्ठव—रूपक तथा रूपकातिशयोक्ति अलकार है।

बाहर भीतर ऊपर नीचे
जुटा अनन्त-समाज
मायामय की रंग भूमि मे
छाया अभिनय आज !

प्रसग—पूर्ववत्। इस पद मे कवि ने ससार को बाजीगर का खेल बताया है।

व्याख्या—कवि कहता है कि इस ससार मे बाहर-भीतर, ऊपर-नीचे अर्थात् पृथ्वी पर और इसके ऊपर चारो ओर अन्तरिक्ष मे अपरिमित सख्या में समाज एकत्रित है। यहाँ अनगिनत जातियाँ तथा प्राणी और नक्षत्र आदि जमा है। यह ससार नाटकीय क्रीडाक्षेत्र है और यहाँ पर जो भी कार्य हो रहे है, वे

सभी छायामय अभिनय है अर्थात् जिस प्रकार छाया नाटको मे रगमच पर पात्रो की केवल छाया ही दिखाई देती है, और वह छाया ही अभिनय करती है, ठीक इसी प्रकार यहा भी छायात्मक व्यापार हो रहे है। कवि के कहने का तात्पर्य यह है कि ससार मे जो भी कार्य हो रहे है, वे सभी किसी अदृश्य शक्ति के द्वारा हो रहे है। यहा (ससार मे) तो केवल उस शक्ति की छाया ही दिखाई देती है।

इन्द्रजाल का खेल हो रहा,
दीप सूर्य, ग्रह, चाँद,
स्वप्नाविष्ट खेलते सब जन
यहाँ सहर्ष-विषाद ।

प्रसग – पूर्ववत् ।

व्याख्या—कवि कहता है कि इस ससार मे जादू का खेल हो रहा है। यहाँ पर सूर्य, चन्द्रमा, तारे तथा नक्षत्र रूपी दीपक जल रहे है और सभी व्यक्ति प्रसन्न चित एवं उदास मन से स्वप्न देखते हुए से अपने-अपने खेल मे लीन है अर्थात् अपने-अपने कार्यों मे लगे हुए है।

कवि के यह कहने का आशय यह है कि सभी व्यक्ति अपने-अपने कार्यो मे लगे हुए हैं, परन्तु वे यथार्थ से अपरिचित है। उन सबको नचाने वाली शक्ति अदृश्य है।

रामकुमार वर्मा

तज नक्षत्रों से पूर्ण लोक,
आलोक छोड निज ज्योति रोक,
मेरी पृथ्वी, जो है मलीन,
जिसमें है पीडा, रुदन, शोक,
उसमें आने के हेतु न-जाने
क्यो इतनी यह ललचाई !

प्रसग—प्रस्तुत पद डा० रामकुमार वर्मा कृत 'चन्द्र-किरण' शीर्षक कविता मे उद्धृत किया गया है। प्रस्तुत कविता मे कवि चन्द्रकिरण को स्वर्गीय बाला के रूप में देखता है। इस पद मे यह जानना चाहता है कि वह संतापहीन दिव्य-

लोक को छोडकर इस दु खी ससार में क्यो आई है।

व्याख्या—कवि कहता है कि चन्द्रकिरण नक्षत्रो से पूर्ण लोक को त्याग कर, प्रकाश को छोडकर तथा अपनी दीप्ति को रोक कर, न जाने किस कारण से मेरी इस पृथ्वी पर जो कि निर्धनता से दु खी है, जहाँ पर पीडा, रोना, शोक आदि सभी कष्ट विद्यमान है, आने के लिए ललचाई है।

भाव यह है कि सभी दु खी तथा पीडित स्थान से सुख के स्थान को जाना चाहते है, परन्तु यह चन्द्रकिरण अपने सुखी लोक त्याग कर इस दु खी लोक में आई है। क्या यह यहाँ के दुःखो को हरना चाहती है ?

काव्य-सौष्ठव—सामसोक्ति अलकार है। भावना तथा कल्पना का सौंदर्य ही कविता की विशेपता है।

वह सरिता है—चली जा रही
है चंचल अविराम,
थकी हुई लहरों को देते
दोनों तट विश्राम।

मैं भी तो चलता रहता हूँ
निशि दिन आठो याम,
नहीं सुना मेरे भावों ने
'शान्ति-शान्ति' का नाम।

लहरों को अपने अंगो में
तट कर लेता लीन,
लीन करेगा कौन ? अरे,
यह मेरा हृदय मलीन॥

प्रसंग—प्रस्तुत पद्याश डा० रामकुमार वर्मा कृत 'अशान्त' नामक कविता से अवतरित किया गया है। कवि का हृदय अशान्त है और कही पर भी विश्राम नही मिल रहा है। अत वह कहता है कि —

व्याख्या - वह नदी निरन्तर विना रुके हुए चचल गति से प्रवाहित होती रहती है। नदी के दोनो किनारे थकी हुई लहरो को आराम देते है अर्थात् लहरे उठकर किनारे पर आकर रुक जाती हैं। कवि आगे कहता है कि इसी

प्रकार में भी निरन्तर चलता रहता हूँ अर्थात् प्रत्येक क्षण आठों प्रहर मेरे भावों में उथल-पुथल मची रहती है, वे कभी भी शांत नहीं होते हैं, उन्होंने तो कभी शान्ति का नाम तक भी नहीं सुना है। नदी में उठने वाली लहरों को तो किनारा अपने में मिला लेता है, परन्तु मेरे इसी उदास तथा कलुषित हृदय को अपने में कौन मिलायेगा अर्थात् कोई नहीं।

कहने का तात्पर्य यह है कि इस अशान्त हृदय को केवल उस विराट् सत्ता में मिलने पर ही शान्ति प्राप्त हो सकती है, अन्यत्र कहीं नहीं।

काव्य-सौष्ठव—इस पद में भावाभिव्यक्ति बहुत सुन्दर रूप से हुई है।

महादेवी वर्मा

स्वर्ण वर्ण से दिन लिख जाता
जब अपने जीवन की हार,
गोधूली, नभ के आँगन में
देती अगणित दीपक वार,
हँस कर तब उस पार तिमिर का कहता बढ़ बढ़ पारावार,
'बीते युग' पर बना हुआ है अब तक मतवाला संसार!

प्रसंग—प्रस्तुत पंक्तियाँ महादेवी वर्मा कृत कविता "निश्वासों का नीड़, निशा का" में से उद्धृत की गई हैं।

व्याख्या—कवयित्री कहती है कि जब दिन अपने सुनहरे रंग में अपने जीवन की पराजय लिख जाता है अर्थात् जब दिन सुनहरी सन्ध्या में ढल जाता है और जब गोधूली सन्ध्या आकाश रूपी आंगन में असंख्य तारे रूपी दीपकों को जला देती है, उस समय प्राची के दूसरे तट से हँसकर आगे को बढ़ता हुआ अन्धकार का सागर कहता है कि युग के पश्चात् युग बीत गए, परन्तु यह मस्त संसार अभी तक मिटा नहीं है।

तात्पर्य यह है कि रात्रि के पश्चात् दिन और दिन के पश्चात् रात्रि आती है। इस क्रम से अनन्त समय व्यतीत हो चुका है, परन्तु यह मस्त दुनिया ज्यों की त्यों बनी हुई है।

युग हैं पलकों का उन्मीलन,
स्पन्दन में अगणित लय-जीवन,
तेरी श्वासों में नाच नाच
उठता बेसुध जग सचराचर !
अप्सरि तेरा नर्तन सुन्दर !

प्रसग—प्रस्तुत पद महादेवी वर्मा द्वारा लिखित "लय गीत मदिर, गति ताल अमर" शीर्षक कविता से उद्‌धृत किया गया है। कवियत्री ने इस पद में बताया है कि मृत्यु से ही ससार का सृजन तथा सहार होता है। मृत्यु के नृत्य में हीं विश्व का उत्थान तथा पतन निहित है।

व्याख्या—वर्मा जी कहती है, "हे अप्सरा (मृत्यु) ! परिवर्तित होते हुये युग ही तेरी पलको का खुलना है। तेरी धडकन मे असख्य प्रलयो की सूचना प्राप्त होती है। यह चेतन तथा अचेतन ससार तेरी सासो के साथ वेसुध होकर नाच उठता है। तेरा नृत्य बहुत सुन्दर है।

कवयित्री का आशय यह है कि मृत्यु के सकेत पर ससार का सृजन तथा विसर्जन होता है।

तुहिन के पुलिनों पर छविमान
किसी मधुदिन की लहर समान,
स्वप्न की प्रतिमा पर अनजान
वेदना का ज्यों छाया-दान;
विश्व में यह भोला जीवन—
स्वप्न जागृति का मूक मिलन,
बाँध अचल में विस्मृति धन,
कर रहा किसका अन्वेषण ?

(पंजाब बी० ए०, सितम्बर १६४८)

प्रसग—प्रस्तुत पद महादेवी वर्मा कृत 'तुहिन के पुलिनों पर छविमान' शीर्षक कविता से अवतरित किया गया है। यह वर्मा जी की दार्शनिक कविता है। इसके आरम्भ में कवयित्री उस अज्ञात सत्ता की जिज्ञासा प्रकट करती हुई कहती है कि—

व्याख्या—वर्फ के सुन्दर तटो पर किसी वसन्त के दिन की लहर के समान, जैसे स्वप्न मे देखी हुई किसी अपरिचित आकृति पर पीड़ित हो, उसके लिए व्यथित हो, ससार में यह भोला-भाला मानव जीवन जो कि स्वप्न और जागरण का मौन सगम है, अपने हृदयरूपी आँचल में विस्मृति (भूलना) रूपी धन बाँधकर किस को खोज रहा है ?

कवयित्री के कहने का आशय यह है कि मानव की आत्मा अपने वास्तविक स्वरूप को भूली हुई है। वह जिस सत्ता को खोजती फिरती है, वह उससे पृथक् नही है, परन्तु वह भूलकर उसे पृथक् समझ बैठी है। आत्मा इसी भूल को लेकर विश्व मे आती है। यदि वह अपने यथार्थ रूप को समझ ले, तो फिर वह इस ससार में नही आये और न ही उसे किसी को खोजने की आवश्यकता पड़े। यदि आत्मा सत्य को प्राप्त कर ले, तो जिस प्रकार लहर वर्फ के तट को अपने मे मिला लेती है, ठीक इसी प्रकार वह आत्मा का भी उस सत्ता के साथ एकीकरण हो जायेगा।

काव्य-सौष्ठव—इसमें भावो की गम्भीरता है। वर्मा जी ने इसमें आत्मा का चरम उद्देश्य सत्य की खोज बताया है। इसमें समासोक्ति एवं उपमालंकार है।

स्निग्ध अपना जीवन कर क्षार
दीप करता आलोक-प्रसार,
गला कर मृत्पिडो में प्राण
बीज करता असंख्य निर्माण !

सृष्टि का है यह अमिट विधान
एक मिटने में सौ वरदान,
नष्ट कब अणु का हुआ प्रयास
विफलता में है पूर्ति-विकास !

प्रसग—पूर्ववत्। इसमे कवयित्री ने यह सिद्ध किया है कि सूक्ष्म से वृहत् मे तथा एक से अनेक मे परिणत होने मे ही जीवन का विकास होता है।

व्याख्या—दीपक अपने स्नेहमय जीवन को अर्थात् तेलयुक्त तथा सरस जीवन को जलाकर प्रकाश फैलाता है। वीज अपने प्राणो को मिट्टी मे गला

कर असख्य बीजो का सृजन करता है। इस ससार का यह अमिट नियम है कि एक के नष्ट होने पर सैकडो का वरदान प्राप्त होता है अर्थात् सैकडो लाभ होते है। सूक्ष्म कणो का प्रलय तो कभी भी समाप्त नही होता है, वह तो निरन्तर चलता ही रहता है। वास्तव में असफलता के द्वारा ही पूर्ण विकास होता है।

काव्य-सौष्ठव—अर्थान्तिरन्यास अलकार है।

जगन्नाथ प्रसाद मिलिन्द

उन्मत्त प्रलय की तन्मयता तुम, तांडव के उल्लास हास,
युग-परिवर्तन की आकांक्षा, उच्छृखल सुख की तीव्र प्यास,
तुम वन्य कुसुम, तुम नग्न-प्रकृति तुम पावनता की मुग्ध वास,
तुम आडम्बर पर पद-प्रहार !
मेरे किशोर, मेरे कुमार !

प्रसंग—प्रस्तुत पद्याश श्री जगन्नाथ प्रसाद मिलिन्द द्वारा लिखित कविता 'उगता राष्ट्र' मे से उद्धृत किया गया है। इस पद मे कवि ने युवको की अदम्य शक्ति का वर्णन किया है। कवि कहता है कि—

व्याख्या—हे मेरे नवकिशोर ! तुम मतवाले सर्वनाश की तल्लीनता हो, तुम ताडव-नृत्य के उल्लास से भर कर किए गए अट्टहास हो, तुम (प्राचीन रूढिग्रस्त) युग को परिवर्तित कर देने वाली अभिलाषा हो, तुम अमर्यादित सुख की प्रवल प्यास हो, अर्थात् तुम्हारी सुख प्राप्ति की इच्छा वहुत प्रवल होती है उसे मर्यादा मे वाधा जाना असम्भव है। तुम वन के पुष्प हो, तुम निरावरण प्रकृति के सदृश हो, तुम पवित्रता की सरल सुगन्ध हो तथा तुम वाह्य आडम्वरो पर पैर से चोट करने वाले हो अर्थात् इन वाह्यचारो को नष्ट करने वाले हो।

काव्य-सौष्ठव—इस पद मे कवि ने हेतु अलकारो के द्वारा युवको की जागरूकता तल्लीनता, प्रचण्ड इच्छाशक्ति तथा नैसर्गिक ओजस्विता का निरूपण किया है।

मेरे 'प्रह्लाद' ! दमन-ज्वाला में मद स्मित बिखराते हो !
मेरे 'ध्रुव' ! बाधा चीर इष्ट पथ पर बढ़ते ही जाते हो !

मेरे 'शुक' ! प्रबल प्रलोभन में तुम अविचल धैर्य दिखाते हो !
तुम तप्त स्वर्ण, तुम निर्विकार !
मेरे किशोर, मेरे कुमार !

(पंजाब बी० ए०, सितम्बर १६५७)

प्रसंग—पूर्ववत् । कवि ने इस पद में किशोर में प्रह्लाद, ध्रुव तथा शुकदेव का आरोप कर उनके गुणों का भी समावेश किया है। कवि कहता है कि—

व्याख्या—हे मेरे प्रह्लाद ! तुम अत्याचार की लपटों में भी हल्की मुस्कराहट बिखेरते हो ! हे मेरे ध्रुव ! तुम मार्ग में आने वाली सभी बाधाओं को नष्ट करके अपने अभीष्ट मार्ग पर अग्रसर होते हो अर्थात् बाधायें तुमको तुम्हारे पथ से विचलित नहीं कर पाती हैं। हे मेरे शुक ! बड़े-बड़े लालचों तथा आकर्षणों में भी तुम अटल धैर्य का परिचय देते हो अर्थात् संसार का बड़े से बड़ा प्रलोभन अथवा आकर्षण तुम्हें आकर्षित नहीं कर सकता है। तुम तपे हुए स्वर्ण हो, तुम विकार रहित हो।

क्या चिन्ता ? दृष्टि उपेक्षा की डालें तुम पर ज्ञानी-ध्यानी !
केवल रणभेरी याद रखे, भूले न समर का सेनानी !
सौतेली मां हो शांति भले ही, सुख मृगतृष्णा का पानी !
दे संधि-पत्र तुमको बिसार !
मेरे किशोर, मेरे कुमार !

(पंजाब बी० ए०, सितम्बर १६५७)

प्रसंग—पूर्ववत् । इस पद में कवि ने बताया है कि किशोर संसार की नहीं परवाह नहीं करता है। वह तो केवल नेता का पथ प्रदर्शन चाहता है।

व्याख्या—हे मेरे किशोर ! यदि ज्ञानी-ध्यानी व्यक्ति तुम्हें उपेक्षा की दृष्टि से देखें, अर्थात् वे तुम्हें अबोध समझ कर अनादर की दृष्टि से देखें, तो इसकी तुम्हें कोई चिन्ता नहीं है। तुम को तो केवल रणभेरी (युद्ध की दुंदुभी) याद रहे अर्थात् युद्ध में तुम्हारी पुकार होती रहे और युद्ध का सेनापति भी तुम्हें न भूले। शान्ति चाहे तुम्हारे लिए सौतेली माँ के सदृश हो जाय अर्थात् शान्ति प्राप्त करना तुम्हारे लिए दुर्लभ

हो जाय और सुख तुम्हारे लिए चाहे मृगतृष्णा (Mirage) के जल की भाँति अप्राप्य हो जाए, चाहे सन्धि-पत्र तुमको भुला दे, परन्तु तुम इन सब बातो पर ध्यान नही देते हो।

भाव यह है कि किशोर को मान-अपमान, शान्ति व अशान्ति की चिन्ता नही होती है, वह तो केवल यही चाहता है कि युद्धभूमि में उसको न भुलाया जाय, वहाँ पर उसकी पुकार होती रहे, उसका सेनापति उसको याद रखे।

काव्य-सौष्ठव—इस पद मे उक्ति-चातुर्य प्रशसनीय है।

सृजन-समन्वय-व्रत ले मेरे
रेणुकणों ने मिल जुल कर—
किया सघटन मेरी महिमा,
का यह विस्मयकर, सुन्दर।
मेरा विघटन आज कराने—
को उत्सुक तेरा विज्ञान!
हैं उसके उपकरण वही, था
मेरा अन्तर जिनकी खान।

प्रसग—प्रस्तुत पद जगन्नाथ प्रसाद मिलिन्द कृत 'पृथ्वी की पुकार' शीर्षक कविता में से उद्धृत किया गया है। कवि ने इस पद में बताया है कि निर्माण के ही तत्त्व नाश के कारण बन जाते है।

व्याख्या—पृथ्वी कहती है कि मेरी धूलि के कणो ने मिल कर निर्माण करने के लिए एकता का व्रत लेकर अर्थात् एकता रखने की प्रतिज्ञा करके यह एक भव्य महिमामय मेरा पुजीकरण किया है, परन्तु हे मानव! तेरा विज्ञान आज मेरे अगो को पृथक-पृथक कराने के लिए बहुत ही आकुल है। जिन पदार्थों का भण्डार मेरा हृदय था, वे ही पदार्थ आज विज्ञान के साधन है।

भाव यह है कि पृथ्वी का सृजन उसके लघु कणो के एक साथ समन्वय से हुआ है। आज विज्ञान उन्ही कणो को पृथक करने का प्रयत्न कर रहा है। इससे पृथ्वी का अस्तित्व ही समाप्त हो जायगा। विज्ञान ने जिन पदार्थों की सहायता लेकर प्रगति की है, वे सभी पदार्थ पृथ्वी मे से ही निकाले जाते है।

आज पृथ्वी के अपने तत्त्व ही उसे संहारकर्त्ता शत्रु बने हुए हैं।

मुझ से प्रेरित सभी, परिग्रह —
को प्रस्तुत तेरे आगे,
महानाश-मद-तम की निद्रा—
से यदि तू अब भी जागे !
स्रोत स्नेह का माँ के उर में
उछल रहा अविरत, अश्रांत !
लौट अंक में मां के, मत रह
अधिक विपथ-गामी, विभ्रांत !

प्रसंग—पूर्ववत्। कवि ने इस पद में बताया है कि मानव विज्ञान की झूठी शक्ति के अहंकार में भरकर अपने आप को भूल बैठा है। वह समझता है कि उसने प्रकृति पर विजय प्राप्त कर ली है, परन्तु यह उसका भ्रम है। उसे प्रकृति की गुरुता को समझना चाहिए। इससे उसे वास्तविक शान्ति प्राप्त होगी।

व्याख्या—पृथ्वी कहती है कि मुझ से ही सब (संस्कृति आदि) प्रेरणा प्राप्त करते हैं अर्थात् इन सबकी जननी मैं ही हूँ, मैंने ही इन सबको जन्म दिया है। ये सभी तेरे सामने ग्रहण करने को तैयार है, परन्तु यदि तू इन्हें ग्रहण करना चाहता है, तो सर्वनाश करने का अहंकार रूपी जो अंधकार है उनमें तू जागृत होजा अर्थात् सर्वनाश कर डालने के झूठे अंधकार को त्याग दे। अब तू अधिक समय तक कुमार्ग पर न चल और मिथ्या भ्रम के मार्ग में न भटक। इन सबको छोड़कर माता की गोदी में आजा अर्थात् उसकी शरण ले ले। माँ के हृदय में अभी भी तेरे लिए वात्सल्य की धारा निरन्तर अविराम गति से प्रवाहित हो रही है।

काव्य-सौष्ठव—रूपक अलंकार है।

रामधारी सिंह दिनकर

भागी के आह्रण-बीच देख,
जल रहा स्वर्ण-युग-अग्निज्वाल,

तू सिंहनाद कर जाग तपी !
मेरे नगपति ! मेरे विशाल !

प्रसंग—प्रस्तुत पद रामधारी सिंह दिनकर कृत 'हिमालय' शीर्षक कविता से उद्धृत किया गया है। कवि ने इस पद मे बताया है कि आज कर्मयुग है, ध्यान युग नही है। अब उठ कर पौरुष दिखाने की आवश्यकता है, एक तपस्वी की भाँति ध्यान-मग्न रहने से काम नही चलेगा।

व्याख्या—हे महान् तपस्वी हिमालय ! आज तू देख कि पूर्व मे अर्थात् एशिया के देशो में स्वर्ण-युग लाने वाली क्रान्ति की अग्नि प्रज्ज्वलित हो रही है। अब वह समय नही रहा जबकि इन देशो ने दासता की शृंखलाओ को चुपचाप सहन किया था। अब तो दासता की बेडियो को तोडकर स्वतन्त्रता के आनन्द की प्राप्ति का युग है। अत: हे पर्वतराज विशाल हिमालय ! तू सिंह के समान गर्जन कर सजग हो जा। अब तेरी इस तपस्या से कार्य नही चलेगा।

काव्य-सौष्ठव—रूपकातिशयोक्ति अलकार है।

रे ! रोक युधिष्ठिर को न यहाँ,
जाने दे उनको स्वर्ग धीर !
पर, फिरा हमें गाण्डीव, गदा,
लौटा दे अर्जुन भीम वीर।

प्रसंग—पूर्ववत्।

व्याख्या—कवि हिमालय से कहता है कि अब तू सभल जा। तू स्वर्ग जाते हुए युधिष्ठर को न रोक, क्योकि वह तो अन्याय का उत्तर भी शान्तिपूर्वक देना चाहता है। आज उसकी आवश्यकता नही है। हमे तो गाण्डीव तथा गदा की आवश्यकता है, इसलिए वीर अर्जुन तथा भीम को स्वर्ग जाने से रोक कर वापिस ले आ।

रसवती भू के मनुज का श्रेय,
नहीं यह विज्ञान कटु, आग्नेय।
श्रेय उसका, प्राण में बहती प्रणय की वायु,
मानवों के हेतु अर्पित मानवों की आयु।

श्रेय उसका, आँसुओ की धार,
श्रेय उसका, भग्न वीणा की अधीर पुकार।

(पजाब बी० ए०, अप्रैल १६५८)

प्रसंग—प्रस्तुत पद रामधारी सिंह दिनकर कृत कविता "मानव का श्रेय" मे से उद्धृत किया गया है। कवि ने इसमे बताया है कि विज्ञान की साधना मे मानव की सफलता नही है। उसको वास्तविक सफलता तो आत्मिक विकास से ही प्राप्त हो सकती है।

व्याख्या—इस रसवती (छ रसवाली) पृथ्वी पर उत्पन्न होने वाले मानव का कल्याण इस दु खदायी विज्ञान की साधना में नही है, यह विज्ञान तो अग्नि की वर्षा करने वाला है। उसके कल्याण या महत्त्व का कारण उसके प्राणो में बहने वाली प्रेम की वायु है। मनुष्य का श्रेय अपने जीवन को मानव जाति के हित के लिए भेंट करने मे ही है। दीन-हीनो के कष्टो को देख कर और उनके दु खो से दु.खी होकर बहने वाली अश्रुधारा ही उसका श्रेय है। टूटी वीणा अर्थात् वेदना मे व्याकुल हृदय की पुकार ही उसकी प्रशंसा का कारण है।

आशय यह है कि मानव का महत्त्व वैज्ञानिक प्रगति से नही है। उसका महत्त्व तो पारस्परिक प्रेम, परोपकार, करुणा, सरस हृदय तथा उच्च विचार रखने में है।

सच पूछो, तो शर में ही
बसती है दीप्ति विनय की,
सन्धि-वचन सपूज्य उसी का
जिसमें शक्ति विजय की।

सहनशीलता, क्षमा, दया को
तभी पूजता जग है,
बल का दर्प चमकता उसके
पीछे जब जगमग है।

प्रसग—प्रस्तुत पद रामधारी सिंह दिनकर कृत "अशक्त क्षमा की निष्फलता" शीर्षक कविता से उद्धृत किया गया है। इसमे कवि ने बताया है कि

ससार मे शक्तिशाली की वात का ही आदर होता है, निर्बल के विचारो का नही।

व्याख्या—भीष्म जी कहते है कि सत्य तो यह है कि नम्रता का तेज वाणो में ही समावेशित है। जिस व्यक्ति मे विजय प्राप्त करने की शक्ति है, सन्धि के लिए उसी की वात का सम्मान होता है। निर्बल के सन्धि प्रस्ताव को शक्तिशाली नही मानता है। किसी भी व्यक्ति की सहनशीलता, क्षमाशीलता तथा दयालुता आदि गुणो का ससार मे तभी सम्मान होता है, जबकि इन गुणो के साथ उसमें अपनी शक्ति का अभिमान भी व्यक्त होता है। यदि दयालु तथा क्षमाशील व्यक्ति मे शक्ति न हो, तो फिर उसकी दयालुता का आदर नही होता है।

हरिवशराय बच्चन

मैं आधि-ग्रस्त, मैं व्याधि ग्रस्त,
मैं काल-त्रस्त, मैं कर्म त्रस्त,
मैं अर्थ ध्येय में रख चलता, मुझ से हो जाता है अनर्थ !
मैं क्या कर सकने में समर्थ ?
मुझ से विधि, विधि की सृष्टि क्रुद्ध,
मुझ से ससृति का क्रम विरुद्ध,
इसलिए व्यर्थ मेरे प्रयत्न, इस कारण सब प्रार्थना व्यर्थ !
मैं क्या कर सकने में समर्थ ?
निर्जीव पंक्ति में निर्विवेक
क्रंदन रख रचना पद अनेक—
क्या यह भी जग का कर्म एक ?
मुझ को अब तक निश्चित न हुआ, क्या मुझ से होगा सिद्ध अर्थ।
मैं क्या कर सकने में समर्थ ?

(पंजाब बी० ए०, अप्रैल १९५७)

प्रसंग—प्रस्तुत कविता "मै क्या कर सकने में समर्थ!" मे डा० हरिवशराय बच्चन ने बताया है कि मानव नियति के चक्र मे फँसकर ससार में आता है। उसके चारो ओर अनेक प्रकार के वन्धन है। इन वन्धनो की

विवशता के कारण ही वह सर्वथा शक्तिहीन हो एक निश्चित मार्ग पर चलता रहता है। वह भाग्य के थपेड़ो एवं ससार के विरोध की चक्की मे पिसता और कराहता है और कभी-कभी गीतो तथा साहित्य मे अपने दुख को व्यक्त करता है।

व्याख्या—मानव नियति के चक्र मे फँसकर दुखी होता है और कहता है कि मै मानसिक अशान्ति तथा रोगो से दुखी हूँ। मै काल-चक्र तथा कर्म दोनो से ही भयभीत होता हूँ, घबराता हूँ। मै किसी उद्देश्य को लेकर चलता हूँ, परन्तु मुझ से पाप हो जाता है अर्थात् जिस उद्देश्य को लेकर चलता हूँ, कार्य उसके प्रतिकूल हो जाता है। फिर ऐसी दशा मे मै कर ही क्या सकता हूँ ? वह आगे कहता है कि मुझ से तो विधाता भी अप्रसन्न है और उसकी सृष्टि यह संसार भी अप्रसन्न है अर्थात् संसार की गति तथा संसार का कार्य-चक्र सभी कुछ मेरे विरुद्ध है। इस स्थिति मे मेरी प्रार्थना तथा प्रयत्न सभी कुछ व्यर्थ है अर्थात् मेरी प्रार्थना पर कोई भी ध्यान नही देगा। इसलिए यह सब कुछ व्यर्थ ही होगा। कवि आगे कहता है कि क्या चेतनाशून्य श्रेणी मे बिना औचित्य ज्ञान के अपनी व्यथा के रुदन से गीतो एव पदो की रचना करना भी क्या ससार का कोई कर्म कहलाता है ? इसे कर्म करना न कह कर एकमात्र विनोद ही कहेंगे। ऐसी दशा मे मैं यह निर्णय नही कर सका कि मुझ से कौन-सा कार्य सिद्धि हो सकेगा और मैं किस कार्य करने के योग्य हूँ।

काव्य-सौष्ठव—प्रस्तुत कविता मे नियति से पीड़ित मानव की करुण पुकार है। इसमें मानव की विवशता, घृणा, दुख, दीनता, क्रोध, तर्क आदि भावों की सुन्दर अभिव्यक्ति हुई है।

हाय, वे उन्माद के झोंके कि जिनमें राग जागा,
वैभवों से फेर आँखें गान का वरदान माँगा,
एक अन्तर से ध्वनित हो दूसरे में जो निरन्तर,
भर दिया अम्बर अवनि को मत्तता के गीत गा-गा,
अन्त उनका हो गया तो मन बहलाने के लिए ही,
ले अधूरी पंक्ति कोई गुनगुनाना कब मना है ?
है अँधेरी रात, पर दीवा जलाना कब मना है ?

प्रसग—प्रस्तुत पद्यांश डा० हरिवशराय बच्चन की कविता "अधेरे का दीपक" में से उद्धृत किया गया है। कवि ने इस पद मे यह बताया है कि प्रिय व्यक्ति हमसे बिछुड जाते है, परन्तु अनित्यता का विचार करके धैर्य रखना ही पडता है।

व्याख्या—हाय ! वे दीवानेपन के आवेग अब कहाँ है ? जिनमें प्रेम जागृत होता था और जिसमे मस्त होकर ऐश्वर्य की ओर से आँखें फेर कर अर्थात् ऐश्वर्य की उपेक्षा कर केवल गीत गाने का वरदान माँगा था, जो गीत एक के हृदय के निकलकर दूसरे अर्थात् प्रिय के मन मे सदा गूँजा करते थे, इस प्रकार के मस्ती के गीत गा-गाकर पृथ्वी और आकाश को गुँजा दिया था। यदि अब उन गीतो का अत हो गया है तो अपने मन को बहलाने के लिए ही किसी गीत की एक आध पक्ति को याद करके गुनगुनाने के लिए किसी ने मना नही किया है। यद्यपि रात्रि अधकारमय है परन्तु उसमे दीपक जलाने के लिए तो किसी ने मना नही किया है अर्थात् विपत्ति के समय भी हँसकर अपने दुःख को कुछ कम करने के लिए तो किसी ने भी मना नही किया है।

इस पद मे प्रिय का अर्थ पत्नी या मित्र किसी से भी लगाया जा सकता है।

क्रुद्ध नभ के वज्र दंतों में उषा है मुसकराती,
घोर गर्जनमय गगन के कंठ में खग-पंक्ति गाती,
एक चिडिया चोंच मे तिनका लिए जो आ जा रही है,
वह सहज में ही पवन उन्चास को नीचा दिखाती !
नाश के दुख से कभी दबता नहीं निर्माण का सुख,
प्रलय की निस्तब्धता से सृष्टि का नवगान फिर-फिर !

प्रसग—प्रस्तुत पक्तिया डा० हरिवशराय बच्चन द्वारा लिखित 'निर्माण' शीर्षक कविता से उद्धृत की गई है। कवि ने इस पद मे बताया है कि विश्व मे विनाश और निर्माण, जन्म और मृत्यु का सग्राम चलता ही रहता है।

व्याख्या—कवि कहता है कि तूफ़ान रूपी क्रोध मे भरे हुए आकाश के कठोर दाँतो के मध्य भी उषा मुसकराती है। भयकर गर्जन मे भरे हुए आकाश

के मध्य पक्षियों की पंक्तियाँ गाती है, वे उसकी भयंकरता से भयभीत होकर चुप नहीं होती है। एक चिड़िया जो कि अपनी चोंच में तिनका लिए जा रही है, वह सरलता से ही उच्छ्वास वायु को नीचा दिखा रही है अर्थात् उसको पराजित कर रही है। कवि का भाव यह है कि तीव्र वायु चिड़िया के घोंसले को उजाड़ सकती है, परन्तु चिड़िया के उत्साह को समाप्त नहीं कर सकती, इससे उसे चिड़िया से पराजय माननी पड़ती है। इस प्रकार विनाश का दुःख पुनः निर्माण के उल्लास का दमन नहीं कर सकता। प्रलय के सन्नाटे के बाद फिर नवीन सृष्टि का नया गीत उठता ही है अर्थात् असफलताओं में सफलता की, मृत्यु में जन्म की, प्रलय में सृजन की तथा पराजय में विजय की आशा होती ही है।

नरेन्द्र शर्मा

दिव्य और पार्थिव की लीला
　　　　क्या उद्देश्य अजाना ?
नाद-बिन्दु का मिलना-मिटना,
　　　　अमिट रेख बन जाना !
यह क्रम तो भ्रम नहीं, किन्तु क्या है,
　　　　यह बात न जानी !
कैसी रे तेरे मिटने जीवन की
　　　　अमिट कहानी ?

प्रसंग—प्रस्तुत पद्यांश नरेन्द्र शर्मा कृत "अमिट कहानी" शीर्षक कविता में से उद्धृत किया गया है। इस पद में कवि ने बताया है कि मानव का जीवन और मृत्यु शरीर का मिलन तथा विछोह उद्देश्य हीन नहीं है।

व्याख्या—इस आत्मा और शरीर का खेल शाश्वत है। इसके लक्ष्य का किसी को भी ज्ञान नहीं है। इसका लक्ष्य छिपा हुआ है। सनातन ध्वनि और चैतन्य बिन्दु अर्थात् आत्मा और परमात्मा का मिलन तथा विछोह अन्त में एक अमिट रेखा बनने के लिये है। आत्मा और परमात्मा का यह क्रम सत्य है, भ्रम नहीं है। क्या इस सत्य को जाना नहीं है ? इस प्रकार जीवन की कथा के मिटने का कारण है, वह स्वयं प्रश्न है।

काव्य-सौष्ठव—यह कविता गम्भीर, शान्त तथा प्रभावपूर्ण है।

इस अग्निदेवता का निवास है, त्रिगुणमयी यह निखिल सृष्टि !
पर प्रथम चरम आलोक धाम, त्रनयन की त्रिगुणात्परा दृष्टि !
जब जब पृथ्वीतल हुआ क्लान्त, वह वन्हिनयन के इंगित पर !
करता विदीर्ण जग जीर्ण-शीर्ण, अवतरित चरित हो कर भू पर !

(पंजाब बी० ए०, सितम्बर १९५८)

प्रसग—प्रस्तुत पद्य श्री नरेन्द्र शर्मा कृत 'अग्निदेवता' शीर्षक कविता से उद्धृत किया गया है कवि ने प्रस्तुत पद्य मे बताया है कि अग्नि का वास्तविक स्थान शकर का तृतीय नेत्र है और पृथ्वी पर अत्याचार और उत्पीडन बढ जाने पर प्रतिक्रिया स्वरूप अग्नि ही प्रलय मचाता है।

व्याख्या—अग्नि देव सत्त्व-रज-तम से बनी समस्त ससृति मे विद्यमान है, परन्तु सर्वाधिक प्रकाशमय तीन नेत्रो वाले भगवान् शकर की सत्व, रज और तम इन तीनो गुणो से बडी गूढ दृष्टि ही है। जब कभी भी पृथ्वी पर रहने वाले प्राणी दुःखी हुए, यह अग्नि ही सहार-शक्ति शकर के सकेत पर भूलोक मे अवतार रूप मे उतर कर और फैलकर इस प्राचीन क्षत-विक्षत् ससार को नष्ट कर देता है अर्थात् यहाँ पर प्रलय (सर्वनाश) हो जाता है।

भूगर्भ फोड बहता लावा,
भूतल पर आते अग्निश्रृंग !
नभ नील कमल पर मँडराते,
लपटो के लोहित मत्त भृंग !

प्रसग—पूर्व पद्य के समान। कवि ने इस पद्य मे बताया है कि क्रान्ति का काल ही प्रलयकाल होता है।

व्याख्या—पृथ्वी के तल को चीर कर उसके अन्दर से लावा (अग्नि की तीव्र धारा) निकलती है। भूमि पर अग्नि के शिखर उत्पन्न हो जाते है। आकाश रूपी नीले कमल पर अग्नि शिखाओ के लाल-लाल मस्त भ्रमर मँडराते है। तात्पर्य यह है कि उस समय जड और चेतन सभी अग्निमय हो जाते है। क्रान्ति की लपटे चारो ओर फैल जाती है।

वह ऊर्ध्व शक्ति-वाहन विमान,
मानव जिस पर आरुढ अमर !
चित् कनककेतु जिसकी छाया में,
जीवन जीतेगा महा समर !

प्रसग—इस पद्य मे कवि ने यह स्पष्ट किया है कि अग्नि हा मानव की प्रगति और सुख-शान्ति का हेतु है।

व्याख्या—अग्नि चेतना शक्ति को ऊपर पहुँचाने वाला यान है, जिस पर यह अमर मानव (आत्मा) सवार है। वह अग्नि चैतन्यमय सुनहरी पताका है जिसकी छाया मे जीवन ससार के उत्थान-पतन के महान् सघर्षों मे विजय प्राप्त करेगा।

कवि का भाव यह है कि अग्नि ही मानव में चेतना शक्ति के रूप मे विद्यमान है और वही मानव को पतित होने से रोकता है।

उर में अभाव का भार लिए,
आंखों में कुछ अस्थिर सपने,
अवरुद्ध कंठगत प्राण लिए
गाता हूँ करुण गीत अपने !

प्रसग—प्रस्तुत पद्य श्री नरेन्द्र शर्मा कृत "अन्तर अब ज्वालामुखी बना" शीर्षक कविता से उद्धृत किया गया है। कवि ने प्रस्तुत पद्य मे अपने असतोष को व्यक्त किया है।

व्याख्या—कवि कहता है कि मैं अपने हृदय मे अभावो के बोझ को लिए हुए हूँ, मेरे नेत्रों मे कुछ चलते-फिरते स्वप्न है अर्थात् भविष्य की कल्पनायें है, मैं रुँधे गले मे स्थित प्राणों को सम्हाले हुए अपने करुणा भरे गीत गाता रहता हूँ।

भाव यह है कि कवि के हृदय मे जीवन के अनेक अभाव खटकते रहते है। जो भविष्य की अनेक कल्पनायें उसके सामने आती रहती हैं। भावो के आवेग ने गला रुक गया है और वेदना से प्राण गले में आ गए है। वह केवल साँसों के तारो से करुणा-भरे गीत गाता रहता है।

मेरे सूने नभ में शशि था,
थी ज्योत्स्ना जिस की छवि-छाया,
जीवित रहती थी जिसको छू
मेरी चन्द्रकांत मणि काया,
ठोकर खाने मलिन ठीकरे-सा तब मैं निष्प्राण नहीं था !
मैं सब दिन पाषाण नहीं था !

प्रसंग—प्रस्तुत पद्य नरेन्द्र शर्मा कृत "मैं सब दिन पाषाण नहीं था" शीर्षक कविता से उद्धृत किया गया है। कवि कहता है कि मेरे हृदय मे किसी का निवास था जिस कारण मेरा समस्त शरीर पुलकित रहता था, परन्तु अब उसके न रहने से मेरा जीवन मानो निष्प्राण हो गया है।

व्याख्या—मेरे रिक्त हृदय रूपी आकाश मे कोई मुखचन्द्र बसा हुआ था, जिसके सौन्दर्य की काति ही चाँदनी थी और इस काति के स्पर्श से मेरा शरीर रूपी चद्रकात मणि सदैव सजीव रहता था। परन्तु आज तो मैं पैरो मे बार-बार ठोकर खाने वाले गदे ठीकरे की भाँति हूँ। इस समय मैं ऐसा नही था।

काव्य सौष्ठव—इसमे रूपक अलकार है।

मैं तृण-सा निरपाय नहीं था,
जल में डालो बह जाए जो,
और डाल दो ज्वाला में यदि,
क्षणिक धुआँ बन उड जाये जो,
आज बन गया हूँ जैसा कुछ, सब दिन इसी समान नहीं था !
मैं सब दिन पाषाण नहीं था।

प्रसंग—पूर्व-निर्दिष्ट पद के समान।

व्याख्या—कवि कहता है कि मैं सदैव तिनके की तरह विवश का सामर्थ्य-हीन नही था जो कि जल मे डालते ही बह जाता है और जो अग्नि में डालते ही क्षण भर मे जल कर धुँआ बन कर उड जाता है। मैं जैसा आज निर्बल बन गया हूँ सदैव ऐसा ही नही था।

भाव यह है कि कवि अब शक्तिहीन हो चुका है। अब वह पहले की भाँति शक्तिशाली व स्वतंत्र नही है और न उसमे अब अन्याय का

विरोध करने की शक्ति है। उसकी दशा तो अब एक साधारण तिनके की भाँति है।

तारा पांडे

शलभ को कब क्या मिला,
वह दीप से प्रतिपल जला।
किस लिए ? फिर किस लिए,
उसको हुई प्रिय साधना ?
अमर होवे साधना।

प्रसंग—प्रस्तुत पद्य तारा पांडे द्वारा लिखित कविता 'अमर होवे साधना' में से अवतरित किया गया है। कवयित्री ने इस पद में बताया है कि प्रेम की साधना ही मिट जाना है।

व्याख्या—पतंग दीपक के प्रेम मे प्रतिक्षण जलता है, इससे उसे क्या लाभ है। वह यह बलिदान किस लिए करता है ? क्या उसका प्रयोजन मिट जाता है ? फिर उसे यह प्रेम की साधना प्रिय क्यों है ? इस पर भी हम यही चाहते हैं कि यह प्रेम की साधना अमर रहे।

काव्य-सौष्ठव—कविता मे भावुकता एवं मार्मिकता अच्छी है।

देख पावस के जलद में सोचती हूं घन बनूँ।
घिरूँ इस नीले गगन में लिए उर में एक ज्वाला।
दूँ मिटा अस्तित्व अपना सजनि, ऐसा मन बनूँ !

प्रसंग—प्रस्तुत पंक्तियाँ तारा पांडे कृत "देख पावस के जलद" शीर्षक कविता में से उद्धृत की गई हैं। निराशापूर्ण कवयित्री अपनी व्यथा को व्यापक रूप देती हुई मेघ के रूप मे परिणत होना चाहती है। नित्य अश्रु बहाने की अपेक्षा बादल बनकर वह एक ही बार फूट-फूटकर रो लेना चाहती है। वह अपना अस्तित्व मिटाने के लिए आकुल है।

व्याख्या—कवयित्री कहती है कि मैं वर्षा ऋतु के मेघों को देखकर स्वयं भी मेघ बनने की सोचती हूँ। मैं भी मेघ बनकर हृदय में बिजली के रूप मे एक तीव्र वेदना की शिखा लिए हुए इस नीले (नैराश्य, एवं विषादपूर्ण) गगन में उमड़ उठूँ। हे सखि ! मैं ऐसा हृदय बनूँ कि उस मेघ का रूप धारण कर

अपनी स्वय की सत्ता को मिटा दूँ। जिस प्रकार मेघ बरस कर छिन्न-भिन्न हो जाते है, मैं भी इसी प्रकार बरस कर अपना अस्तित्व मिटा दूँ।

जीवनमुक्त करो मानव को, जीवित आज करो तुम शव को,
जाग उठें चिर-निद्रित प्राणी, कवि, तुम अमृत बरसाओ।

प्रसग—प्रस्तुत पद श्रीमती तारा पाडे द्वारा लिखित "कवि, मगल-गीत सुनाओ" शीर्षक कविता से उद्धृत किया गया है। यह कविता का अन्तिम पद है। इसमे कवयित्री ने बताया है कि इस समय गीतो मे किन भावो की आवश्यकता है।

व्याख्या—हे कवि तुम अपने गीतो के द्वारा आज मानव को जीते जी इन दुखो से मुक्त करो, आज तुम निष्प्राण मे भी जीवन सचार करो। मानव अपने कर्मों से लज्जित होकर, पीडा और कष्टो के कारण जीवन के कटु अनुभवो से निष्प्राण हो रहा है। तुम करुणा, सहानुभूति आदि के द्वारा उसे जीवन दान दो। हे कवि! तुम अपनी वाणी से ऐसा अमृत बरसाओ कि युग-युग से सुप्त प्राणी फिर जाग उठे।

काव्य-सौष्ठव—कवयित्री समस्त ससार को दुखो से मुक्त करना चाहती है। इस कविता मे कवयित्री ने मानव को आशा का सन्देश दिया है।

क्षण भंगुर है इस जग का सुख,
प्राणो की ममता केवल भ्रम।
उस पार पहुँचना है सब को
पर मार्ग बना है अति दुर्गम।
जग उठती हैं सोई स्मृतियां
लगता अपना ही मन निर्मम,
नीहार सदृश छाया है अब,
मेरा दुख भू के कण-कण मे।
कैसे हँस पाऊँ जीवन में?

प्रसंग—प्रस्तुत पद श्रीमती तारा पाडे कृत "कैसे हँस पाऊँ जीवन मे?" शीर्षक कविता से उद्धृत किया गया है। इस पद मे कवयित्री ने ससार की नश्वरता के कारण यहाँ के सुखो की अवास्तविकता सिद्ध की है।

व्याख्या—कवयित्री कहती है कि इस ससार मे प्राप्त सुख क्षण-भगुर है। प्राणो का प्रेम तो केवल भ्रम मात्र है। सभी प्राणियो को जीवन के उस छोर पर पहुँचना है अर्थात् जीवन के पश्चात् की अवस्था को प्राप्त होना है, परन्तु जीवन रूपी मार्ग वहुत कठिन है। यहाँ पर जव हमारी सुप्त स्मृतिया अर्थात् अतीत की याद जिसको भुला चुके हैं, पुन. जाग उठती हैं, हमारा यह हृदय जो कि ससार को नश्वर जानता हुआ भी इसके सुखों व आकर्षणों को देखकर प्रसन्न होता है, वडा निर्मम प्रतीत होता है। इस दशा मे मेरा दुख पृथ्वी के प्रत्येक धूलि कण मे धुन्ध की भाँति व्याप्त हो गया है अर्थात् जिस प्रकार धुन्ध सव स्थान पर फैल जाती है, इसी प्रकार मेरा दुख मे समस्त ससार मे व्याप्त हो गया है। फिर मै भला जीवन में किस प्रकार हँस सकती हूँ।

काव्य-सौष्ठव—इस कविता के प्रत्येक शब्द मे विपाद की छाप है। कवयित्री का यह एक सफल करुण गीत है।

सुधीन्द्र

दीनों की वरुनी-तुली से चित्रित कर ऐसे प्रलयगीत,
जिनको गा-गा कर हो यह जग निष्कलुप, अनघ, पावन, पुनीत।
गीतो के स्वर में भर ऐसे तू अमर, अभंगुर, अजर रंग,
घुल जाय कि जिसमें मज्जित हो पापों के सव पाशव कुढग।
नश्वर रंगों से यह निकले जगती को आप्लावित करती
शिव, सुन्दर, सत्य अजस्रधार यदि तू है युग का चित्रकार।

प्रसंग—प्रस्तुत पद्यांश सुधीन्द्र कृत "चित्रकार" नामक कविता से उद्धृत किया गया है। कवि अपने इस पद मे चित्रकार से अपने चित्र में पीडितो की आहो को प्रलय मचाती हुई दिखाने के लिए कहता है।

व्याख्या—हे चित्रकार! तू दुखी निर्धनो की दृष्टि रूपी कूँची से ऐसे सर्वनाश के गीत निकलते दिखा, जिन गीतो को गाकर यह विश्व निष्कलुष, निष्पाप और पवित्र वन जाय। उन गीतो के स्वर मे तू अमर और कभी न छोड़ने वाले रंग रग भर दे, जिनके बीच मे दवकर समस्त पापो के पशुओं जैसे क्रूर तरीके लीन हो जायें। उन चित्रों के नश्वर रगो मे मंगल, सत्य और

सौन्दर्य की धारा निरन्तर प्रवाहित होकर समस्त पृथ्वी को प्लावित कर दे।

भाव यह है कि तुम पीडितो की भावना को ध्यान मे रखकर चित्र खीचो। गीतो मे ऐसे भाव प्रदर्शित करो जिनके प्रभाव से पृथ्वी पर से उत्पीडन और ताडन के पशुओ के-से क्रूर बलात्कार के ढग समाप्त हो जाएँ। समस्त भूलोक मे कल्याण, सत्य और सौन्दर्य का समन्वय छा जाय।

काव्य-सौष्ठव—कविता मे ओज है। कवि ने नाश्वान् रग से अमर शिव, सत्य और सुन्दर की धारा बहाकर विषम अलकार का प्रयोग किया है।

भ्रान्ति का भीषण झझावात, पतन का कुलिशोपम आघात।
भयकर महानाश-सा भ्रमर यहाँ है सदा लगाता घात,
निमिष में हो यह काल कवल
भला किसको है ज्ञात ?
बहता है अविराम भ्रान्ति का यहाँ बवण्डर,
वारिधि की उत्ताल थपेडो-सा प्रलयङ्कर,
भाग्यों से लडते हैं जिसमें अन्धे बनकर अवि,
आशा और निराशा का खाकर द्रुत चक्कर,
विजय-पराजय है जग-पट के
दो परिमिश्रित तार,
है जग का अभिशाप जिसे हम
समझ रहे उपहार !
हास है यहाँ अश्रु से स्नात !

(पंजाब, बी० ए०, सितम्बर १९५७)

प्रसंग—प्रस्तुत पद्याश सुधीन्द्र कृत 'संसार' शीर्षक कविता से उद्धृत किया गया है। कवि ने इसमे बताया है कि विश्व में विनाश का स्वर प्रबल है।

व्याख्या—कवि कहता है कि ससार में भ्रम की भयानक आधी चलती है, उन्नत होने वालो पर पतन का वज्र के समान कठोर प्रहार हुआ करता है। यहाँ सर्वनाश रूपी भयकर भँवर मानव को अपने मे फँसाने के लिए सदा ताक लगाये रहती है। जिस प्रकार भँवर मे फँसकर व्यक्ति डूब ही जाता है, ठीक इसी प्रकार सकटो मे फँसकर भी व्यक्ति नष्ट ही हो जाता है। प्राणी

क्षण-भर मे काल (मृत्यु) का ग्रास बन जाता है, इस बात को कोई नहीं जानता है। यहाँ भ्रम का तूफान लगातार चलता ही रहता है। वह तूफान सागर की ऊँची लहरो की चोटो के समान सर्व सहार करने वाला होता है। इस भयकर तूफान मे फँसकर प्राणी अन्धा बन जाता है अर्थात् वह अनजान होकर आशा और निराशा के चक्कर मे पडकर भाग्य संघर्ष करता है।

इस ससार रूपी वस्त्र के दो सूत्र प्राप्त होते हैं—एक विजय और दूसरा पराजय। हम जिस सासारिक सुख व ऐश्वर्य को वरदान समझते है, वह ससार के लिए कोरी आपत्ति है। यहाँ हमारी हँसी भी अश्रुओं से भीगी हुई है अर्थात् हँसने के साथ रोना भी होता है।

भाव यह है कि ससार मे मानव भ्रम के वश मे होकर यथार्थ को भूल बैठे हैं। इस मिथ्या ज्ञान मे फँसने के कारण उन्हे ठीक मार्ग नहीं सूझता है। वे आशा और निराशा के फेर में पड़कर इधर-उधर भटकते हैं। कवि ने इसमे यह भी बताया है कि यहाँ पर सुख सर्वथा नही है, जिसे हम सुख समझते हैं वह भ्रम मात्र है।

अज्ञेय

ऊषा से ही उड़ता आया पर न मिल सकी तेरी झाँकी,
साँझ समय थक चला विफल मेरे प्राणों का हारिल पाँखी।

प्रसग—प्रस्तुत पद्याश श्री अज्ञेय द्वारा रचित 'हिय-हारिल' शीर्षक कविता मे उद्धृत किया गया है।

कवि ने इस कविता मे हृदय (आत्मा) को हारिल पक्षी के रूप मे वर्णित किया है। हारिल पक्षी सदैव प्रकाश मे ही उडता रहता है, यह कभी भी पृथ्वी पर नहीं उतरता है और अन्त मे वहीं पर खो जाता है। आत्मा भी नित्य विकासोन्मुख होकर उस चिरन्तन सत्य को खोजती है और अन्त मे उसी मे लीन हो जाना चाहती है। कवि ने इसी आशय को इसमे व्यक्त किया है।

व्याख्या—कवि कहता है कि मेरा हृदय रूपी हारिल प्रातःकाल से ही अर्थात् जीवन के आरम्भ मे ही सदा उड़ता रहा है, परन्तु उसे तेरी (चिरन्तन सत्य की) झाँकी कहीं न मिल सकी। अपने प्रयत्नो मे असफल होकर सन्ध्या के समय (जीवन के अन्त समय मे) यह मेरा हृदय रूपी हारिल थकने लगा है।

भाव यह है जीवन-भर उस सत्य की खोज करती हुई यह आत्मा मृत्यु के समय बहुत थक जाती है।

रामेश्वर शुक्ल अंचल

नूतन एक जलन ले आई युग-किरणों की खूनी रेखा,
दक्षिण सागर की छाती पर भी यह दुर्दिन गया न देखा।
दूर अनागत किन प्रलयों के चक्र क्षितिज में घिरते आते—
मन्त्र-बद्ध सर्पों-से रोषानल में फूले बादल जाते?
आज जमी भी तृप्त नहीं है अपनी सत्ता के अभिमानी,
युग-युग की सतप्त क्षुधाएं उमड घुमडती नभ सधानी।

प्रसग—प्रस्तुत पद्याश श्री रामेश्वर शुक्ल अचल कृत 'अन्तर्ज्वाल से' शीर्षक कविता से उद्धृत किया गया है।

कवि अपने हृदय मे धधकती हुई असन्तोष की अग्नि से पीड़ितो और अभाव-ग्रस्तो को उत्तेजित करने के लिए अपने प्राणो मे उग्रता तथा जोश भरने का आग्रह करता है। आज सामाजिक विषमता को नष्ट करने के लिए दलित एव पीडित मानव समाज मे सर्वनाश का स्वर भरने की आवश्यकता है। कवि दु खी दलितो की पीडाओ और अश्रुओ को स्वय पी जाना चाहता है।

व्याख्या—कवि इस जोश का कारण बताते हुए कहता है कि आज युग की जागृति की लाल-लाल किरणें एक नवीन जलन लेकर आई है, आज समय ही परिवर्तित हो गया है। इसी कारण से यह जोश भडक रहा है। आज जो यह बुरा दिन अर्थात् सघर्षों एव द्वद्वो का तूफान इस समय हृदय मे उठ रहा है, दक्षिण मे समुद्र की छाती पर जब पुल बाँधा गया था, तब इसे नही देखा गया था। चिरकाल से कभी न घिरे सर्वनाश के मेघो का समूह सामाजिक वातावरण रूपी आकाश मे मडराता आ रहा है अर्थात् अब हमारे विनाश के कारण प्रलयकालीन मेघो के समान एकत्रित हो रहे हैं। मन्त्र से बँधे सर्पो की भाति मेघ क्रोध की अग्नि मे भरे-से जा रहे हैं। आज पृथ्वी भी अपनी सत्ता और अधिकार के अहकार में भरे व्यक्तियो के खून से संतुष्ट नही है अर्थात् पृथ्वी भी ऐसे व्यक्तियो के रक्त की प्यासी है। युग-युगान्तरों से सताये

गये व्यक्तियो की भूख पृथ्वी से आकाश पक चारो ओर फैलकर सर्वनाश का कारण बनकर मडरा रही है अर्थात् आज भूखे सताए गये लोगो का क्षोभ पृथ्वी से आकाश तक को भयभीत कर रहा है।

पी लें अखिल विश्व की कटुता जीवन का भीषण हालाहल,
भूखे प्यासों की टोली का प्राणहीन अवसाद अचचल।
असफलता के आघातो से सूखी जिनकी जर्जर छाती,
आग लगी रहती अंगों में, जलने, रातो नींद न आती।
आज सुन्दरि ! उनकी पीड़ित, दलित लालसाओ की बारी,
फिर इन हाड़ों में बल भर दो फूँको तो अपनी चिनगारी।

प्रसंग—इस पद में कवि समार के समस्त कष्टो को स्वयं सहन करने की कामना करता है।

व्याख्या—कवि कहता है कि हम समस्त ससार की कटुता और जीवन के भयानक दु ख दैन्य, भूखे-प्यासे व्यक्तियो के समूह का निर्जीव एव स्थिर दु खो को पी लें अर्थात् इन सब दु.खो को हम सहन कर लें। जिन दु खी व्यक्ति का जीर्ण-शीर्ण वक्षस्थल असफलता के आघातो से रक्तहीन हो गया है, जिनका हृदय इच्छाओ की पूर्ति के अभाव में प्रसन्नता रहित हो चुका है, दुख और क्षोभ के कारण जिनके अग जलते रहते है और रात्रि भर उन्हें नीद भी नही आती है, हे सुन्दरी ! उनकी सताई गई और कुचली गई इच्छाओ की ही आज बारी आई है अर्थात् अब तक शोषको तथा अत्याचारियो का समय था, परन्तु अपने ऊपर हुए अत्याचारो का प्रतिशोध लेने का शोषितो को अब अवसर प्राप्त हुआ है। अब इन हड्डियो मे फिर अपनी अग्नि भर कर नवीन शक्ति का सचार करो अर्थात् उनमे नवीन शक्ति भर दो।

शम्भुनाथ शेष

हम युगों से चल रहे हैं किन्तु अब तक हैं डगर में,
यों त्रिशकु समान कब तक प्राण झूलेंगे अधर में,
क्यों नहीं है पाँव में गति, ज्योति दृग में, शक्ति स्वर में,
जाग कर साथी चिरन्तन लक्ष्य की पहचान कर लें !

आज नवयुग की उषा मे, नव जगत् निर्माण कर लें !
प्राण-भीनी गीतियों से, शान्ति का आह्वान कर लें।

प्रसंग—प्रस्तुत पद श्री शम्भुनाथ शेषकृत "आज नवयुग की ऊषा में" शीर्षक कविता से उद्धृत किया गया है।

कवि युग जागृति का लाभ उठा कर नये समाज का निर्माण करना चाहता है। वह चाहता है कि इस जागरण के युग में मानव का पूर्ण विकास हो जाय।

व्याख्या—कवि कहता है कि हम (मानव) युग-युगान्तरो से विकास के मार्ग पर चलते आ रहे है, परन्तु अभी हम मार्ग मे ही है, अपने लक्ष्य तक अभी नही पहुँच पाये है। हमारे प्राण और हमारा जीवन इस प्रकार त्रिशकु की भाँति बीच मार्ग मे ही कब तक झूलता रहेगा ? हमारे पैरो में गति, नेत्रो में ज्योति तथा स्वर मे शक्ति क्यो नही है ? आज हम उत्साहहीन क्यो हो गये है ? हम विकास की ओर क्यो नही अग्रसर हो रहे है ? हम सब सुप्तावस्था मे पडे हुए है। हे साथी ! हमें जाग कर अर्थात् सचेत हो कर अपने शाश्वत् उद्देश्य को पहचान लेना चाहिए। आज नवीन युग के प्रभात मे हमें वर्ग भेद रहित नवीन ससार की सृष्टि कर लेनी चाहिए। हमे जीवन मे मधुर गीत गाकर शाति को बुला लेना चाहिए अर्थात् इस अवसर पर नवीन विश्व की रचना कर डालें जिसमे अभाव, द्वेष आदि कुछ न हो और ससार को जीवन का सदेश दे कर शान्ति की स्थापना कर ली जाय।

काव्य-सौष्ठव—इस कविता मे प्रगतिवादी उद्गार हैं।

सागर के प्यासे की भी क्या ओस-कणो से प्यास बुझी है ?
प्रेम प्यास मुझको दो थी तो प्रेम सहित मधुकण भी देता !
तीनो लोक-लोक से लगते मेरी आकांक्षा के आगे,
कलित-कामना की क्रीडा को विस्तृत-सा प्रागण भी देता !

प्रसंग—प्रस्तुत पद्यांश श्री शम्भूनाथ शेष कृत 'इस जग मे भेजा था तूने' शार्षक कविता से उद्धृत किया गया है।

कवि भगवान् को सविनय उपालम्भ देता है कि उसने कवि को मानव शरीर तथा मानवी हृदय तो प्रदान किया, किन्तु उसे पूर्ण साधन नही दिये।

साधन भी आवश्यकता के अनुरूप होने चाहिएँ।

व्याख्या — कवि कहता है कि जिसको सागर को पी जाने की प्यास हो, क्या उसकी तृप्ति ओस की बूँदो से हो सकती है ? अर्थात् जिसकी इच्छायें बहुत बडी-बडी हो, उसे साधारण साधनो से तृप्ति नहीं हो सकती। हे भगवान् ! यदि आपने मुझे प्रेम की प्यास दी थी, तो उसके साथ उसकी तृप्ति के लिए कोई प्रेम से पूर्ण रूप-माधुरी भी प्रदान की होती। मेरी इच्छाओ के आगे तीनो लोक एक रेखा के समान दिखाई देते है। जब आपने मुझे इतनी बडी मधुर इच्छायें दी तो फिर इनके खेलने के लिए खुला चौडा आँगन, लम्बा-चौडा असीम क्षेत्र भी दिया होता।

> जीवन का गरल, सोम का प्याला हो जाय।
> जग ज्वाला-लपट, फूलो की माला हो जाय।
> जो साधना में शिव-सा व्रती हो साथी,
> तो जिधर करे, दृष्टि उजाला हो जाय !

प्रसग—प्रस्तुत पद्यांश श्री शम्भूनाथ शेष कृत 'उन्मीलिका' शीर्षक कविता से उद्धृत किया गया है। इसमे कवि ने बताया है कि मानव की साधना का क्या प्रभाव है।

व्याख्या—कवि कहता है कि यदि साधना का साथी शिव के समान व्रती (नियम पालन करने वाला) हो, तो जीवन रूप विष भी अमृत का प्याला बन जाय, और ससार के दु खो की अग्नि की ज्वालायें भी फूलो की माला की भाँति शीतल हो जायें। उस अवस्था मे साधक की दृष्टि जिस ओर पड़ेगी, उसी ओर प्रकाश छा जायेगा।

भाव यह है कि यदि साधना का सहचर साधक ही हो तो जीवन मे घृणा और द्वेष के स्थान पर प्रेम हो जाय और सांसारिक कष्ट भी सुखदायी हो जाये।

काव्य-सौष्ठव—भाव सौंदर्य तथा सरलता की दृष्टि से कविता सुन्दर है।

प्रश्न १—हिन्दी की आधुनिक कविता को किन-किन युगो में बांटा जा सकता है ? प्रत्येक युग की काव्य प्रवृत्तियों की चर्चा करें।

उत्तर—देश और समाज की परिस्थितियो के परिवर्तन के साथ-साथ साहित्य की दिशा भी परिवर्तित होती रहती है। यही दशा हिन्दी का

आधुनिक कविता की है। आधुनिक कविता के विकास को चार युगो मे विभक्त किया जाता है—(१) भारतेन्दु युग, (२) द्विवेदी युग, (३) प्रसाद युग, (४) प्रगति युग। ये चारो युग आधुनिक कविता के विकास के चिह्न माने जाते है।

(१) भारतेन्दु युग—इस युग का आरम्भ भारतेन्दु जी से होता है। इससे पूर्व तो हिन्दी कविता मे शृ गार की प्रधानता थी। भारतेन्दु जी पाश्चात्य साहित्य से प्रभावित हुए। उन्हे भारतवर्ष की शताब्दियो से चली आई दासता अखरने लगी। समाज मे प्रचलित कुप्रथाओ तथा समाज की गिरती हुई दशा ने भी उन्हे बहुत प्रभावित किया। अग्रेज सरकार की शोषण नीति से भी हमारी आर्थिक दशा बहुत दयनीय हो चुकी थी। इसलिये भारतेन्दु जी ने अपनी कविता मे देश प्रेम और समाज सुधार को स्थान दिया। इस समय देश और समाज की समस्याओ को प्रथम बार इस युग की कविता मे व्यक्त किया गया। जनता की सामाजिक, राजनैतिक और आर्थिक दशा की ओर अन्य कवियो का भी ध्यान गया और उन्होने अपने काव्य मे इनके चित्र खीचने आरम्भ कर दिये। इस युग के अधिकाश काव्य साहित्य मे भारत के अतीत गौरव का चित्र खीच कर जनता को जागृत किया गया। बालमुकन्द गुप्त, बद्री नारायण चौधरी, प्रताप नारायण मिश्र आदि कवियो ने देश की करुण दशा के चित्र खीचे और देश भक्ति के गीत गाये। इस युग के काव्य पर आर्यसमाज का भी प्रभाव पडा।

(२) द्विवेदी युग—इस युग के आरम्भिक काल मे नये कवियो की बाढ-सी आ गयी। महावीर प्रसाद द्विवेदी जी ने उनका पथ-प्रदर्शन किया। वह उनकी कविता का सशोधन करके 'सरस्वती' पत्रिका मे छापते थे और उनकी त्रुटियो को दूर करने का प्रयत्न करते थे। 'सरस्वती' पत्रिका का सम्पादन कर द्विवेदी जी ने हिन्दी की आधुनिक कविता के विकास मे बहुत सहयोग दिया। उन्होने भाषा का सस्कार कर उसका शुद्ध रूप उपस्थित किया। इस युग से कविता के लिये व्रजभाषा के स्थान पर खडी बोली को अपनाया गया। इसका अर्थ यह नही कि व्रजभाषा में इस युग मे कविता ही नही लिखी गयी। सत्य नारायण कविरत्न वियोगी हरि तथा जगन्नाथ दास 'रत्नाकर' आदि कुछ

कवियो ने तो अपनी कविताएँ व्रजभाषा मे ही लिखी । हाँ, यह बात अवश्य है कि इस युग मे शृंगारिक कविता का पूर्ण रूप से बहिष्कार कर दिया गया । इस युग के कवियो ने सामाजिक कुरीतियो पर रचनायें की । श्रीधर पाठक ने विधवाओ पर और नाथूराम शर्मा ने बाल विवाह पर व्यंग्य किये । दहेज-प्रथा पर भी कडी आलोचना की गई । इस युग की कविताओ मे भारत के प्राचीन गौरव का वर्णन किया गया और स्वाधीनता पर रचानायें की गईं । इस युग में स्वतन्त्र प्रकृति चित्रण भी किया गया । इस युग के अन्तिम वर्षो मे कविता मुक्तक गीतों में लिखी जाने लगी । परन्तु इनमें भावुकता का अभाव था । सस्कृत वर्ण वृत्तो में अतुकांत कविता करने कारण हिन्दी कविता मे नवीनता के साथ-साथ नीरसता का भी सञ्चार होने लगा ।

(३) प्रसाद युग—कुछ कवियो को द्विवेदी युग की नीरसता और इतिवृत्तात्मकता रुचिकर न थी । ये पश्चिमी और बङ्गला साहित्य से प्रभावित थे । उन्होंने समय पा कर इस प्रकार की कविता के विरुद्ध विद्रोह कर दिया और मर्यादित परन्तु सुन्दर तथा गूढ अभिव्यक्तिमय शैली मे प्रेम आदि मन के भावो को प्रगट करना आरम्भ कर दिया । काव्य-क्षेत्र मे यह महान् परिवर्तन लाने वाले कवियो मे श्री जयशङ्कर प्रसाद जी का नाम सबसे आगे है । प्रसाद के अतिरिक्त सूर्यकान्त त्रिपाठी, 'निराला' सुमित्रानन्दन पन्त, महादेवी वर्मा आदि कवियों ने कविता में युगान्तर पैदा कर दिया है । ये कवि प्राय रहस्यवाद गौन रचते हैं । इस युग मे छायावाद का प्रादुर्भाव हुआ । आधुनिक रहस्यवाद और भक्ति काल के रहस्यवाद मे पर्याप्त अन्तर है । प्रकृति के नाना रूपो के चित्रण जैसे इस युग मे प्रसाद जी के काव्य मे हुए है वैसे अन्यत्र कहीं नहीं हो पाये । कामायनी के प्रलय वर्णन को पढ़ते-पढ़ते पाठक स्वयं सागर की उत्ताल तरङ्गों मे बहने लगता है । नवीन भावनाओं के साथ साथ ही नवीन कल्पनायें भी प्रसाद जी की प्रेरणा से प्राप्त हुईं ।

इस समय महात्मा गाधी के स्वतन्त्रता प्राप्ति के लिये किये जाने वाले सत्याग्रह देशव्यापी हो चुके थे । जनता ने भी गांधी जी के सत्याग्रह को भली भांति समझ लिया था । इस कविता पर भी इसका प्रभाव पड़ा और राष्ट्रीय भावना जिसका हिन्दी कविता मे बीजारोपण भारतेन्दु जी कर गए थे,

प्रबल हो उठी। इसी युग में जीवन की ओर से निराशा की भावना अधिक हो जाने के कारण काव्य मे हालावाद का जन्म हुआ। इसी समय पश्चिम के लिरिक के प्रभावस्वरूप हिन्दी मे प्रगति काव्य का प्रचार हुआ।

(४) प्रगति युग छायावादी कवि इस लोक की उपेक्षा कर अपनी ऊँची-ऊँची कल्पनाओ की उडान से एक काल्पनिक लोक की सृष्टि करने लगे। वे जीवन के सघर्षो से दूर रहते थे। इसको पलायन की प्रवृत्ति का नाम दिया गया। इसके विरुद्ध हिन्दी कविता मे प्रगतिवाद का जन्म हुआ। रूस मे बहुत बडी क्रान्ति हुई और उसके पश्चात् साहित्य के द्वारा साम्यवाद के सिद्धांतो का प्रचार किया जाने लगा। भारत भी इसके प्रभाव से दूर न रह सका। इसी समय फ्रायड के विचारो से प्रभावित हो हिन्दी कविता मे स्वच्छन्दता का जन्म हुआ। इस प्रकार हिन्दी कविता मे महान् परिवर्तन हुआ और प्रगतिशील काव्य का सृजन किया जाने लगा। यह प्रगतिवादी कविता राष्ट्रीय कविता से भिन्न है। राष्ट्रीय कविता तो देश के ही कल्याण और उसकी स्वतन्त्रता तक ही सीमित है परन्तु प्रगतिवादी कविता समस्त ससार और समस्त जाति की स्वतत्रता और कल्याण चाहती है। इस युग का कला-पक्ष साधारण है। भाषा मे सस्कृत पदावली के साथ विदेशी शब्दो का भी प्रयोग हो रहा है। यह कविता छन्दो के बन्धन से सर्वथा मुक्त है। इस कविता मे सामाजिक जीवन का यथार्थ रूप उपस्थित किया गया है।

प्रश्न—आधुनिक कविता की नवीन प्रवृत्तियो पर प्रकाश डालिए।

उत्तर अंग्रेजी और बगला साहित्य के सम्पर्क मे आने से हिन्दी कविता में कई नई प्रवृत्तियो का जन्म हुआ है। इन्ही प्रवृत्तियो को वाद का नाम दिया गया है। आज वैसे तो हिंदी मे वादो की बाढ़-सी आई हुई है, परन्तु प्रमुख वाद निम्नलिखित है :—

१—छायावाद, २ रहस्यवाद, ३—प्रगतिवाद, ४—गांधीवाद, ५—प्रतीकवाद, ६—स्वच्छन्दवाद।

१—छायावाद— जब कवि प्रकृति की प्रत्येक वस्तु मे (बहती हुई नदी, खिले हुए पुष्प, वृक्ष, वायु, निर्झर आदि मे) अपनी ही जैसी आत्मा के दर्शन करता है, वह अपना सुख-दुःख उन्हें सुनाता है और उनके सुख-दुःखो को स्वयं

सुनता है, तो उस समय उसके मुख से निकले हुए रमणीय वाक्य छायावादी कहलाते हैं। छायावाद आधुनिक युग की देन है। प्रसाद, सुमित्रानन्दन पंत, गोपालशरण सिंह आदि कवियों ने छायावादी कविता की रचना की है। प्रसाद जी की 'किरण' नामक कविता मे छायावाद स्पष्ट दिखाई देता है —

किरण! तुम क्यों बिखरी हो आज,
रंगी हो तुम किसके अनुराग,
स्वर्ण सरसिज किंजल्क समान,
उड़ाती हो परमाणु पराग।

कवि ने किरण मे मानवी चेतना के दर्शन किये हैं और उसे स्त्री रूप में सम्बोधित किया है। इसी प्रकार गोपालशरण सिंह की 'मुसकान' कविता में छायावाद स्पष्ट है।

छायावाद मे कवि अपने हृदय की भावना को प्रकृति का सहारा लेकर प्रकट करते हैं। सामाजिक बन्धन के कारण वे खुल्लम-खुल्ला तो हृदय की वासना को अपनी कविता मे स्थान दे नहीं सकते थे, इसीलिए उन्होंने प्रकृति को आलम्बन बनाया। छायावादी काव्य मे प्राय स्वच्छन्द अथवा मुक्तक छंद को अपनाया गया है। प्रसाद की 'कामायनी' छायावाद का सर्वोत्तम उदाहरण है।

२—रहस्यवाद—हिंदी कविता में रहस्यवाद का आरम्भ भक्तिकाल में हुआ। कबीर, जायसी आदि महान् कवियों ने रहस्यवादी काव्य सृजन किया। परन्तु उसके पश्चात् शृंगार काल में कोई भी रहस्यवादी रचना नहीं हुई। आधुनिक काल में पुन. सर्वप्रथम प्रसाद जी की रचनाओं मे रहस्यवाद के दर्शन होते हैं। परन्तु आधुनिक रहस्यवाद और भक्तिकाल के रहस्यवाद में पर्याप्त अन्तर आ गया है।

छायावादी कवि जब एक कदम और आगे बढता है और समस्त विश्व में (जड और चेतन प्रत्येक पदार्थ मे) वह ब्रह्म का अनुभव करने लगता है, तो उसका काव्य रहस्यवादी कहलाता है अर्थात् ससार की प्रत्येक वस्तु मे ब्रह्म का अनुभव करना ही रहस्यवाद कहलाता है। इसको इस प्रकार भी कह सकते हैं कि ससीम जगत मे असीम भगवान् के दर्शन करना ही रहस्यवाद है। आधु-

निक काल में जयशकर प्रसाद, महादेवी वर्मा, सूर्यकान्त त्रिपाठी 'निराला' आदि कवियो की कविताओं में रहस्यवाद के दर्शन होते है।

रहस्यवाद की तीन अवस्थाएँ होती है—(१) जिज्ञासा, (२) उत्कण्ठा, (३) मिलनोत्तरावस्था।

(१) जिज्ञासा—कवि जब समस्त ससार मे किसी महान् सत्ता का अनुभव करता है, आकाश मे चमकते हुए तारो को देखकर, खिले हुए पुष्पो को देखकर वह प्रश्न कर बैठता है कि "इनका निर्माता कौन है ? और वह कहाँ छिपा है ?" तब वह उसके ज्ञान की प्राप्ति के लिए बेचैन हो उठता है —

इस रत्न जटित अम्बर को किसने धरा पर छाया।
करुणा की किरणें चमका क्यों अपना रूप छिपाया॥

(हरिकृष्ण प्रेमी)

(२) उत्कण्ठा—जब कवि को उस महान् शक्ति का ज्ञान हो जाता है, तो वह इसकी प्राप्ति के लिए आकुल हो उठता है। यह रहस्यवाद की 'उत्कण्ठा' अवस्था है।

भर पावे तो स्वर लहरी में भर वह करुण हिलोर,
मेरा उर तज वह छिपने का ठौर न ढूंढे भोर,
उसे बाँधू फिर पलकें खोल ?
हठीले हौले हौले बोल ?

(महादेवी वर्मा)

(३) मिलनोत्तरावस्था—आत्मा और परमात्मा के एकीकरण हो जाने पर मिलनोत्तरावस्था होती है।

तुम तुंग हिमालय शृंग,
और मैं चंचल-गति सुर-सरिता।
तुम विमल हृदय, उच्छ्वास,
और मैं कान्त-कामिनी-कविता। (निराला)

३—प्रगतिवाद—राजनैतिक क्षेत्र मे जिसे समाजवाद व साम्यवाद कहते है, साहित्यिक क्षेत्र मे उसे प्रगतिवाद कहते है। समाज मे होने वाले शोषण, सामाजिक असमानता एवं अन्य सामाजिक कुरीतियो को नष्ट करके उसमें

समानता स्थापित करने के लिए यूरोप मे समाजवाद व साम्यवाद का जन्म हुआ। धीरे-धीरे इनकी लपटें भारत मे आई। चूँकि साहित्य समाज की चित्तवृत्तियो को प्रतिबिम्बित करने वाला दर्पण होता है, इसलिए वह भी इन लपटो से अछूता न रह सका, और क्रान्ति की इन भावनाओं से प्रभावित होकर कवियों ने जो साहित्य सृजन किया, उसे प्रगतिवादी साहित्य कहा जाने लगा। प्रगतिवादी कवि वर्तमान सामाजिक व्यवस्था को क्रान्ति से परिवर्तित करके एक नये युग का निर्माण करना चाहता है।

इसकी दो भावनाएँ है—

(१) मार्क्सवाद के विचारो से प्रभावित होकर एक ऐसे समाज का निर्माण करना जिसमे वर्गभेद के लिए कोई स्थान न हो।

(२) समाज के बन्धनो को तोड कर प्राकृतिक वासनाओं को पूर्ण करने के लिए स्वतन्त्रता की इच्छा करना।

प्रथम प्रकार की भावनाओ का अनुकरण करने वाले कवि शिवमगल 'सुमन', रामेश्वर शुक्ल 'अञ्चल' आदि हैं। इनके अनुयायी रक्त बहाने अर्थात् हिंसात्मक साधनो को अपनाने के लिए प्रत्येक समय तैयार रहते हैं। दूसरे प्रकार की भावनाओ का अनुकरण करने वाले कवि सुमित्रानन्दन पंत, निराला आदि हैं। इनमे शोषक और निर्धनो के प्रति सहानुभूति और सामाजिक कुरीतियो के प्रति असतोष की भावनायें हैं। प्रगतिवाद का कला-पक्ष साधारण है और यह साहित्यिक रूढियो को भी तोड़ने के पक्ष मे है।

(४) गाँधीवाद—महात्मा गाँधी ने देश को स्वतन्त्र कराने के लिए सत्याग्रह आन्दोलन चलाया। उन्होंने ग्राम सुधार और अछूतोद्धार आन्दोलन भी चलाये। उनकी इन भावनाओं से प्रेरित होकर जो साहित्य लिखा गया उसमें गाँधीवाद का प्रभाव है। गाधीवाद प्रगतिवाद का ही एक रूप है, परन्तु प्रगतिवाद शीघ्रातिशीघ्र ही समाज सुधार करके नवीन युग का निर्माण करने के पक्ष मे है परन्तु गाँधीवाद धीरे-धीरे प्रेमपूर्वक समझाकर यह सुधार करना चाहता है। प्रगतिवाद क्राति के लिए हिंसात्मक साधनो को भी अपनाने के पक्ष मे है, जबकि गाँधीवाद इसका विरोध करता है। वह तो केवल अहिंसात्मक रीतियो के ही पक्ष मे है। दिनकर, सोहनलाल द्विवेदी, नरेन्द्र

आदि कवि गाँधीवाद के अनुयायी है। द्विवेदी जी ने अपनी "गाँव मे" नामक गाँधीवादी कविता मे ग्रामीणो की दुर्दशा का यथार्थ चित्रण खीचा है—

हड्डी हड्डी, पसली पसली निकलती है जिसकी एक एक,
पढ़ लो मानव; किस दानव ने ये नर हत्या के लिखे लेख।
पी गया रक्त, खा गया मांस है कौन स्वार्थ के दावों मे,
है अपना हिन्दुस्तान कहाँ? वह बसा हमारे गाँवों में?

(५) प्रतीकवाद—सूक्ष्म मानसिक भावो को प्रकट करने के लिए ऐसे शब्दो का प्रयोग करना जो उसी अनुभव को कराने वाले हो प्रतीकवाद कहलाता है। जैसे सुख को प्रकट करने के लिए दिन और दुःख को प्रकट करने के लिये रात्रि शब्दो का प्रयोग करना।

(६) स्वच्छन्दवाद—साहित्यिक रूढियो के बन्धनो को तोड कर स्वतन्त्रतापूर्वक काव्य सृजन करना स्वच्छन्दवाद कहलाता है। इसमे विचार अथवा शैली के लिए कोई बन्धन नही होता है।

इनके अतिरिक्त आधुनिक कविता मे निराशावाद, आशावाद, यथार्थवाद, नियतिवाद, हालावाद, विस्मयवाद आदि कई वाद प्रचिलित है, परन्तु इनका क्षेत्र व्यापक नही है।

प्रश्न—आधुनिक कविता की परिभाषा बतलाते हुए उसकी कुछ विशेषताओं पर प्रकाश डालिए।

उत्तर—आधुनिक कविता का जन्म सवत् १६०० के पश्चात् होता है। इससे पूर्व शृंगार रस की कविताओ का सृजन हो रहा था। यह वह काल था जबकि पाश्चात्य साहित्य और सभ्यता ने भारतीय साहित्य पर अपना प्रभाव डाला और उसकी प्रतिक्रिया के रूप मे आधुनिक कविता का जन्म हुआ। इस पर देश मे उस समय होने वाले सामाजिक आर्थिक एव राजनैतिक बन्धनो के विरुद्ध होने वाले सघर्षों का भी पूर्ण प्रभाव पडा। यही कारण है कि आधुनिक कविता और प्राचीन कविता मे बहुत अन्तर है।

आधुनिक कविताओं को कुछ विशेषतायें—१ इनका युग के सामाजिक जीवन से बहुत गहरा सम्बन्ध है, क्योकि यह यहाँ पर होने वाले सामाजिक तथा राजनैतिक आन्दोलनो एवं परिवर्तनो से प्रत्यक्ष रूप से पडने वाले प्रभावो

को लेकर पनपी है।

२. आधुनिक कविता का प्राचीन कथानको से कोई विशेष सम्बन्ध नहीं है। यह मौलिकता की ओर अग्रसर हुई है। इनकी शैली मुक्तक है।

३. इसमे जीवन को प्रकृति के वातावरण के मध्य परखने की चेष्टा की गई है।

४. इसमें मानवीय सौंदर्य का वर्णन आन्तरिक गुणो के आधार पर ही किया गया है। इसमे वाह्य सौंदर्य को नहीं अपनाया है।

५ इसमे नारी को 'माँ','सहचरी', 'सखि' आदि शब्दो से सम्बोधित किया गया है। इससे पूर्व हिन्दी साहित्य मे नारी को इतनी उदात्त भावना से किसी भी कवि ने नही देखा था।

६. यह कविता प्रचीन पद्धति का अवलम्ब छोड कर चली। उसकी भाव निरूपण शैली एव आदर्श सर्वथा भिन्न हैं।

७. आधुनिक कविता खडी बोली मे लिखी गई है। ब्रजभाषा में लिखी कवितायें तो बहुत ही अल्प मात्रा में हैं।

८. आधुनिक कविता प्राय गीतो या मात्रिक छन्दों मे ही लिखी गई है। गीतिकाव्य का सगीत भी भारतीय न होकर पाश्चात्य ही है।

९ आधुनिक कविता में भाव प्रकाशन की प्रधानता होने पर भी अलंकार आदि का सहारा लिया गया है, परन्तु उनको प्रधान रूप मे न रखकर गौण रूप मे रखा गया है। कुछ पाश्चात्य अलकार भी लिए गए है। मानवीकरण और विशेषण-विपर्यय मे दो अलंकार अंग्रेजी से लिए गए हैं।

१०. इसमें भक्ति भावना के साथ-साथ बुद्धिवाद का भी आश्रय लिया गया है। इसीलिए प्राचीन आदर्श पुरुषो को अवतार के स्थान पर मानवी दृष्टिकोण से देखा गया है।

११. इस युग में प्रेम काव्य की भी रचना हुई, परन्तु इसमे शृगार काल के समान वासनापूर्ण कलुषित प्रेम का वर्णन न होकर शुद्ध प्रेम की अन्तर्दशा को सात्विक रूप मे वर्णित किया गया है।

१२. आधुनिक कवि नायक-नायिका के चक्कर मे पड़ा है। प्राय. सभी नायिकाएँ स्वकीया ही नही हैं। कुछ "कौन" को ही प्रेम का विषय बनाते

है। वे अपनी कविता को रहस्यवादी बनाने का प्रयत्न करते है।

१३ इसमें भावपक्ष तथा कलापक्ष का समान समन्वय है। भाव सामग्री पाश्चात्य प्रभाव से पूर्ण है।

१४ आधुनिक कविता में प्रकृति वर्णन स्वतन्त्र व्यक्तित्व के आधार पर हुआ है। प्रकृति को इतने व्यापक रूप में इससे पूर्व संस्कृत कविता के अतिरिक्त कभी वर्णित नही किया गया था। इससे वह उद्दीपन मात्र न होकर रहस्यमयी है।

१५. इसमे आत्मिक अनुभूति को विशप स्थान दिया गया है। प्राचीन काव्य की भाँति केवल वाह्य वर्णन को महत्व नही दिया गया है।

प्रश्न—आधुनिक कविता में होने वाले प्रकृति-वर्णन की भिन्नता पर प्रकाश डालिए।

उत्तर—कविता मानव जीवन की आन्तरिक अनुभूतियो का शाब्दिक रूप है। उसमें प्रेम, क्षोभ, शोक, घृणा आदि अन्तरग जीवन की हलचलो की उत्पत्ति और लय का इतिहास वर्णित रहता है। परन्तु ये मनोभाव अथवा मानसिक प्रक्रियाएँ भी वाह्य एव निकटवर्ती वातावरण सापेक्ष हैं। यही कारण है कि काव्य मे अनादि काल से आन्तरिक-चेतन एव वाह्य अथवा अचेतन भौतिक प्रकृति का व्यापक वर्णन होता आया है। वातावरण के अनु-रूप ही मनोभाव उत्पन्न और लीन होते है।

सस्कृत साहित्य मे अन्तर्जगत् और भौतिक जगत् दोनो को ही 'प्रकृति' का नाम दिया गया है, क्योकि मूल कारण को ही प्रकृति कहते है। मानव का भाव जगत् जब क्षुब्ध होता है, तभी वह कुछ भी भला-बुरा कार्य करता है। विना किसी वाह्य कारण के ये भाव क्षोभ का व्यापार नही कर पाते। इसीलिए प्रकृति का निरीक्षण उस समय सर्वथा व्यावहारिक और आवश्यक कार्य समझा जाता था। संस्कृत कवियो ने उस प्रकृति के स्वरूप एवं व्यापारो का उसी व्यापक दृष्टि और सूक्ष्मता के साथ निरीक्षण किया जिससे मनुष्य की आन्तरिक प्रवृत्ति का करते थे। इसीलिये उनके काव्य मे प्रकृति स्वतन्त्र व्यक्तित्व धारण करती है। परन्तु हिन्दी कविता में यह प्रवृत्ति नहीं रही। वीरगाथा काल मे केवल काव्यांगो के रूप में उसका वर्णन हुआ है। भक्ति

काल मे सन्तो ने उसे माया रूप मानकर ठुकरा दिया। सूफियो ने उसे आध्यात्मिक आधार का स्वरूप दिया। किन्तु शृगार काल मे वह सर्वथा उद्दीपन बन गई और उसके स्वतन्त्र अस्तित्व का लोप ही हो गया। आधुनिक युग मे तो प्रकृति हिन्दी कविता में छायावाद का सर्वस्व बन गई। आधुनिक काल मे उसका निम्नलिखित तीन रूपो मे वर्णन मिलता है—

(१) स्वतन्त्र वर्णन शैली—श्रीधर पाठक, मैथिलीशरण गुप्त तथा अयोध्यासिंह उपाध्याय ने इसी शैली मे प्रकृति चित्रण किया है। इसमे प्रकृति के दृश्यो का ज्यो का त्यो वर्णन प्राप्त होता है।

(२) सवेदन शैली—जब कवि प्रकृति को चेतन रूप देकर उसके व्यापारो मे मानवी व्यापारो का दर्शन करता है अथवा प्रकृति मे मानव हृदय की भावनाओ के दर्शन करता है, तब इस शैली का प्रयोग होता है। इसमे प्रकृति जड नही रहती है। प्रसाद, पन्त, निराला, महादेवी वर्मा आदि ने इस शैली मे प्रकृति चित्रण किया है।

कहो! कौन तुम दमयन्ती सी तरुतल के नीचे सोई,
आज तुम्हें भी छोड गया अलि! नल सा निष्ठुर कोई।

(३) उपमान शैली—इस शैली मे कवि प्रकृति को उपमान के रूप मे अपनाता है।

सिन्धु-सेज पर धरा-वधु अब तनिक सकुचित वैठी थी।
प्रलय निशा की हलचल स्मृति में मान किए सी ऐंठी सी।

उपरोक्त विवेचन के पश्चात् हम कह सकते है कि वास्तव मे आधुनिक कविता मे प्रकृति चित्रण सर्वथा नवीन तथा स्वतन्त्र शैली मे हुआ है।

कवियों का विवेचनात्मक अध्ययन

प्रथम भाग

चन्दवरदाई

प्रश्न १—महाकवि चदवरदाई के जीवनवृत्त के सम्बन्ध मे आप क्या जानते हैं ? संक्षेप मे लिखिये।

उत्तर—हिन्दी के आदि महाकवि चदवरदाई का जीवनवृत्त अद्यावधि अनिर्धारित ही है। फिर भी पृथ्वीराज रासो मे चन्दवरदाई के सम्बन्ध में जो थोडी वहुत सामग्री उपलब्ध है उसके अनुसार तथा अन्य पचलित अनुश्रुतियो के अनुसार कहा जा सकता है कि चन्दवरदाई का जन्म लाहौर मे हुआ था। इनका और इनके आश्रयदाता महाराज पृथ्वीराज दोनो का जन्म और निधन भी एक ही दिन और एक ही समय मे हुआ था, जैसा कि रासो मे लिखा है।

इक दीह उपघ, इक दीह समायकम्।

महाराज पृथ्वीराज का जन्म—

सम्वत् एकादस सँ पंचदह विक्रम साक अनन्द।
तिहुँ पुर रिपु जय करन को भये पृथ्वीराज नरिन्द॥

के अनुसार सम्वत् १११५ अर्थात् १२०५ मे हुआ। चूंकि रासो के दिए हुए सम्वतो की घटनाओ मे प्राय' नब्बे वर्ष का अन्तर रहता है, इसीलिए दोहे के १११५ को १२०५ माना जाता है। यह जन्म सम्वत् भी कहा तक प्रामाणिक है, निश्चय रूप से कुछ नही कहा जा सकता। पृथ्वीराज की मृत्यु सम्वत् १२४६ मे हुई थी, यह निश्चित है अत. चन्दवरदाई की मृत्यु भी इसी वर्ष मानी जाती है।

रासो मे लिखा है कि चदवरदाई के पिता का नाम वेण अथवा राव वेन् था। यह जगात गोत्र के भट्ट ब्राह्मण थे। कुछ लोग इन्हें सारस्वत ब्राह्मण भी कहते हैं। इनके पिता अजमेर के चौहान राजाओ के यहा रहते थे अत. इनका पालन-पोषण अजमेर मे हुआ। इनकी दो पत्नियाँ थी जिनसे इनके दस पुत्र

हुए। जल्लण इनमें से सबसे अधिक योग्य था। इसीलिए चन्दवरदाई ने गजनी जाते समय पृथ्वीराज रासो को पूरा करने के लिए इन्हें ही सौंपा था—

पुस्तक जल्हण हत्थ दै चलि गज्जन नृप-काज।
रघुनाथ चरित हनुमंत कृत भूप भोज उद्धरिय जिमि।
पृथिराज सुजस कवि चंद कृत चंद नंद उद्धरिय तिमि॥

रासो में लिखा है कि चंदवरदाई ने गजनी पहुँचकर वहाँ शब्द-भेदी बाण के द्वारा महाराजा पृथ्वीराज के हाथों शहाबुद्दीन गौरी की जीवनलीला समाप्त करवा दी और अन्त मे चन्दवरदाई और पृथ्वीराज दोनों भी एक दूसरे को मारकर मर गए।

रासो में यह भी लिखा है कि चन्दवरदाई पृथ्वीराज के केवलमात्र प्रमुख राजकवि ही नहीं, प्रत्युत सामन्त, सखा, मन्त्री, मित्र, सेनापति आदि सभी कुछ थे। ये षड् भाषा, व्याकरण, काव्य, साहित्य, छन्द, ज्योतिष, पुराण, नाटक, वेदक आदि विविध विद्याओं के ज्ञाता थे। इन्हें जालन्धरी देवी सिद्ध थी जिसके बल से यह अदृष्ट काव्य भी कर सकते थे। पृथ्वीराज और इनका जीवन इस प्रकार एकाकार हो गया था कि इनके रंग-रूप, चाल-ढाल, बोल-चाल आदि में भी कोई भेद न था। ये सर्वदा महाराज के साथ छाया की भांति रहते थे। इन्होंने पृथ्वीराज रासो नामक हिन्दी के आदि महाकाव्य का प्रणयन किया। रासो सम्वादात्मक शैली में लिखा गया है जिसमें कवि की पत्नी गौरी और कवि का सम्वाद है। रासो में आबू के अग्निकुण्ड से चौहान, राठौर, सोलंकी और परमार इन चार क्षत्रिय कुलों की उत्पत्ति से लेकर पृथ्वीराज की मृत्यु तक की कथा विविध छन्दों में कही है।

प्रश्न २—रासो की प्रामाणिकता और अप्रामाणिकता के सम्बन्ध में विविध विद्वानों के द्वारा दिये गए युक्ति, तर्क और प्रमाणों का उल्लेख करते हुए बताइये कि उसे प्रामाणिक या अप्रामाणिक क्यों माना जाता है?

उत्तर—पृथ्वीराज रासो ६९ समय या सर्गों में लिखा हुआ ढाई हजार पृष्ठों का एक विशाल महाकाव्य है। पहले तो यह माना जाता रहा था कि चन्दवरदाई ने इसकी रचना महाराज पृथ्वीराज के समय में ही की थी, किन्तु लगभग ५०-६० वर्ष हुए डा० बुल्हर, कविराज श्यामलदास तथा कविराज

मुरारीदान आदि विद्वानो ने यह सिद्ध किया कि यह रचना सर्वथा भाट-भनन्त मात्र है और इसका निर्माण १६ वी शताब्दी मे हुआ है। उन्होंने अपने पक्ष के समर्थन मे अनेक युक्ति और प्रमाण दिए हैं। आगे चलकर इतिहास के प्रसिद्ध विद्वान् रायबहादुर गौरीशकर हीराचद ओझा ने भी अपने अकाट्य तर्कों के द्वारा रासो की अप्रामाणिकता का समर्थन किया ।

इन विद्वानो का कथन है कि—

(क) रासो मे दी गई अधिकांश ऐतिहासिक घटनाएँ अशुद्ध हैं। जैसे कि शाहबुद्दीन गौरी पृथ्वीराज के हाथो नही प्रत्युत गक्खरो के हाथों से मारा गया था। 'पृथ्वीराज का पिता सोमेश्वर गुजरात के राजा भीम के हाथो मारा गया और उसका बदला लेने के लिए पृथ्वीराज ने भीम का काम-तमाम कर दिया।' रासो का यह कथन भी इतिहास विरुद्ध है। रासो मे वर्णित ग्यारह वर्ष की अवस्था से लेकर ३६ वर्ष तक की अवस्था मे पृथ्वीराज के चौदह विवाह भी कपोल-कल्पित हैं।

(ख) रासो मे दिए गए सभी सन्-सवत् अशुद्ध हैं। क्योकि जैसा कि पहले कहा गया है, रासो मे पृथ्वीराज का जन्म ११११५ मे दिया गया है जब कि वास्तव मे उनका जन्म १२०५ मे हुआ।

(ग) चगेजखाँ, तैमूरलिंग आदि परवर्ती व्यक्तियो के नाम भी इसमे मिलते है।

(घ) रासो मे दी गई चौहानो की वशावली भी इतिहास से मेल नही खाती।

(ङ) 'हम्मीर रासो' और 'पृथ्वीराज विजय' आदि काव्यों में तथा शिला-लेखो मे पृथ्वीराज की माँ का नाम कर्पूर देवी मिलता है, पर रासो मे यह नाम कमलादेवी दिया गया है। इस प्रकार रासो में दिए गए नाम भी प्राय अशुद्ध हैं।

(च) रासो में वर्णित दिल्ली के राजा अनंगपाल की कमला और सुन्दरी नामक दो कन्याओ का सोमेश्वर और विजयपाल से विवाह तथा उनसे पृथ्वीराज और जयचन्द की उत्पत्ति व पृथ्वीराज का अपने नाना की गोद जाना आदि घटनाएँ भी अनैतिहासिक है।

इन्हीं सब बातों को देखते हुए ओझा जी ने तो यहाँ तक कह दिया है कि चंदबरदाई नाम वाला कोई कवि पृथ्वीराज के दरबार में नहीं था। जयानक नामक काश्मीरी कवि ने, जो निश्चित रूप से पृथ्वीराज का समकालीन था, अपने 'पृथ्वीराज विजय' नामक काव्य में सभी घटनाओं का प्रायः सच्चा वर्णन किया है। किन्तु उसने चंदबरदाई का कहीं नाम नहीं लिया। इससे भी सिद्ध होता है कि चंदबरदाई पृथ्वीराज का समकालीन कवि न था।

ओझा जी आदि विद्वानों के इस मत का खंडन मोहनलाल विष्णुलाल पंड्या आदि विद्वानों ने किया है। सम्वतों के बारे में उनका कहना है कि विक्रम सम्वत् में नब्बे वर्ष का अन्तर जान बूझकर डाला गया है।

इधर कुछ विद्वान् यह कहने लगे हैं कि मूल पृथ्वीराज रासो का पाठ बहुत कम था और उसमें प्रक्षेप बहुत अधिक हो गया। इस प्रक्षेप के कारण ही रासो में अनेक ऐतिहासिक अशुद्धियाँ आ गई हैं इसलिए यह पुस्तक सर्वथा जाली नहीं है।

पर इस प्रक्षिप्त पाठ से मूल रासो को पृथक् कैसे किया जाय यह भी तो एक बड़ी समस्या है। इस सम्बन्ध में कविराज मोहनसिंह का विचार है कि—

छंद प्रबन्ध कवित्त यति, साटक गाह दुहत्थ।
लघु गुरु मंडित खंडि यह, पिंगल अमर भरत्थ॥

में वर्णित कवित्त, गाथा, साटक और दोहा छन्दों में जो रचना है वही मूल रासो की है। इधर श्री हजारीप्रसाद द्विवेदी का सुझाव है कि रासो का जो अंश शुक-शुकी सम्वाद के रूप में है वही मूल रासो है।

इधर बहुत से विद्वान् रासो के मध्यम लघु और लघुतम—आदि रूपान्तरों को ही प्रामाणिक ठहराते हैं। ऐसी अवस्था में निश्चय से कुछ नहीं कहा जा सकता कि वस्तुस्थिति क्या है।

प्रश्न ३—भाषा, शैली, कलापक्ष और भावपक्ष आदि की दृष्टि से रासो के साहित्यिक सौन्दर्य के सम्बन्ध में संक्षिप्त विचार व्यक्त कीजिए।

उत्तर—रासो की ऐतिहासिकता के विवाद ने उसके साहित्यिक सौन्दर्य

की ओर विद्वानो का ध्यान ही नही जाने दिया। पर स्मरण रखना चाहिए कि ऐतिहासिक काव्यो मे प्राय इतिहास का आधार नाम-मात्र को ही लिया जाता है और कल्पना का पुट ही अधिक रहता है। तदनुसार रासो के ऐतिहासिक पक्ष की ओर ही सारा ध्यान न देकर उसके साहित्यिक सौन्दर्य से रसपान करने का भी समुचित प्रयत्न करना चाहिए।

इस दृष्टि से विचार करने पर हम देखते हैं कि रासो एक वीर और शृगार रस प्रधान सुन्दर चरित काव्य है। महाकाव्यो की परम्परा के आधार पर इसमे, षड् ऋतु आदि के वर्णन-प्रसग भी आ गए है। पृथ्वीराज की छहो रानियो के मुख से छहो ऋतुओ का वर्णन करा दिया गया है। विवाहो के प्रसग मे शृ गार रस की अवतारणा हुई है।

> सदेस सुनत आनन्द नैन।
> उमगीय बाल मनमथ्थ सैन॥
> तन चिकट चीर डार्यो उतार।
> मंडान मयंक नव सत सिगार॥

आदि स्थानो मे शृ गार रस के विभाव, अनुभाव आदि का सुन्दर प्रदर्शन हुआ है।

शाहबुद्दीन के साथ जिन विविध युद्धो का वर्णन किया गया है और जयचन्द, भीमदेव आदि हिन्दू राजाओ के साथ भी पृथ्वीराज के जो अनेक सघर्ष दिखाए गए है उन सब मे भी वीर रस का सुन्दर परिपाक हुआ है—

> खुरासान सुलतान, कंधार मीर।
> वलषं स्यौ वलं, तेग अच्चूक तीरं॥
> सहंगी, फिरंगी, हलब्बी, स सामी।
> ठटी टट्ट वल्लोच, ढाल निसानी॥

आदि स्थलो मे सैन्य शक्ति के संचालन का सुन्दर चित्र अ ंकित किया है—

> उट्ठि राज प्रथिराज बाग मनो लग्ग वीर नट।
> कढ़त तेग मन बेग लगत मनो बीजु भट्ट घट॥
> 'हरि हरषि वीर जग्गे हुलसी हुर बरंग नवरत्त वर'

आदि स्थलों में वीर-रस के अनुभाव और संचारी-भाव आदि की सुन्दर अभिव्यक्ति हुई है।

प्रकृति-चित्रण—पृथ्वीराज रासो में प्रकृति का चित्रण शृंगार और वीर रस के उद्दीपन के रूप में हुआ है, स्वतन्त्र रूप में नही पर फिर भी वे वर्णन बडे सुन्दर और स्वाभाविक बन पडे है। कही-कही प्रकृति-वर्णन में मानवीकरण आदि के दर्शन भी होते हैं, जैसे कि—

> भव प्रात रत्तिय, जुरत्त दीसय, चंद मंदय नंदयो।
> भर तमस तामस, सूर बर भरि, रात तामस छंदयो॥

इसके अतिरिक्त वर्षा आदि के वर्णन भी कुछ कम मनोहारी नहीं हैं—

> द्रिग भरत धूमिल जुरति नूमिल कुमुद त्रिस्मल सोभिलं।
> द्रुम भंग वल्लिय सीस हल्लिय कुरलि कंठह कोकिलं॥
> कुसमंब कंज सरीर सुम्भर सलित कुम्भर सद्दयं।
> नव रोर दद्दुर मोर नद्दुर वनसि वद्दरि वद्दयं॥
> झम झमकि विज्जल झाम फिज्जल श्रवनि सज्जल कद्दयं।
> पप्पीह चीहति जोह जंजरि मोर मंजरी मद्दयं॥
> जगमगति झिगन निसि सुरंगन भय अभय तिहि हद्दयं।
> मिति हंस हसि सुबास सुन्दरि उरसि आनन मिद्धयं॥

वर्षा का यह वर्णन किसी भी उत्कृष्टतम वर्षा के वर्णन से अनायास टक्कर ले सकता है।

रासो की भाषा—रासो की भाषा वीर-रस के सर्वथा उपयुक्त है। उसमें संयुक्त तथा महाप्राण वर्णों का बाहुल्य है। प्राचीन प्रणाली पर अनुस्वारान्त प्रयोग भी मिलते हैं। दीर्घीकरण द्वित्वीकरण आदि के उदाहरण भी 'नीसान' ग्रम्म आदि शब्दों में मिल जाते हैं। कुछ लोग इसे डिंगल भाषा कहते हैं तो कुछ पिंगल। कुछ भी हो शुक्ल जी के इस कथन में पर्याप्त बल है कि :—

"भाषा की कसौटी पर यदि इस ग्रन्थ को कसते हैं तो और भी निराश होना पडता है क्योंकि वह बिल्कुल बेठिकाने है। उसमें व्याकरण आदि की कोई व्यवस्था नही।"

रासो की अलंकार-योजना—रासो एक उत्कृष्ट प्रवन्ध काव्य है और किसी भी उत्कृष्ट काव्य में विविध अलकारों का प्रयोग स्वत हो ही जाता है। तदनुसार रासो में भी उपमा, उत्प्रेक्षा, रूपक आदि अनेक अलकारो का सुन्दर प्रयोग हुआ है। जैसे कि—

> कर्न प्रयन्त कटाच्छ सुरग विराजही।
> कछु पुच्छन को जाहि पै पुच्छत लाजही।
> नैन सैन मे बात जु स्रवनन सो कहै।
> कान विधौं प्रथिराज भेद करि ना लहै।

आदि पदो में उत्प्रेक्षा की छटा दर्शनीय है।

उक्त विवेचन के आधार पर सक्षेप में कह सकते हैं कि पृथ्वीराज रासो हिन्दी का एक आरंभिक उत्कृष्ट महाकाव्य है। इसमें तत्कालीन जन-भावना का, जातीय आदर्शो का भी सुन्दर प्रतिफलन हुआ है। इसमें महाकाव्योचित सम्पूर्ण सामग्री सर्वांशत. विद्यमान है इसीलिए इसे विकासशील महाकाव्य (Epic of growth) कहा गया है। हिन्दी के आदि महाकवि या अपभ्रंश के अन्तिम कवि के रूप मे चंदवरदाई की सत्ता भी प्राय. स्वीकार कर ही ली गई है।

संकेत

१. कहा जाता है कि पृथ्वीराज और चन्दवरदाई दोनों के जन्म और निधन एक साथ क्रमश सम्वत् १२०५ और १२४९ मे हुए। (२) चन्दवरदाई पृथ्वीराज के सामन्त, सखा, मन्त्री, मित्र, राजकवि—आदि सब कुछ थे। (३) पृथ्वीराज रासो ६९ समयो का एक विशाल महाकाव्य है जिनमे आबू के अग्निकुण्ड से चार क्षत्रिय कुलों की उत्पत्ति से लेकर पृथ्वीराज की मृत्यु तक का वर्णन है। (४) रासो का अंतिम अश चन्दवरदाई के पुत्र जल्हण ने पूरा किया था। (५) ओझा जी आदि विद्वानो ने घटनाओं की अनैतिहासिकता सम्वतो की अशुद्धि, परवर्ती व्यक्तियो के नाम, नामो की अशुद्धता आदि के कारण इसे अप्रामाणिक ग्रन्थ मानते हुए इसे १६ वीं शताब्दी की रचना माना है। (६) किन्तु मोहनसिंह जी ने कवित्त, दोहा आदि छन्दो को

मूल रासो और द्विवेदी जी ने शुक-शुकी-सम्वादात्मक अंश को मूल रासो माना है। (७) रासो में शृंगार और वीर दोनों रसों का सुन्दर परिपाक हुआ है। (८) इसकी भाषा वीर-रसोचित तत्सम, तद्भव और अपभ्रंश प्रधान है। अनुस्वारान्त तथा द्वित्व शब्दों का प्रयोग भी इसमें मिलता है। (९) इसमें प्रकृति-वर्णन भी सुन्दर है। (१०) साम्यमूलक तथा दूसरे अलंकारों की योजना भी सुन्दर हुई है। (११) संक्षेप में कह सकते हैं कि पृथ्वीराज रासो हिन्दी का विकासशील महाकाव्य (Epic of growth) है।

सन्त कबीर

प्रश्न १—सन्त कबीर के जीवन-वृत्त पर संक्षिप्त रूप से प्रकाश डालिए।

उत्तर—चौदह सौ पचपन साल गए, चन्द्रवार इक ठाठ ठए।
जेठ सुदी बरसायत को, पूरनमासी प्रकट भए॥

इस पद के आधार पर कबीर का जन्म सम्वत् १४५५ या १४५६ निर्धारित किया जाता है। कहा जाता है कि यह किसी विधवा ब्राह्मणी की सन्तान थे जिसने लोक-लज्जा के भय से इन्हें काशी में लहर तारा तालाब के निकट फेंक दिया और नीरू और नीमा नामक जुलाहा दम्पति ने इन्हें वहां से उठा कर पालन-पोषण किया। इनकी मृत्यु के सम्बन्ध में भी बहुत अधिक मतभेद हैं। कुछ लोग इनकी मृत्यु सम्वत् १५०५ में मानते हैं पर अधिकतर विद्वानों का विश्वास ऐसा है कि इनकी मृत्यु १५७५ के लगभग हुई।

कबीर एक महाज्ञानी महात्मा थे। कबीर ने योगियों की हठ-योग मूलक प्रवृत्तियों, रामानन्द के भक्ति-मार्ग और सूफियों के रहस्यवाद-सम्बन्धी तीनों प्रकार की प्रवृत्तियों और विचार-धाराओं का समन्वय अपनी सार-ग्राहिणी प्रतिभा के द्वारा इस प्रकार किया कि वे तीनों एकाकार हो गए। जिस प्रकार मधु-मक्खियां विविध पुष्पों का रस संग्रह कर एक ऐसा सुस्वादु मधु प्रस्तुत कर देती हैं जो सारे विश्व का कल्याण कर देता है, वैसे ही महात्मा कबीर ने भी अपनी सार-ग्राहिणी प्रतिभा के द्वारा सर्व-धर्म-समन्वय का एक बड़ा

सुन्दर मधु प्रस्तुत कर दिया। कबीर के सम्बन्ध मे डाक्टर हजारीप्रसाद द्विवेदी ने यह ठीक ही लिखा है कि—"सयोग से वे (कबीर) ऐसे युग-सन्धि के समय उत्पन्न हुए थे जिसे हम विविध धर्म-साधनाओ और मनोभावनाओं का चौराहा कह सकते है : कबीर एक ऐसे ही मिलन बिन्दु पर खडे थे जहा से एक ओर हिन्दुत्व निकल जाता है और दूसरी ओर मुसलमानत्व, जहा से एक ओर ज्ञान निकल जाता है दूसरी ओर अशिक्षा, जहा से एक ओर योग मार्ग निकल जाता है दूसरी ओर भक्ति मार्ग, जहा से एक ओर निर्गुण भावना निकल जाती है दूसरी ओर सगुण साधना, उसी प्रशस्त चौराहे पर वे खडे थे। वे दोनो ओर देख सकते थे और परस्पर विरुद्ध दिशा मे गए मार्गो के दोष-गुण उन्हे स्पष्ट दिखाई दे जाते थे।'

मसि कागद छुयो नही, कलम गही नहि हाथ।
चारिउ जुग को महातम, मुर्खहि जनाई बात ॥

के अनुसार अपढ होते हुए भी कबीर ने अपनी सीधी-सादी सधुक्कडी भाषा मे सचमुच चारो युगो के माहात्म्य को—सम्पूर्ण शास्त्रो के सार को—प्रकट कर दिखाया। यह है कबीर का अलौकिक प्रभाव।

प्रश्न २—कबीर से पूर्व प्रचलित सन्त-परम्परा का परिचय देते हुए कबीर की साहित्य-साधना व उनके साहित्य मे सौन्दर्य-भावना के सम्बन्ध मे व्यापक विचार व्यक्त कीजिए।

उत्तर—कबीर से पूर्व भी सन्त-परम्परा प्रचलित थी। यद्यपि विद्यापति आदि ने शास्त्रीय परम्परा के नियमो के पालन पर अत्यधिक बल देते हुए लिखा था कि—

बालचन्द विज्जावइ भासा, दुहु नहि लग्गइ दुज्जन हासा।
ओ परमेसर हर शिर सोहइ, ई णिच्चइ नाअर मन मोहइ ॥

तथापि कबीर ने केवल अनुभूति पक्ष पर ही अधिक बल देते हुए साहित्य के शास्त्रीय पक्ष को सदा गौण ही समझा। वास्तव मे तो कबीर ने कभी यह सोचा ही नही कि वे भी कभी कोई कवि है या कविता लिख रहे है वे तो अपनी अनुभूतियो को ही सदा कविता के रूप मे ढालते रहे। स्वानुभूतियो का प्रकाशन ही उनके जीवन का एक-मात्र ध्येय था। भाषा, व्याकरण

रस, अलंकार आदि के नियमो पर बधी हुई कविता करना उन्हें अभीष्ट न था। वे तो स्पष्ट रूप से कहते हैं कि—

तुम जनि जानो गीत है, यहु निज ब्रह्म विचार।
केवल कहि समझाइया, आतम साधन सार रे॥

कबीर के काव्य मे एक ऐसी स्पष्टवादिता और व्यंग्यात्मकता है जो हृदय पर सीधी चोट करती है। कबीर ने सिद्धो और योगियों की परम्परा में प्रचलित उस प्रतीकात्मक शैली को भी यत्र-तत्र अपनाया है जिसे संध्या भाषा मे व्यक्त किया जाता है। गूढ सकेतो के द्वारा आत्म-रहस्यो को व्यक्त करने वाली भाषा को ही संध्या भाषा कहा जाता है। श्री परशुराम चतुर्वेदी ने ठीक ही लिखा है कि सन्त काव्य की परम्परा प्राकृत काव्य की परम्परा से उद्भूत हुई है। इसकी भाषा जन साधारण की भाषा है और जन-जीवन को अभिव्यक्त करने वाले प्रतीकों का ही इसमे प्रयोग हुआ है।

जैसा कि ऊपर कहा गया है, कबीर काव्य के किसी विशेष विभाग मे बाधे नहीं जा सकते, क्योंकि वे कविता करने बैठे ही नहीं। उनके जीवन का उद्देश्य तो सत्य तत्व का प्रतिपादन-मात्र था। इसीलिए अपने समय में व्याप्त समाज की विविध विरोधी प्रवृत्तियो के समन्वय का उन्होंने पूरा-पूरा प्रयत्न किया। वे एक ऐसे समय में उत्पन्न हुए थे, जबकि केवल हिन्दू-मुसलमान ही नहीं, प्रत्युत शैव, वैष्णव, शाक्त योगी, यति, संन्यासी आदि अनेक धर्म-सम्प्रदाय अपनी-अपनी कहने में लगे हुए थे। कोई किसी दूसरे की न सुनना चाहता था। परिणामस्वरूप पारस्परिक कटुता उत्तरोत्तर बढती जा रही थी।

कबीर की आत्मा इस समाजव्यापी विषमता को देख कर तिलमिला उठी। उन्होंने कहा कि यह जो बाह्य बातो को लेकर विषमता उत्पन्न हो रही है, वे बाह्याचार तो सत्य नहीं, नश्वर हैं।

जो ऊगातो आथवै, फूल्या सो कुमिलाइ।
जो चिणियाँ सो ढहि पड़ै, जो आया सो जाइ॥

कबीर ने समाजव्यापी ऊँच-नीच की भेद-भावना के कारण समाज का कितना बडा अहित हो रहा है, इसको स्पष्ट रूप से देखा और उस पर तीव्र चोट करते हुए कहा कि—

जो पै करत वरण विचारै,
तौ जनमत तीनि डाडि किन सारै।
उतपति ब्यद कहाँ थै आया,
जोति धरी अरु लागी माया॥
नहिं को ऊँचा नहिं को नीचा,
जाका प्यड ताही का सींचा॥
जे तूं बांभन बंभनी जाया,
तौ आन बाट ह्वै काहे न आया॥
जे तूं तुरक तुरकनी जाया,
तौ भीतरि खतनां क्यूं न कराया॥
कहै कबीर मधिम नहिं कोई,
सो मधिम जा मुखी राम न होई॥
(कबीर ग्रन्थावली, पद ४१, पृ० १०२)

इस प्रकार सिद्ध होता है कि कबीर ऊंच-नीच के भेद-भावो को जडमूल से नष्ट कर देने वाले एक समन्वयवादी महान् साधक भक्त थे।

कबीर की सौंदर्य भावना के सम्बन्ध मे विचार करते हुए हम देखते हैं कि सामान्यतया सौन्दर्य-भावना का सम्बन्ध नेत्र, कान आदि वाह्य इन्द्रियो से रहता है और इसका निर्णायक होता है मन। किन्तु इस सामान्य सौदर्य-भावना से ऊपर एक ऐसी भावना भी है जो ऐन्द्रिय नही है। जिस ब्रह्मानन्द मे लीन होकर साधक की आत्मा एक अतीन्द्रिय सौन्दर्य का दर्शन करने लगती है कबीर की सौन्दर्य भावना भी ऐसी अतीन्द्रिय है। वह उस परम सुन्दर आनन्द तत्व मे आत्म-विभोर होकर कह उठते है—

आया था संसार में, देषन कौं बहुरूप।
कहै कबीरा सन्त हौं, पड़ि गया नजरि अनूप॥

उस दिव्य प्रियतम के अनत तेज पुंज से भास्वर स्वरूप का साक्षात्कार कबीर को जब-जब होता है तो वे सौन्दर्य के रसपान मे मस्त होकर गुनगुना उठते हैं कि—

कबीर तेज अनन्त का, मानो उगी सूरज सेणि।
पति संग जागी सुन्दरी, कौतिक दीठा तेणि॥१॥

कौतिक दीठा देह बिन, रवि ससि बिना उजास।
साहिब सेवा माँहि हैं, बे परवाँही दास ॥२॥
पार ब्रह्म के तेज का, कैसा है उनमान।
कहिबे कूँ सोभा नहीं, देख्या ही परवान ॥३॥

श्री परशुराम चतुर्वेदी ने कबीर की सौंदर्य-भावना के सम्बन्ध मे ठीक ही कहा है कि 'कबीर साहब की सौन्दर्य-भावना का क्षेत्र अत्यन्त व्यापक है और उसकी प्रेरणा का उत्स भी अत्यन्त गम्भीर एवं मौलिक है। इसका आधार किसी भौतिक पदार्थ अथवा किसी भी रूप-रेखा की परिधि मे आने वाली वस्तु तक सीमित नहीं। इस प्रकार के सौंदर्य मे न केवल रूप-रसादि जैसे विषयों का आकर्षण है, अपितु उसके साथ एक विचित्र आत्मीयता की विशेषता है।"

प्रश्न ३—कबीर के रहस्यवाद के सम्बन्ध मे श्री रामकुमार वर्मा आदि विद्वानों ने क्या विचार व्यक्त किए हैं, स्पष्ट कीजिए।

उत्तर—रहस्यवाद की परिभाषा देते हुए श्री रामकुमार वर्मा ने लिखा है कि रहस्यवाद जीवात्मा की उस अन्तर्हित प्रवृत्ति का प्रकाशन है जिसमे वह दिव्य और अलौकिक शक्ति से अपना शान्त और निश्छल सम्बन्ध जोड़ना चाहती है और यह सम्बन्ध यहाँ तक बढ़ जाता है कि कुछ भी अन्तर नहीं रह जाता। जीवात्मा की सारी शक्तियाँ इसी शक्ति के अनन्त वैभव और प्रभाव मे ओतप्रोत हो जाती हैं। आत्मा मे परमात्मा के गुणों का प्रदर्शन होने लगता है और परमात्मा मे आत्मा के गुणों का प्रदर्शन।

इस प्रकार रहस्यवाद की स्थिति मे पहुँचकर साधक की आत्मा उस अनन्त सत्ता के साथ अपना सम्बन्ध जोड़ने के लिए उत्सुक हो जाती है और वह शांत वातावरण को प्राप्त कर अपने आराध्य के चिन्तन मे निमग्न हो जाता है। दूसरी अवस्था मे साधक की आत्मा का उस परम शक्ति के साथ ऐसा प्रेम या आकर्षण हो जाता है कि वह उसकी प्राप्ति के लिए उद्विग्न हो उठती है। तीसरी अवस्था मे आत्मा का उस प्रियतम के साथ मिलन हो जाता है। यहाँ द्वैत भावना विनष्ट होकर अद्वैतमात्र शेष रह जाती है। यहाँ आत्मा भी परमात्मा के समान ही उच्च, महान् और निःसीम हो जाती है। इस

प्रकार रहस्यवाद की १. जिज्ञासा, २. उत्सुकता और प्रयत्न, ३. मिलन या एकीकरण नामक तीन स्थितियाँ हो जाती है।

इस प्रकार रहस्यवाद शाकर अद्वैतवाद का ही एक साहित्यिक स्वरूप है जहाँ आत्मा और परमात्मा मे तत्व का कोई भेद नही माना जाता। यह जो भेद प्रतीत होता है वह माया के आवरण के कारण ही है। माया का आवरण जव नष्ट हो जाता है तो जीव और ब्रह्म फिर एकाकार हो जाते है। इसी भाव को स्पष्ट करते हुए कबीर जी कहते हैं कि—

जल मे कुम्भ, कुम्भ मे जल है, बाहिर भीतर पानी।
फूटा कुम्भ, जल जलहिं समाना, यहु तत कथौ गियानी।।

इस प्रकार सिद्ध होता है कि कबीर के रहस्यवाद मे शकराचार्य के अद्वैतवाद का ही साहित्यिक स्वरूप मे प्रकाशन हुआ है किन्तु साथ ही साथ कबीर के रहस्यवाद पर सूफी सिद्धान्तो का भी प्रभाव पर्याप्त मात्रा मे है। सूफी सिद्धान्तो के अनुसार आत्मा और परमात्मा के मिलन के मार्ग की ये चार अवस्थाएं मानी गई हैं:—

१. शरीयत २. तरीकत ३. हकीकत ४ मारिफत।

मारिफ़त मे आत्मा और परमात्मा का मिलन हो जाता है। कबीर पर सूफियो और वेदान्त के प्रभाव का वर्णन डा० रामकुमार वर्मा ने इस प्रकार किया है—

"अन्त मे हम इस निष्कर्ष पर पहुचते हैं कि अद्वैतवाद मे आत्मा और परमात्मा के एकीकरण होने-न-होने मे चिंतन और माया का बडा महत्वपूर्ण भाग है और सूफ़ीमत मे उसी के लिए हृदय की चार अवस्थाओ और प्रेम का। इसमे प्रेम ही धर्म है, प्रेम ही कर्म है। कबीर का रहस्यवाद हिन्दुओ के अद्वैतवाद और मुसलमानो के सूफीमत पर आश्रित हैं। इसीलिए कबीर ने अपने रहस्यवाद के स्पष्टीकरण मे दोनो की—अद्वैतवाद और सूफीमत की—बातें ली। फलत उन्होने अद्वैतवाद से माया और चिंतन तथा सूफीमत से प्रेम लेकर अपने रहस्यवाद की सृष्टि की है। सूफीमत के स्त्री-रूप भगवान् की भावना ने अद्वैतवाद के पुरुप-रूप भगवान् के सामने सिर झुका लिया है। इस प्रकार कबीर ने दोनो सिद्धान्तो से अपने काम के उपयुक्त तत्व लेकर शेष बातो पर ध्यान ही नही दिया है।"

परमात्मा की अनुभूति के लिए आत्मा प्रेम से परिपूर्ण होकर अग्रसर होती है। वह सासारिकता का वहिष्कार कर दिव्य और अलौकिक वातावरण मे उठती है। ईश्वर के ससर्ग से वह आत्मा उस दैवी शक्ति के कारण हत-बुद्धि सी हो जाती है। वह समझ ही नहीं पाती कि परमात्मा क्या है और कैसा है। वह अवाक् रह जाती है। उस समय आत्मा में इतनी शक्ति नहीं कि वह परमात्मा की ज्योति का निरूपण करने मे समर्थ हो। वह आशा और जिज्ञासा की दृष्टि से परमात्मा की ओर देखती है। अन्त मे बड़ी कठिनता से कहती है—

वर्णहुँ कौन रूप औ रेखा।
दोसर कौन आहि जो देखा।
ओंकार आदि नहि वेदा,
ताकर कहहु कौन कुल भेदा। (रमैनी ६)

इस स्थिति मे प्रेम का उत्कर्ष होता है और उपासक स्वयं को परमात्मा की स्त्री मानकर उसका एक अ ग वन जाता है। यह प्रेम की उत्कृष्टतम स्थिति होती है।

एक अड उंकार ते, सब जग भया पसार।
कहहि कबीर सब नारी राम की, अविचल पुरुष भतार॥

अन्त मे तन्मय होकर कह उठती है—

हरि मोर पीव भाई, हरि मोर पीव।
हरि विन रहि न सके मोर जीव॥
हरि मोरा पीव मैं राम की वहुरिया।
राम बड़े मै छुटक लहुरिया॥

और भी—

जो पै पिय के मन नहि भाये।
तौ का परोसिन के दुलराये॥
का चूरा पाइल झमकाएं।
कहा भयो विछुआ ठमकाएं॥
का काजल सेंदुर कै दीये।
सोलह सिंगार कहा भयो कीये॥

अंजन मंजन करै करै ठगौरी।
का पचि मरै निगोडी बौरी॥
जो पै पतिव्रता है नारी।
कैसे ही रहौ सो पियहिं पियारी॥
तन मन जोवन सौंपि सरीरा।
ताहि सुहागिन कहै कबीरा॥

यह कहते हुए कि—

हरि मरिहै तो हमहूँ मरिहै।
हरि न मरै हम काहे को मरिहैं॥

कबीरदास जी रहस्यवाद की चरमसीमा पर पहुचते हुए दृष्टिगत होते हैं। इसमे एक के विनाश मे दूसरे का विनाश तथा एक के अस्तित्व मे दूसरे का अस्तित्व निहित है।

प्रश्न ४—कबीर जी की प्रामाणिक रचनाएं कितनी और कौन-कौन सी हैं ? संक्षेप मे लिखिए।

उत्तर—कबीर जी की प्रामाणिक रचनाओ के सम्बन्ध मे अभी निश्चय से कुछ नहीं कहा जा सकता; क्योकि एच० एच० विलसन ने उनकी आठ रचनाओं के नाम दिए हैं। रेवरेण्ड वैस्काट ने इनकी सख्या ८२ तक पहुचा दी है। इधर डॉ० रामकुमार वर्मा ने इनकी सख्या ८५ बताते हुए भी कहा है कि स्वतन्त्र ग्रन्थ सम्भवत ५६ से अधिक नहीं होगे।

पर उनके पदो के प्रामाणिक सकलन ये तीन ही है—

१ कबीर ग्रन्थावली २. आदि ग्रन्थ ३. बीजक।

कबीर ग्रन्थावली—इसका नागरी प्रचारिणी सभा के द्वारा प्रकाशन व सम्पादन करते हुए डा० श्यामसुन्दर दास ने लिखा है कि इसका सकलन कबीर की मृत्यु के १५ वर्ष पश्चात् अर्थात् सम्वत् १५६१ मे हो चुका था। पर वास्तव मे इसका सम्पादन बाद मे हुआ है।

आदि ग्रन्थ—इसका सम्पादन सम्वत् १६६१ मे हो चुका था। इसमे कबीर की बहुत सी वाणियाँ सकलित है, यद्यपि यह भी बहुत सम्भव है कि इसमे भी बहुत से पद कबीर के नाम पर अन्य व्यक्तियो के आ गए हो।

वीजक—इसका सम्पादन १८ वीं सदी मे हुआ था। वीजक के सम्बन्ध मे डा० हजारीप्रसाद द्विवेदी का मत है कि—

"वीजक कवीरदास के पदो का पुराना और प्रामाणिक सग्रह है, इसमें सन्देह नही। इनमे एक ध्यान देने योग्य वात है कि वीजक मे ८४ रमैनियाँ हैं, रमैनियाँ चौपाई छन्द मे लिखी गई हैं। इनमे कुछ रमैनियाँ ऐसी हैं जिनके अन्त मे एक-एक साखी उद्धृत की गई है। साखी उद्धृत करने का अर्थ यह होता है कि कोई दूसरा आदमी मानो इन रमैनियो को लिख रहा है और इस रमैनी रूप व्याख्या के प्रमाण में कवीर की साखी या गवाही पेश कर रहा है। वहुत थोडी सी रमैनियाँ (स० ३,२८,३२,४२,५६,६२,७०,८०) ऐसी हैं जिनके अन्त मे साखी नही हैं।

"रमैनियाँ वीजक के महत्वपूर्ण अंग हैं। इन मे साधारणतया सात-सात चौपाई के वाद एक-एक दोहा सकलित किया गया है, जिसे कवीर पथ मे साखी कहते हैं।"

स्मरण रखिये कि निर्गुणी लोग दोहे को साखी, चौपाई को रमैनी और गीतो या पदो को शब्द कहते हैं। वीजक के पदो के सम्वन्ध में डा० हजारीप्रसाद द्विवेदी के निम्न विचार भी सग्रहणीय हैं—

"वीजक मे जो पद सगृहीत हैं उनमे खण्डन-मण्डन और ज्ञान की कथनी की प्रवृत्ति अधिक है और ग्रन्थ साहव तथा कवीर ग्रन्थावली मे संगृहीत पदो में भक्ति और आत्म-समर्पण के भावो की प्रधानता है। ऐसा जान पडता है कि वीजक को सम्प्रदाय का धर्म-ग्रन्थ वनाने का प्रयत्न अधिक हुआ है और इसी-लिये उनके स्वर को ज्ञान-प्रधान और आक्रामक वनाने का प्रयत्न किया गया है। नि सन्देह कवीरदास में रूढ़ियो, साम्प्रदायिक भावनाओं और निरर्थक वाह्या-चारो पर आक्रमण करने की प्रवृत्ति थी पर यह उनकी नकारात्मक दृष्टि थी। उनकी वास्तविक देन तो उनकी भक्ति-भावना ही थी।

"वीजक मे उनका महत्वपूर्ण व्यक्तित्व परिलक्षित होता है। उनमें एक प्रकार की घर-फूँक मस्ती और फक्कडाना लापरवाही के भाव मिलते हैं। उनमें अपने आपके ऊपर अखण्ड विश्वास था। उन्होंने कभी भी अपने ज्ञान को, अपने गुरु को, अपनी साधना को सन्देह की दृष्टि से नही देखा। केवल

बाह्याचारो के गट्ठर, केवल कुसस्कारो के गड्डे, साधारण हिन्दू-गृहस्थ पर आक्रमण करते समय लापरवाह रहते हैं और इस लापरवाही के कारण ही उनके आक्रमण-मूलक पदो मे एक सहज सरल भाव और एक जीवन्त काव्य मूर्तिमान् हो उठा है। यही लापरवाही कबीर के व्यग्यो की जान है। उनके आक्रोश मे मस्ती है।"

प्रश्न ५—कबीर जी की प्रतीक योजना पर एक संक्षिप्त किन्तु भाव-गर्भित निबन्ध लिखिये। अपने कथन के समर्थन मे यथोचित उदाहरण भी दीजिए।

उत्तर—रहस्यवादी कवि अपनी अनुभूति को सामान्य भाषा मे व्यक्त करने मे प्राय असमर्थ रहता है क्योकि उसका अनुभूत भाव-सौन्दर्य प्राय: इतना तीव्र होता है कि बेचारी साधारण भाषा उसके भावो को सहन करने मे असमर्थ हो जाती है। इसीलिए कवि को प्राय प्रतीको या रूपको का सहारा लेना पडता है। कबीर ने भी इसीलिए अनेकत्र अपनी भावाभिव्यक्ति के लिए रूपको तथा प्रतीको का आश्रय लिया है। कबीर के रूपको के लिए डाक्टर रामकुमार वर्मा का कथन है कि "यद्यपि इनके रूपक पुष्प की भाँति उत्पन्न होते हैं और उन्ही की भाँति विकसित भी, पर उनमे दुरूहता के काटे अवश्य होते हैं। परन्तु जो कुछ भी हो, इनके रूपको की योजना अत्यन्त सुन्दर बन पडी है। उनके दिव्य वचन रूपको के अन्दर छिपे पडे हैं। जिज्ञासु एक बार समझ लेने पर आत्म-विभोर हो जाता है। उदाहरण के लिए नीचे कुछ पद दिए गये है जिनसे उनके रूपको की सार्थकता और सफलता का विशेष परिचय मिलता है—

हरि मोर रहटा, मैं रतन पिउरिया।
हरि का नाम लै कतति बहुरिया॥
छौ मास तागा बरस दिन कुकुरी।
लोग कहैं भल कातल बपुरी॥
कहहि कबीर सूत भल काता।
चरखा न होय मुक्ति कर दाता॥

देखने से तो इसका अर्थ सरल ही प्रतीत होता है पर वास्तव मे यह गहरी

भावनाओ से ओत-प्रोत है। कबीर जाति के जुलाहे थे अत उनका यह रूपक भी कितने स्वाभाविक ढग से बन पडा है। यदि चरखे का रूपक उक्त पद से हटा लिया जाय तो विचार की सारी शक्ति शिथिल पड जायेगी और भावों का सौन्दर्य बिखर जायेगा। यहाँ यह स्पष्ट है कि आत्मा और परमात्मा का सम्बन्ध चित्रित करने मे रूपक का सहारा कितना महत्व रखता है। कबीर के उसी रूपक का परिवर्धित उदाहरण बीजक के कई पदो मे मिलता है। उदाहरण के लिए—

जो चरखा जरि जाये बढैया ना मरै।
मैं कातौं सूत हजार, चरखुला जिन जरै॥
बाबा, मोर ब्याह कराव, अच्छा वरहि तकाय।
जौं लौं अच्छा वर न मिलै, तौ लौं तुमहि बिहाय॥
प्रथमे नगर पहूचते, परिगो सोग संताप।
एक अचम्भा हम देखा जो बिटिया ब्याहल बाप॥
समधी के घर समधी आए, आए बहू के भाय।
गोडे चूल्हा दै दै चरखा दियो दिढाय॥
देवलोक मर जायेंगे, एक न मरै बढ़ाय।
यह मन रंजन कारणे चरखा दियो दिढ़ाय॥
कहहिं कबीर सुनो हो सन्ता, चरखा लखै जो कोय।
जो यह चरखा लखि परै ताको आवागमन न होय॥

(बीजक शब्द ६८)

यदि चरखा जल भी जाय तो उसका बनाने वाला बढई नही मर सकता, पर यदि मेरा चरखा न जलेगा तो मैं उससे हजार सूत कातूगी। बाबा अच्छा वर खोजकर मेरा विवाह करा दीजिए और जब तक अच्छा वर न मिले तब आप ही मुझ से विवाह कर लीजिए। नगर मे प्रथम बार पहुचते ही शोक और दुःख सिर पर आ पडे। एक आश्चर्य हमने देखा है कि पिता ने बेटी के साथ विवाह कर लिया। फलत एक समधी के घर दूसरे समधी आए और बहू के यहाँ आई। चूल्हा मे गोडा देकर (चरखे के विविध भाग सटाकर) चरखा और भी मजबूत कर दिया। स्वर्ग मे रहने वाले सभी देव मर जायेंगे

पर वह वढई नही मर सकता जिसने मन को प्रसन्न रखने के लिए चरखे को और भी सुदृढ बना दिया है। कबीर कहते हैं श्रो सन्तो सुनो, जो कोई इस चरखे का वास्तविक रूप देखता है, जिसने इस चरखे को एक वार देख लिया, उसका इस ससार मे फिर आवागमन नही होता, वह संसार के बन्धनों से सदैव के लिए छूट जाता है।

सरसरी दृष्टि से देखने पर तो यह ज्ञात होता है कि इस सारे अवतरण मे भाव-साम्य नही है। एक विचार है वह समाप्त होने ही नही पाया कि दूसरा विचार आ गया। विचार की गति अनेक स्थलों पर टूट गई है। भावों का विकास अव्यवस्थित रूप से हुआ है, पर यदि रूपक के वातावरण से निकलकर रूपक को एकमात्र भावो के प्रकरण का सहारा मानकर हम इस अवतरण के अन्तरग अर्थ को देखें तो भाव-सौन्दर्य हमें उसी समय ज्ञात हो जायगा, विचारो की सजावट आखो के सम्मुख आ जायगी और हमें कवि का सदेश पढते ही मिल जायेगा।

रूपको के अव्यवस्थित होने का कारण यह हो सकता है कि जिस समय कवि एकाग्र होकर दिव्य शक्ति का सौन्दर्य देखता है, संसार से बहुत ऊपर उठकर देवलोक मे विहार करता है। उसी समय यह उस आनन्द और भाव के उन्माद को सँभाल नही सकता। उस मस्ती से दीवाना होकर वह भिन्न-भिन्न रीतियो से अपने भावो का प्रदर्शन करता है। शब्द यदि उसे मिलते भी हैं तो उसके विह्वल आह्लाद से बिखर जाते हैं और कवि का शब्द-समूह शिथिल पड़ जाता है। अब रूपक को हटाकर ज़रा इस पद का सौन्दर्य देखिए—

यदि काल-चक्र (चरखा) नष्ट भी हो जाय तो निर्माणकर्ता अनन्त शक्ति से सम्पन्न ईश्वर कभी नष्ट नही हो सकता। यदियह काल-चक्र न जले, न नष्ट हो, तो मैं सहस्र कर्म कर सकता हूँ। हे गुरु! आप ईश्वर का परिचय पाकर उनसे मेरा सम्बन्ध करा दीजिए और जब तक न मिले तब तक आप ही मुझे सरक्षण मे रखिये। आपसे प्रथम बार ही दीक्षित होने पर मुझे इस बात की चिंता होने लगी कि मैं किस प्रकार आपकी आज्ञा पालन करने मे समर्थ हो सकूँगा। पर मुझे आश्चर्य हुआ कि आपके प्रभाव से मेरी आत्मा अपने उत्पन्न करने वाले परमपिता ब्रह्म मे जाकर सबद्ध हो गई। फल यह

हुआ कि मेरे हृदय में ईश्वर की व्यापकता और भी बढ़ गई। समधी से समधी की भेंट हुई, आत्मा के पिता ब्रह्म से गुरु की भेंट हुई, अर्थात् ईश्वर की अनुभूति दुगनी हो गई। वाणी रूपी बहू के पास पाण्डित्य रूपी भाई आया अर्थात् वाणी में विद्वत्ता और पाडित्य आ गया। उस समय कर्म-कांडो से सज्जित काल-चक्र की दृढता और भी स्पष्ट जान पड़ने लगी। सारे विश्व को एक नजर से देख लेने पर इतना अनुभव हो गया कि विश्व की सभी वस्तुएँ मर्त्य हो सकती हैं, पर वह अनन्त शक्ति, जिसने काल-चक्र का निर्माण किया है, नष्ट नही हो सकती। कबीर कहते हैं कि जिसने एक बार इस काल-चक्र के मर्म को समझ लिया वह कभी संसार के बन्धनो से बद्ध नहीं हो सकता। उसे ईश्वर की ऐसी अनुभूति हो जाती है कि उसके जन्म-मृत्यु का बन्धन नष्ट हो जाता है।

इसमें रूपक का वधान कितना सुन्दर बन पडा है। उपर्युक्त विवेचन से यह स्पष्ट हो गया है कि रहस्यवादी किस प्रकार अपने भावो को व्यक्त करते हैं।

कबीर कहीं माता और बालक तो कहीं पति और पत्नी की प्रतीको के द्वारा उस परम प्रभु प्रियतम के साथ अपना सम्बन्ध जोड़ते दिखाई देते हैं, जैसे कि—

हरि जननी मैं बालिक तेरा,
काहे न अवगुण बकसहु मेरा ॥ टेक ॥
सुत अपराध करै दिन केते,
जननी के चित रहैं न तेते ॥
कर गहि केस करै जौ घाता,
तऊ न हेत उतारै माता ॥
कहै कबीर इक बुद्धि विचारी,
बालिक दुखी दुखी महतारी ॥

(क० ग्र०, पद १११, पृ० १२३)

इस पद में कबीर ने उस परम प्रभु को माता और अपने आपको उसके

बाल्क के रूप में अंकित किया है। "बालिक दुखी दुखी महतारी" में द्वैत भावना भी अद्वैत में परिवर्तित हो गई है।

कबीर ने जहां दाम्पत्य प्रतीको को अपनाया है वहां सयोग और वियोग दोनो के मधुर चित्र अंकित किए है। कही वे कहते हैं कि हे प्रियतम! आप मुझ से बिछुडकर फिर कभी पृथक् न हूजिए—

अब तोंहि जान न देहौं राम प्यारे,
ज्यूं भावे त्यूं होहुँ हमारे ॥ टेक ॥
बहुत दिनन के बिछुरे हरि पाये,
भाग बड़े घरि बैठे आये ॥
चरननि लागि करौं बरियाई,
प्रेम-प्रीति राखौं उरझाई ॥
इत मन मन्दिर रहौ नित चोपे,
कहै कबीर परहु मति धोपे ॥

कहीं वे अपनी उलटवासियो के द्वारा भी बडे सरल किन्तु अटपटे ढग से अपनी मनोभावनाओ को व्यक्त करते दिखाई देते हैं। जैसे कि—

मैं सासने पींव गोहिनी आई।
साईं सगि साध नहिं पूंगी, गयो जोबन सुपिनां की नाइ ॥
पच जना मिलि मडप छायौ, तीनी जना मिलि लगन लिखाई।
सखी सहेली मंगल गावैं, सुख-दुःख माथैं हलद चढ़ाई ॥
नाना रंगे भांवरि फेरी, गाठि जोरि बावैं पति ताई।
पूरि सुहाग भयो बिन दूलह, चौक के रंगि धर्यो सगौ भाई ॥
अपने पुरिष मुख कबहूं न देख्यौ, सती होत समझी समझाई।
कहै कबीर हूं सर रचि मरिहूं, तिरौ कंत ले तूर बजाई ॥
(कबीर ग्र०, पद ३२६, पृ० १६४)

इस प्रकार सिद्ध होता है कि कबीर ने अधिकतर अपने प्रतीक जुलाहा, बजारा, कुम्हार, कलाल, गुडिया, डोली, रहटा, रस-आदि जीवन के सामान्य क्षेत्रो से चुने हैं और उन्ही के द्वारा अपने भावो को तीव्रता प्रदान की है। वास्तव मे कबीर की रूपक और प्रतीक योजना हिन्दी साहित्य मे अपना विशेष स्थान रखती है, इसमें कोई सन्देह नही।

प्रश्न ६—कबीर की भाषा-शैली के सम्बन्ध में विभिन्न विद्वानों ने क्या विचार व्यक्त किए हैं।

उत्तर—कबीर जैसे अपने भावों के विधान में स्वतन्त्र हैं वैसे ही भाषा के क्षेत्र में भी वे सर्वथा बन्धन-मुक्त हैं। कोई उन्हें अवधी का प्रथम सन्त कवि कहता है तो कोई उनकी भाषा को पचमेल खिचड़ी। किसी ने उनकी भाषा को राजस्थानी माना है तो रामकुमार वर्मा लिखते हैं कि कबीर की भाषा में पंजाबीपन का पुट अत्यधिक है। इधर सुनीतिकुमार चैटर्जी ने लिखा है कि कबीर की रचना में हमें मुख्यतया ब्रज भाषा मिलती है लेकिन इसमें कोसली या पूर्वी हिन्दी का भी कुछ-कुछ मेल पाया जाता है और खड़ी बोली का रूप भी यथेष्ट परिमाण में मिलता है। अथवा वह हिन्दी और ब्रजभाषा का एक मिश्रित रूप है। शुक्ल जी इसको सधुक्कड़ी भाषा कहते हैं।

वास्तव में बात यह है कि कबीर के पद जब ग्रन्थ साहब में संकलित हुए तो वह पजाबी रूप ग्रहण कर बैठे। कबीर ग्रन्थावली में उनका रूप राजस्थानी लिए हुए है और बीजक में पूर्वी हिन्दी के पदों का प्राचुर्य है। इस प्रकार उनके पद जहाँ-जहाँ गए वहीं-वहीं की भाषा का प्रभाव ग्रहण करते गए। उनकी शैली, छन्दो-योजना तथा अलकार-विधान के सम्बन्ध में द्विवेदी जी के ये विचार मननीय हैं—

"भाषा पर कबीर का जबरदस्त अधिकार था। वे वाणी के डिक्टेटर थे। जिस बात को जिस रूप में प्रकट करना चाहा है उसी रूप में भाषा से कहलवा लिया है—बन गया है तो सीधे-सीधे, नहीं तो दरेरा देकर। भाषा कुछ कबीर के सामने लाचार सी नजर आती है। उसमें मानो ऐसी हिम्मत ही नहीं है कि इस लापरवाह फक्कड़ की किसी फरमाइश को नाहीं कर सके। और अकह कहानी को रूप देकर मनोग्राही बना देने की तो जैसी ताकत कबीर की भाषा में है वैसी बहुत कम लेखकों में पाई जाती है। असीम-अनन्त ब्रह्मानन्द में आत्मा का साक्षीभूत होकर मिलना कुछ वाणी के अगोचर, पकड़ में न आ सकने वाली ही बात है। पर 'बेहद्दी मैदान में रहा कबीरा' में न केवल उस गंभीर निगूढ़ तत्त्व को मूर्तिमान कर दिया है बल्कि अपनी फक्कड़ाना प्रकृति की मुहर भी मार दी गई है। वाणी के ऐसे बादशाह को साहित्य-रसिक काव्या-

नन्द का आस्वाद कराने वाला समझें तो उन्हें दोप नही दिया जा सकता। फिर व्यंग्य करने मे और चुटकी लेने मे भी कवीर अपना प्रतिद्वन्द्वी नहीं जानते। पडित और काजी, अवधू और जोगिया, मुल्ला और मौलवी सभी उनके व्यग्य से तिलमिला जाते हैं। अत्यन्त सीधी भाषा मे वे ऐसी गहरी चोट करते हैं कि चोट खाने वाला केवल धूल झाडके चल देने के सिवा और कोई रास्ता ही नही पाता। इस प्रकार यद्यपि कवीर ने कही काव्य लिखने की प्रतिज्ञा नही की तथापि उनकी आध्यात्मिक रस की गगरी से छलके हुए रस से काव्य की कटोरी मे भी रस इकट्ठा नही हुआ है।

"उनकी छन्दो योजना, उक्ति-वैचित्र्य और अलकार-विधान पूर्ण रूप से स्वाभाविक और अयत्न-साधित है। काव्यगत रूढियो के न तो वे जानकार थे और न कायल।"

संकेत

१. कवीर का जन्म सम्वत् १४५५ या १४५६ में तथा देहान्त सम्वत् १५०५ और वहुत से विद्वानो के मत में सम्वत् १५७५ मे हुआ था। २ कवीर एक सारग्राही व्यक्ति थे। ३ निरक्षर होते हुए भी उन्होंने सव शास्त्रों का सार अपनी वाणी मे कह दिया है। ४ वे कवि नहीं, प्रत्युत साधक ही प्रमुख रूप से थे। ५. इनकी भाषा सधुक्कड़ी या सन्ध्या भाषा कही जाती है। जिस पर शास्त्रों का अंकुश नहीं है। ६. कवीर का साहित्य समन्वय-भावना का प्रेरक है। ७. उसमे सामाजिक-विषमता ऊँच-नीच की भावना पर कड़ी चोट की गई है। ८ कवीर के साहित्य मे उस परम सत्ता के सौन्दर्य का साक्षात्कार भी अनेकत्र होता है। ९ कवीर के साहित्य में रहस्यवाद की अवतारणा भी सुन्दर हुई है। १०. रहस्यवाद से सम्वद्ध अटपटे रूपको तथा उलट-वासियों में वड़े गहन भाव छिपे हुए हैं। ११. कवीर के रहस्यवाद मे सूफी-सिद्धान्त तथा अद्वैतवाद दोनो का सुन्दर समन्वय हुआ है। १२. यों तो कवीर की रचनाओं की संख्या ८५ तक कही जाती है पर वास्तव मे वीजक, पदावली और गुरु ग्रन्थ साहव मे ही उनके पदो का प्रामाणिक सकलन है। १३. कवीर ने दैनिक जीवन से सम्बन्ध रखने वाले चरखा, रहट, ताना-वाना आदि पदार्थो को लेकर वड़े सुन्दर प्रतीकों की योजना की है। १४. इनकी भाषा अनेक रूप लिये हुए है।

मलिक मुहम्मद जायसी

प्रश्न १—मलिक मुहम्मद जायसी के जीवन-वृत्त के सम्बन्ध मे उपलब्ध सामग्री का परिचय देते हुए उनके जन्म व निधन के समय तथा स्थान आदि के सम्बन्ध मे व्यापक विचार व्यक्त कीजिए।

उत्तर—हिन्दी साहित्य भण्डार को समृद्ध बनाने मे जहाँ हिन्दू कवियो ने बहुत कुछ कार्य किया है वहाँ मुस्लिम कवियो का योग भी कुछ कम नही है। इन मुस्लिम कवियो के मूर्धन्य हैं कबीर और जायसी। जायसी प्रेममार्गी शाखा के प्रमुख और प्रतिनिधि कवि तो है ही, हिन्दी के उत्कृष्टतम कवियों मे से भी एक हैं। जायसी की सबसे बडी विशेषता यह है कि विधर्मी और विजातीय होते हुए भी वे हृदय से पूरे-पूरे हिन्दू हैं, भारतीय सस्कृति के प्रति इनके हृदय मे अगाध श्रद्धा है। इन्होने अपने व्यक्तित्व को भारत भूमि की मिट्टी मे मिला दिया है। इनके मानस का निर्माण भारत के वातावरण मे हुआ है, अरब और ईरान के अन्न-जल से नही।

जायसी यद्यपि अन्य कवियो के समान अपने जीवन-वृत्त का परिचय देने मे सर्वथा उदासीन नही थे तो भी उन्होने जो कुछ अपने बारे मे कहा है, वह एक प्रकार से अपर्याप्त ही है। इस अपर्याप्त अन्तरग साक्ष्य के आधार पर भी हम कवि के जीवन वृत्त की स्थूल रूपरेखा जो बना पाते हैं, वह इस प्रकार है—

आखिरी कलाम मे कवि ने अपना कुछ परिचय देते हुए लिखा है कि—

भा अवतार मोर नौ सदी। तीस बरस ऊपर कवि बदी॥

किन्तु इसका अर्थ सदिग्ध है। आचार्य रामचन्द्र शुक्ल ने उनके सम्बन्ध मे लिखा है कि इन पक्तियो का ठीक तात्पर्य नही खुलता। जन्म काल नौ सौ हिजरी माने तो दूसरी पक्ति का अर्थ यही निकलेगा कि जन्म से तीस वर्ष पीछे जायसी कविता करने लगे और इस पुस्तक के कुछ पद बनाए। किन्तु वास्तव मे उसका अर्थ यह प्रतीत होता है कि हिजरी नौ सौ सन् मे तीस वर्ष का होने पर कवि कविता लिखने लगा। हिजरी नौ सौ मे ईस्वी सन् १४९३ और विक्रम सम्वत् १५५० आता है। हिजरी सन् नौ सौ से तीस वर्ष

पूर्व आठ सौ सत्तर (विक्रम सम्वत् १५२०) जायसी का जन्म मान लेने पर और सब बातो की भी सगति बैठ जाती है। जैसे कि पदमावत मे उन्होने जो इस प्रकार अपने बुढापे का वर्णन किया है—

> मुहम्मद बिरिध बैस जो भई, जोवन हुत सो अवस्था गई।
> वल जो गएउ कै खीन सरीरू, दृष्टि गई नैनहिं देइ नीरू॥
> दसन गए कै पचा कपोला, बैन गए अनरुच देइ बोला॥

यह जायसी का जन्म हिजरी सन् नौ सो या विक्रम सम्वत १५५० मानने पर असगत ठहरता है क्योकि दूसरी ओर जायसी ने पदमावत का रचना काल भी स्वय उल्लेख करते हुए लिखा है कि पदमावत का निर्माण हिजरी सन् ६२७ मे हुआ। कुछ लोग इसको ६४७ भी पढते है। चाहे ६२७ माने या ६४७, इस उम्र मे जायसी बूढे नही ठहरते। अत जायसी का जन्म ६०० न मान कर ८७० हिजरी सन् या विक्रम सम्वत् १५२० ही मानना चाहिए।

अत. किसी आलोचक का यह कथन भी असगत ही जान पडता है कि—

"पानीपत की लडाई के तीन वर्ष पश्चात् जब बाबर 'शाह छत्रपति राजा' था, उन्होंने 'आखिरी कलम' (१५२६) की रचना की और इसके ग्यारह वर्ष बाद सन् १५४० मे पदमावत को लिखना प्रारम्भ किया। इस समय जायसी ४५ वर्ष की प्रौढ अवस्था को प्राप्त कर चुके थे।"

डा० कमल कुलश्रेष्ठ की गणना के अनुसार जायसी का जन्म ६०६ हिजरी (१४६६ ई०) मे हुआ और पदमावत (१५२०) उनकी २१ वर्ष की रचना ठहरती है। पदमावत जैसे प्रौढ काव्य की रचना २१ वर्ष का युवक करे, यह कुछ असम्भव सी बात है। फिर 'आखिरी कलाम' (१५२६ ई०) की भाषा-शैली मे प्रौढता के चिन्ह भी नही मिलते और इसमे इस्लामी भाव भरे पडे हैं। सूफी चिन्तन का जरा भी आभास नही है। स्पष्ट है कि आखिरी कलाम (१५२६ ई०) २६-३० वर्ष के युवक की रचना है। इसमे आदि से अन्त तक इस्लामी कट्टर भावना है। ·· भ्रम का कारण ग्रन्थ का नाम जान पडता है। कदाचित् जायसी ने इसका कोई नाम ही नही रखा। फारसी मे 'आखिरित नामा' (रोजे आखिर की कथा) की परम्परा थी। इसी विचार से किसी ने ग्रन्थ को 'आखिरी कलाम' कह दिया और आलोचक इसी भ्रम में

पड़ गए कि यह जायसी की अन्तिम रचना है। कट्टर इस्लाम से सूफी मत की ओर बढ़ना प्रगति का चिन्ह है। इसके विपरीत जो है वह अवपतन है। 'पदमावत' के रचयिता से हम यह आशा नहीं करते कि वह अन्तिम रचना के समय कट्टर इस्लामी विचार-धारा का पोषण करे। हो सकता है कि 'कथा आरम्भ बैन' के रूप में पदमावत की प्रारंभिक पंक्तियां कवि ने मुख्य काव्य रचना के बाद की हो। तब १५४० ई० में 'पदमावत' समाप्त समझा जाना चाहिए। इस प्रकार 'पदमावत' का रचना-काल १५२६ और १५४० ई० के बीच का समय रहेगा।

संक्षेप में कह सकते हैं कि जायसी का जन्म सम्वत् १५२० के लगभग हुआ। उन्होंने सम्वत् १५७७ के लगभग 'पदमावत' का निर्माण आरम्भ किया और लगभग २० वर्ष में सम्वत् १५६७ में उसे समाप्त किया। समाप्ति के समय, जैसा कि जायसी ने लिखा है, दिल्ली का सुल्तान सम्राट् शेरशाह सूरी था। इसी बीच जायसी आखिरी कलाम (सन् ९३६ हिजरी=सम्वत् १५५६), अखरावट-आदि ग्रन्थों की रचना कर चुके थे। जायसी का निधन सम्वत् १५६७ के लगभग माना जाता है।

इन्होंने लिखा है कि इनके जन्म के समय सूर्य-ग्रहण और भूकम्प हुआ था।

आवत उधत चार विधि ठाना। भा भूकम्प जगत अकुलाना ॥
सूरज सेवक ताकर अहै। आठों पहर फिरत जो रहै ॥

जायसी का जन्म और निवास स्थान कौन सा था, इस सम्बन्ध में भी उन्होंने आखिरी कलाम और पदमावत में स्पष्ट लिखा है—

जायस नगर मोर अस्थानू। नगरक गाँव आदि उदयानू ॥
तहाँ दिवस दस पहुनें आएऊँ। भा बैराग बहुत सुख पाएऊँ ॥
जायस नगर धरम अस्थानू। तहाँ आइ कवि कीन्ह बखानू ॥

कुछ लोग इसका अर्थ यह करते हैं कि जायसी जायस में कहीं बाहर से आकर रहे थे। वह उनकी जन्म भूमि नहीं। अत गाजीपुर को उनकी जन्म भूमि बताया जाता है। उनका ननिहाल माणिकपुर, जिला प्रतापगढ में था। कहा जाता है कि यह बचपन में मातृ-पितृहीन हो गए थे। इनका

विवाह भी हुआ था और सन्तान भी थीं। अमेठी के राजा इनका अत्यधिक सम्मान करते थे। वहाँ ये बहुत दिनो तक रहे भी और वही इनकी मृत्यु भी हुई। अमेठी के राजघराने में इनकी मजार अब तक विद्यमान है।

कहते हैं कि यह चेचक के कारण काणे और कुरूप हो गए थे। इन्हें देखकर एक बार शेरशाह सूरी हँस पडा। तब इन्होने कहा कि "मोहि का हँससि कि कोहरहिं" अर्थात् तू मुझे क्यो हँसता है ? मेरे बनाने वाले उस कुम्हार—ईश्वर पर क्यो नही हँसता ?

जायसी उदारमना सहृदय कवि थे। भारतीय संस्कृति, अद्वैत सिद्धान्त और योगमार्ग के प्रति इनके हृदय मे गहरी आस्था थीं। प्रेममार्गी सूफी सन्त होते हुए भी इन्होने हिन्दू वीर शिरोमणि महाराज रत्नसेन की वीरता के वर्णन में अपने प्रसिद्ध काव्य पद्मावत का निर्माण कर अपनी उदारता और सारग्राहिणी प्रतिभा का ही प्रत्यक्ष परिचय दिया है। वे वास्तव में हिन्दी के महाकवि होने के साथ ही साथ हिन्दू-मुस्लिम ऐक्य के प्रतिष्ठापक भारत के महान् निर्माता सन्तो मे से भी एक थे, इसमे कोई सन्देह नही।

प्रश्न २—जायसी की प्रमुख रचनाओं तथा उनके प्रतिपाद्य विषय आदि का संक्षिप्त परिचय दीजिए।

उत्तर—जायसी की छोटी-मोटी सभी रचनाओ को मिलाकर उनकी सख्या २१ तक कही जाती है, पर उनमे से प्रकाशित अभी तक निम्न चार रचनाएँ ही हो सकी है —

१. पद्मावत २ अखरावट ३. आखिरी कलाम और ४. कहारनामा जिसे श्री माताप्रसाद गुप्त ने स्वसम्पादित जायसी ग्रथावली मे 'महरी बाईसी' नाम से प्रकाशित किया है।

इनके अतिरिक्त 'सोरठ', 'उपजी' और 'धनावट' नामक पुस्तकें भी विभिन्न विद्वानो के पास विद्यमान हैं।

१ आखिरी कलाम—आखिरी कलाम यह इस्लामी सिद्धान्तो का प्रतिपादक एक छोटा सा साधारण काव्य है। नाम तो इसका आखिरी कलाम है, पर यह जायसी की अन्तिम रचना भी है, यह निश्चय से नही कहा जा सकता। कुछ विद्वानो का मत है कि यह कवि की आरभिक कृति है, पर प्रतीत तो ऐसा

होता है कि पद्मावत को लिखने के कारण जब मुल्ला-मौलवियो ने उन्हें काफिर का फतवा दे दिया होगा तो उन्हें प्रसन्न करने के लिए और यह दिखाने के लिए कि मैं पदमावत लिखकर भी इस्लाम के प्रति वैसा ही आस्थाशील हू कवि ने आखिरी कलाम की रचना की होगी। इसमे दिखाया गया है कि कयामत के पश्चात् मुहम्मद साहिब की सिफारिश पर उनके अनुयायी (मुसलमानो) को किस प्रकार खुदा-ताला उनके पापो के दंड से मुक्त कर देंगे। यह रचना सर्वाशत. मुसलमानो के लिए ही लिखी गई है। भाषा, शैली तथा प्रतिपाद्य विषय आदि सभी दृष्टियो से यह एक साधारण रचना ही है।

२ अखरावट—यह भी एक छोटी सी रचना है। सम्भवत इसका निर्माण 'पदमावत' और 'आखिरी कलाम' के मध्यकाल मे हुआ होगा। यह भी दोहा, चौपाई, और सोरठा छन्दो मे अवधी भाषा मे लिखी हुई सुन्दर सुगठित रचना है। उसमे आध्यात्मिक विषयो का प्रतिपादन करते हुए वेदान्त के आधार पर सृष्टि रचना सम्बन्धी सिद्धान्तो का विवेचन किया गया है। ग्रन्थारम्भ मे वस्तु निर्देशात्मक मगलाचरण इस प्रकार है :—

गगन हुता नहि महि हुती, हुते चंद नहि सूर।
ऐसई अन्धकूप महँ, रचा मुहम्मद नूर।

अखरावट मे जायसी की साधनाप्रणाली का भी विशद विवेचन हुआ है। जायसी का उदार दृष्टिकोण इसके प्रत्येक अक्षर से प्रकट हो रहा है—

सो बड़ पन्थ मुहम्मद केरा। है निरमल कविलास बसेरा॥
लिखि पुरान विधि पठवा साचा। भा परवीन दुखी जग बांचा॥
सुनत ताहि नारद उठि भागे। छूटे पाप पुनि सुनि लागे॥

इन पद के द्वारा कवि ने स्वधर्म और उसके मान्य सिद्धान्तो के प्रति अपनी गहन निष्ठा व्यक्त करते हुए भी :—

विधना के मारग है तेते। सरग नखत तन रोवां जेते॥
जेइ हेरा तेइ तहँवां पावा। भा संतोष समुझि मन गावा॥

के द्वारा यह स्पष्ट स्वीकार कर लिया है कि उस प्रभु की प्राप्ति का मार्ग कोई एक ही नहीं हो सकता, साधना के सभी मार्ग साधक को अन्त में उस तक पहुँचा ही देते है।

सूफियो के यहाँ गुरु का बडा महत्व है। वह गुरु कैसा होना चाहिए, इस सम्बन्ध में जायसी का कथन है कि :—

जेहि पावा गुरु मीठ, सो सुख मारग मे चलै।
सुख आनन्द को डीठि, मुहमद साथी पोढ जेहि ॥

अर्थात् जिसका गुरु मीठा, मधुर उपदेष्टा, सर्वगुणोपेत, प्रौढ और पहुँचा हुआ फकीर हो वही असीम आनन्द को प्राप्त कर सकता है। उस प्रियतम के साथ अद्वैत भावना ही 'आत्म-ज्योति मे लीन हो जाना ही—सूफी-साधक की साधना का एकमात्र ध्येय है। इसीलिए जायसी कहते है कि —

छूँढि उठै लइ मानिक मोती, जाइ समाइ जोति महँ जोती।

किन्तु अब प्रश्न यह उपस्थित होता है कि यह आत्म-ज्योति उस परमात्म-ज्योति मे किस प्रकार लीन हो सकती है। इसके उत्तर मे सूफी साधक का कथन है कि अपने हृदय मे उस प्रियतम के प्रति अनन्य प्रेम और विरह को जागृत करने का प्रयत्न करना चाहिए। जब वह विरह की भावना चरम औत्सुक्य के रूप मे परिवर्तित हो जायगी तो अन्त मे अनायास ही उसका साक्षात्कार हो जायेगा और साक्षात्कार का ही दूसरा नाम मिलन है। इस बात को समझने के लिए सूफियो के सृष्टि-रचना-क्रम के सिद्धान्तो को जान लेना आवश्यक है ।

जायसी या सूफी साधको के अनुसार सृष्टि के आरम्भ मे जीव और ब्रह्म एक-रूप थे। बाद मे इनमे भेद उत्पन्न हो गया। अब तो जीव फिर से अपने उस ब्रह्म रूप को प्राप्त करने के लिए व्याकुल हो उठा। उसकी यह व्याकुलता ही प्रेम की पीडा के रूप मे परिवर्तित हो गई। यह प्रेम-पीड़ा विरह की वेदना के रूप मे साधक के हृदय मे सर्वदा जागृत रहती है। इस विरह-भावना मे तन्मय हुआ साधक अन्त मे उसे प्राप्त कर लेता है। इस विरह-वेदना की तीव्रता अवर्णनीय है :—

हुआ जो एकहि संग, हौं तुम काहे बीछुरे।
अब जिउ उठै तरंग, मुहम्मद कहा न जाइ कछु ॥

अन्त मे यह विरह-भाव इतना तीव्र हो उठता है कि साधक का अह-भाव सर्वथा विगलित हो जाता है। उसकी अपनी पृथक् सत्ता का कही चिह्न भी शेष नही रहता। इस अहभाव के विगलित होते ही 'सो अहम्' या

'तत्त्वमसि' की भावना सार्थक हो जाती है। इसीलिए कहा गया है कि :—

आपुहि खोइ ओहि जो पावा। सो बीरौ मनु लाइ जमावा॥
जो ओहि हेरत जाइ हेराई। सो पावै अमृत-फल खाई॥

पर इन 'अहम्' का विसर्जन कोई सरल कार्य नहीं है। यह है बड़ी टेढ़ी खीर—

कठु है पिउ कर खोज, जो पावा सो मरजिया।
तहँ नहि हँसी न रोज, मुहमद ऐसे ठाँव वह॥

इसलिए साधक को चाहिए कि वह सदा इस बात का ध्यान रखे कि उसका प्रियतम उसकी आँखों के आगे से एक क्षण के लिए भी ओझल न हो जाए। वह तो कभी न खो जाए और साधक अपने आपको ही उनमें खो दे :—

आपुहि खाए पिउ मिले, पिउ खोए सब जाइ।
देखहु बूझि विचारि मन, लेहु न हेरि हेराइ॥

श्री रामरत्न भटनागर ने जायसी के 'अखरावट' में प्रतिपादित सिद्धान्तों के लिए ठीक ही लिखा है कि :—

"हम देखते हैं कि जायसी की भावना का आधार औपनिषदिक ब्रह्मवाद है। उन्होंने ब्रह्म को कायानिष्ठ मानकर योग की अनेक साधनाओं को अपनाया है, और कट्टर इस्लाम के बाह्याचारों को स्वीकार करते हुए उपनिषदों के ब्रह्मवाद और योग के "चक्र-भेदन" के आधार पर इन इस्लामी बाह्याचारों की नई व्याख्या की है, जिससे उनका रूप ही बदल गया है।"

महारनामा या महरी बाइसी—डा० माताप्रसाद गुप्त द्वारा सम्पादित 'जायसी ग्रन्थावली' में इस चौथी रचना 'महरी बाईसी' का भी समावेश हुआ है। इसमें बारह-बारह पंक्तियों की बाइस कविताएं हैं। भाषा इसकी पूर्वी अवधी है। एक नमूना देखिए—

सुनो विनती मैं किरति बखानौं महराज, समहराई रे।
गयेऊ केवट की नाव चनावैं को लागेऊ गहराई रे॥
बाँद गुन साईं पंथ सिर चुनहु चला धोर गुन सौंपहि रे।
तीर नीर बखने में सोई गहरे तो फल पावहि रे॥

प्रश्न ३—पद्मावत के कथानक का मूल आधार क्या है और जायसी ने उसे किस रूप मे अपनाया है, संक्षेप मे बताइए।

उत्तर—*पद्मावत*—'पद्मावत' जायसी की अमर कीर्ति का एकमात्र आधार-स्तम्भ तो है ही, साथ ही हिन्दी का आदि महाकाव्य भी है। हिन्दी के समग्र महाकाव्यो मे भी रामचरित मानस के पश्चात् इसी का स्थान है। यह सूफी परम्परा पर आधारित मसनवी शैली मे लिखा हुआ प्रेमाख्यानक-प्रधान प्रवन्ध-काव्य है। इसका पूर्वार्द्ध लोकप्रचलित शुक और पदमिनी की कथा के आधार पर कवि-कल्पनाप्रसूत है तो उत्तरार्द्ध का आधार शुद्ध रूप से ऐतिहासिक है। पूर्वार्द्ध मे सूफी सिद्धान्तो तथा योगियो के आदर्शो का समन्वय करते हुए प्रेम की महिमा गाई गई है तो उत्तरार्द्ध मे अपनी आन-वान और मर्यादा के लिऐ मर मिटने वाले मेवाड के वीरो की लोकोत्तर वीरता, अद्भुत शौर्य, साहस, त्याग की कथा कही गई है। इस प्रकार पदमावत जहाँ एक ओर अनुपम प्रेम-काव्य है, वहा दूसरी ओर महान वीर काव्य भी।

इसके पूर्वार्द्ध मे जो पद्मिनी और हीरामन तोते की कथा कही गई है वह कथा कल्कि पुराण मे इस प्रकार उपलब्ध होती है :—

सिहल द्वीप का शिवदत्त नामक एक तोता भगवान् कल्कि के पास आकर कहता है कि मैं सिह्लद्वीप से आ रहा हू। वहाँ वृहद्रथ राजा की पुत्री अनुपम सुन्दरी पद्मिनी है। भगवान् शकर ने उसे वर दिया है कि तेरे पति साक्षात् नारायण है। जो कोई अन्य पुरुष तुझे पत्नी भाव मे देखेगा वह तत्काल स्त्री रूप हो जायेगा। कुछ दिन वाद उसके पिता ने उसका स्वयवर रचा था पर उस स्वयवर मे भाग लेने वाले सभी राजा स्त्री-रूप हो गए और अब वे उसकी दासी वनकर सेवा कर रहे है। वह राजकुमारी अब रात दिन इस चिता मे घुली जा रही है कि मेरे पति मुझे न जाने कब और कैसे प्राप्त होगे।

यह सुनकर कल्कि ने कहा कि हे शुक ! वह विष्णु का अवतार मैं ही हू, तू जाकर राजकुमारी को धैर्य वँधा। इस पर वह तोता पद्मिनी के पास जा पहुचा और उसे कल्कि का सारा वृत्तान्त कह सुनाया। राजकुमारी ने तोते

से अत्यन्त प्रसन्न होकर कहा कि हे शुक ! मैं तेरे अ ग-प्रत्यग को स्वर्ण और मणि-रत्नो से विभूषित कर दू गी, तू जा और कल्कि को यहाँ ले आ ।

तदनुसार शिवदत्त फिर कल्कि के पास पहुचा और उन्हें पद्मिनी का सदेश कह सुनाया । अब तो कल्कि अपने घोडे पर सवार हो सिंहलद्वीप आ पहुचे । वहाँ एक सरोवर के तट पर अपना डेरा डालकर जम गए । उधर शुक ने पद्मिनी को कल्कि के आने का समाचार दे दिया तो वह अपनी सखी-सहेलियो के साथ स्नानार्थ सरोवर पर आई । यही पर कल्कि और पद्मिनी का प्रथम मिलन और प्रेमालाप हुआ । राजा को भी कल्कि के आने का समाचार मिल गया और उसने बडे सन्मानपूर्वक पद्मिनी का कल्कि के साथ विवाह कर दिया । यह है कल्कि पुराण की पद्मिनी की कथा ।

आज से पचास-साठ वर्ष पूर्व कर्नल टाड नामक अ ग्रेज विद्वान् ने टाड-राजस्थान नामक एक बहुत बडा राजस्थान का इतिहास लिखा था । उसमे भी पद्मिनी की कथा इसी प्रकार देते हुए लिखा है :—

चित्तौड के महाराणा भीमसेन की महारानी पद्मिनी अनुपम सुन्दरी थी । उसके रूप की प्रशंसा सुनकर दिल्ली के सुल्तान अलाउद्दीन खिलजी ने राजा से उसे अपनी बेगम बनाने के लिए माग भेजा और राजा के अस्वीकार कर देने पर चढाई कर दी । जब किसी प्रकार भी वह चित्तौड़ को जीत न सका तो उसने राणा को कहलाया कि यदि वह रानी का रूप दर्पण मे दिखा दे तो वह सन्तुष्ट होकर वापस लौट जायेगा । राजपूत-मर्यादा के विरुद्ध होते हुए भी भीमसेन ने अलाउद्दीन खिलजी का यह प्रस्ताव स्वीकार कर लिया । किले के वापस विदा होते समय सभ्यता के नाते महाराज अलाउद्दीन को किले से द्वार तक पहुँचाने आये किन्तु कपटी अलाउद्दीन का सकेत पाकर उसके सैनिको ने महाराज को पकड़ लिया और इस प्रकार एकाकी गिरफ्तार किए जाकर भीमसेन अलाउद्दीन की कैद मे जा पड़े ।

तब महारानी पद्मिनी ने बड़े बुद्धि-कौशल और साहस से काम लेते हुए गोरा-बादल के साथ अपने पति को छुडाने की मन्त्रणा की । उसने अलाउद्दीन को सूचित किया कि यदि वह उसके पति को छोड दे तो वह (पद्मिनी) उसके पास आने को सहर्ष प्रस्तुत है । अलाउद्दीन ने यह प्रस्ताव तत्काल स्वीकार

कर लिया और इधर सात सौ पालकियां सज गई । प्रसिद्ध यह किया गया कि इनमे पद्मिनी की सहेलियां बैठी है। पर वास्तव मे उनमे शस्त्रास्त्रो से सन्नद्ध दो-दो राजपूत वीर बैठे थे और चार-चार वीर कहार के वेश मे पालकियो को उठाये हुए थे। गोरा रानी के वेश मे बैठा था और बादल रक्षक के रूप मे घोड़े पर सवार होकर चला जा रहा था। डोलियाँ अलाउद्दीन के शिविर मे जा पहुची। वहाँ रानी ने पहले अपने पति से भेंट करनी चाही। स्वीकृति मिलते ही गोरा ने राणा की बेडिया काट डाली और तत्काल सब सैनिक शत्रु-दल पर टूट पड़े। शत्रु-सेना मे मार-काट मचाते हुए वे लोग चित्तौड आ पहुँचे, पर अलाउद्दीन ने बडी भारी सेना के साथ चित्तौड पर फिर चढाई कर दी। महाराणा तथा उनके सब साथी वीर इस युद्ध में काम आ गए। महाराणी पद्मिनी अपनी पांच हजार सहेलियो के साथ जौहर की ज्वाला मे जल कर भस्म हो गई । अलाउद्दीन इस प्रकार जब किले में पहुँचा तो पद्मिनी तो नही पर उसकी राख की ढेर ही उसके हाथ लगी।

जायसी ने पद्मावत मे इस कथा को अपने ढग से इस प्रकार सजाया है—

सिंघलद्वीप के महाराज गधर्वसेन की पुत्री का नाम पद्मावती था। वह अत्यन्त सुन्दरी थी। उसके पास हीरामन नाम का एक बडा विद्वान् तोता था। एक दिन वह पद्मावती से उसे योग्य वर न मिलने के सम्बन्ध मे कुछ कह रहा था कि राजा ने सुन लिया और बहुत क्रोध किया। तोता राजा के डर मे एक दिन उड गया। जगल मे वह एक बहेलिए के हाथ पकडा जाकर चित्तौड के एक ब्राह्मण के हाथ बेच दिया गया। उस ब्राह्मण ने उसे चित्तौड के राजा रत्नसेन के पास पहुँचा दिया। एक दिन राजा जब शिकार के लिए गए तब रानी नागमती ने तोते से पूछा कि क्या मेरे जैसी सुन्दरी स्त्री कही और भी है ? तोते ने पद्मावती का वर्णन किया। रानी ने इस डर से कही यह राजा से भी पद्मावती का वर्णन न कर दे उसे मारने की आज्ञा दी। परन्तु दासी ने उस पर राजा का प्रेम जानकर नही मारा। लौटने पर राजा तोते को न पाकर बहुत व्याकुल हुआ। तब तोता उसके सामने लाया गया और उसने सारी कथा कह सुनाई। पद्मिनी के रूप का वर्णन सुनकर राजा तोते को साथ लेकर उसकी खोज मे जोगी बनकर घर से निकल सिंघलद्वीप की

ओर चल पड़ा। वहाँ अनेक कष्टों और बाधाओं के बाद शिवजी की तपस्या के परिणाम स्वरूप पद्मावती से उसका विवाह हो गया और कुछ दिनों के बाद दोनों चित्तौड़ आगए।

एक दिन राजा ने राघव चेतन नामक एक पंडित को जिसने अपने योगबल से 'प्रतिपदा' के दिन 'द्वितीया' का चाँद दिखाया था, अपने देश से निकाल दिया। वह दिल्ली गया और वहाँ अलाउद्दीन से पद्मावती के रूप की प्रशंसा कर उसे चित्तौड़ पर आक्रमण करने के लिए उत्तेजित किया। सुल्तान १२ वर्ष तक चित्तौड़ को घेरे रहा पर उसे तोड़ न सका। अन्त में उसने रत्नसेन को सन्धि के लिए बुलाकर छल से पकड़ लिया और दिल्ली ले आया। रानी को जब यह पता लगा तब वह अपने चातुर्य और गोरा-बादल की वीरता से राजा को कैद से छुड़ा लाई। लौटने पर राजा ने सुना कि उसकी बन्दी अवस्था में कुम्भलनेर के राजा देवपाल ने पद्मावती को फुसलाने के लिए दूती भेजी थी तब वह देवपाल के साथ युद्ध करने गया और वहाँ देवपाल को मारते हुए स्वयं भी मर गया। राजा का शव चित्तौड़ लाया गया और दोनों रानियां उसके साथ सती हो गई। इधर अलाउद्दीन भी पद्मावती की इच्छा से चढ़कर वहाँ आया परन्तु उसे वहाँ राख के अतिरिक्त कुछ न मिला।

प्रश्न ४—पद्मावत की प्रमुख विशेषताओं का संक्षिप्त रूप से विवेचन कीजिए।

उत्तर—जायसी के पद्मावत महाकाव्य में अनेक विशेषताएँ स्पष्ट लक्षित होती हैं, जैसे कि—

१. पद्मावत के पूर्वार्द्ध में शृंगार रस का प्राधान्य है। यों तो कवि ने शृंगार के संयोग और वियोग दोनों पक्षों का बड़ी सफलता के साथ वर्णन किया है पर कवि की वृत्ति जैसी वियोग के चित्रण में रमी है वैसी संयोग शृंगार के वर्णन में नहीं। वास्तव में पद्मावत के पूर्वार्द्ध की सब से बड़ी विशेषता उसका विरह वर्णन है। नागमती का विरह वर्णन हिन्दी साहित्य ही में नहीं विश्व साहित्य में भी अपना एक अनुपम स्थान रखता है।

२. प्रकृति चित्रण—प्रकृति का वर्णन मानव की आन्तरिक प्रकृति और बाह्य प्रकृति के भेद से दो प्रकार का हो सकता है। पद्मावत में सामान्यतया

यद्यपि दोनो प्रकार की प्रकृति को चित्रित करने का प्रयत्न किया गया है पर जायसी पूर्वार्द्ध मे अन्त. प्रकृति के चित्रण मे वैसे सफल नही हो पाए जैसे कि उत्तरार्द्ध मे हुए हैं, क्योकि पूर्वार्द्ध मे रत्नसेन का आदर्श प्रेम ही एकमात्र लक्ष्य बनाया गया है। पर उसके जीवन का सर्वांगीण चित्र अ कित नही किया गया। प्रेम से सम्बद्ध साहस, कष्ट, सहिष्णुता, त्याग, हठ, दुराग्रह आदि गुणावगुणो का वर्णन तो किया गया है पर उसमे प्रेम के अतिरिक्त अन्य प्रवृत्ति का चित्रण नही किया गया। मानव भावनाओ का जैसा सर्वतोमुखी विकास मानस मे हुआ है वैसा पद्मावत के पूर्वार्द्ध मे नही।

बाह्य प्रकृति चित्रण—जायसी ने वाह्य प्रकृति का वर्णन करते हुए अत्युक्ति शैली, उपमा शैली, रहस्यात्मक शैली, प्रतीक शैली, परिगणन शैली आदि सभी शैलियो को अपनाया है।

(क) *अत्युक्ति शैली*—अत्युक्ति शैली के द्वारा कवि ने सामान्य विषय को भी असामान्य और साधारण को भी असाधारण बना दिया है। इससे कल्पना का उत्कर्ष और भाव-वैचित्र्य स्पष्ट लक्षित होता है। षड् ऋतुओ के वर्णन आदि प्रसगो मे भी यू तो इस शैली से काम लिया गया है पर इस शैली का चरम उत्कर्ष हमे सातो समुद्रो के वर्णन मे मिलता है।

(ख) *उपमा शैली*—जायसी ने नख-शिख वर्णन मे इस शैली का खूब चमत्कार दिखाया है। पद्मावत मे उपमा शैली का सौन्दर्य सर्वत्र लक्षित होता है।

(ग) *रहस्यात्मक शैली*—रहस्यवाद तो पद्मावत के पूर्वार्द्ध का प्राण ही है। पूर्वार्द्ध की सारी कथा रहस्यात्मक ही है। सिहल गढ आदि के वर्णन मे तो इस शैली को विशेष रूप से अपनाया गया है।

(घ) *प्रतीक शैली*—प्रतीक पद्यति से काम लेना भी प्रेममार्गी कवियो की प्रमुख विशेपता है। रत्नसेन के लिए सूर्य, पद्मिनी के लिए चाँद तथा भ्रमर और कमल-आदि के प्रतीक प्राय: प्रयुक्त हुए हैं।

(ङ) *परिगणन शैली*—वृक्षो और भोज्य पदार्थो, शस्त्रास्त्रो आदि का नामोल्लेख करते जाना परिगणन शैली के अन्तर्गत आता है। सिंहल-द्वीप के वर्णन मे इस शैली से विशेप काम लिया गया है। कवि सिहल द्वीप के उप-वनो का वर्णन करते हुए—

पुनि जो लाग बहु अम्रित दारी। फरीं अनूप होई रखवारी।
नवरग नीबू सुरंग जँभीरा। औ बादाम बेद अंजीरा।
गलगल तुरंज सदाफर फरे। नारँग अति राते रस भरे।
किसमिस सेव फरे नौ पाता। दारिउँ दाख देखि मन राता।

जो वृक्षों के नाम गिनता जाता है, वह वर्णन परिगणन शैली के अन्तर्गत ही आता है।

इस प्रकार हम देखते हैं कि जायसी का बाह्य-प्रकृतिचित्रण अनेक रूपों में होकर भी प्रायः बंधी-बंधाई परम्परा पर ही हुआ है। यद्यपि बीच-बीच में प्रस्तुत और अप्रस्तुत विधानों का ऐसा हृदयस्पर्शी समन्वय भी मिलता है कि पढ़ते-पढ़ते पाठक के मुख से बरबस वाह-वाह के शब्द निकल पड़ते हैं—

सरवर-हिया घटत निति जाई। टूक टूक होइ के बिहराई॥
बिहरत हिया करहु पिउ! टेका। दीठि-दवँगरा मेरवहु एका॥

आदि पदों में जायसी की सूक्ष्म प्रकृति निरीक्षण शक्ति अत्यन्त प्रभावशाली रूप में प्रकट हुई है।

पद्मावत में कौन सा रस मुख्य है—जब इस प्रश्न पर हम विचार करते हैं तो स्पष्ट लक्षित होता है कि इसके पूर्वार्द्ध में शृंगार और उसके सम्भोग और विप्रलम्भ दोनों का यथोचित परिपाक हुआ है। स्थान-स्थान पर करुण, शांत बीभत्स और भयानक रसों की भी अवतारणा हुई है।

षड्ऋतु वर्णन में पद्मिनी और रत्नसेन के सम्भोग शृंगार का प्रकृति के माध्यम से कैसा सुन्दर चित्र अंकित हुआ है, एक नमूना देखिए—

चमकै बीजु, बरसै जल सोना। दादुर मोर सबद सुठि लोना॥
रँगराती पीतम सँग जागी। गरजै गगन चौंकि गर लागी॥

बरसात की झड़ी तो एक ही है पर संयोगिनी को कैसी सुखदायक और वियोगिनी को कैसी दुखदायक वह लगती है- यही इसमें दिखाया गया है। ऊपर की पंक्तियों में संयोगिनी पद्मिनी अपने प्रियतम के संग बरसात की झड़ियों को देखकर कहती है कि यह वर्षा की बौछारें बिजली के चमकने से प्रकाशित होकर ऐसी सुनहरी दिखाई देती हैं मानो इन जल-धाराओं के रूप में सोना ही बरस रहा है। सम्पूर्ण सृष्टि में सुवर्ण की वर्षा हो रही हो। इससे बढ़कर मजा और आनन्द की बात क्या होगी?

पर वही वरसात की झडी बेचारी वियोगिनी नागमती को कैसी भयावह प्रतीत हो रही है, जायसी की लेखनी उसकी भावना का भी वैसा ही सफल चित्र अ कित कर रही है—

रहौं अकेली गहे एक पाटी। नैन पसारि मरौं हिय फाटी॥
चमक बीजु घन गरजि तरासा। विरह काल होइ जीउ गरासा॥
बरसै मघा झकोरि झकोरि। मोर दोउ नैन चुवै जस झोरी।

यह है जायसी की शृ गार के सम्भोग और विप्रलम्भ दोनो पक्षो को सफलतापूर्वक चित्रित करने की अपूर्व क्षमता।

पद्‌मावत के उत्तरार्द्ध मे वीर रस का जसा प्रकर्ष हुआ है उसका तो कहना ही क्या। गोरा-वादल-युद्ध खण्ड मे प्रदर्शित वीरता की भावनाएँ अपनी उपमान आप हैं।

अलंकार योजना—जायसी ने भाव-पक्ष के समान ही कलापक्ष मे भी पर्याप्त सफलता प्राप्त की है। प्रतीक पद्धति को अपनाने के कारण पद्‌मावत मे सादृश्यमूलक अलकारो का ही प्राचुर्य्येण प्रयोग हुआ है। जायसी के उपमान भावोद्‌वोधक और रसोद्रेक करने वाले हे। उनके कारण प्राय भावो मे तीव्रता लाने का कार्य वडे सुन्दर ढग से किया गया है। उन्होने अपने उपमान प्राय प्रकृति के विविध क्षेत्रो से चुने है। जैसे कि विरहिणी नागमती के हृदय की ग्रीष्म मे सूखे और फटे हुए सरोवर के साथ समता की गई है। उपमा, उत्प्रेक्षा, रूपक आदि साम्यमूलक अलंकार जायसी के यहाँ अधिकतर व्यवहृत हुए है। नागमती के विरह-वर्णन के उद्दीपन मे हेतूत्प्रेक्षा ने वड़ा चमत्कार दिखाया है।

अन्त मे इतना और कहना चाहते हैं कि सारा का सारा पद्मावत रूपक नही है। तन चित उर मन राजा कीन्हाँ—आदि आध्यात्मिक सकेत-सूचक पद भी जायसी का स्वरचित नही है, प्रक्षिप्त है, यह डा० माताप्रसाद गुप्त ने स्वसम्पादित जायसी ग्रन्थावली मे भली-भाँति सिद्ध कर दिया है। हाँ, पूर्वार्द्ध का पर्यवसान अध्यात्म मे होता है, पर उत्तरार्द्ध का अध्यात्म से कोई नाता नही। वह शुद्ध रूप से ऐतिहासिक वीर काव्य ही है।

स्मृति-संकेत

जायसी का जन्म सम्वत् १५५० मे और मृत्यु सम्वत् १५९९ के लगभग मानी जाती है। २ यह जायस के निवासी काणे और कुरूप किन्तु अत्यन्त उदाराशय सूफी सन्त थे। ३. पद्मावत, अखरावट और आखिरी कलाम यही इनकी तीन प्रसिद्ध रचनायें हैं, यद्यपि इनके अतिरिक्त भी बीसियों अन्य रचनाओ के नाम भी लिए जाते हैं। पद्मावत की रचना सम्वत् १५७७ और १५९७ के बीच हुई थी और आखिरी कलाम सम्वत् १५७९ की रचना है। ५ आखिरी कलाम मे इस्लामी सिद्धान्तो के अनुसार कयामत के पश्चात् होने वाले अल्ला ताला के न्याय का वर्णन है। . अखरावट मे योग-मार्ग, अद्वैतवाद और इस्लाम के सिद्धान्तों के आधार पर आध्यात्मिक सिद्धान्तों का प्रतिपादन किया गया है। ७. पद्मावत के पूर्वार्द्ध मे रत्नसेन और पद्मिनी की कल्पित प्रेम कथा तथा उत्तरार्द्ध मे अलाउद्दीन के चित्तौड़ पर ऐतिहासिक आक्रमण का वर्णन है। ८. अत्युक्ति शैली, उपमा शैली, रहस्यात्मक शैली, प्रतीक शैली, परिगणन शैली इन पाँचों शैलियो मे वाह्य प्रकृति का चित्रण, शृंगार के सम्भोग और वियोग दोनों पक्षों का हृदयग्राही वर्णन, वीर रस की उत्साह वर्द्धक अवतारणा आदि पद्मावत की अनेक विशेषताएं हैं। ९. जायसी की अलंकार योजना भावोद्बोधक और रसोद्रेक मे सहायक है। १०. वास्तव मे रामचरितमानस के बाद पद्मावत का ही स्थान है।

Nov-5, सूरदास

प्रश्न १—सूरदास का जन्म, स्थान, समय व निधन-काल आदि के सम्बन्ध मे प्रकाश डालते हुए उनके जीवन-वृत्त की सक्षिप्त रूपरेखा निर्धारित कीजिए।

उत्तर—सूरदास का जन्म कुछ विद्वान् १५४० मे कुछ १५३५ मे और कुछ १५३० मे मानते हैं।

गुरु परसाद होत यह दरसन सरसठ वरस प्रबीन।

सूर सारावली के इस पद मे सूरदास ने लिखा है कि सडसठवें वर्ष मे उन्होने सूर सारावली की रचना की थी। इधर साहित्य-लहरी मे उसका रचना-काल इस प्रकार दिया है—

मुनि पुनि रसन के रस लेख।
दसन गौनीन्द को लिखि, सुवल संवल पेख ॥

इसका अर्थ कुछ लोग सम्वत् १६०७ तो दूसरे सम्वत् १६१७ और बहुत से विद्वान् १६२७ करते हैं। पर शुक्ल जी ने सम्वत् १६०७ अर्थ मानकर तथा इसे सूर सारावली की समकालीन रचना मानते हुए उनका जन्म सम्वत् १५४० मे माना है।

किन्तु वल्लभकुल सम्प्रदाय मे यह माना जाता है कि सूरदास वल्लभाचार्य जी से दस दिन छोटे थे और वल्लभाचार्य जी का जन्म सम्वत् १५३५ में हुआ था। अत सूरदास का जन्म भी १५३५ में जा पड़ता है। आजकल यही सम्वत् प्रामाणिक माना जाता है।

सूरदास का जन्म किस वश मे हुआ, यह भी विवादास्पद विषय है क्योंकि साहित्य-लहरी मे जो वशावली मिलती है उसमे तो 'उन्हें चन्दवरदाई का वंशज ब्रह्मभट्ट बताया गया है किन्तु 'चौरासी वैष्णवन की वार्ता' मे इन्हे सारस्वत ब्राह्मण कहा गया है। अत. वार्ता के साक्ष्य के आधार पर उन्हे सारस्वत ब्राह्मण ही माना जाता है क्योंकि साहित्य-लहरी की वशावली को प्राय: सभी विद्वान् प्रक्षिप्त मानते हैं।

साहित्य-लहरी मे सूर के पिता का नाम नही दिया गया पर 'आइने अकबरी' मे लिखा है कि सूरदास की अकबर से भेंट हुई थी और इनके पिता का नाम रामदास था पर जब अकबर गद्दी पर बैठा उस समय सूरदास बहुत बूढे हो चुके थे। अत. यह भेंट किसी अन्य सूरदास से हुई होगी और इनके पिता का नाम भी अज्ञात ही रह जाता है।

सूरदास जन्मान्ध थे या बाद मे अन्धे हुए, यह निश्चित रूप से नही कह सकते। यद्यपि 'सस्कृत-मणिमाला' मे "जन्मान्ध सूरदासोऽभूत्" कहकर उन्हें जन्मान्ध बताया गया है और प्राणनाथ कवि ने भी—

बाहर नैन विहीन सो, भीतर नैन विसाल ।
जिन्हें न जग कछु देखिबौ, लखि हरि रूप रसाल ।।

अपने इन दोहे मे ऐसे भाव व्यक्त किए है मानो वे जन्मान्ध ही थे । उधर सूर की—'करम हीन जनम को अन्धो मो तें कौन नकारौ ।' आदि पक्तियां उन्हे जन्मान्ध ही बताती है । पर फिर भी विद्वान् समालोचक उनके उत्कृष्ट सौन्दर्य-वर्णन को देखकर यही विश्वास करते है कि वे जन्मान्ध नही थे और यही पक्ष अधिक युक्तियुक्त प्रतीत होता है ।

सूरदास जी मथुरा और आगरा के बीच जब गऊघाट पर रहते थे, उसी समय वल्लभाचार्य जी से उनकी भेट हुई और उसी समय उन्होने पुष्टिमार्ग की दीक्षा दे दी । तत्पश्चात् उन्होने सूरदास जी को गोवर्धन पर्वत पर नव-निर्मित श्रीनाथ जी के मन्दिर मे लाकर कीर्तन का मुखिया बना दिया । तब से लेकर सूरदास जी गोवर्धन मन्दिर के पास मे स्थित पारसौली नामक ग्राम मे ही रहते रहे । यही पर इनकी सम्वत् १६२० के लगभग मृत्यु हुई ।

प्रश्न २—सूरदास जी की प्रमुख रचनाओ का संक्षिप्त परिचय दीजिए ।

उत्तर—सूरदास की 'सूर सागर,' 'साहित्य लहरी' और 'सूर-सारावली' यह तीन रचनाए कही जाती है पर इनमे से प्रामाणिक रचना केवल 'सूर सागर' है । कहा जाता है कि वल्लभाचार्य जी से यह आदेश पाकर कि कुछ "भगवल्लीला वर्णन करो'—सूरदास ने जो प्रभु-लीला के पद गाये, उन पदो का सकलन ही 'सूर सागर' के रूप मे हुआ है । इस ग्रन्थ का मूल आधार श्रीमद्भागवत है । पर, यह कहना ठीक नहीं कि सूर-सागर भागवत का अनुवाद है । उनके बारे मे यह ठीक ही कहा गया है कि "भागवत के साथ तभी तक रहते है जब तक उनके प्रभु श्रीकृष्ण नहीं मिल जाते । श्रीकृष्ण के मिलते ही वे भागवत को छोड़ उनकी लीलाओं मे ऐसे रम जाते हैं कि उन्हें अन्य किसी बात का भान ही नहीं रहता ।"

प्रश्न ३—सूरदास के भाव-पक्ष तथा कला-पक्ष का संक्षिप्त विवेचन कीजिए ।

उत्तर—भाव-पक्ष की दृष्टि से सूर का काव्य लीला-काव्य है । लीला-

गान के अन्तर्गत माता-पुत्र, गोप-गोपियो, प्रिय-प्रिया तथा पति-पत्नी का प्रेम ही उनका मुख्य प्रतिपाद्य विषय है।

इसीलिए श्रीकृष्ण के व्यापक जीवन मे से इन कृष्ण-भक्त कवियो ने उनके उतने ही अ श को अपनाया है जिसके द्वारा प्रेम-भावना की अभिव्यजना हो सके। इस प्रकार सूर का क्षेत्र केवल वात्सल्य और शृगार तक ही भले ही सीमित हो पर इसमे कुछ सन्देह नही कि सूर ने शृगार और वात्सल्य का कोई कोना अछूता नही छोडा।

सूर के वात्सल्य वर्णन की समता मे विश्व का कोई भी कवि नही आ सकता।

यशोदा हरि पालने झुलावै।
हलरावै, दुलरावै, मल्हावै, जोइ सोइ कछु गावै ॥

इस पर शिशु श्रीकृष्ण तथा माता यशोदा की भावना का सजीव चित्र अ कित करते हुए सूर आगे बढते है और घुटनो के बल चलते हुए तथा तुत-लाती वाणी मे बोलते हुए श्रीकृष्ण के—

'भीतर तें बाहर लौं आवत।
घर आँगन अति चलन सुगम भयो देह देहरी मे अटकावत।'
'अरबराइ कर पानि गहावति डगमगाइ धरनि धरे पैयां॥'

ऐसे अनेक मनोहर चित्र अ कित करने के पश्चात् सूर ने—

मैया कबहिं बढेगी चोटी
कितिक बार मोहि दूध पियत भई, यह अजहूँ है छोटी ॥

आदि मे बाल-सुलभ स्पर्धा के भाव को बडी ही सजीवता के साथ व्यक्त किया है।

शृ गार-वर्णन—वात्सल्य के पश्चात् जब हम सूर के शृगार-वर्णन की ओर ध्यान देते है तो पाते है कि सूर की अपूर्व प्रतिभा शृगार के सयोग और वियोग दोनो पक्षो मे समान रूप से चली है। इस सम्बन्ध मे द्विवेदी जी ने ठीक ही कहा है कि "सूरदास का प्रेम सयोग के समय सोलह आने सयोग-मय और वियोग के समय सोलह आने वियोगमय है, क्योकि उनका हृदय बालक

था जो अपने प्रिय के क्षणिक वियोग में भी अधीर हो जाता है और क्षणिक सम्मिलन में ही सब कुछ भूल कर किलकारियाँ मारने लगता है।"

सूर ने संयोगवर्णन नाना रूपों में किया है। उनकी रूप-छटा के वर्णन का कहीं कोई अन्त नहीं—

राधे तेरो बदन बिराजत नीको।
जब तू इत-उत बंक बिलोकति, होत निशापति फीको ॥

और—

मोहन कर त्रिय मुख अलकें यह उपमा अधिकाई।
मनहु सुधा शशि राहु चोरावत धर्‌यो ताहि हरि आई ॥

इस प्रकार के मुख-छवि वर्णन के सूर-सागर में सैकड़ों उदाहरण मिल सकते हैं—

मुख-मुख जोरि आलिंगन दीन्हों।
बार-बार भुज भरि लीन्हों ॥

जैसे पदों में जब सूर शृंगारिक चेष्टाओं का वर्णन करने लगते हैं तो उनकी प्रतिभा इस क्षेत्र के भी प्रत्येक छोर को छू जाती है। स्मरण रहे कि इस लीला-गान का उद्देश्य लीला-गान ही है।

द्विवेदी जी ने इस सम्बन्ध में ठीक ही कहा है कि "उनके प्रेम में चण्डीदास की राधा की तरह पद-पद पर सास-ननद का डर भी नहीं है और विद्यापति की किशोरी राधिका के समान रुदन में हास और हास में रुदन की चातुरी भी नहीं है। इस प्रेम में किसी प्रकार की जटिलता भी नहीं है। घर में, वन में, घाट पर, कदम्ब तले, हिंडोले पर, जहाँ कहीं भी इसका प्रकाश हुआ है, वहीं यह अपने आप में पूर्ण है ... ।"

इस प्रकार सूर का संयोग-वर्णन अत्यन्त सरस और स्वाभाविक है, इसमें कुछ सन्देह नहीं। पर उनका विरह-वर्णन तो इतना व्यापक हुआ है कि पढ़ते-पढ़ते सचमुच हृदय द्रवित हो उठता है। सन्ध्या होते ही जब गोपियों को स्मरण आता है कि इसी समय श्रीकृष्ण वन से गौओं को लेकर आया करते थे तो उनके मुख से सहसा निकल पड़ता है कि—

इहि बिरिया बन ते ब्रज आवते ।
दूरहि ते वह बेनु अधर धरि बारबार बजावते ॥

इसी प्रकार अपने विरह की पीडा मे तिल-तिल कर मारने वाले श्रीकृष्ण के बारे मे वे ठीक ही कहती हैं कि—

प्रीति कर दीन्ही गरे छुरी ।
जैसे बधिक चुगाइ कपट कन पीछे करत बुरी ॥

प्रश्न ४—सूरदास के भ्रमर गीत तथा उनके साहित्य मे उपलब्ध प्रपत्तिवाद के सम्बन्ध मे सक्षिप्त टिप्पणी लिखिए ।

उत्तर—सूर के विरह वर्णन मे भ्रमर-गीत अर्थात् गोपी-उद्धव-सम्वाद का विशेष महत्वपूर्ण स्थान है। इन भ्रमर-गीतो मे विरह-भावना का तो सजीव चित्रण हुआ ही है, साथ ही वडे मनोवैज्ञानिक ढग से उस समय में प्रचलित निर्गुणवाद का खण्डन भी हो गया है ।

हम सौं कहत कौन सी बातें ।
सुनि, ऊधो ! हम समझति नाहिं, फिरि बूझति हैं तातें ॥

× × ×

निर्गुण कौन देस को बासी ?
मधुकर हँसि समुझाय, सौंह दे बूझत साँच न हाँसी ।।

× × ×

साँच कहो तुमको अपनी सौं, बूझत बात निदाने ।
सूर श्याम जब तुम्हें पठाये तब वे कछु मुस्काने ॥

आदि सैकड़ो पदो मे अनेक प्रकार से निर्गुणवाद का खण्डन किया गया है। सूरदास यद्यपि शृगार और वात्सल्य के ही प्रमुख कवि है, तथापि राम-रावण युद्ध आदि प्रसगो मे वीर रस की भी सुन्दर अवतारणा हुई है। जैसे कि —

क्षोभित सिंधु शेष सिर कपित पवन गती भइ पंग ।
इन्द्र हँस्यो हर हँसि विलखान्यो जानि वचन भयो भंग ॥

प्रपत्तिवाद—जैसा कि पहले कहा गया है, सूरदास पुष्टि-मार्ग मे दीक्षित

थे, अतः उनके काव्य में प्रपत्तिवाद अथवा शरणागति की भावना भी प्राय उपलब्ध होती है, जैसे कि—

हरि हरि सुमरण करो, हरि चरनारविन्द उर धरो।

× × ×

कलि जुग एक बड़ो उपकार।
जो हरि कहै सो उतरे पार॥

प्रेम तो उनके जीवन का सर्वस्व था। इसलिए वे कहते हैं कि—

प्रेम प्रेम सों होय प्रेम सों पारहि जैये,
प्रेम बँध्यो संसार प्रेम परमारथ पैये॥

प्रश्न ५—सूरदास की भाषा, शैली, संगीतात्मकता, अलंकार-विधान तथा उपासना-पद्धति आदि पर संक्षिप्त किन्तु भावगर्भित विचार व्यक्त कीजिए।

उत्तर—यह सर्वविदित है कि सूर की भाषा चलती हुई मुहावरेदार साहित्यिक ब्रज-भाषा है। यद्यपि उसमें यत्र-तत्र अरबी, फारसी आदि के प्रचलित विदेशी शब्द तथा पंजाबी, गुजराती, राजस्थानी आदि प्रान्तीय भाषाओं के शब्द भी यत्र-यत्र प्रयुक्त होगए हैं पर है वह शुद्ध साहित्यिक ब्रजभाषा ही।

सूर सागर का निर्माण राग-रागनी या गीतों के रूप में हुआ है। सूरदास को यह गीत-परम्परा जयदेव आदि अपने पूर्ववर्ती कवियों से प्राप्त हुई थी। यहाँ तक कि—

सारंग नयन, बयन पुनि सारंग, सारंग तसु समधाने।
सारंग उपर उगल रम सारंग, केलि करयि मधुपाने॥

आदि कुछ पद तो विद्यापति और सूरदास दोनों के यहाँ समान रूप से मिलते हैं।

ब्रजभाषा एक तो स्वभावतः अत्यन्त श्रुति-मधुर और सुकोमल है और फिर सूर की स्वर-लहरी के साथ मिलकर उसमें जो नाद-सौन्दर्य उत्पन्न हुआ है उसका तो कहना ही क्या है—

मध्य ब्रज नागरी रूप रस आगरी घोष उज्यागरी श्याम प्यारी।
सूरी ब्रज सुन्दरी दसन छवि कुंद री काम तनु दुंद री करनहारी॥

आदि पदो मे पेशलता अपनी पराकाष्ठा को पहुँच गई है। एक के बाद दूसरा पद मानो अपने आप जिह्वा से फिसलता जा रहा है।

अलकार विधान—भाव पक्ष के समान सूर का कलापक्ष भी अत्यन्त प्रौढ है। यद्यपि उनके काव्य मे अनुप्रास की छटा सर्वत्र पाई जाती है तो भी यमक आदि दो-एक दूसरे शब्दालकारो को छोडकर उन्होने प्राय अर्थालकारो का ही अधिक प्रयोग किया है। अर्थालकारो मे भी अन्य भक्त कवियो की भाँति साम्यमूलक अलकारो का ही उनके यहाँ प्राचुर्य है। कही-कहीं तो वे एक के बाद दूसरी उत्प्रेक्षाओ की झडी सी लगा देते है। साग-रूपक के भी उनके यहाँ भण्डार भरे हुए हैं—

फटिक भूमि पर कर पग छाया यह सोभा अति राजति।
करि-करि प्रतिपद प्रतिमनि वसुधा कमल बैठकी साजति॥

आदि मे उत्प्रेक्षा का सौन्दर्य दर्शनीय है। लक्षणा और व्यजना के प्रयोग भी अनेकत्र दर्शनीय हैं।

सूरदास ने क्योकि जीवन के सीमित पक्ष को ही अपनाया है इसीलिए मुक्त काव्य मे ही उनकी प्रतिभा का विकास हुआ है।

इसमे कुछ सन्देह नही कि तुलसी का काव्य भी अत्यन्त आकर्षक है फिर भी हृदय के एक-एक कोने को जिस प्रकार सूर का सगीत झकृत कर देता है उसके तो कहने ही क्या! सूर के जैसी तन्मयता मीरा मे भी है, पर उसमे वैसा गाम्भीर्य नही। सूर के सम्बन्ध मे शुक्ल जी का यह कथन सर्वथा सत्य है कि "बाल्यकाल और यौवनकाल कितने मनोहर है। उनके बीच की नाना मनोरम परिस्थितियो के विशद चित्रण द्वारा सूरदास जी ने जीवन की जो रमणीयता सामने रखी, उससे गिरे हुए हृदय नाच उठे। वात्सल्य और शृगार के क्षेत्रो का जितना अधिक उद्घाटन सूर ने अपनी बन्द आँखो से किया, उतना किसी और कवि ने नही। इन क्षेत्रो का कोना-कोना वे झाँक आये। उक्त दोनो रसो के प्रवर्त्तक रति-भाव के भीतर की जितनी मानसिक वृत्तियो और दशाओ का अनुभव और प्रत्यक्षीकरण सूर कर सके, उतनी का और कोई नही। हिन्दी-साहित्य मे शृगार का रसराजत्व यदि किसी ने पूर्ण रूप से दिखाया तो सूर ने।"

सूर के प्रेम-भाव के सम्बन्ध मे शुक्ल जी का यह कथन सर्वथा उपयुक्त ही है कि "जिस प्रकार ज्ञान की चरमसीमा ज्ञाता और ज्ञेय की एकता है उसी प्रकार भेदभाव की चरम-सीमा आश्रय और आलबन की एकता है, अत भगवद्भक्ति की साधना के लिए इसी प्रेम-तत्व को वल्लभाचार्य ने सामने रखा और उनके अनुयायी कृष्ण-भक्त कवि इसी को लेकर चले। गोस्वामी तुलसीदास की दृष्टि व्यक्तिगत साधना के अतिरिक्त लोकपक्ष पर भी थी। इसी से वे मर्यादा पुरुषोत्तम के चरित को लेकर चले और उसमें लोक-रक्षा के अनुकूल जीवन की और-और वृत्तियो का भी उन्होंने उत्कर्ष दिखाया और अनुरजन किया।"

वास्तव मे सूरदास के यहा रति-भाव के तीनो मुख्य रूप वात्सल्य, दाम्पत्य और भगवद्-भक्ति अपने चरमोत्कर्ष पर पहुचे हैं। और "हृदय से निकली हुई प्रेम की इन तीनो प्रबल धाराओ से सूर ने बड़ा भारी सागर भर कर तैयार किया है। इन तीनो भावो मे से भी दाम्पत्य भाव और वात्सल्य भाव का जैसा हृदयग्राही विशद विवेचन हमे सूर के यहाँ उपलब्ध होता है वैसा अन्यत्र दुर्लभ है।

प्रश्न ६—सूर और तुलसी की उपासना-पद्धति में तारतम्य दिखाते हुए अन्तर स्पष्ट कीजिए।

उत्तर—सूर की उपासना-पद्धति के सम्बन्ध मे कहा जाता है कि सूर की उपासना-पद्धति सख्य भाव को लिये हुए है, जबकि तुलसी की उपासना पद्धति मे दास्य या सेव्य-सेवक भाव का प्राधान्य है।

सूरदास प्रभु वे अति खोटे, यह उनहूं ते अति खोटी।

\+ \+ \+

सूरदास सरवस जो दीजे, कारो कृतहि न माने।

आदि पक्तियो के आधार पर सूरदास को खरा एव स्पष्टवादी कहा गया है। इसके विपरीत तुलसी को सिफारशी, खुशामदी और लल्लो-चप्पो करने वाला कहा गया है।

तुलसीदास बार-बार स्मरण दिलाते रहते हैं कि उनके राम साक्षात् पर-ब्रह्म परमेश्वर हैं पर सूर ऐसा नहीं करते।

सूरदास और तुलसीदास मे एक बडा अन्तर यह है कि सूरदास प्रभु प्रेम मे तन्मय होकर वाह्य परिस्थितियो को सर्वथा भूल जाते है। उनकी आलोचना को वे आवश्यक समझते है। लोक और समाज की प्रवृत्तियो की ओर वे ध्यान नही देते। पर तुलसी लोक-मगल की भावना की ओर सदा जागरूक रहते है। उन्होने अपने समय की जनता की दुर्दशा देखकर उस पर अपना हृदय का क्षोभ व्यक्त किया है और समाज के शत्रु, धर्म-द्वेषी शक्तियो पर जोर से चोट की है।

तुलसी का अपने समय मे प्रचलित काव्य की सभी शैलियो और सभी भाषाओ पर समान अधिकार था, पर सूर ने केवल एक ही शैली और एक ही भाषा मे काव्य रचना की है।

तुलसी ने मानव जीवन का विविध दशाओ तथा परिस्थितियो का सजीव चित्र अ कित किया है जबकि सूर की प्रतिभा ने जीवन के केवल तीन ही क्षेत्रो मे अपनी प्रतिभा का उपयोग किया है।

"तुलसी की प्रतिभा सर्वतोमुखी है और सूर की एकमुखी, पर एकमुखी होकर उसने अपनी दिशा मे जितनी दूर तक दौड लगाई है उतनी दूर तुलसी ने नही, और किसी कवि की तो वात ही क्या है ? जिस क्षेत्र को सूर ने छुना है उस पर उनका अधिकार अपरिमित है। उसके वे सम्राट् है।"

सूर मे साम्प्रदायिक सकीर्णता अधिक हैं जबकि तुलसी की दृष्टि अत्यन्त उदार है। वे भगवान् राम और भगवान् शकर दोनो को एक ही रूप समझते हैं। वे लिख 'रामचरित मानस' रहे हैं पर प्रत्येक कांड के आरम्भ मे भगवान् शकर की वन्दना सर्वप्रथम करते हैं।

फिर भी यह तो मानना ही पडेगा कि सूर के भ्रमर-गीतो मे काव्य का जो उत्कृष्ट रूप व्यक्त हुआ है, अनन्य प्रेम-भाव का जो महत्व प्रदर्शित हुआ है, वह अन्यत्र भला कहाँ मिल सकता है।

सन्देसनि मधुवन कूप भरे।
जो कोउ पथिक गए हैं ह्यां तें फिर नहि गवन करे।
कै वै श्याम सिखाय समोधे, कै वै वीच गरे।

अपने नहिं पठवत नंद नवन हमरेउ फेरि घरे।
मसि खूँटी, कगार जल भीजे, शर दव लागि जरे।।

तथा—

ऊधो कोकिल कूजत कानन,
तुम हमको उपदेश करत हो
भस्म लगावन आनन।।

आदि पदो से गोपियो का अन्तरतम जैसे स्वाभाविक रूप मे व्यक्त हुआ है, उसका सौन्दर्य-पान करते-करते पाठक तन्मय हो जाता है।

स्मृति-संकेत

१ सूरदास का जन्म १५३५ मे हुआ था। यद्यपि साहित्य-लहरी के एक पद के आधार पर उनके जन्म की कल्पना सम्वत् १५४० में की गई है, पर यह कोरी कल्पना ही है। २. सूरदास जन्मान्ध थे या बाद मे अन्धे हुए यह विवाद का विषय है। ३. सूरसागर, साहित्य-लहरी और सूर-सारावली सूर की ये तीन रचनाएँ कही जाती हैं पर वास्तव मे उनका प्रामाणिक ग्रन्थ सूर-सागर ही है। ४ सूरदास के भावपक्ष मे शृंगार,वात्सल्य और विनय इन तीनों भक्ति की भावनाओं का समावेश होता है। ५. यद्यपि सूर ने शृंगार के संयोग और वियोग दोनों पक्षों का चित्रण किया है पर उनकी प्रतिभा वियोग-वर्णन में ही अधिक रमी है। ६. सूर के भ्रमर-गीतों मे तो कवि ने अपना हृदय ही उंडेल कर रख दिया है। ७. प्रेम के अतिरिक्त सूर ने वीर आदि रसो का भी यथास्थान विवेचन किया है। ८. पुष्टिमार्ग के अनुसार शरणागति या प्रपत्तिवाद भी सूर की रचनाओं मे मिलता है। ९. सूर के साहित्य की संगीत-भावना परमोत्कृष्ट है। १०. सूर ने साम्यमूलक अलंकारों का ही अधिक प्रयोग किया है। ११. सूर की उपासना एकांगी सख्य-भाव को लिए हुए तथा संकीर्ण दृष्टिकोण की परिचायक है जबकि तुलसी की उपासना-पद्धति मे उदारता, समन्वयवाद और व्यापकता के दर्शन होते हैं।

तुलसीदास

प्रश्न १—गोस्वामी तुलसीदास के जीवन-वृत्त के सम्बन्ध मे उपलब्ध सामग्री का संक्षिप्त परिचय देते हुए उनके जीवन की प्रामाणिक रूप-रेखा निर्धारित कीजिए।

उत्तर—बाबा बेणी माधवदास कृत 'गुसाई चरित' तथा रघुवरदास कृत 'तुलसी चरित' ये दो प्राचीन तुलसी-चरित सम्बन्धी ग्रन्थ हैं। इन दोनो में गोस्वामी जी का जन्म सम्वत् १५५४ मे लिखा है किन्तु इन दोनो ग्रन्थो की प्रामाणिकता सदिग्ध है। शिवसिंह सरोज ने गोस्वामी जी का जन्म सम्वत् १५८३ लिखा है। ग्रियर्सन आदि विद्वानो ने उनका जन्म सम्वत् १५८६ माना है।

सुरतिय नरतिय, नागतिय, सब चाहति अस होय।
गोद लिये हुलसो फिरै, तुलसी सा सुत होय॥

इस पद के आधार पर गोस्वामी जी की माता का नाम हुलसी कहा गया है, और पिता का नाम आत्माराम दुबे बताया गया है। शुक्ल जी ने उनका जन्म-स्थान राजापुर बताया है पर कुछ आलोचक उनका जन्म-स्थान सोरों को बताते है।

तेहि अवसर इक तापस आवा, तेज पुंज लघु वयस सुहावा।
कवि अलखित-गति वेष विरागी। मन क्रम वचन राम अनुरागी॥

आदि पक्तियो के द्वारा भी शुक्ल जी उक्त निष्कर्ष पर पहुँचे हैं। द्विवेदी-जी ने सोरो के पक्ष मे अपने विचार इस प्रकार व्यक्त किए हैं—

"सोरो के प्रामाणिक या अप्रामाणिक होने के पक्ष मे कुछ भी नही कहना है। जहा तक पुस्तको से पढ कर समझने का प्रश्न है, मेरा विचार है कि सोरो के पक्ष मे दिये जाने वाले प्रमाण बहुत महत्वपूर्ण न होते हुए भी वजनदार है। उनको यो ही टाला नही जा सकता।"

मातु पिता जग जाइ तजो
विधिहूँ ने लिख्यो कछ भालई भला। (कवितावली)

जनक जननि तजो जनमि करम बिनु विधिहुँ सृजो अव डेरे।

(विनय पत्रिका)

आदि अन्तरंग साक्षी के आधार पर कहा जाता है कि गोस्वामी जी को उनके माता-पिता ने जन्मते ही छोड दिया था। कारण कि उनका जन्म गण्डमूल नक्षत्रों में हुआ था। बचपन में वे बाबा नरहरिदास के पास रहे और फिर काशी आकर वेद-वेदांगों का अध्ययन किया। विवाहित हो जाने पर अपनी पत्नी के मुख से—

> लाज न लागत आपको, दौरे आयहु साथ।
> धिक् धिक् ऐसे प्रेम को, कहा कहौं मैं नाथ॥
> अस्थि-चर्म-मय देह मम, तामैं जैसी प्रीति।
> तैसी जो श्रीराम महँ, होति न तब भवभीति॥

यह फटकार सुनकर वे विरक्त हो गए। उन्होंने दोहावली, कवित्त-रामायण, गीतावली, रामचरित मानस, विनय-पत्रिका, राम-ललानहछू, पार्वती-मंगल बरवै रामायण, वैराग्य-संदीपिनी, कृष्ण-गीतावली और रामाज्ञा-प्रश्नावली आदि अनेक रचनाओं का निर्माण किया।

प्रश्न २—तुलसीदास की साहित्य की विशेषताओं और उनके समन्वयवाद के आधार पर विवेचना कीजिए।

उत्तर—तुलसी की सबसे बड़ी विशेषता उनका समन्वयवाद है। इस सम्बन्ध में द्विवेदी जी ने लिखा है कि—"उनका सारा काव्य समन्वय की विराट् चेष्टा है। लोक-शास्त्र का समन्वय, भक्ति और ज्ञान का समन्वय, निर्गुण और सगुण का समन्वय, ब्राह्मण और चाण्डाल का समन्वय, पाण्डित्य और अपाण्डित्य का समन्वय—रामचरित मानस शुरू से आखीर तक समन्वय का काव्य है।"

"तात्पर्य यह है कि उस समय नये-नये सम्प्रदायों की खींचतान के कारण आर्य-धर्म का व्यापक स्वरूप आंखों से ओझल हो रहा था, एकांगदर्शिता बढ़ रही थी।......शैवों, वैष्णवों, शाक्तों और कर्मठों की तू-तू मैं-मैं तो थी ही, बीच में मुसलमानों से अविरोध प्रदर्शन करने के लिए भी अपढ़ जनता को साथ लाने वाले कई नए-नए पथ निकल चुके थे जिनमें एकेश्वरवाद का कट्टर

स्वरूप, उपासना का आशिकी रगढंग, ज्ञान-विज्ञान की निन्दा, विद्वानो का उपहास, वेदान्त के दो-चार प्रसिद्ध शब्दो का अनधिकार प्रयोग आदि सब कुछ था, परलोक को व्यवस्थित करने वाली वह मर्यादा न थी जो भारतीय आर्य-धर्म का प्रधान लक्षण है।"

गोस्वामी जी ने वर्णाश्रम धर्म की रक्षा के लिए किस प्रकार प्रयत्न किया और निर्गुणोपासक या कृष्ण-भक्त कवियो के द्वारा समाज मे जो विकृति उत्पन्न हो रही थी, उससे उसकी किस प्रकार रक्षा की, भक्ति का सम्बन्ध शील के साथ जोडकर वर्ण-व्यवस्था, धर्म-व्यवस्था और समाज-व्यवस्था का किस प्रकार सामञ्जस्य किया, इस सम्बन्ध मे शुक्ल जी ने लिखा है कि—

"तुलसीदास के समय मे दो प्रकार के भक्त थे—(१) वेद-शास्त्र के पडित तत्वदर्शी आचार्यो द्वारा प्रवर्तित सम्प्रदायो की परम्परा मे परिपालित रामकृष्ण के उपासक, (२) जनता को आकर्षित करने के लिए समाज-व्यवस्था के निन्दक और सम्मानित व्यक्तियो का उपहास करने वाले प्राय अर्ध-शिक्षित। सूरदास आदि अष्टछाप के महात्मा कवियो ने भगवान् श्रीकृष्ण के शृगारिक रूप का प्रत्यक्षीकरण कराया। इस प्रकार निर्गुण सन्तो द्वारा उत्पन्न नीरसता और म्लानता तो दूर हो चुकी थी किन्तु भगवान् के लोक-सग्रहकारी रूप का प्रकाश करके धर्म के सौन्दर्य का साक्षात्कार नही हुआ।"

धर्म के साथ ही उन्होने विविध दार्शनिक भावनाओ का भी अपने साहित्य मे वडा सुन्दर समन्वय किया है—

"यन्मायावशवर्ति विश्वमखिलं ब्रह्मादिदेवाऽसुरा:"

आदि पद मे वे अद्वैत भावना का प्रतिपादन कर रहे है तो—

ईश्वर अंश जीव अविनासी, चेतन अमल सहज सुख रासी।
सो माया बस भयऊ गुसाईं, बँध्यो कीर मरकट की नाईं।

आदि मे वे द्वैतवाद का समर्थन कर रहे है। इसीलिए शुक्ल जी ने लिखा है कि "इससे यह लक्षित होता है कि परमार्थ दृष्टि से—शुद्ध ज्ञान की दृष्टि से तो अद्वैत मत गोस्वामी जी को मान्य है। पर भक्ति के व्यावहारिक सिद्धान्त के अनुसार भेद करके चलना वे अच्छा समझते है। मनुष्य का परम पुरुषार्थ

वे मोक्ष को ही मानते हैं। वह माया के कारण बंधन मे पडा है। इसका यह मोह-बंधन छूटना बडा कठिन है। इसके छूटने के लिए विवेक-युत भक्ति की आवश्यकता बताते हुए वे कहते हैं कि—

"श्रुति सम्मत हरि-भक्ति पथ, संजुत विरति विवेक।
तेहि परिहरहिं विमोह बस .. .."

और इसी प्रकार—

'ज्ञानी प्रभुहि विशेष पिआरा'

आदि मे भी उन्होंने ज्ञानी की महत्ता स्पष्ट रूप से स्वीकार की है। वे वेद-शास्त्रो की आज्ञा व मर्यादा के पालन की बात पद-पद पर कहते है। अतः कहना होगा कि गोस्वामी जी की भक्ति रागात्मिका न होकर वैधी है। तुलसीदास केवल भक्त ही नही, लोकनायक भी थे, इसीलिए समाज-सुधार की प्रवृत्ति उनमें स्वाभाविक है। उन्होंने लोकमत और साधुमत के समन्वय की बात अनेक स्थानो पर कही है।

उनकी भक्ति दास्य या सेव्य-सेवक भाव को लिये हुए है। मानव का उद्धार भक्ति के द्वारा होता है और वह भक्ति तब तक प्राप्त नही हो सकती जब तक कि प्रभु राम के पदो मे अनन्य प्रेम न हो और यह राम-पद-प्रेम सत्संगति के द्वारा प्राप्त होता है। राम नाम का जप और मन की पवित्रता भी साधक के लिए आवश्यक है।

तुलसी का ध्यान समाज-निर्माण की ओर कितना अधिक था, इस सम्बन्ध मे शुक्ल जी का कथन है कि "जिस समाज से ज्ञान-सम्पन्न शास्त्रज्ञ विद्वानो, अन्याय और अत्याचार के दमन मे तत्पर वीरो, पारिवारिक कर्तव्यो का पालन करने वाले उच्चाशय व्यक्तियो, पति-परायण सतियो, पितृ-भक्ति के कारण अपना सुख-सर्वस्व त्यागने वाले सत्पुत्रो, स्वामी की सेवा मे मर-मिटने वाले सच्चे सेवको, प्रजा का पुत्रवत् पालन करने वाले शासक आदि के प्रति श्रद्धा और प्रेम का भाव उठ जायेगा उसका कल्याण कदापि नही हो सकता।"

इसलिए गोस्वामी जी कहते हैं कि—

जे न मित्र-दुख होहिं दुखारी, तिनहिं बिलोकत पातक भारी।

अपने कर्म-धर्म को छोडकर भगवे कपडे रग कर साधु बन जाने वाले साधुओ को फटकारते हुए उन्होने कहा कि—

नारि मुई गृह सम्पत्ति नासी, मूंड मुडाय भये संन्यासी।

इस प्रकार हम देखते है कि गोस्वामी जी की समन्वयवादमूलक सामाजिक भावना का उनके साहित्य मे सर्वाधिक महत्वपूर्ण स्थान है।

प्रश्न ३—गोस्वामी जी के काव्य-सौन्दर्य के सम्बन्ध में संक्षिप्त विचार व्यक्त कीजिए।

उत्तर—केवल समाज-निर्माण की भावनाओ के कारण ही नही, प्रत्युत उत्कृष्ट काव्य-सौन्दर्य की दृष्टि से भी गोस्वामी जी के साहित्य का स्थान हिन्दी-साहित्य मे सर्वश्रेष्ठ है। गोस्वामी जी के सिवा हिन्दी के अन्य सब कवि मानव जीवन की दो-एक वृत्तियो ही को लेकर चले है किन्तु गोस्वामी जी एक ऐसे कवि है जिनके काव्य मे भक्ति के साथ ही साथ शृगार, वीर, करुण, रौद्र, हास्य, भयानक, वीभत्स, अदभुत और शान्त आदि सभी रसो का यथोचित मात्रा मे बडा सुन्दर स्वाभाविक परिपाक हुआ है। जैसे कि—

कबहूं ससि मांगत आरि करै, कबहूं प्रतिबिम्ब निहारि डरै।
कबहूं करताल बजाइ के नाचत, मातु सबै मन मोद भरै॥

मे वात्सल्य रस की अवतारणा हुई है तो—

बावरी जो पै कलंक लग्यो, तो निसंक ह्वै काहे न अंक लगावती॥

मे शृगार भावना मुखरित हो रही है। इसी प्रकार—

"लागि-लागि आगि", भागि-भागि चले जहां तहां,
धीय को न माय, बाप पूत न संभारहीं।
छूटे बार, बसन उघारे, धूम धुंध अंध,
कहैं बारे-बूढ़े "बारि बारि" बार-बारहीं॥

मे भयानक रस की सुन्दर अवतारणा हुई है। वीभत्स रस के उदाहरण के लिए कवितावली का निम्न पद प्राय: उद्धृत किया जाता है।

ओझरी की झोरी कांधे, आंतनी की सेली बांधे,
मूंड़ के कमंडलु, खपर किए कोरि कै।
× × ×

सोनित सो सानि-सानि गूदा खात सतुआ से ।
प्रेत एक पियत बहोरि घोरि घोरि के ॥

इस प्रकार सभी रसो तथा उनके विभाव, अनुभाव, संचारी भाव आदि के अनेक मुँह-बोलते प्रसग तुलसी के साहित्य मे भरे पड़े हैं। मनोविज्ञान के तो तुलसी महान् पारखी थे। मन्थरा-कैकेयी सम्वाद, भरत आगमन के समय लक्ष्मण का क्रोध-आदि प्रसंगो मे गोस्वामी जी की यह मनोवैज्ञानिकता अत्यन्त मार्मिक रूप मे व्यक्त हुई है।

रस और भावो के सजीव वर्णन के अतिरिक्त जब हम प्रबन्धात्मकता की दृष्टि से गोस्वामी जी के रामचरित-मानस की परीक्षा करते हैं तो उस दृष्टि से भी हम उसे पूरा पाते हैं। मार्मिक स्थलो की पहिचान ही प्रबन्ध की सबसे बड़ी विशेषता है और गोस्वामी जी को मार्मिक स्थलों की पूरी-पूरी पहचान थी, इसमे कुछ सन्देह नहीं।

गोस्वामी जी ने भाव या विचार पक्ष के समान ही कलापक्ष मे भी अपनी समन्वयात्मक प्रवृत्ति का परिचय दिया है क्योंकि उन्होंने अपने समय की प्रचलित पूर्वी हिन्दी अर्थात् अवधी और पश्चिमी हिन्दी ब्रजभाषा इन दोनों काव्य-भाषाओ मे समान अधिकार के साथ काव्य-रचना की है। अवधी में उनका मानस और ब्रज मे गीतावली आदि रचनाएँ प्रसिद्ध ही हैं। इसके अतिरिक्त सस्कृत मे भी कुछ रचनाएँ मिलती हैं। गोस्वामी जी की भाषा प्रसगानुसार कही सस्कृतनिष्ठ हो जाती है तो कही ठेठ लोक-भाषा का रूप धारण कर लेती है।

गोस्वामी जी ने अपने समय मे प्रचलित—

१ वीरगाथा काल की छप्पय शैली, २ सूर आदि की गीत-पद्धति ३. गंग आदि की कवित्त, सवैया पद्धति ४. कबीर आदि की दोहा-पद्धति और ५. प्रेम-मार्गियो की दोहा-चौपाई आदि पद्धति इन पाँचो शैलियो में रचना की है।

गोस्वामी जी ने सभी प्रकार के शब्दालकार और अर्थालकारो का स्वाभाविक प्रयोग भी अपनी कविता में किया है—

सीता-हरन तात जनि, कहेउ पितु सन जाइ ।
जो मैं राम तो कुल सहित, कहहि दसानन आइ ॥

मे पर्य्यायोक्त अलकार है तो—

सोनित-छींट-छटान जटे तुलसी छिति सोहै महाछवि छूटी।
मानो मरक्कत-सैल बिसाल मे फैलि चली बर बीरबहूटी॥

मे उत्प्रेक्षा का सौंदर्य दर्शनीय है। इसी प्रकार—

सत हृदय नवनीत समाना। कहा कविन पै कहइ न जाना॥
निज परिताप द्रवै नवनीता। पर-दुख द्रवै सुसंत पुनीता॥

मे व्यतिरेक अलकार का सौन्दर्य दर्शनीय है। गोस्वामी जी ने कविता का सबसे उत्कृष्ट गुण सरलता माना है—

सरल कवित कीरति विमल जेहि आदरहिं सुजान।

इस प्रकार सक्षेप मे कह सकते हैं कि गोस्वामीजी कवि, भक्त, पडित, सुधारक, लोकनायक आदि सभी कुछ थे।

राष्ट्रपति डा० राजेन्द्रप्रसाद ने गोस्वामी जी के प्रति अपनी भाव-भरी श्रद्धाञ्जलि समर्पित करते हुए जो मार्मिक उद्गार व्यक्त किये थे वे अत्यन्त महत्वपूर्ण हैं। इस श्रद्धाजलि के कुछ अशो को उद्धृत करना गोस्वामी जी का महत्व प्रदर्शित करने के लिए अत्यन्त उपयोगी है। इसीलिए उसके कुछ अ श यहा दिये जाते है—

'तुलसी युग-प्रवंतक महाकवि और भक्त थे। कविता के क्षेत्र मे उनकी असाधारण प्रतिभा और छन्द-सौष्ठव ने जन-साधारण की भाषा का स्तर ऊँचा कर उसे एक विशेष महत्व प्रदान किया। उनके भक्ति-भाव ने, भगवान् राम के प्रति उनकी अनुपम श्रद्धा ने भारतीय समाज को ऐसे समय जागृत किया जबकि अधिकाश लोग अकर्मण्य और निराशावादी होते जा रहे थे। अपने भक्ति-भाव से उन्होंने उत्तर भारत के समस्त वातावरण को सुरभित और राममय बना दिया। रामचरित मानस ने करोडो व्यक्तियो के दिल मे भक्ति के पौधे को फिर से रोपा और तज्जन्य आस्था द्वारा समाज की विचारधारा तथा आचार-व्यवहार और विश्वास मे ऐसा मौलिक परिवर्तन हुआ कि हम उसे यदि समाज का कायाकल्प कहे तो अतिरञ्जन न होगा।

"यही कारण है कि साहित्य मे ही नही, इतिहास मे भी मानव-समाज मे

कवियों को इतना ऊँचा स्थान दिया गया है। विचारक होने के साथ-साथ कवि लोग अत्यधिक प्रभावशाली और प्रतापी होते हैं क्योंकि कवित्व की शक्ति उन्हें ऐसी क्षमता प्रदान करती है कि वे जनसाधारण के अधिक निकट न रहते हुए भी उनके जननायक बन जाते हैं। परिस्थितियों के रोचक निरूपण द्वारा और अपनी प्रतिभा तथा कल्पना के बल से जनता का मार्ग दर्शन कर कविगण आदि काल से तत्त्वदर्शी और युग-प्रवर्तक समझे जाते आये हैं। ऐसे युग-प्रवर्तक और तत्त्वदर्शियों में ही तुलसीदास जी की गणना की जाती है। इनकी रचनाओं से विशेष रूप से, रामचरितमानस से लाखों करोड़ों अनपढ़ व्यक्ति भी परिचित हैं। इन्होंने भक्ति और रामोपासना की जो सरिता बहाई उससे शिक्षित वर्ग ही लाभान्वित नहीं हुआ, बल्कि अशिक्षित ग्रामीण लोग भी कृत-कृत्य हुए। इस दृष्टि से तुलसीदास जी भारत के सफल लोक-कवि हैं।

"एक और दृष्टि से भी तुलसीदास जी को हम सच्चा लोकनायक कह सकते हैं। यदि ऐसे प्रमुख ग्रन्थों की सूची तैयार की जाय जिनसे पीढ़ी-दर पीढ़ी लाखों व्यक्ति प्रभावित हुए हैं और जिन्होंने जनता के दृष्टिकोण, विचार, तथा विश्वास और रहन-सहन पर स्थायी छाप लगाई है, निश्चय ही उन थोड़े से ग्रन्थों में तुलसीकृत रामचरित मानस की भी गणना करनी होगी। विगत तीन सौ से अधिक वर्षों से रामचरितमानस की कथा तथा कविता भारत के जनसाधारण के जीवन का अंग बन चुकी है। यद्यपि रामायण की मूलकथा वाल्मीकि ने लिखी थी और उसी के आधार पर उत्तर भारत में तुलसीदास ने और दक्षिण में तामिल के महाकवि कम्बन ने उसे जनसाधारण की भाषा में रूपांतरित किया, किन्तु रामचरितमानस की चौपाइयों और दोहों में व्यक्त की गई कथा को जो व्यापक मान्यता मिली उसके कारण यह कहा जा सकता है कि शायद तुलसीदास वाल्मीकि से आगे बढ़ गये हैं।"

स्मृति-संकेत

१. गोस्वामी जी का जन्म सम्वत् १५५४ में हुआ था यद्यपि कुछ विद्वान् १५८३ तथा १५८९ में भी उनका जन्म मानते हैं। २. उनका जन्म राजापुर

मे हुआ या सोरों मे यह विवादास्पद है। ३. उनकी माता का नाम हुलसी, पिता का नाम आत्माराम दुबे था। ४ वे माता के द्वारा बचपन मे ही त्याग दिये गये और विवाहित होने पर पत्नी के कटाक्ष से गृह त्याग कर विरक्त हो गये। ५. गोस्वामी जी ने अपने समय के साहित्य मे उपलब्ध निर्गुण उपासना-परक वेद-शास्त्रो के खण्डन की प्रवृत्तियो, शृंगारिक भावना तथा शैव-वैष्णवों के विरोध आदि सभी प्रकार की समाज-विघातक प्रवृत्तियों का बड़ी दृढ़ता से खण्डन किया ६. समन्वयवाद ही उनके काव्य की विशेषता है। ७ शैव और वैष्णव, ज्ञान और भक्ति, कर्म और उपासना आदि विविध भावनाओं तथा नौ रसो का एकत्र समन्वय तुलसी के साहित्य में हुआ है। ८. तुलसी की भक्ति वैधी भक्ति है। वे ज्ञान और प्रेम दोनो के महत्व को समान रूप से स्वीकार करते हैं। ९. यद्यपि भक्ति ही उनके जीवन का एकमात्र लक्ष्य है फिर भी समाज-कल्याण-भावना को भी वे ओझल नहीं होने देते। १०. उनके काव्य मे प्रबन्धात्मकता का भी पूरा निर्वाह हुआ है। ११. उन्होंने सभी शैलियों तथा भाषाओं मे रचना की है। १२. उनका अलकार-विधान भी बड़ा सुन्दर है और वे काव्य मे भी जीवन ही के समान सरलता के पक्ष-पाती हैं।

मीराबाई

प्रश्न १—मीराबाई के जीवन-वृत्त के सम्बन्ध मे विविध विद्वानो ने जो मत दिए हैं, उनका संक्षेप में परिचय देते हुए उनके जीवन की रूपरेखा प्रस्तुत कीजिए।

उत्तर—मीराबाई का जीवनवृत्त भी सर्वथा निश्चित रूप से निर्धारित नही हो पाया है। आज से ६०-७० वर्ष पूर्व कर्नल टाड ने अपने राजस्थान के इतिहास मे मीराबाई के सम्बन्ध मे लिखा था कि "अपने पिता की गद्दी पर सन् १४४१ मे बैठने वाले राणा कुम्भा ने मारवाड के मेडता कुल की कन्या मीराबाई से विवाह किया जो अपने समय मे सुन्दरता और सच्चरित्रता के लिए

अत्यन्त प्रसिद्ध थी।" किन्तु आज कर्नल टाड की यह धारणा सर्वथा भ्रामक सिद्ध हो चुकी है। राजस्थान के प्रसिद्ध इतिहासज्ञ विद्वान् रायबहादुर गौरी-शंकर हीराचन्द ओझा के अनुसार आचार्य शुक्ल जी ने भी लिखा है कि मीरा-बाई मेड़तिया के राठौर रत्नसेन की पुत्री, राव दूदाजी की पौत्री और जोधपुर के बसाने वाले प्रसिद्ध राव जोधा जी की प्रपौत्री थी। इनका जन्म सम्वत् १५७३ मे चौकडी-नामक ग्राम मे हुआ था और विवाह उदयपुर के महाराणा भोजराज के साथ हुआ था। इधर श्री परशुराम चतुर्वेदी ने उनका जन्म सम्वत् १५७३ न मानकर सम्वत् १५५५ के लगभग माना है।

मीरा को बचपन मे ही मातृ-वियोग सहना पड़ा और वह अपने दादा राव दूदा जी के लाड-प्यार मे उन्हीं के पास पली। अपने पितामह की भक्ति-भावना का प्रभाव मीरा के सुकोमल बालक हृदय पर भी बहुत गहरा पड़ा। मीरा का विवाह चित्तौड के महाराजा सांगा के ज्येष्ठ पुत्र भोजराज के साथ हुआ किन्तु भोजराज की विवाह के थोडे दिनो बाद ही मृत्यु हो गई अब तो मीरा ने अपना मन सब सासारिक धन्धो की ओर से हटाकर अपने बाल-सखा गिरिधर गोपाल के चरणो मे लगा दिया। वह अब त अहर्निश श्रीकृष्ण के चरणो मे लीन रहने लगी। कीर्तन करते-करते वह अपनी सुध-बुध भी खो बैठती। अब उसे लोक-लाज या कुल-मर्यादा की भी कुछ परवाह न रही। मीरा को इस प्रकार मन्दिरों में जाकर सर्व-साधारण के समक्ष नाचते-गाते और कीर्तन करते देख ससुराल वालो को बहुत बुरा लगा। उन्होंने मीरा को अपने मार्ग से हटाने के लिए अनेक प्रकार की यातनाएँ दी। सर्प और विष के द्वारा उसके प्राणान्त का प्रयत्न किया, पर सब व्यर्थ।

अन्त मे वह चित्तौड़ छोडकर तीर्थ-यात्रा के लिए निकल पडी। पहले वह वृन्दावन और वृन्दावन से द्वारिका चली गई। यहाँ पर चित्तौड और मेड़ता के लोग आ-आकर उन्हें वापस चलने का आग्रह करने लगे। अन्त मे एक दिन वह रणछोड जी से आज्ञा लेने गई, पर वहीं उनके विग्रह मे समा गई।

प्रश्न —मीरा की रचनाओं का परिचय देते हुए उसके काव्य की महत्ता पर व्यापक प्रकाश डालिए।

उत्तर—मीरावाई की निम्नलिखित सात रचनाएँ कही जाती है—

१ नरसी जी रो मायरो, २. गीत गोविन्द की टीका, ३. राग गोविन्द, ४. सोरठ के पद, ५. मीरावाई की मलार ६. गर्वा गीत और फुटकर पद ।

मीरा चूँकि प्रभु-प्रेम की दीवानी थी और वह तन्मय होकर प्रेम के गीत गाया करती थी, अत मीरा के फुटकर पद ही उनकी एकमात्र रचना मानी जानी चाहिए । श्रीकृष्ण के प्रति अपने भक्ति-भाव को ही मीरा ने इन गीतो की तान से मुखरित किया है । मीरा की भक्ति-पद्धति मे कही योगियो की योग-साधना, तो कही कृष्ण-भक्तो का माधुर्य-भाव, तो कही असामान्य प्रेम की पीडा की भावना व्यक्त हो रही है ।

> आली रे मेरे नैनाँ वान पड़ी ।
> चित चढ़ी मेरे माधुरी मूरति, उर विच आन अड़ी ।
> कव की ठाडी थ निहारूँ, अपने भवन खड़ी ॥…

आदि मे माधुर्य भाव व्यक्त हो रहा है तो—

> त्रिकुटी महल मे बना है झरोखा तहाँ से झाँकी लगाऊँ री ।
> सुन्न महल मे सुरत जमाऊँ सुख की सेज विछाऊँ री ॥

आदि मे योगियो की योग-साधना की पद्धति का सकेत मिल रहा है । बात तो यह है कि वह तो जिस किसी भी प्रकार उसका प्रियतम रीझ जाए वे सब वेश और मार्ग अपनाने को प्रस्तुत थी—

> जीजी भेस हमारे साहिब रीझै सोइ-सोइ भेष धरूँगी ।

इसीलिए कभी-कभी वह निर्गुणी सन्तो की भाँति यह भी कह देती हैं कि—

> सतगुरु भेद वताइया, खोली भरम किवारी हो ।
> सब घट दीसै आतमा, सबहीं सूँ न्यारी हो ।
> दीपक जोऊँ ग्यान का, चढ़ूँ अगम अटारी हो ।

किन्तु चाहे निर्गुण सन्तों को साधना-प्रणाली हो या योगियो का योग-मार्ग या कृष्ण-भक्तो का माधुर्य भाव, वह सभी मार्गो का समन्वय और

उपयोग अपने प्रियतम को रिझाने के लिए ही करती थी। इसलिए वह न तो योगिन थी और न साधिका। वह तो अपने प्रियतम के प्रेम की मतवाली मीरा थी। उसके आत्म-समर्पणपरक गीतों में जो तन्मयता है वह भला—

सुरत निरत का दिवला संजो ले मनसा की कर ले बाती।
प्रेम हरी का तेल मंगा ले, जग रह्या दिन ते राती॥

आदि पदों में कहाँ—प्रेम की पीड़ा ही उनके पदों में प्रमुखतया प्रकट हो रही है—

पानां ज्यूं पीली परी रे, लोग कहैं पिंड रोग।
छाने लांघण मैं कियो रे, राम मिलण के जोग॥
बावल बैद बुलाइया रे, पकड़ दिखाइ मेरी बांह।
मूरख बैद मरम नहिं जाणैं, कसक करेजा मांह॥

आदि पदों में यह प्रेम की पीड़ा प्रत्यक्षर में व्याप्त हो रही है। अतः सिद्ध होता है कि मीरा निर्गुण साधिका नहीं, प्रत्युत प्रेम की पुजारिन ही था।

इसी तन्मयता के कारण मीरा के पदों में कहीं-कहीं रहस्यात्मकता के भी दर्शन हो जाते हैं—

मैं गिरधर रंगराती सैंया, मैं०॥
पंचरंग चोला पहर सखी मैं, झिरमिट खेलन जाती।
ओह झिरमिट माँ मिल्यो सांवरो, खोल मिली तन गाती॥
जिनका पिया परदेश बसत है, लिख-लिख भेजें पाती।
मेरा पिया मेरे हीय बसत है, ना कहुँ आती न जाती॥

इस पद के सामान्य अर्थ के सिवा यह रहस्यवादपरक अर्थ भी बताया जाता है कि "कर्मानुसार प्राप्त मानव-शरीर का आवरण धारण किए हुए जीवात्मा-रूप में वे अपना जीवन-यापन कर रही थी कि किसी समय उन्हें, इस दैनिक व्यवहार के अन्तर्गत ही, परमात्मा के साथ अपने तादात्म्य का बोध हो गया और वे उस भौतिक आवरण की भावना का परित्याग कर उसके साथ एकात्म हो गईं। तब से उन्हें 'सब घट' में आत्मा प्रत्यक्ष होने लगा।"

किन्तु मीरा के पदो में ऐसी रहस्य भावना का दर्शन क्वाचित्क ही होता है। वास्तव मे तो मीरा की भक्ति-भावना शान्त, दास्य, सख्य, या वात्सल्य आदि की भक्ति-भावना से सर्वथा भिन्न माधुर्य-भाव लिये हुए है, क्योकि शान्त-भाव के अनुसार भक्त भगवान् के सगुण स्वरूप का चिन्तन किया करता है, दास्य के अनुसार उनके ऐश्वर्य पर रीझ कर उनका कीर्तन करता है, सख्य के अनुसार भगवान् को किशोरावस्था का मानकर उनके साथ अपना स्वच्छन्द सम्बन्ध अनुभव करने लगता है और वात्सल्य के अनुसार भक्त प्रभु के शिशु-रूप पर मुग्ध हो उनकी बाल-लीला के गायन मे मस्त हो जाता है। पर माधुर्य-भाव मे लीन भक्त की आत्मा प्रभु को अपना प्रियतम मानकर उनके साथ अपनी आत्मीयता का नाता जोड लेती है।

स्मरण रहे कि शृंगार रस और माधुर्य-भाव मे बाहरी दृष्टि से समानता होते हुए भी वास्तव मे बहुत अन्तर है; क्योकि शृंगार रस मे लौकिकता अथवा काम-वासना या विषयासक्ति की भावना रहती है, किन्तु माधुर्य भाव मे कोई लौकिक प्रेम न होने से उसमे ऐन्द्रिय विकारो का लेश भी नही रहता। काम-वासना या विषयासक्ति की भावना तो वहा फटक ही नही सकती।

माधुर्य भाव की अनन्य उपासिका होने के कारण मीरा की पदावली मे शृंगार के सयोग और वियोग दोनो पक्षो का बडा सुन्दर प्रतिफलन हुआ है—

मेरो तो गिरधर गोपाल, दूसरो न कोई।
जाके सिर मोर मुकुट मेरो पति सोई॥

आदि पदो मे उन्हे स्पष्ट रूप मे अपना पति स्वीकार करते हुए वह उनके विरह मे कैसे व्याकुल हो रही है, इसका परिचय वह अनेक पदो मे देती हुई पाती है।—

प्यारे दरसन दीजो आय, तुम बिन रह्यो न जाय।
जल बिन कँवल चंद बिन रजनी, ऐसे तुम देख्या बिन सजनी।
आकुल-व्याकुल फिरूँ रैन-दिन विरह कलेजे खाय॥

भाव-पक्ष—मीरा के काव्य के भाव-पक्ष की दृष्टि से विचार करने पर ज्ञात होता है कि मीरा के शृंगार के आलम्बन साक्षात् श्रीकृष्ण है। उनका

मोर-मुकुट, वैजयन्ती माला, वशी की मधुर ध्वनि आदि इस शृंगार की उद्दीपन सामग्री है और जब इस प्रकार आलम्बन और उद्दीपन भाव के द्वारा मीरा का हृदयस्थ रति स्थायी भाव उद्बुद्ध हो जाता है तो उसके अनुभाव और सचारी भाव-आदि के दर्शन भी हमे विविध पदों मे होने लगते हैं, जैसे कि—

म्हाने चाकर राखो जी, म्हाने चाकर राखो जी।
चाकर रहू सूँ बाग लगासूँ, नित उठ दरसन पासूँ॥
× × ×
मैं तो गिरधर के घर जाऊँ।
गिरधर म्हारो साँचो प्रीतम, देखत रूप लुभाऊँ॥

किन्तु प्रेम की परीक्षा तो विरह-भावना मे ही होती है और मीरा के काव्य मे भी इस विरह-भावना का प्राबल्य है। मीरा की विरह भावना की सबसे बडी विशेषता यह है कि उसका आन्तरिक पक्ष अत्यन्त पुष्ट है जबकि शारीरिक ताप आदि का सूचक बाह्य पक्ष सर्वथा गौण।

इस प्रकार मीरा के भाव पक्ष पर विचार करते हुए स्पष्ट लक्षित होता है कि मीरा के माधुर्य-भाव मे शृंगार के सयोग और वियोग दोनो पक्षो की सुन्दर अभिव्यक्ति हुई है।

कला-पक्ष—मीरा प्रभु-प्रेम की तन्मय गायिका थी। वह कोई कवयित्री भी है इसका तो उसे भान भी न था। अत. स्वभावत. उसके पदों मे भाव-पक्ष का ही प्राधान्य है, पर कला-पक्ष भी उसका शिथिल नही। यत्र-तत्र दूध मे चीनी की भाँति अलंकारो का स्वाभाविक प्रयोग भी मीरा के काव्य में हुआ है—

अँसुवन जल सींच-सींच, प्रेम बेलि बोई॥

मे परम्परित रूपक अलंकार है तो—

पानाँ ज्यूँ पीली परी रे,

मे उपमा का सौन्दर्य निखर रहा है।

माँस गले गल छीजिया रे, करक रह्या गल आहि।
आँगलियारो मूँदड़ो, म्हारे आवण लागो बाँहि॥

मे अत्युक्ति है तो—

बिन करताल पखावज बाजे

में विभावना अलकार है।

भाषा और शैली की दृष्टि से विचार करने पर प्रतीत होता है कि मीरा की पदावली मे व्रज, राजस्थानी और गुजराती तीनो भाषाओ की त्रिवेणी बह रही है। मीरा के मधुर कण्ठ से निसृत पावन प्रेम की मधुर-मन्जुल तान से प्रभु-प्रेम के पुजारी भक्तो तथा सहृदय रसिकों के अन्तरतम निरन्तर मुखरित होते आ रहे है और सदा होते रहेंगे, इसमे कुछ सन्देह नही।

स्मृति-संकेत

१ मीरा जोधपुर के बसानेवाले राव जोधाजी की प्रपौत्री, दूदाजी की पौत्री और रत्नसिंह की पुत्री थी। २. इनका जन्म सवत् १५७३ मे चौकड़ी ग्राम मे हुआ था। ३. इनका विवाह महाराणा सांगा के पुत्र भोजराज से हुआ था। ४. छोटी अवस्था में ही विधवा हो जाने पर अपने प्रभु प्रियतम श्रीकृष्ण के प्रेम मे मतवाली होकर उन्हीं के गीत गाने लगी। ५. इनसे नाराज होकर इनके देवर ने इन्हें बहुत कष्ट दिये जिससे दुःखी हो यह चित्तौड़ छोड़कर तीर्थयात्रा को निकल पड़ी। ६. मथुरा आदि होती हुई यह द्वारिका पहुँची और कुछ वर्षो पश्चात् वहीं रणछोड जी की मूर्ति मे समा गई। ७. नरसी जी रो मायरो, गीत गोविंद की टीका, राग गोविंद, सोरठ के पद, मीराबाई का मलार, गर्बा गीत और फुटकर पद यह मीराबाई की सात रचनाएँ कही जाती हैं पर वास्तव मे फुटकर पद ही उनकी प्रामाणिक रचना हैं। ८. अपने प्रियतम के प्रेम की अनेक रूपों मे अभिव्यक्ति ही उनके पदो का एकमात्र प्रतिपाद्य विषय है। ९. उनके पदों मे निर्गुण, सगुण, योग-मार्ग आदि सभी प्रकार की भक्ति पद्धति का समन्वय हुआ है, पर उनकी भक्ति मे माधुर्य भाव का ही प्राधान्य है। १०. भावपक्ष की दृष्टि से उसमें शृंगार के संयोग और वियोग दोनों पक्षो का प्राधान्य है। ११. कलापक्ष की दृष्टि से उनमें अनेक अलंकारों का स्वाभाविक प्रयोग हुआ है १२. मीरा के पदों में राजस्थानी, व्रज और गुजराती तीनों भाषाओं का प्रयोग हुआ है।

केशवदास

प्रश्न १—केशव के जीवन का संक्षिप्त परिचय दीजिए।

उत्तर—केशव का जन्म सम्वत् १६१२ और देहान्त सम्वत् १६७४ के लगभग हुआ। इनके वंश मे पाण्डित्य प्रारम्भ से चला आता था। इनके बड़े भाई बलभद्र मिश्र भी अच्छे कवि थे। ओरछा नरेश महाराज रामसिंह और इन्द्रजीतसिंह के यह गुरु तथा दरबारी कवि थे। यह संस्कृत के भी अच्छे विद्वान् थे। केशव को हिंदी का प्रथम आचार्य और रीतिकाल का प्रवर्तक कहना चाहिए, यद्यपि शुक्ल जी ने रीतिकाल का प्रारम्भ इनसे ५० वर्ष बाद से माना है।

प्रश्न २—केशव की रचनाओं का संक्षिप्त परिचय दीजिए।

उत्तर—केशव के लिखे हुए ये सात ग्रन्थ उपलब्ध हैं—

१ कविप्रिया, २ रसिकप्रिया, ३ रामचन्द्रिका, ४ वीरसिंह देव चरित ५ विज्ञान गीता, ६ रत्न बावनी और ७ जहाँगीर जस चन्द्रिका।

कविप्रिया—इन्द्रजीतसिंह के दरबार की नर्तकी प्रवीण राय को काव्य शिक्षा देने के लिए इस ग्रन्थ की रचना की गई थी। इसमे अलंकार आदि काव्यांगो का विवेचन किया गया है। इसमे सोलह प्रभाव हैं जो कविता कामिनी के सोलह शृंगारो के प्रतिनिधि हैं। स्वल्पमति बालक-बालिकाओं को काव्यांगों की शिक्षा देने के लिए ही इस ग्रन्थ की रचना हुई है—

> समझै बाला बालकहु बर्णन-पंथ अगाध।
> कविप्रिया केशव करी, छमियो कवि अपराध॥

रसिक प्रिया—इस रीति के द्वारा स्वार्थ और परमार्थ की सिद्धि ही इस ग्रन्थ का उद्देश्य है—

> बाढ़ै रति मति अति परै, जानै सब रस-रीति।
> स्वारथ परमारथ लहै, रसिक प्रिया की प्रीति॥

इसमे भी १६ प्रभाव हैं जिसमें से प्रथम प्रभाव मे प्रच्छन्न प्रकाश संयोग-वियोग वर्णन, दूसरे मे अनुकूल, दक्ष, शठ, धृष्ट, चार प्रकार के नायकों का वर्णन, तीसरे में स्वकीया-परकीया भेद-वर्णन, चतुर्थ मे चतुर्विध-दर्शन-वर्णन पंचम में यथाकृष्ण चेष्टा-दर्शन-मिलन वर्णन और स्थान वर्णन है। छठे में हाव-भाव वर्णन, सातवें मे अष्टविध नायिका सम्भोग शृंगार-वर्णन और इसके बाद के प्रकाशो में विप्रलम्भ शृंगार वर्णन, मान-वर्णन, मान-मोचन वर्णन, प्रवास-

वर्णन, नवरस वर्णन, कवित्व वृत्ति वर्णन, रस-अनरस वर्णन आदि विषयो का प्रतिपादन हुआ है। इन दोनो की भापा सुन्दर और सरस है। जहा-जहा कवि की स्वतन्त्र अभिव्यक्ति है वहा-वहाँ वह सर्वथा सफल हुआ है।

वीरसिंह देवचरित, रत्न बावनी और जहाँगीर जस चन्द्रिका यह तीनो चरित काव्य हैं। विज्ञानगीता मे कवि की वैराग्य भावना व्यक्त हुई है।

प्रश्न ३—रामचन्द्रिका की गुण-दोषविवेचनात्मक संक्षिप्त किन्तु सार-गर्भित समालोचना कीजिए।

उत्तर—रामचन्द्रिका—यही कवि की प्रसिद्धि का एकमात्र आधार ग्रन्थ है। जैसा कि इसके नाम से स्पष्ट है, इसमे भगवान् राम की कथा कही गई है। ग्रन्थ का मूलाधार प्रसन्नराघव और हनुमन्नाटक हैं। इसके अतिरिक्त वाल्मीकीय रामायण को भी अनेकत्र आदर्श ग्रन्थ के रूप मे स्वीकार किया गया है।

रामचन्द्रिका मे प्रवन्ध-काव्य की भाँति राम का सम्पूर्ण चरित न देकर नाटक की भाति प्रमुख स्थलो को ही चुन लिया गया है। जैसे कि बालकाड मे राम जन्मादि की कुछ चर्चा न कर विश्वामित्र के अयोध्या-आगमन से कथा का प्रारम्भ किया गया है। इसी प्रकार मन्थरा-कैकेयी सम्वाद आदि अनेक प्रसग भी छोड दिए गये हैं।

हनुमन्नाटक तथा प्रसन्न-राघव के अनेक श्लोको का इसमे अनुवाद मिल जाता है। जैसे कि—

सब जात फटी दुख की दुपटी कपटी न रहै जहँ एक घटी॥

यह पद्य हनुमन्नाटक के—

एषा पचवटी रघूत्तमकुटी यत्रास्ति पंचावटी।

आदि पद्य का ही अनुवाद है।

इसमे चालीस प्रकाशो मे रामचरित कहा गया है।

रामचन्द्रिका मे कथा-क्रम के निर्वाह मे प्रायः सर्वत्र शैथिल्य दिखाई देता है। कही आवश्यक प्रसग छोड दिये गये हैं तो कही सनाढ्योत्पत्ति वर्णन जैसे अनावश्यक प्रसग भी विस्तार से स्थान पा गये हैं।

कथानक मे सम्बन्ध-निर्वाह की ओर उन्होने जरा भी ध्यान नही दिया। वास्तव मे वे सस्कृत के पूर्वोक्त दोनो नाटको से बुरी तरह से प्रभावित थे। इसीलिए वे उन्ही की परम्परा पर अधिक चले है।

केशव ने वास्तव मे अनेक छन्दो के उदाहरणो के रूप मे ही रामचन्द्रिका

का निर्माण किया है। यही कारण है कि एक अक्षर से लेकर २६ अक्षरों तक के सभी छन्द प्रयुक्त हो गये हैं। विविध २७ छन्दों में तो सरद् आदि का ही वर्णन हुआ है। इस सम्बन्ध में केशव ने स्वयं भी कह दिया है कि—

जागत जाकी ज्योति जग, एक रूप स्वच्छन्द।
रामचन्द्र की चन्द्रिका, वर्णत हौं बहु छन्द॥

वास्तव में केशव का मन वस्तु-वर्णन में जितना लगता है उतना कथा-वर्णन में नहीं। इसीलिए शुक्ल जी ने केशव के लिए लिखा है कि "यह समझ रखना चाहिए कि केशव उक्ति-वैचित्र्य और शब्द-क्रीड़ा के प्रेमी थे। जीवन के नाना गम्भीर और मार्मिक पक्षों पर उनकी दृष्टि नहीं थी।"

किधौं मुनिसाप हत किधौं ब्रह्म दोषरत,
किधौं सिद्धियुत सिद्ध परम विरत हौ।
किधौं कोउ ठग हौ ठगौरी लीन्हे किधौं तुम,
हर हरि श्री हे सिवा चाहत फिरत हौ॥

आदि पदों में राम को मुनिशाप हत और ब्रह्मदोष रत कहकर अनुपयुक्तता का ही परिचय दिया है।

केशव राजदरबारी प्राणी थे। अतः उन्होंने जहाँ कूटनीति का वर्णन किया है वहाँ वे सर्वथा सफल हुए हैं। जैसे कि अंगद-रावण-संवाद में इन दोनों के प्रश्नोत्तर बड़े ही स्वाभाविक हैं। रावण का अंगद को समझाना तो सर्वथा नीति-संगत है कि—

तो से सपूतहिं जाय के बालि अपूतन की पदवी पगु धारै।
अंगद संग लै मेरो सबै दल आजुहि क्यों न हतै बपु मारै॥

चरित्र-चित्रण की दृष्टि से विचार करने पर हम देखते हैं कि प्रबन्ध-शैथिल्य के कारण चरित्रों का विकास भी यथोचित ढंग से नहीं हुआ है। मन्थरा की अवतारणा न होने से कैकेयी का चरित्र अस्वाभाविक हो गया। राम को वन जाने के लिए किसी ने कहा ही नहीं कि वे वन के लिए चल पड़ते हैं—

उठि चले विपिन कहँ सुनत राम,
तजि तात मात तिय बन्धु धाम।

इसी प्रकार राम ने वन में अकारण ही विराध को मार डाला, यह भी कोई राम के चरित्र के अनुरूप बात नहीं हुई। यहाँ तक कि केशव के राम

भी मर्यादापुरुषोत्तम न होकर उग्र, क्रोधी, उतावले, अशात, व्यग्र और शृ गारी मनोवृत्ति के है। कौशल्या मे भी यथोचित गम्भीरता के दर्शन नही होते। वह भी राम वन-गमन की बात सुनते ही कहने लगती है कि—

अवधपुरी महँ गाज परै।

केशव के सभी पात्रो का व्यक्तित्व दुहरा है। एक उनका अपना और दूसरा कवि द्वारा आरोपित्र। और इन दोनो मे परस्पर कोई सामञ्जस्य दिखाई नही देता।

प्रकृति-चित्रण की दृष्टि से विचार करने पर भी हमको केशव मे अनेक त्रुटिया लक्षित होती हैं। ऐसा लगता है कि उनके हृदय का प्रकृति के प्रति कोई स्वाभाविक मेल नही। उनकी प्राकृतिक दृश्यो की योजना स्वानुभूत न होकर परम्परायुक्त और रूढिबद्ध है।

पचवटी जैसे प्राकृतिक सौन्दर्यसम्पन्न स्थान का चित्रण करते हुए भी वे केवल श्लेषालंकार के द्वारा किस प्रकार शब्दो के खिलवाड मे पड जाते हैं, देखिए—

सब जात फटी दुख की दुपटी कपटी न रहे जहँ एक घटी।
निघटी रुचि मीचु घटीहूँ घटी जगजीव जतीन की छूटी तटी॥
अघ ओघ की बेरी कटी विकटी निकटी प्रकटी गुरुज्ञान गटी।
चहु ओरन नाचति मुक्ति नटी गुन धूरजटी वन पचवटी॥

इससे स्पष्ट सिद्ध होता है कि प्रकृति के सौन्दर्य का साक्षात्कार करने के लिए जिस सहृदयता की आवश्यकता है वह उन्हे प्राप्त न थी। नदी, पर्वत, समुद्र, षड्ऋतु वर्णन, बारहमासा, प्रभात, सध्या आदि प्राकृतिक दृश्यो के चित्र तो उन्होने अकित किये हैं पर इन सब मे वही रूढिबद्धता या शब्दो की खिलवाड के सिवा और कोई बात दिखाई नही देती। जैसे कि—

बेर भयानक सी अति लगै। अर्क-समूह जहाँ जगमगै॥
पाडव की प्रतिमा सम लेखो। अर्जुन भीम महामति देखो॥

यहा भी अर्क और अर्जुन आदि श्लिष्ट शब्दो के साम्य के आधार पर दडक वन को पाडवो के समान बताया गया है। उधर गोदावरी के वर्णन मे भी कवि विरोधाभास का चमत्कार दिखाता हुआ कहता है कि—

विषमय यह गोदावरी, अमृतन के फल देति।
केसव जीवन-हार कै, दुख असेष हर लेति॥

यही स्थिति सरयू आदि नदियों के वर्णन की है। इसी प्रकार सूर्योदय के वर्णन में—

परिपूरन सिन्दूर पूर कैधो मंगल घट।
किधौं सक्र को छत्र मढ्यो मानिक मयूख पट॥

इन पंक्तियों में पूरी सहृदयता दिखाकर भी जब यह कह देता है कि—

कै सोनित कलित कपाल यह किल कापालिक काल को।

तो अपनी असहृदयता को ही प्रकट करता है। पर कहीं-कहीं उनके चित्र बड़े मार्मिक बने हैं। जैसे कि—

रुचि चपला मिलि मेघ चपल चमकत चहुँ ओरन।
मन भावन कहँ भेंटि भूमि कूजत मिस मोरन॥

केशव अलंकारवादी कवि थे, यह सभी जानते हैं किन्तु उन्हें इस बात का भी ध्यान था कि अत्यधिक अलंकारों के प्रयोग से सौन्दर्य बिगड़ जाता है। इसीलिए वे कहते हैं कि—

काहे को सिंगारि के बिगारति है मेरी आली।
तेरे अंग बिना ही सिंगार के सिंगारे हैं॥

इसीलिए जहाँ उन्होंने अलंकारों का सोच-समझ कर प्रयोग किया है वहाँ वह भावोत्कर्ष में पूरे सहायक हुए हैं। पर, जहाँ केवल चमत्कार-प्रदर्शन के लिए अलंकारों का प्रयोग करते हैं तो वे बड़े अस्वाभाविक लगते हैं। जैसे कि, चिता में बैठी हुई सीता को देखकर यह कल्पनाएँ अस्वाभाविक ही हैं—

महादेव के नेत्र की पुत्तिका सी,
कि संग्राम की भूमि में चंडिका सी।
मनों रत्न सिंहासनस्था सची है,
किधौं रागनी राग पूरे रची है।

जैसा कि पहले कहा गया है, केशव दरबारी कवि थे, इसलिए राजसी ठाठ-बाट, राजोचित मर्यादा और सम्वादों के वर्णन में केशव पर्याप्त सफल हुए हैं।

केशव को कठिन काव्य का प्रेत कहा जाता है, परन्तु उनकी भाषा वैसी क्लिष्ट नहीं है, जैसी कि समझी जाती है। केशव की भाषा में सरलता, स्वच्छता, अर्थ-गाम्भीर्य आदि भी यथा-स्थान उपलब्ध होते हैं। जैसे कि—

कहि केशव याचक के अरि चंपक शोक अशोक भये हरि कै।
लखि केतक केतकि जाति गुलाब ते तीछन जानि तजे डरि कै।।
सुनि साधु तुम्हें हम बूझन आए रहे मन मौन कहा धरि कै।
सिय को कछु सोध कहौ करुनामय हे करुणा करुणा करि कै।।

केशव की भाषा सम्बन्धी सरलता और सरसता का यह एक सुन्दर उदाहरण है।

आजु यासो हँसी खेलि बोलि-चालि लेहु लाल,
कालिह एक बाल ल्याऊं काम की कुमारी।
× × ×
केसव केसनि अस करी जस अरिहू न कराँहि।
चंद्र बदनि मृग लोचनी बाबा कहि कहि जाँहि।।

आदि पद्य उनकी रुचि के परिचायक हैं। इनसे स्पष्ट होता है कि केशव शृंगारिक कवि थे, भक्त नही। रामचरित का तो उन्होंने लगे हाथ यो ही वर्णन कर दिया था।

केशव के सम्बन्ध मे शुक्ल जी की यह सम्मति ठीक ही है कि—

"केशव की रचना मे सूर, तुलसी आदि की-सी सरलता और तन्मयता चाहे न हो पर काव्यागो का विस्तृत परिचय कराकर उन्होने आगे के लिए मार्ग खोला।"

श्री चन्द्रवली पाण्डेय के इस कथन मे भी बहुत कुछ सार है कि केशव व्यक्ति के नही जाति के कवि हैं। उनकी रचना मे व्यष्टि का विलास नही, समष्टि का विधान है।

स्मृति-संकेत

१. केशव सस्कृत के विद्वान्, सनाढ्य ब्राह्मण थे। इनका जन्म सम्वत् १६१२ मे और मृत्यु सम्वत् १६७४ में हुई। २ यह ओरछा नरेश इन्द्रजीत-सिह के आश्रय में रहते थे। ३. इन्होने हिन्दी में सर्वप्रथम लक्षण ग्रन्थों की परम्परा का प्रवर्तन किया। ४. यह अलकार चमत्कारवादी कवि थे। ५. इनके लिखे हुए सात ग्रन्थ हैं किन्तु इनकी प्रसिद्धि कविप्रिया, रसिकप्रिया और रामचन्द्रिका के कारण है। ६. कविप्रिया मे अलंकारादि काव्यांगो का और रसिकप्रिया में रस आदि का वर्णन है। ७. रामचन्द्रिका में राम-कथा कही गई है। ८. सस्कृत के प्रसन्नराघव आदि तीनों नाटक रामचन्द्रिका के आदर्श हैं। ९. प्रबन्ध शैथिल्य, चारित्रिक विकास का अभाव, श्लेष-आदि अलंकारों का

अनावश्यक प्रयोग, रुचिविरुद्ध प्रकृति-चित्रण-आदि केशव की रामचन्द्रिका में अनेक दोष बताये जाते हैं। १०. इनके सम्वाद उत्कृष्ट हैं यह एक गुण भी है। ११. केशव को कठिन काव्य का प्रेत कहा जाता है पर उनकी भाषा सर्वत्र कठिन नहीं १२. केशव केसनि अस करि—आदि दोहे के द्वारा उनकी रसिक प्रवृत्ति स्पष्ट है।

बिहारी

प्रश्न १—बिहारी का संक्षिप्त जीवन परिचय लिखिये।

उत्तर—बिहारी का जन्म सम्वत् १६६० के लगभग ग्वालियर के निकट बसुआ गोविन्दपुर गाँव में हुआ था। इनकी मृत्यु सम्वत् १७२० के लगभग मानी जाती है।

> जन्म लियो द्विजराज कुल प्रकट बसे ब्रज आय।
> मेरे हरो कलेश सब, केसव केसव राय॥
> जनम ग्वालियर जानिये खण्ड बुन्देले बाल।
> तरुनाई आई सुखद, मथुरा बसि ससुराल॥

आदि पद्यों के आधार पर कहा जाता है कि इनका बचपन बुन्देलखण्ड में बीता और जवानी में यह अपनी ससुराल मथुरा में आ रहे।

ऊपर के दोहे के आधार पर ही इनके पिता का नाम केशवराय कहा जाता है। बहुत से विद्वान् प्रसिद्ध कवि केशवदास को ही इनका पिता मानते हैं, पर यह बात युक्तिसंगत नहीं प्रतीत होती, क्योंकि यदि केशव के पुत्र बिहारी होते तो वे अपने पिता का स्पष्ट रूप से उल्लेख करते हुए उनके कवि होने का परिचय प्रदान देते। साथ ही बिहारी की रचनाओं पर भी केशव का स्पष्ट प्रभाव परिलक्षित रहता; किन्तु इन दोनों बातों के अभाव में यह निश्चित रूप से नहीं कहा जा सकता कि प्रसिद्ध कवि केशवदास ही बिहारी के पिता थे।

मथुरा से वे मिरजा राजा जयशाह के दरबार में जयपुर जा पहुँचे। वहाँ उन दिनों महाराज जयसिंह अपनी नई रानी पर इतने आसक्त रहते थे कि उन्होंने रनवास में पड़कर राज-काज देखना भी छोड़ दिया था। इस पर बिहारी ने उन्हें यह दोहा लिख भेजा—

> नहीं पराग नहीं मधुर मधु, नहीं विकास इहि काल।
> अली कली ही सौं बंध्यो, आगे कौन हवाल॥

इस दोहे को पढकर जयशाह बहुत प्रभावित हुए और दरबार मे आकर राज-काज देखने लग पडे। साथ ही बिहारी को ऐसे ही सुन्दर पद्य और भी लिखने को कहा। कहते है कि जयसिह प्रत्येक दोहे पर बिहारी को एक अशर्फी का पुरस्कार दिया करते थे। इस प्रकार बिहारी ने सात सौ के लगभग दोहे लिखे जिनका सकलन 'बिहारी सतसई' के नाम मे किया गया। इस सबध में कवि ने स्वय लिखा है कि—

हुकम पाइ जयसिह को, हरि राधिका प्रसाद।
करी बिहारी सतसई, भरी अनेक सवाद॥

इससे सिद्ध होता है कि बिहारी ने अपने एकमात्र ग्रन्थ बिहारी-सतसई का निर्माण मिरजा राजा जयशाह के आदेश पर ही किया था।

प्रश्न २—'बिहारी सतसई' की संक्षिप्त किन्तु सारगर्भित समालोचना करते हुए सिद्ध कीजिए कि वे रीति-काल के प्रमुख कवि थे।

उत्तर—बिहारी सतसई का मुख्य प्रतिपाद्य विषय शृगार अथवा प्रेम है, यद्यपि उन्होने बीच-बीच मे नीति, भक्ति, वैराग्य-आदि अन्यान्य विषयो को लेकर भी कुछ दोहे लिखे है। पर या तो वे वृद्धावस्था मे जागृत होने वाली भक्ति-भावना के परिचायक हैं अथवा एकरसता को बदलने के लिये कह दिये गये हैं।

शृगार की विविध चेष्टाओ का जैसा स्वाभाविक सजीव वर्णन बिहारी ने किया है वैसा अन्यत्र भला कहा मिल सकता है। मुग्धा नायिका का एक चित्र देखिये—

भौंहनु त्रासति, मुँह नटति, आँखिनु सौं लपटाति।
ऐंचि छुडावति करु इंची, आगे आवति जाति॥

इसी प्रकार—

कहत, नटत, रीझत, खिझत, मिलत खिलत लजियात।
भरे भौन मे करत हैं, नैनन ही सब बात॥

आदि मे नायक-नायिकाओ की चेष्टा का बडा ही स्वाभाविक चित्रण हुआ है।

सौन्दर्य-वर्णन मे भी बिहारी अपने उपमान आप हैं—

कच समेटि कर, भुज उलटि, खए शीश पट टारि।
काको मन बांधे न यह, जूरा बांधन हारि॥

इस चित्र को देखते-देखते मानो जूडा बांधती हुई सुन्दरी प्रत्यक्ष उपस्थित हो जाती है।

इस प्रकार विहारी ने शृंगार-रस के आलम्बन, उद्दीपन आदि विभाव, अनुभाव, सचारि-भाव आदि का बडा ही स्वाभाविक वर्णन किया है।

पर विहारी के रूप-वर्णन में ध्यान देने वाली बात यह है कि उसने नायिका का रूप-वर्णन ही अधिक किया है, नायक का नही। "सीस मुकुट कटि काछनी" आदि पद्य भी केवल प्रार्थना-सूचक ही हैं। इसका उद्देश्य भी नायक का रूप-वर्णन करना नही।

विहारी के द्वारा अनुभावों का कितना सुन्दर वर्णन हुआ है इसके लिये निम्न एक दोहा उद्धृत कर देना पर्याप्त है—

बत रस लालच लाल की, मुरली धरी लुकाइ।
सौंह करें, भौंहन हँसै, देन कहै नटि जाइ॥

भाव-व्यंजना और रस-व्यंजना के अतिरिक्त विहारी के दोहो मे वस्तु-व्यंजना और अलंकार-व्यंजना के भी अनेक सुन्दर उदाहरण मिलते हैं। जैसे कि—

दृग अरुझत, टूटत कुटुम, जुरत चतुर-चित प्रीति।
परति गाँठि दुरजन-हिए, दई नई यह रीति॥

में जैसा सुन्दर असंगति अलंकार है वैसा अन्यत्र शायद ही कही मिले। विरोधाभास का यह कितना सुन्दर उदाहरण है, देखिए—

तंत्रीनाद कवित्त रस, सरस राग रति रंग।
अनबूड़े बूड़े, तिरे, जे बूड़े सब अंग॥

इसी प्रकार—

दूरि भजत प्रभु पीठि दै गुन-विस्तारन काल।
प्रगटत निर्गुण निकट रहि चंग-रंग गुपाल॥

मे श्लेष अलंकार का दर्शन दर्शनीय है।

इस प्रकार स्पष्ट प्रकट है कि विहारी शृंगार के एक-एक क्षेत्र मे खूब खुल कर विचरे हैं। इसका अर्थ यह नही कि उन्होंने नारी-सौन्दर्य को ही जीवन का सर्वस्व मान लिया हो, क्योंकि जैसे प्रभावशाली शब्दों मे नारी के विषैले प्रभाव का वर्णन विहारी ने किया है वैसा तो कबीर आदि ज्ञान-मार्गी सन्त भी नहीं कर पाये।

या भव पारावार को उलंघि पार को जाय।
तिय-छबिग्राहनी, गहै बीच ही आय ॥
चिलक, चिकनई, चटक सौं लफति सटक लौं आइ।
नारि सलोनी सांवरी नागिनी लौं डस जाइ ॥

आदि दोहो मे नारी के घातक प्रभाव का जैसा मर्म-स्पर्शी शब्दो मे वर्णन किया गया है वैसा अन्यत्र कहाँ मिल सकता है। भक्ति-भावना के लिये भी—

जम करि मुँह तरहरि परयो, इह धरि हरि चित लाउ।
विषय तृषा परिहरि अजौं, नर हरि के गुण गाउ ॥

आदि मे बडे सुन्दर रूप मे अभिव्यक्त हुई है।

दुसह दुराज प्रजान के, क्यों न बढ़े दुख दन्द।
अधिक अन्धेरो जग करे, मिलि मावस रवि चन्द ॥

में उनकी राजनीतिज्ञ दूरदर्शिता प्रकट होती है।

अत स्पष्ट सिद्ध होता है कि बिहारी का प्रतिपाद्य विषय मुख्य रूप से शृगार होते हुए भी नीति, भक्ति, वैराग्य आदि विषयो का भी उन्होंने यथा-स्थान सुन्दर प्रतिपादन किया है।

इस प्रकार बिहारी के काव्य के प्रतिपाद्य विषय के सम्बन्ध मे कुछ विचार कर लेने के पश्चात् जब हम उनकी भाषा, शैली आदि के सम्बन्ध मे विचार करते है तो देखते हैं कि बिहारी का काव्य मुक्तक दोहा पद्धति मे लिखा गया है। यह मुक्तक-पद्धति बिहारी से पूर्व सस्कृत, प्राकृत, अपभ्रश और हिन्दी काव्यो में पर्याप्त प्रचलित थी। प्राकृत की गाथा सप्तशती और सस्कृत की आर्या-सप्तशती से केवल कवि ने मुक्तक शैली ही नहीं अपनाई, प्रत्युत प्रति-पाद्य विषय और अनेक दोहो के तो भाव भी वही से लिये है। जैसे कि—'नहि पराग नही मधुर मधु' आदि पूर्वोद्धृत दोहा गाथा सप्तशती की निम्न गाथा का छायानुवाद मात्र है—

नावरण कोस विकास पावइ ईतीस मालई कलिआ।
मअरन्दय गालोहिल्ल भमर तावच्चिअ मलेसि ॥

फिर भी यह नही कह सकते कि बिहारी ने अपने उपजीव्य ग्रन्थो से मैटर ज्यो का त्यो ले लिया है, क्योकि बिहारी ने भाव वहाँ से लेते हुए भी उनमे कुछ-न-कुछ चमत्कार उत्पन्न कर दिया है।

विहारी की भाषा के सम्बन्ध मे विचार करते हुए हम देखते है कि विहारी की भाषा साहित्यिक ब्रज-भाषा है। इसमे बुन्देलखण्डी तथा पूर्वी प्रयोग भी यत्र-तत्र उपलब्ध हो जाते हैं। ब्रजभाषा के प्राय. सभी कवियो ने शब्दो की तोड-फोड बहुत की है पर विहारी ने शब्दो को अनावश्यक रूप से कही विकृत नही किया। विहारी ने श्लेषादि अलकारो के द्वारा भी भाषा के सौन्दर्य को निखारने का बडा सुन्दर स्वाभाविक प्रयत्न किया है। जैसे कि—

> चिरजीवो जोरी जुरै, क्यो न सनेह गभीर।
> को घटि ए वृषभानुजा, वे हलधर के वीर ॥

इस प्रकार सक्षेप मे कह सकते हैं कि विहारी का प्रत्येक दोहा अनूठा है। वे कुल सात सौ दोहे ही लिखकर अमर हो गए। इन सात सौ दोहो के कारण ही वे रीति-काल के शृगारिक कवियो के प्रतिनिधि कवि के पद पर आसीन हो गए हैं। विहारी ने अपने दोहे के वारे मे अक्षरश सत्य कहा है कि—

> सतसैया के दोहरे ज्यों नावक के तीर।
> देखन मे छोटे लगें घाव करे गंभीर ॥

और—

> दीरघ दोहा अरथ के, आखर थोरे आहि।
> ज्यो रहीम नट-कुडली, सिमिट कूदि चलि जाहि ॥

स्मृति-संकेत

१ विहारी का जन्म सं० १६६० और मृत्यु सं० १७२० मे हुई। २ उन्होंने जयपुर नरेश जयसिह के आदेश से ७०० दोहों का संकलनात्मक 'विहारी सतसई' नामक ग्रन्थ का निर्माण किया ३ 'विहारी सतसई' मे यद्यपि नीति, भक्ति, वैराग्य-सम्बन्धी दोहे भी हैं तो भी प्राधान्य शृंगार का ही है। ४. विहारी सतसई मुक्तक शैली मे लिखी गई है। ५. आर्या और गाथा सप्तशती से बहुत से भाव ग्रहण करते हुए भी उन्होंने इनके भावों को चमका दिया है। ६ थोड़े में बहुत वात कहने की जैसी क्षमता विहारी मे है वैसी अन्य किसी कवि मे नहीं। ७. विहारी की अलकार-योजना स्वाभाविक और सुन्दर है। ८. उनकी भाषा साहित्यिक ब्रजभाषा है जिसमे बुन्देली का पुट है। ९. विहारी का महत्व रचना की वारीकी और काव्याग के सूक्ष्म-विन्यास की निपुणता के कारण ही अधिक है। १० इस प्रकार विहारी रीति-काल के प्रतिनिधि कवि माने जाते हैं।

भूषण Nov-57

प्रश्न १—भूषण के जन्म-समय आदि के सम्बन्ध मे जो मतभेद प्रचलित हैं उनका उल्लेख करते हुए बताएं कि कौनसा मत अधिक प्रामाणिक है ?

उत्तर—भूषण के जन्मकाल के सम्बन्ध मे विद्वानो मे अत्यधिक मतभेद है। कुछ विद्वान् शिवसिंह सरोज मे दिये गये सवत् १७३८ को उत्पत्तिकाल मानकर भूषण का जन्म १७३८ मे मानते और कहते है कि वे शिवाजी के दरबार मे नही, प्रत्युत साहू जी के दरबार मे थे। क्योकि शिवाजी का देहान्त १७३८ मे हो गया था। पर वास्तव मे शिवसिंह सरोज का यह उनका उत्पत्ति-काल न होकर उपस्थिति-काल है। इसलिए कुछ विद्वान् भूषण का जन्म सवत् १६७० या १६९२ मे मानते है। पर वास्तव मे भूषण का जन्म सवत् १७१५ के लगभग हुआ था, ऐसा प्रतीत होता है।

कुछ भी हो भूषण शिवाजी के दरबार मे अवश्य थे, और उन्होंने शिव-राज भूषण का रचनाकाल जो सवत् १७३७ दिया है, वह सर्वथा सत्य है उन्होने शिवाजी के समक्ष ही शिवराज भूषण की रचना कर डाली थी, इसमे कुछ सन्देह नही। भूषण की मृत्यु सवत् १७७५ के लगभग हुई थी इस प्रकार भूषण का काव्य-काल शिवाजी और साहू जी दोनो के समय मे था, यह निश्चित है।

प्रश्न २—भूषण की रचनाओ तथा उनके प्रतिपाद्य विषयो का संक्षेप मे वर्णन कीजिए।

उत्तर—यो तो भूषण के नाम पर शिव भूषण या शिवराज भूषण, शिवा-बावनी, छत्रसाल दशक, भूषण उल्लास, दूषण उल्लास, भूषण हजारा, नामक ६ ग्रन्थो का उल्लेख किया जाता है, पर इनमे से उपलब्ध पहले तीन ही हैं।

वास्तव मे तो शिवा बावनी और छत्रसाल दशक भी कोई स्वतन्त्र ग्रन्थ नही है। भूषण की जो फुटकर कविताएँ शिवभूषण के अन्त में दी गई है उन्ही मे से चुनकर ५२ कविताओ का सग्रह शिवा बावनी के नाम से कर दिया गया है। यही स्थिति छत्रसाल दशक की भी है।

छत्रपति शिवाजी महाराज तथा महाराज छत्रसाल, राष्ट्ररक्षक वीर पुरुषो के चरितानुकीर्तन के द्वारा भारत की सुप्त राष्ट्रीय भावनाओ को पुन.

उद्-बुद्ध करना ही भूषण के जीवन तथा काव्य का एकमात्र लक्ष्य है। शिवाजी का चरित्र वर्णन उन्होंने शिवभूषण में अलकारो के लक्षणों, उदाहरणों के रूप मे किया है। शिवा बावनी मे शिवाजी तथा साहू जी के अमित ओज तथा आतंक का बड़े ही प्रभावशाली शब्दो मे वर्णन हुआ है। छत्रसाल दशक मे जैसा कि इसके नाम से स्पष्ट है महाराज छत्रसाल की वीरता का स्वाभाविक वर्णन है। इनके अतिरिक्त भूषण के कुछ अन्य फुटकर छन्द भी मिलते हैं जिनमे भारत भूमि के अन्य राजा-रावो की सुप्त वीरता को जगाने का प्रयत्न किया गया है।

प्रश्न ३—भूषण के काव्य मे राष्ट्रीयता, ऐतिहासिकता, तथा वीर-रस की अभिव्यक्ति आदि गुणों के आधार पर उनके काव्य की व्यापक समालोचना कीजिए और सिद्ध कीजिए कि भूषण राष्ट्रीय कवि किस प्रकार से है ?

उत्तर—भूषण के काव्य की सबसे बड़ी विशेषता यह है कि उन्होंने किसी व्यक्ति-विशेष अपने आश्रयदाता राजा-राव की प्रशसा मे अपने काव्य का निर्माण नही किया, प्रत्युत अपनी काव्य-प्रतिभा के द्वारा राष्ट्र-रक्षक शक्ति को ही जागृत करने का प्रयत्न किया है।

शिवाजी को भी वे राष्ट्र-रक्षा के लिए आया हुआ भगवान् का ही साक्षात् स्वरूप समझते थे, इसीलिए उन्होंने लिखा है कि—

दशरथ जू को राम भौ वसुदेव के गुपाल।
सोहि प्रगट्यो साहि के श्री शिवराज भुआल॥
उदित होत शिवराज के मुदित भये द्विज देव।
कलियुग हट्यो मिट्यो सकल म्लेच्छन को अहमेव॥
भूषण यों कलि के कबिराजन राजन के गुन गाय नसानी।
पुन्यचरित्त सिवा सरजै सर न्हाय पवित्र भई पुनि बानी॥

इस प्रकार केवल भूषण और गुरु गोविन्दसिंह ये दो ही ऐसे सच्चे वीर कवि है जिन्होंने राष्ट्र की सुप्त वीरता को जगाने के लिए ही अपनी सम्पूर्ण प्रतिभा का प्रयोग किया है। भूषण ने शिवभूषण मे शिवाजी के चरित्र को अनेक अलकारो से अलंकृत कर जनता के सामने रखने का स्तुत्य प्रयत्न किया है। जैसे कि उन्होंने स्वयं लिखा है—

सिव चरित्र लखि यों भयो, कवि भूषण के चित्त।
भाँति-भाँति भूषननि सों, भूषित करो कवित्त॥

एक प्रकार से शिव-भूपरा अलकारो का लक्षरा ग्रथ भी है। पर लक्षराो या उदाहरराो का विवेचन करना इस ग्रन्थ का मुख्य उद्देश्य नही। इस ग्रन्थ का उद्देश्य तो शिवाजी के चरित्र को अनेक प्रकार के अलकारो से अलकृत करना ही है। इसलिए काव्याग-निरूपक ग्रन्थ की दृष्टि से विचार करने पर तो आलोचक को निराश ही होना पडेगा। क्योकि गद्य के अभाव मे अलकार आदि काव्यागो का सम्यक् विवेचन हो ही नही सकता। इसलिए 'शिवभूपरा' तथा भूपरा की अन्य रचनाओ को हमे वीर काव्य के रूप मे ही देखना चाहिए, लक्षरा ग्रन्थ के रूप मे नही।

भूपरा की भापा शैली के सम्वन्ध मे विचार करते हुए हम देखते हैं कि उनकी भापा मे भले ही परुपाक्षरो का या द्वित्व वर्णो का प्राधान्य हो, पर वह वीर-रस के सर्वथा उपयुक्त है। भापा की वाह्य तडक-भड़क का सहारा तो वे लेते हैं जिनके पास भावो का अभाव होता है। देखिए भूपरा के निम्न पद मे खर्ग आदि परुपाक्षरो का सर्वथा अभाव होते भी वीर-रस का कैसा स्वच्छन्द प्रवाह प्रवाहित हो रहा है—

साजि चतुरंगवीर रंग मे तुरंग चढ़ि
सरजा शिवा जी जंग जीतन चलत हैं।
भूषन भनत नाद विहद नगारन के,
नदी नद मद गैवरन के रलत हैं॥
ऐल फैल खैल भैल खलक मे गैल-गैल
गजन की ठैल-पैल सैल उसलत है।
तारा सों तरनि धरि धारा मे लगत जिमि,
थारा पर पारा पारावार यूँ हलत है॥

औरगजेव के सेनापतियो के हृदयो पर शिवाजी का कैसा आतक छाया हुआ है, जरा देखिए—

पूरव से उत्तर के प्रवल पछाहू के, सव पातसाहन के गढ़ कोटि हरते।
भूषरा कहै अवरग सो उजीर, जीति लेवे को पुरतगाल सागर उतरते॥
सरजा सिवा पर पठावत मुहीम काज हजरत हम मरिवे को नाँहि डरते।
चाकर हैं उजर कियो न जाय नेक पै कछु दिन उवरते तौ घने काम करते॥

इस प्रकार सिद्ध होता है कि भूपरा के काव्य मे वीरता की धारा अत्यन्त अवाध गति एव अजस्र रूप से उमड़ रही है। उनमे एक सफल महा कवि की

काव्य-प्रतिभा पूर्ण रूप में विद्यमान थी और वे हिन्दी के एक श्रेष्ठ महाकवि थे।

भूषण की राष्ट्रीयता—ऐसा होने पर भी कुछ लोगों को भूषण की कविता में हिन्दू-मुस्लिम विद्वेष की भावना दिखाई दे गई और वे इसी कारण भूषण की कविता को अराष्ट्रीय तक कहने लगे। पर ऐसे लोगों को स्मरण रखना चाहिए कि भूषण के काव्य में हिन्दू-मुस्लिम भेद-भावना की कोई बात नहीं है। उन्होंने किसी भी व्यक्ति की इसलिए कहीं कोई प्रशंसा नहीं की कि वह हिन्दू है या किसी व्यक्ति की इसलिए निन्दा नहीं की कि वह मुसलमान है। इसके विपरीत अकबर आदि जो मुसलमान सम्राट् हिन्दू-मुस्लिम ऐक्य के प्रतिष्ठापक थे उनकी तो प्रशंसा ही की है। जैसे कि—

> बब्बर हुमायूँ अकब्बर हद्द बाँधि गये,
>
> दो में एक करी ना क़ुरान बेद ढब की।

और इसीलिए उन्होंने बड़ी निर्भीकता के साथ औरंगज़ेब को फटकारा है कि वह अकबर आदि अपने पूर्वज मुसलमान सम्राटों के दिखाये हुए हिन्दू-मुस्लिम एकता के प्रशस्त पथ का उल्लंघन कर इन दोनों में फूट डालता रहा है, और निरीह हिन्दू प्रजा पर नित्य नये नाना प्रकार के अत्याचार कर रहा है। अत्याचारी के अत्याचारों का वर्णन करना, और उसे अत्याचारों से हटाने के लिए डाँट-फटकार करना कदापि अराष्ट्रीयता नहीं हो सकती।

यदि भूषण राष्ट्रीय कवि नहीं, और उनकी कविता में राष्ट्रीय भाव नहीं, तो संसार में कोई भी कवि राष्ट्रीय नहीं हो सकता। वास्तव में राष्ट्र-निर्माण की दृष्टि से भूषण की रचनाओं का वही स्थान है, जो तुलसी की रचनाओं का। गोस्वामी जी ने अपने ढंग से राष्ट्र-निर्माण में योग दिया तो भूषण ने अपने ढंग से। अकबर के समय में गोस्वामी जी जैसी आह्लादक प्रतिभा की आवश्यकता थी, तो औरंगज़ेब के समय में भूषण जैसी ओजस्विनी शक्तिमयी प्रतिभा के प्रादुर्भाव की आवश्यकता थी।

वास्तव में वीररस के परिपाक और राष्ट्रीयता के विचारों के प्रचार व प्रसार की दृष्टि से भूषण व उनके काव्य का स्थान सदा अमर रहेगा। इस दृष्टि से गोस्वामी जी के बाद भूषण ही का स्थान हो सकता है।

स्मृति-संकेत

(१) भूषण का जन्म १६७०, १६९२ और १७२८ में भी माना जाता है। पर वास्तव में उनका जन्म १७१२ के लगभग हुआ था। (२) वे शिवाजी तथा

उनके पौत्र साहू जी दोनो के दरबार मे संवत् १७३५ से ७५ तक के समय में उपस्थित थे। (३) अत. यह कहना भ्रामक है कि वे शिवाजी के दरबार मे नहीं प्रत्युत साहूजी के समय मे ही थे। भूषण की 'शिवभूषण' रचना ही प्रामाणिक है। 'शिवा बावनी' और 'छत्रसाल दशक' के पद फुटकर पदो से संकलित हैं, वे कोई स्वतन्त्र पुस्तके नहीं। भूषण नें शिवाजी को भगवान् का रूप मानकर ही इनकी वीरता का बखान किया है। भूषण हिन्दी के सर्वश्रेष्ठ वीर कवि थे, उनके काव्य मे वीर-रस का सुन्दर परिपाक हुआ है। उनका आतंक वर्णन भी बड़ा प्रभावशाली है। (४) भाषा मे शब्दाडम्बर न होते हुए भी वह वीर रस की अवतारणा के लिए सर्वथा उपयुक्त है। भूषण का काव्य हिन्दू-मुस्लिम वैमनस्य का प्रवर्त्तक नहीं, वह राष्ट्रीयता का महान् विकासक है। किसी अत्याचारी के अत्याचारों की निन्दा करना कदापि अराष्ट्रीयता नहीं हो सकती। (५) राष्ट्र-निर्माण की दृष्टि से भूषण का हिन्दी साहित्य मे स्थान बहुत ऊँचा है।

महाकवि देव

प्रश्न १—महाकवि देव का संक्षिप्त जीवन-परिचय दीजिए।

उत्तर— शुभ सत्रह से छियालीस चढ़त सोरही वर्ष।
कढी देव मुख देवता भाव-विलास सहर्ष ॥

'भाव-विलास' की उक्त पुष्पिका के आधार पर हम यह कह सकते है कि रीतिकाल के प्रमुख शृगार कवि देव का जन्म सम्वत् १७३० के लगभग हुआ होगा, क्योकि कवि जब सम्वत् १७४६ मे अपनी आयु १६ वर्ष की कह रहा है तो उनका जन्म सम्वत् १७३० के लगभग हुआ होगा। अपने निवास-स्थान के सम्बन्ध मे कवि ने 'भाव-विलास' मे उल्लेख किया है कि—

द्योसरिया कवि देव कौ नगर इटावे वास।

और इस आधार पर हम कह सकते हैं कि उनका जन्म इटावा मे हुआ था; किन्तु जैसा कि देव के वंशजो ने कहा है कि देव बाद को इटावा छोड़कर कुसुमेरा मे रहने लगे थे। यहाँ से कुछ दिन बाद दिल्ली चले गये फिर कुछ समय चरखी दादरी मे भी रहे। इनका पूरा नाम देवदत्त था और वे द्योसरिया कान्य-कुब्ज ब्राह्मण बिहारीलाल के पुत्र थे। देव के प्रपौत्र भोगीलाल भी एक अच्छे कवि हुए हैं। उनके—

कश्यप गोत्र द्विवेदी कान्यकुब्ज कमनीय ।
देवदत्त कवि जगत में भये देव कमनीय ॥

इस पद से स्पष्ट है कि वे कान्यकुब्ज ब्राह्मण थे। अतः मिश्र-बन्धुओं ने और उनके कथन के आधार पर उनके परवर्ती श्री रामचन्द्र शुक्ल व श्यामसुन्दरदास आदि इतिहासकारों ने जो उन्हें सनाढ्य ब्राह्मण कहा है वह भ्रामक ही है।

इसके अतिरिक्त यह ध्यान में रखना आवश्यक होगा कि 'देव'—नामक छः स्थान कवि हो चुके हैं, जिनमें से पहले देव काष्ठजिह्व थे। वह संस्कृत के एक अत्यन्त मेधावी पण्डित और विरक्त सन्त थे। इनका रचना-काल सम्वत् १८६७ है। दूसरे देव १७०३ और तीसरे १७०५ में थे। दो अन्य 'देवों' का उल्लेख 'मिश्र बन्धु विनोद' में है। सम्भवतः इन 'देवों' में से कोई देव सनाढ्य ब्राह्मण हुआ हो। प्रसिद्ध कवि 'देवदत्त' उपनाम 'देव' निश्चय ही सनाढ्य ब्राह्मण नहीं अपितु कान्यकुब्ज ब्राह्मण थे। यह इस उद्धरण से स्पष्ट है।

देव एक अत्यन्त स्वाभिमानी प्रकृति के व्यक्ति थे। किन्तु जीविका उपार्जन के हेतु उन्हें कभी-कभी अपनी स्वाभिमानी प्रवृत्ति को छोड़ना भी पड़ता था। यहां तक तो वे कर सकते थे कि अपनी कविताओं का संकलन अपने किसी आश्रयदाता के नाम कर दें अथवा किसी संग्रह को उस आश्रयदाता को समर्पित कर दें। किन्तु जब किसी अनधिकारी आश्रयदाता की प्रशंसा में कविता की रचना करने की समस्या उठ खड़ी होती तो वे उलझन में पड़ जाते थे और अन्ततः उनके स्वाभिमानी कवि-हृदय की ही विजय होती। परिणामतः एक के बाद दूसरे कई आश्रय-दाताओं को उन्हें छोड़ देना पड़ा। १६ वर्ष की आयु से लेकर ८५ वर्ष तक की वृद्धावस्था तक उन्हें अपनी इच्छानुसार कोई आश्रयदाता नहीं मिला। १६ वर्ष की आयु में वे औरंगजेब के तीसरे पुत्र आजमशाह के दरबार में जा पहुंचे। आजमशाह एक अत्यन्त उदार, सहृदय और वीर शाहजादा था। उसको उन्होंने अपनी आरम्भिक दो रचनाएं 'भाव-विलास' और 'अष्टयाम' सुनाईं।

औरंगजेब की मृत्यु के उपरान्त राज्य के लिए उसके पुत्रों में परस्पर युद्ध छिड़ गया, जिसमें आजमशाह मारा गया। फलतः देव को अन्य आश्रयदाता ढूंढने के लिए निकलना पड़ा और दिल्ली के समीप चरखी दादरी के राजा सीताराम के भतीजे भवानीदत्त वैश्य के यहां पहुंचे। इनसे बड़ी आशा तो यह

थी कि उस समय राजा-महाराजाओ के यहाँ प्रचलित अनेक नियम व प्रतिबन्धो के कारण देव की स्वतन्त्रता-प्रिय प्रकृति मे रुकावटें पडती थी अत. राजाओ, महाराजाओ व जागीरदारो की अपेक्षा सम्पन्न धनवान् वैश्य व कायस्थों के यहाँ रहना उन्हें अधिक पसन्द था । कई बडे धनी-मानी व्यक्तियो के पास यद्यपि छोटे-मोटे राव-राजो व जागीरदारो से कही अधिक धन-सम्पत्ति होती थी तथापि उन जागीरदारो आदि के हृदय मे साधारण-सी शासन-सत्ता के कारण जो गर्व और प्रभुत्व की अहमिश्रित भावना होती थी वह इन धनियो मे नही होती थी । अत देव की स्वाभिमानी प्रकृति का मेल इन धनी लोगो के साथ ही अधिक बैठता है।

चरखी दादरी से चलकर देव फफूँद के राजा कुशलसिंह के यहाँ पहुँचे । सम्वत् १७८३ मे उन्होने राजा भोगीलाल को अपना 'रस-विलास' नामक ग्रथ समर्पित किया और उनकी प्रशसा मे—

देव सुकवि ताते तजे राव, रान सुलतान ।
'रस विलास' सुनि रीझिहैं भोगी लाल सुजान ।।

आदि पद भी लिखे । भोगीलाल के सम्वन्ध मे निश्चयात्मक ढग पर कुछ नही कहा जा सकता कि यह कौन थे । यहाँ भी देव अधिक दिन नही ठहर सके और यहाँ से इटावा के निकटस्थ ड्योढिया खेडा के जमीदार राजा उद्योतसिंह के यहाँ जा पहुँचे और 'प्रेम-चन्द्रिका' नामक काव्य-ग्रन्थ राजा को समर्पित किया । यहाँ से भी आप दिल्ली के रईस 'सुजानमल' के पास पहुचे और इन्ही के नाम पर अपने ग्रन्थ का नाम 'सुजान-विनोद' रखा । अपनी दो रचना 'शब्द रसायन' व 'जाति विलास' का निर्माण करते समय सम्भवत यह किसी के आश्रय में नही थे । अत ये दोनो रचनाए किसी के नाम भी समर्पित नही हैं । 'स्वान्त सुखाय' लिखी होने के कारण ही इन दोनो ग्रन्थो की कविता मे पर्याप्त प्रवाह है और उनमे को शैथिल्य दृष्टिगोचर नहीं होता । इनके अन्तिम समय मे लगभग सम्वत् १८२४ मे पिहानी के जागीरदार अकबर खोनी ने इन्हें अपने पास बुला लिया । तब अपनी समस्त रचनाओ का एक सग्रह कर 'सुखसागर तरग' के नाम से इन्ही को समर्पित कर दिया । सम्वत् १८२१ के लगभग ८५ वर्ष की आयु मे देव स्वर्गलोक सिधार गए ।

किंवदन्ती है कि आजमशाह के यहाँ से देव भरतपुर के राजा जवाहरसिंह के यहाँ भी गए थे । उस समय राजा डीग के किले के निर्माण मे व्यस्त थे ।

महाराज ने देव से कुछ कविताएँ सुनाने का आग्रह किया। प्रारम्भ में तो उन्होंने कविता सुनाना अस्वीकार कर दिया किन्तु अधिक जोर देने पर उन्होंने कुछ पद सुनाये जिनमें से एक पद का आशय यह था कि डीग में लोगों के सिर लुढ़कते फिरेंगे। इनको सुनकर महाराज क्रुद्ध होगए, किन्तु देव की भविष्य-वाणी अक्षरशः सत्य हुई।

प्रश्न २—देव के रचना ग्रन्थों का संक्षिप्त विवरण दीजिए।

उत्तर—देव सरस्वती के अनन्य उपासक थे, उन्हीं की कृपा से उन्हें असाधारण प्रतिभा-सम्पन्न वाक्-शक्ति प्राप्त थी। वे अनेक शास्त्रों के विज्ञ और सुकवि थे। उनकी कविताओं में राग-विराग की सौन्दर्य-सरिता प्रवाहित हो रही थी। एक के बाद दूसरे आश्रयदाताओं के पास जाते रहने के कारण इन्होंने लगभग तमाम भारत का भ्रमण किया। 'रस-विलास' में इन्होंने दक्षिण द्रविड से लेकर उत्तर में काश्मीर व भूटान तथा पूर्व में कामरूप व कलिंग से लेकर पश्चिम सिंध और गुजरात तक के नर-नारियों तथा उनकी सामाजिक रीति-रिवाजों से सम्बन्धित अत्यन्त सुन्दर कविताओं की रचना की है। मिश्र-बन्धुओं ने 'मिश्रबन्धु-विनोद' तथा 'नवरत्न' में उनके रचना ग्रन्थों की संख्या ७२ बताई है तो कोई इन्हें ५२ ग्रन्थों का रचयिता बताता है। शुक्ल जी आदि इतिहासकारों ने भी मिश्र-बन्धुओं के कथन को ज्यों का त्यों ले लिया है।

अब तक देव के निम्नलिखित बीस ग्रन्थ उपलब्ध हो चुके हैं—

१. भाव-विलास २. अष्टयाम ३. भवानी-विलास ४. रस-विलास ५. प्रेम-चन्द्रिका ६ राग-रत्नाकर ७. सुजान-विनोद ८. जग-दर्शन पच्चीसी ९. आत्म-दर्शन पच्चीसी १०. तत्त्व दर्शन पचीसी ११ प्रेम-पचीसी १२ शब्द रसायन १३. सुख सागर तरंग १४. प्रेम तरंग १५ कुशल विलास १६ जाति-विलास १७ देव-चरित्र १८ देव-माया-प्रपंच १९. शृंगार-विलासिनी २०. शिवाष्टक।

इनके अतिरिक्त शिवसिंह सरोज तथा कुछ अन्य ग्रन्थों के आधार पर निम्नलिखित नौ अन्य ग्रन्थों का उल्लेख है—

१. रसानन्द लहरी २. प्रेम-दीपिका ३ सुमिल विनोद ४. राधिका-विलास ५. पावस-विलास ६ वृक्ष-विलास ७. नख-शिख-प्रेम-प्रदर्शन ८. नीति शतक ९ वैद्यक ग्रन्थ। किन्तु इनमें से कौनसी पुस्तक इन देव की है और कौनसी अन्य

देव की इसके विषय मे कुछ निश्चयात्मक रूप से नही कहा जा सकता । हाँ, उपरिलिखित वीस ग्रंथ इन्ही देव के है ।

भाव-विलास—इसमें भानुदत्त-कृत रस तरगिणी-नामक मस्कृत रचना और केशव की 'कविप्रिया' के आधार पर प्रमुखतया शृगार रस, उसके विभाव आदि और ३९ अलकारो का वर्णन है। यह पुस्तक पाँच विलासो मे विभाजित है। प्रथम विलास मे शृगार रस के स्थायी भाव रति, उसके आलम्बन और उद्दीपन विभाव तथा अनुभावो के लक्षण सोदाहरण प्रस्तुत किए गए हैं। दूसरे मे शृगार के सात्विक-भाव और सचारि-भावो का वर्णन है। तीसरे मे शृगार के अतिरिक्त नौ रसो का साधारण सा वर्णन करके शृगार का विस्तार सहित वर्णन किया गया है। चौथे मे नायिका भेद, नायको के प्रकार, और पाचवे मे उनतीस अलकारो के लक्षण उदाहरण-सहित दिए गए हैं। कवि की यह प्रारम्भिक रचना होने के कारण इस पर 'कविप्रिया' और 'रसिक-प्रिया' का स्पष्ट प्रभाव दृष्टिगोचर होता है, फिर भी उदाहरणो के रूप मे दी गई कविताओ से इस किशोर कवि की काव्य-कला अनायास ही मुखरित हो रही है। भाषा की सरसता, स्वच्छता और प्रवाहमयता पाठक को वरवस ही आकर्षित करती है।

देव की अनेकानेक कविताओ को देखकर स्वभावतया यह शका उत्पन्न होती है कि १६ वर्षीय किशोर कवि ने ऐसी उत्कृष्ट कविताओ की रचना कैसे की ? क्या वास्तव मे 'भाव-विलास' कवि की प्रथम रचना है ? उत्तर मे कहा जा सकता है कि प्रथम तो कवि सरस्वती का उपासक था, जिनकी कृपा से १६ वर्ष के किशोर के लिए भी ऐसी कविताओ की रचना करना कोई बड़ी वात न थी। दूसरे यह कि सम्भवत 'भाव-विलास' के मूल रूप का वर्णन सम्वत् १७४६ मे ही हुआ होगा, पर वाद मे कवि ने उसके पुराने साधारण उदाहरण हटा कर नये उत्कृष्ट उदाहरणो का समावेश कर दिया होगा।

देव ने 'भाव-विलास' की कविताओ की रचना स्वतन्त्र रूप मे अवकाश के समय अत्यन्त मनोयोग पूर्वक लिखी थी। यहाँ 'जाति-विलास' और 'भवानी-विलास' की तरह किसी आश्रयदाता को तत्काल ग्रन्थ की रचना वनाकर सुनाने की उतावली न थी।

अष्टयाम—इसकी रचना का समय राजा, रावो और रईसो की घोर

विलासिता और कामुकता था। कवियों को भी उन व्यसनी और कामुक रईसों की आठो पहर रग-रलियो के वर्णन के सिवा और कुछ नही सूझता था। तदनुसार रीतिकाल के अनेक कवियो ने अष्टयाम लिखे जिनमें अपने आश्रय-दाताओ के विलासितामय जीवन का अखण्ड ताण्डव व्यक्त हो रहा है। चौंसठ कवित्त सवैयो तथा पैंसठ दोहो की इस पुस्तक का प्रतिपाद्य विषय यही है।

भवानी-विलास—आठ विलासो मे विभक्त नायक नायिका विभेदविषयक पुस्तक भवानीदत्त वैश्य के नाम पर लिखी गई है। इसकी कविताओ मे वह स्वाभाविकता और सरसता नही जो भाव-विलास मे है। पदावली में प्रवाहात्मकता दृष्टिगोचर होती है।

प्रेम-तरग—यह भी नायिका भेद सम्बन्धी ग्रन्थ है। इसके कुछ उदाहरण नवीन भी हैं और काव्य मे क्लिष्टता और अर्थ-गाम्भीर्य दिखाई देता है।

कुशल-विलास—वास्तव मे यह प्रेम तरग का रूपान्तर है और नव तरंगों की नायिका भेद सम्बन्धी रचना है जो फफूँद के राजा कुशलसिंह के लिए लिखी गई थी।

जाति-विलास—यह देव की स्वतन्त्र और मौलिक रचना है। अब तक उन्होंने प्राचीन पुस्तको के आधार पर शृंगारप्रधान अथवा नायक-नायिका-विभेद सम्बन्धी कविताओ की रचना की थी। अब तक अपनी मौलिक सूझ-बूझ अथवा सूक्ष्मदर्शिता से काम लेने का अवसर ही नही पडा था। भारत भर के प्रान्तो का भ्रमण करके और निकट से अनेक जातियो की स्त्रियो का निकट से अध्ययन करके जो अनुभव उन्होंने प्राप्त किया था, वही अनुभव उनके जाति-विलास मे व्यक्त हो रहा है। पुस्तक का अध्ययन करने से यह स्पष्ट आभास होता है मानो हम उसी प्रान्त व समाज मे जा बैठे हैं। दक्षिण की स्त्रियो के विषय में उन्होंने लिखा है कि वे सगीत मे पारगत होती हैं। उनका यह कथन आज भी अक्षरश: सत्य सिद्ध हो रहा है।

रस-विलास—इसका निर्माणकाल लेखक ने सम्वत् १७८३ दिया है। यह पुस्तक राजा भोगीलाल को समर्पित है। इसमें सातो विलास नायक-नायिका के भेद-वर्णन मे पूर्ण हो गये हैं। कविताओ मे प्रौढता अवश्य कुछ परिलक्षित होती है और इनमे कोई विशेषता नही है।

प्रेम-चन्द्रिका—यह भी एक शृंगारप्रधान काव्य है। भाव विलास

प्रेमपचीसी और सुजान-विनोद मे ही इसकी अनेकानेक कविताएँ मिलती है। इसमे कवि ने शुद्ध प्रेम और वासना के अन्तर का प्रदर्शन करने का भी प्रयत्न किया है। 'प्रेम-चन्द्रिका' की कविताएँ इतनी सुन्दर और सरस हैं कि पाठक पढते-पढते तन्मय हो जाता है।

राग-रत्नाकर—यह एक सगीतप्रधान लक्षण ग्रन्थ है। इसके दो अध्याय हैं। पहले मे छ राग-रागनियो का तथा दूसरे मे १३ उपरागो का वर्णन है। इस ग्रन्थ से ज्ञात होता है कि देव केवल कवि ही नही, सगीत-शास्त्र के भी अच्छे ज्ञाता थे।

शब्द-रसायन—पुस्तक के नाम से तो ऐसा मालूम होता है कि इसमे व्याकरण पर आधारित शब्दो का विवेचन किया गया होगा, पर वास्तव मे इसमें शब्द-शक्तियो आदि का विवेचन है। इसीलिए इसका नाम शब्द-रसायन है। शब्द-शक्तियो के साथ ही साथ काव्य का स्वरूप, महत्व, नवरस, रीति और गुण, छन्द, अलकार आदि का विवेचन किया गया है। इस रचना की सबसे बडी विशेषता यह है कि ग्यारह प्रकाशो मे समाप्त इसमे नायिका भेद जैसे घिसे पिटे विषय के लिए काव्य के सभी अंगो का ऐसा व्यापक विवेचन देव के किसी अन्य ग्रन्थ मे दिखाई नही देता।

देव-चरित्र— इसमे भगवान् श्रीकृष्ण का चरित्र चित्रित किया गया है। यह १५० छन्दो का एक छोटा सा काव्य है। कई आलोचको ने इसे खण्ड-काव्य कहा है पर वास्तव मे यह खण्ड-काव्य नही है क्योकि खड-काव्य मे जीवन की एक-आध महत्त्वपूर्ण घटनाओ का ही चित्रण रहता है किन्तु देव चरित्र मे श्रीकृष्ण के सम्पूर्ण चरित्र का समावेश किया गया है। इसमे शृ गार, करुण, वात्सल्य और वीर आदि रसो का यथास्थान सुन्दर समावेश हुआ है। यह ग्रन्थ लिखकर देव ने सिद्ध कर दिया है कि देव केवल मुक्तक लेखक ही नही थे, अपितु प्रबन्ध काव्यकार भी थे।

देव-शतक—यह 'जगद्दर्शन-पचीसी', 'आत्म-दर्शन पचीसी', 'तत्व-दर्शन पचीसी' और 'प्रेम दर्शन पचीसी' का सकलन है। कवि अब वृद्धावस्था को प्राप्त होने लगे थे। उनके प्रेम, विलास आदि के भाव तिरोहित होने लगे थे और उनका स्थान ज्ञान, वैराग्य और भक्ति-भावनाएँ ले रही थी। 'जगद्दर्शन पचीसी' मे जीवन और ससार की निस्सारता का वर्णन है, 'आत्म-दर्शन पचीसी'

ने विविध योनियों के दुःखों का चित्र अंकित है। 'तत्त्वदर्शन पचीसी' में ब्रह्मतत्त्व का निरूपण है और 'प्रेम पचीसी' में प्रेम की महत्ता का प्रतिपादन करते हुए बताया गया है कि प्रभु को केवल प्रेम के द्वारा ही प्राप्त किया जा सकता है। 'देवशतक' की कविताएँ काव्य गुण की दृष्टि से अत्यन्त उत्कृष्ट हैं।

सुखसागर तरंग—यह वस्तुतः इनकी पूर्वलिखित कविताओं का संकलन मात्र है और पिहानी के राजा अकबरअली खाँ को समर्पित है। इसमें १२ अध्याय और ८५६ छन्द हैं। इसका रचना काल सम्वत् १८२४ के लगभग निर्धारित किया गया है।

देवमाया प्रपंच नाटक—यह संस्कृत के प्रबोध चन्द्रोदय नाटक के आधार पर लिखा हुआ छः अंकों का नाटक है। इसमें अद्वैत सिद्धान्त के आधार पर मन, बुद्धि अहंकार, जीव तथा ब्रह्म आदि तत्त्वों का प्रतिपादन किया गया है। परब्रह्म की प्रकृति और माया नामक दो पत्नियाँ बताई गई हैं। इस प्रकार यह एक आध्यात्मिक रूपक मात्र ठहरता है।

सुजान-विनोद—'रसानन्द लहरी' इसी पुस्तक का दूसरा नाम है। यह दिल्ली के रईस पातीराम के पुत्र सुजानमणि के नाम पर लिखा गया है। इसमें भवानी विलास, रसविलास, प्रेम चन्द्रिका आदि के नायिका भेद सम्बन्धी पद उद्धृत किये गये हैं। ऋतु-वर्णन के पद भी सुन्दर हैं।

प्रश्न ३—देव के काव्य-सौन्दर्य के सम्बन्ध में आप क्या जानते हैं?

उत्तर—देव के काव्य की सबसे बड़ी विशेषता यह है कि उसमें उनका व्यक्तित्व प्रतिफलित हुआ है। प्रारम्भ में उन्होंने यौवन के विलास को व्यक्त करने वाले काव्य का निर्माण किया जो बाद में उनके काव्य में गम्भीरता आ गई। वैराग्य के अनुभवों को भी उन्होंने अपनी कविता में ढाला है। बुढ़ापे में भक्ति भाव सम्बन्धी साहित्य का सर्जन किया।

इस प्रकार देव कवि, आचार्य, भक्त आदि सभी रूपों में हमारे सम्मुख उपस्थित होते हैं। सम्भवतः ग्रन्थ के फेर में पड़े रहने के कारण उनकी प्रतिभा वैसी नहीं चमक पाई जैसी कि स्वतन्त्र काव्य-निर्माण से चमक सकती थी।

देव पवित्र प्रेम के सर्वश्रेष्ठ कलाकार थे। नायिका-भेद वर्णन में उन्होंने परकीया को स्वीकार करते हुए भी दाम्पत्य-प्रेम को ही प्रधानता दी

है। वे विप्रलम्भ-शृंगार की अपेक्षा सम्भोग शृगार के वर्णन मे अधिक सफल हुए है। यद्यपि उनका भावपक्ष भी पर्याप्त प्रौढ है तो भी जहाँ कही वे कला-पक्ष की दृष्टि से लम्बे-लम्बे सागरूपक बाँधने का प्रयत्न करते हैं वहा वे भावो की अपेक्षा पाठक की कल्पना को ही अधिक आन्दोलित करते हैं। जैसे कि—

वरुनि बघम्बर मे गूदरी पलक दोऊ,
कोये राते बसन भगोहे भेस रखियाँ।
बूडी जल ही मे दिन जामिनिहूँ जागैं भौंहै,
धूम सिर छायो विरहानल बिलखियाँ।
आँसू ज्यो फटिक माल लाल डोरे सेली पैन्हि,
भई है अकेली जाति चेली सग सखियाँ।
दीजिए दरस देव कीजिए सजोगिनी सु—
जोगिनी ह्वै बैठी ये वियोगिनी की अँखियाँ।

यहा केवल कल्पना का ही चमत्कार है, पर सर्वत्र ऐसा नही। कही-कही उन्होने विरह भावना के बडे स्वाभाविक चित्र अंकित किये है। जैसे कि—

जब ते कुँवर कान्ह, रावरी कला निधान,
कान परी वाके कहूँ सुजस कहानी सी!
तब हीं ते 'देव' देखी देवता हँसति सी,
खीजति-सी रीझति-सी रूसति, रिसानी सी।
छोही-सी, छली-सी, छोरि लीनी-सी छकी-सी छीन,
जकी-सी, ठगी-सी, लगी थकी थहरानी-सी।
बीधी-सी, बँधी-सी, विष बूडी-सी, विमोहित-सी,
बैठी वह बकति विलोकति बिकानी सी॥

बुढापे मे उन्होने, अपने मन को सम्बोधित करते हुए जो ऐसे उपदेश दिये है कि—

ऐसे जो हौं जानतो कि जैहे तू विषै के संग,
ए रे मन मेरे हाथ पांव तेरे तोरतो।

आजु लौं हौं कत नरनाहन की नाहीं सुनी,
नेह सों निहारि हारि बदन निहोरतो।
चलन न देतो देव चंचल अचल करि,
चाबुक चितावनीनि मारि मुंह मोरतो।
भारो प्रेम पाथर नगारो दै गरे सों बांधि,
राधावर बिरद के वारिधि में बोरतो।

इनमें भी पर्याप्त स्वाभाविकता और बल है। शुक्ल जी आदि कुछ विद्वान् इनकी भाषा को शब्दाडम्बर पूर्ण और अव्यवस्थित बताते हैं तो कृष्णबिहारी मिश्र आदि विद्वानों का विचार है कि इनकी भाषा रीतिकालीन कवियों में सर्वश्रेष्ठ है। वास्तव में यह दोनों ही पक्ष अपने-अपने स्थान पर उचित हैं।

देव ने (१) मुक्तक (२) प्रबन्ध काव्य (३) नाटक आदि स्वतन्त्र काव्यों का प्रणयन भी किया और लक्षण-ग्रन्थ भी लिखे हैं। इनमें इन्होंने कवित्त, घनाक्षरी, सवैया आदि छन्दों को ही प्रमुख रूप से अपनाया है पर कहीं-कहीं दोहे भी लिखे हैं।

बिहारी और देव दोनों ही रीतिकाल के प्रमुख कवि हैं। बिहारी की प्रसिद्धि का विशेष कारण यह है कि बिहारी ने दोहे जैसे छोटे छन्द को अपनाया जो अनायास ही स्मरण हो जाता है। इसके विपरीत देव के लम्बे-लम्बे छन्द अनायास स्मरण नहीं होते। यों भावपक्ष की प्रौढ़ता की दृष्टि से देव बिहारी से कम नहीं हैं। वास्तव में देव और बिहारी दोनों ही रीतिकाल के प्रमुख कलाकार हैं, इसमें कुछ सन्देह नहीं।

स्मृति-संकेत

(१) प्रारम्भ में देव ने अपने काव्य में यौवन विलास का चित्रण किया, परन्तु बाद में काव्य में गम्भीरता आ गई। बुढ़ापे में भक्ति भाव का साहित्य। (२) पवित्रप्रेम के सन्देशवाहक कलाकार। विप्रलम्भ शृंगार की अपेक्षा सम्भोग शृंगार वर्णन में अधिक सफल। भावपक्ष पर्याप्त प्रौढ़, परन्तु कलापक्ष की दृष्टि से लम्बे सांगरूपकों द्वारा पाठकों को अधिक प्रभावित किया। (३) कहीं-कहीं पर विरह भावना के बड़े स्वाभाविक चित्र अंकित किये हैं। (४) भाषा रीतिकालीन कवियों में सर्वश्रेष्ठ, परन्तु शुक्ल जी ने इनकी भाषा को शब्दालंकार पूर्ण और अव्यवस्थित बताया है। (५) कवित्त, घनाक्षरी सवैया आदि छन्दों को अपनाया है। (६) भाव-पक्ष की प्रौढ़ता की दृष्टि से देव बिहारी से कम नहीं हैं।

सुन्दरदास

प्रश्न १—सुन्दरदास का जीवन-वृत्त तथा साहित्य पर व्यापक प्रकाश डालिए।

उत्तर—सुन्दरदास का जन्म जयपुर राज्य के द्यौसा नामक कस्बे मे सम्वत् १६५३ मे हुआ था। ये खडेलवाल वैश्य थे। इनके पिता का नाम परमानन्द और माता का नाम सती देवी था। ये दादू दयाल के शिष्य थे। ये सस्कृत के वडे विद्वान् थे। काशी मे तीस वर्ष रहकर इन्होने वेद, वेदान्त आदि शास्त्रो का अध्ययन किया था। इन्होने पजाव, राजस्थान, गुजरात, काठियावाड़ आदि भारत के अनेक प्रान्तो का भ्रमण किया था। सम्वत् १७४० मे इनका सागानेर मे देहान्त हो गया।

यह वाल-ब्रह्मचारी और अपने नाम के अनुसार ही अत्यन्त सुन्दर थे, ऐसा कहा जाता है।

सुन्दरदास की लिखी हुई यो तो 'ज्ञान-समुद्र', 'लघु ग्रन्थावली' आदि ४२ के लगभग रचनाए उपलव्ध है पर उनमे 'सुन्दर विलास' ही सर्वाधिक प्रसिद्ध है। इनकी कविताओ से इनकी विद्वत्ता और सरसता प्रत्यक्ष प्रकट हो रही है। ज्ञान-मार्गी कवियो मे यही एक उच्चकोटि के विद्वान् सन्त थे। और सन्त ने तो दोहा, चौपाई और पद ही कहे है पर इन्होने कवित्त, सवैया आदि मे भी सुन्दर रचनाएँ की है। यह अन्य सन्तो की भाँति समाज के प्रति उपेक्षावृत्ति भी नही रखते थे। देश के लिए मर-मिटने वाले वीरो आदि की प्रशसा मे भी इन्होने वहुत कुछ लिखा है। इन्होंने अपने विविध प्रान्तो के अनुभव को भी अपनी कविता मे वडे ही सुन्दर रूप मे व्यक्त किया है। जैसे कि—

गुजरात पर—

"आभड छीत अतीत सो होत बिलार औ कूकर चाटत हाँडी।"

मारवाड पर—

"वृच्छ न नीर न उत्तम चीर सुदेसन में गत देस है मारू।"

दक्षिण पर—

"राँधत प्याज, विगारत नाज, न आवत लाज, करैं सव भच्छन।"

पूरव देश पर—

"ब्राह्मन छत्रिय वैस रु सूदर चारोइ के जन मच्छ वघारत।"

इनकी रचना मे हास्य और विनाद का अच्छा सामञ्जस्य देखने मे आता

है। भिन्न-भिन्न देशों की रीति-रिवाजों पर इनकी उक्तियों से इस कथन की पुष्टि होती है। कुछ नमूने देखिए—

गेह तज्यो अरु नेह तज्यो पुनि खेह लगाइ कै देह सँवारी।
मेह सहे सिर सीत सहे तन धूप सहे जु पँचागिनि बारी॥
भूख सहे रहि रूख तरे, पर सुन्दरदास सबै दुख भारी।
डासन छाँड़ि कै कासन ऊपर, आसन मारि पै आस न मारी॥

निरर्थक तुकबन्दी और बेसिर-पैर की वाणी से इनकी घृणा की निश्चय परिचय इनके इस कवित्त से लगता है—

बोलिये तो तब जब, बोलिबे की सुधि होइ,
न तौ मुख मौन गहि चुप होइ रहिए।
जोरिये तौ तब जब, जोरिबे की जानि परै,
तुक छन्द अरथ अनूप जा में लहिये।
गाइये तो तब जब, गाइबे को कण्ठ होइ,
श्रवण के सुनत ही मन जाइ गहिये।
तुक-भंग छंद-भंग अरथ मिलै न कछु,
सुन्दर कहत ऐसी, वाणी नहीं कहिये॥

सुशिक्षित होने तथा व्यापक दृष्टिकोण होने के कारण इन्होंने दूसरे निर्गुणवादी कवियों की भाँति लोक-धर्म की उपेक्षा नहीं की। पतिव्रत धर्म का पालन करने वाली नारियों तथा युद्ध-क्षेत्र में अपने कर्तव्य का पालन करने वाले शूरवीरों को यह अत्यन्त श्रद्धा की दृष्टि से देखते थे जिनका उदाहरण उनकी निम्न कविताओं में मिलता है—

पति ही सूँ प्रेम होय, पति ही सूँ नेम होय
पति ही सूँ छेम होय, पति ही सूँ रत है।
पति ही है जग जोग, पति ही है रस भोग,
पति ही सूँ मिटै सोग, पति ही को जत है।
पति ही है ज्ञान ध्यान, पति ही है पुन्यदान,
पति ही है तीर्थन्हान, पति ही को मत है।
पति बिनु पति नाहिं पति बिनु गति नाहिं,
सुन्दर सकल विधि एक पतिव्रत है॥

X X X

सुनत नगारे चोट, विगसै कमल मुख,
अधिक उछाहू फूल्यो भान है न तन में।
फेरे जब सांग तब कोऊ नहिं धीर धरे,
कायर कपायमान होत देखि मन में।
कूद के पतग जैसे परत पावक माहिं,
ऐसे टूटि परै बहु सांवत के गए मे।
मारि घमसान करि सुन्दर जुहारै श्याम,
सोई सूरबीर जोई रुपि रहै रन मे॥

× × ×

असन बसन बहु, भूषरण सकल अंग,
सम्पति विविध भाँति भर्यो सब घर-घर है।
श्रवरण नगारो सुनि छिनक मे छाँड़ि जाति,
ऐसे नहिं जानै कछु मेरो वहां भर है।
मन में उछाह रण माहि टूक-टूक होई,
निर्भय निसंक वाके रचहू न डर है।
सुन्दर कहत कोऊ, देह को ममत्व नाहिं,
सूरमा को देखियत, सीस विनु धर है।

अन्य निर्गुण सन्तो की भाति एक निराकार ब्रह्म के अलावा अन्य किसी की उपासना करना सुन्दरदास के अनुकूल नहीं है। उन्होंने कहा है—

एक सही सबके उर अन्तर,
ता प्रभु कूं कहु कहि न गावै।
संकट माहि सहाय करै पुनि,
सो अपनो पति क्यूं विसरावै॥
चार पदारथ और जहां लगि,
आठहु सिद्धि नवो निधि पावै।
सुन्दर द्वार परो तिनके मुख,
जो हरि कूं तजि आन कूं ध्यावै॥

गुरु की महिमा का प्रतिपादन करते हुए उन्होंने लिखा है कि—

गोविन्द के किये जीव, जात हैं रसातल को,
गुरु उपदेश से तो, छूटैं जमफंद तें।

गोविन्द के किये जीव बस परे कर्मन के,
गुरु के निवाजे से फिरत हैं स्वच्छन्द तें।
गोविन्द के किये जीव, बूडत भवसागर मे,
सुन्दर कहत गुरु काढ़ै दुख द्वन्द तें।
औरहू कहाँ लौं कहू, मुख तें कहूँ बनाय,
गुरु की तौ महिमा अधिक है गोविन्द ते।
परमेसुर अरु पर गुरु, दोनो एक समान।
सुन्दर कहत विशेष यह, गुरु ते पावै ज्ञान।

उन्होने सृष्टि के उत्पत्ति का जो वर्णन किया है वह भी शास्त्रो के सर्वथा अनुकूल है। जैसे कि—

ब्रह्म ते पुरुष अरु प्रकृति प्रकट भई,
प्रकृति मे महत्तत्त्व, पुनि अहकार है।
अहंकार हूँ ते तीन गुण सत, रज, तम,
तमहूँ ते महाभूत विषय प्रसार है॥
रजहूँ ते इन्द्री दस पृथक्-पृथक् भई,
सत्तहूँ ते मन आदि देवता विचार हैं।
ऐसे अनुक्रम करि शिष्य सूँ कहत गुरु,
सुन्दर सकल यह मिथ्या भ्रम जार है॥

इस प्रकार प्रत्येक पद मे सुन्दरदास जी की विद्वत्ता तथा अनुपम कवित्व शक्ति स्पष्ट लक्षित होती है, वास्तव में ज्ञानमार्गी सन्त कवियो में ये एकमात्र सच्चे सहृदय कवि थे, इसमें कोई सन्देह नही।

स्मृति-संकेत

१ सुन्दरदास जी का जन्म सम्वत् १६५३ मे द्यौसा मे और देहान्त सम्वत् १७४० मे सांगानेर मे हुआ था। २ ये दादूदयाल के शिष्य खण्डेलवाल वैश्य थे। ३. काशी मे रहकर इन्होंने वेदादि शास्त्रों का गम्भीर अध्ययन किया था। ४. यह अखण्ड ब्रह्मचारी और ज्ञानमार्गियों मे सबसे विद्वान् कवि थे। ५. इनकी ४२ के लगभग रचनाएँ हैं जिनमें से 'सुन्दर विलास' सबसे

अधिक प्रसिद्ध है। ६. इनके काव्य मे देशाटन का अनुभव, वीरों के प्रति सम्मान आदि सामाजिक तत्व भी मिलते है। उनमे समाज की उपेक्षा नहीं है। ७. वे उत्कृष्ट कविता को ही कविता समझते हैं। ८. इस प्रकार इनके काव्य से इनके व्यापक पाण्डित्य और गम्भीर तत्वचिन्तन का प्रत्यक्ष परिचय प्राप्त होता है।

मतिराम

मतिराम का जन्म सं० १६७४ मे तिकवापुर में और मृत्यु सं० १७७३ में हुई। इनकी गणना रीतिकाल के प्रमुख कवियो मे है। ये चिन्तामणि और भूषण के भाई कहे जाते हैं। ये बूंदी के महाराव भावसिंह के आश्रय में रहते थे। इनकी रचना की सबसे बडी विशेषता यह है कि उसकी सरसता अत्यन्त स्वाभाविक है, न उसमे भावो की और न भाषा की ही कृत्रिमता है। जितने शब्द और वाक्य है वे सब भाव-व्यंजना ही में प्रयुक्त हुए है। ऐसी भाषा रीतिकाल के इने-गिने ही कवियो में मिलती है।

भावो को आकाश पर चढ़ाने और दूर की कल्पना के फेर मे नहीं पडे। इनका सच्चा कवि-हृदय था। यदि ये रीतिकालीन परम्परा पर न चलकर अपनी स्वाभाविक प्रेरणा के अनुसार चल पाते तो और भी स्वाभाविक और सच्ची भाव-विभूति दिखाते, इसमे कुछ सन्देह नही। भारतीय जीवन से छाँट कर लिए गए इनके मर्मस्पर्शी चित्रो में जो भाव भरे हैं, वे समान रूप से सबकी अनुभूति के अंग है।

इनका 'रसराज' परम मनोहर तथा अत्यन्त सरस ग्रंथ है। इसके अतिरिक्त इनके यह पाँच ग्रंथ है—

१. ललित-ललाम, २. छन्द-सार, ३ साहित्य-सार ४. लक्षण-सार ५. मतिराम-सतसई। ललित-ललाम की रचना संवत् १७१६ और १७४५ के बीच किसी समय हुई थी।

मतिराम भी देव और बिहारी के समान शृंगारिक कवि हैं। शृंगार के अन्तर्गत विभाव, अनुभाव, सात्विक भाव आदि का चित्रण उनके यहाँ

भी बड़ा ही सुन्दर हुआ है। नायक के प्रथम दर्शन मे ही नायिका की अवस्था कैसी हो गई देखिए—

'जा दिन ते छवि सों मुसकन कहूँ निरखे नन्दलाल विलासी,
ता दिन ते मन ही मन मे मतिराम पियैं मुसकान सुधा सी।
नैकु निमेष न लागत चैन चकै चितवै तिय देव-तिया सी,
चन्द्रमुखी न चलै न हिलै निरवात निवास मे दीप सिखा सी।

रीतिकाल के सभी शृ गारिक कवियों की भाँति मतिराम का मन भी सभोग शृगार के वर्णन में ही अधिक रमता है। पर उन्होंने जहाँ वियोग के चित्र अ कित किये हैं, वे भी बडे मनोरम हैं। इन्होंने उत्प्रेक्षा और अतिशयोक्ति आदि अलकारो से काम लेते हुए भी विहारी की भाँति विरह से खिलवाड़ नहीं किया है। इनका विरह-वर्णन कैसा स्वाभाविक और काव्यमय है, दो दोहे देखिए—

अँसुअन के परवाह में, अति बूडिये डराति।
कहा करै नैनानि को, नींद नहीं नियराति॥

और

बाल अलप जोवन भई ग्रीषम-सरिस सरूप।
अब रस परिपूरन करौ तुम घनश्याम अनूप॥

पहले पद में प्रियवियोग मे नींद न आने का कैसा स्वाभाविक कारण बताया गया है और दूसरे पद में विरह-क्षीण नायिका की समता जल-क्षीण सरिता से कैसे प्रभावशाली ढंग से की गई है।

मतिराम की भाषा के सम्बन्ध में विचार करते समय हम देखते हैं कि इनकी भाषा साहित्यिक व्रज-भाषा है और भाषा के सौन्दर्य की दृष्टि से वे सूर, तुलसी और विहारी से पीछे नहीं हैं।

कुन्दन को रंगु फीको लागै, झलकै अति अंगन चारु गोराई।
आँखिन में अलसानि, चितौनी में मंजु विलासन्ह की सरसाई॥
को बिन मोल बिकात नहीं मतिराम लहै मुस्कानि मिठाई।
ज्यों-ज्यों निहारिये नेरे ह्वै नैननि त्यों-त्यों खरी निरै सी निकाई॥

जैसी भाषा की सवृद्धि मतिराम के काव्य मे उपलब्ध होती है, वैसे ही मतिराम के काव्य मे अलकारो का सौन्दर्य भी दर्शनीय है।

रावरे नेह को लाज तजि अरु गेह काज सबै बिसराये।
डारि दियो गुरु लोगनि को अरु गाँव चवाय में नाम धराये।
हेत कियो हम जो तौ कहा तुम तौ मतिराम सब ठहराय।
कौ केतिक उपाय करौ कहु होत है आपने पीय पराये।

रीतिकाल के अन्यान्य कवियो की भाति मतिराम के काव्य मे भी प्रकृति का प्रेम अत्यन्त स्वल्प मात्रा मे है। पर कला-नैपुण्य प्रत्येक पद मे आरम्भ से अन्त तक ओतप्रोत हो रहा है। प्रिय-मिलनजन्य आनन्द का निम्न कविता में कैसा सजीव वर्णन हुआ है। जरा देखिए—

प्रान पियारो मिलौ सपने मे परि जब वे सुक नींद निहोरे।
नाह को आइवो त्योंहि जगाय सखि कह्यो बैन पियूष निचोरे।
यों मतिराम वढ्यो हिय मे सुख बात कै बालम सो दृग जोरे।
जैसे मिहि पर मे चटकीलो चढ़े रंग तीसरि बार के बारे बोरे॥

इसमें शृगार के आलम्वन-उद्दीपन-अनुभाव-सचारी भाव आदि सभी अंगो का एकत्र प्रतिपादन हो गया है।

पिय वियोग तिय दृग जलधि जल तरंग अधिकाय।
बरुनि मूल बेला परसि बहु रचो जाति विलाय।

इस पद्य से कवि की वहुज्ञता का ज्ञान होता है क्योंकि इसमें ज्वार भाटे की प्रकृति का वडा सुन्दर वर्णन हुआ है। इसी प्रकार—

हौं न कहत तुम जानिहौ, लाल वाल की बात।
अंसुआ उडुगन परत हैं, हौं न चहत उत्पात॥

में भी प्रकृति के व्यापारो का सुन्दर उल्लेख हुआ है। मतिराम की सूक्तियो का तो कहना ही क्या? वे तो एक से एक बढकर सुन्दर और हृदय-हारी है। जैसे कि—

सुनि सुनि गुन सब गोपिकनि समुझो सब संवाद।
कटी अधर की माधुरी ह्वै मुरली को नाद॥
अटा आइ नंदलाल उत निरखो नेक निसंक।
चपला चपलाई तजी चंदा तज्यो कलंक॥

अलि लिहारं अधर मे सुधा भोग को साज।
दुजरावनि जुत ज्योति ये लाल वदन द्विजराज ॥

इस प्रकार मतिराम की काव्य प्रतिभा का परिचय उनके प्रत्येक पद से प्राप्त होता है। शुक्ल जी ने उनके सम्बन्ध में ठीक ही लिखा है कि भारतीय जीवन से छाँटकर लिए हुए इनके मर्मस्पर्शी जो भाव भरे हैं, वे समान रूप से सबकी अनुभूति के अ ग हैं। रीतिकाल के प्रतिनिधि कवियो में पद्माकर को छोड और किसी कवि मे मतिराम की सी चलती भाषा और सरल व्यञ्जना नही मिलती। बिहारी की प्रसिद्धि का कारण बहुत कुछ उनका वाग्वैदग्ध्य है। दूसरी बात यह है कि उन्होंने केवल दोहे कहे हैं, इससे उनमें वह नाद-सौन्दर्य नही आ सका जो मतिराम के कवित्त-सवैये की लय द्वारा होता है।"

स्मृति-संकेत

१ मतिराम का जन्म संवत् १६७४ और मृत्यु संवत् १७७३ मे हुई। २. इनके ललित ललाम, छन्दसार, लक्षणसार, साहित्यसार और मतिराम सतसई ये पाँच ग्रंथ हैं। ३. ये भी बिहारी की भांति प्रमुख रूप से शृ गारिक कवि हैं। विप्रलम्भ की अपेक्षा सयोग वर्णन मे इनका मन अधिक रमता है। इनकी भाषा भी बिहारी के समान सुव्यवस्थित और प्रौढ है। ४. मतिराम भी रीतिकाल के प्रमुख कवियों मे से हैं। बिहारी की अपेक्षा इनके काव्य की यह विशेषता है कि बिहारी के दोहों मे नाद-सौन्दर्य नहीं, पर मतिराम के दोहों में लय और नाद का सौन्दर्य भी खूब है।

कवियों का विवेचनात्मक अध्ययन

भारतेन्दु हरिश्चन्द्र

प्रश्न १—भारतेन्दु हरिश्चन्द्र का संक्षिप्त जीवन परिचय देते हुए उनकी साहित्यिक प्रगति का उल्लेख कीजिये।

अथवा

भारतेन्दु हरिश्चन्द्र के काल और जीवन का परिचय दीजिये। उनके काव्य की विशेषता बताइये और उनके भाव, भाषा तथा शैली के आधार पर सिद्ध कीजिये कि उन्होंने हिन्दी काव्य की काया ही पलट दी।

(प्रभाकर, जून, १९५८)

उत्तर—भारतेन्दु हरिश्चन्द्र का आविर्भाव उस समय हुआ था जब मुस्लिम शासन अपनी अन्तिम घड़ियाँ गिन रहा था और अंग्रेजी शासन का श्रीगणेश हो चुका था। भारत मे स्वामी दयानन्द सरस्वती के प्रचार से भारतीय आदर्शों के प्रति श्रद्धा का स्रोत उमड़ रहा था, जनसाधारण मे एक आशापूर्ण वातावरण जम्हाई ले रहा था और सुदूर पश्चिम में भी नूतन परिवर्तन हो रहे थे।

भारतेन्दु जी की 'उत्तरार्द्ध भक्तमाल' के आधार पर इस प्रकार वंशावली पाई जाती है—
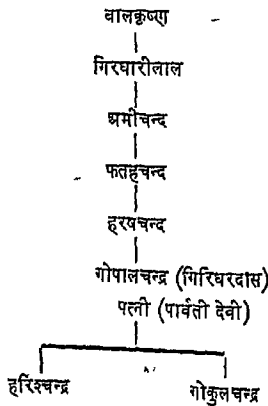
इस प्रकार भारतेन्दु जी श्री गोपालचन्द्र (गिरिधर दास) के सुपुत्र थे। इनकी प्रामाणिकता का निर्देश भारतेन्दु जी ने स्वयं अपने 'मधु-मुकुल, चन्द्रावली नाटिका' नाटक ग्रन्थ के परिशिष्ट भाग में तथा 'प्रेमप्रलाप' आदि ग्रन्थों में स्पष्ट निर्देश किया है, कि आप श्री गोपालचन्द्र जी के ही आत्मज हैं।

भारतेन्दु जी के पिता भी एक प्रसिद्ध साहित्यिक व्यक्ति थे, उन्होंने भारतीभूषण, रस रत्नाकर, नहुप नाटक, जरासन्ध वध, भाषा व्याकरण तथा गर्गसंहिता आदि लगभग ४० ग्रन्थ लिखे थे।

भारतेन्दु हरिश्चन्द्र का जन्म राधाकृष्णदास के मतानुसार ९ सितम्बर सन् १८५० कहा जाता है परन्तु भारतेन्दु जी की बहिन विद्यावती के दूसरे सुपुत्र श्री ब्रजरत्नदास ७ सितम्बर सन् १८५० मानते हैं और यही निश्चित समझना चाहिए।

अभी आप पाँच ही वर्ष के थे, कि आपकी माता का देहान्त हो गया और आपको काली कदमा दाई और तिलकधारी नौकर ने ही पाला। बचपन में पं० ईश्वरीदत्त से हिन्दी, मौलवी ताजअली से उर्दू और पं० नन्दकिशोर से तथा राजा शिवप्रसाद 'सितारे हिन्द' से अंग्रेजी सीखी और ३-४ वर्ष 'क्वीन्स कालेज' बनारस में भी शिक्षा प्राप्त की। फिर कालेज छोड़कर स्वतन्त्र-रूपेण मराठी, बंगला, गुजराती, पंजाबी आदि २०-२५ प्रान्तीय भाषाओं का ज्ञान प्राप्त कर लिया। आपकी रचनायें प्रान्तीय भाषाओं में भी पाई जाती हैं। आपके काव्य गुरु प० लोकनाथ जी माने जाते हैं।

कहा जाता है, आपके पिता जी जब 'बलराम कथामृत' की रचना कर रहे थे उसी समय आपने भी ५-६ वर्ष की आयु में यह दोहा बनाया था—

'लै ब्यौड़ा ठाढे भये, श्री अनिरुद्ध सुजान।
बानासुर की सैन को, हनन लगे भगवान्॥'

इस पद को सुन, विस्मित होकर आपके पिताजी ने कहा था 'तू म्हारो नाम बढ़ावैगा' आपकी काव्य-प्रतिभा का प्रतीक स्वरूप यह पद हिन्दी साहित्य में अमर रहेगा।

एक बार आपके पिताजी ने 'कच्छपकथामृत' के मंगलाचरण के 'कछु कृपा भगवान को' इस पद्यांश की अनेक व्याख्यायें सुनीं, किसी ने 'कछ

कछुआ भगवान को' ऐसी व्याख्यायें की, परन्तु भारतेन्दु बोल पड़े—'कछुक छुवा भगवान् को' अर्थात् 'मेरे पिता जी ने कुछ-कुछ भगवान् को छुआ है, प्राप्त कर लिया है,' यह सुनकर सब विस्मित हो गये।

आपका विवाह १३ वर्ष की आयु में शिवाले के रईस लाला गुलाबराय की सुपुत्री मन्नादेवी से हो गया और १५ वर्ष की आयु मे आप जगन्नाथपुरी आदि तीर्थो की यात्रा करने लगे। एक बार किसी दयार्द्र महानुभाव ने इन्हें होनहार समझकर दो अशर्फियाँ दी और कहा कि कभी सकट पडने पर इन्हें खर्च कर लेना, यदि खर्च न हो सके तो मुझे वापिस कर देना, परन्तु इसके बाद ही भारतेन्दु जी किसी कारण अपनी विमाता से रुष्ट होकर चले गये, अशर्फियाँ खर्च कर ली गई। इसके बाद आपको ऋण लेने की बुरी आदत पड गई। परिणामस्वरूप आपको १०-१५ हजार रुपये के मकान से भी हाथ धोने पडे अर्थात् कर्ज मे मकान भी देना पड गया। आपने बुलन्दशहर से एक बार अपने भतीजे कृष्णचन्द्र को एक पत्र लिखा था, जिसमें घरेलू सकटो की चर्चा थी।

'भारतेन्दु' उपाधि के विषय मे यह प्रसिद्ध है, कि एक बार काशी के प्रसिद्ध प० बालशास्त्री ने कायस्थो को 'क्षत्रिय' बना दिया, यह जानकर हरिश्चन्द्र जी ने काशी के पडितो पर व्यगय कसे और 'जाति गोपाल की' शीर्षक लेख भी लिखा, इस कारण इनके मित्र प० रघुनाथ जी इनसे बिगड़ गये और खरी-खोटी सुनाने लगे और कहने लगे कि जैसे तुम अपने सुयश से जाहिर हो, वैसे ही अपनी विलासिता से कलकी भी हो, इसलिए मै तुम्हें 'भारतेन्दु' पुकारूँगा। इस पर प० सुधाकर द्विवेदी बोले कि कलक तो पूरे चाँद मे होता है आप तो 'दुइज के चाँद हैं', सब प्रसन्न हो गये। इसी सम्बन्ध मे प० रामेश्वरदत्त व्यास ने 'सारसुधानिधि' पत्र मे एक लेख लिखा, समस्त भारत ने उसका सहर्ष अनुमोदन किया, तब से आप 'भारतेन्दु' भी कहलाते है। चूँकि आप कवि थे, सौंदर्योपासक थे, असहायो के प्रति दयार्द्र रहते थे, इसलिए माधवी और मल्लिका दोनो की आपने आर्थिक सहायता भी की थी, इसलिये परिवार के ही लोग इन्हे अपव्ययी होने के कारण कलकित भी करते रहते थे। आप की गर्वोक्तियाँ निम्नलिखित है—

"सत्यासक्त दयाल द्विज, प्रिय अघहर सुखकन्द ।
जनहित कमला तजन जय, शिवि नृप कवि हरिचंद ॥"
चन्द टरै, सूरज टरै, टरै जगत व्यौहार ।
पै दृढ़ कवि हरिचंद को, टरै न सत्य विचार ॥
जग जन रंजन, आशु कवि, को हरिचंद समान ॥

आपने 'निजभाषा उन्नति' के लिए 'कवि वचन सुधा' (नवोदिता), हरिश्चन्द्र मैगजीन (हरिश्चन्द्र, चन्द्रिका) आदि पत्रिकायें निकालीं, और स्त्रियों की उन्नति के लिए 'बालाबोधिनी' पत्रिका प्रकाशित की। इसके अतिरिक्त 'चौखम्भा स्कूल' की स्थापना भी की जो आज काशी का प्रसिद्ध 'हरिश्चन्द्र कालेज' कहलाता है। आपने अनेक संस्थाओं की स्थापना की तथा उन्हें सहयोग दिया—जैसे कविता वर्धिनी सभा, पेनी रीडिंग क्लब, तदीय समाज, वैश्य हितैषिणी सभा, काशी सार्वजनिक सभा, काशी नरेश की धर्म सभा, बनारस इन्स्टीच्यूट, ब्रह्मामृतवर्षिणी, डिबेटिंग क्लब, यंगमैन ऐसोसियेशन, कारमाइकेल लाइब्रेरी और बाल सरस्वती भवन आदि।

आपने सन् १८६८ में विलियम म्योर के समय में हिन्दी को राष्ट्रभाषा बनाने का सराहनीय उद्योग किया, परन्तु परिस्थितियों के कारण सफलता न मिल सकी। आप ३३ दिन की लम्बी यात्रा में कानपुर, लखनऊ सहारनपुर, मसूरी, हरिद्वार, लाहौर, अमृतसर, दिल्ली, व्रज, आगरा, पुष्कर-तीर्थ, प्रयाग, सरयू, गोरखपुर, उदयपुर, चित्तौड और बलिया गये। बलिया में 'सत्य हरिश्चन्द्र' तथा 'नीलदेवी' नाटकों का अभिनय किया, भाषण भी दिया, बस यहीं अस्वस्थ हो गये और ३४ वर्ष तथा ४ मास की एक छोटी सी आयु में ही इस हिन्दी जननी को निराशावस्था में छोड़कर दिवगत हो गये। आपका देहावसान ६ जनवरी सन् १८८५ में हो गया। आपके जीवन की ये हैं संक्षिप्त, परन्तु ज्वलन्त चिनगारियाँ।

साहित्यिक प्रगति (रचनायें)

नाटक—आपने पाखण्ड विडम्बन, विद्यासुन्दर, धनञ्जयविजय, कर्पूरमञ्जरी, मुद्राराक्षस, दुर्लभबन्धु, सत्य हरिश्चन्द्र नाटक, नीलदेवी,

प्रेमयोगिनी, अंधेरनगरी, चन्द्रावली, भारतजननी, भारतदुर्दशा, वैदिकी हिंसा हिंसा न भवति, विषस्य विषमौषधम् आदि नाटक और प्रहसन लिखे हैं।

उपन्यास—आपने रामलीला, शीलवती, सावित्री चरित्र, मदालसोपाख्यान, सुलोचना, पूर्ण प्रकाश, चन्द्रप्रभा, राजसिंह, हम्मीरहठ, और 'कुछ आप बीती कुछ जग बीती' आदि उपन्यास लिखे हैं।

इतिहास तथा पुरातत्व—आपने काश्मीर कुसुम, कालचक्र, महाराष्ट्र देश का इतिहास, दिल्ली दरबार दर्पण, रामायण का समय, पच पवित्रात्मा, उदयपुरोदय, बूँदी का राजवश, बादशाह दर्पण, अग्रवालो की उत्पत्ति, खत्रियो की उत्पत्ति, तथा पुरावृत्त सग्रह एव चरितावली आदि इतिहास तथा पुरातत्व सम्बन्धी ग्रंथ लिखे हैं।

काव्य—आप की मौलिक, सपादित तथा सग्रहीत काव्य रचनाएँ निम्न-लिखित हैं—प्रेमतरग, गुलजारपुरबहार, सुन्दरीतिलक, फूलो का गुच्छा, कार्तिक कर्मविधि, मार्गशीर्ष महिमा, भागवत शकानिरासवाद, सुजान शतक, पचकोशी के मार्ग का विचार, तहकीकात पुरी की तहकीकात आदि।

वैष्णव धर्म सम्बन्धी—आपने वैष्णव धर्म के साम्प्रदायिक रूप के आधार पर छोटी-छोटी रचनायें इस प्रकार की हैं—

पुरुषोत्तम मास विधान, उत्सवावली, भक्तिसूत्र वैजयन्ती, नारदीय भक्ति सूत्र, तदीय सर्वस्व, वल्लभीय सर्वस्व, वैष्णव सर्वस्व, प्रात स्मरण स्तोत्र, अपवर्ग पचक, अपवर्गदाष्टक, श्रीनाथ स्तुति, श्रीपचमी, स्वरूपचिंतन, प्रबोधिनी, रानी छद्मलीला, दानलीला, तन्मयलीला, देवी छद्मलीला, वैशाख माहात्म्य, कार्तिक स्नान आदि।

प्रेम सम्बन्धी—कुछ प्रेम सम्बन्धी रचनाये भी अति सुन्दर है—

राग सग्रह, होली लीला, मधु मुकुल, होली, प्रेम तरग, प्रेम प्रलाप प्रेम माधुरी, प्रेमाश्रुवर्षण, प्यास, चातकाभिमानी, प्रेमसरोवर, प्रेम मालिका आदि।

इसके अतिरिक्त कृष्ण सम्बन्धी क्रीडायें, तथा गगा स्तुतियाँ भी लिखी जैसे—दैन्य प्रलाप, उरहना, पुरुषोत्तम पचक, वेणुगीति, निवेदन पचक, श्री सर्वोत्तम स्तोत्र तथा सस्कृत लावनी आदि। कुछ समस्या ग्रथ भी लिखे

है, जैसे—मानलीला फूल बुझौवल, भीष्म स्तवराज, श्री सीता वल्लभ स्तोत्र, जैन कुतूहल, नतमई शृ गार, एव गीत गोविन्दानन्द आदि।

वास्तव मे आपकी प्रतिभा सर्वतोमुखी थी, आपने प्रत्येक विषय पर अनेक पुस्तके लिखकर हिन्दी साहित्य की झोली भर दी है।

संक्षिप्त आलोचना

विद्या सुन्दर—महाकवि वररुचि ने सस्कृत साहित्य मे 'चौर पचाशिका' नामक ग्रथ लिखा है। इसका नायक सुन्दर कवि चौर ही प्रतीत होता है। यही ग्रथ विद्यावती की मूल कथा का भी आधार है। बगाली कवि भरतचन्द्र राय ने इसकी कथा को काव्य का रूप दिया है, और बाद मे महाराज यतीन्द्रमोहन ठाकुर ने इसी के आधार पर 'विद्यासुन्दर' नाटक लिखा है और भारतेन्दु जी ने इसी नाटक का हिन्दी मे अनुवाद किया है। जब वर्धमान नगर के राजा की पुत्री विद्या से सभी परास्त हो जाते है, तब कांचीपुर के राजा गुणसिन्धु के पुत्र 'सुन्दर' को बुलाते है, वह हीरा मालिन के यहाँ ठहर जाता है, और उसी से एक सुन्दर हार गुँथाकर विद्या के पास भेज देता है, वह मुग्ध हो जाती है और गान्धर्व विवाह हो जाता है। तीन अक है।

धनजय विजय—इसका अनुवाद भारतेन्दु जी ने सन् १८७३ मे किया था। यह 'व्यायोग' है, एकाकी है, वीररस पूर्ण है। कांचन कवि की रचना है। जब अचानक कौरवों ने विराट की गौएँ हर ली थी, उन्हें अर्जुन वापिस लाये थे, उसी दिन उनका तेरहवाँ अज्ञातवास काल समाप्त था। इसी अवसर पर विराट ने अपनी पुत्री उत्तरा का विवाह अर्जुन के सुपुत्र अभिमन्यु से कर दिया था। इसमे एक ही दिन की घटना का वर्णन है।

मुद्राराक्षस—यह महाकवि विशाखदत्त की राजनीतिक अद्भुत रचना है। इसमे राक्षस और चाणक्य के नीतिचक्रो का विशद वर्णन पाया जाता है। चाणक्य, राजभक्त राक्षस को चन्द्रगुप्त का मत्री बनाना चाहता है, उसका मनोरथ सफल सिद्ध हो जाता है।

सत्य हरिश्चन्द्र नाटक—संस्कृत मे क्षेमेश्वर ने 'चण्डकौशिक' नाम का नाटक लिखा है, इसी का अनुवाद रूप अथवा इसी की पौराणिक कथा

लेकर भारतेन्दु जी ने यह मौलिक नाटक रचा है। इसमे चार अक है। राजा हरिश्चन्द्र के सत्य की विश्वामित्र मुनि ने कडी परीक्षा ली है। अन्त में सत्यनिष्ठ महाराज हरिश्चन्द्र की जय होती है। यह नाटक अभिनय की दृष्टि से भी पूर्ण सफल माना जाता है। केवल चौथा अक अधिक लम्बा है और एक ही पात्र है, इसलिए लम्बा वर्णन कुछ खटकता अवश्य है। शेष सुन्दर है।

भारत जननी—यह नाटक बगला के 'भारत माता' नामक नाटक का अनुवाद है, जो सन् १८७७ में भारतेन्दु जी ने किया है। सर्वप्रथम यह नाटक 'हरिश्चन्द्र चन्द्रिका' पत्रिका मे प्रकाशित हुआ था। इसमें भारत के सपूतो की फूट के कारण जो देश की दुर्गति हुई है, उसका सजीव चित्रण पाया जाता है। अत मे लेखक का देशभक्ति पूर्ण उपदेश भी है।

भारत दुर्दशा—भारतेन्दु जी ने यह 'नाट्य रासक' ६ अको मे सन् १८८० मे लिखा है। इसमे भारत का प्राचीन गौरव तथा तत्कालीन दुर्दशा का चित्रण है।

नीलदेवी—यह एक ऐतिहासिक 'गीतिरूपक' है जो सन् १८८१ में लिखा गया है। इसमे १० अक है। इसमे नीलदेवी स्वय युद्ध के पक्ष में नही है, परन्तु शत्रुओ से बदला भी लेना चाहती है, वह अवसर पाकर गायिका के वेश मे अमीर की मजलिस में दाखिल हो जाती है और मदोन्मत्त अमीर को अपने छुरे से समाप्त कर देती है। इस प्रकार इस वीरागना की ओजस्विनी अमर गाथा इस नाटक मे अगड़ाई ले रही है, जो देश की महिलाओ के लिए सर्वथा अनुकरणीय है।

भारतेन्दु ने भावावेश की शैली और तथ्य निरूपण की शैली मे ही लिखा है। भावावेश की शैली मे वाक्य छोटे-छोटे है, तद्भव शब्द भी है और उर्दू-फारसी के शब्दो का भी प्रयोग पाया जाता है और दूसरी शैली में सस्कृतगर्भित पदावली के दर्शन होते है। इस प्रकार भारतेन्दु ने हिन्दी साहित्य मे इतना महान् कार्य किया है कि समस्त साहित्य के इतिहास मे शायद ही किसी ने किया हो और अल्पायु मे चकित कर देने वाला कार्य समारम्भ, केवल

भारतेन्दु जी का ही कहा जा सकता है। इन पर भारतीय राष्ट्रभाषा-इतिहास को सदा गौरव एवं गर्व रहेगा।

अयोध्यासिंह उपाध्याय "हरिऔध"

प्रश्न २—हरिऔध जी का संक्षिप्त जीवन-वृत्त लिखकर उनकी रचनाओं का भी उल्लेख कीजिये।

उत्तर—'हरिऔध' जी का जन्म उत्तर प्रदेश के आजमगढ जिले के निजामाबाद नामक ग्राम में सं० १९२२ में हुआ। आपकी प्रारम्भिक शिक्षा का सूत्रपात आपके चाचाजी की देख-रेख में हुआ। हरिऔध जी ने फारसी पढ़कर सं० १९३६ में मिडिल परीक्षा में छात्रवृत्ति प्राप्त की। इसके पश्चात् अस्वस्थ रहने के कारण कालेज में न पढ़ सके और घर पर ही उर्दू, फारसी और संस्कृत भाषाओं का अध्ययन किया। आपका प्रारम्भिक जीवन आर्थिक सङ्कटों से पूर्ण था। सं० १९३९ में आपका विवाह हो गया और आपको विवश होकर सं० १९४१ में एक मिडिल स्कूल में अध्यापक होना पड़ा। कुछ ही दिनो के पश्चात् आपकी नियुक्ति 'सदर कानूनगो' के पद पर हो गई और आपने ३४ वर्ष तक इस पद पर कार्य किया। इसके पश्चात् काशी के हिन्दू विश्वविद्यालय में हिन्दी के अवैतनिक अध्यापक हो गए।

इसी समय आप 'हिन्दी साहित्य सम्मेलन' के सभापति भी रहे। सं० १९९५ में सम्मेलन ने आपको 'प्रिय प्रवास' के लिए १२००) रु० का 'मगला-प्रसाद' पारितोषिक देकर सम्मानित किया। साथ ही 'विद्यावाचस्पति' की उपाधि भी आपको प्रदान की गई।

सवत् २००२ में लगभग ८० वर्ष की अवस्था में हरिऔध जी का स्वर्ग-वास हो गया

रचनाएँ

महाकाव्य—प्रिय-प्रवास, वैदेही वनवास।

फुटकरसंग्रह—रुक्मणी-परिणय, काव्योपवन, प्रेम-प्रपंच, प्रद्युम्न विजय, प्रेमपुष्पोपहार, पद्यप्रसून, चोखे-चौपदे, चुभते चौपदे, बोलचाल, ऋतुमुकुर, पारिजात, प्रेमाम्बुप्रवाह आदि।

उपन्यास—अधखिला फूल, ठेठ हिन्दी का ठाठ, वेनिस का बाँका।

आलोचनात्मक रचनायें—हिन्दी भाषा और साहित्य का विकास, कबीर वचनावली, रसकलश।

निबन्ध—उपदेशकुसुम।

इस साहित्य से 'हरिऔध' जी की सर्वतोमुखी प्रतिभा और सार्वव्यापी साहित्य-सृजन का परिचय मिलता है। गद्य-पद्य सभी क्षेत्र मे भारतेन्दु जी ने जिस प्रकार अपनी लेखनी का प्रसार प्रदान किया था उसी प्रकार उपाध्याय जी भी सर्वव्यापी साहित्य की रचना कर गये। हिन्दी के प्रवन्ध काव्यो मे एक नवीन अध्याय का उन्होने उद्घाटन किया। सस्कृति, समाज-सुधार और राष्ट्रपिता का सम्वन्व 'हरिऔध' जी के साहित्य की सवसे प्रमुख विशेषता है।

प्रश्न २—'प्रियप्रवास' के महत्त्व का मूल्यांकन करते हुए सिद्ध कीजिये कि यह एक सफल महाकाव्य है।

अथवा

उपाध्याय जी के 'प्रिय प्रवास' नामक काव्य का महाकाव्यत्व, प्रकृति-चित्रण, चरित्र-चित्रण, विरह-वर्णन और भाषा प्रयोग की दृष्टि से आलोचनात्मक परिचय दीजिये।

उत्तर—'प्रियप्रवास' हरिऔध जी की सर्वोत्कृष्ट रचना है और हिन्दी साहित्य की विशेष निधि है। 'प्रियप्रवास' एक महाकाव्य है। इसमे कवि ने भक्तिकालीन तथा रीतिकालीन राधा तथा कृष्ण को ही अपनाया है, परन्तु इसमें उनका रूप सर्वथा भिन्न है।

महाकाव्यत्व—'प्रियप्रवास' मे प्राय. वे सभी लक्षण उपलब्ध होते है, जो कि प्राचीन आचार्यो ने महाकाव्य के लिए निर्धारित किए है। इसमे दस सर्ग है। इसके नायक राधा-कृष्ण पौराणिक एव ऐतिहासिक दोनो दृष्टियो से प्रसिद्ध है। इसमें प्राकृतिक दृश्यो का वहुत ही सुन्दर वर्णन हैं। इसमे महाकाव्यत्व के वाह्य लक्षण तो उपलव्ध होते है, परन्तु इसमें महाकाव्य के आन्तरिक लक्षणो का अभाव है। इसका घटना-क्रम वहुत शिथिल है। यदि इसमे से दो-तीन सर्ग निकाल भी दिये जायें तो भी कथानक के प्रवाह मे कोई

पाता नहीं पड़ती है। इसमें कवि ने मार्मिक स्थलों का चित्रित वर्णन न करके उनका उल्लेख मात्र ही किया है। यही कारण है कि कुछ विद्वान् इसके महाकाव्यत्व को संदिग्ध मानते हैं। स्वयं उपाध्याय जी ने भी इसे 'महाकाव्य' न मानकर 'महाकाव्याभास' अनुभव किया है।

'प्रिय प्रवास' के महाकाव्यत्व के संदिग्ध होने पर इसका महत्त्व न्यून नहीं होता है। क्योंकि इसमें वे सभी तत्त्व उपलब्ध हैं जो कि एक श्रेष्ठ काव्य में होने चाहियें। काव्य धारा में सरस मधुरामृत प्रवाहित हो रहा है। 'हरिऔध' जी ने पवनदूत की मौलिक कल्पना करके, कालिदास की मेघदूत वाली कल्पना को सजीव करके उसे भिन्न रूप में प्रस्तुत किया है इससे काव्य सौंदर्य में बहुत वृद्धि हुई है। आपने पौराणिक कृष्ण और राधा को लोक-सेवकों के रूप में प्रस्तुत कर बहुत ही प्रशंसनीय कार्य किया है। समय की गति-विधि के अनुसार साँचे बना लेना भी कवि की कुशलता ही है।

अतः हम कह सकते हैं कि 'हरिऔध' जी का 'प्रियप्रवास' महाकाव्य न सही, परन्तु हिन्दी साहित्य का एक परमोत्कृष्ट काव्य अवश्य है।

प्रकृति-चित्रण—प्राकृतिक पदार्थों का वर्णन किसी भी काव्य-ग्रन्थ के सौंदर्य में वृद्धि करता है और उसे आकर्षक बनाता है। कवि ने 'प्रियप्रवास' में अनेक प्राकृतिक दृश्यों का बहुत ही रोचक वर्णन किया है। आपने प्रकृति को आलम्बन तथा उद्दीपन दोनों ही रूपों में ग्रहण किया है। प्रियप्रवास में प्राकृतिक दृश्यों तथा ऋतु वर्णनों में एक विशेष क्रम पाया जाता है। प्रथम सर्ग में संध्या का, द्वितीय में रात्रि का, तृतीय में अर्द्धरात्रि का, चतुर्थ में ब्रह्ममुहूर्त का पंचम में उषा की लालिमा का तथा इसी प्रकार अन्य प्राकृतिक दृश्यों का बहुत ही सुन्दर तथा मनोमुग्धकारी वर्णन किया गया है।

चरित्र-चित्रण—'हरिऔध' जी ने 'प्रियप्रवास' में राधा और कृष्ण का चरित्र-चित्रण बहुत ही कुशलता से ही किया है। सभी चरित्र बहुत ही सजीव बन पड़े हैं। कवि ने पात्रों के चरित्र-चित्रण में अभिधा शक्ति का ही आश्रय लिया है।

पुराणों में श्रीकृष्ण को 'ईश्वर' माना गया है, परन्तु 'हरिऔध' जी ने उन्हें एक महापुरुष के रूप में चित्रित किया है। श्रीकृष्ण की गोवर्द्धन पर्वत को

उठाने की घटना को कवि ने स्वाभाविक रूप दे दिया है। कवि ने प्रियप्रवास मे यह स्पष्ट किया है कि श्री कृष्ण ने व्रजवासियो को वर्षा की वाढ से पर्वत उठाकर नही बचाया, वल्कि वे उन्हे पर्वत के किसी ऊचे भाग मे ले गये थे। कृष्ण जी के द्वारा दावानल पान करने की घटना को इस प्रकार चित्रित किया है कि उन्होंने अग्नि में जलते हुए गोप और गोपिकाओ की रक्षा की थी। इसी प्रकार प्रियप्रवास की राधा रीतिकालीन कवियो की राधा से सर्वथा भिन्न है। राधा का श्रीकृष्ण से अनुराग तो है परन्तु वह उनके लिए अधीर नही होती है, क्योकि उसका प्रेम पवित्र एव सात्विक है। राधा स्वय लोकसेवा में विश्वास करती है और पवन को दूत बनाकर श्रीकृष्ण के पास भी उसी सेवा के लिए सदेश भेजती है। लोकसेवा को ही वह भगवान की सेवा मानती है। वह कर्मवीरो की भाँति अपने समस्त जीवन को लोक-सेवा मे लगा देती है।

विरह-वर्णन—'प्रियप्रवास' मे विरह वर्णन मर्यादापूर्ण, विशुद्ध एवं स्वाभाविक है। श्रीकृष्ण राधा और अन्य गोपियो के विरह मे वहुत दु खी है, परन्तु कर्त्तव्य के कारण व्रज जाना नही चाहते है। राधा भी विरह में व्याकुल है, परन्तु आत्म गौरव तथा स्वाभिमान के कारण वह भी द्वारिका नही जाना चाहती है। इस प्रकार विरहाग्नि मे तप्त होकर राधा तथा कृष्ण का चरित्र रूपी सुवर्ण 'कुन्दन' वन गया है, उज्ज्वल हो गया है वे दोनो (राधा-कृष्ण) ही तन-मन से जन-सेवा मे तल्लीन हो गये है।

भाषा-प्रयोग—'प्रियप्रवास' की भाषा खडी वोली है। सस्कृत के शब्दो की अधिकता होने पर भी उसमे दुरूहता नहीं आ पाई है। भाषा पात्रो के अनुकूल है वृद्ध आभीर की भाषा वहुत ही सरल है। नन्द, श्रीकृष्ण, राधा और उद्धव आदि की भाषा आभीर की भाषा की अपेक्षा कुछ कठिन है। 'हरिऔध' जी ने सस्कृत के छदो मे संस्कृत पदावली का प्रयोग किया है, परन्तु हम इसे अनुचित नही कह सकते।

प्रश्न ४—'वैदेही-वनवास' के भाव-पक्ष एव कला-पक्ष की समीक्षा कीजिए।

अथवा

"वास्तव में वाल्मीकि-रामायण के सीता-निर्वासन-प्रसंग को पढ़कर आधुनिक पाठक के मन में जो शंकाएं उत्पन्न होती हैं, 'वैदेही-वनवास' में उन सब शंकाओं का समाधान पाया जाता है।" ऐसा कहाँ तक उचित है? इसकी कलात्मक विशेषताओं का भी निर्देश कीजिए।

उत्तर—अयोध्यासिंह उपाध्याय 'हरिऔध' जी की रचनाओं में 'प्रियप्रवास' के पश्चात् 'वैदेही-वनवास' का स्थान है। इन्हीं दोनो कृतियो के कारण ही 'हरिऔध' जी को साहित्यिक क्षेत्र मे यश की प्राप्ति हुई। नवीन उद्भावना शक्ति के द्वारा ही 'हरिऔध' जी ने 'वैदेही-वनवास' में एक विस्मृत कथा को नवीन रूप प्रदान किया है। 'वाल्मीकि-रामायण' तथा भवभूति के 'उत्तर-रामचरित' मे आये हुए सीता वनवास के वर्णन को कवि ने 'वैदेही-वनवास' में नवीन रूप मे चित्रित किया है। इस प्रसंग को राम के चरित्र की दुर्बलता समझकर गोस्वामी तुलसीदास तथा अन्य राम-भक्त कवियो में से किसी ने भी इस प्रसंग पर लेखनी उठाने का साहस नहीं किया, परन्तु उपाध्याय जी ने 'वैदेही-वनवास' मे इस प्रसंग पर लेखनी चलाई है। परन्तु उन्होंने इस प्रसंग को अपने पूर्ववर्ती कवियो से भिन्न रूप मे अपनाया है। राम की प्रजावत्सलता को सर्वोपरि प्रकट करने के लिये संस्कृत के कवियों ने सीता का त्याग दिखाया है, परन्तु राम के द्वारा सीता के त्यागने का ढंग ऐसा है कि राम जैसा उदार पुरुष इस प्रकार की भीरुता का कार्य नहीं कर सकता। यही कारण है कि यह प्रसंग राम के चरित्र की दुर्बलता बन गया है। परन्तु वर्तमान युग स्त्री जाति के उत्थान का युग है उसकी चहुँमुखी उन्नति हो रही है, उसे पुरुष के समान अधिकार प्राप्त हो रहे हैं, इसलिये आज उस प्रकार का वर्णन असस्वाभाविक एवं अनौचित्यात्मक माना जायेगा। इसी कारण से 'हरिऔध' जी ने इसे सर्वथा नवीन रूप दिया है। इस पर बुद्धिवाद का स्पष्ट प्रभाव है। राम और सीता दोनों ही बुद्धिवादी हो उठे हैं। संस्कृत काव्य की भाँति राम के चरित्र में दुर्बलता प्रकट न करके कवि ने दोनों (राम और सीता) को साहसी, निडर तथा कर्तव्यपरायण चित्रित किया है। वे परस्पर एक दूसरे को दोषी नहीं देते हैं। वे तो विश्वास उत्पन्न कर कर्तव्य की

भावना से निश्चय पूर्वक त्याग करते है। इस प्रसग में 'वैदेही-वनवास' का महत्व बहुत अधिक हो गया है।

धोबी के कहने पर सीता को वनवास दे देना राम के चरित्र की दुर्बलता को प्रकट करता है, इसलिए उपाध्याय जी के 'वैदेही-वनवास' मे सीता वनवास का कायरतापूर्ण बहाना न लेकर तत्कालीन परम्पराओ, पारिवारिक कठिनाइयो एव सामाजिक समस्याओ का हल करने के लिए राम स्वय सीता से वनवास का प्रस्ताव करते है। सीता भी वन जाने से नही घबराती है, क्योकि कुल-गुरु के आश्रम मे जाकर रहने की रीति तो प्रचलित ही है। उन्हे वन-गमन से जो क्षणिक सकोच होता है, उसका कारण उनकी विरह वेदना है। विरह की कल्पना ही सीता को भयभीत करती है। परन्तु 'वैदेही वनवास' की सीता सस्कृत ग्रथों की सीता की भाँति अवला नही है, वह तो नवयुग की प्रतीक बुद्धि से युक्त, सजग तथा कर्त्तव्याकर्त्तव्य को समझने वाली नारी है। वह सामाजिक हित के लिये अपने सुखो तथा स्वार्थों की वलि दे देती है, वह कर्त्तव्य पथ पर दु.खो को हँसते-हँसते सहन करती है।

'वैदेही-वनवास' मे कवि ने राम को अत्यन्त धैर्यवान एव सहिष्णु महा-पुरुष के रूप मे चित्रित किया है। राम इस बात को भली भाँति समझते है कि राज्य के दुष्ट व्यक्ति उनका तथा सीता का साथ रहना सहन नही कर सकते, क्योंकि सीता जी ही उनको दुष्टो के विनाश के लिये उभारती रहती है। इस समस्या का हल दो ही प्रकार से हो सकता है—या तो दुष्टो का नाश कर दिया जाय या सीता को वनवास देकर उनका हृदय परिवर्तन किया जाय। शत्रु का हृदय परिवर्तित करके उन्हे अपना बनाना भारतीय सस्कृति की विशेषता है। इसीलिए राम स्वय कष्ट सहन करके प्रजा के हृदय को परिवर्तित करना चाहते है। सीता भी उनके इस कार्य मे अपनी सहमति देती है। ऐसी स्थिति मे सीता को वनवास देना राम के चरित्र की दुर्बलता या उनका अत्याचार नही कहा जा सकता, यह तो वर्तमान युग के लिये एक सन्देश है। 'प्रियप्रवास' मे इस प्रकार सीता का चरित्र भी लोक या समाज के पथ-प्रदर्शन की दृष्टि से बहुत महत्त्वपूर्ण बन गया है।

अब यह कहना उचित ही है कि उपाध्याय जी की कृति "वैदेही-वनवास"

युग की प्रतिनिधि रचना है। युग की बौद्धिकता,प्रजा-वत्सलता तथा गांधीवाद का तो इस पर प्रभाव है ही, परन्तु वैदिक आदर्श और राम-राज्य का सच्चा आदर्श भी इसमे प्रस्तुत किया गया है।

प्रकृति-चित्रण—'वैदेही वनवास' मे प्रकृति चित्रण बहुत ही प्रभावशाली है। 'प्रिय-प्रवास' मे जहाँ क्लिष्ट चित्र पाये जाते हैं, वहाँ 'वैदेही-वनवास' मे सलिष्ट चित्रो की प्रचुरता है। 'हरिऔध' जी ने उनका इतना सजीव चित्रण किया है कि पाठक उन्हे अपने नेत्रो के सामने प्रत्यक्ष सा अनुभव करने लगते हैं और उन्ही मे आनन्द मग्न हो जाते है।

भाषा-शैली—'वैदेही वनवास' की भाषा-शैली भी अपनी पृथक विशेषता रखती है। कवि ने अपनी इस कृति मे हिन्दी के मात्रिक छदो का प्रयोग किया है। इसमे खडी बोली का बहुत ही निखरा हुआ रूप है।

अलंकार—'वैदेही-वनवास' मे अलकारो का भी प्रचुर प्रयोग है। इन अलकारो के प्रयोग ने कविता मे अस्वाभाविकता नही आने पाई है। कवि ने अलकारो के साथ भावो का सामजस्य भी बहुत कुशलता से किया है और भावो की प्रधानता पर विशेष ध्यान दिया है। यही कारण है कि उनके काव्य मे किसी भी प्रकार की कृत्रिमता नही आ पाई है और न ही काव्य-सौंदर्य पर किसी प्रकार का आघात हुआ है। 'हरिऔध' जी इस तथ्य से भली-भाँति परिचित थे कि यदि अलकार तथा भावो का सामजस्य हो, तो वे भावश्री तथा काव्यश्री की वृद्धि करते है। इसीलिये उनके काव्य मे सौंदर्य-सौरभ निमग्न हुआ है।

रस—'वैदेही-वनवास' का प्रमुख रस करुणा है। रस की दृष्टि से इसे हम विप्रलम्भ के अन्तर्गत रख सकते है। साधारणीकरण की दृष्टि से इसमे रस परिपाक अधिक हुआ है।

इस प्रकार हम देखते है कि भावपक्ष तथा कलापक्ष मे सर्वथा नवीनता लिये हुए 'वैदेही-वनवास' नवीन कोटि का काव्य है। कुछ अशो मे तो यह कृति 'प्रिय-प्रवास' से भी श्रेष्ठ बन पडी है। वास्तव मे 'हरिऔध' जी को 'वैदेही-वनवास' मे जो यश प्राप्त हुआ है, वह उन्हे 'प्रिय-प्रवास' से भी नही हुआ।

प्रश्न ५—उपाध्याय जी के विरह-वर्णन की प्राचीन भक्त कवियो से तुलनात्मक समालोचना करते हुए प्रत्येक की विशेषता पर प्रकाश डालिये।

अथवा

"उपाध्याय जी के विरह वर्णन में प्राचीन भक्त कवियो के विरह की अपेक्षा एक सजीवता है, मौलिकता है।" इस कथन की सत्यता को सप्रमाण सिद्ध कीजिये। (प्रभाकर नवम्बर १९५८)

उत्तर—'प्रिय-प्रवास' हरिऔध जी का एक विरह-काव्य है। विरह की तीव्र अनुभूति की अभिव्यक्ति ही इस काव्य का चरम उद्देश्य है। 'प्रिय-प्रवास' के विरह की अपनी पृथक् विशेपता है। प्राचीन कवियो ने राधा तथा कृष्ण को पति-पत्नी का रूप देकर उनके विरह का वर्णन किया है। उनके विरह मे उद्दाम शृंगार, ऐंद्रियता और कामुकता प्रधानरूप से लक्षित होती है। केवल राधिका ही कृष्ण को पति रूप मे ग्रहण नही करती है, वल्कि सभी गोपियाँ कृष्ण की भक्ति पति रूप मे करती थी। इसीलिये गोपियो को तथा राधिका को कृष्ण के वियोग का दुःख असह्य प्रतीत होता है, क्योकि अब वे श्रीकृष्ण के साथ रहकर जो अलौकिक आनन्द प्राप्त करती थी वह अब उन्हे प्राप्त नही हो सकेगा। कही-कही पर तो गोपियो का कृष्ण के प्रति प्रेम राधिका के प्रेम से भी वढकर चित्रित किया गया है। प्राचीन भक्त कवियो की दृष्टि मे श्रीकृष्ण भी गोपिकाओ के विरह में व्याकुल अवश्य है, परन्तु उन्हें राधा तथा गोपिकाओ के ध्यान के साथ-साथ व्रज का भी ध्यान है। वे ऊधो से कहते है—

ऊधो ! मोहि व्रज विसरत नाहीं ॥
हंससुता की सुन्दर कगारी, अरु कुंजन की छाँही।

प्राचीन भक्त कवियो ने विरह का जो वर्णन किया है वह उस युग की परिस्थितियो के फलस्वरूप है, परन्तु वे परिस्थितियाँ भी अस्पष्ट सी है। जव परिस्थियो मे ही कोई विशेप कारण निर्दिष्ट नही तो फिर कवि ही क्या निर्देश करें ? कृष्ण ने जिन कामनियो (गोपियो) का उपभोग किया, उनको इस प्रकार अचानक ही उन्होने कैसे भुला दिया ? जव कृष्ण की रानियो की सख्या १६००० वताई जाती है, तो फिर उन्होने इन गोपियो की ही उपेक्षा

क्यों की ? कृष्ण गोपियों से केवल ३ कोस दूर ही रह रहे थे, फिर गोपियाँ ही स्वयं उनके पास क्यों नही चली गई ? जगन्नाथदास 'रत्नाकर' ने गोपियों के द्वारा उद्धव से अपनी (गोपियों की) दशा का कितना स्पष्ट वर्णन करवाया है—

प्रथम मुराइ चाउनाव पै चढ़ाइ नीकैं।
प्यारी करी कान्ह कुलकूल हितकारी वैं।
प्रेम रत्नाकर की तरल तरंग पारि।
पलटि पराने धुनि पुन पतवारी वैं।

यदि गोपिकायें यही बात स्वयं कृष्ण से जाकर कहतीं तो कितना अच्छा होता परन्तु समझ मे नहीं आता कि उन्होंने ऐसा क्यो नहीं किया ? किसी भी भक्त कवि ने इसका कारण स्पष्ट नहीं किया है।

प्राचीन भक्त कवियो के विरह वर्णन ने आज वैज्ञानिको के हृदय में अनेक शंकाए उत्पन्न हो रही हैं। इन शंकाओ का समाधान तत्कालीन साहित्यों में उपलब्ध नहीं है। परन्तु उपाध्याय जी के विरह वर्णन से वर्तमान युग के वैज्ञानिको की सभी शंकाओ का समाधान हो जाता है। इनके विरह वर्णन की सबसे बडी विशेषता यह है कि उन्होने राधा-कृष्ण के प्रेम को पराकाष्ठा तक पहुँचाया है, परन्तु इन्हे पति और पत्नी के रूप मे ग्रहण न करके राधिका को जीवन पर्यन्त अविवाहिता ही रखा है। यद्यपि उनकी अभिलाषा पति-पत्नी के रूप मे बँध जाने की होती है, परन्तु जब उन्हें ऐसा करने का अवसर प्राप्त होता है तो वे सदा के लिए एक दूसरे से बिछुड जाते हैं। उपाध्याय जी ने यह भी स्पष्ट किया है कि श्रीकृष्ण के प्रति गोपिकाओ का विशेष प्रेमाकर्षण नहीं था, वे तो उनके विरह मे इसी प्रकार व्याकुल थी जिस प्रकार दूसरे सभी ब्रजवासी उनके गुणो पर मुग्ध होकर उनके विरह मे तड़पते थे।

उपाध्याय जी ने यह भी स्पष्ट कर दिया है कि श्रीकृष्ण जी राजनैतिक पचडों मे पडने के कारण राधिका के पास नही जा सके। स्वयं श्रीकृष्ण ने विरह संतप्त होकर यह बात उद्धव से कही, राधिका भी एक मानिनी नारी है। वह भी बिना बुलाये श्रीकृष्ण के पास जाने को तैयार नहीं है।

उपाध्याय जी द्वारा वर्णित राधा तथा कृष्ण के विरह मे एक अनिवर्चनीय सात्विकता है। राधा और कृष्ण के मिलन मे तीन कोस की दूरी बाधक नही अपितु श्रीकृष्ण एक महान् लक्ष्य की पूर्ति में सलग्न थे, इसलिए उनके लिए शैशव के प्रेमांकुर को विकसित होने से रोकना स्वाभाविक ही था।

'हरिऔध' जी की राधिका का हृदय बहुत गम्भीर है। वह अपने मन मन्दिर मे प्रेम की अग्नि जलाती हुई कर्त्तव्य की वेदी पर न्यौछावर हो जाती है। वह कृष्ण की इच्छा में ही अपनी सब कामनाएँ होम कर देती है। ऐसी कर्त्तव्य-परायण नारियाँ ससार मे सर्वथा दुर्लभ है। अपने जीवन की भेंट देकर राधिका ने अपने अक्षय प्रेम को साहित्य में सचमुच अमर बना दिया है।

इस प्रकार हम देखते है कि 'हरिऔध' जी के विरह वर्णन मे प्राचीन भक्त कवियो के विरह की अपेक्षा एक सजीवता है, मौलिकता है। 'प्रियप्रवास' की राधा और कृष्ण का चरित्र रूपी स्वर्ण विरहाग्नि में तपकर कुन्दन बन गया है।

मैथिलीशरण गुप्त

प्रश्न ६—मैथिलीशरण गुप्त का संक्षिप्त जीवन परिचय देकर उनकी कृतियों का वर्गीकरण कीजिये।

उत्तर—गुप्त जी का जन्म सेठ रामचरण जी वैष्णव के यहाँ स० १९४३ में उत्तर प्रदेशीय चिरगांव जिला झाँसी में हुआ। गुप्त जी के पिता एक वैष्णव भक्त तथा कवितानुरागी भावुक व्यक्ति थे, इसीलिए सांस्कृतिक निष्ठा तथा कवित्व प्रतिभा ये दोनो विभूतियाँ अचल सम्पत्ति की भाँति इन्हें उत्तराधिकार मे प्राप्त हुई। गुप्त जी ने प्रारम्भिक शिक्षा घर पर ही मुन्शी अजमेरी से प्राप्त की। यही कारण है कि गुप्त के मन में कभी भी मुसलमानो के प्रति घृणा उत्पन्न नही हुई। गुप्त जी की सब से बडी विशेषता यह है कि वे जन्मजात कवि न हो कर अपने अविरल अभ्यास तथा अथक अध्यवसाय से महान् कवि बने है। यद्यपि गुप्त जी किसी कालेज तथा विश्वविद्यालय मे नही पढे, परन्तु परिश्रम करके आप सस्कृत और बंगला भाषाओं के प्रकाण्ड पडित बन गए। गुप्त जी के साहित्यिक गुरु आचार्य

महावीरप्रसाद द्विवेदी जी थे। इनके गुरुत्व ने गुप्त जी की काव्य प्रतिभा को विकसित किया। अपने मान्य गुरु श्री द्विवेदी जी के प्रति हार्दिक कृतज्ञता प्रदर्शित करते हुए गुप्तजी ने साकेत के प्रारम्भ में श्रद्धा से स्मरण किया है—

करते तुलसीदास भी कैसे मानस नाद।
महावीर का यदि उन्हें मिलता नहीं प्रसाद॥

गुप्त जी के हृदय में राम भक्ति, देश भक्ति तथा प्राचीनता के प्रति अनुरक्ति रूपी त्रिवेणी का संगम हो रहा है। सर्वधर्म समन्वयमूलक साम्प्रदायिक उदारता की भावना आपमें स्वाभाविक रूप से है। भारत के राष्ट्रपति द्वारा आपको राज्य परिषद का सदस्य निर्वाचित किया जाना आपके प्रति राष्ट्र के सम्मान का सूचक है। आपकी रचनाएँ गुणोत्कर्ष तथा परिमाण की दृष्टि से हिन्दी साहित्य में अपना विशेष स्थान रखती हैं। गत ४० वर्ष से राष्ट्र में जो भाव धारा प्रवाहित होती रही उसे कविता का रूप देकर आपने सदा के लिए अमर कर दिया है। आपका साहित्य इतना विशाल और विशद है कि कोई भी पाठक उसके प्रभाव से अछूता नहीं रह सकता। यद्यपि गुप्त जी ने सभी रचनाएँ प्राचीन ऐतिहासिक गौरव-गाथाओं के आधार पर ही रची हैं, फिर भी मौलिक उद्भावनाओं का ऐसा सुन्दर पुट लगा दिया है, जिससे वे वर्तमान युग के नवीनतम विचारकों के लिए भी समादरणीय हैं। गुप्त जी की समस्त रचनाओं को तीन भागों में विभक्त किया जा सकता है—

(१) राष्ट्रीय व जातीय विचारात्मक काव्य—भारत-भारती, स्वदेश संगीत, वैतालिक, अजित, हिन्दू, पत्रावली।

(२) भावात्मक गीति काव्य—झंकार, मंगलघट।

(३) ऐतिहासिक कथानक काव्य—दिवोदास, नहुष, शकुन्तला, पंचवटी, साकेत, जयद्रथवध, त्रिपथगा, बक-संहार, वन-वैभव श्री सैरन्ध्री, द्वापर, शक्ति, यशोधरा, कुणाल, अनघ, सिद्धराज, कावा और करबला, गुरुकुल, रंग में भंग, विकट भट, किसान, अजित आदि।

इन रचनाओं के अतिरिक्त गुप्त जी की कुछ अनूदित रचनाएँ भी हैं, 'मेघनाद वध' माइकेल मधुसूदन के बंगला काव्य का अनुवाद है। गुप्त जी ने उमर खय्याम की रुबाइयों का भी पद्यानुवाद किया है। गुप्त जी ने कई

भिन्न तुकान्त कविताएँ तथा मुक्तक भी लिखे है।

प्रश्न ७—गुप्त जी की प्रसिद्ध कृतियों 'यशोधरा', तथा 'साकेत' का समीक्षात्मक परिचय देकर कवि की उन काव्य विशेषताओ का उल्लेख कीजिए जिनके आधार पर उन्हें राष्ट्र-कवि कहा जाता है।

उत्तर—गुप्त जी की सर्व प्रसिद्ध रचनाए यशोधरा तथा साकेत हैं। इन दोनो मे ही पौराणिक युग की दो विभिन्न किनारो की घटनाएँ है।

यशोधरा—गुप्त जी की अमर कृति यशोधरा मे गौतम के गृह-त्याग से लेकर पुनरागमन तक की कथा का वर्णन है। इसके प्रत्येक पद मे यशोधरा की अन्तर्वेदना निहित है। कवि नारी जीवन के मूलभूत तत्वो की ओर सकेत करता हुआ कहता है—

> अबला जीवन हाय ! तुम्हारी यही कहानी,
> आँचल में है दूध, और आँखो में पानी।

'यशोधरा' मे इसी 'दूध' और 'आसू' की कहानी है। निस्सदेह यशोधरा एक व्यथित वियोगिनी है। उसे अपने पति से यही शिकायत है कि वे अर्द्ध-रात्रि को विना कुछ कहे नव-जात शिशु तथा पत्नी को त्याग कर चुपचाप चले गए—

> सखि वे मुझ से कहकर जाते......

यह अवश्य है कि गौतम का गृह-त्याग विश्व के कल्याण के लिए था परन्तु क्या उनकी पत्नी यशोधरा उनके इस महान् कार्य मे रोड़ा बन जाती ? गौतम ने उससे पूछकर ग्रह-त्याग क्यो नही किया ? इसका उत्तर यही हो सकता है कि नारी अबला होती है। परन्तु गौतम इस बात को क्यो भूल गए कि क्षत्राणी स्वय अपने हाथ से सजाकर पति को युद्ध भूमि मे भेजती है। इससे स्पष्ट है कि गौतम का यह कृत्य यशोधरा के स्वाभिमान को चुनौती था। अबला नारी ने भी यह चुनौती स्वीकार की और जब गौतम सिद्धार्थ बनकर वापिस आये तो वह स्वय उनसे मिलने के लिए नही गई, यद्यपि सारा ससार उनके दर्शनो के लिए टूट पडा। अन्त मे गौतम ही उसके पास आये। इसमे यशोधरा के नारीत्व की विजय है। मुक्ति के लिए जिस नारी का त्याग आवश्यक था उसी के लिए गौतम वापिस आये, यही तो नारीत्व

का गौरव है, विजय है। गौतम के उसके पास आने पर यशोधरा ने अपनी अश्रु धारा से उनका पद प्रक्षालन किया, राहुल को उनके चरणों पर रख दिया और स्वय सधानुगामिनी हुई। यही यशोधरा की कथा है।

कवित्व की दृष्टि से यशोधरा गुप्त जी की एक अनुपम कृति है। इस काव्य ग्रन्थ में गुप्त जी का कलाकार और कवि सतत, सचेत, सक्रिय एव जागरूक रहा है। सभवत इसी कारण से कवि ने अपनी इस महान् कृति में छन्दों के बधनो में बँधकर रहना स्वीकार नही किया है। इसकी शैली चम्पू है। गौतम के गृह-त्याग की कथा का आधार लेकर कवि ने इसमे यशोधरा की विरह-वेदना, मातृत्व तथा नारीसुलभ स्वाभिमान का चित्रण किया है। इसीलिए इसे नायिका प्रधान काव्य कहा जा सकता है। इसमे कवि ने नायिका की मन स्थितियो तथा आवेगों का बहुत ही सजीव चित्रण किया है। विरह वर्णन के बहाने कवि को विशद प्रकृति चित्रण करने मे सफलता प्राप्त हुई है। राहुल जननी का वात्सल्य वर्णन भी बहुत सबल तथा सजीव है। स्वाभिमान का स्थैर्य भी दर्शनीय है। भाषा, भाव तथा शैली प्रत्येक दृष्टि से यशोधरा एक सफल काव्य ग्रन्थ है।

साकेत—साकेत गुप्त जी का प्रबन्ध काव्य है। इस रचना ने भारतीय राम काव्य की परम्परा में एक नवीन अध्याय और सम्मिलित किया है। वाल्मीकि रामायण के राम अयोध्यापति राम है। तुलसी के मानस के राम मर्यादा पुरुषोत्तम राम है, किन्तु साकेत मे राम भगवान् न होकर मानव हैं। सीता को राक्षसो से छुडाकर लाने वाले देश-भक्त राम है और भूतल को स्वर्ग बनाने वाले उद्योगी राम हैं।

राम ! तुम मानव हो, ईश्वर नहीं हो क्या ?,
तो मैं भी निरीश्वर हूँ, ईश्वर क्षमा करें।

कवि ने साकेत की रचना राम रूप चित्रण के लिए नही की है और न ही उन्होंने रामायण की कथा को दोहराने के लिए इसकी रचना की है। कवि ने इस रचना के उद्देश्य के विषय मे यह स्वीकार किया है कि 'साकेत' की रचना उपेक्षिता उर्मिला के आँसुओ पर हुई है। इसीलिए 'साकेत' भी 'यशोधरा' की भाँति एक नायिका-प्रधान काव्य-ग्रन्थ है और इसमे भी एक पारिवारिक

आख्यान दिया हुआ है। यह भी अबला के आँसुओ की एक कहानी है। यशोधरा और साकेत में केवल इतना अन्तर है कि प्रथम में पुरुष नारी को त्याग कर चला जाता है, परन्तु दूसरे में नारी ने नर का परित्याग किया है। पुरुष ने नारी को अपने मार्ग का रोडा समझकर उसका परित्याग किया, परन्तु नारी ने भी अपने आप को अपने पति के पथ की बाधा न बनने के लिए उसका त्याग किया—

कहा उर्मिला ने हे मन,
तू प्रिय-पथ का विघ्न न बन।

गुप्त जी ने अपने इस प्रबन्धकाव्य को युगानुकूल बनाने के लिए उसमें अनेक परिवर्तन किये है—(१) गुप्त जी ने साकेत को घटना-प्रधान बनाने के स्थान पर चरित्र-प्रधान रचना बना दी है। (२) इसमे कवि का दृष्टिकोण धार्मिक न होकर राष्ट्रीय रहा है। (३) काव्य का मूलाधार उपेक्षिता उर्मिला का विरह-वर्णन है। (४) प्रधान रस शृंगार है। (५) काव्य का आरम्भ लक्ष्मण-उर्मिला सवाद से हुआ है। इसका नाम परम्परा के अनुसार किसी पात्र के नाम पर न होकर राष्ट्र साकेत (अयोध्या) के नाम पर है। इन सब बातो से यह स्पष्ट हो जाता है कि यह काव्य अपने उद्देश्य मे नवीनता लिए हुए है। 'साकेत' की रचना की परिस्थितियाँ भी वही थी जो कि 'प्रिय-प्रवास' की रचना की थी, इसीलिए इसका भी राष्ट्रीय एव बुद्धिवादी होना स्वाभाविक ही है।

महाकाव्यत्व—'साकेत' को महाकाव्य की श्रेणी मे नही रखा जा सकता, क्योकि इसमे महाकाव्य के लक्षणो का अभाव है। इसलिए इसे प्रबन्धकाव्य कहना ही उचित है।

'साकेत' मे निम्नलिखित विशेषताए है—

(१) राष्ट्रीय दृष्टिकोण—गुप्त जी का साकेत पौराणिक प्रबन्धकाव्यो में सर्वप्रथम रचना है, जिसमें राम-काव्य की परम्परा में कवि का राष्ट्रीय दृष्टिकोण रहा है। साकेत के राम महान् मानव होने के साथ-साथ राष्ट्र संरक्षक भी है और वे इस पृथ्वी को ही स्वर्ग बनाने आये है। इसी कारण से राम राजकीय सुखो को त्याग कर अत्याचारी रावण-राज्य की समाप्ति कर

भूतल को स्वर्ग बनाने के लिए वन-वन भटकते फिरते है। रावण से युद्ध का कारण बताते हुए राम अपने सैनिको से कहते हैं—

भारत लक्ष्मी पडी राक्षसों के बन्धन मे,
सिन्धु पार वह बिलख रही है व्याकुल मन में।
मेटूँ अपने जडीभूत जीवन की लज्जा,
उठो इसी क्षण सूर तजो सोने की सज्जा।

यही राष्ट्रीय चेतना समस्त ग्रन्थ में है। इसलिए इस काव्य को धार्मिक न कहकर राष्ट्रीय कहना ही उचित है। इसमें गाँधीवादी विनत विद्रोह, समश्रम, ग्राम-सुधार आदि भाव यत्र-तत्र सर्वत्र उपलब्ध होते हैं।

चरित्रों में परिवर्तन—चरित्रो में परिवर्तन भी गुप्त जी के इस काव्य की एक विशेषता है। आज बुद्धिवादी युग में यह माना जा सकता है कि दशरथ, राम, सीता आदि पात्रो के चरित्रो में गुण ही गुण हो, परन्तु कैकयी को सर्वथा कलकिनी ही नही माना जा सकता। उर्मिला का त्याग भी सीता से किसी प्रकार न्यून नही है, अधिक कहा जाय तो अनुचित न होगा, परन्तु उसे सीता के समान सम्मान प्रदान नही किया गया, उसे तो उपेक्षित कर दिया गया है। आज यह एकपक्षीय विचारधारा सहन नही हो सकती। प्राचीन कवियो की एकांगीण, सकीर्ण मनोवृत्ति ने इन्हें उपेक्षिता तथा कलंकिनी बना कर छोड दिया है, परन्तु गुप्त जी ने उनका मार्जन किया है।

उर्मिला—यदि वह चाहती तो लक्ष्मण को राम के साथ वन जाने से रोक सकती थी, यह उसका अधिकार था। परन्तु उसके पति सेवा-पथ पर जा रहे थे, राम के सेवक बनकर जा रहे थे, इसीलिए उर्मिला का उस समय पति के सम्मुख जाना भी उनके मार्ग में विघ्न उत्पन्न कर सकता था। यह तो ठीक है कि उर्मिला अपने प्रियतम के पथ में बाधक नही हुई, परन्तु अपने जीवन-पथ का विघ्न अवश्य बन गई। उसके हठमय त्याग ने उसको इतना क्षीण एव खिन्न कर दिया कि लक्ष्मण भी पचवटी में उसको पहचान न सके—

"यह काया है या शेष उसी की छाया।"

यद्यपि 'साकेत' मे गुप्त जी ने समस्त नवम् सर्ग में उर्मिला के विरह का

वर्णन किया है, परन्तु फिर भी उनके विचार में उर्मिला के चरित्र का पूर्ण विकास नही हो पाया है, वह अपूर्ण ही रह गया है।

कैकेयी—गुप्त जी ने कैकेयी के चरित्र में बहुत कुछ परिवर्तन कर डाला है। तुलसी के 'मानस' की कैकेयी कुबुद्धि, कुजाति, कुचली, तथा कुकर्मा है। यद्यपि 'साकेत' में भी कही कैकेयी के चरित्र को अच्छा नही बताया गया है, परन्तु इसमें गुप्त जी ने कैकेयी के द्वारा अपने कुकर्मों के प्रति पश्चात्ताप कराकर उसके चरित्र को निखार दिया है। कुटिल मथरा दासी की कुमन्त्रणा ने कैकेयी को अपना शिकार बनाया, उसे सासो का कोप, शत्रुघ्न तथा भरत के वाग्बाण तथा लक्ष्मण द्वारा किया गया घोर तिरस्कार भी सहन करना पड़ा और इस पर भी समाज ने उसे क्षमा नहीं किया। गुप्त जी ने कैकेयी के चरित्र को इतना भोला तथा भावुक चित्रित किया है कि मथरा के इस सदेहशील वाक्य से उसकी बुद्धि फिर जाती है—

भरत से सुत पर भी सन्देह,
बुलाया तक न उसे जो गेह।

पचवटी में भरी सभा मे कैकेयी भी अपने पुत्र भरत को कलकित होने से बचाने के लिए कहती है—

यदि मैं उकसाई गई भरत से होऊँ,
तो पति समान ही आज पुत्र भी खोऊँ।

कैकेयी ने जो कुकर्म किया है उसका वह अपनी भूल या होनहार नही कहती है, वह तो उस सबका दोष अपने सिर पर लेती है। यहाँ तक कि मंथरा से भी उसे कोई शिकायत नही है—

क्या कर सकती थी मरी मंथरा दासी,
मेरा मन ही जब रह न सका विश्वासी।

वह अपने किए गए कुकर्मों का पाश्चात्ताप इन शब्दो मे करती है—

युग युग तक चलती रहे कठोर कहानी,
रघुकुल में भी थी एक अभागिन रानी।

इस प्रकार हम देखते है कि गुप्त जी के 'साकेत' की कैकेयी अन्य कवियों की कैकेयी की अपेक्षा सुमार्जित है। 'साकेत' में वह समाज के तिरस्कार की पात्र

न होकर आदर की पात्र बन गई है। 'साकेत' में गुप्त जी ने इन उपेक्षित तथा कलंकित चरित्रों में पर्याप्त परिवर्तन किया है।

संवाद—'साकेत' में नाटक की भाँति संवाद दिए गए हैं। इसका आरम्भ ही लक्ष्मण-उर्मिला संवाद से होता है। इनमें राम-सीता, दशरथ, मंथरा तथा कैकेयी सभी के संवाद बहुत ही सुन्दर एवं प्रभावशाली हैं। लक्ष्मण तथा उर्मिला के संवादों में दाम्पत्य-शृंगार की सुन्दर अभिव्यंजना हुई है। राम और सीता के संवादों में जीवन के नव-निर्माण की योजना व्यक्त की गई है। दशरथ-कैकेयी संवादों में कैकेयी की भावुकता तथा भोलेपन का आभास होता है। मंथरा के संवादों में कूटनीति है। प्रत्येक संवाद किसी-न-किसी विशेषता को लिए हुए है। संवादों में नाटकीयता, प्रांजलता एवं सार्थकता है।

साकेत में विविध शैलियों का प्रयोग है। इसमें धार्मिक तथा राष्ट्रीय भावनाओं का सम्मिश्रण है। इनमें तुकबन्दी, व्यर्थ शब्दों का प्रयोग आदि कुछ दोष भी अवश्य आ गए हैं। परन्तु 'साकेत' ने राम काव्य की परम्परा में एक महान् क्रान्ति की है।

प्रश्न ८—मैथिलीशरण गुप्त की काव्यगत विशेषताओं का उल्लेख कीजिये।

उत्तर—युगकवि मैथिलीशरण गुप्त को संस्कारों तथा घर के वातावरण ने रामभक्त बनाया है, परन्तु गांधीवाद से प्रभावित होकर उसकी विचारधारा में राष्ट्रीयता तथा देश-भक्ति है। उद्गारों से वे एक उच्च कोटि के साहित्यकार हैं और स्वभाव से वे साधु हैं। उनका सिद्धान्त है (Simple living and high thinking) अर्थात् सादा जीवन उच्च विचार। यही उनके जीवन का मन्त्र है और इसी मन्त्र को उन्होंने अपने साथ रखकर हिन्दी साहित्य की सेवा की है और कर रहे हैं। उनके काव्य में अनेक विशेषतायें हैं। उनमें से प्रमुख ये हैं—

(१) संस्कृति समन्वय—गुप्त जी भारतीय संस्कृति के पुजारी हैं। इनका सांस्कृतिक दृष्टिकोण समन्वयवादी है। उसमें साम्प्रदायिकता की भावना लेशमात्र भी नहीं है। गुप्त जी ने सभी संस्कृतियों को समान सम्मान प्रदान किया है।

(२) राम-भक्ति—गुप्त जी भी महाकवि तुलसीदास की भाँति राम के

अनन्य भक्त है। वे लिखते है—

'धनुष बाण या वेणु लो श्याम रूप के संग,
मुझ पर चढ़ने से रहा राम दूसरा रंग।

वास्तव में यह सत्य है कि गुप्त जी पर अन्य किसी और देवी-देवता का रग नही चढता है। उनके साहित्य की प्रत्येक पक्ति मे राम अकित है। उनके जीवन की विशेषतायें ही उनके साहित्य मे प्रतिबिम्बित हो रही है।

(३) राष्ट्रीयता—गुप्त जी राष्ट्रकवि है। उनके साहित्य मे धार्मिकता के साथ-साथ राष्ट्रीय भावना भी विद्यमान है। 'भारत-भारती' उनकी राष्ट्रीय रचना है। इसमे कवि ने भव्य भारत के अतीत का यशोगान करके नवयुवको की रग-रग मे भारतीयता का रूप सचार किया है। हिन्दी भाषा को स्वतन्त्र कर राष्ट्रभाषा पद पर विभूषित किया है।

(४) प्रगतिशीलता—यद्यपि गुप्त जी सस्कृति के पुजारी तथा राम-भक्त कवि है, परन्तु फिर भी हम उन्हे पुराण पथी नही कह सकते। वे सच्चे प्रगतिवादी है। परन्तु उनका प्रगतिवाद आज के तथा-कथित प्रगतिवाद से भिन्न है। गुप्त जी के विचार से कोई भी विचारधारा युगचेतना की अनुकूलता तक ही ग्राह्य रहती है—

सजल रूपिणी पुरवैया सी खिडकी से आती है,
किन्तु शील सी लोकालय में रूढ़ि बैठ जाती है।

(५) प्रसाद गुण—प्रसाद गुण गुप्त जी के काव्य की प्रमुख विशेषता है। जब कवि का स्वभाव ही सरल है, उसमे जटिलता के लेशमात्र भी दर्शन नहीं होते, तो फिर उनकी रचनाओ मे जटिलता कैसे सम्भव हो सकती है। विषय निर्वाचन, प्रतिपादन और अभिव्यक्ति तथा भाषा प्रयोग मे जटिलता के न होने के कारण ही इनका काव्य बहुत लोकप्रिय हो गया है। इनकी कविता को सभी सरलता से समझ सकते है।

प्रश्न ६—'साकेत' और 'प्रिय-प्रवास' की तुलनात्मक समालोचना करते हुए दोनों के गुण-दोषों का सक्षिप्त विवेचन कीजिए।

उत्तर—'प्रियप्रवास' और 'साकेत' दोनो हिन्दी के गौरव ग्रथ है। इन दोनो मे बहुत सी समाताए है। जैसे कि—

१ दोनो ही के नायक पौराणिक दृष्टि से विष्णु के प्रमुख अवतार है।

२ दोनो ही महाकाव्यो के रचयिताओं ने अपनी इन रचनाओ मे इन नायकों—राम और कृष्ण को साक्षात् परब्रह्म तो दूर रहा ईश्वरावतार के रूप मे भी चित्रित न कर आदर्श महामानव के रूप मे ही चित्रित किया है।

३. दोनो ही महाकाव्य इतिवृत्तात्मक शैली में लिखे गये हैं।

४. दोनो ही रचनाओ मे खड़ी बोली का प्रौढ रूप विकसित हुआ है।

५ दोनो ही महाकाव्यो में प्राचीन कथानक के साथ-साथ सामयिक भावनाओं का चित्रण भी बड़े सुन्दर ढग से हुआ है।

६ दोनो ही महाकाव्यो का उद्देश्य इन रचनाओ के द्वारा प्राचीन सस्कृति का गौरव प्रदर्शित करना है।

७ आकार-प्रकार मे भी दोनो एक दूसरे से मिलते-जुलते हैं।

८ दोनो ही महाकाव्यो में विरह-वर्णन को पर्याप्त प्रधानता प्राप्त हुई है।

९ 'साकेत' और 'प्रियप्रवास' दोनो मे महाकाव्य के गुण-दोष भी समान रूप से घटित होते हैं।

इस प्रकार दोनों महाकाव्यो मे अनेक अशो मे समताएँ दिखाई जा सकती है। इन समताओं के अतिरिक्त विषमताएँ भी इसमे कुछ कम नही हैं। जैसे कि—

१ 'प्रियप्रवास' के नायक श्री कृष्ण हैं, तो 'साकेत' के राम और भरत।

२ 'प्रियप्रवास' वर्ण वृत्तो मे लिखा गया है तो 'साकेत' मात्रिक छदो मे अधिकतर निर्मित हुआ है, उसमे वर्ण वृत्त कही-कही नमूने के रूप मे प्रयुक्त हुए हैं।

३ 'प्रियप्रवास' सुधार की भावना से प्रेरित होकर लिखा गया है, पर 'साकेत' मे ऐसी कोई सुधार की मनोवृत्ति काम करती स्पष्टतः लक्षित नहीं होती।

४. 'प्रियप्रवास' के सभी पात्र—राधा, यशोदा, नन्द, गोपिया आदि-

विरह सन्ताप से सतप्त है पर 'साकेत' में वह विरह-व्यथा घनीभूत होकर केवल उर्मिला के ही हृदय मे डेरा डाले बैठी है।

५ 'साकेत' मे स्थान-स्थान पर काव्य का कलापक्ष भी बडे ही मनोहर रूप से व्यक्त हुआ है किन्तु प्रियप्रवास मे कलापक्ष का सौन्दर्य कही भी दिखाई नही देता।

६ 'प्रियप्रवास' की कविताएँ अतुकान्त है जब कि 'साकेत' की कविताओ मे सर्वत्र तुकान्त की मधुरिमा व्याप्त है।

७ 'साकेत' मे रामायण की मूलकथा मे कवि ने कोई विशेष परिवर्तन नही किया है किन्तु 'प्रियप्रवास' मे भागवत की मूलकथा से पर्याप्त अन्तर हो गया है।

८ 'प्रियप्रवास' में आरम्भ से अन्त तक प्रिय-विरह के उद्गारो का साम्राज्य है पर 'साकेत' मे विरह कथा विशेषत नवम सर्ग या आंशिक रूप मे कही अन्यत्र दिखाई देती है।

९ कुल मिलाकर 'साकेत' एक प्रौढ, कलात्मक सौन्दर्य-समन्वित, काव्य-गुणोत्प्रेत, सर्वकालिक उत्कृष्ट रचना प्रतीत होती है तो 'प्रियप्रवास' कृष्ण-चरित्र सम्बन्धी एक नवीन विचारधारा का प्रतीक मात्र रह जाती है।

१० 'प्रियप्रवास' के लेखक के हृदय मे इस काव्य के नायक श्री कृष्ण के प्रति कोई उपास्य या इष्टदेव की भावना नही है, किन्तु 'साकेत' का तो श्रीराम इष्ट देव है।

इस प्रकार इन दोनो महाकाव्यो मे पर्याप्त वैपम्य भी स्पष्ट लक्षित होता है।

जयशंकर प्रसाद

प्रश्न १०—जयशंकर प्रसाद के काल तथा जीवन और उनकी प्रमुख काव्य रचनाओं का परिचय देकर उनकी भाषा तथा शैली का सोदाहरण विवेचन कीजिए। (प्रभाकर, नवम्बर, १९५८)

उत्तर—प्रसाद जी का जन्म स० १९४६ में काशी के एक प्रसिद्ध एवं समृद्ध उदार परिवार में हुआ था। आपके कुल मे परम्परा से ही कवियो का सम्मान होता आया है। आपके घर पर प्रात काल से ही

विद्यार्थियो एव दीन-हीन भिक्षुओ की भीड़ लगी रहती थी। ऐसे वातावरण में जन्म लेकर प्रसाद जी भी उदार, सदाचारी एव परम कारुणिक बन गए। आपने ११ वर्ष की आयु मे ही अपनी माता जी के साथ धाराक्षेत्र, ओंकारेश्वर, पुष्कर, उज्जैन, जयपुर, व्रज, अयोध्या आदि स्थानो की यात्रा की। इनके घर पर वेनी, शिवदा आदि अनेक कवियो का अखाडा आधी-आधी रात्रि तक लगा रहता, कही ठण्डाई घोटी जाती तो रसगुल्लो तथा दूध-मलाइयो की बहार लगी होती। कहीं दण्ड-बैठक तथा कुश्तियाँ होती, तो कही पण्डितो की ज्ञान-चर्चा होती रहती। इन्ही दिनो अकस्मात माता की मृत्यु ने इनके हृदय पर बहुत आघात पहुँचाया और इनकी भावुकता अनेक रूपो मे फूट निकली।

प्रसाद जी की प्रथम कविता तथा ग्राम नामक कहानी स० १९६४ मे 'भारतेन्दु' पत्रिका मे प्रकाशित हुई। इसके पश्चात् इन्होंने नियमित रूप से लिखना आरम्भ कर दिया।

प्रसाद जी ने सर्वप्रथम व्रजभाषा मे लिखना आरम्भ किया, परन्तु कुछ दिनो के बाद इन्होंने खडी बोली मे लिखना आरम्भ कर दिया। यह देखकर विद्वानो ने इनकी उपेक्षा की और इनसे घृणा करने लगे। इनके विरुद्ध एक महान् आन्दोलन खडा हो गया। परन्तु प्रसाद रूपी चिंगारी प्रतिदिन विरोधियो के घास-फूस, झाड-झखाड आदि में पडकर भी बुझी नही, अपितु होली बनकर धधक उठी जिसने साहित्य की सभी धाराओ को प्रभावित किया और अन्त मे उन विरोधियो को भी प्रसाद जी की शरण मे आना पडा।

प्रसाद जी ने हिन्दी साहित्य की सेवा विभिन्न रूपो में की। हिन्दी मे आप छायावाद के आरम्भ कर्ता हैं। इनकी नवीन तथा मौलिक शैली ने अपने समय के अनेक कवियो को प्रेरणा दी। आपने हिन्दी नाटक को भी मौलिक देन दी जिससे आपका नाम हिन्दी के सर्वश्रेष्ठ नाटककारो में आता है। आपकी ऐतिहासिक खोजो ने अनेक अस्पष्ट तथा मिथ्या सिद्धान्तो को स्पष्ट किया। आपने काव्य, नाटक, उपन्यास, कहानियाँ, निबन्ध आदि अनेक विषयों पर अपनी लेखनी चलाई। आपकी प्रतिभा सर्वतोमुखी थी। आपकी

प्रमुख काव्य रचनाओ का परिचय इस प्रकार है—

कामायनी

'कामायनी' प्रसाद जी की कल्पनाओ का भव्य-भवन है जो इतिहास की नीव पर खडा किया गया है। स्वय कवि ने इसे विश्वचेतना का इतिहास एव समस्त मानव भावो का सत्य कहा है। वास्तव मे कामायनी एक स्वस्थ जीवन-दर्शन है। इसमें विश्वव्यापी विषमताओ मे समन्वय तथा सामजस्य स्थापित करने का सदेश है। इसमे आदि पुरुष मनु और आदि नारी श्रद्धा की कथा है। इडा, आकुली, किरात, मनु का पुत्र मानव, मनु की प्रजा-जन आदि इसके अन्य पात्र है। इसकी कथा चिन्ता, आशा, श्रद्धा, काम, वासना, लज्जा, कर्म, ईर्ष्या, इडा, स्वप्न, सघर्ष, निर्वेद, दर्शन, रहस्य और आनन्द इन १५ सर्गों मे विभक्त है।

कामायनी की संक्षिप्त कथा—ब्राह्मण ग्रन्थो तथा पुराणो में वर्णन आता है कि एक समय खण्ड प्रलय हुई। सप्त सिन्धु का अधिकतर भाग जल मग्न हो गया। सारा देश उस भयकर जल-प्लावन के थपेडो में इस प्रकार आया कि बडे-बडे ऊँचे महलो एव सौध शिखरो का कही चिन्ह तक दिखाई नही देता था। आत्म-रक्षा का कोई साधन नही था। ऐसे भयकर प्रलयकाल मे भी युग-पुरुष मनु एक दिव्य नौका मे बैठकर आत्म-परित्राण मे समर्थ हो गए और एक दिन उनकी वह नाव हिमालय के शिखरो मे जा टकराई। बडे लम्बे समय के पश्चात् इस महान् जल प्लावन से बचकर भू-भाग के दर्शन हुए। मनु के सभी साथी इस जल-प्लावन मे डूब गए थे। मनु को अपने साथियो से बिछुड जाने का बहुत दु ख था।

इस जल-प्लावन से पूर्व इस देश मे दैवी सभ्यता का प्रचार था। इस दैवी सभ्यता मे आनन्द, वैभव, ऐश्वर्य और विलास का ही बोल-बाला था।

मनु को इस विलास-लीला के अन्त हो जाने का भयकर शोक घेरे हुए है। वे चिन्ता-व्याकुल चित्त से जडीभूत से हुए मन्त्रवत् अपना जीवन यापन करने लगे। एकाकीपन के कारण उनका यह दु ख शत-गुणित होकर उन्हें सता रहा है। इसी समय दैवयोग से गन्धर्वराज कन्या श्रद्धा भी जल प्लावन से बच कर इधर-उधर भटकती हुई मनु से आ मिलती है। श्रद्धा और मनु

के मिलने के पश्चात् उनका पारस्परिक प्रारम्भिक परिचय प्रणय मे परिणत हो जाता है। इस प्रणय का अन्त काम और वासना के रूप मे होता है। उनकी काम-वासना के परिणामस्वरूप श्रद्धा माँ बनने की तैयारी करने लगती है। मनु को अब उनके गर्भ भरालस शरीर, मुरझाए हुए सौंदर्य और पीले पडे हुए चेहरे मे कुछ आकर्षण दिखाई नहीं देता। फलत वह साधारण बात पर रूठ कर उसे अकेली गुफा मे छोड़कर कहीं दूर चला जाता है।

इधर सारस्वत प्रदेश का कुछ भाग भी इस जल प्लावन में ध्वस्त होने से बच गया था। वहाँ की शासिका तथा देवताओं की बहन इड़ा से मनु का साक्षात्कार होता है और वह मनु को अपना राज्य सचालक अधिकारी नियुक्त कर लेती है। धीरे-धीरे राज्य की व्यवस्था सुधर जाती है। ज्ञान-विज्ञान का उत्कर्ष चरमसीमा पर जा पहुँचता है। इस प्रकार देश में खूब सुख-वैभव बढ़ने लगता है और साथ-ही-साथ मनु का उच्छृंखल मन भी अधिकाधिक अनियन्त्रित होने लगता है। काम-वासना के वशीभूत मनु इड़ा को भी अपने अधिकार मे करना चाहता है, परन्तु यह कैसे हो सकता था। अन्त मे वह बलात्कार कर इड़ा को अपनी भुजाओ मे जकड़ने का प्रयत्न करता है। इससे दैवी शक्तियाँ कुपित हो जाती है। प्रजा द्रोह कर देती है। और मनु इस संघर्ष मे घायल हो जाता है।

इधर श्रद्धा को मनु के विपत्ति मे फँस जाने का स्वप्न आता है। वह अपने १६ वर्षीय पुत्र मानव को साथ लेकर मनु को ढूँढती हुई सारस्वत देश मे आ जाती है। वह घायल मनु का उपचार करती है। सचेत होने पर मनु को यह जानकर लज्जा आती है कि श्रद्धा ने उनके प्राणों की रक्षा की है। वह वहाँ से आँख बचाकर भाग निकलता है। श्रद्धा मानव को इड़ा के सुपुर्द कर मनु की खोज मे निकल पड़ती है। वह उसे ढूँढकर अपने साथ ले लेती है और अपनी साधना के बल से उसे भगवान् शंकर के दर्शन कराती है। मनु भगवान् के दिव्यदर्शनो से मुग्ध होकर श्रद्धा से कहता है—

"श्रद्धे ले चल उन चरणों तक"

अन्त में वे कैलाश मानसरोवर पर पहुँचकर साधना-विरत हो जाते है। उनकी इस दिव्य साधना की चर्चा देश-देशान्तरो मे फैल जाती है। सहस्रों

नर-नारी प्रतिदिन उनके दर्शन करने के लिए आने लगते हैं। उन दर्शको में एक दिन इडा और मानव भी धर्म के प्रतीक वृषभ (बैल) को साथ लेकर वहाँ आ पहुँचते है। मनु उन्हे मानवता का दिव्य सन्देश देता है।

कामायनी का सन्देश—कवि ने इस महाकाव्य के द्वारा मानवता का दिव्य सदेश दिया है। आज का मानव बुद्धि के पीछे भटक कर मानवता अर्थात् श्रद्धा से विहीन हो गया है, किन्तु उसका उद्धार श्रद्धा की शरण में जाने से ही होगा। यह श्रद्धा, दया, माया, ममता, माधुर्य और अगाध विश्वास की सजीव मूर्ति है। इसीलिए कवि ने कहा है कि—

दया, माया, ममता लो आज,
मधुरिमा लो अगाध विश्वास।

कामायनी का महाकाव्यत्व—'कामायनी' एक महाकाव्य है, परन्तु इसकी कथा के संक्षिप्त होने के कारण कुछ विद्वान् इसके महाकाव्य होने पर सदेह करते है, परन्तु ऐसा सोचना अनुचित है। इसमे वे सभी लक्षण विद्यमान है, जो कि एक महाकाव्य के लिए आवश्यक है। युगानुसार कवि ने इसमे कुछ परिवर्तन अवश्य कर दिए है। जैसे मगलाचरण का अभाव और प्रति सर्ग के अन्त में छन्द परिवर्तन तथा अनर्गल विस्तार। परन्तु इससे काव्य का बेढगा-पन दूर हो गया है। अत कामायनी एक 'महाकाव्य' है।

आँसू—'आँसू' प्रसाद जी का एक सुन्दर विरह-काव्य है। कवि अनुभूतिमय बना हुआ है। नवीन चिन्तन है। कवि के प्रेमी मन को जो उत्पीडन मिला वही आँसुओ के रूप मे अभिव्यक्त हुआ है। यह एक शुद्ध मानसिक प्रेम की भावनाओ से समन्वित काव्य है। यद्यपि इसमे आध्यात्मिकता की छाप नही है, परन्तु फिर भी कई विद्वान् इसमे 'रहस्यवाद' का सकेत अनुभव करते है—। यह समीचीन नही है। कवि ने अपने प्रेम को इन शब्दो मे व्यक्त किया है—

शशिमुख पर घूँघट डाले, अंचल में दीप छिपाये,
जीवन की गोधूली में, कौतूहल से तुम आये।

कवि के मानस-नभ मे स्मृतियाँ नक्षत्रो के समान जटित है। वह अपने आँसुओ से ही ससार को सरस बनाना चाहता है। इस काव्य में भौतिक प्रेम, आशा, निराशा का सुन्दर तथा सजीव चित्रण है। इसमें सासारिकता है,

प्रेम का अजस्र प्रवाह है। 'आँसू' काव्य के सम्बन्ध में एक आलोचक का कहना है—"वे मानवीय विरह-मिलन के इंगितों पर, विराट प्रकृति को भी साज सजाकर नाच नचा सकते हैं।" 'आँसू' काव्य में भाषा का माधुर्य, भावों की मृदुलता तथा सुन्दर उपमायें दर्शनीय हैं।

भाषा की मृदुलता का उदाहरण—

छिल-छिल कर छाले-फोड़े, मल-मल कर मृदुल-चरण से,
धुल-धुलकर बह रह जाते, आँसू करुणा के कण से।

उपमा की कल्पना का उदाहरण—

मादकता से आये थे, संज्ञा से चले गए थे,
हम व्याकुल खड़े बिलखते थे, उतरे हुए नशे से।

विरह का उदाहरण—

छलना थी. तब भी मेरा, उसमें विश्वास घना था,
उस माया की छाया में, कुछ सच्चा स्वयं बना था।

कानन कुसुम—इस में संवत् १९७६ से पूर्व की रचनायें संकलित हैं। रंगीन सादे, सुगन्ध वाले और निर्गन्ध, मकरन्द से भरे और पराग से लिपटे सभी प्रकार के कुसुम इसमें सजा दिए गए हैं। प्रेम और प्रकृति सम्बन्धी भावों की इसमें मार्मिक अभिव्यक्ति हुई है।

करुणालय—यह अतुकान्त मात्रिक छन्द में लिखा हुआ हिन्दी का प्रथम भाव नाट्य है। इसमें कवि की भाषा का सर्वप्रथम प्रौढ परिमार्जित रूप प्रकट हुआ है।

महाराणा का महत्त्व—प्रताप के जीवन से सम्बन्धित यह अतुकान्त छन्द में लिखा हुआ इतिवृत्तात्मक काव्य है। भाषा तथा भावों की प्रवाहात्मकता दर्शनीय है।

प्रेमपथिक—पहले इसकी रचना ब्रज भाषा में हुई। फिर इसे खड़ी बोली में रूपान्तरित किया गया। इसमें दो प्रेमी हृदयों का मर्म-स्पर्शी चित्र अंकित है। दो पड़ोसी मित्रों के पुत्र-पुत्री प्रणय-पाश में बँध जाते हैं। लड़की का विवाह दूसरे व्यक्ति से हो जाता है। लड़का (प्रेमी) तपस्वी बनकर एक कुटी में रहने लगता है। वहीं पर उसकी तापस-वेशधारिणी प्रेमिका से

भेंट होती है। इस प्रकार इसमें प्रेम को पावनतम रूप में प्रकट किया गया है।

झरना—यह छायावाद की सर्वप्रथम रचना है। इसमे युवावस्था मे प्रकट होने वाली वासना के साथ समय के अन्तर्द्वन्द्व का चित्र प्रभावपूर्ण है।

लहर—यह सगीत और कल्पना प्रधान मुक्तक काव्य है। इसमे प्रकृति के सुन्दर चित्रो के साथ अतीत के चलचित्र भी अंकित हुए है। इसमे कवि के वैयक्तिक अतीत की अनुभूतियाँ तथा इतिहास की पुरातन चित्रावलियाँ दोनो सम्मिलित है। अशोक की चिन्ता, शेरसिंह का शस्त्र समर्पण, पिछोला की प्रतिध्वनि, प्रलय की छाया, अरी ओ वरुणा की शान्त कछार आदि कविताओ मे पुरातन इतिहास के प्रखर चित्र मुखरित हुए हैं।

प्रश्न ११—प्रसाद जी के सभी नाटकों का संक्षिप्त समीक्षात्मक विवरण प्रस्तुत कीजिए।

उत्तर—प्रसाद जी के नाटको को रचना-काल क्रम की दृष्टि से तीन भागो में विभक्त कर सकते है—(१) प्रारम्भिक नाटक (२) प्रयोग कालीन नाटक (३) प्रौढ नाटक।

विषय की दृष्टि से इन नाटको को दो भागो मे विभक्त किया जा सकता है—(१) ऐतिहासिक नाटक, (२) कल्पना प्रधान नाटक।

अब यहाँ इनका संक्षिप्त परिचय दिया जाता है।

प्रारम्भिक नाटक–प्रायश्चित्त—पृथ्वीराज और जयचन्द के पारस्परिक विद्वेष की कथा को कल्पना के पुट से चमत्कृत कर अंकित किया गया है। इसमे नान्दी, सूत्रधार आदि नही हैं और न 'सज्जन' के समान पद्यात्मक सवाद ही प्रयुक्त हुए है। अभी यह नवीन शैली का नाटक है।

ऐतिहासिक नाटक—कल्याणी परिणय : इस मे चन्द्रगुप्त और सेल्यूकस के युद्ध के समय की घटना है। गीतो का समावेश भी है और सूत्रधार भी यथापूर्व ही विद्यमान है। 'कल्याणी परिणय' ने ही 'चन्द्रगुप्त' जैसे महान् नाटक का रूप धारण कर लिया।

करुणालय—यह गीति नाट्य है, जो अतुकात मात्रिक छन्दो मे लिखा गया है। इसमे हरिश्चन्द्र, विश्वामित्र और उनके पुत्र शुन शेप आदि पौरा-

णिक चरित्रो की अवतारणा हुई है।

इन चारो नाटको मे प्रसाद जी की कला का आरम्भिक रूप ही है। आगे चलकर इस कला ने प्रौढ और परिमार्जित रूप मे दर्शन दिए। इस समय के 'विशाख', 'जनमेजय का नाग यज्ञ', 'अजातशत्रु','चन्द्रगुप्त', 'स्कन्दगुप्त' और 'ध्रुव स्वामिनी' आदि सभी नाटक अत्यन्त प्रौढ है।

प्रयोगकालीन नाटक—विशाख—इस नाटक मे 'राज तरंगणी' के आधार पर काश्मीर नरेश नरदेव के समय की घटना अंकित की गई है।

जनमेजय का नाग यज्ञ—यह नाटक कलयुग के आरम्भ काल की पौराणिक घटना को लेकर प्रस्तुत किया गया है। इसमे आर्य और नाग जाति के सघर्ष की कथा कही गई है। नाटक मे कलात्मकता की अपेक्षा चरित्र-चित्रण को ही प्रधानता दी गई है। सघर्षमय वातावरण की सृष्टि करने की कवि की अद्भुत क्षमता इस नाटक मे प्रकट होती है।

अजातशत्रु · इसमे मगध सम्राट् बिम्बसार के पुत्र अजातशत्रु को केन्द्र मानकर महात्मा बुद्ध के समय का राजनैतिक घटना चक्र है। नाटक साधारण है।

प्रौढ नाटक—चन्द्रगुप्त इसमे मौर्य सम्राट् चन्द्रगुप्त के समय का इतिहास है। चन्द्रगुप्त नाटक के प्रारम्भ मे भूमिका लिखकर लेखक ने जिस मौलिक सूझ-बूझ का परिचय दिया, उसे देखकर बडे-बडे ऐतिहासिक पुरातत्व-वेत्ताओ को भी प्रसाद जी की ऐतिहासिक प्रतिभा का लोहा मानना पड गया। लेखक ने दृढतर प्रमाणो से सिद्ध कर दिया कि सिकन्दर नन्द की विशाल सेना का सामना न कर सकने के कारण व्यास नदी से वापिस लौट गया और वह वीर मालव जाति से युद्ध मे पराजित व घायल हो गया था।

स्कन्दगुप्त . इस मे गुप्तवंशीय प्रतापी सम्राट् स्कन्दगुप्त के समय का इतिहास अंकित किया गया है। स्कन्दगुप्त के समय मे भारत पर हूणो के आक्रमण बडी प्रबलता से हुए थे। स्कन्दगुप्त ने उनको भारत से बाहर खदेडने के अनेक प्रयत्न किए, साथ ही उसे आतरिक सघर्षों का भी सामना करना पडा। इन सब राजनैतिक दाव-पेचो और सघर्षो को नाटकीय रूप मे अंकित करने का प्रबल प्रयास है।

ध्रुवस्वामिनी : यह नाटक गुप्तवश के अस्तमन समय के कथानक को लेकर लिखा गया है। इसमें पुनर्विवाह एव नारी के व्यक्तित्व की समस्या पर प्रकाश डाला गया है। इसकी समस्त घटनायें और कार्य व्यापार एक ही स्थान पर घटते है। साहित्यिकला के साथ अभिनेय तत्वो का भी इसमे पूर्ण समावेश है। इसे एक प्रकार का समस्या प्रधान नाटक भी कहते है। इस नाटक को लिखकर प्रसाद जी ने यह सिद्ध कर दिया कि वे नवीन दृष्टिकोण के अनुसार अभिनेय नाटक भी वैसी ही सफलता के साथ लिख सकते है।

राजश्री : इस नाटक मे सम्राट् हर्षवर्द्धन की वहिन राजश्री को मुख्य पात्र मानकर हर्षवर्द्धन के समय का चित्र अकित किया गया है।

'स्कन्दगुप्त' और 'चन्द्रगुप्त' आदि मे जो राष्ट्रीयता का स्वरूप है, वह आधुनिक भारतीय राष्ट्रीय आन्दोलन के कितने ही सूत्रो को समेटे हुए है। फिर भी ऐतिहासिक कथाओ मे सामाजिक समस्याओ की सीधी अभिव्यक्ति नही हो सकती और नवयुग की विकृतियो को व्यक्त करने के लिए ही 'कामना' और 'एक घूँट' नामक रूपक दो नाटको की सृष्टि की।

कल्पना-प्रधान नाटक कामना : किस प्रकार प्रकृति के उन्मुक्त वातावरण मे पडे एक भोले-भाले देश को विदेशियो के सम्पर्क के कारण विलासिता मे डूबकर अपने जीवन को सघर्षो मे डालना पड गया, यही इसका प्रतिपाद्य विषय है। यदि भारत को फूलो का देश और विदेशी युवक को अग्रेजो का प्रतीक मान ले तो भारत की परावीनता का इतिहास इसमे पूर्ण रूप से प्रतिबिम्बित होने लगता है।

एक घूँट—इसमे स्वच्छन्द प्रेम और विवाहित जीवन का तारतम्य दिखाया गया है। विवाहित जीवन की श्रेष्ठता सिद्ध करके इस नाटक में स्वच्छन्द की असम्भावना को स्पष्ट सिद्ध कर दिया है।

प्रश्न १२—प्रसाद जी के काव्यो की प्रमुख विशेषताओ का वर्णन कीजिये?

उत्तर—प्रसाद जी के काव्य मे निम्न नौ विशेषताये स्पष्ट लक्षित होती है।

(१) काव्य विषय मे नवीनता—प्रसाद जी ने भारतेन्दु युग और द्विवेदी

युग की उपदेशात्मकता और इतिवृत्तात्मकता को दूर कर काव्यो के विषयों में नवीनता और आधुनिकता का प्रसार किया।

(२) भाव जगत का संस्कार - जैसा ऊपर कहा गया है, प्रसाद जी ने सस्ती और विकृत भावुकता या उसके सर्वथा बहिष्कार दोनों का तिरस्कार कर हिन्दी साहित्य को स्वस्थ और सुसंस्कृत मानसिक पृष्ठ भूमि पर स्थापित किया, वासनात्मक शृंगार का विरोध कर निर्मल प्रेम का प्रवाह बहाना।

(३) नवीन कल्पनाओं की सृष्टि—नवीन भाषा के साथ काव्य की नवीन कल्पनायें भी प्रसाद जी की प्रेरणा से प्राप्त हुई।

(४) मानवीय सौंदर्य का चित्रण—प्रसाद जी प्रारम्भ मे आन्तरिक सौंदर्य को ही प्रमुख रूप से चित्रित करते रहे। 'कामायनी' मे उन्होंने बाह्य सौंदर्य का भी अपने ढंग से अद्भुत किन्तु सर्वथा स्वाभाविक चित्रण किया है।

(५) प्रकृति सौंदर्य—प्रकृति के सच्चे प्रेम से वे प्रथम परिचायक और प्रेरक हैं। प्रकृति के नाना रूपो के चित्र उनके काव्य मे अनुपम हैं।

(६) भाव सौंदर्य की स्थापना—प्रसाद को यौवन और प्रेम का कवि कहा जाता है। प्रेम, भक्ति या पौराणिक आख्यानो को लेकर लिखी गई उनकी आरम्भिक रचनायें विषय-प्रधान ही है। 'आँसू', 'झरना', 'लहर,' तथा 'कामायनी' भाव-प्रधान रचनायें है। प्रकृति के साथ प्रसाद जी की भावनाएँ एक एक अलौकिक मूर्त्त रूप ग्रहण कर लेती हैं।

(७) रहस्यवाद और छायावाद—प्रसाद जी प्रकृति-प्रेम, अज्ञात के प्रति जिज्ञासा, अद्वैत दर्शनों के अभ्यास और गीतांजलि से प्रेरित होकर हिन्दी साहित्य मे छायावाद और रहस्यवाद नामक शैली के प्रवर्तक हुए।

(८) प्रेम साधना—प्रेम और वासना को अपने पृथक्-पृथक् स्पष्ट रूप मे चित्रित करने वाले प्रसाद जी प्रथम कवि है। उनका लौकिक प्रेम भी अलौकिक का संकेत सा करता रहता है।

(९) विषयानुसारिणी भाषा—प्रसाद जी प्रारम्भ से अन्त तक सभी विषयो और भावनाओं को एक ही भाषा की लाठी से न हाँक कर पात्रों और परिस्थितियों के अनुसार उनमे परिवर्तन करते रहते थे। 'चन्द्रगुप्त', 'स्कन्दगुप्त'

आदि मध्यकालीन नाटको का सस्कृतनिष्ठ भाषा मे ही लिखा जाना उचित है। 'कामायनी', 'आसू' आदि की भाषा सरल साहित्यिक है। उनकी लाक्षणिकता और मूर्तिमत्ता भी पग-पग पर प्रकट हो रही है। 'ककाल,' 'तितली' आदि उपन्यास सर्वसाधारण की भाषा मे लिखे गए है।

प्रश्न १३—प्रसाद जी के उपन्यास तथा कहानी साहित्य का सक्षिप्त विवरण दीजिए।

उत्तर—प्रसाद जी ने काव्य के अतिरिक्त हिन्दी गद्य साहित्य के प्रत्येक क्षेत्र मे अपनी लेखनी चलाई है। उन्होने उपन्यास, कहानी, निवन्ध, नाटक आदि सभी पर लिखा है। प्रसाद जी ने तीन उपन्यास लिखे है —

(१) ककाल (२) तितली (३) इरावती (अपूर्ण)

कंकाल—प्रसाद जी का यह एक सामाजिक उपन्यास है। इसका समाज आधुनिक नागरिक तथा मध्य श्रेणी का है। इसमे साधु, सत, भिखारी, ईसाई पादरी आदि सभी है। इसमे समस्त वातावरण घरेलू सा प्रतीत होता है। यह एक व्यग्यपूर्ण उपन्यास है। इस उपन्यास ने वर्तमान समाज के आवरण एव इसके सभ्यतापूर्ण कवच को भेदकर भीषण प्रहार किया है और वलात् हमारी चेतना को जागृत किया है। इस उपन्यास मे न तो शुद्ध प्रेम है और न ही वैवाहिक पवित्रता। इसमे अनेक चरित्रो की कल्पना मे व्यग्य और विडम्बना भरी पडी है।

ककाल के लेखक का उद्देश्य वर्तमान, अनियन्त्रित एवं पाप-पकिल मे पडे हुए समाज के प्रति एक प्रवल आन्दोलन करना है, घोर क्राति खडी करनी है। वास्तव मे जो ऊँच-नीच अथवा छोटा-वडा है वह सभी चरित्रहीन है, इसमे सवकी खिल्ली उडाई गई है। लेखक ने सवके कच्चे चिट्ठे खोलकर रख दिए है। कही शाही घरानो की महिलाये गूजरो के घरो मे शोभायमान है तो कही सभ्य एव धार्मिक पादरी दीन हीन के प्रेमपाश मे पडे हुए हैं।

श्री कालीदास कपूर ने तो 'ककाल' उपन्यास पर समाज मे अश्लीलता फैलाने का दोष लगाया है। परन्तु उनका यह कहना अनुचित है, क्योकि उन्होने गहरे पानी मे पैठ कर इस उपन्यास को समझने का प्रयत्न नही किया है। वास्तव मे ककाल समाज के विरुद्ध विद्रोह करता है और व्यक्ति के लिए

पूरे अधिकार चाहता है। आदर्श की दृष्टि से ककाल के समाज विद्रोही व्यक्तिवाद के विषय मे बहुत कुछ कहा जा सकता है। इस विषय मे योरुपीय दार्शनिक हर्बर्ट स्पेंसर, मिल, मिजनिक तथा अनेक फ्रांसीसी एव जर्मन एनार्किस्ट यदि एक ओर है, तो दूसरी ओर—ओपेन, हक्सले, हीगेल, डार्विन और मार्क्स जैसे समाजवादी है। ककाल के विषय मे यह कहने मे कोई आपत्ति नही कि 'सैद्धान्तिक ऊहापोह' के उपन्यास का मुख्य विषय नही, मुख्य विषय समाज के विभिन्न अगो का चित्रण है, इसलिए यह कहना अनुचित नहीं होगा कि समाज की विशेषताओ और अवरोधो मे क्षुब्ध होकर ककाल की विचार धारा बनी है।

तितली—इसमे ग्रामीणो की दुर्दशा का चित्र अकित करते हुए इससे मुक्ति के उपायो पर प्रकाश डाला गया है। 'ककाल' की अपेक्षा इसका कथानक सुगठित है और घटनाओ का विस्तार भी अधिक नही। यहा भी ककाल के समान दो कथानक समानान्तर रूप मे चल रहे है जो एक ही सूत्र मे बधे हुए हैं।

इरावती—यह प्रसाद जी का तीसरा और अन्तिम अपूर्ण उपन्यास है। इसकी कथावस्तु ऐतिहासिक है। इसमे शुग वश से सम्बन्ध रखने वाली कथा है। वास्तव मे भारतीय इतिहास में शुग राज्य का समय बड़ा महत्वपूर्ण है। पुष्यमित्र और अग्निमित्र आदि सम्राटो ने आर्य सस्कृति के सरक्षण मे महत्वपूर्ण योग दिया था। प्रसादजी मे आर्य सस्कृति के प्रति अटल आस्था थी। पुष्यमित्र ने वास्तव मे परानोन्मुख बौद्ध धर्म के विरुद्ध वैदिक धर्म का भण्डा फिर से लहरा कर स्तुत्य कार्य किया था। उस समय भगवान महाकाल शिवशकर की उपासना का प्रचार जोरो पर था। इरावती मे शैव सिद्धान्त के आनन्दवाद को ही मुख्यत प्रश्रय दिया है। इसके चरित्रो से ज्ञात होता है कि प्रसाद जी ऐतिहासिक वातावरण, कथानक और मानव चित्रण की ओर ही झुके हुए थे।

उपन्यासो के समान प्रसाद जी का कहानी साहित्य भी बहुत बढ़ा-चढ़ा है। हिन्दी के उच्चकोटि के कहानी लेखको मे आपका प्रमुख स्थान है। प्रसाद जी ने स० १९६८ से कहानी लिखना प्रारम्भ कर दिया था। आपकी सर्वप्रथम

कहानी 'ग्राम्य' स० १९६८ मे 'इन्दु' मे प्रकाशित हुई थी। इनकी कुछ प्रारम्भिक कहानिया 'चित्राधार' मे सगृहीत है। इसके अतिरिक्त छाया, प्रतिध्वनि, आकाशदीप, आँधी और इन्द्रजाल पाँच सग्रह है। इन कहानियो को ऐतिहासिक और समाजिक दो भागो मे विभक्त किया जा सकता है। आँधी और इन्द्रजाल मे अनेक ऐतिहासिक कहानियाँ है।

प्रसाद जी के निवन्ध भी वहुत सुन्दर है। इन निवन्धो को तीन भागो मे विभक्त किया जा सकता है—(१) इनके आरम्भिक काल के पाँच निवन्ध 'चित्राधार' मे लिखे है। (२) 'कामायनी' महाकाव्य समाप्त होने के पश्चात् 'इन्दु' पर एक नाटक लिखने का उनका विचार था और उसके लिए उन्होने सामग्री भी एकत्र की थी। यह सामग्री निवन्ध के रूप मे प्रकाशित हुई और इससे पता चला कि इन्दु ही प्राचीन आर्यावर्त के प्रथम सम्राट् थे। इसमे प्रसाद जी की प्रखर प्रतिभा और गवेपणा शक्ति का आभास मिलता है। (३) इस भाग मे प्रसाद जी के इन निवन्धो की गणना की जाती है जिनका सकलन उनकी मृत्यु के पश्चात् 'काव्य और कला तथा अन्य निवन्ध' के नाम से किया है। ये निवन्ध भाषा तथा शैली की दृष्टि से महत्वपूर्ण है।

सूर्यकान्त त्रिपाठी निराला

प्रश्न १३—महाप्राण निराला का जीवन परिचय देकर उनकी रचनाओं का उल्लेख कीजिए।

उत्तर—निराला जी का जन्म स० १९५५ मे वगाल प्रान्त के महिषादल राज्य से १०० गज दूर राजवाडी के एक कोने मे वारकनुमा झोपडी मे हुआ। अपनी माता का स्वर्गवास उसी समय हो जाने के कारण तत्काल ही आपको दूसरी झोपडी मे ले जाया गया। फिर एक और अन्य झोपड़ी मे आपका पालन-पोपण किया गया। आपकी प्रारम्भिक शिक्षा वगला माध्यम से 'महिषादल-राज्य-हाईस्कूल' मे हुई। इसी स्कूल के एक 'टिनशेड' मे जहाँ कभी एक नाट्यशाला थी, निराला जी नाटक खेला करते थे। स्कूल छोडने के पश्चात् आप 'स्टोर विभाग' मे एक साधारण क्लर्क वन गए। यही पर एक राज्यमदिर ने हमारे महाकवि में धार्मिक सस्कारो का बीजारोपण किया।

'निराला अभिनन्दन ग्रंथ' मे ३४ लेख है, जिनमे निराला जी के सम्पर्क

में आये हुए व्यक्तियों ने उनके स्वभाव, पाण्डित्य तथा व्यवहार कुशलता का परिचय कराया है। निराला जी हिन्दी, संस्कृत अंग्रेजी, बंगला आदि भाषाओं के प्रकाण्ड पण्डित ही नहीं, अपितु अनेक विषयों में बहुज्ञताप्राप्त व्यक्ति हैं। आपका जीवन साधारण, अपितु व्यक्तित्व असाधारण है। निराला जी का सामान्य जीवन सबके लिए आकर्षक तथा अनुकरणीय है। एक बार स्वर्गीय सरोजिनी नायडू ने उनके विषय में कहा था—'मुझे वे यूनानी दार्शनिक से लगते हैं, यदि वे राजनीति में प्रवेश करते तो चुम्बक की भाँति जनता को खींच लिया करते और आज के जगद्विख्यात नेताओं से भी अधिक प्रख्यात होते।' एक अमेरिकन महिला पत्रकार ने भी उन्हें 'अपोलो' का पुत्र अथवा 'सीजर' का अवतार बताया था।

निराला जी का जन्म बहुत ही निराला है। स्पष्टवादिता के उदाहरण भी आपके जीवन में मिलते हैं। एक बार प्रभात शास्त्री के द्वारा उनसे 'आधुनिक कवि' में संकलन के लिए कविता माँगने पर उन्होंने उनसे कहा—"हमें रुपयों की तो आवश्यकता नहीं है परन्तु हमारी १०००) रुपये फीस है, लाकर दे दो, हम तुरन्त कटिंग करके दे देंगे ऐसे बिना फीस हम नहीं देंगे।"

'निराला' जी ने हिन्दी साहित्य के प्रत्येक क्षेत्र में अपनी लेखनी चलाई है। आपकी सांस्कृतिक रचनाएँ महाराज शिवाजी का पत्र, गोस्वामी तुलसीदास, राम की शक्ति-साधना आदि हैं और प्रगतिवादी कवितायें भिक्षुक, विधवा, तोड़ती पत्थर आदि हैं। आपने उपन्यास, निबन्ध, कहानियाँ आदि भी लिखी हैं। आपकी रचनाएँ निम्नलिखित हैं :—

(१) काव्य संग्रह—अनामिका, परिमल, गीतिका, तुलसीदास, कुकुरमुत्ता, बेला, अणिमा, अपरा, नए पत्ते आदि।

(२) उपन्यास—अप्सरा, निरुपमा, अलका, प्रभावती, उच्छृङ्खल, चोटी की पकड़, काले कारनामे, चमेली आदि।

(३) कहानी संग्रह—लिली, सखी, चतुरीचमार, सुकुल की बीवी आदि।

(४) रेखाचित्र—कुल्लीभाट, बिल्लेसुर, बकरीहा आदि।

(५) निबन्ध संग्रह—प्रबन्ध पद्य, प्रबन्ध-प्रतिमा, प्रबन्ध परिचय, रवीन्द्र कविता कानन आदि।

(६) जीवन चरित्र—राणाप्रताप, भीम, प्रह्लाद, ध्रुव, शकुन्तला आदि ।

(७) अनूदित ग्रन्थ—महाभारत, श्री रामकृष्ण-रसनामृत, स्वामी विवेकानन्द जी के भाषण, देवी चौधरानी, आनन्द मठ, दुर्गेशनन्दिनी, युगलागुलीय, वात्स्यायन-कामसूत्र, तुलसी रामायण की टीका, गोविन्ददास पदावली आदि ।

(८) सम्पादित—समन्वय-मतवाला ।

प्रश्न १४– निम्नलिखित कृतियो का सक्षिप्त परिचय दीजिये :—

गोस्वामी तुलसीदास, परिमल, राम की शक्ति-पूजा, अणिमा, कुकुरमुत्ता, अनामिका, गीतिका, बेला, सरोजस्मृति ।

उत्तर—

गोस्वामी तुलसीदास

निराला जी भारतीय सस्कृति से पोषित तथा भारतीय साहित्य से परिचित हिन्दू सस्कृति के परम भक्त कवि हैं । भगवान् बुद्ध के पश्चात् हिन्दू सस्कृति का सरक्षक तुलसीदास के समान अन्य कोई कवि नही हुआ है, इसीलिए निराला की लेखनी महाकवि तुलसीदास पर उठे विना कैसे रह सकती थी ।

प्रस्तुत रचना निराला जी का एक रहस्य रूपक है । इसके आरम्भ में आर्य सस्कृति का सूर्य मुगलो की मेघमाला से आच्छादित हो रहा है । उसके पश्चात् अकबर की शासन प्रणाली रूपी अज्ञान एव अन्धकार से पूर्ण शीतल तथा सुखद रुचि का वर्णन है । इसके पश्चात् निराला जी ने गोस्वामी तुलसीदास जी की पवित्र जन्मभूमि 'राजापुर' का वर्णन किया है । तदनन्तर उनके विवाह आदि का वर्णन किया है । विवाह के पश्चात् चित्रकूट मे तुलसीदास जी के मन मे भारतीय सस्कृति के प्रति अनुराग तथा गृहस्थ के प्रति अनुराग क्षणिक आवेश के साथ उठता है, परन्तु उसी समय वासनात्मक ममत्व उभर आने से पुन घर लौट आते हैं ।

एक बार उनकी पत्नी बिना उनसे कहे अपने मायके चली जाती है । तुलसीदास जी भी उसी के पीछे-पीछे ससुराल पहुँच जाते हैं । उनकी पत्नी उन्हे इस निर्लज्जता पर फटकारती है और राम से प्रेम करने का उपदेश देती है । तुलसी को तो यह दिव्य दर्शन था । उसी समय उनके हृदय मे यह भावना उठती है—"अस्थि-मास के इस शरीर मे आसक्ति क्यो ? क्यो नही

राम की इसमें भक्ति हो।" इसका परिणाम यह हुआ कि तुलसी एक बहुत बड़े राम-भक्त और हिन्दी साहित्य गगन के उज्ज्वल नक्षत्र बन गए। उनका मनोहर मानसचन्द्र दिवा निशि सदा स्थायी रहेगा।

इस काव्य की भाषा अलङ्कृत एवं लाक्षणिकतापूर्ण है। इसमें प्रतीक पद्धति का भी विशेष रूप से प्रयोग किया गया है। मानव हृदय के सूक्ष्म भावनाओं का इसमें गम्भीर विश्लेषण है। सुन्दर कल्पना ने इसकी दुरूह भाषा तथा रहस्यवादी शैली में सरसता और आकर्षण वृद्धि लादी है।

सोचा कवि ने मानस-तरंग, यह भारत संस्कृति पर सभंग,
फैली जो लेती संग-संग जनगण को;
इस अनिलप्रवाह के पार, प्रखर किरणों का, वह ज्योतिर्मय घर,
रविकुल-जीवन चुम्बन कर मानस घन जो,
है वही मुक्ति का सत्यरूप, यह कूप-कूप भव अन्ध-रूप,
वह रक यहाँ जो हुआ भूप निश्चय रे!
चाहिए उसे और भी और, फिर साधारण को कहाँ ठौर,
जीवन के जग के यही तौर जन के।

परिमल

परिमल निराला जी की कविताओं का एक सुन्दर संग्रह है। इनकी कविताओं में आध्यात्मवाद, प्रेम, प्रकृति-सौन्दर्य आदि विषयों पर प्रकाश डाला गया है। इसकी प्रमुख कवितायें 'भिक्षुक', 'विधवा', 'जुही की कली', 'बादल-राग' आदि हैं। इस संग्रह की कविताओं पर कवीन्द्र रवीन्द्र तथा स्वामी विवेकानन्द के विचारों की छाप है। इसमें निराला जी की विद्रोह भावना भी कम नहीं है। 'जागो फिर एक बार' इनकी राष्ट्रीय कविता है। इस संग्रह की कविताओं में कवि ने मुक्तक, तुकान्त और अतुकान्त तीनों प्रकार के गीतों को अपनाया है।

राम की शक्ति-पूजा

कवि ने इसमें अनुनय, निराशा और पराजय का नाट्य रूप प्रस्तुत किया है। निराला जी के राम एक 'मानव' हैं। वे अधीर होकर शक्ति की

पूजा करते है। देवी प्रसन्न होकर उनको दर्शन देती है और भविष्यवाणी कर अदृश्य हो जाती है। रावण की तमोगुणी प्रवृत्तियो को नष्ट करने मे पहले तो राम को सफलता प्राप्त नही होती है, परन्तु दुबारा प्रयत्न करने पर वे सफल हो जाते है। इस रचना का उद्देश्य भी यही है। इसकी वर्णन शैली बहुत ही सजीव है।

अणिमा—यह कवि के गीतो का सग्रह है। इसके गीतो मे रहस्यात्मक भावना आन्तरिक वेदना तथा उत्साह भावना का सुन्दर दिग्दर्शन प्राप्त होता है। इसकी अनेक कविताओ मे कवि ने रामचन्द्र शुक्ल, प्रसाद, महादेवी वर्मा आदि के प्रति अपनी विनम्र श्रद्धाजलि अर्पित की है।

कुकुरमुत्ता—यह निराला जी की व्यग्यात्मक शैली की रचना है। इसमें सर्वत्र एक व्यंग्यात्मक विनोद की भावना विद्यमान है।

अनामिका—इस सग्रह मे 'राम की शक्ति पूजा' 'खुला आसमान' आदि रचनाओ का सकलन है। इसमे स्वच्छन्द छन्दो की ओर विशेष ध्यान दिया गया है।

गीतिका—यह भी कवि के गीतो का सकलन है। इसका प्रत्येक गीत भाव तथा कला की दृष्टि से अपने आप मे अत्यन्त मनोहर तथा सुन्दर बन पड़ा है।

बेला—इसमे निराला जी की हिन्दी मे गजले है। एक गजल का उदाहरण—

> मँहगाई की याद बढ़ आई, गांठ की छूटी गाढ़ी कमाई,
> भूखे नगे खड़े शरमाये, न आये वीर जवाहरलाल।

सरोजस्मृति—अपने इस शोक गीत के द्वारा कवि ने अपनी इकलौती पुत्री 'सरोज' के निधन पर अपनी आन्तरिक वेदना की मार्मिक अभिव्यक्ति की है। इसमे करुणा-रस-स्पन्दिनी काव्य-धाराओ का स्राव झरने की भांति स्वभावत झरता जा रहा है और ऐसी कोमल, मार्मिक, वेदनात्मक उद्भावनाओ के समय बरबस फूट पड़ता है।

प्रश्न १६—हिन्दी साहित्य में निराला जी की स्थिति स्पष्ट कीजिए।

अथवा

"निराला जी हिन्दी साहित्य में निराले ढंग से आये हैं।"—सप्रमाण सिद्ध कीजिए।

उत्तर—सूर्यकान्त त्रिपाठी निराला हिन्दी साहित्य के युग-प्रवर्तनकारी कवि हैं। आपकी कविता छन्द के बन्धन से मुक्त है। आपको प्राचीन आचार्यों के द्वारा बाँधे गए बन्धन सहन नहीं हैं। आपने भाव और भाषा की भी प्राचीन रूढ़ियों का पालन नहीं किया है। भावों की गम्भीरता, दार्शनिक विचारों की गहनता भाषा की समास बहुलता तथा संस्कृतनिष्ठता के कारण निराला जी का काव्य क्लिष्ट प्रतीत होता है। आपके काव्य का आनन्द केवल वही व्यक्ति प्राप्त कर सकते हैं, जो काव्य की परख करना जानते हैं। जिन्हें काव्य की परख नहीं है, उनके लिए निराला जी की कविता क्लिष्ट तथा आनन्द रहित है।

निराला जी की कविता में जीवन-संघर्ष का स्पष्ट प्रतिबिम्ब है। उनकी कविता की उच्च पृष्ठ भूमि उनकी मानसिक अनुभूतियों के कारण सदैव जागृति देने वाली है। निराला जी की कविता छायावादी कवियों का भी एक प्रकार से प्रतिनिधित्व करती है और नूतन मार्ग की प्रदर्शक है।

निराला जी रामकृष्ण परमहंस तथा स्वामी विवेकानन्द जी के सिद्धान्तों से बहुत अधिक प्रभावित हैं। आपने 'समन्वय' तथा 'मतवाला' नामक पत्रों का सम्पादन कर अपने अध्ययन को बहुत विकसित किया। जब आप सम्पादन कार्य कर रहे थे, उसी समय हिन्दी साहित्य में आप 'निराला' के नाम से प्रसिद्ध हो गए। बंगला भाषी होने के कारण आपकी कविता में बंगला भाषा का माधुर्य एवं औदार्य स्रवित हो रहा है। निराला जी के अध्ययन और जीवन संघर्ष ने उनकी कविता को छायावादी बना दिया है और दार्शनिकता ने छायावाद के साथ रहस्यवाद का भी बीजारोपण कर दिया जो आजकल पुष्पित हो रहा है।

निराला जी को दार्शनिकता बंगाल से मिली है। अपने अध्ययन तथा वेदान्त के बोध द्वारा, हिन्दी के लिए सिद्धान्तों के प्रभाव से इनकी कविता अछूती न रह सकी। उसमें वेदान्तवाद तथा भारतीय दार्शनिकता का स्पष्ट

चित्रण है। आजकल आप रहस्यवाद के अन्तिम सोपान पर चढ रहे है। उन्हें 'प्रियमिलन' की चाह है, परन्तु कबीर या महादेवी की भाँति उन्हें अपने पुरुषत्व को खोकर 'नारी के रूप मे' प्रिय से मिलने वाली भावना उनमे दिखाई नही देती है। भारतीय पद्धति को उन्होने अपनाया है। आप उपनिषदो की पद्धति के अनुसार आत्मचिन्तन करते है और उन्ही भावो से अपनी कविता को विभूपित करते है। निराला जी न तो निराशावादी ही है और न क्षण-भगुरता के उपासक। आप चिरनन सत्य पर विश्वास करते है। आपका रहस्यवाद स्वय ही आभासित हो जाता है—

तुम तुंग हिमालय शृंग, और मैं चचलगति सुरसरिता,
तुम विमल-हृदय उच्छ्वास, और मैं कान्त कामिनी कविता।

निराला जी की दार्शनिकता तथा शैली अन्य कवियो से भिन्न है। उनकी दार्शनिकता मे चिन्तन तथा भावनाएँ दोनो है और दोनो मे सरसता, स्पष्टता तथा प्रौढता है।

स्वामी विवेकानन्द जी का वेदान्त का विवेचन राष्ट्रीयता की पुट मे हुआ था। निराला जी की कविता मे भी ऐसा ही प्रभाव दिखाई देता है। यही कारण है कि उनकी कविता मे भारतीय हृदय की करुणा ध्वनित हो रही है। आपने अपनी 'विधवा' 'भिक्षुक' आदि कविताओ मे करुणा का जो चित्र अकित किया है, वह अद्वितीय है।

वह इष्टदेव के मन्दिर की पूजा-सी,
वह दीपशिखा-सी शान्त, भाव में लीन।
वह क्रूर काल के ताण्डव की स्मृतिरेखा-सी,
वह टूटे तरु की छुटी लता-सी दीन।
दलित भारत की विधवा है।

निराला जी का 'प्रकृति-चित्रण' भी बहुत अनूठा है। प्रकृति-चित्रण मे कवि सदा उसका रूपक मे ही वर्णन करता है और उनका व्यक्तित्व सदैव उसमे आभासित रहता है। 'जूही की कली', 'शेफालिका', 'सन्ध्या-सुन्दरी', 'शरदपूर्णिमा' आदि कविताओ मे प्रकृति का नारी रूप चमक उठा है।

विजन वन वल्लरी पर ।
सोती थी सुहाग-भरी, स्नेह-स्वप्न-मग्न,
अमल कोमल तनु तरुणी जुही की कली ।

निराला जी का यह विश्वास है कि अतीत का गान करने से अतीत वापस आ जाता है। इसी के परिणाम स्वरूप आपने 'शिवाजी का पत्र,' 'पचवटी' 'यमुना',, 'राम की शक्ति-पूजा' आदि कवितायें लिखी है। निराला जी के काव्य मे विद्रोह की भावना है। वे पूँजीवाद के विकट विद्रोही है।

महाप्राण निराला की प्रतिभा सर्वतोमुखी है। आपने गद्य और पद्य दोनो ही लिखा है। हिन्दी साहित्य का कोई भी क्षेत्र आपसे अछूता नहीं बचा है। उपन्यास, कहानी, नाटक, निबन्ध, जीवनी, आलोचना आदि सभी कुछ आपने लिखा है। निराला जी के गद्य साहित्य मे उनकी मानवतावादी चेतना तथा करुणा का पूर्ण परिचय प्राप्त होता है। जीवन की कठोरतम अनुभूतियो ने निराला के काव्य मे अनुभूति की अद्वितीय मार्मिकता प्रदान की है।

निराला जी साहित्योपजीवी व्यक्ति हैं। आपने जीवन मे साहित्य सृजन करने के अतिरिक्त अन्य कार्य नहीं किया है। आपने कभी भी किसी सरकारी पद या आश्रय की प्राप्ति की इच्छा ही नहीं की। जिस समय सभी अन्य कवि मूक थे, उस समय भी आप निरन्तर लिखते ही रहे। निराला जी तो लगातार युग परिस्थितियो से टकराते हुए नवीन वादो से हिन्दी कविता को सुशोभित करते रहे हैं। वास्तव मे पात्र छायावाद, रहस्यवाद, प्रगतिवाद आदि जितने भी वाद हैं, वे सभी निराला जी की कविता मे बहुत पहले से ही विद्यमान हैं।

उपरोक्त विवेचन से स्पष्ट है कि 'निराला' जी का हिन्दी साहित्य के गद्य तथा पद्य दोनो क्षेत्रो मे विशिष्ट स्थान है।

सुमित्रानन्दन पन्त

प्रश्न १६—कवि पन्त का जीवन परिचय देकर उनकी समसामयिक परिस्थितियों तथा रचनाओं का उल्लेख कीजिए।

उत्तर—पन्त जी का जन्म स० १९५८ मे अल्मोड़ा जिला के कसौनी नामक ग्राम मे हुआ। आपकी प्रारम्भिक शिक्षा ग्राम के ही स्कूल मे हुई।

इसके पश्चात् आपने अल्मोडा से मैट्रिक की परीक्षा पास की। गांधी जी के असहयोग आन्दोलन से प्रभावित होने के कारण आपने कालेज की पढाई छोड दी और हिन्दी साहित्य की सेवा मे लीन हो गए। घर पर ही रहकर आपने हिन्दी, सस्कृत, बंगला तथा अंग्रेजी का अध्ययन किया। आपने दर्शन और उपनिपदो का भी अध्ययन किया।

प्राकृतिक रमणीयताओ से परिपूर्ण प्रदेश मे जन्म लेने के कारण प्रकृति पन्त जी की आत्मा और प्राणो मे समा गई है। ऐसा लगता है मानो प्रकृति के अणु-अणु का रहस्य आपके हृदय पटल पर अंकित है। कवि प्रकृति को सहचरी के रूप मे देखकर उससे वास्तविक आनन्द की प्राप्ति करता है। प्रकृति का मधुर और कोमलपक्ष आपको अपनी ओर आकर्षित करता है। आपकी भाषा में भी कोमलता है। आपका शब्द चयन अनूठा है। नवीनतम रचनाओं में आपके काव्य की दिशा मे परिवर्तन हो गया है। अन्य कवियो की भाँति आप भी मार्क्सवाद तथा साम्यवाद से प्रभावित हो गए है।

हिन्दी साहित्य मे पन्त जी का पदार्पण उस समय हुआ जब प्रसाद ने द्विवेदीकाल के इतिवृत्तात्मक काव्य के प्रति विद्रोह करके छायावाद के कमनीय मार्ग को ग्रहण किया था। पन्त जी का वातावरण तो छायावाद के सर्वथा अनुकूल था ही। पन्त अपने जीवन मे प्रकृति की जिस सुकुमारता को सजोये हुए थे, छायावाद उसी सौन्दर्य की विभिन्न झाँकियो का रगमच था। पन्त जी इस मच पर सर्व था अनुकूल अभिनेता के रूप मे अवतरित हुए। यह ठीक है कि पन्त जी को काव्य सृजन की प्रेरणा प्रकृति से ही प्राप्त हुई है और वे पर्याप्त समय तक कल्पना कुंजो मे ही विचरण करते रहे, परन्तु वे सदा ही इस कमनीय भूमि पर न ठहर सके। उन्होने भाव से चिन्तन जगत मे प्रवेश किया, फिर प्रगति क्षेत्र मे और उसके पश्चात् मानववादी सर्वोदय के मच पर प्रविष्ट हुए। आज कवि सर्वोदय तथा नव-निर्माण के मच पर कार्य कर रहा है।

रचनायें—पन्त जी ने हिन्दी साहित्य के गद्य तथा पद्य दोनो क्षेत्रो मे अपनी लेखनी चलाई है। उनकी रचनाओ का वर्गीकरण इस प्रकार कर सकते है—

(१) छायावादी—वीणा, पल्लव, ग्रन्थि, गुंजन ।

(२) प्रगतिवादी—ग्राम्या, युगान्त, युगवाणी, युगान्तर ।

(३) सर्वोदयवादी—स्वर्ण-किरण, स्वर्णधूलि, उत्तरा ।

(४) नाटक—परी, रानी, ज्योत्स्ना ।

(५) उपन्यास—हार ।

(६) कहानी सग्रह—पाँच कहानियाँ ।

(७) अनूदित—मधुज्वाला शिल्पी ।

प्रश्न १७—"मेरी कविता को प्रकृति से ही प्रेरणा मिली है ।" पन्त जी के इस कथन के आधार पर उनके प्रकृति-काव्य की विशेषतायें बताओ । क्या पन्त जी छायावाद के प्रतिनिधि कवि हैं ।

उत्तर—पन्त जी का जन्म अल्मोड़ा जिला के कूर्माञ्चल प्रदेश मे हुआ, जो प्रकृति का अत्यन्त रमणीय प्रांगण है । मातृ-वियोग ने पन्त जी एकान्त वासी तथा प्रकृति-विनोदी बन गए । वीणा, ग्राम्या, पल्लव,—ये तीनो रचनाएँ उनके प्रकृति-प्रेम को ही घोषित कर रही हैं । पन्त जी ने स्वयं लिखा है, "मेरी कविता को प्रकृति से ही प्रेरणा मिली है, उन रमणीय पर्वत मालाओ ने मेरी कविता मे चिन्तन की गति भर दी है ।" वास्तव मे कवि की सुकुमार, अल्हड और जिज्ञासु प्रकृति ने जीवन के प्रथम वसत मे ही उन्हें प्रकृति सौंदर्य के प्रति विस्मित कर दिया और कवि बाल सुलभ जिज्ञासा कर बैठा—

प्रथम किरण का आना रंगिनी तूने कैसे पहचाना ?

आगे चलकर कवि को प्रकृति ने अनेक रहस्यमय सकेत मिले—

न जाने नक्षत्रों से कौन,
निमन्त्रण मुझे भेजता मौन ।

पन्त जी प्रकृति के सौन्दर्य पर न्यौछावर हो गए, उस पर अत्यन्त मुग्ध होकर वे कह बैठे—

छोड़ द्रुमो की मृदु छाया,
तोड़ प्रकृति से भी माया ।
बाले ! तेरे बाल-जाल में,
कैसे उलझा दूँ लोचन ।

प्रकृति के प्रति आकर्षण तथा प्रेम उनके इन शब्दो से स्पष्ट होता है। वे कहते हैं, "मै रहस्यवादी नही, अपितु एक सच्चा प्रकृति-प्रेमी-कवि हूँ।" कवि का विश्वास है कि उसे तीव्रता भी प्रकृति से ही प्राप्त हुई है। प्रकृति प्रेम कवि के आत्म-जगत् की वस्तु बन गया है, जिसे वे छोड नही सकते। यह कथन सत्य ही है कि "कवि प्रकृति मे, प्रकृति कवि मे" ओत-प्रोत हो गए है।

छायावाद

छायावाद की विद्वानो ने अनेक परिभाषाएँ की है, परन्तु उन सभी परिभाषाओ से एक ही ध्वनि निकलती है। 'प्रकृति और कवि के सहानुभौतिक सम्बन्ध" अर्थात् कवि और प्रकृति का छाया-काया के समान एक-दूसरे से सम्बन्ध होना। अनन्त रूपधारिणी प्रकृति का वाल सौंदर्य ही कवि को अपनी ओर आकर्षित नही करता है, अपितु उसकी भावुकता जड प्रकृति मे भी अपने अन्तर जैसा स्पन्दन-कम्पन अनुभव करता है। वह अपने सभी दुखो तथा सुखो को प्रकृति मे देखता है। इस प्रकार छायावाद का अर्थ है कवि और प्रकृति का तादात्म्य। प्रकृति सौंदर्य, प्रणय और सवेदना ही का छायावाद में वर्णन होता है। प्रतीक-प्रयोग लाक्षणिक भापा तथा व्यजना व्यापार एव सगीत छायावादी काव्य की प्रमुख विशेषताएँ है।

पन्त और छायावाद

सुमित्रानन्दन पन्त की कविता में छायावाद की सभी विशेषताये विद्यमान है। सुकुमार कवि पन्त ने प्रकृति को सदैव सुन्दर सुरभित तथा सगीतमय देखा है। पन्त जी ने प्रकृति के अल्हड रूप का चित्रण किया है। आरम्भ में तो कवि प्रकृति के अनेक रूपो के प्रति केवल कौतूहल या जिज्ञासा ही प्रकट कर पाया है—

(१) वह अपनी वयवाली में कौन अकेली खेल रही माँ!
उस सुन्दर हरियाली में।

(२) प्रथम किरण का आना रंगिनी! तूने कैसे पहिचाना?

गगन मे तारो की झलमलाहट, चन्द्रमा का चमकना, सूर्य का उदय तथा अस्त होना, चारो ओर खिली हरियाली, विकसित पुष्पो का सौदर्य, मेघा-

च्छन्न आसमान, हवा की सरसराहट, तितली के रग-विरगे पख, सप्तागी इन्द्रधनुष आदि प्रकृति के विभिन्न सुन्दर रूपो से प्रभावित तथा उनकी ओर आकर्षित होकर कवि पन्त अपने बाल मन मे कल्पनामय चित्र बनाता रहा है। कवि के वही चित्र अपने परिपक्व रूपरेखा, रंग और आपात-अनुपात के साथ शब्दबद्ध होकर हमारे सामने आये हैं। यही कारण है कि कवि को रूप रग, स्वर आदि का ज्ञान इतना अधिक हो गया है कि उनके छायाचित्रो मे कही पर भी किसी प्रकार की त्रुटि या कमी नही है। कवि के रूप, रेखा, रग, ध्वनि आदि चित्रों के उदाहरण निम्नलिखित हैं—

रूपचित्र रेखा चित्र—तापस वाला गगा निर्मल शैकत शैया पर दुग्ध धवल।
रग चित्र—नभ के नीले शतदल पर, वह बैठी शारद हासिनि।
ध्वनि चित्र—सन्ध्या का झुरपुट, बांसो का झुरमुट
लो चहक रहीं चिड़ियां ..
टीं वीं टीं टुट टुट।

पन्त जी की शैली सगीतमयी तथा शब्दावली चित्रमयी होती है। पन्त जी के काव्य मे माधुर्य, कोमलता तथा सौष्ठव आदि सभी विशेषतायें हैं।

आज कवि पन्त छायावादी युग को पाकर दार्शनिक, प्रगतिवादी तथा मानव वादी बन गये है, परन्तु उनका दृष्टिकोण आज भी सौंदर्यवादी ही है।

प्रश्न १८—'छायावाद के जिस कल्पना लोक से आकर्षित कवि पन्त का कलाकार जागरूक हुआ था, वह अधिक देर तक उसमें विचरण नहीं कर सका। उसे क्रमश: भावलोक से दर्शनभूमि, प्रगति क्षेत्र और मानव वाद के सर्वोदय स्थल पर आना पड़ा।" इस कथन की सत्यता सिद्ध कीजिये।

उत्तर—यद्यपि कवि पन्त का जन्म प्रकृति के अत्यन्त रमणीय प्रांगण में हुआ और उनकी कविता को प्रकृति से ही प्रेरणा मिली और उन रमणीय पर्वत मालाओ ने ही उनकी कविता मे चिंतन की गति भरी परन्तु कवि अनमुंग्ध हो केवल अपने भावलोक मे ही विचरण नही करता रहा, अपितु युग परिवर्तन के साथ उनका काव्य क्षेत्र भी परिवर्तित होता रहा। इस दृष्टि से पन्त जी के काव्य को निम्नलिखित चार भागो मे विभक्त किया जा सकता है—(१) कल्पना प्रधान काव्य (२) चिन्तन प्रधान काव्य (३) प्रगति

प्रधान काव्य (४) मानव वादी या सर्वोदयवादी काव्य ।

(१) कल्पना प्रधान काव्य—कवि पन्त का छायावादी रूप सबसे अधिक महत्त्वपूर्ण है । वीणा, पल्लव, गुंजन, ग्रंथि कवि की छायावादी रचनायें है । इनमे कवि भावुक, कल्पनाशील तथा प्रकृति प्रेमी तथा एक अल्हड कलाकार है । प्रकृति के सुरम्य वातावरण तथा कमनीय कल्पना कुंजो में विचरण करते हुए पन्त ने जिन भावो की अभिव्यक्ति की है उनमे सिवाय सौदर्य, सुरभि और सगीत के कुछ नही है । उन कविताओ का समस्त वातावरण स्वप्निल है । पन्त का छायावादी काव्य प्रकृति नटी के अनेक भावमय चित्रो की चित्रशाला है । यहाँ तक कि पन्त की कविताओ का सगठन भी कोमल उपादानो से हुआ है । कवि के छायावादी काव्य की विशेषतायें है उसकी सुन्दर कोमल शब्दावली, सुन्दर अलकार तथा कल्पनामयी अभिव्यक्ति ।

(२) चिन्तन प्रधान काव्य—कवि पन्त धीरे-धीरे भाव तथा कल्पना लोक से निकलकर मानव मे एक सौंदर्य का अनुभव करने लगा ।

सुन्दर है विहग, सुमन सुन्दर,
मानव ! तुम सबसे सुन्दरतम ।

जब कवि को सौन्दर्य तथा सुख के साथ दुःख का आभास भी हुआ, तब वह भावुक से दार्शनिक बन गया । वह 'सुन्दरम्' से 'सत्यम्' की ओर आकर्षित हुआ ।

शिशिर सा झर नयनो का नीर, झुलस देता गालों के फूल,
प्रणय का चुम्बन छोड अधीर अधर जाते अधरो को भूल ।
किसी को सोने के सुख साज, मिल गये यदि ऋण में कुछ आज,
चुका लेता कल सहज बियाज, काल को नहीं किसी की लाज ।

परन्तु कवि जीवन के इन दुःखो से भयभीत नही हुआ । उसने तो जीवन मे दुःख और सुख का सामजस्य आवश्यक समझा । जीवन मे सुख दुःख की अनिवार्यता को समझकर ही कवि कह उठा—

(१) "जग पीडित रे अति सुख से,
जग पीडित रे अति दुःख से ।"

(२) मैं नहीं चाहता चिर सुख, चाहता नहीं हूँ चिर दुःख ।

प्रगतिवादी काव्य—जिस समय कवि पन्त चिन्तन और दर्शन भूमि पर विहार कर रहे थे, उस समय देश मे स्वतन्त्रता प्राप्ति के लिये राष्ट्रीय आन्दोलन चल रहे थे। कवि इनसे प्रभावित हुए विना न रह सका। शोषण और साम्राज्यवाद के विरुद्ध एक भयानक विद्रोह खडा हो रहा था। अत्याचारी शोषण से पीडित जनता के कारुण क्रन्दन ने कवि के सगीत को कुण्ठित कर दिया, कवि की रागिनी को ही मग्न नही किया अपितु उससे चिन्तन का क्षेत्र भी छीन लिया। कवि नीले आकाश को छोडकर नीचे आया। उसके हृदय मे समाज की गली सडी रूढियों तथा मानव जगत् सभी जीर्ण-शीर्ण को नष्ट करने की कामना जागृत हुई। वह कह उठा—

गा कोकिल, बरसा पावक कण,
नष्ट भ्रष्ट हो जीर्ण पुरातन।

कवि की दृष्टि उन समाज के शोषको की ओर गई जो मजदूरो तथा निर्धनो के कठोर परिश्रम द्वारा अर्जित धन पर विलासमय जीवन व्यतीत करते हैं और उन मजदूरो तथा निर्धनो को अपने शोषण का शिकार बना नारकीय जीवन व्यतीत करने के लिए छोड देते हैं।

वे नृशंस हैं, वे जन के श्रम बल से पोषित,
दुहरे धनी, जोंक जग के भू जिससे शोषित।

कवि की यह विचार धारा युगान्तर, युगवाणी आदि काव्यो मे है। इस विचार धारा ने कवि मे बहुत अधिक परिवर्तन कर दिया। 'परिवर्तन' और 'चिन्तन' कवि के इन्ही बदलते हुए चिन्तन शील जीवन की अभिव्यक्ति हैं।

सर्वोदयवाद—कवि ने कभी भी विनाश की बात नही सोची। वे धीरे-धीरे प्रगतिवाद के मार्ग पर चलते-चलते 'नव निर्माण' तथा 'सर्वोदयवाद' की ओर अग्रसर हुए। बापू का ग्राम सुधार उनकी कविता मे गूँज उठा और वे कह उठे—

"मनुष्यत्व के मूल तत्र, ग्रामों में ही अन्तर्हित।"

कवि की विचार धारा समन्वयवादी हो उठी। उनका विश्वास हो गया कि सामाजिक निर्माण के लिए साम्प्रदायिकता को त्याग कर आध्यात्म और विज्ञान का समन्वय करना अति आवश्यक है—

"वृथा पूर्व-पश्चिम का दिग्भ्रम मानवता को करे न खण्डित।"

इस प्रकार कवि की विचार धारा में भी युग परिवर्तन के साथ-साथ परिवर्तन होता गया और उन्हे क्रमश भाव लोक से दर्शन भूमि, प्रगतिक्षेत्र और मानववाद के सर्वोदय स्थल पर आना पड़ा। इस परिवर्तन के साथ-साथ कवि भाव विचार, दर्शन और विश्लेषण एव उनके काव्योपादानो मे भी परिवर्तन होता गया। कवि की अभिव्यक्ति प्रौढ, भापा व्यावहारिक तथा विचार परिपक्व होते चले गये।

प्रश्न १६—पंत जी की निम्नलिखित रचनाओं पर संक्षिप्त टिप्पणी लिखो—वीणा, ग्रंथि, पल्लव, गुञ्जन, युगान्त, युगवाणी, ग्राम्या, स्वर्णकिरण।

उत्तर—वीणा—वीणा मे पत जी की प्रारम्भिक रचनायें सग्रहीत है। इसकी कविताओ मे कवि ने प्रकृति-सम्बन्धी प्रेम भरी भावनाओ की अभिव्यक्ति की है। कवि ने इसमे शैशव की आदर्श भावनाओ का भी चित्रण किया है। इसमे देवी सरस्वती की माता के रूप मे वन्दना की है।

मां, मेरे जीवन की हार,
तेरा उज्ज्वल हृदय हो अश्रु कणों का उपहार।

वीणा की अधिकाश कवितायें गीताजलि से प्रभावित हैं और विश्वात्मा से ज्ञान, बल और भाव प्रदान करने के लिये प्रार्थना कर रही है—

मेरे चचल मानस पर,
पादपद्म विकसा सुन्दर।
बजा मधुर वीणा निज मात,
एक गान कर मम अन्तर।

इसमे कवि आत्मोत्सर्ग की कामना करता हुआ कहता है—

तुहिन बिन्दु बनकर सुन्दर,
कुमुद किरण से सहज उतर।
माँ, तेरे प्रिय पद-पद्मों मे,
अर्पण जीवन को कर दूँ।

अन्त मे कवि ने स्वप्न नीड़ से बाहर आकर अत्यन्त भोले तथा सुन्दर 'विहग वन के राजकुमार' आदि अस्फुट गीत लिखे हैं।

ग्रन्थि—इसमें युवक के हृदय की प्रेममयी भावनाओं का चित्रण किया गया है। कवि ने इसमें विरह-वेदना की बहुत सजीव अभिव्यक्ति की है। इसका भावपक्ष अत्यन्त पूर्ण एवं मार्मिक है। इस पर संस्कृत शैली का प्रभाव है। इसमें विप्रलम्भ श्रृङ्गार है। इसकी कथा प्रथम पुरुष में आत्मकथा के रूप में चलने के कारण ऐसा प्रतीत होता है मानो नायक आपबीती सुना रहा है।

कृतज्ञ नायक का अनुनय—

प्रेम कण्टक से अचानक बिद्ध हो,
जो सुमन-तरु से विलग है हो चुका।
निज दया से द्रवित उर में स्थान दे,
क्या न सरस विकास दोगी तुम उसे ?

इसके पश्चात् वह कुछ अधीर होकर कहता है—

कौन मादक कर मुझे है छू रहा,
प्रिय तुम्हारी मूकता की आड़ में।

नायिका की चुप्पी के कारण की कल्पना करता हुआ कवि कहता है—

देख रति ने मोतियों की लूट यह,
मृदुल गालों पर सुमुखि के लाज से।
लाख सी दी त्वरित लगवा, बन्द कर,
अधर विद्रुम द्वार अपने कोष के।

बहुत ही अनूठी एवं मार्मिक उक्ति है, कल्पना है। नायक विरह की वेदना का अनुभव करता है :

प्रेम वंचित को तथा कंगाल को,
है कहाँ आश्रय विरह की वह्नि में।

पल्लव—कवि ने 'परिवर्तन' के अतिरिक्त इस संग्रह की अन्य सभी कविताओं में प्रकृति के सौंदर्य का सुन्दर चित्र अंकित किया है। इसकी कविताएँ रमणीय तथा प्रभावोत्पादक हैं। 'छायावाद' का स्वरूप सर्वप्रथम इसी ग्रंथ में दिखाई पड़ता है। भाव और शैली की दृष्टि से भी कवि ने इसमें नवीन परिवर्तन किए हैं। इसमें कवि ने प्राकृतिक पदार्थों का बहुत ही

सजीव वर्णन किया है। वर्षा का सुन्दर तथा आकर्षक चित्र खीचते हुए कवि कहता है—

गिरि का गौरव गाकर झरझर, मद में नस-नस उत्तेजित कर,
मोती की लड़ियो से सुन्दर, झरते हैं झागों से निर्झर।
गिरिवर के डर से उठकर, उच्चाकांक्षाओ के तरुवर,
झाँक रहे नीरव नभ पर, अनिमेष अटल कुछ चिन्ता पर।

पल्लव की कुछ कविताओ मे 'रहस्य भावना' का समावेष है—

ना जाने नक्षत्रों से कौन,
निमन्त्रण देता मुझको मौन ?

पल्लव मे यौवन के गीत भी है। इसमे भावोन्माद तथा कवि की उद्-गीतियाँ अधिक है। इसकी 'बालापन' कविता बहुत ही सुन्दर है। उसमें अबोध भावुकता भरी हुई है। इसके चित्र रगीन तथा हृदय पर स्थायी प्रभाव डालने वाले है।

गुंजन—कवि ने अपनी इस रचना में 'मानव' को महत्व दिया है। इसमें कवि ने सुख तथा दु.ख दोनो मे समत्व की स्थापना करने का प्रयत्न किया है।

मैं नहीं चाहता चिर-सुख, मैं नहीं चाहता चिर-दु ख,
जग-पीडित है अति दु.ख से, जग पीड़ित रे अति सुख से,
मानव जग में बट जावे, दु.ख सुख से औ सुख दु.ख से।

इसमें 'भावी पत्नी के प्रति' शीर्षक कविता मे प्रेम भावनाओ की सुन्दर अभिव्यक्ति हुई है। इसमें कवि के दार्शनिक विचारो का सुन्दर चित्रण है। कुछ गीतो मे कवि ने अपनी प्रेयसी के सौंदर्य का सुन्दर तथा मोहक वर्णन किया है। सृष्टि का प्रत्येक तत्व उसकी झलक देखने के लिए व्याकुल हो उठता है—

कब से विलोकती तुमको, ऊषा आ वातायन से,
संध्या उदास फिर आती, सूने नभ के आंगन से।

युगान्त—इसमे चिन्तन के भावो की प्रधानता है, 'सत्य शिव सुन्दर' का पूर्ण समावेश है। युगान्त की रचना के समय महात्मा गाँधी के राष्ट्रीय

आन्दोलन से भारत की जनता का ध्यान मानवता की ओर आकर्षित हो रहा था। कवि ने इन भावनाओं को ग्रहण किया 'मानव' कविता में मानव पूजा तथा 'बापू के प्रति' शीर्षक कविता में अध्यात्मिकता का स्रोत उमड़ पड़ा है। कवि ने बापू में अपने आदर्शों को प्राप्त किया। वे मानवता के उद्धार के लिए आये हैं, इसीलिए कविता में उनका चिन्तन अनुभूतिपूर्ण हो गया है। अंग्रेजी ओड की शैली से प्रभावित होने के कारण सम्बोधन की प्रधानता है। कवि ने उनके चयन तथा निर्माण में अपूर्व कौशल तथा भावुकता का परिचय दिया है—

सुखभोग खोजने आते सब, आये तुम करने सत्य खोज,
जग की मिट्टी के पुतले जन, तुम आत्मा के, मन के मनोज।

युगवाणी—इनकी कविताओं में प्रगतिवाद तथा गांधीवाद दोनों का उन्मुक्त गान है—

मनुष्यत्व का तत्त्व सिखाता, निश्चय हमको गाँधीवाद,
सामूहिक जीवन-विकास की, साम्य-योजना है अविवाद।

कवि ने इसमें पूँजीपतियों की शोषण-वृत्ति का ओजस्वी शब्दों में वर्णन किया है—

ये नृशंस हैं, वे जन के श्रम-बल से पोषित,
दुहरे धनी, जोंक जग के, भू जिनसे शोषित।
सुरांगना, सम्पद, सुराओं से ससेवित,
नर-पशु ये भू-भार मनुजता जिनसे लज्जित।

कवि ने युगवाणी में नारी की महिमा का भी उन्मुक्त गान किया है। पन्त जी ने इसमें गांधीवाद तथा साम्यवाद का यशोगान करने के साथ-साथ समाज के कुत्सित अंगों का भी विगर्हणा की है। इनकी कुछ कविताओं में प्रकृति का भी सुन्दर चित्रण है। मध्यकालीन संस्कृति के बंधन में पड़कर हमारे देश ने अनेक कष्टों को सहन किया है, परन्तु अब हमें उन प्राचीन रूढ़ियों के बन्धनों से मुक्त होकर नवीन आदर्शों का निर्माण करना होगा—

[illegible] वे, भूपति, सामन्त महन्तों के वैभव [illegible],
जिन [illegible] गा [illegible], सागर में ज्यों बुद्-बुद् [illegible]।

वास्तव में कवि पन्त ने युगवाणी के द्वारा जीर्ण-पुरातन को नव्य-भव्य बनाने का सदेश दिया है।

ग्राम्या—ग्राम्या पन्त जी की सर्वश्रेष्ठ प्रगतिवादी रचना है। कवि ने इसमे ग्राम्य जीवन का यथार्थ चित्रण किया है। इसमे ग्राम वधू, ग्राम नारी धोबी, चमार आदि के अत्यन्त रमणीय चित्र खीचे गये है। इसके भाव पक्ष तथा कलापक्ष दोनो ही सबल है भाषा में ध्वन्यात्मकता का सुन्दर समावेश है—

लो, छन छन छन छन,
छन छन छन छन छन।

स्वर्ण किरण—इसमे कवि ने प्रकृति और जीवन के प्रति अपनी आध्यात्मिक भावना को अभिव्यक्त किया है। इसकी कुछ कविताओ मे वेद तथा उपनिषदो की भावनाओ का समावेश है तो कुछ मे वेद मत्रो का भावात्मक छायानुवाद। कुछ कविताओ मे ऐतिहासिक घटनाओ के आध्यात्मिक रूप का भी निर्देश किया गया है। इसमे कुछ कवितायें अवचेतन तथा उपचेतन की उलटवासियो के रूप मे प्राप्त होती है। इसमे चेतनवाद के साथ-साथ मातृवाद का भी सपुट है। 'सर्वोदय' शीर्षक कविता नवचेतनात्मक मानववाद के रूप को प्रकट करती है।

श्रीमती महादेवी वर्मा

प्रश्न २०—श्रीमती महादेवी वर्मा का जीवन परिचय देकर उनको रचनाओ का उल्लेख कीजिए।

उत्तर—महादेवी वर्मा का जन्म स० १९६४ मे जिला फर्रुखाबाद (उत्तर-प्रदेश) मे हुआ था। ९ वर्ष की आयु मे ही इनका विवाह डॉक्टर स्वरूपनारायण वर्मा के साथ हो गया। इनकी प्रारम्भिक शिक्षा इन्दौर मे हुई। आपने कठिन परिश्रम करके इलाहाबाद विश्वविद्यालय से एम० ए० की परीक्षा प्रथम श्रेणी मे उत्तीर्ण कर ली। आपकी जन्मसिद्ध कवित्व प्रतिभा की विशेषता को निस्सदेह आपके भव्य सस्कारो की जयन्ती ही कहना चाहिए। आपके काव्य मे दार्शनिकता से रुचि तथा प्रकृति और रहस्यवाद के जटिल एव पावन पथ का जो प्रदर्शन प्राप्त होता है, वह आपके जन्मान्तरीय सस्कारो

का प्रमाण है। आपने कुछ दिनों तक 'चाँद' पत्रिका का सपादन किया। इसके पश्चात् आपकी 'प्रयाग-महिला विद्यापीठ के आचार्यपद पर नियुक्ति हो गई। यहाँ रह कर आपने महिला जगत की प्रशंसनीय सेवा की है। आपकी योग्यता की सर्वख्याति है।

वर्मा जी ने 'साहित्य-ससद' सस्था द्वारा हिन्दी लेखको की प्रशसनीय सहायता की है। 'नीरजा' पर आपको ५००) रुपये का सेक्सरिया पुरस्कार प्राप्त हुआ, परन्तु आपने यह धनराशि 'प्रयाग-महिला-विद्यापीठ' को भेंट कर दी। 'यामा' नामक महाकाव्य पर आपको 'हिन्दी साहित्य सम्मेलन' ने १२००) रुपये का 'मगला प्रसाद पारितोषिक' प्रदान किया।

महादेवी वर्मा के जीवन की परिस्थितियाँ बहुत कुछ मीरा से मिलती जुलती हैं। इन परिस्थितियों का प्रभाव इनके कवि कर्म मे भी दिखाई देता है। 'विरह' काव्य की रचना मे मीरा और महादेवी समान स्तर पर है। फिर भी मीरा और महादेवी के जीवन और कर्त्तृत्व मे उतना ही अन्तर है जितना कि उनके युगो तथा जीवन परिस्थितियो मे है। महादेवी सच्चे अर्थों मे कलाकार हैं। आपने ललित कलाओ के व्यापक क्षेत्र को अपनाया है। अत. आप कवयित्री होने के साथ एक कुशल चित्रकार, गद्य लेखिका तथा संगीतविद् भी हैं।

महादेवी की रचनाएँ निम्नलिखित है—

(१) नीहार (२) रश्मि (३) नीरजा (४) सान्ध्यगीत (५) दीपशिखा (६) यामा (७) अतीत के चलचित्र (८) शृ खला की कड़ियाँ (९) हिन्दी विवेचनात्मक गद्य।

प्रश्न २१—छायावादी काव्य की विशेषताओं का वर्णन करते हुए बताइये कि वे विशेषतायें महादेवी जी के काव्य में कहाँ तक उपलब्ध होती हैं ?

उत्तर—छायावादी काव्य की दस-ग्यारह प्रमुख विशेषतायें मानी जाती हैं और वे सब महादेवी के काव्यो मे पूर्णतया उपलब्ध होती हैं। जैसे कि—

१ भावमयता—छायावाद की कविता द्विवेदी-युग की इतिवृत्तात्मकता की प्रतिक्रिया के परिणामस्वरूप प्रकाश मे आई। इसमे स्थूल का बहिष्कार कर सूक्ष्म भावात्मक वर्णन को स्वीकार किया जाता है। सूक्ष्म चित्रण की

प्रणाली इसकी पहली विशेषता है। महादेवी की कवितायें भावों की अन्तः स्पर्शिता, सूक्ष्मता, गम्भीरता और विशदता से परिपूर्ण होती है ।

२. प्रकृति—छायावाद मे प्रकृति का सजीव चित्रण होता है। कवि प्रकृति को जड न मानकर अपने ही समान चेतन समझते हुए उसे मानवीय भावनाओ का रग देकर चित्रित करता है। वह प्रकृति की स्वतन्त्र उपासना करता है, अत वह उसके सुख-दुख को अपने ही सुख-दुख मानकर वर्णन करता है। महादेवी जी की कविताओ मे प्रकृति मे मानव-व्यापारो का सजीव आरोप हुआ है, इसमे कोई सन्देह नही है। महादेवी जी ने स्वय लिखा है कि छायावाद ने मनुष्य के हृदय और प्रकृति के सम्बन्ध मे प्राण डाल दिये हैं, जो प्राचीनकाल से बिम्ब-प्रतिबिम्ब के रूप मे चला आता है।

३ वैयक्तिक अनुभूति की प्रधानता भी छायावाद की एक अन्य विशेषता है। मीरा के समान महादेवी की कविताएँ भी वैयक्तिकता की प्रमुखता से परिपूर्ण हैं। शृंगार भावना भी छायावाद में एक नवीन रूप में प्राप्त होती है। कही तो प्रकृति में सुन्दरी का आरोप कर उसकी विभिन्न लीलाओ का वर्णन करता है, तो दूसरी ओर कवि स्थूल के वाह्य सौन्दर्य का वर्णन कर ललित कल्पना के सहारे अपनी भावनाओ को मूर्त रूप प्रदान करता है और उसके सौन्दर्य और शृंगार का वर्णन करता है। इस पर कल्पित प्रियतम की वास्तविक अनुभूति का वर्णन किया जाता है।

४ शृंगार, करुण और शान्त-रसों का परिपाक छायावाद की एक अन्य विशेषता है। महादेवी जी करुणा की साक्षात्-मूर्ति होते हुए भी उनकी रचनाएँ शृंगार और शात रस से परिपूर्ण हैं।

५. गम्भीरता—छायावादी कवियो की कल्पनाएँ बहुत गम्भीर हो जाती हैं। इसीलिये उनमे दुर्बोधता आ जाती है। महादेवी की कल्पनाएँ भी सुन्दर सजीव और अत्यन्त गम्भीर है।

६. प्रतीक पद्धति—छायावाद की एक सबसे बडी विशेषता है। जैसे कि उषा को आनन्द, उल्लास, प्रिय-मिलन आदि का प्रतीक माना जाता है तो यामिनी को निराशा और विरह का प्रतीक। महादेवी ने भी इस पद्धति को प्रचुर मात्रा में अपनाया है।

७ मानवीकरण, लाक्षणिक प्रयोग, नवीन छंदों का निर्माण, आध्यात्मिक प्रियतम के प्रति प्रणय-निवेदन आदि छायावाद की अन्य विशेषताएँ हैं। महादेवी की कविताओं में मानवीकरण की प्रवृत्ति भी अधिक पाई जाती है।

८ मूर्तामूर्त विधान—साकार पदार्थ को निराकार रूप में तथा निराकार को साकार रूप में प्रस्तुत करना ही मूर्तामूर्त विधान कहलाता है। यह विशेपता भी महादेवी की रचना में प्राय. पाई जाती है।

९ लाक्षणिक प्रयोगों की भरमार—यह भी छायावाद की एक विशेषता है। 'गान का सिसकना', 'वेदना का कसकना' आदि लाक्षणिक प्रयोग हैं। महादेवी की कविताओं में इनका प्रयोग किया गया है।

१० अभिनव छन्दों का प्रयोग—यह छायावाद की प्रमुख विशेषता है। महादेवी वर्मा ने भी प्राचीन छन्दों का प्रयोग न करके नवीन छन्दों का प्रयोग किया है।

प्रश्न २२—महादेवी जी की काव्य-कला का सोदाहरण विवेचन कीजिये।

उत्तर—महादेवी जी प्रमुखतया विरह, मिलन और प्रकृति सौंदर्य की अलौकिक गायिका के रूप में विख्यात हैं। प्रकृति सौंदर्य के चित्र उनकी कविताओं में इतने सुन्दर बन पड़े हैं कि पाठक पढ़ते-पढ़ते तन्मय हो जाता है। उदाहरण के लिए वसन्त-रजनी सुन्दरी का यह चित्र देखिए।

धीरे-धीरे उतर क्षितिज से,
आ वसन्त रजनी।
तारकमय नव वेणी बन्धन,
शीश फूल कर शशि का नूतन,
रश्मि वलय सित घन-अवगुण्ठन,
　　मुक्ताहल अविराम बिछा दे
　　चितवन से अपनी।
　　पुलकती आ वसन्त-रजनी!
मर्मर की सुमधुर नूपुर ध्वनि,
अलि-गुंजित पद्मों की किंकिणि,
भर पदगति में अलस तरंगिणी।

यह सुन्दरी सोलह श्रृंगारों से सुसज्जित होकर प्रिय-मिलन के लिए जाते हुए किसके मन को मोहित न कर लेगी। अब एक सद्य-स्नाता सुन्दरी का चित्र भी प्रकृति के रूप में देखिए—

रूपसि! तेरा घन केश-पाश।
श्यामल श्यामल कोमल कोमल,
लहराता सुरभित केश-पाश।
नभ गंगा की रजत-धार में,
धो आई क्या इन्हें रात?
कम्पित हैं तेरे सजल अङ्ग,
सिहरा-सा तन है सद्यस्नात!
भीगी अलकों की छोरों से,
चूती बूँदें कर विविध लास।

इन तथा ऐसे अनेक गीतों में प्रकृति का मानवीकरण दर्शनीय है। कवयित्री को वेदना प्रिय है। वह दीपक की भाँति प्रिय के विरह में सदा जलती रहना चाहती है। जब प्रिय से मिलन हो जायेगा तो उस विरह-वेदना की मधुर जलन अपने आप लुप्त हो जाएगी, पर वह नहीं चाहती कि उससे उस मीठी पीडा का सुख छिन जाये। इसीलिए वह कहती है कि—

ऐसा तेरा लोक, वेदना नहीं,नहीं जिसमें अवसाद,
जलना जाना नहीं, नहीं जिसने जाना मिटने का स्वाद।

× × ×

क्या अमरों का लोक मिलेगा तेरी करुणा का उपहार?
रहने दो हे देव! अरे यह मेरा मिटने का अधिकार।

यही रहस्य है महादेवी जी की वेदना का और इसी लिए वे करुणा और वेदना की साकार अवतार कही जाती है। इसीलिए उन्होंने अपने जीवन दीपक को जलते रहने की प्रेरणा देते हुए कहा है कि—

मधुर-मधुर मेरे दीपक जल!
युग-युग प्रतिदिन प्रतिक्षण प्रतिपल,
प्रियतम का पथ आलोकित कर!

सौरभ फैला विपुल धूप वन,
मृदुल मोम सा घुल रे मृदु तन।
दे प्रकाश का सिन्धु अपरिमित,
तेरे जीवन का अणु गल-गल।
पुलक-पुलक मेरे दीपक जल।

मन्दिर के दीपक को लक्ष्य कर कवयित्री अन्यत्र क्या ही सुन्दर कहती है, देखिए—

यह मन्दिर का दीप इसे नीरव जलने दो,
झञ्झा है दिग्भ्रान्त रात की मूर्छा गहरी,
आज पुजारी बने, ज्योति का यह लघु प्रहरी।
जब तक लौटे दिन की हलचल,
तब तक यह जायेगा प्रतिपल,
रेखाओं में भर आभा-जल,
दूत सांझ का इसे प्रभाती तक चलने दो।

कभी कवयित्री भाव विभोर होकर अपने आप को प्रियतम की प्रतिमा के रूप मे चित्रित करती हुई कह उठती है कि—

शून्य मन्दिर मे बनूंगी आज मैं प्रतिमा तुम्हारी,
अर्चना हो शूल भोले, क्षार दृग-जल अर्घ्य हो ले,
आज करुणा-स्नात उजला, दुःख हो मेरा पुजारी ?

कभी वह प्रिय को आत्म रूप देखती हुई कहता है कि—

तुम मुझ मे फिर परिचय क्या !
× × ×
तेरा अधर विचुम्बित प्याला,
तेरी ही स्मित मिश्रित हाला,
तेरा ही मानस मधुशाला,
फिर पूछूं क्यों मेरे साकी।
देते हो मधुमय विषमय क्या !
रोम-रोम मे नन्दन पुलकित,

सांस-सांस में जीवन शत-शत,
स्वप्न-स्वप्न में विश्व अपरिचित,
मुझ में नित बनते मिटते प्रिय।
स्वर्ग मुझे क्या, निष्क्रिय लय क्या ?

इस प्रकार कवयित्री को विश्वास है कि उसका प्रिय उसी के पास है, वह कही उससे दूर नही गया और उसका यह अनन्त विश्वास भावो के रूप मे इस प्रकार बिखर पड़ा—

सखी मैं अमर सुहाग भरी,
प्रिय के अनन्त अनुराग भरी।

इस प्रकार स्पष्ट होता है कि महादेवी जी वस्तुत इस धरा पर स्वर्गीय भावो की अलौकिक गायिका है। उनके प्रत्येक गीत की प्रत्येक कड़ी ऐसे स्वर्गिक सौन्दर्य और माधुर्य से समन्वित है कि पाठक के हृदय मे बरबस पवित्र दिव्य भावनाए चमत्कृत हो उठती है। उन्हें आधुनिक युग की मीरा कहा गया है जो सर्वथा सत्य है।

प्रश्न २३—"महादेवी जी आधुनिक युग की मीरा हैं" इस उक्ति की सोदाहरण विशद व्याख्या कीजिए, अथवा महादेवी और मीरा की काव्य-साधना पर संक्षिप्त प्रकाश डालिए।

उत्तर—मीरा और महादेवी की सामाजिक, राजनैतिक, धार्मिक, सांस्कृतिक आदि परिस्थितियो मे रात दिन का अन्तर है। तदनुसार महादेवी और मीरा की काव्य साधना मे भी अन्तर स्वाभाविक रूप से होना ही चाहिए। फिर भी, बाह्य अन्तर के रहते हुए भी आन्तरिक दृष्टि से इन दोनो कवयित्रियो मे पर्याप्त साम्य स्पष्ट लक्षित होता है। जैसे कि—

दोनो ही उस दिव्य प्रियतम के प्रेम मे मतवाली है। दोनो ही उसी को अपना पति स्वीकार करती हैं। दोनो ही उसी के विरह मे तड़पती है तो कभी उसी के मिलन मे मोद मनाती है। अपने आप मे खोई हुई इन दोनो साधिकाओ को अपने प्रियतम के सिवा और किसी से कुछ लेना-देना नही। न इन्हें लोक की परवाह है न परलोक की। दोनो ही के हृदय की भावनाएँ मानो कविता के रूप मे फूट पड़ी है। इस प्रकार कविता का अन्तर तो दोनो का लग-

भग एकसा है ही किन्तु सबसे आश्चर्यजनक बात तो यह है कि अनेक गीतों मे दोनो मे न केवल परिपूर्ण भाव-साम्य है प्रत्युत शब्द साम्य भी मिल जाता है। यद्यपि-यह भी स्पष्ट है कि महादेवी जी ने जान-बूझकर कही कोई एक पद या एकाध भाव भी मीरा से नही लिया पर फिर भी अनायास ही दोनो में आश्चर्यजनक ढग से एकरूपता आ गई है। इसे भावापहरण तो कदापि कह ही नही सकते, अधिक से अधिक भाव-साम्य मात्र कहेंगे। यो, साहित्य मे इसे बुरा नही माना गया है कि किसी को किसी का कोई भाव पसन्द आ गया और उसने भी उसी भाव को लेकर एक सुन्दर कविता लिख दी। और छायावादी कवियो की तो भाव-धारा परस्पर अत्यधिक मिलती-जुलती है।

हमारा तो विश्वास है कि आगे उद्धृत किये जा रहे महादेवी जी और मीरा के जिन पदो मे स्पष्ट साम्य लक्षित होता है वह भी आकस्मिक है और इन पदों के लिखने से पूर्व महादेवी जी ने मीरा के इन पदो से कोई भाव या प्रभाव भी ग्रहण नही किया होगा।

इतना कहने का प्रयोजन यही है कि छात्रगण यह न समझ बैठें कि महादेवी जी ने मीरा से सामग्री उधार ली है। साम्य होते हुए भी दोनो कवयित्रियाँ सर्वथा मौलिक है।

हाँ, तो देखिए—

मीरा को उसके प्रियतम स्वप्न मे ही मिलते है—

माई म्हाने सुपने में वरो गोपाल।
रात पीती चुनरी ओढ़ी मेंहदी हाथ रसाल।

इधर महादेवी जी मे प्रिय-मिलन भी स्वप्न मे ही भासित होता है। वे कहती है—

कैसे कहती हो सपना है अलि उस मूक मिलन की बात?
भरे हुए अब तक फूलों में मेरे आसू उनके हाथ।

दोनो का ही यह प्रिय प्रेम विरह वेदना को लिए हुए है। मीरा कहती है कि—

असुँअन जल सींच-सींच प्रेम वेलि बोई—

तो महादेवी जी के नेत्र कोष भी अश्रु मुक्ताओ के लुटते रहने से रिक्त

हो गए है उस प्रिय विरह के कारण—

आंखो के कोष हुए मोती बरसा कर रोते।

मीरा सूर्य और धूप के समान प्रिय में तथा अपने में अन्तर नही देखती—

तुम विच हम विच अन्तर नाहीं जैसे सूरज घाम।

तो महादेवी कहती है कि—

मैं तुम से कहूँ एक, है जैसे रश्मि प्रकाश।

मीरा पपैये को सम्बोधित करते हुए कहती है कि हे पपैये ! तू बोल-बोल कर मेरी विरह-व्यथा को मत बढा—

पपैया रे ! पिय की बानी न बोल

तो महादेवी जी मुखर पिक से कहती है—

मुखर पिक हौले-हौले बोल

प्रकृति दोनो के विरह और मिलन मे भी समान रूप से उद्दीपक प्रतीत होती है। मीरा कहती है कि—

बरसै बदरिया सावन की, सावन की मन भावन की।
सावन में उमग्यौ मेरो मनवा, भनक सुनी हरि आवन की

तो उधर महादेवी ने भी ठीक इसी प्रकार के भाव व्यक्त किए है—

मुस्काता सकेत भरा नभ,
अलि, क्या प्रिय आने वाले है ?

× ×

लाये कौन सदेश नये घन ?

इस प्रकार सिद्ध होता है कि महादेवी और मीरा दोनो ही दिव्य प्रेम की स्वर्गीय सन्देशवाहिकाओ के रूप मे इस धरा-धाम पर अपनी सरस रचना सुधा का रस बरसाने आई है। सामयिक परिस्थितियो के भेद के कारण दोनों की रचनाओ मे अन्तर भी महान् है, पर दोनो की हार्दिक प्रवृत्तियाँ लगभग एक सी है और जैसे कि उक्त उदाहरणो से स्पष्ट है अनेकत्र भाव-साम्य और भाषा-साम्य भी विद्यामन है। अत यह कहने मे कुछ सकोच नही कि महादेवी वस्तुत. आधुनिक युग की मीरा है।

प्रश्न २४—महादेवी वर्मा को निम्नलिखित कृतियों पर टिप्पणी लिखो—

नीहार, रश्मि, नीरजा, सांध्यगीत, दीपशिखा।

उत्तर—नीहार—इसमें महादेवी वर्मा की प्रारम्भिक रचनायें हैं। इसकी रचनाओं में वैयक्तिक अनुभूति की प्रधानता है। इन कविताओं में विचारों की प्रधानता है। इनमें संगीत के तत्व भी हैं—

इन ललचाई पलकों पर, पहरा जब था क्रीड़ा का,
साम्राज्य दे डाला, उस चितवन ने पीड़ा का।
उस सोने के सपने को, देखे कितने युग बीते,
आँखों के कोष हुए हैं, मोती बरसा कर रीते।

रश्मि—इस संग्रह की कविताओं में चिन्तन की प्रधानता है। इन कविताओं में जीवन, मृत्यु, जीव, दुःख, सुख पर कवयित्री ने अनेक विचार प्रकट किए हैं। इनके विषय मौलिक नहीं हैं, परन्तु उनका प्रस्तुत करने का ढंग मौलिक है।

नीरजा—इनमें चिन्तन और अनुभूति का सुन्दर सामंजस्य तथा दार्शनिक विचारों का सुन्दर अवतरण है। इनकी विरह-भावना वेदना तथा हर्ष से पूर्ण और अलौकिक है। वर्मा जी ने इनमें प्राकृतिक उपकरणों का मानवीकरण बड़े ही सुन्दर ढंग से किया है—

मर्मर की सुमधुर नूपुर ध्वनि,
अलि-गुंजित पद्मों की किंकिणि,
भर पदगति में अलस तरंगिणि;
तरल रजत की धार बहा दे,
मृदु स्मित से सजनी,
विहँसती आ वसंत रजनी।

सांध्यगीत—इसकी कविताओं में कल्पना, अनुभूति तथा चिन्तन का सुन्दर समावेश है। इन गीतों का ईश्वरीय संयोग तथा वियोग से सम्बन्ध है। इसके प्रकृति से सम्बन्धित गीतों में भी रहस्यवाद की झलक है। [illegible] स्थान तथा वस्तु में उस परम पिता परमात्मा की सत्ता [illegible] होता है—

प्रिय सांध्य गगन,
मेरा जीवन,
यह क्षितिज बना धुँधला विराग,
नव अरुण अरुण मेरा सुहाग।
छाया-सी काया वीतराग,
सुधि-भीने स्वप्न रंगीले घन।

दीपशिखा—महादेवी वर्मा की कला अलकार आदि के मोह को छोड़कर सीधे सरस तथा सरल रूप में सौदर्य के साथ इसी सग्रह की कविताओ मे आकर पूर्णता को प्राप्त हुई है। इसके गीतो मे सदेह और अविश्वास नही, अपितु दृढता और विश्वास है। इसमे प्रिय की प्रतीक्षा न हो कर विरह मे रहने की भावना वनी हुई है। दीपशिखा के गीतो मे रहस्यवाद के निम्नलिखित तत्त्व पाये जाते है—

(१ परा विद्या की अपार्थिविकता। (२) वेदान्त का अद्वैतवाद। (३) लौकिक प्रेम की तीव्रता। (४) कवीर के दाम्पत्य भाव के समान दाम्पत्य भाव। (५) सूफीमत की प्रेममयी आत्मानुभूति और आत्मा एव परमात्मा का चिरकालिक विरह। (६) प्रकृति के अनेक रूपो मे एक सुन्दर व्यक्तित्व का आरोपण।

श्री रामधारीसिंह दिनकर

प्रश्न २५—श्री दिनकर जी का सक्षिप्त जीवन परिचय देते हुए इनकी साहित्यिक सेवाओ का मूल्यांकन कीजिए।

उत्तर—श्री रामधारीसिंह दिनकर का जन्म स० १९६५ मे विहार के 'मुगेर' जिले मे हुआ था। आपका शैशव काल कष्टो मे व्यतीत हुआ। आप अपने गाव से ४-५ मील की दूरी पर दूसरे गांव मे पढने जाते थे। वचपन से ही दीनता के कष्ट उठाये है। दैनिक जीवन मे आवश्यक सभी वस्तुओ का प्राय अभाव रहता था। आपकी कविता मे रुचि आरम्भ से ही थी। स्वामी विवेकानन्द के ग्रथो, तिलक के गीता रहस्य, इकबाल और नीत्से के पाठो ने कविता के लिए प्रेरणा दी। आपकी 'हिमालय', 'ताण्डव' और 'कस्मै देवाय' आदि कविताओं में कर्मयोगियो की पदध्वनि सुनाई पडती है।

आपकी रचनाओ मे युद्ध और शक्ति, हिंसा और अहिंसा, श्रद्धा और तर्क पशुबल और आत्मबल, हृदय और मस्तिष्क के द्वन्द्वो का सुन्दर चित्रण किया गया है। आपकी रचनाओ मे राष्ट्रीयता और विश्वबन्धुत्व की भावनायें मचल रही है। कभी-कभी आपकी भावनाओ मे शिव के समान प्रलयकारी ओज उमड पडता है। कभी-कभी आप पूँजीपतियो और शोषको पर भी गहरी चोटें करते हैं। आप भाग्यवादी नही हैं इसलिए जनता को उद्यम की ओर प्रेरित करते है। आपको आपकी भावनाओ के आधार पर 'क्रान्तिकारी' कवि कहा जा सकता है। आपकी काव्य साधना के विषय मे प० हजारी प्रसाद द्विवेदी लिखते है, "कि छायावाद के उन्मेष के पश्चात् दूसरे उन्मेष के कवियो का आगमन हुआ, परन्तु उनमे मानवतावाद का आदर्श अस्पष्ट रह गया था, दिनकर की रचनाओ मे वह पूरे जोर पर परिलक्षित होता है और उसका आकर्षण शिथिल नही हुआ है। आरम्भ से लेकर अब तक उसका विकास एक रस और गतिशील है।" श्री रामगोपाल जी चतुर्वेदी लिखते हैं कि मैंने दिनकर की ओजस्विनी कवितायें लखनऊ विश्वविद्यालय के विशाल कवि-सम्मेलन मे सुनी उनकी उद्दाम-रचनाओ से, उद्भट वीररस की स्फूर्ति के साथ जो दिनकर जी ने सुनाई, जनता मन्त्रमुग्ध हो गई। आपकी शैली सुनरां भावो का अनुसरण करती है। आपको घरेलू परिस्थितियो से बाध्य होकर ६०) रु० मासिक की नौकरी भी करनी पडी थी। यद्यपि आप अब भारतीय संसद् के निर्वाचित सदस्य है तब भी आपको पारिवारिक उत्तर-दायित्वो से मुक्ति नहीं मिली है।

आपकी रचनाएँ निम्नलिखित हैं।

(१) रेणुका (२) हुंकार (३) रसवन्ती (४) द्वन्द्वगीत (५) कुरुक्षेत्र (६) बापूदर्शन (७) सामधेनी (८) धूपछाह।

रेणुका—यद्यपि सन् १९३५ मे दिनकर की इस प्रथम रचना का प्रकाशन हुआ, तथापि यह गर्व से कहा जा सकता है, कि पंत की 'वीणा', निराला की अनामिका तथा गुप्त की प्रारंभिक रचनाओं की अपेक्षा भाषा, भाव और शैली की दृष्टि से दिनकर की 'रेणुका' का महत्वपूर्ण स्थान है। इसमे एक ओर 'हुंकार' जैसी आग बरसाने वाली रचनायें हैं तो दूसरी ओर 'रसवन्ती'

के समान कोमल अनुभूतिपूर्ण रचनाये भी है। 'रेणुका' में दिनकर की परवर्ती रचनाओ की झाकी भी मिलती है। प्रकृति-सुपमा के लिए 'निर्झरिणी', और 'मिथिला मे शरत्' आदि कविताये है तथा द्वन्द्वगीत की 'धूलि के हीरे' मे जीवन-जगत् के दर्शन कर सकते है। वर्तमान काल मे प्रयाग के बच्चन ने मधुशाला मे सरसता की मन्दाकिनी वहा दी है और दिनकर जी ने ओजस्वी रचनाओ द्वारा मानव के रक्त को ऊष्ण वना दिया है। बी० एन० कालेज पटना की साहित्य परिपद् के अवसर पर दिनकर जी की ओजस्वी रचनाओ ने वह समा वाध दिया कि प० माखनलाल चतुर्वेदी फडक उठे और कहने लगे कि दिनकर जी की रचनाओ को सुनने के लिए मुझे दक्षिण अफ्रीका भी जाना पडता तो भी मुझे प्रसन्नता ही होती। दिनकर की कविता की पुकार क्या है? सुनिये— वह कहती है, हे कवि!

"विद्युत छोड़ दीप साजूंगी, महल छोड तृणकुटी-प्रवेश,
तुम गांवो के बनो भिखारी, मैं भिखारिणी का लूं वेश।

कभी कहती है—

'सूखी रोटी खायेगा जब, कृपक खेत में धर कर हल,
तब दूंगी मैं तृप्ति उसे बनकर लोटे का गगा जल।
उसके तन का दिव्य स्वेदकण, बनकर गिरती जाऊँगी,
और खेत में उन्हीं कणो से, मैं मोती उपजाऊँगी।"

हुंकार—सन् १९३४ के पश्चात् जब समाजवादी भावनायें जागृत हुईं, तब दिनकर ने भी सामायिक सामग्री की खोज मे भारतीय इतिहास के ध्वसावशेषो की ओर दृष्टिपात किया और इस यज्ञ में अपनी आहुति चढाने के सकल्प से 'हुकार' की रचना की। वे मानो अपने आपको कह रहे हो—

'नये प्रात के अरुण! तिमिर उर में मरीचि संधान करो,
युग के मूक शैल उठ जागो, हुंकारो, कुछ गान करो।

'आलोक-धन्वा मे आपका गर्वीला रूप नितान्त रमणीय है। 'कविता का हठ' शीर्षक मे कविता स्वर्ग लोक से भूलोक में उतरना चाहती है। 'सिपाही' कविता मे उसका कर्त्तव्य बताया है, कि वह इसी देश की मिट्टी से पैदा हुआ,

अन्न-जल से पला, अत इसी की रक्षा के लिए उसे अब सांसारिक मोहपाश बांध नहीं सकते, बस इसी के लिए बलिदान होगा। 'भविष्य की आहट' में एशिया के नव जागरण का चित्र उपस्थित किया है। 'त्रिपथगा या दिगम्बरी' में आप की क्रान्तिकारिणी रचनायें हैं। बेनीपुरी का कहना है, कि 'विश्व साहित्य में क्रान्ति पर जितनी रचनायें हो चुकी हैं, उनमें 'त्रिपथगा' सर्वश्रेष्ठ है। यह एक मानो क्रान्तिकुमारी है, तलवार की झंकार ही जिसके पायलों की झंकार हो बिजली का कड़कना ही जिसकी कड़क हो अंगड़ाई में जिसके भूचाल हो, और श्वास में ४९ प्रकार की पवन बह रही हो, भला! ऐसी क्रान्तिकुमारी का शृंगार कौन कर सकेगा? 'नई दिल्ली' कविता में कवि ने इसे ब्रिटिश भारत की राजधानी तो कहा ही है, साथ ही इसे विलासिनी नायिका, परकीया, गणिका आदि तक कह डाला है। वर्णन सर्वथा रोमांचकारी है। कवि कहता है—

ओ दिल्ली!

तू वैभव मद में इठलाती, परकीयासी सैन चलाती,
री विलास की दासी! किसको इन आंखों पर ललचाती।

तूने—

हाय! छिनी भूखों की रोटी, छिना नग्न का अर्द्ध वसन है,
मजदूरों के कौर छिने हैं, जिन पर उनका लगा दसन है।
आहें उठी दीन कृषकों की, मजदूरों की तड़प पुकारें,
अरी! गरीबी के लोहू पर, खड़ी हुई तेरी दीवारें।

'हाहाकार' शीर्षक में दीन-हीन कृषकों के कष्टों का चित्र खींचा है। पढ़ते ही आंखों से अश्रु धारा बहने लगती है। यह भी कहा जाता है, कि जब राष्ट्रपति राजेन्द्रप्रसाद जी ने यह शीर्षक सुना तो सहसा वे रो पड़े, कितना कारुणिक दृश्य है। बच्चे 'दूध-दूध' पुकारते मर जाते हैं, उनकी कब्रों से भी दूध की चीत्कार सुनाई पड़ती है, परन्तु उसे कोई नहीं सुन पाता। इसी प्रकार 'नमन करूं मेरा मजबार', 'आज उनकी जय बोल', 'कलम' और 'व्यक्ति' इसी प्रकार के ओजस्वी गीत हैं।

रसवन्ती—इसमें सन्देह नहीं है, कि 'रसवन्ती' की रचना केवल मनोरंजन

के उद्देश्य से ही हुई है। सच तो यह है कि जिन्होने 'रेणुका' और 'हुंकार' की ओजस्वनी रचनाये पढी हैं, उन्हे 'रसवन्ती' मे कवि अपने उद्देश्य से पथ-भ्रष्ट प्रतीत होगा, और ऐसा कई समालोचको ने कहा भी है। वे भूल गये है, कि यह वही सरस कवि है, जिसने 'निर्झरिणी,' 'मिथिला मे शरत्,' और 'परदेशी' जैसी प्रेम भरी रचनायें की है। हलाहल पीनेवाले नीलकण्ठ से अर्द्ध शरीर मे भी अमृत का निवास होता है, सूर्य की ज्योति से सतप्त पर्वत भी ज्योत्स्ना को पाकर मधुर सगीत गाते है। 'रसवन्ती' मे 'गीत अगीत' 'प्रीति और आश्वासन', 'प्रभाती', 'अज्ञेय की ओर' और 'शेषगान' ये गीत शैली की रचनाये है। 'रास की मुरली' 'बालिका से वधू' 'नारी और कवि' और 'सन्ध्या' प्रगीत मुक्तक है। 'गीत अगीत कौन सुन्दर है' इसमे वेगवती तटिनी अपनी विरह व्यथा प्रस्तरो से कहती जा रही है मानो अपना दु ख कम करती जा रही है। परन्तु उसके किनारे खडा हुआ मूक पाटल भी कम रम-णीय नही है उसका 'अगात रूप' भी सहृदयो के लिए कम आकर्षक नही है ? 'प्रीति' शीर्षक गीत में प्रेम की व्यजना और भी मधुर हो गई है। 'आश्वासन-गीत' भी अनुपम है। छन्द, गीत और लय नवीन है। 'प्रभाती' का सवाद आध्यात्मिक जिज्ञासा की ओर सकेत करता है। 'द्वन्द्व गीत' में अनन्त की सत्ता जानने की इच्छा है। 'नारी' शीर्षक में बताया है कि मनुष्य की कठोरता नारी की कोमलता के आगे नाक रगडती है। 'कवि' के सम्बन्ध में दिनकर का कहना है कि "धरणी की आह जब कल्पद्रुम से टकराई, तब इस विश्वमरु में एक पराजित का कुसुम गिर पडा, वही पराजित 'कवि' है" कैसी मोहक कल्पना है। वास्तव मे 'रसवन्ती' में अत्यन्त मधुर, सरस एव कोमल गीतो की सृष्टि हुई है। अत्यन्त सुन्दर एव आकर्षक रचना है।

'द्वन्द्व गीत' इसमें आत्मा-परमात्मा, प्रकृति दर्शन और जीवन और जगत् के सम्बन्ध में मार्मिक उक्तियाँ कही गई है। ससार मे हर्ष-विशाद, सुख-दु ख, हास अश्रु और अनुराग-विराग का मिश्रण दिखाई देता है। इसलिए जीवन की समता और विषमता, सुन्दरता और कुरूपता, कोमलता और कठोरता का गान ही 'द्वन्द्व गीत' कहलाता है। जीवन और मरण की समस्याओ का द्वन्द्व ही इस जगत् की एक समस्या है।

मैं रोता था हाय विश्व,
रुक्मिण की करुण कहानी है।
सुन्दरता जलती मरघट है,
मिटती यहाँ जवानी है।

कुरुक्षेत्र—इस काव्य में महाभारत की कथा का आधार है और सभ्यता तथा संस्कृति के विषय में जो विचार प्रकट किए हैं, वे सर्वथा मनन करने योग्य है। इसमें धर्माधर्म, कर्त्तव्याकर्तव्य तथा कर्माकर्म के विषय में एक विशद विवेचन किया गया है जो अन्यत्र दुर्लभ है। इसमें केवल शरीरों का ही नहीं प्रत्युत आत्माओं का भी संघर्ष हुआ है, श्रीकृष्ण ने उपनिषद् रूपी गौओं को दुहकर जो गीतामृत रूपी दुग्ध दिया है जिसे पीकर मानव अमर हो गया है। अन्याय का सहना अन्याय रूपी सर्प को दूध पिलाना है, अपने अधिकारों की रक्षा के लिए यदि शस्त्र उठाने पड़ें और संसार का संहार भी करना पड़े, तो यह भी धर्म है, कर्त्तव्य है। अत्याचार का उत्तर नम्रता नहीं है, यदि अत्याचार को मिटाते-मिटाते हिंसा भी करनी पड़े तो वह हिंसा 'अहिंसा' से कहीं महत्वपूर्ण है। यही संदेश हमें महाभारत का युद्ध दे रहा है 'कुरुक्षेत्र' काव्य में भी इस की गूंज है। युधिष्ठिर जब अहिंसा से विजय प्राप्त करना चाहता है तब भीष्म पितामह अपनी वज्रवाणी में कहते हैं—

हे युधिष्ठिर!

'चुराता न्याय जो, रण को बुलाता भी वही है,
युधिष्ठिर। स्वत्व की अन्वेषणा पातक नहीं है।
नरक उनके लिए जो पाप को स्वीकारते हैं,
न उनके हेतु जो रण में उसे ललकारते हैं।

इस प्रकार 'कुरुक्षेत्र' में दिनकर कवि ने नवयुग की चेतना को सप्राण किया है और मानव को अमर शान्ति का सन्देश देकर उसे अमर बनाने का सत्प्रयत्न किया है। यह दिव्य भावनाओं का सुन्दर काव्य है।

बापू दर्शन—महात्मा गांधी 'बापू' कहलाते थे। वे युगावतार ही नहीं, युग के पुरुषोत्तम थे। उन्होंने भारत को पराधीनता की बेड़ियों से मुक्त कराया। ऐसे विश्ववन्द्य महात्मा को दिनकर भी अपनी श्रद्धांजलि अर्पित कर अपने को

धन्य मानता है। जब सन् १९४६-४७ मे कलकत्ता और नोआखली में नरक-कुण्ड घधक रहा था, बापू उस समय भी हिमालय की भाँति अचल थे। दिनकर ने श्रद्धा से विराट् के चरणो मे वामन के दिये हुए उपहार की भाँति 'बापू' नामक काव्य रच डाला। यह काव्य गाँधी की प्रशस्तियो मे सर्वश्रेष्ठ है। दिनकर को यह कवितायें बापू को सुनाने का सौभाग्य प्रदान न कर सकी, परन्तु मृदुला बेन ने सुनी है और कहा है कि "जैसी मनोवृत्ति इस काव्य मे बापू की बताई है, ठीक वे ऐसे ही थे।" दिनकर ने उनके अन्तरम को चित्र की भाँति वर्णन किया है—कवि कहता है—

तू सहज शक्ति का दूत,
मनुज के सहज प्रेम का अधिकारी।
दृग मे उंडेल कर सहज शील,
देखती तुझे दुनिया सारी।
धरती की छाती से अजस्र,
चिर संचित क्षीर उमडता है।
आंखों मे भर कर सुधा तुझे,
यह अम्बर देखा करता है।

बापू ने शान्ति द्वारा क्रान्ति की, अहिंसा और प्रेम के शस्त्रो से युद्ध किया, मानव को देवालय मे न भेजकर, मानव के हृदय मे ही देवत्व प्रगट कर दिया है।

सामधेनी—इस सग्रह मे दिनकर की सन् १९४१ से ४६ तक की रचनायें है। इसका शुद्ध नाम 'सामिधेनी' होना चाहिये। इस यज्ञ के लिये 'समिधायें' चाहियें, कवि इस यज्ञ का पुरोहित है। उसने अपने आपको 'अमर विभा का दूत' और 'धरणी का अमृत कलशवाही' कहा है। एक दिन चन्द्र ने मानव को चुनौती देते हुए कहा, कि मानव का स्वप्न क्षणिक है, एक बुलबुला है। मानव बोल उठा, कि मानव की कल्पना की रसना मे धार और उसके स्वप्न मे तलवार होती है। बुलबुला कहना मानव का घोर अपमान करना है। कवि की रागिनी तलवार की धार है। वह नव-निर्माण करने आई है।

मनु नहीं, मनुपुत्र है वह सामने जिसकी,
कल्पना की जीभ मे भी धार होती है।
वाण ही होते विचारों के नही केवल,
स्वप्न के भी हाथ में तलवार होती है।

'प्रतिकूल' प्रतिकूलता, 'दिल्ली और मास्को' मे साम्यवाद और उसकी जन्म-भूमि रूस पर भावनाये व्यक्त की है। 'जयप्रकाश' एक प्रशस्ति काव्य है। 'आग की भीख' 'जवानियां' और 'मार्या' ये तीनों कवितायें उर्दू के ढंग पर है।

धूपछाह—दिनकर जी का यह बालोपयोगी कविता संग्रह है। रवीन्द्रनाथ टैगोर ने भी बंगला भाषा मे शिशु और किशोर बालको के लिए सुन्दर साहित्य लिखा है। उपाध्याय जी ने भी संकेत मात्र लिखा है, परन्तु प्रसाद, पंत, निराला और महादेवी जैसे महाकवियो ने शिशु काव्य की सर्वथा उपेक्षा की है। चूं कि बच्चे ही राष्ट्र की सम्पत्ति होते है। उनकी भावनाओं को प्रोत्साहित करना भी राष्ट्र के कवियो का कर्त्तव्य है, ऐसा सोचकर दिनकर जी ने भी 'धूपछाह' लिखा है। इनमे केवल ६ कवितायें मौलिक हैं शेष छायावाद प्रतीत होता है। 'शक्ति या सौन्दर्य' तथा 'कलम और तलवार' महत्त्वपूर्ण हैं। कवि कहता है, "हमारे किशोर रजनी के चाँद न बने, दिन के प्रचण्ड मार्तण्ड बनें।" 'कलम' के विषय मे कवि लिखता है—

कलम देश को बडी शक्ति है, भाव जगाने वाली,
दिल ही नहीं दिमागो में भी, आग लगाने वाली।
पैदा करती कलम विचारो के जलते अंगारे,
और प्रज्वलित प्राण देश, क्या कभी मरेगा मारे।

इनके अतिरिक्त दिनकर जी ने 'रश्मिरथी' और 'धूप और धुआँ' कविता संग्रह भी सन् १९५२ में लिखे हैं। आपकी भाषा की शिथिलता पर श्री ब्रजकिशोर चतुर्वेदी जी बहुत झुंझला रहे है। उन्हें आपके 'याकि' 'चूं' और 'फोले' शब्द बहुत खटके हैं।

कुछ भी सही, हिन्दी साहित्य मे आपकी ओजस्विनी रचनाओ की सदा धाक रहेगी।

श्री बालकृष्ण शर्मा 'नवीन'

प्रश्न २६—श्री नवीन जी का सक्षिप्त जीवन परिचय देते हुए आपकी साहित्यिक सेवाओ पर भी प्रकाश डालिए।

उत्तर—श्री वालकृष्ण शर्मा 'नवीन' हिन्दी साहित्य के इने-गिने महारथियो मे से हैं। आप 'अखिल भारतीय व्रजभापा सम्मेलन' तथा 'प्रान्तीय-साहित्य सम्मेलनो' के अध्यक्ष रह चुके है। आपने व्रजभापा तथा खडी वोली दोनो मे सुन्दर रचनाएँ की है। वास्तव मे आप जीवन भर स्वतन्त्रता-सग्राम के सिपाही रहे है, सघर्ष करते-करते कई वार जेल-यात्रायें की है, वही जो कुछ समय मिलता रहा, आपने रचनाएँ प्रारम्भ कर दी, इस प्रकार आपने कई ग्रथ लिख डाले है, परन्तु महत्त्वपूर्ण रचनाएँ अभी तक अप्रकाशित है। हा, कुकुम अपलक, रश्मिरेखा, क्वासि और विनोवा स्तवन आदि रचनाए तो प्रकाशित हो गई है परन्तु सर्वश्रेष्ठ रचनायें अभी तक प्रकाश मे नही आई है।

आपने 'विस्मृत उर्मिला' नामक महा-काव्य भी लिखा है, आपने उर्मिला का चरित्र-चित्रण विचित्र ढग से किया है। आपने उसे 'निराशावाद' का प्रतीक वनाकर अपनी भावनाये व्यक्त की है। कला की दृष्टि से यह महा-काव्य अधिक सफल नही हो पाया है। सामयिक गीतो मे 'विप्लवगान' अधिक प्रसिद्ध है, कवि अपने जोश मे समस्त ससार की व्यवस्था को नष्ट-भ्रष्ट करना चाहता है। इस कविता मे ओज है, वल है, भाषा मे वेग है तथा कल्पनाओ मे भीपणता है। 'पराजय गीत' भी एक ओजस्वी रचना है। मार्मिकता से भरी हुई 'उन्माद' कविता एक कुचले हृदय की कहानी है, जीवन की तडप है। आपको न सुख चाहिए, न दुख ही, आप तो केवल फक्कड सन्त है। 'विषपान', 'यौवन-मदिरा' और 'विंदिया' मे मादकता और मधुरता दोनो का स्रोत वह रहा है। कवि रोना चाहता है—

> टुक रो लेने दो जरा देर, क्यों छेड रहे हो वेर वेर।
> आँखो का नशा उतरता है,
> झरना अव झर झर झरता है।

आप मनमौजी कवि है, यदि प्रयागनारायण त्रिपाठी ने आपकी कविताओ के प्रकाशन का भार न उठाया होता, तो ये रचनाए भी प्रकाश मे न आती।

अपलक, रश्मिरेखा और क्वासि—ये गीत-सग्रह भी विभिन्न भावनाओ से ओत-प्रोत है। इनमे माधुर्य, ओज, निष्ठा एव आनन्द की सरिता सी उमड रही है। इनकी गेय शैली की प्रधानता ने ही पाठको को मुग्ध कर रक्खा है। गीतो की आध्यात्मिकता पाठक को आनन्द विभोर कर देती है।

प्राणार्पण—यह खड काव्य है। गणेश शकर जी क्रोधान्ध यवनो के मध्य इस भावना से जाते है, कि इनमे क्रूर दानवता की प्रवृति दूर होकर 'मानवता' का स्रोत प्रवाहित हो उठे, परन्तु उन्होने इस शान्ति के दूत के ही प्राण ले लिये। यद्यपि यह उनपर एक अमिट कलक है, तथापि शान्ति के दूत ने हृदय से इन्हें क्षमा करके अपने देवत्व का परिचय दिया है।

'विप्लवगान' की बानगी देखिये—

'बरसे आग जलद जल जायें, भस्मसात भूधर हो जायें,
पापपुण्य सदसद् भावो की, धूल उड उठे दायें—बायें।
विश्वमूर्ति ! हट जाओ यह। वीभत्स प्रहार सहे न सहेगा,
टुकडे टुकडे हो जाओगे। नाशमात्र अवशेष रहेगा।

इन पक्तियो से पाठको को नवीन जी की ज्वलत प्रवृत्तियो का परिचय प्राप्त हो सकेगा। नवीन जी हिन्दी साहित्य-गगन के जाज्वल्यमान मगल नक्षत्र है। हमें आपसे बडी-बडी आशायें है।

श्री माखनलाल चतुर्वेदी

प्रश्न २७—श्री माखनलाल चतुर्वेदी का संक्षिप्त जीवन-परिचय देते हुए उनकी रचनाओं का दिग्दर्शन कराइए।

श्री चतुर्वेदी जी का जन्म स० १९४५ मे होशगाबाद जिले मे हुआ, आप मध्यप्रदेशीय है। आपने माधवराव सप्रे के सहयोग से 'कर्मवीर' पत्र का सम्पादन आरम्भ किया, तत्पश्चात् आपने 'प्रताप' तथा 'प्रभा' नामक पत्रो का भी सम्पादन किया। फिर से आपने 'कर्मवीर' का ही सम्पादन आरम्भ किया हुआ है। आप क्रातिकारी विचारो के वयोवृद्ध महारथी है। आपकी वाणी मे ओज और गजब की कडक रहती है। आप अखिल भारतीय हिन्दी साहित्य सम्मेलन हरिद्वार अधिवेशन के सभापति रह चुके हैं। यद्यपि परिमाण

में आपकी रचनायें बहुत थोडी है, परन्तु उत्कृष्टता की दृष्टि से हिन्दी साहित्य मे उनका विशेष आदर पाया जाता है। आपकी कवितायें राष्ट्रीय प्रेम सम्बन्धी, सौन्दर्य विषयक तथा रहस्यात्मक तीनो प्रकार की पाई जाती है। आपको प्राय 'नर्मदातट का गायक' कहा जाता है। आपकी 'पुष्प की अभिलाषा' नामक कविता देशभक्ति की भावना से पूर्ण है। आपकी छायावादी तथा रहस्यवादी रचनाओ मे अभिव्यजनात्मकता तथा लाक्षणिकता की प्रधानता पाई जाती है।

आपने कृष्ण मन्दिर (जेलखाना) की यात्रा करके देशभक्ति का भी क्रियात्मक परिचय दिया है। आप नवीन धारा के भी प्रथम कवि माने जाते हैं।

आपकी प्रसिद्ध रचनायें

(१) हिमकिरीटिनी (२) हिमतरंगिणी (३) कृष्णार्जुन युद्ध (नाटक) (४) साहित्य देवता (गद्य काव्य) (५) वनवासी (कहानी सग्रह) है। इनके अतिरिक्त बलिदान, उन्मूलितवृक्ष, सिपाही, मरण-त्योहार आदि आपकी राष्ट्रीय उत्कृष्ट रचनायें है। आप अपनी कविताओ मे 'एक भारतीय आत्मा' के नाम से विख्यात हैं। आपकी 'हरियाली की घडियाँ' कितनी मनोहारिणी है—

कौन सी हैं, मस्त घडियाँ चाह की, हृदय की पगडंडियों की राह की,
राह की ऐसी कनक सुन्दर बने, मौन की मनुहार की है आह की।
भिन्नता की भीत सहसा फांदकर, नैन प्राय· जूझने लेखे गये,
बिनु सुने, हँसते चले, चलते हुए, बिनु बुलाये बूझने देखे गये।

हिमतरंगिणी—चतुर्वेदी जी की कविताओ का यह प्रसिद्ध सग्रह है। इसमें कुल ५५ कवितायें है। इसके सम्बन्ध मे स्वय चतुर्वेदी जी लिखते है "मेरे जीवन का कुछ 'कभी-कभी' यह सग्रह बनकर पाठको के हाथो मे आ रहा है। इसे निर्मान्व जानकर युगरुचि के चरणो मे काँटा सा कुछ गड न जाये, अत इसे बरसो रोक रखा। इनमे से एक-दो तुकबदियाँ बीस बरस पहिले जब एक सामयिक में छप गई थी, तब एक सज्जन ने मेरी लिखास और युग की धारणा की दूरी को शब्दो मे मुझे लिखा था 'तुम्हारे काव्य को तो यार तुम्ही लिखो, तुम्ही पढो तब भी मैं लिखता क्यों गया ? मेरे निकट

तो यह परमात्मा है। आज भी वे क्षण वे उतार चढाव, वे आँसू, वे उल्लास वे जीवन-मरण मेरे निकट खडे है यही क्षण थे जब मैं युग से हाथ जोडकर मन-ही-मन कहता था, "कभी-कभी मुझे अपना भी रहने दो" पूजा गीत कही जाने की उम्मीदवार इन तुकबदियो की भी यही दुर्गति हुई। ये गीत पूजा रहे नही, प्रेम बने नही, अत. यह निर्माल्य शिखर की ऊँचाई से भगते हुए निमग्न हो गये। और 'हिमतरगिणी' नाम पा गये। प्रलय की आग होती तो ऊपर को सुलग कर भडकती, पानी थे कि ढालू जमीन ढूँढते चल पडे नीचे स्तर की ओर। आप प्रभु से व्यग्य कर रहे है—

तू ही क्या समदर्शी भगवान्,
क्या तू ही है अखिल जगत् का न्यायाधीश महान्।

हिमकिरीटिनी—राष्ट्रीय काव्य ग्रन्थो में 'हिमकिरीटिनी' जैसे उच्च भाव अन्यत्र नही पाये जा सकते। आपकी 'कैदी और कोकिला' शीर्षक कविता भी बहुत अच्छी है। कैदी और कोकिला की तुलना करते हुये कवि कहता है—

तेरा नभ भर में संचार, मेरा दस फुट का ससार,
देख विषमता मेरी तेरी, बजा रही तिस पर रणभेरी।

इसे सुनते ही हृदय मे एक अमिट भाव छा जाता है। श्री ब्रजकिशोर जी चतुर्वेदी को अनेक 'जुआ, कूआ' आदि प्रयोग इतने खटके है, कि उमी आवेश मे उन्होंने 'हूआ, छूआ, दूआ और सूआ,' प्रयोग व्यग्य-पूर्ण लिख डाले है। कही कही तो सस्कृत शब्दों के साथ उर्दू अथवा ग्रामीण मिश्रित प्रयोग कर डाले है, जैसे—

सद्य स्नाता भूरानी के, गोद भरे अहसान।

रेखाकित पद दर्शनीय है, इन्हें देखकर किसी सज्जन ने यहाँ तक लिख मारा—

सद्य. स्नाता भूरानी के, गोद भरे अहसान।
हिमकिरीटिनी में देखो, उर्वर-जरखेज मिलान!

इस प्रकार भाषा मे अस्तव्यस्तता की झाकिया भी देखी जा सकती है—जो हिन्दी की दृष्टि से अभिनन्दनीय नही है।

चतुर्वेदी जी की कविताओं को हम तीन भागों में विभक्त कर सकते हैं—
(१) राष्ट्रीय (२) प्रेम सम्बन्धी (३) रहस्यवादी या छायावादी। 'पुष्प की अभिलाषा' जैसी रचनायें राष्ट्रीय कही जा सकती हैं। इनके अतिरिक्त 'कुंज कुटीर जमुना तीरे' तथा "लूंगी दर्पण छीन" आदि कवितायें प्रेम-भाव से ओत-प्रोत है। ऐसी कवितायें अधिक है।

आप की 'रहस्यवादी' कविताओं में 'सीम असीम, शेष-अशेष, आत्मा-परमात्मा और व्यक्त-अव्यक्त,' ये द्वन्द्व भाव दिखाई पड़ते हैं। ऐसी दशा में रचना भी कहीं-कहीं क्लिष्ट हो गई है। आपकी 'स्मृति के मधुर वसन्त' रचना भी अत्यन्त सुन्दर है। देखिये तो—

तरु-अनुराग साधना डाली, लिपटी प्रीति-लता हरियाली,
विमल अश्रु कलिकायें उन पर, तोड़ूंगी ऋतुराज उभारो।

इस प्रकार आप की रचनायें राष्ट्रपति को बहुत ही पसंद आती है। अब आपका 'कृष्णार्जुन युद्ध' नाटक अत्यन्त रोचक शैली में लिखा गया है। इस नाटक का सफलता-पूर्वक अभिनय भी हिन्दी साहित्य सम्मेलन के अधिवेशन के अवसर पर किया जा चुका है। आपने एक ही नाटक लिखकर नाट्य-जगत् में अमर कीर्ति प्राप्त कर ली है।

————

अन्य कवि

श्रीधर पाठक

भारतेन्दु-मडल से प्रेरणा प्राप्त कर साहित्य-सर्जना करने वालो में पाठक जी का नाम प्रमुख है। साहित्य में खडी बोली के अवतरण का जो उपक्रम भारतेन्दु जी से प्रारम्भ हुआ था, वह यद्यपि अब एक सीमा तक पूरा हो चला था फिर भी पाठक जी को इस दृष्टि से सक्रान्ति-काल का कवि कहना उपयुक्त होगा। उन्होने ब्रज और खडी दोनो भाषाओ में शक्तियुक्त प्रवाहमयी रचनायें की है। ब्रज मे 'काश्मीर-सुषमा' आपकी कीर्ति का आधार स्तम्भ है। आपकी 'एकान्त-वासी योगी' और 'श्रान्त पथिक' खडी बोली की प्रमुख रचनायें है।

विषय-चयन की दृष्टि से पाठक जी का महत्त्व बहुत अधिक है। आपने अनेक विषयो पर अधिकारपूर्ण लेखनी चला कर कविता क्षेत्र को विविधता प्रदान करने के साथ-साथ नवीन विषयो मे मौलिक विवेचनो के द्वारा साहित्य मे ओजस्विता का भी सचार किया। विधवा के प्रति तीव्र-सवेदना, शिक्षा-प्रचार, राष्ट्र की विभूतियो के यशोगान की चर्चा आदि सभी विषय उनकी लेखनी के प्रमुख उपकरण थे। पर सबसे अधिक पाठक जी सभवत. प्रकृति के उपासक थे। भारतेन्दु काल तक की प्रकृति-चित्रण की पुरानी परपाटी को त्याग कर प्रथम बार उन्होने प्रकृति का आलबन रूप मे अकन किया। प्रकृति के प्रति कवि ने स्वच्छन्द किन्तु उदार उद्गार व्यक्त किये है जो उनके वास्तविक प्रकृति-प्रेम के परिचायक है। यही कारण है कि उनके काव्य मे सर्वत्र एक ग्राम्य सौदर्य व्याप्त है जो अपनी सरलता में काव्य का शृगार बन गया है।

आपकी रचनायें 'ऊजड ग्राम' और 'श्रान्त पथिक' अग्रेजी की पुस्तको के अनुवाद है। इससे स्पष्ट है कि पाठक जी को अग्रेजी का भी अच्छा ज्ञान

था। पाठक जी ने संस्कृत भाषा तथा साहित्य में पर्याप्त रुचि होने के कारण संस्कृत साहित्य का बहुत अध्ययन किया था। ये सब मिलकर ही वास्तव में इनकी सुरुचि और सरसता के साधक तत्त्व बन सके थे।

सम्वत् १९८५ में ६९ वर्ष की आयु मे पाठक जी का स्वर्गवास हो गया।

जगन्नाथदास रत्नाकर

आधुनिक युग मे जब कि खड़ी बोली का बोल-बाला है, रत्नाकर जी ने ब्रज भाषा मे काव्य लिखा है। शृंगार काल में ब्रज भाषा केवल विलास और विषय वासना का प्रतीक बन कर रह गई थी, परन्तु आपने ब्रज भाषा मे ही भक्ति, प्रकृति और शृंगार के साथ-साथ जीवन के अन्य सभी उपकरणों का प्रयोग करके बहुत सफल और अधिकारपूर्ण रचनाएँ की हैं।

रत्नाकर जी की प्रथम प्रमुख रचना अंग्रेजी पुस्तक Essay on Criticism का हिन्दी अनुवाद 'समालोचना दर्पण' है। यह अनुवाद आपने सन् १८९५ ई० में किया। इसी समय से आप निरंतर साहित्य सृजन करने में लीन हैं। रत्नाकर जी की रचनाएँ प्राय. मुक्तक कोटि में रहती हैं, परन्तु साथ ही एक कथासूत्र भी रहता है। आपके मुक्तक भी एक लम्बी भावपूर्ण कविता की भांति एक हार मे पिरोये हुए प्रतीत होते हैं। 'उद्धव शतक' 'हरिश्चन्द्र' 'हिंडोला' तथा 'गंगावतरण' आपकी इसी कोटि की रचनाएँ है। भाषा की दृष्टि से भी आपका बहुत महत्त्व है। ब्रज भाषा को व्याकरण सम्मत बना कर आपने उसकी उच्छृंखलता को दूर किया। आपका काव्य के प्रति दृष्टिकोण प्राचीन था। आपकी कविताओं मे अलंकारों और रसों का सांगोपांग निर्वहण सर्वत्र मिलता है।

रत्नाकर जी केवल कवि ही नहीं अपितु एक सफल समालोचक तथा अच्छे सम्पादक भी थे। 'बिहारी-रत्नाकर' और 'बिहारी की आलोचना' में आपकी समालोचना करने की प्रतिभा प्रस्फुटित हुई है। प्रमुख रचनाएँ—उद्धवशतक, हिंडोला, हरिश्चन्द्र, गंगालहरी, कलकाशी, शृंगार लहरी आदि। इनके अतिरिक्त आपने सभी ऋतुओं पर अष्टक और इतिहास के

प्राय सभी प्रमुख व्यक्तियो पर छोटी-छोटी अनेक रचनाये की है।

रत्नाकर जी का स्वर्गवास सम्वत् १९८८ में ५५ वर्ष की आयु में हुआ।

उदयशंकर भट्ट

बुद्धिवादी सामाजिक क्रान्ति का आह्वान करने वाले प्रगतिशील कवियो मे श्री उदयशकर भट्ट का प्रमुख स्थान है। दार्शनिकता, मौलिकता और यथार्थता आपके काव्य की विशेषताएँ है। बल, साहस और आत्म-विश्वास के भावो को जगाने वाले इनके स्वरो मे जीर्ण मान्यताओ के प्रति एक चुनौती है। कर्मवाद एव भाग्यवाद में आपका विश्वास नही है। आप तो पौरुषवादी है। आपका कहना है कि मानव अपने भाग्य का निर्माण स्वय करता है और वह परिस्थितियो का दास नही है, वह तो उनका स्वामी है। मनुष्य को अपने जीवन को उज्ज्वल बनाने के लिए पुरुषार्थी होना चाहिए। केवल मात्र ईश्वर के भरोसे पर बैठे रहने और कुछ भी पुरुषार्थ न करने से जीवन दु खमय तथा नष्ट हो जायेगा। मानव को अत्याचार और अन्याय को चुपचाप नही सहना चाहिए। उसे उनके विरुद्ध आवाज उठानी चाहिए। उन्हें इस बात पर सदेह है कि ईश्वर अत्याचारी को दण्ड देगा—

शत्रु अकारण दु ख दे रहा
लूट रहा है, मार रहा है,
औ न्यायी प्रभु देख रहा है
पर पद-पद पर हार रहा है।

कवि बताता है कि आज उस न्यायी भगवान् ने क्या किया है—

कुछ न कर सका पीड़ित के प्रति
कुछ न किया है अब तक उसने,
कुछ न करेगा आगे वह
निर्बल को यों देगा चुसने।

भट्ट जी की कविताओ मे शोषण और सामाजिक रूढियो के प्रति विद्रोह की अग्नि प्रज्ज्वलित हो रही है।

भट्ट जी केवल कवि ही नहीं अपितु एक उच्चकोटि के नाटककार भी हैं। हिन्दी में दुखान्त नाटक लिखने का श्रीगणेश आपने ही किया था।

प्रमुख काव्य-संग्रह—तक्षशिला, राका, मानसी, विश्वामित्र, मत्स्यगन्धा, विसर्जन, युगदीप, यथार्थ और कल्पना, अमृत और विष।

प्रमुख नाटक—दाहर, सागर-विजय, कमला, मुक्ति-पथ।

डा० हरिवंशराय बच्चन

डाक्टर हरिवंशराय बच्चन की गणना आधुनिक युग के महान् कवियों में है। आप कवि सम्मेलनों की परम शोभा हैं और काव्य-रसिकों के परम गौरव हैं। आरम्भ में आपने उमर खैयाम की रुबाइयों का हिन्दी में रूपान्तर किया। फिर धीरे-धीरे हिन्दी कविता में ख्याति प्राप्त करते चले गए।

इस वादों के युग में बच्चन ने भी हिन्दी कविता को एक नया वाद प्रदान किया है। इस वाद को 'हालावाद' कहते हैं। यह वाद भोगवाद का प्रतीक है और इसका आधार उग्र अध्यात्म-विद्रोह है।

कवि का आरम्भिक जीवन चिन्ताओं और निराशा का जीवन था। इस निराशा का कारण कवि का व्यक्तिगत सुख-दुःख भी था और देश और समाज की बिगड़ी हुई स्थिति भी। जिस राजनीतिक आन्दोलन से प्रभावित होकर कवि ने विश्वविद्यालय का अध्ययन छोड़ा था, वह विफल हो चुका था। मध्यवर्ग में बेरोज़गारी बढ़ती जा रही थी। कवि का स्वयं का जीवन अवसादग्रस्त था। कवि की आर्थिक स्थिति बहुत ही खराब थी। आपकी पत्नी राजयक्ष्मा के रोग में स्वर्ग सिधार चुकी थी और पत्नी की मृत्यु ने कवि को पागल बना दिया था। जीवन की अनित्यता, सुख-साधनों की अस्थिरता और आकांक्षाओं की पूर्ण विफलता ने उसे विस्मृति की हाला का आह्वान करने की प्रेरणा की और वह 'क्षणवादी' हो गया। 'मधुबाला', 'मधुशाला' और 'मधुकलश', कवि की इसी प्रकार की रचनाएँ हैं। 'एकान्त संगीत' और 'निशा निमन्त्रण' में भी अवसाद, चिन्ता और निराशा की झलक स्पष्ट है। जीवन के पुनः सुखमय हो जाने पर कवि के दृष्टिकोण में भी परिवर्तन हो गया। इस परिवर्तित जीवन में आपने 'मिलन-यामिनी' और 'सतरंगिणी' की रचना

ती। इन रचनाओं में कवि जीवन के सौंदर्य के प्रति स्वस्थ चेतना की ओर आकर्षित हुआ है। कवि की 'वैभाव का काल' 'आकुल अन्तर' आदि रचनाये भी प्रसिद्ध है। कवि ने बापू के निधन पर दो-सौ से भी अधिक गीत लिखे थे।

आजकल आप भारत सरकार के विदेश मत्रालय में कार्य कर रहे है और हिन्दी साहित्य की निरतर सेवा कर रहे है।

ठाकुर गोपालशरण सिंह

ठाकुर गोपालशरण सिंह ने ब्रज भाषा में कविता लिखना आरम्भ किया, परन्तु बाद मे आप खडी बोली मे लिखने लगे। आपकी कविताओ मे देशभक्ति कूट कूट कर भरी हुई है। गत दिनो आपने रहस्यवाद की भी कुछ कवितायें लिखी थी। आपकी भाषा सरल और स्वाभाविक बन पडी है। कविताओ में अलकार अपने आप आ गए है। अलकारो के आ जाने से आपकी कविता निखर उठी है। आपकी शैली प्राचीन है। छन्द और विषय सभी कुछ प्राचीन टाइप के है। घनाक्षरी छन्द का प्रयोग आपने बडी कुशलता से किया है। आपकी कविता में मार्मिक चित्रण भी पर्याप्त पाया जाता है, जिसे पढकर पाठक हृदय की टीस से व्याकुलता हो जाता है।

प्रमुख रचनायें—माधवी, कादम्बिनी, मानवी, ज्योतिष्मती, सचिता, आदि।

सुमित्रानन्दन पंत

पंत जी की साहित्यिक विचारधारा के विकास के तीन सोपान हैं, पहली अवस्था मे वे छायावादी, दूसरी मे समाजवादी एव तीसरी में अध्यात्मवादी विचारक कवि के रूप मे अवतरित हुये है।

छायावादी कवि के रूप मे पत जी ने प्रकृति का विशद वर्णन किया है। उन्होंने प्रकृति के कोमल कमनीय दृश्यो को ही नही प्रत्युत उसके विकराल विराट उपकरणो के अन्तर्निहित रहस्यो को भी सरल हृदयहारी रूप मे उपस्थित किया है। वे प्रकृति की ओर अत्यन्त आकर्षित हुए है। प्रकृति प्रेम का यह रूप अग्रेजी कवि वर्ड सवर्थ के अतिरिक्त अन्यत्र दुर्लभ है। कही प्रकृति

कवि की बालसहचरी है और कहीं वह शिशिका के रूप में आई है। उसके अणु-अणु के लिए कवि के मन में आतुरता है और औत्सुक्य है। अपनी विचारधारा के इसी उत्थान में कवि ने कई स्थलों पर मानव प्रकृति के भी अच्छे चित्र अंकित किए हैं। बालिका के अकृत्रिम प्रतिस्निग्ध हृदय की सरलता और स्वाभाविकता के चित्रण में उसने जिस सूक्ष्म निरीक्षण और अभिव्यंजनाकौशल का परिचय दिया है, वह विचित्र है।

दूसरी अवस्था में शीघ्र ही कवि मानव का सही मूल्य आंकने की चेष्टा करता है। कृषकों की वास्तविक स्थिति के दर्शन से वह पीड़ित हो उठता है। मार्क्सवादी दर्शन से प्रभावित होकर वह शोषक-शोषित के अन्तर को स्पष्ट समझने लगता है। ऐसे ही क्षणों में उसने 'ताज' शीर्षक कविता में समाज की अल्हड़ मूर्खता पर भी व्यंग्य कसे हैं। 'ताज' उसे 'मृत्यु का अमर अपार्थिव पूजन' के अतिरिक्त कुछ नहीं दीखता।

'युगान्त', 'युगवाणी' और 'ग्राम्या' की इन कविताओं से कवि की हार्दिक सौंदर्यवादी चेतना का सामञ्जस्य नहीं हो सका। अतः कवि की चेतना में एक और मोड़ उपस्थित होता है। इसमें कवि ने अरविन्द के अध्यात्मवादी विचारों से प्रभावित होकर जीवन के सांस्कृतिक पक्ष को काव्य का विषय बनाया है। काव्य-यात्रा के इन सभी अवस्थाओं में पन्त के विषय में एक बात विशेष रूप से दृष्टव्य है उनका व्यक्तिवादी दृष्टिकोण, जिसके कारण वे पुरुष और अनगढ़ को भी सुन्दर के रूप में प्रस्तुत करते रहे हैं और जिसके कारण वे समाजवादी बौद्धिक विचार धारा आत्मसात नहीं कर पाये। इसी सौंदर्यवादी दृष्टिकोण के कारण उनकी भाषा सर्वत्र अत्यन्त कोमल और मधुर रही है। छन्दों के चयन में उन्होंने सतर्कता से काम लिया है। शब्दों में चित्रात्मकता है, विशेषमत्ता है और इसके साथ उनमें स्वरूप-निर्देश कर देने की अनूठी क्षमता भी है।

प्रमुख रचनायें—उच्छ्वास, पल्लव, वीणा, ग्रन्थि और गुन्जन छाया-वादी रचनायें हैं।

युगान्त, युगवाणी और ग्राम्या समाजवादी काव्यधारा का रचनायें हैं।

स्वर्णधूलि, स्वर्णकिरण आदि अध्यात्मवादी सास्कृतिक काव्यधारा की रचनायें है।

सोहनलाल द्विवेदी

द्विवेदी उत्तर प्रदेश के फतहपुर जिले के एक अच्छे भूमिपति है। हिन्दी साहित्य में आप गाँधीवाद के सर्वप्रमुख कवि माने जाते है। आपकी कवितायें राष्ट्रीय, सास्कृतिक और भावप्रधान गीत इन तीनो रूपो मे पाई जाती है। 'भैरवी' आपकी राष्ट्रीय कविताओ का सग्रह है। इसमें देश को जगाने का प्रयत्न किया गया है। 'पूजा गीत' मे वीर पूजा के भाव है। इनसे आध्यात्मिकता का उत्थान हुआ और चित्रा के भावगीत लिखे गए। "वासवदत्ता" सास्कृतिक कविता है। इसमे एक वेश्या का प्रेम-निमन्त्रण ठुकराने के पश्चात् उसकी उपेक्षित एव असहाय दशा मे गौतम का करुणापूर्वक जाना वर्णित है। इनकी कविताओ मे युग की भावना है भविष्य का सदेश नही है।

श्यामनारायण पाण्डेय

श्री श्यामनारायण पाण्डेय उन चुने हुए कवियो में से है जिन्होने आधुनिक खडी बोली काव्य में वीर रस की सृष्टि की है। भारतीय इतिहास के यशस्वी पुरुषो की कीर्ति-गाथा मे इन्होने सास्कृतिक दृष्टिकोण उपस्थित किया है। इनकी रचनायें प्रकाशित हो चुकी है—'त्रेता के दो वीर', 'जौहर', 'आरती' और 'हल्दीघाटी'। 'त्रेता के दो वीर' में लक्ष्मण और मेघनाद के युद्ध का ओजपूर्ण वर्णन है। 'जौहर' मे गोरा-बादल के युद्ध और रानी पद्मिनी के जौहर का वर्णन है। हल्दीघाटी' में राणा प्रताप के जीवन की वीर रस प्रधान घटनाओ का सुन्दर चित्रण है। कवि ने वीर रस से पवित्र हल्दी घाटी की वन्दना कर भारतीय नवयुवको मे वीरता के भाव उत्पन्न करने की चेष्टा की है—

स्वतन्त्रता के लिए मरो, राणा ने पाठ पढाया था।
इसी वेदिका पर वीरों ने, अपना शीश चढाया था॥
तुम भी तो उनके वशज हो, काम करो कुछ नाम करो।
स्वतन्त्रता की बलि वेदी है, झुक कर इसे प्रणाम करो॥

श्री पाण्डेय जी की शैली वर्णनात्मक है। शब्द चयन में कवि कुशल हैं। भाषा में माधुर्य, प्रवाह, ओज, सरलता और सुबोधता है। भाषा में वर्णन वैचित्र्य अपने आकर्षण के साथ बराबर अग्रसर होता रहता है।

ओजमयी भाषा में ऐतिहासिक इतिवृत्तों का वर्णन कर वीर रस की धारा प्रवाहित करने वाले कवियों में पांडेय जी का स्थान सदैव अभिनन्दनीय रहेगा।

रामकुमार वर्मा

वर्तमान हिन्दी साहित्य में वर्मा जी का स्थान कम महत्त्वपूर्ण नहीं। वर्तमान हिन्दी काव्य में रहस्यवादी धारा को बल प्रदान करने वाले कवियों में आपका नाम प्रमुख है। इनके साथ हिन्दी साहित्य के इतिहास का प्रमुख विद्वान् होने का गौरव भी डा० वर्मा जी को प्राप्त है। एक गम्भीर आलोचक के रूप में डा० वर्मा जी का नाम सर्वज्ञात है।

वर्मा जी की कविता को हम दो रूपों में पाते हैं—वर्णनात्मक काव्य और गीतिकाव्य। वर्णनात्मक कविताओं में कवि पहले वातावरण तैयार करता है, तब रचना करता है। इसके उदाहरण 'रूपराशि' में 'शुजा' और 'नूरजहाँ' रचनायें हैं। भाव और भाषा की दृष्टि से 'नूरजहाँ' कविता 'शुजा' से अधिक सुन्दर बन पड़ी है।

हिन्दी साहित्य का गीतिकाव्य वर्मा जी की रचनाओं से समृद्ध है। इनके गीतिकाव्य में कल्पना की ऊँची उड़ान है। और भावों की गहरी मार्मिकता है। 'अंजलि', 'अभिशाप', 'चित्ररेखा', 'चन्द्रकिरण' आदि अनेक काव्य संग्रह हैं। धीरे-धीरे इन रचनाओं में रहस्यवाद की भावना का समावेश किया गया है। 'पृथ्वीराज की आँखें', 'रेशमी टाई' आदि एकाकी नाटक हैं। आपका काव्य वेदना से भरा है जिसमें जीवन के सुख-सौंदर्य की क्षणभंगुरता का वर्णन विशेष रूप से रहता है। जब कवि को इस संसार में प्रत्येक सुन्दर वस्तु असुन्दर या नाश में परिवर्तित होती दिखाई पड़ती है तो वह कह उठता है—

"नश्वर स्वर से कैसे गाऊँ, आज अनश्वर गीत ?
जीवन की इस प्रथम हार में, कैसे देखूँ जीत ?"

अन्यत्र कवि बादल बन कर दु:खपूर्ण पृथ्वी को अपने करुणा रूपी जल से सुखद और सरस बनाना चाहता है। जीवन में आत्म-समर्पण की भावना चाहता है—

"मैं आज बनूँगा जलद जाल, मेरी करुणा का वारि
सींचता रहे अवनि का अन्तराल।

वर्मा जी की भाषा पर संस्कृत भाषा का पर्याप्त प्रभाव है। भावानुकूल भाषा आपकी अनायास बनती है। छन्दो का प्रयोग भी कवि ने किया है। शैली की वैशिष्ट्य एकांकी नाटको मे विशेषत. झलकता है। संस्कृत, हिन्दी अंग्रेजी के विद्वान् होने के कारण इनके काव्य मे प्रौढता है।

सुभद्राकुमारी चौहान

स्वर्गीयदेवी सुभद्राकुमारी चौहान उन कवियो में से है जो देश की पुकार पर मर मिटने को सहर्ष तत्पर है। इनकी कवितायें तीन प्रकार की हैं—राष्ट्रीय, प्रेम सम्बन्धी, और वात्सल्य रस से परिपूर्ण। आधुनिक राष्ट्रीय चेतना की आप वाणी हैं। इनकी राष्ट्रीय रचनाओ पर माखनलाल चतुर्वेदी की प्रतिभा का गहरा प्रभाव है।

सुभद्रा जी की अधिकाश कवितायें राष्ट्रीय हैं। वास्तव में इनका जीवन ही देश के स्वतन्त्रता आन्दोलनो में भाग लेते-लेते बीता है। आपने अनेक बार जेल-यात्रायें की। इनकी कविताओ मे इसीलिए सच्चा अनुभव है। जीवन की स्वाभाविकता मे कविता रचना करते हुए उन्होने कवियो के सम्मुख एक नया दृष्टिकोण उपस्थित किया है। राष्ट्रीय कविताओ मे वीर-भाव के साथ-साथ भावुकता भी है। 'झासी की रानी' को पढ कर हृदय तड़प उठता है, विचारों मे उथल-पुथल मच जाती है। 'मुकुल' उनका काव्य-सग्रह है और 'बिखरे मोती' तथा 'उन्मादिनी' उनके कहानी-सग्रह है।

श्रीमती सुभद्राकुमारी ने नारी और माता होने के नाते अनेक रचनाओ मे वात्सल्य भावनाओ को मूर्त रूप दिया है। इनके प्रेम मे वासना की आंधी नहीं है। उनका शृंगार-वर्णन सुन्दर और सयत है।

शैली अत्यन्त सरल और पवित्र है। न उनमे भाषा की रंगीनी और न

भावों की जटिलता है। देखिए—

वीरों का कैसा हो वसन्त ? आ रही हिमाचल से पुकार,
है उदधि गरजता बार-बार, प्राची, पश्चिम, भू, नभ अपार।
सब पूछ रहे हैं दिग् दिगन्त, वीरों का कैसा हो वसन्त ?

इन पंक्तियों की सरलता, मादकता और भावुकता इनके काव्य की विशेषता है। इनकी भाषा साहित्यिक खड़ी बोली है। शब्दों और वाक्यों की योजना सुन्दर है।

जगन्नाथ प्रसाद मिलिन्द

मिलिन्द जी की गणना राष्ट्रीय धारा के प्रमुख कवियों में होती है। रचनात्मक क्षेत्र में कला का दायित्व आप खूब समझते हैं। युग जीवन की झांकी प्रस्तुत करने के साथ ही मानव-कल्याण की नयी दिशा दिखाना श्री मिलिन्द अपने काव्य का उद्देश्य समझते हैं। मिलिन्द जी कविता के बारे में एक स्थान पर गम्भीरता से लिखते हैं—"कवि का मन स्वभावतः ही इतना सुसंस्कृत होना चाहिए कि उसमें उठने वाले प्रत्येक विचार भविष्य में संसार के लिए हितकर प्रमाणित हो। जिसका मन असंस्कृत है, वह कवि नहीं। रचना करते वक्त कवि को अपने मन पर उद्देश्य का भार कदापि न लादना चाहिए। उसे हर हालत में आत्म-परितोष के लिए ही कविता करनी चाहिए। यदि उसकी आत्मा निष्कलुष हुई, तो उसे केवल उन्हीं भावों से परितोष होगा, जो विश्व कल्याण के कारण होंगे……।" इस अवतरण से मिलिन्द के काव्य विकास का परिचय मिल जाता है।

मिलिन्द के काव्य के चार भिन्न रूप मिलते हैं। पहले काल की कविताएँ इनका प्रकृति-प्रेम प्रकट करती हैं। इनमें फूल, कली, उपवन आदि का अधिक चित्रण किया गया है। ये सरसता और सरलता से भरपूर हैं। इनमें कल्पना की प्रधानता है, अनुभूति का अंश कम है।

'जगता राष्ट्र' नामक कविता से मिलिन्द के काव्य का दूसरा रूप प्रकट होता है। तीसरा रूप उन कविताओं में पाया जाता है जिनमें प्रेम और करुणा की भावनाओं की सरस और वेदनापूर्ण अभिव्यक्ति है। चौथा रूप

आजकल की छायावादी रचनायें है। 'बिखरे भाव' कविता अधिकतर छायावादी भावनाओ में पूर्ण है। कवि कहता है कि उस अनन्त के सौदर्यकिरण को छू कर अपना जीवन सुनहला बना लो—

"उस सौन्दर्य-किरण से छू कर
करो सुनहला यह जीवन"।

आप की भाषा ओजपूर्ण है। मानव की दीन दशा के सफल चित्र आपकी भाषा में खूब उतरे है। व्यंग्यात्मक शब्दो की योजना आप के काव्य मे रहती है।

हरिकृष्ण प्रेमी

गुना जिला ग्वालियर मे आपका जन्म हुआ। लाहौर मे रहते हुए स्वतन्त्रता सग्राम मे भाग लिया। विभाजन के बाद दिल्ली आ गये। अब सिनेमा क्षेत्र मे गीत लिखते है। प्रसाद के बाद सबसे अधिक प्रसिद्ध नाटककार आप ही है। हिन्दू-मुस्लिम एकता का भाव उनमे प्रधान है। 'शिवा-साधना', 'आहुति', 'रक्षा-बन्धन', 'मित्र', 'स्वप्न भग' इनके उत्तम नाटक है। आपकी कवितायें प्रगतिवादी, रहस्यवादी दोनो ही प्रकार की है। जादूगरनी वीणा, अनन्त के पथ पर अग्नि गान आदि काव्य रचनायें हैं।

सच्चिदानन्द हीरानन्द वात्स्यायन 'अज्ञेय'

प्रमुख रूप से कथाकार होते हुए भी 'अज्ञेय' जी का स्थान काव्य साहित्य मे कई कारणो से अत्यन्त महत्त्वपूर्ण बन गया है। अपने काव्य-सग्रहो के प्रकाशन के साथ ही 'तार सप्तक' और 'दूसरा सप्तक' के ऐतिहासिक सम्पादन के कारण इन्हे प्रयोगवादी काव्य-साहित्य का वाल्मीकि कहा जाता है। युग की काव्य-धारा मे जो गतिरोध-सा आ गया है उससे मोक्ष दिलाने के लिये काव्य-क्षेत्र मे जिस नवीन दिशा का सकेत किया गया है उसे ही प्रयोगवाद की सज्ञा प्राप्त हुई है। यह प्रयोगवाद अभी स्वयं प्रयोगावस्था मे है। इसके भविष्य का निर्णय समय, परिस्थितियाँ और विवेकशील जनता की अभिरुचिया करेगी।

अज्ञेय जी की पहले की रचनाओ में एक मधुर टीस है; त्यागपूर्ण एव निष्कपट प्रेम की एक अदम्य पिपासा है और सीमित भुजबल का बंधन

लेकर असीम मे विहार करने वाला मदमाता पौरुष है। मनोभावो के सूक्ष्म विश्लेषण मे अज्ञेय जी सिद्धहस्त है। और इनकी 'शेखर—एक जीवनी' इस मनोवैज्ञानिक एव मनोविश्लेषणात्मक शैली की एक युग-विधायक रचना है।

प्रतिभाशाली कवि और यशस्वी कथाकार के अतिरिक्त अज्ञेय जी मौलिक एव समर्थ समालोचक है। साहित्य-सम्बन्धी इनकी मान्यताओ का हिन्दी ससार मे विशेष आदर है।

'भग्न दूत', 'विपथगा', विश्व-प्रिय आदि इनकी अनेक रचनायें प्रकाशित हो चुकी हैं।

नरेन्द्र शर्मा

शोषितो-दलितो के प्रति एक प्रबल सहानुभूति होने हुए भी वर्गगत भावनाओ से मुक्त रह कर कविता करने वालो मे नरेन्द्र जी का नाम चोटी के व्यक्तियो में आता है। वैसे नरेन्द्र जी की कविता का प्रारम्भ छायावाद से हुआ था। प्रकृति के प्रति स्वच्छन्द अनुराग, जीवन मे गहन नैराश्य एवं मन मे वेदना का साम्राज्य—यही सक्षेप मे इनकी कविता के मुख्य स्वर हो रहे थे। 'प्रवासी के गीत' इनके हृदय की पीडा के उच्चार मात्र है। 'कामिनी' एक प्रेम-काव्य है। पर इसके पश्चात् आपकी विचारधारा स्थूल मासलता की ओर बढने लगी। और आप जन-जीवन की ओर आकृष्ट हुए। दुखी पीडित समाज का यथार्थ मूल्याकन आपकी कविताओं में मिलने लगा। शोषितो और शोषको के अन्तर को आपने बहुत सूक्ष्म दृष्टि से देखा है। इतना सब होने पर भी आपका कवि-हृदय मार्क्स के भौतिकवादी दर्शन से सामजस्य नही कर पाया। पिछले दिनो आपकी कविता में सास्कृतिक चेतना का उभार सभवत. इसी कारण फिर से और अधिक प्रबल-प्रौढ रूप मे दिखाई देने लगा है। 'अग्नि शस्य' मे एक आदर्श-दृढता सर्वत्र देखने को मिलती है।

आजकल आप फिल्म-व्यवसाय में जुटे हुए हैं। आप के 'पलाश वन', 'प्रवासी के गीत', 'प्रभात फेरी', 'कामिनी', 'मिट्टी और फूल', तथा 'अग्नि शस्य' आदि संग्रह प्रकाशित हो चुके हैं।

तारा पांडेय

माता का वात्सल्य श्रीमती तारा पाडेय से बालावस्था में ही उठ गया था इसी कारण इनका जीवन एक प्रकार से दुखद अभाव से ही प्रारम्भ होता है। यही कारण है कि इनकी कवितायें वेदना से ओत-प्रोत है। यह अभाव इनको आज भी अखरता है, आज भी इन्हे सूनापन घेरे रहता है, जैसा कविता से लक्षित है—

मां, मां कह कर व्याकुल होती अब भी एकाकीपन में।
सूनापन ही घेरे रहता जाने क्यों इस जीवन में।

इन्होने जीवन मे पतझड को निकट से देखा है। जहाँ वसन्त सब कवियो को अपनी ओर आकृष्ट करता है वहीं वसन्त इन पर नाम-मात्र का प्रभाव भी नही डाल सका। यह इनकी प्रकृति तथा भावुकता है। जीवन सुख-दु:ख की आंख-मिचौनी है। एकान्तत न सुख ही किसी की सम्पत्ति है और न दु:ख ही। सतत् दु:ख भी तो अपनी दु:खता—अपनी टीस को खो देता है और सतत्-सुख मे सुख की प्रतीति शिथिल हो जाती है। श्रीमती पाडेय ने दु:ख को ही जीवन के सकारात्मक तत्त्व के रूप में स्वीकार किया है। जीवन और प्रकृति के सुख-सौंदर्य क्षणिक है, अस्थिर हैं। वे इन्हे अपना तनिक आभास देकर इनके भावुक मन पटल पर दु:ख और विषाद की गहरी रेखा छोड कर लुप्त हो जाते है। गगन मे दीपक जलते है परन्तु इनका कवि-हृदय अभी पूर्णतया उस परम सुषमा को स्पर्श नही कर पाता कि वे घने बादल उन पर छा जाते है। और हृदय अपनी कोमल भावनाओ को अन्तर्वेदना के आचल मे छिपाकर रह जाता है। यही इनकी कविता का प्रमुख स्वर है। निराशा और वेदना का करुण और मधुर चित्रण ही इनके काव्य की विशेषता है। भाषा अत्यन्त सरस और प्रसाद गुण युक्त है। अनुभूति की तीव्रता के कारण उसमे भावावेग की प्रचुर मात्रा है और पाठक के भाव-जगत् को स्पन्दित करने की क्षमता।

श्रीमती पाण्डेय की कविता मे महादेवी वर्मा के 'उस पार' के संकेतों का यदि अभाव नही तो उनकी मात्रा अवश्य कम है। इनकी दार्शनिकता

आध्यात्मिकता का अंश उतना प्रबल नहीं, यद्यपि दोनों कवि-हृदय वेदना-प्रधान है।

इनके लोकप्रिय काव्य-संग्रह 'वेणुकी', 'सीकर', 'शुकपिक' और 'अन्त-रंगिणी' हैं। इनका नवीनतम गीत-संग्रह 'विपची' है।

सुधीन्द्र

डा० ब्रह्मदत्त मित्र के साथ ही साथ आधुनिक युग के क्रान्तिकारी राष्ट्र-वादी कवियों मे "सुधीन्द्र" का नाम भी विशेष उल्लेखनीय है। क्रान्तिकारी राष्ट्रवादी कवि होने के नाते आपकी कविताओ मे भावनाओं का एक भयकर तूफान प्रस्फुटित होता है जो अपने अदम्य वेग से समाज की दुर्बलताओं पर निर्मम आघात करता हुआ आगे बढता है। समाज के प्रपीडित, दलित एव उपेक्षित अगो के प्रति आपके सम्वेदनशील हृदय मे अत्यन्त सहानुभूति है। और समाज की विषमताओं, अन्याय, अत्याचार एव शोषणपूर्ण नीतियो के प्रति भीषण विद्रोह। कलाकार का आप सर्वप्रमुख कर्त्तव्य नहीं समझते है कि वह समाज के जीते शवो की रौरव यातनाओ को वाणी दें, जिससे मानव की प्रपीड़ित चेतना में अन्याय से लोहा लेने की क्षमता का सृजन हो सके। शैले (Shelly) की भाँति आपका भी विश्वास है कि समाज मे नैतिकता की नींव स्थिर करना प्रचारकों का कार्य न होकर प्रतिभा-सम्पन्न कवियो का काम है।

डा० सुधीन्द्र जी की प्रतिभा बहुमुखी थी। एक लब्ध प्रतिष्ठ कवि होने के अतिरिक्त आप एक विद्वान समालोचक, नाटककार एव पत्रकार थे। आपकी कविताओं के संग्रह 'शङ्खनाद', 'प्रलय वीणा' और 'अमृत लेखा' हैं और 'जौहर' खण्ड काव्य। समीक्षाओ में 'हिन्दी कविता का क्रान्तियुग', 'हिन्दी कविता के युगाधार', 'नन्ददास की रास पंचध्यायी', 'जनमेजय का नागयज्ञ', 'केशवदास की रामचन्द्रिका' आदि प्रमुख हैं। 'ज्वाला और ज्योति' नाम से एक नाटक और 'राम-रहमान' तथा 'इन्द्र-धनुष' नाम से दो नाटक संग्रह भी छप चुके हैं। इसके अतिरिक्त डा० सुधीन्द्र जी काफी मात्रा में अप्रकाशित साहित्य भी छोड़ गये हैं।

रामेश्वर शुक्ल 'अंचल'

यथार्थ आग्रह से छायावाद की प्रतिक्रिया के रूप मे काव्य मे एक स्वतत्र शैली का प्रादुर्भाव हुआ। अशरीरी सौन्दर्य कल्पना एव अस्पष्ट अभिव्यजना-शैली के प्रति एक सामान्य विद्रोह इस शैली के कवियो मे दृष्टिगोचर होता है।

वास्तव में 'अचल' जी काव्य में भौतिक मासलता लेकर आये है। रूप के प्रति लालसा और अदम्य प्यास इनके काव्य के प्राण तत्त्व है। पिछले दिनो इन्होंने कुछ कविताएँ कृपको और श्रमजीवियो के प्रति सहानुभूति प्रकट करने के उद्देश्य से भी लिखी है। परन्तु मार्क्सवाद के दर्शन से कवि हार्दिकतादात्म्य स्थापित नही कर पाया। अतृप्त भावो को मुखर अभिव्यंजना मात्र प्रदान करना ही इनके काव्यो का मुख्य स्वर रहा है। क्रान्ति का इन्होंने मुक्त स्वर से समर्थन नही किया।

'अचल' जी की भाषा में तूफानी नदी का-सा वेग। उसमे पाठक के हृदय को समूल उखाड कर वहा ले जाने की सामर्थ्य है, स्वाभाविकता से उसके साथ तादात्म्य स्थापित करने की नही।

इनकी प्रमुख रचनाये 'अपराजिता', 'किरण वेला', 'लाल चूनर हैं।

शम्भूनाथ 'शेष'

जिस प्रकार प्रेमचन्द, सुदर्शन और अश्क उर्दू से हिन्दी की ओर आकृष्ट हुये ठीक उसी भाति 'शेप' जी ने भी उर्दू से ही हिन्दी की ओर पग उठाया है। आपने अपनी प्रतिभा, कला-कुशलता और अध्यवसाय से वर्तमान हिन्दी-जगत् में थोडे समय मे ही अपने लिए आदर और सम्मान का स्थान बना लिया है।

स्वतन्त्र विचार होने के कारण यद्यपि 'शेप' जी को अनेक विपम-परिस्थितियों से से गुजरना पडा है तथापि आपने अपने काव्य के स्पष्ट गुणो—अदम्य उत्साह और अपूर्व विचार-स्थिरता के बल पर स्वानुकूल पथ बनाने मे सफलता के दर्शन किये। इनकी भापा में कही-कही उर्दू के शब्द और शैली में भी शैली चटक मिलती है। हिन्दी मे रुबाई और गजल लिखने का प्रयास तो इनका प्रशसनीय है।

माखनलाल चतुर्वेदी

प्रसिद्ध कवि श्री माखनलाल चतुर्वेदी की कवितायें प्रमुख रूप से राष्ट्रीय भावनाओ से ओत-प्रोत है। वैसे उनकी कवितायें तीन श्रेणियो मे विभाजित की जा सकती है।

(१) राष्ट्रीय

(२) प्रेम सम्बन्धी

(३) रहस्यवादी-छायावादी।

आप खडी बोली के प्रतिनिधि कवि है। इनकी कुछ कविताओ का सग्रह 'हिमकिरीटिनी' मे किया गया है। वलिदान, उन्मीलित वृक्ष, सिपाही, मरण त्यौहार आदि आपकी श्रेष्ठ राष्ट्रीय रचनायें हैं। 'पुष्प की अभिलाषा' मे वलिदान की भावना है। इनकी अनुभूति मे गहराई और भाषा मे ओज है। इनमे कल्पना की कोरी उडान नहीं है। गाधीवाद का भी इन पर प्रभाव है।

इनकी कविताओ मे वीरता, ओज और वलिदान की भावना है। प्रेम-प्रधान कवितायें भी इन्होने लिखी है। 'कु ज-कुटीरे यमुना तीरे,' लूँगी दर्पण छीन' आदि कविताये प्रेम प्रधान हैं। प्रेम भाव का एक उदाहरण देखिये—

कौन सी मस्त घडियाँ चाह की ? हृदय की पगडडियों की राह की,
दाह की ऐसी कनक कुन्दन बने, मौन की मनुहार की है—आह की।

इनकी रहस्यवादी और छायावादी कवितायें सख्या मे अधिक नही है। मुख्य रूप से इन्होंने राष्ट्रीय भावना को ही अपनाया है। 'पुष्प की अभिलाषा' की इन पक्तियो मे कितना सुन्दर भाव है—

मुझे तोड लेना वनमाली, उस पथ पर देना तू फेंक।
मातृ-भूमि पर शीश चढाने जिस पथ जावें वीर अनेक॥

भाषा मे उर्दू के शब्दो का भी प्रयोग है। खडी बोली के निर्माण मे भी आप का पर्याप्त योग रहा है। किन्तु उसकी भाषा परिष्कृत खडी बोली नहीं है। इनके भावो मे कृत्रिमता नही है।

———

द्वितीय पत्र

तैयार करने की विधि

इस पत्र मे चार पुस्तके नियत की गई है जिनका अङ्क-विभाजन इस प्रकार है—

(१) विचार और विमर्श	२५ अङ्क
(२) निर्माण-पथ	३० ,,
(३) हिन्दी गद्य विकास	२० ,,
(४) यथार्थ और कल्पना	२५ ,,
	कुल १०० अङ्क

इस पत्र मे पहला प्रश्न अनिवार्य होता है। इसमे 'विचार और विमर्श', 'यथार्थ और कल्पना तथा निर्माण पथ' के कुछ गद्याश होगे। विद्यार्थियो को गद्याश की व्याख्या तथा प्रसङ्ग आदि देना होता है। व्याख्या के प्रश्न मे अच्छे अङ्क प्राप्त करने के लिए यह आवश्यक है कि सर्वप्रथम 'गद्याश' के लेख तथा सम्बन्धित पुस्तक का उल्लेख किया जाय। यथासम्भव लेखक का उल्लेख भी होना चाहिए। परन्तु ध्यान रहे अशुद्ध लिखने की अपेक्षा न लिखना ही अच्छा है। इस प्रश्न के लिए यह आवश्यक है कि विद्यार्थी इन पुस्तको को पढ़ते समय ऐसे सन्दर्भो को रेखाङ्कित कर ले जो भाव अथवा भाषा के विचार से क्लिष्ट हो, क्योकि परीक्षक महोदय ऐसे ही स्थलो से इन गद्याशो को लेते है। एक गद्याश की व्याख्या के लिए अधिक-से-अधिक १० पक्तिया पर्याप्त समझी जाती है अत विद्यार्थी को परीक्षा-भवन मे प्रत्येक प्रश्न उनके मूल्यानुसार देखना होता है। कहने का अभिप्राय यह है कि विद्यार्थी को अनर्गल विस्तार और व्यर्थ की व्याख्याओ से विमुख रहना ही उचित है। प्रस्तुत्य गद्याश मे प्रसङ्गादि का निर्देश करने के पश्चात् सम्बन्धित निबन्ध से उसका पूर्वापर सम्बन्ध बताना गद्याश की व्याख्या को और भी सुन्दर एव उत्तम बना देता है।

प्राय विद्यार्थी इन गद्याशो के कठिन शब्दो को हटाकर उनके पर्यायवाची शब्द रख कर अपने कर्त्तव्य की इतिश्री समझ बैठते है। यह उनकी सर्वथा

गाइड में दिए गए हैं। विद्यार्थियों को उनका भली भाँति अध्ययन करके पूरा लाभ उठाना चाहिए।

(३) हिन्दी गद्य विकास—इस पुस्तक में हिन्दी गद्य के विकास को समझाने के लिए गद्य साहित्य के उपन्यास, नाटक, निबन्ध, कहानी आदि विभिन्न अङ्गों पर प्रकाश डाला गया है। भारतेन्दु व द्विवेदी काल की विशेषताओं तथा सेवाओं का भी उल्लेख है। प्रस्तुत गाइड में मूल पुस्तक के इन सब अङ्गों पर प्रश्नोत्तर रूप से सामग्री दी गई है। विद्यार्थी एक-दो बार पढ़ें और उसे स्मरण करने का प्रयत्न करें। इस पुस्तक को विशेष रूप से तैयार करना सफलता की एक सुगम सरणी है क्योंकि इस पुस्तक से विद्यार्थियों को द्वितीय, पञ्चम तथा षष्ठ पत्र में आशातीत सहायता मिलेगी।

(४) यथार्थ और कल्पना—इस पुस्तक में से २५ अंक के प्रश्न पूछे जायेंगे। इसमें [illegible] प्रतिनिधि लेखकों की चुनी हुई कहानियों का संग्रह है। एक प्रश्न यह भी पूछा जा सकता है कि किसी एक कहानी का सार देते हुए उसकी तत्त्वों के आधार पर समीक्षा कीजिये। एक बार सभी कहानियों का पढ़ना बहुत ही आवश्यक है। कहानी के किसी एक पात्र का चरित्र चित्रण भी पूछा जा सकता है। प्रश्न की एक शैली यह भी हो सकती है कि इस संग्रह की कहानियों में 'यथार्थ और कल्पना' की उक्ति कहाँ तक सिद्ध होती है? संग्रह के आधार पर आलोचना कीजिये। संग्रह में सर्वश्रेष्ठ कहानी कौन सी है और क्यों? सभी आवश्यक प्रश्न और उनके उत्तर प्रस्तुत गाइड में दे दिये गये हैं।

निर्माण-पथ

प्रश्न १—'निर्माण-पथ' उपन्यास का कथानक संक्षेप में लिखिये।

अथवा

'निर्माण-पथ' मिल-मालिकों व मिल-मजदूरों के संघर्ष के वास्तविक रूप का चित्र है, यह सिद्ध करते हुए इसकी संक्षिप्त कथा लिखिये।

उत्तर—सेठ भानामल दिल्ली में एक कपडे की मिल 'सेठ क्लाथ मिल्स' ालिक है और मि० रामनाथ कॉल उसके मैनेजर है। मि० कॉल ने ही नी कुशलता तथा योग्यता से भानामल को सेठ 'भानामल' बनाया है। की ही प्रबन्ध-पटुता तथा नीति-कुशलता से मिल बराबर लाभ देता रहा परन्तु वे मजदूरो के हितो को कभी भी महत्त्व नही देते है। मि० चौहान जी के एक परम मित्र है। कांग्रेस के नेता होने के कारण उनका सरकार ा प्रजा दोनो पर बडा प्रभाव है। मि० चौहान ने स्वतन्त्रता सग्राम मे देश बहुत सेवा की है। इसलिये सेठ जी को सरकारी आर्डर व परमिट आदि लाने मे उन्हे कोई कठिनाई नही होती है। सेठ जी ने भी उन्हे रहने के ये एक कोठी दी हुई है और उन्ही की बदौलत आज चौहान साहब कार र चढकर चलते है।

मि० चौहान सेठ जी को एक बहुत बडा सरकारी आर्डर लाकर देते है। ल मजदूर अवसर पाकर वेतन और ओवर टाइम मे वृद्धि के लिये हडताल र देते हैं, परन्तु चौहान साहब बीच मे पडकर समझौता करा देते है। मजदूरो ी मागें पूरी कर दी जाती है। परन्तु सरकारी आर्डर की अन्तिम किश्त ाने के तुरन्त पश्चात् ही सेठ भानामल तथा मि० कॉल वेतन तथा भत्ते । कटौती करने का निश्चय कर लेते है। जब मिल मजदूरो को इस बात का ता चलता है, तो वे बिगड खडे होते है।

मिल मे डाइग मास्टर के पद पर कामरेड विमला काम कर रही है। वह अपने कार्य मे बहुत ही योग्य तथा निपुण है। यद्यपि उसे दो हजार रुपया

मासिक वेतन मिलता है, परन्तु वह मजदूरों जैसा सादा जीवन व्यतीत करती है। मजदूरों को उसकी योग्यता पर पूर्ण भरोसा है, इसलिए वह उस मिल के मजदूरों की नेत्री बन जाती है। कामरेड विमला के विचार बहुत ही उग्र तथा साम्यवादी है। वह अधिकारियों द्वारा मजदूरों के वेतन तथा भत्ते में की गई कटौती को स्वीकार करने के लिए तैयार नहीं है। वह मजदूरों को सगठित कर लेती है। अशफाक नाम का एक साधारण मजदूर उसका दाहिना हाथ बनकर काम करता है।

मिल मैनेजर मि० कॉल जब यह देखते हैं कि विमला को काबू मे कर लेने से मजदूरों के सगठन को तोड़ा जा सकता है, तो वे कामरेड विमला से मिलने के लिए उसके पास जाते है। मि० कॉल उससे तरह-तरह की बातें बनाते है और एक सोफा सेट उसे उपहार मे देना चाहते हैं, परन्तु कामरेड विमला उसकी बातों मे नही आती है। वह काल साहब का उपहार लेने से साफ मना कर देती है। इससे कॉल साहब को धक्का तो लगा, परन्तु वह निराश होने वाले नहीं है। वह उसी समय अन्य उपायों के द्वारा हड़ताल को असफल करने का निश्चय कर लेते हैं।

जब चौहान साहब को सेठ भानामल तथा मि० कॉल द्वारा वेतन तथा भत्ते मे कटौती करने के निश्चय की सूचना मिलती है तो वे आग बबूला हो जाते है। वास्तव मे वे इसे अपना अपमान समझते है, परन्तु सेठ इसके लिए मैनेजर साहब को दोषी ठहराते है और स्वय बडे नाटकीय ढग से एक कोरे कागज पर हस्ताक्षर करके चौहान साहब के सामने फेंक देते है और निर्णय करने का भार उन्ही को सौप देते है। साथ ही वे उनसे यह भी कह देते है कि यह हमारी प्रतिष्ठा का प्रश्न है। चौहान साहब उनको निर्दोष समझते हैं और उनका साथ देने तथा हडताल को समाप्त करवाने के लिये पूर्ण प्रयत्न करने का वचन देते है। चौहान साहब विमला से मिलकर उसे समझाते है कि मजदूरो का हडताल करना ठीक नही है, परन्तु वह अपने निश्चय पर अटल रहती हैं।

कामरेड विमला के घर पर मजदूरों की एक सभा होती है। इसमें कुछ मजदूर तो तुरन्त हडताल करने के पक्ष मे होते है और कुछ मालिको को

समस्या तथा स्थिति पर विचार करने के लिए कुछ समय देने के पक्ष मे होते है। इसलिए सभा मे कोई निर्णय नही हो पाता है और दूसरे दिन के लिये सभा विसर्जित कर दी जाती है। मैनेजर मि० काल मजदूरो की हड़ताल असफल करने के लिए एक चाल चलते है। वे मजदूरो के एक कार्यकर्त्ता श्री बैनर्जी को प्रलोभन देकर अपनी ओर मिला लेते है। मजदूरो मे फूट डालकर उनके संगठन को तोडने तथा उनकी हडताल को असफल करने का कार्य उनको सौंपा जाता है। एक सौ सत्तर मजदूरो को सौ-सौ रुपये बैनर्जी का साथ देने के लिए दिये जाते है और रात्रि को ही बडे-बडे पोस्टर छपवा कर उन्हे दीवारो पर चिपकवा दिया जाता है। पोस्टरो के द्वारा विमला को बदनाम करने का प्रयत्न किया जाता है। दूसरे दिन प्रातःकाल ही बैनर्जी विमला को सुस्त व कायर कहकर हडताल की घोषणा कर देता है। बैनर्जी को विश्वास है कि उसके इस कार्य मे विमला का मजदूरो मे प्रभाव कम हो जायेगा और मि० कॉल का विचार है कि वे एक बार मजदूरो मे फूट डाल कर फिर बैनर्जी द्वारा ही हडताल को वापस लिवा लेने मे सफल होगे और इससे मजदूरो का बल सदा के लिए टूट जायेगा। परन्तु उन्हे इस षड्यन्त्र मे सफलता नही मिलती है और विमला कामरेड अशफाक के सहयोग से उनके इस षड्यन्त्र की पोल खोल देती है। अन्त मे मिल मजदूरो की यूनियन की सभा यह निश्चय करती है कि मि० बैनर्जी द्वारा घोषित हडताल मिल मालिको की ही कूटनीति का असफल प्रयास है। वे मिल मालिको को भी चेतावनी दे देते है कि 'राष्ट्र के हित के लिए मिल चलाई जानी चाहिए और मिल के सुचारु रूप से चलने के लिए अधिकारियो व कर्मचारियो का सहयोग आवश्यक है। परिस्थितियो के गम्भीर होने से पूर्व ही मिल मालिको को मजदूरो की मांगो पर सहानुभूतिपूर्वक विचार करने के लिए एक मास की अवधि दी जाती है।

बैनर्जी द्वारा घोषित हडताल मि० कॉल के ही षड्यन्त्र का परिणाम थी, परन्तु फिर भी उस हडताल के असफल हो जाने पर काल साहब अपनी झेंप मिटाने के लिये स्वय कार मे बैठकर विमला के घर पर पहुँचते है। वहाँ पर चौहान साहब भी बैठे हुए है। काल साहब दोनो को बधाई देते हुए कहते

है कि उन दोनों ने हड़ताल न होने देकर मिल व देश दोनों की सहायता की है। परन्तु विमला हड़ताल को उकसाने का आरोप मि० काल पर लगाती हुई उसे राष्ट्रीय हित को सर्वोपरि समझने का उपदेश देना प्रारम्भ कर देती है। परन्तु काल साहब चिढ़कर उससे कहते हैं कि इस उपदेश को चौहान साहब को दीजिए। उन्हीं के हृदय पर यह उपदेश प्रभाव डालेगा। मेरे पास दिल नहीं, पत्थर है। जब वह जाने लगता है, तो विमला उससे कहती है—"इस पत्थर को या तो मोम बनना होगा, अन्यथा यह टूट कर चकनाचूर हो जाएगा।"

मि० काल को इस बात का पूर्ण विश्वास हो जाता है कि कामरेड विमला के प्रभावशाली तथा आकर्षक व्यक्तित्व एवं उज्ज्वल चरित्र और मजदूरों के न्यायपूर्ण पक्ष के आगे उनकी दाल नहीं गल सकती। विमला को उसके निश्चय से डिगाने का प्रयत्न करके चौहान साहब भी हार जाते हैं। चौहान साहब की इस असफलता का कारण मि० काल तो उनका पारस्परिक प्रेम समझते हैं जो कि उनकी एक भूल है। सेठ भानामल भी काल साहब द्वारा विमला तथा चौहान के चरित्र पर किए गए आक्षेप पर विश्वास नहीं करते हैं, यही कारण है कि वे काल द्वारा प्रस्तुत प्रस्ताव कि विमला को पदच्युत करके एक अंग्रेज 'डाइंग मास्टर' की नियुक्ति कर ली जाय, को स्वीकार नहीं करते हैं बल्कि उसे टाल देते हैं।

सेठ भानामल चौहान साहब से स्पष्ट शब्दों में कह देते हैं कि वे तो मजदूरों की माँग स्वीकार करने को तैयार है, परन्तु काल नहीं मानता। इससे मजदूरों के हृदयों में मि० काल के प्रति बहुत असंतोष हो जाता है। इसी समय विमला के घर पर चौहान साहब की अपने स्वतन्त्रता आन्दोलन के साथी कामरेड अशफाक से मुलाकात हो जाती है। मि० चौहान कामरेड अशफाक तथा उसके साहस और कार्यों को भली भाँति जानते हैं। वे पुराने साथी से मिलकर बहुत प्रसन्न होते हैं। इसी प्रसन्नता में एक चाय पार्टी दी जाती है। पार्टी के समय बातों-बातों में ही कामरेड अशफाक मि० काल से कुछ बेहूदा मजाक कर जाता है। यह मैनेजर साहब के लिए असह्य हो जाता

और वे उसे बदतमीज कह देते है। उसी समय अशफाक मि० काल को गर्दन से पकडकर ऊपर को उठा लेता है और फिर उसे जमीन पर पटक देता है। इस अपमान से वे जल-भुन जाते हैं और वे शीघ्र ही वहाँ से सेठ जी की कोठी पर पहुँचते है और उन्हे सारी घटना सुनाते है। सेठ जी को भी यह बात बहुत बुरी लगती है। मैनेजर साहब सेठ जी के परामर्श से यह निश्चय कर लेते है कि अब किसी न किसी रूप से अशफाक को नौकरी से पृथक् करना ही है।

अशफाक के इस साहसिक कार्य की सूचना मजदूरो मे रातो-रात फैल जाती है। इससे मजदूरो मे उसका प्रभाव बहुत बढ जाता है और वह मजदूरो का आराध्य बन जाता है। मजदूर 'अशफाक की जय' के नारे लगाते हैं। यह सुनकर मि० काल और भी अधिक जल-भुन जाते हैं।

इन्ही दिनो मे एक अप्रत्याशित घटना हो जाती है। चौहान साहब मि० काल को समझाते हे कि वे (मि० काल) अपनी प्रबन्ध-पटुता, नीति-कुशलता, तथा योग्यता से सेठ भानामल को मालामाल कर रहे है, क्यो न वे स्वय ही अपना पृथक् कारोबार चलावें। चौहान साहब उन्हे पूर्ण सहयोग देने का वचन भी देते हैं। चौहान साहब की इस बात का काल साहब पर बहुत प्रभाव पडता है और वे अपना पृथक् कारोबार चलाने का स्वप्न देखने लगते है। इससे चौहान साहब और मि० काल का सम्बन्ध बहुत घनिष्ठ हो जाता है। इस सम्बन्ध से लाभ उठाकर चौहान साहब मि० काल की छोटी साली कान्ता से विवाह कर लेते है। यद्यपि काल साहब कान्ता की दोनो बडी बहिनो के साथ विवाह कर चुके थे, परन्तु फिर भी उन दोनो से कोई सन्तान उत्पन्न न होने के कारण उनकी इच्छा कान्ता से विवाह करने की भी थी, परन्तु चौहान साहब के व्यक्तित्व से लाभ उठाने के लालच मे फँसकर वे चौहान साहब और कान्ता के विवाह मे कोई बाधा नही डालते है।

विवाह के पश्चात् जब मि० काल नये कारोबार का समझौता लेकर चौहान साहब के पास जाते है, तो वे उसे बडी कुशलता से टाल देते है। चौहान साहब तथा उनकी पत्नी कान्ता यह निश्चय कर लेती है कि सेठ

मानामल जैसी दुधारू भैंस को अनिश्चित भविष्य के लिए छोड़ना ठीक नहीं है। मि० राय चौहान साहब को १५००० रुपया वार्षिक देने के लिए कहते है, तो वे प्रेमपूर्वक यह कहकर उसे टाल देते हैं कि आपने जब कान्ता जैसी अपूर्व पत्नी दे दी तब आपसे रुपया लेना उचित नहीं है।

मजदूरो द्वारा दी हुई एक मास की अवधि आज समाप्त हो रही है। मिल मालिक तथा अधिकारियो ने अभी तक मजदूरो की मांगे स्वीकार नहीं की है। सन्ध्या समय कामरेड विमला के घर पर मिल मजदूर यूनियन की सभा होती है। मि० काल तथा चौहान साहब भी वहाँ आ पहुँचते हैं और उन्हें बताते हैं कि सेठ जी ने भत्ता ड्योढा करना स्वीकार कर लिया है, परन्तु वेतन मे वृद्धि नहीं होगी। इससे मजदूरो को सतोष नहीं होता है और अन्त मे हड़ताल आरम्भ हो जाती है। मि० काल हड़ताल को असफल कराने के लिए पुन बैनर्जी को अपने पक्ष मे लेते हैं। परन्तु इसमें उन्हें सफलता नहीं मिलती है। दिन प्रति-दिन हड़ताल अधिक और अधिक सगठित तथा सुदृढ होती जा रही है। मि० चौहान साहब भी इस समय सेठ मानामल तथा मि० काल की समस्या से उदासीन होकर अपनी नव विवाहिता पत्नी के साथ रग-रलियाँ मनाने मे व्यस्त है। कभी वे दावतें देते हैं और कभी कवि-सम्मेलन का आयोजन करते है। इस समय उनकी दशा भी साँप-छछूदर जैसी हो जाती है। एक ओर वे सेठ मानामल के उपकार से इतना दबे हुए हैं कि उनके विरुद्ध एक शब्द भी नहीं कह सकते और दूसरी ओर समाज में अपनी अप्रतिष्ठा के भय मे मजदूरो का विरोध भी नहीं कर सकते हैं। मिल की भयकर परिस्थिति को देखकर सेठ साहब तो झुकने के लिए तैयार हो जाते हैं, परन्तु काल उनको ऐसा नहीं करने देते है। वे इसे अपनी व्यक्तिगत हार-जीत का प्रश्न बना लेते है। कामरेड अशफाक की मजदूरो मे बढ़ती हुई प्रतिष्ठा से उन्हें ईर्ष्या है, उनका दिल जलकर राख हो रहा है, वे उसे नीचा दिखाना चाहते हैं। कामरेड विमला भी टस-से-मस होने को तैयार नहीं। ऐसी परिस्थिति मे मि० काल मिल मे आग लगवाने का निश्चय कर लेते हैं।

मि० काल बैनर्जी को मिल मे आग लगाने, अशफाक को पीटने तथा हड़ताल को समाप्त कराने के लिए दो हजार रुपये देते हैं। जब कामरेड

विमला को मिल में आग लगाने का समाचार मिलता है, तो वह तुरन्त ही उस ओर भाग पडती है। कोई सवारी तत्काल न मिलने के कारण वह अशफाक की ही साइकिल पर बैठ जाती है। अशफाक विमला से कहता है कि ऐसे समय में हमें नही चलना चाहिए। हो सकता है कि हमको ही इस विपत्ति मे फँसा लिया जावे। परन्तु विमला इस भय को दूर करने के लिए कहती है—"क्या राष्ट्र की सम्पत्ति को इस प्रकार एक क्षण मे भस्मीभूत होते तुम देख सकोगे ? यह मिल सेठ भानामल की बपौती नही है कामरेड अशफाक !... ..इसकी बरबादी राष्ट्र की बरबादी है। हमारे कर्त्तव्य का तकाजा है कि प्राण रहते राष्ट्र की इस सम्पत्ति को हानि न पहुँचने दें। मैं अपने को मिटा दूँगी।"

विमला मिल के दरवाजे पर पहुँचकर देखती है कि मिल का दरवाजा जल रहा है और आग लगाने वाले व्यक्ति रुई के गोदाम मे आग लगाने के लिए आगे को बढ रहे है। मिल का गोरखा जमादार रस्सियो से बँधा हुआ पडा है। इसी समय अशफाक ने जाकर आग लगाने वालो का रास्ता रोक दिया। किसी मे इतना साहस न था कि उसके सामने आता। गोरखे जमादार ने उन्हें बता दिया कि बैनर्जी ने मिल मे आग लगवाई है। जब मि० काल षड्यन्त्र को विफल देखते हैं, तो उनके मुख की हवाइयाँ उड जाती है और वे हाथ मे रिवाल्वर लेकर अशफाक को गोली का निशाना बनाना चाहते है कि इसी समय विमला पास ही से एक लोहे का सींखचा उठाकर उनके हाथ पर जोर से मार देती है। रिवाल्वर हाथ से छूट कर भूमि पर गिर पडता है। दोनो मे आपस मे कुछ झडप होती है और मि० काल के कील वाले जूते के मोटे तले से विमला का हाथ लहू-लुहान हो जाता है। अशफाक उसकी रक्षा करता है। काल साहब भागना चाहते है, परन्तु चौहान साहब उसे दरवाजे पर पकड लेते हैं और पुलिस वाले उसी समय आग लगाने वालो को गिरफ्तार कर लेते है।

मिल को तो अग्नि मे स्वाहा होने से बचा लिया जाता है, परन्तु कामरेड अशफाक बुरी तरह घायल हो जाता है। बैनर्जी के एक प्रहार से उसके सिर की दो फाँके हो गई थी। जब वह बेहोश होकर गिरने लगा तो विमला ने उसे

सभाल लिया। रोशनी होने पर सेठ साहब देखते हैं कि अशफाक का सिर कामरेड विमला की गोदी में है। विमला अशफाक की ओर सकेत करती हुई कहती है—"यही रक्षक है इस रुई के गोदाम का, मिल की इन मशीनों का और इस 'सेठ क्लॉथ मिल्स' के मान का।" जब अशफाक नेत्र खोलता है तो चौहान साहब उसे श्रद्धांजलि देते हुए कहते हैं—"मै एक रक्षक के रूप मे तुम्हारे सामने सिर झुकाता हूँ।" कामरेड विमला उसे 'भारत का सच्चा राष्ट्रपति' कहकर पुकारती है।

सेठ मानामल मजदूरो की माँगो को स्वीकार कर लेते हैं और हड़ताल समाप्त हो जाती है। मजदूर दिन-रात काम करके मिल के पिछड़े हुए कार्य को पूरा करते है। विमला अपने आन्दोलन की चर्चा करते हुए चौहान साहब से कहती है—"देखा, आपने हमारा निर्माण-पथ। यह विध्वसात्मक नहीं है।" कुछ दिनो के पश्चात् कान्ता चौहान साहब तथा कामरेड विमला को बताती है कि मि० काल कपड़े की एक मिल खोलने जा रहे हैं। लगभग छः मास मे मिल चालू हो जायगी। इस पर विमला यह कहकर सबको चकित कर देती है—"बहुत खूब! देखा चौहान साहेब, आपने निर्माण-पथ! यही हैं हमारी निर्माण की योजनाएँ। चोर-बाजारी करके भी कोई रुपया कहाँ ले जाएगा? राष्ट्र का रुपया उसे राष्ट्र को एक दिन अवश्य सौंपना होगा। अब आप देखेंगे कॉल साहब को राष्ट्र का धन राष्ट्र को मय सूद के चुकता करते हुए।" यह कहकर कामरेड विमला जोर से खिलखिलाकर हँस पड़ती हैं। चौहान साहब लज्जित चुपचाप बैठे रह जाते है और कान्ता कुछ भी नहीं समझ पाती है।

प्रश्न २—उपन्यास के तत्त्वो के आधार पर 'निर्माण-पथ' की आलोचना कीजिये।

उत्तर—उपन्यास के निम्नलिखित तत्त्व माने गए हैं और इन्ही के आधार पर किसी भी उपन्यास की समीक्षा की जाती है :—

(१) कथावस्तु, (२) पात्र चरित्र-चित्रण, (३) कथोपकथन, (४) देश काल, (५) उद्देश्य, (६) रीति व शैली।

कथावस्तु—कथावस्तु किसी भी उपन्यास का सबसे मुख्य अंग है। घटना-चक्र के अभाव मे कोई भी उपन्यास आगे नही बढ सकता। किसी भी उपन्यास को उत्कृष्ट तथा सफल रचना बनाने के लिए उसके कथानक का सुन्दर, सुसगठित, प्रवाहमय, ओजमय, रोचक, आकर्षक तथा स्वाभाविक होना आवश्यक है। वास्तव मे उपन्यास को मनोरजन के लिए ही पढा जाता है और यदि उसमे मे कौतूहलता समाप्त हो जायगी तो फिर पाठक का मनोरजन नही हो सकेगा। परन्तु जब हम 'निर्माण-पथ' उपन्यास के कथानक को इस कसौटी पर कसते हैं तो वह इस दृष्टि से एक असफल रचना प्रतीत होती है, क्योकि इसमे उक्त सभी आवश्यक गुणो का अभाव है।

'निर्माण-पथ' उपन्यास का कथानक सर्वथा कल्पित है। कथानक की सृष्टि समकालीन औद्योगिक क्षेत्र के श्रम और पूजी के सघर्ष को दृष्टिगत करते हुए की गई है। कथानक विस्तृत है। मिल मे होने वाली हडताल को लेकर कथानक का विकास होता है, परन्तु बीच-बीच मे सामयिक समस्याये भी आ गई हैं। इसमे जटिलता भी नही है। कथानक का विकास स्वाभाविक गति से धीरे-धीरे होता है। भाषणो व सवादो ने कथानक को लम्बा कर दिया है। लेखक ने कई स्थलो पर पात्रो के मनोभावो का विश्लेषण करते हुए पृष्ठ-के-पृष्ठ भर दिये हैं।

'निर्माण-पथ' में मुख्य कथा हडताल से सम्बन्धित है। कान्ता का प्रसग ही प्रासगिक कथा के रूप मे लिया जा सकता है। समय-समय पर घटने वाली अन्य घटनायें जैसे अशफाक द्वारा काल साहब को गर्दन से पकडकर जमीन पर दे मारना आदि से ही कथानक को गति मिलती है। कथानक सुसगठित है और एक ही धारा मे प्रवाहित होता चला जाता है। लेखक ने कथानक मे रोचकता, सतत प्रवाह तथा घटनाओ के परस्पर समन्वय का ध्यान रखने का प्रयत्न किया है। आरम्भ मे तो रोचक प्रसगो का अभाव है, परन्तु बाद मे कान्ता तथा बहूरानियो का प्रसग तथा अन्य एक-दो प्रसग कथानक में रोचकता उत्पन्न कर देते हैं। यद्यपि मि० काल एक महत्त्वपूर्ण पात्र है, परन्तु फिर भी व्यग्यो और हास्य के आलम्बन है। इससे पाठको को उपन्यास में सरसता प्राप्त होती है, वर्ना उपन्यास का विषय तो शुष्क ही है। 'निर्माण-

पथ' में छिछला प्रेम भी प्रदर्शित नहीं किया गया है। यद्यपि लेखक ने विमला के सौन्दर्य का वर्णन नहीं किया है, परन्तु फिर भी कहीं-कहीं पर उनके चञ्चल एवं कटीले नेत्रों का वर्णन पाठकों के हृदयों में उनके सौन्दर्य की जिज्ञासा में उत्सुक हो उठता है।

कथानक में चौहान साहब और कान्ता का एक ही भेंट में परस्पर प्रेम हो जाने और फिर सहसा ही उनके विवाह हो जाने की घटना बहुत ही विचित्र तथा असंगत प्रतीत होती है। आजकल यह सम्भव दिखाई नहीं देता कि एक एम० बी० बी० एस० पास युवति एक ही भेंट में चौहान जैसे व्यक्ति से विवाह कर ले, जबकि लेखक उनके चरित्र की दृढ़ता का पहले ही वर्णन कर चुका है और विशेषकर ऐसी परिस्थिति में जबकि मि० काल तथा सेठ भानामल भी उनसे विवाह करने के इच्छुक हों। इसके अतिरिक्त चौहान साहब की आयु लगभग ५० वर्ष तथा कान्ता की आयु लगभग २१ वर्ष है।

प्रस्तुत उपन्यास के कथानक में दूसरी बात यह खटकती है कि लेखक अनेक घटनाओं के घट जाने के पश्चात् आगे चलकर उनका ब्यौरा देता है। इससे पाठक चक्कर में पड़ जाता है। इससे ही कथानक में जटिलता उत्पन्न हो गई है। परन्तु साथ ही यह बात भी माननी पड़ती है कि कभी-कभी पूर्ववृत्त पर बाद में डाला गया प्रकाश प्रभावजनक हो जाता है और ऐसा ही लेखक ने प्रस्तुत उपन्यास में करके कथानक के प्रभाव में वृद्धि करने का प्रयत्न किया है।

कथानक सुखान्त है। मि० काल का मिल को भस्म करने का षड्यन्त्र विफल हो जाता है और मजदूरों की माँगें स्वीकार कर ली जाती हैं। उपन्यास में सबसे अधिक घृणित पात्र मि० काल भी अपना दूसरा मिल खोलते हैं। भानामल को भारी चोट आती है, परन्तु वह भी स्वस्थ हो जाता है। इस प्रकार अन्त में किसी को कोई दुःख नहीं पहुँचता है।

अन्त में हम कह सकते हैं कि 'निर्माण पथ' का कथानक किसी सीमा तक सफल बन पड़ा है।

पात्र और चरित्र-चित्रण—एक समय था जब कथावस्तु का रोचक होना ही उपन्यास की सफलता के लिए पर्याप्त था, परन्तु अब मनोरंजन के साथ-

साथ पात्रो और उनके चरित्र का महत्त्व बहुत बढ गया है। पात्रो के बिना कोई भी कथा विकसित नही हो सकती। पात्रो से ही तो घटना-चक्र को गति प्राप्त होती है। परन्तु पात्र सजीव तथा विविध वर्गो का प्रतिनिधित्व करने वाले होने चाहिएँ। इससे उपन्यास प्रभावशाली बनता है। पात्रो की सजीवता इस बात पर अवलम्बित है कि वे हमारे प्रतिदिन के जीवन में सम्पर्क मे आने वाले पात्र हो। उनमे वास्तविकता का होना आवश्यक है।

प्रस्तुत उपन्यास मे कामरेड विमला, अशफाक, चौहान साहब, मि० काल, सेठ भानामल तथा बैनर्जी ही प्रमुख पात्र है। कामरेड विमला तथा अशफाक मजदूर वर्ग के प्रतिनिधि पात्र है, चौहान साहब आधुनिक कांग्रेसी नेताओ के वर्ग का प्रतिनिधित्व करते है। मि० काल तथा सेठ भानामल पूँजीपति वर्ग के प्रतिनिधि है। मि० काल, सेठ भानामल जैसे मालिक तथा बैनर्जी जैसे मजदूर तो सैकडो की सख्या मे मिल जायेंगे, परन्तु अशफाक तथा विमला जैसे मजदूरो के सच्चे प्रतिनिधि बहुत ही न्यून सख्या मे मिल सकेंगे। चौहान साहब जैसे नेताओ का भी आज समाज में अभाव नही है। कान्ता जैसी महत्त्वाकाक्षिणी युवतियाँ तथा दोनो बहूरानियो सी आत्म-तुष्टि मे लीन रमणियो की भी समाज में कमी नही है। इसलिए पात्रो को कल्पित नही कहा जा सकता है। सभी पात्र हमारे दैनिक जीवन मे सम्पर्क में आने वाले है।

'निर्माण-पथ' मे विभिन्न प्रकार के पात्र तथा पात्रायें विद्यमान हैं। इसमे जहाँ एक ओर कामरेड विमला जैसी इस्पात की भाँति दृढ सकल्प वाली युवति है, तो दूसरी ओर रुई के समान कोमल वृत्ति और अगो वाली कान्ता भी है। यदि अशफाक अपने सिद्धान्तो पर अपनी बलि दे देने वाला है, तो स्वार्थ-सिद्धि के लिए अपने सिद्धान्तो व प्रतिष्ठा की बलि देने वाले चौहान साहब भी विद्यमान है। विमला सारी सम्पत्ति को राष्ट्र की मानती है। वह अपनी मासिक आय को, जो दो हजार रुपया है, मजदूरो की भलाई मे लगा देती है। परन्तु काल साहब तथा सेठ भानामल समस्त सम्पत्ति को अपनी बपौती समझते है और वे मजदूरो का शोषण करते है। इस प्रकार हम देखते है कि इसमे उच्च, मध्यम तथा निम्न सभी वर्गों के पात्र है।

चरित्र-चित्रण के लिए लेखक ने नाटकीय तथा कथात्मक दोनों ही मार्ग अपनाये हैं और मनोवैज्ञानिक विश्लेषण की भी सहायता ली है। पात्रों के द्वारा ही पात्रों का चरित्र-चित्रण कराया गया है। उदाहरण के लिए हम देखते हैं कि चौहान साहब और अशफाक ने एक दूसरे के चरित्र पर प्रकाश डाला है। काल साहब के चरित्र पर भी चौहान तथा कान्ता द्वारा पर्याप्त रोशनी पड़ती है।

यह सब कुछ होते हुए भी सब पात्रों का चरित्र स्पष्ट रूप से चित्रित नहीं हो पाया है। काल साहब (खलनायक) तथा चौहान साहब का चरित्र जितना स्पष्ट चित्रित हुआ है उतना स्पष्ट चित्रण नायिका विमला, सेठ भानामल तथा कामरेड अशफाक का नहीं हुआ है। परन्तु यह अवश्य कहा जा सकता है कि सभी पात्र सजीव तथा सक्षम हैं और अपना व्यक्तित्व रखते हैं। पात्रों की विविधता तथा परस्पर विभिन्न रुचि के कारण ही उपन्यास के घटना-चक्र में कुछ सजीवता तथा कौतूहलता आ सकी है।

कथोपकथन—कथोपकथन उपन्यास का एक प्रमुख तत्त्व है। इससे पात्रों के चरित्र का विकास होता है और कथानक को गति मिलती है। प्रस्तुत उपन्यास के संवादों में नाटकीयता का अभाव है। उनमें आख्यानात्मकता अधिक है। साथ ही व्यंग्य के आधिक्य के कारण गम्भीरता के स्थान पर हास्य उत्पन्न हो जाता है। ऐसे स्थलों पर भाषा चुभती है। जैसे—

"यह उपदेश चौहान को दीजिए, उन्हीं के दिल पर आपका उपदेश असर करेगा। मेरे पास दिल नहीं, पत्थर है।"

"इस पत्थर को या तो मोम बनना होगा, अन्यथा यह टूट कर चकनाचूर हो जायेगा।"

"क्या खूब कहा यार तुमने भी, बस खूब ही कह डाला।"

"बदतमीज कहीं का! तुम हमसे मजाक करने वाले कौन होते हो।"

कहीं-कहीं पर संवाद कलापूर्ण भी हो गए हैं। जैसे—

"आप नहीं जानते हैं सेठ जी! यह सिद्धान्त और मान और अपमान का प्रश्न नहीं, यह है डोरे डालने का प्रश्न।"

"डोरे डालने का ! तनिक मै भी तो सुनूँ कि यह डोरे डालने का प्रश्न क्या होता है।"

"कामरेड विमला पर डोरे डाले जा रहे है सेठ जी ! चौहान साहब आजकल राजनीति के मैदान को छोडकर प्रेम-वाटिका मे विचरण कर रहे है।"

देशकाल—देशकाल उपन्यास का एक प्रमुख तत्त्व है। जब कोई घटना होती है तो वह किसी देश-विशेष या काल-विशेष मे तो होगी ही। देश-काल की पृष्ठभूमि पर ही उपन्यास का कोई चित्र खीचा जाता है, चाहे वह ऐतिहासिक उपन्यास ही क्यो न हो। प्रस्तुत उपन्यास के लेखक ने जिस देश-काल की पृष्ठ-भूमि पर अपना घटनाचक्र अकित किया है, उससे वह भली-भाति परिचित है।

'निर्माण-पथ' उपन्यास की समस्त कथा का मूल विषय आज का औद्योगिक सघर्ष है। समस्त घटनाचक्र मिल मजदूरो के द्वारा, वेतन-वृद्धि के लिए की गई हड़ताल की समस्या को लेकर आगे बढता है। इसमे लेखक ने बताया है कि किस प्रकार मिल-मालिक तथा उच्च अधिकारी अपनी स्वार्थ-सिद्धि के लिए मजदूरो का शोषण करते है, किस प्रकार उनमे फूट डलवा कर उनके सगठन को भग करने का प्रयत्न करते है और किस प्रकार वे अपने मामले और अपनी विवशता को मजदूरो तथा जनता के सामने रखते है। यह सभव हो सकता है कि आज यह घटनाचक्र सम्भव न हो, परन्तु कुछ वर्ष पूर्व यह घटनाचक्र एक साधारण सी बात थी।

आज देश मे जिस तरह भ्रष्टाचार का बोलबाला है उसका चित्रण भी लेखक ने अनेक स्थानो पर स्पष्ट रूप से किया है। चौहान साहब कहते है, "नया जमाना आ गया है, आज यदि वास्तविकता खोजने बाजार मे निकले तो साधारण वस्तु मे क्या, व्यक्ति में भी वास्तविकता मिलनी कठिन है। घी में कोटोज्म मिलाया जाता है और कोटोजम मे गोले का तेल, गोले के तेल में चर्बी ' आज की दुनिया मे बनावट और मिलावट का नाम ही व्यापार रह गया है।" मिल मालिक के भ्रष्टाचार को सेठ भानामल के शब्दो मे ही देखते है—"आज व्यापार में एक कौड़ी की भी बचत नही, एक कौडी की भी

इन्कमटैक्स का जूता सदा सिर पर, अफसरों की चूट चहेड़ भी लगी रहती है। आज की दुनिया में कौन बिना मिलावट या बनावट के व्यापार कर सकता है।" सेठ आनामल चौहान साहब को दस हजार रुपये देते है और अरारोट के स्थान पर मैदा डालकर लाखों रुपये के सरकारी आर्डर के माल को पूरा कर देते है। गांधी टोपी पहनने वालों के ऐसे मामले आज हमारे सामने नित्यप्रति होते है। देश का यह दुखद परन्तु वास्तविक चित्र इस उपन्यास में अनेक स्थलों पर मिलेगा।

कामरेड विमला और अशफाक के चरित्र आज के साम्यवाद से प्रभावित श्रमिक कार्यकर्त्ताओं के चरित्र का दिग्दर्शन कराते हैं। परन्तु विमला तथा अशफाक के चरित्र मे इतनी निर्भीकता, सच्चा राष्ट्रप्रेम तथा इतना विशुद्ध त्याग है कि वे आज के किसी भी साम्यवादी नेता के चरित्र से ऊँचे उठ गए है। उनका चरित्र साम्यवादियों की भांति विध्वंसकारी नीति को न अपनाकर निर्माण-पथ के निर्माता के रूप मे पाठकों के सामने प्रस्तुत हुआ है और आज की परिस्थितियों मे देश की प्रगति के लिए ऐसे चरित्रों का होना भी अति आवश्यक है।

आज कल के देशकाल का वास्तविक परिचय बहूरानियों के चरित्र से भी मिलता है। उन्हें केवल अपने शरीर की चिन्ता है। हँसना, खाना, पीना, बढ़िया वस्त्र पहनकर बाजारों और क्लबों मे जाना ही उनका दैनिक कार्य है। उन्हें घर तथा परिवार की लेश मात्र भी चिन्ता नही है। अमीर परिवार की नवीन सभ्यता ने उन्हें पति-सेवा से भी विमुख कर दिया है। इस प्रकार हम देखते हैं कि 'निर्माण-पथ' उपन्यास देशकाल के चित्रण मे एक सफल रचना है। सचाई तो यह है कि उपन्यास के अन्य किसी तत्त्व से अधिक सफलता इसी तत्त्व मे लेखक को मिली है।

उद्देश्य—'निर्माण पथ' के लेखक यज्ञदत्त जी ने अपनी इस रचना में यह स्पष्ट किया है कि अकेला श्रम या अकेली पूँजी से राष्ट्र-निर्माण का कार्य नही हो सकता है। दोनों को परस्पर सहयोग से कार्य करना होगा। आज हमारे देश मे निर्माण कार्य हो रहे है। ऐसी स्थिति मे उद्योगपतियों को अपना भविष्य भली भांति समझ लेना चाहिए और ठीक समय पर ही

संभल जाना चाहिए। इसी मे उनकी भलाई है। साथ ही लेखक उन लोगो को भी सावधान कर देना चाहता है जो दोनो ओर के राग अलापते है। जनता के साथ सहानुभूति प्रदर्शित करते है और शोषको के साथ मित्रता। ये दोनो बाते एक साथ नही चल सकती।

लेखक ने अपने उद्देश्य को स्पष्ट करने के लिए श्रमिक जीवन के केवल एक अंग को अपनाया है। इससे उसका क्षेत्र संकुचित हो गया है। परन्तु वास्तविकता तो यह है कि जो भी व्यक्ति मेहनत करके उदरपूर्ति करता है वही मजदूर है चाहे वह मिल मजदूर हो या कृषक हो या अध्यापक। ये सभी इस समस्या के अन्तर्गत है। इसी कारण मजदूर का व्यापक जीवन चित्रित नही होने पाया है। इसमे लेखक ने समाज मे धन के असमान वितरण की समस्या पर प्रकाश डालते हुए स्पष्ट कर दिया है कि एक ओर छोटी बहूरानी के पैरो की मालिश करने के लिए दो-दो नौकरानियाँ है और दूसरी ओर अशफाक की माता के लिए रुग्णावस्था में औषधि के लिए भी पैसे नसीब नही होते है। इसी विषमता को लक्ष्य करते हुए लेखक ने भूमिका में लिखा है —

"साधन से साध्य का महत्व ऊँचा है और राष्ट्र के साधन राष्ट्र के प्रत्येक व्यक्ति को उपलब्ध होंगे। उन्हे बपौती मानकर तिजोरी मे ताला लगाने की अनधिकार चेष्टा को राष्ट्र का जनमत स्वीकार नही करेगा।"

लेखक ने यह भी स्पष्ट कर दिया है कि मजदूर वर्ग पूंजी के विरुद्ध ध्वंसात्मक संघर्ष करना नही चाहता है। मजदूर साम्यवाद से प्रभावित अवश्य है, परन्तु वे मालिको का रक्त बहाना नही चाहते है और न वे मिलो में आग लगाना चाहते है। यदि अर्थ का वितरण शोषण के आधार पर न हो कर सहयोग के आधार पर हो तो मजदूरो तथा मालिको के पारस्परिक सम्बन्धो मे किसी प्रकार की गडबड नही हो सकती। वास्तव मे मिल में आग लगाने के कार्य या दूसरे विध्वंसात्मक कार्यो को मालिक स्वयं करवाते है। वे अपनी इन कुइच्छाओ की पूर्ति के लिए बैनर्जी जैसे देश-द्रोही मजदूरो को प्रलोभन देकर अपने साथ सम्मिलित कर लेते है और उन्ही के द्वारा सब कार्य करवाकर मजदूर वर्ग को बदनाम करते है।

अन्त मे हम कह सकते है। कि लेखक को अपने उद्देश्य के चित्रण मे पूर्ण सफलता मिली है।

शैली—शैली से ही उपन्यास में रोचकता आती है। वीर, शृगार, करुण आदि रस तथा विविध भाव कथानक को सजीव बनाते है। सभी घटनाओ को एक क्रम, एक अनुपात तथा एक कौशल के साथ रखने मे ही लेखक को सफलता प्राप्त होती है। भाषा भी पात्रो तथा देशकाल के अनुसार होनी चाहिए। प्रस्तुत उपन्यास वर्णनात्मक शैली मे लिखा गया है। उपन्यासो मे सामान्यत इसी शैली को अपनाया गया है। लेखक ने समस्त कथा को स्वय ही कहा है। जहाँ वार्तालाप से काम नही चला, वहा पर लेखक ने पात्रो के मनोभावो को स्वय ही लिख दिया है।

भाषा सुगठित तथा सजीव है। भाषा मे ओज तथा प्रभाव है। व्यग्यो के कारण भाषा सजीव हो गई है। जब मि० काल विमला को सोफासेट की भेंट देना चाहते हैं तो वह उनसे कहती है—"जीवन विकास आकने की कसौटी यदि सोफासेट हो तो आज ही आर्डर प्लेस कर देती हूँ।" भाषा मे बीच-बीच मे कहावतो तथा मुहावरो का प्रयोग हुआ है। जैसे :—

(१) घर मे आग लगी जमालो दूर खडी।
(२) यह वह बर्तन नही जिस पर कलई चढाई जाती है।
(३) बैंक क्या रोज-रोज ब्याने के लिए होता है?
(४) सावन के अधे को ससार मे रगीन-ही-रगीन दीखता है।
(५) काठ का उल्लू समझना।
(६) मन भारी होना।
(७) पैसे को दाँतो से भीचना।

कुछ स्थानो पर 'पाप का बच्चा', 'काला नाग' आदि असभ्य शब्दो के प्रयोग से भाषा असंगत हो गई है, परन्तु ये शब्द उत्तेजित मजदूरो के मुख मे ही निकले है, सभ्य तथा शिक्षिता विमला के मुख से नही। उत्तेजित अवस्था मे ऐसा हो जाना स्वाभाविक ही है। विमला चौहान साहब के लिए फूलिश, ईडियोटिक, नान सेन्स, बदतमीज आदि शब्दो का प्रयोग अवश्य करती है,

परन्तु चौहान की हरकतो को देखते हुए उसके द्वारा इन शब्दो का प्रयोग उचित ही है। इस प्रकार हम देखते है कि भाषा पर साम्यवाद का प्रभाव है।

लेखक ने कई स्थलो पर शब्द-चित्र अच्छे उपस्थित किए है। निम्नलिखित पक्तियो मे विक्षिप्त से हुए काल साहब की आकृति किस प्रकार प्रत्यक्ष हो उठती है, यह देखने योग्य है·· ··

"काल साहब की गजी चाँद के इधर-उधर लम्बे-लम्बे बाल मुक्त होकर विखर रहे थे और उनके मोटे-मोटे होठ सर्प के फन के ऊपर-नीचे के भाग की भाँति तीव्र गति से फडफडा रहे थे। मस्तक मे बार-बार सलवटे पड-पडकर खुल जाती थी और चपटी नासिका से अन्दर और बाहर जाने वाले श्वासो के साथ नाक के अन्दर वाले बाल फरफराते हुए स्पष्ट दिखलाई दें रहे थे। कभी-कभी काल साहब अपने ऊपर के सामने वाले दो दातो के नीचे के मोटे होठ को दबाने का भी प्रयत्न करते थे, परन्तु चौकडे के दो दात गिर जाने और बचे हुए दोनो के हिलने के कारण वह होठ बराबर उनकी दाब से निकल भागते थे।"

मि० काल की मनोदशा का वर्णन तथा बहूरानियो के स्वतन्त्र निश्चिन्त स्वभाव, अशफाक की दृढता तथा चौहान के मानसिक सघर्ष के दर्शन सुन्दर भाषा मे स्थान-स्थान पर मिलते है। इस प्रकार भाषा तथा शैली की दृष्टि से भी यह उपन्यास एक सफल रचना है।

'निर्माण-पथ' उपन्यास मध्यम श्रेणी का उपन्यास है। इसमे लेखक को अपने उद्‌गार तथा मन्तव्य प्रकट करने का अच्छा अवसर प्राप्त हुआ है और किसी अश तक उसे अपनी प्रयोजन सिद्धि मे भी सफलता मिली है। गुण और दोषो के होते हुए भी इसके द्वारा लेखक ने एक सत्य को उपस्थित किया है। इसलिए हम कह सकते हैं कि लेखक का यह प्रयास सफल तथा प्रशसनीय है।

प्रश्न ३—क्या 'निर्माण-पथ' का नाम उपन्यास के कथानक तथा उद्देश्य आदि को देखते हुए सार्थक है?

उत्तर—'निर्माण-पथ' का अर्थ है किसी देश या समाज की उन्नति तथा उसके निर्माण का मार्ग। आज भारतवर्ष स्वतन्त्र है और उसमे विभिन्न क्षेत्रों

ये निर्माण कार्यों की आवश्यकता है। इसीलिए लेखक ने इस उद्देश्य को लेकर यह पुस्तक लिखी है। इसमें लेखक ने बताया है कि मिल-मालिकों (पूँजीपतियों) को श्रमिकों पर किसी भी प्रकार का अत्याचार नहीं करना चाहिए। उन्हें मजदूरों को भी अपने ही जैसा मनुष्य समझना चाहिए। दूसरी ओर मजदूरों को भी यह बताया है कि उन्हें विध्वंस का मार्ग नहीं अपनाना चाहिए। उन्हें चाहिए कि वे निर्माण का कार्य करके देश का हित करें। लेखक ने मजदूरों को मिल की रक्षा की प्रेरणा देकर वास्तविक मार्ग को अपनाने का परामर्श दिया है। विमला का यह कहना ठीक ही है—"यह मिल राष्ट्र का है और हमारी है। आप लोग (मिल मालिक) इस मिल के चौकीदार हैं।" विमला कानपुर अखबार में ये शब्द कहती है—"क्या राष्ट्र की सम्पत्ति को नष्ट होते हुए एक क्षण भी देख सकोगे?" वास्तव में जिस दिन मजदूर मिलों को राष्ट्र की सम्पत्ति समझने लगेंगे, उस दिन वे हड़ताल और दंगों को छोड़कर जनता के लिए अधिक उत्पादन करेंगे और हड़तालों से होने वाली क्षति को पूरा करने के लिए अधिक परिश्रम करेंगे उसी दिन देश की आर्थिक समस्या, जो कि मजदूर नेताओं के बहकाने से खड़ी हो जाती है, वह नहीं होगी। प्रस्तुत उपन्यास के द्वारा दिये गए इस सन्देश के कारण ही इसको हम 'निर्माण-पथ' कह सकते हैं।

चौहान साहब स्वतंत्रता संग्राम के सेनानी हैं। उन्होंने भारत के स्वतंत्रता प्राप्ति के आन्दोलनों में अनेक बार जेल यात्रा की और ब्रिटिश तानाशाही का डटकर मुकाबला किया। दिल्ली में उन्होंने धूम मचा दी थी। इसलिये जनता में उनकी बहुत प्रतिष्ठा तथा प्रभाव था। परन्तु स्वतन्त्रता प्राप्ति के पश्चात् वे सेठ मानामल के धन के प्रलोभन में फँस जाते हैं और स्वार्थपरता में पड़ने के कारण वे अपने कर्त्तव्य-पथ से विचलित होकर पूँजीपतियों के समर्थक तथा सहयोगी बन जाते हैं। मजदूरों का भी उन पर से विश्वास उठ जाता है। इस प्रकार साधन-सम्पन्न होने पर उनका जनता में वह प्रभाव और प्रतिष्ठा नहीं रहती जो कि उस समय थी, जब वे साधन-विहीन थे और निर्धनता का जीवन व्यतीत करते थे। अपने इस कार्य पर स्वयं चौहान साहब लज्जित हैं और विमला भी उन्हें समझाती है। वे स्वयं यह भी देखते हैं कि

उनका साथी अशफाक आज बहुत ऊँचा उठ गया है, क्योकि वह अभी तक अपने कर्त्तव्य-पथ पर आरूढ है। अत सार्वजनिक कार्यकर्त्ताओ को राष्ट्र-निर्माण व राष्ट्र-प्रगति के ऊंचे लक्ष्य को सदा सामने रखने की प्रेरणा के कारण भी यह कहा जा सकता है कि 'निर्माण-पथ' शब्द को सार्थक करने का लेखक ने पूर्ण प्रयत्न किया है।

उपन्यास के अन्त मे लेखक ने मिल मालिक द्वारा एक नई मिल की स्थापना करवाई है और विमला ने उसे भी निर्माण-पथ बताया है। परन्तु यह तो 'निर्माण-पथ' का एक उपहास-मात्र है। वास्तव मे आज के पूँजीपति व मिल मालिक अपना रुपया लगाकर जो मिल खोलते है, वे लाभ की दृष्टि से खोलते है, राष्ट्र के निर्माण के लिए नही। मि० काल भी उन्ही मे से है। मिल की स्थापना करने की मूल प्रेरणा अधिक लाभ की प्राप्ति है, न कि राष्ट्र-निर्माण की भावना। इसलिये विमला का यह कहना अशुद्ध है कि यही है हमारा निर्माण-पथ! चोर बाजारी करके भी रुपया कोई कहाँ ले जायगा? राष्ट्र का रुपया उसे राष्ट्र को एक दिन अवश्य सौपना होगा। अब आप देखेंगे काल साहब को राष्ट्र का धन राष्ट्र को मय सूद के चुकता करते हुए। हाँ, यदि मि० काल सहकारी आधार पर किसी मिल की स्थापना करते, जिसमें मजदूर ही उसके मालिक व सचालक होते, तो 'निर्माण-पथ' नाम और भी अधिक सफल होता।

प्रश्न ४—'निर्माण-पथ' के लेखक श्री यज्ञदत्त शर्मा के अन्य उपन्यासों की चर्चा करते हुए बतलाइये कि उनमें और 'निर्माण-पथ' मे कौनसी विशेष समानता है?

उत्तर—हिन्दी उपन्यास-साहित्यकारो मे श्री यज्ञदत्त शर्मा का विशेष स्थान है। शर्मा जी ने उपन्यासो के अतिरिक्त नाटक, कविता आदि सभी कुछ लिखा है,परन्तु उनका महत्त्व उनके उपन्यासो के कारण ही है। शर्मा जी ने कुल मिलाकर १४-१५ उपन्यास लिखे है। उनमे से इन्सान, बदलती राहें, भारत सेवक, महल और मकान,निर्माण-पथ, दो-पहलू, बाप-बेटी, अन्तिमचरण, त्याग आदि प्रमुख है। उपन्यास मे लेखक को अपनी भावनाओ का विकास करने के लिए पर्याप्त अवकाश होता है और कथा मे कल्पना तत्त्व का वह

अधिक समावेश कर सकता है। पात्रों के चरित्र-चित्रण एवं विकास के लिए भी उसमें पर्याप्त स्थान होता है। श्री यशदत्त जी ने स्वयं अपने एक उपन्यास की भूमिका में लिखा है—"उपन्यास अपने पूर्ण और विशाल रूप में पाठक के सामने आता है और लेखक जो कुछ कहना चाहता है उसे पूरी तरह व्यक्त करने की क्षमता उपन्यास में है।' लेखक ने देशकाल तथा वातावरण का चित्रण भी अपने उपन्यासों में भली भाँति किया है। गत २०-२५ वर्षों में हमारे देश में बहुत उथल-पुथल हुई है। इसी समय में स्वतंत्रता आंदोलन भी बहुत जोर से चला था। देश का विभाजन हुआ और साम्प्रदायिकता के नाम पर झगड़े और हत्याकाण्ड हुए। पाकिस्तान से हिन्दू शरणार्थी बनकर यहाँ आये। स्वतंत्रता प्राप्ति के पश्चात् नवीन संविधान बना। देश में नवीन शासन की स्थापना हुई तथा विकास योजनाएँ बनीं। देश का नैतिक पतन हुआ तथा भ्रष्टाचार की वृद्धि हुई। कोई भी साहित्यकार इन घटनाओं से प्रभावित हुए बिना नहीं रह सकता। श्री यशदत्त जी इस ओर से उदासीन न रह सके। उन्होंने भी अपनी रचनाओं में इन सभी घटनाओं का किसी न किसी रूप में चित्रण किया।

यशदत्त जी ने 'निर्माण-पथ' उपन्यास मिल मालिकों व मजदूरों के संघर्ष और समाजवाद के स्वर्ण स्वप्न दिखाने के लिए लिखा। अपने उपन्यास 'दो पहलू' में लेखक ने गांधीवादी तथा क्रान्तिकारी की मनोभूमि तथा विचार-धाराओं का संघर्ष दिखाया है। 'इन्सान' में लेखक ने विभाजन के पश्चात् मानव की बर्बरता एवं पशुता के प्रति खेद प्रकट किया है। 'निर्माण पथ' में लेखक ने एक मुस्लिम घर के जलने तथा बाल-बच्चों सहित घर की स्त्री के जल जाने की ओर लेखक ने संकेत किया है। स्वाधीनता प्राप्ति के पश्चात् खड़ी होने वाली समस्याओं की ओर भी लेखक ने ध्यान दिया है। लेखक के हृदय में हमारे देश में आर्थिक विषमता, मजदूरों तथा दीनों पर अत्याचार तथा उनके शोषण को देखकर जो वेदना उत्पन्न हुई है उसको लेखक ने अपनी प्रत्येक रचना में प्रकट किया है। 'मकान और महल' में भी लेखक ने समाज को यही सन्देश दिया है। 'इन्सान' में लेखक ने बताया है कि जमींदार, पूँजीपति तथा पटवारी किस प्रकार अपनी चालाकियों से

निर्धनो तथा मजदूरो व कृपको का शोषण करते है।

यद्यपि लेखक साम्यवाद से प्रभावित है, परन्तु वह मजदूरो को विध्वस के लिये उपदेश नही देता है। वह तो उनको विध्वम के कार्यो से रोकता है। वह तो मजदूरो को यह बताता है कि ये सभी मिल आदि राष्ट्र की सपत्ति है और उनका विध्वस करना राष्ट्र की सम्पत्ति को नप्ट करना है। इस प्रकार वह उनमे राष्ट्र के प्रति मोह भी उत्पन्न करता है। यही कारण है कि 'निर्माण-पथ' मे वह विमला तथा अशफाक के द्वारा मिल की रक्षा करवाता है। साथ ही वह मजदूरो को हड़ताल आदि मे हुई मिल की क्षति को कठिन परिश्रम तथा ओवर टाइम मे कार्य करके पूर्ण करने की प्रेरणा देता है। लेखक ने "महल और मकान' मे भी मजदूरो व पूँजीपतियो के सहयोग से पुनर्निर्माण की अभिलाषा व सभावना प्रकट की है। यज्ञदत्त जी के सभी उपन्यासो मे एक ओर प्राचीन रूढियो व व्यवस्थाओ के प्रति रोष है, तो दूसरी ओर देश के नवनिर्माण की उठती हुई आकाक्षाओ का समर्थन है। शर्मा जी के सभी उपन्यासो मे सामाजिक, आर्थिक तथा राजनीतिक समस्याओ पर पाठक को विचार की सामग्री मिलती है। लेखक मानव को दीन-हीन, शोपित व पीड़ित दशा मे देखना नही चाहता है। वह आर्थिक विपमताओ को दूर कर देना चाहता है।

शर्मा जी ने सामाजिक रूढियो व अन्य परम्पराओ पर भी उपन्यास लिखे है। इस प्रकार के उपन्यासो मे "झुनिया की शादी', 'मधु' आदि उपन्यास मुख्य है। उनके सामाजिक उपन्यासो मे यथार्थ का चित्रण है। उन्होने अपनी रचनाओ मे जनहित तथा नैतिक उत्थान के महान् आदर्श को अपने सामने रखा है।

अन्त मे हम कह सकते है कि यज्ञदत्त जी ने उपन्यास लिखकर हिन्दी साहित्य ही की नही अपितु समाज तथा राष्ट्र की भी महान् सेवा की है।

प्रश्न ९—श्रम और पूँजी के संघर्ष के सम्बन्ध में लेखक ने जो विचार प्रस्तुत किये है, उन पर प्रकाश डालिये तथा उनकी समीक्षा करते हुए बताइये कि आप उनसे कहाँ तक सहमत है।

उत्तर—स्वतन्त्रता प्राप्ति के पश्चात् भारत मे औद्योगीकरण आन्दोलन

आरम्भ होगया है। इस आन्दोलन के साथ-ही-साथ श्रम और पूँजी का संघर्ष भी प्रबल हो उठा है। वैसे तो स्वतन्त्र भारत की वर्तमान सरकार का ध्येय समाजवाद की स्थापना ही बताया जाता है परन्तु उनका मार्ग समझौतावादी होने के कारण मजदूरों के लिये अधिक आशापूर्ण व उत्साहजनक नहीं है। इसका कारण यही है कि सत्ताधारी नेता या तो पूँजीपतियों के वर्ग से सम्बन्धित हैं या उनसे चन्दा या उपहार आदि के रूप में प्राप्त सहायता के एहसानों से दबे हुए हैं। वास्तव में उन्होंने जो देश-सेवा की है उससे प्राप्त प्रसाद व प्रसिद्धि का उपयोग आज वे परमिट व लाइसेंस तथा सरकारी आर्डर प्राप्त करने तथा उनसे धन प्राप्त करने में कर रहे हैं। जब उनकी ही स्थिति ऐसी है तो फिर वे पूँजीपतियों के विरुद्ध मजदूरों की सहायता कैसे कर सकते हैं। आज धनाढ्य व्यक्ति तो उनके मित्र हैं और उन मित्रों का मान-अपमान उनका अपना मान-अपमान है। फिर भला वे अपने मित्रों का अपमान कैसे सहन कर सकते हैं। वास्तव में आज के नेताओं का त्याग का वह जीवन जो उन्होंने स्वतन्त्रता संग्राम में व्यतीत किया था, अतीत का जीवन हो गया है। अब तो वे शेष जीवन को शान्ति और सुख से व्यतीत करना चाहते हैं। 'निर्माण-पथ' में चौहान साहब इस वर्ग के प्रतिनिधि हैं। वे स्वयं बीच में पड़कर मजदूरों व सेठ मानामल (मिल मालिक) के बीच समझौता करा देते हैं परन्तु सरकारी आर्डर के पूरा होने के पश्चात् सेठ मानामल तथा मिल मैनेजर मि० काल चौहान साहब के निर्णय को ठुकरा देते हैं। ऐसी स्थिति में भी वे सेठ साहब का ही साथ देते हैं, क्योंकि यह सेठ की प्रतिष्ठा का प्रश्न है और मजदूर तो मानामल की दृष्टि में 'मक्खी मच्छर के तुल्य' हैं। चौहान साहब की दृष्टि में भी मजदूर तो लाखों की संख्या में मिल सकते हैं, परन्तु सेठ मानामल जैसे मित्र तो विरले ही मिल सकते हैं। ऐसी ही दशा वर्तमान काल के कांग्रेसी नेताओं की है। सरकार के स्तम्भ भी ये ही नेता हैं, इसलिए फिर सरकार ही उनका क्या कर सकती है। परन्तु फिर भी लेखक ने कामरेड विमला के शब्दों में ऐसी आशा प्रकट की है कि सरकार ऐसी व्यवस्था करेगी कि श्रमिकों के अधिकारों का अपहरण किसी भी प्रकार से न होने पाये।

देश की स्थिति को सुधारने, उद्योग का विकास करने तथा जिन वस्तुओ का अभाव है उनके उत्पादन मे वृद्धि करने के लिए श्रम और पूँजी मे पूर्ण सहयोग की आवश्यकता है। जब मजदूरो को लाभ अधिक होगा, उसे उत्पादन के अनुसार वेतन मिलेगा तो यह निश्चित ही है कि वह दुगुना परिश्रम करके उत्पादन करेगा। परन्तु वर्त्तमान व्यवस्था मे यह सम्भव नही है। परन्तु जिन पूँजीपतियो व नेताओ को इस व्यवस्था से लाभ हो रहा है, वे इसमे परिवर्तन नही होने देगे। वे षड्यन्त्रो द्वारा मजदूरो के आन्दोलनो को असफल करा देंगे। वे अपने हथकण्डो का पूर्ण उपयोग करेंगे, परन्तु कब तक ? आखिर एक दिन आयेगा कि इनके हथकण्डे सफल न हो सकेंगे, अपने षड्यन्त्रो का वे स्वय ही शिकार होगे। यह तो उस समय तक ही सम्भव था जब तक मजदूर वर्ग मे जागृति नही हुई थी। आज मजदूर जाग गया है, वह अपने अधिकारो व हितो को भली भाँति समझता है। आज वह यह समझने लगा है कि वह मालिको के चाँदी के टुकडो पर नही पलता है, अपितु मालिक उसके श्रम पर अपने को पालते है। आज युगो के शोषित मजदूर का सचित असतोष व रोष का भाव अग्नि के रूप में प्रबल रूप धारण कर जाग चुका है और शीघ्र ही किसी भी दिन विस्फोट के रूप मे परिणत हो जायगा। वह क्राति का दिन अब दूर नही है जिसकी अग्नि मे यह उत्पीडन और शोषण सभी भस्म हो जायेगे।

विध्वस का यह मार्ग बहुत भयानक है। इसलिए राष्ट्र तथा समाज का हित इसी मे है कि युग की बदलती हुई गति को पूँजीपति वर्ग समझ ले। वह उत्पीडन का मार्ग छोडकर सहयोग का मार्ग अपना ले। मजदूरो को 'मक्खी और मच्छर के तुल्य' न समझकर उनके साथ भी मानवता का सम्बन्ध स्थापित करे। उनका यह कहना तो ठीक ही है कि उसने पूँजी लगाई है, परन्तु यह पूँजी उसके पास कहाँ से आई। यह सब राष्ट्र की ही तो है। इसलिए इसने राष्ट्र-हित में उसे लगाकर क्या उपकार किया ? यह तो उसका कर्त्तव्य ही है। परन्तु इसका तात्पर्य यह तो नही है कि एक मगरमच्छ की भाँति वह मजदूर रूपी मछलियो को खा जाय। सहस्रो मजदूर पीडित रहे और वह विलासप्रिय जीवन व्यतीत करे और खजानो मे धन जमा रखे। उसे भी

लाभ का उचित भाग ही लेना चाहिए। उसे यह सोचना चाहिए कि केवल उसकी पूँजी ही उत्पादन नही कर रही है। श्रम के अभाव मे पूँजी भी बेकार है। इसीलिए श्रम का पूँजी से कम महत्त्व नही है। अत उसे श्रम के लिए भी मजदूरो को लाभ का उचित भाग भी देना चाहिए। परन्तु आज ऐसा नही होता है, इसीलिए यह असन्तोष, हडताले तथा सघर्ष हो रहे है। मालिकों को इस सत्य को समझकर श्रम का उचित मूल्य देना चाहिए।

लेखक ने अपने उक्त विचारो को ही 'निर्माण-पथ' की भूमिका मे लिखा है—"आज का राष्ट्र जागरूक हो चुका है, मजदूर का सम्बन्ध बुद्धि से जुड गया है। सगठन की उनमे क्षमता है। राष्ट्र-निर्माताओ को चाहिए कि वह इस सगठन का उपयोग उत्पादन तथा राष्ट्र निर्माण के लिये करें न कि उसे पूँजीवादी स्वार्थप्रिय मनोवृत्तियो मे टक्कर लेकर नष्ट होने के लिए छोड दे। आज राष्ट्र का क्षण-क्षण अमूल्य है और उसमे से एक क्षण का भी नष्ट हो जाना राष्ट्र के लिए एक समस्या है।"

अब वह समय आ गया है कि चौहान साहब व मि० काल जैसे व्यक्ति दूसरों के कधो पर गुलछर्रे नही उडा सकते है। अब तो पूजी और श्रम की समस्या को सुलझाकर सघर्ष को समाप्त कर देना ही है। अब बीच मे समझौता कराने वाले और इसी प्रकार के दूसरे व्यर्थ के व्यक्तियो का कोई महत्व नही है। लेखक ने भी भूमिका मे लिखा है :—

"समय आ गया है जब कि प्रत्येक व्यक्ति को कर्मण्य बनना होगा। दूसरों के कधो पर सवारी गाँठने का युग समाप्त हो चुका। मजदूर के कधे अब इन अनाहूतो के भार को नही सभालेंगे।"

अब मजदूर अपने ऊपर लदे हुए भार को उतार कर फेंकने पर तुल गया है। वास्तव मे मेहनत करके कमाने वाले सभी व्यक्ति मजदूर है चाहे वे मन्त्री होने वाले हो, चाहे अध्यापक हो या दफ्तर के बाबू हो। परन्तु जब कोई मजदूर कुछ अधिकार प्राप्त करके पूँजीपतियो के साथ मिल जाता है, उनसे समझौता कर लेता है तथा स्वय मजदूरो को उखाड फेंक देना चाहता है, तो वह श्रमिको पर अत्याचार करने के लिये पूँजीपतियो का साधन बन

जाता है। इसका कारण है कि ऐसे व्यक्ति मनुष्य की अपेक्षा धन को, साध्य की अपेक्षा साधन को, समाज की अपेक्षा व्यक्ति को महत्व देते है, परन्तु आज उन्हें इस मनोवृत्ति को भी बदलना होगा। लेखक के शब्दो मे—

"साधन से साध्य का महत्व ऊँचा है और राष्ट्र के साधन राष्ट्र के प्रत्येक व्यक्ति को उपलब्ध होगे। उन्हे बपौती मानकर तिजोरी मे ताला लगाने की अनधिकार चेष्टा को राष्ट्र का जनमत स्वीकार नही करेगा।"

प्रश्न ६—"इस इमारत की बुनियादें हिल चुकी हैं चौहान साहब! चूना मिट्टी हो चुका है, ईंटें रेह खा चुकी हैं, दीवारो मे दरारें खुल गई है, कड़ियों को घुन लग गया है और लोहे के शहतीर जंग खाकर अपनी अन्तिम रूपरेखा लिये बैठे है।"

इन पंक्तियों का क्या आशय है और आप उससे कहाँ तक सहमत हैं? तर्क-संगत उत्तर दीजिये।

उत्तर—श्री यज्ञदत्त शर्मा के उपन्यास 'निर्माण-पथ' में ये शब्द मजदूरो की नेत्री कामरेड विमला ने कांग्रेसी नेता चौहान साहब से कहे हैं। वास्तव मे ये शब्द उन कांग्रेसी नेताओ के लिए कहे गए है जिनका प्रतिनिधित्व चौहान साहब करते है। इन नेताओं ने स्वतन्त्रता संग्राम में जो त्याग और बलिदान किये, वे प्रशसनीय हैं। उन्होने अत्याचारी विदेशी शासको के पाशविक अत्याचारो तथा मार्ग मे आने वाली अनेक कठिनाइयो व बाधाओ का सामना साहस तथा वीरता से किया। उस समय ये लोग सच्चे देशभक्त थे। उस समय तो स्वार्थ इनसे कोसो दूर भागता था। परन्तु स्वतन्त्रता प्राप्ति के साथ-साथ इनकी देश भक्ति, इनका त्याग तथा बलिदान सभी काफूर हो गये और इन्होंने अपने जीवन को नए ढंग से ढाला। जनता ने इनकी सेवाओ तथा त्याग को देखकर इनको सम्मान व यश दिया और इनको अपना नेता मानकर इनके हाथ मे देश के शासन की बागडोर दे दी। जनता को पूर्ण आशा थी कि वे लोग स्वतन्त्रता प्राप्ति के पश्चात् भी उसी नि स्वार्थ भावना से देश की सेवा करते रहेगे और उसे उन्नति के शिखर पर ले जायेंगे। वे जनता के कष्टो को दूर करने का पूर्ण प्रयत्न करेंगे। परन्तु परिणाम उलटा ही हुआ। इन नेताओ ने जनता द्वारा दिये हुए सम्मान का दुरुपयोग किया और उससे

अपनी स्वार्थ-पूर्ति की। बड़े-बड़े पूँजीपतियों व उद्योगपतियों ने भी धन का प्रलोभन देकर इन नेताओं के द्वारा अपने स्वार्थ सिद्ध कराने आरम्भ कर दिए।

वास्तव में इन नेताओं के मस्तिष्क में भी यह बात समा गई कि क्यों न अपने यश तथा प्रभाव से लाभ उठाया जावे। इनके पास जो धन आदि का अभाव था उसकी पूर्ति पूँजीपतियों ने करके इनको अपना परम मित्र बना लिया। बस फिर क्या था इन नेताओं की पैसे वालों से सौदेबाजी होने लगी और ये जनता के सेवक कहे जाने वाले कांग्रेसी नेता प्रतिक्रियावादी तत्त्वों के साथी बन गए। यही कारण है कि आज इन नेताओं पर से जनता का विश्वास समाप्त हो चुका है।

यदि आज नेताओं की दशा पर विचार किया जाय तो हम देखते हैं कि चारों ओर पदों की लूट-मार, अधिकार-प्राप्ति तथा धनोपार्जन में ये नेता लगे हुए हैं। कोई नगरपालिका का सदस्य बनने का प्रयत्न कर रहा है, तो कोई संसद्-सदस्य बनने के लिए। कोई मेयर या नगरपालिका का अध्यक्ष बनकर मालामाल हो रहा है, तो कोई मन्त्री बनकर और कोई राजदूत बनकर। अनेक नेता कोई भी पद प्राप्त न करने पर भी अपने प्रभाव व यश से लाइसेंस तथा परमिट स्वीकार कराकर पूँजीपतियों के हाथ बेच रहे हैं। अनेक नेता विभिन्न प्रकारों से चन्दा एकत्रित करके ही अपनी उदरपूर्ति कर रहे हैं। जो नेता स्वतन्त्रता प्राप्ति से पूर्व भर पेट भोजन भी प्राप्त नहीं कर पाते थे आज उनके घर में प्रतिदिन दावतें तथा टी पार्टियाँ हो रही हैं। जिस जनता ने इन्हें इस पद पर आरूढ़ किया है, उसकी तो अब इन्हें लेशमात्र भी चिन्ता नहीं है। आज तो उसकी करुण पुकार भी इनके कानों तक नहीं पहुँच सकती है। आज खादी के वस्त्रों की पवित्रता प्राय नष्ट हो चुकी है। त्याग और तप के प्रतीक ये वस्त्र अब भ्रष्टाचार करने के लिए ढकने या ओट हो गए हैं। आज इन नेताओं के लिए जनता के हृदय में कोई स्थान नहीं है। नेता भी प्रजा को केवल निर्वाचन के समय ही याद करते है। उनमें से प्रत्येक घरों में जा जाकर अपने लिए वोट माँगते हैं और तरह-तरह की प्रतिज्ञाएँ करते हैं, परन्तु सत्ता हाथ में आने के पश्चात् वे अपनी सब प्रतिज्ञाओं को भूल गये हैं, अब तो केवल नाम मात्र रह गया है। कहने को तो वे अपने को जनता का सेवक बताते हैं,

परन्तु वास्तव मे वे सेवक केवल उनके हैं जिनकी सेवा करने से उनकी जेबे भरी जाती है। अब वे कहीं ठहरते हैं तो उनके लिए किसी न किसी उद्योग-पति की कोठी की व्यवस्था होती है। निर्धनो की झोपड़ियो मे भला उनकी सुख-सुविधा का प्रबन्ध कैसे हो सकता है।

हो सकता है कि बहुत से कांग्रेसी नेताओ पर ये दोषारोपण सत्य न हो, परन्तु उनकी पूँजी तथा पूँजीपतियो से मित्रता ही इस आरोप का कारण है। महात्मा गाँधी जी भी इस आरोप से वंचित न रह सके। स्वतन्त्रता प्राप्ति के पूर्व वे भंगी बस्ती या वाल्मीकि मन्दिर मे ठहरा करते थे, परन्तु स्वतन्त्रता प्राप्ति के पश्चात् उन्होने बिरला भवन मे ठहरना आरम्भ कर दिया था। यह ठीक है कि गाँधी जी एक महापुरुष थे। उन्हे किसी प्रकार का लोभ नही था। परन्तु फिर भी उनके वहाँ ठहरने से गृहपति (जो कि एक पूँजीपति है) को आर्थिक दृष्टि से कम लाभ नही होता था। उनके व्यक्तित्व तथा प्रभाव से ही वह अनेक प्रकार के लाभ उठा सकता था। जब गाँधी जी जैसे महान् निःस्वार्थी नेता तथा विश्ववन्द्य महापुरुष के प्रति भी जनता ऐसा सोच सकती है, तो बताइये फिर ये वर्तमान नेता जो कि वास्तव मे तस्कर व्यापार तथा चोर बाजारी मे सहायता देते है, किस प्रकार बच सकते है।

उपर्युक्त विवेचन से स्पष्ट है कि विमला द्वारा कहे गए शब्द अक्षरशः सत्य है। इन कांग्रेसी नेताओ ने स्वतन्त्रता प्राप्ति से पूर्व अपने त्याग और तप की नींव पर जो पवित्र जीवन का भवन स्थापित किया था, वह भवन, वह इमारत अब निराधार हो रही है, क्योकि उसकी बुनियाद त्याग और तप का उनके जीवन मे अस्तित्व नही रहा। जिस पवित्रता का लेप उस इमारत पर हुआ था, वह चूना अब मिट्टी हो गया है, उसके स्थान पर कालुष्य आ गया है। जिन बलिदानो से उस भवन का निर्माण हुआ था वे बलिदान अब कुछ महत्त्व नही रखते। उनके भीतरी दोष, उनके स्वार्थ सिद्धि वाले भाव सबके सामने प्रकट हो चुके हैं। उनकी प्रतिष्ठा अब वह नही रही है जो पहले थी। जनता का उन पर से विश्वास कम होता जा रहा है। उनके यश को घुन लग रहा है। यह सब इसलिए हुआ और हो रहा है कि वे भी अपने को परि-वर्तित कर रहे है। अब उनमे जन-सेवा की भावना का लोप हो गया है। यदि

वे उदरपूर्ति और शरीर ढाँपने के लिए कोई व्यवसाय करें, तो जनता को उसमें कोई आपत्ति नहीं होगी, परन्तु शोषकों का साथ देकर स्वयं भी उनकी भाँति अपना जीवन व्यतीत करें तो जनता को यह सहन नहीं। जन-सेवक तथा साधक का कार और कोठी-बंगलों से क्या मतलब ?

प्रस्तुत उपन्यास में हम देखते हैं कि जब 'सेठ क्लॉथ मिल्स' के मजदूर हड़ताल करते हैं, तो कांग्रेसी नेता चौहान मजदूरों का साथ न देकर पूँजीपतियों का साथ देते हैं। वास्तव में उन्हें मजदूरों का पक्ष लेना चाहिए था, परन्तु कैसे लेते ? वे तो सेठ भानामल के धन पर जीवित थे। इसीलिए मजदूरों ने इन्हें 'जरखरीद पिट्ठू' एवं 'भानामल का गुलाम' कहा है। कामरेड अशफाक की मां जब रुग्णावस्था में थी, तो उनके पास उनके इलाज कराने के लिए पैसे नहीं थे, परन्तु फिर भी उसने माँ की मृत्यु स्वीकार की पर चौहान के पैसों से इलाज कराना उचित नहीं समझा। यहाँ तक कि उनका लाया हुआ शाल भी उसने माँ के शव पर नहीं डाला, क्योंकि चौहान के पास जो पैसा था वह परिश्रम से कमाया हुआ नहीं था, बल्कि वह मजदूरों के शोषण का पैसा था जो कि सेठ भानामल ने उन्हें दिया था। विमला ने भी यही बात उनसे कही :—

"जब आप धन-विहीन थे, तब आपने जन-सेवा के मार्ग में पग बढ़ाया और आज जब आप साधन-सम्पन्न हुए तो आपने अपनी आत्मा सेठ भानामल जी के हाथ बेच डाली। आपका यह भ्रम है कि सेठ भानामल जी आपको कुछ दे सकते हैं। जब तक वे आपको दुधारू गाय समझते हैं तभी तक लातें भी खाते हैं परन्तु जब आपका बल नष्ट हो जायगा तब यह दाना और खल नहीं डाली जायगी।...... ...आपको यह बल जनता ने प्रदान किया है, सेठों ने नहीं।"

इन कांग्रेसी नेताओं की इन करतूतों तथा इनकी इस गिरावट के कारण ही सेठ भानामल जैसे पूँजीपति कहते हैं कि :—

"..........इन लोगों की राजनीति मेरे टुकड़ों पर पली है और पल रही है, आज भी इस कठोर सत्य को यह भुला नहीं सकते। मैंने अपने खून-पसीने की कमाई इनकी राजनीति की दीवारों को मजबूत बनाने में व्यय की है।"

पूँजीपतियो ने जो वर्तमान नेताओ के प्रति यह दृष्टिकोण बनाया हुआ है, उसी को आधार बनाकर विमला चौहान साहब से कहती है —

"... आज मै आप से झगडे का निश्चय करके घर से निकली हूँ। सुधारवादी मनोवृत्तियो के बल पर जो लोग आज जनता की आँखो मे धूल झोक कर अपना उल्लू सीधा करने चले है, उनका फलीभूत होना नितान्त असम्भव है।"

विमला तो यह चाहती है कि मनुष्य को आडम्बरो का त्याग करके परिश्रम का जीवन व्यतीत करना चाहिए। वह सादे तथा उच्च भावो से पूर्ण जीवन को महत्त्व देती है और वर्तमान काँग्रेसी नेताओ मे इसका अभाव है। इसलिये वह उनकी निन्दा करती है। वह चौहान की दुरगी चाल को पसन्द नही करती है। यह कैसे सम्भव हो सकता है कि शोषको से मित्रता रखते हुए शोषितो के साथ सहानुभूति रक्खो जब कि उन मे सघर्ष हो रहा है। सच्चा नेता तो वही है जो नि स्वार्थ भावना से किसी एक पक्ष का साथ दे और वह भी उस पक्ष को जो न्याय और सत्य के मार्ग पर है।

वर्तमान युग मे देश की उन्नति के लिए ऐसे नेताओं की आवश्यकता है जो जनता के हित को अपने स्वार्थ से अधिक महत्त्व दे और जनता पर होने वाले अन्याय के विरुद्ध उनके कन्धे से कन्धा भिडाकर लडें। जनता ऐसे ही नेताओ का सम्मान करेगी और उन्ही पर विश्वास करेगी। आज इन काँग्रेसी नेताओ को चाहिए कि वे इस सत्य को समझ ले और अपना जन-सेवक का जो वास्तविक मार्ग है उसी पर आचरण करे। अभी उनके सुधार का समय है।

प्रश्न ७—"साधन से साध्य का महत्व ऊँचा है और राष्ट्र के साधन राष्ट्र के प्रत्येक व्यक्ति को उपलब्ध होगे। उन्हे बपौती मानकर तिजोरी में ताला लगाने की अनधिकार चेष्टा को राष्ट्र का जनमत स्वीकार नही करेगा।"

इन शब्दो का आशय स्पष्ट करते हुए इस कथन की समीक्षा कीजिए।

उत्तर—श्री यज्ञदत्त शर्मा जी के उपन्यास 'निर्माण-पथ' मे समाज में फैली हुई आर्थिक विषमता पर विचार किया गया है। प्रस्तुत उपन्यास की वस्तु का सम्बन्ध उद्योगिक क्षेत्र से है। एक ओर उद्योगपति उत्पादन वृद्धि

की बात करते हैं और उत्पादित वस्तुओं में प्राप्त लाभ का एक बड़ा भाग स्वयं हड़प कर जाते हैं और मजदूरों को भर-पेट खाने के लिए भी पर्याप्त मजदूरी नहीं मिलती है। दूसरे उत्पादन की वस्तु क्या होनी चाहिए, इसका निर्णय करते समय वे राष्ट्र-हित की अपेक्षा अपने लाभ की ओर अधिक ध्यान देते हैं। वे उन्हीं वस्तुओं का उत्पादन करते हैं जिनमें लाभ अधिक होता है और जो बाजार में हाथों-हाथ बिक जाय। अधिक लाभ होने पर भी वे मजदूरों से यही कहते हैं कि मिल को हानि हो रही है। व्यय अधिक और आय कम है। अनेक ऐसी वस्तुएँ जिनकी जन-साधारण में माँग है, जिनका अभाव है, उनके मिलों में तैयार की जाती हैं परन्तु वे उन्हें छिपा लेते हैं, जिससे वे फिर उन्हें ऊँचे मूल्य पर चोरी से बेचते हैं। इस प्रकार आवश्यक वस्तु का पर्याप्त मात्रा में उत्पादन होने पर भी अभाव दिखाकर जनता को कष्ट पहुँचाते हैं और साथ ही इसमें वस्तु के मूल्य में भी वृद्धि करके दुगना लाभ उठाते हैं। इससे राष्ट्र-निर्माण के पथ में बाधा पड़ती है। परन्तु उन्हें राष्ट्र से क्या सम्बन्ध, उन्हें तो व्यक्तिगत लाभ की चिन्ता है। द्वितीय विश्व युद्ध काल में जनता ने उद्योगपतियों तथा पूँजीपतियों द्वारा उत्पन्न की गई भयंकर स्थिति का सामना किया। उस समय प्रत्येक वस्तु का अभाव तथा बढ़ी हुई मँहगाई के कष्ट उन्हें उठाने पड़े, परन्तु इस आपत्ति के शिकार निर्धन तथा मध्यवर्ग के व्यक्ति ही हुए। धनाढ्य व्यक्तियों को कोई कष्ट नहीं हुआ। उसी समय से वस्तुओं में मिलावट होने लगी और आज उसी के परिणामस्वरूप कोई भी वस्तु शुद्ध रूप में हमें बाजार में नहीं मिलती है।

स्वतन्त्रता-प्राप्ति के पश्चात् हमारे देश में कपड़े का अभाव रहा। जन साधारण वस्त्रों के लिए तड़पते रहे। कपड़ा भी लाइन में खड़े होकर सीमित मात्रा में मिलने लगा। परन्तु हमारे देश में पूँजीपति तथा मिल मालिक कपड़े की गाँठें चोरी से पाकिस्तान को भेजकर आर्थिक लाभ उठाते रहे। इस प्रकार राष्ट्र का अनहित करके उन्होंने व्यक्तिगत लाभ उठाया। वास्तव में यह देश-द्रोह था, और समाज, जाति तथा राष्ट्र के प्रति विश्वासघात था। इस प्रकार हम देखते हैं कि ये पूँजीपति जनता के हित को अपने लाभ के सामने गौण समझते हैं। उनके प्रत्येक कार्य में अपना स्वार्थ निहित होता

है। अपने लाभ के लिए वे श्रमिको तथा अन्य जन-साधारण के प्राण तक ले सकते हैं ।, मजदूरो को हस्पतालो मे जो औषधियाँ दी जाती है, वे भी शुद्ध नही होती हैं । उनमे भी ये लोग मिलावट करा देते है । इस प्रकार बेचारे मजदूरो का उपचार भी सुचारु रूप से नही हो पाता है। यहाँ पर तो घी में चर्बी मिलाकर और मसालो मे मिट्टी मिलाकर बेची जाती है, दूध में सपरेटा मिला दिया जाता है । अनेक वस्तुये घर मे कृत्रिम साधनो से तैयार करके ही असली वस्तु के स्थान पर बेची जाती है जैसे बसलोचन को बाँस से निकाल कर घर मे ही रेत, मिट्टी आदि से तैयार कर लेते है। फिर उस दो पैसे की वस्तु को रुपयो मे बेचते है। इस प्रकार ये पूँजीपति लाभ के वशीभूत होकर जनता को धोखा दे रहे है और अनेक निर्दोष व्यक्तियो के प्राण अशुद्ध वस्तु देकर ले रहे है। इतना ही नही, आज तो अपने मिल मे तैयार की हुई वस्तु को विदेशी बताते है और उसे विदेशी वस्तु के भाव से ही बेचते है। यह सब कुछ होते हुए भी सेठ भानामल जैसे पूँजी-पति नेताओ को धोखा देते हुए कहते है —

"... व्यापारी व्यापार चार पैसे के लाभ के लिए करता है, कोरी हानि उठाने या झख मारने के लिए नही करता। आज के व्यापार मे रखा ही क्या है ? एक कौडी की भी बचत नही है, एक कौडी की भी। और फिर जो इन्कमटैक्स का जूता सिर पर रहता है, वह अलग नाक मे दम किये है। साथ मे अफसरो की चूँट-चहेड भी लगी रहती है, जो आप से छुपी नही है। फिर कहिए कि आज की दुनिया मे बिना बनावट और मिलावट के व्यापारी किस प्रकार जीवित रह सकता है और किस प्रकार अपने बाल-बच्चो को पाल सकता है।"

परन्तु ये सभी बातें व्यर्थ की बकवास है। ये इन धनपतियो के हथकण्डे हैं जिनसे वे सरकारी अधिकारियो को धोखा देते है और मजदूर को बहकाते है। क्योकि यदि इस व्यापार मे कोई लाभ है ही नही हानि ही है, तो फिर ये व्यापार क्यो करते है ? क्यो न इस व्यापार को बन्द कर दें ? साथ ही जब आय नही है तो फिर दस-दस कारे कैसे रक्खी जा

सकती है। दावतें तथा कवि-सम्मेलन कैसे होते हैं। लेखक ने 'निर्माण पथ' मे पूँजीपतियो के इस बहाने व हथकण्डो का खण्डन करने के लिए ही मि० काल द्वारा दूसरी मिल की स्थापना कराई है। जब व्यापार मे लाभ है ही नही तो फिर यह बात काल जैसे कुशल व्यापारी तथा मैनेजर से तो छिपी नही रह सकती। फिर वे अपनी हजारो रुपया मासिक की आय को छोडकर अलग मिल की स्थापना क्यो करते है? स्पष्ट है कि जो कुछ भी सेठ भानामल ने चौहान साहब से उपर्युक्त शब्दो मे कहा है वह अक्षरश असत्य है, वह केवल कोरा बहाना है मजदूरो की मांग पूरी न करने का। वास्तविकता तो यह है कि ये लोग करोडो रुपये का लाभ होते हुए भी हानि ही दिखाते हैं। हिसाब मे गडबडी करना तो उन्हे भली भाँति आता है। उनके हथकण्डो को अच्छे सुलझे हुए सरकारी अधिकारी भी नही समझ पाते है।

अब प्रश्न यह उठता है कि यह सब छल, कपट तथा प्रपच वे किस लिए करते हैं। क्या उनकी आवश्यकताएँ अन्य व्यक्तियो की आवश्यकताओ से अधिक है? यह बात मानने के लिए तो कोई भी तैयार नही होगा। वास्तव मे जीवन की आवश्यकताये तो सभी की समान होती है। व्यापार की जाने वाली वस्तुओ की जीवन-निर्वाह के लिए आवश्यकता होती है, अत लोग उन्हें खरीद लेते हैं। इसलिए वे साधन मात्र है। धन वास्तव मे साधन है जो कि आवश्यकताओ को पूरा करता है। वह प्रधान नहीं है, प्रधान तो मानव है। अत मानवता का तकाजा है कि जीवन के लिए आवश्यक वस्तुयें सभी को प्राप्त हो। परन्तु आवश्यक वस्तुओ को गोदाम मे जमाकर जनता को कष्ट पहुँचाने का अधिकार किसी को नही है और जो ऐसा करते हैं वे द्रोह करते हैं। ऐसा करने वाले पूँजीपतियो को अपने कर्त्तव्य को भली भाँति समझ लेना चाहिए और समष्टि के हित को व्यक्तिगत हित से ऊँचा समझना चाहिए। आज उन्हें यह सग्रह की प्रवृत्ति छोड देनी चाहिए वर्ना उन्हें ऐसा करने के लिए बलपूर्वक विवश किया जायगा। विमला ने अपने निम्नलिखित शब्दो मे पूँजीपतियो को यही सदेश दिया है :—

"यह मिल राष्ट्र का है और राष्ट्र हमारा है। आप लोग इस मिल के

चौकीदार है यह याद रहे कि जिस दिन भी आप अपने कर्त्तव्य से हट-कर स्वार्थ की ओर पग बढाने का प्रयत्न करेंगे, उसी दिन राष्ट्र आपके हाथो से मिल के द्वार की कुन्जियाँ छीन लेगा।"

यह सग्रह की प्रवृत्ति राष्ट्र के लिए बहुत घातक है। आज इस बात की आवश्यकता है कि प्रत्येक व्यक्ति को अपने स्वार्थ की अपेक्षा राष्ट्र के हित का ध्यान देना चाहिए और सबको समान समझना चाहिए। छोटी बहूरानी इसी सदेश को देती हुई कहती है—

"समान अधिकार अवश्य मिलेंगे और अधिकारो की कमी अथवा आधिक्य साधनो के आधार पर न होकर योग्यता के आधार पर होगा।"

कामरेड विमला भी उक्त समय की आशा मे ही ये शब्द कहती है—

"वह दिन दूर नही है, जब यह सब पूँजी राष्ट्र की होगी और सभी राष्ट्र के कर्मचारी होगे, अपना हर प्रकार का प्रबन्ध राष्ट्र के कर्मचारी स्वय करेंगे। राष्ट्र की सम्पत्ति राष्ट्र के बाल-बच्चो मे बेची नही जायेगी, अधिकार स्वरूप केवल वितरित की जायेगी। राष्ट्र का प्रत्येक उद्योग-धन्धा पारस्परिक सहयोग से ही चलेगा और अकर्मण्य व्यक्ति को राष्ट्र का सदस्य बनने का अधिकार नही होगा। दूसरो के परिश्रम का फल खाने का अधिकार किसी को नही होगा।"

अब मजदूर-मालिको के अत्याचारो और अन्याय को और अधिक सहन नही कर सकेगा। वह अब जागृत हो चुका है। अब तो वह पूजीवाद को ही नष्ट करने पर तुला हुआ है। मजदूर को पूर्ण आशा है कि—

"एक दिन वह आने वाला है कामरेड! कि जब इन सेठो को मिलो का चौकीदार बनाकर चाबियाँ इनके हवाले कर दी जायेंगी और कह दिया जायगा कि 'लो तुम्हे इस धन सम्पत्ति मे चिपकने का प्रलोभन है तो तुम अब यही पर चिपके रहो।"

मजदूर को यह भी आशा है—"आगामी कुछ वर्षो मे सेठ लोग तो स्वय ही राष्ट्र की सम्पत्ति राष्ट्र के हाथो सौंपकर कही हरिद्वार या द्वारिकापुरी में हरि भजन करेंगे . . . अपनी आवश्यकताओ के लिए तरस-तरस कर इन मोटे पेट वालो के सामने गिडगिडाना अब हमारा काम नही।"

अन्त मे हम कह सकते है कि अब वह समय आ गया है कि समाज में आर्थिक विषमता नही रह सकती। या सभी को जीवन निर्वाह के लिए सभी आवश्यक साधन प्राप्त होगे, वर्ना आज का पीड़ित वर्ग स्वय ही उन साधनो पर अधिकार कर लेगा।

प्रश्न ८—'निर्माण-पथ' के अनुसार भारत में साम्यवाद की क्या सम्भावनायें हैं और उसके सम्बन्ध में विभिन्न वर्गो की क्या धारणायें हैं? उनपर प्रस्तुत उपन्यास में सामग्री के आधार पर प्रकाश डालिये।

उत्तर—शताब्दियो से पददलित तथा शोषण का शिकार हुआ भारत अब जागृत हो रहा है। उसने विदेशी शासन के जुये को तो उतार कर फेंक दिया है और अभाव-ग्रस्त निम्न-वर्ग (विशेषकर मजदूर वर्ग) भी मालिको द्वारा किये गये शोषण का अन्त कर देना चाहता है। वह अब नही चाहता कि उनके श्रम से हुये उत्पादन से मालिक तथा पूँजीपति लाभ उठायें और उन्हे (श्रमिको को) भर पेट भोजन भी न मिले। इसलिए श्रमिको के सगठन बन गए है। प्रत्येक मिल में मजदूरो की यूनियनें बनी हुई है। ये यूनियनें मजदूरों के हितो का ध्यान रखती है। 'अखिल भारतीय ट्रेड यूनियन' श्रमिक सगठन की एक सस्था भी है। इस सस्था का कार्य समस्त देश के मजदूरो के हित की रक्षा करना है। यह सस्था साम्यवादी दल से अधिक प्रभावित है जोकि सोवियत रूस से प्रेरणा प्राप्त करता है। उपन्यास के आरम्भ मे ही लेखक इस ओर सकेत करते हुए कहता है—

"उनके (चौहान साहब के) मत से कामरेड विमला के मुख से निकलने वाले शब्द आतिशबाजी के वे फूल है कि जिनमे कुछ चमक-दमक और आकर्षण तो था परन्तु स्थायित्व नही, सुगन्धि नही, ताजगी नही। यह वही रूस के उद्यानो मे किसी समय खिले हुए फूलो का सूखा चूरा था जिसे कम्यूनिस्ट जादूगर जनता के सम्मुख हथेली पर रखते हुए कहते है—तुम अपना मकान ढहा डालो, अपने शहर को आग लगा दो ..फिर देखना हम किस जादू के जोर से कोरे कन्तार को लहलहाती हुई खेती और वीरानो को सुन्दर और सुव्यवस्थित बस्तियो मे नई सामाजिक व्यवस्थाओ और रूप-रेखाओ के साथ परिणत कर देते है।"

वास्तव मे पूँजी और श्रम के प्रत्येक सघर्ष पर साम्यवाद का प्रभाव स्पष्ट दिखाई देता है। इसलिए भारतवर्ष मे साम्यवाद के आगमन की बहुत कुछ आशा है। साहित्य तो साम्यवाद से प्रभावित हो ही चुका है और समाज भी इससे प्रभावित होता जा रहा है। जब तक देश मे से आर्थिक विषमता को समाप्त नही किया जायगा, सबको जीवन निर्वाह के लिए सभी आवश्यक सामग्री प्राप्त नही होगी, तब तक साम्यवाद को नही रोका जा सकता है। आर्थिक विषमता के रहते हुए काल साहब जैसे व्यक्तियो का यह कहना व्यर्थ ही है—

"...... भारत मे कम्यूनिज्म नही फैल सकता। यहा के कम्यूनिज्म को हमारे डिक्टेशन पर चलना होगा, हमारे सकेतो पर चलना होगा।"

आज भारत मे पूँजीपति तथा अधिकारी वर्ग साम्यवाद के प्रभाव को बढते हुए देखकर चिन्तित हो उठा है। वह समझता है कि इसके प्रवाह को रोका नही जा सकता। प्रतिदिन मजदूरो का सगठन दृढ होता जा रहा है। आज मालिको को मजदूरो व नौकरो की फटकार, गालियाँ आदि आदि सभी कुछ चुप-चाप सहन करनी पडती है। वास्तव मे स्थिति तभी सुधर सकेगी और श्रम तथा पूँजी का सघर्ष उसी समय समाप्त हो सकेगा जबकि पूँजी-पतियो का वर्ग सेठ भानामल से कहे गये चौहान साहब के शब्दो पर विचार करेगा और फिर अपने आप को सभालकर सत्य और न्याय के मार्ग पर लाये गये और शोषण वृत्ति का त्याग करेगा।

"मैने लटका दिया ? लटकाया उसी ने है जिसने आपको उठाया था। आपकी अपनी आधार शिला नही है और जिन कधो पर हाथ रखकर आप उठे है वह कठपुतली के कधे है सेठ जी।! जिनमे चमत्कार भले ही हो बल नही है। चमत्कार को मै बल नही मानता।"

यह ठीक है कि भारतीय सस्कृति के दृष्टि कोण से आज के श्रमिक आन्दोलन मे आस्तिकता नही है, परन्तु उसकी एक विशेषता सबको अपनी ओर आकर्षित कर लेने वाली है। वह विशेषता है कर्म के प्रति अनुराग, ईमानदारी, सच्चाई तथा बेईमानी की कमाई से घृणा। यह ठीक है कि साम्यवाद पूँजीपतियो के प्रति घृणा उत्पन्न करता है, परन्तु साथ ही वह

पीड़ितों के प्रति सहानुभूति का पाठ भी तो पढ़ाता है। और पूँजिपतियों के प्रति जो घृणा उत्पन्न होना तो उनकी शोषण वृत्ति तथा अन्याय के कारण स्वाभाविक ही है। साम्यवाद केवल पूँजीपति से ही घृणा करना नहीं सिखाता बल्कि हराम की कमाई के प्रति भी घृणा करना सिखाता है। अशफाक चौहान के पैसों से अपनी माँ को औषधि नहीं दिलवाता है और न उनके दिये हुये माल को ही उनके सिर पर डालता है, क्योंकि वह समझता है कि चौहान साहब के पास जो धन है वह सेठ मानामल की हराम की कमाई का है। न तो चौहान साहब ने उस धन को कमाने में परिश्रम किया है और न सेठ मानामल ने। यही कारण है कि शासक वर्ग तथा नेताओं के न चाहते हुये भी साम्यवाद का प्रभाव भारत में दिन-प्रतिदिन बढ़ता जा रहा है।

लेखक ने अपने उपन्यास में तो ऐसा प्रदर्शित किया है कि साम्यवाद का प्रसार यहाँ पर बहुत ही शीघ्र हो जायगा, परन्तु ऐसी कोई आशा नहीं है। यहाँ पर साम्यवाद को बहुमत प्राप्त करने में अभी पर्याप्त समय लगेगा। साम्यवाद के प्रसार की सम्भावना इसलिए अधिक हो गई है कि जन-साधारण को ऊपर उठाने की नीति में काँग्रेस असफल हो चुकी है। सरकार यदि जन-साधारण की स्थिति को सुधारने के लिए ठोस कदम उठाती भी है तो भी उससे उच्च वर्ग को ही अधिक लाभ होता है। इसका कारण अधिकारियों की स्वार्थपरता तथा बेईमानी है। आज पीड़ित व्यक्ति तो पहले से भी अधिक अभाव ग्रस्त है। इसका परिणाम यह हुआ है कि अब जनता का इन नेताओं पर से विश्वास हट गया है और उनमें असंतोष की वृद्धि हो रही है। यदि ये नेता वास्तव में निःस्वार्थ भाव से जनता की सेवा करें और सरकारी अधिकारी ईमानदारी से कार्य करें तो इसमें सन्देह नहीं कि साम्यवाद के प्रसार की सम्भावना कम हो जायगी क्योंकि उनको ऐसा करने से जन-साधारण की आर्थिक स्थिति में पर्याप्त सुधार हो जायेगा।

भारतवर्ष में रूसी साम्यवाद की सम्भावनाएँ तो कम हैं, यद्यपि लेखक ने विमला और अशफाक के विचारों से तो रूसी साम्यवादी प्रभाव की ओर संकेत किया है। परन्तु यह बात अवश्य है कि समाज से से वर्ग वैषम्य तथा अर्थ-वैषम्य की समाप्ति तो अवश्य ही करनी होगी। श्रमिक वर्ग अब इसको

सहन नही कर सकेगा। न जाने भविष्य में कब क्रान्ति की अग्नि धधक उठे। यह अभी कुछ नही कहा जा सकता कि उसका रूप क्या होगा। छोटी बहूरानी के शब्द इसकी ओर सकेत करते है—"देखिए! आप मेरे लिए चाहे जो भी कहे, परन्तु कम्यूनिज्म आ रहा है और आकर रहेगा। भारत मे उस कम्यूनिज्म का क्या रूप होगा, कहा नही जा सकता।"

अन्त मे हम कह सकते है कि निर्माण पथ मे लेखक ने जो साम्यवाद के प्रसार की सभावना प्रकट की है वह सत्य ही है। साम्यवाद की बाढ एक दिन अवश्य भारत मे आयेगी, उसे कोई रोक नही सकता। ऐसी स्थिति से जब पूँजीपतियो को शक्ति के सामने झुककर अपना प्रभुत्व छोडना पडेगा, तो वह उनको बहुत हानिकारक तथा कष्टदायक होगा। इसलिए उन्हे अभी से समझ से काम लेना चाहिए और अपनी शोषण वृत्ति का त्याग करके धन का ठीक वितरण करना चाहिए।

प्रश्न ६—अन्तर्गत सामग्री के आधार पर बताओ कि 'निर्माण पथ' किस श्रेणी का उपन्यास है?

उत्तर—उपन्यासो को अन्तर्गत सामग्री के आधार पर निम्नलिखित भागो मे विभाजित किया जाता है—

१ घटना प्रधान २ चरित्र प्रधान . ३ विचार प्रधान ४ समस्या प्रधान।

घटना प्रधान—इस कोटि के उपन्यासो मे कथावस्तु की प्रधानता होती है। वस्तु मे कौतूहल होता है और पाठक निरतर यही सोचता पढता चला जाता है कि "अब आगे क्या होगा? अब आगे क्या होगा!" इस प्रकार के उपन्यासो में पात्रो का चरित्र भी घटना चक्र में ही उलझा रहता है। वे घटनाओ को प्रभावित न करके स्वय उनके दास बन जाते है। इस प्रकार के उपन्यासो मे घटना मे से ही घटना का विकास आदि से अन्त तक होता चला जाता है। लेखक को ऐसी रचना मे न तो कोई समस्या ही सुलझानी होती है और न उसे किसी पात्र के चरित्र का विश्लेषण करने की आवश्यकता ही होती है। 'निर्माण पथ' भी कथानक नदी के प्रवाह की भाँति निरतर अबाध गति से प्रवाहित होता चला जाता है, परन्तु फिर भी बीच-बीच मे होने वाले

विदाद उनके प्रवाह को भवर मे फँसा लेते है। इसी कारण निर्माण पथ की गणना इस श्रेणी के उपन्यासो मे नही की जा सकती है।

चरित्र प्रधान—इस श्रेणी के उपन्यासो मे घटना चक्र का बन्धन नहीं होता है। घटना चक्र मे परिवर्तन पात्रो की इच्छा से होता है। इस प्रकार के उपन्यासों में लेखक का दृष्टिकोण पात्रो के चरित्र की विविध भावभूमियो के आधार पर विश्लेषण मे निहित स्पष्ट दृष्टिगोचर होता है। इस प्रकार की स्थिति मे लेखक को इस बात की चिन्ता नहीं होती है कि घटना चक्र किस ओर मुड रहा है। श्री यज्ञदत्त के उपन्यास 'निर्माण पथ' मे विविध मनो-वृत्तियो वाले पात्र है। लेखक ने भी यत्र-तत्र उनका विश्लेषण किया है। परन्तु फिर भी हम इसे चरित्र प्रधान उपन्यासो की श्रेणी मे नही रख सकते, क्योकि उपन्यास मे आदि से अन्त तक केवल एक ही प्रश्न को सुलझाने का मजदूर नेता तथा मिल मालिक सभी प्रयत्न करते है। श्रम और पूँजी का सघर्ष उपन्यास की आत्मा है। प्रस्तुत उपन्यास मे अन्य चरित्र प्रधान उप-न्यासो की भाँति पात्रो से चरित्रो का विकास, ह्रास, उत्थान-पतन और दृढता दुर्बलता का विश्लेषण नही है।

विचार प्रधान—जो उपन्यास किसी विशेष विचार धारा या सिद्धान्त के प्रचार और विसार के लिये लिखे जाते है उनकी गिनती इसी कर्म मे होती है। आजकल हिन्दी मे समाजवाद या मार्क्सवाद के सिद्धान्तो का प्रचार करने के लिये उपन्यासो की रचना हो रही है। प्रस्तुत उपन्यास मे लेखक साम्यवादी विचार धारा को लेकर चला है। परन्तु फिर भी हम इसको विचार धारा उपन्यासो की श्रेणी मे नही रख सकते, क्योकि इसमे कामरेट विमला, कामरेड अशफाक तथा अन्य पात्रो पर जो साम्यवाद का प्रभाव है वह मजदूरो और मिल मालिको के सघर्ष की समस्या को सुलझाने के लिये है।

समस्या प्रधान—समस्या प्रधान उपन्यासो मे लेखक किसी विशेष समस्या को लेकर चलता है और उसे सुलझाने का वह प्रयत्न करता है। प्रस्तुत उप-न्यास इसी श्रेणी का उपन्यास है। इसमें आदि से अन्त तक श्रमिको तथा मिल मालिको के सघर्ष की समस्या है। लेखक ने इस सघर्ष से होने वाली हानि का चित्रण करते हुए इस समस्या का समाधान भी किया है। लेखक ने

स्पष्ट कर दिया है कि यह संघर्ष तभी सुलझ सकता है जबकि मजदूरो को उत्पादन के लाभ में से अधिक से अधिक भाग दिया जाय और वास्तव में इन उद्योग-धन्धो के सच्चे मालिक श्रमिक ही हो।

प्रस्तुत उपन्यास को आदर्शवादी भी नही कहा जा सकता। इस उपन्यास में लेखक का दृष्टिकोण यथार्थवादी ही रहा है। परन्तु हम यह भी नही कह सकते कि इसमे आदर्शवादी सामग्री का सर्वथा अभाव है। लेखक पात्रो के चरित्र को जब पृथक वर्गों मे छाँटता है तो कामरेड विमला और अशफाक को एक ओर, रामनाथ कॉल तथा सेठ भालामल दूसरी ओर रखने योग्य हैं। चौहान साहब इनके बीच झूलते है। चौहान साहब के चरित्र आदर्श की सामग्री भी है, परन्तु साथ ही प्रतिद्वन्द्वी वर्ग के दोष भी आ गये हैं। इन्ही दोषो के कारण उन्हे किसी भी एक श्रेणी मे नही रखा जा सकता। बैनर्जी तथा उसके साथी पात्रो का व्यक्तित्व स्वतन्त्र नही है। वे तो युग-युग के अभावो से प्रताड़ित होकर कुचली गई आत्मा वाले ऐसे व्यक्ति है जिनके कोई आदर्श नही, कोई सिद्धान्त नही। ये उन लोगो मे से है जो चन्द चाँदी के टुकडो के प्रलोभन मे फँसकर अपने जीवन को विवश होकर पूँजीपतियो के हाथ बेच देते हैं। ऐसे लोगो के द्वारा ही ये पूँजीपति मजदूरो पर अत्याचार करवाते है और उनके आलोचको तथा हडतालो को असफल करने का पूर्ण-प्रयास करते है। ये पात्र भी मालिको के इशारो पर नाचने वाली कठपुतली बनकर रह जाते है। इन पात्रो से ही पता चलता है कि मिल मालिक अपनी स्वार्थ सिद्धि के लिये कितने हथकडो से काम लेते है। इसलिए लेखक ने इन पात्रो को अपने इस उपन्यास मे उपस्थित किया है। यह ठीक है कि इस प्रकार के पात्रो को किसी भी श्रेणी में नही रखा जा सकता, परन्तु फिर भी इनके सहारे लेखक यथार्थ की रक्षा करने मे सफल हुआ है। प्रस्तुत उपन्यास मे कामरेड विमला तथा अशफाक के चरित्र को भी लेखक ने आदर्श रूप में उपस्थित किया है, परन्तु उनका चरित्र ही उपन्यास मे सब कुछ नही है। इसलिए इस उपन्यास को आदर्शवादी नही कहा जा सकता।

उपर्युक्त विवेचन के पश्चात् हम कह सकते है कि 'निर्माण-पथ' एक समस्या प्रधान उपन्यास है।

प्रश्न १०—निम्नलिखित पात्रो का चरित्र-चित्रण कीजिए :—

कामरेड विमला, मि० रामनाथ कॉल, कामरेड अशफाक, सेठ भानामल, चौहान साहब, कामरेड बेनर्जी, कान्ता, बहू रानियाँ।

उत्तर—

कामरेड विमला

कामरेड विमला प्रस्तुत उपन्यास में मजदूरो की नेत्री है। वह 'सेठ क्लाथ मिल्स' मे डाइग मास्टर है। वह कहाँ की रहने वाली है और किस परिवार से सम्बन्धित है, यह सब कुछ इस उपन्यास मे नही दिया गया है। यह अवश्य है कि वह एक उच्चकोटि की कारीगर, कुशल नेत्री, नि स्वार्थ तथा सच्ची समाज सेविका, स्वाभिमाननी, नीति निपुण, अपने सिद्धान्तो पर अटल तथा मनुष्यो की पारखी है। उसके चरित्र पर इन शब्दो से पर्याप्त प्रकाश पडता है—

"गोरा-गोरा छरहरा, भावावेश मे काँपता हुआ शरीर, मादक एव कटीली आँखे, व्यग्यपूर्ण वार्तालाप, सकल्पो मे दृढता, सिद्धान्तो पर अटल निष्ठा, तर्क कुशलता, आडम्बर हीन जीवन और व्यक्ति को पहचानने की अद्‌भुत सामर्थ्य वाली तीक्ष्ण बुद्धि है।"

मुख्य पात्र—कामरेड विमला को 'निर्माण पथ' उपन्यास का मुख्य पात्र कहा जा सकता है। उसमे मुख्य पात्र के सभी आवश्यक गुण है। वह उपन्यास की कथानक के साथ आरम्भ से लेकर अन्त तक चलती है और अन्त मे वह अपने उद्देश्य मे सफलता प्राप्त करती है अर्थात् उपन्यास मे फल प्राप्ति उसी को होती है।

उच्चकोटि की कारीगर—कामरेड विमला एक उच्चकोटि की डाइग मास्टर है। वह सेठ भानामल के 'सेठ क्लोथ मिल्स' मे दो हजार रुपया मासिक वेतन पर कार्य करती है। सेठ जी को उसकी कारीगरी पर बहुत गर्व है। वास्तव मे उस जैसा उच्चकोटि का डाइग मास्टर समस्त भारत मे दूसरा नहीं है, इसीलिये मिल मालिको पर उसकी धाक है। मिल मैनेजर मि० रामनाथ कॉल भी उसकी योग्यता को भली-भाँति समझते है।

कला प्रेमी—कला के प्रति उसकी रुचि है। वह कवि सम्मेलनो मे जाती

है और कविताओ का रसास्वादन करती है। कला तथा कलाकार के विषय में वह कहती है—"कलाकार का कर्त्तव्य अपनी अनुभूति द्वारा जीवन की गहराइयो को मापना है। कोरी कल्पना की उडानें भर-भर कर वह अपने उद्देश्य की पूर्ति नही कर सकता।" निरुद्देश्य कल्प को वह कला नही मानती है।

नीति-निपुण तथा तर्कपटु—वह केवल मजदूरिन ही नही है, अपितु नीति मे भी निपुण है। उसके तर्कपटुता के सामने मि० कॉल जैसे चालाक व्यक्ति की भी पार नही पाती है। वह जैसे को तैसा उत्तर देना भली भाँति जानती है। कॉल साहब की कूटनीति इसके सामने असफल हो जाती है। जब कॉल साहब हडताल तुडवाने के लिए मजदूरो को रुपये बाँटते है तो वह ७०० कर्मचारियो को रुपये लेने के लिए भेज देती है और वे सौ-सौ रुपया ले आते है। इस प्रकार अपनी नीति से कॉल साहब तथा सेठ भानामल से लाखो रुपया भी मजदूरो को दिलवा देती है। हम देखते है कि कॉल साहब के यह कहने पर कि वह साँप के साथ खेल रही है, विमला उत्तर देती है—"वह यह जानती है कॉल साहब ! परन्तु वह भी सँपेरे की लडकी है, उसने बचपन से ही साँप खिलाने का अभ्यास किया है। उसका जहर मोहरा नही देखा आपने ? वह जीता जागता अशफाक का बच्चा जहर मोहरा ही तो है।"

निःस्वार्थ समाज सेविका—आजकल प्राय ऐसा देखा जाता है कि जिसका भी नेता बनने का सौभाग्य प्राप्त होता है वही अपने इस यश और सम्मान का अनुचित लाभ उठाता है। इस प्रकार के नेताओ का तो अभाव नही है, परन्तु सच्चे और नि स्वार्थ नेताओ का अवश्य ही अभाव है। कामरेड विमला सच्ची नेत्री है। उसका अपना कुछ भी स्वार्थ नही है। वह तो सच्चे हृदय से मजदूरो की दशा को सुधारना तथा उनको उचित लाभाश दिलाना चाहती है। वह मजदूरो की सच्ची हितैषिणी है। वह अपना सब कुछ उनके लिए ही अर्पित कर देती है। अपनी आय का अधिकाश भाग वह मजदूरो की भलाई में ही खर्च करती है। वह चौहान साहब की भाँति पूँजीपतियो से अपनी स्वार्थ सिद्धि के लिए कोई समझौता नही करती है। वह तो कॉल साहब द्वारा दिये गये सोफा सेट के उपहार को लेना अस्वीकार कर देती है, क्योकि वह किसी भी प्रकार से पूँजीपतियो तथा मालिको के अहसान से दबना नही चाहती।

योग्य नेत्री—कामरेड विमला मजदूरों की एक योग्य नेत्री है उसमें संगठन की अद्भुत क्षमता है। वह हड़ताल का संचालन बहुत ही कुशलता से करती है। हड़ताल में कोई भी दुर्घटना नहीं होने देती है। वह मजदूरों को भी केवल उनके स्वार्थ का ही पाठ नहीं पढ़ाती है। वह उनके हृदय में राष्ट्र प्रेम की भावना भरकर उनसे ही अन्त में मिल की रक्षा कराती है। वह मि० माल के षड्यन्त्र को ही विफल नहीं करती, अपितु राष्ट्र की सम्पत्ति तथा मजदूरों के सम्मान की भी रक्षा करती है और यही विशेषत एक सच्ची नेता में होनी चाहिए।

स्वाभिमानिनी—उसे अपने मजदूर होने का गर्व है। वह सेठ भानामल से कहती है—"यदि आप की देश भक्ति का यही मापदंड है तो आप अंग्रेज को ही नहीं, जिसे चाहे उसे बुला सकते हैं। विमला आपके सम्मुख इस नौकरी के लिए गिड़-गिड़ाने वाली नहीं है।"

कर्त्तव्यपरायण—सेठ जी से कहे गये उसके इन शब्दों से उसकी कर्त्तव्य परायणता का पता चलता है—"मैं कर्त्तव्य की सचाई पर विश्वास रखने वाली एक वह मजदूरिन हूँ सेठ जी! कि जिसके जीवन की महत्त्वाकांक्षाएँ ही कर्त्तव्य की सफलता है। मुझे झुकाने में आपके स्वार्थी मदारी मैनेजर साहब सफल नहीं हो सकेंगे।" वह मिल को भस्म होने से बचाकर भी अपने कर्त्तव्य का पालन करती है। वास्तव में वह कर्त्तव्य के प्रति जागरूक है और अपने कर्त्तव्य का पालन करने में वह कभी भी नहीं चूकती है।

मनुष्य को परखने वाली जौहरी—वह मनुष्य को परखने वाली एक जौहरी है। वह चौहान साहब तथा मि० माल दोनों के गुण तथा दोषों को भली भाँति पहचानती है। यही कारण है कि वह उनके प्रभाव में नहीं आती है। वह दूसरे मनुष्यों के मुख को देखकर उनके हृदय के भावों को समझ लेती है।

निर्भीक तथा साहसी—कामरेड विमला निर्भीक तथा साहसी है। वह मालिकों द्वारा उपस्थित की गई अनेक बाधाओं को देखकर घबराती नहीं है। वह प्रत्येक आने वाली कठिनाई का साहस से सामना करती है। अन्त में वह साहसपूर्वक माल की गोली से अमरनाथ की रक्षा करती है।

आशावादी—विमला आशावादी है। उसे पूर्ण आशा है कि मजदूरो की अन्त मे विजय होगी और अन्त मे होता भी यही है। उसे पूर्ण विश्वास है कि एक दिन सभी उद्योगो पर राष्ट्र के मजदूरो का अधिकार होगा।

सौंदर्य शालिनी—उपर्युक्त सभी गुणो के साथ-साथ वह एक सुन्दरी भी है उसका सौंदर्य उसके प्रतिद्वन्द्वी वर्ग के हृदय मे भी आकर्षण उत्पन्न कर देता है। सेठ भानामल उसके रूप से प्रभावित है, परन्तु वे अपना प्रेम अन्त तक प्रदर्शित नही कर पाते है। वे मैनेजर को हड़ताल असफल करने की आज्ञा देते है, परन्तु साथ ही यह भी आदेश देते है कि विमला को किसी प्रकार की हानि न पहुंचने पाये।

मि० रामनाथ कॉल

मि० रामनाथ कॉल सेठ भानामल के 'सेठ क्लोथ मिल्स' के मैनेजर है। उनका रग सांवला, कद नाटा शरीर भारी, चाँद गजी, होठ मोटे तथा सामने के दो दाँत टूटे हुए है। वास्तव मे मि० कॉल उपन्यास के खलनायक है। मि० कॉल ही भानामल को खोमचा लगाने वाले भानामल से सेठ भानामल बनाते है। जब सेठ भानामल खोमचा लगाते थे तभी एक दिन कॉल साहब की उनसे मित्रता हो गई थी। उस समय भानामल ने व्यापार में दो हजार रुपया लगाने का वायदा किया था और मि० कॉल ने उसे जगत् सेठ बनाने का वचन दिया था। वे उसी समय से पूर्ण रूप से सेठ साहब के हितैषी तथा शुभचिन्तक रहे है। वह कूटनीतिज्ञ, स्वार्थी और शोषक है। उनका गृहस्थ जीवन बहुत दु:खी है। द्वेष तथा प्रतिहिंसा की भावना से उनका हृदय ओत-प्रोत है। षड्यन्त्र रचने मे वे बहुत सफल हैं।

योग्य मैनेजर तथा कुशल व्यापारी—मि० कॉल सेठ भानामल के एक बहुत ही योग्य तथा बुद्धिमान मैनेजर है। उन्ही की योग्यता से भानामल के पास आज यह अतुल धनराशि है। वे व्यापार करने मे बहुत कुशल है। यही कारण है कि सेठ भानामल पर उनका बहुत प्रभाव है।

शोषक मनोवृत्ति—वह शोषक वृत्ति का है। यदि वह चाहता तो सेठ भानामल को समझा कर मजदूरो की मांगें पूरी करा देता और हड़ताल की नौबत ही नही आने देता। परन्तु वह अपनी मनोवृत्ति से विवश है। अब

हड़ताल की स्थिति भयंकर हो जाती है और मजदूरों का संगठन दृढ़ हो जाता है, तो सेठ साहब तो मजदूरों के सामने झुकने को तैयार हो जाते हैं, परन्तु मि० कॉल इसे अपने मान और अपमान का प्रश्न बना देता है और उस संघर्ष का अन्त नहीं होने देता है। उसकी दृष्टि में तो मजदूर धनवानों की दासता में रहने के लिए ही उत्पन्न हुए हैं। वह तो चाहता है कि उनसे कठिन परिश्रम कराया जाय और उसके बदले में उनको बहुत कम वेतन दिया जाय। वह मजदूरों के साथ किसी प्रकार की दया करने को तैयार नहीं है। हड़ताल को विफल करने के लिए वह लाखों रुपया व्यर्थ ही नष्ट कर देता है। वह तो मिल को आग लगाकर भस्म कर देना अच्छा समझता है, परन्तु मजदूरों के सामने झुकना उसे स्वीकार नहीं।

कूटनीतिज्ञ तथा स्वार्थी—मि० कॉल पक्का कूटनीतिज्ञ है। वह अपने स्वार्थ को सिद्ध करने के लिए ओछे-ओछे कार्य करता है वह जब यह देखता है कि चौहान साहब के साथ सेठ मानामल की घनिष्ठता है तो वह चौहान साहब पर आरोप लगाता है कि वे तो विमला पर डोरे डाल रहे हैं। इतना ही नहीं मजदूरों को भड़काने के लिए वह पोस्टरों द्वारा यह प्रचार करवाता है कि विमला अब मजदूरों का नेतृत्व नहीं कर सकती, वह तो चौहान साहब के प्रेम पाश में बँध चुकी है। बैनर्जी (एक मजदूर) को शराब पिलाता है और मजदूरों को अपने पक्ष में करने के लिए उन्हें रुपया बाँटता है। इतना ही नहीं जब उसकी सभी चालें असफल हो जाती हैं तो वह बैनर्जी को रिश्वत देकर मिल को ही भस्म कराने का षड्यन्त्र रचता है। वह बड़े-बड़े सरकारी अधिकारियों पर अपना प्रभाव रखता है। वह मजदूरों के सामने यह झूठ बोलने में भी नहीं हिचकता कि मिल को घाटा हो रहा है। वह सेठ साहब को परामर्श देता है कि विमला को नौकरी से पृथक् करके एक अंग्रेज डाइंग मास्टर बुला लिया जाय। इस प्रकार वह हर प्रकार की चाल चलता है। परन्तु उसकी इन सब चालों में अपना स्वार्थ छिपा है। वह चोर बाजारी तथा तस्कर व्यापार में सेठ की पूरी सहायता करता है और अपना कमीशन लेता है। उसकी स्वार्थपरता उस समय पराकाष्ठा को पहुँच जाती है जब वह चौहान के सहयोग में अपना पृथक मिल चालू करने के लोभ में

कान्ता का विवाह चौहान साहब से करा देता है। वास्तव मे कान्ता चौहान साहब की ओर इसलिए आकर्षित होती है कि मि० कॉल उसके सामने चौहान की बहुत प्रशंसा करता है।

आडम्बरपूर्ण जीवन—मि० कॉल का जीवन आडम्बरो से पूर्ण है। असत्यवादिता तथा मक्कारी तो उसके जीवन मे पग-पग पर देखने को मिलती है। वह समय के अनुसार कभी कांग्रेसी वेश धारण करता है तो कभी साहबी ठाट-बाट मे दिखाई देता है। वह विमला के सामने अपने को भी मजदूर ही बताता है।

ईर्ष्यालु तथा द्वेष से ओत प्रोत—ईर्ष्या और द्वेष तो उसकी रग-रग में समाया है। अशफाक और चौहान को तो वह अपना शत्रु समझता है। अशफाक को तो वह गुण्डो तक से पिटवाने का निष्फल प्रयत्न करता है। साथ ही अशफाक का वह भय भी बहुत मानता है। अशफाक उसे गर्दन से पकड कर उठा लेता है और जमीन पर पटक देता है। उसमे इतना साहस भी नही कि वह अशफाक की गालियो का उत्तर दे। चौहान साहब से तो उसे बहुत ही ईर्ष्या है। सेठ भानामल पर चौहान साहब का प्रभाव तो उसकी ईर्ष्या को बहुत ही अधिक कर देता है। सेठ भानामल को चौहान साहब के विरुद्ध भडकाने का प्रयत्न करता है। परन्तु यह सब कुछ होने पर भी चौहान साहब के द्वारा ही उनका उल्लू बनाता है। चौहान साहब कॉल की सहायता से कान्ता से विवाह तो कर लेते है, परन्तु उसके एग्रीमेंट पर हस्ताक्षर करना अस्वीकार कर देते है।

दुखी जीवन—मि० कॉल के पास धन का अभाव नही है उनके पास कार भी है, कोठी भी है और काम करने के लिए नौकर भी है, परन्तु फिर भी उसका जीवन दुखी है। इसका कारण एक तो उसकी दो पत्नियो का होना है। इस पर भी कोई सतान न होना। उसकी पत्नियाँ नये फैशन की है। वे कॉल साहब के दुख सुख की चिन्ता न करके अपने घूमने-फिरने मे [illegible] रहती है। जब अशफाक द्वारा उनकी गर्दन पकडे जाने पर उन्हे तकलीफ होती है तो वह अपना गला भी नौकर से ही सिकवाता है उसकी बहूरानियाँ उसके प्रतिद्वन्दी मि० चौहान के यहाँ चाय पीने जाती है। इसी दुख को

वह उस समय प्रकट करता है जब उसे विमला के द्वारा थोड़ा सा सम्मान प्राप्त होता है। वह उस समय कहता है—

"क्या उन बहूरानियों को उनका इतना आदर भी न करना चाहिए जितना इस समय उनका कामरेड विमला ने किया है। उस विमला ने किया जो पति को भगवान् मानना तो दूर रहा, भगवान् में भी आस्था नहीं रखती।"

हास्य का पात्र—मि० कॉन्ति वास्तव में एक हास्य का पात्र है। वह सभी के व्यंग्यों को सहन करता है। कभी-कभी तो उनकी दशा को देखकर हँसी आती है। कान्ता और चौहान के व्यंग्य तो उसके लिए असह्य हो उठते हैं। कान्ता कहती है :—

"कामरेड विमला के सामने तो जीजा जी की दशा चूहे और बिल्ली जैसी हो जाती है और यदि इसी बीच में कहीं से कामरेड अशफाक आ टपके तब तो इन्हें सामने बुलडाग खड़ा दिखाई देता है।"

कामरेड अशफाक

कामरेड अशफाक मिल में मजदूर है। वह एक निःस्वार्थी मजदूरों का नेता है। वह निर्भीक, साहसी तथा शक्तिशाली है। वह मानवता का सच्चा पुजारी है। उसका जीवन बहुत करुण है। स्वतन्त्रता प्राप्ति से पहले उसने स्वतन्त्रता संग्राम में जेलयात्रा की थी और चौहान साहब के साथ दिल्ली में धूम मचा दी थी। समय के परिवर्तन के साथ अधिकांश कांग्रेसी नेताओं तथा जन सेवकों में महान् परिवर्तन हो गया है, परन्तु अशफाक उन जन सेवकों में से है जो अभी भी किसी प्रकार के प्रलोभन में नहीं फँसे हैं। अशफाक मजदूरों की नेत्री कामरेड विमला का मित्र है।

सच्चा मजदूर तथा कर्त्तव्य-परायण—कामरेड अशफाक सच्चा मजदूर तथा कर्त्तव्य-परायण है। वह मजदूरों की शक्ति को भली-भाँति समझता है और उसे दृढ़ विश्वास है कि मजदूरों का संगठन पूँजीपतियों को हिला सकता है। चौहान साहब के परिवर्तित जीवन को देखकर वह चकित रह जाता है। कामरेड विमला पर उसे विश्वास है। उसे वह सच्ची नेत्री समझता है और उसके प्रत्येक वाक्य को वह कुरान की आयत समझता है। विमला की रक्षा के लिए वह अपने प्राण भी संकट में डालने से नहीं हिचकता है।

नि.स्वार्थी—अशफाक एक नि स्वार्थी मजदूर है। वह जो कुछ भी मजदूरो की सेवा करता है और मालिको से टक्कर लेता है, उसमे उसका कुछ भी स्वार्थ नही है, परन्तु वह इसे अपना कर्त्तव्य समझता है। मजदूरो की हड़ताल को सफल कराने के लिए वह पूर्ण प्रयत्न करता है। यहाँ तक कि मि० कॉल के सभी अच्छे बुरे कार्यो, उसके षड्यन्त्रो तथा योजनाओ का पूरा पता रखता है और विमला को सब बातो की सूचना ठीक समय पर पहुँचा देता है। वह ये सभी कार्य नि स्वार्थ भाव के करता है।

जहर मोहरा—कामरेड अशफाक जहर की वह दीवार है जो टूटना नहीं जानती और न जिसे कोई मोड ही सकता है। वह अपने सिद्धान्त तथा मार्ग से विचलित नहीं हो सकता। वह अपने आदर्शों से डिगना नही जानता। सच्चाई के लिए तो वह मृत्यु से भी नही डरता है। उसके सबल शरीर को देखकर कॉलसाहब के पिट्ठू तथा शहर के गुण्डे भी उससे भयभीत हो जाते है और किसी का उस पर हाथ छोडने का साहस नही होता है। वह कॉल-साहब के द्वारा किये गये अपमान को सहन नही कर पाता है और उन्हे गर्दन से पकडकर उठा लेता है और भूमि पर पटक देता है। विमला के शब्दो में वह पूँजीपतियो के लिए जहर मोहरा है। वह कॉल साहब से कहती है—

"वह यह जानती है कॉल साहब ! परन्तु वह भी सपेरे की लडकी है, उसने बचपन से ही साँप खिलाने का अभ्यास किया है। उसका जहर मोहरा नही देखा आपने ? वह जीता जागता अशफाक का बच्चा जहर मोहरा ही के है।"

मानवता का पुतला—कामरेड अशफाक मे साम्प्रदायिकता की भावना तो लेश मात्र भी नही है। वह तो मानवता का पुजारी है। मानव के द्वारा मानव का शोषण उसे सहन नही। यही कारण है कि मिल-मालिको के विरुद्ध वह मजदूरो का साथ ही नही देता है बल्कि कामरेड विमला के कधे से कधा भिडाकर कार्य करता है। वह प्रत्येक विपत्ति मे आगे-आगे चलता हुआ दिखाई देता है।

दृढ, शक्ति-शाली तथा साहसी—कामरेड अशफाक एक बलिष्ठ व्यक्ति है। उसका दृढ तथा शक्तिशाली शरीर देखकर सभी उससे भय खाते है। वह

इस्पात की भाँति मजबूत है। उसके द्वारा पकड़े जाने पर ही मि० कॉल की गर्दन दर्द करने लगती और उन्हें अपनी गर्दन को सिकवाना पड़ता है। उपन्यास के अन्त में जब वह मिल की रक्षा करता है, उस समय बैनर्जी तथा उसके साथियों को उस पर आक्रमण करने का साहस नहीं होता है। कान्ता उसके विषय में कहती है—"जैसा वह बाहर से दिखाई देता है, वैसा ही वह अन्दर से भी है, भय वह भगवान् से भी नहीं मानता और सच्चाई के लिये मृत्यु से भी दो हाथ कर सकने की अपने में क्षमता रखता है।"

दुःखी जीवन—उक्त गुण होते हुए भी अशफाक का जीवन बहुत ही करुण व दुःखी है। उनका गृह-अग्नि मे जल जाता है। उसी में उसकी पत्नी तथा बच्चे भी जल जाते हैं। केवल अशफाक और वृद्धा माँ जीवित बचते हैं, परन्तु उनकी दशा भी चिन्ता-जनक होने के कारण उन्हें अस्पताल में भेज दिया जाता है। वहाँ पर उन दोनों के प्राणों की रक्षा होती है। विभाजन के समय वह पाकिस्तान नहीं जाता। वह किस प्रकार अपनी मातृभूमि को छोड़कर और पाकिस्तान में जाकर वहाँ पर भगोड़ा कहलाना स्वीकार करें।

स्वाभिमानी—अशफाक के चरित्र मे स्वाभिमान भी है। वह चाहता है कि सब समान है। मजदूरों व मालिकों में किसी प्रकार की विषमता नहीं होनी चाहिये। उसे यह सहन नहीं कि कोई उसका अपमान करे। 'बदतमीज' कहने पर वह मि० कॉल को उठाकर दे मारता है। स्वाभिमान की झलक उस समय भी दिखाई देती है जबकि वह अपनी रोगिणी माता की औषधि लाने के लिए चौहान साहब से रुपये लेना अस्वीकार कर देता है। वह उनका दिया हुआ शाल भी माँ के शव पर नहीं डालता है।

इस प्रकार हम देखते हैं कि अशफाक का चरित्र एक आदर्श जन-सेवक तथा सच्चे मजदूर का चरित्र है।

सेठ भानामल

सेठ भानामल का चरित्र उद्योगपति का प्रतिनिधित्व करता है। वह उन लोगों में से है जोकि करोड़ों रुपये के स्वामी होते हुए भी एक-एक पैसा बड़ी कठिनता से निकालते हैं। परन्तु व्यापार के लाभ के लालच से तो लाखों रुपया व्यय कर सकते हैं। मजदूरों की हड़ताल तुड़वाने में लाखों रुपया

व्यय कर देते है। परन्तु शुभ कार्य या किसी मजदूर की सहायता के लिए उनके पास एक फूटी कौडी भी नही है। उनकी आकृति कुरूप, शरीर भारी तथा कद नाटा है। व्यापार करने मे वे बहुत कुशल है। मनुष्य के गुणो की परख करने मे भी वे बहुत निपुण है। बहाने बनाना, धोखा देना, झूठ बोलना तथा कृत्रिम अभिनय करना तो मानो उन्हे उत्तराधिकार मे प्राप्त हुआ है। रसिकता भी उनके चरित्र मे दिखाई देती है।

सफल व्यवसायी—सेठ भानामल के कुशल व्यापारी होने का एक प्रमाण यह है कि वह खोमचे बेचने वाले भानामल से सेठ भानामल बन जाता है। अब तो वह करोडो का स्वामी है। उसका कपडे का मिल एक बहुत बड़ा मिल है। अपनी निपुणता का उल्लेख करते हुए वह स्वय गर्व के साथ कहता है—"जिस पसारी की दुकान पर मै सात रुपये मासिक पर नियुक्त हुआ था, आज उसी दुकान पर उसी पसारी का बेटा मेरा मुनीम बनकर काम कर रहा है।" भानामल की इस निपुणता मे चोर बाजारी, शोषण रिश्वत देकर काम निकालना, तस्कर व्यापार आदि सभी हथकण्डे सम्मिलित है। व्यापार मे सफलता प्राप्त करने के लिये इन हथकण्डो को वह अनुचित नही समझता है।

लक्ष्मी का भक्त—सेठ भानामल को धन से बहुत प्रेम है। वह उचित और अनुचित सभी उपायो से धनोपार्जन के लिए तैयार है। वह सदा उसी मार्ग को अपनाता है, जिस पर चलने से उसे धन की प्राप्ति हो। उसके जीवन का उद्देश्य और सिद्धान्त ही धन को दिन-रात बढाना है। जहाँ धन का लाभ होता हो, वहाँ अपने साथियो तथा सिद्धान्तो तक का त्याग करने को तैयार है। वह राष्ट्र के प्रति गद्दारी करने मे भी नही हिचकता है। सैनिको के लिए बिस्कुट का सरकारी आर्डर उसे चौहान साहब के द्वारा प्राप्त हो जाता है। परन्तु वह अरारोट के स्थान पर मैदा का प्रयोग कर उस आर्डर को पूरा कर देता है। पिलखुये के बने हुए खद्दर के कपडे पर अपने मिल की मोहर लगवा देता है। जब चौहान साहब उससे मिलावट की शिकायत करते है, तो उनसे वह उलटा अकड़कर कहता है—

"जी हाँ ! चौहान साहेब ! बनावट और मिलावट पर मै भी आपके

जैसे व्याख्यान देना जानता है। ……… व्यापारी चार पैसे के लाभ के लिए ही व्यापार करता है। चोरी हानि उठाने या झक मारने के लिए नहीं करता है। आज के व्यापार में रखा ही क्या है। एक कौड़ी की भी बचत नहीं है।"

शोषक तथा दूरदर्शी —मजदूरों का शोषण करने में वह बहुत ही निपुण है। जब सरकारी माल का आर्डर मिलता है तो मजदूर हड़ताल कर देते हैं। उस समय वह दूरदर्शिता से काम लेता है। चौहान साहब को बीच में डालकर वह फैसला कर लेता है और मजदूरों की माँगें पूरी कर देता है, परन्तु जिस समय सरकारी माल का आर्डर पूरा हो जाता है, उस समय वह फिर वृद्धि तथा भत्ते में कटौती कर देता है। परन्तु वह यहाँ भी दूरदर्शिता से काम लेता है। चौहान को अपने विरुद्ध होने से बचाने के लिए वह सारा दोष मि० लाल के सिर पर मढ़ देता है और स्वयं अपने को निर्दोष सिद्ध कर देता है। चौहान साहब उसकी बातों में आ जाते हैं। वास्तव में वह मजदूरों को मच्छर के समान समझता है। और उसका तो यह विश्वास है कि वे मजदूर मालिकों के दास बनकर रहने के लिए ही संसार में पैदा हुए हैं। सेठ मायानन्द की दूरदर्शिता का एक प्रमाण उस समय मिलता है जब वह स्थिति को अधिक बिगड़ता हुआ देखकर मजदूरों की माँगें स्वीकार करने के लिए तैयार हो जाता है परन्तु उसका मैनेजर लाल उसे सही मार्ग पर नहीं चलने देता और मजदूरों की हड़ताल को व्यक्तिगत मान-अपमान का प्रश्न बना लेता है।

मनुष्यों का जौहरी —सेठ मायानन्द मनुष्यों के गुण-दोषों को परखने में बड़ा तेज है। वह चौहान साहब की उपयोगिता प्रथम भेंट में ही समझ लेता है और उन्हें अपने साथ ले आता है। उनके द्वारा आर्थिक लाभ उठाने के लिए ही वह उन पर हजारों रुपये व्यय कर डालता है। अवसर को देखकर वह चन्दा भी दे देता है, परन्तु उसके प्रत्येक कार्य में कोई न कोई चाल तथा चक्कर अवश्य होता है। इन कांग्रेसी नेताओं के विषय में वह कहता है—इन लोगों की राजनीति मेरे पैसों पर चलती है।

रसिक —मायानन्द में उपर्युक्त सभी गुण व दोषों के साथ रसिकता के भी दर्शन होते हैं। वह कवि-सम्मेलनों में जाता है। उसकी पाँच पत्नियाँ मौजूद

है,परन्तु फिर भी कान्ता से विवाह करने का इच्छुक है। जब वह चौहान साहब की कोठी पर कवि सम्मेलन मे जाता है, तो विमला और कान्ता की तुलना करने लगता है। वह वहाँ पर विमला से कहता है—"क्या तुम इस योग्य नही हो कि अपने जीवन मे इसी प्रकार की रगीनियो को प्रवाहित कर सको।"

यह तो ठीक है कि भानामल के चरित्र से उद्योगपतियो की मनोवृत्तियो को सरलता से समझा जा सकता है परन्तु फिर भी भानामल के चरित्र का पूर्ण विकास लेखक नही कर पाया है। अनेक ऐसी बाते है जो कि लेखक ने सेठ साहब के चरित्र मे न दिखाकर काल साहब के चरित्र मे दिखा दी है।

चौहान साहब

प्रस्तुत उपन्यास मे चौहान साहब एक प्रमुख पात्र है। उनका व्यक्तित्व बहुत प्रभावशाली है। स्वतन्त्रता सग्राम के एक प्रसिद्ध सेनानी है। उन्होने विदेशी सत्ता से टक्कर लेने के लिए अपने तन, मन, धन सब का बलिदान दे दिया था। समस्त सम्पत्ति काँग्रेस को देकर वे काग्रेस के आन्दोलनो मे जुट गये थे। दृढ साहसी तथा निर्भीक है। उनके इन गुणो तथा त्याग के कारण ही स्वतन्त्रता प्राप्ति के पश्चात् उनका सरकारी क्षेत्र मे बहुत मान रहता है। ससद् सदस्य भी उनकी दिल खोलकर प्रशसा करते है। परन्तु ऐसा महान् तपस्वी भी सेठ भानामल के धन के प्रलोभन मे फँसकर अपनी प्रतिष्ठा को खो बैठता है। वह मजदूरो की दृष्टि मे गिर जाता है। उसके हृदय मे सत्य भावना दबी रहती है। वह उभरने का प्रयत्न करती है, परन्तु सेठ का कृत्रिम अभिनय उसे नही उभरने देता है। धन के प्रलोभन मे वे सरकार को भी धोखा दे देते है। धन प्राप्त करके वे विलासी जीवन व्यतीत करते है और अब वे सुन्दर स्त्रियो की ओर आकर्षित होने लगते है। अन्त में वे कान्ता से विवाह कर लेते है। परन्तु मि० काल जैसे व्यक्तियो से तो वे अन्त तक घृणा ही करते रहते है।

प्रभावशाली व्यक्तित्व—चौहान साहब के व्यक्तित्व पर निम्नलिखित शब्दों के द्वारा पर्याप्त प्रकाश पड़ता है :—

"गम्भीर मुख मुद्रा, उन्नत विशाल मस्तक, घुँघराले बाल, गौर वर्ण, लम्बी भुजाएँ, दरमियाना कद, चौडा सीना।"

"साम्राज्यवादी जमीदार का बल्लम उनके पुटपुड़े में घुस जाता था, परन्तु

वह स्वच्छन्द प्रकृति वाला सांड गर्व और अभिमान के साथ सब सहन करता था और जनता की सहानुभूति का बल पाकर उसे कोसों पीछे खदेड़ देता था।' इन शब्दों से स्पष्ट है कि चौहान साहब कांग्रेस के आन्दोलन काल में एक निर्द्वन्द्व सांड की भाँति विचरते थे। साम्राज्यवाद का आतंक उन्हें प्रभावित नहीं करता था।

महान् परिवर्तन—कामरेड विमला भी चौहान के व्यक्तित्व को असाधारण समझती है। उनमें देश-भक्ति कूट-कूट कर भरी हुई है। वे निर्भीक एवं साहसी हैं। जेल में अनेक बार गए परन्तु कभी भी जेल के अधिकारियों की आज्ञा का पालन नहीं किया। उनके चरित्र में किसी भी प्रकार मोड़ के लिए स्थान नहीं था। परन्तु स्वतन्त्रता प्राप्ति के पश्चात् सेठ नानामल का धन उनके चरित्र में न होने वाली बातों को उनमें ही करवा देता है। वे उनके धन के सम्मुख झुक जाते हैं। सेठ द्वारा किए गए मजदूरों के शोषण को सहन ही नहीं करते, अपितु सेठ का साथ देकर हड़ताल तुड़वाने का यत्न करते हैं। वे अपनी वीर भावना भूल सी बैठते हैं और अब सुन्दर स्त्रियों पर डोरे डालने आरम्भ कर देते हैं। इतना ही नहीं सेठ नानामल के द्वारा सप्लाई बिस्कुट में अरारोट के स्थान पर मैदा का प्रयोग किये जाने से वे अनभिज्ञ नहीं हैं, परन्तु वे यह सब कुछ सेठ के प्रभाव में आ कर सहन कर लेते हैं। कितना महान् परिवर्तन हुआ है चौहान साहब के चरित्र में। आज वही जनता जिसका उन पर अगाध विश्वास था, उनके लिए 'नानामल का जर खरीद गुलाम' और 'उनका पिट्ठू' आदि शब्द कहती है।

विरोधी विचारों का सम्मिश्रण—चौहान साहब के चरित्र में विरोधी विचारों का सम्मिश्रण है। विमला उनके विषय में कहती है—'एक अजीब सम्मिश्रण है योग्यता और मूर्खता का, कठोरता और कोमलता का, दृढ़ता और निर्बलता का।' कामरेड प्रभाकर की समझ में नहीं आता कि किस प्रकार चौहान साहब ने उनके द्वारा दिए गए आश्वासन को सेठ द्वारा ठुकराये जाने पर उसे चुपचाप सहन कर लिया। चौहान वही व्यक्ति है जिसने एक बार दिये गए आश्वासन को भंग करने पर चीफ कमिश्नर को विवश कर दिया था कि वह उनके इच्छानुसार फैसला करे। आज वह ऐसा मोम का पुतला

हो गया है जो धन की गर्मी से ही पिघल गया है। परन्तु बात यह है कि चौहान साहब सेठ साहब की इस चालाकी पर आग बबूला तो होते है, परन्तु सेठ साहब उन्हे बडी चतुराई से शान्त कर लेते है। फिर वे सेठ के उपकारो से भी दबे हुए है।

कूटनीतिज्ञ—चौहान साहब बहुत कूटनीतिज्ञ है। वे राजनीति के पुराने तथा अनुभवी खिलाडी है। राजनीति के दाव-पेचो को वे भली भाँति समझते है। वे जहाँ सेठ भानामल का साथ देते है, वहाँ वे साथ ही मजदूरो से भी सम्मान प्राप्त करने का प्रयत्न करते है। यद्यपि वे काल साहब से घृणा करते है, परन्तु अवसर के अनुसार उन्हे पृथक् व्यवसाय करने का परामर्श देते है, और उसकी पूरी सहायता करने का भी वचन देते है। काल साहब को इसी लालच मे फँसाकर वे कान्ता से विवाह करने मे सफल हो जाते है, परन्तु विवाह के पश्चात् काल साहब से एग्रीमेंट पर हस्ताक्षर करने के लिए मना कर देते है।

विमला के प्रति आकृष्ट—चौहान साहब का विमला से परिचय मजदूरो की हडताल के विषय में ही होता है। वह विमला से प्रभावित हो जाते है। चौहान साहब के हृदय में उसके प्रति प्रणय के भाव भी उत्पन्न हो जाते है। यही कारण है कि विमला के मुख से अपने लिए 'नान्सेंस, इडियोटिक और 'बदतमीज' जैसे अपशब्द सुनकर भी बुरा नही मानते है। उनका विमला के प्रति यह आकर्षण उस समय तक चलता है जब तक कि उनका विवाह कान्ता से नही होता है।

इस प्रकार हम देखते है कि उनके चरित्र मे सबलता तथा दुर्बलता का सम्मिश्रण है।

कामरेड बैनर्जी

कामरेड बैनर्जी सेठ भानामल की मिल का एक मजदूर है। वह मजदूरो के उस वर्ग का प्रतिनिधि है जो मालिको के द्वारा दिए गए लोभ मे फँसकर अपनी हडताल को ही असफल कराते है। वास्तव मे ऐसे लोग ही मालिको को शोषण करने में सहायता देते है। वह पक्का स्वार्थी है। शराबी और सिद्धान्तहीन होने के कारण उसे अपने उद्देश्य मे सफलता नही मिलती और अन्त मे पुलिस के द्वारा मिल को आग लगाता हुआ गिरफ्तार हो जाता है।

स्वार्थी तथा लालची—कामरेड बैनर्जी के चरित्र मे स्वार्थपरता कूट-कूट कर भरी हुई है। वह काल साहब द्वारा रुपयों का प्रलोभन दिये जाने पर मजदूर संघ को छोड़कर मालिकों की स्वार्थ-सिद्धि का साधन बन जाता है। वह विमला तथा कामरेड अशफाक के नेतृत्व मे मजदूरो की हड़ताल को अपने स्वार्थ के लिए विफल करने का पूर्ण प्रयत्न करता है, परन्तु मजदूर उनकी चालाकी को समझ जाते है और उनकी बातो का उनपर कोई प्रभाव नही पड़ता है। कामरेड बैनर्जी को ही मजदूर यूनियन की सदस्यता से पृथक् होना पड़ता है।

शराबी—वह पक्का शराबी है। मि० काल उसे शराब पिलाकर मजदूरो की हड़ताल को असफल कराने का प्रयत्न करते हैं। इतना ही नहीं उसे शराब पिलाकर मिल मे भी आग लगवा देते हैं और उससे कामरेड अशफाक पर घातक वार करवाते है।

धोखेबाज तथा असत्यवादी—कामरेड बैनर्जी के चरित्र मे धोखेबाजी कूट-कूट कर भरी हुई है। वह झूठ बोलकर मजदूरो को धोखा देता है। वह मालिको के सिखाये मे आकर तथा उनसे रुपया लेकर मजदूर यूनियन के निर्णय के विरुद्ध हड़ताल कर देता है। अपने साथ वह और भी अनेक मजदूरो को मिला लेता है और उनको बताता है कि वह शीघ्र हड़ताल के पक्ष मे है। बाहर से वह पूँजीपतियो का कट्टर विरोधी बनता है। परन्तु अपने इस षड्यन्त्र का वह स्वय ही शिकार हो जाता है और पुलिस द्वारा अपने साथियो सहित पकड़ा जाता है।

वास्तव मे कामरेड बैनर्जी का चरित्र मजदूरों को एक चेतावनी है कि उन्हें अपने बीच मे से ऐसे विरोधी तत्त्वो को निकाल देना चाहिए। जब तक उनके बीच मे ऐसे पतित व्यक्ति रहेंगे उनके मार्ग मे अनेक कठिनाइयाँ आती रहेंगी।

कान्ता

कान्ता मि० काल साहब की छोटी साली है। वह एक सुन्दर युवति है। उसने एम० बी० बी० एस० की परीक्षा पास की है। उच्च शिक्षा प्राप्त कुमारी कान्ता के जीवन के स्वप्न बहुत ऊँचे हैं। वह बुद्धिमती तथा व्यंग्य करने में निपुण है।

सुन्दर कुमारी—कान्ता एक सुन्दर कुमारी है। वह अपने सौंदर्य के कारण सभी के आकर्षण का केन्द्र बन जाती है। उसके जीजा मि० काल की दो पत्नियाँ मौजूद है, परन्तु फिर भी वह कान्ता से विवाह करने का इच्छुक है। सेठ भानामल भी उसे अपनी पत्नी बनाने के बहुत इच्छुक है। परन्तु अन्त मे चौहान साहब ही इस चिडिया को मैदान मे से ले उडते है।

महत्त्वाकांक्षिणी—कान्ता की महत्त्वाकाक्षाये बहुत ऊँची है। पहले वह किसी धनवान् व्यक्ति से विवाह करना चाहती है। परन्तु एम० बी० बी० एस० की शिक्षा प्राप्त करने के पश्चात् वह किसी ऐसे व्यक्ति से विवाह करने के लिए उत्सुक हो उठती है जो योग्य हो और जिसे समाज तथा सरकारी क्षेत्र मे भी सम्मान प्राप्त हो। अन्त मे इसी महत्त्वाकाक्षा की पूर्ति के लिए वह चौहान साहब से विवाह करती है।

बुद्धिमती—वह एक बुद्धिमती है। वह अशफाक, चौहान साहब, विमला आदि को भली-भाति पहचानती है। काल साहब की स्थिति से भी वह पूरी तरह परिचित है।

व्यंग्य-प्रिय—वह व्यग्य कसने मे बहुत निपुण है। काल साहब उसके व्यग्यो को सुनकर तिलमिला उठते है। उसके व्यग्यो मे विनोद भी रहता है।

बहू रानियाँ

मि० काल की दो पत्नियाँ है। ये दोनो सगी बहिने है। लेखक ने इन्ही दोनो के लिए प्रस्तुत उपन्यास मे बहूरानियाँ शब्द प्रयोग किया है। दोनो ही सतानहीन हैं। दोनों ही पारिवारिक जीवन के प्रति उदासीन हैं। उनमे पति-सेवा की भावनाएँ नही हैं। उन्हे तो घूमने, पार्टियो मे जाने तथा खेल-तमाशो से ही अवकाश नही मिलता है।

आत्मतुष्ट—दोनो बहूरानियाँ मौजी स्वभाव की हैं। बडी बहूरानी कुछ गम्भीर है, परन्तु छोटी मे चपलता है। छोटी रानी बडी से अधिक सुन्दर है। दोनो ही अपने आनन्द में मग्न रहती है। पत्नी के नाते वे काल साहब के प्रति अपना कोई कर्त्तव्य नही समझती है। उन्हे तो अपने आनन्द मे ही सारा ससार आनन्दित लगता है।

पारिवारिक जीवन से उदासीन—वे पारिवारिक बन्धनो की विरोधी हैं। उनकी दृष्टि मे परिवार एक सोसाइटी के समान ही है। परिवार के प्रत्येक व्यक्ति को पूर्ण स्वतन्त्रता है। निस्सन्तान होने के कारण भी वे जीवन के प्रति उदासीन हैं। छोटी बहूरानी के चरित्र मे कुछ ऐसा प्रतीत होता है कि उसे लाल साहब का थोडा बहुत ध्यान है। वह लाल साहब को चिन्तित देखकर उनसे पूछती है —

"आपकी इस जीवन के प्रति उदासीनता ने हमारा जीवन ही निरर्थक कर दिया है।'

कामरेड विमला से प्रभावित —दोनो बहूरानियाँ कामरेड विमला के विचारो से प्रभावित हैं। उनके विचार मे एक न एक दिन भारतवर्ष में साम्यवाद अवश्य आयेगा।

वास्तव मे दोनो बहूरानियो के चरित्र के द्वारा लेखक को 'निर्माण-पथ' उपन्यास मे धनाढय घरानो और आधुनिक नई सभ्यता के परिवारो का यथार्थ चित्रण करने मे पूर्ण सफलता प्राप्त हुई है।

प्रश्न ६—'निर्माण-पथ' के लेखक ने कान्ता और बहूरानियो के चरित्र की सृष्टि किस उद्देश्य से की है? इसने उपन्यास पर क्या प्रभाव पड़ा है?

उत्तर—निर्माण-पथ उपन्यास मे केवल एक ही कथानक चलता है। इसके कथानक मे शुद्ध आर्थिक समस्या है, इसलिए मूल कथानक मे कहीं पर रोमान्स आदि को स्थान नही है। इस कारण नीरसता का पूर्ण प्रभाव होने के भय से लेखक ने उपन्यास मे कान्ता और बहूरानियों के चरित्र की सृष्टि की है।

कान्ता के द्वारा केवल चौहान साहब के जीवन मे ही सरसता उत्पन्न नहीं होती अपितु उसके आने से कथावस्तु में एक विशेष और आशातीत परिवर्तन होता है। मि० लाल और चौहान दोनों ही एक दूसरे को घृणा की दृष्टि से देखते हैं। यहाँ तक कि चौहान साहब के विरुद्ध लाल साहब सेठ जी को भी भड़काते हुए कहते हैं कि ये तो कामरेड विमला को फँसाने का प्रयत्न कर रहे हैं। यह ठीक है कि चौहान साहब विमला की ओर आकर्षित अवश्य होते हैं, परन्तु उनसे नहीं जितना की लाल साहब सेठ जी

को वताते है। वास्तव में काल साहव के यह सब कुछ कहने का उद्देश्य सेठ जी के मन मे यह वात वैठाना है कि चौहान साहव मजदूरो के पक्षपाती है और वे उनका (सेठ जी का) साथ नही दे रहे है। इस प्रकार काल साहव प्रत्येक समय चौहान साहव की निन्दा करते हुए ही दिखाई देते है, परन्तु चौहान साहव कान्ता की ओर आकर्षित होने पर वडी कूटनीति से काम लेते हैं और काल साहव को पृथक् मिल खोलने का परामर्श देते है। साथ ही उसको पूरा सहयोग देने का भी वचन देते है। काल साहव चौहान साहव के जितने विरुद्ध थे उतने ही उनके पक्ष मे हो जाते है और कान्ता से चौहान साहव की वहुत प्रशसा करते हैं। इसी प्रशसा के परिणामस्वरूप कान्ता चौहान साहव से विवाह कर लेती है। परन्तु विवाह के पश्चात् वे काल साहव को एग्रीमेंट पर हस्ताक्षर करने से साफ मना कर देते है। इससे काल साहव वहुत क्रोधित होते हैं, परन्तु वे कुछ कर नही सकते। इस प्रकार कान्ता के उपन्यास में आ जाने से चौहान साहव की कूटनीति और भी स्पष्ट हो जाती है।

कान्ता की सृष्टि से मि० काल तथा सेठ भानामल की रसिकता पर भी प्रकाश पडता है। काल साहव की दो पत्नियाँ तथा सेठ भानामल की पाँच पत्नियाँ मौजूद है, परन्तु फिर भी दोनो कान्ता से विवाह करने के इच्छुक हैं। इस प्रकार हम कह सकते है कि लेखक का उपन्यास में कान्ता की सृष्टि करना ठीक ही है।

दोनो वहूरानियो की सृष्टि से कथानक पर विशेष प्रभाव नही पडा है। इनसे काल साहव के व्यक्तित्व पर भी कोई प्रभाव नही पड़ा है। उन्हे काल साहव के दु ख-सुख की भी चिन्ता नही। वे तो घूमने-फिरने तथा चाय-पार्टियो मे जा कर ही अपने जीवन का आनन्द लेती फिरती है। दोनो की स्वतत्र प्रकृति है। परन्तु इन दोनो के चरित्र की सृष्टि करने से एक वात अवश्य ही हमारे सामने आती है कि ये लोग अर्थ समस्या को इतना महत्व क्यो देते है, इससे इन्हे क्या लाभ होता है? घर मे दो-दो पत्नियाँ होने पर भी काल साहव का जीवन तो एक विधुर के जीवन की भाँति है।

नन्हे तक को निकवाने के लिए उन्हे नौकर पर निर्भर रहना पड़ता है। काल साहब के घर मे गृहस्थ जीवन के कोई भी लक्षण दिखाई नही देते हैं। इससे स्पष्ट है कि जब इन पूंजीपतियो का जीवन इतना नीरस हो जाता है, तो फिर इनका इस धन के चक्कर मे पड़ना व्यर्थ है। यदि ये धन के इस चक्कर मे न पड़ें, तो कम-से-कम इन्हे जीवन मे शान्ति और सुख तो मिले। उन्हें पत्नी का प्रेम भी मिले।

प्रस्तुत उपन्यास में दोनों बहूरानियो के चरित्र से एक बात यह अवश्य स्पष्ट हो जाती है कि निकट भविष्य में होने वाली उथल-पुथल चाहे इन धनपतियो को दिखाई न दे, परन्तु उनके घरो में उसकी सम्भावनायें अवश्य होती हैं। इस बात का प्रमाण छोटी बहूरानी के द्वारा काल साहब से कहे गये इन शब्दो मे मिलता है—" .... देखिये ! आप मेरे लिये चाहे जो भी कहें, परन्तु कम्यूनिज्म आ रहा है और आकर रहेगा, भारत में उस समय कम्यूनिज्म का क्या रूप होगा यह नहीं कहा जा सकता।"

उपन्यास मे बहूरानियो के चरित्र से धनी परिवारो की स्त्रियो के चरित्र पर प्रकाश पड़ता है। वास्तव मे धनी परिवारो की स्त्रियो में भी इन बहूरानियो जैसी आत्म-तुष्टि होती है। लेखक ने छोटी बहूरानी के विषय मे कहा है—"छोटी बहूरानी जब कभी गहरी विचारधारा के अन्दर पैठ जाती थी तो उन्हे अपने अन्दर समस्त संसार के दर्शन होने लगते थे। अपनी प्रसन्नता मे ही उन्हे सारा संसार मुस्कराता था...... "वास्तव में सभी धनी-घरो की स्त्रियो की यही दशा होगी। उन्हे अपने सुख-दुख के अतिरिक्त अपने पति तक की भी चिन्ता नहीं होती है। इससे स्पष्ट है कि धन की दुनिया मे वास्तविक सुख का अभाव है।

प्रश्न ७—"निर्माण पथ' का मुख्य पात्र कौन है ? उपन्यास की सामग्री के आधार पर सिद्ध कीजिए।

उत्तर—प्रत्येक कथा-ग्रन्थ में एक मुख्य पात्र अवश्य होता है और यही मुख्य पात्र उसका नायक कहलाता है। यही नायक कथा को अन्तिम बिन्दु तक पहुँचाता है। किसी भी कथा ग्रंथ मे उसी पात्र को नायक कहा जाता

है जो कि अपने चरित्र से कथावस्तु को प्रभावित करता चलता है। समस्त कथानक में मुख्य पात्र का चरित्र सूत्र की भाँति व्याप्त रहता है।

किसी-किसी उपन्यास अथवा नाटक मे कभी-कभी ऐसी स्थिति उत्पन्न हो जाती है कि कई पात्र समान भाव से प्रबल होते है और उस समय उनमे से किसी एक को मुख्य कहना कठिन हो जाता है। यह भी सम्भव है कि कोई स्त्री पात्र ही उपान्यास मे मुख्य पात्र हो, परन्तु मुख्य पात्र होने के कारण उसका भी कथाग्रन्थ मे बहुत महत्त्व होता है। 'निर्माण-पथ' उपन्यास में यह निर्णय करना बहुत ही कठिन कार्य है कि कौन से पात्र को मुख्य पात्र माना जाय।

'निर्माण-पथ' उपन्यास के पात्र कामरेड विमला, कामरेट अशफाक, चौहान साहब, मि० काल, सेठ भानामल, दोनो बहूरानियाँ, कान्ता तथा मि० बैनर्जी है। मि०बैनर्जी, दोनो बहूरानियाँ और कान्ता मे से तो किसी को भी मुख्य पात्र नही माना जा सकता, क्योंकि ये तो उपन्यास मे आरम्भ से लेकर अन्त तक चले भी नही है। इनका व्यक्तित्त्व कथावस्तु को विशेष प्रभावित भी नही करता है। कान्ता और बहूरानियो के चरित्र की तो यदि लेखक सृष्टि भी नही करता तो कथानक पर कोई विशेष प्रभाव नही पडता। अब शेप पात्रों मे से किसी एक पात्र को मुख्य पात्र निश्चित करना है। सेठ भानामल कथानक के साथ-साथ आदि से अन्त तक सूत्र की भाँति गुम्फित तो अवश्य है, परन्तु न तो वे विशेष प्रभावशाली पात्र ही है और न उनके व्यक्तित्व का कोई विशेप बल ही है। आदि से अन्त तक वे कभी काल साहब से प्रभावित होते है और कभी चौहान साहब से। इसलिए सेठ भानामल को तो उपन्यास का मुख्य पात्र नही कहा जा सकता।

कामरेड अशफाक का चरित्र कथानक को आदि से अन्त तक प्रभावित करता चलता है। वह सभी महत्वपूर्ण सूचनाये लाकर विमला को देता है। मि० काल के षड्यन्त्रों का पता लगाकर उन्हे कार्यान्वित होने के पूर्व ही खंडित कर देता है। अन्त मे मिल की रक्षा भी वही करता है। वह हृष्ट-पुष्ट तथा शक्तिशाली भी है। सच्चा जन-सेवक भी है। मजदूरो का उस पर अगाध विश्वास भी है। परन्तु ये सब विशेषतायें होते हुए भी उसका

चरित्र विमला के चरित्र से प्रभावित है। वह सब कार्य विमला के आदेशानुसार ही करता है। इसलिए विमला के सामने उसका चरित्र गौण है और वह प्रस्तुत उपन्यास का मुख्य पात्र नहीं बन सकता।

चौहान साहब का चरित्र उपन्यास को आदि से अन्त तक प्रभावित करता है और उनको उपन्यास से निकाला भी नहीं जा सकता। वे कथानक में आदि से अन्त तक रहते हैं और घटना चक्र को गति तथा नवीन रूप देते हैं। परन्तु कथानक के मुख्य विषय से चौहान साहब का सीधा सम्बन्ध नहीं है। कथानक में चौहान साहब तो एक परामर्शदाता तथा मध्यस्थ बन कर समस्या को सुलझाने वाले हैं। परन्तु वास्तव में वे समस्या को सुलझाने का भी प्रयत्न नहीं करते हैं। एक ओर तो सेठ सानामल से प्राप्त होने वाले धन का लोभ है और दूसरी ओर समाज में होने वाली अपनी प्रतिष्ठा का। परन्तु धन पर प्रतिष्ठा को न्यौछावर कर देते हैं। वे तो पूँजीपतियों तथा मजदूरों के संघर्ष के बीच धन-प्राप्ति के साथ-साथ अपनी विवाह-सम्बन्धिनी अभिलाषा भी पूर्ण कर लेते हैं और अपनी कूटनीति से कांता को अपनी पत्नी बना लेते हैं। सेठ जी और काल साहब देखते रह जाते हैं। इस प्रकार वे तो अपनी स्वार्थपूर्ति में लगे रहते हैं। इसलिए चौहान साहब को भी उपन्यास का मुख्य पात्र नहीं कहा जा सकता।

काल साहब और विमला दोनों ही उपन्यास में महत्वपूर्ण पात्र हैं। दोनों ही अपने व्यक्तित्व से कथावस्तु को प्रभावित करते हैं तथा उसके विकास में पूर्ण सहयोग देते हैं। दोनों में से किसी को भी उपन्यास से पृथक् नहीं किया जा सकता। दोनों ही का मुख्य कथा से सीधा सम्बन्ध है। दोनों परस्पर घात-प्रतिघात तथा दाँव-पेंच खेलने वाले हैं। परन्तु इन दोनों में से काल साहब को मुख्य पात्र के पद से वंचित किया जा सकता है। इसका कारण यह है कि प्रस्तुत उपन्यास का मुख्य विषय श्रम और पूँजी का संघर्ष जिस विचारधारा पर आश्रित है और जिस भाव-धारा को लेकर मुख्य कथानक जहाँ पूँजी को श्रम के प्रति अपनी शोषण वाली नीति में परिवर्तन करने के लिए गम्भीर चुनौती है, वहाँ काल साहब पूर्ण रूप से

इस भावना के विरोधी और प्रतिक्रियावादी है। वे अपने हठ को पूरा करने के लिए करोड़ो रुपये के मूल्य से बने हुए मिल को जलाकर राख करवा देना अच्छा समझते है, परन्तु मजदूरो के वेतन मे वृद्धि करने या उनका भत्ता बढाने के लिए वे तैयार नही है।

काल साहब के विपरीत विमला पूर्णरूप से उक्त विचार-धारा से प्रभावित है। वह अक्षरश उसका पालन करती है। विमला के चरित्र मे कही पर भी शिथिलता नही आती है। उसके चरित्र मे आरम्भ से अन्त तक दृढता और आत्मविश्वास के भाव दिखाई देते है और अन्त मे उसकी ही विजय होती है। अत वास्तविक फल प्राप्ति भी विमला को ही होती है। उपन्यास के नाम की दृष्टि से भी विमला ही मुख्य पात्र कही जा सकती है। उसका मार्ग आरम्भ से अन्त तक निर्माण का है, काल साहब की भाँति विध्वस का नही। सभी पात्र उसके व्यक्तित्व से प्रभावित होते है। अन्त मे सेठ भानामल जी को उसी के बताये हुए मार्ग पर चलने को बाध्य होना पडता है और काल साहब को तो मिल ही छोड देनी पडती है। चौहान साहब भी उसके सामने झुक जाते है।

अन्त मे उपर्युक्त विवेचन के पश्चात् हम कह सकते है कि विमला ही प्रस्तुत उपन्यास की मुख्य पात्र है।

आवश्यक गद्य-स्थलों की व्याख्या

१. "मै राष्ट्र की व्यवस्था मे क्राति चाहती हूँ, झूठे समाज को छिन्न-भिन्न करके नया समाज बनाना चाहती हूँ। जिसमे समानता के सिद्धान्तो पर एकता की कसौटी लेकर राष्ट्र की प्रत्येक धातु को कसा जायेगा। बिना परखे नगीने अब पूरा मूल्य नही अँकवा सकेगे। कुन्दन तपकर ही कुन्दन कहलाएगा, बिना तपे नही। झूठे झोल वाले, रगे हुए सियारो की पोल खुलकर ही रहेगी। परन्तु यह सब राष्ट्र के साधनो का सर्वनाश करके करने के पक्ष मे मै कदापि नही हू। व्यक्ति और साधन दोनो के मूल्य को आँक कर हमें दोनो मे समन्वय स्थापित करना होगा। व्यक्ति के हितो पर राष्ट्र के हितो को सर्वदा प्रधानता दी जायगी। साधन किसी व्यक्ति की

धरोहर बनकर राष्ट्र-निर्माण और उनकी उन्नति के पथ मे बाधक नही बन सकेंगे।"

प्रसग—प्रस्तुत पक्तियाँ श्री यज्ञदत्त शर्मा द्वारा लिखित 'निर्माण-पथ' उपन्यास मे से उद्धृत की गई है। 'सेठ क्लौथ मिल्स' के मालिको के द्वारा मजदूरो के वेतन मे कटौती करने के विरोध मे हडताल करने के लिए मजदूर यूनियन की बैठक होती है। उस बैठक मे कामरेड विमला मजदूरो को समझाती हुई कहती है —

व्याख्या—मेरा उद्देश्य राष्ट्र की व्यवस्था को परिवर्तित करना है। मै इस दोषयुक्त समाज की व्यवस्था को समाप्त करके एक नये समाज का निर्माण करना चाहती हूँ। ऐसे समाज का जिसमे मजदूर तथा मालिक सब को समान अधिकार प्राप्त हो। राष्ट्र की प्रत्येक वस्तु को परखने के लिए समानता तथा एकता की कसौटी का प्रयोग हो। जो आज के समाज के चमकदार नगीने बने हुए है। उनका मूल्य भी उसी कसौटी पर परखने के पश्चात् आका जायेगा। बिना तपे हुए स्वर्ण मे स्वर्ण की भाँति चमक नही आ सकती है और इसीलिए वह स्वर्ण नही कहलायेगा। इसी प्रकार जो अवसरवादी ढोगी व्यक्ति है अब उनका भेद खुलकर ही रहेगा। अब यह ढोग अधिक दिन तक नही चल सकेगा। परन्तु मै यह नही चाहती कि अपने इस उद्देश्य की प्राप्ति के लिए राष्ट्र के साधनो को नष्ट कर दिया जाय। हमे तो पहले व्यक्ति और साधन इन दोनो का मूल्य आँकना होगा और तब इनमें समन्वय करना होगा। सदैव समष्टि के हितो को व्यष्टि के हितों से श्रेष्ठ समझा जायगा। साधनो को किसी भी व्यक्ति की धरोहर नही समझा जायगा, क्योंकि ऐसा करने से राष्ट्र की उन्नति मे रुकावट पडती है।

२ "तुम अभी क्रान्ति के पथ से बहुत दूर खडी हो कामरेड विमला! मेरे पास तक आने मे तुम्हे अभी समय लगेगा। मैने किसी भी आज होने वाली बात को कल पर टालना नही सीखा। मै अकेला सघर्ष करूँगा और दिखला दूँगा कि मेरी हडताल सफल होगी।"

प्रसग—'सेठ क्लौथ मिल्स' के मजदूरो के वेतन मे कटौती हो जाने पर स्थिति भयकर हो जाती है। मजदूर यूनियन शीघ्र ही हडताल करने के पक्ष

मे नही है। वह मालिको को विचार करने के लिए कुछ रुपये देना चाहती है। परन्तु मिल मैनेजर मि० काल एक मजदूर मि० बैनर्जी को शराब पिलाकर तथा सहस्रो रुपया देकर मजदूरो की हडताल को असफल करवाने के लिए अपने पक्ष में ले लेते है। मि० बैनर्जी यूनियन के किसी निर्णय के पूर्व ही मिल मे हड़ताल की घोषणा कर देते है और फिर यूनियन की बैठक मे अपने इस कार्य की सफाई पेश करते हुए कहते हैं :—

व्याख्या—कामरेड विमला अभी तुम क्रान्ति के वास्तविक मार्ग पर नही पहुँची हो। तुम उससे अभी बहुत दूर हो। मैं क्रान्ति के वास्तविक पथ पर चल रहा हूँ और तुमको मेरे पास तक पहुँचने मे बहुत समय लगेगा। मेरा तो सिद्धान्त है कि मैं किसी भी आज हो जाने वाले कार्य को कल पर नही छोडता। इसीलिये मैंने हडताल आरम्भ कर दी है और मैं आप सब लोगो को यह दिखा दूँगा कि मैं अकेला ही मालिको से झगडकर इस हडताल को सफल बना दूँगा अर्थात् हमारी माँगो के सामने मालिको को झुकना पडेगा। इस प्रकार वह यह बनावटी व्याख्यान यूनियन के सम्मुख देता है।

अन्य आवश्यक गद्य स्थल

(१) इस इमारत··· ···· लिए बैठे है। (पृष्ठ १)
(२) चिन्ता क्या एक है········ गुजरें चौहान साहब। (पृष्ठ ११)
(३) आपके अनुभव · · ···नही जानती। (पृष्ठ २१)
(४) अब तो स्वत्वो ········पूर्ण अधिकार है। (पृष्ठ २६)
(५) कहिए न ! चुप ···· ···जा रही है। (पृष्ठ ३५)
(६) अब प्रश्न ·· ··· अधिकार है। (पृष्ठ ४०)
(७) क्या व्यर्थ ·· · उपयोग नही ? (पृष्ठ ४४)
(८) आज के स्वतन्त्र · · मिल जायेगा। (पृष्ठ ५०)
(९) जो व्यक्ति···· ····रखती हूँ। (पृष्ठ ५५)
(१०) साँड का सौन्दर्य ········हो चुका था। (पृष्ठ ६२)
(११) वह तो··· ·· उपभोग करे। (पृष्ठ ७८)
(१२) इस पत्थर को ··· ·· बिछ जायेगी। (पृष्ठ ६८)

विचार और विमर्श

प्रश्न १—"हिन्दी में निवन्ध का जन्म उन परिस्थियों और आवश्यकताओं की मांग का स्वाभाविक परिणाम था।"—इसकी व्याख्या करते हुए हिन्दी-निवन्ध के जन्म तथा विकास का संक्षिप्त परिचय दीजिए।

(प्रभाकर, जून १९५७)

अथवा

"हिन्दी निवन्ध के सम्वन्ध मे एक संक्षिप्त एवं सारपूर्ण लेख लिखिये।

उत्तर—पाठ्य पुस्तक 'विचार और विमर्श' के आरम्भ मे सम्पादक ने हिन्दी निवन्ध के विकास की परिस्थितियो का स्पष्टीकरण करते हुए लिखा है "हिन्दी मे निवन्ध का जन्म उन परिस्थितियो और आवश्यकताओ की माँग का स्वाभाविक परिणाम था जो अंग्रेजी राज्य के आरम्भ मे पश्चिमी सस्कृति एव साहित्य के सम्पर्क के कारण उत्पन्न हो गई थी। उन परिस्थि-तियो के समझने के लिए हमे उस काल की राजनीतिक तथा ऐतिहासिक पृष्ठभूमि को जान लेना आवश्यक है।"

मुसलमानो ने आरम्भ मे भारतवर्ष में लूटमार की। फिर जब वे यहाँ पर शासक वन गए तव उन्होने तलवार के जोर से अपने धर्म का प्रचार करना शुरू किया। यही कारण है कि उस समय यहाँ पर वीर-काव्य का सृजन हुआ। परन्तु अंग्रेजो ने यहाँ पर सर्वप्रथम व्यापार करना आरम्भ किया और शासक वनने के पश्चात् उन्होने ईसाई धर्म का प्रचार करने के लिए अपने पादरियो तथा अन्य व्यक्तियो के देश के विभिन्न भागो से नगरो व गाँवो में सभी स्थानो पर भेजा। ये लोग ईसाई धर्म की पुस्तको का हिन्दी में अनुवाद करके भारतीय जनता को मुफ्त में वाँटते थे। यही कारण था कि अंग्रेजा शासन-काल मे गद्य की, जो प्रचार और स्पष्टता की दृष्टि से पद्य की अपेक्षा अधिक व्यापक सिद्ध होती है, उपलब्धि होती है। अंग्रेजो ने कूटनीति से काम लिया। उन्होने राजनीति की आड में अंग्रेजी शिक्षा का भी प्रचार किया।

हमारे समाज में जो सामाजिक कुप्रथायें (जाति-पाँति) का भेद, अस्पृश्यता, स्त्री-शिक्षा का अभाव, खान-पान, वाल विवाह आदि को लक्ष्य बनाकर अग्रेजो ने ईसाई धर्म का प्रचार किया। सन् १८५७ ई० में भारतवर्ष में स्वतन्त्रता का प्रथम सग्राम हुआ। इसके पश्चात् यद्यपि अग्रेजो की शक्ति भारतवर्ष मे बहुत दृढ हो गई, परन्तु उन्होंने फिर भी वाह्य वल की अपेक्षा अधिकतर बौद्धिक आक्रमण के द्वारा ही अग्रेजो ने भारतीय संस्कृति को नष्ट करने का प्रयत्न किया। अपने इस उद्देश्य के लिए उन्हे यहाँ की भाषा का सहारा लेना पड़ा। यद्यपि यहाँ की भाषा का सहारा लेने से उनका तात्पर्य यह नही था कि हिन्दी गद्य का विकास हो, परन्तु फिर भी परिस्थितियो के अनुसार उसका विकास होना स्वाभाविक ही था। ईसाई धर्म के प्रचार को रोकने के लिए कई सामाजिक सस्थाओ ने प्रयत्न किए। उनके प्रयत्नो के फलस्वरूप भी हिन्दी गद्य का विकास हुआ। हिन्दी निवन्ध के विकास का आधार भी यही था। अत हम कह सकते है कि हिन्दी में निवन्ध का जन्म उन परिस्थितियों और आवश्यकताओ की माग का स्वाभाविक परिणाम था।

हिन्दी निवन्ध का विकास

हिन्दी निवन्ध के विकास को तीन कालो में विभक्त किया जाता है -

(१) निर्माण काल (सन् १८५० से सन् १९०० ई० तक)

(२) सस्कार काल (सन् १९०० से सन् १९२० ई० तक)

(३) सक्रमण काल (सन् १९२० से ...)

निर्माण काल—निर्माण काल का समय वह समय था जबकि हम मुस्लिम दासता से मुक्ति प्राप्त कर अग्रेजो की दासता की शृंखलाओ में जकड़े गए थे। इस समय तक हिन्दू समाज मे अनेक बुराइयो ने घर कर लिया था। समाज की जड़ें हिल रही थीं। केवल सामाजिक दृष्टि से ही नही अपितु राजनीतिक, सास्कृतिक तथा आर्थिक दृष्टि से भी हमारा पतन हो रहा था। ऐसी दीन अवस्था में स्वामी दयानन्द जी, राजा राममोहनराय, प० श्रद्धानन्द फिल्लौरी, नवीनचन्द्र राय आदि ने भाषा सुधार की ओर ध्यान न देकर समाज सुधार की ओर अधिक ध्यान दिया। भारतेन्दु बाबू हरिश्चन्द्र ने ही सर्वप्रथम साहित्य

की ओर ध्यान दिया। उन्होने भाषा को व्यावहारिक रूप प्रदान किया।

हिन्दी निबन्ध का आरम्भ तो भारतेन्दु के समय में ही होता है। भारतेन्दु जी ने "हरिश्चन्द्र मैगजीन", "कवि वचन सुधा" आदि पत्रिकाये प्रकाशित करके निबन्ध साहित्य का विकास किया। 'खुशी' नाम का एक निबन्ध सग्रह भी उन्होने प्रकाशित करवाया। भारतेन्दु युग मे बालकृष्ण भट्ट, प० प्रतापनारायण मिश्र, बदरीनारायण चौधरी 'प्रेमघन', श्री रायकृष्णदास, काशीनाथ खत्री, राधाचरण गोस्वामी, लाला श्रीनिवासदास आदि अनेक लेखको ने निबन्ध लिखे। परन्तु पुस्तकाकार में इन सभी लेखको के निबन्ध-सग्रह इस युग में प्रकाशित नही हो सके।

सस्कार काल—इस समय तक भारतवर्ष मे अग्रेजी राज्य व्यवस्था ने एक सुनिश्चित रूप प्राप्त कर लिया था। समस्त देश में स्कूल, कालेज तथा विश्वविद्यालय स्थापित हो चुके थे। पाश्चात्य शिक्षा से प्रभावित होकर लेखको की शैली तथा विचारधारा दोनो में पर्याप्त परिवर्तन हुआ। 'काशी नागरी प्रचारिणी सभा', 'हिन्दी साहित्य सम्मेलन प्रयाग' तथा 'सरस्वती' पत्रिका ने निबन्ध रचना को शुद्ध साहित्यक रूप देने का प्रयत्न इसी युग मे किया। इस युग मे भाषा तथा शैली का सस्कार हुआ। द्विवेदी जी ने 'सरस्वती' पत्रिका के द्वारा भाषा का सस्कार करने के लिए बहुत प्रयत्न किया और उन्हे अपने इस प्रयत्न मे सफलता भी प्राप्त हुई। उन्होने अनेक नये लेखको को भाषा सुधार की ओर प्रेरित किया। इस युग में प० पद्मसिह शर्मा, प्रो० पूर्णसिह, बाबू बालमुकुन्द गुप्त, प० चन्द्रधर शर्मा गुलेरी, मिश्रबन्धु, डा० श्यामसुन्दरदास आदि लेखको ने विचारात्मक, आलोचनात्मक तथा वैज्ञानिक विषयो पर उच्चकोटि के निबन्ध लिखकर हिन्दी निबन्ध-साहित्य के विकास में योग दिया।

सक्रमण काल—इस काल के विषय मे श्री रघुनन्दन शास्त्री ने लिखा है : "श्री भारतेन्दु ने जिसका ढाँचा खडा किया और प० बालकृष्ण भट्ट ने जिसे गतिमान बनाया और द्विवेदी जी की समर्थ तूलिका ने जिसकी वेष-भूषा और हाव-भाव का पूर्ण सस्कार किया। वही सुसस्कृत निबन्ध इस काल मे आचार्य रामचन्द्र शुक्ल के द्वारा मनोवैज्ञानिक विश्लेषण तथा मार्मिक चिंतन

के अभिनव तत्वो को अपने में समाविष्ट करके भाव और कला दोनो ही दृष्टि से सुपरिष्कृत होकर साहित्य गगन में सक्रमण करने लगा है।" इस युग में हिन्दी निबन्ध ने पाश्चात्य शैली एव प्रभाव के साथ सामजस्य किया। सूक्ष्म विवेचन, मौलिक दृष्टिकोण तथा अभिनव विचार-राशि इस युग के निबन्धो की विशेषता बनी। इस काल के निबन्ध लेखको में आचार्य रामचन्द्र शुक्ल, डा० श्यामसुन्दरदास आदि प्रमुख है। इनके साथ-साथ अन्य कई विद्वानो ने हिन्दी गद्य साहित्य को इस क्षेत्र के विकास में योग दिया है और दे रहे हैं।

हिन्दी निबन्ध साहित्य की वर्तमान स्थिति तथा उसकी प्रगति को देख-कर यह कहना उचित ही है कि हिन्दी गद्य साहित्य का यह अग शीघ्र ही राष्ट्र-भाषा के उत्तरदायित्व को सभालने मे सफल होगा।

प्रश्न २—'स्वयवह यंत्र' से क्या अभिप्राय हे ? पं० महावीरप्रसाद द्विवेदी के इस लेख का सार लिखिए।

अथवा

वङ्ग-साहित्य-परिषद् के वार्षिक अधिवेशन मे अध्यापक योगेशचन्द्रराय ने स्वयवह यत्रो के विषय मे जो लेख पढा, उसका भावार्थ लिखो।

उत्तर—प्रस्तुत लेख मे श्री महावीरप्रसाद जी द्विवेदी ने बताया है कि नई चाल की घडियो के प्रचार से समय देखने मे बहुत सुभीता हो गई है; परन्तु इनसे पू॰ क्या हमारे पास समय देखने के लिए कोई साधन था ही नहीं ? नही! प्राचीन काल मे एक नही, समय देखने के लिए अनेको साधन थे, जिन्हे स्वयंवह यत्र के नाम से पुकारा जाता था। उनमे से कुछ का यहाँ परिचय दिया गया है :

(१) सूर्य अथवा छाया घडी—सर्वप्रथम दिन मे सूर्य तथा रात्रि मे तारो को देखकर समय का ज्ञान प्राप्त किया जाता था। उसके पश्चात् वृक्ष, डन्डा या अपने शरीर की छाया को देखकर समय का अनुमान लगा लिया जाता था, परन्तु जिस दिन बादलों की कृपा हो जाती उस दिन हमारी ये घडियाँ जवाब दे जाती। इस असुविधा को दूर करने के लिए ताम्री या घटी यन्त्र बनाये गये।

(२) ताम्री या घाटी--तांबे के घड़े के नीचे एक छेद किया जाता था। यह घडा इतना बडा बनाया जाता था कि वह दिन मे आठ बार जल मे डूब जाए। इस घडे को किसी तालाब मे पानी पर रख दिया जाता। घडे मे सात पल तक पानी भर सकता था और यह घडा चौबीस घण्टे मे आठ बार डूबता था, जिस से एक दिन मे आठ घडियाँ तथा एक घडी मे सात पल माने जाते थे।

लल्ल आदि ज्योतिपियो ने इस प्रकार के यन्त्रो की निन्दा की, क्योंकि इनके लिए एक स्थान पर बैठकर प्रतीक्षा करनी पडती थी। ब्रह्मगुप्त ने एक अन्य यत्र का उल्लेख किया है। वे कहते है कि एक नलक बनाना चाहिए। उसके नीचे एक छेद करके उसे पानी से भर देना चाहिए। वहता हुआ पानी जितना-जितना कम होकर एक-एक घडी मे नल के जिस-जिस स्थान पर पहुँचता जाये, उसी-उसी स्थान पर अङ्क लगा देने चाहिएँ। इससे सहज ही मे काल-ज्ञान हो सकता है। यूनान तथा अनेको यूरोपीय देशो मे भी प्राय ऐसे ही समय जानने के यत्र हुआ करते थे, परन्तु उनमे हमारे यत्रो की अपेक्षा अनेको त्रुटियाँ हुआ करती थी, जैसे दिन तथा रात्रि को बारह-बारह घण्टो में बाँटना, जिससे शरद ऋतु मे दिन के घण्टे छोटे तथा रात्रि के घण्टे बडे और इसी प्रकार ग्रीष्म ऋतु मे दिन के घन्टे बडे तथा रात्रि के घण्टे छोटे होते थे। सामन्त महाशय तथा लल्ल, ब्रह्मगुप्त आदि अनेक विद्वानो ने अन्य प्रकार के यत्रो का उल्लेख किया है, जिसमे नर यत्र भी है।

(३) नर यत्र—एक मनुष्य-मूर्ति के मध्य भाग से लेकर मुँह तक एक सुराख होता है। पेट मे रस्सी भरी रहती है। रस्सी के एक किनारे से पारायुक्त गोलक बधा रहता है। वह गोलक पानी पर रख दिया जाता है। कुण्ड से जितना जल बहता जायेगा, मनुष्य-मूर्ति के मुह से उतनी ही डोरी बाहर निकलती रहेगी। डोरी मे गाँठें लगी होती थी। इन गाँठो को देखकर समय का ज्ञान प्राप्त करना बडा ही सरल था। इस प्रकार यत्रो मे कही एक नर-मूर्ति दूसरी नर-मूर्ति के मुख पर पानी फेंकती है और कही दो मनुष्य मल्ल-युद्ध करते दिखाई देते है। ऐसे दृश्य आधुनिक घडियो मे भी कई बार देखने को मिलते है।

(४) नवी शताब्दी मे सम्राट् शार्लमैन ने फारिस के बादशाह को एक जल-घडी उपहार मे भेजी थी। उसमे बारह घण्टे प्रकट करने के लिए बारह द्वार थे। प्रत्येक एक घण्टे मे एक द्वार खुलता तथा साथ लगे ढोल पर पडता था।

(५) भास्कराचार्य ने बताया कि भ्रम-यंत्र के द्वारा चक्र के घेरे में दो अगुल गहरी और इतनी ही चौडी एक नली बनाकर उसे दो आधारो पर रखो। नली के ऊपर ताड के पत्ते मोम से जोड़ दो। ताड़ के पत्ते मे छेद कर के नली मे पारा भर दो। दूसरी ओर छेद कर के नली के एक ओर पानी भर दो। तब छेद बन्द कर दो। बस, जल से आकृष्ट चक्र आप ही आप घूमेगा। पारा द्रव होने पर भी भारी होता है, इसलिए जल उसे हटा न सकेगा।

अब प्रश्न यह उठता है कि क्या इन यन्त्रो को स्वयंवह यन्त्र कहा जा सकता है। लल्ल तथा ब्रह्मगुप्त आदि विद्वानो ने भी इन्हें ग्राम्य कहकर पुकारा है। यह सत्य है कि इन्हें पूर्णरूप से स्वयवह यन्त्र नही कहा जा सकता, क्योंकि इन्हे चलाने के लिए मनुष्य का होना अत्यन्त आवश्यक होता था, परन्तु यदि सूक्ष्म दृष्टि से देखें तो विश्व मे मनुष्य की बनाई हुई वस्तुएँ तो क्यो स्वय मनुष्य भी एक दिन शिथिल हो जाता है। आधुनिक विज्ञान ने इसी विषय को युक्तियो से सिद्ध कर दिखाया है कि ससार में कोई भी वस्तु पूर्ण रूप से स्वयवह नहीं हो सकती। अन्त मे द्विवेदीजी ने खेद प्रकट करते हुए कहा है कि दुख से कहना पडता है कि वह भारत जो आज से डेढ हजार वर्ष पूर्व ससार भर का शिरोमणि था, आज वही भारत ससार भर से अवनत दिखाई देता है। यह समय भारतीय कला के ह्रास का है। अच्छा होता यदि सूर्य भगवान् हम अपात्रो को इतना ताप वितरण न करते, क्योंकि हम उसके दान का भोग नहीं जानते। कहाँ हमारा पूर्वज रावण जिसने इन्द्र, वरुण, पवन, अग्नि आदि को अपना दास बना रखा था और कहाँ हम जो उन्हें देख चकित हो उठते हैं।

प्रश्न ३—डा० पट्टाभि सीतारामैया के निबन्ध 'गांधीवाद और समाजवाद' को ध्यान में रखते हुये 'गांधीवाद और समाजवाद की तुलना करो।

(प्रभाकर, अगस्त, १९५२)

अथवा

'गांधी मर सकता है, किन्तु गांधीवाद अमर रहेगा।' इस कथन की आलोचना करो। (प्रभाकर, जून १९५५)

उत्तर—इस लेख में श्री पट्टाभि सीतारामैय्या जी ने बताया है कि समाजवाद क्या है ? इसके सिद्धान्त क्या है ? दूसरी ओर गाधीवाद और उसके सिद्धान्त क्या है ? कौन सा वाद अधिक उपयोगी कहा जा सकता है। समय-समय पर नये विचारो के प्रयोगो द्वारा विश्व के इतिहास का निर्माण हुआ। आज अनेको विचार अथवा वाद विश्व मे प्रचलित दिखाई देते है परन्तु उनमें समाजवादी विचार विशेष कर प्रसिद्ध है। आरम्भ मे इसे नास्तिकता अथवा दिमागी फतूर तक समझा जाता था। समाजवाद के आदर्शो की तीव्रता को तो अवश्य कुछ कम किया जा सका परन्तु इसकी लहरो का प्रवाह सदा के लिए न रोका जा सका। समाजवाद के जन्म का कारण आर्थिक सकट थे। इस प्रकार यह वाद इगलैंड, रूस, चीन आदि देशो से होता हुआ भारत मे भी आया।

समाजवाद के सिद्धान्त—समाजवाद का मुख्य सिद्धान्त उद्योगवाद ही कहा जायेगा अर्थात् कम-से-कम आयात (वस्तुओ का मगाना) तथा अधिक से अधिक निर्यात (वस्तुएँ बनाकर विदेशो को भेजना)। यह सिद्धान्त सफल न हो सका, क्योंकि कोई भी देश अपना कच्चा माल तथा सोना-चाँदी देने और उसके बदले पक्का माल लेने को तैयार नही। परिणाम स्वरूप समाजवादी देश ही उद्योगवाद की बुराइयो को देख इसके विरुद्ध प्रतिक्रिया कर रहे है। अब विश्व के सामने केवल एक ही मार्ग है। वह यह कि उतना ही माल बनाया जाये जितना किसी को चाहिए अर्थात् स्वावलम्बन अपनाएँ। जैसे रूस ने अपने आपको स्वावलम्बी बनाने मे ही अपना कल्याण समझा। यहाँ तक कि मास के आयात को भी रोकने के लिए प्रथम पांच वर्षों मे एक करोड खरगोशो का पालन किया गया। इस प्रकार जब उद्योगवाद का सिद्धान्त समाजवादी देश ही छोड रहे है और उसे नाशक समझते है तो फिर भारत जैसे देश मे उसका क्या काम? भारत गाँवो का देश है। यहाँ की ९०% जनता गाँवो में रहती है। भारत मे केवल एक-दो दर्जन बडे नगर तथा एक-दो सहस्र कस्बे हैं, परन्तु

गाँवो की सख्या सात लाख के लगभग है। हमारे देश मे अधिक से अधिक १५ लाख ही ऐसे व्यक्ति मिलेंगे जो कल-कारखानो मे काम करते होंगे और फिर उनमे अधिकाश कृपक ही होते हैं जो आर्थिक सकट से विवश हो खेती छोड मजदूरी करना आरम्भ कर देते हैं। यदि हम सूक्ष्मता से देखें तो देखेंगे कि भारत यदि ससार का शिरोमणि था तो केवल स्वावलम्बन के दृष्टिकोण से ही। प्राचीन काल मे हमारे गाँव स्वावलम्बी हुआ करते थे। प्रत्येक गाँव मे लुहार, सुनार, जुलाहा, धोबी, नाई, छीपी, मोची, किसान, कवि तथा ज्योतिषी आदि विद्यमान हुआ करते थे। किसी गाँव का दूसरे गाँव के आगे हाथ फैलाने की आवश्यकता नही हुआ करती थी। भौतिक आवश्यकताओं से निवृत्त हो, हमारे ग्रामवासी आध्यात्मिक चिन्तन मे भाग लिया करते थे। इस प्रकार भौतिक रूप से तो वह सुखी थे ही, साथ ही तत्त्ववेत्ता भी बन सके तथा विश्व को भी ज्ञान का उपदेश दे सके।

गाँधीवाद क्या चाहता है? गाँधीवाद किसी नये सिद्धान्त को नही अपनाना चाहता। वह तो अपने ऋषियो द्वारा निर्मित समाज के आदर्शों को ही पुन लाना चाहता है। वही चार आश्रम तथा वही स्वावलम्बन। गाधीवाद इस कार्य के लिए क्रातिकारी पग नही उठाना चाहता, क्योंकि हृदय से ही परिवर्तन अधिक स्थायी होता है। गाँधीजी की यह हार्दिक इच्छा हुआ करती थी कि प्रत्येक परिवार अपने लिए आप ही सभी काम करे।

गाँधीवाद तथा समाजवाद मे तुलना—समाजवाद का मुख्य आधार उद्योगवाद अर्थात् धन कहा जायेगा, जब कि गाँधीवाद भारतीय आदर्शों के अनुसार जीवन का मूल सेवा, त्याग तथा आध्यात्मिक चिन्तन मानता है। समाजवाद क्राति चाहता है परन्तु गाँधीवाद का शान्ति मे विश्वास है तथा वह हृदय-परिवर्तन को सब से उत्तम समझता है। इस प्रकार समाजवाद के सिद्धांत आज भारत तो क्या विश्व भर के लिए हानिकारक सिद्ध हो चुके हैं। गाँधीवाद के आदर्श ही विश्व के आकर्षण का कारण बन रहे है। क्योकि वे विचार गाँधीजी के न होकर प्राचीन ऋषियो-मुनियो के है तभी तो कराची मे महात्मा गाँधी जी ने कहा था—

"गाँधी मर सकता है परन्तु गाँधीवाद अमर रहेगा।"

प्रश्न ४—प्रो० पूर्णसिंह द्वारा लिखित 'ब्रह्म-कान्ति' लेख का सार अपने शब्दों में लिखो।

अथवा

"चलो, चलें अपने सच्चे देश को, इस विदेश में रहने, जूते खाने से क्या लाभ ? अपने घर को मुख मोड़ो। बाहर क्यों दौड रहे हो ?" इस उक्ति के आधार पर 'ब्रह्म-कान्ति' के सन्देश का विवेचन कीजिये।

उत्तर—प्रो० पूर्णसिंह ने 'ब्रह्म-कान्ति' लेख मे बताया है कि ससार के कण-कण मे ब्रह्म-कान्ति का निवास है। अनेक सूर्य आकाश मण्डल में घूम रहे हैं। सफेद सूर्य, नीले सूर्य और लाल सूर्य जो मानो किसी के प्रेम मे अपने घरो मे दीपमाला कर रहे है। बालको, नारियो, पुरुषो, गुलाब, सेव, अगूर फूलो, नदी, हिमालय, झरनो तथा नरगिस की आँखो मे ब्रह्म-कान्ति ही ब्रह्म-कान्ति के दर्शन होते है। हाथी चिघाडते है, शेर गरजते है। कोयल, पपीहे, बटेरे, पानी मे नग्न नहा रहे है। तीतर गा रहे है। मुर्ग अपनी छाती मे आनद को पूरा भर कर कूक रहे है। ई-ई, उ-ऊ, कू-कू, हू-हू मे वेदध्वनि, ओ३म् का आलाप हो रहा है। बद्रीनाथ, केदारनाथ, कचनजघा आदि की चोटियाँ हँस रही है।

ससार मे सभी वस्तुएँ उसी ब्रह्म-कान्ति के लिए छटपटा रही है। इस ब्रह्म के दर्शन होते ही सब पागल अवस्था को प्राप्त हो जाते है। कहा भी है .

था जिनकी खातिर नाच किया, जब मूरत उनकी आयेगी।
कहीं आप गया कहीं नाच गया और तान कहीं लहरायेगी॥

उस प्यारे के दर्शन क्या हुए मानो सब की नमाज़ कजा हो गई। पण्डित जी किताबो के छकडे को अपने सिर पर उठाये लिए जा रहे थे, ब्रह्म के दर्शन होते ही अमूल्य पुस्तके, वेद, दर्शन आदि पण्डित के सिर से गिर पड़ी। छकडा लडखडाता गगा मे बह गया। पण्डितजी का साधारण शरीर मानो वायु मे घुल गया। कृष्ण की बाँसुरी रुक गई। नारद की वीणा थम गई। हल चलाता किसान रह गया। मीरा इसी ब्रह्म-कान्ति का अमूल्य चिन्ह हो गई। गार्गी ने ब्रह्म-कान्ति की लाट को अपनी आँखो मे धारण किया।

हाय ! ब्रह्म-कान्ति के आनन्द प्रकाश में भी मेरे लिए अधेरा हुआ। अत्यत

अत्याचार ! गगा तो शीतल है, परन्तु मन अपवित्र भावो से भरा हुआ जल रहा है। हिमालय की बर्फ तो हो शुद्ध सफेद और मन हो काला, हरी-हरी घास भी हो नर्म और मेरा दिल कठोर, फूल और मिट्टी हो सुगन्धित और मेरे नेत्र और वाणी आदि हों दुर्गन्धित, यह भी क्या कोई जीवन है। परन्तु नही इस विषमता के अधेरे को जैसे-तैसे दूर करना है। इस मोतियाबिन्द को निकालना है। मैं भारतवासी कैसे हो सकता हूँ। जिसके अपने उन तीर्थों की यात्रा से अपवित्रता का कलक भी दूर हो जाता है। काले सकल्पो के नाग हर किसी को डसने के लिए छोड रक्खे हैं।

यह तिमिर के बादल कब उड़ेंगे। पवित्रता का सूर्य मेरे अन्दर कब उदय होगा। मेरे कान मे धीमी-सी आवाज आई कि भारत का उदय हुआ। हाय ! भारत का कब उदय हुआ! मेरे दिल मे तो अभी भी काली अन्धेरी रात है !

भारत तो सदा ही ब्रह्म-कान्ति मे निवास करता है, भारत तो ब्रह्म-कान्ति का एक चमकता-दमकता सूर्य है। यहाँ का प्रत्येक व्यक्ति क्या ब्रह्मचारी, क्या गृहस्थी और क्या सन्यासी सभी पवित्र थे। आज वहाँ ब्रह्म-कान्ति के दर्शन देखने को भी नही मिलते। जल न जाये वह महल जहाँ ब्रह्म-कान्ति का प्रकाश न हो। गोली न लग जाये उन दिलो को जहाँ प्रेम और पवित्रता के अटल दीपक न जलें और न जगमगायें। चलो, चलें अपने सच्चे देश को। इस विदेश मे रहने से क्या लाभ ? अपने घर की ओर मुख मोडो ! बाहर क्यो दौड रहे हो ?

प्रश्न ५—श्री प० रामचन्द्र शुक्ल द्वारा लिखित 'भाव या मनोविकार' शीर्षक लेख का सार अपनी भाषा मे लिखो।

उत्तर—अनुभूति के द्वन्द्व से ही प्राणी के जीवन का आरम्भ होता है। मनुष्य भी केवल एक जोडी अनुभूति लेकर इस ससार मे आता है। वे अनुभूतियाँ हैं सुख और दुःख। जिनकी अभिव्यक्ति मनुष्य जन्म से ही करना आरम्भ कर देता है। जैसे भूख लगने पर बच्चा दुःख की अभिव्यक्ति रोकर तथा दूध मिल जाने पर सुख की अनुभूति हँसकर प्रगट करता है।

यही सुख तथा दुःख दो अनुभूतियाँ अनेकों भाव या मनोविकारो का रूप धारण कर लेती हैं। जैसे दुःख से भय, क्रोध, घृणा आदि तथा सुख से प्रेम,

हास, उत्साह आदि। किसी को काँटा लगने से तो सामान्य दु ख ही होता है, परन्तु यदि यह पता चल जाये कि काँटा अमुक्त व्यक्ति ने चुभोया है तो वह दु ख क्रोध का रूप धारण कर लेगा। अनुभूतियो अथवा इन मनोविकारो की अभिव्यक्ति दो प्रकार से हो सकती है—चेष्टाओ द्वारा तथा वाणी द्वारा। यह शत-प्रतिशत सत्य है कि चेष्टाओ द्वारा इतनी स्पष्ट तथा प्रभावदायक अभिव्यक्ति नही हो सकती जितनी वाणी द्वारा, क्योकि चेष्टाओ का क्षेत्र सीमित होता है। कल्पना कीजिए कि कोई व्यक्ति काँप रहा है। अब जब तक वह क्रियात्मक रूप धारण न करे, स्पष्ट नही होता कि वह क्यो काँप रहा है। परन्तु यदि कम्बल ओढ ले तो हम समझ सकते है कि वह सर्दी से काँप रहा था, यदि वह भाग पडे तो हम समझ सकते है कि उसके काँपने का कारण भय था। इसी प्रकार यदि लड़ना आरम्भ कर दे तो हम जान लेंगे कि क्रोध से काँप रहा था। इतना ही नही, चेष्टाओ की अपेक्षा वाणी का प्रभाव भी कई गुणा अधिक पड़ता है, जैसे लोभ को प्रगट करने के लिए इतना ही कह देना—"काश! कि वह वस्तु मुझे मिल जाती।" पर्याप्त होगा। इसी प्रकार क्रोध अथवा वीरता को प्रकट करने के लिए—"मैं उसे पीस डालूँगा, चटनी कर डालूँगा, धूल में मिला दूँगा" या "उसका घर खोदकर तालाब बना दूँगा" ही कह देना बहुत प्रभावदायक सिद्ध होगा।

समस्त मानव-जीवन के प्रवर्तक ये भाव या मनोविकार ही होते है। इन्ही के द्वारा राजशासन, धर्मशासन, तथा मतशासन अपना काम चलाते हैं। हमें इस बात का दु ख है कि इनके द्वारा राजाओं तथा ब्राह्मणो ने जनता को लाभ की अपेक्षा हानि अधिक पहुँचाई है। राजाओ ने दण्ड का भय तथा अनुग्रह का लोभ दिखाकर तथा ब्राह्मणो ने पाप-पुण्य के चक्र मे डालकर अपना स्वार्थ सिद्ध किया है।

कविता ही एक ऐसी वस्तु है जो मानव-जीवन के कल्याण के साधन अधिक जुटा सकती है। कविता ही धर्म-क्षेत्र मे भक्ति-भावना को जागृत करती है। भाव-क्षेत्र अत्यन्त पवित्र क्षेत्र है। इसे गदा करना लोक के प्रति भारी अपराध होगा। इस प्रकार कवि लोगो को ही इन अनुभूतियो का विशेष-कर प्रयोग करना चाहिए, क्योकि उनके हृदय में सकीर्णता का नाम तक नही

होता। वे संसार के कण-कण को एक दृष्टि से देखते है। सच्चे कवियो की वाणी आदि काल से ही यही पुकारती चली आ रही है—

"विधि के बनाये जीव जेते है जहाँ के तहाँ
खेलत-फिरत तिन्हैं खेलन-फिरन देव॥" —ठाकुर

प्रश्न ६—'चन्द्र लोक की यात्रा" लेख में श्री सन्तराम जी बी० ए० ने चन्द्रलोक की यात्रा सम्बन्धी योजना उपस्थित की है, क्या वह सफल हो सकी अथवा नहीं? विस्तारपूर्वक उत्तर लिखो।

अथवा

"चन्द्रलोक की यात्रा" नामक निबन्ध का सार लिखकर बताएँ कि रूसी गगन-चारी कृत्रिम नक्षत्र से यह यात्रा कहां तक सफलीभूत हो सकेगी?
(प्रभाकर, जून १९५७)

उत्तर—पश्चिम के वैज्ञानिक आज आकाश मे घूमने वाले चन्द्र, शुक्र आदि दूसरे लोको मे पहुँचने के लिए उपाय सोचने लगे है। अनेको तत्त्व-विद्याविशारद तथा शिल्पी इस कार्य मे मग्न है। इस सम्बन्ध में जो अनुसन्धान हो रहे है, उनके अन्तर्गत उन अड्डो को स्थापित करना भी है जहाँ से चालित शक्ति के प्रयोग किये जायेंगे। आशा की जाती है कि वहाँ से बहुत सी शक्ति प्राप्त की जा सकती है। केन्द्रीय परमाणु शक्ति के आविष्कार से ही लोक-लोकान्तर की यात्रा सम्भव प्रतीत होने लगी है। इस परमाणु शक्ति को यदि रोकेट मे भर कर अन्तरिक्ष की ओर छोड़ा जाये तो आशा की जाती है कि वह राकेट मे बैठे हुए लोगो को आकाश से शून्य मे पहुचा देगी। यह केवल बातें-ही-बातें नही अपितु ये विचार साकार भी होने जा रहे है। एक विशेष दहन प्रकोष्ठ बनाया जायेगा। उसमे यूरेनियम २३५ नाम की धातु की बहुत थोडी मात्राएँ एक-दूसरे के बाद एक क्रम मे भर दी जायेंगी। जो हवाइयां ऊपर भेजी जायेंगी, उनमे अपने आप लिखने वाले यन्त्र लगे रहेंगे और जो मनुष्य बैठकर जायेंगे, वे वहाँ की खोज करने के पश्चात् पैराशूट द्वारा वापिस आ जायेंगे। चन्द्रमा हम से लगभग दो लाख चालीस हजार मील दूर है। यह यात्रा ४८ घण्टो मे समाप्त हो जायेगी। शुक्र जो हम से २,६०,००,००० मील दूर है। उसमे ४८ दिन मे पहुँच सकेंगे। मंगल जो हम से ३,५०,००,०(

मील दूर है उसमें ९० दिन में पहुँच जायेगे। हमारे पुराणो में भी नारद आदि की चन्द्र, मगल आदि लोको मे जाने की वात लिखी है, परन्तु शून्य आकाश मे से होकर दूसरे लोको में पहुँचने का वैज्ञानिक सिद्धान्त सब से पहले जियोलवोस्की नाम के एक रूसी ने सन् १९०३ मे निकाला था।

चन्द्रलोक को जाने वाले आकाश-पोत मे कई कठिनाइयाँ भी हैं। उस पर विश्व किरण का प्रभाव पडने का भय भी है। उल्काओ के साथ टक्कर होने आदि का भी कम भय नही है; परन्तु इसके लिए वैज्ञानिक पूर्णरूप से सावधान है, इसलिए डरने की आवश्यकता नही। नीचे के व्यक्तियो से वात-चीत करने के लिए आल्ट्राशार्ट वेव वायरलेस का प्रयोग भी शायद सम्भव हो सके। वह राकेट इस प्रकार की होगी जिस पर सूर्य की गर्मी अथवा चन्द्रमा की ठण्डक का प्रभाव नही पडेगा। राकेट की गति धीरे-धीरे बढाई जायेगी जिससे बीच मे बैठे मनुष्यो की मृत्यु आदि न हो जाये। पृथ्वी से दो सौ मील ऊपर तक एक हजार मील प्रति घण्टा तथा उससे ऊपर बीस हजार मील प्रति घटा तक उसकी गति बढा दी जायेगी। उस राकेट या हवाई का रूप मधु-मक्खियो के छत्ते के समान होगा और उसको अधिक लम्बा बनाया जायेगा, जिससे चन्द्रलोक मे उतारने मे अधिक कठिनाई न पडे। नीचे उतरते समय मशीन अपने खाली हो चुकी हवाइयो को फेंक कर हल्का कर लेगी।

अब प्रश्न यह उठता है कि क्या यह यात्रा सम्भव हो सकेगी या नही? वास्तव मे यह परमाणु शक्ति पर निर्भर है। परमाणु शक्ति के आविष्कार से इसी प्रकार के अनेक असम्भव प्रश्न सम्भव होने जा रहे है। मोठ के दाने के बरावर परमाणु शक्ति की गोली से आपकी मोटरकार वर्ष भर चलती रहेगी। गर्मी-सर्दी अपनी इच्छानुसार उत्पन्न कर सकेंगे। डेविड डीट्ज नामक एक सज्जन ने 'परमाणु शक्ति' नामक पुस्तक मे परमाणु शक्ति का महत्व दिख-लाते हुए कहा है कि परमाणु शक्ति का युग आज के युग से इतना ही भिन्न होगा जितना प्राचीन युग से आज का युग। काम करने के घटे बहुत थोडे हो जायेंगे। खम्बो पर बनावटी सूर्य लगाकर घर मे ही आलू, मकई आदि की सलें बोई जायेंगी। विश्व में पूर्णरूप से शान्ति छा जायेगी, जिसके मुख्य

तीन कारण होंगे—(१) पवन आदि की भाँति शक्ति का प्रचुर मात्रा में प्राप्त होना। तेल और कोयले के लिए लडने की आवश्यकता नही रहेगी। (२) प्रत्येक राष्ट्र के पास इतना कच्चा माल हो सकेगा कि धनी और निर्धन राष्ट्र का भेद न रह जायेगा। (३) भयकर बम बनने से परस्पर युद्ध करने का साहस कोई नही करेगा, क्योकि युद्ध का अर्थ होगा प्रत्येक राष्ट्र का नाश और सभ्यता का अन्त।

इस प्रकार परमाणु शक्ति के युग में चन्द्रलोक की यात्रा एक छलाग मात्र रह जायेगी। जनता का प्रत्येक व्यक्ति बडी सरलता से यात्रा करके वापस आ सकेगा।

चन्द्रलोक की यात्रा की कल्पना प्राचीन है, परन्तु वर्तमान युग में रूस, तथा सयुक्त राज्य सघ अमेरिका (U S A) के वैज्ञानिको का ध्यान विशप रूप मे इस ओर आकर्पित है। वे दिन-रात चन्द्रलोक मे पहुचने के लिए प्रयत्नशील है। चन्द्रलोक को जाने वाले आकाश-पोत के मार्ग में अनेक कठिनाइयाँ हैं, जैसे कॉस्मिक किरणो का प्रभाव, उल्का से टकराने का भय, शून्य मे गए व्यक्तियो का पृथ्वी से सम्बन्ध किस प्रकार रहेगा, वहाँ शीत-ताप से बचाव आदि। वैज्ञानिक इन कठिनाइयो को हल करने मे लगे हुए है। उन्हे बहुत कुछ सफलता भी अपने इस प्रयत्न मे प्राप्त हो चुकी है। इन्ही प्रयत्नो के फलस्वरूप ४ अक्तूबर, सन् १९५७ ई० को रूसी वैज्ञानिको ने एक उपग्रह अन्तरिक्ष मे छोडकर समस्त विश्व को चकित कर दिया। यह उपग्रह लगभग ५६० मील की ऊँचाई पर पृथ्वी का चक्कर काटने लगा। इसे एक चक्कर लगाने मे ९६ मिनट लगते थे। ३ नवम्बर, सन् १९५७ ई० को रूसी वैज्ञानिको ने दूसरा उपग्रह अन्तरिक्ष मे छोड दिया। यह उपग्रह लगभग १००० मील की ऊचाई पर पृथ्वी के चक्कर लगाने लगा। इस उपग्रह की सहायता से अन्तरिक्ष के विषय मे वैज्ञानिकों को पर्याप्त जानकारी हो गई। इसमें 'लाइका' नाम का कुत्ता भी अन्तरिक्ष मे भेजा गया। इस उपग्रह की सफलता ने समस्त विश्व को यह पूर्ण आशा दिला दी है कि अवश्य ही निकट भविष्य मे एक न एक दिन मानव चन्द्रलोक मे पहुँचने मे सफल हो जायेगा। रूसी वैज्ञानिको

ने अन्य भू-उपग्रह अन्तरिक्ष मे भेजकर इस आशा को और अधिक वढा दिया है।

रूस के अतिरिक्त अमेरिका के वैज्ञानिको ने भी अन्तरिक्ष में अनेक उपग्रह भेजे है। आज इन दोनो महान् देशो मे होड़ लगी हुई है। परन्तु यह कोई नहीं कह सकता कि इनमे कौन पहले चन्द्रलोक मे पहुँचने मे सफल होगा।

प्रश्न ७—'विकासवाद' लेख का सार देते हुये डार्विन के "योग्यतम की रक्षा" सिद्धांत का पूर्ण परिचय दीजिये। (प्रभाकर, अगस्त, १९५२)

अथवा

इस लेख के लेखक कौन है? उन्होंने किन के विचार उपस्थित किये हैं? आप उनसे कहाँ तक सहमत हैं?

अथवा

डार्विन के विकासवाद का भौतिक आधार क्या है? सक्षेप में लिखो।
(प्रभाकर, नवम्बर, १९५७)

उत्तर—प्रस्तुत लेख के लेखक श्री गुलावराय जी एम० ए० हैं। इस लेख में उन्होने डार्विन के विचारो को सामने रखकर विचार किया है कि किस प्रकार ससार मे सब प्राणियो का विकास हुआ।

आज से प्राय सौ वर्ष से कुछ अधिक पूर्व श्रुसवेरी में डार्विन का जन्म हुआ। बाल्यकाल से ही इनकी रुचि जीव-शास्त्र के अभ्यास से विज्ञान की ओर हुई। जव वह २१-२२ वर्ष के हुए तव वीगल नामक जहाज पर पृथ्वी के चारों ओर यात्रा की। डार्विन को यह देखकर वडा आश्चर्य हुआ कि एक ही जाति के जन्तुओ मे अनेक छोटे-छोटे भेद क्यो पाये जाते है? इस सम्वन्ध मे उन्हे मैल्यस महोदय के विचार पढने को मिले, जिनमे लिखा था कि ससार मे जीवधारियो की सख्या एक, दो, चार, आठ, सोलह की सख्या के हिसाव से तथा खाद्य-पदार्थों की सख्या एक, दो, तीन की सख्या से वढती है। यदि प्रकृति मनुष्य का साथ न देती, तो रहने को स्थान तथा खाने को भोजन न

मिलता। प्राणियो मे परस्पर संघर्ष, नाना रोगो तथा अकाल आदि के कारण संख्या सीमा से बाहर नही बढ पाती है।

इस बात को पढकर डार्विन के चित्त मे आया कि यदि ऐसी बात है तो इस संसार मे वही प्राणी बच सकते हैं जो शक्तिशाली होते है। प्रकृति भी योग्यतम की रक्षा करती है। इस सिद्धांत को लेकर डार्विन ने अनेक ग्रंथ लिखे, जिनमे "जात्यन्तरो का मूल" तथा "मनुष्य की उत्पत्ति" है।

वैज्ञानिक सिद्धान्तो के निश्चय मे तीन मुख्य व्यापार होते हैं—(१) निरीक्षण, (२) अनुमान, (३) परीक्षा। परीक्षाओ मे डार्विन को चार बातो से सहायता मिली—(१) घोडे, भेड आदि जन्तुओ को पालने वाले अपनी इच्छानुसार भेद कर लेते है। (२) जिन पशुओ की जातियाँ नष्ट हो गई हैं उनका वर्तमान जातियो से बहुत कुछ सादृश्य दिखाई देता है। भेद प्राय इतना ही रहता है कि नष्ट जातियाँ उतनी उत्तम तथा उन्नत नही थी जितनी वर्तमान जातियाँ। (३) पृथ्वी पर प्राय सभी जातियाँ परस्पर सादृश्य रखती है। सभी की दो आँखें, एक नाक और दो कान होते है, जिससे कहा जा सकता है कि आरम्भ मे कोई एक ही जाति पृथ्वी पर थी जिनके सूक्ष्म अण्डे या बीज जलवायु आदि के प्रवाह से पृथ्वी पर फैले। (४) गर्भावस्था मे प्राय सभी जीव एक ही से दीख पडते है। इसी प्रकार डार्विन ने अपना सिद्धात निश्चित करने के लिए अनेक बातो का अनुमान तथा निरीक्षण किया।

डार्विन के मतानुसार आरम्भ मे एक ही जाति होगी, जो आगे चलकर कई जातियो का रूप धारण कर गई। इस प्रकार क्रम से छोटे जन्तुओ मे से मनुष्य उत्पन्न हुआ। जैसे मछली मे कछुआ और कछुएँ से बन्दर की उत्पत्ति हुई वैसे ही बन्दरो से मनुष्य की उत्पत्ति हुई। बन्दर यदि मनुष्य के पूर्वज नही तो चचेरे भाई तो अवश्य ही है। मनुष्य और बन्दर मे अति साम्य है।

डार्विन के सिद्धान्तो का आज कई लोग विरोध करते भी दिखाई देते हैं और विशेषतः प्राणियो मे प्रतिद्वन्द्विता वाले सिद्धान्त का। कई धार्मिक दार्शनिको का कहना है कि यदि प्रतिद्वन्द्विता ही प्राणियो का मूल है तो परस्पर सहानुभूति, उदारता आदि गुण प्राणियो मे कहा से आये। डार्विन ने इस विषय मे बतलाया कि स्वार्थ अथवा आत्मरक्षा के कारण मनुष्य एक दूसरे पर

उपकार करता है। अपने लाभ को देखकर उसका स्वभाव ही ऐसा बन जाता है।

ईश्वर के विषय में डार्विन मौन है। परन्तु इतना उन्होने अवश्य बतलाया है कि यदि वह भगवान् इस जगत् का कारुणिक परम ज्ञानवान् शासक होता तो अपने उत्कृष्ट ज्ञान के द्वारा उत्तम से उत्तम और दुःख रहित ससार की कल्पना कर उसे वैसे ही बनाता।

विकासवाद के विषय में अपना मत :

प्राय. देखने मे आता है कि आज डार्विन के विचारो का बहुत विरोध होने लगा है। उसके सभी सिद्धान्तो को झुठलाने का यत्न किया जा रहा है, क्योकि भारतीय सस्कृति से वह विरोधी मत कहा जा सकता है। परन्तु सर्वथा असत्य हो ऐसा भी नही कहा जा सकता, अनेको बाते प्रशसनीय भी है। इस प्रकार केवल निन्दा ही कर देना उचित नही। हस बनकर अच्छी वस्तु को ग्रहण करने में बुद्धिमत्ता है।

प्रश्न ८—'विश्व संघ की जरूरत' लेख में भगवानदास केला तथा सुन्दरलाल जी ने जो विचार प्रकट किये है, उन्हें अपनी भाषा में लिखो।

अथवा

'विश्व संघ की उपादेयता' निबन्ध के आधार पर अपने विचार स्पष्ट करो। (प्रभाकर, जून १९५४)

उत्तर—मानव जाति के इतिहास में विश्व राज्य की एक निश्चित किन्तु कुछ बिखरी हुई सूचना है। पहले मनुष्य की व्यक्तिगत सत्ता नही होती थी। सब अधिकार बडे-बूढो के पास हुआ करते थे। धीरे-धीरे मनुष्य की व्यक्तिगत सत्ता स्वीकार हुई और मनुष्य की आवश्यकता मे अथवा अन्दर की प्रेरणाओ ने उसे विवश किया कि वह सघ की ओर झुके, जिससे मनुष्य परिवार, वश कुल, जाति तथा राष्ट्र के रूप मे आया। कई राष्ट्रो को मिला-कर राष्ट्र-सघ बने।

मनुष्य ज्यो-ज्यो सघ की भावना को अपनाता गया और उसमे जहाँ प्रेम और सगठन की भावना अपना विस्तृत रूप ग्रहण करने लगी, वहाँ उसमे घृणा

और द्वेष भी अधिक होते गये। क्योंकि एक परिवार, वर्ग, जाति या राष्ट्र के प्राणी तो परस्पर बड़े प्रेम से रहने लगे, परन्तु वे दूसरे परिवार, वर्ग, जाति अथवा राष्ट्र से घृणा-द्वेष करने लगे। प्राय देखने मे आता है कि पुरुष-स्त्री की खुली चुनौती रहती है कि जितना प्रेम हम परस्पर और अपनी सन्तान से करते है उससे अधिक और कोई दूसरा नही कर सकता, परन्तु मनुष्य मे प्रेम-भावना तथा सगठन के बढने के साथ-साथ पारस्परिक युद्ध भी विशाल तथा अधिक भयानक होते गये। दो राष्ट्रो के युद्ध मे भयकर रक्तपात होने लगा। ऐसी परिस्थिति मे सघ राष्ट्रो का निर्माण हुआ। जैसे अमेरिका ने अपने छोटे-छोटे चालीस राष्ट्रो को मिलाकर सयुक्त राज्य अमेरिका की स्थापना की, परन्तु इससे साम्राज्यवादी भावना को जन्म मिला और पडौसी राज्यो को कुचला गया। मनुष्य को कुछ ऐसा अनुभव हुआ कि इससे भी विस्तृत रूप ग्रहण किया जाये, जिसमे सभी मिलकर रहे और युद्ध आदि समाप्त हो जायें। सन् १९३९ ई० मे फेडरल यूनियन की स्थापना हुई। इस सघ मे एशिया के ही नही, ससार के परतन्त्र अथवा अशिक्षित समस्त देशो को छोड़ दिया गया। केवल पन्द्रह राज्यो को ही इसमे रखा गया जैसे—अमेरिका, ब्रिटेन, फ्रास, कैनेडा, स्वीडन, नार्वे, न्यूजीलेंड, आदि-आदि। इटली, जर्मनी, जापान, रूस और भारत आदि देशो को परतन्त्र अथवा पिछड़ा हुआ समझ कर छोड दिया गया, जिनकी जनसख्या ससार में अपना उपमान आप ही है।

काले-गोरे का भेद रखा गया। गौरांग देशो को ही इस सघ मे स्थान मिला जिनसे शाति की अपेक्षा अशाति छा गई।

डा० वेणीप्रसाद ने अपने 'योगी' नामक समाचारपत्र मे लिखा था कि जब तक एशिया, अफ्रीका तथा विश्व के दूसरे देशो मे साम्राज्यवादी शोषण तथा विदेशी शासन रहेंगे तब तक शान्ति स्थापित नही हो सकती। इसे देख-कर तो ऐसा ही कहना पडेगा कि राज्य है ही झगड़े की वस्तु। पहले राज्य छोटे थे तो लड़ाइयाँ भी छोटी थी, अब राज्य बडे हो गये हैं तो युद्ध भी बड़े ही होते हैं। अब तो इसका एक ही उपाय है कि विश्व-संघ की स्थापना के समय किसी भी देश को चाहे वह स्वतत्र है अथवा परतन्त्र और चाहे सभ्य है अथवा असभ्य, बाहर न रहने दिया जाये। विश्व मे एक ही सघराज्य हो, विश्व

में एक झण्डा और एक आदर्श ही हमारे जीवन का लक्ष्य होना चाहिए। हम अद्वैतवादी विचारधारा को अपना ले। विश्व एक नगर है, हम उसके नागरिक है, आर्थिक दृष्टि से पूँजीवाद की जगह लोकतन्त्रात्मक समाज को अपनाएँ।

इस प्रकार साधारण भूल से विश्वसघ की स्थापना में असफलता मिलती रही। वह भूल थी, अपने को उन्नत और दूसरे को अवनत समझने की भावना। अब इस भूल को छोडने मे ही कल्याण है। विश्व मे विशाल दृष्टिकोण लेकर विश्वसघ स्थापित करने की अत्यन्त आवश्यकता है।

प्रश्न ६—'चेतना प्रवाह' पर एक लघु निबन्ध लिखो।

(प्रभाकर, नवम्बर, १९५३)

अथवा

'चेतना प्रवाह' लेख में श्री पं० चन्द्रमौलि शुक्ल क्या दिखाना चाहते हैं तथा चेतना प्रवाह को वश में रखने से क्या लाभ है।

अथवा

'चेतना प्रवाह' शीर्षक निबन्ध में मनोवृत्तियो की जो व्याख्या की गई है, उसके विषय में आप क्या जानते है ? (प्रभाकर, जून, १९५५)

उत्तर—मनुष्य एक चेतन प्राणी है। वह जागते हुए ही नही, कई बार सोते हुए भी कुछ न कुछ सोचता रहता है। वह इच्छा रखता है, स्मरण रखता है, यही सब चेतना के काम है। इसमें से हर एक को मनोवृति कहते है। मनोवृत्तियाँ मनुष्य के मन में आती-जाती रहती है और परिवर्तित होती रहती हैं। चेतना का प्रवाह नदी की भाँति निरन्तर चलता ही रहता है, जैसे नदी की एक लहर समाप्त होने से पहले ही दूसरी लहर उत्पन्न हो जाती है, उसी प्रकार एक वृत्ति के समाप्त होने से पहले ही दूसरी का जन्म हो जाता है। साधारण वोलचाल मे भी कहते है—"यह हमारे मन की लहर है।" एक उदाहरण लीजिये—एक माली ने आपके सामने गुलाव का फूल रख दिया। फूल को देखते ही अति हर्ष हुआ, जिससे चित मे यह वृत्ति पैदा हुई कि गुलाव का यह फूल अति सुन्दर है। इसके पश्चात् उस फूल के पौधे का स्मरण आयेगा। पुन मन में विचार आता है कि यदि इसको अधिक खाद दी जाती तो फूल

और भी बड़ा होता। बाद से किसी अहीर की गोशाला की याद आई। फिर उस अहीर के पुत्र के शोक की एक लहर उठी। मान लीजिये कई आदमी वहाँ पर और भी बैठे हो, तो उनमें से एक सोच उठे कि ऐसे ही गुलाब के फूलों से इत्र निकलता है। उससे उसे जौनपुर या कन्नौज की याद आ सकती है। जौनपुर से गोमती और गोमती से गगा तथा गगा से किसी ऐसे मित्र को जिसके साथ मिलकर स्नान किया हो, उनसे पत्र की याद आ सकती है। इसी प्रकार तीसरे मनुष्य को गुलाब के फूल को देखकर कमल का और फिर किसी महात्मा के चरणो का और उनसे उनके उपदेशों का, उससे उपदेशमय पुस्तको का, पुस्तको मे मँहगाई का और फिर उससे महायुद्ध का ध्यान आ सकता है।

इनसे स्पष्ट है कि हम एक वस्तु को एक घण्टे या इससे अधिक समय तक चाहे देख सके परन्तु यह असम्भव है कि हम एक घण्टे तक कोई अन्य विचार न आने दें। और यह भी आवश्यक नहीं है कि सब व्यक्तियो के मन में एक ही विचार उठें, परन्तु यह आवश्यक है कि उनके उठने की रीति प्रारम्भ मे एक ही होगी अर्थात् एक वृत्ति से दूसरी वृत्ति, दूसरी से तीसरी और इस प्रकार अनेको वृत्तियाँ उत्पन्न होती जायेंगी।

प्रत्येक मनुष्य के मन में इस प्रकार एक साथ अनेको विचार हो सकते हैं, परन्तु उसमें प्रधानता एक ही की होगी। वास्तव में हमारे मन की दशा अराजक देश के समान है, जहाँ जिसका बल हुआ वही गद्दी पर बैठ गया तथा अपने अनुकूल लोगो को मन्त्री, कोषाध्यक्ष आदि बना दिया। एक उदाहरण देखिये—कल्पना करें कि मैं अर्थात् लेखक कुछ लिख रहा हूँ, हवा बन्द है, घूप चट रही है, सामने घड़ी रक्खी है, नौ बज चुके हैं। देरी होने का ध्यान मन के कोने में पड़ा है। पेड़ के नीचे बच्चे रोते तथा चिल्लाते हैं, परन्तु फिर भी वह लिखने मे मग्न है। बच्चों के अधिक शोर करने पर लिखना छोड़ बच्चों को डाँटने उठा। परन्तु पुनः शीघ्र ही लिखने मे लग गया। इससे स्पष्ट होता है कि प्रारम्भ में लिखने और उसके पश्चात् बच्चों के शोर की वृत्ति अपना मुख्य स्थान रखती है।

अध्यापक के काम मे भी सबसे अधिक कठिनाई यही होती है कि बालक के मन में एक ही साथ बहुत से विचार आते है, जिससे उसका मन पढने में नही लगता। ऐसी परिस्थिति में एक अध्यापक का काम चतुर सेनापति की भाँति होता है जो शत्रुसेना को दो ओर जल से, तीसरी ओर पहाडियो से घिरे स्थान मे जाने को विवश करता है और चौथी ओर स्वय आक्रमण करता है, जिससे सफलता निश्चित रहती है। परन्तु सफल सेनापति ऐसा उपाय भी करता है कि शत्रु यह न समझे कि मुझे उस स्थान पर भेजा जा रहा है या वह शत्रु की चतुरता से वहाँ जाने के लिये विवश है। इसी प्रकार चतुर अध्यापक बच्चो पर यह कभी भी प्रकट नही करता है कि मै तुम्हे पाठ के अतिरिक्त अन्य विषयो पर ध्यान भी न देने दूँगा।

चेतना की उपमा नदी से दी ही जा चुकी है। कल्पना कीजिये किसी नदी की चौडाई सौ हाथ है और उसकी औसत गहराई दस हाथ है। उसी नदी का पाट कुछ दूर आगे चलकर पच्चीस हाथ रह जाता है तो यह आवश्यक है कि उसकी गहराई और गति मे पर्याप्त अन्तर पड जायेगा। इससे स्पष्ट है कि मनोवृत्ति का फैलाव भी कम-से-कम होना चाहिये जैसे योगी जितना चित्त को एकाग्र कर लेगा, उतना ही अधिक अपने योगाभ्यास मे सफल रहेगा। यदि हमारे विचार एकाग्र होगे तो किसी भी कार्य मे शीघ्र-से-शीघ्र सफलता प्राप्त कर सकेंगे।

मनोवृत्तियो मे तीन प्रकार की बाते रहा करती है—(१) क्षोभ, (२) ज्ञान, (३) इच्छा। यद्यपि क्षोभ, ज्ञान, इच्छा के अश हर मनोवृत्ति में रहा करते हैं और उनमे से प्रधानता किसी-न-किसी एक की ही रहती। उसी प्रधानता के अनुसार उस वृत्ति को क्षोभवृत्ति, ज्ञानवृत्ति या इच्छावृत्ति कहते है। कल्पना कीजिए कोई लडका खेलते हुए गिर पड़ा। उसके पैर मे मोच आ गई; इच्छा, ज्ञान और क्षोभ तीनो एक साथ उत्पन्न होगे। परन्तु उसके हृदय मे इस इच्छा की प्रधानता रहेगी कि वह शीघ्र ठीक हो जाये। कुछ अन्य लोग आते है उनमें भी क्षोभ, ज्ञान, इच्छा तीनो उत्पन्न होंगे परन्तु ज्ञान की प्रधानता देखने में आती है। वह जानना चाहेगे कि कौन गिरा, कहाँ गिरा, कैसे गिरा और कहाँ चोट लगी ? इस प्रकार इनका भिन्न-भिन्न ज्ञान प्राप्त करना वैसे ही कठिन

है जैसे किसी फूल मे रंग, गंध, आकार को अलग करके देखना। इन तीनो के समूह का नाम ही मन है। हाँ, पृथक्-पृथक् ज्ञान अवश्य प्राप्त कर सकते हैं इनके लिये एक पर ही समस्त विचार लगा देने की आवश्यकता होती है। जैसे फूल के आकार का ज्ञान प्राप्त करते समय आकार में और रस का ज्ञान प्राप्त करते समय रस मे मग्न हो जायें किन्तु वास्तव में मन की वृत्तियो का तो घनिष्ठ सम्बन्ध होता है।

प्रश्न १०—'परमाणु बम' निबन्ध का सार अपने शब्दों में लिखो।

(प्रभाकर, नवम्बर, १९५२)

अथवा

श्री ए० सी० बनर्जी द्वारा लिखित 'परमाणु बम' लेख का भावार्थ अपने शब्दों में लिखो।

उत्तर—प्रस्तुत लेख के लेखक श्री ए० सी० बनर्जी हैं। इस लेख मे उन्होंने परमाणु-बम की भयकरता पर प्रकाश डाला है। इसके आविष्कार और अन्त में परमाणु शक्ति को निर्माण कार्य मे लगाने के विषय मे लेखक ने अपने विचार प्रकट किये हैं।

जापानी महायुद्ध को शीघ्र समाप्त कर देने वाले परमाणु-बम का आविष्कार आज से लगभग पन्द्रह वर्ष पूर्व हुआ। जनवरी १९३८ को वैज्ञानिकों की जो बैठक अमरीका में हुई उसमे पहले-पहल ही प्रो० बोम और फर्मी ने एक आश्चर्यजनक नये आविष्कार का परिचय दिया। इस प्रयोग की खोज का श्रेय डा० ओटोहान तथा डा० स्टाटसमैन को था। इस बात का ज्ञान वैज्ञानिकों को पहले से था कि सभी पदार्थ अति सूक्ष्म कणो से बने है। इन कणो को हम परमाणु कहते हैं। परमाणु अति सूक्ष्म होते हैं अर्थात् एक तोले सोने के खरबवें भाग में ३।। खरब परमाणु होते हैं। हम किसी पदार्थ को परमाणु में विभाजित नहीं कर सकते। परमाणु के केन्द्रीय बीज में दो प्रकार के कण होते हैं—(१) न्यूट्रन, (२) प्रोटन। इन दोनो का वजन बराबर होता है परन्तु प्रोटन मे विद्युत्-कण रहते हैं और न्यूट्रनों मे उनका अभाव रहता है। जैसे हाइड्रोजन के परमाणु मे केवल एक प्रोटन रहता है। लोहे के परमाणु मे २६ प्रोटन और सोने

के परमाणु मे ७९ प्रोटन रहते है। यदि किसी प्रयोग द्वारा लोहे के परमाणुओ की सख्या ७९ की जा सके तो लोहा सोना बन जायगा। इस प्रकार का प्रथम प्रयोग प्रसिद्ध वैज्ञानिक रदरफोर्ड के द्वारा किया गया। उन्होने नाइट्रोजन गैस को आक्सीजन गैस मे परिवर्तित कर दिया। रदरफोर्ड का अनुकरण अन्य वैज्ञानिको ने किया, परन्तु वे एक-दो को छोडकर अधिक प्रोटनो का अन्तर न ला सके। इसका कारण इन न्यूट्रन तथा प्रोटनो का एक दूसरे के प्रति प्रबल आकर्षण तथा एक दूसरे से बन्धे रहना है। रेडियम धातु में यह बन्धन इतना क्षीण होता है कि उसमे से प्रोटन तथा न्यूट्रन अपने आप निकला करते है। यूरेनियम के परमाणु सबसे बडे होते है। उनके न्यूट्रनो और प्रोटनो के बीज का बन्धन इतना अधिक नही होता, इसलिये उन पर जब न्यूट्रन कणो से गोलाबारी की जाती है तो वह टूटकर दो टुकडो मे बट जाते है। ये दो टुकडे बोरियम तथा क्रिप्टन के परमाणु के होते हैं। परमाणु के टूटने से बहुत सी शक्ति निकलती है। इसी शक्ति के उपयोग करने से परमाणु बम इतना विध्वसकारी बन सका है। पदार्थ को शक्ति के रूप, मे परिवर्तित किया जा सकता है। थोडे से पदार्थ से अत्यधिक शक्ति निकाली जा सकती है। यदि एक सेर कागज को शक्ति मे परिवर्तित किया जा सके, तो इतनी शक्ति प्राप्त हो सकेगी जितनी २५ करोड सेर कोयला के जलाने से होती है। एक सेर यूरेनियम पाँच लाख मन बारूद के बराबर शक्ति निकालेगी। एक सेर यूरे-नियम के फटने से पूरा कलकत्ता नगर नष्ट हो सकता हैं। यदि इस शक्ति को ध्वस-कार्य मे प्रयोग न कर निर्माण मे लगाया जाये तो ससार के मरुस्थल हरे-भरे हो सकते हैं।

ऊपर की बातो से यह समझा जा सकता है कि परमाणु बम के अन्दर दो वस्तुए रहती हैं। यूरेनियम पर गोलाबारी करने के लिये न्यूट्रन उत्पादन वस्तु तथा न्यूट्रन उत्पादन के लिए रेडियम धातु रहती है, जिससे निरन्तर 'ब' कण निकलते हैं। बम समय से पूर्व न फट जाय, इसीलिए रेडियम को सिलिकन के पर्दे से ढक देते है। जब बम गिरता है तो पर्दा फट जाता है और 'ब' कण निकलकर बेरिलियम धातु के झोके से टकराते है। एक बात और है कि भिन्न-भिन्न पदार्थो के परमाणु-बीज मे प्रोटनो की सख्या भिन्न-भिन्न होती है। इसके

विपरीत कुछ परमाणु ऐसे होते है जिनके बीज मे प्रोटनो की सख्या तो वही होती है परन्तु न्यूट्रनो की सख्या भिन्न होती है। यूरेनियम के इस प्रकार तीन रूप मिलते है, केवल एक रूप यूरेनियम-२३५ से ही परमाणु टूट सकते है अन्य रूपो से नहीं। साधारण यूरेनियम धातु में 'यू'-२३५' की मात्रा वहुत ही थोडी होती है। यह केवल १४०वा भाग होता है। परन्तु अव ऐसा साधन वैज्ञानिको ने खोज लिया है, जिससे पर्याप्त मात्रा मे 'यू-२३५' अलग किया जा सके। इसके विना परमाणु वम वनना असभव है।

इस भयकर परमाणु-वम की पहली परीक्षा अमरीका मे १६ जुलाई सन् १९४५ ई० मे हुई। एक लोहे की मीनार पर वम रखा गया और ५ मील दूर से विजली के तार द्वारा घोडा दवाया गया। २५० मील दूर तक खिडकियाँ झनझना उठी। लोहे की मीनार भाप वनकर उड गई और वहाँ पर भारी गड्ढा पड गया। उसके पश्चात् इसका प्रयोग जापानी नगरो मे हुआ। एक-एक वम से पूरे नगर साफ हो गये। वैज्ञानिको से अनुरोध है कि वे ऐसी भयकर शक्ति को ध्वस कार्य मे न लगाकर निर्माण कार्यो में उसका प्रयोग करें।

प्रश्न ११—'भारतीय दर्शन और आधुनिक विज्ञान' इस निवन्ध को ध्यान में रखते हुए भारतीय दर्शन के द्रव्यो और तत्वों तथा आधुनिक विज्ञान के मूल तत्वों की तुलना करो। (प्रभाकर, जून, १९५३)

अथवा

"इन नव द्रव्यों को यदि 'विज्ञान सार' कह द तो कोई अत्युक्ति न होगी।" इस उक्ति की सार्थकता अपनी पाठ्य पुस्तक के आधार पर सिद्ध कीजिये।

उत्तर—श्री प्रो० जगत्विहारी सेठ ने इस लेख मे वताया है कि भारतीय दर्शन और आधुनिक विज्ञान एक ही है। भारतवर्ष के प्राचीन महर्षियो ने छ दर्शनो की रचना की। उनमे कणाद-रचित एक वैशेषिक दर्शन भी है। इस मे सात पदार्थो पर विशेप रूप से विचार किया गया है। उनमे पहले का नाम द्रव्य है। द्रव्यो की सख्या नौ मानी गई है—पृथ्वी, जल, वायु, तेज,

आकाश, मन, आत्मा, दिक् और काल। इनमें प्रथम चार ही शरीर वाले माने गए है। इन चार द्रव्यो के योग से सारी सृष्टि की रचना मानी गई है। यदि इन नवद्रव्य-सूचित शब्दो का भावसूचक अर्थ लिया जाए, तो इन्ही नौ द्रव्यो की पूरी-पूरी व्याख्या और ठीक खोज मे सारा-का-सारा विज्ञान अतर्गत हो जाता है। अतएव इसे यदि विज्ञान-सार कह दें तो कोई अत्युक्ति नही होगी।

हमारे प्रथम तत्व-चतुष्टय वाले सिद्धान्त को यूनानी विद्वान् अरस्तू ने स्वीकार किया। यह और बात है कि अग्नि को तेज रूप मे माना। जिस समय रोम का यूनान पर अधिकार हो गया, तो उन्होने व्यावहारिक ज्ञान को तो अपना लिया पर सूक्ष्म ज्ञान को छोड दिया। पर जिस समय आधुनिक विज्ञान की नीव डालने का प्रश्न उत्पन्न हुआ तो उस समय तत्व-चतुष्टय वाले सिद्धान्त को ही अपनाया गया। इससे स्पष्ट है कि आधुनिक विज्ञान का आधार हमारे तत्व-चतुष्टय हैं। आधुनिक विज्ञान ने यह सिद्ध कर दिखाया है कि कुल चार ही नही लगभग ९० ऐसे पदार्थ है जो नितान्त विशुद्ध है, जिनमे कोई भी अन्य प्रकार के पदार्थ नही मिले हुए है जिनको मूलतत्वो की पदवी दी गई। मूलतत्वो की यथार्थ परिभाषा के अनुसार पृथ्वी, जल, वायु तत्व नही। ये स्वय उपर्युक्त ९० तत्वो मे से दो या दो से अधिक के यौगिक है।

आधुनिक विज्ञान तेज को द्रव्य नही मानता, क्योकि न इसको छू सकते है और न ही इसमे बोझ होता है परन्तु इसके अस्तित्व मे कोई भी सदेह नही कर सकता। तेज भले ही दिखाई न दे परन्तु उससे उत्पन्न विद्युत और आग को तो मानना ही पडता है। अत इन्ही वस्तुओ को अग्रेजी मे (Energy) कहते हैं। तेज की वह स्थिति है जो कठपुतलियो को नचाने वालो की होती है। जैसे जब कठपुतलियाँ नाच-तमाशा करती है तो ऐसे मालूम होता है कि वे स्वय ही नाच कर रही हो परन्तु उनको नचाने वाले कही भीतर ही छुपे रहते हं। तत्व-चतुष्टय को सावयव कहा है। यदि सावयव का अर्थ ऐसे द्रव्य से लिया जाए जिसका परमाणु हो सके, जिसकी मात्रा और माप किया जा सके तो तेज भी अवश्य सावयव पदार्थ है। प्रथम तीन तत्वो को ठोस, द्रव और गैस का पर्यायवाची समझा जा सकता है अर्थात् पृथ्वी स्थूल, जल द्रव तथा वायु

गत हैं। इसलिए इन तीन द्रव्यों को समझना चाहिए। पदार्थ (अंग्रेजी का मैटर Matter) कोई भी वस्तु क्यों न हो उसको मापने के लिए तीन वस्तुओं की आवश्यकता होती है—पहला पुंज, दूसरा आयाम और तीसरा समय। वैशेषिक के प्रथम तीन द्रव्य पुंज पदार्थमात्रा के सूचक हैं। 'काल' तो है ही समय। दिक् को आयाम के अन्तर्गत लेने में किसी प्रकार की आपत्ति नहीं होनी चाहिए। जहाँ तक आत्मा का सम्बन्ध है उसे जीव-शास्त्र के अन्तर्गत माना जा सकता है इसकी भी दो शाखाएँ हैं, वनस्पति-विज्ञान, प्राणी-विज्ञान। आठवें द्रव्य मन का अध्ययन विज्ञान का एक और अंग प्रस्तुत करता है, वह है मनोविज्ञान। आकाश को आधुनिक विज्ञान के ईथर के अतिरिक्त और कुछ नहीं समझ सकते। वह एक ऐसा द्रव्य है जिसका अस्तित्व सिद्ध करने के लिए कितने ही पूर्ण प्रयोग किए जा चुके हैं परन्तु सब निष्फल हुए।

संक्षेप में हम कह सकते हैं कि भारतीय वैशेषिक दर्शन के नव द्रव्य तथा आधुनिक विज्ञान में पर्याप्त समता है। इन दोनों का आधार एक ही कहा जाए तो असंगत न होगा।

प्रश्न १७—'भारत की राष्ट्र-भाषा अथवा लिपि' लेख का सार लिखें।

अथवा

'भारत की राष्ट्र भाषा तथा लिपि' इस निबन्ध में श्री राहुलसांकृत्यायन ने जो विचार प्रकट किये हैं उनसे आप कहाँ तक सहमत हैं?

(प्रभाकर, जनवरी, १९५३)

अथवा

'भारत की राष्ट्र-भाषा और लिपि' नामक निबन्ध के आधार पर भारतीय राष्ट्रसंघ की सभी प्रादेशिक भाषाओं की एक लिपि की उपयोगिता पर अपने विचार प्रकट करो।

(प्रभाकर, जून, १९५६)

उत्तर—प्रस्तुत लेख के लेखक श्री महापण्डित राहुलसांकृत्यायन जी हैं। इसमें इन्होंने युक्तियों से सिद्ध किया है कि भारत की राष्ट्र-भाषा और लिपि देवनागरी ही हो सकती है। किसी अन्य भाषा को राष्ट्रभाषा तथा अन्य लिपि को राष्ट्रलिपि बनाना देश के लिये हानिकारक होगा।

हमारा देश अब वह नहीं रहा जो सदियों से चला आ रहा था। जिस

समय आज का हिन्दी-भाषा-भाषी भाग परतन्त्र हुआ, उस समय हिन्दी का जो रूप कन्नौज व पटना में बोला और लिखा जाता था उसका आरभ सातवी शताब्दी मे हुआ। धीरे-धीरे वह रूप उन्नत होता गया। लल्लूलाल, भारतेन्दु, गोविंदराय मिश्र, प्रेमघन, महावीरप्रसाद द्विवेदी, श्रीधर पाठक तथा अन्य कितने ही विद्वान् हिन्दी के जिस रूप और पद के स्वप्न देखते चले गये, वह आज पूरा हुआ। भारत के पतन के काल मे हमारी भाषा भी पतनावस्था मे रही, परन्तु आज जब कि भारत पुन एक सघ मे बद्ध हुआ है, हमारी यह आदर्श भाषा सभी उत्तर-दायित्व सभालने के योग्य बन चुकी है, परन्तु कुछ थोडे से मनुष्य अपने व्यक्तिगत विचार लेकर बाधा डालते है। आश्चर्य तो इस बात का है कि अब भी कुछ मनुष्य अंग्रेजी भाषा को राष्ट्रभाषा के रूप मे देखना चाहते है। जहाँ तक हिन्दी और उर्दू का सम्बन्ध है, दोनो को तो एक साथ राष्ट्रभाषा नही बनाया जा सकता। स्विट्जरलैंड का तीन भाषाओ का उदाहरण लागू हो सकता था यदि हमारा देश एक तहसील के बराबर होता। भारत की तुलना तो सोवियत सघ से करनी चाहिए, जहा ६६ भाषाए बोली और लिखी जाती हैं परन्तु राष्ट्रभाषा रूसी ही है। हिन्दी एक ऐसी भाषा है जिसका सम्बन्ध आसामी, बगाली, उडिया, मराठी, गुजराती, पंजाबी से पाया जाता है और जिसका प्रदेश बहुत दूर तक फैला हुआ है। हिन्दी जानने वाले के लिए ऊपर लिखी भाषाओ को समझना बहुत सरल है। लेखक अपने विषय मे कहता है कि मैने उडिया नही पढी थी और कटक में नाटक देखने गया तो उसको भी मैने ८० प्रतिशत समझ लिया। हिन्दी भाषा को गुजराती, मराठे, बगाली भली-भाँति समझ जाते हैं, यदि इसका सम्बन्ध फारसी व अरबी से न जोड़कर सस्कृत मे जोडा जाये। यह कहना कि हिन्दी वाले सारे देश पर शासन करना चाहते है, सर्वथा असत्य है। प्रत्येक प्रान्त मे अपनी-अपनी भाषा फलती-फलती रहेगी जैसे बगाल के आरम्भिक स्कूलो तथा साहित्य मे बगाली, पजाब में पजाबी, मद्रास में मद्रासी। राष्ट्रभाषा का तात्पर्य प्रान्तो के परस्पर व्यवहार की भाषा से है न कि प्रान्तीय भाषा के कुचलने से। भारत के लिए राष्ट्रभाषा कौन सी हो, यदि इसका उत्तर पाना चाहे तो संन्यासियो के अखाडे मे जाकर देखो। प्रत्येक प्रान्त के साधु मिलेंगे, पर परस्पर वार्तालाप के समय हिन्दी का

ही प्रयोग करेंगे। मुसलमानो को यदि भारत मे रहना है तो उन्हे चाहिये कि भारतीय संस्कृति तथा भाषा का विरोध करना छोड दें। वे हमारी उदारता का अनुचित लाभ न उठायें।

राष्ट्र-लिपि—जहा तक राष्ट्र-लिपि का सम्बन्ध है वह देवनागरी ही हो सकती है। कई विरोधी राष्ट्र-लिपि के प्रश्न पर भी व्यर्थ की आपत्ति करने बैठ जाते हैं। एक ओर मुसलमान उर्दू लिपि की रट लगाते हैं जो कि वस्तुत. अरबी लिपि है, जिसे इस्लामी देश भी निर्वासित कर चुके हैं। रोमन लिपि को हम तब बनायें जब हमारी देवनागरी लिपि मे कोई त्रुटि हो। टाइप राइटरों और प्रेस मे कुछ सुधार की आवश्यकता है और ये सुधार संयुक्त अक्षरो के हटाने और मात्राओ को ऊपर लगाने तथा मात्रा को अपने शरीर तक समेट कर किया जा सकता है। इससे हिन्दी टाइप राइटरो के अक्षरो की संख्या १०४ हो जायेगी। अंग्रेजी मे १४७ अक्षरो का फाट होता है। इस प्रकार हम पूछते है कि क्या रोमन लिपि देवनागरी से अधिक वैज्ञानिक है ? यह गर्व से कहा जा सकता है कि हमारी देवनागरी लिपि संसार की सब लिपियो से अधिक वैज्ञानिक लिपि है। रोमन लिपि के २६ अक्षर हमारे सब अक्षरो का उच्चारण नही कर सकते।

इस प्रकार भारत की राष्ट्र-भाषा हिन्दी और लिपि देवनागरी के अतिरिक्त और किसी भाषा या लिपि को स्थान नही दिया जा सकता, परन्तु केवल हिन्दी और देवनागरी को राष्ट्र-भाषा और लिपि बना देने से तो देश उन्नति नही कर सकता। आज के वैज्ञानिक युग मे हमे अपनी राष्ट्र-भाषा को शिक्षा का माध्यम बनाना होगा तथा विज्ञान के सब ग्रन्थों का उसमे अनुवाद करना होगा। यह काम यदि मन लगाकर किया जाये तो कठिन नही है। हमारे ७२ करोड़ हाथ हैं। हमे विश्व की सबसे बड़ी तीन शक्तियो में स्थान लेना है। इसलिए अब भारत के प्रत्येक पुत्र-पुत्री के विश्राम करने का समय नही है। हमे चाहिये कि हम भारत माता के प्रति अपने कर्त्तव्य का पालन करने मे जुट जायें।

प्रश्न १२—हास्य के मनोवैज्ञानिक कारणों पर प्रकाश डालते हुए

बताइये कि श्री कृष्णदेवप्रसाद गौड़ अपने लक्ष्य में कहां तक सफल रहे हैं ?

अथवा

हम क्यों हँसते हैं ? इसका मनोवैज्ञानिक विश्लेषण कीजिए तथा अपने जीवन से उदाहरण देकर अपनी व्याख्या को स्पष्ट कीजिये। (जून, १६५७)

उत्तर—हँसी क्यो आती है ? इसका उत्तर प्राय. यही दिया जाता है कि शब्दो मे श्लेष व्यवहार से, किसी विचित्र आकार को देखकर, या किसी को साइकिल से सडक पर गिरता देखकर, हँसी आ जाती है। परन्तु इन सब व्यवहारो में कोई-न-कोई ऐसी वात अवश्य छिपी रहती है जो सबमें सामान्य है। हमारे प्राचीन आचार्यो ने हास्य-रस को दस रसो में से एक रस अवश्य माना है। उसके स्थायी भाव, देवना आदि को भी स्थिर किया, परन्तु किसी ने भी हँसी के कारणो पर प्रकाश नही डाला। यहाँ तक कि अफलातूँ जैसे विद्वान् भी इस पर प्रकाश डालने की चेष्टा मे असफल रहे। इसी प्रकार स्पेंसर आदि विद्वान् भी सूक्ष्मता मे नही जा सके।

प्रत्येक परिहासपूर्ण विषय में तीन वातो का होना आवश्यक है—(१) मानवता, (२) वेदना तथा करुणा का अभाव, (३) प्रतिध्वनि या सामाजिकता।

(१) मानवता—वहुत से लोगो ने मनुष्य को वह प्राणी वताया है जो हँसता है। किसी पेड की डाली का रूप किसी मनुष्य के चेहरे के आकार की भाँति वन गया हो अथवा किसी पर्वत की शिला का रूप किसी व्यक्ति के सामान हो तो उसे देखकर हँसी आ जाती है। इसी प्रकार विचित्र टोपी या कुर्ता देखकर हँसी आ जाती है, परन्तु ध्यान रहे हँसी टोपी या कुर्ते पर नही आती वल्कि उस व्यक्ति पर आती है जिसने उन्हे पहन रखा है।

(२) वेदना अथवा करुणा का अभाव—हमारे आचार्यो ने करुण रस को हास्यरस का विरोधी माना है। भावुकता हास्यरस की सब से वडी शत्रु है। गम्भीर व्यक्तियो को प्रथम तो हँसी आती ही नही, यदि आती भी है तो शीघ्र ही समाप्त हो जाती है। तुलसीदास ने अपने एक सवैये मे व्यग्य द्वारा जो परिहास किया अर्थात् भगवान् राम के वन मे जाने पर सभी ऋषि-मुनि प्रसन्न हो गए, क्योकि राम के चरण की धूलि छूने पर सभी पत्थर सुन्दरियाँ वन जायेगी तो हमे भी चार दिन सुख के विताने का अवसर मिल जाएगा। हँसी

अवश्य आती है परन्तु उन साधुओं के आचरण को देख शीघ्र ही ग्लानि होती है। इसी प्रकार देहाती स्त्रियों के रोने पर हमारा हृदय वेदना से भर जाता है परन्तु यदि हमें यह विश्वास हो जाए कि इनका कोई मरा नहीं तो शीघ्र ही हँसी आजाएगी।

(३) प्रतिध्वनि या सामाजिकता—हँसी अकेले नहीं आती वह प्रतिध्वनि चाहती है परन्तु इसके लिए एक विशेष समुदाय या समाज की आवश्यकता रहती है।

उपर्युक्त तीन कारणों के अतिरिक्त आशा के विपरीत कार्य होना भी हँसी का कारण बन जाता है। जैसे—हमारी आशा यही होती है कि मनुष्य साईकल पर जा रहा होगा। परन्तु यदि मनुष्य पर साईकल जा रही हो तो हँसी अवश्य आ जाएगी। इसी प्रकार गौडजी ने लिखा है कि हम एक मित्र के यहाँ तेरहवी पर गए। कुछ मित्र बैठे हँसी-मजाक कर रहे थे। जिनके घर हम गए थे उन्हे बुरा लगा। जब उन्होंने टोका तो एक सीधे सज्जन ने उत्तर दिया कि फिर ऐसे अवसर पर आयेंगे तो नहीं हँसेंगे। यह सुनकर सब कहकहा मारकर हँस उठे, क्योंकि उत्तर आशा के विपरीत था। इसी प्रकार स्कूल के पास ठहरी बारात का उदाहरण देते हुए गौड़जी ने बताया कि जिस समय विद्यार्थियो ने तम्बू की रस्सी को खोल दिया, उस समय तम्बू गिरने से सभी हँस पडे क्योंकि नीचे नाच हो रहा था। सक्षेप मे हम कह सकते है कि गम्भीरता तथा वेदना का अभाव हास्य के लिए आवश्यक है। किसी गम्भीर बात पर साधारण सा परिवर्तन होने पर हँसी तो अवश्य आ जाती है, पर यह हँसी शीघ्र ही अपना गम्भीर रूप धारण कर लेती है। मानो कई सज्जन कपड़े पहनकर कहीं जाने के लिए तैयार है और पान मागते है। स्त्री तश्तरी मे पान लाकर देती है। पूरी गम्भीरता है, परन्तु पान मे चूना अधिक होने पर, खाने वाला व्यक्ति मुँह बनाता है तो हँसी आ जाती है परन्तु यदि खाने वाला तश्तरी स्त्री के मुँह पर मार देता है तो हँसी घृणा-का रूप धारण कर लेती है।

प्रश्न १४—"विकासवाद—ह्रासवाद" लेख का सार अपने शब्दों में लिखें।

अथवा

'विकासवाद या ह्रासवाद' इन दोनों में सत्य किसे समझना चाहिये।

(प्रभाकर, जून, १९५६)

उत्तर—प्रस्तुत लेख के लेखक श्री आचार्य विश्वबन्धु जी है। इस लेख मे इन्होंने बताया है कि विकासवाद किसे कहते है तथा उसके सिद्धान्त क्या है ? इसी प्रकार ह्रासवाद से क्या तात्पर्य है और इसके सिद्धान्त क्या है ? और कौन सा वाद सत्यमय और कौन सा असत्यमय है ?

विकासवाद—विकासवादियो का कहना है कि हम मानते है कि सभ्य ससार मे वैदिक सभ्यता अति प्राचीन है तथा उसका साहित्य प्राचीनतम साहित्य है, परन्तु क्या आज के मनुष्य की आवश्यकताओ की पूर्ति वैदिक सभ्यता से हो सकती है ? उत्तर मिलेगा—नही। कभी नही ! आज मनुष्य विज्ञान के सहारे कही का कही पहुँच चुका है। विज्ञान द्वारा रेल, वायुयान आदि को पाकर उसे अश्व-यानो या गो-यानो का वर्णन अपनी ओर आकर्षित नही कर सकता। आज वैदिक सभ्यता का उद्धार करना वैसे ही व्यर्थ है जैसे जगल मे रोना अथवा वेदो-शास्त्रो के पठन-पाठन करने से वैसे ही परिश्रम व्यर्थ होगा जिस प्रकार समस्त दिन परिश्रम करके पहाड़ खोदने पर अन्त मे चूहा हाथ लगे और मनुष्य यह कहकर सन्तोष करे कि अच्छा—"लाज तो रह गई !" इस प्रकार विकासवाद के अनुसार मनुष्य सदैव विकास अर्थात् उन्नति को प्राप्त होता है तथा विश्व उन्नतिशील है।

ह्रासवाद—ह्रासवादियो के मतानुसार मनुष्य दिन-प्रतिदिन अवनति को प्राप्त कर रहा है। आज की स्थिति देखकर रोना आता है कि मानव कितना पतित हो गया है। आज मनुष्य स्वार्थ का पुतला बन चुका है, न वह धर्म रहा है और न वह कर्म। यदि किसी मनुष्य को किसी बुरे काम से रोका जाता है तो वह कहता है कि—"यह रीति मेरे पूर्वजो की है।" विकासवादियो के इस मत का कि आज तू और मै के शब्दो ने कोसो के विस्तार में भी न समाने वाले साहित्य का रूप धारण कर लिया है, ह्रासवादी उत्तर देते हुए कहते हैं

कि कहाँ प्राचीन वैदिक साहित्य और कहा आज की नीरस उद्देश्यरहित कविताए। आज मानव में प्रेम, त्याग, सहानुभूति तो देखने को भी नहीं है।

कौन सा मत सत्य है?—अब प्रश्न यह उठता है कि विकासवादी सत्य की ओर जा रहे हैं या ह्रासवादी। यदि सूक्ष्मता से देखे तो दोनों मे सत्यता है परन्तु एकागी। हम मानते है कि मनुष्य पहले की अपेक्षा भौतिक उन्नति प्राप्त कर चुका है वह प्रकृति अर्थात् सूर्य, चन्द्र, तारे, समुद्र तथा आकाश जो उसके लिये एक रहस्य थे तथा जिनकी वह पूजा किया करता था, आज उन्ही पर उसका अधिकार हो चुका है। इसी प्रकार अन्य कई सुखदायक आविष्कार जो प्राचीन काल मे मानव को प्राप्त नही थे, उन्हे मनुष्य पा चुका है। परन्तु क्या इन्ही कारणो से मनुष्य अपने लक्ष्य तक पहुँच सकता है? नही! उसे अपने जीवन मे धर्म, त्याग आदि की भी अत्यन्त आवश्यकता है, जिसका आज ह्रास होता चला जा रहा है। इस नाते ह्रासवादियो को सत्य मानना होगा। वास्तव में देखा जाय तो प्रकृति के नियमानुसार मनुष्य सदैव कुछ विषयो में जहाँ उन्नति को प्राप्त होता है वहाँ अवनति को भी। आज उसने भौतिक उन्नति की तथा आध्यात्मिक क्षेत्र मे उसकी अवनति हुई है। कालिदास जी ने अपने "मालविकाग्निमित्र" नाटक की भूमिका मे कहा है कि "कोई वस्तु इसलिये ग्रहण मत करो क्योंकि वह प्राचीन है और न ही दूसरी का इसलिए अपमान करो क्योंकि वह नई है।" कल्याण इसी में है कि सदा हंस की भाँति अच्छी वस्तु को ग्रहण करें और बुरी का त्याग।

प्रश्न १५—'चार्वाक दर्शन' लेख में श्री बलदेव उपाध्याय क्या दिखाना चाहते हैं।

अथवा

चार्वाकों की तत्व मीमांसा का यथेष्ट वर्णन करते हुए पाश्चात्य भौतिकवाद से इसकी तुलना करें। (प्रभाकर, नवम्बर, १६५८)

अथवा

'चार्वाक दर्शन' से क्या अभिप्रेत है? इसकी अन्य दर्शनों से तुलना करो। (प्रभाकर, नवम्बर, १६५६)

अथवा

"शुद्ध तर्क की उपयोगिता दिखलाकर चार्वाको ने भारतीय विचारकों के

लिए एक मनोरम मार्ग की सृष्टि की है।" क्या आप इससे सहमत हैं ? युक्ति-युक्त उत्तर दीजिए। (प्रभाकर, नवम्बर, १९५७)

उत्तर—सन्देह एक बड़ी विचित्र वस्तु है। इसके बीज यदि किसी दर्शन भूमि मे लग जाते है तो उनको दूर करने के प्रयत्न पर भी वह सर्वथा निर्मूल नही होते। उपनिषदो के पश्चात् की शताब्दियो ने मानो ऐसे एक नये साहित्य को जन्म दिया जिसके मूल मे यह सदेहवाद क्रियाशील था। अवैदिक दर्शनो मे चार्वाक दर्शन ही प्राचीनता की दृष्टि से सर्वप्रथम माना जाता है।

चार्वाक दर्शन के सिद्धान्त—यही लोक आत्मा का क्रीडास्थल है, इसके बाद परलोक नाम की कोई वस्तु नही है, यह शरीर ही आत्मा है, मरण ही मुक्ति है, धर्म कोई पुरुषार्थ नही है, मानव जीवन के लिये काम ही पुरुषार्थ है।

पृथ्वी, जल, वायु तथा तेज से ही यह संसार बना है। बनाने वाला कोई परमात्मा आदि नही। स्वय ही यह ससार बना है और स्वय ही यह नष्ट हो जाता है। चार्वाक दर्शन प्रत्यक्ष ज्ञान को ही सच्चा ज्ञान मानता है। अनुमान आदि मे विश्वास नही रखता। सभी कर्मकाण्ड व्यर्थ हैं। उनका कहना है कि यदि ज्योतिष्टोम महायज्ञ मे मारा गया पशु वास्तव मे ही स्वर्ग पहुँचने मे समर्थ होता है तो ब्राह्मण अपने पिता को ही क्यो नही मारते ?

इसी प्रकार श्राद्ध करने मे मृत प्राणियो को तृप्ति होती है तो तेल डालने से भी बुझे हुए दीपक की शिखा प्रज्वलित हो जानी चाहिये। यदि ब्राह्मण को खिलाने से मृत की तृप्ति हो जाती है तो ब्राह्मण को खिलाने पर चौबारे पर बैठे व्यक्ति की भी तृप्ति हो जानी चाहिए, परन्तु वास्तव मे यह सब व्यर्थ है। ब्राह्मणो का पेट 'लैटर बक्स' नही होता।

ससार मे सुख इसलिये छोड दिये जायँ क्योकि वे दुखो से घिरे हुए हैं, यह सर्वथा असत्य है। खाओ, पीओ, मौज उड़ाओ। जब तक जियो सुख-पूर्वक जियो। क्या इसलिये भोजन न बनाए कि भिखारी मागेंगे ? क्या मछली को इसलिये छोड दिया जाय कि उसके साथ काटे होने हैं।

मीमांसा तथा न्याय दर्शन से तुलना—मीमासा दर्शन कर्मकाण्ड को ही

जीवन का मूल समझता है, परन्तु चार्वाक दर्शन इसे ब्राह्मणों की आजीविका का साधन समझता है। इसी बहाने से वह भोली-भाली जनता को लूटते हैं। इसी प्रकार न्याय दर्शन ज्ञान के चार साधन मानता है। परन्तु चार्वाक दर्शन इसमे से केवल प्रत्यक्ष ज्ञान को ही मानता है क्योंकि ईश्वर प्रत्यक्ष दिखाई नहीं देता, इस कारण से वह ईश्वर को भी नहीं मानता।

पाश्चात्य तथा चार्वाक की परस्पर तुलना—प्राचीन यूनान के इतिहास में डिमाक्रिटिस, एपिकुरियस, ल्यूक्रेशियस भौतिकवाद के प्रचारक थे, जिन्होंने आत्मा को भी शरीर का अग माना। उनके मतानुसार इस ससार की रचना मे कोई उद्देश्य नहीं। एपिकुरियस ने जीवन का उद्देश्य आनन्द की प्राप्ति बतलाया। परन्तु यह आनन्द वासनात्मक नहीं, समान स्वभाव वाले मित्रो का परस्पर आनन्द था। ल्यूक्रेशियस ने अपने गुरु का अनुसरण करते हुए जीवन का लक्ष्य सत्य पालन तथा कर्त्तव्य निर्वाह भी माना। इस प्रकार पाश्चात्य दर्शन तथा चार्वाक दर्शन परस्पर पर्याप्त समता रखते है।

चार्वाक दर्शन की केवल निन्दा ही कर देना बुद्धिमत्ता नहीं है। उसमें कई ऐसे गुण भी है जिन्होंने उस समय का पर्याप्त उपकार किया। आचार्य बृहस्पति ने अर्थशास्त्र लिखकर भौतिक जीवन को अनुशासन बद्ध तथा सुख-मय बनाने का महत्वपूर्ण कार्य किया।

प्रश्न १६—'गांधीवाद बनाम समाजवाद' लेख का सार अपनी भाषा में लिखो।

अथवा

'गांधीवाद बनाम समाजवाद' नामक श्री जयप्रकाशनारायण के लेख में किस वाद की श्रेष्ठता प्रमाणित की गई है? और क्यों?

(प्रभाकर, नवम्बर १९५५)

उत्तर—श्री जयप्रकाशनारायण जी ने गांधीवाद के नियम पर विचार करते हुए बतलाया है कि समझ में नहीं आता कि गांधीजी अपने स्वराज्य में समाज का निर्माण किस आधार पर करना चाहते हैं? कौन सी नई वस्तु वे देना चाहते हैं? यहां तो उनके शिष्य यहां तक कह बैठते हैं कि—

"गाधीवाद ही हिन्दुस्तान के लिए सच्चा समाजवाद है।" गाधीजी भी कहा करते थे कि गाधीवाद स्वदेशी समाजवाद है। "हिन्दू-धर्म का मौलिक विचार" या भारत की अपनी प्रतिभा है। यह सब वास्तव मे जनता को एक चक्कर मे डालने के अतिरिक्त और कुछ नही। पाश्चात्य देशो में भी ऐसे ही जनता को चक्करो मे डाला गया। एच० जी० वेल्ज ने स्टालिन के सामने ऐसी ही युक्तियाँ उपस्थित की। मैकडानल्ड भी वर्गयुद्ध के विरुद्ध थे परन्तु उनके स्वदेशी समाजवाद की जो दुर्गति हुई वह विश्व के सामने है।

गाधीवाद के मतानुसार जमीदार और पूजीपति ट्रस्टी है और यह शुद्ध भारतीय-सिद्धान्त है। परन्तु विलियम गोडिवन ने अपनी "पौलिटिकल" नामक पुस्तक मे इसका प्रयोग किया है।

गाधीवाद सुधारवाद तथा समाजवाद क्रातिवाद का पक्षपाती है। समाजवाद कहता है कि जिस महल मे दरारें पड गई है उसे गिराकर बनाने में ही कल्याण है, परन्तु गाधीवाद उसी से काम चलाना चाहता है। गाधीजी पूजीपतियो तथा जमीदारो के समर्थक थे, तभी तो वह अपने राम-राज्य में राजा तथा भिखारी दोनो के अधिकार सुरक्षित चाहते थे। गाधीजी ने अपने भाषणो द्वारा बतलाया कि मे पूजीपतियो के हृदय परिवर्तित करना चाहता हूँ और इसी ध्येय को लेकर उन्होने कई भाषण भी दिये और बतलाया कि मजदूर-किसान ही वास्तव मे धन को पैदा करते है, इसलिये उन्होने पूजीपतियो से कहा कि इन्हे अपना छोटा भाई समझकर इन्हें इनके अधिकार दो। परन्तु उन पर इन भाषणो का प्रभाव तिल भर न पडा।

गाधीवाद या तो यह स्पष्ट कह दे कि धन पूजीपति अपनी बुद्धि से कमाते है, परन्तु यह मानकर भी कि धन मजदूर-किसान ही पैदा करते है, क्या पूजीपतियो को इसलिये ट्रस्टी (धन का रक्षक) माना जाये कि वे इन बेचारो की खून की कमाई मे परोपकारी कहला सके? वास्तव मे गाधीवाद पूजीपतियो को फलने-फूलने का अवसर देना है। प्राचीन काल मे डडे से, आधुनिक काल में गाधीवाद की आड मे पूजीपति फल-फूल रहे है। महात्मा गाधीजी ने अहमदाबाद के धनियो से स्पष्ट कहा था कि तुम्हे अधिकार है कि तुम धन इकट्ठा करो।

गांधीवाद बनने में लगता ही क्या है ? बस थोड़ा सा चन्दा दो जो पुन-र्वापिस भी मिल जाता है। समाचारों में अपने चित्र तथा प्रशंसा भी जितनी चाहे करा लो। इस प्रकार गांधीवाद जनता की आंखों में धूल झोंकने के अति-रिक्त और कुछ भी नहीं। मजदूर-किसान से जो प्रेम या सहानुभूति दिखाई जाती है वह केवल दिखावटी ही होती है।

प्रश्न १७—प्रजातन्त्र शासन तथा उसके मूल सिद्धान्तों पर प्रकाश डालिए।

अथवा

सिद्ध करो की प्रजातन्त्र शासन ही सभी शासन-प्रणालियों में श्रेष्ठ कहा जा सकता है, और क्यों ?

अथवा

"कार्लमार्क्स की सम्मति में शुद्ध प्रजातन्त्र तभी चल सकता है जब एक वर्गहीन समाज हो।' इस कथन के औचित्य अथवा अनौचित्य पर अपने विचार प्रकट करो। (प्रभाकर, जून, १९५२; नवम्बर १९५५)

उत्तर—श्री कृष्णचन्द्र विद्यालंकार जी ने इस लेख में प्रजातन्त्र शासन की परिभाषा, विकास तथा मूल सिद्धान्तों पर विचार करते हुए बतलाया है कि प्रजातन्त्र शासन आज सर्वोत्तम शासन-पद्धति स्वीकार किया जा चुका है, परन्तु प्राचीन काल में भारत तथा यूनान के अतिरिक्त कहीं भी इसके दर्शन नहीं होते। लगभग सभी संसार में राजतन्त्र का बोलबाला था, जो अपने आपको प्रभु के प्रतिनिधि बतलाते थे। इंगलैंड के राजा जेम्स ने सिंहासन पर बैठते समय कहा—'राजा ईश्वरीय अधिकारों से राज्य करता है, प्रजा को उसके विरुद्ध कुछ भी करने का अधिकार नहीं। उसके विरुद्ध विद्रोह करना पाप है।" इसी प्रकार आस्ट्रिया आदि के सम्राटों ने भी घोषणा करते हुए कहा— "हमें ईश्वर ने लोगों पर शासन करने के लिए प्रतिनिधि के रूप में भेजा है।"

समय परिवर्तन हुआ। राजाओं के वह ईश्वरीय अधिकार छिने। इंगलैंड, फ्रांस, जर्मनी, रोम, इटली आदि सभी देशों में राजतन्त्र समाप्त हुआ और प्रजातन्त्र शासन आया अर्थात् राज्य-सत्ता प्रजा के हाथ में आई।

प्रथम महायुद्ध के पश्चात् कुछ राज्यों में अधिनायकवाद या एकतन्त्रवाद

की लहर चली। इटली में मुसोलिनी, जर्मनी में हिटलर आदि अधिनायक हुए। अधिनायकवाद से अभिप्राय उस शासन प्रणाली से है जिसमे एक बार चुने जाने पर अधिनायक (चुना हुआ व्यक्ति) सब कुछ कर सकता है। वास्तव में यह राजतन्त्र का दूसरा रूप था। इतना अन्तर अवश्य था कि राजतन्त्र में राज्य राजा की सम्पत्ति होता है तथा उसके पश्चात् उसी की सन्तान राज्य करती है परन्तु अधिनायक वाद मे अधिनायक जनता द्वारा चुना जाता है तथा उसकी सन्तान का अधिकार राज्य पर नही होता। इस प्रकार उस समय की परिस्थितियो मे अधिनायकवाद से कुछ लाभ अवश्य हुआ। इटली की आर्थिक अवस्था पर्याप्त अच्छी हो गई।

जर्मनी ने भी पर्याप्त उन्नति की जिसे देखकर रूस ने स्टालिन को अपना अधिनायक बनाया। परन्तु जनता की आत्मा को कुचल दिया, आत्माभिव्यक्ति पर ताले पड़ गये, जिससे पुन. प्रजातन्त्र की ओर आकर्षण हुआ।

"प्रजातन्त्र शासन की परिभाषा और उसके मुख्य सिद्धान्त—अमरीका के भूतपूर्व प्रधान (राष्ट्रपति) इब्राहीम लिंकन के शब्दो मे प्रजातन्त्र शासन उस शासन का नाम है जो "जनता द्वारा, जनता के लिए, जनता पर शासन हो।" इसी प्रकार इगलैंड के प्रसिद्ध राजनीतिज्ञ मिल के शब्दो में सब लोग या लोगो का अधिकाँश भाग अपने चुने हुए प्रतिनिधियो द्वारा "जिस देश में शासन करता है, उसे लोकतन्त्र शासन कहते है।"

प्रजातन्त्र शासन का मूल सिद्धांत एकमात्र प्रतिनिधि निर्वाचन ही कहा जायेगा। निर्वाचन दो या दो से अधिक पार्टियो में हो सकता है। मत देने का अधिकार प्रत्येक बालिग को होता है। और निर्वाचन गुप्त होना अति आवश्यक है नही तो धन या शक्ति मे मतो का दुरुपयोग किया जायेगा जिससे प्रजातन्त्र का वास्तविक महत्व मिट्टी मे मिल जायेगा। धनी, निर्धन सभी को अपने मत को स्वतन्त्रतापूर्वक देने का अधिकार होना चाहिए।

प्रश्न १८—'हमारे जानवर' लेख का सार लिखो।

अथवा

'हमारे जानवर' इस सम्बन्ध में पशु जगत के विकास का क्रम किस प्रकार वर्णन किया गया है? क्या आप इसे स्वीकार करते हैं?

(प्रभाकर, नवम्बर, १९५५)

उत्तर—प्रस्तुत लेख में श्री सुरेशसिंह जी ने बताया है कि हमारी इस पृथ्वी का निर्माण कैसे हुआ ? पुन उस पर कैसे प्राणी उत्पन्न हुये ? और कैसे विकास को प्राप्त करते हुए? आज की अवस्था को प्राप्त हुए, इन्होंने बताया है कि जीव के जन्म और विकास की बड़ी अद्भुत तथा रोचक कहानी है, पर उसकी रोचकता के बारे में कुछ भी जानने के लिए हमें अरबों वर्ष पूर्व की कल्पना करनी होगी। इस विशाल अन्तरिक्ष में अविराम गति से घूमते हुए एक ज्वलित नीहार ने घनीभूत हो जब हमारी पृथ्वी का रूप ग्रहण किया होगा उस समय उसकी दशा एक जलती हुई अंगीठी की-सी रही होगी। धीरे-धीरे वह शान्त हुई। मेघ, नदी, नाले अस्तित्व में आये।

उसके पश्चात् एक विशेष तापमान में जीवपंक नामक पदार्थ से हमारी पृथ्वी के छिछले समुद्रों में एक बहुत निम्नस्तर जीव का जन्म हुआ। इस प्रकार हमारा विकास-वृक्ष उसी आदिमूल जीवपंक से आरम्भ हुआ, जिसकी आगे चलकर दो शाखाएँ हो गईं—(१) तारा मछली, (२) केकड़े। कुछ समय के पश्चात् रीढ़ की हड्डी वाले प्राणियों को जन्म मिला। पुनः सरीसृपों को, जिन से मगर, घड़ियाल, साँप, गोह आदि को जन्म मिला। विकास का यह क्रम रुका नहीं, चलता ही गया जिसमें स्तनप्राणियों को जन्म मिला। बिल्ली, कुत्ते और शेर आदि इसी की उपशाखाएँ कही जायेंगी। उसके बाद एक शाखा मनुष्यों की भी बनी। ध्यान रहे, मनुष्य का जन्म बन्दरों से नहीं हुआ। सत्य केवल इतना ही है कि हमारे और "एप" के पूर्वज एक ही थे।

प्राणियों की वृद्धि का प्रकार—जड़ और जीव में बड़ा भेद है। भगवान् ने जीव में दो विशेष गुण बनाये—(१) दूसरी वस्तुओं को ग्रहण करना, (२) वंश वृद्धि। वंश वृद्धि का रूप चाहे भिन्न-भिन्न हो, परन्तु प्रभु ने वंश वृद्धि से वंचित किसी को भी नहीं रखा। "अमीबा" नामक सरल प्राणी को ही देखिए। नर मादा के अभाव में भी वह अपनी वंश-वृद्धि करता है। स्वयं ही बढ़ कर कई भागों में विभक्त हो जाता है। शेष प्राणियों की वंश-वृद्धि प्रायः जोड़ा बंध जाने से ही होती है। नर अपने गुणों से मादा को अपनी ओर आकर्षित करता है। सम्भव है कि भगवान् ने इसी कारण से नर को मादा की अपेक्षा अधिक बलवान् तथा बुद्धिमान् बनाया है।

जहाँ तक जानवरो के समाज सगठन तथा बुद्धि आदि का प्रश्न है, इसी अवस्था मे हमे मानना ही होगा कि इनमे सगठन शक्ति तथा सोच-विचार की शक्ति होती है। बन्दर का नल खोल कर पानी पीना, चूहे का पूँछ डाल शीशी में से घी पीना, वन्दरी का बच्चो को नर्स से भी अधिक सावधानी से पालन आदि इनकी विचार-शक्ति के पुष्ट प्रमाण है। इसी प्रकार वन्दर, कुत्ते आदि अन्य पशुओं की एकता तथा विपत्ति के समय एक-दूसरे पर प्राण देने को तैयार रहना, पशु का डटकर सामना करना इनकी सगठन शक्ति के परिचायक है।

अन्त मे हमे यह देखना है कि जानवर हमारे मित्र है या शत्रु ? यदि सूक्ष्मता से देखे तो हमें यह स्वीकार करना होगा कि जानवरो ने ऐसे-ऐसे उपकार हम पर किये है कि हम जीवन भर उनका ऋण नही चुका सकते। इन्होंने अपना वास्तविक निवास स्थान (जगल) छोड़ हमारे साथ रहना स्वीकार किया। कुत्ते ने हमारी रखवाली मे, घोड़े ने हमारी सवारी मे तथा भैंस-गौ आदि ने हमारी खाद्य समस्या मे हमारा हाथ बटाया। इसी प्रकार भेडो ने शरद् ऋतु से बचने के लिए हमारे लिए ऊनी वस्त्र जुटाये। सक्षेप में हम कह सकते है कि इन्होने क्या सुख और क्या दु ख, सभी अवस्थाओ मे हमारा साथ दिया। जिससे इन्हे हम अपना शत्रु न कह अपना मित्र ही कहेगे।

प्रश्न १६—'पूर्वी पश्चिमी दर्शन' लेख का सार लिखो।

अथवा

सिद्ध करो कि पूर्वी पश्चिमी दर्शन परस्पर विरोधी न होकर एक-दूसरे के पूरक है।

उत्तर-प्रस्तुत लेख के लेखक डा० देवराज जी है। इसमे इन्होंने बताया है कि पूर्वी पश्चिमी दर्शन परस्पर विरोधी न होकर एक दूसरे के पूरक ही कहे जायेंगे।

दार्शनिक चिंतन की प्रेरक शक्ति दो भागो में बटी रहती है—(१) अदम्य जिज्ञासा वृत्ति, (२) पूर्णत्व की ओर बढने की प्रबल वासना। प्रथम का सम्बन्ध विज्ञान से तथा दूसरे का सम्बन्ध मोक्ष धर्म से घनिष्ठ हो जाता है। इसी प्रकार पूर्वी दर्शनो का झुकाव मोक्ष धर्म तथा पश्चिमी दर्शनो का झुकाव विज्ञान की ओर अधिक कहा जा सकता है। परन्तु ध्यान रहे कि दर्शन-शास्त्र का लक्ष्य अखण्ड सत्य की खोज करना ही कहा जा सकता है और विज्ञान तथा मोक्ष दोनों

मिलकर अखण्ड सत्य कहे जा सकते है। इस प्रकार पूर्वी दर्शन तथा पश्चिमी दर्शन परस्पर विरोधी न होकर एक-दूसरे के पूरक ही कहे जा सकते है।

अनुभव जगत् को हम दो भागो मे विभाजित कर सकते है—(१) घटना जगत्, (२) मूल्य जगत्। घटना जगत् से अभिप्राय कारण कार्य के सिद्धान्त से है और मूल्य जगत् से अभिप्राय पाप-पुण्य, शुभ-अशुभ, सत्य-असत्य वाले सिद्धान्त को महत्व देने वाले सिद्धान्त से है। इस प्रकार घटना जगत् का सम्बन्ध मोक्ष से अधिक जुड जाता है। पश्चिमी विद्वान् फ्रेडरिक पाल्सन ने अपने ग्रथ 'दर्शन की भूमिक' मे दर्शन को सब प्रकार के वैज्ञानिक ज्ञान का एकीकरण माना है। यह परिभाषा अपूर्ण ही कही जायेगी, परन्तु स्टीफन नामक विद्वान् ने जो परिभाषा दी है वह भारतीय विद्वानो को अवश्य ग्राह्य हो सकती है। भारतीय विद्वान् मूल्यो को घटाना जगत् मे ओतप्रोत मानते है। आज भारतीय सिद्धान्तों का समर्थन कई पश्चिमी विद्वान् करने लगे है। हक्सले नामक विद्वान् अपनी 'लक्ष्य और साधन' पुस्तक मे कहते है—"आदर्श पुरुष अनासक्त पुरुष है"। इसी प्रकार इस पुस्तक मे हक्सले व्यक्तिवाद का तीव्र विरोध करते दिखाई देते है। उन्होंने अमेरिका के ऐसे नवयुवको की निन्दा की है जो धन के लोभ के कारण दूसरो की निन्दा या प्रशसा करते है।

हक्सले के विचारों से स्पष्ट है कि सत्य न तो कभी पुराना हो सकता है न अनावश्यक। इसी प्रकार आज हमें चाहिए कि हम पूर्वी दर्शनो के आध्यात्मिक अन्वेषण तथा पश्चिमी दर्शनो के वैज्ञानिक आविष्कार से लाभ उठायें। पूर्वी तथा पश्चिमी दर्शन मे कही भी विरोध दिखाई नही देता, उल्टा एक दूसरे के अभाव को पूरा करते दिखाई देते है।

प्रश्न २०—'अर्थशास्त्र और उसके मूल सिद्धान्त' लेख का सार अपने शब्दों में लिखो।

अथवा

'अर्थशास्त्र और उसके मूल सिद्धान्त' इस निबन्ध को सामने रखकर इस विषय पर अपने विचार प्रकट करो। (प्रभाकर, जून, १६५३)

उत्तर—अर्थशास्त्र एक व्यवसायिक विज्ञान है। जिसमे मनुष्य के कार्यों, विचारों, और गतिविधियो का अध्ययन कराया जाता है। अर्थशास्त्र के सिद्धात भी विज्ञान के सिद्धान्त के समान सत्य हैं, परन्तु वह न्याय शास्त्र तथा औषध-

विज्ञान के समान सदा परिवर्तित होते रहते हैं। उसका कारण एकमात्र यही है कि अर्थशास्त्र मानव जीवन के कार्यों से सम्बन्धित है और कार्य इच्छा पर अवलम्बित रहते है। इच्छाएँ सीमा रहित होती है जिनका मापदण्ड भी ठीक-ठीक नही हो सकता। इस प्रकार अर्थशास्त्र के सिद्धान्तो मे अन्तर पड़ता रहता है। विना परिस्थितियो के देखे यह कहना कि अर्थशास्त्र असत्य है हमारी भूल है। सिद्धान्तानुसार पृथ्वी मे आकर्षण होने पर भी पक्षी, गुब्बारा तथा जहाज आकाश मे उड जाते है, तो क्या न्यूटन के सिद्धान्त को असत्य समझना चाहिये? नही! नही! सिद्धान्त तो सत्य है परन्तु वाधक परिस्थितियो ने असत्य सिद्ध कर दिखाया है। इसी प्रकार अर्थशास्त्र के सिद्धान्तो में भी वाधक परिस्थितियाँ आती रहती है जो उनके सिद्धान्तो को असत्य बना देती है। सबसे बडी कठिनाई तो यह है कि प्राय विज्ञान के सिद्धान्तो की परिस्थितियो को जानने के लिए प्रयोगशालाओ से काम लिया जाता है, परन्तु अर्थशास्त्र के लिये कोई प्रयोगशाला हो ही नही सकती, क्योकि इच्छाओ की न तो सीमा होती है और न ही निश्चित सिद्धान्त!

मनुष्य की इच्छाओ को प्रत्यक्ष रूप से तो नही, अप्रत्यक्ष रूप से यत्न करने पर कुछ माप सकते है या इसके प्रभाव को जान सकते हैं, जैसे कोई आदमी यदि चार आने का रूमाल लेता है तो हम जान जाते है कि उसकी इच्छा रूमाल लेने की चार आने है। इसी प्रकार एक आदमी प्रतिदिन एक रुपया मे आठ घण्टे काम करता है, तो हम उसकी एक घण्टे के परिश्रम की इच्छा का मूल्य दो आने कह सकते है। यदि कोई मनुष्य सिनेमा के लिये एक रुपया और सरकस के लिये दो रुपये व्यय करे, तो हम कह सकते है कि उस की सिनेमा देखने की इच्छा दुगुनी है। परन्तु यह ठीक-ठीक मूल्य कहा नहीं जा सकता। परिस्थितियो के अनुसार मनुष्य ठीक विपरीत भी जा सकता है।

अर्थशास्त्र का जन्म—अर्थशास्त्र के जन्म का कारण सम्पत्ति के ठीक वटवारे का न होना ही था। यूरोप मे जब आर्थिक सकट आया तो उस समय विद्वानो ने सोचा कि धन के होते हुए भी दरिद्रता क्यो? ऐसी परिस्थिति मे अर्थशास्त्र लिखा गया। जिसमे धन के वटवारे, उत्पादन तथा व्यय पर प्रकाश डाला गया। इस प्रकार उस निर्धनता से छुटकारा मिलने लगा

और लोगों की रुचि अर्थशास्त्र की ओर बढ़ी। मनुष्य प्रायः दो उद्देश्यों से विद्या सीखता है—(१) ज्ञानवृद्धि के लिये, (२) धन आदि उत्पन्न करने के लिये। अर्थशास्त्र का मुख्य उद्देश्य दरिद्रता को दूर करना ही कहा जा सकता है।

अर्थशास्त्र से होने वाले लाभ—(१) सैद्धान्तिक, (२) व्यावहारिक।

(१) सैद्धान्तिक लाभ—अर्थशास्त्र सम्पत्ति से सम्बन्ध रखने वाली बातों पर सूक्ष्म दृष्टि से विचार करता है। इस प्रकार से इनके अध्ययन का सतर्क निरीक्षण, धैर्य युक्त विश्लेषण और उचित तर्क का अभ्यास पड़ जाता है। मानव जीवन के नाना प्रकरणों में इससे बहुत ही लाभ होता है।

(२) व्यावहारिक लाभ—अर्थशास्त्र से उत्पादक, व्यापारिक, राजनैतिक आदि सभी बहुत लाभ होते हैं। मजदूरों को अपनी उन्नति के लिये सहयोग, संगठन आदि की शिक्षा मिलती है। बहुत ही गूढ़ सामाजिक प्रश्नों को हल करने में सहायता मिलती है। आर्थिक स्वतंत्रता से होने वाले लाभ बढ़ाये जा सकते हैं और हानियाँ घटाई जा सकती हैं। गरीबी के और उससे होने वाले अनर्थों के क्या उपाय हो सकते हैं। तेजी-मंदी और बेकारी के प्रश्नों को कैसे सुलझाया जा सकता है।

प्रश्न २१—'आधुनिक सभ्यता पर विज्ञान का प्रभाव' लेख में श्री रामरत्न भटनागर जी का संकेत किस ओर है? वह अब क्या चाहते हैं? उससे क्या लाभ होगा?

उत्तर—आधुनिक सभ्यता पर विज्ञान का प्रभाव—श्री रामरत्न जी भटनागर ने इस लेख में बतलाया है कि सभ्यता किसे कहते हैं। आधुनिक सभ्यता का किस सभ्यता से अभिप्राय है तथा उसकी मुख्य देन क्या है? उससे मनुष्य को क्या लाभ और क्या हानि हुई है?

सभ्यता का देश-काल और संस्कृति से घनिष्ठ सम्बन्ध होता है। अतः देश-काल और संस्कृति के अनुसार ही सभ्यता का निर्माण होता है। आज विश्व में कितने ही प्रकार की सभ्यताएं भिन्न-भिन्न देशों में चल रही हैं। जहाँ तक आधुनिक सभ्यता का सम्बन्ध है, वहाँ योरोपीय सभ्यता को ही आधुनिक

सभ्यता कहना आरम्भ कर देते है, जो वास्तव मे भूल है। इससे योरोपियन सभ्यता की मुख्य विशेषता ऐहिकता की प्रधानता ही कही जा सकती है, जिसका आधार है विज्ञान। विज्ञान ने मनुष्य को भौतिक रूप से देवता वना दिया है। आज विज्ञान द्वारा मनुष्य नाना प्रकार के आविष्कार तथा सुख-सुविधा के साधन प्राप्त कर चुका है। रेल, तार, हवाई जहाज और रेडियो — न जाने क्या-क्या सुखद आविष्कार उसे मिल चुके है। यदि प्राचीन काल के नारद इस नये युग को देखते, तो अवश्य ही इसे मायाजाल कहकर पुकारते। परन्तु हमे इस बात का दुख है कि आध्यात्मिकता के नाते हम राक्षस वन गये है। परस्पर प्रेम और सहानुभूति का सर्वथा नाश हो चुका है। मनुष्य के आविष्कार ही उसे नष्ट कर देना चाहते है। इस प्रकार आधुनिक सभ्यता की वही दशा है जो कभी शकर की भस्मासुर से हुई थी। कहते है कि भस्मासुर ने सहस्रो वर्षों तक तप किया था। शकर भगवान् ने प्रकट होकर वर माँगने को कहा तो उसने कहा कि, "हे भगवान्! मुझे ऐसा वरदान दो कि जिसके सिर पर मै हाथ रखूँ वह भस्म हो जाये।" शकर भगवान् ने प्रसन्न होकर 'तथास्तु' कह दिया। वस, अब क्या था उसने उन्ही पर वरदान का प्रयोग करना चाहा। इसी प्रकार आधुनिक सभ्यता ने विज्ञान को जन्म दिया और अब वही विज्ञान भस्मासुर की भाँति उसी पर ही प्रयोग करना चाहता है। इस प्रकार विज्ञान सभ्यता का गला घोट रहा है। हर समय वमवारी का भय रहता है।

अब समय आ गया है कि आधुनिक सभ्यता विज्ञान से क्षमा माँग ले और कह दे कि वस वावा मुझ पर कृपा करो। यदि कुछ वर्ष ऐसे ही चलता रहा तो सभ्यता का सर्वनाश हो जायेगा। योरप के प्रसिद्ध विचारक श्री ऐच०जी० वैल्स के शब्दो मे "यदि मानवता की रक्षा करनी है तो बुद्धि, हृदय और मन का सतुलन चाहिये।"

आधुनिक सभ्यता का विकास एकागी है। विज्ञान के प्रभाव मे आकर उसने बुद्धि को पकड लिया, हृदय और मन की साधना को तिरस्कृत किया।

प्रश्न २२—श्री राजेन्द्र द्वारा लिखित 'पत्रकारिता' लेख का भावार्थ अपनी भाषा में लिखो।

अथवा

'पत्रकारिता' का आशय स्पष्ट करते हुए उसका आधुनिक युग में महत्व सिद्ध कीजिए। (प्रभाकर, नवम्बर, १९५९)

उत्तर—प्रस्तुत लेख मे श्री राजेन्द्र एम०ए० ने समाचार पत्रो का जन्म, विकास तथा महत्व आदि पर विस्तारपूर्वक विचार किया है। इन्होंने बतलाया है कि "प्रेस जनता की वह पार्लियामेंट है जो सदैव ही काम करती रहती है और जिसका अधिवेशन कभी स्थगित नहीं होता।"

समाचार पत्रों का जन्म तथा विकास—मनुष्य के साथ-साथ समाचार-पत्र अथवा प्रेस की प्राप्ति का इतिहास देखने को मिलता है। आरम्भ में जब मनुष्य उन्नत अवस्था मे न था तब न छापने की मशीन थी और न कागज ही था। उस युग मे राजाज्ञाएँ और आदेशो को शिला-लेखो और स्तम्भ लेखो द्वारा प्रकाशित करवाया जाता था। कदाचित् "पेकिंग गजट" जो सन् १६४० में चीन मे छपा, ससार का सबसे प्रथम समाचार पत्र था। आधुनिक काल मे प्रेस का विकास यूरोप तथा स्पेन मे विशेषकर ब्रिटेन में हुआ। जहाँ तक भारत का सम्बन्ध है अंग्रेजो द्वारा ही समाचार पत्रो को जन्म मिला। आरम्भ में पत्रकारिता के आदि पुरुष अंग्रेज पत्रकार ही होते थे, जो अपने अधिकारो के लिए तत्कालीन शासको के विरुद्ध समाचार लिखा करते थे। इनसे प्रेरणा पाकर बंगाल में राजा राममोहनराय जी ने "बंगाल गजट" तथा महात्मा गांधी ने "यंग इण्डिया" या "हरिजन" नाम के पत्रो को जन्म दिया। उसके पश्चात् अनेक समाचार पत्र छपने आरम्भ हो गए।

पत्रकारिता का महत्व—आस्कर वाईल नामक प्रसिद्ध लेखक ने समाचार-पत्रों के महत्व पर प्रकाश डालते हुए कहा कि शायद बर्क का यह विचार था कि समाचार-पत्र शक्ति का चौथा स्तम्भ है, परन्तु आज अन्य तीनो स्तम्भ अर्थात् राजा, धर्माधिकारी तथा पार्लियामेंट आदि सभी का कार्य समाचारपत्र ही कर रहे है। जनता के ज्ञान तथा अधिकारो के उत्तरदायित्व को यही अपने सिर पर लिए हुए हैं।

अब प्रश्न यह उठता है कि समाचार किसे कहते हैं तथा वह कैसे उत्पन्न होते है। समाचार पत्र की परिभाषा देते हुए किसी एक अंग्रेज

विद्वान् ने कहा, कि किसी मनुष्य को कुत्ते ने काट दिया, यह न कहकर यह कहते है कि कुत्ते को मनुष्य ने काट खाया तो यह अच्छा समाचार बन जायेगा। समाचार पत्रो के प्रतिनिधि सारा दिन, सारी रात समाचारो को एकत्रित करते रहते है और अपने आफिस में भेजते रहते है। वहाँ के कर्मचारी इन समाचारो की पुन काट-छाट करके इनके शीर्षक बनाकर छापते है। शैली आकर्षक होनी चाहिए। समाचारपत्रो के प्रतिनिधियो को अच्छे-बुरे सभी प्रकार के व्यक्तियो से मेल रखना पडता है और कई बार तो यह ज्योतिषियो का भी काम कर देते हैं जैसे कि गाँधीजी की गोलमेज कान्फ्रेंस में जाने की घटना का पता लगाना। कई मनुष्य कई बार कह उठते है कि इन समाचार पत्रो में रखा ही क्या है। परन्तु समाचार पत्रो का अनादर-करन हमारी मूर्खता है। समाचारपत्र रोटरी मशीन द्वारा छपते है जो एक घण्टे ः १६ या २० पृष्ठ वाली समाचार पत्र की २० हजार कापियाँ छाप तथा का८ कर तैयार कर देती है।

पत्रकारों का उत्तरदायित्व—समाचार पत्रो का सर्वप्रथम कार्य जनत का प्रतिनिधित्व करना है। समाचारपत्र मानवता के परामर्शदाता है। पत्रका का यह कर्त्तव्य हो जाता है कि वह जनता का अनादार न करें और साम्प्रद यिकता से दूर रहकर जनता का कल्याण करें।

गद्य-स्थलों की व्याख्या

(१) आकर्षण, विकर्षण ·······फँसते जाते हैं। (पृष्ठ ३७)

(प्रभाकर, जून, १९५३)

प्रसग—प्रस्तुत गद्याश श्री प० महावीरप्रसाद द्विवेदी द्वारा लिखित "स्वयंवह यत्र" लेख मे से उद्धृत किया गया है। लेखक स्वयवह यत्र के विषय मे अपने विचार प्रगट करता हुआ कहता है कि .

व्याख्या—इस जगत् मे होने वाली आकर्षण, विकर्षण, सकोचन, प्रसारण, संसक्ति, आसक्ति एव अन्य सभी आणविक क्रियायें यहाँ पर विद्यमान किसी महान शक्ति के कारण ही हैं। आधुनिक विज्ञान ने स्पष्ट कह दिया है कि इस सृष्टि में कार्यशील शक्ति का अन्त विराम ही है अर्थात् चाहे कोई भी शक्ति क्यो न हो, परन्तु एक दिन नष्ट अवश्य होती है, यहाँ तक कि मानव

का शरीर जिसको विधाता ने बडी कुशलता से बनाया है, और जो अपना भरण-पोषण स्वय ही करता है, एक दिन अवश्य ही नष्ट होता है, तो फिर मानव के द्वारा बनाई हुई वस्तुओ का अन्त कैसे न होगा ! आज अमेरिका और योरुप ने वैज्ञानिक क्षेत्र मे सबसे अधिक उन्नति की है, परन्तु वहाँ के भी प्रसिद्ध वैज्ञानिक स्वयवह यन्त्र का आविष्कार करने के लोभ मे फँसे हुए है, यद्यपि यह एक मधुर कल्पना के अतिरिक्त और कुछ भी नही है।

(२) शासक वर्ग अपने 'समझना चाहिए। (पृष्ठ ६३)

(प्रभाकर, अगस्त, १९५२)

प्रसंग—प्रस्तुत पक्तियाँ प० रामचन्द्र शुक्ल द्वारा लिखित "भाव या मनोविकार" लेख में से उद्धृत की गई है। शुक्लजी भावो को ही समस्त जगत् की उत्पत्ति का कारण बताते है। वह कहते है कि ये मनोविकार ही सच्चे अर्थों में मानव जीवन के प्रवर्तक है। इन भावो से सभी प्रकार के शासनो में काम लिया जा सकता है।

व्याख्या—जब प्रजा अत्याचारी और अन्यायी शासको का विरोध करती है, तो वे उस विद्रोह को शान्त करने के लिए प्रजा को भयभीत करते है और कई प्रकार के प्रलोभन भी उनको देते है। विभिन्न मतो को चलाने वाले जनता को धार्मिक भय दिखाकर अपने द्वेषपूर्ण और तंग विचारो का प्रचार करते है। एक जाति दूसरी मूर्ति उपासक जाति के धर्म का खण्डन करती है। वह मूर्तिपूजा को पाप बताती है। भस्म मलने वाले और रुद्राक्ष धारण करने वाले मनुष्यो को देखने तक मे भी दूसरे लोगो ने पाप समझा है। इस पवित्र भाव-क्षेत्र को इस प्रकार दूषित करना ससार के प्रति एक बहुत बड़ा अपराध करना है।

(३) ये हिन्दी-भिन्न भाषा· · · · राज्य रहेगा। (पृष्ठ ११५)

(प्रभाकर, जून, १९५३)

प्रसंग—प्रस्तुत गद्यांश महापण्डित श्री राहुलसाकृत्यायन द्वारा लिखित "भारत की राष्ट्रभाषा और लिपि" लेख मे से उद्धृत किया गया है। लेखक कहता है कि हिन्दी ही हमारे देश की राष्ट्र-भाषा हो सकती है। अन्य कोई भी भाषा स्वतन्त्र भारतवर्ष मे राष्ट्र-भाषा का पद प्राप्त नही कर सकती। परन्तु

जो व्यक्ति हिन्दी के विरोधी है, वे कभी भी हिन्दी का राष्ट्र-भाषा बनना सहन नही कर सकते। वे हिन्दी के विरुद्ध असत्य प्रचार करके जनता को बहका रहे है :

व्याख्या—हिन्दी विरोधी व्यक्ति उन मनुष्यो को जो हिन्दी नही पढे-लिखे है और न ही जिन्हे हिन्दी के विषय मे विशेष जानकारी है, यह कहकर डरा रहे है कि यदि हिन्दी राष्ट्रभाषा बन गई तो उनकी अपनी भाषा पतनोन्मुख हो जायेगी और अन्त मे उनका साहित्य पूर्णरूप से नष्ट हो ही जायेगा। परन्तु उनकी ये बातें पूर्णरूप से असत्य है, निराधार है। प्रत्येक प्रदेश मे वहा के मनुष्यो की अपनी ही भाषा का मुख्य स्थान रहेगा। लेखक बगला का उदाहरण देते हुए कहता है कि वहाँ पर स्कूलो और विश्वविद्यालयो मे, ग्राम पचायत, नगरपालिका, विधान सभा और न्यायालयो आदि सभी मे बगला ही सर्वेसर्वा होगी। इसी प्रकार अन्य प्रदेशो मे भी वहाँ के राजनैतिक और साहित्यिक क्षेत्रो में वहा पर प्रचलित भाषा ही का बोलबाला होगा। अब कोई भी भाषा उसके मार्ग मे कटक नही होगी।

(४) सन्देहवाद बडी ···· तैयार रहते है। (पृष्ठ १३६)

(प्रभाकर, अगस्त, १६५२)

प्रसंग—प्रस्तुत पक्तियाँ श्री प० बलदेव उपाध्याय एम० ए०, साहित्याचार्य द्वारा लिखित "चार्वाक दर्शन" शीर्षक लेख मे से उद्धृत की गई है। इस लेख के आरम्भ मे उपाध्याय जी कहते है कि ससार में विचारो की विभिन्नता केवल उसी समय होती है जबकि किसी भी बात मे सन्देह उत्पन्न हो जाता है। सन्देह की यह भावना छोटी अथवा बड़ी प्रत्येक वस्तु मे कार्य करती है।

व्याख्या—सन्देहवाद एक बहुत ही अनोखी चीज है। जब किसी भी विचारधारा में सन्देह के बीज अकुरित हो जाते है, तो फिर लगातार भरसक कोशिश करने पर भी वे पूर्णरूप से नष्ट नही हो पाते। धीरे-धीरे वे एक वृक्ष के समान विस्तृत हो जाते हैं। जिस प्रकार बेर के वृक्ष को कितना भी काटो, परन्तु वह बार-बार उत्पन्न होता ही रहेगा। वह जड़ से नष्ट नही हो पाता, ठीक इसी प्रकार सन्देह को समूल नष्ट नही किया जा सकता। जब मनुष्य के मस्तिष्क में विचारो का तूफान उठ खडा होता है, तो बहुत प्रयत्न

करने पर वे विचार अल्प समय के लिए ही सन्देह की भावना को दूर करने में सफल हो पाते हैं, परन्तु ज्यों ही विचारों का तूफान हल्का पड़ता है, सन्देह के बादल पुनः मस्तिष्क रूपी आकाश में घिर जाते हैं। इन घोर मेघों से जो अज्ञान रूपी गहन अन्धकार होता है उसमें ज्ञान रूपी सूर्य के अस्त होने का भी भय रहता है अर्थात् मनुष्य सन्देह की भावना में बहकर अपने ज्ञान को भी नष्ट कर बैठता है।

(२) वह समस्या ····· चाहिए। (पृष्ठ १२१)

(प्रभाकर, जनवरी १९४३)

प्रस्तुत उद्धरण श्री जयप्रकाशनारायण द्वारा लिखित "गाँधीवाद बनाम समाजवाद" शीर्षक लेख से उद्धृत किया गया है। लेखक गाँधीवाद की आलोचना करते हुए कहता है कि यह समस्या ट्रस्टीशिप की नहीं है जिसमें धनाढ्य निर्धनों को उनकी आवश्यकतानुसार जब चाहेंगे धन देते रहेंगे, वह समस्या तो धनोपार्जन तथा उसका वैज्ञानिक ढंग से विश्लेषण करने की है। हमें इस समस्या को साहसपूर्वक सुलझाना है। भावुकता के पर्दे से ढककर हमें इसकी उपेक्षा नहीं करनी चाहिए।

हिन्दी गद्य का आविर्भाव और विकास

प्रश्न १— गद्य की अपेक्षा पद्य की प्राचीनता का सकारण उल्लेख करें।

उत्तर—गद्य की अपेक्षा पद्य अत्यन्त प्राचीन है। कहा जाता है कि सृष्टि के प्रारम्भ मे जब मानव ने प्रथम बार अपनी सुखात्मक या दुःखात्मक भावना की ध्वनि की होगी तब पद्य मे ही की होगी। पद्य गद्य की अपेक्षा शीघ्र कण्ठस्थ होनी वाली रचना है। पद्य में बार-बार किसी भावना को दुहराने मे मानव को आनन्दोपलब्धि होती है। ईश्वर ने ऋषियो को जगत्-कल्याणार्थ पद्यस्वरूप वैदिक ग्रन्थो—मन्त्रो के रूप मे ही अपने ज्ञान का उपदेश दिया था। शीघ्र स्मृति-पटल पर अकित हुआ पद्य कभी-कभी आजीवन विस्मृत नही होता। प्राचीन काल मे जबकि कागज और मुद्रण-कला आदि का अभाव था तब गुरुजन शिष्यो को पद्यो मे ही उपदेश देते थे। भावो की दृष्टि से पद्य गागर मे सागर होता है। पद्य मे गद्य की अपेक्षा मार्मिकता, कोमलता और प्रभावोत्पादकता अधिक होती है, पद्य की प्राचीनता अन्य देशो के साहित्य के अवलोकन से भी होती है, क्योकि सभी जातियो की साहित्यिक सामग्री महाकाव्यो अथवा वीरगाथाओ के रूप मे ही उपलब्ध होती है

प्रश्न २—गद्य का आविर्भाव (उत्पत्ति) कब होता है ?

उत्तर—ज्यो-ज्यो समाज में सभ्यता का विस्तार होता जाता है, त्यो-त्यो मानव की भावाभिव्यक्ति गद्य मे होती जाती है। जब तक मनुष्य सामाजिक बन्धनो से, सभ्यता से दूर रहता है तबतक भले ही वह पद्य में भावाभिव्यक्ति करता रहे किन्तु जब धीरे-धीरे सभ्यता का विकास होने लगता है तब उसके परिणामस्वरूप पद्यात्मक वातावरण न्यूनाधिक मात्रा में लुप्त होने लगता है और गद्य के प्रयोग के लिए समुचित वातावरण उपस्थित

होने लगता है। ज्यों-ज्यों मानव-जीवन विकास की पगडंडी पर अग्रसर होता है · ज्यों-ज्यों उसकी आवश्यकताएं इच्छाएं, लेन-देन और बुद्धि बढ़ती जाती त्यों-त्यों मानव को गद्य के आश्रय में ही अपने भावों को प्रकट करने का अवसर प्राप्त होता है।

प्रश्न ३—हिन्दी पद्य की अपेक्षा हिन्दी गद्य के बाद में आविर्भाव के कारणों पर प्रकाश डालें।

उत्तर—हिन्दी आरम्भ काल की भाषा नहीं है। प्रारम्भिक भाषा तो देववाणी संस्कृत भाषा है जो हिन्दी भाषा की जननी है। हिन्दी के आविर्भाव काल में संस्कृत का प्रबल प्रचार था। इस संस्कृत भाषा का आविर्भाव जैसे प्रथम पद्य में ही हुआ वैसे ही हिन्दी का भी आविर्भाव पहले-पहल पद्य में ही हुआ।

हिन्दी साहित्य का आदिकाल युद्ध के वातावरण से अभिभूत था। जब भारतीय नरेश सुरा और सुन्दरी के उपासक बन गये थे तथा जब वे बाहरी आक्रमणों को रोकने में समर्थ न हो सके तब उन में वीरता एवं कर्त्तव्यपरायणता की भावना भरने के लिए पद्यात्मक वीररस के ग्रंथों की रचना की आवश्यकता ही प्रतीत हुई। इस कार्य के लिये पद्य की न तो जैसे आवश्यकता ही प्रतीत हुई और न ही उसका विकास हो सका। एक यह भी कारण है कि उस समय मुद्रणालय और कागज आदि की उत्पत्ति एवं उपलब्धि सुविधा-रूपेण न होने के कारण गद्य शैली रचना का विस्तार न होने के कारण पद्य का ही प्रचार रहा।

किन्तु इसका अर्थ यह नहीं कि इस समय गद्य का सर्वथा अभाव था। जितना भी इस समय का गद्य साहित्यिक भूगर्भज्ञों की कृपा से प्राप्त हुआ, वह यद्यपि सुव्यवस्थित एवं पर्याप्त तथा सन्तुष्टिजनक नहीं है तथापि जैसा भी है उसका अस्तित्व स्वीकार करना ही पड़ेगा।

ॐ— श्री हरि एकलिंगो जयति।

प्रश्न ४—प्राचीन गद्य के प्रारम्भिक समय का निर्धारण करते हुए उसके क्रमिक विकास पर प्रकाश डालें।

उत्तर—यद्यपि प्रायः गुरु गोरखनाथ को ही हिन्दी का प्रथम गद्य-

लेखक स्वीकार किया जाता रहा तथापि उसके आविर्भाव के विषय मे अवश्य कुछ मतभेद है। डा० पीताम्बर दत्त बडथ्वाल और श्री राहुल गद्य का आरम्भ काल सवत् १००० के लगभग मानते है। मिश्रबन्धु १४०७ के लगभग गद्य का आविर्भाव मानते है।

हिन्दी की प्राचीन सामग्री की शोध करने वालो ने जिस प्राचीन गद्य की खोज की है वह दान-पत्रो, पट्टे-परवानो, सनदो, वार्ताओ तथा टीकाओ के रूप मे मिलता है। उस समय के रावल समरसिंह और पृथ्वीराज के दो पत्रो का उल्लेख भी मिलता है। इनमे से बहुत सी सामग्री श्री मोहनलाल विष्णुलाल पाड्या द्वारा प्रकाशित हुई है। किन्तु अभी तक इस सामग्री की प्रामाणिकता के विषय मे सदेह है।

वीरगाथा काल के पश्चात् जो राजस्थानी गद्य की रचनाएँ मिलती है, उनमे अधिकाश ख्यातो, वातो या वचनिकाओ के रूप मे है।

१३-१४ वी शताब्दी से १६ वी तक जितना भी गद्य मिलता है वह अत्यन्त अपरिष्कृत एव अपरिमार्जित है। जैसे—

"माहरउ नमस्कारु हुउ०००"।

१५ वी शताब्दी के गद्य के कुछ इधर-उधर बिखरे हुए अश ही मिलते है, जिन्हे शुद्ध रूप नही कहा जा सकता।

१६ वी शताब्दी तक का गद्य इसी प्रकार समझना चाहिए। यहाँ तक का गद्य राजस्थानी गद्य मिलता है।

ब्रजभाषा गद्य—हिन्दी मे खडी बोली से पूर्व ब्रजभाषा गद्य का प्रणयन मिलता है और वह भी प्राचीन कृतियो की खोज के अनुसार गोरखपथियो के ग्रथो के रूप मे। जैसे—"श्री गुरु परमानन्द तिनको दडवत है ०००।" इसके पश्चात् एक राजपूताने के लेखक के गद्य का कुछ भाग मिलता है जिसने 'पूछिवा' 'कहिवा" और 'करिया' जैसी क्रियाओ का प्रयोग किया है। १६ वी शताब्दी के उत्तरार्द्ध भाग मे राधावल्लभी सम्प्रदाय के प्रवर्तक श्री गोस्वामी हित हरिवश जी की एक पत्रिका के गद्य मिले है। जैसे—

"श्री मुख पत्री लिखति।"

कृष्णभक्ति के प्रवर्तक वल्लभाचार्य के पुत्र श्री विट्ठलनाथ ने "राधा

कृष्ण विहार' और 'शृंगार रस मंडन' दो गद्य ग्रंथ लिखे। इस गद्य को विशेष परिमार्जित नहीं कहा जा सकता। १७वीं शताब्दी में श्री हरिराय जी ने 'भक्तिभावना' गद्य ग्रंथ लिखा जिसका गद्य कुछ परिष्कृत कहा जा सकता है।

इसी समय श्री गो० गोकुलनाथ जी के 'चौरासी वैष्णवन की वार्ता' और 'दो सौ बावन वैष्णवन की वार्ता' दो गद्य ग्रंथों का कुछ परिमार्जित रूप मिला। इन ग्रंथों का गद्य उच्च कोटि का तो कहा ही नहीं जा सकता क्योंकि इनमें सम्प्रदाय प्रचार के अतिरिक्त और कुछ नहीं। इसके अतिरिक्त श्री गोकुलनाथ जी के छः और गद्य ग्रंथ मिलते हैं जिनमें पुष्टि मार्ग के सिद्धान्तों का प्रचार है।

तदनन्तर नाभादास का 'अष्टयाम' गद्य ग्रंथ मिलता है, जिसमें भगवा राम की दिनचर्या का वर्णन मिलता है।

१६८० के लगभग वैकुण्ठमणि शुक्ल ने दो छोटे-छोटे गद्य ग्रंथ लिखे 'अगहन महात्म्य' और 'वैशाख महात्म्य'।

१६६० में लिखा एक 'विष्णुपुरी' ग्रंथ भी मिलता है। सुरति मिश्र ने 'बैता पच्चीसी' गद्य रचना की। इसी समय अनेक संस्कृत भाषा के विभिन्न विद्वा ने विभिन्न संस्कृत ग्रंथों की टीकाएँ की। इन सभी ग्रन्थों में मौलिकता व अभाव और संस्कृत ग्रंथों का अनुकरण मात्र है। इन टीकात्मक गद्य ग्रं में किशोरदास की 'शृंगारशतक टीका' और जानकीप्रसाद की 'रामचन्द्रि टीका' प्रसिद्ध है।

प्रश्न २—हिन्दी में खड़ी बोली के गद्य के क्रमिक विकास का वर्णन करें

उत्तर—पद्य के लिये खड़ी बोली का प्रयोग तो अमीर खुसरो और कबं आदि की रचनाओं से ही मिलता है किन्तु गद्य का प्रयोग बहुत बाद की व है।

दिल्ली में मुगल साम्राज्य के विध्वंस से भागे हुए व्यापारियों, लेख एवं शायरों द्वारा मेरठ और उसके आस-पास के प्रदेशों से भी खड़ी बोली गद्य का विकास हुआ माना जाता है।

खड़ी बोली के गद्य का सर्वप्रथम उदाहरण सम्वत् १६३० के लगा

अकबरी दरबार के कवि गग भाट के लिखे हुए 'चन्द छन्द बरनन महिमा' गद्य ग्रथ मे मिलता है। इसी ग्रथ को खडी बोली के गद्य का प्रथम ग्रथ माना जाता है। किन्तु इस ग्रथ मे भी व्रजभाषा की पुट होने से इसे शुद्ध खडी बोली का गद्य नही कहा जा सकता। गग कवि के उपरान्त जटमल कवि का लिखा हुआ 'गोरा बादल की बात' गद्य ग्रथ मिलता है।

वास्तव मे सोचा जाय तो हमे रामप्रसाद 'निरजनी' का 'भाषा योग वाशिष्ठ' गद्य ग्रन्थ ही प्रथम ग्रन्थ मिलेगा, जिसका गद्य अत्यन्त परिष्कृत और परिमार्जित है। आचार्य शुक्ल जी ने इसी ग्रन्थ को खडी बोली का सर्वप्रथम गद्य ग्रन्थ माना है। जैसे उदाहरण देखिये—

"प्रथम पर ब्रह्म परमात्मा को नमस्कार है"।

कुछ आलोचक विद्वान् प० दौलतराम के 'पद्म पुराण' को इसी तरह अच्छा गद्य ग्रन्थ मानते है। वैसे इसका गद्य 'भाषा योग वाशिष्ठ' जैसा परिष्कृत नही। १८४० के लगभग का एक 'मडोवर' का वर्णन भी मिलता है। इसका गद्य बोलचाल का गद्य है। इसी समय के आसपास 'चकत्ता की पातस्याही की परम्परा' और 'कुतबरी साहिजादे री वात' आदि ग्रन्थ भी मिलते है।

हिन्दी गद्य का निर्माण काल —इसके बाद हिन्दी गद्य का निर्माण काल आरम्भ होता है। इससे पूर्व गद्य मे जो न्यूनताएँ थी वे सभी दूर होने लगी। सामान्य भावो को प्रकट करने के लिए ही जो गद्य अभी तक प्रचलित था, उसका प्रयोग अब विशिष्ट भावो के लिये भी होने लगा। इस प्रकार के गद्य निर्माण मे कारण कुछ तो देश की परिवर्तनशील परिस्थितियाँ समझनी चाहियें और कुछ अग्रेजो के आगमन के कारण।

भारत मे अपने प्रभुत्व, अपनी सभ्यता तथा सस्कृति आदि की सुदृढता एव प्रचार के लिये ईसाइयो ने अनेक सीरामपुर जैसे स्थानो पर अड्डे स्थापित किये। पादरियो को धर्म-प्रचार के लिये छोड़ा गया।

स्थान-स्थान पर पादरियो के भाषण होते थे। प्रेस स्थापित किये गये थे। यह समस्त कार्य-क्रम हिन्दी में होता था। नई-नई छोटी-छोटी पुस्तिकाएँ जो ईसाइयो की ओर से प्रकाशित होती थी वे भी हिन्दी गद्य मे ही होती थी। 'बाइबिल' का अनुवाद भी इस समय अनेक बार हिन्दी गद्य मे हुआ। इस प्रकार

अंग्रेजों का धर्म प्रचार भी हिन्दी गद्य के निर्माण में पर्याप्त सहायक सिद्ध हुआ।

ईसाइयों के इन प्रयत्न के साथ-साथ मैकाले की शिक्षा-योजना का भी विशेष महत्व है। मैकाले ने देशवासियों को अंग्रेजी के माध्यम द्वारा पाश्चात्य ढंग पर शिक्षा देने की योजना तैयार की थी। इस समय अंग्रेजी गद्य का पर्याप्त प्रचार हो चुका था। बेकन के निबन्ध, एडीसन और स्टील के निबन्ध जैसी उच्च कोटि की रचनाओं का प्रभाव लेकर हिन्दी गद्य साहित्य उन्नत होने लगा। स० १९११ मे चार्ल्स वुड ने भी जब देशी भाषाओं के अध्ययन का प्रबन्ध किया तब उनसे भी हिन्दी गद्य साहित्य को प्रोत्साहन मिला।

गद्य के निर्माण काल में कलकत्ते के फोर्ट विलियम कालेज अथवा वहाँ पर नियुक्त प० सदासुखलाल तथा सदल मिश्र ने क्रमश 'सुखसागर' और 'नासिकेतोपाख्यान' ग्रन्थ लिखे। इनके साथ ही लल्लूलाल तथा सैय्यद इशा अल्लाखाँ का भी नाम चिरस्मरणीय रहेगा।

इन चारो लेखकों को हिन्दी गद्य का स्तम्भ-चतुष्टय माना जाता है। मुन्शी सदासुख लाल की भाषा कथावाचकों सी है, जिसमे ठेठ ग्रामीण और प्रान्तीय शब्दों तक का प्रयोग हुआ है। इनकी भाषा मे पण्डिताऊपन की मात्रा भी अधिक है। स्थान-स्थान पर तात्पर्य 'मतोवृत्ति' 'स्वरुप' आदि तत्सम शब्दो का प्रयोग हुआ है।

इंशा अल्लाखाँ की भाषा चटक-मटक और चुलबुली शैली युक्त होने के कारण प्रसिद्ध है। इनकी प्रसिद्ध पुस्तक 'रानी केतकी की कहानी' है। यह थी तो उर्दू लिपि मे, किन्तु इसकी गणना खड़ी बोली के गद्य के ग्रन्थों में होती है। अपने ग्रन्थ के विषय मे ये लिखते है—

"एक दिन बैठे-बैठे यह बात अपने ध्यान मे चढ़ी कि कोई कहानी ऐसी कहिए कि जिसमे हिन्दवी छुट और किसी बोली का पुट न मिले ......।"

इस ग्रन्थ की भाषा मुहावरेदार और चुटकीली शैली की है। भाषा में लय, माधुर्य और रसानुभूति है। सानुप्रास और तद्भव शब्दो का प्रयोग हुआ है।

लल्लूलाल—ये भी खड़ी बोली गद्य के अच्छे लेखक हुए है। उन्होंने श्रीमद्भागवत के दशम स्कन्ध का अनुवाद 'प्रेमसागर' नामक गद्य

ग्रन्थ के नाम से लिखा। इन पर ब्रजभाषा का आद्योपान्त व्यापक प्रभाव रहा है। लेखक अपनी ओर से एक सीमा लेकर चलता है। भाषा में अरबी और फारसी के शब्दो का प्रयोग भी हुआ है। वैसे भाषा मे मार्दव, माधुर्य, अनुप्रास और कही-कही शब्दाडम्बर भी मिलता है। फिर भी मुख्य रूप से ब्रजभाषा है। भाषा मे पद्यत्व और मुहावरे है।

सदल मिश्र—इनका लिखा हुआ गद्यग्रन्थ 'नासिकेतोपाख्यान' है। इस उच्चकोटि की रचना का उद्देश्य गद्य का प्रचार था। भाषा मुहावरेदार, सस्कृत के तत्सम शब्दो का प्रयोग लेकर चलने वाली है। ब्रज भाषा और पूर्वी बोली दोनो का ही मिश्रण है। आचार्य शुक्ल का कथन है कि—"इनका गद्य साफ सुथरा नहीं'। इनकी पद-योजना सरल और सुबोध है। कही-कही पर दोहरे शब्दो का प्रयोग भी हुआ है। भाषा पर उर्दू और सस्कृत दोनो का ही प्रभाव है। इनका गद्य लचकीला और गठीला भी कहा जाता है।

इस प्रकार इन चारो लेखको ने गद्य के निर्माण काल मे विशेष योग दिया।

जब भारत मे अग्रेजो ने अपनी ही सस्कृति आदि का प्रचार करने के लिये बहुत प्रयत्न किये तब उनके प्रतिक्रियास्वरूप बगाल में राजा राममोहन राय आदि ब्राह्मसमाजियो ने हिन्दू सस्कृति का प्रचार करने के लिये अनेक छोटी-छोटी धार्मिक पुस्तिकाये प्रकाशित करवाई। इसी प्रकार श्री स्वामी दयानन्द जैसे आर्य समाज के प्रवर्तक मुख्य नेताओ ने भी 'सत्यार्थ प्रकाश' आदि अनेक ग्रन्थ लिखे। इन सभी के सभी ग्रन्थो की भाषा शुद्ध खडी बोली है। इससे गद्य प्रचार मे पर्याप्त सहयोग मिला।

इसी समय के आर्यसमाज के नेता प० भीमसेन शर्मा का नाम विशेष उल्लेखनीय है। इन्हे मिश्रित भाषा से चिढ थी। ये हिन्दी मे सस्कृत भाषा के शब्द लेने के पक्ष मे रहे। इसी तरह प० श्रद्धाराम फिलौरी का नाम हिन्दी गद्य के निर्माण मे विशेष योग देने में उल्लेखनीय रहा है। सनातन धर्म के प्रचारको ने भी आर्य समाज के ढंग पर धर्म-प्रचार के अड्डे बनाने आरम्भ कर दिये। स्थान-स्थान पर धर्म-प्रचार और भाषण होते थे। जिनसे खड़ी बोली के गद्य का विकास होता चला गया।

पं० अम्बिकादत्त व्यास जी सनातन धर्म के महान् प्रचारक थे, उनको भी स्थान-स्थान पर घूम-घूम कर व्याख्यान देने पडते थे। जनता तक अपने सिद्धान्तो का भी प्रचार करने के लिये मुहावरेदार और प्रचलित भाषा का व्यवहार करना पडता था। इनकी भाषा मे व्यंग्यपूर्ण तर्क-वितर्क तथा खंडन-मंडन रहता था।

उस समय तक मुद्रण यन्त्रो का प्रचार भी पर्याप्त होने लगा था। इस प्रचार से हिन्दी गद्य का रूप स्थिर हुआ। मुद्रण कला के परिणाम स्वरूप ही समाचार पत्रो का आविर्भाव होने लगा जिससे भाषा का प्रश्न शीघ्र ही तय हो गया।

इस समय के पत्रो मे 'उदत मार्तण्ड' पत्र प्रसिद्ध रहा।

राजा शिवप्रसाद 'सितारे हिन्द' के द्वारा भी गद्य का निर्माण हुआ। ये शिक्षा विभाग में इन्सपेक्टर होने के कारण अनेक पुस्तकों के अच्छे लेखक प्रमाणित हुए। इनका कार्य अपनी दृष्टि मे वैज्ञानिक, मनोवैज्ञानिक, फलदायक और क्रमबद्ध था। वे समय की परिस्थिति को देखकर इस परिणाम पर पहुँचे कि उर्दू पढे लिखे लोगों को एक दम हिन्दी की ओर आकृष्ट करना असम्भव है। इसीलिये वे उर्दू के शब्दो को धीरे-धीरे देव नागरी लिपि मे लाना चाहते थे। सं० १९०२ मे उन्होंने 'बनारस' समाचार पत्र निकाला। जिसकी लिपि तो देव नागरी रखी, पर भाषा मे उर्दू का प्रयोग किया। उनका उद्देश्य उर्दू के माध्यम मे हिन्दी भाषा का प्रचार था। किन्तु वे इस कार्य मे पूर्णतः सफल नहीं हो सके। क्योंकि वे हिन्दी के इच्छुक होते हुए भी उर्दू का मोह न छोड सके। उर्दू के मुहावरो से वे विशेष परिचित थे। इनके गद्य मे चमत्कार अधिक रहता है। इनकी मुख्य रचनाये—'आलसियों को कोडा', 'सिक्खों का उदय चरित', 'राजा भोज का सपना', 'नल दमयन्ती' आदि आदि है।

इसके पश्चात् राजा लक्ष्मणसिंह आते है। इन्होंने 'शकुन्तला' नाटक का हिन्दी अनुवाद किया। इन्होंने राजा शिवप्रसाद की हिन्दुस्तानी भाषा के उर्दू शब्दों का विरोध किया। इनका अनुवाद ठेठ खडी बोली हिन्दी मे हुआ।

प्रश्न ६—हिन्दी गद्य का प्रसार काल कब से आरम्भ होता है? संक्षिप्त परिचय दें।

अथवा

भारतेन्दु की गद्य सेवाओं का वर्णन करते हुए उनके भाषा स्वरूप का संक्षिप्त परिचय दें।

उत्तर—हिन्दी गद्य का प्रसारण काल—भारतेन्दु हरिश्चन्द्र के हिन्दी गद्य क्षेत्र मे अवतरित होते ही हिन्दी गद्य का प्रसार होने लगा। अब तक हिन्दी गद्य की जो उन्नति हुई थी वह बिना किसी क्रम के चलती रही। इससे पूर्व के काल को एक प्रकार मे हिन्दी गद्य का प्रस्ताव काल ही कहा जा सकता है। यद्यपि अनेक शक्तियाँ गद्य की उन्नति मे अपना-अपना सहयोग दे रही थी किन्तु फिर भी गद्य को एक प्रवाह मे प्रवाहित कर देने वाली प्रतिभा का अभाव था। इस अभाव की पूर्ति भारतेन्दु द्वारा हुई। इसी से इन्हे क्रान्तिकारी अथवा हिन्दी गद्य का जन्मदाता कहा जाता है। इससे पूर्व किसी की भाषा मे पण्डिताऊपन की मात्रा अधिक थी, किसी मे आगरे की बोली की पुट थी तो किसी की भाषा मे उर्दू के शब्दो की भरमार थी, किसी मे ब्रज-भाषापन अधिक था। इन सब त्रुटियो को दूर किया तो केवल भारतेन्दु जी ने। भारतेन्दु का प्रभाव भाषा और साहित्य दोनो पर ही पडा। इसीलिये भारतेन्दु को युग-प्रवर्तक भी कहा जाता है।

भारतेन्दु ने गद्य को एक अनिश्चितता के कर्दम से निकाल कर उसकी एक निश्चित परम्परा चलाई और उसका सस्कार करके उसका शिष्ट-सम्मान्य रूप प्रकट किया। इनका गद्य एक ओर तो लल्लूलाल और राजा लक्ष्मणसिंह के गद्य से मेल खाता है, दूसरी ओर उनका गद्य आधुनिकता से मिश्रित है। इन्होने दर्जनो ही नाटक लिखे, जिनमे कुछ तो मौलिक है और कुछ सस्कृत भाषा के नाटकों के अनुवाद। इन सब नाटको से हमें उनके गद्य का पर्याप्त परिचय प्राप्त होता है।

हिन्दी गद्य को भारतेन्दु की प्रमुख रूप से तीन रूपो में देन है—

प्रथम तो यह कि इनके द्वारा गद्य में व्यग्य और हास्य का समावेश होने से गद्य-क्षेत्र सजीव हो उठा। लोकोक्तियो और मुहावरो द्वारा इनका यह कार्य सम्पन्न हुआ। 'भारत दुर्दशा' नाटक इस प्रवृत्ति को स्पष्ट करता है।

दूसरी प्रमुख देन यह है कि गद्य मे नागरिक चिक्कणता ला दी।

तीसरी देन यह है कि उन्होंने विभिन्न प्रकार के नाटकों तथा प्रहसनों में गद्य का प्रयोग करके उसे पुष्ट तथा व्यंजक बनाया।

जहाँ भारतेन्दु का गद्य सरल तथा सुबोध है वहाँ उसमें कहीं-कहीं संस्कृत शब्दों की दुरूहता भी पाई जाती है।

प्रश्न ७—भारतेन्दु के समय के अन्य लेखकों की गद्य सेवाओं का वर्णन करें।

अथवा

भारतेन्दु की मित्र-मंडली की गद्य-सेवाओं का वर्णन करें।

उत्तर—भारतेन्दु के साथ-साथ उनके काल के अन्य लेखकों ने भी गद्य की उन्नति में पर्याप्त सहयोग दिया। इस समय अच्छा लेखक-मंडल तैयार हो गया था। राजनीति, समाज-सुधार और शास्त्रीय विषयों में परिचित विभिन्न विद्वानों ने अपनी-अपनी रुचि के अनुसार महत्त्वपूर्ण विचार गद्य के माध्यम से ही प्रकट किए। इस समय के लेखक भाषा की प्रकृति के पूर्ण ज्ञाता थे। हास्य और विनोद की प्रवृत्ति इन लेखकों में विशेष रूप से पाई जाती है, जिसका श्री गणेश स्वयं भारतेन्दु जी ने किया था। इसी समय गद्य में अच्छे-अच्छे उपन्यास, कहानियाँ और निबन्ध आदि का प्रकाशन और प्रचार हुआ। देश-भक्ति का स्वर इस समय का मुख्य स्वर समझा जाता है।

फ्रेडरिक पिन्काट जैसे विद्वानों ने भाषा और साहित्य के अध्ययन और लेखन में अच्छी रुचि दिखाई। उस समय 'आईन सौदागरी' नामक पत्र में जो उस समय निकलता था कुछ पृष्ठ हिन्दी के भी रखवाये। इनका भारतेन्दु से हिन्दी में ही पत्र-व्यवहार अनेक बार हुआ था।

नाटकीय गद्य का विकास करने वालों में राधाकृष्ण दास, श्रीनिवासदास, किशोरीलाल गोस्वामी आदि का नाम विशेष उल्लेखनीय है। इन्होंने क्रमश 'दु खिनीबाला', 'रणधीर और प्रेम मोहिनी', 'मयंक मञ्जरी' आदि-आदि नाटक लिखे।

नाटकीय क्षेत्र में प्रहसन को इस समय विशेष सफलता मिली। इस समय प्रहसन एक विशेष व्यसन हो गया था। नवीन विचारों के समर्थकों ने रूढि-ग्रस्त व्यक्तियों की हँसी उड़ानी आरम्भ कर दी।

इनमे प० बालकृष्ण भट्ट, राधाचरण गोस्वामी, और गोपाल राम गहमरी आदि प्रसिद्ध है।

गद्य-क्षेत्र मे उपन्यास की रचना भारतेन्दु से पूर्व ही आरम्भ हो चुकी थी। श्रीनिवासदास का 'परीक्षा गुरु', बालकृष्ण भट्ट के 'नि सहाय हिन्दू', 'नूतन ब्रह्मचारी, और 'सौ अजान एक सुजान' आदि उपन्यास मिलते हैं। किशोरीलाल गोस्वामी, गोपालराम गहमरी, देवीप्रसाद आदि ने भी उपन्यास लिख कर गद्य-क्षेत्र को विकसित किया। 'चन्द्रकान्ता' और 'चन्द्रकान्ता संतति' उपन्यास इसी युग के विशेष प्रसिद्ध उपन्यास है। इसी समय बगला भाषा के कुछ उपन्यासो का अनुवाद भी हिन्दी गद्य मे आया। इन सभी उपन्यासो का विषय तिलस्म, जासूसी और ऐय्यारी था।

भारतेन्दु के बाद अनेक अच्छे-अच्छे लेखक आये, जिन्होने नवीन गद्य-शैली को जन्म दिया। अनेक पत्र-पत्रिकाओ के द्वारा गद्य को प्रोत्साहन मिला।

प्रतापनारायण मिश्र का 'ब्राह्मण', बालकृष्ण भट्ट का 'हिन्दी प्रदीप,' बदरीनारायण चौधरी का 'आनन्द कादम्बिनी' आदि-आदि समाचार पत्र मिलते है। इस समय लगभग २०-२५ पत्र-पत्रिकाओ का प्रकाशन हुआ।

प्रतापनारायण मिश्र का हिन्दी गद्य-सुधार सम्बन्धी कार्य अत्यन्त प्रशसनीय है। इनका गद्य युग-परिवर्तनकारी कहा जा सकता है। तत्कालीन आवश्यकता की पूर्ति के लिए इन्होने नैसर्गिक, साहित्यिक, सस्कृतगर्भित, कही-कही पर उर्दू मिश्रित, हास्य और विनोद से परिपूर्ण गद्य की रचना की। यद्यपि इन्होने उपन्यास क्षेत्र मे कोई कार्य नही किया तो भी निबन्ध क्षेत्र मे 'मा', 'आँख', 'कान', 'नाक' आदि अनेक छोटे-छोटे विषयो को लेकर लोकोक्तियो और मुहावरो से परिपूर्ण जो निबन्ध लिखे है, वे गद्य-क्षेत्र मे अनुपम है। मिश्र जी की भाषा मे साहित्यिकता के साथ-साथ सरसता और सुबोधता भी है। विराम-चिन्हो का अभाव भाषा मे अवश्य खटकता है।

पडित बालकृष्ण भट्ट का नाम भी हिन्दी गद्य-साहित्य मे चिरस्मरणीय रहेगा। वस्तुत गद्य-क्षेत्र मे साहित्यिक सौरभ का सचार करने वाले यही उच्चकोटि के पत्रकार तथा निबन्ध-लेखक थे। इनके निबन्धो द्वारा परवर्ती

गद्य को विशेष बल मिला। कहीं-कहीं पर तो इनकी उर्दू शैली जैसी भाषा की लचक इतनी है कि हृदय मे गुद-गुदी उत्पन्न किए बिना नही रहती। इनके गद्य की विशेषता तर्कप्रधान उद्देश्य, जोश भरी शैली, साधारण बोल-चाल के शब्दो का प्रयोग, शुद्धि, अत्यन्त परिमार्जन आदि-आदि हैं। संस्कृत के प्रकाण्ड पडित होने के कारण इनकी भाषा मुख्यतया शुद्ध तथा सरल संस्कृत भाषा के शब्दो को लेकर चलती है। कहीं-कहीं उर्दू और फारसी के मुहावरों को लेकर भी चलती है। श्री जगन्नाथ प्रसाद के शब्दो मे इनकी भाषा मे तीखापन, बल, यथाक्रम और उतार-चढाव दिखाई पडता है। इनकी शैली में बनावटी रूप नही मिलता।

इन के बाद बदरीनारायण चौधरी एक उच्च कोटि के गद्य-लेखक आए। अपने से पूर्ववर्ती गद्य-लेखको की अपेक्षा इन्होने गद्य को अधिक स्थिर और सशक्त किया। इनकी भाषा मे अनुप्रास और पद-विन्यास अच्छा है।

ठाकुर जगमोहन सिंह भी विशेष शैली से परिपूर्ण "श्यामा-स्वप्न' जैसे ग्रन्थो के गद्य लेखक आए।

प्रश्न ८—हिन्दी गद्य के स्थैर्य काल से क्या अभिप्राय है? इसका स्पष्ट उल्लेख करते हुए बताए कि इस कार्य मे कौन-कौन से लेखको ने सहयोग दिया है?

उत्तर—जिस युग मे किसी भी साहित्यिक गद्य से भाषा, भाव, और शैली के परिमार्जन के साथ-साथ उसमे ऐसी सुदृढता उत्पन्न की जाए कि वह भविष्य के लिये लेखको का पथ-प्रदर्शन करे वही स्थैर्य-काल समझना चाहिये। द्विवेदी युग को ही हिन्दी गद्य का स्थैर्य-काल कहा जाता है।

इस काल से पूर्व प्रसरण काल मे गद्य का प्रसरण भर हुआ। अथवा इस काल मे लेखको का ध्यान इसी ओर था कि विविध प्रकार के भावों को व्यक्त करने की शक्ति गद्य मे उत्पन्न हो। इस समय के गद्य मे व्याकरण की अवहेलना तो साधारण सी बात थी। 'इच्छा किया', 'उपरोक्त', 'सासादिक मे', 'दयामनार्द' आदि शब्दों का प्रयोग व्याकरणविरुद्ध रूप में होता था। इसके अतिरिक्त अनुस्वार, चन्द्र बिन्दु, ए और ये, श और ष के प्रयोगो पर लेखको ने कोई ध्यान नही दिया। इस समय के प्रौढ और

अच्छे लेखक भी मानो होड लगाकर अपने लेखो मे फारसी, अंग्रेजी और संस्कृत के शब्दो का प्रयोग करते थे। इन सब बातो के विषय मे परिमार्जन और नियमन की आवश्यकता थी। ये सब त्रुटियाँ द्विवेदी जी के प्रयत्नो से दूर हुई। द्विवेदी जी ने 'सरस्वती' पत्रिका का सम्पादन करके भाषाविषयक बहुत बडा उपकार किया।

दूसरी ओर व्याकरण की रचना करके भाषा को नियम-बद्ध बनाया। बंगला और अंग्रेजी क्षेत्र से हिन्दी मे आने वाले अनेक युवको को नियमो से परिचित होने की चेतावनी दी।

बालकृष्ण भट्ट तथा प्रतापनारायण मिश्र के बाद द्विवेदी जी ने ही भाषा सुधार का बीडा अपने हाथो मे लिया। द्विवेदी जी व्याकरण तथा संस्कृत के पण्डित होते हुए भी गद्य के लिये हिन्दी के सरल शब्दो के पक्ष में रहते थे।

इनकी शब्द योजना भावानुकूल होती थी। वाक्य चाहे छोटे होते थे किन्तु उनमे पूरा बल और चमत्कार होता था। विषय के प्रतिपादन मे व्यंग्य, आवेश और सम्वेदनशीलता रहती थी। 'कवि और कविता', 'प्रतिभा' तथा अन्य सभी निबन्ध इस कसौटी पर परखे जा सकते है। इसके अतिरिक्त अनेक नवीन गद्य-शैलियो का आविष्कार किया।

इसी स्थैर्य-काल के दूसरे लेखक गोविन्दनारायण मिश्र है। इन्होने 'विभक्ति विचार' पुस्तक लिखकर बडा उपकार किया। इनकी गद्य-शैली मे पाण्डित्य-प्रदर्शन अधिक है। अलंकृत अभिव्यंजना के कारण इनकी शैली मे दुरूहता और अस्पष्टता कही-कही आ गई है।

संस्कृत शब्दो की छटा तो इनकी देखते ही बनती है। समास-शैली का प्रयोग भी बहुत हुआ है।

इनके बाद बाबू बालमुकुन्द गुप्त जी आये। इनके गद्य मे चलतापन अधिक है। उर्दू के विद्वान् होने के कारण इनके गद्य मे उर्दू शैली, उसके मुहावरो और लोकोक्तियो का अधिक रूप मे प्रयोग हुआ।

इनके अतिरिक्त इसी युग के किशोरीलाल गोस्वामी, पं० अयोध्यासिह उपाध्याय, बाबू श्यामसुन्दर दास और चन्द्रधर शर्मा आदि भी प्रसिद्ध है। बाबू देवकीनन्दन खत्री ने अपने 'चन्द्रकान्ता' और 'चन्द्रकान्ता संतति'

ऐयारी घटना-प्रधान थे। किशोरीलाल गोस्वामी जी के उपन्यासो मे चमत्कार-पूर्ण वर्णन तथा स्वाभाविक चरित्र-चित्रण के साथ-साथ सजीव सामाजिक चित्र भी मिलते हैं।

हिन्दी उपन्यासो के तृतीय चरण मे विदेशी भाषाओ के केवल उन उपन्यासो का हिन्दी मे अनुवाद हुआ जो कि कला की दृष्टि से उच्च कोटि के थे। इस युग मे मौलिक उपन्यास अधिक लिखे गये। उपन्यास-सम्राट् मुन्शी प्रेमचन्द ने भी इसी युग मे लगभग एक दर्जन सामाजिक उपन्यास लिखकर साहित्य के इस क्षेत्र का विकास किया। मुन्शी जी के उपन्यासो मे 'गोदान' सर्वश्रेष्ठ है। इसके अतिरिक्त रगभूमि, सेवासदन, गबन, प्रेमाश्रम आदि उपन्यासो का भी हिन्दी उपन्यासो मे बहुत महत्त्व है। श्री जयशकरप्रसाद ने 'ककाल', 'तितली' तथा 'इरावती' (अपूर्ण), श्रीवास्तव जी ने 'विदा', और 'विकास', वृन्दावनलाल वर्मा ने 'गढकु डार' और 'विराटा की पद्मिनी'; कौशिक जी ने 'मा' और 'भिखारिणी', भगवतीचरण वर्मा ने 'चित्रलेखा' और 'तीन वर्ष', चतुरसेन शास्त्री ने 'परख' तथा 'हृदय की प्यास', जैनेन्द्र ने 'तपोभूमि' और 'सुनीता' आदि उपन्यास लिखे। उक्त सभी उपन्यास मौलिक तथा श्रेष्ठ है। इन उपन्यासो ने हिन्दी पाठको की रुचि का परिष्कार किया है। कौतूहल-वर्धक कोरी घटना-विचित्रता से युक्त ऐयारी तथा जासूसी उपन्यासो के स्थान पर हिन्दी पाठको का एक बडा वर्ग सामाजिक, राजनीतिक तथा ऐतिहासिक समस्याओ पर लक्ष्य रखने वाले इन उपन्यासो का प्रेमी हो गया है। चरित्र, विवेचना, कथोपकथन की स्वाभाविकता तथा प्रभावोत्पादकता, अन्तर्द्वन्द्व की अभिव्यक्ति और अन्तर्भावो की मनोवैज्ञानिक व्याख्या आदि विशेषताओ से युक्त होने के कारण हिन्दी के उक्त उपन्यासो मे से अनेक उपन्यासो की विश्व साहित्य के श्रेष्ठ उपन्यासो के साथ गणना हो सकती है।

हिन्दी उपन्यास के चतुर्थ चरण मे नवीन विचार-धाराएँ तथा नई चिन्तनाये सामने आई। सन् १९३६ से चतुर्थ चरण आरम्भ होता है। इस चरण मे कुछ तो पिछले समाज-सुधारक उपन्यासकारो की प्रतिभा प्रखर होकर आगे बढी और कुछ नवीन लेखको ने इस क्षेत्र मे नवीन समस्याए लेकर पदार्पण किया। कुछ उपन्यासकार तो प्राचीन भारतीय गौरव-गरिमा के

पोपक तथा समाज-सुधार एव समाज-समृद्धि की आदर्शवादी भावना के प्रेरक है और कुछ लेखक जीवन को समाजवादी, मनोवैज्ञानिक तथा यथार्थ दृष्टि-कोण से देखने-दिखाने वाले हैं। समाजवादी उपन्यासकारो मे यशपाल, उपेन्द्र-नाथ अश्क, मन्मथनाथ गुप्त तथा राहुल का नाम उल्लेखनीय है। श्री जैनेन्द्र कुमार, इलाचन्द्र जोशी तथा अज्ञेय मनोवैज्ञानिक गुत्थियो को लेकर चले है। हजारीप्रसाद द्विवेदी, वृन्दावनलाल वर्मा, चतुरसेन शास्त्री आदि लेखको ने प्राचीन इतिहास का गौरवमय चित्र प्रस्तुत किया है।

इन उपन्यासकारो के अतिरिक्त और भी कई लेखको ने उपन्यास लिखकर साहित्य की समृद्धि मे सहयोग दिया है और दे रहे है।

प्रश्न १०—हिन्दी कहानी के क्रमिक विकास पर प्रकाश डालिए।

उत्तर—सर्वप्रथम इशा अल्ला खाँ ने 'रानी केतकी की कहानी' लिखकर हिन्दी कहानी साहित्य का श्रीगणेश किया। परन्तु यह कहानी कला की दृष्टि से उच्च कोटि की नही है। भारतेन्दु युग मे स्वय भारतेन्दु जी तथा कई अन्य लेखको ने भी कहानियाँ लिखी, परन्तु कला की दृष्टि से उनका कुछ भी महत्त्व नही है। वास्तव मे कला की दृष्टि से सफल कहानी लिखा जाना द्विवेदी युग मे आरम्भ हुआ। सन् १९०० ई० से लेकर सन् १९१५ ई० तक अच्छी-अच्छी कहानिया लिखी गईं। इस युग मे किशोरीलाल गोस्वामी जी की 'इन्दुमती' और रामचन्द्र शुक्ल की 'ग्यारह वर्ष का समय' कहानियाँ इसी युग मे लिखी गईं। गुलेरी जी की विश्व साहित्य मे श्रेष्ठ कहानी 'उसने कहा था' भी इसी युग मे लिखी गई।

सन् १९१५ से सन् १९३९ ई० तक के समय मे प्रेमचन्द, प्रसाद, कौशिक, सुदर्शन, हृदयेश, उग्र, चतुरसेन, रामकृष्ण मोहनलाल महतो, शिवपूजन-सहाय आदि प्रसिद्ध कहानी-लेखको ने अनेक कहानियाँ लिखकर हिंदी साहित्य की सेवा की। इस युग मे दूसरी भाषाओं से भी अनेक कहानियो का अनुवाद किया गया। कहानीकारो ने केवल पाश्चात्य ढग का ही अनुकरण नही किया, बल्कि भारतीय वातावरण तथा सस्कृति के अनुरूप नैतिक आदर्शों को सामने रखकर स्वतंत्र रचना-शैली मे कहानियाँ लिखी। इस युग के लेखको को सामाजिक, धार्मिक, राजनीतिक, आर्थिक, नैतिक तथा सामाजिक समस्याओं

का चित्रण करने मे सफलता मिली है। मनोभावो की व्यंजना और उनके द्वन्द्वका सफल विश्लेषण हुआ है।

सन् १९३६ ई० के पश्चात् अनेक प्रतिभाशाली लेखक तथा लेखिकाओ ने उच्च कोटि की हिन्दी कहानियाँ लिखी है। जैनेन्द्रकुमार, वाजपेयी, निराला, विनोदशंकर व्यास, अज्ञेय, चन्द्रगुप्त विद्यालंकार, सुभद्राकुमारी चौहान तथा उपादेवी मित्रा आदि के नाम उल्लेखनीय है।

यद्यपि हिन्दी मे राजनीति, व्यंग्य, हास्य, व्यक्ति और समाज आदि अनेक विपयो पर अच्छी कहानियाँ लिखी जा चुकी है और लिखी जा रही है, परन्तु फिर भी हिन्दी कहानी साहित्य के और अधिक विकास की अभी आवश्यकता है।

प्रश्न ११—'हिन्दी नाटक' के विकास पर सक्षेप मे विचार कीजिए।

उत्तर—भारतेन्दु जी से पूर्व हिन्दी भाषा मे जो भी नाटक लिखे गये, वे कला की दृष्टि से सफल नही थे। उनमे से केवल प्रबोध चन्द्रोदय, आनन्द रघुनन्दन, शकुन्तला आदि ही कुछ नाटक प्रसिद्ध है। हिन्दी का सर्वप्रथम नाटक 'नहुप' भारतेन्दु जी के पिता गोपालचन्द्र जी ने लिखा। परन्तु हिन्दी नाटक-साहित्य का विकास भारतेन्दु युग मे ही आकर हुआ। भारतेन्दु जी के नाटको को अनुवादित, रूपान्तरित, मौलिक और प्रहसन चार वर्गों मे विभाजित किया जा सकता है। भारतेन्दु जी ने अनेक नाटक लिखे जिनमे 'मुद्राराक्षस', 'दुर्लभ बन्धु', 'सत्य हरिश्चन्द्र', 'भारत दुर्दशा', 'नीलदेवी', 'सतीप्रताप', 'अंधेर नगरी' आदि प्रसिद्ध है।

भारतेन्दु जी के नाटको की भापा ओजपूर्ण तथा शैली प्रभावशाली है। आपने पाश्चात्य तथा भारतीय दोनो नाट्य-शैलियो का समन्वय किया था। आपने पौराणिक, सामाजिक, ऐतिहासिक, धार्मिक, राजनीतिक इन सभी विपयो पर लिखा है। अपने नाटको मे आपने समाज और देश की दुर्दशा का चित्र प्रस्तुत किया। प्रतापनारायण मिश्र, प्रेमघन, राधाकृष्णदास, रामचरण गोस्वामी, बालकृष्ण भट्ट, श्रीनिवास दास आदि अनेक लेखको ने भी आपका अनुसरण कर नाटक लिखे।

द्विवेदी युग मे बंगला, संस्कृत तथा अंग्रेजी के अनेको नाटको का हिन्दी में

अनुवाद हुआ। इस युग में अनुवादक नाटककारों में लाला सीताराम, रूपनारायण पाण्डेय, ज्वालाप्रसाद, सत्यनारायण रामकृष्ण वर्मा, सत्यकुमार जैन आदि प्रमुख हैं। विभिन्न विषयों पर मौलिक नाटक भी लिखे गये। मौलिक नाटककारों में शिवनन्दन सहाय, महावीरसिंह हरिऔध, रामनारायण मिश्र आदि के नाम उल्लेखनीय हैं। राय देवीप्रसाद पूर्ण ने 'चन्द्रकला भानुकुमार' तथा बदरीनाथ भट्ट ने 'चन्द्रगुप्त' और 'तुलसीदास' ऐतिहासिक नाटक लिखे। इस युग में सामाजिक तथा राष्ट्रीय नाटक भी लिखे गये। इस युग में 'अभिमन्यु', 'श्रवण कुमार', 'सीता वनवास' आदि अनेक रंगमंचीय नाटक भी लिखे गए। इस युग में लिखे गये मौलिक नाटकों में नाटकीय तत्वों का अभाव था। इस दृष्टिकोण से तो दो-तीन नाटक ही सफल कहे जा सकते हैं।

सन् १९२० ई० के पश्चात् हिन्दी नाटक-साहित्य का विकास हुआ। इस समय में भी अन्य भाषाओं से हिन्दी में नाटकों का अनुवाद हुआ, परन्तु मौलिक नाटकों की ओर लेखकों का ध्यान अधिक रहा। इस युग के मौलिक नाटककारों में श्री जयशंकर प्रसाद का महत्त्वपूर्ण स्थान है। इस युग में ऐतिहासिक तथा पौराणिक नाटकों के साथ-साथ सामयिक, सामाजिक, राष्ट्रीय, समस्या-प्रधान नाटक भी लिखे गए। जी० पी० श्रीवास्तव, पन्त, उग्र, सुदर्शन आदि लेखकों ने प्रहसन भी लिखे। इनके अतिरिक्त मैथिलीशरण गुप्त, शिवनन्दन मिश्र, मिश्र बन्धु, कामताप्रसाद गुरु, प्रसाद, बदरीनाथ भट्ट, मिलिन्द आदि नाटककारों के नाम उल्लेखनीय हैं।

प्रसाद युग के पश्चात् भी नाटक-साहित्य में पर्याप्त उन्नति हुई। अनेक नाटककारों ने राष्ट्रीय, सामाजिक, धार्मिक तथा मानवीय जीवन के विविध अंगों को लेकर अनेक नाटक लिखे। इस युग में समस्याप्रधान नाटकों की ओर विशेष ध्यान दिया गया है। सन्यासी, सिन्दूर की होली, आगरा, अंगूर की बेटी, मेव पथ, बन्धन, छाया आदि प्रमुख नाटक इसी युग में लिखे गये हैं। श्री लक्ष्मीनारायण मिश्र ने 'दशाश्वमेध', 'वत्सराज', 'वितस्ता की लहरें' उच्च कोटि के ऐतिहासिक नाटक लिखे हैं। उपेन्द्रनाथ अश्क, सेठ गोविन्ददास, हरिकृष्ण प्रेमी आदि लेखकों ने भी उच्च कोटि के नाटक लिखे हैं।

वर्तमान युग में नाटककारों का ध्यान गीति-नाट्य तथा एकांकी नाटकों

की ओर अधिक आकर्षित हो रहा है। वर्तमान काल के नाटककारो में भट्ट, अश्क, माथुर, भुवनेश्वर प्रसाद आदि के नाम उल्लेखनीय है।

प्रश्न १२—'हिन्दी में आलोचना का विकास' इस विषय पर एक विस्तृत निबन्ध लिखिए। (प्रभाकर, नवम्बर १९५५)

अथवा

आलोचना क्या है? उसकी परम्परा पर विचार प्रकट करते हुए उसका महत्त्व भी बताइये।

उत्तर—भारत की प्राचीन सांस्कृतिक परम्परा तथा राष्ट्रीय जागरण की व्यापक चेतन प्रेरणाओ से अपना अन्त. सस्कार करते हुए आधुनिक हिन्दी साहित्य की विशिष्ट विकास-स्थितियो के समान हिन्दी आलोचना ने भी प्रगति की है।

व्यापक अर्थो मे आलोचना मनुष्य की आत्म-चेतना है। इसके परिणाम स्वरूप ही मूल्य-निरूपण के मान-दड और सिद्धान्त बनते है। एक आलोचक प्राचीन और सामयिक साहित्य की कृतियो का मूल्य आकता हुआ नये व्याख्या-सूत्रो की उद्भावना भी करता है और नये साहित्यकारो को अन्तर्दृष्टि भी प्रदान करता है। आलोचना साहित्य पर नियन्त्रण रखती हुई भी उसके क्षेत्र का विकास करती है। आलोचना स्वय एक रचनात्मक क्रिया है। आलोचना के विना साहित्य में अनेक ऐसे विचार उत्पन्न हो सकते है, जिनसे साहित्य जीवन से दूर जा सकता है। किन्तु आलोचना का निष्पक्ष होना अनिवार्य है।

यो तो बहुत प्राचीन समय से ही सस्कृत साहित्य मे आलोचना होती आई है, किन्तु वह आधुनिक आलोचना का रूप नही मानी जा सकती।

हिन्दी मे वैसे तो भारतेन्दु काल से ही आलोचना मिलती है, क्योकि उस समय बहुत सी अनूदित पुस्तको की समीक्षाये पत्र-पत्रिकाओ मे प्रकाशित होती थी, फिर भी आलोचना का सूत्र-पात द्विवेदी जी से ही माना जायेगा। द्विवेदी जी एक शिक्षक, सशोधक और सुधारक थे। भाषा का परिमार्जन उनकी हिन्दी को मुख्य देन है। द्विवेदी जी ने रीति-काव्य की परम्परा के स्थान पर तुलसी-सूर के भक्ति-काव्य की परम्परा को अधिक श्रेष्ठ माना है। एक ओर वे कालीदास और भवभूति के प्रशसक थे, तो दूसरी ओर भारतेन्दु

और मैथिलीशरण का भी आदर करते थे। वे आलोचक थे। उन्होंने ही आलोचना-युग का सूत्रपात किया, किन्तु उनकी आलोचना-शैली पर गुण-दोष-विवेचन वाली पुरानी पद्धति का प्रभाव था। उनकी 'कालीदास की निरकुशता', 'नैपध चरित चर्चा', आदि कई आलोचनायें तथा समीक्षात्मक पुस्तकें मिलती है।

मिश्र-बन्धुओ ने हिन्दी साहित्य के इतिहास का इतिवृत्त समाप्त करके 'हिन्दी नवरत्न' नाम से एक आलोचनात्मक ग्रथ प्रकाशित किया। उन्होने देव को बडा बनाया। देव और विहारी की, सूर और तुलसी की आलोचना की। विहारी पर उस समय जो आक्रमण हुए, उनसे प्रेरित होकर प० पद्मसिंह शर्मा ने विहारी पर एक बडी आलोचनात्मक पुस्तक लिखी जिसमें दोहो के एक-एक शब्द और एक-एक पद की अर्थव्यजना का उद्घाटन किया। इसके बाद कृष्णविहारी मिश्र ने भी 'देव और विहारी' लिखकर दोनो कवियो का मार्मिक विवेचन किया। लाला भगवान दीन ने भी 'विहारी और देव' पुस्तक लिखी। इस प्रकार यह आलोचना का एक वडा सिलसिला चालू होगया।

आचार्य शुक्ल हिन्दी के युग-द्रष्टा आलोचक हुए हैं। उन्होने मिश्र जी या शर्मा जी की तुलनात्मक आलोचनाओ को अग्राह्य माना। उन्होंने सामाजिक पृष्ठ-भूमि मे कवियो और उनकी कृतियो को रखकर परखा। उन्होंने हिन्दी आलोचना का अभिनव ढग से विकास किया। उन्होंने अपनी मौलिक प्रतिभा से सैद्धान्तिक समीक्षा के हर पहलू का गम्भीरतम विवेचन किया है। 'काव्यात्मक लोकवाद' और 'साधारणीकरण' ये दो उनके आलोचनात्मक सिद्धान्त थे। 'हिन्दी साहित्य का इतिहास' उनका आलोचनात्मक ग्रथ है। शुक्ल जी ने हिन्दी को जो कुछ दिया वह सभी अमूल्य है।

बाबू श्यामसुन्दर दास और पदुमलाल पुन्नालाल बख्शी दोनो ही शुक्ल जी के समकालीन हैं। इन दोनो ने एक वैज्ञानिक आलोचना प्रणाली चालू की। डा० श्यामसुन्दरदास की 'साहित्यालोचन' नाम की एक अच्छी आलोचनात्मक पुस्तक है। इसके साथ ही हिन्दी मे आलोचना साहित्य का एक मुख्य अग बन गई। प० विश्वनाथ प्रसाद मिश्र, रामकृष्ण शुक्ल, चन्द्रवली पाडेय,

रमाशकर शुक्ल, बाबू गुलाबराय, हजारीप्रसाद द्विवेदी, नन्ददुलारे वाजपेयी, डा० रामकुमार वर्मा, डा० नगेन्द्र, शान्तिप्रिय द्विवेदी आदि अनेक आलोचक आज अच्छी-अच्छी आलोचनाएँ कर रहे है।

आचार्य हजारीप्रसाद द्विवेदी और पडित नन्ददुलारे वाजपेयी की आलोचना-दृष्टि अपेक्षया अधिक व्यापक और उदार है। दोनो स्वतन्त्र विचारक हैं। ये साहित्य को व्यापक और सामाजिक पृष्ठ-भूमि मे रखकर देखते है। हजारी प्रसाद जी का दृष्टिकोण मानववादी है तथा वाजपेयी जी का शास्त्रीय और सौदर्यवादी।

डा० नगेन्द्र पर फ्राण्ड के मनोविश्लेषण का भी प्रभाव है। इन्होने अपने उदार सामाजिक दृष्टिकोण के कारण प्रगतिवाद की अनेक मान्यताओ को स्वीकार किया है।

प्रश्न १२—हिन्दी गद्य के प्रौढ काल का संक्षिप्त परिचय दें।

अथवा

हिन्दी गद्य के प्रौढ काल के प्रसिद्ध गद्य-लेखको का परिचय दें।

उत्तर—स्थैर्य काल मे गद्य स्थिर हुआ। व्याकरण के शुद्ध प्रयोगो, विराम-चिह्नो के उचित व्यवहार और विभिन्न शैलियो के आगमन के कारण गद्य का एक स्तर नियत हुआ। अब इसमे आचार्य रामचन्द्र शुक्ल और जयशकर प्रसाद तथा मुन्शी प्रेमचन्द आदि ने प्रौढता उत्पन्न करके उसे इस योग्य बना दिया कि गम्भीर से गम्भीर विषयो की अभिव्यजना इसमे हो सके।

आचार्य शुक्ल की गद्य-सेवा—श्री शुक्ल गद्य के प्रौढ काल के प्राण है। हिन्दी गद्य को जो उन्होने देन दी है वह सर्वदा स्मरणीय रहेगी।

भाव, भाषा दोनो के विचार से शुक्ल जी की शैली सुसस्कृत किम्वा परिष्कृत है। उसमे सयम, प्रौढता और विशुद्धता का समावेश है। साथ ही उसमे एक प्रकार का सौष्ठव और चमत्कार है। गम्भीर गवेषणा, विवेचनात्मक चिन्तन एव अनुभूति की पुष्ट व्यजना है। यद्यपि इनके निबन्धो के विषय कभी तो सागर की तरह गम्भीर और कभी देखने मे ही सरल से होते है किंतु गम्भीर विषयो मे भी कभी-कभी विनोदपूर्ण व्यग्यात्मक छीटे ऐसे आ जाते हैं कि विषय रोचक हो जाते है। सरल विषयो का इतना गम्भीर दार्शनिक

चिन्तन होता है कि बुद्धि को बार-बार ठहर-ठहर कर कुछ सोचने को विवश होना पड़ता है। कहीं-कहीं वाक्य चिकोटी-सी काटते दीखते हैं।

शुक्ल जी स्वभावत आलोचक थे और उच्च कोटि के निबन्ध-लेखक।

पदुमलाल पुन्नालाल बख्शी—महावीरप्रसाद द्विवेदी जी के पश्चात् सरस्वती के सम्पादकों में बख्शी का नाम महत्त्वपूर्ण है। बख्शी जी एक अच्छे आलोचक तथा निबन्धकार है। आपका आलोचक के रूप में निबन्धकार की अपेक्षा अधिक महत्त्व है। आपका आलोचक रूप निबन्धकार पर सदा हावी रहता है। भाषा के विषय में आपका अपना यह मत है कि "अपनी भाषा ही को सब विषयो के प्रतिपादन और विवेचन के योग्य बनाना चाहिए। बाहरी भाषा से शब्द न माँगने चाहिए और न गोद लेने।" आपकी भाषा मे उर्दू शब्दो का तो पूर्णरूप से अभाव है।

कभी-कभी आप भावात्मक गद्य भी लिखते है। ऐसे स्थानो पर माधुर्य और तारल्य विशेषरूप से देखने को प्राप्त होता है। प्रसादात्मक शैली अपनी चरमसीमा पर होती है। छोटे-छोटे वाक्य और सरल गुम्फन। परन्तु ये सर्वत्र नहीं है। विचार प्रधान निबन्धो में विवेचन शैली के ही दर्शन होते हैं। शुष्क विषय मे व्यग्य के छींटे देकर उसे सरस बनाना भी एक कला है और आप इस कला की कसौटी पर खरे उतरते है। आपके 'विज्ञान' निबन्ध में विवेचना-शैली के दर्शन होते हैं। उनमें भावुकता का तनिक भी रंग नहीं मिलता, शैली अत्यन्त स्वच्छ, प्रसाद-पूर्ण और प्रभावशाली है।

बाबू जयशंकर प्रसाद की गद्य-सेवा—इस काल के दूसरे प्रतिभासम्पन्न लेखक प्रसाद जी हैं। पिछले लेखको ने गद्य को काँट-छाँट कर जो उसे व्याव-हारिक रूप देने का श्रेय प्राप्त किया, उसने उसका कलेवर और साहित्यिकता तो अवश्य बढ़ी, किन्तु कालान्तर मे युग-प्रवृत्ति पलटने पर वह रूप कुछ संकीर्ण प्रयोग सिद्ध होने लगा था। फलत. प्रसाद जी ने अपने प्रयत्नो द्वारा हिन्दी को नवीन रूप दिया।

प्रसाद जी गद्य-क्षेत्र मे—मुख्य रूप से नाटक क्षेत्र में, उपन्यास और कहानी तथा निबन्ध क्षेत्र में—अच्छे सफल और गम्भीर लेखक सिद्ध हुए। प्रसाद जी पहले कवि थे और बाद मे गद्यकार। इसीलिये इनके गद्य में काव्यत्व की मात्रा आये बिना न रह सकी। इनका गद्य विशेष रूप से माधुर्यसपूर्ण,

शुष्कता एवं दुरूहता से रहित है। इनके गद्य में भावुकता, कल्पना और उक्तिवैचित्र्य के गुण स्थान-स्थान पर मिलते हैं। "काव्य और कला" इनके निबन्धों की पुस्तक है। वैसे इनके सभी नाटकों की भूमिकाएं स्वयं में श्रेष्ठ गद्य-युक्त निबन्ध है। इनके गद्य में भी गवेषणा और चिन्तन है।

प्रेमचन्द जी की गद्य-सेवा—मुन्शी प्रेमचन्द जी हिन्दी के उपन्यास-सम्राट् माने जाते हैं। दर्जनों ही उपन्यास और लगभग तीन सौ कहानियाँ लिखकर तथा अनेक पत्र-पत्रिकाओं का सम्पादन कार्य करके जो हिन्दी गद्य को देन दी है, वह अत्यन्त प्रशंसनीय है। नवीन पद्धति से मौलिक उपन्यास लिखने का श्रेय प्रेमचन्द जी को ही है।

प्रेमचन्द जी मिश्रित गद्य शैली के पोषक थे। पहले पहल उनकी शैली में भले ही प्रौढता का अभाव हो, पर बाद में पूर्ण प्रौढता के दर्शन होते हैं। इनके गद्य में वर्णनात्मक शक्ति अधिक है। इनका गद्य उर्दू के शब्दों को लेकर चलता है, क्योंकि ये उर्दू क्षेत्र से हिन्दी में आये थे। भाषा को तोड-मरोडना खूब जानते हैं। गद्य में लोकोक्तियाँ और मुहावरे काफी हैं। अनेक उपन्यासों और कहानियों में पात्रों के अनुसार ही भाषा और भावों का प्रयोग किया है।

राय कृष्णदास—राय कृष्णदास का गद्य अत्यन्त भावपूर्ण, कोमल-कान्त और आकर्षक है। मानव-हृदय में होने वाली परोक्ष सत्ता की भावात्मक अनुभूति इनके गद्य की विशेषता है। इनका गद्य व्यवाहारिक और सीधा-सादा है। भावाभिव्यंजक शैली बडी मार्मिक एवं प्रौढ होती है। छोटे-छोटे वाक्य होते हैं। रुचि उत्पादक भाषा का प्रयोग होता है।

वियोगी हरि—इनके गद्य के दो रूप मिलते हैं—एक समासात्मक, दूसरा प्रसादात्मक। समासात्मक रूप तत्सम शब्दों से गुम्फित है और प्रसादात्मक रूप सरल वाक्य-विन्यासपूर्ण। कभी-कभी तो समास-शैली को देखकर सिर चकराने लगता है। ऐसा लगता है जैसे बाण भट्ट की "कादम्बरी" हो। कहीं-कहीं भाषा में कृत्रिमता के दर्शन भी होते है। भाषा में व्यावहारिकता का अभाव है। प्रसादात्मक गद्य में लालित्य एवं लावण्य की विशेष छटा है। सानुप्रासिक गद्य लिखने में वियोगी जी को विशेष आनन्द आता है।

चतुरसेन शास्त्री—मुख्य रूप से शास्त्री जी ऐतिहासिक उपन्यास-लेखक है। कहानी लेखक और निबन्ध लेखक भी है। इनके गद्य में ललित और शुद्ध भाषा

उसमें मद हास्य भी झलक उठता है। कथन को स्पष्ट करने के लिए कतिपय उदाहरण दिए गये है—

"रक्तहीन क्रान्ति सम्भव है, परन्तु रक्तहीन हजामत असभव।"

"लगडा कुछ भी हो, पलायनवादी नही हो सकता।"

"हे ईश्वर, जग है नश्वर फिर भी शाश्वत है रिश्वत।"

बाबू गुलाबराय—बाबू जी उन लेखको मे से है जिनका प्रयत्न यह रहा है कि वे अपनी बात को सीधे-सादे ढग से कह दे। आपका गद्य स्वच्छ, प्रवाहशील और प्रसादात्मक शैली को लिये हुए है। उनका गद्य शिष्ट, सयत और परिहासयुक्त तथा सुबोध है। तत्सम शब्दो का प्रयोग उन्ही निबन्धो मे मिलता है जो शास्त्रीय विवेचना को लिये हुए है।

इनका गद्य "प्रबन्ध प्रभाकर" मे विशेष परिष्कृत एव सुसस्कृत तथा साहित्यिक है। वैसे समय-समय पर सामयिक पत्र-पत्रिकाओ (साहित्यिक) मे जो गद्य मिलता रहता है उसमे विशेष सरलता और भावुकता रहती है। विवेचनात्मक निबन्धो मे पाश्चात्य शैली का भी अनुसरण रहता है।

शान्तिप्रिय द्विवेदी—आपका आरम्भिक गद्य कुछ-कुछ दुरूह और तत्सम प्रधान है। इन का गद्य पूर्व और उत्तर दो भागो मे विभक्त है। पूर्व के गद्य मे अग्रेजी-उर्दू शब्दो का अभाव था तो उत्तरवर्ती गद्य मे कही-कही इनका समावेश है। इनकी गद्य शैली विवेचनाप्रधान है। उसमे तार्किकता की अपेक्षा भावात्मकता ही अधिक है। कभी-कभी गद्य में अजीब तरह की रगीनी आ जाती है।

हजारीप्रसाद द्विवेदी—आप सस्कृत के प्रकाण्ड पण्डित होने के कारण अपने गद्य मे तत्सम शैली के उपासक बनकर आये है। भावो और भाषा मे लचक होती है। सरसता और सरलता भी आपके गद्य की विशेषता है। 'अशोक के फूल' निबन्ध-सग्रह में तो कही-कही विवेचना और गम्भीर गवेषणा है और कही-कही भावुकता की विशेषता लिये हुए है। सुबोध, स्वच्छ गद्य के लिये तो आप प्रसिद्ध ही है।

'हिन्दी साहित्य का इतिहास' ग्रन्थ मे विवेचना और गवेषणा अधिक है और तर्कप्रधान शैली भी कही-कही अवश्य मिलती है। वैसे प्रसादात्मक शैली है।

रामवृक्ष बेनीपुरी—आपकी गणना संस्मरणात्मक गद्य-शैली के लेखकों में होती है। आप रेखा-चित्र तथा संस्मरणात्मक निबन्ध लिखने में बहुत ही कुशल हैं। आपकी रचना में गद्य का व्यावहारिक, सार्थक, सहज और स्वच्छ रूप मिलता है। अपने शब्द-चित्र में ये भाव, वातावरण, समय और संयोग के अनुरूप गद्य का व्यवहार करते हैं। आप गिनी चुनी हुई अल्प शब्दावली में बृहत् अभिप्राय सूचक चित्र उपस्थित करते हैं। आपका एक शब्द गद्य को सँवारता हुआ चलता है। यह कहना उचित ही है—"बेनी-पुरी जी शब्दों के जादूगर हैं।" आपकी भाषा-शैली में भावोद्रेक के साथ आवश्यक विस्तार के साथ ही शब्दों और वाक्य खण्डों का सयत, गठा हुआ प्रयोग एक अनूठी व्यजना निर्माण करता है। यत्र-तत्र परिभाषा के वाक्य भी फिट हुए मिल जाते हैं।

बेनीपुरी जी की दो गद्य शैलियाँ हैं—प्रसादमयी और आवेगमयी। मुख्य रूप से आपने प्रसाद शैली को अपनाया है। आवेगमयी शैली अधिकतर सहायक रूप में ही आती है। आपकी गद्यशैली में एक दोष यह है कि वे अति भावुकता के प्रवाह में प्रवाहित होकर शब्दों का और-विराम चिन्हों का अतिरंजित प्रयोग कर बैठते हैं। अपनी शैली में नाटयमयता लाना ही उनका उद्देश्य रहता है। इस उद्देश्य में उन्हें कुछ सीमा तक सफलता भी मिली है। क्रियाओं का अभाव तथा संक्षिप्त वाक्य आपकी गद्य-शैली में प्राण फूँक देते हैं। चित्रात्मकता तो मानो सजग हो उठती है। इसका एक उदाहरण नीचे दिया हुआ है—

"क्या बूढ़े हिमालय को आज युगों के बाद कुछ रास-रंग का शौक चर्राया है और उसने ही अपने स्वर्ण-मृगों को इन बादलों के वन में कुलाचें देने के लिए छोड़ दिया है? वह उनकी पूँछें चमकीं, उनके पैर चमके, उनके सींग चमके, उनके नथुने चमके। बादलों के वन में इन स्वर्ण-मृगों की कुचालों के कारण ही तो ये शब्द हो रहे हैं। कभी अकेली मृगी दौड़ी-मधुर-मधुर शब्द हुआ। कभी पूरा मृग-झुण्ड दौड़ा-अजीब गड़गड़ाहट हुई।"

डा० नगेन्द्र—दिल्ली विश्वविद्यालय के हिन्दी विभाग के अध्यक्ष हैं और आधुनिक आलोचकों और निबन्धकारों में मुख्य स्थान है। गद्य के क्षेत्र में नगेन्द्र

जी की देन असाधारण है। इन्होंने अनेक निबन्ध लिखे हैं, जो उच्च कोटि के और साहित्यिक तथा विद्वत्तापूर्ण हैं। इन निबन्धों तथा आलोचनात्मक विवेचना से साहित्य की विशेष अभिवृद्धि हुई है।

गद्य लेखन में आप तत्सम-प्रधान गद्य शैली के ही पक्ष में हैं। आप का गद्य पुष्ट, व्याकरणसम्मत तथा गठा हुआ रहता है। प्रौढ-से-प्रौढ तथा गम्भीर-से-गम्भीर कथन के भार को धारण करने में वह समर्थ है। नगेन्द्र जी ने शास्त्रीय विषयों पर अधिक लिखा है। गद्य के बीच-बीच में कोष्ठक देकर नवीन शब्दों या नवीन पदावली की व्याख्या स्वयमेव करते जाते हैं। वैसे तो वाक्य छोटे होते हैं किन्तु जहाँ भाव-गम्भीर्य आ गया अथवा विचार-विश्लेषण की जहाँ आवश्यकता आ पड़ती है, वहाँ संश्लिष्ट और मिश्रित वाक्य भी आ जाते हैं। 'अतएव', 'अर्थात्' 'निष्कर्ष' आदि शब्दों का आश्रय अनेक स्थानों पर लेते हैं। नगेन्द्र जी हलन्त और पचम वर्ण के ग्रहण के पक्ष में नहीं हैं। ये बातें 'भारतीय काव्य-शास्त्र की भूमिका' पुस्तक में स्पष्ट हैं। इनके गद्य में यथोचित अंग्रेजी के शब्दों का प्रयोग होता है। इनकी प्रसादात्मक और विवेचनात्मक शैली होती है।

जैनेन्द्र कुमार—कहानी, उपन्यास और निबन्ध क्षेत्र में जैनेन्द्र एक विलक्षण व्यक्तित्व और प्रतिभा लिये हुए हैं। इनकी दार्शनिक चिन्तन-पद्धति नया रंग लेकर आई है, जिसका गद्य शैली पर प्रभूत प्रभाव पड़ा है। विषय के अनुसार ही ये शैली का चुनाव करते हैं। प्रसाद गुण और तार्किक शैली मुख्य रूप से पाई जाती है। चिन्तनधारा और भावों का आवेग इनके गद्य में विशेष पाया जाता है। विवेचनात्मक शैली के भी कहीं-कहीं दर्शन होते हैं। बोधगम्यता, प्रवाह और स्वाभाविकता भी मुख्य गुण हैं। यदि कहीं भाव-ग्रहण में कठिनाई आती है तो वह विषय की गम्भीरता के कारण ही आती है। इनके गद्य में उर्दू, संस्कृत, तद्भव और तत्सम तथा बोल-चाल के शब्दों का प्रयोग मिलता है।

जैनेन्द्र जी की तार्किक शैली में ओज, प्रवाह और चमत्कार रहता है। जहाँ आन्तरिक उद्वेग, मानसिक द्वन्द्व और भाव-संघर्ष चित्रित हुआ है वहाँ स्वभावत गद्य में चलतापन, वाक्य-रचना में ऋजुता और लघुता लक्षित होती है। जैनेन्द्र जी सूक्ति-पद्धति का भी आश्रय लेते हैं।

यशपाल—आप क्रान्तिकारी और प्रगतिशील गद्य-शैली का प्रतिनिधित्व

करते हैं। बहुत मजे-मजे में वे बात करते-करते ऐसे अवसरों पर चिकोटी काटने में नहीं चूकते और न जाने बात करते-करते कब गहरा मजाक कर जाते हैं। जैसे—

"सुनलो, यह डिब्बे का गान!" श्रीयश जी का गद्य सुथरा और परिष्कृत है। बोल-चाल तथा उर्दू के या साधारण शब्दों में, ये बड़े आनन्द और सरल ढंग से बात कहते चले जाते हैं। मुहावरों और लोकोक्तियों का भी अच्छा प्रयोग मिलता है। जैसे—

"प्याज की तरह अनेक छिलकों में लिपटी युवति।"

कहीं-कहीं संस्कृत के उपानक भी बन जाते हैं। जैसे 'धर्मों हि गच्छति केवलम।' इनके गद्य में प्रभावोत्पादकता और भावाभिव्यक्ति अच्छी होती है।

इलाचन्द्र जोशी—आप एक अच्छे सफल उपन्यासकार, कहानीकार और निबंध-लेखक हैं। आपकी रचनाओं में स्वस्थ और सुन्दर गद्य मिलता है। इनके गद्य में विषयानुरूपता, शुद्धि और स्वाभाविकता है। सामाजिक उपन्यासों में कहीं-कहीं तो सामाजिक त्रुटियों के उद्घाटन में ओज गुण शैली के दर्शन होते हैं और कहीं-कहीं फ्रायड की विचारधारा के स्पष्टीकरण में प्रसाद तथा माधुर्य गुण से युक्त शैली भी मिलती है।

जोशी जी के पास शब्द-भण्डार इतना है कि शायद ही किसी अन्य के पास हो। तत्सम और संस्कृतनिष्ठ शब्दों का प्रयोग भी बहुलता से कर जाते हैं। अंग्रेजी और उर्दू के शब्दों का प्रयोग भी मिलता है।

सरल, सजीव और सुबोध होते हुए भी इनका गद्य अधिक सशक्त और प्रभावोत्पादक है। प्रकरणानुसार वाक्यों को छोटा और लम्बा बनाने में सिद्ध-हस्त हैं। कहीं-कहीं तो 'कादम्बरी' के गद्य की छटा भी मिल सकती है। जैसे 'मुक्तिपथ' उपन्यास में।

वृन्दावनलाल वर्मा—जितनी अधिक सफलता ऐतिहासिक उपन्यासों में श्री वर्मा जी को प्राप्त हुई है, उतनी अन्य उपन्यासकार को नहीं। 'गढ़ कुंडार', 'मृग-नयनी', 'विराटा की पद्मिनी' आदि इनके प्रसिद्ध उपन्यास हैं। आप नाटककार और कहानीकार भी हैं। आप भाषा, भाव आदि के चक्कर में न पड़ कर भाषा को गति देने में अधिक सजग रहते हैं। कहीं-कहीं पर तो भाषा में इतनी अधिक

कोमलता, स्वच्छता और स्वाभाविकता होती है कि पढते-पढते उत्तरोतर रुचि की वृद्धि होती ही चली जाती है। एक आलोचक के मतानुसार प्रेमचन्द जी के बाद सरल, सहज, व्यावहारिक और प्रवाहयुक्त गद्य केवल वर्मा जी का ही मिलता है। इनके गद्य मे तत्सम, उर्दू और फारसी के शब्द भी मिलते है। इनके उत्तरवर्ती गद्य मे अंग्रेजी के शब्द भी मिलते है। मुख्य बात तो यह है कि भावो और पात्रो के अनुसार ही भाषा का प्रयोग करते है।

महादेवी वर्मा—आप पहले कवयित्री है और बाद मे गद्य-लेखिका। आपके 'अतीत के चलचित्र', 'शृङ्खला की कडियाँ', 'स्मृति की रेखाएँ' और 'विवेचनात्मक गद्य' ये मुख्य चार गद्य ग्रन्थ है। इनके अतिरिक्त आधुनिक काव्य (महादेवी) की भूमिका और सामयिक अनेक निबन्ध है जो पत्रिकाओ में प्रकाशित होते रहते हैं।

आपके गद्य मे उतनी ही करुणा है जितनी आपके जीवन मे। और आपके जीवन मे उतनी ही करुणा और विरह है जितना किसी भी भावुक नारी मे हो सकती है। 'अतीत के चल चित्र' का एक-एक शब्द इसका उदाहरण है।

कही साहित्यिक निबन्धो मे आपके गद्य मे विषयानुसार महती प्रौढता एवं भावो की दुरूहता भी आ गई है। गद्य मे महादेवी समष्टिगत जीवन मे उतर आई है। इनका काव्य यदि आत्म-केन्द्रित है तो गद्य समाज-केन्द्रित। महादेवी संस्कृत और अंग्रेजी की विदुषी है जिससे इनका गद्य कही संस्कृतनिष्ठ होता है। कही-कही पर स्वच्छता और कोमलता भी विशेष रूप से पाई जाती है। कही-कही कल्पना के मधुर स्पर्श से अपने गद्य मे माधुर्य और चमत्कार भी भर देती है। प्रकृति की नाना वस्तुओ, वृक्षो, लताओ, सरिता और दृश्यो का वर्णन करते समय कोमल-कान्त पदावली को साधन बनाती है। कही-कही तो इनका गद्य भी आँसू बहाता मिलता है।

हरिकृष्ण प्रेमी—आप उच्च कोटि के नाटककार है। आपके नाटक अधिकतर ऐतिहासिक है। प्रसाद जी के बाद आप ही सफल नाटककार है।

इनके नाटको की भाषा ओज गुण युक्त है। विषयानुसार भावो की अभिव्यक्ति है। प्रभावोत्पादकता, प्रवाह, स्वच्छता और सजीवता इनके गद्य के विशेष गुण है। कही-कही संस्कृतनिष्ठ और कही-कही उर्दू तथा फारसी के

शब्दों का प्रयोग बहुलता से मिलता है। नाटकों की भाषा पात्रानुसार है।

माखनलाल चतुर्वेदी—आप एक उच्चकोटि के कवि हैं। गद्य साहित्य में संस्मरण और रेखाचित्र लिखने में भी सिद्धहस्त है। आपकी गद्य शैली विशेष रूप से भावात्मक है। कभी-कभी भावात्मकता की बाढ़ में अर्थ भी भटक जाता है। आप छोटे-छोटे वाक्यों के द्वारा बड़ी-बड़ी बातें कहते हैं। छोटे वाक्यों के साथ आवश्यकतानुसार लम्बे वाक्यों का भी प्रयोग करते हैं। आपकी लेखनी से अनुभूति, भावुकता, गीत, और संगीत के स्वर विस्तृत होकर बिकीर्ण होते हैं। भाषा और भाव हाथ में हाथ डाले जैसे लिपि लकीरों की भीड़ में दौड़े जाते हैं। न कहीं शिथिलता न विराम, न विरलता और न झिझक है। आपकी शैली छायावादी अभिव्यंजना के अधिक निकट है। छायावादी शैली की एक विशेषता है—प्रतीकों और अन्योक्तियों का प्रयोग। आपकी शैली भी प्रतीकात्मक है। अन्योक्ति द्वारा बात कहते हैं।

आपकी शैली में व्यंग्य विनोद का भी महत्त्वपूर्ण स्थान है। अपने व्यंग्य बाणों की मार से दूसरों को तो ये छोड़ते ही नहीं, कभी-कभी अपने ऊपर भी परिहास कर बैठते हैं। आपका गद्य व्यावहारिक गद्य की कोटि में आता है। प्रसाद गुण उसका प्राण है। माधुर्य गुण का भी अभाव नहीं है। शब्दों के प्रयोग के लिये आपने मध्यम मार्ग अपनाया है। तत्सम शब्दों के प्रयोग आग्रह न होने के साथ-साथ उर्दू शब्दों की भरमार भी नहीं है। आप शब्दों के गढ़ने तथा सोच-सोचकर सजाने की चिन्ता में नहीं पड़ते हैं। यही कारण है कि कहीं-कहीं तो उर्दू और हिन्दी के शब्द कन्धे से कन्धा भिड़ाए एक दूसरे के साथ खड़े रहते हैं, और कहीं-कहीं तत्सम शब्दों की रेलपेल हो रही है समास पद्धति अथवा संश्लेषण पद्धति से आप दूर ही रहते हैं। भावाभिव्यंजना में ब्रज तथा अवधी भाषा के शब्दों का भी प्रयोग है। आपने प्रान्तीय बोलियों के शब्दों का भी स्वागत किया है।

आपने अलंकारों का विशेष आश्रय लिया है। आपने अपनी रचनाओं में पत्रों के अंश डायरी के पन्ने आदि उद्धृत किए हैं। आपके कथन में वक्रता है। अभिव्यंजना में विलक्षण, दुर्लभ और मुग्धकारी व्यंजना है।

कन्हैयालाल मिश्र 'प्रभाकर'—मिश्र जी रेखाचित्र तथा संस्मरण लिखने में

पटु हैं। मिश्र जी की शैली ने हिन्दी साहित्य ससार को एक दम आकर्षित कर दिया है। आपका सबसे प्रसिद्ध ग्रन्थ 'जिन्दगी मुस्कराई है' है। आपके विषय मे लिखे गये ये शब्द उपयुक्त ही है—"पत्रकार की चुभीली सूझ-बूझ, चित्रकार की रग रेखाएँ, व्यगकार की पैनी पकड मुग्ध मन दर्शक की भावुकता और रसानुभूति मिलकर 'प्रभाकर' जी की कला को आकार देती है। प्रभाकर जी की यह कला रोचक, आकर्षक और हृदय ग्राहक है। सरलता से ओत-प्रोत है। प्रसाद और माधुर्य गुणो मे समन्वित है।"

प्रभाकर जी का गद्य 'चलता' व्यावहारिक गद्य है। छोटे-छोटे वाक्य पर एक शृङ्खला मे शृङ्खलित होकर मानो आगे-ही-आगे बढते चलते है। भावो के अनुरूप पदावली स्वाभाविक रूप से ही अपने पर अधिष्ठित हो गई है। शिथिलता अथवा अस्वाभाविकता उसमे लेश मात्र भी नही है। आपका गद्य चुस्त तथा पुष्ट है। इसमे किसी विशेष प्रकार की श्रेणी के शब्दो का आग्रह नही है। तत्सम, तद्भव, देशज, परिभाषाओ के प्रचलित शब्द—जोभी जिस समय आ गये है, उनका हार्दिक स्वागत हो गया है। आपकी गद्य-शैली मे गुदगुदी भरे हास्य के सामवेशन से चुटीलापन आ गया है 'प्रभाकर' जी व्यग्य प्रयोगो से विनोद की मधुरता तथा चुस्ती भर देते है और अवसर के अनुसार अपने गद्य में नाटकीयता का गुण लाने का भी प्रयत्न किया है।

अभिव्यजना मे चमत्कार तथा प्रभावोत्पादकता की सृष्टि करने के लिये 'प्रभाकर' जी ने अलकारो का प्रयोग भी किया है। आपके गद्य-साहित्य मे प्रश्न और उत्तर की प्रवृत्ति है। आपके प्रश्नो मे से ही उत्तरो का भी आभास होता है।

डा० रघुवीरसिंह—डा० रघुवीरसिंह अपने दो गद्य-काव्य-सग्रहो 'शेष स्मृतियाँ' और 'बिखरे चित्र' के कारण हिन्दी साहित्य मे प्रख्यात हैं। अधिकतर प्रार्थनाओ के रूप में इन्होने अपने हृदयोद्गारो को वाणी दी है। रघुवीरसिंह जी की लेखनी सरल, सुबोध वाक्यो मे अधिक रमती है। उसमे गति है, प्रवाह है, और इन सबसे बढकर माधुर्य है। अपने कथन को पाठक के हृदय तक पहुँचाने के लिए समान उदाहरणो और उपमाओ का आश्रय लेते हैं। क्रिया, कर्म और कर्त्ता का स्थान परिवर्तन भी करना इनकी शैली का

गुण है। छोटे-छोटे वाक्यों द्वारा बोध गम्य शैली में अपनी बात कहते हैं। 'यथा विषय तथा शैली' के सिद्धान्तानुसार इनकी शैली में चित्रात्मकता और सांकेतिकता का आना स्वाभाविक ही है। इन्होंने विस्मय बोधक तथा प्रश्न-बोधक चिन्हों का अधिक प्रयोग किया है। आप इतिहास के अध्येता हैं। इनकी कल्पना पर अतीत का गहरा रंग चढ़ा हुआ है। 'कला के पारखी की मर्मज्ञ सौन्दर्य-ग्राही दृष्टि से अपने अनुभूतियों को चुना है और उन्हें सुन्दर भाषा की हेममुद्रिका में जड़कर रख दिया है। भावुकता भरी कल्पना का लक्षण यह है कि वह यथार्थ की जमीन छोड़कर ऊपर विचारों के आकाश वातास में अधिक मडराती है। आपकी शैली में भी यही बात है।

उदयशंकर भट्ट—आप प्रसिद्ध कवि भी हैं और प्रसिद्ध नाटककार तथा कहानीकार भी हैं। 'वह जो मैंने देखा' इनका उपन्यास है। इनके गद्य में संस्कृत के, कहीं-कहीं चलते, बोलचाल के शब्दों का प्रयोग हुआ है। सामाजिक नाटकों का गद्य अत्यन्त सरल है। कहीं-कहीं विवेचनात्मक भावनाएँ भी आ जाती है।

लक्ष्मीनारायण मिश्र—आप प्रधानत. समस्यामूलक नाटककार हैं। इस दृष्टि से हिन्दी नाटकों को नवीन विचार-पद्धति देने और उसको नवीन शिल्प का रूप देने का श्रेय श्री मिश्र जी को ही है। आप बुद्धिवादी कलाकार हैं। इनका गद्य अत्यन्त गठित, सुसंस्कृत तथा कहीं-कहीं तर्कप्रधान है। भाषा अत्यन्त सरल एव सजीव है। वैसे लिंग दोष, पूर्वी प्रयोगों का दोष, व्याकरण सम्बन्धी दोष आदि-आदि कुछ दोष भी है। बिन्दुयुक्त गद्य का प्रयोग अधिक मिलता है, जिसे अपूर्ण वाक्य भी कहा जा सकता है। फिर भी गद्य क्षेत्र में इनका कार्य विशेष महत्त्वपूर्ण है।

इन गद्य-लेखकों के अतिरिक्त भगवतीचरण वर्मा, निराला, प्रभाकर माचवे, माखनलाल चतुर्वेदी, आदि बड़े-बड़े उपन्यासकारों, कहानीकारों तथा नाटककारों का नाम भी गद्य की उन्नति में विशेष महत्त्वपूर्ण समझना

यथार्थ और कल्पना

प्रश्न १—कहानी क्या है ? आधुनिक कहानी की रूप-रेखा देकर उपन्यास और कहानी में जो भेद है, उसे स्पष्ट कीजिये।

उत्तर—कहानी की कहानी बहुत प्राचीन है। आदिकाल से ही मानव समाज मे कहानी कहने की प्रथा चली आ रही है। मनुष्य मे आदिकाल से यह प्रवृत्ति रही है कि दूसरो के साथ बीती हुई घटनाओ तथा उनके अनुभवो के विषय मे वह जानकारी प्राप्त करे। इसके साथ ही मनुष्य मे आत्माभिव्यक्ति की प्रवृत्ति भी है। इसी आत्माभिव्यक्ति से मनुष्य मे अह की तृप्ति होती है। इन्ही प्रवृत्तियो के कारण कहानी का जन्म हुआ।

प्राचीनकाल मे कहानी 'कथा' के रूप मे प्राप्त होती है। उस काल मे धार्मिक तत्त्वो को भी 'कथा' के द्वारा ही समझाया जाता था। इस प्रकार प्रचीन काल में कहानी का रूप विशाल था। सस्कृत साहित्य मे कथा-सरित्सागर, पचतत्र आदि कथा-साहित्य के अन्तर्गत ही है। परन्तु आधुनिक युग मे कहानी का रूप इतना विशाल नही है। आज तो कहानी शब्द का प्रयोग लघु कथा या आख्यायिका के रूप मे करते है। हिन्दी मे आधुनिक कहानी और उपन्यास पश्चिम की देन है। सिंहासन बत्तीसी तथा वैताल-पचीसी जैसी कुछ हिन्दी कहानियाँ सस्कृत की देन अवश्य है, परन्तु आधुनिक हिन्दी कहानी साहित्य मे उनका कोई महत्त्व नही है।

आज पश्चिम मे लोगो के पास लम्बी कहानियाँ या उपन्यास पढने के लिये अधिक समय नही है, क्योकि उनका जीवन बहुत व्यस्त है, इसलिये वे ऐसी रचना पढना पसद करते है जिसके पढने मे समय कम लगे और उनका पूरा मनोरजन हो जाय। यही कारण है कि वहाँ पर कहानी का आविष्कार हुआ है। मानव का रुचि-वैविध्य भी कहानी के जन्म का एक कारण है। आज मानव बगीचो मे भी सैर करना चाहता है और अपनी मेज पर गुलदस्ता सजा कर भी रखना चाहता है।

उपन्यासो मे जीवन के विभिन्न रूप, विभिन्न समस्याओं और विभिन्न पात्रों का चित्रण देखना चाहता है, तो कभी केवल एक प्रभाव को उत्पन्न करने वाली किसी एक ही घटना पर आधारित जीवन के किसी एक ही पक्ष की झलक दिखाने वाली कहानी को पढ़ कर आनन्द लेना चाहता है।

अँग्रेजी के प्रसिद्ध कहानी लेखक एडगर ऐलेन पो ने कहानी की परिभाषा इस प्रकार की है —"कहानी एक छोटा सा आख्यान है, जो एक ही बैठक मे पढा जा सके, और जो पाठक पर एक ही प्रभाव उत्पन्न करने के लिये लिखा गया हो।" कहानी और उपन्यास मे यही अन्तर है। उपन्यास जीवन की विविध परिस्थितियो का और विविध समस्याओं का चित्रण करता है। उसका कथानक बहुत लम्बा और पेचीदा होता है। उपन्यास मे पात्र संख्या भी अधिक होती है। उपन्यास मे कोई एक ही प्रभाव उत्पन्न नही किया जाता है। इसमे घटनाए भी अनेक होती है। इसके विपरीत कहानी बहुत छोटी और सीमित होती है। कहानी मे इस बात का ध्यान रखा जाता है कि उसमे जीवन के केवल एक पक्ष का ही चित्रण हो, वह किसी एक ही घटनाक्रम पर आधारित हो और उसमे किसी एक ही व्यक्ति या वस्तु का कलापूर्ण परिमार्जित अंकन हो। उपन्यास और कहानी मे केवल आकार के छोटे और बडे होने का ही अन्तर नही है। लम्बी कहानी को उपन्यास और छोटे उपन्यास को कहानी नही कहा जा सकता। दोनो की रचना मे ही मौलिक अन्तर है।

प्रारम्भ मे आधुनिक कहानी का विकास पश्चिमी भाषाओ मे हुआ था, परन्तु अब भारतीय भाषाओं मे भी इसका विकास तेजी से हो रहा है। अभी भी कहानी मे नये-नये प्रयोग हो रहे हैं। पहले कहानी मे घटना-क्रम की प्रधानता थी, परन्तु उसके बाद पात्र चरित्र-चित्रण का घटना-क्रम से अधिक महत्त्व हो गया है। परन्तु प्रभाववादी कहानियों मे एक विशेष प्रकार का वातावरण या प्रभाव उत्पन्न करने का यत्न किया जाता है।

कहानी चाहे जैसी भी क्यो न हो, परन्तु 'संक्षेप मे होना' उसका अनिवार्य व आवश्यक गुण है। प्रत्येक कहानी का एक सुनिश्चित लक्ष्य होने के कारण कहानी का प्रत्येक वाक्य, प्रत्येक घटना और प्रत्येक कथोपकथन उस

लक्ष्य की ओर झुका होना चाहिए। कहानी मे एक भी अनावश्यक सामग्री नही होनी चाहिए। कहानी के कथोपकथन भी बहुत ही सक्षिप्त होने चाहिए।

प्रश्न २—कहानी के तत्वो का विस्तृत परिचय दीजिये।

उत्तर—कहानी के निम्नलिखित छ तत्त्व होते है —

(१) कथावस्तु, (२) पात्र, (३) कथोपकथन, (४) वातावरण, (५) उद्देश्य, (६) शैली।

(१) कथावस्तु —कथावस्तु या कथानक कहानी की रीढ की हड्डी है। वास्तव मे घटनावली को कथानक कहते है। इन घटनाओ के विकास मे वैज्ञानिक ढग होता है। घटना के आने से पूर्व उद्‌भव कारणो की सृष्टि की जाती है, तब कही जाकर घटना घटती है, वरना उसकी घटना अवैज्ञानिक समझी जायगी। घटनाओ मे एक तात्पर्य होता है। सभी घटनाये एक लक्ष्य की ओर गतिशील होती है। कथावस्तु के भी चार अग होते है—

(क) प्रारम्भ—कहानी के प्रारम्भ करने के लिये कोई विशेष नियम नही है। कही पर इसका प्रारम्भ वार्तालाप से, कही पात्र-परिचय से, कही पर पात्रो और घटनाओ के बीच सम्बन्ध स्थापित करने से, कही वातावरण की दृष्टि से और कही दार्शनिक विश्लेषण से कहानी का आरम्भ किया जाता है। आरम्भ मे कहानी मे ऐसा आकर्षण होना चाहिए कि पाठक पढते ही उसके आधीन हो जाये। यदि आरम्भ नीरस हुआ तो पाठक शुरू की कुछ पक्तियाँ पढकर ही कहानी को छोड बैठेगा और चाहे कहानी आगे चल कर अच्छी हो, परन्तु वह उसे नही पढेगा। इसलिये अच्छी कहानी का प्रारम्भ विशेष रूप से सवारा जाना चाहिये। प्रारम्भ मे पाठक के मन मे उत्सुकता जगाने की क्षमता होनी चाहिये।

(ख) विस्तार —इसमे लेखक अधिक स्वतन्त्रता से काम लेता है। इसमे कुतूहल, दुविधा, अप्रत्याशित सयोगो के ऐसे अनेक प्रसग लाये जा सकते है, जो लेखक को अभीष्ट है और जिनसे कथानक आगे को बढता है।

(ग) चरमसीमा —घटनाओ का सघर्ष और पाठक का औत्सुक्य जिस सीमा तक बढाया जा सकता है, उसे चरम सीमा कहते है। सम्पूर्ण घटना-

चक्र, वातावरण, चरित्र-चित्रण तथा पाठक की जिज्ञासा-वृत्ति की पूर्णता जिस बिन्दु पर आ कर मिलते है, उसे चरमसीमा कहते है।

(घ) अन्त—कई बार कहानी का अन्त चरमसीमा पर ही हो जाता है और कुछ कहानियो मे चरमसीमा के बाद भी कहानी कुछ दूर आगे चलती है और उसके बाद अन्त आता है। अन्त चाहे चरमसीमा पर हो या उसके बाद, किन्तु वह उतना ही सुन्दर और संतोषजनक होना चाहिये, जितना कि प्रारम्भ। यदि अन्त सुन्दर हुआ तो पाठक के मन मे कहानी को पढने के पश्चात् एक प्रकार का सन्तोष सा बना रह जायगा।

(२) पात्र—कहानी मे पात्रो की संख्या उपन्यास की अपेक्षा बहुत कम होती है। कहानी मे पात्रो का समस्त जीवन हमारे सामने नही आता है। कहानी का उद्देश्य तो अपने घटनाचक्र तक सीमित जीवन को दिखाना है। परन्तु जीवन के वे क्षण जिनकी घटना कहानी मे चित्रित होती है, इतने जाज्वल्यमान होते है कि पात्र का व्यक्तित्व ही उसमे जगमगा उठता है। चरित्र उपस्थित करने के भी निम्नलिखित चार प्रकार है —

(क) विश्लेषण—इसमे लेखक स्वयं अपनी लेखनी से पात्रो का चरित्र चित्रण करता है।

(ख) सकेतात्मक—इसमे लेखक अपने पात्रो का चरित्र-विश्लेषण नही करता है। वह ऐसी कलात्मक प्रणाली अपनाता है कि पाठक उसे समझने मे कुछ कल्पना का प्रयोग करता है। इस प्रकार इसमे पाठक को भी उसे समझने का प्रयत्न करना पडता है।

(ग) वार्तालाप—जब दो पात्र परस्पर वार्तालाप करते है, तो पाठक उनकी बातचीत से ही उनके स्वभाव का अनुमान लगा लेता है। पात्रो की भाषा, भाव और कहने के ढंग मे पात्रो का चरित्र बडी सरलता से समझा जा सकता है।

(घ) घटना—घटनाचक्र मे फँसे [व्यक्ति को सरलता से समझा जा सकता है। छोटी-छोटी घटनायें पात्र को समझने-समझाने मे बहुत सहायक होती है।

(३) कथोपकथन—यह कहानी का मुख्य तत्त्व है। यह घटनाओ को चरमसीमा की ओर बढ़ाता है। सवादो से अतर्द्वन्द्व का स्पष्टीकरण भी होता है। चरित्र-चित्रण मे भी इससे बहुत सहायता प्राप्त होती है। सवाद सक्षिप्त होने चाहिये। सवादो का अनावश्यक विस्तार नही होना चाहिये।

(४) वातावरण—कहानी मे लेखक दो-चार चमकीले शब्दो मे वातावरण की सृष्टि कर देता है, जिससे पात्रो की मनोवृत्ति को समझने का आधार बना रहे।

(५) उद्देश्य—प्रत्येक कहानी का कोई न कोई उद्देश्य तो होता ही है। उद्देश्यरहित कहानी को आधुनिक परिभाषा के अन्तर्गत कहानी कहना कठिन है। कहानी का सारा प्रवाह इस एक ही उद्देश्य की ओर अग्रसर होना चाहिये। उद्देश्य से असम्बन्धित घटना को कहानी से निकाला जा सकता है।

(६) शैली—आधुनिक कहानी मे लेखन-शैली का भी बहुत महत्त्व है। यद्यपि प्रत्येक कलाकार की अपनी स्वतत्र शैली होती है, परन्तु कहानी मे उसी लेखक को सफलता प्राप्त होती है, जिसकी शैली सरल और सुबोध हो, जिसमे चित्रणात्मकता तथा व्यजकता को विशेष महत्व दिया गया हो। कहानी मे न तो निरर्थक शब्द ही होने चाहिएँ और न उसकी भाषा ही गुरु-गभीर होनी चाहिए। बात को कहने के ढग दुर्बोध न होकर नये और चुटीले होने चाहिएँ। भाषा जनसाधारण की भाषा के जितना निकट हो उतना अच्छा है। कहानी लिखने की निम्नलिखित चार शैलियाँ प्रचलित है—

(१) कथात्मक-शैली अथवा ऐतिहासिक शैली। (२) चरित शैली (३) डायरी शैली। (४) पत्र-शैली।

प्रश्न ३—हिन्दी कहानी साहित्य के विकास पर प्रकाश डालिए।

उत्तर—हिन्दी कहानी का इतिहास लगभग ५० वर्ष का इतिहास है। आधुनिक काल में हिन्दी कहानी का प्रारम्भ तथा विकास द्विवेदी युग मे हुआ। आधुनिक हिन्दी कहानियाँ सर्वप्रथम सन् १९०० मे 'सरस्वती' मे छपनी प्रारम्भ हुई। सर्वप्रथम अग्रेजी तथा सस्कृत कथाओ के रूपान्तर छपने शुरू हुए। उसके पश्चात् धीरे-धीरे सामयिक जीवन मे घटित होने वाली घटनाये कहानियो की आधार बन गई और उसके साथ ही कल्पना के आधार पर कहानियाँ

लिखी गई। इस प्रकार इस समय कल्पना-प्रसूत तथा यथार्थवादी कहानियां लिखी गई। यथार्थवादी कहानियों के लिखने वालो मे गुलेरी जी, प्रेमचन्द, सुदर्शन कौशिक आदि का नाम उल्लेखनीय है। प्रसाद, हृदयेश आदि लेखकों ने कल्पना-प्रसूत कहानियाँ लिखी। मुन्शी प्रेमचन्द जी से पूर्व की कहानियों मे दैवी-घटनाओं तथा सयोग का मुख्य स्थान था, परन्तु मुन्शी जी ने अपनी कहानियों मे यथार्थ घटनाओं, मनोविज्ञान के आधार पर चरित्र-चित्रण, घटनाओं के स्वाभाविक विकास, सामाजिकता आदि पर जोर दिया और इस प्रकार उन्होंने कहानी-कला को उन्नति-पथ पर अग्रसर किया। धीरे-धीरे कहानियों मे विविधता उत्पन्न होने के कारण अनेक प्रकार की कहानियाँ लिखी जाने लगीं। इनमे हास्य-प्रधान, कार्य-प्रधान, कथानक-प्रधान, चरित्र-प्रधान, वातावरण-प्रधान तथा प्रतीकवादी प्रमुख हैं। कहानियों मे विविधता उत्पन्न होने के साथ वर्णनात्मक, सभाषणात्मक, पत्र, डायरी आदि विभिन्न शैलियों का भी जन्म हो गया।

उच्चकोटि के कहानीकारो ने केवल पाश्चात्य शैली का ही अनुकरण नहीं किया, बल्कि भारतीय वातावरण और संस्कृति के अनुरूप नैतिक आदर्शों को सामने रखकर स्वतन्त्र रचना शैली मे कहानियाँ लिखी हैं। विभिन्न प्रकार की अनेक समस्याओं के साथ-साथ मनोभावों की व्यजना और उनके द्वन्द्व का विश्लेषण तथा चित्रण भी हिन्दी कहानीकारो ने किया है। हिन्दी कहानी साहित्य के विकास मे पुरुषो के साथ-साथ स्त्री साहित्यिकों ने भी सहयोग दिया है।

आज कहानी की नवीन धारा प्रवाहित हो रही है। आज का कहानीकार अपनी कृति को आरम्भिक कहानी जैसे बन्धनो मे बाधना स्वीकार नहीं करता है। वास्तव मे कहानी मे जीवन की छोटी-छोटी झाँकियाँ होती है। उन झाँकियो के द्वारा लेखक अपने भावो को प्रगट करता है और पाठको के ध्यान को आकृष्ट करता है।

प्रश्न ४—श्री जयशंकर प्रसाद जी की कहानी 'आकाश दीप' का संक्षिप्त सार लिखकर तत्वों के आधार पर उसकी आलोचना करो।

उत्तर—बाली द्वीप के पोताध्यक्ष मणिभद्र के पोत पर गगा तट पर स्थित चम्पानगरी का एक क्षत्रिय प्रहरी था। उसकी एक आठ वर्षीया पुत्री चम्पा थी। माता के स्वर्गगत होने के पश्चात् वह पिता के साथ पोत पर ही रहने लगी थी। एक दिन अचानक ही जलदस्यु बुद्धगुप्त (ताम्रलिप्ति का एक क्षत्रिय) ने पोत पर आक्रमण कर दिया। चम्पा के पिता ने अकेले ही सात दस्युओ को मारकर जल समाधि ले ली। दस्यु बुद्धगुप्त को गिरफ्तार कर लिया गया।

कुछ समय व्यतीत होने के पश्चात् एक दिन दुष्ट मणिभद्र ने चम्पा से वासना की तृप्ति के लिये प्रस्ताव किया। चम्पा ने उसे बहुत बुरा-भला कहा। मणिभद्र ने उसे कारागार मे डाल दिया। एक दिन अवसर पाकर चम्पा बन्धन-मुक्त हो गई। उसने बुद्धगुप्त के बन्धन भी खोल दिये। चम्पा ने अवसर पाकर उसी समय नायक की कृपाण भी निकाल ली। बुद्धगुप्त और पोत के नायक मे द्वन्द्व युद्ध हुआ। द्वन्द्व युद्ध मे नायक पराजित हुआ और दस्यु नेता ने उसे जीवन-दान दे दिया और उसे यह भी बता दिया कि उसने मणिभद्र को तो पहिले ही समाप्त कर दिया है। पोत पर अब बुद्धगुप्त का अधिकार हो गया। चम्पा और बुद्धगुप्त मे प्रेम हो गया। दो दिन यात्रा करने के पश्चात् उनकी नौका एक नाम हीन द्वीप मे पहुँची। बुद्धगुप्त ने उस द्वीप का नाम चम्पा रखा।

धीरे-धीरे पाँच वर्ष व्यतीत हो गए। दस्यु बुद्धगुप्त एक बहुत बडा व्यापारी बन गया। बाली, जावा तथा सुमात्रा पर एक छत्र उसी का अधिकार हो गया। बुद्धगुप्त की आज्ञानुसार सब लोग चम्पा को रानी कहकर पुकारते थे। चम्पा अपनी माता का अनुकरण करती हुई वहाँ आकाश-दीप जलाया करती थी। उसके मन मे अपने पिता के हत्यारे बुद्धगुप्त के विरुद्ध प्रतिशोध की अग्नि धधक रही थी। उसे पिता की हत्या का भारी दुख था। एक दिन नौका-विहार के समय उसने बुद्धगुप्त के सामने अपने हृदय की बात रख दी और उससे प्रतिशोध लेने के लिये छिपाई हुई कृपाण समुद्र मे फेक दी। उसने रोते हुए कहा, "मै तुमसे घृणा करती हूँ फिर भी तुम्हारे लिये मर सकती हूँ।" बुद्धगुप्त ने उत्तर दिया, "मै जीवन की इन सुखद घडियो की स्मृति मे इस जलमग्न पहाडी

पर एक प्रकाश-गृह बनाऊँगा।"

जलमग्न पहाड़ी के शिखर पर एक प्रकाश-गृह बनाया गया। वहाँ पहुँचने पर जया ने चम्पा को बताया—"आज रानी का विवाह है।" चम्पा ने जब इसकी सत्यता बुद्धगुप्त से जाननी चाही तो उसने कहा—"यदि तुम्हारी इच्छा हो तो सच भी हो सकता है चम्पा! . . . मैं तुम्हारे पिता का घातक नहीं हूँ।" चम्पा ने कहा—"यदि मैं इसका विश्वास कर सकती बुद्धगुप्त, वह दिन कितना सुन्दर होता!" यह कहकर उसने बुद्धगुप्त के चरण पकड़ लिये। उच्छ्वसित शब्दों में बुद्धगुप्त ने कहा—"चलोगी चम्पा! पोतवाहिनी पर असंख्य धन-राशि लादकर राजरानी सी जन्मभूमि के अङ्क में? आज हमारा परिणय हो, कल ही हम लोग भारत के लिए प्रस्थान करें।" चम्पा ने उसके हाथ पकड़ लिए। किसी आकस्मिक झटके ने एक क्षण के लिए दोनों के अधरों को मिला दिया। सहसा चम्पा ने चेतन होकर कहा—"बुद्धगुप्त! तुम स्वदेश लौट जाओ, विभवों का सुख भोगने के लिए, और मुझे छोड़ दो इन निरीह भोले-भाले प्राणियों के दुःख की सहानुभूति और सेवा के लिए।"

बुद्धगुप्त भारतवर्ष को लौट गया और चम्पा उसकी नौकाओं को लौटते देख रो पड़ी। वह वहाँ आकाश-दीप जलाया करती। अन्त में चम्पा और वह आकाश-दीप दोनों ही नष्ट हो गए।

समीक्षा

कथावस्तु – प्रस्तुत कहानी के कथानक का आधार बौद्ध जातकों के आख्यान हैं, परन्तु कहानीकार प्रसाद ने उन्हें अपनी कल्पना और प्रतिभा से मौलिक बना दिया है। कथानक भावात्मक है। सम्पूर्ण कथा में एक करुण समवेदना का भाव है, जो अन्त तक पाठक के मन को जकड़े रहता है और अन्त में जोरदार धक्का देकर समवेदना में ही लीन हो जाता है। यह समवेदना ही इस कथानक का प्राण है। कथानक छः भागों में विभक्त है, परन्तु इसमें कथानक की क्रमबद्धता, एकता और अन्विति में कोई बाधा नहीं पड़ी है। कथा का आधार मानवीय प्रेम है और इसमें जन-साधारण के लिए रोचकता की सृष्टि की क्षमता है। आरम्भ पात्रों के संवादों से हुआ है और ये संवाद पात्रों की

परिस्थिति का परिचय देते है। द्वितीय भाग मे नये पात्रो का परिचय हुआ है और कथानक का सघर्ष के साथ विस्तार हुआ है। इसी प्रकार कथानक का विकास होता चला गया है और छठे भाग मे जाकर कथानक परिणय-वार्ता के साथ अपनी चरम सीमा को छू लेता है। अन्त बहुत करुणाक्रान्त है।

पात्र—पात्रो की सख्या अधिक नही है। चम्पा और बुद्धगुप्त दो मुख्य पात्र है। इनके अतिरिक्त पोत नायक तथा जया दो अन्य पात्र है। प्रधान पात्रो के जीवन के जाज्वल्यमान क्षणो को ही कहानी मे प्रस्तुत किया गया है। बुद्धगुप्त वीरता, प्रेम और त्याग का, देश-प्रेम और मानवसुलभ दुर्बलता और सबलता का शक्तिमान् प्रतीक है। चम्पा सहानुभूति, प्रेम, आदर्श और सेवा की प्रतिमा है। इस कहानी की चारित्रिक विशेषता यह है कि लेखक ने चम्पा के हृदय मे धधकती हुई प्रतिहिंसा की अग्नि को प्रेम-वारि से शान्त करके नारी-सम्मान-सम्बन्धी अपनी आस्था को प्रकट किया है। साथ ही बुद्धगुप्त जैसे खूनी, अत्याचारी और लुटेरे दस्यु की कोमलता का परिचय देकर त्याग, तप और देशानुराग की मूर्ति बनाकर उसके चरित्र को पुनीत एव मगलकारी बना दिया है।

कथोपकथन—सवादो से ही कथानक चरम सीमा की ओर बढ़ा है और अन्तर्द्वन्द्व का स्पष्टीकरण हुआ है। सवादो के द्वारा ही पात्रो के चरित्र का विकास हुआ है। सवाद सक्षिप्त है और उनका अनावश्यक विस्तार नही हुआ है।

वातावरण—वातावरण मे ऐसी सवेदनशीलता तथा भावात्मकता है कि वर्षो का अन्तर इसी मे समा जाता है और कहानी के प्रभाव की एकता बनी रहती है।

उद्देश्य—प्रस्तुत कहानी का उद्देश्य यह सिद्ध करना है कि व्यक्तिगत सुखो की अपेक्षा जन-जीवन के सुख की कामना का ही जीवन मे महत्त्व होना चाहिए। इसी उद्देश्य की प्राप्ति के लिए कहानीकार ने अन्त में चम्पा और बुद्धगुप्त का एक-दूसरे से परित्याग करवाया है। यह भी सम्भव है कि लेखक के हृदय मे इस कहानी के लिखते समय भारतीय गौरव के विस्तार की प्राचीन

सीमाओं तथा प्रत्येक व्यक्ति मे विद्यमान राष्ट्र-प्रेम का परिचय देने की लालसा भी हो ।

भाषा तथा शैली—प्रसाद जी की भाषा क्लिष्ट होती है और उसमे सस्कृत के शब्दों का प्रयोग पर्याप्त सख्या मे होता है । प्रस्तुत कहानी मे भी हम यही बात पाते है । पात्रो के अनुसार भाषा मे परिवर्तन नहीं हुआ है । परन्तु फिर भी कुशल कहानीकार की भाषा भाव-व्यक्ति की सामर्थ्य मे पूर्ण है । इसमे लेखक ने अन्यपुरुष-प्रधान शैली को अपनाया है ।

अन्त मे हम कह सकते है कि प्रस्तुत कहानी तत्त्वो के आधार पर पूर्ण रूप से सफल है ।

प्रश्न ५—गुलेरी जी की कहानी 'उसने कहा था' का सार लिखकर उसकी तत्त्वो के आधार पर समीक्षा करो ।

उत्तर—अमृतसर मे बम्बू-कार्ट वालो के बीच मे होकर एक लडका और एक लडकी चौक की दुकान पर आ मिले । ये दोनो सिख थे और दोनो ही अपने मामा के यहाँ आये हुए थे । दोनो सौदा लेकर साथ-साथ चल दिये । कुछ दूर जाकर लडके ने पूछा, "तेरी कुडमाई हो गई ।" इस पर लडकी कुछ आँखें चढाकर 'धत्' कहकर दौड गई और लडका मुँह देखता रह गया । दो-तीन वार इसी प्रकार आपस मे भेंट हुई । अन्त मे एक दिन लडकी ने बता दिया कि उसकी कुडमाई हो गई है और अपने कथन के प्रमाण मे रेशम से कढा हुआ सालू दिखा दिया । लडका चिन्तालीन इधर-उधर टकराता हुआ अपने घर जा पहुँचा ।

इस घटना को पच्चीस वर्ष बीत गए । लहनासिह नं० ७७ राइफल्स में जमादार हो गया । लडकी का विवाह सूबेदार हजारासिंह से हो गया और उसके बोधासिह नाम का एक युवक पुत्र भी था । लहनासिह अवकाश लेकर गाँव आया हुआ था । इसी समय जर्मनी से अँग्रेजो का युद्ध छिड गया । लहनासिंह को रेजीमेंट के अफसर का तार मिला कि शीघ्र ही लाम पर चले आओ । साथ ही उसे हजारासिह सूबेदार का भी पत्र मिला । उसमे उन्होंने लिखा था—"हमारे गाँव होकर जाना । हम भी साथ चलेंगे ।" लहनासिह सूबेदार

के यहाँ पहुंचा। उसकी सूबेदारनी से भेट हुई। सूबेदारनी ने उसे पहचान लिया, परन्तु लहनासिंह उसे न पहचान सका। तब सूबेदारनी ने उसे बचपन की घटना स्मरण कराते हुए कहा—"तुम्हें याद है, एक दिन ताँगे वाले का घोडा दही वाले की दुकान के पास बिगड गया था। तुमने उस दिन मेरे प्राण बचाये थे। आप घोडे की लातो मे चले गये थे और मुझे उठाकर दूकान के तख्ते पर खडा कर दिया था। ऐसे ही इन दोनो (हजारासिंह तथा बोधासिंह) को बचायें। यह मेरी भिक्षा है। तुम्हारे आगे मै आचल पसारती हूँ।"

युद्ध-भूमि मे लहनासिंह ने बडी बीरता तथा साहस का काम किया। रात्रि का समय था। कडाके की सर्दी पड रही थी। बोधासिंह तीव्र ज्वर में भुन रहा था। लहनासिंह पहरे पर था। उसने अपनी जरसी उतार कर बोधासिंह को दे दी। उसी समय एक जर्मन गुप्तचर अग्रेज 'लपटन साहब' के वेष मे वहाँ आया और उसने सूबेदार हजारासिंह को दूर पर स्थित एक जर्मन खाई पर आक्रमण करने के लिये भेज दिया। खन्दक मे लहनासिंह, बोधासिंह सहित कुल दस सैनिक रह गये। लहनासिंह को जब जर्मन गुप्तचर ने सिगरेट दी, उसने उसे पहचान लिया। उसने तुरन्त वजीरासिंह को लहनासिंह को वापिस बुलाने के लिए भेज दिया। अवसर पाकर लहनासिंह ने जर्मन गुप्तचर को बन्दूक के कुन्दे से बेहोश कर दिया। होश मे आने पर उसने लहनासिंह को गोली से घायल कर दिया। लहनासिंह ने भी दो गोलियाँ चलाकर उसको स्वर्ग पहुँचा दिया। इसी समय अचानक ही ७० जर्मन सैनिको ने खदक पर धावा बोल दिया। लहना और उसके साथियो ने उनसे डटकर टक्कर ली। इसी समय सूबेदार हजारासिंह ने पीछे से उन पर गोली चलवा दी। जर्मन दोनो ओर से पिस गये। भारतीय वीर विजयी तो हो गये, परन्तु लहनासिंह तथा सूबेदार दोनो ही बहुत बुरी तरह घायल हो गये।

प्रात होते-होते सैनिक गाडियाँ घायलो और मृतको को लेने के लिए वहाँ आ पहुँची। हजारासिंह के बहुत कहने पर भी लहनासिंह गाडी पर सवार नही हुआ। उसने सूबेदार तथा बोधासिंह दोनो को गाडी पर चढाकर बिदा कर दिया। बिदा करते समय उसने सूबेदार से शपथ दिलाकर कहा, "सूबेदारनी होरा को चिट्ठी लिखो तो मेरा मत्था-टेकना लिख देना, और जब घर जाओ तो

कह देना कि मुझे जो उन्होंने कहा था, वह मैंने कर दिया है।"

गाडी के जाते ही लहना लेट गया। उसने कमरबन्द खोल दिया और वजीरासिंह से पीने के लिये पानी मागा। मूर्छित अवस्था में जीवन की एक-एक घटना उसके सामने आती रही और अन्त मे वह इस नश्वर ससार से विदा हो गया।

समीक्षा

कथावस्तु—कथानक का सम्बन्ध जीवन की एक बहुत बडी गहराई मे है। समस्त कथानक जीवन मे इस प्रकार गुथा हुआ है, मानो वह उसका ही अंग हो। कथानक सुगठित एव प्रवाहमय है। कहानी के प्रथम तथा द्वितीय भाग छोटे-छोटे हैं। आरम्भ मे पढने पर पाठक को कुछ भी समझ मे नही आता है, परन्तु जब वह समस्त कहानी को पढ लेता है, तो फिर समस्त कथा समझ मे आ जाती है। जब पाठक प्रथम भाग को पढकर दूसरे भाग को पढना आरम्भ करता है, तो उसकी समझ मे कुछ भी नही आता। प्रथम भाग मे कहानी का आरम्भ अमृतसर के कोलाहल पूर्ण बाजार तथा सिख लडकी और लडके के प्रेम से कराया है और दूसरे भाग मे युद्ध का चित्रण किया है, परन्तु फिर भी कहानी की विशेषता यह है कि पाठक उससे ऊबता नही है, बल्कि कथानक के अन्त तक कथा की पृष्ठ-भूमि जानने की जिज्ञासा कौतूहल को बनाये रखती है। अन्त मे जाकर ही प्रथम दोनो नाटय-दृश्यों का तारतम्य तथा सम्बन्ध पाठक की समझ मे आता है। लेखक ने काल का अन्तर मिटाकर कहानी का प्रभाव-ऐक्य बडी सतर्कता से निभाया है। इस प्रकार हम कह सकते हैं कि कथानक का आरम्भ आकर्षक और विकास सुन्दर है। लहनासिंह की मृत्यु-वेला कथानक की करुणापूर्ण चरमावस्था है तथा अन्त प्रभावयुक्त एव मर्म-स्पर्शी है।

चरित्र-चित्रण—पात्रों की सख्या अधिक होने पर भी कहानी मे खटकती नहीं है। इसका कारण यह है कि सभी पात्र कहानी के विकास में सहायक है। सभी पात्र मध्यमवर्ग से सम्बन्धित एव यथार्थवादी हैं। पात्रो का चरित्र-चित्रण सजीव, नाटकीय एव मनोवैज्ञानिक है

भाव, देश-प्रेम, लोक कल्याणकारी भावना तथा त्याग का प्रतीक है। सूवेदारनी के चरित्र में एक आदर्श भारतीय महिला का चरित्र है।

कथोपकथन—सवाद सक्षिप्त, प्रभावशाली एव चरित्र-विकास मे सहायक है। उनमे स्वाभाविकता, भावात्मकता, सरलता तथा स्पष्टता है। वे मनोरजक तथा परिस्थिति के अनुकूल है।

उद्देश्य—कहानी में मनोरजन के साथ-साथ प्रभावात्मक शैली मे सात्विक प्रेम का पाठ भी पढाया गया है। लेखक ने लहनासिह के चरित्र के द्वारा एक भारतीय सैनिक की अटल प्रतिज्ञा, त्याग, वीरता तथा साहस का एक आदर्श भी पाठको के सामने रखा है।

वातावरण— वातावरण के अनुकूल कवित्वमयी शैली वहुत ही सुन्दर बन पडी है—"लडाई के समय चाँद निकल आया था। ऐसा चाँद, जिसके प्रकाश से सस्कृत कवियो का रात्रि को दिया हुआ 'क्षपा' नाम सार्थक होता है। और हवा ऐसी चल रही थी जैसी की वाणभट्ट की भापा में 'दन्तवीणोपदेशाचार्य' कहलाती।" इसमे लेखक ने बडी कुशलता से सकेतात्मक शैली में देशकाल तथा वातावरण का चित्र प्रस्तुत किया है। कहानी का सम्बन्ध पजाव के सिक्ख परिवार से है। दही से सिक्खो का सिर धोना, सिगरेट न पीना, बडो को मत्था टेकना, कुडमाई होने के पश्चात् रेशम से कढा हुआ सालू पहनना आदि सभी वातो से पजावी वातावरण का सजीव चित्र अकित हुआ है।

भापा तथा शैली—भापा मे ओज, मुहावरापन, तत्समता का सरक्षण, समास और विस्तार, मौलिकता और सवको अपने में समेटने की शक्ति है। इसमे एक भी शब्द अनावश्यक नही है। भाषा सर्वथा प्रौढ, सरल और व्यावहारिक है। कहानी मे नाटकीय सवाद तथा वर्णन-मिश्रित शैली के साथ-साथ कथा के अन्त मे स्मरण-शैली का प्रयोग वहुत ही सुन्दर ढग से हुआ है। स्मरण-शैली के द्वारा ही आरम्भ तथा अन्त का गठन हो सका है। कही-कही पर उपहासात्मक तथा व्यग्यात्मक शैली का भी प्रयोग हुआ है।

'उसने कहा था' कहानी अपनी प्रौढता, अनुपम कल्पनाशक्ति और अनूठी वर्णन-शैली के कारण ही अपने जन्म के पैंतीस वर्प पश्चात् भी आज यथार्थवादी कहानियो मे अद्वितीय है, यद्यपि इस लम्बे युग मे हमारा कहानी साहित्य

पर्याप्त समृद्ध हो चुका है। इस कहानी की गणना विश्व साहित्य की श्रेष्ठतम कहानियों में है।

प्रश्न ६—निम्नलिखित कहानियों के संक्षिप्त सार देकर उनकी समीक्षा कीजिये :—

रक्षाबन्धन, ताई, बड़े भाई साहब, सम्राट् का स्वप्न, प्रेमतरु, प्रायश्चित्त, उसकी माँ, शरणागत, मिस्त्री, मिठाई वाला।

उत्तर—रक्षाबन्धन (विश्वम्भरनाथ शर्मा कौशिक)

सार—रक्षाबन्धन के पुनीत पर्व पर कानपुर की एक बालिका सरस्वती ने जब सब बहनों को भाइयों के राखी बाँधते देखा, तो वह अपनी माँ से जाकर बोली—"माँ मैं भी राखी बाँधूंगी।" परन्तु माँ ने उसे डाँटा और बुरा-भला कहा। उसका भाई उसे ढाई वर्ष की अवस्था में छोड़कर घर से निकल गया था और उसके जन्म होने के कुछ दिन पश्चात् ही उसके पिता का स्वर्गवास हो गया था और माँ ने आज उसे ही इन विपत्तियों के लिये दोषी ठहराया था, इसलिए वह नेत्रों में अश्रुजल भर कर और लाल डोरा हाथ में लेकर द्वार पर आकर खड़ी हो गई। थोड़ी देर में घनश्याम नाम का एक युवक वहाँ आया और उसने सरस्वती से राखी बँधवाई और उसे दो रुपये तथा कुछ पैसे देकर वह वहाँ से चला गया।

घनश्यामदास ही सरस्वती का भाई था, परन्तु वह उसे पहचान न सका। घर से निकलने के पश्चात् उसने दक्षिण में जाकर व्यापार में बहुत धन कमाया था और अब लखनऊ के गोलागंज में कोठी बनवाकर रहता था। उसने लखनऊ लौटकर अपने मित्र अमरनाथ को सरस्वती से राखी बँधवाने तथा माँ का कुछ पता न लगने की बात बताई। उसने राखी के उन पवित्र धागों को बक्स में बन्द करके रख दिया था। वह पुनः सरस्वती से मिलने कानपुर गया, परन्तु सरस्वती अपनी माँ के साथ वहाँ से चली गई थी। मित्रों ने मिलकर अहियागंज की एक निर्धन माता की अति सुन्दर लड़की से घनश्याम का विवाह निश्चित किया। घनश्यामदास और अमरनाथ जब सन्ध्या समय लड़की को देखने के लिए उसके घर पहुँचे, तो उसे पता चला कि यह लड़की सरस्वती तो उसकी अपनी ही बहिन है। माँ पुत्र को पाकर

और बहन भाई को पाकर बहुत प्रसन्न हुई। इस बार सरस्वती और घनश्याम ने रक्षाबन्धन का महोत्सव बहुत आनन्द तथा प्रसन्नतापूर्वक मनाया।

समीक्षा

कथावस्तु—यह कौशिक जी की सर्वप्रथम कहानी है। यह एक सामाजिक कहानी है। इस कहानी का कथानक छोटे-छोटे चार भागो मे विभक्त है। प्रत्येक भाग का कथानक एक दूसरे से सम्बन्धित है। वस्तु मे रोचकता का अभाव है और कौतूहल की दृष्टि से भी यह शिथिल ही है। कही-कही तो लेखक ने स्वय ही व्यवधान उत्पन्न कर दिया है। कथानक के द्वितीय भाग मे पृष्ठ ५४ पर अमरनाथ और घनश्याम के सवादो के मध्य मे लेखक ने लिखा है—"पाठक समझ गए होगे कि घनश्याम कौन है।" इससे पाठको का कौतूहल बढता नही है, बल्कि शान्त होता है। कथानक का आरम्भ वर्णन और सवाद-मिश्रित शैली से होता है। जब कथानक मे घनश्याम का आगमन होता है तो वह विकास की ओर को बढती है। घनश्याम को पहचानने की घटना मे कहानी चरम सीमा पर पहुँच जाती है। अन्त और प्रारम्भ की घटनाये एक सी ही होने के कारण कथावस्तु के सौन्दर्य मे वृद्धि हुई है।

पात्र-चरित्र-चरित्रण—पात्र-सख्या अधिक नही है। यदि लेखक चाहता तो मित्र मडली में से और पात्र कम कर सकता था। पात्रो के चरित्र का स्वाभाविक विकास नही हुआ है। इस कहानी मे चारित्रिक विकास की अपेक्षा इतिवृत्तात्मकता अधिक रही है।

कथोपकथन—सवाद बहुत ही सक्षिप्त, सरल, सीधे, मार्मिक और पात्रानुकूल हैं। कही-कही सवादो मे अस्वाभाविकता भी आ गई है। अमरनाथ का राखी के दिन घनश्याम से यह प्रश्न करना कितना अस्वाभाविक है—"ऐं, हाथ मे लाल डोरा किस लिए बाँधा है ?"

भाषा तथा शैली—भाषा ओजस्विनी, व्यावहारिक, पात्रानुकूल तथा सुगठित है। इसमे मिठास, अकृत्रिमता और स्वाभाविकता है। इसमे तत्सम शब्दो का प्रयोग अवश्य हुआ है, जैसे—"हा ! सारा परिश्रम व्यर्थ गया। सारी चेष्टायें निष्फल हुई।" प्रस्तुत कहानी कथोपकथन-प्रधान शैली की

कहानी का एक उत्कृष्ट नमूना है।

वातावरण—प्रस्तुत कहानी में भाई-बहिन के मधुर प्रेम और आदर्शों के महत्त्व पर जो प्रकाश डाला गया है, उससे एक सांस्कृतिक वातावरण पैदा हुआ है।

उद्देश्य—मनोरंजन के साथ-साथ लेखक का उद्देश्य 'अपनों का अपनों के प्रति सहज स्वाभाविक आकर्षण होता है' इस तथ्य का सुन्दर उद्घाटन कर भाई-बहिन के स्नेह-सम्बन्ध की संस्थापना करना भी है।

प्रस्तुत कहानी का नाम 'रक्षा-बन्धन' भी उचित ही है क्योंकि कहानी का आरम्भ और अन्त दोनों ही रक्षा-बन्धन से ही होता है। सरस्वती के द्वारा बांधा गया लाल डोरा (लाल राखी) ही अमरनाथ से सरस्वती का परिचय कराता है। इस प्रकार हम देखते हैं कि रक्षा-बन्धन की घटना ही प्रमुख है और इसी घटना को लेकर कहानी का विकास हुआ है।

खूनी

चतुरसेन शास्त्री

सार—दिल्ली में क्रान्तिकारियों की गुप्त सभा हो रही थी। नायक ने मुझे पिल्ले से खेलते हुए एक युवक को दिखाया और कहा—"इस युवक को अच्छी तरह पहचान लो। इससे तुम्हारा काम पड़ेगा।" नायक के चले जाने के पश्चात् मैं युवक के पास गया। उसने पिल्ले के साथ खेलते हुए मुझसे कहा—"काश! मैं इसका सहोदर भाई होता।" इसी समय मेरी और उसकी मित्रता हो गई। धीरे-धीरे मेरी और उसकी पारस्परिक घनिष्ठता बहुत अधिक हो गई। एक दिन वह मुझे अपने घर ले गया। वहाँ पर उसकी माँ से मुझे मातृस्नेह प्राप्त हुआ। स्नेहवश एक दिन तो उसने यहाँ तक कह दिया—"किसी अघट घटना से जो हम दोनों में से एक स्त्री बन जाय, तो मैं तुम से ब्याह ही कर लूँ।" मैंने बार-बार नायक से पूछा, "क्यों तुमने मुझे उससे मित्रता करने को कहा?" परन्तु उन्होंने सदा यही उत्तर दिया—"समय पर जानोगे। गुप्त सभा की कार्य-प्रणाली सब लोग नहीं जान सकते।"

एक दिन भोजन करने के पश्चात् मुझे मित्र का पत्र मिला। अभी मैं उस पत्र को पूरा पढ़ भी नहीं पाया था कि नायक ने मुझे बुलाया। बारहों

प्रधान बैठे हुए थे। उनके सम्मुख नायक ने मुझे गीता की शपथ दिलवाकर एक छ नली पिस्तौल दी और मित्र को मारने की आज्ञा दी। प्रश्न करने और कारण पूछने का निषेध था। नियमानुसार मैंने पिस्तौल उठा ली और वहाँ से रवाना हो गया। मित्र के गाँव मे जाकर रहने लगा। चौथे दिन प्रात काल जलपान करके हम स्टेशन चले। तागा नही लिया, जगल मे घूमने जाने का विचार था। हम दोनो घने कु ज की छाँह मे जाकर बैठ गये। बैठते ही जेब से दो अमरूद निकालकर उसने कहा—"सिर्फ दो ही पके थे। घर के बगीचे मे है। यही बैठकर खाने के लिए लाया हूँ। एक तुम्हारा, एक मेरा। मै चुपचाप अमरूद लेकर खाने लगा। वह भी अमरूद खाने मे व्यस्त था। मैने एकाएक उठकर पिस्तौल का घोडा चढाया और उससे कहा—"अमरूद फेक दो और भगवान् का नाम लो, मै तुम्हे गोली मारता हूँ।" उसे विश्वास न हुआ। उसने कहा—"अच्छा मारो गोली।" एक क्षण भी विलम्ब करने से मै कर्तव्य-विमुख हो जाता। पल-पल मे साहस डूब रहा था। दनादन दो शब्द गूज उठे। वह कटे वृक्ष की तरह गिर पडा। उसके शव को उठाकर मैने चुने हुए ईंधन की बनाई हुई चिता पर रखकर उसका सस्कार किया।

गुप्त सभा मे बारहो प्रधान उपस्थित थे। मैने जाकर कार्य-सिद्धि का सकेत दिया और पिस्तौल नायक को लौटा दी। नायक ने खडे होकर गम्भीर स्वर मे कहा, "तेरहवें प्रधान की कुर्सी हम तुम्हे देते है।" मैने तेरहवे प्रधान की हैसियत से उस युवक का अपराध पूछा। नायक ने उत्तर दिया, "वह हमारे हत्या-सम्बन्धी षड्यन्त्रो का विरोधी था, हमे उस पर सरकारी मुखबिर होने का सन्देह था।" इसके पश्चात् मुझसे पुरस्कार माँगने के लिए कहा गया। मै रो उठा और मैने कहा—"मुझे मेरे वचन फेर दो, मुझे मेरी प्रतिज्ञाओं से मुक्त करो, मै उसी के समुदाय का हूँ। तुम्हारी इन कायर हत्याओ से मै घृणा करता हूँ। मै हत्यारो का साथी, सलाही और मित्र नही बन सकता, तुम तेरहवी कुर्सी जला दो।" नायक को क्रोध नही आया। उसने गम्भीर स्वर मे कहा—"तुम्हारे इन शब्दो की सजा मौत है, पर नियमानुसार तुम्हे क्षमा पुरस्कार मे दी जा सकती है।" मै उठकर चला गया।

उस घटना को दस वर्ष व्यतीत हो गए। देश भर मे घूमा, कही ठहरा

नहीं, भूख प्यास, विश्राम और शान्ति की इच्छा ही मर गई दीखती है। बस, अब वही पत्र मेरे नेत्र और हृदय की रोशनी है।

समीक्षा

कथावस्तु —'खूनी' आचार्य चतुरसेन शास्त्री की एक उच्च कोटि की कहानी है। इसका कथानक क्रांतिकारी दल के कठोर नियमों और उनकी हिंसावृत्ति से सम्बन्धित है। कथानक मौलिक और जिज्ञासापूर्ण है। इसका कथानक सजीवता, कलात्मक सगठन तथा भावव्यजना सभी दृष्टियों से सुन्दर है। आरम्भ से अन्त तक एक तीव्र कौतूहल जागृत रहकर पाठक के मन को बांधे रहता है। आरम्भ से अन्त तक की सभी घटनाओं का समन्वय है और साथ ही क्रान्तिकारी जीवन और उसके साथ जागृत होने वाली प्रत्यक्ष संघर्ष की भावनाओं की पृष्ठभूमि को रसात्मक एव मौलिक पद्धति से प्रस्तुत किया गया है। मित्र की हत्या करने पर कहानी चरम सीमा पर पहुँच जाती है और नायक के पश्चात्ताप के साथ कहानी का प्रभावपूर्ण अन्त हो जाता है।

पात्र चरित्र-चित्रण —पात्र-संख्या अधिक नही है। तीन पात्र प्रमुख है, परन्तु तीनों मे से नाम किसी का भी नही दिया है। प्रत्येक पात्र मे निजी व्यक्तित्व तथा वर्ग-प्रतिनिधित्व दोनो समान रूप से विद्यमान है। जमीदार का लडका भोला-भाला, अपने मित्र पर अटल विश्वास करने वाला और जीवन से बिल्कुल लापरवाह है। प्रेम और विश्वास का अनन्त स्रोत उसके दिल मे उमडता है। निर्भीकता और आत्मसमर्पण की भावना के उसमें दर्शन होते है। जब उसका मित्र गोली मारने को तैयार होता है, तो वह अपने मित्र से कहता है—"बहुत ठीक ! पर इसे खा तो लेने दो।" दूसरे व्यक्ति के चरित्र मे भी दृढता है। वह दल को दिये वचनों का पालन करता है और वचन-बद्ध होने के कारण ही न चाहते हुए भी वह अपने मित्र की हत्या करता है। उसका अद्वितीय साहस उस समय प्रकट होता है, जब वह नायक को फटकारता हुआ कहता है—"तुम्हारी इन कायर हत्याओं से मैं घृणा करता हूँ। मैं हत्यारों का साथी, सलाही तथा मित्र नही बन सकता।"

कथोपकथन :—कथानक में संवादों की प्रधानता नही है। कहानी वर्णन-

शैली मे लिखी गई है। परन्तु फिर भी नायक और दूसरे व्यक्ति के तथा दोनो मित्रो के जगल मे कुज की छाँह मे हत्या होने के पहले के सवाद बहुत ही प्रभावशाली एव सारगर्भित है। सवाद सूच्य कथावस्तु पर भी प्रकाश डालते है। सवादो मे लम्बे होने का दोष नही आया है।

भाषा तथा शैली—भाषा सरल, ओजस्वी, व्यावहारिक, भावमयी, प्रौढ एव मर्मस्पर्शी है। वाक्य-विन्यास सुगठित है। वाक्य छोटे-छोटे और प्रभावशाली है। कहानी आत्मकथा शैली मे लिखी गई है, इसलिए चरित-नायक का अन्तर्द्वन्द्व बहुत ही सुन्दर रीति से व्यक्त हुआ है। आरम्भ से लेकर अन्त तक अन्तर्द्वन्द्व की पूर्ण रक्षा की गई है। शैली मे लेखक के व्यक्तित्व की छाप होने के साथ-साथ उसमे एकरसता भी है।

वातावरण —लेखक ने प्रस्तुत कहानी मे क्रान्तिकारियो की गुप्त और रहस्यपूर्ण सभाओ तथा बातो तथा उनके अनुशासन के वातावरण को चित्रित किया है। इसमे उनके दल में भरती होने के ढग, उनके हिंसक जीवन, उनकी कठिन परीक्षा तथा विरोध को तनिक भी न सहने की भावना के वातावरण को प्रस्तुत किया गया है।

उद्देश्य—आचार्य चतुरसेन शास्त्री ने प्रस्तुत कहानी में दो बाते स्पष्ट की है। एक तो यह है कि मानव का हृदय चाहे कितना ही कठोर हो, परन्तु फिर भी उसमे कोमलता का अश रहता है और दूसरी बात यह है कि हिंसक वृत्ति वाले लोग सदेहशील और भीरु होते हैं। प्रथम उद्देश्य का स्पष्टीकरण मित्र की हत्या करने के पश्चात् हृदय पर जो प्रभाव पडता है और उसके जीवन मे जो परिवर्तन होता है, उससे होता है। दूसरे उद्देश्य का स्पष्टीकरण इन शब्दो से होता है—"तुम लोगो मे नगी छाती पर तलवार के घाव खाने की मरदानगी न हो तो अपने को देश-भक्त कहने मे सकोच करो। तुम्हारी इन कायर हत्याओ से मै घृणा करता हूँ।"

प्रस्तुत कहानी मे क्रान्तिकारी दल का एक व्यक्ति दल के अनुशासन में बधकर अपने मित्र का खून करता है और साथ ही अपनी भावनाओ का भी खून करता है और फिर उस खूनी को किसी भी स्थान पर और किसी भी

अवस्था में शान्ति नहीं मिलती है। इसलिए इस कहानी का 'खूनी' शीर्षक उपयुक्त ही है।

बड़े भाई साहब

(मुन्शी प्रेमचन्द)

सार—मेरी आयु नौ वर्ष की थी और मेरे बड़े भाई साहब मुझ से पाँच वर्ष बड़े थे। मैं पाँचवी कक्षा में और भाई साहब नवमी कक्षा में पढ़ते थे। उनका पढ़ने में मन नहीं लगता था। एक-एक कक्षा में दो-तीन बार फेल होना तो उनके लिये साधारण सी बात थी। वे कभी-कभी मस्तिष्क को आराम देने के लिये पुस्तकों के हाशियों पर बिल्ली कुत्तों के चित्र और कभी वे सिरपैर की बातें लिख डाला करते थे। मैं खेलने में मस्त रहता था, परन्तु फिर भी कक्षा में प्रथम आता। भाई साहब मुझे खेलता देख कर मुझे डाँटते-डपटते और क्रोध में भर कर कहते "अंग्रेजी पढ़ना कठिन है, मैं इतना परिश्रम करके खेल-तमाशों से दूर रह कर भी एक-एक दर्जे में दो-दो, तीन-तीन साल रहता हूँ। तब तुम कैसे पास हो सकते हो ?" उनकी फटकार को सुनकर मैं टाइम टेबिल बनाता, परन्तु खेल की याद आते ही मैं पुस्तकों को छोड़कर खेलने के लिये चला जाता।

वार्षिक परीक्षा में भाई साहब पुनः अनुत्तीर्ण हो गये और मैं पास हो गया। उनकी इस असफलता से मेरे ऊपर से उनका आतंक कुछ कम सा हो गया। एक दिन मैं गुल्ली-डंडा खेलने में मस्त था। अचानक ही भाई साहब वहाँ आ पहुँचे। बस फिर क्या था, वे मुझ पर बरस पड़े। "तुम्हें पास होने का दिमाग हो गया है। अभिमान तो रावण का भी नहीं रहा। जब मेरे दर्जे में आकर आठ-आठ हेनरी और दर्जनों जेम्स याद करोगे और रट्टा लगाओगे तो दम खुश्क हो जायेगा। निबन्ध लिखते समय आटे-दाल का भाव मालूम हो जायेगा।" उनकी डाँट का मुझ पर कुछ प्रभाव तो पड़ा और मुझे अपने ऊपर दुःख भी हुआ, परन्तु खेलने-कूदने का आनन्द मुझसे न भुलाया गया। अपना पढ़ाई का कार्य करने के साथ-साथ खेलना भी मेरे लिए आवश्यक था।

दूसरे वर्ष भी वार्षिक परीक्षा में भाई साहब फेल हो गए। उन्हें अपनी असफलता पर रोना आ गया। मैं भी उनको रोते देखकर अपनी सफलता की

खुशी को भूल कर रोने लगा। उस समय थोडी देर के लिए मेरे मन मे यह भाव भी उत्पन्न हुआ कि यदि भाई साहब एक बार और फेल हो जाय तो मै भी उनकी कक्षा मे ही पहुँच जाऊँगा।

एक दिन मै लडकों के साथ पतग लूट रहा था। उसी समय भाई साहब वहाँ आ पहुँचे। उन्होंने मुझे इस प्रकार पतग लूटते हुए देखकर कहा— "इन बाजारी लौंडो के साथ धेले के कनकौवे के लिये दौडते हुए तुम्हे शर्म नही आती ? तुम्हे इसका भी कुछ लिहाज नही कि अब नीची जमात मे नही हो, बल्कि आठवी जमात में आ गये हो। एक जमाना था कि लोग आठवाँ दरजा पास करके नायब तहसीलदार हो जाते थे। तुम अपने दिल मे समझते हो कि मै भाई साहब से महज एक दर्जा नीचे हूं, और अब उन्हें मुझको कुछ कहने का अधिकार नही है, लेकिन यह तुम्हारी गलती है। मै तुमसे पाँच साल बडा हूँ और हमेशा रहूँगा। मुझे दुनिया का और जिन्दगी का जो तजुरबा है, तुम उसकी बराबरी नही कर सकते, चाहे तुम एम० ए० और डी० लिट् और डी० फिल० ही क्यो न हो जाओ ? तो भाई जान, यह गरूर दिल से निकाल दो कि तुम मेरे समीप आ गये हो, और अब स्वतत्र हो। मेरे देखते तुम बेराह न चलने पाओगे। अगर तुम यो न मानोगे तो मैं (थप्पड दिखाकर) इसका प्रयोग भी कर सकता हूँ। मै जानता हूँ, तुम्हे मेरी बातें जहर लग रही है।" मुझे अपनी लघुता का अनुभव हुआ और मैंने कहा, "आप ठीक फरमा रहे है।" उन्होने मुझे प्यार किया और बोले—"मै कनकौवे उडाने को मना नही करता। मेरा जी भी ललचाता है, लेकिन करूँ क्या, खुद बेराह चलूँ, तो तुम्हारी रक्षा कैसे करूँ ? यह कर्त्तव्य भी तो मेरे सिर है।"

इसी समय एक कटा हुआ कनकौवा हमारे ऊपर से गुजरा। भाई साहब ने उछल कर उसकी डोर पकड ली और बेतहाशा होस्टल की तरफ दौडे। मै पीछे-पीछे दौड रहा था।

समीक्षा

कथावस्तु—प्रस्तुत कहानी मुन्शी प्रेमचन्द जी की सर्वश्रेष्ठ कहानियो मे से एक है। इस कहानी का कथानक विद्यार्थी जीवन की प्रतिस्पर्धा, ईर्ष्या, लापरवाही, अनुशासन की जकडन तथा दो भाइयो के मनोविश्लेषण से

सम्बन्धित है। इसलिये यह कहानी जीवन के अधिक निकट और स्वाभाविक है। वस्तु को बहुत ही सुन्दर ढंग से सजाया गया है। आदि से अन्त तक एक ही प्रभाव है। इसमे कोई विशेष घटना-चक्र नही है।

पात्र चरित्र-चित्रण—प्रस्तुत कहानी चरित्र-प्रधान है। कहानी मे केवल दो ही पात्र है। दोनो ही पात्र यथार्थ जगत् के होने के कारण सजीव है। मुन्शी जी ने अपनी इस कहानी मे स्त्री पात्र के अभाव मे कला को सजीव तथा रोचक बनाने का प्रयत्न किया है। इस मे छोटे भाई का चरित्र मर्यादाशीलता, क्रीडाप्रियता, आत्म-गौरव, कर्त्तव्यपरायणता तथा सास्कृतिक श्रद्धा का चरित्र है। बडे भाई का चरित्र कुण्ठित-बुद्धि, रट्टू तोते और निराशाजन्य झुझलाहट से भरे मन मे भी बडप्पन को पालने वाले व्यक्ति का चरित्र है। चरित्रो को चित्रित करने मे मनोवैज्ञानिक तथ्यो का भी लेखक ने विशेष ध्यान रखा है। बडे भाई साहब के परीक्षा मे फेल हो जाने पर छोटा भाई सोचता है—"कही बडे भाई साहब एक साल और फेल हो जायँ, तो मै उनके बराबर हो जाऊँ।" बडे भाई साहब जब पढने बैठते है, तब पुस्तको के हाशियो पर पशु-पक्षियो के चित्र बनाते है तथा ऊटपटांग वाक्य लिखते है। ये सभी बातें सूक्ष्म मनोविश्लेषणात्मक तथ्यो पर आधारित है।

कथोपकथन—प्रस्तुत कहानी आत्म-कथात्मक शैली में लिखी गई है, इसलिए सवादो की इसमे कोई विशेष गुंजायश ही नहीं है। इसमे बडे भाई साहब के केवल लम्बे-चौडे व्याख्यान, उपदेश तथा डाँट-डपट के अतिरिक्त और कुछ भी सवाद के रूप मे नही मिलेगा। सवादो मे लम्बे होने का दोष आने पर भी वे ओजस्वी है और उनमे जीवन की निकटता है।

वातावरण—कहानीकार ने प्रस्तुत कहानी मे तत्कालीन शिक्षा-जगत् का सुन्दर चित्र अकित किया है। विद्यार्थी छात्रावास मे रह कर भी पतग उडाया करते तथा गुल्ली-डडा खेलते थे। विद्यार्थियो को इगलैंड का इतिहास बडा कठिन मालूम होता था। कम पढे-लिखे व्यक्ति भी बडे-बडे पद प्राप्त कर लेते थे। इस कहानी से यह भी स्पष्ट है कि घरो की देख-भाल तथा व्यय

आदि का प्रबन्ध बडी बूढियो के हाथ मे रहता था। छोटे भाई को उपदेश देते हुए बडे भाई साहब कहते है—"अपने हेडमास्टर साहब ही को देखो, एम० ए० है कि नही, और यहाँ के एम० ए० नही, आक्सफोर्ड के। एक हजार रुपये पाते है, लेकिन उनके घर का इन्तजाम कौन करता है ? उनकी बूढी मा।"

भाषा तथा शैली—भाषा प्रौढ, मार्मिक, साहित्यिक तथा मुहावरेदार है। स्थान-स्थान पर लोकोक्तियो का भी प्रयोग हुआ है। भाषा मे सरलता तथा व्यावहारिकता है। स्थान-स्थान पर निगरानी, तालीम, इन्तजाम तथा तम्बीह जैसे उर्दू शब्दो का प्रयोग हुआ है। कई स्थानो पर भाषा मुखर तथा व्यग्यात्मक हो उठी है। कहानी आत्म-कथात्मक शैली मे लिखी गई है। कही-कही पर व्यग्य मे कहे हुए वाक्यो मे आलोचनात्मक-शैली हो गई है।

उद्देश्य—मुन्शी प्रेमचन्दजी ने अपनी इस कहानी के द्वारा विद्यार्थियो को यह उपदेश दिया है कि उन्हें बडे भाई साहब की भाँति केवल रट्टू तोता ही नही बनना चाहिए। रटने से शिक्षा का विकास सम्भव नही है। शिक्षा के विकास के लिए पुस्तको को पढने के अतिरिक्त समय पर खेलना-कूदना भी अति आवश्यक है। लेखक ने इसमे स्पष्ट किया है कि बडे भाई साहब बार-बार इसी लिये फेल होते थे कि वे हर समय पुस्तको से चिपके रहते थे, खेलते-कूदते नही थे।

अन्त मे हम यह कह सकते है कि प्रस्तुत कहानी कला की दृष्टि से एक सफल कहानी है।

सम्राट् का स्वत्व (श्री राय कृष्णदास)

सार—सम्राट् के अनुज कुमार प्रतापवर्द्धन के मन मे एक दिन अचानक ही यह भाव उत्पन्न हो गया कि हम दोनो सगे भाई है, एक ही माता-पिता की सतान है, एक ही स्तन के दूध से पले है तथा एक ही मिट्टी मे खेले-कूदे है, परन्तु इस पर भी वह सम्राट् है और मैं कुछ नही। इस भाव ने उसे विद्रोही बना दिया। वह उद्यान मे जाकर इस बात पर विचार करने लगा। उसके मन मे महाराज का विरोध करने तथा शासन हथियाने की भावना पैदा

हुई। महाराज तथा महारानी दोनों ही उसे बहुत प्रेम करते थे। सन्ध्या समय जब वे सैर करने जाने लगे और प्रतापवर्द्धन को वहाँ नहीं पाया, तो स्वयं महारानी जी उसे ढूँढने के लिए उद्यान में गई। वहाँ पर कुमार को उदास तथा परेशान पाकर वे बहुत दुखी हुई। उनके हठ करने पर प्रताप ने उन्हें अपने मन के भाव नहीं बताये। महारानी जाकर महाराज को साथ लिवा लाई।

महाराज के बहुत कहने पर प्रताप ने उन्हे अपने मन के भाव बता दिए। महाराज ने गंभीर स्वर मे कहा—"तो लो तुम्ही शासन चलाओ।" यह कह कर उन्होंने अपना खड्ग प्रताप के सामने बढ़ा दिया। प्रताप ने स्वप्न मे भी इस स्थिति की कल्पना नही की थी। वह किंकर्तव्य विमूढ हो गया। महाराज साग्रह उसके हाथ मे खड्ग देने लगे और वह पैरो मे पड़ने के सिवाय कुछ न कर सका। महाराज ने उसे छाती से लगाकर समझाया। राजमहिषी मुस्कराती हुई बोली, "नाथ इसे लक्ष्मी—नहीं-नहीं गृहलक्ष्मी चाहिए।" कुमार लज्जित हो गया। फिर वह हँसता हुआ सम्राट् तथा सम्राज्ञी दोनो को संबोधित कर कहने लगा—

"क्या समय बिता के ही घूमने चलियेगा ?"

समीक्षा

कथावस्तु—प्रस्तुत कहानी लेखक की कल्पना-प्रसूत एक सुन्दर मौलिक कृति है। इसमे सम्राट् के स्वत्व की ईर्ष्या से विचलित हो उठने वाले एक भोले भाई की कहानी है। इसमे कोई विशेष जिज्ञासा, प्रभाव तथा कौतूहल नही है। कथानक सर्वथा साधारण है। इसमे किसी विशेष घटना या किसी विशेष परिस्थिति का चित्रण नही हुआ है।

पात्र चरित्र-चित्रण—प्रस्तुत कहानी मे प्रताप, महाराज तथा महारानी तीन पात्र है। इन सभी पात्रो की चारित्रिक विशेषताओ मे अपना-अपना महत्त्व है। प्रताप के हृदय का अन्तर्द्वन्द्व बहुत ही सुन्दर ढग से चित्रित किया गया है। प्रताप की मानसिक व्याकुलता के चित्रण का एक उदाहरण—"एक प्रहार से उसका अन्त होता है।" परन्तु दूसरे ही क्षण वह सोचता है—"यह

तो चोरो का काम है, हत्यारो की वृत्ति है।" महारानी का चरित्र एक आदर्श भाभी का चरित्र है। उसमे देवर के प्रति वात्सल्य तथा करुणा भाव दर्शनीय है। भाभी का हृदय स्वच्छ दर्पण के समान है। बडे भाई (सम्राट्) का उत्तरदायित्वपूर्ण चरित्र त्याग, स्नेह तथा बौद्धिक योग्यता का एक आदर्श उदाहरण है। जब प्रताप को वे अधिकार-प्राप्ति के लिए व्याकुल देखते है, तो वे बिना किसी हिचकिचाहट के शासन का अधिकार उसे देने के लिए तैयार हो जाते हैं। उनके इस महान् त्याग को देखकर प्रताप लज्जित हो उठता है और वह उनके चरणो पर गिरकर अपनी नादानी पर पश्चात्ताप करता है।

कथोपकथन—सवादो की दृष्टि से यह कहानी लेखक की अन्य सभी कहानियो से श्रेष्ठ है। सवाद सक्षिप्त, रोचक, सजीव तथा कौतूहलपूर्ण हैं। इनसे भावो तथा चारित्रिक विशेषताओ की अभिव्यक्ति हुई है। प्रताप के सवादो से उसकी ईर्ष्या, भावुकता तथा वीरता का पता चलता है। महारानी के सवादो मे उनके हृदय मे देवर के प्रति वात्सल्य का चित्रण हुआ है। सम्राट् के सवादो मे गाम्भीर्य, स्नेह, कर्त्तव्यनिष्ठा तथा त्याग का समावेश है। रायसाहब की प्रस्तुत कहानी का महत्त्व ही इसके सवादो की श्रेष्ठता तथा सफलता के कारण है।

देशकाल तथा वातावरण—प्रस्तुत कहानी एक चरित्रप्रधान कहानी है और चरित्रप्रधान कहानियो मे देशकाल तथा वातावरण के चित्रण का अवसर प्राप्त नही होता है। परन्तु इस कहानी मे हम यह नही कह सकते कि वातावरण का सर्वथा ही अभाव है। इसमे प्राचीन भारतीय राज-परिवारो के रहन-सहन के सुन्दर ढग को चित्रित किया गया है। इसमे लेखक ने यह अकित किया है कि प्राचीन भारतवर्ष मे राजसत्ता का अधिकारी ज्येष्ठ पुत्र होता था और उसके अनुज के हृदय मे उसके इस अधिकार के विरुद्ध विद्रोह की भावना होती थी।

भाषा तथा शैली—भाषा काव्यमयी है – "शात हो, प्रताप! मेरा हृदय फटा जाता है। बोलो, बताओ, क्या बात है? चलो तुम्हारा उनका मेल करा दूँ।" भाषा सरल तथा व्यावहारिक है।

उद्देश्य—आदर्शवादी कहानियो मे कोई न कोई महान् उद्देश्य होता ही है। इसमे लेखक ने शासको को सदेश दिया है—"ये अधिकार सम्पत्ति के, विलासिता के, स्वेच्छाचारिता के द्योतक नही।" साथ ही पारस्परिक एकता का सदेश भी दिया गया है—"कच्चे सूत हाथी को बाँध लेते हैं, किन्तु कब ? जब एक मे मिलकर रस्सी बन जाते हैं तब।"

प्रस्तुत कहानी मे कुमार प्रतापवर्द्धन अपने अग्रज (सम्राट्) का स्वत्व देखकर उनसे ईर्ष्या करता है और सम्राट् के स्वत्व को प्राप्त करने के लिए ही उसके हृदय मे भाई के विरुद्ध विद्रोह करने का भाव जागृत होता है और महाराज 'सम्राट् के स्वत्व' को अपने अनुज के लिए त्यागने को तैयार हो जाते है। इस प्रकार समस्त कहानी 'सम्राट् के स्वत्व' को लेकर ही चली है, इसलिए इसका शीर्षक 'सम्राट् का स्वत्व' उचित ही है।

प्रेम तरु

(श्री सुदर्शन)

सार—गुरुदासपुर के जिले में कडपाला नामक ग्राम में एक जयचन्द नाम का निर्धन ब्राह्मण रहता था। उसके घर मे उसकी पत्नी सुलक्खी देवी के अतिरिक्त और कोई नही था। सतान की ओर से भी वे पूर्ण निराश हो गए थे। निराश और निर्धन दम्पति को अपना जीवन लम्बी अँधेरी रात्रि के समान मालूम होता था।

एक दिन उनके आगन मे बेरी का एक नवजात बच्चे सा पौदा उग आया। जयचन्द ने कहा—"भगवान् ने हमारे घर बूटा लगाया है, बडा सुन्दर है।" उसकी पत्नी भी इस पौदे को देखकर बहुत प्रसन्न हुई। वह बोली—"मै इसे सदा सींचा करूँगी।" सुलक्खी उसी समय जल भरकर लाई और उन्होंने प्रसन्न होकर उसको सींचा। उस समय उन्हें ऐसा मालूम हुआ कि पौदा जल पीकर उनसे कह रहा है—"मै तुम्हारा बेटा हूँ।" सुलक्खी उस पौदे को अपने एकमात्र पुत्र की भाँति पालने लगी।

जब प्रेमतरु चार वर्ष का हो गया, तो उस पर बौर आया। उस समय सुलक्खी को ऐसा लगा मानो उसकी पुत्री ने आभूषण पहने है और जयचन्द को ऐसा लगा मानो उसका पुत्र पहली बार स्वर्ण मोहरें कमाकर लाया है।

प्रथम बार फल लगने पर दोनो ने सारे गाँव को बुलाकर रतजगा करने का निश्चय किया। वेर पके। पहले दिन के उतरे हुए बेरो को टोकरी मे रखकर सुलक्खी सब्धज के साथ उन्हें गांव मे बाटने के लिए चल दी। जयचन्द ने अपने लिए दस वेर अलग निकाल कर रख लिए थे। गॉव वालो को वे बेर बहुत स्वादिप्ट लगे। उन्होने जब जयचन्द के पास आकर उनके बेरो की प्रशसा की, तो पडित जी ने अपने दस वेर भी निकाल कर उन्हे ही दे दिये। ब्राह्मणी प्रसन्नतापूर्वक बेर बाँट कर लौटी।

रात्रि को रतजगा हुआ। रतजगे के पश्चात् पडित जयचन्द को तेज ज्वर हो गया और उसी से उनका स्वर्गवास हो गया। प्रेम तरु का एक भी बेर वे न खा सके। विधवा सुलक्खी लोक-सेवा मे लीन हो गई। लोग उसको देवी कह कर पुकारते थे।

सुलक्खी बेरी की सेवा निरन्तर करती रही। जब वेर उतरते तो सारे ग्राम मे बाँटे जाते, परन्तु सुलक्खी स्वय एक भी वेर नही खाती। भाई के बहुत आग्रह करने पर सुलक्खी ने उससे कहा "वह खाते तो मै भी खाती, उन्होने नही खाए तो मै भी नही खाऊँगी।" व्यापारियो ने ब्राह्मणी से बहुत कहा कि वह वेर बेच दे। उन्होने उसके पाँच सौ रुपये लगा भी दिए परन्तु ब्राह्मणी ने यही उत्तर दिया, "मै ब्राह्मणी हूँ, कुँजडिन नही, जो अपनी बेरी के वेर बेचूँ।

इसी प्रकार कई वर्ष व्यतीत हो गए। एक बार सुलक्खी सारे गाँव मे बेर बाँट कर घर आकर बैठी ही थी कि इसी समय हाडीराम वहाँ आ पहुँचा। उसने उससे अपने हिस्से के वेर माँगे। ब्राह्मणी ने उत्तर दिया—"तेरे घर दो बार बेर लेकर गई तू मिला नही, अगले वर्ष दुगने ले लेना। अब दूसरो को बाँट आई हूँ।" असभ्य हाडीराम नहीं माना और उसने उससे कहा, "तू दूसरो को देने वाली कौन होती है?" यह सुनकर सुलक्खी ने क्रोध में भरकर कहा—"मेरी बेरी है, नही लिए तो नही सही, जो कुछ करना हो कर लो।" यह सुनकर हाडीराम दात पीसता हुआ घर चला गया।

उपरोक्त घटना के तीन दिन पश्चात् सुलक्खी की अनुपस्थिति मे हाडीराम ने बेरी को काट डाला। जब सुलक्खी को इसका पता चला, तो

वह शीघ्र ही घर आई। बेरी को कटा हुआ देखकर वह फूट-फूटकर रोने लगी। रोते हुए उसने कहा—"तूने मुझे क्यों न बुलाया बच्चा! तेरे बाप ने कहा था उसकी रक्षा करना। मैं तेरी रक्षा न कर सकी। चल दोनों एक साथ चलें और वहाँ तीनों मिलकर रहेंगे।" यह कह कर उसने बेरी को बटोरा, चिता बनाकर उसमें घी डाला और फिर आग लगा दी। इसके पश्चात् वह जलती हुई चिता में कूद कर भस्म हो गई। जब चिता जल रही थी तो उसमें से आवाज आई—"मैं मरते समय वसीयत करती हूँ कि मेरे कुल में लोग भविष्य में दान न लें।"

सुलक्खी की मृत्यु से सारा गाँव शोक में डूब गया। सब लोग फूट-फूट कर रोए। उन्होंने हाडीराम को बहुत ढूँढा, परन्तु उसका कहीं भी कुछ पता नहीं लगा। गाँव वालों ने सुलक्खी की समाधि बनाई और अब लगभग डेढ़ सौ वर्ष बीत जाने पर भी उस समाधि पर मेला लगता है।

समीक्षा

कथावस्तु—सुदर्शन जी की कहानी 'प्रेमतरु' का हिन्दी की कहानियों में उच्च स्थान है। इसकी कथावस्तु बहुत करुण, हृदय-द्रावक, मार्मिक कौतूहलपूर्ण, तथा मनोरंजन कराने वाली है। पाठक की आदि से अन्त तक कहानी के प्रति वही श्रद्धा बनी रहती है। कहानी में दिया गया करुण वातावरण इसकी संवेदना को बढ़ाता है। इस कहानी की कथावस्तु में एक विशेषता यह है कि एक निःसन्तान दम्पत्ति जड़ पौधे में अपनी ममता उँडेल कर उसे भी चेतन रूप दे डालते हैं। उनमें आत्म-विस्तार, जन-सेवा और मोह-ममता का भाव चरम-सीमा पर पहुँच जाता है।

पात्र चरित्र-चित्रण—'प्रेमतरु' सुदर्शन जी की चरित्र-प्रधान कहानी है। इसमें तीन प्रधान चरित्र हैं—सुलक्खी, जयचन्द तथा हाडीराम। इन तीनों पात्रों के द्वारा ही कहानी का विकास हुआ है। तीनों पात्रों की निजी चारित्रिक विशेषतायें हैं। ब्राह्मण दम्पति सुलक्खी तथा जयचन्द का बेरी के पौधे में सन्तान-लालसा, सन्तान-प्रेम तथा सन्तान-कामना का साधारणीकरण करते हैं जो निस्सन्तान दम्पत्तियों की अन्तःप्रकृति का विशद एवं स्पष्ट चित्र

है। हाडीराम एक हठी जाट है। वह व्यर्थ में ही वैर, द्वेष, और बिना सोचे-विचारे कार्य करने वाला है। कहानी की नायिका सुलक्खी के चरित्र के विषय मे स्वयं लेखक ने लिखा है—देवी सुलक्खी ने कोई सग्राम नही जीता, न कोई राज्य स्थापित किया, न कोई उसमे विशेष आत्म-शक्ति थी जो लोगो के दिलो को पकड लेती, न उसने लोगो के लिये बलिदान किया। वह एक गरीब सीधी-सादी, अनपढ, परन्तु सतवन्ती ब्राह्मण-कन्या थी, जो एक मूर्ख और हठी जाट के क्रोध का शिकार हो गई। उसने अपने पति से जो प्रण किया था, उस पर वह ध्रुव के समान अटल रही। इसमें सदेह नही, वह सधारण ब्राह्मण से भी गरीब थी, परन्तु पतिव्रत धर्म की दौलत से मालामाल थी। वह मर्यादा की पुजारिन थी।

कथोपकथन—सवादो के द्वारा पात्रो की चारित्रिक विशेषताओ का उद्घाटन हुआ है। सवाद सक्षिप्त, स्वाभाविक तथा पात्रो की बौद्धिक योग्यता के अनुकूल है। पति-पत्नी के प्रेम-पूर्ण सवाद बहुत ही मार्मिक एव हृदय-स्पर्शी है। जयचन्द अपनी पत्नी सुलक्खी से कहता है—"मै डरता हूँ कि कही मुझे भूल न जाओ। बडी आयु मे बालक पाकर स्त्रियाँ पति को उपेक्षा की दृष्टि से देखने लगती है।" सुलक्खी इसका कितना मार्मिक उत्तर देती है—चलो हटो ! तुम्हे तो अभी से डाह होने लगी।" ग्रामीणो के हृदय की निश्छलता अभिव्यक्त करने वाले कथोपकथन भी बहुत ही स्वाभाविक है।

देशकाल तथा वातावरण—प्रस्तुत कहानी की वस्तु का सम्बन्ध एक गाँव से है। इसमे सुदर्शन जी ने गाँव के वातावरण की रक्षा करने का पूर्ण प्रयत्न किया है। ग्रामीणो के पारस्परिक प्रेम तथा सहानुभूति का अच्छा दिग्दर्शन कराया गया है। इसमे लेखक ने उजड्ड तथा हठी ग्रामीणो की मूर्खता, भाई का बहिन के प्रति स्वाभाविक प्रेम आदि ग्रामीण जीवन के विविध रूपो को कहानी मे बहुत कुशलता से अकित किया है।

भाषा तथा शैली—भाषा स्वाभाविक, मधुर, सरल, सुबोध, पात्रानुकूल तथा मुहावरेदार है। लेखक ने इस कहानी को अन्य-पुरुषप्रधान शैली मे लिखा है। शैली मे चित्र प्रस्तुत करने तथा पाठको के हृदय को झकझोर देने की पूरी-पूरी सामर्थ्य है। शैली अत्यन्त सरल, सशक्त तथा समर्थ है।

उद्देश्य—प्राय समाज मे सतानहीन नारियाँ उपेक्षा की दृष्टि से देखी जाती है। परन्तु लेखक ने प्रस्तुत कहानी मे भिन्न वातावरण उपस्थित करके समाज को सावधान होने का सन्देश दिया है। सुलक्खी के अन्तिम शब्द ब्राह्मणो को दान से विरत होने का सदेश देते है।

प्रस्तुत कहानी मे प्रत्येक घटना 'प्रेमतरु' (बेरी के पौदे) से सम्बन्धित है, इसलिये इसका शीर्षक 'प्रेमतरु' सार्थक है।

प्रायश्चित्त

(श्री भगवतीचरण वर्मा)

सार—रामू की नव विवाहिता पत्नी सास की बहुत प्यारी थी। घर का कार्य-भार रामू की मा ने उसके सुपुर्द कर दिया था और स्वय पूजा-पाठ मे लगी रहती। कबरी बिल्ली को रामू की बहू से जितना प्रेम था, उसे उतनी ही बिल्ली से घृणा थी। कबरी अवसर मिलते ही दूध-घी साफ कर जाती थी, इतना ही नहीं भोजन खाना भी रामू की बहू के लिये कठिन हो गया था। रामू की बहू रामू के लिये कटोरे मे रबडी रखती, किन्तु रामू के आने तक वह बिल्ली के पेट मे पहुँच जाती थी। बिल्ली को फाँसने का कठघरा लाया गया, उनमे अनेक प्रकार के व्यञ्जन रखे गये। किन्तु बिल्ली को पकडा न जा सका। तग आकर रामू की बहू ने निश्चय कर लिया था कि घर में वह रहेगी या बिल्ली।

एक दिन रामू की बहू ने रामू के लिये खीर बनाई। उसमे अनेक प्रकार की मेवा डालीं और खीर तैयार करके उसे ताक पर रख दिया। बिल्ली आई और खीर खा गई। फूल का कटोरा गिरने के कारण टूट गया। रामू की बहू ने जब यह देखा, तो उसे बहुत क्रोध आया। वह उसे मार डालने की युक्ति सोचती रही। प्रात. उठकर उसने बिल्ली के आने के पूर्व एक कटोरे मे दरवाजे पर दूध रख दिया। बिल्ली आई और दूध पीने लगी। रामू की बहू को अवसर मिल गया। उसने पाटा उठाया और बिल्ली पर दे मारा। कबरी एक दम उलट गई। उसी समय महरी, मिसरानी और उसकी सास भी वहाँ आ पहुँचे। सबने बिल्ली की हत्या का बहुत बडा अपराध बताया।

रामू की मा के कहने पर पडित जी को बुलाया गया। पण्डित परमसुख को जब यह समाचार मिला तो वे पूजा छोड़कर उठ खडे हुए और पडिताइन ने भोजन बनाने को मना कर दिया। क्योंकि प्रायश्चित्त होने पर पकवान मिलने की सम्भावना थी। पडित जी पहुँचे। कोरम पूरा हुआ। सास और पडोस की कई स्त्रियाँ बैठी। किसनू की मा के पूछने पर पडित जी ने समय ज्ञात किया और पन्ने उलट कर मुँह पर कुछ गम्भीरता बनाकर घोर कुम्भी-पाक नरक का विधान बताया। रामू की मा के पूछने पर पडित जी ने इसका प्रायश्चित सोने की बिल्ली का दान और इक्कीस दिन का पाठ बताया और बताया कि शास्त्रो मे तो लिखा है कि बिल्ली के बराबर वजन की बिल्ली बनवानी चाहिए। उतनी तो मनुष्य की श्रद्धा नही रही किन्तु फिर भी कम से कम इक्कीस तोले की होनी चाहिये। रामू की मा के कुछ कम सोने की बनवाने की कहने पर पण्डित जी ने ग्यारह तोले की बतायी और पूजा-पाठ के लिये भी लगभग दस मन गेहूँ, एक-एक मन चावल, दाल, तिल, पाच-पाच मन जौ-चना, चार पसेरी घी और एक मन भर नमक बताया। रामू की माँ के इस सामान को अधिक बताने पर बिल्ली की हत्या को बहुत बड़ा अधर्म बताया। सभी ने पण्डित जी की बात का समर्थन किया। पडित जी उठकर जाने लगे, तो किसनू की मा ने उनके पैर पकड़ लिये और पूछा कि और क्या चाहिये। उन्होने इक्कीस दिन के पाठ के इक्कीस रुपये और पाँच ब्राह्मणो के भोजन को भी स्वय खाने के लिये कहा। सबने इसका समर्थन किया और पडित जी ने ग्यारह तोले सोना बिल्ली बनवाने के लिए माँगा और पूजा का प्रबन्ध करने के लिये कह ही रहे थे कि इसी समय महरी ने आकर कहा, माँ जी ! बिल्ली तो उठकर भाग गई।

समीक्षा

कथावस्तु—कथानक का सम्बन्ध हमारे दैनिक जीवन की घटनाओ से है। लेखक ने अपनी इस कहानी मे जीवन की एक साधारण सी घटना को कल्पना के रग मे रगकर सुन्दर कलात्मक मौलिक रूप प्रदान किया है। कहानी मे आदि से अन्त तक रोचकता है और पाठको को अपनी ओर आकर्षित करने की शक्ति है। आरम्भ में ही लेखक ने कबरी बिल्ली का

रामू की पत्नी से प्रेम तथा रामू की पत्नी के हृदय मे बिल्ली के प्रति घृणा बताकर कथानक को कौतूहलपूर्ण बना दिया है। पाठक इसी कौतूहल मे डूबा हुआ होता है कि बिल्ली की हत्या के प्रायश्चित्त के परिणाम को जानने के लिए वह उत्सुक हो उठता है। अपनी अन्य कहानियो की भाँति लेखक ने इस कहानी को भी वर्णन मे ही प्रारम्भ किया है। आरम्भ बिल्ली और रामू की बहू की घटनाओ मे हुआ है। इन दोनो के सघर्ष मे ही कथानक का विकास हुआ है। बिल्ली की मृत्यु के पश्चात् जब प्रायश्चित्त का विधान होता है, उस समय कथानक चरम-सीमा पर पहुँच जाता है। बिल्ली के उठकर भाग जाने से अन्त बहुत आकर्षक तथा मनोरजक बन गया है।

पात्र चरित्र-चित्रण—प्रस्तुत कहानी मे तीन मुख्य पात्र है—रामू की माँ, रामू की बहू तथा प० परमसुख। मेहरी, मिसरानी आदि कई गौण पात्र भी हैं। सभी पात्र साधारण स्थिति के है। पात्रो का चरित्र-चित्रण यथार्थवादी धरातल पर हुआ है। रामू की माँ का चरित्र एक प्राचीन रूढियो मे दृढ विश्वास रखने वाली सास का चरित्र है। प० परमसुख के चरित्र मे एक ऐसे ब्राह्मण के दर्शन होते है, जो अपनी स्वार्थ-सिद्धि के लिये धार्मिक पुस्तकों की ओट लेकर भोली-भाली जनता को मृत्यु के पश्चात् भगवान् के द्वारा दिये गये दण्ड का भय दिखाकर उन्हे प्रायश्चित्त करने के लिये विवश कर देते है और फिर उनको ठगते है। इन पडितो की दशा ठीक सोलहवी शताब्दी मे यूरोप मे पोप की दशा से मेल खाती है, जो अपनी स्वार्थ-सिद्धि के लिये बडे-बडे अपराधो के क्षमा-पत्र बेच-बेच कर लोगो से रुपया ऐंठता था।

कथोपकथन—सवाद सक्षिप्त, सरल तथा स्वाभाविक है। सवादो से ही पात्रो के चरित्र तथा कथावस्तु का विकास हुआ है। पडित जी के सवाद उनके ढोंग की कलई खोलते हैं। रामू की मा तथा अन्य स्त्रियो के सवादो से उनकी रूढिवादिता तथा धर्मभीरुता का परिचय मिलता है।

देशकाल तथा वातावरण—बिल्ली के दाव-पेंच, रामू की बहू की खीझ और घात का सुन्दर वातावरण प्रस्तुत किया गया है। प्रायश्चित्त की तैयारी का वातावरण और भी अच्छा बन पडा है। कहानी मे लेखक ने यह बात भी स्पष्ट रूप से चित्रित की है कि आज भी भारतवर्ष में ऐसे लोग पडित,

ज्योतिषी तथा किसी न किसी रूप मे बहुत सख्या में है जो समाज को धर्म की ओट लेकर ठगते फिरते है। यहाँ पर अभी ऐसी स्त्रियो का भी अभाव नही है जो इन ठगो के चक्कर मे पडकर अपने घरो को लुटवाती है। कहानी मे समस्त वातावरण सरस तथा हास्य-सृष्टि मे सहायक है।

भाषा तथा शैली—भाषा सरल, स्वाभाविक, पात्रानुकूल तथा मुहावरेदार है। उसमे उर्दू तथा अग्रेजी के शब्दो का प्रयोग हुआ है। प्रस्तुत कहानी अन्यपुरुष-प्रधान, व्यग्यमयी, उपहासात्मक शैली मे लिखी गई है।

उद्देश्य—प्रस्तुत कहानी मे लेखक का उद्देश्य ढोंगी ब्राह्मणो का भडा फोडकर पाठको के हृदय मे रूढियो के प्रति विद्रोह उत्पन्न करना है। इसके साथ-साथ 'मनोरजन' भी कहानीकार का उद्देश्य रहा है।

उसकी माँ

(पाण्डेय बेचन शर्मा 'उग्र')

सार—रामनाथ एक जमीदार के यहाँ मैनेजर था। उसके लाल नाम का एक पुत्र था। जिस समय रामनाथ की मृत्यु हुई, वह जमीदार के पास अपने कुछ हजार रुपये छोड गया। इन्ही रुपयो से रामनाथ की स्त्री जानकी तथा उसके पुत्र लाल का काम चल रहा था। लाल कालेज मे पढता था। वह स्वतत्र विचारो का नवयुवक था। उसे परतन्त्रता लेशमात्र भी सहन नही थी। वह क्रातिकारी विचारो का था। उसके क्रातिकारी दल मे उसके अनेक नवयुवक साथी सम्मिलित थे। लाल के घर पर ही उनकी सभाये हुआ करती थी।

एक दिन जमीदार साहब दोपहर बाद अपने पुस्तकालय मे थे कि पुलिसपति उनसे मिलने के लिए आए। पुलिसपति ने जमीदार साहब को एक चित्र दिखाते हुए पूछा—"आप पहचानते हैं इसको ?" उन्होने बताया कि उस लडके का नाम लाल है और इनके सामने वाले घर मे ही रहता है, साथ ही जमीदार साहब ने उसके परिवार का पूर्ण-परिचय पुलिस अधिकारी को दे दिया। अधिकारी ने जाते समय जमीदार साहब को लाल से सावधान रहने के लिए कहा।

जमींदार ने जानकी को बुलाकर समझाया। इसी समय लाल भी वहाँ आ पहुँचा। लाल ने उनसे स्पष्ट शब्दों मे कह दिया—"चाचा जी! मैं किसी षड्यंत्र मे नही। हाँ मेरे विचार स्वतन्त्र अवश्य हैं। मै जरूरत बे जरूरत जिस-तिस के आगे उबल अवश्य उठता हूँ, देश की दुरवस्था पर उबल उठता हूँ, इस पशु-हृदया परतन्त्रता पर। ······ मेरी यह कल्पना है कि जो व्यक्ति, समाज या राष्ट्र किसी अन्य व्यक्ति, समाज या राष्ट्र के नाश पर जीता हो—उसका सर्वनाश हो जाय।" वह फिर और अधिक उत्तेजित होकर कहता है—"मेरी कल्पना यह है कि ·····ऐसे दुष्ट, नाशक, व्यक्ति, समाज या राष्ट्र के [illegible] मे मेरा भी हाथ हो। मैं देश की स्वतन्त्रता के लिए षड्यन्त्र, हत्या, विद्रोह [illegible] कुछ करने को तैयार हूँ।"

जमींदार साहब ने एक दिन लाल की माँ [illegible] बुलाकर उससे लाल के साथियो के विषय मे पूछा। जानकी ने उत्तर दिया [illegible] "मैं क्या जानूँ बाबू? मगर वे सभी मेरे लाल ही की तरह प्यारे मुझे दीखते [illegible]। सब लापरवाह। वे इतना हँसते, गाते और हो-हल्ला मचाते हैं कि मैं [illegible] हो जाती हूँ। वे लाल की बैठक मे बैठते है। कभी-कभी जब मैं उन्हे कुछ [illegible] खिलाने [illegible] जाती हूँ तब वे प्रेम से मुझे 'मा' कहते है। मेरी छाती फूल [illegible] है मानो वे मेरे ही बच्चे है। एक लड़का उनमे बहुत ही हँसोड़ है। उसी [illegible] एक दिन जब मै हलवा परस रही थी मेरे मुँह की ओर देखकर कहा [illegible] "मा! तू ठीक भारत माता सी लगती है।"

जमींदार साहब चार-पाँच दिन के पश्चात् जमींदारी का [illegible] लौटे तो उन्हे मालूम हुआ कि लाल और उसके साथियो के घरो की [illegible] हुई है। लाल के घर मे दो पिस्तौल तथा कई सरकार के विरोधी पत्र [illegible] हुए हैं। लाल और उसके साथी कारावास मे पड़े हैं। जानकी [illegible] उनके लिए हलुवा तथा पराँठे बनाकर ले जाती है। एक वर्ष तक [illegible] मुकदमा चला और उच्च न्यायालय ने लाल और उसके तीन अन्य [illegible] को मृत्यु दण्ड तथा अन्य दस साथियों को लम्बी-लम्बी सजायें हुईं।

एक दिन जानकी एक पत्र लेकर जमींदार साहब के पास आई। यह लाल का पत्र था। उस पत्र में लिखा था—"माँ! जिस दिन तुम्हें यह पत्र

मिलेगा, उसके ठीक सवेरे मैं, बाल अरुण के किरण-पथ पर चढकर उस ओर चला जाऊँगा। मैं, बँगड, वे सभी तेरे इतजार मे रहेंगे। तुम भी वहा आना।"

पत्र पढकर जमीदार साहब और उसकी पत्नी तो घबरा गए, परन्तु जानकी पत्र लेकर मौन भाव से वहाँ से चली गई। अधेरा होने पर जमीदार साहब ने "माँ—" की आवाज सुनी। नौकर ने आकर उन्हें बताया कि जानकी का शरीरात हो गया है।

समीक्षा

कथावस्तु—श्री उग्र जी की कहानी 'उसकी माँ' मे राष्ट्रीयता तथा देश-भक्ति की छाप है। यह एक करुण कहानी है। यद्यपि कथानक में कौतूहल नही है, आरम्भ से ही लाल के कार्य और उसकी भावनाएँ अन्त की ओर सकेत करने लगती है, परन्तु फिर भी इसमे जानकी (माँ) की मृत्यु अवश्य ही एक रहस्य बन जाता है। छात्र-जीवन की मस्ती और अल्हड़पन का वर्णन तथा भारत के चित्र की कल्पना मौलिक ही नहीं, बल्कि रोचक भी है।

पात्र-चरित्र-चित्रण—पात्र चरित्र-चित्रण कहानी का एक महत्त्वपूर्ण तत्त्व है। प्रस्तुत कहानी इस तत्त्व की दृष्टि से बहुत ही सफल है। इसमें लाल, उसकी माँ तथा जमीदार केवल तीन मुख्य पात्र हैं। पुलिसपति गौण पात्र हैं। बगड आदि क्रातिकारी दल के सदस्यो के चरित्र पर माँ के मुख से लेखक ने अवश्य प्रकाश डलवाया है, परन्तु यथार्थ रूप में कहानी मे आदि से अन्त तक कही पर भी उन मे से किसी के दर्शन नही होते है। ...मीदार साहब के अन्तर्द्वन्द्वप्रधान चरित्र की अपनी पृथक् समवेदना है। ...समे जानकी के प्रति मोह-ममता, करुणा है तो दूसरी ओर अपने लिए ...य, आशका और गम्भीरता भी है। लाल एक निर्भय, वीर, साहसी तथा ...भक्त नवयुवक है। जानकी कहानी की नायिका तथा शक्तिशाली ...रित्र है। वह भोली-भाली तथा वात्सल्य रस से ओत-प्रोत है। उसकी ...ी चारित्रिक विशेषता का जमीदार पर भी बहुत प्रभाव पडता है।

कथोपकथन—कहानी मे सवाद सजीव, सक्षिप्त, सरल, स्वाभाविक, पात्रानुकूल तथा प्रभावशाली है। पात्रो के चरित्र का विकास सवादो से ही हुआ है।

देशकाल तथा वातावरण—प्रस्तुत कहानी मे राष्ट्र-उत्थान की वेला में सन् १९३० ई० तक की भारतीय परिस्थितियो का सुन्दर साकेतिक परिचय दिया गया है। सरकारी वकीलो, जमीदारो आदि मे देश-सेवा की उपेक्षा तथा जन-साधारण मे विद्यमान देश-भक्ति की मस्ती की एक सुन्दर झलक यहाँ भी विद्यमान है।

भाषा तथा शैली—प्रस्तुत कहानी की भाषा सरल, व्यावहारिक, सजीव, प्रभावशाली, आकर्षक तथा सुन्दर है। उपमायें अति ही सुन्दर बन पडी है। भाषा मे कही-कही पर शब्द-विन्यास का दोष अवश्य आ गया है। आत्मकथात्मक शैली में जो एक स्पष्टता तथा यथार्थता होती है वह जमीदार की वाणी मे सुरक्षित है।

उद्देश्य—इसका उद्देश्य है राष्ट्रीय भावनाओ का जागरण। लाल तथा उसके साथियो और वृद्धा जानकी का बलिदान राष्ट्र-चेतना को जागृत करता है।

शरणागत

(श्री वृन्दावनलाल वर्मा)

सार—रज्जब कसाई अपना व्यवसाय करके वापिस ललितपुर आ रहा था। साथ मे उसकी पत्नी थी। उसे ज्वर हो गया था। उसने मार्ग में ही विश्राम करना उचित समझा। उसके कसाई होने के कारण गाव मे उसे किसी ने आश्रय नही दिया। अन्त मे रज्जब गाव के एक ठाकुर साहब के यहा पहुँचा। उसके अनुनय-विनय करने और "राजा" शब्द से सम्बोधित करने के कारण उसे वहाँ प्रात काल तक के लिए आश्रय मिल गया। इसके पश्चात् उन्होंने उसका नाम और गाँव पूछा। बताने के पश्चात् रज्जब और उसकी पत्नी सो गये। उसी समय गाँव के कुछ व्यक्ति आये और उन्होंने ठाकुर साहब से कहा—"एक कसाई कुछ रुपए लिये हुए यहाँ आया

है। कल तक तलवार के बल से हम उससे रुपया प्राप्त कर लेंगे।" ठाकुर साहब ने कसाई का धन छूना बुरा बताया और फिर उन्हे बाहर से ही विदा करके सो गये।

रज्जब की पत्नी का ज्वर तो उतर गया, किन्तु उसमे इतनी शक्ति न थी कि वह चल सके, इसलिए वे प्रात काल भी वहाँ से न जा सके। गाँव वालो को पता न लग जाये, इस भय से ठाकुर साहिब ने उन्हे वहाँ से निकाल दिया। वहाँ से आने के पश्चात् रज्जब ने एक गाडी किराये पर ली। उसकी पत्नी को फिर ज्वर हो गया। ज्वर के तेज हो जाने पर मूर्छित सी अवस्था मे ही रज्जब ने उसे गाड़ी मे डाला और गाडीवान से उसने तेज चलने को कहा।

पाँच छ मील चलने के पश्चात् सन्ध्या हो गई। रज्जब की गाडी धीरे-धीरे चल रही थी। रज्जब ने जो गाडी के व्यर्थ रुपये दिये उस पर उसे क्रोध आ गया था। वह क्रोध को मन मे ही शान्त करके उससे बात-चीत करने लगा। परन्तु उससे न रहा गया और अन्त मे उसका क्रोध प्रकट हो गया। उसने गाडीवान से कहा—"तुझे मैंने वहाँ तो रुपये दे दिए। परन्तु यदि ललितपुर होता तो बताता और अब बीच मे कुछ बोला तो मार कर गाडी लेकर स्वय ललितपुर चला जाऊँगा।"

गाडीवान रज्जब की बात सुनकर भयभीत हो गया था। उसने सोचा कि वह गाँव आते ही वापिस चला जायगा। भले ही उसे रुपये वापिस क्यो न करने पडे। थोडी दूर चलने के पश्चात् बैल ठिठक कर खडे हो गये। रज्जब ने गाड़ीवान को डाँटकर चलने के लिए कहा।

इसी समय कुछ व्यक्ति उनके समीप आ गये, और उन्होंने गाडीवान से रज्जब के विषय मे पूछा। गाडीवान तो चुप रहा, किन्तु रज्जब ने उनसे कहा—"मैं बहुत गरीब आदमी हूँ। मेरे पास कुछ भी नही है। मेरी औरत गाडी मे बीमार पडी है। मुझे जाने दीजिए।" गाडीवान वहाँ से जाना चाहता था, परन्तु दूसरे व्यक्ति ने उसे पकड लिया। उसने कहा—"महाराज मै तो गाडी किराये पर लिये जा रहा हूँ। गाँठ मे खाने के लिए तीन-चार आने पैसे ही हैं।" रज्जब के विषय मे पूछने पर उसने उन्हे बताया—"ललितपुर का कसाई है।" रज्जब ने भी उसके पूछने पर इसका समर्थन

किया। उसने कहा, "मेरी औरत बीमार है, मुझे छोड़ दीजिए।" उनमें से एक ने उसे कसाई जानकर छोड़ देने के लिए कहा, किन्तु दूसरा उसकी हत्या करना चाहता था। ठाकुर साहब ने उन सब को डाँटकर कहा, "खबरदार-जो उसे छुआ। नीचे उतरो, नहीं तो तुम्हारा सिर चूर किए देता हूँ। वह मेरी शरण आया था।" ठाकुर साहब ने गाडीवान को गाड़ी ले जाने को कहकर रज्जब को उसके स्थान तक पहुँचा आने का आदेश दिया और रज्जब से कहा—"तुम दोनों इस बात की कहीं भी चर्चा न करना।" गाड़ीवान ने गाड़ी को आगे हाँका। जिस आदमी ने रज्जब को मार डालने की कोशिश की थी, उसने कहा—कि "दाऊजी आगे से कभी आपके साथ न आऊँगा।" तब ठाकुर साहब ने कहा—" न आना मैं अकेला बहुत हूँ। बुन्देला शरणागत के साथ धोखा नहीं करता, इस बात को गाँठ बाँध लेना।"

समीक्षा

कथावस्तु—प्रस्तुत कहानी 'शरणागत' की वस्तु आदि से अन्त तक जिज्ञासा तथा कौतूहल से पूर्ण है। आरम्भ में ही पाठकों को परिणाम जानने की जिज्ञासा रहती है और अन्त तक परिणाम को पाठक नहीं जान पाता है। क्योंकि कोई भी यह अनुमान नहीं लगा सकता है कि ठाकुर जो कि डाकुओं का सरदार है, कसाई के लिये अपने साथियों को त्याग देगा। कथानक क्रमबद्ध तथा संगठित है। उसमें कहीं भी शिथिलता नहीं आने पाई है। आरम्भ परिचयात्मक एवं आकर्षक है। जिस समय डाकू रज्जब की गाड़ी पर आक्रमण करते हैं, उस समय कहानी चरम सीमा पर पहुँच जाती है। परन्तु ठाकुर साहब के ये शब्द कहानी का अन्त कर देते हैं—"पर बुन्देला शरणागत के साथ विश्वासघात नहीं करता।" इस प्रकार कहानी का अन्त ओजस्वी है।

पात्र चरित्र-चित्रण—वर्मा जी की यह चरित्रप्रधान कहानी है। इसमें तीन प्रमुख पात्र हैं—रज्जब, ठाकुर साहब तथा गाड़ीवान। रज्जब एक कसाई है। ठाकुर साहब एक बुन्देला सरदार हैं जो शरणागत की रक्षा करना अपना प्रथम कर्त्तव्य समझते हैं और उसके लिए अपने साथियों को भी त्याग सकते हैं। गाड़ीवान एक चमार है जो किसी की आवश्यकता

से अनुचित लाभ उठाना चाहता है। रज्जब विपत्ति में फँसने पर बहुत दीन बन जाता है। वह ठाकुर साहब की शरण में आता है और वहाँ पर तो उसका रूप इस प्रकार का है कि सभी को उस पर दया आ जाती है, परन्तु मनुष्य के सस्कार कही नही जाते। वही रज्जब गाडीवान को अकेला पाकर उसे छुरी से काटकर फेंक देने की धमकी देता है। ठाकुर साहब का चरित्र महत्त्वपूर्ण है। उसमें एक ओर शासन की शान, आज्ञा देने का अनुशासन-प्रिय गौरव और जातीय वैशिष्ट्यपूर्ण शरणागत-वत्सलता की चमक है, तो दूसरी ओर मानव-प्रेम की अक्षयधारा के साथ डाका डालने का जघन्य कार्य करते हुए भी लोकापवाद के भय की भीरुता भी छिपी हुई है।

कथोपकथन—सवाद सक्षिप्त, सरल, स्पष्ट, सजीव, प्रवाहयुक्त तथा पात्रानुकूल है। सवादो से कथावस्तु तथा पात्रो के चरित्र का विकास हुआ है। समस्त कहानी मे सवादो के कारण इतनी आकर्षक नाटकीयता है कि लेखक को अलग से वातावरण चित्रित करने की आवश्यकता नही पडी। सवादो से ही एक निराले वातावरण की सृष्टि हो गई है। रज्जब के सवाद समय और अवसर के अनुसार है।

देशकाल तथा वातावरण—इस तत्त्व के आधार पर भी कहानी बहुत सफल है। समाज से चोरी-चोरी कसाइयो को पशु बेचना, ठाकुर जाति से प्रजा का भयभीत होना, डाकुओ का भी लोकापवाद से डरना, आत्म-सम्मान की सुरक्षा के लिए डाकू बनना, डाकुओ की तलवार से पैसा शुद्ध करने की भावना आदि का सुन्दर वातावरण चित्रित किया है। प्रस्तुत कहानी में बुन्देलखण्ड के बुन्देला वीर के जीवन का चित्रण है।

भाषा तथा शैली—भाषा सरल, व्यावहारिक, सजीव, प्रभावशाली, आकर्षक, सुन्दर तथा पात्रानुकूल है। लेखक ने भाषा को परिस्थिति के अनुसार परिवर्तित करने का बहुत ध्यान रखा है। जब रज्जब को रात्रि के लिए कोई शरण नही देता है, तो वह ठाकुर से कितने स्पष्ट तथा दबी हुई भाषा मे कहता है—"नही महाराज! बहुत कोशिश की, परन्तु मेरे खोटे पेशे के कारण कोई सीधा नही हुआ।" लेखक ने इस कहानी को अन्यपुरुष-प्रधान, ऐतिहासिक

शैली मे लिखा है। आदर्श और समन्वय की शैली ने कहानी को सर्वथा मौलिक रूप दे दिया है।

उद्देश्य—लेखक ने इस कहानी मे बुन्देला जाति की शरणागत-वत्सलता दिखाने के साथ-साथ इसमे जन-समाज की यथार्थ आलोचना करने का भी प्रयत्न किया है—"अपने व्यवहारियों से उसने रातभर के बसेरे के लायक स्थान की याचना की, किसी ने भी मंजूर नहीं किया। इन लोगो ने अपने ढोर रज्जब को अलग-अलग और लुके-छिपे बेंचे थे।" इस प्रकार लेखक ने प्रस्तुत कहानी को आदर्शवादी बनाने के साथ-साथ उसे यथार्थवादी बनाने का भी ध्यान रखा है।

प्रस्तुत कहानी का शीर्षक 'शरणागत' सर्वथा सार्थक ही है। इसका कथानक शरणागत रज्जब और शरण देने वाले ठाकुर को केन्द्र मानकर ही आगे को चला है। ठाकुर के द्वारा शरणागत की रक्षा कराकर लेखक ने इसका अन्त कर दिया है।

मिस्त्री

(इलाचन्द्र जोशी)

सार—(प्रथम पुरुष मे)—श्रीमती जी की सिंगर मशीन को ठीक करने के लिए मैंने अपने मित्र के द्वारा एक मिस्त्री को बुलाया। रविवार को प्रातःकाल के समय एक अधेड़ आयु का मिस्त्री हाथ मे औजार लिए मेरे घर पर आ पहुँचा। मशीन को देखकर उसने कहा कि मशीन तो नई है, परन्तु अब सिंगर मशीन के पुर्जे पहले जैसे अच्छे और मजबूत नहीं आते है। कम्पनी के मालिकों की नीयत मे ही क्या, सभी की नीयत में फर्क आ गया है।

जब वह मशीन देख रहा था, तो मेरे पूछने पर उसने बताया कि वह बड़ी से बड़ी मशीन की खराबी को दो मिनट मे देख कर बता सकता है। उसने यह भी बताया कि वह जौहरी परिवार मे उत्पन्न हुआ था और उसकी इच्छा थी कि विदेश जाकर हवाई जहाज बनाना सीखे, परन्तु वहाँ अफीम न मिलने के भय मे वह ऐसा न कर सका। उसने यह भी स्पष्ट कर दिया कि अफीम के नशे मे ही वह अपने दुखों को भुलाये हुए है। इतना कहकर वह आवेश

मे आ गया और उसने अपनी जीवन-कहानी कहनी प्रारम्भ कर दी। वह बोला —

"मेरी माता मुझे बच्चा ही छोड़कर इस नश्वर ससार से विदा हो गई थी। मेरे पिता विद्याप्रिय थे। उनकी इच्छा थी कि वे मुझे और मेरे अनुज बलदेव को पढाये। मेरा अनुज तो पढने मे दिलचस्पी लेता था, परन्तु मेरा झुकाव तो भगेडियो-गजेडियो की ओर था। एक दिन अचानक ही हृदय-रोग के कारण उनकी मृत्यु हो गई। उनकी मृत्यु के पश्चात् हमे ज्ञात हुआ कि उन पर कई सहस्र रुपये का ऋण है। मै कुछ सभला और मैने गजेडियो मिस्त्रियो के साथ रहकर मशीनो का काम सीखा। धीरे-धीरे मै मोटरो की भी मरम्मत करने लगा। मैने बलदेव को पढाया। उसने बी० ए० की उपाधि प्राप्त करने के पश्चात् वकालत की परीक्षा पास की। मेरा उजडा हुआ घर फिर आबाद हो गया। नगर मे वकीलो की सख्या अधिक होने के कारण बलदेव ३०-४० रुपये प्रतिमास मे अधिक नही कमा पाता था, परन्तु मै परिश्रम करके धनाभाव की पूर्ति कर देता था।

कुछ दिनो बाद बलदेव के पुत्र-रत्न उत्पन्न हुआ। उसका नाम सुखदेव रखा गया। मै हर समय उसके साथ खेलता रहता था। सुखदेव की बाल-लीलाओ मे उलझे रहने के कारण मेरा काम ढीला पडने लगा। मै अपनी वृद्धावस्था को आराम मे व्यतीत करना चाहता था, इसलिए मैने नगर के एक पादरी से सिफारिश करके बलदेव की लखलऊ मे नौकरी लगवा दी। इसके पश्चात् हम लखनऊ मे रहने लगे। सुक्खू मुझे बहुत प्रिय था। बलदेव मुझे खर्च के लिए पाँच रुपये प्रति माह देता था, परन्तु मेरा नशे-पानी का काम तो मेरी दो-तीन सौ की एकत्रित पूँजी मे से चलता था।

एक दिन मै अफीम के नशे मे सुक्खू को गोद मे लिये जीने पर चढ रहा था। अचानक मुझे चक्कर आया और सुक्खू धम से नीचे गिर पडा। बस फिर क्या था! उसकी माँ ने कहनी न कहनी सब कुछ कह डाला। उसने मुझे अफीमची, निखट्टू, साँडो की तरह अलमस्त पडा रहने वाला बताया। जब बलदेव सध्या समय घर लौटा, तो उसने आते ही मुझ से कहा—"तुम आज

ही मेरे घर से चले जाओ। मैं तुम्हे अब एक दिन के लिए भी अपने यहाँ नही रख सकता। सुक्खू की माँ ने मुझ से पहले ही कह दिया था, पर मैंने उसकी बात न सुनी और उसका यह नतीजा हुआ। तुम जहाँ चाहो रह सकते हो, पर मेरे यहाँ तुम्हारे लिए जगह नही। जहाँ रहोगे वहाँ ५) माहवार भेज दिया करूँगा।" यह सुनकर मै उसी समय वहाँ से चल दिया। मुझे जाता देख, सुक्खू ने ऊपर से पुकारा—"दाऊ मैं भी तुम्हारे साथ चलूँगा।" मुझे सुक्खू की हर समय याद आती थी। मैं एक पल के लिए भी उसे नहीं भुला सका।

एक दिन मैं उधर से निकल रहा था कि सुक्खू ने मुझे देख लिया। उसने 'दाऊ-दाऊ' कहकर मुझे पुकारा, परन्तु मैं तेजी से आगे को चला गया। एक दिन फिर जब मैं उधर से निकल रहा था, तो मैंने बलदेव को कोठे पर उदास खडे हुए देखा। उसके बुलाने पर मैं वहाँ गया। उसने मुझे बताया कि उसकी नौकरी छूट गयी है और सुक्खू बीमार है। उसके पास दवाई लाने के लिए भी पैसे नही थे। जो रुपये मेरे पास थे, वे मैंने उसे दे दिये। मैंने सुक्खू के इलाज के लिए घोडो की नाल बाँधने का कार्य करना शुरू कर दिया। एक चरसिया मित्र की सहायता से मुझे मशीनें ठीक करने का काम मिल गया, परन्तु सब बेकार रहा।"

इतना कहकर वह रोने लगा। उसने मुझे बताया कि पादरी से प्रार्थना करके बलदेव की नौकरी उसने फिर से लगवा दी है, परन्तु वह (मिस्त्री) उनसे अलग ही रहता है। इतना कहकर उसने रिंच से मशीन के पुर्जे उखाड़ कर मिट्टी के तेल मे डालने शुरू कर दिये।

समीक्षा

कथावस्तु—जोशी जी की प्रस्तुत कहानी एक साधारण कहानी है। इस की कथावस्तु मे कोई विशेष उतार-चढाव नही है, परन्तु इसका प्रस्तावना भाग (प्रारम्भ) बहुत ही रोचक है। मशीन के खराब हो जाने पर पत्नी उसे ठीक कराने के लिये अपने पति से कहती है, परन्तु जब पति इस बात की ओर ध्यान नही देता है, तो वह मायके जाकर फिराकें सीने की धमकी देती

है। तब मिस्त्री को बुलाया जाता है। मिस्त्री अपनी जीवन-कहानी सुनाता है। उसकी जीवन-कथा से ही कहानी विकसित होती है। जब दोनो भाइयो का पुनर्मिलन होता है, तो कहानी चरम सीमा पर पहुँच जाती है। सुक्खू की मृत्यु तथा मिस्त्री का एकाकी जीवन कहानी का अन्त है। इस प्रकार हम देखते हैं कि आरम्भ मे पाठक के मन मे जिज्ञासा उत्पन्न होती है।

पात्र चरित्र-चित्रण—जोशी जी की प्रस्तुत कहानी एक चरित्रप्रधान कहानी है। इसमें मिस्त्री, वलदेव तथा बलदेव की पत्नी ही प्रमुख पात्र है। मिस्त्री लापरवाह होते हुए भी जीवन की गम्भीरताओ के प्रति जागरूक है। वह अपने कर्त्तव्य को भली-भाँति समझता है और अपने परिवार के प्रति उसके हृदय में प्रेम तथा सद्भावना है। भाई उसे अपमानित करके घर मे निकाल देता है, परन्तु उसको दुखी देखकर वह पुन अपना कर्त्तव्य पालन करता है। बलदेव की पत्नी के चरित्र मे नारी की मानसिक दुर्बलताओं को लेखक ने चित्रित किया है। स्त्रियाँ स्वभाव से ही कृपण होती है। विपत्ति के समय भी वे पैसा निकालना नही चाहती है। स्त्री जाति किसी के उपकारो को भी शीघ्र ही भूल जाने वाली है। जब वह आवेश में आती है, तो वह फिर उचित-अनुचित सभी कुछ कह बैठती है। बलदेव एक दुर्बल-हृदय व्यक्ति है। परिस्थितियो से मुकावला करना उसकी शक्ति से वाहर है। पत्नी के सिखाये मे आकर वह अपने अग्रज का भी अपमान करता है, उसे उल्टी-सीधी सुनाकर घर से निकाल देता है। सुक्खू के चरित्र मे वाल-स्वभाव प्रत्यक्ष देखने को मिलता है। इस प्रकार सभी प्रमुख पात्रो के चरित्र यथार्थवादी है। चरित्र-चित्रण का आधार मनोवैज्ञानिक है।

कथोपकथन—वर्णनात्मक तथा आत्मकथन-शैली मे होने के कारण कहानी मे सवादो के लिए गुंजाइश ही नहीं है। वाबू और मिस्त्री के मध्य साधारण से एक-दो सवाद है। परन्तु स्वगत भाषण बहुत ही सुन्दर बन पडे है।

देशकाल तथा वातावरण—प्रस्तुत कहानी में एक मिस्त्री के जीवन की प्रधानता है। मिस्त्री ही कहानी के समस्त वातावरण का सचालक है।

भाषा तथा शैली—प्रस्तुत कहानी वर्णनात्मक तथा आत्मकथन शैली मे लिखी गई है। भाषा सस्कृतनिष्ठ, परन्तु व्यावहारिक है। इसमे उर्दू तथा

अंग्रेजी के शब्दों का भी प्रयोग है। कहीं-कहीं पर दैनिक जीवन के प्रयोग में आने वाले मुहावरे भी प्रयोग किए गए हैं। इस प्रकार भाषा सुन्दर तथा आकर्षक हो गई है।

उद्देश्य—लेखक ने प्रस्तुत कहानी में परिवार के भिन्न स्वभाव वाले व्यक्तियों के चरित्रों के उद्घाटन करने के साथ-साथ यह भी बताया है कि स्कूलों तथा कालेजों की शिक्षा प्राप्त व्यक्ति भूखा मर सकता है, परन्तु जो व्यक्ति दस्तकारी जानता है, वह प्रत्येक स्थान पर जीवन-निर्वाह के लिये कमा सकता है। वह कभी भी दूसरों का मुहताज नहीं बन सकता है। लेखक इस कहानी में भाई के प्रति भाई के कर्त्तव्यों को बताना भी नहीं भूला है।

शीर्षक उपयुक्त है। प्रस्तुत कहानी साधारण कोटि की है।

मिठाई वाला

(भगवतीप्रसाद वाजपेयी)

एक खिलौने वाला बहुत ही मधुर स्वर में गाता हुआ आता था। उसके स्वर को सुनकर बच्चे प्रसन्न हो उठते और आकर चारों ओर से घेर लेते थे। खिलौने वाला अपनी पेटी खोल देता और बच्चे खिलौना देखकर प्रसन्नतापूर्वक उनका मूल्य पूछते। खिलौने वाला बच्चों की इच्छा के अनुसार उन्हें खिलौना दे देता। बच्चे प्रसन्न मन घर जाकर अपने माता-पिता को खिलौने दिखाते। माता-पिता दो-दो पैसे में इतने सुन्दर खिलौने देखकर चकित रह जाते। चुन्नू-मुन्नू ने जब अपनी माँ रोहिणी को अपने खिलौने दिखाये, तो उसने सोचा कि इतने कम मूल्य में खिलौने वाला इतने सुन्दर खिलौने कैसे दे गया ?

मुरली वाले ने मृदुल स्वर मे कहा—"सबको देंगे भैया ! मेरे पास सत्तावन मुरली है।" विजय बाबू को मुरली देकर मुरली वाले ने बारी-बारी से सब बच्चो को उनकी पसन्द के रग की मुरलियाँ दी और उसने दो-दो पैसे ले लिये। यदि किसी बच्चे के पास पैसे न होते तो वह उसे बिना मूल्य के ही दे देता था। इसके बाद बहुत समय तक मुरली वाला न आया। रोहिणी उसके मीठे स्वर और बच्चो के प्रति स्नेह को स्मरण करती रहती थी।

आठ महीने बीत गये। सर्दी का मौसम था। रोहिणी अपनी छत पर केश सुखा रही थी। इसी समय मिठाई वाले का मादक स्वर सुनाई दिया। वह नीचे आई और अपनी सास से मिठाई वाले को बुलाने के लिये कहा। मिठाई वाला वृद्धा के बुलाने पर वहाँ आया। पूछने पर उसने बताया "पैसे की सोलह देता हूँ। कितनी दूँ ? रोहिणी ने कहा "एक आने की ले लो और इससे पूछो कि शहर मे वह पहली ही बार आया है या पहले भी कभी आया था।" यह सुनकर मिठाई वाले ने कहा—'कई बार आ चुका हूँ।" पूछने पर ज्ञात हुआ कि मुरली वाला और खिलौने वाला वही था। रोहिणी ने पूछा, "तुम्हे इस व्यवसाय से क्या लाभ होगा ?" तब उसने बताया, "मुझे इससे केवल सतोष प्राप्त होता है। मै अपने नगर का एक प्रतिष्ठित आदमी था। मकान, व्यवसाय, गाडी, घोडे, नौकर-चाकर सभी कुछ था। स्त्री और उसके दो छोटे बच्चे भी थे। विधाता की लीला से अब कुछ नही है, इसलिये बच्चो मे रहकर मुझे सतोष प्राप्त होता है और मै अपने बच्चो के अभाव को भूल जाता हूँ।" रोहिणी ने देखा कि मिठाई वाले की आँखे आँसुओ से भरी हुई थी।

इसी समय चुन्नू-मुन्नू भी आ गये और रोहिणी से मिठाई माँगने लगे। मिठाई वाले ने उन्हे दो पुडियो मे मिठाई भरकर दे दी। रोहिणी ने अन्दर से पैसे दिये किन्तु उसने पैसे लेने से इन्कार कर दिया। दादी ने उससे पैसे लेने के लिये बहुत कहा, किन्तु वह अनसुना करके वहाँ से चला गया और आगे जाकर उसी प्रकार मीठी और मस्ती से भरी हुई आवाज से गाने लगा।

समीक्षा

कथावस्तु—प्रस्तुत कहानी लेखक की सर्वश्रेष्ठ कहानी मानी जाती है। यह उनकी मौलिक सामाजिक कहानी है। इस कहानी मे एक पीडित व्यक्ति

की मनोव्यथा को चित्रित किया गया है। इसलिए वस्तु प्रभावपूर्ण तथा आकर्षक बन पडी है। कहानी में आदि से अन्त तक कौतूहल है। आरम्भ में लेखक ने वातावरण का चित्रण किया है। रोहिणी की जिज्ञासा से कथा का विकास हुआ है। जिस समय मिठाई वाला अपने जीवन का रहस्य रोहिणी को बताता है, उस समय कहानी चरम सीमा पर पहुँच जाती है। बिना मूल्य लिए मिठाई देकर चले जाने पर कहानी का अन्त हो जाता है। कथावस्तु, सुसगठित, सजीव, स्वाभाविक, मार्मिक तथा सक्षिप्त है।

पात्र चरित्र-चित्रण—प्रस्तुत कहानी मे मिठाई वाला, रोहिणी और विजय बाबू तीन प्रमुख पात्र हैं। रोहिणी में मातृ-सुलभ वात्सल्य है। इसलिए वह बच्चो को प्यार से मिठाई बेचने वाले व्यक्ति के विषय में जानने के लिए उत्सुक हो उठती है। यह एक स्वाभाविक बात है। मिठाई बेचने वाले के चरित्र मे बच्चो के साथ अपनेपन के व्यवहार, बच्चो को आकृष्ट करने वाले ढंग तथा उसकी मधुर आवाज की विशेषता है। वास्तव मे रोहिणी तथा मिठाई बेचने वाले के चरित्र तो व्यक्तिगत हैं, परन्तु विजय बाबू तथा दादी के चरित्र को वर्गगत कहना ठीक ही होगा। पात्रो के चरित्र का विकास सवादों से ही हुआ है। प्रस्तुत कहानी की एक विशेषता यह भी है कि पात्र-परिचय के साथ उनके रंग, रूप, वेश आदि को भी इसमे चित्रित किया गया है।

कथोपकथन—सवाद बहुत ही सक्षिप्त, सजीव, परिस्थिति-परिचायक और पात्रो की बौद्धिक योग्यता के अनुकूल हैं। सवादो में स्वाभाविकता, मर्म-स्पर्शिता तथा सरलता है। मिठाई वाले के सवाद मोहक, करुण तथा अपनापन लिये हुए है। बच्चो की तुतलाती वाणी के द्वारा बाल-मनोवृत्ति का परिचय प्राप्त होता है। दादी की बातें दुनियादारी की हैं। रोहिणी के संवादो में नारी-हृदय की दुर्बलता तथा कोमलता का चित्रण है।

देशकाल तथा वातावरण—इस कहानी में लेखक को बच्चों की बोल-चाल, खिलौने प्राप्ति के लिए व्याकुलता, भागम-भाग, आपा-धापी, हठ और आग्रह का मार्मिक तथा सजीव वातावरण प्रस्तुत करने मे पूर्ण सफलता प्राप्त हुई है। बच्चो से घिरे हुए मुरली वाले के दृश्य का चित्रण तो देखते ही बनता है।

स्त्रियो के चिको मे रहने, वृद्धाओ में मोल-तोल करने की प्रवृत्ति तथा बाबुओ की सन्देहशीलता का इसमें कहानीकार ने सुन्दर चित्रण किया है।

भाषा तथा शैली —भाषा सस्कृतनिष्ठ होते हुए भी स्वाभाविक, पात्रानुकूल तथा प्रवाहशील है। शैली ऐतिहासिक, परिचयात्मक तथा वर्णनात्मक है। शैली में रोचकता तथा आकर्षण है।

उद्देश्य —प्रस्तुत कहानी में लेखक ने बताया है कि पत्नी की मृत्यु हो जाने तथा अपना समस्त घर बार नष्ट हो जाने पर भी मनुष्य को न तो आत्म-हत्या करनी चाहिए और न किसी से द्वेष करना चाहिए। ऐसे विपत्तिग्रस्त मनुष्य को सुख तथा आत्म-शान्ति प्राप्त करने के लिए तथा समाज की प्रगति के मार्ग में बाधक न होने के लिए सन्यास न लेकर अपने भीतर उदात्त भावनाओं का विकास करना तथा आत्म-विस्तार के भाव हृदय मे भर लेने चाहिए। लेखक के उद्देश्य का मिठाई वाले के इन शब्दो में समावेश है—"मैं भी अपने नगर का एक प्रतिष्ठित आदमी था। मकान, व्यवसाय, गाडी-घोडे, नौकर-चाकर सभी कुछ था।······ ··समय की गति ·····विधाता की लीला ! अब कोई नही है। दादी, प्राण निकाले नही निकले। इसीलिए अपने उन बच्चो की खोज मे निकला हूँ। वे सब अन्त मे होगे तो यही कही। आखिर कही न कही तो जन्मे ही होगे। उसी तरह रहता, तो घुल-घुल कर मरता। इस तरह सुख-सन्तोप के साथ मरूँगा। इस तरह के जीवन मे कभी-कभी अपने उन बच्चो की एक झलक सी मिल जाती है। ऐसा जान पडता है, जैसे वे इन्ही में उछल-उछल कर हँस-हँस कर खेल रहे है। पैसो की कमी थोडे ही है। आपकी दया से पैसे काफी है। जो नही है, इस तरह उसी को पा जाता हूँ।"

प्रश्न ७—निम्नलिखित कहानियों का सार लिखकर उनकी समीक्षा करो :—
गोशाला, पाजेब, काम-काज, कोटर और कुटीर, रामलीला, सेब और देव, दुःख।

उत्तर :—

गोशाला

(रामवृक्ष बेनीपुरी)

सार—आज वर्षों के पश्चात् मैंने गुरु जी तथा उनकी हरी छड़ी से भी

छुट्टी प्राप्त की। खेलने-कूदने के पश्चात् गर्म खिचड़ी खाकर मैं दादी की गोद में सोने की कल्पना कर रहा था कि इसी समय मैंने काका रामफल को भीगते हुए अक्कल के घर की ओर जाते देखा। अक्कल एक बहुत ही हृष्ट-पुष्ट मजदूर था। उसका विशाल काला शरीर बहुत ही भयंकर मालूम होता था। उसके दो पुत्र और एक पुत्री थी। पुत्री बहुत ही सुन्दर थी। उसके पास एक गाय तथा कुछ बकरियाँ भी थीं। साधु-सन्तों का उसके यहाँ बहुत आदर-सत्कार होता था।

काका रामफल ने जाकर उससे कहा—"अक्कल घर चू रहा है, चलकर खपरैल ठीक कर दे।" अक्कल को उस समय बहुत तीव्र ज्वर था, परन्तु काका के दाम से दबकर वह इस दशा में भी भीगता हुआ उनके साथ चला गया।

बड़ा होने पर मैं नगर में रहने लगा। एक दिन गाँव में घर के दरवाजे पर बैठा मैं एक अंग्रेजी की मैगजीन पढ़ रहा था। उसी समय अक्कल लाठी का सहारा लिये हुए मेरे पास आ पहुँचा और उसने मुझसे न्याय करने के लिए कहा। उसने मुझसे कहा—"मैंने जवानी में काका रामफल की सेवा की है। परन्तु भाग्य का खेल है कि मेरा घर-बार सब कुछ नष्ट हो गया। मेरा कोई नहीं रहा है। मैं दिन में भीख माँगकर पेट भर लेता हूँ और रात्रि को काका रामफल के पुआल के ढेर में घुसकर सो जाता और जब कभी जाड़ा लगता, उनके घूरे में जाकर आग तापता। किन्तु आज काका रामफल ने मुझे वहाँ से निकाल दिया है। वह कहते हैं कि मैं रात भर ताप-ताप कर आग खत्म कर देता हूँ और खाँस-खाँस कर चारों ओर थूक डालता हूँ। जीवन भर सेवा के बदले इस बुढ़ापे में खाना-पीना, कपड़ा-लत्ता, घर-दुआर देने से रहे, क्या घूरे की आग से भी मुझे महरूम किया जाना चाहिए?" यह सुनकर मुझे उस वर्षा के दिन का स्मरण हो आया।

शहर में गोशाला की स्थापना के समय काका रामफल ने गोशाला को दो गाड़ी पुआल दान में दिया। मुझे यह देखकर बहुत प्रसन्नता हुई। मैं प्रसन्न मुद्रा में साइकिल पर सवार होकर गाँव को जा रहा था। मार्ग में मुझे अक्कल मिला। उसने कहा—"गाँव में अब गुजर नहीं होती बबुआ! जा रहा हूँ, कहीं माँग-चूँगकर खाऊँगा और राम नाम लेते... .." यह कहकर उसके नेत्रों से

आँसुओ की बून्दे टपकने लगी।

मैंने मन ही मन में सोचा—"मनुष्य ने बूढे पशुओ के लिए गोशालाएँ बनवाई, किन्तु बूढे मनुष्यो के लिए ? रामफल काका को बूढी गायो से इतनी मुहब्बत और—उस बूढे आदमी के लिए, जिसके ....?"

समीक्षा

कथावस्तु—प्रस्तुत कहानी का आरम्भ आत्म-परिचय से हुआ है। काका रामफल के अक्कल के घर जाने की घटना से कहानी का विकास हुआ है। परन्तु इसमें वस्तु की विकास-गति बहुत ही मन्द है। कहानी के द्वितीय भाग में अक्कल के यौवन काल के जीवन से पाठको को परिचित कराया है। तृतीय भाग मे उसकी वृद्धावस्था के दु खी जीवन के चित्रण मे कहानी चरम सीमा पर पहुँच गई है। अक्कल के गाँव छोडकर जाने पर कहानी का अन्त हो जाता है। कथा प्रभावशील है, परन्तु उसमें सगठन का अभाव है।

पात्र चरित्र-चित्रण – प्रस्तुत कहानी मे दो प्रमुख पात्र है—काका रामफल तथा मजदूर अक्कल। काका रामफल का चरित्र शोषक वर्ग का प्रतिनिधित्व करता है और अक्कल का चरित्र शोषित वर्ग का। रामफल एक पूँजीपति है। वर्षा मे उनका घर चूता है तो वे अक्कल को उसे ठीक करने के लिए बुला लाते हैं। अक्कल ज्वर पीडित होते हुए भी वर्षा मे भीगता हुआ उनके साथ जाकर उनकी सेवा करता है। वह जीवन भर उनकी सेवा करता रहता है। परन्तु जब वह बेचारा मजदूर बूढा और अपाहिज हो जाता हैं, तो वे अपने धन के नशे मे चूर उसको अपने घूर मे तापने तक को मना कर देते है और उसे घर से बाहर निकाल देते हैं। उसे विवश होकर गाँव छोडना पडता है, परन्तु वही काका रामफल शहर मे बनने वाली गोशाला को दो गाडी पुआल दान देते है। यह सब कुछ उनकी क्रूरता, शोषणवृत्ति तथा ख्याति-प्राप्ति की लालसा को सिद्ध करता है। लेखक को दोनो पात्रो के यथार्थ चित्रण मे सफलता मिली है।

कथोपकथन—प्रस्तुत कहानी मे सवादो का अभाव है। एक-दो स्थान पर बबुआ और अक्कल के सवाद आये है, परन्तु वे सक्षिप्त है और उनसे पात्रो के चरित्रो का भी विकास हुआ है।

देशकाल तथा वातावरण – इसमे कहानीकार ने शोषित व्यक्तियो की वृद्धावस्था मे होने वाली दुर्दशा का वातावरण उपस्थित किया है। अक्कल यौवन

अवस्था मे गाव मे सभी व्यक्तियों की सेवा करता था, परन्तु वृद्धावस्था मे उसे अपनी दीन अवस्था से विवश होकर गाव छोडना पडता है।

भाषा तथा शैली—भाषा सरल, स्वाभाविक, पात्रानुकूल तथा सुन्दर है। स्थान-स्थान पर हेलना, बबुआइन, धूरा आदि प्रान्तीय शब्दो का प्रयोग हुआ है, परन्तु इन शब्दो के प्रयोग से भाषा अस्पष्ट नही हुई है। आरम्भ मे लेखक ने आत्म-कथन-शैली को अपनाया है, परन्तु बाद मे वर्णनात्मक शैली मे कहानी लिखी गई है। आकार सीमित होते हुए भी लेखक ने समाज के एक विशाल जीवन का इसमे समावेश किया है। यह इस कहानी की विशेषता है।

उद्देश्य—इस कहानी मे मानवता-विरोधी वृत्ति का उद्घाटन किया है। कहानी मे किये गए व्यंग्यो मे कहानीकार का उद्देश्य स्पष्ट दिखाई देता है - "मनुष्य ने बूढे पशुओ के लिये गोशालाएँ बनवाई, किन्तु बूढे मनुष्यो के लिये, रामफल काका को बूढी गायो से इतनी मुहब्बत और उन बूढे आदमी के लिये? जिसके ?" इसके साथ ही शोषक वर्ग के जीवन का कच्चा चिट्ठा खोल कर कहानीकार ने शोषित वर्ग के प्रति सहानुभूति जागृत करने का प्रयत्न किया है और उसे अपने इस प्रयत्न मे सफलता भी मिली है।

पाजेब

(जैनेन्द्रकुमार)

सार—एक नई प्रकार की पाजेब का चलन हुआ। बालिका से लेकर बड़ी स्त्रियों तक के पैरो मे नई प्रकार के पाजेब ही दिखाई देती थी। चार वर्ष की मुन्नी ने भी पाजेब पहनने की हठ की। कुछ दिन के पश्चात् मुन्नी की बुआ पाजेब लेकर आई। मुन्नी पाजेब पहनकर बहुत प्रसन्न थी। मुन्नी का अग्रज आशुतोष भी पाजेब देखकर बहुत प्रसन्न हुआ। परन्तु बाद मे वह बाईसिकल लेने के लिए हठ करने लगा। बुआ ने वायदा किया कि उसके जन्म दिन पर वह उसे बाईसिकल लाकर उपहार मे देगी। मुन्नी की माँ ने भी अपने पति देव से पाजेब लाने की इच्छा प्रकट की।

सन्ध्या समय श्रीमती जी ने पति महाशय से कहा कि एक पाजेब नही मिल रही है। सारे घर मे ढूंढने पर भी उसका कोई पता नही चला। पति के पूछने पर श्रीमती जी ने बताया कि उसने दोनों पाजेब सन्दूक मे रक्खी थीं, परन्तु अब वां केवल एक ही है। श्रीमती जी का विचार था कि घर के नौकर ने ही पाजेब

चुराई है, परन्तु पति महाशय को इस बात पर विश्वास नही होता था। नौकर से पूछा गया, परन्तु उसने साफ़ मना कर दिया। उसी सन्ध्या को आशुतोष एक पतग और डोर का पिण्डा खरीद कर लाया था। अत सन्देह आशुतोष पर हुआ। उससे पूछा गया, परन्तु उसने भी साफ मना कर दिया। उसे पुरस्कार देने का भी लालच दिया गया, परन्तु सब व्यर्थ रहा। परन्तु जब पिता ने पुत्र से बार-बार यह पूछा—"पाजेब तुमने छुन्नू को दी थी न ?" तब उसने हाँ कह दिया। महाशय बार-बार उससे पूछते और वह स्वीकार कर लेता कि पाजेब उसने छुन्नू को दी है। उसने यह भी बताया कि छुन्नू ने वह पाजेब पतग वाले को बेच दी है। पैसे छुन्नू के पास ही है।

आशुतोष की माँ छुन्नू की माँ के पास जा पहुँची और उससे कहा-सुनी करने लगी। छुन्नू की भी खूब खबर ली गई, परन्तु उसने अपराध स्वीकार नही किया। आशुतोष को पतग वाले के पास जाने के लिये कहा गया, परन्तु वह जाने को राजी नही हुआ। इसके पश्चात् महाशय आफिस चले गये और फिर सन्ध्या समय लौटे। उस समय आशुतोष छुन्नू के साथ गुल्ली-डण्डा खेल रहा था। उसे बुलाया गया। पहले प्यार से उसे पतग वाले के पास जाने को कहा गया। जब वह न माना तो उसके साथ सख्ती का व्यवहार किया गया। परन्तु वह फिर भी चुपचाप ही रहा। अन्त मे उसे कोठे मे बन्द कर दिया गया। वह भय के मारे पीला पड रहा था और उसका सारा शरीर थर-थर काँप रहा था। जब वह चलने को तैयार नही हुआ, तो महाशय ने अपने अनुज प्रकाश को एक रुपया लेकर पतग वाले के पास भेजा। वह थोडी देर पश्चात् आकर बोला कि पतग वाला साफ इनकार करता है। कमरा खोला गया तो आशुतोष पडा सो रहा था। उसे जगाया गया। अब भी वह पतग वाले के पास जाने को तैयार नही था। उसे घर भेजने की तैयारी हो रही थी, कि इसी समय बुआ वहाँ आ पहुँची। बुआ ने पूछा कि—"क्या बात है ?" परन्तु महाशय ने कोई उत्तर नही दिया। महाशय के कहने पर बशी आशुतोष को जबरदस्ती वहाँ से लेगया।

पहले तो बुआ इधर-उधर की बाते करती रही फिर उन्होंने जेब मे से एक पाजेब निकालकर देते हुए कहा कि यह उस दिन भूल से मेरे साथ ही चली गई थी। इस घटना से महाशय को अपने ऊपर बहुत क्रोध आया और उन्हे बहुत लज्जा का अनुभव हुआ।

समीक्षा

कथावस्तु—प्रस्तुत कहानी की कथावस्तु हमारे दैनिक जीवन मे होने वाली घटनाओं से सम्बन्धित है। यह स्वाभाविक तथा मनोरजक है। ऐसा नित्य प्रति देखने मे आता है कि प्रत्येक परिवार मे कोई न कोई वस्तु इधर-उधर हो ही जाती है और फिर न जाने किस-किस के ऊपर उस वस्तु को चुराने की शका होती है। घर के नौकर पर दोष लगाया जाता है। बच्चो को मारा-पीटा जाता है। घर मे से एक पाजेब के खो जाने पर घर मे एक प्रकार की अशान्ति छा जाती है। इस घटना से कथावस्तु मे कौतूहल उत्पन्न होता है और अन्त मे चरम सीमा पर पहुँचकर वह कौतूहल शान्त हो जाता है। प्रस्तुत कहानी आदि से अन्त तक एकरस रहती है। पाठक कुछ निर्णय नही कर पाते है कि पाजेब किसने ली है। कभी आशुतोष पर, कभी वसी वाले पर, कभी पतग वाले पर और कभी पडौस के बालक पर पाजेब हजम करने की शका होती है, परन्तु वह कुछ भी निर्णय नही कर पाता है कि चोर कौन है। कहानी के अन्त मे जब पाठक बुआ के पास पाजेब पाते है, तब दु ख का भार मुस्कराहट में परिवर्तित हो जाता है।

पात्र चरित्र-चित्रण—चरित्र-चित्रण मे भी लेखक को पूर्ण सफलता प्राप्त हुई है। चरित्र-अवतारणा तथा चरित्र-विश्लेषण दोनो ही दृष्टियो से कहानी पूर्ण सफल है। सभी पात्र दैनिक जीवन के पात्र है और उनकी समस्याये हमारे जीवन की समस्याये है। पात्र-संख्या अधिक होने पर भी पाठक को अखरती नही है, क्योंकि चोरी का सन्देह भिन्न-भिन्न अनेक व्यक्तियो पर लगाया जाना स्वाभाविक है। आशुतोष का आग्रह, उसकी माता की नारी-सुलभ आभूषण-प्रियता, बुआ का वात्सल्य, पडोसिन का अपने बच्चे को निर्दोष सिद्ध करने के लिए मारना-पीटना आदि विभिन्न भाव लेखक के मनोविश्लेषण ज्ञान के द्योतक है।

आशुतोष की माता का चरित्र एक मध्यम वर्ग की महिला का चरित्र है। वह क्लेश दान के लिये अपने पति को ही दोषी ठहराती है। नौकर को मुँह लगाने और आशुतोष को बिगाड़ने के लिये उन्ही को जिम्मेदार ठहराती है। पिता का चरित्र एक श्रेष्ठ चरित्र है। उनके हृदय मे शका, खीझ, मुस्कान, [illegible] के भाव उठते है। एक शिक्षित तथा समझदार पिता के

हृदय मे ऐसी परिस्थिति मे ऐसे भावो का उठना स्वाभाविक ही है। आशुतोष के चरित्र-चित्रण मे लेखक को बहुत सफलता मिली है। वह बालक निर्दोष है। उसका निर्दोष होने का स्वाभिमान उसके चरित्र मे स्पष्ट दिखाई देता है। जब उसे उसके पिता प्यार और इनाम का लोभ देते है तो वह कुछ कहता है, परन्तु जब डाँट-फटकार पडती है तो वह कुछ और कहने लगता है। अपने निर्दोष होने की सफाई देता हुआ वह कहता है कि उसके पास नही होगी तो वह कैसे देगा ?

कथोपकथन—सवादो से ही कहानी का विकास हुआ है। वर्णन तो केवल सवादो को शृखलाबद्ध करने के लिये ही है। प्रत्येक पात्र का मानसिक विकास ही सवादो के द्वारा हो पाया है। सवाद स्वाभाविक, सक्षिप्त, रोचक तथा सजीव है। चरित्र-चित्रण भी सवादो द्वारा ही हुए है। सवादो ने पात्रो की मन स्थिति को प्रत्यक्ष करने के लिये दर्पण का कार्य किया है। कथोपकथनो की प्रधानता के कारण यह कहानी एकाकी प्रतीत होती है।

भाषा तथा शैली—भाषा बहुत ही सुन्दर है। मानव-मन का सुन्दर चरित्र प्रस्तुत करने मे भाषा को सफलता मिली है। वाक्य छोटे-छोटे है और सरल सीधी शब्द-योजना है। इसमें किसी प्रकार का घुमाव-फिराव नही है। भाषा सरल, व्यावहारिक, पात्रानुकूल तथा मुहावरेदार है।

प्रस्तुत कहानी आत्मचरित तथा कथोपकथन की मिश्रित शैली मे लिखी गई है। शैली मे मनोविश्लेषणात्मकता है। आशुतोष के पिता कहते है —"मेरे मन में उस समय तरह-तरह के सिद्धान्त आये। मैंने स्थिर किया कि अपराधी के प्रति करुणा ही होनी चाहिए। वह रोष का अधिकारी नही है। प्रेम से ही अपराध-वृत्ति को जीता जा सकता है। आतक से दबाना ठीक नही है। बालक का स्वभाव कोमल होता है और सदा ही उसके साथ कोमल व्यवहार करना चाहिए।" किन्तु इस सद्-व्यवहार की भी सीमा पार हो गई तो क्रोध भी अपनी चरम सीमा पर पहुँच गया। इस प्रकार लेखक को मनोविश्लेषण मे पूर्ण सफलता मिली है।

वातावरण—आत्म-कथन शैली मे लिखी गई कहानियो मे वातावरण के चित्रण के लिए विशेष स्थान नही होता है, परन्तु फिर भी संवादो के द्वारा उसे भी उपस्थित करने का पूर्ण प्रयत्न किया गया है। गुल्ली डडा, पतगबाजी,

नये आभूषणों के प्रचलित होने पर जागृत होने वाली लालसाएँ, बच्चों का घरेलू वातावरण, प्राय पत्नियों का पतियों को बुद्धू समझना आदि के रूप में आज के सामाजिक वातावरण के सुन्दर निदर्शन उपस्थित किये गए हैं।

उद्देश्य—प्रस्तुत कहानी मे लेखक का उद्देश्य मानव-मन के रहस्यों का उद्घाटन करना है। दूसरे लोगों के मनोदेश मे पहुँचकर तो वह उनका चित्रण कर पाया है, पर बाल मनोविज्ञान के क्षेत्र मे लेखक का कथन यह है कि बालकों के मन की अतल गभीरता की थाह नही ली जा सकती। न तो प्यार-दुलार से ही रहस्य का पता चल सकता है और न रोष-आतंक से ही।

प्रस्तुत कहानी का शीर्षक 'पाजेब' उचित ही है, क्योंकि समस्त कथावस्तु का विकास पाजेब को लेकर ही होता है।

काम-काज

(चन्द्रगुप्त विद्यालंकार)

सार—(१) क्वेटा के भयकर भूकम्प मे सब कुछ नष्ट हो गया। जब भूकम्प मे घायल हुए व्यक्तियों का प्रथम जत्था लाहौर आया तो उनमे केवल एक ही व्यक्ति पैदल चलने योग्य था। वह महाशय अनारकली मे लाला कस्तूरीमल की कपडे की दुकान पर कुछ कपडा खरीदने गये। लाला जी उन्हें कपडा दिखाने के 'काम-काज' मे लीन हो गए। लाला जी ने उनसे अपने बहनोई मधुसूदन और उनके परिवार की कुशलता के विषय मे मालूम किया। उन महाशय ने उन्हें बताया कि उनके बहनोई का शव अभी मलबे मे दबा पडा है, उनकी बहन अस्पताल मे है और उनका भानजा मर गया है तब भी वे उदास होकर अपने 'काम-काज' मे लगे रहे। उनकी उदासी का 'काम-काज' पर कोई प्रभाव नही पडा।

(२) मरदान का पठान यूसुफ रावलपिंडी मे जेल का चौकीदार था। उसने यह नौकरी ससुर के ताने से आहत होकर की थी। वह प्रति मास दस रुपया अपने ससुर को भेज देता था। १५ वर्ष की नौकरी मे उसने कभी एक दिन की भी छुट्टी नही ली थी। अचानक ही उसे ससुर की बीमारी का तार मिला। यूसुफ को उन्होंने बुलाया था। वह अन्तिम समय ससुर की सेवा करने के लिये उत्सुक हो उठा। उसने जेलर साहब से छुट्टी माँगी। जेलर साहब ने छुट्टी देने मे टाल-मटोल की, परन्तु क्लर्क के कहने पर उन्होंने दो दिन बाद

छुट्टी देने का वायदा कर दिया। उन्होंने बताया कि दो दिन मे उनकी सेवो की पेटी काश्मीर मे आ जायेगी और उस पेटी को वे यूसुफ के हाथ पेशावर के जेल इन्सपेक्टर के पास भेजना चाहते है। जेलर साहब का यह काम इतना आवश्यक था कि बेचारा यूसुफ उनसे पहले छुट्टी देने के लिये कहने का साहस न कर सका।

(३) शनिवार का दिन था। देमराज तेजी से साइकिल पर बैंक चला जा रहा था। उसके जेब मे पाँच सौ रुपये के नोट थे। वह अपने मालिक का 'पामेड वैसलीन' की रेलवे रसीद को लाने के लिये जा रहा था। दोपहर का पौन बजा था। जब वह गोल बाग के पास पहुँचा, तो कुछ मनुष्यो ने उसे रोककर कहा—"कोई मुसाफिर चलते-चलते बेहोश हो गया है। जरा साइकिल पर चढकर पास के होस्टल मे पानी ला दीजिये।" पहले तो उसे दया आई, परन्तु तुरन्त उसे यह स्मरण हो आया कि १५ मिनट के पश्चात् बैंक बन्द हो जायेगा और वह यह कहकर चला गया कि अभी २०-२५ मिनट में वापिस आता हूँ। जब वह बैंक से लौट रहा था तो उसने सुना कि वह व्यक्ति मर गया है। उसने एक ठंडी सास ली और वहाँ से चल दिया।

समीक्षा

कथावस्तु—चन्द्रगुप्त विद्यालकार की प्रस्तुत कहानी 'काम-काज' साहित्य के इस क्षेत्र मे एक नया प्रयोग है। इसी कारण इसका पर्याप्त महत्त्व है। इस कहानी मे कोई विशेष कथानक नही है। इसमे एक ही भाव को तीन विभिन्न रूपो मे प्रस्तुत किया गया है। ये तीनो चित्र प्रभाव की एकता से एक सूत्र मे बधे हुए हैं। कहानी का प्रथम रूप पाठक के बुद्धि-क्षेत्र मे जिस सस्कार-बीज को बोता है, दूसरा रूप उसे सीचता है और तीसरा उसे अकुरित कर देता है। इस कहानी के प्रथम रूप मे कौतूहल के साथ होने वाला आरम्भ और कपडो के दिखाने के साथ-साथ होने वाला विकास, बहनोई तथा भानजे की मृत्यु तथा बहन के घायल अवस्था मे अस्पताल मे पडे होने के समाचार के रूप मे कहानी चरम-सीमा पर पहुँच जाती है, परन्तु लाला कस्तूरीमल के 'काम-काज' पर यह भाग्यहीन खबर कोई प्रभाव नही डालती है। कहानी के दूसरे तथा तीसरे रूप मे भी कहानी के विकास का क्रम बना हुआ है। वास्तव मे कहानी-क्षेत्र मे कथानक गठन का यह एक नवीन प्रयोग प्रशसनीय है।

पात्र चरित्र-चित्रण—प्रथम भाग में दो पात्र प्रमुख हैं—लाला कस्तूरीमल तथा क्वेटा से आया हुआ व्यक्ति। दूसरे दृश्य में तीन पात्र प्रमुख हैं—प्रमुख, जेलर तथा क्लर्क। तीसरे दृश्य में दो पात्र प्रमुख हैं—देवराज और ठेकेदार। इस प्रकार प्रमुख पात्रों की संख्या कुछ अधिक जान पड़ती है। परन्तु सभी पात्र यथार्थ जीवन के पात्र हैं। इन पात्रों का चुनाव लेखक ने विभिन्न वर्गों से किया है। सभी पात्रों की चारित्रिक विशेषताओं का अध्ययन मनोवैज्ञानिक आधार पर हुआ है। लाला कस्तूरीमल का चरित्र एक ऐसे स्वार्थी दुकानदार का चरित्र है जो निकट सम्बन्धी के सर्वनाश का अशुभ समाचार सुनकर भी प्रभावित नहीं होता है। वह पहले की भाँति कार्य करता रहता है। दूसरे भाग में प्रमुख का चरित्र महान् है परन्तु जेलर का चरित्र भी एक स्वार्थी व्यक्ति का चरित्र है। तीसरे भाग में देवराज का चरित्र महान् है परन्तु वह परतन्त्रता से विवश है।

कथोपकथन—यह कहानी का एक महत्त्वपूर्ण तत्त्व है। प्रस्तुत कहानी के सभी संवाद पात्रों की मनोवृत्ति का उद्घाटन करते हैं। उनसे उनके व्यक्तित्व का स्पष्टीकरण होता है। कस्तूरीमल के संवाद स्पष्ट बताते हैं कि कामकाज को वह मानवता से भी अधिक महत्त्व देता है। जेलर के संवादों से भी उसकी स्वार्थपरता की दुर्गन्ध आती है। तृतीय भाग संवादों की दृष्टि से कुछ शिथिल है।

वातावरण—वातावरण की दृष्टि से देखने पर मालूम होता है कि कुशल कहानीकार पर्यवेक्षण शक्ति अनुभवशीलता तथा चित्रण कुशलता से सम्पन्न है। बजाज की दुकान का चित्रण करते समय कैंची से बहलों की डोरी काटने से लेकर कपड़ों की किस्मों तक का वर्णन, वस्त्र विक्रेताओं की बातचीत करने का ढंग, नौकरों द्वारा माल लगाने के तरीके आदि का यथार्थ चित्रण किया गया है। पठानों के अनोखे प्रान्त का वर्णन भी वास्तविकता के धरातल पर हुआ है। चिट्ठियाँ छुड़ाने वाले नौकर की स्थिति तथा किसी मुसाफिर के सड़क पर बेहोश हो जाने पर होने वाली घटनाओं के स्वरूप का परिचय भी अत्यन्त स्वाभाविक ही है।

भाषा तथा शैली—भाषा सरल, पात्रानुकूल तथा स्वाभाविक है। इसमें कहीं-कहीं पर प्रान्तीय शब्दों का भी प्रयोग हुआ है। लेखक ने प्रस्तुत कहानी

को वर्णनात्मक अन्यपुरुष-प्रधान शैली मे लिखा है। तीन कथाओ को एक सूत्र मे गूँथने की शैली नवीन है।

उद्देश्य—लेखक ने आधुनिक युग मे बहुधधी जीवन पर तीव्र प्रहार किया है। इस बहुधधी जीवन मे फसे होने के कारण मनुष्य पशु बनता चला जा रहा है। उसमे से मानवोचित गुणो का लोप होता चला जा रहा है। लाला कस्तूरीमल का जीवन इसका एक उदाहरण है।

कोटर और कुटीर

(सियारामशरण गुप्त)

कथासार—ग्रीष्म ऋतु थी। कडाके की गर्मी पड रही थी। दोपहर का समय था। सूर्य बहुत तेजी से चमक रहा था। चारो ओर वर्षा के न होने के कारण मलीनता छाई हुई थी। एक वृक्ष पर लटके हुए एक कोटर मे एक चातक पुत्र प्यास से तड़प रहा था। उसने पिता से कहा—मैं अब मेघ की आशा मे प्यासा नही रह सकता। जहाँ से दूसरे जल पीते है, मै भी वही से पीऊँगा।" पिता ने बहुत समझाया, परन्तु उसने मर्यादा की परवाह न करते हुए जल पीने का हठ किया। पिता ने पोखर की ओर सकेत करके पूछा—वहाँ से जल पीओगे ?" चातक पुत्र ने उत्तर दिया, "वह तो गन्दा है। मैं तो गगाजल पीऊँगा।" पिता ने कहा—"यदि तुम नही मानते हो तो जाओ गगाजी पर जाकर जल पी आओ, गगाजी का यहाँ से सात दिन का मार्ग है। परन्तु किसी और जल को ग्रहण न करना।" पुत्र पिता की बात मानकर गगाजी को उड़ चला।

प्रत्येक रात्रि को वह कही न कही विश्राम करता था। चौथे दिन सध्या समय उसने एक वृक्ष पर विश्राम किया। वृक्ष के नीचे एक कुटीर बनी हुई थी। वहाँ पर ६० वर्षीय बुद्धन चारपाई पर लेटा हुआ था। उसका आधा शरीर किसी रोगसे निष्क्रिय हो गया था। उसका सहारा उसका एक मात्र १५-१६ वर्षीय पुत्र गोकुल था। गोकुल प्रात मजदूरी करने जाता और सध्या समय लौटता। जो कुछ वह दिन भर कमाकर लाता उससे ही उनका गुजारा चलता था।

उस दिन बहुत देर हो गई थी, गोकुल वापिस नही आया था। बुद्धन को बहुत चिन्ता हो रही थी। परन्तु वह विवश था। काफी देर के पश्चात

गोकुल आया। पुत्र को देखकर पिता प्रसन्न हो उठा। गोकुल ने आकर पिता को बताया कि आज मजदूरी नहीं मिली है इसलिये आज भूखा ही रहना पड़ेगा। उसने पिता को यह भी बताया कि सन्ध्या समय लौटते हुए उसे मार्ग में एक बटुआ मिला? उसमें रुपये थे। वह पिता की शिक्षानुसार उस बटुए को लेकर वापिस दौड़ा। बहुत दूर जाने पर एक गाड़ी मिली। वह बटुआ उसमें बैठे हुए व्यक्ति का ही था। वह बटुआ पाकर बहुत प्रसन्न हुआ। वह आदमी गोकुल को दो रुपये पुरस्कार देने लगा, परन्तु उसने अस्वीकार कर दिया। फिर वह घर को लौट आया। इसलिये उसे लौटने में विलम्ब हो गया। पिता यह सुनकर बहुत प्रसन्न हुआ और उसे आत्म-शान्ति हुई। जब गोकुल ने पिता से कहा कि अच्छा होता यह उससे कुछ पैसे उधार माँग लाता तो पिता ने कहा कि उधार माँगना एक प्रकार की भीख ही है। आज वह अपने जीवन को धन्य अनुभव कर रहा है। आज इस आत्म-तृप्ति में उसकी जीवन भर की भूख मिट रही है। एक-दो दिन की भूख हमारा कुछ भी नहीं बिगाड़ सकती। पिता ने उसे चातक का उदाहरण भी दिया।

चातक-पुत्र उनकी सब बातों को वृक्ष पर बैठा सुन रहा था। उसको भी इस कहानी से शिक्षा मिली। दूसरे दिन प्रातः वह वापिस अपने कोटर को लौट चला। मार्ग में यथेष्ट वर्षा हुई और उसने तृप्त हो कर जल पिया। इस प्रकार चातक-पुत्र की निराशा उल्लास में परिवर्तित हो गई।

समीक्षा

कथवस्तु—सियारामशरण गुप्त की प्रस्तुत कहानी का कथानक दो भागों में विभक्त है परन्तु दोनों भाग एक ही भावसूत्र तथा परिणाम से जुड़े हुए हैं। कहानी में आदि से अन्त तक भावात्मकता, कौतूहल तथा जिज्ञासा के भाव हैं। अन्त में जा कर भावना का रहस्य खुल जाता है और कहानी का नाम भी सार्थक सिद्ध हो जाता है। कथानक सुगठित स्वाभाविक तथा रोचक है।

पात्र चरित्र-चित्रण—प्रस्तुत कहानी में दो पात्र मुख्य हैं—चातक तथा गोकुल। दोनों का ही चरित्र उच्च कोटि का है। चातक भावना-वश से वञ्चक का नाचना का करने को तैयार हो जाता है, परन्तु गोकुल भावना की रक्षा हर दशा पर करने को तैयार है। गोकुल का हृदय बहुत ही दृढ़ता तथा

धैर्य से पूर्ण है। दोनों के पिताओं के चरित्र वात्सल्यपूर्ण होने के साथ-साथ आदर्श भी हैं।

कथोपकथन—सजीव प्रभावशाली तथा मर्मस्पर्शी हैं। चातक-पुत्र के संवादों में स्वाभाविक दुर्बलता और हठ है, परन्तु गोकुल के वचनों में ओज तथा दृढ़ता है।

वातावरण—लेखक ने इस कहानी में चातकपुत्र की आकुलता दिखाने के लिए कहानी के आरम्भ में ही सूर्य की ज्वाला का एक अच्छा चित्रण दिया है। इसी प्रकार गोकुल की कहानी में भाव के अनुकूल ही वातावरण है।

भाषा तथा शैली—भाषा सुन्दर, प्रौढ़ तथा साहित्यिक है। सम्पूर्ण कहानी भावात्मक तथा प्रवाहपूर्ण शैली में लिखी गई है।

उद्देश्य—इस कहानी का उद्देश्य साधना की शक्ति दिखलाना है। कुन्दन अपने पुत्र गोकुल को यही उपदेश देता है वह कहता है कि साधना का फल अवश्य ही प्राप्त होता है। चाहे शीघ्र मिले या देर में। जो व्यक्ति नवीनता की ओर दौड़ते हैं, अन्त में एक दिन उन्हें भी अपने कुल की मर्यादा का ध्यान आता है। यह सिद्धान्त सब पर लागू होता है, हमें कभी भी ईमानदारी का परित्याग नहीं करना चाहिये। जो मनुष्य अपने प्रण पर अटल रहता है, वह अपने साथ संसार का भी भला करता है।

रामलीला

(श्री राधाकृष्ण)

सार—रामरतन आधुनिक विचारों का व्यक्ति था। उसने इन्हीं विचारों के कारण उसे रामलीला का [illegible] ऐसा पसन्द नहीं था, परन्तु इसे वह छोड़ भी नहीं सकता था। अन्त में उसने रामलीला के प्राचीन ढंग में परिवर्तन करने का विचार किया। उसने रामलीला के स्तर को ऊँचा उठाने के लिये [illegible] की। अन्त में उसे अपने प्रयत्न में कुछ सफलता प्राप्त हुई। उसे [illegible] करने के लिये एक [illegible] का एक उपयुक्त पात्र मिल गया। [illegible] में वृद्धि होने से [illegible] रामलीला [illegible] ख्याति भी प्राप्त हुई।

[illegible] वर्ष पश्चात् रामरतन को ग्वालियर के महाराजा ने अपनी रामलीला करने के लिए [illegible] व्यक्ति की

आवश्यकता हुई। खोज करने पर उसे एक शराबी व्यक्ति मिल गया। उसने रावण का पार्ट लिया। जब वह उसे पुरस्कार देने लगा, तो उसे ज्ञात हुआ कि यह वही व्यक्ति है जिसने बाईस वर्ष पूर्व राम का अभिनय किया था।

समीक्षा

प्रस्तुत कहानी 'रामलीला' एक सामाजिक कहानी है। इसमे सामाजिक परिस्थितियो की ओर सकेत किया है। इन्ही परिस्थितियो के आधीन हो कर एक व्यक्ति राम मे रावण बनने के लिये विवश होता है।

कथावस्तु —वस्तु संक्षिप्त, प्रभावशाली, यथार्थ, स्वाभाविक तथा सुगठित है। आदि से अन्त तक इसमे कौतूहल तथा जिज्ञासा है। पाठक आरम्भ से कुछ और ही अन्त सोचता हुआ चला आता है, परन्तु अन्त में रहस्य खुलने पर ही चकित रह जाता है। यह कहानी मानव-जीवन की विषमता तथा यथार्थ पर अच्छा प्रकाश डालती है।

पात्र-चरित्र-चित्रण— कहानी में तीन प्रमुख पात्र है। रामरतन मुख्य पात्र है। सभी पात्रो की चारित्रिक विशेषताओ का उद्घाटन वर्णन द्वारा किया गया है। रामरतन के अन्तर्द्वन्द्व का चित्रण स्वाभाविक है। रामरतन का चरित्र आकर्षक एव व्यक्तित्व निखरा हुआ है।

कथोपकथन —सवाद संक्षिप्त है, परन्तु सजीव नही है। सवादो से पात्रो की अन्तर्भावनाओ का परिचय प्राप्त नही होता है।

वातावरण —लेखक ने सामाजिक वातावरण का कुछ आभास देने का प्रयत्न किया है। सिनेमा युग से पूर्व रामलीला ही व्यक्तियो के मनोरजन का एक साधन था। राजा-महाराजा तक इसमे रुचि लेते थे। रामलीला तो लोगो का पैतृक पेशा हो गया था। उस समय रामलीला का अभिनय प्राय अस्वाभाविक तथा ज्ञान-विहीन होता था। रामरतन के विचारो से इस तथ्य का सकेत होता है, "यह इस प्रकार राम की पैरोडी हो जाती है, लक्ष्मण का उपहास हो जाता है, राजा दशरथ की मिट्टी पलीद हो जाती है।" परन्तु उस समय भी कुछ लोग रामलीला के विरोधी थे।

भाषा तथा शैली —प्रस्तुत कहानी की भाषा बोलचाल की भाषा है। भाषा मुहावरेदार है और उसमें 'सम्मान', 'दर्शक', 'प्रतिरूप' जैसे तत्सम शब्दो का प्रयोग हुआ है। कहानी मे गाम्भीर्य है। व्यावहारिक भाषा प्रधान, वर्णनात्मक अन्यपुरुष-प्रधान शैली मे कहानी लिखी गई है।

उद्देश्य—कहानीकार ने अपनी इस कहानी के द्वारा मानव जाति को बताया है कि हमारा यह जीवन एक रामलीला ही है। इसमे हमे कभी किसी प्रकार का और कभी किसी प्रकार का अभिनय करना ही पडता है। मानव परिस्थितियो का दास है। इन परिस्थितियो के अनुसार ही कभी वह राम का अभिनय करता है तो कभी रावण का। लेखक ने इस कहानी मे यह भी बताया है कि वर्तमान युग ह्रास का युग है जिसने अतीत के राम को आज रावण बना डाला है। रावण बनने वाला व्यक्ति कहता है—"याद कीजिए, मैं वही आदमी हूँ। एक दिन आपके यहा मे राम बनता था। याद आया ?" स्वय रामरतन उसको उत्तर मे कहता है—"हाँ तुम वही राम हो। मुझे याद आया, तुम वही राम हो।"

प्रस्तुत कहानी का शीर्षक 'रामलीला' उचित ही है। इसमे आकर्षण एव कौतूहल है।

सेब और देव

(श्री अज्ञेय)

सार—श्री गजानन दिल्ली के एक कालिज मे इतिहास और पुरातत्त्व के प्रोफेसर थे। वे एक बार कुल्लू के पर्वतो पर पुरातत्त्व की सामग्री प्राप्त करने के उद्देश्य से गए और साथ ही भ्रमण भी हो जायेगा। निर्दिष्ट लक्ष्य पर पहुँचने के तुरन्त पश्चात् ही वे भ्रमणार्थ निकल पड़े। घूमते हुए वे एक सेब के उद्यान मे होकर निकले। वहाँ उन्होने एक पहाडी लडके को सेब की चोरी करते हुए देखा। उन्होने क्रोध मे भरकर उसके मुँह पर एक तमाचा मारा और सेब छीन कर फेक दिया। इसके पश्चात् वे आगे को बढे। अन्त मे वे एक गाँव के पास पहुँच गये। वही पर वे रुके। वहाँ पर पर्वत-शिखर पर एक देवी का स्थान था। प्रोफेसर साहब मार्ग की कठिनाइयो को सहन करते हुए मदिर तक जा पहुँचे। उन्होने सम्मानपूर्वक मदिर मे जाकर मूर्तियो की जाँच-पडताल की और उन्होने यह सोचकर कि इन मूर्तियो का मूल्य अच्छा मिल सकता है, देवी की मूर्ति अपनी जेब मे रख ली। वे सबकी आँखे बचाकर गाँव से बाहर निकल गये। जब वे गाँव से लगभग एक मील निकल गये तो वे उसी सेब के बगीचे पर आये और उन्होने उस लडके को पुन. सेब चुराते हुए पाया। हाथ का थोडा सा खाया हुआ सेब

वह कोट के गुलूबद मे छिपा रहा था। यह देख कर प्रोफेसर साहब को क्रोध आ गया। बस फिर क्या था उन्होने उसे धक्का दिया और मुँह पर दो तमाचे भी लगा दिए। लड़का जोर से रोने लगा। इसी समय उनका हाथ ओवरकोट की जेब मे गया। जेब मे रखी मूर्ति का ध्यान करके वे काँप उठे। उन्होने सोचा कि उन्होने भी तो चोरी की है। इसी अन्तर्द्वन्द्व मे फँसकर वे मन्दिर वापिस गए और मूर्ति को यथास्थान पर रख दिया। तब उन्हे एक दिव्य हार्दिक शाति का अनुभव हुआ।

समीक्षा

प्रस्तुत कहानी 'सेव और देव' हिन्दी जगत् के प्रसिद्ध कहानीकार श्री अज्ञेय की प्रतिनिधि रचना है।

कथावस्तु—कथा की मूल सवेदना है कि मनुष्य सदा दूसरो के अवगुणो को देखता है, अपने नही। लेखक को प्रो० गजानन के चरित्र के माध्यम के द्वारा इस मूल सवेदना की अभिव्यक्ति मे सफलता प्राप्त हुई है। प्रस्तुत कहानी मे विषय वस्तु की अपेक्षा कलाविधान का चमत्कार अधिक आकर्षक है। पाठक शीर्षक को पढते ही यह सोचता है कि कथा का आधार कोई भूत-प्रेतो की कथा होगी इससे पाठक के मन मे जिज्ञासा उत्पन्न हो जाती है। कथानक मे कौतूहल तथा आकर्षण है। कथा का वर्णनात्मक आरम्भ बहुत ही सुन्दर है। पहाडी बालक के सेब की चोरी करने की घटना से कथानक का विकास होता है। जब स्वय प्रो० गजानन मूर्ति की चोरी करते है तो कथा चरम सीमा पर पहुँच जाती है। देव मूर्ति को यथास्थान पर रखने के साथ-साथ कहानी का अन्त हो जाता है।

पात्र-चरित्र-चित्रण—प्रस्तुत कहानी मे केवल एक ही प्रमुख पात्र है और वह है प्रो० गजानन। प्रोफेसर साहब का चरित्र एक विशेष चरित्र है। लेखक ने उनके मनोवैज्ञानिक विश्लेषण मे पर्याप्त सफलता प्राप्त की है। मन की गहराइयो तथा व्यक्ति के अन्तर्द्वन्द्व का चित्रण बहुत ही सरलतापूर्वक हुआ है। प्रोफेसर साहब का प्रकृति-प्रेम, काम-भाव, आर्य सभ्यता के प्रति अनुराग, सस्कारो की जकडन, अर्थ और नाम का लोभ आदि वृत्तियो को चित्रित किया गया है।

कथोपकथन—कथोपकथन सरल, स्वाभाविक, पात्रानुकूल तथा सक्षिप्त है।

प्रोफेसर साहब के शब्दो मे स्वाभाविकता तथा सजीवता के साथ-साथ भाव-गम्भीरता का भी अभाव नही है – "यहाँ मन्दिर नहीं ? अरे भले आदमी यहाँ तो सैकडो मन्दिर होने चाहिएँ।" भोला-भाला ग्रामीण कितने सरल शब्दो मे कहता है—"बाबू जी, यहाँ तो लोग मन्दिर देखने आते नही। कभी-कभी कोई आता है तो यह मनूरिखी का मन्दिर देख जाता है,वस और तो हम जानते नहीं।"

वातावरण—वातावरण के चित्रण मे तो अज्ञेय जी की प्रसाद के बाद दूसरे नम्बर पर गणना होती है। प्रस्तुत कहानी मे भी वातावरण के चित्रण मे लेखनी का चमत्कार देखते ही बनता है। कहानी कुल्लू घाटी से सम्बन्धित है। इसलिए इसमे पर्वतीय प्रदेश का पूर्ण चित्रण स्पष्ट दिखाई देता है।

भाषा तथा शैली—भाषा सशक्त, चित्रमयी, सजीव तथा पात्रानुकूल है। भाषा को दोष से बचाने के लिए लेखक ने जहाँ तक हो सका वहाँ तक पहाड़ी पात्रो को शान्त रखा है। उन्हे बोलने का कोई अवसर नही दिया है। ऐसा लेखक ने इस उद्देश्य से किया है कि यदि पहाडी पात्र हिन्दी मे बोलते है, तो वे टूटी-फूटी हिन्दी बोलेगे और यदि वे पहाडी भाषा मे बोलते है, तो पहाडी भाषा हिन्दी मे दुर्बोध बन जाती है। शैली आकर्षक और वातावरण के अनुकूल सरल, गम्भीर और अलकृत है। प्रकृति सौदर्य को उन्होने अलकृत शैली के द्वारा अकित किया है।

उद्देश्य—मनुष्य की दुर्बलताओ का प्रकाशन करने का लेखक ने सफल प्रयत्न किया है। इस कहानी मे स्पष्ट चित्रित कर दिया गया है कि मनुष्य अपने अवगुणो तथा दोपो की ओर तो ध्यान नही देता है, परन्तु अन्य व्यक्तियो के अवगुणो की ओर तो उसका ध्यान फौरन जाता है। प्रो०गजानन देवमूर्तियो की चोरी करते समय तो सब कुछ भूल जाते है, परन्तु एक निर्धन पहाड़ी बालक उदरपूर्ति के लिए सेब तोडता है, तो उसे बुरा भला कहते है तथा पीटते है। वास्तव मे ससार की गति यही है और इसी गति का विश्लेषण और चित्रण करना कहानी का लक्ष्य है।

दुःख

(श्री यशपाल)

सार—दिलीप अपनी स्त्री हेमा को बहुत प्रेम करता था। दिलीप ने उसे पूर्ण स्वतन्त्रता दी हुई थी। इतने पर भी हेमा अपने जीवन से सतुष्ट नहीं थी। एक दिन दिलीप अपनी किसी सहेली के साथ सिनेमा की दूसरी

गो देखने चला गया तो वह रात भर रूठी रही। प्रात होते ही वह अपने मायके चली गई। दिलीप को अपनी पत्नी के इस व्यवहार से बहुत दुख हुआ। वह अपने मन को शान्त करने के लिए इधर-उधर घूमने चला गया। सन्ध्या को दीपक जलने के पश्चात् वह घर लौट रहा था कि मार्ग में उसने एक अल्प आयु के बालक को पकौड़े बेचते हुए देखा। बालक की दीन दशा पर उसे रहम आ गया और उसने दो आने में उसके सारे पकौड़े खरीद लिए। उस बच्चे के पास एक रुपये का तोड़ भी नहीं था, इसलिए दिलीप रात्रि के अन्धकार में उसके साथ-साथ उसके घर पहुँचा। वहाँ जब दिलीप ने घर की दीन दशा तथा दुखी माँ-बेटों को अधमूखा जीवन बिताते देखा, तो वह भी बहुत दुखी तथा उदास हो गया। रुपये का तोड़ उस बालक के घर पर भी नहीं मिला। दिलीप रुपया वहीं छोड़कर घर लौट आया। घर पर उसे हेमा का पत्र मिला। उसने लिखा था—'मैं इस जीवन में दुख ही देखने के लिए पैदा हुई हूँ।' दिलीप ने उस पत्र को फाड़कर फेंक दिया।

समीक्षा

कथावस्तु—श्री यशपाल जी साम्यवादी विचारों के लेखक हैं, इसलिए उनकी कहानियों में निर्धन और उपेक्षित वर्ग के प्रति सहानुभूति होना स्वाभाविक ही है। प्रस्तुत कहानी भी एक पितृ-हीन बालक तथा उसकी विधवा माता की निर्धनता तथा करुण जीवन की गाथा है। इस कहानी में स्पष्ट बताया है कि निर्धन का दुख तो वास्तविक होता है, परन्तु धनी व्यक्ति तो प्रायः काल्पनिक दुख में ही पीड़ित रहते हैं। लेखक दोनों वर्गों के दुख को पाठकों के सामने प्रस्तुत करता गया है। तुलनात्मक दृष्टि से दुख के रूप का बाद में पता चलता है, इसलिए पाठक के हृदय में दुख के वास्तविक रूप को जानने की जिज्ञासा बनी रहती है और यही इस कहानी के कथानक की सफलता है। कहानी का आरम्भ एक ऐसे सुन्दर विचार-विन्यास से होता है जिसमें कौतूहल है और पूर्वाभास का तत्त्व है। जब हेमा अपने मायके चली जाती है, तो दिलीप के विलोभ के साथ कहानी का विकास होता है। जब कहानी में निर्धन माता की दीनदशा तथा उसके वात्सल्य का चित्रण होता है, तो कहानी चरम सीमा पर पहुँच जाती है। हेमा के पत्र की प्राप्ति और दिलीप के द्वारा उसे फाड़े जाने पर कहानी का अन्त हो जाता है।

पात्र-चरित्र-चित्रण—हेमा के चरित्र को सकेतात्मक प्रणाली द्वारा लेखक ने चित्रित किया है। सदेहशील होने के कारण उसका जीवन दुःखी है। दिलीप हेमा से जितना प्रेम करता है, हेमा उसकी उतनी ही उपेक्षा करती है। इसका परिणाम यह होता है कि अन्त मे वह भी हेमा से घृणा करने लगता है। लेखक ने दिलीप की हार्दिक कोमलता तथा द्रवणशीलता सम्बन्धी चारित्रिक विशेषताओ को भी सुन्दरता से चित्रित किया है। बालक का चरित्र स्वाभाविक होने के साथ-साथ उसमे एक प्रकार की आदर्श भावना भी है। वह कडाके की सर्दी में भी पकौडे वेचने जाता है, यह उसकी कर्मण्यता का प्रमाण है। उनकी मातृ-भक्ति तथा बाल-चपलता का भी सुन्दर चित्र प्रस्तुत किया गया है। माता के सहनशीलता, विश्वास-परायणता आदि गुणो को भी अंकित किया गया है।

कथोपकथन—संवाद अत्यन्त संक्षिप्त, सजीव, पात्रो की मनोवृत्ति के अनुकूल तथा कथा-विस्तार मे सहायक हैं। सवादो से पात्रो की चारित्रिक विशेषताओ का भी उद्घाटन होता है। इस प्रकार सवादो की दृष्टि से प्रस्तुत कहानी पूर्णरूप से सफल है।

वातावरण—वातावरण को चित्रित करने में लेखक को पूर्ण सफलता प्राप्त हुई है। लेखक चित्र प्रस्तुत करने में बहुत ही कुशल है। मिंटो पार्क का वर्णन देहली के मिंटो पार्क का यथार्थ वर्णन है। पतगो के ससार का चित्रण सुन्दर होने के साथ-साथ प्रेरणाप्रद भी है। मानवीय प्रकृति का अध्ययन लेखक की एक विशेषता है, बालक का वर्णन करते हुए वे कहते है, "लड़के के मुख पर खोमचा वेचने वालो की सी चतुरता न थी।"

भाषा तथा शैली—भाषा सरल तथा व्यावहारिक है। यह कहानी अन्य-पुरुषप्रधान वर्णनात्मक शैली मे लिखी गई है।

उद्देश्य—प्रस्तुत कहानी का उद्देश्य वास्तविक दुःख और धनी लोगो के काल्पनिक दुःख को चित्रित कर समाज की विषमता का उद्घाटन करना है। समाज उन निर्धन दीन-दुखियो की ओर ध्यान भी नही देता है जो क्षुधा से पीडित है, जिनके पास तन ढापने के लिए वस्त्र तक नही है। दूसरी ओर समाज में हेमा जैसी धनाढय महिलायें है, जिन्होने कभी वास्तविक दुःख को जाना ही नही है। साधारण सी बात पर वे काल्पनिक दुःख से पीडित हो उठती है और उनसे उपेक्षित होकर दिलीप जैसे सहस्रो व्यक्ति अपनी मृत्यु की कामना करने के लिये विवश हो जाते हैं।

प्रस्तुत कहानी का शीर्षक 'दु:ख' उचित ही है, क्योंकि इसमें निर्धनों के वास्तविक एवं धनी व्यक्तियों के काल्पनिक दु:खों का वर्णन है।

टेबिललैंड

(उपेन्द्रनाथ अश्क)

नोट—यह कहानी प्रभाकर के पाठ्यक्रम में यूनीवर्सिटी द्वारा स्वीकृत नहीं है।

प्रश्न ६—'कर्त्तव्य' तथा 'अपना घर' कहानियों का सार देकर उनकी समीक्षा करो।

कर्त्तव्य

(श्री कमला चौधरी)

कथासार—उषा का पति उसे बहुत प्यार करता था। प्राय: उसकी सहेलियां उससे पूछा करती थीं—"अरे! तूने उस पर क्या जादू कर रखा है?" उसका पति एक दिन भी उषा से अलग नहीं रह सकता था।

एक बार उषा तथा उसका पति बिहार प्रांत के हरिहर क्षेत्र के मेले को देखने के लिये गए। उन्होंने लोगों को नौका पर घूमते देखा, तो वे भी एक नौका पर सवार हो गये। अधिक व्यक्तियों के होने से नौका में वजन अनुपात से अधिक हो गया और नौका बीच धार में भँवर में फँसकर डूबने लगी। सभी लोग अपने प्राण बचाने के लिए नदी में कूद पड़े, केवल उषा तथा उस का पति ये दो ही प्राणी नौका में रह गए। उषा नेत्र बन्द करके अपने पति की कुशलता के लिये प्रार्थना कर रही थी, परन्तु अन्त में वह सब कुछ भूल गई और अपने पति की छाती से लिपट कर अपने प्राणों का उत्सर्ग कर देना चाहती थी, परन्तु ज्यों ही उसने भुजाओं को फैलाया, तो उसने पति को वहाँ नहीं पाया। उसका पति पहले ही नदी में कूद चुका था। उषा नौका में गिर पड़ी। सौभाग्य से नौका तट पर आ लगी और उषा के प्राण बच गये। अब कुछ लोगों ने उसके पति पर छींटे [illegible]। उषा अपने पति के व्यवहार से [illegible] थी, क्योंकि उसे चिन्ता थी कि अब [illegible] सहेलियों

उसका बच्चा जाग गया। उषा ने बच्चे को उठाकर हृदय से लगाया। इसी समय भयकर भूकम्प आ गया। उषा दौडकर बच्चे को बाहर छोड़ आई। फिर वह पति को लेने के लिए अन्दर आई। इसी समय छत गिर पडी और उषा अपने पति की छाती पर गिर कर पति के साथ ही इस नश्वर ससार से विदा हो गई। अन्त समय मे वह अपने पुत्र के लिए मगल-कामना भी न कर सकी।

समीक्षा

कथावस्तु—प्रस्तुत कहानी का कथानक गृह-जीवन से सम्बन्धित है। दम्पति प्राय प्यार तथा आदर भाव का जीवन व्यतीत करते हैं और पडौसियो के भी उनके विषय मे अच्छे विचार है। परन्तु सच्चे प्रेम की परीक्षा समय आने पर होती है। ऐसे अवसरो पर प्राय ऐसा देखा जाता है कि पति की ओर से या पत्नी की ओर से कर्त्तव्य पालन नही हो पाता है। प्रस्तुत कहानी मे जीवन की इसी सचाई पर प्रकाश डाला गया है। इस कहानी मे पति की बे-वफाई तथा पत्नी की प्रीति एव कर्त्तव्य-पालन का चित्रण किया गया है। कहानी के दूसरे भाग मे भूकम्प की घटना कुछ अस्वाभाविक सी प्रतीत होती है। ऐसा लगता है मानो कहानी के प्रथम भाग का प्रतिकार करने के लिए द्वितीय भाग की रचना की गई है। परिस्थिति में अचानक होने वाला परिवर्तन कथानक की स्वाभाविकता को नष्ट करता है।

पात्र चरित्र-चित्रण—कहानी में उषा तथा उसका पति दो ही प्रमुख पात्र है। उषा का चरित्र प्रस्तुत करने में लेखिका को आशातीत सफलता प्राप्त हुई है। इस कहानी के पात्र जीवन-सत्य की यथार्थ और पूर्ण अभिव्यक्ति कराने मे असफल है। उषा के चरित्र को इतना ऊँचा उठाकर भी लेखिका ने उसके मुख से यह शब्द कहलवाकर एक प्रकार से पति पर तीखे व्यग्य करवाये हैं— "ससार मे कौन ऐसा है जिसके प्रेम में स्वार्थ की छाया नही होती? किन्तु कर्त्तव्य। हाँ, मानव कर्त्तव्य की ही श्रृखला मे बँधा है, किन्तु इससे क्या, अपनी प्राणरक्षा करना तो कर्त्तव्य है।" दूसरे भाग मे उषा का अन्तर्द्वन्द्व स्वाभाविक है। उषा के पति को तो मानो लेखिका ने गूँगा बनाने का प्रयत्न किया हो। वह समस्त कहानी में दो स्थानो पर ही कुछ बोलता है। उसमे चिन्तन-शक्ति का पूर्ण अभाव है। वह हृदयहीन मालूम होता है। इस प्रकार हम कह

अपनी गलती का अनुभव हुआ। उन्होने उसे आश्वासन दिया कि वह नीलम का पूरी तरह इलाज करायेंगे और दोनो को हर प्रकार से सुखी रखने का पूरा प्रयत्न करेंगे। इसी समय नीलम ने नेत्र खोलकर माँ से पानी माँगा। माँ ने उसे पानी देकर कहा—"जल्दी अच्छे हो जाओ भैया? फिर अपने घर चलेंगे।"

समीक्षा

कथावस्तु—प्रस्तुत कहानी का कथानक लेखिका के अपने जीवन से सम्बन्धित होने के कारण स्वाभाविक तथा मार्मिक वन पडा है। आरम्भ मे पाठको के हृदय मे जो जिज्ञासा उत्पन्न होती है, विस्तार मे जाकर वह और भी अधिक प्रबल हो जाती है। जब नीलम बीमार होता है, तो कहानी चरम सीमा पर पहुँच जाती है। अन्त मे जाकर 'अपना घर' की रहस्यमयी महिमा स्पष्ट हो जाती है।

पात्र चरित्र-चित्रण—पात्र चरित्र-चित्रण कहानी का एक प्रमुख तथा महत्त्वपूर्ण तत्त्व है। प्रस्तुत कहानी चरित्र प्रधान है। इसमे पात्रो का चरित्र वहुत ही कुशलता, स्वाभाविकता तथा चित्रोपमता के साथ अकित किया गया है। वालक के स्वभाव, मातृ-हृदय, परिवार की स्त्रियो के द्वेष तथा घृणा की भावना का वहुत ही सुन्दर तथा स्वाभाविक चित्र अकित किया गया है।

कथोपकथन—यद्यपि शैली वर्णनात्मक है और वर्णनात्मक शैली मे सवादों के लिए गुजाइश नही होती है, परन्तु फिर भी वीच-वीच मे सुन्दर सवादों की योजना की गई है। सवाद कुछ लम्बे है, परन्तु उनकी भावप्रवणता उस लम्बाई को अखरने नही देती है। उमा की उक्तियाँ वहुत ही स्वाभाविक, सजीव एव यथार्थवादी है। नीलम की उक्तियो में भी स्वाभिमान तथा भोलेपन का सामजस्य है।

वातावरण—वातावरण का चित्र प्रस्तुत करने मे तो होमवती को वहुत अधिक सफलता प्राप्त हुई है। परिवार की अन्य स्त्रियो का चित्रण करते हुए इतना कौशल दिखाया गया है कि घर का सारा वातावरण पाठको की आखो के सामने आ जाता है।

भाषा तथा शैली—भाषा सरल, सशक्त, पात्रानुकूल, मुहावरेदार तथा प्रवाहपूर्ण है। अन्यपुरुष-प्रधान वर्णनात्मक शैली मे कहानी की रचना वहुत ही सुन्दर हुई है।

उद्देश्य—प्रस्तुत कहानी मानव जाति को सदेश देती है कि विधवा तथा

उसका पुत्र अथवा अन्य कोई भी आपत्तिग्रस्त प्राणी भी हमारे जैसा ही हृदय रखते हैं। हमें उनके प्रति सहानुभूति एव प्रेम रखना चाहिए। लेखिका भारतीय समाज मे विधवा की दयनीय दशा का चित्र प्रस्तुत करके समाज के हृदय मे एक महान् परिवर्तन ला देना चाहती है। इसीलिए उसने अन्त मे जगदीश के पाषाण हृदय को भी पिघला दिया है।

अन्त मे हम कह सकते हैं कि प्रस्तुत कहानी तत्त्वो के आधार पर पूर्ण रूप से सफल है।

प्रश्न १०—'यथार्थ और कल्पना' नामक कहानी-संग्रह में आपको कौन सी कहानी सबसे अच्छी लगती है और क्यों ?

उत्तर—'यथार्थ और कल्पना' श्री विराज जी द्वारा सकलित २२ कहानियों का सग्रह है। ये सभी कहानियाँ हिन्दी साहित्य के आरम्भ से लेकर आज तक के प्रत्येक युग के प्रमुख कहानीकारो की प्रतिनिधि रचनाएँ हैं जैसा कि स्वयं सम्पादक ने भूमिका मे लिखा है—"इस सग्रह को विषयो और शैलियो की दृष्टि से वैविध्यपूर्ण बनाने का पूरा-पूरा प्रयत्न किया गया है। कहानी के क्रमिक विकास की दृष्टि से भी इसे प्रतिनिधि सग्रह कहा जा सकता है, ऐसा हमारा विश्वास है।" ऐसी परिस्थिति मे यह निर्णय करना कि कौनसी कहानी सर्वश्रेष्ठ है और कौनसी सर्वथा निकृष्ट है सरल कार्य नहीं है। विभिन्न कहानियों मे भिन्न-भिन्न विशेषतायें होंगी। किसी कहानी का विषय उत्तम होगा तो किसी की शैली और किसी को उनके चरम विकास पर लिखे होने के कारण उत्तम कहा जायेगा। ऐसी स्थिति मे कहानियो का तुलनात्मक निर्णय करना कठिन कार्य है।

मानव की रुचिभिन्नता भी कहानियो की तुलना करके उनमे से एक को सर्वश्रेष्ठ निश्चित करने मे बाधक है। विभिन्न मनुष्यो की रुचि विभिन्न होगी और प्रत्येक व्यक्ति अपनी रुचि के अनुसार ही किसी कहानी की श्रेष्ठता व निकृष्टता का निर्णय करेगा। इस प्रकार एक मनुष्य किसी एक कहानी को [illegible] तो [illegible] दूसरी को। मनोवैज्ञानिक विश्लेषण मे [illegible] 'पाजेब' [illegible], ऐतिहासिक दृष्टिकोण का व्यक्ति '[illegible]' को, [illegible] तथा [illegible] व्यक्ति 'उसकी माँ' को [illegible] 'पु[illegible]' [illegible] को सर्वश्रेष्ठ बतायेगा, क्योंकि वही [illegible] है। इसके अतिरिक्त विभिन्न आलोचकों के [illegible] भी भिन्न-भिन्न हैं। [illegible] सकता है तो

दूसरा प्रतिपादन-शैली को, तीसरा वर्ण्य-विषय को चौथा स्वरूप के विकास को और पाँचवाँ तात्त्विक समालोचना को ही कहानी की सर्वश्रेष्ठता का मापदण्ड मानता है। ऐसी स्थिति मे कोई भी निर्णय करना बहुत ही जटिल कार्य है।

साधारणतया आलोचक तथा पाठकगण एक श्रेष्ठ कहानी मे जिन गुणो का होना आवश्यक मानते है वे निम्नलिखित है —

सक्षिप्त आकार, मौलिकता, प्रभावशीलता, जीवन की निकटता, तथ्यो का सामजस्य, कौतूहल की तीव्रता, हृदयस्पर्शिता, मनोरजकता आदि।

अब प्रस्तुत सग्रह मे सकलित कहानियो का पर्यवेक्षण करने पर हम इस परिणाम पर पहुँचते है कि 'गोशाला', 'रक्षावन्धन', 'कर्त्तव्य', 'कामकाज' तथा 'टैववलेंड' ये पाँच कहानियाँ कला-विधान की दृष्टि से शिथिल है। 'कोटर और कुटीर', 'मिस्त्री', 'प्रायश्चित्त', 'मिठाईवाला', 'रामलीला', 'वडे भाई साहव', 'सम्राट् का स्वत्व' आदि कहानियाँ कला-विधान की दृष्टि से तो सफल है, परन्तु फिर भी प्रत्येक मे कोई न कोई त्रुटि या अभाव आ जाने के कारण श्रेष्ठ कहानियो की गणना में नही आ सकती। 'कोटर और कुटीर' कहानी का प्रथम भाग काल्पनिक होने के कारण जीवन का निकट स्पर्श नही करता है। 'रामलीला' कहानी का सार्वजनिक लक्ष्य वौद्धिक व्यायाम के पश्चात् ही ज्ञात होता है।

अब प्रस्तुत सग्रह मे 'आकाशदीप', 'पाजेव', 'अपना घर', 'खूनी', 'उसने कहा था', 'शरणागत', 'सेव और देव', 'उसकी माँ' तथा 'प्रेमतरु' कहानियाँ शेष रहती है। इसमे सन्देह नही कि ये सभी कहानियाँ उच्च कोटि की है परन्तु इन पर भी जब हम तुलनात्मक विचार करते है, तो हम देखते है कि 'प्रेमतरु' की घटनाओ के अलौकिक और पात्रो के रहस्यवादी प्रकृति के होने के कारण, 'खूनी' तथा 'उसकी माँ' युग और परिस्थिति-विशेष से सम्बन्धित होने के कारण सर्वश्रेष्ठ नही कही जा सकती। 'शरणागत' में बुन्देला जाति को शरणागत रक्षा की आदर्श भावना का चित्र प्रस्तुत किया गया है, परन्तु सभी वर्ग तो वुन्देला नही वन सकते है। यह कहानी वर्ग-विशेष से सम्बन्धित होने के कारण सर्वश्रेष्ठ नही कही जा सकती। 'पाजेव' कहानी मे गम्भीर मनोवैज्ञानिक विश्लेषण है। इसमे लेखक ने केवल समस्या प्रस्तुत की है, उस का समाधान नही किया है। 'सेव और देव' कहानी सर्वसाधारण के लिए नही है। अब शेष तीन कहानियाँ रहती है—'आकाशदीप', 'उसने कहा था' तथा 'अपना घर'।

उपर्युक्त तीनों कहानियाँ ही उच्च कोटि की हैं। इनमें से प्रत्येक अपने युग की सर्वश्रेष्ठ कृति है। इनमें से 'आकाश दीप' में ऐतिहासिक वातावरण है और इसके पात्र सुदूर अतीत के पात्र होने के कारण हमारे सामने प्रेम का आदर्श तो प्रस्तुत कर सकते हैं, परन्तु हमारे वर्तमान जीवन में सहायक नहीं हो सकते हैं।

अब हमने शेष दो कहानियों की तुलना करके उनमें से एक को सर्वश्रेष्ठ ठहराना है। यह तो सर्वविदित ही है कि सन् १९२५ से लेकर आज तक 'उसने कहा था' कहानी की सर्वश्रेष्ठता का डंका बजता चला आ रहा है क्योंकि कलाविधान की कसौटी पर यह कहानी पूर्णरूप से सफल है। परन्तु इस कहानी में एक दोष है और वह यह है कि इसका सम्बन्ध केवल पंजाब के निम्न मध्य वर्ग से ही है। दूसरी ओर 'अपना घर' कहानी भी किसी प्रकार से 'उसने कहा था' कहानी से कम नहीं है। उसका सम्बन्ध व्यक्ति-विशेष से न हो कर समाज की उन सहस्रों युवती विधवाओं से है जिनका अपना कोई घर नहीं है। आज विधवा वर्ग विशेष की समस्या नहीं है, आज तो वह समस्त भारत की समस्या बन गई है। इस कहानी में 'उमा' के मातृत्व के विषय में सम्पादक महोदय ने कहा है—"मातृत्व का ऐसा सजीव चित्र अन्यत्र कम देखने में आया है।' परन्तु इन सब विशेषताओं के होने के साथ-साथ लेखिका के नारी जाति के प्रति मोह के आजाने के कारण यह कहानी 'उसने कहा था' की अपेक्षा श्रेष्ठ नहीं कही जा सकती है।

'उसने कहा था' कहानी आकार, व्यंजना, वातावरण और सजीवता आदि सभी बातों से उत्तम है। इसमें केवल कल्पना ही नहीं, बल्कि दैनिक जीवन की यथार्थ झाँकी भी है। 'यथार्थ और कल्पना' का इतना सुन्दर सामंजस्य अन्य किसी भी कहानी में नहीं है। प्रस्तुत कहानी में कल्पना से प्रसूत मानव जीवन के छिपे हुए व्यापक सत्य की जो भव्य और विशाल व्यंजना हुई है, वह निस्सन्देह स्तुत्य है। इसमें जीवन का जो वास्तविक स्वरूप अन्तर्निहित है, उसका वर्णन नहीं किया जा सकता। इसमें आदर्श का प्रतिपादन हुआ है। सभी दृष्टियों से यह कहानी उत्तम है। इसलिए इस कहानी को प्रस्तुत संग्रह की ही नहीं बल्कि हिन्दी कहानी-साहित्य की सर्वोत्तम कहानी कहने में कोई अतिशयोक्ति नहीं होगी।

तृतीय पत्र

इस प्रकार से समस्त प्रश्नों का उत्तर "प्रामाणिक प्रभाकर गाइड" में बड़ा ही सुन्दर दिया गया है। विद्यार्थियों को उससे पूरा लाभ उठाना चाहिये। गाइड में प्रश्नों के पश्चात् कुछ उद्धरणों की व्याख्या भी दी हुई है। विद्यार्थियों को उनका अध्ययन कर लेने से बहुत लाभ होगा और उन्हें नाटक के उद्धरणों की व्याख्या का ढंग आ जाएगा।

कीर्ति-स्तम्भ

हरिकृष्ण 'प्रेमी' का ऐतिहासिक नाटक है। इसको भी 'वितस्ता की लहरें' नाटक की भांति ही तैयार करना चाहिये। इसमें से भी नाटक की तत्वों के आधार पर आलोचना, पात्रों का चरित्र-चित्रण एवं दूसरे समालोचनात्मक प्रश्न पूछे जाते हैं। व्याख्या करने के लिये इस पुस्तक के उद्धरण भी परीक्षा में आते हैं। अत विद्यार्थियों को चाहिये कि पुस्तक के कथानक को कई बार समझ कर पढ़े। नाटक के आरम्भ में दिये हुए 'दर्पण' को अच्छी तरह पढ़कर उसमें से जो भी नाटक सम्बन्धी आलोचनात्मक प्रश्न बन सकते हैं, उन्हें लिख लें और फिर उनका उत्तर तैयार करें। इस पुस्तक के कुछ प्रश्नों के नमूने निम्नलिखित हैं —

प्रश्न—'कीर्ति-स्तम्भ' नाटक का नामकरण कहाँ तक सार्थक है? युक्ति-युक्त उत्तर दीजिए।

प्रश्न—'कीर्ति-स्तम्भ' नाटक में इतिहास और कल्पना का सुन्दर सम्मिश्रण है, इस पर प्रकाश डालिए।

प्रश्न—निम्नलिखित पात्रों का चरित्र-चित्रण कीजिए —

पृथ्वीराज, संग्रामसिंह, महाराणा रायमल, राजयोगी, शृंगारदेवी, सूरजमल।

"प्रामाणिक प्रभाकर गाइड" में इस नाटक की रचना के तत्वों के आधार पर आलोचना, उपर्युक्त प्रश्नों के उत्तर तथा दूसरे समालोचनात्मक प्रश्नों के उत्तर दिये गए हैं और साथ ही कुछ उद्धरणों की व्याख्या भी दी गई है। विद्यार्थियों को उनका अध्ययन करके परीक्षा में अच्छे अंक प्राप्त करने चाहिएं।

ललित-विक्रम

प्रश्न १—श्री वृन्दावनलाल वर्मा द्वारा लिखित ऐतिहासिक नाटक 'ललित-विक्रम' का संक्षिप्त कथानक लिखिए।

उत्तर—अयोध्या मे रोमक (रोमपाद) नाम का एक राजा राज्य करता था। उन्होने अपने पुत्र 'ललित' को शिक्षा देने का कार्य धनुर्वेद के आचार्य मेघ को सौपा। एक दिन 'ललित' आचार्य मेघ के बार-बार बताने पर भी अपने लक्ष्य-भेदन मे सफल नही होता है। उसी समय कपिंजल नाम का एक शूद्र वहाँ आ जाता है। वह राजकुमार को 'लक्ष्य-भेदन' की रीति बताता है और राजकुमार को अपने उद्देश्य मे सफलता प्राप्त होती है। राजकुमार का कपिंजल के प्रति अनुराग और आचार्य मेघ की उसके प्रति ईर्ष्या होना स्वाभाविक ही है। आचार्य मेघ कपिंजल को फटकारते हैं और इसी समय कपिंजल का स्वामी नीलपरिण वहाँ पर आ पहुँचता है। नीलपरिण एक धनाढ्य व्यवसायी है। वह वहाँ आकर बताता है कि कपिंजल उसका दास है और कार्य से जी चुराकर वहाँ भाग आया है। वह कपिंजल को धमकाकर अपने साथ ले जाता है। राजकुमार ललित कपिंजल का पक्ष लेना चाहता है परन्तु आचार्य जी के धमकाने पर वह चुप हो जाता है।

अयोध्या-पति रोमक अमात्यो के साथ बैठे हुए कई वर्ष से पड़ रहे दुर्भिक्ष पर विचार कर रहे है। इसी समय आचार्य मेघ वहाँ पर आते है। वे क्रोधित होकर रोमक से राजकुमार की शिकायत करते हैं। आचार्य जी राजा से यह भी कहते है कि राजकुमार ललित ने शूद्र कपिंजल का पक्ष लेकर एक धनाढ्य व्यापारी नीलपरिण का अनादर किया है। ललित आचार्य जी द्वारा लगाये गये दोषो का प्रतिवाद करता है, परन्तु राजा उसे धमकाकर चुप कर देता है। जब राजकुमार ललित राजा को यह बताता है कि कपिंजल के बताये हुए ढग से ही उसे लक्ष्य-भेदन मे सफलता प्राप्त हुई है, तो आचार्य जी क्रुद्ध होकर और राजकुमार को अभिशाप देकर चले जाते है। राजा

नेमक आचार्य मेघ के इन अत्याचार को समझ जाते हैं। वे अमात्य को यह सब बात बताते हैं। इसी समय नीलमणि वहाँ आकर राजा से कहता है कि कपिंजल कहीं भाग गया है। न तो उसने ऋण अदा किया है और नहीं उसने यातना की अवधि को पूर्ण किया है। नीलमणि राजा से उसे पकड़वाने की प्रार्थना करता है। राजकुमार नलिन राजा को बताता है कि कपिंजल के साथ दुर्व्यवहार हुआ है। उसे निर्दयता से पीटा गया है। वह इस कठोर तथा अमानुषिक व्यवहार से भयभीत होकर कहीं भाग गया होगा, परन्तु राजा नीलमणि को विश्वास दिलाता है कि वह कपिंजल को पकड़वाने का पूरा प्रयत्न करेगा।

कपिंजल नीलमणि के पंजे से भाग कर नैमिषारण्य में पहुँचता है। वहाँ पर ग्रामीण स्त्रियाँ उस पर दया करती हैं और उसे भोजन कराकर महर्षि सौम्य के आश्रम में भेज देती हैं। जिस समय वह महर्षि के आश्रम में पहुँचता है, उस समय महर्षि अपने शिष्यों—कुल्लक, वेद और आरुणि से बातें कर रहे थे। महर्षि सौम्य उससे सब बातें मालूम करके उसे अभयदान देते हैं। राजा के सेवक कपिंजल की खोज में महर्षि सौम्य के आश्रम में आते हैं, परन्तु महर्षि के प्रभाव के कारण वे आश्रम में प्रवेश नहीं करते हैं। कपिंजल की रक्षा हो जाती है। कपिंजल के हाथ न आने के कारण आचार्य मेघ झुँझला उठते हैं और वे राजा नेमक के विरुद्ध जनमत तैयार करने के लिये प्रयत्नशील हो जाते हैं।

समिति को अयोध्या जनपद-समिति के होने वाले अधिवेशन में अपनी रिपोर्ट देने का आदेश दिया जाता है।

महर्षि धौम्य कपिजल को योग के उपयुक्त समझकर गोमती नदी के तट पर वृक्षो से परिपूर्ण अरण्यानी मे समाधि लगाने के लिए छोड़ आते है। उधर अयोध्या जनपद के ग्रामो मे आचार्य मेघ राजा के कार्यो की निन्दा करके ग्रामवासियो को राजा के विरुद्ध सघर्ष करने के लिए उभारते हुए फिरते है। वे लोगो से कहते है कि.—

"सघर्ष करो, राजा को शाप दो, प्रात सध्या दोनो वेला—उसे एक महीने तक कोसो। इसके उपरान्त समिति का अधिवेशन करवा के बहुमत । निर्णय करो कि राजा को आसन्दी से नीचे पटक कर सदा के लिए कीड़े-कोडो की भाँति कर दिया जाय।"

इस प्रकार प्रदर्शन करके आचार्य मेघ सुवाहु, दीर्घवाहु आदि ग्रामीणो को उभार कर समिति मे राजा का विरोध करने के लिए तैयार कर लेते है। राजा रोमक अमात्य के साथ मिलकर प्रजा मे अपने प्रति सहानुभूति उत्पन्न करने के लिए उपाय सोचते है। राजकुमार ललित राजा से आज्ञा लेकर नैमिषारण्य में शिकार खेलने के लिए जाता है। सारे दिन भटकते रहने पर भी शिकार हाथ नही आता है। वह हाँके वालो के विलम्ब से आने पर झुँझलाता है। यहाँ तक कि एक हाँके वाले को सिर फोड देने की धमकी देता है, परन्तु दूसरा हाँके वाला उसे शात कर देता है और उसे कुछ-न-कुछ शिकार मिलने का आश्वासन दिलाता है।

नैमिषारण्य के दूसरे भाग मे गोमती नदी के तट पर वृक्षो के झुरमुट मे कपिजल समाधि लगाये दिखाई देता है। वेद और कुल्लक झोलियो मे फल-सग्रह करते हुए दिखाई पडते है। इसी समय हाँके का शब्द सुनकर वे दोनो एक वृक्ष पर चढ जाते है। राजकुमार ललित को एक शूकर घायल करके लोहू-लुहान कर देता है। उसके मुख से 'हा पिता आ' की चीख निकलती है। ललित की चीत्कार को सुनकर कपिजल समाधि छोड़कर वहाँ पहुच जाता है और अपने परिधान मे से एक लम्बा टुकडा फाडकर उससे उसके शरीर से बहते हुए रक्त को पोछता है और घाव पर पट्टी बाँध देता है। हाँके का

सचालक कपिजल के प्रति कृतज्ञता प्रकट करता है। वेद और कुल्लक भी वहाँ आकर उसे उसके कार्य के लिए बधाई देते है।

रोमक अपनी रानी ममता से सम्मति लेकर ललित को उनकी अपूर्ण शिक्षा को पूर्ण कराने के लिए महर्षि धौम्य के आश्रम में भेज देते है। महर्षि धौम्य उसे अपना शिष्य बना लेते है। राजा रोमक जब महर्षि धौम्य से दुर्भिक्ष की चर्चा और यज्ञ के प्रयत्नो का उल्लेख करते है, तो वे राजा को समिति के अधिवेशन मे अपनी बात स्पष्टता से व्यक्त करने तथा अपने अपराधो को निस्सकोच स्वीकार करने की सलाह देते है।

अयोध्या के सभा-भवन मे समिति की कार्य-विधि प्रारम्भ होती है। आचार्य मेघ राजा पर दोषारोपण करते हुए कहते है कि राजा के पापों के कारण ही छः वर्ष से दुर्भिक्ष पड रहा है और समस्त प्रजा दुखी है। समिति के कुछ सदस्य आचार्य मेघ का समर्थन करते है और कुछ उसका विरोध। समिति के सामने यह समस्या है कि राजा को पदच्युत कर दिया जाय या बना रहने दिया जाय अथवा उसे उतने समय के लिये अपदस्थ किया जाय, जब तक कि वह अपने पाप का अनुसधान करके उसका मार्जन न कर ले। ईशान जन-मत सग्रह करता है। अन्त मे यह निर्णय होता है कि राजा को उस समय तक के लिये पदच्युत किया जाय, जब तक कि वह अपने पाप का अनुसधान करके मार्जन न करे और शासन-सचालन का कार्य राजा के वर्तमान अमात्यों को ही सौंप दिया जाय। पदच्युत रोमक आत्म-चिन्तन करने के लिए वनों मे भटकता फिरता है। आचार्य मेघ आकाश-वाणी का ढोग रचकर राजा को उसके पापी होने का अनुभव कराता है। इससे राजा बहुत चिन्तित हो उठता है। राजा सभी स्त्री-पुरुषो के मुख मे भी अपने पापी होने की बात सुनता है।

महर्षि धौम्य अपने सभी शिष्यो को कठिन तप मे लगा देते हैं। वे राजकुमार ललित को भिक्षा मांगने के लिये गांव मे भेजने लगते है और साथ ही बिना आज्ञा कुछ भी खाने के लिये मना कर देते हैं। इस प्रकार ललित कठिन साधना मे लग जाता है।

पदच्युत राजा रोमक ऋषि-मुनियो से अपने चित्त की शान्ति का उपाय पूछता है, परन्तु उसे किसी से भी सन्तोषजनक उत्तर नही मिलता है। अन्त में वह ममता की सलाह से महर्षि धौम्य के आदेश का सहारा लेता है। जब राजा महर्षि धौम्य के आश्रम मे पहुँचते है, तो वहाँ पर राजकुमार ललित की कठिन साधना की बात सुन कर प्रसन्न होते है। राजा महर्षि को समिति का निर्णय, आकाश-वाणी आदि सभी बाते, बताते है। महर्षि राजा से स्पष्ट शब्दो मे कह देते है कि आकाश-वाणी तो किसी कपटी का षड्यन्त्र है। वे राजा को यह भी बताते है कि मेघ जैसे क्रोधी तथा अहकारी व्यक्ति की चिन्ता लेशमात्र भी नही करनी चाहिए। महर्षि राजा को यही परामर्श देते है कि उसे अपने पापो के सम्बन्ध मे विवेक के साथ सोचना चाहिए। इस पर रोमक महर्षि को बताता है कि उसका पाप तो यही है कि उसके राज्य में शूद्र कपिजल तप कर रहा है। महर्षि राजा को कपिजल का समाधिस्थ अवस्था में सूर्योदय के पश्चात् खड्ग से वध करने के लिए कहते हैं और ललित को राजा के साथ जाकर स्थान बताने के लिए आज्ञा देते है।

राजकुमार ललित तो अपने पिता रोमक के साथ चला जाता है। उधर महर्षि धौम्य अपने दूसरे सभी शिष्यो को कपिजल की रक्षा करने का आदेश देते हैं और स्वय भी कार्य-विधि देखने के लिए कपिजल की समाधि के पास ही छिप जाते है। उधर ललित मार्ग मे अपने पिता से कपिजल का वध न करने का आग्रह करता है। रोमक अपने पद और गौरव की रक्षा के लिए उस शूद्र का वध करना आवश्यक बताता है। परन्तु जब ललित रोमक को यह बताता है कि कपिजल ने ही उसके प्राणो की रक्षा की थी और साथ मे यह भी समझाता है कि देवगण केवल तपस्वी के ही सहायक होते है, तो रोमक असमजस मे पड जाता है। उसके हृदय मे सघर्ष होने लगता है और वह उसी समय अपना खड्ग फेक देता है। अब वह कपिजल के दर्शन करने के लिए चल देता है। समाधिस्थ कपिजल के दर्शन कर रोमक ललित के साथ लौटता है। यथावसर महर्षि धौम्य वृक्षो के, झुरमुट के पीछे से प्रकट होते है। वे ललित और राजा दोनो को अपनी परीक्षा मे सफल हुआ देखकर बहुत प्रसन्न होते है और रोमक से कहते है कि —

"आपके पाप है, परन्तु शूद्रो की तपस्या करना अथवा मेघ का कथित अपमान ये वे पाप नही हैं। आश्रम चलिए। उपयुक्त अवसर पर बतलाऊँगा।"

महर्षि धौम्य के आश्रम मे उनके शिष्यो के अतिरिक्त रोमक, ममता, सोम, ईशान तथा अमात्य भी उपस्थित है। महर्षि इसी अवसर को उपयुक्त समझकर राजा से कहते है—"शासक के पाप है आलस्य, प्रमाद, अदूरदर्शिता और दुविधा मे पडकर ठीक निर्णय पर न पहुँच पाना। कोर्वी और विष्टि के बन्द करने की ओर आँख चुराना। कृषि-शिल्प और वाणिज्य को भरपूर और सानुपात सहायता न देना। चोरो, लुटेरो, अत्याचारियो, अधर्मियो से जनपद की रक्षा न करना। वृद्धिभोगियो से ऋणियो को न बचाना, लाखो निवर्तन भूमि का संग्रह करके अपने उपयोग मे लाना और उस प्राचीन सिद्धान्त की, जिसमे कहा गया है कि सैकडो हाथो से इकट्ठा करो तो सहस्रों से बाँट दो, की उपेक्षा करके दरिद्रो और निस्सहायो को न बाँटना, राजकोष को जनपद का न समझकर अपना समझना, यह भी पाप है। थोडे बहुत ये तुमने सब किये हैं और उनका दण्ड भी भुगत लिया है। अब जनपद की आर्थिक विषमताओं की ध्यानपूर्वक परीक्षा करो और उन्हे हटाओ। वार्त्ता-शास्त्र का यही सिद्धात है। उसका विधिवत् प्रयोग करो। पापो का पूर्ण मार्जन इसी से होगा।"

वर्षा हो जाती है। दुर्भिक्ष के लक्षण दूर हो जाते है। राजा के प्रति प्रजा का विरोध भी समाप्त हो जाता है। सोम, समिति के ईशान आदि सभी प्रतिनिधि तथा अमात्य राजा रोमक का स्वागत करते है। महर्षि धौम्य दीक्षान्त और समावर्तन संस्कार सम्बन्धी भाषण देकर ललित रोमक आदि सबको विदा करते है। जीवन को प्रेरणा देने वाले तथा सत्कर्मो मे लगाने वाले गीत के साथ नाटक समाप्त हो जाता है।

प्रश्न २—'ललित-विक्रम' नाटक की शास्त्रीय परीक्षा करते हुए अपना मत स्थिर कीजिए।

अथवा

नाटकीय तत्वों के आधार पर 'ललित-विक्रम' नाटक की समीक्षा कीजिए।

उत्तर—पाश्चात्य नाट्याचार्यो ने नाटक के निम्नलिखित तत्त्व माने है—(१) कथावस्तु, (२) पात्र, (३) कथोपकथन, (४) देशकाल तथा वातावरण, (५) भाषा शैली, (६) उद्देश्य, (७) रस। जो नाटक इन तत्त्वो की कसौटी पर सफल उतरता है, वही नाटक सफल तथा उच्चकोटि का माना जाता है। अब हम श्री वृन्दावनलाल वर्मा द्वारा लिखित ऐतिहासिक नाटक 'ललित-विक्रम' का इन्ही तत्त्वो के आधार पर मूल्याकन करते है।

कथावस्तु—प्रस्तुत नाटक का कथानक उत्तर वैदिक काल का है। इसमें तत्कालीन समाज और सस्कृति की झाँकी उपस्थित करके सत्य की असत्य पर और धर्म की अधर्म पर विजय दिखलाई गई है। कथावस्तु अयोध्या जनपद की है। नाटक के आरम्भ मे राजकुमार ललित अपना उद्दण्ड व्यक्तित्व लेकर उपस्थित होता है। अहकारी आचार्य मेघ उसको कुछ भी शिक्षा देने मे असफल रहते है। ललित शूद्र कपिजल के द्वारा बताई हुई विधि से लक्ष्य-भेदन में सफल होता है। इससे राजकुमार के हृदय मे कपिजल के प्रति सहानुभूति उत्पन्न हो जाती है, परन्तु आचार्य मेघ को यह बात अच्छी नही लगती और इसी कारण को लेकर वह राजा रोमक तथा राजकुमार ललित का विरोधी हो जाता है। यह विरोध का बीज ही नाटक की समाप्ति तक 'बिन्दु' बनकर विकसित होता है।

कपिजल नीलपणि के पजे से मुक्त होकर भाग जाता है और महर्षि धौम्य उसे शिष्य बना लेते है। वह तपस्या करता है। राजा के सैनिक भी उसे नही पकड पाते है। यह अवसर पाकर आचार्य मेघ ग्रामीण निवासियो को राजा के विरुद्ध भडकाता है। बारह वर्ष से दुर्भिक्ष पडने का कारण भी राजा के पापो को ही बताता है और उनसे राजा को पदच्युत करने की माँग करता है। इस प्रकार आचार्य मेघ और नीलपणि का विरोध चरम-सीमा पर पहुँच जाता है। राजा को जनपद समिति उस समय तक के लिए अपदस्थ कर देती है जब तक कि वह अपने पापो का अनुसन्धान करके मार्जन न करे। राजा वन-वन भटकता है। आचार्य मेघ छद्म वेश मे आकाश वाणी कराके राजा को पापी ठहराता है और शूद्रो का तपस्या करना, 'दासो को मुक्ति दिलाना, योग साधना, महापुरुषो का अपमान आदि उसके पाप कर्म बताता

है। राजा चिन्तित हो उठता है। वह ममता की सलाह लेकर महर्षि धौम्य के आश्रम में आता है। वहाँ से विरोध शान्त होने लगता है। महर्षि राजा की परीक्षा लेने के लिए समाधिस्थ कपिंजल की हत्या करने के लिए कहते हैं. परन्तु ललित के समझाने पर राजा का विवेक जागृत हो जाता है और राजा ऋषि की परीक्षा में सफल होता है। महर्षि आशीर्वाद और उपदेश देते हैं और राजा को बताते हैं कि एक शासक के पाप क्या हो सकते हैं। वर्षा होती है और ईशान, अमात्य आदि राजा का आश्रम में ही स्वागत करते हैं। ललित स्नातक हो जाता है। इस प्रकार तपोवन में ही कथानक समाप्त हो जाता है।

'ललित-विक्रम' नाटक का प्रारम्भ विरोध की परिस्थितियों से होता है। उसका विस्तार मध्य में और अन्त में उसकी समाप्ति होती है। इस प्रकार सम्पूर्ण नाटक विरोधमूलक होने के कारण इसमें भारतीय नाट्यकला के अनुसार सन्धियों का विवेचन उचित नहीं है। परन्तु प्रस्तुत नाटक कथावस्तु की पाँचों अवस्थाओं (प्रारम्भ, विकास, चरमसीमा, निगति, और समाप्ति) की दृष्टि से सफल है। इसमें अंक, दृश्य-विधान आदि अंग्रेजी नाट्यकला पर आधारित हैं। अर्थ-प्रकृतियाँ, स्वगत-कथन आदि का अभाव है। कथानक में सरसता और शृंखलाबद्धता आ गई है। सभी घटनाएं मूल कथानक से सम्बन्धित होकर कथानक को आगे बढ़ाती हैं। संकलनत्रय की दृष्टि से भी नाटक सफल है। कथानक में अन्तर्द्वन्द्व और बाह्यद्वन्द्व दोनों का रूप मिलता है। कथानक रोचक होने के साथ-साथ शिक्षाप्रद भी है।

पात्र—'ललित-विक्रम' में प्रमुख पात्रों की संख्या १४ है। इनमें प्रत्येक का [illegible] है। पुरुषपात्रों में जो विविधता तथा अनेकरूपता है, वह स्त्री-पात्रों में नहीं है। प्रस्तुत नाटक में रानी ममता के अतिरिक्त अन्य कोई प्रमुख स्त्री पात्र नहीं है। 'ललित-विक्रम' के पात्रों को दो श्रेणियों में विभाजित किया जा सकता है। कुछ पात्रों के चरित्र में स्थिरता है, जैसे आचार्य मेघ, [illegible], ममता, महर्षि धौम्य आदि। दूसरे प्रकार के पात्रों के चरित्र [illegible] परिस्थितियों के अनुसार परिवर्तित होते जाते हैं, जैसे ललित-विक्रम, [illegible] आदि।

आचार्य मेघ के चरित्र में आरम्भ से लेकर अन्त तक क्रोध, गर्व तथा षड्यन्त्र रचना है। उनका यह रूप अन्त तक अपरिवर्तित रहता है। नीलमणि के चरित्र मे स्वार्थपरता तथा शोषण के दर्शन होते है। ममता वात्सल्य की प्रतिमा है। धौम्य ऋषि प्राचीन रूढी हुई परम्परायें बदलने वाले तथा अनुशासन की मूर्ति के रूप मे दिखाई देते है। रोमक, वेद और कुल्लक परिस्थितियो के साथ-साथ परिवर्तन करने वाले है। ललितविक्रम बाल्यावस्था मे उद्दड होता है, परन्तु महर्षि धौम्य के समझाने से उसमे अन्तर दिखाई देता है। वह समझ जाता है कि पुरुषार्थ से विजय तभी होती है जबकि हृदय में धर्म की स्थिति हो। अन्य पात्रो के चरित्रो मे भी परिस्थिति के अनुसार इसी प्रकार परिवर्तन होते है।

वर्मा जी के प्रस्तुत नाटक मे पात्रो के चरित्र के विकास मे शास्त्रीय ढग से मान्य सभी उपायो का सफल प्रयोग किया गया है। पात्रो के सवाद उनके सम्बन्ध मे अन्य पात्रो के विचार, उनके कार्य-कलाप उनकी वेष-भूषा उनका रहन-सहन, उनकी भावुकता आदि सब बाते उनके चरित्र को समझने मे सहायक है। लेखक ने रग-सकेतो के द्वारा भी पात्रो का चरित्र-चित्रण किया है, जैसे धौम्य के शिष्यो के स्वभाव वर्णन मे।

सम्पूर्ण नाटक के चरित्र-प्रधान होने के कारण लेखक ने पात्रो के चरित्र को उभारने का भरसक प्रयत्न किया है और इसमे उसे पर्याप्त सफलता भी मिली है।

कथोपकथन—कथोपकथन नाटक का एक प्रमुख तत्त्व है। प्रस्तुत नाटक के सवाद सुगठित, सारगर्भित, भावव्यजक, व्यवहार-अनुकूल तथा पात्र के चरित्र को व्यक्त करने वाले है। सवादो मे कही पर भी अस्वाभाविकता नही है। स्वगत भाषण तथा आकाशभाषित का पूर्णरूप से अभाव है। कथोपकथन सक्षिप्त है। उनमे प्रसाद जी की भाँति न तो कही पर लम्बे-लम्बे व्याख्यान है और न दार्शनिकता की गुत्थियाँ ही। पात्रो के परस्पर के सक्षिप्त कथन नाटकीय सौंदर्य उपस्थित कर देते है। सवादो मे सर्वत्र एक सास्कृतिक वातावरण के दर्शन होते है।

छोटे-छोटे वाक्यों में संवाद योजना चुस्त और गठीली है। किस मुख से क्या कहना चाहिए और किस भाषा और शैली में कहना चाहिये इसका सर्वत्र ध्यान रखा गया है। सभी पात्र हिन्दी का प्रयोग करते हैं। कहीं-कहीं पर भाषा तत्कालीन वातावरण उपस्थित करने में सहायक है। नारी पात्रों की भाषा में स्वाभाविक कोमलता है। कथोपकथनों को परिस्थिति, प्रसंग, आवश्यकता, पात्रों की योग्यता और देश-काल के अनुसार भाषा से सजाया गया है। भाषा में सर्वत्र ही सरलता, सुन्दरता, सजीवता और स्वाभाविकता बनी रहती है। इस प्रकार हम कह सकते हैं कि 'ललित-विक्रम' के संवाद भाषा की दृष्टि से भी बहुत सफल हैं।

देश-काल—'ललित-विक्रम' नाटक में उत्तर वैदिककाल की एक गाथा है। ऐतिहासिक होने के कारण देश-काल की ओर ध्यान बना रहना स्वाभाविक ही है। इस में उत्तर वैदिक कालीन राजनीतिक, सामाजिक, धार्मिक और आर्थिक स्थितियों का सफल चित्रण हुआ है। नाटक के पढ़ने से स्पष्ट पता चलता है कि उस युग में राजा की सत्ता अबाध और अनियंत्रित नहीं थी। राजा समिति के निर्णय पर निर्भर करता था। समिति को राजा को पदच्युत करने का अधिकार था। समिति का सभापति ईशान होता था। जनता के हृदय में देश-भक्ति की भावना भरी हुई थी। उत्तर वैदिककाल में दासता का रूप प्रचलित था। निर्धनों और निर्बलों से बेगार ली जाती थी। समाज भिन्न-भिन्न वर्णों में विभाजित था। तत्कालीन समाज के प्रत्येक वर्ग में धर्म की भावना होती थी। शूद्र को तपस्या करने का अधिकार नहीं था। पाखंडी ब्राह्मण को भी घृणा की दृष्टि से देखा जाता था।

"इतिहास के अध्ययन गौरव-शिल्पी श्री वृन्दावनलाल वर्मा ने सुन्दर अतीत की एक गाथा को उसके अनुरूप वातावरण में सफलतापूर्वक उपस्थित किया है। राजा, सेना, आश्रम, युद्ध निम्न वर्गों के चित्रण में नाटककार की कल्पना संकुचित और संश्लिष्ट नहीं है जिससे हमें युग-विशेष की परिस्थितियाँ, विकास की दिशा और रूप की बातें अपरिचित नहीं जान पड़तीं।"

भाषा-शैली—भाषा-शैली नाटक का शरीर होता है। प्रस्तुत नाटक भाषा-शैली की दृष्टि से एक सफल कृति है। इसमे किसी भी स्थल पर दर्शकों, पाठको या श्रोताओं को भाषा बोझिल मालूम नही होती है। भाषा विचारो को वहन करती हुई चलती है। भाषा मे प्रसगानुसार ओज, प्रसाद और माधुर्य का सुन्दरता के साथ निर्वाह हुआ है। प्राय मुहावरेदार भाषा का प्रयोग किया गया है। कहीं-कही तो एक ही वाक्य मे कई-कई मुहावरे जड दिए हैं। जैसे —"मेघ—इतना दुश्शील हो गया है कि मुँह लगकर बात काटने पर उतारू हो जाता है।"

सम्पूर्ण नाटक मे प्राय वर्णनात्मक शैली का प्रयोग हुआ है। इस शैली में नाटकीय छटा नही है। ऐसा प्रतीत होता है कि दो शिक्षित पात्र परस्पर वार्तालाप कर रहे है। प्रकृति-चित्रण मे आलकारिक शैली का भी प्रयोग हुआ है। इससे नाटकीय वातावरण का निर्माण करने मे सहायता मिली है। ऐसे चित्रो को उतारते समय उपमा और उत्प्रेक्षा का सहारा लिया गया है। जैसे :—

"यह देखो, स्वर्ग की बेटी उषा दीप्यमान वस्त्र पहिने प्रात के मस्तक पर रोली लगा चली है। थोडे समय मे वह सविता को बुलाकर शीत को भगा देगी।"

अन्त मे हम यह कह सकते है कि नाटक की भाषा-शैली अभिनय मे सहायक है।

अभिनेयता—इसके लिए पृथक् प्रश्न दिया गया है, उसे पढिए।

उद्देश्य—वर्मा जी ने वर्तमान समाज मे सयम और अनुशासन की पुन: स्थापना करने के उद्देश्य से ही प्रस्तुत नाटक लिखा है और उन्हे अपने इस उद्देश्य मे पूर्ण सफलता प्राप्त हुई है। असयमी तथा अभिमानी आचार्य मेघ का पतन, सयम और अनुशासन के बिना राजकुमार ललित-विक्रम का स्नातक न बनना, रोमक की अशान्ति आदि का दिग्दर्शन इसी उद्देश्य की पूर्ति के लिए किया गया है। लेखक ने नाटक मे अपने इस उद्देश्य को भी स्पष्ट किया है कि पुरुषार्थ से विजय तभी मिल सकती है जबकि हृदय मे धर्म की स्थिति हो और सदैव सत्य की असत्य पर और धर्म की अधर्म पर विजय

होती है। वर्मा जी ने भारतीय जीवन की मूलभूत विशेषताओं को जन-जीवन में उंडेलने का प्रयत्न भी किया है।

रस—प्रस्तुत नाटक में विशेषकर प्रसंगानुसार वीर, शान्त, अद्भुत और करुण रस का समावेश है।

उपर्युक्त विवेचन से यह स्पष्ट है कि प्रस्तुत नाटक में लेखक ने पाश्चात्य नाट्य-शैली को बहुत कुछ अपनाया है। पाश्चात्य शैली का आवरण रहते हुए भी आत्मा भारतीय रही है। 'ललित-विक्रम' नाटक अभिनय की दृष्टि से भी सफल है और नाटयकला की शास्त्रीय कसौटी की दृष्टि से भी पूर्ण सफल है।

प्रश्न ३—'ललित-विक्रम' नाटक की अभिनेयता पर अपने विचार प्रकट कीजिए।

अथवा

"वर्मा जी के नाटक प्राय अभिनेय होते हैं।"

उपर्युक्त कथन की पुष्टि 'ललित-विक्रम' नाटक के आधार पर कीजिए।

उत्तर—दृश्य काव्य होने के कारण नाटक का सम्बन्ध रंगमंच से होता है। यदि किसी नाटक का अभिनय सफलतापूर्वक नहीं किया जा सकता तो उसे सफल कृति नहीं कहा जा सकता है। नाटक और अभिनेयता दोनों का अभिन्न सम्बन्ध है। वर्मा जी के सभी नाटक रंगमंच की दृष्टि से सफल हैं। उनका दृश्य-विधान बहुत ही सरल, संवाद संक्षिप्त तथा चुस्त तथा भाषा सजीव और स्वाभाविक है। इसलिए उनके नाटक का अभिनय करने में किसी प्रकार की कठिनाई नहीं होती है। रंग-संकेतों से भी अभिनय में बहुत सहायता प्राप्त होती है। उनकी कथावस्तु, चरित्र-चित्रण तथा नाटयकला की योजना किसी भी स्थान पर अभिनय में बाधा नहीं डालती है। किसी भी [illegible] को सफल रंगमंचीय होने के लिए उसमें निम्नलिखित विशेषताएँ होनी चाहिए —

(१) [illegible] संक्षिप्त तथा सुगम्य हुआ।

(२) [illegible]।

(३) [illegible] होनी चाहिए।

(४) [illegible]।

(५) भाषा सरल ।
(६) अवसर के अनुसार संक्षिप्त संगीत योजना ।
(७) कम दृश्य ।
(८) दृश्यो की सानुबंध योजना ।
(९) रंग संकेत ।

कथानक—वर्मा जी के ऐतिहासिक नाटक 'ललित-विक्रम' की कथावस्तु संक्षिप्त, सरल, प्रवाहमय, आकर्षक तथा सुलझी हुई है। इसमे मुख्य वस्तु के साथ उलझी हुई सहायक कथाएँ नहीं चलती है। वर्मा जी ने उत्तर वैदिक काल मे अयोध्या के राजा रोमक की कथा को बहुत ही सुन्दर ढंग से नाटकीयता प्रदान की है। आचार्य मेघ अपने प्रयत्नो से राजा को पदच्युत कराता है और फिर राजा महर्षि धौम्य की व्यवस्था से पुन अपने पद को प्राप्त करता है। इसी कथा को लेकर वर्मा जी ने इस नाटक की रचना की है। कथानक लम्बा नही है। इसका दो-ढाई घण्टे मे सरलता से अभिनय किया जा सकता है।

संकलनत्रय—एक सफल नाटक मे संकलनत्रय का होना अति आवश्यक है अर्थात् कथानक एक ही स्थान और एक ही समय का होना चाहिए। इससे दर्शको को स्वाभाविकता का अनुभव होता है। 'ललित-विक्रम' नाटक मे वर्मा जी ने संकलनत्रय का ध्यान रखा है। इसकी सभी घटनाएँ अयोध्या के राज-भवन, सभा-भवन तथा नैमिषारण्य वन-प्रदेश में होती है। नैमिषारण्य अयोध्या जनपद के इतना समीप है कि इसे दूसरा स्थान नही कहा जा सकता है। साथ ही वर्मा जी ने घटनाचक्र को अयोध्या से नैमिषारण्य की ओर इस प्रकार मोडा है कि उसमे तनिक भी अस्वाभाविकता नही आने पायी है। जब कपिंजल भागकर धौम्य ऋषि के आश्रम (नैमिषारण्य) मे पहुँच जाता है, तो कथानक स्वय ही नैमिषारण्य तपोवन की ओर मुड जाता है।

इस नाटक का कथानक दस-बारह वर्ष का है। परन्तु जब दर्शक इतने लम्बे समय के कथानक को एक साथ रंगमंच पर देखता है तो उसे यह समय की लम्बाई अखरती नही है। इस प्रकार संकलनत्रय की दृष्टि से भी यह नाटक रंगमंचीय है।

पात्र—'ललित-विक्रम' नाटक मे पात्रो की सख्या अधिक नही है। सभी पात्रो को रगमच पर सरलता से लाया जा सकता है। इसमे रोमक, ललित-विक्रम, धौम्य, मेघ, कपिंजल तथा नीलपणि केवल छ प्रमुख पात्र हैं। शेष पाँच-छ पात्र गौण है। सभी पात्र सोद्देश्य तथा अभिनय के अनुरूप है।

कथोपकथन—प्रस्तुत नाटक मे सवाद सरल तथा सक्षिप्त हैं। स्वगत-कथन का अभाव है। प्रत्येक पात्र अपने विचार सरल तथा सुबोध भाषा मे प्रकट करता है। दर्शक सरलता से पात्रो के विचारो को समझ जाते है। अयोध्या की सभा और समिति के प्रसग लम्बे होने पर भी छोटे-छोटे सवादो मे होने के कारण अभिनय में बाधक नही होते है। इस प्रकार यह स्पष्ट है कि प्रस्तुत नाटक भाषा तथा कथोपकथन दोनो ही दृष्टि से अभिनेय है।

सगीत योजना—वर्मा जी को 'ललित-विक्रम' नाटक मे सगीत योजना को अभिनय के अनुरूप बनाने मे सफलता प्राप्त हुई है। अवसर के अनुसार नाटक मे कहीं-कहीं पर छोटे-छोटे गीत नाटक को अभिनय की दृष्टि से सफल बनाने मे बहुत सहायक है।

दृश्य—'ललित-विक्रम' नाटक को चार अको और तीस दृश्यो मे विभाजित किया गया है। प्रथम अक मे छ दृश्य, द्वितीय मे सात, तृतीय में आठ और चतुर्थ मे नौ दृश्य है। सभी दृश्यो को निम्नलिखित तीन भागो में विभाजित किया जा सकता है —

(१) अयोध्या के राज-भवन तथा सभा-भवन के दृश्य।
(२) वन और महर्षि धौम्य का आश्रम।
(३) गाँव का दृश्य।

इन सभी दृश्यों को तीन पर्दो पर दिखाया जा सकता है। इन दृश्यो का आयोजन इतनी सफलता के साथ किया गया है कि इसमे सर्वत्र स्वाभाविकता है। सभी दृश्यों का कथानक क्रमबद्ध तथा एक दूसरे से आबद्ध है। इन सभी बातों के अतिरिक्त नाटक मे कोई भी ऐसा दृश्य नही है जिसको रगमच पर उपस्थित करने मे कोई कठिनाई हो।

रग-सकेत—पहले हिन्दी नाटको मे रग-सकेत नही दिए जाते थे, परन्तु रामकुमार वर्मा ने इस ओर सर्वप्रथम कदम उठाया। श्री वृन्दावनलाल वर्मा

ने प्रस्तुत नाटक में प्रत्येक दृश्य मे रग-सकेत दिए है। इससे नाटक के अभिनय में वहुत महायता मिलती है। कोई भी रग-सचालक बिना किसी कठिनाई के इन रग-सकेतो की महायता से 'ललित-विक्रम' का अभिनय कर सकता है।

अन्त मे हम कह सकते है कि वर्मा जी का नाटक 'ललित-विक्रम' अभिनय की दृष्टि से पूर्ण रूप से सफल है।

प्रश्न ४—"वृन्दावनलाल वर्मा ने 'ललित-विक्रम' में उत्तर वैदिक काल की एक झाँकी इतिहाससम्मत कल्पना की पृष्ठ-भूमि में प्रस्तुत की है।"

उपर्युक्त कथन की विवेचना करते हुए सिद्ध कीजिए कि 'ललित-विक्रम' की कथावस्तु इतिहास और इतिहाससम्मत कल्पना से गठित है।

अथवा

"इतिहास को साहित्य में प्रतिष्ठित करने के लिए घटना को जीवन से और जीवन को मनुष्य के मनोरागो से जोडना पडता है। ....इतिहास के अन्यतम जीवन-शिल्पी श्री वृन्दावनलाल वर्मा ने सुन्दर अतीत की एक-एक गाथा को उसके अनुरूप वातावरण मे सफलतापूर्वक उपस्थित किया है।" महादेवी वर्मा के इस कथन की यथार्थता पर प्रकाश डालिए।

अथवा

'ललित-विक्रम' नाटक की ऐतिहासिकता पर प्रकाश डालिए।

उत्तर—श्री वृन्दावनलाल वर्मा ने अपने 'ललित-विक्रम' नाटक में उत्तर-वैदिक काल की ऐतिहासिक अवस्था को प्रस्तुत करने का प्रयत्न किया है।

ऐतिहासिक नाटककार का कार्य वहुत ही कठिन होता है। उसे अपनी रचना के लिए घटनाचक्र तो इतिहास से लेने पडते है और वह अपनी कल्पना से उन घटनाओ को तत्कालीन जन-समाज के पास लाकर सोद्देश्य साहित्य की सृष्टि करता है। कल्पना का सहारा लेने वाले नाटककार को घटनाचक्र मे परिवर्तन करने का उसी सीमा तक अधिकार है, जहाँ तक कि ऐतिहासिक सत्य की हत्या न हो। उसकी कल्पना इतिहास से पुष्ट होनी चाहिए। ऐसी कल्पना भी इतिहास ही वन जाती है और उसमे स्वाभाविकता आ जाती है। साहित्य-कार अपने युग से अवश्य प्रभावित होता है। किसी भी रचना को उपयोगी वनाने के लिए उसमे तत्कालीन समस्याओ को उभार कर उनका समाधान दिया

होना चाहिए परन्तु इस कार्य में भी उसे सत्य का ध्यान रखना पड़ता है। भाषा और वेष-भूषा का भी विशेष ध्यान रखना पड़ता है। राम को कोट-पैंट और नैपोलियन को धोती-कुर्ता नहीं पहना सकता है। यदि वह ऐसा करेगा तो इससे देश-काल का उल्लंघन होगा और उसकी रचना में अस्वाभाविकता आ जायगी। वह तो अपने पात्रों से वे बातें कहलवा सकता है जिनका वर्तमान के साथ साम्य हो या उनसे वर्तमान को प्रेरणा प्राप्त हो।

इतिहास को साहित्य में प्रतिष्ठित करना कठिन कार्य है। इसके लिए ऐतिहासिक घटनाओं को जीवन से और जीवन को मनुष्य के मनोरागों से जोड़ना पड़ता है। पुराण विराट् साहित्य का एक अंग है, इसलिए उसकी बुद्धिसम्मत भावपूर्ण व्याख्या ही उन्हें हमारे जीवन के पास ला सकती है। परन्तु इसमें एक ओर अनुभूति की न्यूनता इस व्याख्या को नीरस सिद्धान्त बना सकती है और दूसरी ओर अनुभूति की अधिकता से वह विश्वास के योग्य नहीं रहती।

प्रस्तुत नाटक में उत्तर वैदिक काल की एक कथा को उसके अनुकूल वातावरण में उपस्थित करने में नाटककार को सफलता मिली है। राजा, सभा, आश्रम, गुरु, शिष्य सभी का चित्रण करने में वर्मा जी की कल्पना सन्तुलित और सत्यनिष्ठ रही है। यही कारण है कि हमें युग-विशेष की परिस्थितियाँ विकास की दिशा और मार्ग की बाधाएँ अपरिचित प्रतीत नहीं होतीं है। किसी भी रचना की कथा की ऐतिहासिकता तथा उसमें निश्चित कल्पना का ज्ञान करने के लिए निम्नलिखित बातों पर विचार किया जाता है—

(१) घटनाएँ (२) पात्र (३) स्थान (४) तत्कालीन वातावरण।

घटना—'ललित-विक्रम' की कथावस्तु प्राचीन काल में प्रचलित एक घटना पर आधारित है। ऐसा कहा जाता है कि अयोध्या में एक राजा राज्य करता था। उसके शासनकाल में अनेक बार दुर्भिक्ष पड़ा। प्रजा बहुत दुःखी हो गई। राजा को किसी ऋषि ने बतलाया कि दुर्भिक्ष पड़ने का कारण यह है कि कोई शूद्र उसके राज्य में तपस्या कर रहा है। यदि उसे मार दिया जाय, तो दुर्भिक्ष नहीं पड़ेगा। राजा ने स्पष्ट कह दिया कि वह सिंहासन त्याग सकता है, परन्तु

वह उस पतित कर्म को नही करेगा। इस पर ऋषि ने कहा कि यह तो राजा की परीक्षा थी। लेखक ने इसी घटना को अपने नाटक की कथा का आधार बनाया है। उसने इस घटना को अपनी कल्पना से यह रूप दिया है। राजा रोमक के राज्य काल मे भी भयकर दुर्भिक्ष पडता है। आचार्य मेघ जैसे विरोधी तत्त्व शूद्र कपिजल की तपस्या को लेकर प्रजा को राजा के विरुद्ध भडका देते है और समिति के द्वारा राजा को पदच्युत कराने मे सफल होते है। राजा अपने पापो का अनुसन्धान कर उनका मार्जन करने के लिए इधर-उधर घूमने लगता है। अन्त मे नैमिषारण्य मे धौम्य ऋषि से इसकी व्यवस्था लेता है। राजकुमार ललित पहले से ही इस आश्रम मे शिक्षा ग्रहण कर रहा है। धौम्य ऋषि राजा की परीक्षा लेने है और उससे समाधिस्थ कपिजल (शूद्र) को मारने के लिए कहते है। राजा कपिजल को मारने के लिए जाता है, परन्तु ललित के समझाने पर उसका विवेक जागृत होता है और वह कपिजल को मारने के वजाय उसके दर्शन कर लौट आता है। इस परीक्षा मे सफल होने पर धौम्य ऋषि उसे पुन उसका पद दिलवा देते है। इस प्रकार प्रचलित कथा को नाटकीयता देने के लिए नाटककार ने अपनी कल्पना से कई और घटनाओ की योजना की है, परन्तु वे सभी घटनाएँ इतिहास-सम्मत है। उनमे अस्वाभाविकता तनिक भी नही आने पायी है।

पात्र—प्रस्तुत नाटक मे प्रमुख पात्र अयोध्या का राजा रोमक, राजकुमार ललितविक्रम, धौम्य ऋषि, आचार्य मेघ और कपिजल है। ये सभी पात्र ऐतिहासिक है। इन सब का उल्लेख किसी न किसी रूप मे उत्तर वैदिककाल के साहित्य मे मिल जाता है। रोमक और ललितविक्रम के ऐतिहासिक पात्र होने के प्रमाण मे लेखक ने भूमिका मे लिखा है :—

"डाक्टर नारायणचन्द्र वन्द्योपाध्याय की पुस्तक 'Economic life and Progress in Ancient India" पृष्ठ ३२५ पर रोमपाद नाम के अयोध्या-नरेश के राज्यकाल मे भयानक अकाल पडने का वृत्तान्त मिला। अकाल का विस्तृत व्यौरा वाल्मीकि रामायण मे है। रोमपाद को अपने नाटक में मैंने रोमक कर दिया है, क्योकि अयोध्या-नरेशो की एक वशावली

मे रोमपाद नाम नही आया है, रोमक आया है और मुझे वही नाम अच्छा लगा। रोमक के पुत्र का नाम कुछ और था, परन्तु मैंने उसके सुन्दर और कल्याणकारी पराक्रम के कारण उसका नाम ललितविक्रम रख दिया है।"

धौम्य ऋषि के बारे मे तो यह प्रसिद्ध है कि वे अकल्याणकारी परम्पराओं का उल्लंघन कर डालते थे। वैदिक ऋषियों में शूद्र तपस्वी का वर्णन है। इसी को आधार बनाकर लेखक ने शूद्र कपिंजल की कल्पना कर ली है। नाटक के अन्य पात्र भी अस्वाभाविक नही जान पडते। नाटककार ने अपनी कल्पना से उन्हें भी इस रूप में प्रस्तुत किया है कि वे भी ऐतिहासिक ही जान पड़ते है।

स्थान—प्रस्तुत नाटक 'ललित-विक्रम' का घटना-स्थान अयोध्या जनपद तथा नैमिषारण्य की तपोभूमि है। दोनो ही स्थानो का ऐतिहासिक महत्त्व है। उत्तर वैदिक काल मे आर्य जाति समस्त उत्तरी भारत में फैल चुकी थी। काशी, अयोध्या, विदेह, पाचाल आदि बडे-बडे जनपद स्थापित हो चुके थे। अयोध्या जनपद तत्कालीन परिस्थिति मे अपना विशेष राजनीतिक महत्त्व रखता था। नैमिषारण्य का तीर्थ भी प्राचीनकाल मे तीर्थ-तपोवन के रूप मे विख्यात है।

देशकाल—किसी भी ऐतिहासिक नाटक की सफलता उनमें तत्कालीन राजनीतिक, सामाजिक, धार्मिक तथा सांस्कृतिक अवस्था के यथारूप चित्रण पर निर्भर है। यदि नाटककार को उसमे सफलता नही मिलती है, तो उसकी कृति इतिहास की कसौटी पर असफल हो जाती है। प्रस्तुत नाटक मे वर्मा जी ने तत्कालीन समाज की स्थिति का चित्रण पूर्ण सफलता से किया है। उत्तर वैदिक काल मे जो व्यक्ति ऋण नहीं चुका पाता था उसे महाजन अपना दास बना लेता था। जैसा कि नीलमणि ने कपिंजल के साथ किया। उस काल में पणि (फिनिशियन) सागरों मे व्यापार करते थे। उनके बडे-बडे जहाज चलते थे। वे गोरे रंग के होते थे। आर्य लोग उन व्यापारियों से घृणा करते थे।

[illegible] काल मे राजा [illegible] और अनियन्त्रित सत्ताधारी [illegible]

रूप प्राप्त नही कर पाया था। गौतम धर्मसूत्र के एकादश अध्याय में "राजा सर्वस्येष्टे ब्राह्मणवर्जम्"— 'ब्राह्मण को छोड राजा सबका अधिपति है' पीछे की बात है। उस काल मे राजा को चुनने और निकाल देने तथा फिर चुन लेने का अधिकार समिति को था। समिति का सभापति ईशान कहलाता था। चुनाव की प्रथा वही थी जो नाटक मे दी गई है। राजा के पदच्युत किये जाने या एक नियत समय के लिए निकाल देने की प्रथा भी थी, जिसका वर्णन नाटक मे आया है। देश के प्रति जनता मे गाढा प्रेम था, उसकी प्रतिध्वनि मनुस्मृति और श्रीमद्भागवत मे "जननी जन्मभूमिश्च स्वर्गादपि गरीयसी" की सूक्ति मे आई है। ऋग्वेद मे स्वराज्य का शब्द स्पष्ट रूप से आया है —यतेमहि स्वराज्ये (५ ६६ ६) हम स्वराज्य के लिये प्रयत्नशील रहे। यह वह युग है जब साधारण आर्यजन का मन घोर विपत्तियो और कठिनाइयो के सामने न तो झुकता था और न थकता था।

उत्तर वैदिककाल मे सूत, रथकार, कर्मार (लुहार), तन्तुवाय (जुलाहे), नर्तक, गायक, तुन्नवाय (दर्जी) इत्यादि सब श्रेणियो या सघो मे विभक्त तथा सगठित थे। कुर्तक (कुर्त्ता), जङ्घ (जाँघिया) इत्यादि वस्त्र पहने जाते थे। तेज छुरे तथा शचिकायें (सुइयाँ) बनती थी। दशार्ण (वर्तमान बुन्देलखण्ड) की तलवार विख्यात हो चुकी थी।

श्रमिको को एक पण से लेकर छ पण तक नित्य वेतन दिया जाता था। स्त्रियाँ नृत्य करती थी। स्त्री को परामर्शदात्री का पद भी प्राप्त था। रानी ममता ने रोमक की जो सहायता की है, वह इसी बात की द्योतक है।

मनोरजन के विभिन्न साधन थे। सगीत पूरे विकास पर था। पूरे स्वरो मे गायन होता था। जुआ खेलने की प्रथा थी। मदिरापान भी होता था। दीर्घबाहु के सलाप से यह बात व्यक्त की गई है। यज्ञ होते थे, परन्तु अति का वर्जन था। 'अग्नि के कुचल' की चर्चा भी चल पडी थी। धौम्य ऋषि ने रोमक की इन्ही बातो पर प्रकाश डाला है।

इस विवेचन से यह स्पष्ट है कि 'ललित-विक्रम' नाटक मे उत्तर वैदिक-काल के समाज का पूर्ण रूप से चित्र प्रस्तुत करने मे वर्मा जी को सफलता

प्राप्त हुई है। यदि खोज के साथ इतिहास की शृंखला को मिलाया जाय तो भारतीय वेद और पुराण ऐतिहासिक क्रम की मूल कड़ी सिद्ध होंगे। उनमे सम्बन्धित व्यक्ति और घटनाये प्राय ऐतिहासिक है, परन्तु उन पर धार्मिक विश्वास और अनुभूति की प्रगाढता के कारण उनमे से ऐतिहासिक तथ्यो को पृथक् करने का कार्य कठिन हो गया है। नाटककार ने अपनी उर्वरा कल्पना से तत्कालीन इतिहास और समाज को नाटक मे उतारने का प्रयत्न किया है। इस प्रयत्न मे उसे पूर्ण सफलता मिली है। अत हम कह सकते हैं कि 'ललित-विक्रम' ऐतिहासिक आधार पर निर्मित है और नाटककार ने उसमे इतिहास-पुष्ट कल्पना का सहारा लिया है।

प्रश्न ६—'ललित-विक्रम' नाटक के नामकरण की सार्थकता पर अपने विचार प्रकट कीजिए।

अथवा

'रोमक के पुत्र का नाम कुछ और था। परन्तु मैंने उसके सुन्दर और कल्याणकारी पराक्रम के कारण उसका नाम 'ललितविक्रम' रख दिया है। उसी के नाम पर यह नाटक है।"

नाटककार के उपर्युक्त कथन की व्याख्या करते हुए 'ललित-विक्रम' के नामकरण की सार्थकता प्रमाणित करो।

उत्तर—नाटक का नामकरण निम्नलिखित तीन मे से किसी एक आधार पर होता है :—

(१) कथावस्तु या उद्देश्य के आधार पर।

(२) नायक के नाम पर।

(३) स्थान-विशेष के नाम पर।

किसी भी नाटक के नाम की विशेषता यह है कि वह अपने अन्तर्गत समस्त कथा को समेट ले। श्री वृन्दावनलाल वर्मा ने अपने प्रस्तुत नाटक के नामकरण पर प्रकाश डालते हुए भूमिका मे स्वय लिखा है—

"रोमपाद को मैंने अपने नाटक मे रोमक कर दिया है, क्योंकि अयोध्या-नरेशो की एक वशावली मे रोमपाद नाम नहीं आया है, रोमक आया है और

मुझे यही नाम अच्छा लगा। पुत्र का नाम कुछ और था, परन्तु मैंने उसके सुन्दर और कल्याणकारी पराक्रम के कारण उसका नाम 'ललित-विक्रम' रख दिया है और उसी के नाम पर यह नाटक है।"

वर्मा जी के इस कथन से यह स्पष्ट है कि ललितविक्रम उनके प्रस्तुत उपन्यास का प्रमुख पात्र है। वास्तव मे ध्यान से देखने पर पता चलेगा कि समस्त वस्तु उसी को केन्द्र बनाकर घूमती है। वह अति सुन्दर तथा पराक्रमी है। उसका पराक्रम कल्याणकारी है। बाल्यकाल मे ही राजकुमार ललित का पराक्रमी और निर्भीक व्यक्तित्व सामने आ जाता है। आचार्य मेघ जैसे अहकारी एव पाखडी व्यक्ति उसे शिक्षा नही दे पाते हैं। ललित स्पष्टवादी है और अपने इसी गुण के कारण वह मेघ की कटु आलोचना करता है। अन्त मे ललित शिक्षा प्राप्त करने के लिए धौम्य ऋषि के आश्रम मे जाता है। वहाँ के अनुशासन में उसके पराक्रम को कल्याणकारी रूप प्राप्त होता है। वहाँ से वह स्नातक बनकर आता है। यही पर नाटक समाप्त हो जाता है। इस प्रकार हम देखते है कि नाटक का प्रारम्भ व अन्त दोनो ही ललितविक्रम के चारित्रिक महत्त्व को लेकर होते हैं।

नाटक की सभी घटनाएँ ललित से सम्बन्धित है। जब तक ललित अयोध्या मे रहता है, कथा का सम्बन्ध अयोध्या से ही रहता है, परन्तु राजकुमार के नैमिषारण्य को जाते ही कथा भी मोड खाकर उसी स्थान पर पहुँच जाती है और फिर तृतीय अक तक के पश्चात् की समस्त कथा धौम्य ऋषि के आश्रम मे ललित की उपस्थिति मे ही घटित होती है।

नाटक के सभी पात्र परोक्ष या प्रत्यक्ष रूप से ललितविक्रम से ही सम्बन्धित व प्रभावित है। आचार्य मेघ उसके गुरु है, परन्तु वे उसे शिक्षा देने मे असफल रहते है। नीलमणि को तो वह फटकारता है। कपिजल के हृदय मे तो उसके प्रति सहानुभूति प्रथम अक मे ही जागृत हो जाती है। धौम्य ऋषि से वह शिक्षा ग्रहण करता है। तपोवन के सभी पात्र उसके सम्पर्क में रहते हैं।

"पुरुषार्थ दायें हाथ मे हो, धर्म हृदय मे हो तो विजय बाये हाथ मे रहती है।" नाटककार ने प्रस्तुत नाटक के द्वारा यह प्रेरणा समाज को दी है।

नाटक का जो मुख्य उद्देश्य है उसकी पूर्ति भी नाटक में ललित के द्वारा ही होती है। उसने बाल्यकाल में ही सीख लिया था—"यदि पुरुषार्थ मेरे दायें हाथ में हो तो विजय बायें हाथ में।" परन्तु धर्म के महत्त्व को वह धौम्य ऋषि के आश्रम में आकर सीखता है।

इस प्रकार हम देखते हैं कि नाटक के घटना-चक्र तथा समस्त पात्रों का केन्द्र-बिन्दु ललितविक्रम ही है। अत प्रमुख पात्र होने के कारण नाटक का नाम 'ललित-विक्रम' सार्थक ही है।

प्रश्न ६—"नाटक में भारतीय जीवन की मूलभूत विशेषतायें सुरक्षित रह सकी हैं, इसका श्रेय नाटककार की सूक्ष्म पर लक्ष्यबद्ध दृष्टि को दिया जायगा।" आप इससे कहाँ तक सहमत हैं? युक्ति-युक्त उत्तर दीजिए।

अथवा

"संयम और अनुशासन ही जीवन की गाड़ी को आगे धकेलने में समर्थ है इसकी पुन प्रतिष्ठा के उद्देश्य से 'ललित-विक्रम' की रचना हुई है।" आप इस विचार से कहा तक सहमत हैं? स्पष्ट उत्तर दीजिए।

अथवा

"कृतं मपद्यते चरन्' का महामन्त्र नाटक में बार-बार गूँजता रहता है।" महादेवी वर्मा के इस कथन की उपयुक्त उदाहरण देकर पुष्टि कीजिए।

उत्तर—साहित्य में व्यक्ति, समाज, जाति तथा काल की परिस्थितियों तथा उनकी विशेषताओं की छाप होती है। उसमें व्यक्तिगत भावनाओं तथा अनुभूतियों का वर्णन होता है। कोई भी लेखक, जिसकी उच्च-कोटि के लेखकों में गणना होती है, अपने साहित्य का अपनी जाति व अपने देश के भूत तथा भविष्य से सम्बन्ध रखता है। वह अपनी जाति की उन विशेषताओं का प्रतिनिधित्व करता है, जो कि उसके समकालीन और उससे पूर्व के लेखकों में समान रूप से प्राप्त होती हैं। साहित्यकार की ये विशेषतायें ही जातीय साहित्य की विशेषतायें कहलाती हैं। ये विशेषतायें निरन्तर विकसित होते हुए साहित्य में समान रूप से वर्तमान रहती हैं। प्रत्येक जाति का अपना व्यक्तित्व, अपना आदर्श तथा अपनी विचार-धारा होती है। श्री वृन्दावनलाल

गुरु का महत्त्व बहुत अधिक है। गुरु को यहाँ पर सर्वोपरि माना गया है। इसलिए उनको देवस्वरूप मानकर उसकी पूजा और आज्ञा-पालन का विधान है। 'ललित-विक्रम' नाटक में भी नाटककार ने पाठकों के सामने यही आदर्श रखा है। नाटक में जहाँ महर्षि धौम्य जैसे गुरु हैं, वहाँ वेद, आरुणि तथा ललित जैसे शिष्य भी हैं। ऋषि धौम्य की आज्ञा से ही शूद्र कपिंजल कठिन योग-साधना कर ऋषि पद को प्राप्त करता है। वेद वनों में घूमा और बैलों का जुआ भी अपने कंधों पर उठाया। ललित ने भिक्षा माँगी और बिना आज्ञा कुछ न खाने के कठिन आदेश का पालन किया। इसका परिणाम यह हुआ कि वेद तथा ललित स्नातक बन गए। राजकुमार ने तो गुरु आज्ञा का पालन कर अपने पिता का भी कल्याण किया। आज के विद्यार्थियों को ललित, वेद, आरुणि, कपिंजल को आदर्श मानकर उनका अनुकरण करना चाहिए।

(३) सादा जीवन और उच्च विचार—नाटक में आदि से अन्त तक सादे जीवन की झाँकी है। इसमें सर्वत्र ही द्वेष, मत्सर, हिंसा और परिग्रह के तिरस्कार की चर्चा की गई है। राजा का जीवन सरल और निष्कपट है। ऋषि के आश्रम में भी राजा नंगे पैर ही जाता है। नाटक में सोम, सभानन्द, शिल्पी वणिक् आदि सभी के जीवन सादे तथा विचार उच्च हैं। धौम्य ऋषि का तो जीवन ही उच्च विचारों से ओत-प्रोत है। वे कपिंजल से कहते हैं—"ऊपर उठना और आगे बढ़ना प्रत्येक जीव का लक्ष्य है।" उनके इस कथन से उनके उच्च विचारों पर प्रकाश पड़ता है।

(४) कृतज्ञता—शूद्र कपिंजल राजकुमार ललित को लक्ष्य-वेध सिखाता है। राजकुमार उनके इस उपकार को मानता है और बार-बार इसी की चर्चा करता है। शिकार खेलते हुए ललित के प्राणों की रक्षा भी कपिंजल करता है। वह अपने पिता सोमक को समझाते हुए कहता है—"और क्या आप जानते हैं कि यही वह सत्पुरुष है, जिसने इस वन में मेरे प्राणों की रक्षा की थी।" इस प्रकार हम देखते हैं कि नाटक में ललित कृतज्ञता का एक जीता-जागता उदाहरण है।

(६) नारी सम्मान—रोमक, ललित तथा कपिंजल द्वारा वन और ग्राम की नारियो के प्रति आदर के भाव ईसी भावना के द्योतक है। रानी ममता के प्रति सोम के विचारो से भी इसी भावना पर प्रकाश पडता है।

(७) शरणागत की रक्षा—महर्षि धौम्य यह जानते हुए भी कि कपिंजल शूद्र है, उसे आश्रम मे शरण देते है और साथ ही उसे अभय दान देते है। जब राजा के सैनिक उसे पकडने के लिए आते है तो ऋषि उनसे कह देते है— "लौट-जाओ। यहाँ से पकडकर नही ले जा सकोगे। यहा से तुम्हारा राजा भी इस दीन-हीन शरणागत को नही ले जा सकेगा।"

(८) अतिथि सेवा—जब कपिंजल नीलमणि द्वारा मार खाकर वनो में भटकता फिरता है, तो गाँव की स्त्रियाँ उससे यही कहती है—"वन मे इस समय हमारे अतिथि हो, भूखे नही जाने पाओगे।" वे उसकी जाति व वर्ण की कोई परवाह नही करती है। उनका कर्तव्य तो अतिथि की सेवा-सत्कार करना है। धौम्य ऋषि अपने आश्रम मे कपिंजल तथा रोमक का अतिथि रूप मे ही स्वागत करते है। अतिथि को तो उपास्य माना गया है।

(९) भय का परित्याग तथा पुरुषार्थ—आचार्य धौम्य अपने शिष्यो को बार-बार भय का परित्याग करने की ही शिक्षा देते है। महर्षि शिष्यो को बताते है कि निर्भय रहना और ध्यानधारी होना श्रेष्ठ जीवन के मूल सिद्धान्त है। आचार्य मेघ भी जो कि पाखडी तथा अहकारी है ललित को पुरुषार्थ का ज्ञान कराता है। अयोध्या की सभा मे भी वणिक्, कर्मारो का प्रतिनिधि, सभासद् आदि पुरुषार्थ की चर्चा करते है। धौम्य के सभी शिष्य पुरुषार्थ की जीवित मूर्तियाँ है। ललित कहता है—"पुरुषार्थ दाये हाथ मे हो, धर्म हृदय मे हो तो विजय बाये हाथ मे रहती है।" राजा रोमक भी कहता है—"बिना पुरुषार्थ के न राजा रह सकता है, न जनपद की समृद्धि, न व्यक्ति और न समाज की उन्नति हो सकती है।"

(१०) तपस्यामय जीवन—धौम्य ऋषि, कपिंजल, वेद, ललित, आरुणि का जीवन तपस्यामय जीवन है। राजा रोमक का पाप भी तपस्यामय जीवन से ही कटता है। ऋषि द्वारा शिष्यो पर लगाये गये कठिन प्रतिबन्ध तपस्यामय जीवन के ही प्रतीक है।

मानव को कर्त्तव्यों का ज्ञान कराना आवश्यक हो जाता है। वर्मा जी ने अपने नाटक 'ललित-विक्रम' के द्वारा मानव समाज को ऐसी स्थिति में जो सन्देश दिया है, वास्तव में वह प्रशंसनीय और समयानुसार है।

लेखक ने वेद, पुराण, रामायण, महाभारत, भागवत आदि पौराणिक ग्रन्थों तथा दूसरे साहित्यिक एवं ऐतिहासिक पुस्तकों से सामग्री एकत्रित करके मानव जाति को जो सन्देश दिया है, वह निस्सन्देह हमारी दृष्टि को अतीत काल की ओर मोड़कर ले जाता है। आज के इस भौतिकताप्रधान, बुद्धिवादी तथा नूतन युग में यह प्रश्न स्वतः ही उठ खड़ा होता है कि क्या हमारे प्राचीन आख्यान और उनके आदर्श आज हमारे लिए उपयोगी सिद्ध हो सकते हैं? लेखक ने जहाँ अन्य प्रश्नों का समाधान किया है, वहाँ इस प्रश्न का भी उत्तर दिया है। लेखक का यह उत्तर मानव के लिए दिव्य सन्देश का कार्य करता है।

जब ललितविक्रम स्नातक होकर आश्रम से विदा होता है, तो धौम्य ऋषि उससे अपने (ललित के) पुराने कुर्त्तक को ले जाने के लिए कहते हैं। इससे उसकी माता ममता के मन में जो सन्देह उत्पन्न होता है, वही आज के बुद्धिवादी के मन का सन्देह है। ममता ऋषि से कहती है—"गुरुदेव! अब तो वह इसके शरीर पर बैठेगा भी नहीं। मैं नए बना लाई हूँ, जो सम्भव है उपयुक्त बैठे।" उस समय धौम्य ऋषि द्वारा दिया गया उपदेश ही इस नाटक का मुख्य सन्देश है। धौम्य ऋषि कहते हैं—"पुराने कुर्त्तक देखने में अच्छे लगते हैं, परन्तु बढ़ी हुई देह के लिए ओछे पड़ जाते हैं। हाँ, यह अवश्य ठीक है कि उनकी पेशकारी में लगे हुए स्वर्ण और रजत-तार वर्तमान और भविष्य के काम आ सकते हैं और, जब तक देह का ठीक-ठीक माप न ले लिया जावे, नए कुर्त्तक भी ओछे या ढीले ही बैठेंगे।" वे यह भी कहते हैं—"विवेक के साथ प्राचीन को जानो और समझो, वर्तमान को देखो और उसमें विचरण करो और भविष्य की आशा को प्रशस्त करो।"

इस सन्देश की भूमिका में वर्मा जी ने मानव को जो सन्देश दिया है वह यह है—"हमें व्यक्तिगत स्वार्थों की अपेक्षा सर्वजनहिताय की संरक्षा करने वाले

(६) हमें अपने विवेक और आत्मा की गहराई से गंभीर प्रश्नों के उत्तर सोचने चाहिए।

(७) हमें अपने मन के दुःख को भूल जाना चाहिए।

(८) यदि हम अस्पष्टता को चिन्ता की दृष्टि से देखते हैं, तो यह बड़ा भयकर दिखाई देती है।

(९) चिन्ता मानव का सबसे बड़ा शत्रु है।

(१०) विद्यार्थी के लिए सर्दी, गर्मी, वर्षा सब समान हैं।

(११) जो आज्ञा पालन करता है, वही आज्ञा देने योग्य होता है।

(१२) गुरु के प्रति अन्धश्रद्धा भी नहीं होनी चाहिए। यदि शिष्य शिक्षा ग्रहण करना चाहता है, तो उसे विनय, प्रश्न, परिप्रश्न तथा सेवा द्वारा ही विद्या प्राप्त हो सकती है। ललितविक्रम इसका प्रत्यक्ष उदाहरण है।

(१३) वर्णाश्रम की व्यवस्था भी आज के मानव के मन में अनेक सन्देह व शकाये उत्पन्न करती है। नवीनता-प्रेमी तो इसको समाप्त कर देना चाहते है, परन्तु रूढिवादी इससे जकडे हुए है। धौम्य ऋषि इसी समस्या को सुलझाने के लिए उपदेश देते है—"श्रम सबके ऊपर है, सबका राजा। उसका विभाजन वर्ण-कल्पना है। विद्याओ का आजीवन सग्रह, मनन और वितरण करने वाला ब्राह्मण, देश की रक्षा और समृद्धि का सहायक क्षत्रिय और तथा कृषि, शिल्प, वाणिज्य और उद्योगो का करने, बढाने वाला वैश्य। चोर, डाकू, अत्याचारी, अधर्मी दस्यु ये शूद्र है। जाति से कोई भी शूद्र नही। अहकार, द्वेष, भय और वासनाओ मे लिप्त लोग भी दस्यु कहलायेंगे। मानव का सबसे बड़ा शत्रु अहकार और स्वार्थ है। इनको वश मे करने के लिए ही आश्रमो का सर्जन हुआ है। वर्ण और आश्रम परस्पर आश्रित है। आश्रमो की स्थापना सयत जीवन बिताने के लिए ही हुई है।

(१४) यज्ञ-विधान की शका को भी दूर करने के लिये धौम्य ऋषि कहते है, "वेदो के कुछ मंत्र कठस्थ कर डालने से कुछ नही होता। जनता को कैसे सदा सुखी और सम्पन्न रखा जाय, सदा ध्यान मे रखना पडेगा। ···सुगन्ध और रोग-हरण के लिये सीमा के भीतर का यज्ञ उचित है, परन्तु अति सर्वत्र निषिद्ध है। उस घी और अन्न को दुखी जनो के मुँह में पहुँचाते रहते तो कल्याणकारी होता।"

(१५) श्रद्धा शक्ति की जननी है।

(१६) अहकार अध पतन का द्वार है।

(१७) आज हम स्वराज्य पाकर उन्मत्त हो गये है। कर्त्तव्य को भूलकर स्वार्थ के वशीभूत हो गये है। इसी कारण चारो ओर अशान्ति छायी हुई है। अमात्य आज के अधिकारी-वर्ग को सन्देश देते हुए कहते है—"हम सबका सिद्धान्त है कि स्वराज्य के लिये सदा प्रयत्नशील रहे। अराजक राज्य में स्वराज्य नही पनप सकता। योग, क्षेम, कुशल, ललित कलाये इत्यादि सब नष्ट हो जाती हैं। सरोवर बाँधने और कुल्यायें खुदवाने के लिए पणियो और वणिकों को द्रव्य पण्यशालाओ से बाहर निकालना चाहिए।"

सोये हुए को नही ' '' यदि पुरुपार्थ मेरे दाये हाथ मे है तो विजय मेरे बायें हाथ मे बनी बनाई।"

राजकुमार ललितविक्रम को उसके पिता अयोध्यापति रोमक बाल्यावस्था से ही पुरुपार्थ की शिक्षा देते है, परन्तु आचार्य मेघ इससे चिडते है। इस पर रोमक मेघ से कहते हैं—"पुरुपार्थ और जय के सम्बन्ध वाली सूक्ति तो प्रत्येक वालक को शैशव काल से ही कठस्थ करा देनी चाहिए। बिना पुरुपार्थ के किसी भी कार्य पर विजय प्राप्त नही हो सकती। बिना पुरुपार्थ के न राजा रह सकता है, न जनपद की समृद्धि, न व्यक्ति और न समाज की उन्नति हो सकती है।" 'ललित' इसी पुरुपार्थ की महिमा को पहचानकर 'ललितविक्रम' बन जाता है और शीघ्र ही स्नातक पद प्राप्त कर लेता है। उससे पहले से शिक्षा प्राप्त करने वाले शिष्य देखते रह जाते है। 'ललितविक्रम' की आत्मा का विवेक तो रोमक की आत्मा के विवेक को भी जागृत कर देता है। वह ग्रामीण नारी से कहता है—"बहिन ! विद्यार्थी के लिये शीत, ग्रीष्म, वर्षा, तत्तूरी सब एक से है।" यह सब उसके पुरुपार्थ को पहचान लेने का परिणाम है। पुरुपार्थ की महिमा को पहचानकर ही वह अहकार, द्वेप निन्दा आदि दोपो को दूर करता है।

ललित यह भली भाँति समझ गया है कि तप ही पुरुपार्थ और पुरुषार्थ ही तप है। यही कारण है, जिस समय उसके पिता कपिंजल को शूद्र समझकर उसका वध करने को तैयार होते हैं, तो वह उनसे कहता है, "पिता जी ! उसी सिद्धान्त के भीतर एक रहस्य गुप्त है, जो मुझे इस आश्रम मे आने पर मिला—पुरुपार्थ दाये हाथ मे हो, धर्म हृदय मे हो तो विजय बाये हाथ में रहती है। आप जानते है कि तपस्वी के पास चाहे वह कोई हो, देवता रहते है ? और देवगण तपस्वी को छोड कर दूसरे के मित्र नही होते ?"

नाटक मे ललित ही नही बल्कि वेद और आरुणि भी पुरुपार्थ के बल पर ही प्रशसा के पात्र बनते हैं। वेद के पुरुपार्थ और सयम के प्रमाण ये हैं कि वह बैलो का जुआ कधे पर रख कर खेती करता है, वनो में जाकर फल-फूल सग्रह करता है। आरुणि भेड़िए पर झपट कर बालक की रक्षा

करता है और टूटी हुई मेड के साथ स्वय लेटकर व्यर्थ बहते पानी को रोकता है, ये सब बाते उनके पुरुषार्थ को प्रमाणित करती है। आचार्य धौम्य केवल पुरुषार्थी को ही स्नातक की पदवी देते है। आरुणि भी ललित की भांति पुरुषार्थ के बल पर ही स्नातक बनता है।

कपिजल तो पुरुषार्थ का एक आदर्श उदाहरण है। वह पहिले नीलपणि का दास था। उसके कठोर व्यवहार तथा अत्याचारो को चुपचाप सहन करता था क्योकि उस समय उसे पुरुषार्थ का ज्ञान नही था। परन्तु जब वह धौम्य ऋषि के आश्रम मे आ जाता है तो पुरुषार्थ के बल पर ही वह एक योगी तथा महान् ऋषि बन जाता है और वह शूद्र के स्थान पर योगिराज के नाम से पुकारा जाने लगता है। ललितविक्रम भी कपिजल की प्रशसा करता हुआ अपने पिता से कहता है—"अपने बडो ने कहा है कि परमात्मा का भक्त शूद्र परमगति को प्राप्त करता है, यहाँ तक कि नीतिमान् हरिभक्त चाडाल भी श्रेष्ठ-से-श्रेष्ठ द्विज से भी बढ कर है। कपिजल तो फिर योगी भी है और मेरा प्राणदाता भी है।"

कपिजल अपनी तपस्या से आस-पास मे प्रसिद्ध हो जाता है। वह केवल योगी ही नही, बल्कि पुरुषार्थ के सच्चे अर्थ को जानने वाला है। यही कारण है कि वह ललित की रक्षा करने के लिए अपनी समाधि भी भग कर देता है। वेद भी उसकी प्रशसा मे कहता है—"यदि सभी शूद्र तपस्वी इन जैसे ही है तो आचार्य मेघ सदृश ब्राह्मणो की अपेक्षा कही अधिक श्रेष्ठ और उज्ज्वल है।"

यह कपिजल की कठिन साधना व पुरुषार्थ का ही परिणाम है कि वह राजा रोमक जो उसका वध करने के लिए जा रहा है, वध करने का विचार त्याग कर उसके दर्शन करने के लिए व्याकुल हो उठता है। वह ललित से कहता है—"मुझे समाधिस्थ कपिजल के पास ले चलो, उसका दर्शन करूँगा और फिर आश्रम को लौट चलूँगा।" वहाँ जाकर नतमस्तक होकर राजा उसे प्रणाम भी करता है।

राजा रोमक जब धौम्य से कपिजल के स्नातक होने के विषय में बात-

चीत करते है, तो ऋषि धौम्य उससे कहते हैं—" अभी नही। योगाभ्यास करने के उपरान्त उसे कर्म-भूमि मे आकर कर्त्तव्य-पालन करना होगा, तब स्नातक हो पाएगा। योगी कर्मठ होना ही चाहिए। यह कर्मठता ही पुरुषार्थ है।" इन शब्दो मे ऋषि धौम्य ने राजा को पुरुषार्थ की परिभाषा दी है।

इस प्रकार हम देखते हैं कि नाटक मे आदि मे अन्त तक इस आदर्श वाक्य की रक्षा की है—"यदि पुरुषार्थ मेरे दाये हाथ मे है तो विजय बायें हाथ मे।"

प्रश्न ६—"राजा को चुनने और अपदस्थ करने मे जो जनतन्त्रीय परम्परा 'ललित-विक्रम' नाटक मे दी गई है वह आधुनिक जनतन्त्रीय प्रणाली के मेल में है।"

उपर्युक्त कथन की विवेचना कीजिए।

उत्तर—आज प्रजातन्त्र के युग मे राजतन्त्रीय परम्परा प्राय ससार से समाप्त ही हो गई है। प्रजातन्त्रीय युग मे प्रजा को आत्मनिर्णय का अधिकार है। आज सरकार प्रजा के प्रतिनिधियो से बनती है। प्रजा ही इन प्रतिनिधियो को व्यापक अधिकार देती है। ये प्रतिनिधि जन-कल्याण के कार्य करते है और यदि ये प्रजा द्वारा निर्वाचित व्यक्ति अपने कर्त्तव्य का पालन करने में असफल रहते हैं तो फिर प्रजा को इन्हें पदच्युत करने का भी अधिकार होता है। इस प्रकार शासक वर्ग अपने कार्यो के लिए प्रजा के सम्मुख उत्तरदायी होता है। उसे अपने व्यक्तिगत स्वार्थ को त्याग कर प्रजा के हित का ध्यान करना पड़ता है।

वर्मा जी के 'ललित-विक्रम' नाटक मे भी आधुनिक युग के समान ही जनतन्त्रीय स्वरूप मिलता है। यह ठीक है कि वैदिक युग मे राजा होते थे और निरन्तर वह पिता के पश्चात् पुत्र का अधिकार होता था जो कि आधुनिक जनतन्त्रीय प्रणाली मे नहीं है, परन्तु उन राजाओ की सत्ता अनियन्त्रित नहीं थी। उनकी सत्ता पर ब्राह्मणो तथा सभा-समिति का अंकुश रहता था। सभा स्थानीय और छोटी होती थी। समिति जनपद के प्रतिनिधियो की सामूहिक शक्ति का समूह थी। स्थानीय सभा का सभापति पृथक्

होता था। समिति का सभापति ईशान कहलाता था। आधुनिक युग की भाँति उस समय भी निर्वाचन की प्रथा थी। जिस प्रकार आज संसद् और विधान-सभाओं को किसी भी मंत्री, मुख्य मन्त्री, प्रधान मंत्री तथा राष्ट्रपति को अपदस्थ करने का अधिकार है, ठीक इसी प्रकार उस युग में भी समिति को अधिकार था कि वह राजा को नियत समय के लिए निकाल सकती थी, पदच्युत कर सकती थी तथा पुनः उसे पदस्थ कर सकती थी, जैसे कि रोमक के साथ समिति ने किया।

आज की प्रजातंत्रीय प्रणाली में संसद् या विधान-सभा किसी भी विषय की छान-बीन करने के कार्य को किसी छोटी कमेटी को सौंप देती है। यह कमेटी उस विषय में पूरी जानकारी प्राप्त कर अपनी रिपोर्ट सम्मति सहित पेश करती है। 'ललित-विक्रम' नाटक में भी इस प्रकार की अंतरंग समिति का उल्लेख है। अयोध्या सभा के सभापति सोम पाँच व्यक्तियों की एक अन्तरंग समिति बनाते हैं और यह समिति राजा पर लगाये गए दोषों की जाँच करती है और फिर अपनी सम्मति समिति के समक्ष रखती है।

आधुनिक युग में यदि किसी विषय पर वाद-विवाद अधिक हो जाता है और उसका कोई निर्णय नहीं हो पाता है, तो उस पर मत-संग्रह किया जाता है। ठीक यही प्रथा 'ललित-विक्रम' में भी दी है। महासमिति के अधिवेशन के समय कुछ सदस्य इस पक्ष में होते हैं कि राजा को अपदस्थ नहीं किया जाय, कुछ सदस्य राजा को पदच्युत करने के पक्ष में होते हैं और कुछ सदस्यों की राय यह होती है कि राजा को उतने समय के लिए अपदस्थ किया जाय जितने समय तक वह अपने पापों का अनुसन्धान कर उनका मार्जन न कर ले। आधुनिक प्रजातन्त्र में भी अविश्वास का प्रस्ताव पास कर किसी भी अधिकारी को पदच्युत करने की प्रथा है। ऐसे अधिकारी के विरुद्ध नियमित जाँच की जाती है, तथा जाँच में निर्दोष सिद्ध होने पर उसे पुनः पदस्थ कर दिया जाता है। 'ललित-विक्रम' नाटक में बहुमत निर्णय करता है कि रोमक को उतने समय के लिए अपदस्थ किया जाय जितने समय तक वह अपने पापों का अनुसन्धान कर उनका मार्जन न कर ले। समिति का सभापति ईशान भी यही

निर्णय देता है। जब राजा के विरुद्ध विरोध शान्त हो जाता है, तब ईशान तथा अन्य सभी प्रतिनिधि उसे पुन पदस्थ कर देते है।

स्पष्ट है कि उत्तर वैदिक काल मे जिस जनतन्त्रीय परम्परा को नाटक में चित्रित किया गया है, वह वर्तमान युग की प्रजातन्त्रीत परम्परा की भाँति ही थी।

प्रश्न १०—"श्रम सबके ऊपर है, सबका राजा।"

धौम्य ऋषि के उपर्युक्त कथन को दृष्टि में रखते हुए 'ललित-विक्रम' नाटक के आधार पर श्रम के महत्त्व पर प्रकाश डालिये।

उत्तर—प्रश्न ८ के उत्तर को पढिये।

प्रश्न ११—"ललित-विक्रम" नाटक में वर्णित अकाल की भयंकरता का वर्णन कीजिए।

उत्तर –डाक्टर नारायण चन्द्र वन्द्योपाध्याय की पुस्तक Economic Life and Progress in Ancient India" पृष्ठ ३२५ पर रोमपाद नाम के अयोध्या-नरेश के राज्य मे भयानक अकाल पडने का वर्णन मिलता है। अकाल का विस्तृत व्योरा वाल्मीकि रामायण मे है। लेखक ने भूमिका मे लिखा है—"रोमपाद को मैंने अपने नाटक मे रोमक कर दिया है।" उपर्युक्त अकाल दसियो वर्ष तक चलता रहा। वह दुर्भिक्ष बहुत ही भयकर था। 'ललित-विक्रम' नाटक मे अकाल की भयानक परिस्थिति का विस्तृत वर्णन वर्मा जी ने किया है। अकाल के कारण जो प्रजा की भयानक स्थिति हो गई थी, इसी ने आचार्य मेघ को रोमक के विरुद्ध प्रजा को भडकाने मे सहायता दी और रोमक को कुछ समय के लिये अपदस्थ होना पडा। 'ललित-विक्रम' नाटक के प्रत्येक दृश्य मे दुर्भिक्ष की भयकरता का परिचय मिलता है। तृतीय अक के तीसरे दृश्य मे राजा रोमक दुर्भिक्ष की भयकरता का वर्णन करते हुए धौम्य ऋषि से कहते है —

"छ वर्ष से वर्षा नही हो रही है। यज्ञ पर यज्ञ किये, परन्तु अभी तक कुछ परिणाम नही हुआ।"

चतुर्थ अक मे मनुष्य विवश होकर मधूक के फल और फूलो को खाकर

जीवन यापन करने लगते हैं, परन्तु कुछ दिनों के पश्चात् वे भी नहीं मिलते। कितनी भयानक एवं करुण दशा है —

अब तो महुवे भी दुर्लभ हो गये। बारह वर्ष के अकाल ने हम सबको जर्जर कर दिया।'

"थोड़े से ही और पड़े हैं वृक्ष के नीचे। इन्हें बीन लो और चलो। किसी प्रकार पेट तो भरना है।"

एक स्त्री राजा रोमक के दुर्भिक्ष की भीषणता का वर्णन करती है कि गरीबों, अत्याचारों से पीड़ितों की आह के कारण मेघ झुलस गये हैं और वर्षा नहीं होती है।

"उनकी हाय-हाय के कारण मेघ झुलस गये है और पानी नहीं बरसता। राजा का यही पाप है।"

बहुत दिनों से वर्षा न होने के कारण राजा भी घबरा जाता है। वह अपनी रानी ममता से कहता है "वर्षा ऋतु की उष्णता के पसीने पर पसीने अब क्या कभी न आयेंगे।"

इन कथनों से स्पष्ट है कि नाटक का कथानक जिस काल से सम्बन्धित है उस काल में अयोध्या में भीषण अकाल की स्थिति थी। वर्मा जी ने अपने 'ललित-विक्रम' नाटक में उसका स्वाभाविक वर्णन किया है।

प्रश्न १२—ललितविक्रम का चरित्र-चित्रण कीजिए।

अथवा

"रोमक के पुत्र का नाम कुछ और था, परन्तु मैंने उसके सुन्दर और कल्याणकारी पराक्रम के कारण उसका नाम ललितविक्रम रख दिया है।"

नाटककार ने अपने उपर्युक्त कथन में ललितविक्रम को सुन्दर और कल्याणकारी पराक्रम से युक्त कहा है। नाटक के आधार पर अपने विचार प्रकट कीजिए।

उत्तर—

ललितविक्रम

ललितविक्रम अयोध्या के राजा रोमक का पुत्र है। उसका वास्तविक नाम तो कुछ और ही था, परन्तु लेखक ने उसके सुन्दर तथा कल्याणकारी

पराक्रम के कारण उसका नाम 'ललितविक्रम' रख दिया है। वह एक सुन्दर कुमार है। किशोरावस्था में भी वह बहुत अधिक चपल तथा उद्दण्ड है। आरम्भ मे तो वह बहुत ही वाचाल तथा राजसी वृत्ति का है, परन्तु धौम्य के आश्रम में जाकर यह कठिन साधना करता है और उसके चरित्र मे महान् परिवर्तन होता है। इस कठिन साधना के परिणामस्वरूप ही उसका चरित्र निखर उठता है। वह स्नातक पद प्राप्त कर लेता है। यहाँ पर उसका जीवन एक आदर्श विद्यार्थी का जीवन है। उसमे प्रकृति-प्रेम, दूसरो के प्रति सम्मान की भावना, स्पष्टवादिता, निर्भीकता, वीरत्व, क्षत्रियत्व, मेधावी, कृतज्ञता आदि गुण पाये जाते हैं। अपने इन गुणो के कारण ही वह नाटक का नायक बन जाता है।

वाचालता, चापल्य तथा उद्दण्डता—ललितविक्रम राजा रोमक का एक मात्र लाडला पुत्र है, इसलिये उसमे चपलता तथा उद्दण्डता का होना स्वाभाविक है। आचार्य मेघ उसे लक्ष्य-वेध की शिक्षा देते है, परन्तु उसका ध्यान बगुला की पक्तियो तथा धान के लहराते खेतो मे होता है। आचार्य मेघ राजा रोमक से उसकी चपलता तथा उद्दण्डता का वर्णन करते हुए कहते है—"राजकुमार उद्दण्ड होता चला जा रहा है। इतना दुश्शील हो गया है कि मुँह लगकर बात काटने को उतारु रहता है। कितना भी सिखाये ध्यान नही देता। कभी बगुलो को ताकता है, कभी अस्ताचलगामी सूर्य को। कभी सरयू की लहरो पर मुग्ध होता है, कभी नीलपर्णि के लहराते हुए धान्य की हरियाली पर।" परन्तु उसकी उद्दण्डता उसके जीवन का अग नही बनती है। यह तो मेघ जैसे अहकारी, अपूर्ण तथा ईर्ष्यालु आचार्य के शिष्यो मे होना स्वाभाविक ही है। हम देखते है कि धौम्य ऋषि के आश्रम मे जाने पर उसमें उद्दण्डता लेशमात्र भी दिखाई नही देती है।

राजसिक वृत्ति—ललित राजा का पुत्र है, इसलिए यह उसका स्वभाव ही है कि वह चाहे जिसको आज्ञा देकर कार्य करवाए, चाहे जिसको फटकार दे और मारने की धमकी दे। जब आचार्य मेघ उसे धनुर्विद्या सिखाते है, तो उसके बाण इधर-उधर जा पडते है। वह उन बाणो को कपिजल या कृषको को

आज्ञा देकर भगवाता है। इसी कारण से उसमें अहंकार भी है। शिकार के समय भी उसका स्वभाव ऐसा ही बना रहता है। वह हाँके वालों को फटकारता है और जब उसे यह पता चलता है कि निकटवर्ती ग्रामों में रहने वाले लोग पशुओं को मार-मारकर खा गए, तो वह कहता है—"राज-नियम के विरुद्ध अपराध दण्डनीय है।" महर्षि धौम्य के आश्रम में भी प्रारम्भ में कुछ दिन उसका स्वभाव इसी प्रकार का रहता है, परन्तु शीघ्र ही उसमें महान् परिवर्तन होता है।

आदर्श विद्यार्थी—धौम्य का शिष्य बनने के पश्चात् ललित एक आदर्श विद्यार्थी बन जाता है। वहाँ पर वह अपने को राजकुमार नहीं समझता है। वह तो गुरु की आज्ञा मानकर आदर्श विद्यार्थी के रूप में अध्ययन करता है। गुरु जी जब उसे भिक्षाटन का आदेश देते हैं, तो वह उनकी आज्ञा का पालन करता है। गुरु जी की इस आज्ञा को भी स्वीकार करता है कि सबके खा लेने के पश्चात् जो कुछ बचेगा वह उसे खाने को मिलेगा। वह एक ग्राम-बाला से कहता है—"बहिन मुझे राजकुमार मत कहो। मैं तो एक विनीत विद्यार्थी हूँ। मेरे गए अहंकार को फिर न बुलाओ और बहिन! विद्यार्थी को सुस्वाद से क्या प्रयोजन। जो कुछ भी दोगी आश्रम में ले जाऊँगा। सब के खा लेने पर जो कुछ बचेगा उसी को आनन्द के साथ ग्रहण करूँगा। • • बहिन, विद्यार्थी के लिए शीत, ग्रीष्म, वर्षा, ततूरी सब एक से है।"

मेधावी—ललित बड़ा मेधावी है। एक बार पढ़ी हुई बात को कभी नहीं भुलाता है। उसे वेद-स्मृति आदि के उद्धरण कण्ठस्थ है। अपनी मेधा शक्ति के बल पर ही वह अपने से पहले आए हुए शिष्यों से पहले ही स्नातक बन जाता है। बचपन में वह जो कुछ अपने पिता रौनक से सीखता है, उसे वह याद रखता है और धौम्य ऋषि के आश्रम में जाकर उसका मनन करता है। अन्त में अपने पिता को वह उसी बात से जागृत करता है। वह कहता है—'पिता जी, उसी सिद्धान्त के भीतर एक रहस्य गुप्त है जो मुझे इस आश्रम में आने पर मिला—पुरुषार्थ दायें हाथ में हो तो विजय बायें हाथ में रहती है।"

प्रकृति के प्रति अनुराग—त्रिविक्रम प्रकृति-प्रेमी है। वह आचार्य मेघ से कहता है—"वह देखिए आचार्य, वृक्षों की पत्तियों पर पंक्तियाँ नीचे-ऊँचे

लहरा रही है।" आचार्य मेघ भी उसकी इस प्रवृत्ति के विषय मे राजा से कहते है—"कभी बगुलो को ताकता है, कभी अस्ताचलगामी सूर्य को, कभी सरयू की लहरो पर मुग्ध होता है, कभी नीलपणि के लहराते हुए धान्य की हरियाली पर।"

स्पष्टवादी एवं निर्भीक—ललित स्पष्टवादी एव निर्भीक है। जो कुछ वह ठीक समझता है, उसे स्पष्ट शब्दो में कह देता है। वह कपिजल का पक्ष लेता है और नीलपणि से कहता है—"परन्तु पणि ! क्या इसकी खाल से कोश को सुधरवाना चाहिए ? हमारे राज्य मे यह सब वर्जित है,।" ललित आचार्य मेघ की अह की भर्त्सना करता है। वह मनु के कथन का उद्धरण देकर व्यग्य करता है—"पाखंडी, बुरे कर्म वाले, बिल्ली और बगुले के ऐसे व्रत का रूप धरे हुए, वेद-विद्या से शून्य ब्राह्मणो से बात भी न करे। इस प्रकार के ब्राह्मण बक और मार्जार वृत्ति के नीचे अपने पाप छिपाकर अल्प-बुद्धि और अबोध नर-नारियो की वचना और ठगी करते फिरते है। इनको तो पानी भी न दे। ये झूठे बाह्मण अन्धे नरक मे गिरेगे।" रोमक के सामने जब मेघ उसकी निन्दा करते है तो चुप न रहकर उनसे निर्भीकतापूर्वक कहता है—"कपिजल ने बाण-सन्धान की जो क्रिया बताई थी, उसी से मै लक्ष्य-वेध कर सका।··· आचार्य ने नही बतलाया था।" नीलपणि की सारी करतूतो का भी उसी के सामने भाडा फोड देता है—"थोडी-सी मारपीट ! आप तो कल कह रहे थे उससे कि घर चलो डडे से तुम्हारी खाल को ऊँची-चौडी करूँगा, और न जाने क्या-क्या ? ··· और यह कहते थे कि हम आर्यावर्त्त मे शोषण के लिए आए है, न कि पोषण के लिए।" अयोध्या के सभा-भवन मे भी उसकी निर्भीकता और स्पष्टवादिता के दर्शन होते है। धौम्य ऋषि के आश्रम मे भी वह निर्भयतापूर्वक पिता से कहता है—"पिता जी लौट चलिए। अधर्मयुक्त साधन से राज्य का प्राप्त करना आपको शोभा नही देता।"

वीरत्व और क्षत्रियत्व—ललित मे वीरत्व की भावना कूट-कूटकर भरी हुई है। वह कहता है—"यदि पुरुषार्थ मेरे दाये हाथ मे हो तो विजय बाये हाथ में है।" परन्तु धर्म भाव के विना विजय को व्यर्थ मानता है। धर्म की भावना

धौम्य ऋषि के आश्रम में उनके चरित्र मे मिल गई है। क्षत्रियत्व की भावना भी उनमे है। जब वह धौम्य ऋषि के आश्रम को जाता है, तो वह अपनी माता ममता से कहता है—"जैसे ब्राह्मण बुद्धि के, वैश्य राष्ट्र की शक्ति के और शूद्र श्रम की पवित्रता के प्रतीक है वैसे ही क्षत्रिय बलिदान की महत्ता के हैं।"

परन्तु ललित का यह पराक्रम कल्याणकारी है। वह इस पराक्रम से किसी का अनिष्ट करना नही चाहता है। उसने तो धर्म को अपने हृदय मे स्थान दिया हुआ है। बिना धर्म के तो वह विजय को भी व्यर्थ मानता है।

कृतज्ञ—कृतज्ञता ललित का एक विशेष गुण है। जो उस पर उपकार करता है, उसे वह कभी नही भूलता है। कपिंजल उसे लक्ष्य वेध करना सिखाता है, ललित उसके इस उपकार को सबके सामने स्वीकार करता है। कपिंजल उसके प्राणो की रक्षा करता है, तो वह अपने पिता से कहता है, "और क्या आप जानते है कि यही वह सत्पुरुष है, जिसने इस वन मे मेरे प्राणो की रक्षा की थी ?"

नायक—वर्मा जी के इस नाटक का नायक ललित विक्रम ही है। नायकोचित सभी गुण उसमे विद्यमान है। वह वीर, साहसी, मेधावी, गुरु तथा पिता की आज्ञा पालन करने वाला, स्पष्टवादी एव निर्भीक है। मर्यादा-पालन का उसे सदैव ध्यान रहता है। उच्च वंश मे उसका जन्म हुआ है। ये सभी गुण उसको नायक के पद पर ले जाते है।

किसी भी नाटक का नाम तीन आधारो पर रखा जाता है—(१) स्थान-विशेष के नाम पर या (२) किसी विशेष उद्देश्य के आधार पर या (३) नायक के नाम पर। प्रस्तुत नाटक का नाम 'ललित-विक्रम' है। इससे स्पष्ट है कि लेखक ने ललितविक्रम को नायक का पद दिया है और फिर उसी के नाम पर नाटक का नामकरण किया है। नाटक का कथानक भी उसी को केन्द्र बना कर घूमता है। नाटक के प्रारम्भ मे वह बाण विद्या सीखता हुआ दिखाई पड़ता है। नाटक की समाप्ति भी उसको धौम्य ऋषि के आश्रम मे स्नातक का पद मिलने से होती है। नाटक के फल—"यदि पुरुषार्थ मेरे दायें हाथ मे हो तो विजय मेरे बायें हाथ मे होती है।" की प्राप्ति भी ललित के माध्यम से ही

होती है। अन्त मे ललित अपने पुरुषार्थ के बल पर ही अपने पिता की जय कराता है। इसलिए ललितविक्रम ही नाटक का नायक ठहरता है।

वास्तव मे ललित अपने चरित्र को यथार्थ की पदवी तक पहुँचा देता है। धौम्य ऋषि भी उसके विषय मे कहते है—"ललित ने अपने यथार्थ को सत्य की पदवी पर पहुँचा दिया है।"

प्रश्न १३—धौम्य ऋषि का चरित्र-चित्रण कीजिए।

अथवा

"विद्रोही धौम्य ऋषि भावी पीढी के शिल्पी है। वे अकल्याणकारी परम्पराओं का उल्लंघन कर डालते थे।"

'ललित विक्रम' नाटक के आधार पर उपर्युक्त कथन की विवेचना कीजिए।

उत्तर—उत्तर वैदिक काल की सस्कृति मे धौम्य ऋषि का महत्त्वपूर्ण स्थान है। उनके विषय मे यह प्रसिद्ध है कि वे अकल्याणकारी परम्पराओ का उल्लघन कर डालते थे। नाटक मे उनके चरित्र के दो रूप मिलते है—एक तो उनका चरित्र अकल्याणकारी परम्पराओ को नष्ट करने वाले के रूप मे है और दूसरा अनुशासन और कर्त्तव्य के साँचे मे अपने शिष्यो को ढालने वाले के रूप मे है। 'ललित-विक्रम' नाटक के पढने से यह स्पष्ट हो जाता है कि उस काल मे शूद्रो को तपस्या करने का अधिकार नही था। आचार्य मेघ इसी प्रथा का लाभ उठाकर प्रजा को राजा रोमक के विरुद्ध भड़काने मे सफल होता है। धौम्य जैसे साहसी तथा महान् ऋषि का ही यह कार्य था जो कि उन्होने शूद्र कपिजल को आश्रम मे शरण देकर उसकी दुष्ट नीलपणि से रक्षा ही नही की, बल्कि उसे अपना शिष्य भी बनाया और उसे तपस्या करने की आज्ञा दी। धौम्य ऋषि के बल पर ही वह योगिराज या महान् ऋषि बन सका और राजा रोमक जो कि उसका वध करने पर उतारु था उसके दर्शन करने के लिए आकुल हो उठा। इस प्रकार धौम्य ऋषि इस अकल्याणकारी परम्परा का उल्लंघन कर राजा, राज्याधिकारियो, प्रजा आदि सभी को सन्मार्ग दिखाते है।

अनुशासन-प्रियता के आदर्श में वेद नामक शिष्य के कन्धो पर बैलो का

जुआ रखते है। ललित को भिक्षा माँगने के लिए भेजते है। ग्राम की एक स्त्री के शब्दो मे उनके कठोर अनुशासन की झाँकी मिलती है :—

पहली स्त्री—"बडे कठोर है धौम्य ऋषि। राजकुमारों से भिक्षा मगवाने के नियम इन्ही के आश्रम मे है और तो कही सुना नही।"

दूसरी स्त्री—"और सनकी क्या कम है ये महात्मा। अपने विद्यार्थियो से बैलो का काम लेते है। दो को तो मैने स्वय जुआ खीचते देखा है, जिससे बेचारो के कधे सूज गये और पीठ लाल हो गई थी। शिव ! शिव !!"

धौम्य ऋषि के चरित्र मे हम उदारता, महान् विद्वत्ता, मानव-श्रम का समर्थन करना, योग्य पात्र की पहचान, एक महान् आचार्य के गुण पाते हैं। उनका प्रभाव भी बहुत दिखाई देता है। जब राजा रोमक के सैनिक कपिजल को पकडने के लिए उसके आश्रम मे आते है तो उनका शिष्य वेद उनको डाँटता हुआ कहता है—

'परन्तु यह महर्षि धौम्य का आश्रम है। क्या तुम यह नही जानते हो ?"
स्वय धौम्य उनसे कहते है—

"लौट जाओ। यहाँ से पकडकर नही ले जा सकोगे। यहाँ तुम्हारा राजा रोमक भी इस दीन-हीन शरणागत को नही ले जा सकेगा।"

धौम्य ऋषि कपिजल से कहते है—

"मेरे लिए किसी राजा की आज्ञा या अनुमति की अपेक्षा नही है।"

उदार-हृदय—यद्यपि महर्षि धौम्य अनुशासन मे बहुत कठोर हैं परन्तु उनका हृदय उदार है। उनकी अनुशासन-कठोरता शिष्यो के कल्याण के लिये हैं। स्थान-स्थान पर वे आरुणि की प्रशसा करते है। शूद्र कपिजल को वे बिना किसी हिचकिचाहट के शरण मे ले लेते हैं और उसको अपना शिष्य बना लेते है, यह उनके उदार-हृदय होने का प्रमाण है।

महान विद्वान्—धौम्य-तपस्वी होने के साथ महान् विद्वान् भी है। उनकी दृष्टि मे योगाभ्यास उस समय तक व्यर्थ है जब तक कि योगी कर्म-भूमि मे आकर कर्त्तव्य का पालन न करे। योगी को कर्मठ होना चाहिए। वे कहते हैं—"ललितविक्रम का आचार्यकरण करके मैने उपनीत कर लिया है

और यह भी कह चुका हूँ कि वेद, इतिहास, व्याकरण इत्यादि शास्त्रों के साथ वार्ताशास्त्र की भी शिक्षा दूँगा।"

"धनुर्वेद की भी शिक्षा दूँगा। वह तो जीवन का अंग मात्र होगी।"

धौम्य ऋषि का कहना है कि शरीर, मन और आत्मा का संतुलित विकास ही मानव की वास्तविक उन्नति है। इसलिए उसे मन और आत्मा की उन्नति के साथ-साथ शारीरिक उन्नति को भी नहीं भूलना चाहिए। अपने को संतुलित रखना मनुष्य के जीवन का ध्येय होना चाहिए।

मानव श्रम के प्रबल समर्थक—महर्षि धौम्य केवल श्रम को महत्त्व देते हैं। उनकी दृष्टि में वर्णाश्रम और जाति भेद व्यर्थ है। वे श्रम की दृष्टि में रख कर उसकी व्याख्या करते हैं। श्रम के महत्त्व के विषय में कहते हैं—

"श्रम सबके ऊपर है, सब का राजा। उसका विभाजन वर्ण कल्पना है। विद्याओं का आजीवन संग्रह मनन और वितरण करने वाला ब्राह्मण, देश की रक्षा और समृद्धि का सहायक क्षत्रिय तथा कृषि, शिल्प, वाणिज्य और उद्योगों का करने वाला वैश्य—"

"चोर, डाकू, अत्याचारी, अधर्मी दस्यु ये सब शूद्र हैं। जाति से कोई भी शूद्र नहीं। स्मृति की मेरी व्याख्या यही है और मैं इसी को चलाऊँगा। अहंकार, द्वेष, भय और वासनाओं से लिप्त लोग भी शूद्र कहलायेंगे।"

योग्य पात्र को पहचानने वाले महर्षि धौम्य अनुभव और ज्ञान से योग्य पात्र को तुरन्त ही पहचान लेते हैं। जब कपिंजल शरण माँगता हुआ आता है, तब वह कहता है—

"मैं शूद्र हूँ, महर्षि! अपाप और असमर्थ।"

उस समय धौम्य कहते हैं :—

"मैं तुम्हारे भीतर कुछ और देख रहा हूँ जो विरलों में ही दिखाई पड़ता है।"

उनकी दृष्टि में आदर्श शासक—शासक के पापों की व्याख्या करते हुए वे राजा रोमक से कहते हैं—

"शासक के पाप हैं आलस्य, प्रमाद, अदूरदर्शिता और द्विविधा में पड़कर ठीक निर्णय पर न पहुँच पाना। कोर्वी और विष्टि के बन्द करने की ओर

से आँख चुराना, कृषि शिल्प और वाणिज्य को भरपूर और यथानुपात महत्त्व न देना, चोर लुटेरों अत्याचारियों, अधर्मियों से जनपद की रक्षा न करना, वृद्धिभोगियों से ऋणियों को न बचा पाना, लाखों निवर्तन भूमि का संग्रह करके अपने निजी उपयोग में लाना और उस प्राचीन सिद्धांत को जिसमें कहा गया है कि 'सैकड़ों हाथों से इकट्ठा करो तो सहस्रों हाथों से बाँट दो' आँख फेर लेना।'

स्पष्ट है कि महर्षि धौम्य का चरित्र तत्कालीन समाज में अपने महत्त्वपूर्ण व्यक्तित्व से पूर्ण है। वे अकल्याणकारी परम्पराओं का उल्लंघन करके भावी पीढ़ी के शिल्पी हैं। उनके अनुसार विवेक के साथ प्राचीन को अपनाना चाहिए। सभी प्राचीन त्याज्य नहीं हैं। उनके अकल्याणकारी रूप का त्याग अवश्य कर देना चाहिए। प्राचीन के आधार पर ही वर्तमान को समझकर उज्ज्वल भविष्य की आशा करनी चाहिए।

प्रश्न १४—निम्नलिखित पात्रों का चरित्र-चित्रण कीजिए—

रोमक, आचार्य मैत्र, ममता।

उत्तर—

रोमक

फुसलाने और एक दूसरे में कलह और भण्डण कराने को पाप कहा है।
आचार्य मेघ से पूछिए की वे किस-किस दोप से वचे है ?"

भावुक और धर्म-भीरु—राजा रोमक भावुक तथा धर्म-भीरु है। समिति के आदेश को वह विना किसी हिचक के स्वीकार कर लेता है और भावुकता-वश ही समिति के सामने अपने दु ख को प्रकट करता है। अपनी भावुकता और धर्म-भीरुता के कारण ही उसे वन-उपवनो तथा ऋषियो के आश्रमो मे भटकना पडता है। इसी के कारण वह कपिंजल को शूद्र समझकर उसका वध करने को तैयार हो जाता है। सरयू नदी के तट पर वह जो आत्म-निवेदन करता है उससे यह स्पष्ट है कि वह भावुक तथा धर्म-भीरु है।

'हे इन्द्र, हे वरुण, मेरी रक्षा करो। क्या आप को मेरी व्यथा नही दिखलाई पडती ? आप अलक्ष्य होते हुए भी सूक्ष्म तत्त्व को भी देख लेते है। मेरे पूर्व-पुरुषो ने, मैंने और मेरी सन्तान ने जो पाप जान या अनजान में किए हो, उन्हे क्षमा कर दो। आप अपने प्रिय वत्सो को कैसे पीडित अवस्था मे देख सकते है। ? अविवेकी को विवेक और अज्ञानग्रस्त को आप ही प्रकाश देते है। त्रस्तो का त्राण आप ही करते है। दग्ध हृदयोपवन को आप अभयप्रदान से फिर सजीव कर दो, मेरे झुलसाये हुए सुमन को फिर से सरस और विकसित कर दो।"

नीतिविद्—राजा रोमक वेद-नीति, शास्त्र-नीति, आचारशास्त्र, राजनीति तथा अर्थनीति सव का जानने वाला है।

सवको समान दृष्टि से देखने वाला—वह सवको समान दृष्टि से देखने वाला है। उसके राज्य मे पणि, वणिक्, व्यापारी, कृषक सभी सुखी है। जहाँ ब्राह्मणो का सम्मान होता है वहाँ शूद्रो को भी सरक्षण प्राप्त होता है। रोमक स्वय कहता है—"अस्तु, मै फिर भी उनकी रक्षा करूँगा, परन्तु मैं इनकी स्वार्थ-साधना के क्रम मे दासो और शूद्रो पर अत्याचार नही कर सकूँगा।"

प्रजापालक—राजा के लिये प्रजापालक होना आवश्यक है। रोमक मे यह गुण विद्यमान है। उसे सदैव प्रजा के सुख-दुख तथा उसके भरण-पोषण का

अन्त में हम कह सकते है, रोमक नाटक मे एक विकसित चरित्र का पात्र है। वह आदर्श की गढी हुई प्रतिमा नही है, परन्तु परिस्थितियो में पड कर वह आदर्श की ओर वढता है। उसमे मानवीय सभी दुर्वलताएँ है, जिनको समझकर वह पश्चात्ताप करता है और उनको दूर करने का प्रयास करता है। नाटक के अन्त मे आदर्श को प्राप्त कर लेता है। उसका विवेक जागृत हो जाता है और वह अधर्म से धर्म-पथ पर आ जाता है।

आचार्य मेघ

'ललित-विक्रम' नाटक मे आचार्य मेघ विरोधी पात्र के रूप मे है। उन्हे हम खलनायक कह सकते है। मेघ के चरित्र का विकास नही हो पाता है। ईर्ष्या, अहकार, षड्यन्त्र की जो प्रवृत्ति उनमे आरम्भ मे है, वही अन्त तक रहती है। परन्तु अपने सभी कुकर्मों में वे असफल होते है।

अपूर्ण ज्ञान - आरम्भ में ललित को मेघ ही शिक्षा देते है। वे उसे वाण-विद्या सिखाते है, परन्तु वे स्वय ही इस विद्या मे पारगत नही है। वे ललित को लक्ष्य-वेध का तरीका वताने मे असफल रहते है। सोम का उनके विषय मे कथन है—

"मेघ को आचार्य कहना व्यर्थ है। जो यह तक ठिकाने से नही जानता कि वाण को तीव्र और ठीक गति कैसे दी जाती है, वह आचार्य कैसे हो गया।"

शूद्रों के प्रति घृणा— आचार्य मेघ के चरित्र मे सव से वडा दोष है कि प्राचीन की सडी हुई परम्पराओ को मानने वाले है। उनका कहना है कि शूद्रो को तपस्या करने का अधिकार नही है। यदि राज्य उन्हे तपस्या करने का अधिकार देता है, तो वह घोर पाप करता है। इसी विषय को लेकर वे प्रजा को राजा रोमक के विरुद्ध भडकाते है।

क्रोधी तथा अहंकारी—आचार्य मेघ को वहुत अहकार है और उन्हे क्रोध भी वहुत आता है। वे स्थान-स्थान पर कपिजल, रोमक और ललित पर क्रोध प्रकट करते है। वे कपिजल से कहते है —

"दुष्ट जीव! तू शिक्षक वनना चाहता है।"

नाटक के अन्त मे धौम्य ऋषि उनके इस कार्य के सम्बन्ध मे कहते है—"मेघ आवे या न आवे, उससे कह देना कि क्रोध से पहले अपने विरोधी का दृष्टिकोण और कार्य समझने का प्रयत्न किया करे। और आकाशवाणी का छल-कपट कभी न करे।"

ललित के निम्नलिखित शब्दों मे आचार्य मेघ के चरित्र पर पूर्ण रूप से प्रकाश पडता है—

"पाखडी, बुरे कर्म वाले, बिल्ली और बगुले के ऐसे व्रत का रूप धरे हुए, वेद-विद्या से शून्य ब्राह्मणो से बात भी न करे। इस प्रकार के ब्राह्मण बक और मार्जार वृत्ति के नीचे अपने पाप छिपा कर अल्पबुद्धि और अबोध नर-नारियो की वचना और ठगी करते फिरते है। इनको तो पानी भी न दे। ये झूठे ब्राह्मण अघे नरक मे गिरेंगे।"

ममता

ममता ललितविक्रम की माता तथा अयोध्या की महारानी है। वह एक आदर्श महिला है। ईश्वर पर विश्वास, आशा और आस्था, गुरुजनो के प्रति श्रद्धा और मर्यादा से उसका हृदय भरा हुआ है। ममता के चरित्र मे निम्नलिखित विशेषताये है—

आशावादी—ममता आशावादी है। वह अपने पति को निराश और दु खी देखकर कहती है-"इस घडी आप कुछ अधिक चिन्तित दिखाई पडते है। समिति का अधिवेशन अभी दूर है और मुझे आशा है कि आपको उसमे विजय प्राप्त होगी।" जब रोमक ललित को धौम्य ऋषि के आश्रम मे भेजते समय व्याकुल होते है, तो वह कहती है—"देव ! क्षत्रिय हो कर ऐसी बात करते है। विद्या और शक्ति पुष्पो की कोमलता और सुगन्धि की वाहिका मे बैठकर नही आती, उनके वाहन नियम, सयम और आज्ञा-पालन है। वही ग्रहण कर पाता है, जिसने सजग हो कर मानस के ओज को बढाया हो और जो अयम् की असि धारा को अपनी वज्र मुष्टि से फोडने का सकल्प कर चुका हो।" महर्षि धौम्य के विषय मे भी वे कहती है—"रह गया उनकी आयु का प्रश्न तो महर्षि धौम्य सदादर्शो के अनुशीलन हेतु परम्परा के छोटे-मोटे नियमो का

उल्लंघन करने में कभी नहीं हिचकते। वे इसके नाम को सार्थक करने में समर्थ होंगे।'

वात्सल्य की प्रतिमा—ममता का चरित्र एक आदर्श जननी के रूप में नाटक में चित्रित किया गया है। उसे अपने पुत्र ललित से अपार स्नेह है। परन्तु स्नेह के साथ उसके उज्ज्वल भविष्य का भी उसको ध्यान है। इसलिए वह शौनक से आग्रह करके ललित को महर्षि धौम्य के आश्रम में शिक्षा ग्रहण करने के लिए भिजवाती है। किन्तु जब वात्सल्य उमड़ता है तो वही ममता कहती है—"आर्य, आपने उसे वर्षों से नहीं देखा। अब वह बालक न रहा होगा।"

आदर्श आर्य नारी—एक आर्य महिला की भाँति उसे सदैव ही अपने पति की चिन्ता रहती है। अपने पति को उदास देखकर वह उनसे पूछती है—"इन्हीं दिनों आर्य कुछ अधिक चिन्तित दिखाई देते हैं।" ममता क्षोभ और ग्लानि के साथ महर्षि धौम्य के आश्रम में जाने का हठ करती हुई कहती है—"आर्य नारी जब युद्ध में जा सकती है तो ऋषि के आश्रम में अपने पति और पुत्र के पास क्यों नहीं जा सकती? मैं अवश्य चलूँगी।"

पथ-प्रदर्शिका—ममता आदि से अन्त तक राजा शौनक की पथ-प्रदर्शिका रही है। जब शौनक वन में भटकते फिरते हैं तब भी वह उनके साथ रहती है। जब शौनक निराश होकर वानप्रस्थी होने का विचार करते हैं, तब वह उनको धैर्य बँधाती है—"बड़ों की सम्मति का सम्बल, ऐसे बड़ों की जो सदा ही श्रुतियों और शास्त्रों के पारंगत हैं और जिन्होंने अपनी सब इन्द्रियों पर विजय पा ली है, लीजिए।" अन्त में शौनक उसी की सम्मति से धौम्य ऋषि से व्यवस्था लेने के लिए जाते हैं।

धैर्यशालिनी—रानी ममता में धैर्य विवेक और आत्म-जागृति है। वह सन्तप्त होते समय अपने पति को आश्वस्त करती है—"देव! अब आप अधीर न बनें, शोक न करें। वे आपको दोषी नहीं ठहराते। केवल उन पण्डितों के मन का समाधान कीजिए।'

निरभिमान—अभिमान तो उसमें तनिक भी नहीं है। वह तो नम्रता की मूर्ति है। राजा शौनक उसकी तुलना ऋग्वेद के कुछ मंत्रों की रचयिता

ममता से करते है। वह राजा से कहती है—"आपने आर्य, मुझे जो पद और आदर सदा अखड भावना के साथ दिया है उन्हे सब जानते है, परन्तु इतनी बडी तुलना के योग्य मै नही हूँ।"

शास्त्र-वेत्ता—ममता भारतीय धर्म-मर्यादा और वर्णाश्रम-व्यवस्था को भली भाँति जानती है। जब राजा रोमक निराश हो कर वानप्रस्थ आश्रम मे प्रवेश करना चाहते है तो वह उनसे कहती है—"अभी वानप्रस्थ आश्रम में प्रवेश कैसे आर्य! आपका पुत्र जब तक विद्यार्थी-जीवन को समाप्त करके गृहस्थ आश्रम मे नही आता है, तब तक आप वानप्रस्थ आश्रम मे जा कैसे सकते है?" वह राजा को समझाती हुई वेद-वाक्यो और स्मृति-सूत्रो का उल्लेख करती है—"आर्य, यह क्या! देवता कभी रोते है? वे तो दूसरो को सरस करते-रहते है। अन्न की बालो का दूध, बालो के पकने पर सूख भले ही जाय, परन्तु उसकी मधुरता मे दीनता कभी नही आती। आप जाएँ! उठें!! और बडो से जाकर पूछे कि आपको क्या करना चाहिए।"

ललित अपनी माता के विषय मे रोमक से कहता है—"उनकी बुद्धि प्रखर और आत्मा सजग है।" ऋषि धौम्य भी उनके सद्गुणो के विषय मे कहते है—"मै तुम्हारी माता ममता रानी को जानता हूँ। उन्होने हस्तशिला में रह कर पर्याप्त शिक्षा पाई थी। उन्होने यह भी कहा होगा कि अहकार अध पतन का द्वार है।

भारतीय नारियो के लिए ममता का चरित्र अनुकरणीय है।

प्रश्न १५—"'ललित-विक्रम' नाटक में कपिंजल का चरित्र ऐसे व्यक्तियों का चरित्र है जो कंटकों मे अपना पथ बनाते हुए आदर्श को प्राप्त करते है।"

उपर्युक्त कथन पर आप अपने विचार प्रकट कीजिए।

अथवा

कपिंजल का चरित्र-चित्रण कीजिए।

उत्तर—कपिंजल 'ललित-विक्रम' नाटक का कर्मठ और तपस्वी पात्र है। उसका नाटक मे एक विशेष महत्व है। वह जाति का शूद्र है और नीलपणि का ऋण न चुका पाने के कारण उसको उसका दास बनना पडता है। नील-पणि उस पर अत्याचार करता है जिसके परिणामस्वरूप वह भाग कर

धौम्य ऋषि के आश्रम मे शरण लेता है। महर्षि धौम्य उसे योग्य पात्र समझ कर अपने शिष्य के रूप मे स्वीकार कर लेते हैं। ऋषि के आदेश से वह कठिन तपस्या करता है और अन्त मे स्नातक पद प्राप्त करता है। धौम्य ऋषि उसके विषय मे कहते हैं —

"योगाभ्यास करने के उपरान्त उसे कर्म-भूमि मे आकर कर्तव्य-पालन करना होगा, तब स्नातक हो पायेगा। योगी को कर्मठ होना ही चाहिए। अभी वह वार्ताशास्त्र का अध्ययन नही कर पाया। बिना वार्ताशास्त्र के ज्ञान के सब विज्ञान अधूरा रहता है।'

कपिंजल के मार्ग मे विरोध दीवार बन कर खडे होते हैं। वह कभी परिस्थिति मे विवश होकर उनसे पलायन करता है और कभी उनका सामना करता हुआ अपने पथ का निर्माण करता है। वह शूद्र होते हुए भी बाण-विद्या मे निपुण है। आचार्य मेघ जब ललित को लक्ष्य-वेध कराने में असफल रहते हैं, तो कपिंजल ही उसे लक्ष्य-वेध की रीति बताता है। परन्तु आचार्य मेघ उससे इस बात पर ईर्ष्या करने लगते हैं और उसका विरोध करते हैं। वे ताना मारते हुए कहते हैं—"कपिंजल शूद्र को ललित का आचार्य बना दो।"

कपिंजल एक योग्य पात्र और सच्चा जिज्ञासु है। इसीलिये महर्षि धौम्य उसे अपना शिष्य बनाते है। उसके महत्त्व को धौम्य ही नही बल्कि रोमक, ललित और आरुणि भी स्वीकार करते हैं। अन्त में वही राजा रोमक जो उसका वध करने को तैयार है, उसके दर्शन करने के लिए व्याकुल हो उठता है।

कपिंजल की चारित्रिक विशेषतायें निम्नलिखित हैं —

निर्भीकता और स्वाभिमान—कपिंजल एक निर्भीक तथा स्वाभिमानी पात्र है। वह यह जानता है कि वह शूद्र है और शूद्र की समाज मे क्या स्थिति है। परन्तु फिर भी ललित के बुलाये जाने पर उपस्थित होकर निर्भीकता से कहता है—"क्या आज्ञा है ?"· · ··"नाम मेरा कपिंजल है—मुझे क्यों बुलाया ? काम छोड़कर आया हूँ।"

जब राजकुमार ललित उससे यह पूछता है कि मेरे चलाये हुए बाण

लक्ष्य-पट्टिका के निकट ही मिल गये होगे, तो वह उत्तर देता है ? आगे-पीछे, दाये-वाये, निकट एक भी नही।"

आचार्य मेघ उसको डाँटकर पूछते है कि तूने ललित का गुरु वनने की चेष्टा की ? तव वह स्वाभिमान से कहता है—"मैने ऐसा क्या किया ?" नीलपरिण के अत्याचारो की वात वह उसके समक्ष ही ललित से कहता है— "विनती की कि पुराने अश्मचक्र को हटाकर लोह चक्र को चढा दो और सडे हुए कोश की टूटी हुई वरजाओ को ही सुधरवा दो। जिससे कुये मे से पूरा पानी भी तो भर आवे, तो कहते है कि अपनी खाल का कोश वनवा और अपनी ही खाल की वरत्राये भी—"

वाण-विद्या में चतुर—वाण-विद्या मे तो कपिजल पारगत है। वह ललित को लक्ष्य-वेध करना सिखाता है। ललित भी कपिजल का महत्त्व स्वीकार करते हुए कहता है—"कपिजल ने वाण-सधान की जो क्रिया वतलाई थी उसी से तो मैं लक्ष्य-वेध कर सका। ·· जो क्रिया उस दिन शूद्र कपिजल ने वताई थी उसके द्वारा अव लक्ष्य-वेध अचूक रहता है।"

जिज्ञासा वृत्ति—कपिजल मे वहुत कुछ सीखने की लगन है। वह आदर्श गुरु का आदर्श शिष्य वनना चाहता है। वह धौम्य ऋषि से कहता है, "परमात्मा क्या है गुरुदेव? देव मुझ नीचे पडे हुए को पुन ऊपर उठाओ। मेरे भीतर जो अजर-अमर आत्मा है उसे तेजस्वी करो। मुझे ज्योति दो।"

सेवा भाव—कपिजल मे सेवा भाव भी है। समाधि मे वैठे हुए जव वह ललित की शूकर से घायल होकर गिरने की आवाज सुनता है, तो समाधि भग करके दौडता है और उसकी रक्षा करता है। वेद से वह कहता है—"वन्धुवर, समाधि तो क्या है, पर-सेवा मे यदि शरीर भी भस्म करना पडे तो कोई वात नही है।" उसके इसी गुण की प्रशसा करते हुए ललितविक्रम अपने पिता रोमक से कहता है—"और क्या आप जानते है कि यही वह सत्पुरुष है, जिसने इस वन मे मेरे प्राणो की रक्षा की थी ? और देवगण तपस्वी को छोडकर दूसरे के मित्र नही होते।"

इस प्रकार हम देखते है कि कपिजल के चरित्र मे सभी चारित्रिक विशेषताये हैं। योग्यता, सेवा, तल्लीनता आदि सभी गुण उसमें विद्यमान हैं।

कठिन और आवश्यक स्थलों की व्याख्या

(क) जैसे ब्राह्मण. . . . .महत्ता के हैं। (पृष्ठ ६१)

प्रसंग—ललितविक्रम अपने पिता रोमक के साथ धौम्य ऋषि के आश्रम में शिक्षा प्राप्त करने के लिये जाने के लिए प्रस्तुत हो रहा है। उसकी माता ममता उसे क्षत्रियत्व की महत्ता बतलाती हुई कह रही है।

व्याख्या—आर्यों मे वर्ण-विभाजन का विशेष महत्त्व है। प्रत्येक वर्ण का अपना निजी महत्त्व है। समाज मे ब्राह्मण को बुद्धि का प्रतीक माना जाता है। अध्ययन तथा अध्यापन कार्यों को सम्पन्न करने का उत्तरदायित्व इसी वर्ण का है। राष्ट्र के लिये सम्पत्ति उत्पादन करने तथा वृद्धि करने मे वैश्यो का विशेष स्थान है। वैश्य लोग अपने परिश्रम और प्रयत्न के द्वारा राष्ट्र की सम्पत्ति मे वृद्धि करते हैं। शूद्र अपने परिश्रम के द्वारा समाज और राष्ट्र का पोषण करते है। क्षत्रियों का समाज और राष्ट्र के प्रति उत्तरदायित्व इन तीनो वर्णों से अधिक है। वे अपने प्राणों की आहुति देकर, समाज और राष्ट्र की रक्षा करते हैं।

विशेष—नाटक के इन गद्यांश से प्रकट होता है कि उत्तर-वैदिक काल मे वर्ण व्यवस्था थी। समस्त आर्य जाति चार वर्णों मे विभाजित थी—(१) ब्राह्मण (२) क्षत्रिय (३) वैश्य (४) शूद्र। समाज और राष्ट्र की उन्नति मे सहयोग के रूप मे प्रत्येक वर्ण का महत्त्वपूर्ण उत्तरदायित्व था।

(ख) धनुर्वेद की भी शिक्षा सहायता दे सकता। (पृष्ठ ७१)

प्रसंग—ललितविक्रम अपने पिता रोमक के साथ धौम्य ऋषि के आश्रम मे चला जाता है। ऋषि ललित को उपनीत कर लेते है। जब राजा धौम्य ऋषि से ललित को धनुर्वेद की शिक्षा देने के लिये कहते है, तो वे राजा से कहते हैं कि धनुर्वेद की शिक्षा जीवन की एक अंग मात्र है। शिक्षा इस प्रकार की होनी चाहिये जिसके द्वारा उचित अनुपात मे शरीर आत्मा का समीकरण एवं समन्वय हो सके। इसी तथ्य को नाटककार यहाँ पल्लवित कर रहा है।

व्याख्या—महर्षि धौम्य रोमक से कहते है कि मैं ललित को धनुर्वेद की

शिक्षा तो दूँगा ही, परन्तु जीवन मे सफलता प्राप्त करने के लिये केवलमात्र धनुर्वेद की शिक्षा ही पर्याप्त नही है। इससे तो जीवन के केवल एक अग की पूर्ति होती है। इनसे सम्पूर्ण जीवन सफल नही हो सकता। आदर्श जीवन के लिये मानव के शरीर, मन और आत्मा का उचित अनुपात में समीकरण और समन्वय होना आवश्यक है। केवल शरीर के हृष्ट-पुष्ट होने से कोई भी व्यक्ति अपना, जाति या देश का कल्याण नही कर सकता, जब तक कि उसकी आत्मा और मन का विकास नही होता है। मन और आत्मा के विकास के अभाव मे उसकी आसुरी शारीरिक शक्ति अत्याचार और अन्याय की ओर प्रेरित होगी, क्योकि उसकी शारीरिक शक्ति पर मन के नियत्रण का अभाव होने के कारण जन-कल्याण की भावना नही होगी। यदि शरीर और मन का ही विकास किया जाय और आत्मा का विकास न हो तो भी मानव का कल्याण नही हो सकता। उसका चचल मन उसकी शारीरिक शक्ति को कुवृत्तियो की ओर ले जायगा, क्योकि उसकी आत्मा में विश्वात्मा ने प्रवेश नही किया है। इसी प्रकार मन और आत्मा का विकास हो जाने पर भी यदि शारीरिक शक्ति विकसित नही हुई है तो मानव कुछ न कर सकेगा, क्योंकि स्वस्थ शरीर ही "साधन-धाम और धर्म का द्वार" होता है। निर्बल व्यक्ति का शरीर तो स्वय ही अपने लिये भार बन जाता है। इसलिए मानव के पूर्ण विकास के लिए यह आवश्यक है कि उसके शरीर, मन और आत्मा का समान रूप से विकास हो और तीनो मे सतुलन बना रहे। मानव का यह दृढ सकल्प और ध्येय होना चाहिए कि वह अपने को सतुलित रखे। शारीरिक शक्ति के ही अनुपात मे मन और आत्मा का भी विकास करे। जो व्यक्ति पहले अपने को सतुलित और स्थिर बना लेता है, वही दूसरो को सतुलित करके उनका कल्याण कर सकता है।

विशेष—मानव-जीवन की सफलता के लिए शक्ति, ज्ञान, मन (इच्छा) इन तीनो का सतुलन और समन्वय होना आवश्यक है। इन तीनो के वैषम्य मे मानव न प्रगति ही कर सकता है और न आत्म-रूप को ही पहचान सकता है।

व्याख्या के लिए अन्य आवश्यक स्थल

(१) विषधर का········ नहीं है। (पृष्ठ ११)
(२) जैसे हाथी ···· · नहीं होता। (पृष्ठ ११)
(३) तुमने संकल्प की · ····· दीन हो। (पृष्ठ २२)
(४) रात्रि एक देवी है·· ······वितरित कर देती है। (पृष्ठ २५)
(५) गर्व, भूल और·· · · ·चाल चलते है। (पृष्ठ ३४)
(६) योग के दो· ··· सकता था। (पृष्ठ ४०)
(७) इस वर्ग के साथ·· · · वृद्धि नहीं होगी। (पृष्ठ ४६)
(८) शुभ्र वर्ण उषा·········होने लगे हैं। (पृष्ठ ६७)
(९) अग्नि को उदय · कल्याणकारी होता। (पृष्ठ ७१)
(१०) मैं जब अपनी बात ·· ···· वे ही जानें। (पृष्ठ ७८)
(११) मुझे तो लग रहा है ······· भारी हो जाता है। (पृष्ठ ८२)
(१२) आप अपने प्रिय ····· कर दो। (पृष्ठ ८४)
(१३) चोर, डाकू, अत्याचारी · ··· देखना चाहिए। (पृष्ठ ९४)
(१४) दरिद्रता और विपत्ति······ · बनाता है। (पृष्ठ ९६)
(१५) अकाल प्रकृति ·· न सुनते हैं। (पृष्ठ ९८)
(१६) कन्धों और पीठ··· · सोचूँगा। (पृष्ठ १०६)
(१७) काठ की लकड़ी·· ·· प्राप्त करती है। (पृष्ठ ११०)
(१८) चिन्ता से लड़कर · ·· नहीं चली। (पृष्ठ १११)
(१९) अस्पष्ट की चिंता · ···लगता है। (पृष्ठ ११६)
(२०) रही शाप की····· दे देते है। (पृष्ठ ११७)
(२१) अधर्मयुक्त · ···द्विज से बढ़कर है। (पृष्ठ ११८)
(२२) जैसे प्रकृति के ··· धारण कर ले। (पृष्ठ १२२)
(२३) योगाभ्यास करने के · रहता है। (पृष्ठ १२५)
(२४) मानव के पाप है · · इसी से होगा। (पृष्ठ १२६)
(२५) पुराने कर्तव्य · ·· लागू है। (पृष्ठ १२७)
(२६) विवेक के साथ· बदल करो। (पृष्ठ १२८)

वितस्ता की लहरें

प्रश्न १—"वितस्ता की लहरें" नाटक की संक्षिप्त कथा दीजिये।

उत्तर—प्रस्तुत नाटक मे मिश्रजी ने यूनान के राजा सिकन्दर (अलिकसुन्दर) के भारत पर आक्रमण का वर्णन किया है। वह महान् विजेता मिश्र, सूपा, एकबताना, पारसपुर आदि राज्यो को पद-दलित करता हुआ, वहाँ के प्रासादो और मन्दिरो का ध्वस करता हुआ भारत आ पहुँचा। साथ में वह पारस नरेश दारयवहु की राजकुमारियो का हरण करके भी लाया। तक्षशिला के राजा आम्भी ने उसका स्वागत किया और केकय नरेश वीर शिरोमणि महाराजा पुरु को नीचा दिखाने के लिए उसे अलिकसुन्दर की आधीनता ही स्वीकार नही की, बल्कि महाराजा पुरु के विरुद्ध युद्ध करने के लिए भी उसे उत्तेजित किया। आम्भी के इस कृत्य से तक्षशिला की प्रजा और तक्षशिला विद्यापीठ के आचार्यो तथा स्नातको के मन मे रोष छा गया। वे लोग वितस्ता नदी को पार कर केकय राज्य में जाने लगे। नदी के दूसरी ओर तक्षशिला विद्यापीठ के आचार्य विष्णुगुप्त और केयय राजकुमार रुद्रदत्त ने उनका स्वागत किया। तक्षशिला के स्नातको की सहायता से पारस की दो राजकुमारिया तारा और रजनी भी यवन शिविर से निकलकर वितस्ता पार करने मे सफलता प्राप्त कर सकी। राजकुमार रुद्रदत्त ने उन दोनो का स्वागत किया और उनको केकय राजभवन मे ले जाया गया। वहाँ राजवधू ने उनका स्वागत किया और महाराजा पुरु ने उन्हे पिता का प्रेम दिया।

महाराज पुरु तथा आचार्य विष्णुगुप्त अलिकसुन्दर के वर्बर आक्रमण और आम्भी के नीच आचरण पर विचार कर रहे हैं। इसी समय दो स्नातक आ पहुँचते है। एक स्नातक अग्निवर्ण महाराज विष्णुगुप्त को सूचना देता है कि पारस की राजकुमारियो के उद्धार करने में स्नातक मातग तालेमी के भाले से आहत हो इस नश्वर ससार को त्याग सदैव के लिए विदा हो गया है। साथ ही उसने तक्षशिला के राजकुमार भद्रबाहु (दूसरा स्नातक) की ओर संकेत करते हुए कहा कि महाराज अब मातंग का स्थान इन्होने ले लिया

है। संकल्प और प्रतिज्ञा की विधि भी इनकी पूर्ण हो चुकी है। पहले तो राजकुमार रुद्रदत्त उस पर संदेह करते हैं, परन्तु बाद मे महाराज पुरु पिता के रूप मे उसे शस्त्र देते है, क्योकि वह आम्भी के दिए शस्त्रो को नीच समझ कर वितस्ता की धार मे फेंक कर नि शस्त्र वहाँ पर आया था।

केकय नरेश पुरु के राजभवन के सभा मण्डप मे खडी राजकुमारी रजनी कृष्ण की मूर्ति को इस तन्मयता से देख रही है कि उसकी साँस का चलना भी रुक सा गया प्रतीत होता है। उसी समय उसकी छोटी बहिन तारा वहा आती है। रजनी के यह पूछने पर कि राजकुमार रुद्रदत्त कब आयेंगे, तारा उससे कहती है कि उन्हें युद्ध करना है, उनके पास तुम्हारे प्रेम के लिए अवसर कहाँ है ? वह यह भी बता देती है कि देवी रोहिणी को उसके इस प्रेम का पता है। वह (रजनी) सरोवर के उत्तर स्फटिक शिला पर जो नित्य युवराज का चित्र बनाती रही है, देवी उसको बराबर देखती रही है। आज तो उसने उस चित्र को मिटाया भी नहीं और देवी उसी चित्र पर पुष्प चढाकर उन की पूजा कर रही हैं। वह रजनी को पकड़ कर उसके ओठ पर लगे गेरू की ओर संकेत करती है कि यह चित्र को गेरू से रँगने का चिन्ह है। इसी समय रोहणी वहाँ आ पहुँचती है। रजनी फफककर रो पडती है। रोहणी उसको धैर्य बँधाती है। वह उनसे कहती है कि विपत्ति के घने काले मेघ जो मडरा रहे हैं उनके फट जाने पर मेरे अधिकार के इस क्षेत्र में तुम दोनो का भी भाग होगा।

इसी समय सैनिक अश्वकर्ण युवराज के आगमन की सूचना देता है। वह यह भी बताता है कि उनके साथ बहुत से लोग है और वे सब यहीं सभा मण्डप में बैठेंगे। वसन्तसेना दौडकर युवराज की आरती के लिए सामग्री लेने जाती है। रजनी आगे बढकर पश्चिम के द्वार से दूर से देख कर कहती है कि युवराज दुबले हो गये है जैसे माघ में सिंह की देह कृश हो जाती है। तारा उससे कहती है अंजन क्यो नहीं लगा आती ? रजनी उस पर इस दया को करने के लिए कहती है, परन्तु रोहणी कहती है कि आरती आने दो। तारा न करे पर मैं तुम्हारी सहायता करूँगी। जो मुझ से न मिले उसके लिए इनसे हठ करना। रजनी रोहणी से मृत्यु-दान की प्रार्थना करती हैंऔर भूमि पर लेट

कर मृत्यु का अभिनय करती है। इसी समय युवराज रुद्रदत्त वहाँ आ पहुँचते है। तारा के कहने पर वे उसे दोनो हाथो से उठाते है और कहते हैं कि वीणा भी इससे भारी होती है। तारा के कहने पर युवराज रजनी को पारिजात की माला व सरोवर की कमलिनी कहते हैं। युवराज के यह कहने पर कि राजकुमारी पीली पड गई है रोहणी कहती है कि इन्हे वही सृष्टि का पहला रोग (अनुराग) हो गया है।

इसी समय वसन्तसेना सोने के पात्र में आरती लेकर आती है। रोहणी रजनी का हाथ पकड़ कर राजकुमार की आरती करने को कहती है। रजनी के यह कहने पर कि देवी पहले आप आरती करें, रोहणी कहती है कि चित्र बनाती रही तुम और पहले आरती करूँ मै। रजनी आर्यपुत्र की आरती करती है और उनका जय-जयकार करती है। उसके पश्चात् तारा आरती करती है परन्तु वह 'आर्यपुत्र की जय' न कह कर 'जय हो देव' कहती है। इसके पश्चात् देवी आर्यपुत्र से रजनी के सरोवर के तट पर शिला पर उनका चित्र बनाते रहने की बात कहती है। थोड़ी देर परिहास की बाते करने के पश्चात् युवराज रजनी के कधे पर हाथ रख कर कहते है :— "चलो अपना चित्र दिखाओ अब।" परन्तु तारा रजनी से कहती है कि जब तक युवराज तुम्हे देवी न कहे, तब तक न हिलना बहन।

उसी समय नेपथ्य मे महाराज पुरु का जय-जयकार सुनाई देता है। पुरु, विष्णुगुप्त, भद्रबाहु और अग्निवर्ण उसी समय वहाँ आ पहुँचते है। विष्णुगुप्त सिंहासन के दायें भद्रपीठ पर और पुरु सिंहासन पर बैठते है। महाराज की आज्ञानुसार भद्रबाहु और अग्निवर्ण सिर झुकाकर पुरु के बाये दो भद्रपीठो पर बैठते है। आचार्य और महाराज यवन-विजेता को भावी प्रगति और उसे रोकने के प्रसग पर विचार करते है। परन्तु इस समय आचार्य जी अग्निवर्ण और भद्रबाहु को वहाँ से अतिथि भवन मे भेज देते है।

विष्णुगुप्त महाराज पुरु को समझाते है कि यवन-विजेता से टक्कर लेने के लिए जब तक सभी जनपद मिलकर सगठित रूप में खडे न हो तब तक उसे पराजित करना बहुत ही कठिन है। परन्तु पुरु आचार्य जी को ही सगठन के न होने देने का दोषी बताते है, क्योकि केकय की दस सहस्र सेना को जो

सहायता करने के लिए अभिसार जा रही थी, उन्होंने (आचार्य जी) ही वापस लौटाकर जनपदों के मन में पुरु के विरुद्ध संदेह उत्पन्न कर दिया है। महाराज पुरु को पूर्ण विश्वास है कि यदि केकय की दस सहस्र सेना वापस न लौटाई जाती तो अवश्य ही जगद्विजयी अलिक्सुन्दर पराजित होकर उनका बन्दी होता। महाराज पुरु आचार्य के प्रति अपने सन्देह को स्पष्ट करने के लिए उनसे वार्तालाप करते हैं। इसी समय युवराज रुद्रदत्त और भद्रबाहु यह सूचना देते हैं कि निषद के महाराज शशिगुप्त अलिकसुन्दर के दूत बनकर आये हैं। महाराज पुरु और रुद्रदत्त उनको आदर सहित लिवा लाने को चले जाते हैं। भद्रबाहु महाराज विष्णुगुप्त से उनकी दोमुँहे सर्प की नीति को स्पष्ट करते हुए कहता है कि पुरु को उनकी सब बातों का पता है और उन्होंने अभिसार के युद्ध में वेष बदलकर उनको शशिगुप्त से बातें करते देखा है और यह भी उन्हें पता है कि आप युद्ध के पश्चात् विजयी यवन के शिविर में गये थे। वह विष्णुगुप्त की इस नीति का विरोध करता है कि विजयी यवन को आगे बढ़ जाने देना चाहिए और जब वह पूर्व से लौटे, उसके मार्ग को रोक देना चाहिए, जिससे वह वापस अपनी मातृभूमि में पहुंचकर अपने गुरु के दर्शन न कर सके।

इसी समय शशिगुप्त, महाराज पुरु और रुद्रदत्त वहाँ आकर बैठ जाते हैं। शशिगुप्त विजयी यवन का यह सन्देश महाराज पुरु को देते हैं कि यदि महाराज यवन-विजेता को अजेय मान लें तो वितस्ता के पूर्व की भूमि को जीत कर वह पुरु को दान कर देंगे। परन्तु महाराज पुरु और युवराज रुद्रदत्त यह प्रस्ताव अस्वीकार करते हैं। शशिगुप्त उनको समझाते हैं कि उनको आगे बढ़ने के लिए केवल मार्ग देना है जिससे उनकी टक्कर महाप्रतापी नन्द से हो जाय। पीछे से हम उनका मार्ग रोक देंगे। परन्तु रुद्रदत्त कहता है कि यह नहीं हो सकता कि यवनों के पैर उनकी मातृभूमि पर पड़कर इसे कलंकित करें। महाराज पुरु स्पष्ट शब्दों में कह देते हैं कि यह तर्क का समय नहीं है। यवन विजेता से कह देना कि केकय जन उनका मार्ग वितस्ता के तट पर रोकेंगे। यही हमारी जन-समिति का निर्णय है। शशिगुप्त और महाराज पुरु [illegible] निर्णय होता है कि यवन विजेता और महाराज पुरु दोनों एक

दूसरे से वितस्ता के बीच धार मे नाव पर चढकर मिले। वे यवन-विजेता की सहारक शक्ति और उसकी प्रेयसी ताया की निर्दयता की निन्दा करते हैं।

इसी समय दो यवन सेनापति वहाँ आ पहुँचते है। वे दोनो वहाँ भद्रपीठो पर बैठते हैं और विजयी यवन को मार्ग देने का प्रस्ताव रखते है। परन्तु पुरु को यह स्वीकार नही। वह द्वन्द्व-युद्ध के लिए उनके किसी भी वीर सेनापति को ललकारता है। टियोनस और नियरकस (दोनो यवन सेनापति) उसी स्थान पर द्वन्द्व-युद्ध करने के लिए कहते है। परन्तु महाराजा पुरु दूत के सम्मान के कारण चुप रहते हैं। इसी समय बाहर कोलाहल सुनाई पडता है। युवराज रुद्रदत्त जाते है और आकर सूचना देते है कि तीन नावो पर पच्चीस यवन पकड़े गए है। वे तीन योजन दक्षिण वितस्ता की थाह ले रहे थे। उन्होने ग्रामीणो की आज्ञा न मानकर शस्त्र रख देना अस्वीकार कर दिया। इस कारण पकडते समय उनमे से सात मारे गए है। इस पर महाराज पुरु शशिगुप्त से कहते है, "देख लो, तुमने कहा था कि सिन्धु की भाँति यवन चोरी से वितस्ता पार नही करेंगे और अब यह उसी की योजना बन रही है।" महाराज पुरु उन यवन वन्दियो को अपने सकटकालीन अधिकार का उपयोग करके मुक्त करने की आज्ञा देते हैं और टियोनस से कहते हैं कि मै वितस्ता की आधी धार में एक सैनिक के सहित आऊँगा और यवन राज को भी एक सैनिक के साथ आना होगा। शशिगुप्त के कहने पर महाराज पुरु यवन विजेता की प्रेयसी ताया को भी उसके साथ आने की स्वीकृति दे देते है। फिर राजदूतो को विदा करने के लिए महाराज पुरु तथा युवराज नदी तट तक जाते है।

वितस्ता के तट पर अलिकसुन्दर की ग्यारह सहस्र सेना और महाराज पुरु की दो सहस्र सेना में भयकर युद्ध हो रहा है। हाथियो की भयकर चिघाड़ रथो की गड़गडाहट, घोड़ो की हिनहिनाहट, धनुषो की टंकार, शस्त्रो की झकार और सैनिको की ललकार सुनाई पड़ रही है। शख, भेरी और युद्ध के अन्य वाजे रह-रहकर दिगन्त को हिला रहे है। केकय सैनिको ने यवनो के दाँत खट्टे कर रखे है। टियोनस अलिकसुन्दर को धैर्य बधाता हुआ कहता है, महाराज कतैरस की सेना ने नदी पार कर ली है। उसके आते ही युद्ध का पासा पलट

जायेगा। विजयी यवन केकय सैनिकों की वीरता से चकित हो रहा है। युद्ध भूमि में वे उसे सिंह, भेड़ियों तथा भालू से भी अधिक भयंकर लगते हैं। वह कहता है कि चोरी से रात्रि के समय वितस्ता पार करके असावधान शत्रु पर आक्रमण करने पर भी हमारी यह दशा हो रही है। इसी समय चन्द्रगुप्त तथा आम्भी वहाँ आ पहुँचते हैं। यवन विजेता उनसे महाराज पुरु के भयंकर युद्ध और उसके विशाल देह की प्रशंसा करते हुए कहता है: "इस युद्ध का कोई परिणाम न निकलेगा। यदि महाराज आम्भी की आज्ञा हो तो मैं यह युद्ध बंद कर दूँ।"

इसी समय सेनापति सिल्यूकस वहाँ आता है। वस्त्र भीगे हुए हैं और वह दुःख में काँप रहा है। अलिकसुन्दर उससे पूछता है . "ताया कहाँ है?" सिल्यूकस से ताया के हरण की बात सुनकर यवन-विजेता अपने दोनों हाथ ललाट पर दे मारता है और उसका शरीर काँपने लगता है। वह व्याकुल हो चन्द्रगुप्त से कहता है - "ताया के न रहने पर समूचा जगत् जीतकर भी मैं क्या करूँगा? कह दो भद्र! पुरु से—मैं यहीं से लौट जाऊँगा। युद्ध बन्द कर दें।" इसी समय नदी में ताया के केशों की रत्न-माला बहती हुई दिखाई देती है। यवन-विजेता उसको पकड़ने के लिये दौड़ता है, परन्तु इसी समय महावत महाराज पुरु का दूत बनकर वहाँ आता है। वह अलिकसुन्दर के विश्वासघात और अधर्म के युद्ध को धिक्कारता है और कहता है कि जो अपनी प्रिया की रक्षा न कर सका वह विश्व-विजयी कैसे बन सकता है? अचानक महाराज पुरु का पागल हाथी भागता हुआ आता है और पाँच सौ शत्रु धनुर्धर उसका पीछा करते हुए आते हैं। इसी समय विष्णुगुप्त ताया का लिखा एक पत्र लाकर अलिकसुन्दर को देते हैं; जिसमें लिखा है कि यदि युद्ध बन्द नहीं किया गया तो वह आत्मघात कर लेगी। यवन-विजेता आवेग में आकर आगे को दौड़ते हैं और चिल्लाते हैं: "रोक दो युद्ध कोइनस! महाराज पुरु से मेरी सन्धि हो गई है।" केकय नरेश विजयी-यवन को बचने को चिल्लाता है, परन्तु हाथी उन्हें सूँड में ऊपर उठाकर भूमि पर पटकना ही चाहता है कि पुरु उसे अंकुश मार उनको सूँड से अलिकसुन्दर को अपने हाथ में ले लेता है और उनकी रक्षा करता है। हाथी वितस्ता के जल में उतर जाता है। महाराज

पुरु यवनराज को अपने पेट में छिपाकर आस्तरण के भीतर दोनों हाथों और पैरों से चिपक जाते हैं। इसी समय केकय राज्य के बीस कोस की दूरी के ग्रामों के तरुणों का ग्रामों में आग लगाकर और अपनी स्त्रियों तथा बच्चों को पूर्व की ओर भेजकर यवन सेना से टकराने के लिये आते हुए कोलाहल सुनाई पड़ता है। विष्णुगुप्त तथा शशिगुप्त घोड़ों पर सवार हो उन्हें रोकने जाते हैं। टिथोनस और सिल्यूक्स हाथी के पीछे-पीछे तट पर जाने वाले सैनिकों को रोकने जाते हैं।

महाराज आम्भी अकेले खड़े हुए हैं। इसी समय तारा पुरुष वेश में वहाँ आती है और तक्षशिला नरेश से बातचीत करती है। आम्भी उसको पहचानने में असमर्थ हैं, परन्तु उसकी बातों से उन्हें आश्चर्य हो रहा है। इसी समय आचार्य विष्णुगुप्त वहाँ आ पहुँचते हैं। आचार्य आम्भी को यह बता देते हैं कि राजकुमार भद्रबाहु और यह देवकन्या दोनों मित्रता के बन्धन में बँध चुके हैं। महाराज आम्भी के वहाँ से चले जाने पर विष्णुगुप्त और राजकुमारी तारा बातचीत करते हैं। आचार्य जी कहते हैं कि देखो कालनेमि (महाराज पुरु का गज) लौट रहा है। किनारे-किनारे राजकुमार भद्रबाहु और बीच धार में हाथी चला जारहा है। समस्त यवन सैनिक शिविर को लौट गये हैं। केवल दो सैनिक यवन-विजेता को लेने के लिए वृक्षों के झुरमुट में ठहरे हुए हैं। इस समय विष्णुगुप्त तारा को यह भी बता देते हैं कि उसकी बड़ी बहन आर्त्तकामा तालेमी की सेवा में है। उसे (तालेमी को) ज्वर आरहा है। उसके बिना एक क्षण भी नहीं रह सकता। इसी समय आचार्य महाराज के हाथी को कुछ दूरी पर ही रुकने का संकेत कर उधर चले जाते हैं और राजकुमार भद्रबाहु वहाँ आ जाते हैं। तारा से वह बातें करने लगते हैं, और आचार्य जी की 'ताया' को वहाँ लाने की आज्ञा को भूल जाते हैं। थोड़ी देर पश्चात् जब उन्हें ध्यान आता है तो राजकुमार और राजकुमारी दोनों ही 'ताया' को लेने राजभवन के दक्षिण भूगर्भ-ग्रह में चले जाते हैं।

महाराज पुरु, अलिकसुन्दर तथा शशिगुप्त हँसते हुए वहाँ आते हैं। यवन विजेता 'ताया' के लिए अधीर हो उठता है। विष्णुगुप्त उसको बताते हैं कि वह अभी यहाँ आ पहुँचेगी। ताया का किसी भी प्रकार का अनादर नहीं

किया गया है। वह साथ ही यह भी बता देते हैं कि स्नातकों ने उसका हरण किया था और वह छल-विद्या उन्होंने यवनों से सीखी है। महाराज पुरु को इसका तनिक भी ज्ञान नहीं है और इस समय ताया देवी चिकित्सक के साथ घायल युवराज की सेवा कर रही है। इसी समय तारा के साथ ताया वहाँ आ जाती है। अलिकसुन्दर के पूछने पर वह बताती है कि इस देश के लोग पराई स्त्री को माता के समान समझते हैं। वे पराई स्त्री की ओर दृष्टि उठाकर भी नहीं देखते। मुझ को सब ने माता के समान देखा। यहाँ पर मुझे अपने अपमान का कोई भय नहीं रहा। यह मेरा सौभाग्य है, जो मैं यह सब कुछ अपनी आँखों से देख सकी। यहाँ के व्यक्ति यवन सेनापतियों और सैनिकों की भाँति विलासी नहीं हैं। दस कोस तक की दूरी में आपको कोई स्त्री नहीं मिलेगी। वे सब अपना सम्मान बचाने के लिए दूर चली जाती हैं। उन्हें यवनों की तलवार का भय नहीं, उनके आचरण का भय है। तरुणों ने ग्रामों में आग लगा दी है। महाराज यह किसी देवता की यवन सेना पर कृपा हुई है जो वह अब तक बची हुई है, वर्ना समस्त सेना युद्ध के समुद्र डूब मे गई होती।

ताया पुरु से पूछती है कि महाराज अब क्या होगा? केकय नरेश इसका उत्तर देते हैं कि विजयी चाहे युद्ध करे चाहे लौट जाय, मुझे दोनों में से प्रत्येक व्यवहार स्वीकार है। अलिकसुन्दर युद्ध करना अस्वीकार कर देता है और वह महाराज पुरु को उसी प्रकार समझता है जैसे कि उस देश का प्रत्येक व्यक्ति उन्हें समझता है। महाराज आम्भी इस समस्त काण्ड का दोषी अपने को ठहराते हैं और पुरु के सामने हाथ जोड़कर खड़े हो जाते हैं। महाराज पुरु उन्हें उठाकर छाती से लगाते हैं। फिर वह भूमि पर दोनों हाथों में मुँह छिपा कर बैठ जाता है। महाराज पुरु के आदेश से भद्रबाहु अपने पिता को उठाता है। ताया राजकुमारी तारा को (जो पुरुष वेश में है) आगे खींचकर कहती है कि यह महाराज आम्भी की पुत्रवधू है। साथ ही उसका परिचय भी देती है। अलिकसुन्दर के यह पूछने पर कि दारयवहु की दूसरी राजकुमारी कहाँ है, ताया बताती है कि वह युवराज रुद्रदत्त की सेवा में है। वहाँ [illegible] है। युवराज उसे स्वीकार कर चुके हैं। इस पर पुरु चौंक कर कहते हैं कि हमारे कुल में केवल एक स्त्री का विधान है। इसके उत्तर में

विष्णुगुप्त कहते है कि जिस प्रकार पार्वती ने शकर के लिए तपस्या की थी, इसी प्रकार रजनी के लिए भी युवराज के चरणो को छोडकर विश्व में दूसरी गति नही है। वह नित्य शिला पर उनका चित्र बनाती रही है। विधान भी सशोधन चाहता हैं। जब आपने राजकुमारी को शरण दी है तो आप उसे विमुख कैसे करेंगे। महाराज के यह कहने पर कि राजभवन की लक्ष्मी रोहिणी का क्या होगा ? आचार्य जी कहते है कि लक्ष्मी का स्थान तो रोहिणी का ही है। रजनी का तो स्थान तो माया का है। उन्हे लक्ष्मी का पद नही लेना है।

ताया के कहने के अनुसार महाराज पुरु तारा का हाथ राजकुमार भद्रबाहु के हाथ मे देते हैं और फिर सब मिलकर युवराज रुद्रदत्त के पास जाते है।

प्रश्न २—नाटकीय तत्वों के आधार पर "वितस्ता की लहरें" नाटक का आलोचनात्मक अध्ययन् प्रस्तुत कीजिए। (नवम्बर १९५८)

अथवा

"वितस्ता की लहरें" नाटक में नायक कौन है ? इसे स्पष्ट कीजिए।

अथवा

लक्ष्मीनारायण मिश्र ने "वितस्ता की लहरें" नाटक किस उद्देश्य से लिखा है और उसमें उन्हें कहाँ तक सफलता प्राप्त हुई है ?

उत्तर—नाटक और उपन्यास के निर्णायक तत्व प्राय. एक सें होते हैं। इसीलिए आचार्यों ने कहा है—"निर्णायक तत्व की दृष्टि से नाटक और उपन्यास मे विशेष साम्य है।" दोनो में साहित्यिक विधाओ की अर्थ-सामग्री भी प्राय. एक सी रहती है, परन्तु दोनो मे अर्थ-सामग्री का व्यवहार अपने-अपने ढग से होता है। यही दोनो मे मुख्य अन्तर है। उपन्यासकार को कथानक के विकास की दृष्टि से विशेष सुविधा रहती है। इसके विपरीत अनुकरण के कारण नाटक पर अनेको प्रतिबन्ध लग जाते है। उपन्यासकार को यह सुविधा लेनी पडती है। बिना इस सुविधा को प्राप्त किए वह पाठक के सम्मुख मूर्त विधान प्रस्तुत नही कर सकता। अभिनयात्मक होने के कारण नाटक को यह सुविधा स्वयमेव प्राप्त है। मूर्त विधान के बिना पाठक रस विभोर नही हो सकता। रूप विधान की विशेष विशिष्टता के कारण ही तो नाटक को "काव्येषु नाटक रम्यम्" कहा गया है। नाटक-साहित्य के प्राचीन आलोचको ने नाटक

के तीन मुख्य तत्त्व स्वीकार किए हैं—(१) कथावस्तु, (२) पात्र और (३) रस। आज के युग में कुछ नवीनता भी आ गई है। इसी नूतनता के पदार्पण से ही नाटक के तत्त्वों में वृद्धि कर दी है। यद्यपि हम इन सभी तत्त्वों को उपरोक्त तीनों तत्त्वों में समाहित कर सकते हैं, तथापि सुविधा के लिए उनका उल्लेख करना अप्रासंगिक नहीं। वे सम्पूर्ण तत्त्व मिलाकर इस प्रकार हैं-(१) कथावस्तु, (२) पात्र चरित्रांकन, (३) कथोपकथन, (४) देश, काल और वातावरण (५) शैली, (६) उद्देश्य।

कथावस्तु—'वितस्ता की लहरें' नाटक की कथावस्तु ऐतिहासिक है। प्रस्तुत नाटक संस्कृति-प्रधान ऐतिहासिक नाटक है। इतिहास और कल्पना का अत्यन्त सुन्दर मिश्रण किया गया है। ऐसा करना प्रत्येक ऐतिहासिक नाटककार का एक सर्व-सामान्य कर्त्तव्य-सा बन जाता है। यदि नाटक कथोपकथन के रूप में उपस्थित किया गया कोरा इतिहास ही हो तो रसोद्रेक कहाँ से होगा? इतिहास के घटनाचक्र का अध्ययन करने पर तो कोई भी पाठक रस-विभोर नहीं हुआ करता। इसीलिये उपन्यासकार या काव्यकार की भाँति नाटककार को भी कथावस्तु को केवल साधन बनाना पड़ता है, उन मार्मिक स्थलों तक अनुवच्छिन्न रूप में ले जाने के लिए जिन हृदयस्पर्शी स्थलों में रस कर वह पाठक को रसा चरता है। ऐसा करने के लिए उसे कल्पना द्वारा एक नई सृष्टि करनी पड़ती है। ऐसे सांचे में ढली जो कथानक में इस प्रकार से संयुक्त हो जाए जिसे पाठक पढ़कर यह न कह सकें कि अमुक घटना ऐतिहासिक नहीं। उस घटना को ऐतिहासिक रूप दे देना ही नाटककार की कल्पना का परिचायक है। मिश्रजी के इस नाटक का कथानक का आधार वितस्ता के तट पर यवन सेना का पहुँचना, चोरी से वितस्ता पार करना और केकय महाराज पुरु के साथ उसका युद्ध है। यवन विजेता सिकन्दर (अलिक्सुन्दर) के भारत पर आक्रमण की कोई भी सूचना हमें अपने पुराणों में नहीं मिलती। यूनानी इतिहासकारों ने सिकन्दर की विजय का जो कुछ लेखा-जोखा दिया, उसी के आधार पर वितस्ता के तट पर उसकी विजय की बात हम भी मानते रहे हैं। पुरु के साथ किए गए सद्व्यवहार का जो वर्णन यूनानी इतिहासकारों ने किया है उसका कारण कोई दूसरा ही था और उसकी मिश्रजी

ने बड़ी सुन्दर कल्पना करके ऐतिहासिक कथानक के साथ उसका समन्वय किया है।

कथावस्तु का प्रधान गुण है उनमें वर्णित घटनाओं का व्यवस्थित क्रम। सम्पूर्ण नाटक का अध्ययन करने से यही पता चलता है कि नाटककार ने अपने आपको उलझन से बचाने के लिए घटना बाहुल्य से दूर रहने का यत्न किया है। घटनाओं का सम्बन्ध-निर्वाह करने मे नाटककार को पूर्ण सफलता मिली है। घटनायें घटनाओं से उत्पन्न होती चली जाती है और अन्त तक यह दोष पाठक को अखरता नही है। कथावस्तु की दूसरी विशेषता उसकी रोचकता है। इस गुण के अभाव मे नाटक एक ऐसा दृश्य-विधान-सा बनकर रह जाता है, जिसके कारण नाटक की नाटकीयता ही सार्थक नही होती। प्रस्तुत नाटक का प्रारम्भिक उद्घाटन ही हमे उत्सुक बना देता है। दर्शक की अथवा पाठक की यह उत्सुकता ही रोचकता की प्राण होती है। रुद्रदत्त, महाराज पुरु, अलिकसुन्दर, तारा, रजनी तथा विष्णुगुप्त के विषय में जानने की हमारी उत्सुकता बढती ही जाती है। अत नाटक की कथावस्तु मे रोचकता है, प्रवाह है, गति है और गठन है।

पात्र-चरित्रांकन—कथावस्तु के पश्चात् पात्र-चरित्रांकन नाटक का दूसरा तत्व है। उसका नाटक में बहुत महत्व है। यदि कोई नाटक इस तत्व की दृष्टि से असफल होता है तो उसका कथावस्तु भी ठीक ढग से नही चल पाती। पात्रो के विषय में जो आचार्यों ने कहा है वह है उनका सजीव व्यक्तित्व। पात्र कठ-पुतलियो की भाँति नचाये जाने वाले न होकर स्वतन्त्र दृष्टि से स्वय चलने वाले होने चाहियें। किसी आलोचक ने पात्रो के विषय मे कहा है—"यह ठीक है कि पात्र नाटककार की सृष्टि होते है, परन्तु वे बिना पखो वाले पक्षी-शिशुओ की भाँति कलाकार के चुगे की आवश्यकता अनुभव नहीं करते। वे तो जन्म लेते ही पक्षधारी पक्षी-शावको की भाँति अपनी रुचि के स्वामी स्वय ही होते है।" पात्र वास्तव में उद्देश्य और रसोत्पत्ति के साधक होते है, इसलिए पात्रो को ऐसे व्यक्तित्व के साथ नाटक में दर्शाया जाना चाहिए कि अपनी-अपनी विशेषताओ के कारण वे पाठको के सम्मुख स्पष्ट रूप से आ खडे हो। पाठको को पात्रो के पहिचानने में कोई कठिनाई न होने पाये और

न ही किसी एक ही पात्र के विषय में एक ही समय में उनके मन में दो विपरीत भावनायें उत्पन्न होनी चाहिए। यदि परिस्थितिवश नाटककार किसी पात्र में परिवर्तन लाना चाहे भी तो यह सब कुछ स्वाभाविकता के आश्रय से होना चाहिए। यदि वह स्वाभाविकता की उपेक्षा करेगा तो उसे अपने उद्देश्य में कभी भी सफलता नहीं मिल सकती।

प्रस्तुत नाटक का प्रमुख पात्र अथवा नायक महाराज पुरु हैं। वे केकय राज्य के शासक हैं। वे धीरोदात्त नायक हैं। शक्ति, क्षमा, स्थिरता, दृढ़ता गम्भीरता, आत्मसम्मान तथा उदारता आदि गुणों से युक्त हैं। वे विनयी, अहंकारहीन तथा क्रोध आदि में स्थिर चित्त रहने वाले हैं। वे कभी आत्म-प्रशंसा नहीं करते। वे आदि से अन्त तक कथानक के साथ चलते हैं। वैसे तो पुरु में नायक होने के लिए समस्त गुण विद्यमान हैं, परन्तु प्रश्न यह होता है कि फिर नाटक की नायिका किस को माना जाय। क्योंकि, नाटक में न तो पुरु की पत्नी का कोई अस्तित्व है और न उनकी कोई प्रेयसी ही है। इसका उत्तर देते हुए क्षेमचन्द्र सुमन तथा योगेन्द्रकुमार मल्लिक ने "साहित्य विवेचन के सिद्धान्त" में पृष्ठ १२७ पर लिखा है . "पाश्चात्य आचार्य यह आवश्यक नहीं समझते कि नायिका नायक की पत्नी अथवा प्रिया हो। स्त्री-पात्रों में जो प्रमुख हो और कथावस्तु में प्रमुख भाग ले, वही नायिका समझी जायगी, चाहे वह नायक की प्रिया अथवा पत्नी हो या न हो। आधुनिक हिन्दी-नाटकों में भी इसी पथ का अनुकरण किया जा रहा है।" यदि अलिकसुन्दर को नाटक का नायक माना जाय तो वह धीरोदत्त नायक की श्रेणी में आता है। क्योंकि वह महान् विजेता तो अवश्य है, परन्तु उद्धत, चचल, प्रचण्ड स्वभाव वाला तथा आत्मप्रशंसापरायण और विश्वासघाती है। उसमें अभिमान और छल अधिक है। वह सुरा-सेवी तथा विलासी है। इन दुर्गुणों के कारण उनको नायक नहीं माना जा सकता, क्योंकि कई विद्वान् आलोचक ऐसे पात्र को नायक मानना उपयुक्त नहीं समझते हैं। अम्भीक वीर और साहसी है उच्च वंश में उत्पन्न है, देशभक्त और स्वतन्त्रता प्रेमी है। वह युवा है, सुन्दर और हृष्ट-पुष्ट है। उदारता, आत्म-सम्मान और धर्म का पालन करना तो उसे अपने पूर्वजों से उत्तराधिकार में प्राप्त हुए हैं, परन्तु उसे भी नायक

नही माना जा सकता, क्योकि वह कथानक को गति नही देता है। तृतीय अक मे तो अन्त मे ही जाकर पाठको को उसकी घायल अवस्था का पता चलता है। अत निस्सदेह महाराज पुरु को ही नाटक का नायक माना जा सकता है।

अन्य मुख्य पुरुष पात्रो मे विष्णुगुप्त है। वह तक्षशिला विद्यापीठ के आचार्य है। वह नीति से अलिकसुन्दर को पराजित करना चाहते है। अपने स्नातको के द्वारा वह नाटक मे एक बहुत बडा अभिनय कराते है। वह है 'ताया' का हरण, परन्तु इस कलक से हिन्दू-सस्कृति की रक्षा करने के लिए वे स्पष्ट कह देते है कि यह सब कुछ स्नातको ने यूनानियो से ही सीखा है। अन्य पुरुष पात्रो मे तक्षशिला का शासक आम्भी और निषद का राजा शशिगुप्त है। आम्भी का आचरण नीच है। वह द्वेष से भरा हुआ है और भीरु स्वभाव है उसका। तक्षशिला के राजकुमार भद्रबाहु का चरित्र महान् है। वह नीच आचरण के कारण अपने पिता को भी त्याग देते है और महाराज पुरु को अपना पिता बताते है और उन्ही से शस्त्र लेते हैं।

स्त्री-पात्रो मे ताया, रजनी, तारा, रोहिणी आदि हैं। 'ताया' अलिकसुन्दर की प्रेयसी है। उसी की प्रेरणा से अलिकसुन्दर पारस जैसे देश के वैभव का ध्वस करता है। वह युवति है और सुन्दरी है। आरम्भ मे तो उसका रूप एक पिशाचिनी से न्यून नही है, परन्तु तीसरे अक मे नाटककार उसके चरित्र में परिवर्तन ले आता है। वह परिवर्तन स्वाभाविक है। केकय राज्य मे वहाँ के युवको से अपने प्रति माता के साथ जैसा व्यवहार पाकर वह बहुत प्रभावित होती है और अन्त मे उसी की प्रेरणा से अलिकसुन्दर युद्ध बन्द करता है। रजनी और तारा पारस नरेश दारयवहु की पुत्रियाँ है, जिनका यवन हरण कर लाते है। परन्तु स्नातको की सहायता से वे अपने सम्मान की रक्षार्थ तक्षशिला मे यवन शिविर से भाग कर केकय राजभवन मे शरण लेती है। वे सुन्दरी है और किशोरावस्था मे है। रजनी अन्त मे युवराज रुद्रदत्त की प्रेयसी और तारा राजकुमार भद्रबाहु की प्रेयसी बनती है। रोहिणी एक आदर्श भारतीय नारी है। वह युवराज रुद्रदत्त की रानी है। वह त्याग और संयम की मूर्ति है। अन्त मे पात्रो पर विचार करने के पश्चात् हम यह मानने के लिए विवश होते है कि मिश्रजी को अपने इस नाटक मे पात्रो का चरित्र-चित्रण

करने में पूर्ण सफलता प्राप्त हुई है।

कथोपकथन—इस तत्व का नाटक में बहुत महत्व है। वास्तव में नाटकों का विकास कथोपकथन से ही माना जाता है। भारतीय नाट्य-साहित्य का विकास भी वेद तथा उपनिषदादि में प्राप्त कथोपकथन से ही माना गया है। नाटक में नाटकीय वस्तु का विकास कथोपकथन द्वारा ही होता है, और उसी के द्वारा नाटक में नाटकीय गुणों की स्थापना होती है। चरित्र-चित्रण में भी कथोपकथन विशेष उपयुक्त सिद्ध होते हैं।

कथोपकथन के तीन भेद किए गए हैं—(१) नियतश्राव्य, (२) सर्वश्राव्य, और (३) अश्राव्य (स्वगत कथन)। स्वगत कथन को आज अस्वाभाविक समझा जाता है और इसे नाटक में एक दोष माना जाता है। इससे नाटक में नीरसता आ जाती है और दर्शकों का मन ऊब जाता है। मिश्रजी ने अपने नाटक "वितस्ता की लहरें" को इस दोष और अस्वभाविक से सर्वथा दूर रखा है। कथोपकथन सक्षिप्त और पात्रों की परिस्थितियों के अनुकूल हैं। इस कारण नाटक में सरसता और सजीवता है। विभिन्न पात्रों ने परस्पर वार्तालाप करते हुए एक दूसरे की चारित्रिक विशेषताओं का उद्घाटन किया है और साथ ही वार्तालाप के ढग और शैली द्वारा अपने चरित्र पर भी प्रकाश डाला है।

भद्रबाहु से जब विष्णुगुप्त यह कहते हैं कि केकय-परिषद् के सदस्यों को जब उनके (भद्रबाहु के) केकय में आने का पता चलेगा तो वे बहुत क्रोधित होंगे और हो सकता है कि उनके प्राण पर आँच आ जाये, तब वह उत्तर देता है :

"निरस्त्र पर आघात केकय नागरिक नहीं करेंगे। पिता के पाप का प्रायश्चित्त पुत्र बराबर करता रहता है। रावण के जीते जी मेघनाद ने उनके पापों का प्रायश्चित्त कर दिया था। मृत्यु का भय तक्षशिला में छोड़कर मैं यहाँ आया। मातंग के रक्त-तिलक की लाज रखने में मृत्यु को निमंत्रण मुझे दोनों हाथ देना है। इसका अवसर मुझे यवन सेना से मिले या केकय जन से ....."

देश, काल तथा वातावरण—नाटक में देश, काल तथा वातावरण का विचार रखा जाता है। पात्रों के व्यक्तित्व में स्पष्टता तथा वास्तविकता लाने के लिए, पात्रो के चारो ओर की परिस्थितियो, वातारवण तथा देशकालिक विधान के वर्णन की विशेप आवश्यकता पडती है। देश, काल तथा वातावरण के विपरीत चित्रण से अस्वाभाविकता उत्पन्न हो जाती है। जैसे यदि नैपोलियन बोनापार्ट को धोती व कमीज पहना कर खड़ा करे और राम को सूट पहना दिया जाय तो यह हास्यास्पद बात हो जायगी। इसी प्रकार महाराज पुरु के दरबार को आधुनिक ढग से सुसज्जित करना, उसमे बिजली के पखे, रेडियो आदि लगाना, देश, काल तथा वातावरण के विपरीत होगा। नाटककार को अपने नाटक में इस बात का विशेष ध्यान रखना होता है कि पाठक अथवा दर्शक उसके नाटक को पढते समय अथवा उसे रगमंच पर अभिनीत होते देखते समय ऐसा अनुभव करें कि वे भी उसी युग और देश के व्यक्ति है, जिसे वे पढ़ या देख रहे है। ऐसी दशा में पाठको व दर्शको पर जो समूचा प्रभाव पड़ेगा वह उद्देश्य या रस के लिए विशेष सहायक सिद्ध होगा और साथ ही कृति में स्वाभाविकता भी लायेगा।

'वितस्ता की लहरे' नाटक में मिश्रजी देश की तत्कालीन परिस्थितियों का चित्रण करने में सफल हुए है। जिस समय अलिकसुन्दर (सिकन्दर) ने भारत पर आक्रमण किया उस समय भारत की राजनीतिक स्थिति का पूर्ण चित्र नाटककार ने अपने इस नाटक मे चित्रित किया है। देश सैकडो छोटे-छोटे राज्यो में विभाजित था। इनके शासक शक्तिशाली अवश्य थे, परन्तु परस्पर द्वेप रखते थे और एक-दूसरे के पतन पर प्रसन्न होते थे। उस युग में बड़े-बड़े विद्यापीठ बने हुए थे, जहाँ पर सहस्रो विद्यार्थी शिक्षा प्राप्त करते थे और विद्यार्थी जीवन मे पूर्ण ब्रह्मचारी रहते थे। यद्यपि इनका राजनीति के कार्यो से कोई सम्बन्ध नही था, परन्तु फिर भी राजा के पथ-भ्रष्ट हो जाने पर ये स्नातक अपने प्राणो की बाजी लगाकर देश की मान-मर्यादा की रक्षा करते थे। मिश्रजी ने उस समय की युद्ध-भूमि का चित्र भी बहुत ही स्पष्ट एव वास्तविक चित्रित किया है। यद्यपि कथानक में ऐतिहासिकता के साथ-साथ कल्पना का भी मिश्रण है, परन्तु इसका वातावरण की स्वाभाविकता पर

कोई प्रभाव नहीं पड़ा है। पात्रों की वेश-भूषा में भी देश काल का पूर्ण ध्यान रखा गया है।

शैली—मिश्रजी नवीनतम युग के नाटककार हैं। उनकी शैली नवीन ढंग के नाट्य विधान का अनुसरण भी करती है और प्राचीन युग के भारतीय नाटक साहित्य का अवलम्बन भी। उन्होंने अपने नाटक "वितस्ता की लहरें" को केवल तीन छोटे-छोटे अंकों में विभाजित किया है। दृश्यों के विधान को तो उन्होंने त्याग ही दिया है। इस प्रकार उन्हें अपने नाटक को रंगमंचोपयोगी बनाने में बहुत सहायता मिली है। मिश्रजी ने अपने नाटक को शुद्ध अभिनय की वस्तु बनाने का प्रयत्न किया है और इसमें उन्हें सफलता भी मिली है। इनकी भाषा सरल है और इनके नाटक में रंगमंचोपयोगिता के गुणों का अभाव भी नहीं है। मिश्रजी ने नाटक के लिए रंगमंच बनाने की कल्पना को नहीं अपनाया है, बल्कि रंगमंच के अनुकूल नाटक विधान की सरलता और यथार्थता का ही अनुसरण किया है।

उद्देश्य—प्रस्तुत नाटक मिश्रजी का संस्कृति-प्रधान ऐतिहासिक नाटक है। मिश्रजी ने कई और भी संस्कृति-प्रधान ऐतिहासिक नाटक लिखे हैं। इससे यह स्पष्ट है कि लेखक को भारतीय संस्कृति से विशेष स्नेह है। वह कर्मयोग के अनुयायी हैं। वह पलायनवादी नहीं हैं बल्कि जीवन के प्रति उनका एक विशेष आकर्षण है। वास्तव में उन्होंने ऐतिहासिक नाटकों की रचना भी इसीलिए की है कि उनका संस्कृति के प्रति आकर्षण है। आज हमारा सांस्कृतिक दृष्टिकोण से पतन हो रहा है। हमारा अब वह गौरव नहीं है जो कि प्राचीन काल में था। किसी भी जाति अथवा देश की उन्नति के लिए उसकी संस्कृति का उन्नत होना आवश्यक है। वास्तव में संस्कृति का महत्त्व तो यहाँ तक है कि यदि किसी जाति को नष्ट करना है तो उसकी संस्कृति को नष्ट कर दो। बस फिर वह जाति युगों तक पतन के गर्त में पड़ी सिसकती रहेगी। संस्कृति का इतना अधिक महत्त्व होते हुए भी आज हम उसकी उपेक्षा कर रहे हैं। आज हमें भौतिक उन्नति की तो चिन्ता है, परन्तु संस्कृति को उन्नत करने की लेशमात्र भी चिन्ता नहीं। यह हमारा दुर्भाग्य नहीं तो क्या है! अतः भारतीय संस्कृति को फिर वह गौरवमय स्थान दिलाने को उत्तर-

दायित्व आज हमारे ऊपर है। आज विश्व मे नई-नई सस्कृतियाँ जन्म ले रही हैं। नवीन जीवनादर्शो और दार्शनिक सिद्धान्तो के कई स्थानो पर परीक्षण भी हो चुके है, परन्तु आज फिर भी विश्व मे शाति नही है। कारण स्पष्ट है। उनकी सास्कृतिक आधार की बुनियाद मे वह आदर्श निहित नही जिसके लिए भारत की प्राचीन सस्कृति बार-बार सकेत कर रही है। इस युग की सास्कृतिक चेतना से सभी निराश हैं। इसीलिए मिश्रजी हमे फिर से अतीत भारत के गौरवमय भविष्य का निर्माण करने वाली बुद्धि से भी प्राचीन युग की ओर ले जाना चाहते हैं। ऊपर से चाहे हम उसमे कितने ही परिवर्तन क्यो न कर ले आत्मा को वही रहने देना चाहते है—इसीलिये मिश्रजी ने प्रस्तुत नाटक में अलिकसुन्दर (सिकन्दर) के आक्रमण के समय का वास्तविक चित्र खीचा है। उसके प्रतीक है केकय-नरेश महाराज पुरु, तक्षशिला-नरेश महाराज़ आम्भी, केकय-युवराज रुद्रदत्त, तक्षशिला विद्यापीठ के आचार्य विष्णुगुप्त इत्यादि।

प्रश्न ३—निम्नलिखित पात्रों का चरित्र-चित्रण कीजिए—

पुरु, अलिकसुन्दर, आम्भी, विष्णुगुप्त, वाया, रुद्रदत्त, रोहिणी।

महाराजा पुरु

केकय-नरेश महाराज पुरु प्रतापी तथा शूरवीर है। उनकी आयु पचास से कुछ ऊपर है। बाल कुछ सफेद हो गये हैं। हृष्ट-पुष्ट तथा लम्बे डील-डौल के हैं। उनकी आकृति शान्त गम्भीर है। दाढी, मूँछ के मझिन लम्बे बाल हैं। गोरा रग, लम्बी रतनार आँखें, दोनो ओर नुकीली मूँछ कान छू रही है। युद्ध-भूमि मे सिंह से भी भयानक युद्ध करते हैं। हिन्दू धर्म और मर्यादा का पालन करते हैं। युद्ध-भूमि मे शत्रु के जीवन को भी सकट मे पाकर उसकी रक्षा करके अपने कर्त्तव्य का पालन करते हैं। स्वतत्रता प्रेमी और पक्के देश-भक्त हैं। अपनी मातृभूमि पर शत्रु का पग भी रखने देना उन्हे स्वीकार नही है। अपनी वीरता और साहस के लिए तो वह शत्रु की भी प्रशसा प्राप्त करते हैं। वह एकनारी-व्रती है। उनके कुल की यही मर्यादा है। सुरा सेवन करने वालो को उनके राज्य मे भी रहने की आज्ञा नही है। ब्राह्मण का वह आदर करते हैं। कुशल राजनीतिज्ञ हैं। विश्वासघात वह शत्रु के साथ भी नही

करते। उनका हृदय वात्सल्य रस से प्लावित है। शील स्वभाव है। प्रत्येक कार्य को अच्छी तरह सोच-समझकर करते हैं। अहकार उनको छू भी नही गया है। शरणागत को शरण देना वह अपना कर्त्तव्य समझते हैं। महाराज पुरु "वितस्ता की लहरें" नाटक के नायक हैं। उनमे नायक के सभी गुण विद्यमान हैं।

नायक—प्रस्तुत नाटक के नायक महाराज पुरु हैं। उनमे धीरोदात्त नायक के लगभग सभी गुण पाये जाते हैं। वह उच्च वश मे उत्पन्न वीर, साहसी, अहंकारहीन तथा स्थिर-चित्त हैं। वह कभी आत्म-प्रशसा नही करते। आत्म-सम्मान, उदारता आदि गुण भी उनमे पाये जाते हैं। महाराज पुरु नाटक की सम्पूर्ण कथा-शृ खला को विकसित करते हुए उसे अन्त की ओर ले जाते हैं।

स्वतंत्रता-प्रेमी एवं देश-भक्त—यूनान का शासक अलिकसुन्दर जगत-विजय का स्वप्न लेकर भारत पर आक्रमण करता है। तक्षशिला-नरेश आम्भी उसकी अधीनता स्वीकार कर लेता है। वह यवन-विजेता मिस्र, पारस, एकबताना, निषद, कम्बोज, अभिसार आदि का ध्वस कर चुका है। अब वह केकय-महाराज पुरु से भी आगे बढने के लिये मार्ग माँगता है, परन्तु महाराज पुरु अपने पूर्वजो की उस पवित्र भूमि पर अपने जीते जी पग रखने देने की स्वीकृति देने को कदापि भी तैयार नहीं हैं। वह यह कैसे सहन कर सकते हैं कि उनकी आँखो के सामने उनकी स्वतन्त्रता का हरण किया जाय और उनकी मातृभूमि को शत्रु अपने पापी पैरो से कलंकित करे। अपनी स्वतन्त्रता की रक्षा के लिये ही वह उस जगत-विजयी अलिकसुन्दर से युद्ध करते हैं।

वीर, साहसी एवं रण-कुशल—पुरु वीर है, साहसी है और युद्ध-भूमि मे साक्षात् शिव हैं। वह आम्भी के नीच आचरण को धिक्कारते है और जब यवन सेनापति राजदूत बनकर उसके दरबार मे आते है और उनसे आगे बढने के लिये मार्ग माँगते है तो वह प्रत्येक यवन सेनापति को द्वन्द्व-युद्ध के लिए ललकारकर कहते है कि मुझे द्वन्द्व-युद्ध मे हराकर ही यवन सेना को केकय राज्य मे पूर्व की ओर बढने का मार्ग मिल सकता है, वरना नही। युद्ध-भूमि मे वह अपने कालनेमि गज पर चढकर बहुत ही भयकर युद्ध करते है। युद्ध-भूमि मे वह शत्रुओ पर भूखे सिंह की भाँति टूटते हैं और सात-सात यवन सेनापतियो को अपने भाले की मार मे यमपुरी भेज देते हैं। उनकी भयंकर आकृति को

देखकर यवन-विजेता अलिकसुन्दर युद्ध बन्द करने को तैयार हो जाता है। सेनापति टिथोनस काँपने लगता है और सेनापति सिल्यूकस की व्याकुलता और भय का तो वर्णन करना ही कठिन है। पाँच सौ शत्रु-धनुर्धर उन पर आक्रमण करते हैं, परन्तु वह उनके बीच से ही निकल जाते हैं। पुरु की वीरता उस समय चरमसीमा पर पहुँच जाती है जब वह अन्त में तारा के पूछने पर कहता है "होनी होकर रहती है, सुन्दरी! इसकी चिन्ता हम नही करते। (अलिकसुन्दर की ओर देखकर) विजयी चाहे हम से फिर युद्ध करें या लौट जायँ। जैसा व्यवहार वे करें मै उसे सुख से स्वीकार करूँगा"। पुरु के इन शब्दो को सुनकर जगत-विजेता यवन को भी वापस लौटने के लिए विवश होना पड़ता है।

कर्तव्यपरायण—पुरु कर्त्तव्यपरायण है। वह क्षत्रिय धर्म का भली-भाँति पालन करता है। एक क्षत्रिय के नाते उसका कर्त्तव्य है कि शरणागत को शरण दे। जब आम्भी अलिकसुन्दर की अधीनता स्वीकार कर लेता है, तो तक्षशिला के जो भी व्यक्ति वहाँ से केकय राज्य मे आते है, उन सबको वह शरण देता है। पारस नरेश दारयवहु की दो राजकुमारियाँ तारा और रजनी यवन शिविर से भागकर वहाँ आती है, वह उन्हे आदर सहित अपने राजभवन मे शरण देता है। और उन्हे पिता का प्रेम महराज पुरु मे मिलता है। अपने शत्रु आम्भी के पुत्र भद्रबाहु को भी वह शरण देता है, उस पर विश्वास करता है और उसे अपना पुत्र बनाकर वह शस्त्र देता है। यवन राजदूत टिथोनस और नियरस पुरु के दरबार मे असभ्यता का व्यवहार करते है और पुरु को उसी स्थान पर द्वन्द्व के लिए ललकारते हैं परन्तु वह अपने कर्त्तव्य और धर्म को भूलकर क्रोध नही करता है। यही नही अन्त मे वह गज की सूँड मे दबे हुए शत्रु अलिकसुन्दर के प्राणो की भी रक्षा करके अपने कर्त्तव्य और क्षत्रिय धर्म का पालन करता है।

धर्म और मर्यादा का सच्चा पुजारी—वह शांति के समय मे ही नही, केवल शासन करने मे ही नही, वल्कि युद्ध-भूमि मे भी क्षत्रिय धर्म का पालन करता है। उसकी सेना मे युवक नही है। या तो उसी की आयु के पुरुष हैं या वे युवक हैं जो सन्तान को जन्म देकर गार्हस्थ्य जीवन का पालन कर चुके है। क्योंकि उनके धर्म के अनुसार युवक को पिता से पूर्व मृत्यु का आलिंगन करने

का अधिकार नहीं है। उनके धर्मयुद्ध में यह भावना है कि वीरगति को प्राप्त कर वीर योद्धा स्वर्ग जाता है। वह शत्रु के दूतों के साथ भी शिष्टता का व्यवहार करता है, यद्यपि दूत उनसे समता का व्यवहार नहीं करते हैं, क्योंकि हमारे धर्म में शत्रु के साथ दूत के किसी भी प्रकार के दुर्व्यवहार की आज्ञा नहीं है। केकय राज्य में शत्रु की स्त्री की ओर किसी में आँख उठाकर देखने की भी शक्ति नहीं है। 'ताया' के हरण के लिए महाराज पुरु को दोषी नहीं ठहराया जा सकता, क्योंकि यह कृत्य तक्षशिला के स्नातक करते हैं और महाराज को इसकी कोई सूचना नहीं दी जाती है। केवल राज्य के पुरुषों के विषय में स्वयं 'ताया' अलिकसुन्दर से कहती है "इस देश के निवासी पराई स्त्री को माता मानते हैं। मेरी आँखों में सीधे किसी ने देखा तक नहीं। जितना डरते हैं ये अपनी माता भवानी से उतना ही मुझसे भी डरे हैं।"

अलिकसुन्दर (सिकन्दर)

अलिकसुन्दर यूनान का शासक है। वह अपने गुरु अरिस्तातिल से जगत-विजय का मन्त्र लेकर चलता है। मिस्र, पारस, एकबताना, निषद आदि राज्यों को रौंदता हुआ वह भारतवर्ष पहुँचता है। तक्षशिला का राजा आम्भी उसकी अधीनता स्वीकार कर लेता है। अभिसार को वह पराजित करता है और केकय नरेश महाराज पुरु को वह युद्ध के लिए चुनौती देता है। इस प्रकार वह बाईस वर्ष की आयु में ही वीरता और साहस का परिचय देता है। इन समस्त गुणों के साथ-साथ उसमें अवगुण भी हैं। वह अहंकारी और विश्वासघाती है। सुन्दरी 'ताया' में वह अनुरक्त है। वह उसकी प्रेरणा है। वह हर समय सुरा व सुन्दरी में डूबा रहता है।

वीर, साहसी एवं महान् विजेता—इसमें संदेह नहीं कि अलिकसुन्दर एक उच्चकोटि का वीर, साहसी एवं महान् विजेता है, अल्प आयु में ही वह मिस्र और पारस जैसे शक्तिशाली राज्यों को भी रौंद डालता है, छोटे-छोटे राज्यों की तो गिनती ही नहीं। वह कितने ही राज्यों को पद-दलित करता है। तक्षशिला का शासक आम्भी तो बिना युद्ध किए ही उसकी आधीनता स्वीकार कर लेता है। अभिसार की शक्तिशाली सेना को भी वह पराजित करता है। यद्यपि वह महाराज पुरु और मगध-नरेश नन्द की वीरता के विषय में बहुत

कुछ सुन चुका है, परन्तु उसका जगत-विजय का निश्चय दृढ रहता है। अपनी वीरता के नशे में ही वह महाराज पुरु को युद्ध की चुनौती देता है, परन्तु नरेश के साथ युद्ध करने मे उसे यह पता चल जाता है कि इस पृथ्वी पर वही अकेला वीर नही है और उसका जगत-विजय का स्वप्न भी भग हो जाता है।

विश्वासघाती—अलिकसुन्दर वीर तो अवश्य है, परन्तु वह हिन्दुओ की भाँति धर्म-युद्ध नही करता है। वह युद्ध में विश्वासघात भी कई बार करता है। सुग्ध मे पूर्व वह सभी युद्धो मे छल और असत्य की आड लेता है। जिस समय शशिगुप्त तथा दो यवन सेनापति महाराज पुरु के पास यवन विजेता के राजदूत बनकर जाते है और वहाँ आपस मे बात-चीत करते है, उसी समय यवन सैनिक तीन नावो पर चढकर चोरी से वितस्ता की थाह लेने का प्रयत्न करते हैं, परन्तु वे पकडे जाते हैं। चोरी से ही रात्रि के समय वह वितस्ता नदी को पार करता है और महाराज पुरु की असावधान सेना पर आक्रमण करता है। इस प्रकार द्वन्द्व-युद्ध के निर्णय को ठुकराकर वह महाराज पुरु के साथ भी विश्वासघात करता है।

ध्वंसकर्ता—अलिकसुन्दर ने निर्माण करना तो सीखा ही नही है। उसने तो जीवन मे बडे-बडे राज्यो, सुन्दर महलो, भवनो आदि का सहार ही किया है। पारसपुर के उन भवनो को जिनकी नीव कुरु के हाथो पड़ी और पाँचवी पीढी मे आकर दारयवहु प्रथम के समय में पूर्ण हुए वह जलाकर राख कर देता है। कितने ही घरो को वह उजाड देता है। सहस्रो के सुहाग को नष्ट कर देता है। इस प्रकार वह सहार की आँधी पर चढ कर चलता है।

अहकारी—निरन्तर विजय प्राप्त करने के कारण उसे बहुत अहकार हो जाता है। वह अपने और अपने सैनिको के अतिरिक्त सब को गीदड ही समझता है। उसका गर्व इतना बढ जाता है कि वह अपने देवताओ तक को भी भूल जाता है और देवता के रूप मे अपनी पूजा करवाने लगता है। परन्तु महाराज पुरु के साथ युद्ध करते समय उसका अहकार नष्ट होता है। और वह अपने इस गर्व पर पश्चात्ताप करता है और अपने देवी-देवताओ का पुनः स्मरण करता है।

अधर्मी, सुरा-सेवी एव विलासी—अलिकसुन्दर का धर्म ही दूसरो का

धर्म नष्ट करता है। हर समय वह छल से काम लेता है। स्त्रियों का हरण करना तो उसके लिए साधारण-सी बात हो गई है। इसका कारण यह है कि केवल वह ही नहीं, बल्कि उसके समस्त सेनापति तथा सैनिक तक भी सुख-सेवी तथा विलासी हैं। वह सुन्दर राजकुमारियों का हरण कर उन्हें अपने सेनापतियों को पुरस्कार में देता है। प्रत्येक राज्य में वह सैकड़ों सुन्दरियों का हरण कर उन्हें अपने सैनिकों में बांट देता है। इस प्रकार वह बहुत ही अत्याचारी बन जाता है। इतना ही नहीं, वह धोखे से बच्चों तक की भी हत्या करने में नहीं चूकता है। वह स्वयं प्रत्येक समय सुरा के नशे में झूमता रहता है। वह सुन्दरी 'ताया' में बुरी तरह अनुरक्त है। उसके बिना वह एक क्षण भी नहीं रह सकता। जो कुछ भी वह करता है, सब उसी की प्रेरणा से करता है। जिस समय तक्षशिला के स्नातक ताया का हरण कर ले जाते हैं, तब वह मूर्छित हो जाता है, कांपने लगता है और स्वयं वितस्ता की लहरों में डूबकर प्राण देने पर उतारू हो जाता है। वह शशिगुप्त से युद्ध-भूमि में कहता है- 'ताया' के न रहने पर समूचा जगत भी मैं क्या करूंगा ? कह दो भद्र! पुरु से ... मैं यहीं से लौट जाऊंगा। युद्ध बन्द कर दें।" अन्त में ताया के पत्र को पढ़कर उसके कहने के अनुसार वह युद्ध बन्द कर देता है। उसके प्रेम में अन्धा हो वह अपने जीवन की भी परवाह न कर पुरु के घायल हाथी के सामने पहुँच जाता है।

आम्भी

तक्षशिला के महाराज आम्भी कायर, ईर्ष्यालु एवं पश्चात्ताप की साक्षात् मूर्ति हैं। उनमें भारतीय नरेशों-जैसा आत्म-सम्मान एवं देश-भक्ति नहीं है। उनका हृदय कोमल है।

कायर—यूनानी विजेता अलिकसुन्दर के भारतवर्ष आगमन पर महाराज आम्भी उनके सम्मुख घुटने टेक देते हैं। वह उनकी शक्ति से भयभीत हो उनकी अधीनता स्वीकार कर लेते हैं और अलिकसुन्दर की सेना उनके राज्य में प्रविष्ट कर जाती है। इस प्रकार कायर आम्भी एक विदेशी के हाथों अपनी स्वतन्त्रता तथा संस्कृति सभी बेच देता है। उसके इस कृत्य से रुष्ट हो तक्षशिला के बहुत-से नागरिक वितस्ता पार कर केकय राज्य में चले जाते हैं।

तक्षशिला विद्यापीठ बन्द कर आचार्य विष्णुगुप्त तथा उनके सैकडो स्नातक भी केकय राज्य मे चले जाते है। इतना ही नही स्वयं महाराज आम्भी का पुत्र भद्रबाहु भी महाराज पुरु की शरण मे चला जाता है। वह उनको अपना शस्त्र-पिता बनाता है और अन्त में वह आम्भी के लिए 'महाराज' शब्द का प्रयोग होने देने से भी घृणा करने लगता है। यह सब आम्भी की कायरता का परिणाम है।

ईर्ष्यालु—आम्भी महाराज पुरु से ईर्ष्या करता है। इसलिए वह अलिकसुन्दर को उससे युद्ध करने के लिये प्रेरित करता है। इतना ही नही, वह युद्ध में अलिकसुन्दर का पूरी तरह से साथ देता है। वास्तव मे देखा जाय तो अलिकसुन्दर और पुरु के युद्ध का मूल कारण आम्भी की पुरु से ईर्ष्या ही होती है।

कोमल हृदय—आम्भी का हृदय बहुत ही कोमल है। जब युद्ध-भूमि मे तारा (पुरुष वेष मे) आचार्य विष्णुगुप्त से आम्भी के विषय मे कहती है. "वह नवनीत के समान हैं ·······थोडी आँच मे पिघल जाने वाले। मेरा उनसे कभी का परिचय नही। राह का रोडा भर हो सकती हूँ मैं। फिर भी मैं नीचे गिर न पड़ूँ, यह सोचकर वे कातर हो उठे, उनकी आँखें भर आई।"

पश्चात्ताप की मूर्ति—नाटक के अन्त मे जब अलिकसुन्दर महाराज पुरु से पुन युद्ध न कर उनको अपना प्राण-रक्षक मानता है और उन्हे राजा स्वीकार कर लेता है, तब आम्भी को अपने द्वारा किए गए पापो पर पश्चात्ताप होता है। वह पुरु से कहता है "इस सारे अनर्थ का कारण मैं हूँ और चुप-चाप यह सब सुन रहा हूँ। केकय-प्रहार के लिए मैंने विजयी को निमन्त्रित किया था। आपकी मेघ-गम्भीर वाणी और श्वेत गज से विशाल शरीर का आतंक मेरी ईर्ष्या का कारण बना।" यह कहकर वह महाराज पुरु के सम्मुख हाथ जोडकर खडा हो जाता है। महाराज पुरु उसको इस प्रकार पश्चात्ताप के समुद्र मे डूबा देख उसे अपनी छाती से लगाकर धैर्य बधाते है।

आचार्य विष्णुगुप्त

विष्णुगुप्त तक्षशिला विद्यापीठ के आचार्य है। जब तक्षशिला के महाराज भी अलिकसुन्दर की अधीनता स्वीकार कर लेते है, तो वह विद्यापीठ को

बन्द कर अपने कुछ स्नातकों के साथ केकय राज्य में चले जाते हैं। तक्षशिला के नागरिक आचार्यजी का बहुत सम्मान करते हैं। जिस समय वितस्ता पार कर तक्षशिला के नागरिक केकय राज्य में प्रवेश करते हैं, तो वे सब नदी तट पर आचार्यजी के चरण स्पर्श कर उनका आशीर्वाद प्राप्त करते हैं। महाराज पुरु भी उनका बहुत सम्मान करते हैं।

आचार्यजी के हृदय में देश-प्रेम की भावना भरी हुई है। वह यह सहन नहीं कर सकते कि कोई भी विदेशी उनकी मातृ-भूमि को पद-दलित करे। इसी कारण वे अपने स्नातकों को कई पड़ौसी जनपदों में भेज देते हैं। वे स्नातक अलिक्सुन्दर के विरुद्ध जनता को उत्तेजित करते हैं और जनपदों को संगठित करने का प्रयत्न करते हैं। आचार्यजी बहुत ही दूरदर्शी तथा नीतिज्ञ हैं। वह अलिक्सुन्दर की शक्ति को भली-भाँति पहचानते हैं और यह भी जानते हैं कि अकेला केकय उनसे टक्कर नहीं ले सकेगा। इसी कारण वह चाहते हैं कि इस यवन-विजेता को नीति से परास्त करना चाहिये। वह चन्द्रगुप्त तथा अलिक्सुन्दर से अभिसार के युद्ध में मिलते हैं और उनको यह वचन दे देते हैं कि वह पुरु से कहकर उन्हें आगे बढ़ने के लिए मार्ग भी दिलवा देंगे और इस सहयोग के बदले में यवन विजेता महाराज पुरु को वितस्ता से पूर्व में यमुना नदी तक जीते हुए समस्त राज्यों का महाराज बना देगा। आचार्यजी की इस नीति में यह चाल थी कि जब यवन विजेता मगध के महाप्रतापी राजा नन्द से टक्कर लेगा उस समय वे उसके पश्चिम के मार्ग को बन्द कर देंगे और पश्चिम की ओर से उसे कोई सहायता न प्राप्त हो सकेगी। इस प्रकार उसे बीच में ही कुचला जा सकेगा। परन्तु महाराज पुरु को उनकी यह नीति पसन्द नहीं है।

अपनी नीति को वह महाराज पुरु से छिपाकर रखते हैं, परन्तु पुरु को उनकी प्रत्येक गति का पता रहता है। इस कारण महाराज को उन पर सन्देह हो जाता है। यद्यपि उनके हृदय में कोई पाप नहीं है। यदि उनके हृदय में महाराज पुरु के प्रति कोई पाप होता तो स्नातक जब उन्हें 'तारा' के हरण की योजना की सूचना देते हैं तो वह उनको ऐसा करने से रोक देते। अन्त में जब [illegible] यवन [illegible] से महाराज पुरु गिर जाते हैं और उनका हाथी बुरी तरह [illegible] और [illegible] चिंघाड़ने लगता है तो वह ही 'तारा' से पत्र लिए अलिक्सुन्दर

लाते है जिससे विवश होकर अलिकसुन्दर को सन्धि करनी पड़ती है। इस प्रकार आचार्य विष्णुगुप्त ही महाराज पुरु की युद्ध-भूमि मे प्राण रक्षा करते है। अभिमार के युद्ध मे जाती हुई केकय सेना को लौटाना उनकी बहुत बडी भूल होती है, क्योंकि यदि केकय की सेना भी वहाँ पहुँच जाती तो फिर अभिसार के युद्ध में यवन-विजेता की विजय होना बहुत कठिन था और यदि वह अभिसार के युद्ध में हार जाता तो फिर यवन देश को वापिस हो जाता। परन्तु इन सबके लिए हम आचार्यजी की आत्मा को दोष नही दे सकते है। यह तो उनकी समझ की भूल थी। उन्हे यह विश्वास था कि केकय सेना के सम्मिलित होने पर भी यवन विजेता को अभिमार के युद्ध मे पराजित नही किया जा सकेगा। परन्तु सेना के लौट जाने से महाराज पुरु को बहुत अपयश प्राप्त होता है। दूसरे जन-पद उसे भी आम्भी की श्रेणी में रखते हैं। इसका दुष्परिणाम होता है कि महा-राज पुरु को अकेले ही अलिकसुन्दर से युद्ध करना पडता है। परन्तु युद्ध-भूमि मे अपनी नीति से आचार्य पुरु के सदेह को दूर कर देते है।

आचार्य विष्णुगुप्त बडे वाक् चतुर है। जिस समय अलिकसुन्दर से वह 'ताया' के हरण के विपय मे बातचीत करते है तो वह उसे स्पष्ट शब्दो में कह देते है कि यह कार्य तक्षशिला के स्नातको का है और उन्होने छल-विद्या यवन सैनिको से सीखी है। इसमे महाराज पुरु का कोई हाथ नही और यदि उन्हे इसकी सूचना भी मिल जाती तो वह यह कभी न होने देते।

इस प्रकार हम देखते है कि धर्म के आचार्य होते हुए भी विष्णुगुप्त पक्के राजनीतिज्ञ है और युद्ध को छल-कपट से जीतना भी बुरा नही समझते हैं।

आचार्यजी में एक स्वार्थ की भावना घर कर गई है। वह यह कि जिस प्रकार अरिस्तोतल अलिकसुन्दर का गुरु है और उसने ही उसे जगत-विजय का मन्त्र दिया है, ठीक उसी प्रकार वह महाराज पुरु के गुरु बनकर उन्हे विजय मन्त्र देना चाहते हैं। यदि ध्यान से देखा जाय तो इसे उनकी स्वार्थपरता कहने में भी भूल करते है। ऐसा वह देश और जाति के कल्याण के लिए करना चाहते हैं। अन्त मे उन्हे अपने उद्देश्य मे सफलता भी प्राप्त होती है। अलिकसुन्दर के इन शब्दो में आचार्यजी की सफलता का प्रमाण मिलता है : "अरिस्तोतल और विष्णुगुप्त किसी दिन पश्चिम और पूर्व के दो प्रकाश-स्तम्भ बनेगे। इन

अपनी ताया।

संहार की साक्षात् चण्डी एवं अहङ्कारिणी—ताया संहार की साक्षात् चण्डी है। पारसपुर, सूसा और एकबताना के भवनों को वह अपने हाथ से जलाकर राख कर देती है। जब अलिकसुन्दर उससे कहता है कि पारसपुर जैसे रत्न-जटित मूर्ति-मण्डित भवनों का निर्माण कराने के लिए जीवन भर भी पर्याप्त संपत्ति उसके पास न हो सकेगी, तब वह गहरी साँस लेकर कहती है "मेरे विजयी की शक्ति जहाँ हार जाय, उसे इस धरती पर न रहने दूँगी"। कितना अहंकार है उसे अपने विजयी की शक्ति पर।

शत्रु प्रशंसक—युद्ध के अन्त में जब अलिकसुन्दर ताया से यह पूछता है कि किसी ने उसका अपमान तो नहीं किया, तब वह उत्तर देती है "न कहो"

सुनना भी पाप है जिसका। इस देश के निवासी पराई स्त्री को माता मानते है। मेरी आँखो मे सीधे किसी ने देखा तक नही। जितना डरते है ये अपनी माता भवानी से उतना ही मुझसे डरे है।" आगे वह कहती है · "शत्रु के प्रति दया और नारी के प्रति आदर तुम्हारे उस गुरु को भी इनसे सीखना है जिसने तुम्हे भेज दिया इस आखेट पर। हाँ, हाँ···सच कह रही हूँ तुम्हारी सेना आखेट करती रही है। लोगो को जीतकर दास बनाने की प्रथा यहाँ नही है। इनके धर्म का सस्कार यहाँ युद्ध में होता है।" केकय के युवको की प्रशसा करती हुई वह कहती है "केकय का एक-एक पुरुष सैनिक है। पारस की भाँति एक बार के युद्ध मे न हारते। एक मरता तो उसकी जगह दो लेते, फिर चार, आठ। मुझे विश्वास होगया है अब तुम्हारी सेना युद्ध के इस समुद्र मे सदा के लिए डूब जाती।" ताया घायल युवराज की सेवा करने का अवसर प्राप्त करके अपने को बहुत भाग्यशाली समझती है।

केकय जनों के व्यवहार से प्रभावित—वह ताया जो सहार की आँधी पर सवार होकर चल रही थी, केकय जनो का अपने साथ माता जैसा व्यवहार देख तथा उनकी उदारता, शक्ति तथा धर्मनिष्ठा को देख, इतनी अधिक प्रभावित होती है कि नाटक के अन्त मे उसी के मुख से ये शब्द निकलते है. "कुछ ऐसा हो कि मानवता के घाव पर शीतल विलेपन लगे और वितस्ता की लहरो मे अनुराग का जल हो।"

रुद्रदत्त

केकय राज्य का राजकुमार रुद्रदत्त वीर, सहानुभूतिशील, तथा भावुक है। उसमें क्षत्रियोचित ओजस्विता है। वह एक आदर्श पात्र है। नाटककार ने उसका सत्पक्ष ही चित्रित किया है, असत् पक्ष नही। परन्तु नाटककार को सत्पक्ष को सशक्त बनाने में भी सफलता प्राप्त नही हो सकी, क्योकि उसकी दृष्टि चरित्र-चित्रण पर न रहकर सास्कृतिक विशेषताओ के उद्घाटन में रही है।

वीरता—रुद्रदत्त एक वीर राजकुमार है। युद्ध-भूमि में वह अलिकसुन्दर के सात सेनापतियो को यमलोक पहुँचा देता है। विजयी अलिकसुन्दर भी चकित होकर कहता है "एक साथ मेरे सात सेनापतियो को मारकर भी

बह भी रहा है। हरिकुल और द्राय के विजयी वीरों का गौरव वितस्ता की लहरों में डूब रहा है।

क्षत्रियोचित ओजस्विता—राजकुमार रुद्रदत्त में क्षत्रियोचित ओजस्विता है। वह कहता है 'नहीं, धरती उलट जाये, आकाश के चन्द्र-सूर्य पृथ्वी पर गिर पड़ें पर केकय कभी विजयी का यह प्रस्ताव नहीं मानेंगे। जब तक युद्ध नहीं हुआ, हम कैसे मान लें कि यवन सेना अजेय है।"

संवेदनशीलता—जब दासी नन्दा रजनी अपने दुर्भाग्य से पीड़ित होकर केकय राज्य में आती है तो नदी पार करने के पश्चात् रुद्रदत्त उन्हें सहारा देता है और उनकी दशा देखकर रोता भी है। यह उसकी संवेदनशीलता है।

अतिथि-सत्कार की भावना—राजकुमार रुद्रदत्त में अतिथि-सत्कार की भावना भी है। वह अपने पिता महाराज पुरु से कहता है, "शत्रु अतिथि होता है तात।"

शीलवान—रुद्रदत्त शीलवान है। उसे अशिष्टता का व्यवहार तनिक भी पसन्द नहीं है। जब अलिकसुन्दर का दूत दियोन्स अपने पक्ष के विजय-उन्माद में रुद्रदत्त के सामने कुछ अशिष्टता दिखाता है तो वह कहता है: "दूत के मुँह से शील और विनय के शब्द निकलते हैं, दम्भ के नहीं।"

स्वतंत्रता का पुजारी—राजकुमार में राष्ट्रीय भावना कूट-कूटकर भरी हुई है। वह अपनी मातृभूमि की स्वतंत्रता की रक्षा के लिए अपने जीवन की आहुति देने के लिए तैयार है। उसे यह भी सहन नहीं कि शत्रु के पैर भी उसकी मातृ-भूमि पर पड़ें। वह स्पष्ट शब्दों में कहता है: 'केकय की धरती यवनों के पैर पड़ने से कलंकित हो, उसके पहले हम इस धरती से उऋण हो जायें।'

आदर्श भारतीय महिला है। उसके चरित्र मे किसी प्रकार की उलझन नही है। उसके चरित्र की विशेषताये है उसकी वीरता, साहस, विचारशीलता, पति-परायणता, कर्त्तव्य-परायणता, देश-प्रेम तथा धर्म-कर्म मे पति की सहचरी होना। उसके हृदय मे अपने पति रुद्रदत्त के लिये अगाध प्रेम है। वह पति की इच्छा को अपनी इक्षा समझती है।

पति के प्रति अगाध प्रेम—रोहिणी अपने पति रुद्रदत्त से बहुत प्रेम करती है। जब राजकुमार को लौटने मे अधिक देर हो जाती है तो उसके हृदय मे अनेक शकाये होती है। वह वसन्तसेना को उनका पता करने के लिये भेजती है। वह स्वय भी राजकुमार के पीछे जाने को तैयार हो जाती है। जब प्रहरी उसको अकेले अश्व पर जाने के लिए मना करता है, तो वह अपनी निर्भीकता का परिचय देती है। वह दिन भर कुछ भी नही खाती है, क्योकि उसके पति ने भी कुछ नही खाया है उसके शब्द कितने महत्त्वपूर्ण है "मन की रोक यम के पास से भी कडी होती है।"

जीवन में रुदन और हास्य—रोहिणी का जीवन न केवल रुदन से भरा है और न केवल हास्य से। हँसने-रोने से उसने समझौता कर लिया है। वह समयानुसार हँसना तथा रोना जानती है। वसन्तसेना उसके विषय में कहती है . "राजवधू डर रही है, आँसू के घडे उनकी आँखो मे कहाँ बन्द है कि जब नही तब चूने लगते है ?······कोना-कोना इस भवन का जिनकी हँसी से गूँजा करता था।"

साहसी—रोहिणी रुद्रदत्त को खोजने के लिए अकेली वन में जाने को तैयार हो जाती है। वह रुद्रदत्त के साथ मिलकर शत्रु से युद्ध करने को भी कहती है "आर्यपुत्र के रथ पर उसके बाएँ बैठकर मै युद्ध करूँगी।"

विचारशीलता—रोहिणी की विचारशीलता का पता उसके निम्नलिखित शब्दो से होता है

"स्वाधीनता के विना धर्म नही टिकता।" उसके कहने का तात्पर्य यह है कि धर्म की रक्षा से स्वाधीनता की रक्षा करना अति आवश्यक है। इसलिए सिकन्दर को पराजित करके ही भारतवासी अपने धर्म की रक्षा कर सकेंगे। रजनी के रुद्रदत्त के प्रति प्रेम को देखकर वह कहती है "दु ख

का क्षेत्र जिसे जितना अधिक होता है, उसी मात्रा में स्नेह की मात्रा भी बढ़ती है।

विश्वासमयी—रोहिणी एक विश्वासमयी युवती है। वह आशा एवं निराशा के जाल से मुक्त है। उसे यह पूर्ण विश्वास है कि रुद्रदत्त (रोहिणी का पति) रजनी का पति बनकर भी उसके प्रेम को नहीं ठुकरायेगा। सिकन्दर के विषय में भी वह पूर्ण विश्वास के साथ कहती: "तब वह (सिकन्दर) यहाँ वितस्ता की लहरों में डूबेगा।" कहने का तात्पर्य यह है कि उसे इस बात का विश्वास है कि सिकन्दर भारत पर विजय प्राप्त नहीं कर सकेगा।

देश-निष्ठा—वह अपने पति को देशोद्धार के लिये युद्ध में भेजने के लिए सहर्ष तैयार हो जाती है। वह तो स्वयं भी पति के बाएँ बैठकर युद्ध करने को तैयार है। देश के हित के लिए वह बड़े से बड़ा त्याग करने के लिए तैयार है।

प्रश्न ४—"वितस्ता की लहरें" नाटक में इतिहास और कल्पना का अद्भुत संमिश्रण है।" इस कथन की सत्यता प्रमाणित कीजिए। नवम्बर (१९५८)

उत्तर—मिश्र जी का प्रस्तुत नाटक संस्कृति-प्रधान ऐतिहासिक नाटक है। इसमें नाटककार ने इतिहास और कल्पना का बहुत ही अद्भुत सम्मिश्रण किया है। वास्तव में ऐसा करना प्रत्येक ऐतिहासिक नाटककार का एक सर्वसामान्य धर्म-सा बन जाता है। यदि नाटक कथोपकथन के रूप में उपस्थित किया गया कोरा इतिहास ही हो तो रसोद्रेक कहाँ से होगा। इतिहास के घटनाचक्र का अध्ययन करने पर तो कोई भी पाठक रस-विभोर नहीं हुआ करता। इसीलिये उपन्यासकार या गल्पकार की भाँति नाटककार को भी कथावस्तु को चेतन भावन बनाना पड़ता है। उन मार्मिक स्थलों तक अनवच्छिन्न रूप में ले जाने के लिये जिन हृदय स्पर्शी स्थलों में रमकर वह पाठक को रमा सकता है ऐसा करने के लिये उसे कल्पना द्वारा नई सृष्टि करनी पड़ती है। मिश्रजी को अपने इस नाटक में कल्पना द्वारा नई सृष्टि करने में बहुत सफलता मिली है। उन्होंने अपनी कल्पना की नई सृष्टि को ऐतिहासिक कथानक से इस प्रकार मिला दिया कि पाठकों को उसमें किसी प्रकार का भेद दिखाई नहीं पड़ता है। इससे सारा कथानक सरस और सुन्दर बन गया है।

पुस्तक के आरम्भ मे दिये गये सकेत में मिश्रजी ने स्पष्ट शब्दो लिखा है कि भारत पर विदेशियो के अनेको आक्रमण हुए और उनकी सूचन हमे पुराणो से मिलती है। परन्तु मकदूनिया के सिकन्दर ने उन पर र आक्रमण किया था उसकी कोई भी सूचना हमें अपने पुराणो से नही मिलती. यूनानी इतिहासकारो ने सिकन्दर की विजय का जो कुछ लेखा-जोखा दिया उसी के आधार पर वितस्ता के तट पर उसकी विजय की बात हम भी मानने लगे है।

यूनानी इतिहासकारो ने सिकन्दर को महान् माना है। विजयी यवन की महानता उससे पूर्व की सस्कृति के ध्वस में ही दिखाई देती है। पारस में यवन सेना ने जो क्रूर और विध्वसक कार्य किए, जिनका उल्लेख यवन इतिसाहकारो ने जातीय विजय और दर्प के रूप मे किया। वे विजयी यवन को ध्वस और सहार में चाहे जितना महान् बनादें, परन्तु मिश्रजी ने अपने इस नाटक मे उसके सस्कार और सर्जन मे उसकी हीनता को भी खोलकर रख दिया है।

भारतवर्ष पर सिकन्दर का आक्रमण तक्षशिला नरेश महाराज आम्भी के द्वारा उसकी अधीनता स्वीकार करना,चोरी से रात्रि को वितस्ता पार करना और फिर वितस्ता के तट पर महाराज पुरु से उसका युद्ध,ये सब ऐतिहासिक घटनाएँ हैं परन्तु युद्ध के अन्त मे इतिहासकारो ने लिखा है कि अलिकसुन्दर ने महाराज पुरु को जीवन-दान देने के साथ-साथ उनके राज्य को भी वापिस कर दिया। इस सबका उद्देश्य यवन विजेता की आदर्श शील-सम्पत्ति का परिचय देना है। परन्तु मिश्रजी स्पष्ट लिखते है कि यह बात उसके उस आचरण से सिद्ध नही होती जिसका दर्शन हम यवन देश से सिंधु के तट तक होता है। पारस भूमि मे जिस छल और कपट से उसने काम लिया, सहार और प्रतिहिंसा का जो भीषण रूप उसने दिखाया, उसमे मानवता के किसी भी गुण का लेश भी नही मिलता। तब फिर पुरु के साथ व्यवहार का कारण दूसरा ही था और उस कारण की नाटककार ने कितनी सुन्दर कल्पना की है। निषद से पूर्व वह ज्यो-ज्यो बढ़ता गया, यहाँ के सैनिको के पराक्रम को देखकर उसकी आँखें खुलती गई। तक्षशिला के आचार्य और स्नातको का देश-धर्म की रक्षा

के लिए उसने जो त्याग देखा वह उसने पहले कही नही देखा था। रात्रि को चोरी से वितस्ता पार कर लेने पर भी पुरु और उसकी सेना के विक्रम से वह विस्मित और विमूढ हो गया। यह सब देखकर ही उसे महाराज पुरु के साथ यह सद्व्यवहार करने के लिए विवश होना पड़ा। मिश्रजी ने स्वय कथा-सकेत मे लिखा है · "किन परिस्थियो मे यह सब सम्भव हो सका, इतिहास और कल्पना के समन्वय में उन परिस्थितियो का सधान इस नाटक मे किया गया है।"

यूनानी इतिहासकारो ने लिखा है कि जब महाराज पुरु और उनकी सेना युद्ध-भूमि मे यवन सेना के द्वारा पराजित हो गयी, तो उन्हे कैद करके सिकन्दर के सम्मुख लाया गया। उस समय यवन विजेता ने उनके पराक्रम और साहस से प्रभावित होकर उन्हे उनका राज्य वापिस लौटा दिया और उनके साथ मित्रता का व्यवहार किया। परन्तु सिकन्दर के द्वारा इस प्रकार के आचरण किए जाने पर सदेह है, क्योकि उसने इससे पूर्व के लगभग सभी युद्धो में छल-कपट और निर्दयता का प्रयोग किया था, फिर उसमे अचानक यह परिवर्तन कैसे ! मिश्रजी ने अपनी कल्पना से कथानक के इस भाग का बहुत सुन्दर ढग से विकान किया है। उन्होंने यवन विजेता की प्रेयसी 'ताया' का तक्षशिला के स्नातको के द्वारा हरण करवाया है, जिससे यवन विजेता के हृदय पर बहुत चोट पटती है। आगे चलकर उन्होंने ताया के पत्र को ही सन्धि का कारण बनाया है। अन्त मे हाथी की सूँड मे से पुरु द्वारा यवन विजेता की रक्षा कराकर कथानक मे प्राण फूँक दिए है। यही कारण बनता है कि महाराज पुरु सिकन्दर के सामने ताया को अपने प्रश्न का उत्तर देते हुए कहते हैं।

"विजयी चाहे हमसे फिर युद्ध करें या लौट जायें। जैसा व्यवहार वे करें मैं उसे सुख मे स्वीकार करूँगा।" इनके उत्तर मे सिकन्दर कहता है : "मुझे अब आपसे युद्ध नही करना है। पहला जन्म किसी पिता ने दिया था। यह दूसरा जन्म आपने दिया है। इस देश के किसी भी जन के लिए आप राजा हैं · मेरे लिए तो वहीं रहें।" इस प्रकार अपनी कल्पना से मिश्रजी ने सिकन्दर की मान-मर्यादा की रक्षा की है। 'ताया' के हरण के कलक से

महाराज पुरु को बचाने के लिए उन्होंने विष्णुगुप्त से स्पष्ट शब्दों में कहला दिया है : "महाराज कुछ नहीं जानते विजयी। उनके जान लेने पर यह कार्य नहीं हो पाता।" इस प्रकार विचार कर लेने पर हम कह सकते हैं कि 'वितस्ता की लहरें' नाटक में इतिहास और कल्पना का बहुत अद्भुत सम्मिश्रण है।

प्रश्न ४—'वितस्ता की लहरें' के द्वारा तत्कालीन राजनैतिक, सामाजिक, आर्थिक और सांस्कृतिक परिस्थितियों पर क्या प्रकाश पड़ता है? संक्षेप में लिखिए।

उत्तर—'वितस्ता की लहरें' का कथानक इतिहास से सम्बन्ध रखता है। ईसा से तीन शताब्दी से कुछ अधिक समय पूर्व मेधावी अरिस्तातिल की प्रेरणा से फिलिप ने यूनान के नगर राज्यों का ध्वंस किया था। पेरिक्लिज का गौरवपूर्ण एथेन्स फिलिप की बर्बर ठोकरों से भूमिसात् हो चुका था। फिलिप के तरुण पुत्र सिकन्दर ने भी गुरु अरिस्तातिल से प्रेरणा पाकर जगत-विजय के स्वप्न को देखा। वह पारस, नूपा, एक बताना आदि राज्यों का संहार करता हुआ भारतवर्ष आ पहुँचा। तक्षशिला के महाराज आम्भी ने उनका स्वागत किया। उसके पश्चात् वितस्ता के तट पर पौरव-नरेश महाराज पुरु के साथ उसका युद्ध हुआ। मिश्रजी के इस नाटक के कथानक का सम्बन्ध यवन विजेता अलिकसुन्दर के वितस्ता पार करने और उसके और महाराज पुरु के युद्ध से है। इस नाटक के अध्ययन से तत्कालीन सामाजिक, राजनैतिक, आर्थिक एवं सांस्कृतिक परिस्थितियों पर प्रकाश पड़ता है।

राजनैतिक—इस समय भारतवर्ष छोटे-छोटे अनेक राज्यों में विभाजित था। वितस्ता के पश्चिम में तक्षशिला में महाराज आम्भी का राज्य था। वितस्ता के पूर्व में [illegible] महाराज पुरु राज्य करते थे। मगध में [illegible] था। [illegible] देश का विभाजन था। ये [illegible] करते थे। [illegible] में फूट थी। आचार्य विष्णुगुप्त [illegible] स्पष्ट है

[illegible] भूमि के [illegible] राज्यों से भी [illegible]

सन्देह, धैर्य और अविश्वास मिला ही था।" नाटक के तीसरे अंक में आम्भी स्वयं महाराज पुरु के सम्मुख यह स्वीकार करता है: "कैकय के संहार के लिए मैंने विजयी को निमंत्रित किया था। आपकी मेघ-गम्भीर वाणी और श्वेत गज ने विशाल शरीर का आकार मेरी ईर्ष्या का कारण बना।" युद्ध मे हाथियो का प्रयोग होता था। खड्ग, भाला और धनुष का युद्ध में प्रयोग होता था। भारतवर्ष मे द्वन्द्व-युद्ध की भी प्रथा थी। महाराज पुरु किसी भी यवन सेनापति को अपने साथ द्वन्द्व-युद्ध करने को ललकारते है। शत्रुओं के साथ अच्छा व्यवहार किया जाता था। उनके सम्मान का पूर्ण ध्यान रखा जाता था। राजा को मतदान के लिए विशेष अधिकार प्राप्त थे, अन्यथा राजा समस्त राज्य-कार्य परिषद् के परामर्श से करता था।

सामाजिक—समाज मे स्त्री का बहुत सम्मान था। विजयी यवन की प्रेयसी 'ताया' के इन शब्दो से तत्कालीन सामाजिक परिस्थिति पर पर्याप्त प्रकाश पडता है "इस देश के निवासी पराई स्त्री को माता मानते है। शत्रु के प्रति दया और नारी के प्रति आदर तुम्हारे उस गुरु को भी इनसे सीखना है जिसने तुम्हें भेज दिया इस आखेट पर। लोगो को दास बनाने की प्रथा यहां नहीं है। इनके धर्म का संस्कार युद्ध मे होता है। केकय का एक-एक पुरुष सैनिक है।" नारियाँ पतिव्रत को मानने वाली थी। वे मृत्यु स्वीकार करना उचित समझती थीं, परन्तु अपना धर्म नष्ट नही होने देती थीं। जैसा कि ताया अलिकसुन्दर से कहती है: "नारी की देह की पवित्रता तुम्हारे म्लेच्छ यवन उनकी देह न छू दे, फिर वे अपने देवता (पति) के योग्य न रहेगी, इसी भय से दस कोस के भीतर की देवियां पूर्व की ओर चली गई हैं।" कैकय राज्य में एक पत्नि का विधान था। यहाँ कोई सुरा-सेवी नही था। 'ताया' का हरण स्नातको के द्वारा किया गया था, परन्तु यह छल-विद्या उन्होंने यवन सैनिको से ही सीखी थी। इसके लिए भारतवर्ष को कलंकित नही किया जा सकता। समाज मे ब्राह्मण का बहुत आदर था। महाराज पुरु के शब्दों मे: "बालक ब्राह्मण भी, वृद्ध क्षत्रिय से श्रेष्ठ है।"

आर्थिक—देश धन्य-धान्य से पूर्ण था। समाज की आर्थिक स्थिति अच्छी थी।

सांस्कृतिक—यहाँ देवी-देवताओ की पूजा होती थी। युद्ध-भूमि में उनकी देव-मूर्तियाँ भी उनके साथ रहती थी। नियरकस अलिकसुन्दर से कहता है : "शत्रुओ की ओर से इनके देवता भी लडते है। इनकी असि में भवानी वसती है। कितना भयानक है ·· पहाड से काले हाथी के ऊपर इनका देव सेनापति जिसके छ मुख से सब ओर आग बरस रही है।" यहाँ पर लोग धर्म-युद्ध करते थे। युद्ध-भूमि में केवल वे ही पुरुष जाते थे, जिनके आधे बाल पके हुए होते थे, ससार की सारी कामनायें जिनकी पूर्ण हो जाती थी। ऐसा इसलिए होता था कि उन वीर पुरुषो को विश्वास था कि जो रणक्षेत्र मे मरते है, सीधे स्वर्ग जाते है और तरुणो से पहले स्वर्ग पहुँचने का अधिकार उन्ही का है। परन्तु आवश्यकता पडने पर तरुण भी युद्ध मे भाग लेते थे। छल और कपट तो उन्होने कभी सीखा ही नही था। उस समय हमारी सस्कृति कितनी उन्नत थी, कितनी महान् थी इसके विषय मे स्वय मिश्रजी ने लिखा है ' "आज की यूनानी सस्कृति न तो पेरिक्लिज की है न सिकन्दर के मैसेडन की। पर हमारी सस्कृति की मात्रा मे तक्षशिला के आचार्यो और स्नातको के, पुरु और विष्णुगुप्त के, चिह्न अभी नही मिटे। अनेक आघातो के बाद भी भारतीत सस्कृति अपनी पुरानी जडो से रस लेती चली आ रही है।"

प्रश्न ६—'वितस्ता की लहरें' नाटक की रचना में मिश्रजी को कहाँ से प्रेरणा मिली है? उसके उपस्थित करने मे वह कहाँ तक सफलत हुए है? विस्तार से लिखिये।

अथवा

"हर ध्वंस की नींव पर यह देश नया निर्माण करता रहा है; इस नाटक 'वितस्ता की लहरें' की रचना मे प्रधान प्रेरणा यही रही है", स्पष्ट कीजिये कि नाटक की यह प्रेरणा किस रूप में प्रतिफलित हुई है। (जून १९५८)

उत्तर–मिश्रजी ने प्रस्तुत नाटक मे दिये कथा-सकेत में स्वयं लिखा है:"हमारी सस्कृति की मात्रा मे तक्षशिला के आचार्यो और स्नातकों के, पुरु और विष्णु-

गुप्त के चरण-चिन्ह अभी नहीं मिटे। अनेक आघातो के बाद भी भारतीय संस्कृति अपनी पुरानी जडो से रस लेती चली आ रही है। इतिहास के किनारो पर जहाँ दूसरी प्राचीन संस्कृतियो के ध्वस-चिन्ह छितराये पडे है और उन्हे अपनी कहने वाला आज कोई नहीं है ऐसी दशा इतनी लम्बी अवधि मे हमारी नही हुई। हर ध्वस की नीव पर यह देश नया निर्माण करता रहा है; इस नाटक की रचना मे प्रधान प्रेरणा यही रही है।" इससे स्पष्ट है कि 'वितस्ता की लहरें' नाटक लिखने की प्रेरणा नाटककार को भारतीय संस्कृति की महानता, उसकी प्राचीनता और दृढता से मिली है।

प्रस्तुत नाटक के कथानक का सम्बन्ध ईसा से लगभग तीन शताब्दी पूर्व वितस्ता के तट पर यवन सेना के पहुँचने, चोरी से वितस्ता पार करने और केकय वीर पुरु के साथ उनके युद्ध मे है। यवन विजेता ने भारतवर्ष पहुँचने से पूर्व पारस, सूषा, एकवताना आदि मे जो क्रूर कृत्य किये, वहाँ जिस निर्दयता से उसने ताडव नृत्य किया उससे वहाँ की संस्कृति पर बहुत गहरा आघात हुआ और वे लगभग नष्ट ही हो गई। फिर वे साँस न ले सकी। परन्तु भारतीय संस्कृति पर उनके आक्रमण का कितना प्रभाव पडा, यह मिश्रजी के इन शब्दो से स्पष्ट है- 'मकदूनिया के सिकन्दर ने इस पर जो आक्रमण किया था उसकी कोई भी सूचना हमें अपने पुराणो से नही मिलती, जैसे वह आक्रमण इस देश के इतिहास साहित्य मे स्वीकार ही नहीं किया गया। हमारे राष्ट्र शरीर पर उसका घाव सम्भवत गहरा नहीं हुआ, खरोच की तरह वह लगा और बिना किसी टिकाऊ प्रभाव के मिट भी गया।"

प्रस्तुत नाटक से हमें पता चलता है कि यवन विजेता सिकन्दर संहार की आँधी पर सवार होकर और जगत-विजय का स्वप्न लेकर भारतवर्ष पहुँचा। वितस्ता के तट पर दो विभिन्न जातियो और संस्कृतियो की टक्कर हुई, परन्तु वह यूनानी संस्कृति जो अनेको संस्कृतियो का ध्वस कर चुकी थी, भारतीय संस्कृति के सम्मुख टिक न सकी। वह भारतीय संस्कृति को नष्ट करना तो क्या उसे प्रभावित भी न कर सकी। यहाँ उसने देखा कि भारतीय सैनिक अपने स्वार्थ के लिये युद्ध नही करते है। वे देश के धर्म और पूर्वजो के आचरण की रक्षा के लिये युद्ध करते हैं। विदेशी चाहे अधर्म युद्ध करें, चाहे वे कितना ही छल-कपट

करें, परन्तु भारतीय वीर धर्म-युद्ध ही करते है। वे युद्ध में छल-कपट करना अपना धर्म नही समझते। यहाँ सिकन्दर तक्षशिला विद्यापीठ के आचार्यों और स्नातको के त्याग और उनके देश-प्रेम की भावना से प्रभावित हुआ।

यवन सैनिको ने पद-दलित देशो की सुन्दरियो का हरण किया। उनको अपमानित किया और पुरस्कार के रूप मे उन्हे यवन सेनापतियो और सैनिको में बाँट दिया गया, परन्तु भारतवर्ष मे आकर उनकी आँखे खुली, जहाँ पराई स्त्री की ओर कोई आँख उठाकर देखने का भी साहस नही कर सकता। यहाँ का प्रत्येक व्यक्ति पराई स्त्री को उसी दृष्टि से देखता है, जिससे कि वह अपनी माता को। ताया के शब्द से यह स्पष्ट है "मेरी आँखो मे सीधे किसी ने देखा तक नही। जितना डरते है वे अपनी माता भवानी से उतना ही मुझसे भी डरे है।"

नाटक के अन्त में हम देखते है कि वह ताया जिसने स्वय पारस के सुन्दर भवनों मे आग लगाई थी और जिसकी प्रेरणा से यवन विजेता सहार की आँधी पर सवार था, भारतीय सस्कृति की महानता से प्रभावित होती हैं और नाटककार उसके मुख से यह शब्द कहलाकर नाटक को समाप्त करता है: "कुछ ऐसा हो कि मानवता के घाव पर शीतल विलेपन लगे और वितस्ता की लहरो मे अनुराग का जल हो।"

इस प्रकार हम देखते है कि मिश्रजी को अपने इस नाटक मे भारतीय सस्कृति की महानता, और उसकी दृढता का चित्रण करने मे पूर्ण सफलता मिली है।

प्रश्न ७—'वितस्ता की लहरें' नाटक रगमच की दृष्टि से कहाँ तक सफल है?

उत्तर—किसी भी सफल नाटक के लिए उसका रगमच की दृष्टि से सफल होना आवश्यक है। आज के नाटककार अपने नाटको को रगमचीय बनाने का पूर्ण प्रयत्न कर रहे हैं। मिश्रजी के लगभग सभी नाटको का सफलतापूर्वक अभिनय किया जा सकता है। 'वितस्ता की लहरें' नाटक साहित्यिक होने के साथ-साथ रगमच की दृष्टि से भी पूर्णतया सफल है। किसी नाटक के रग-मचीय होने के लिये उसमे निम्नलिखित विशेषताओ का होना आवश्यक है:

(१) संक्षिप्त कलेवर—नाटक का कथानक अधिक लम्बा नही होना

चाहिए। दर्शकों के लिए तीन घंटे से अधिक बैठना कठिन होता है। यदि कथानक लम्बा होगा तो दर्शक उकता जायेंगे और उनके लिए लम्बा नाटक नीरस हो जायेगा। लम्बे कथानक को संक्षिप्त करने के लिए उसमें अधिक काट-छाँट करनी पड़ती है जिसका परिणाम यह होता है कि कथावस्तु में प्रवाह नहीं रहता। यदि कथानक संक्षिप्त होगा तो उसका अभिनय तीन घंटे में किया जा सकेगा और उसको अभिनय योग्य बनाने के लिए अधिक काट-छाँट नहीं करनी पड़ेगी, जिससे कथावस्तु का प्रवाह बना रहेगा। 'वितस्ता की लहरें' नाटक का कथानक केवल १२३ पृष्ठ का है। इसका अभिनय बिना किसी काट-छाँट के तीन घंटे में बड़ी सरलता से किया जा सकता है। इस प्रकार इस दृष्टि से यह नाटक सफल है।

पात्र—नाटक में पात्रों की अधिकता उसकी रंगमंचीयता में बाधक है। पन्द्रह-सोलह पात्रों के हो जाने पर रंग-मंच पर पात्रों की भीड़-सी लग जाती है। दर्शकों को उनके समझने में बड़ी कठिनाई उत्पन्न हो जाती है और इसी उलझन में पड़कर उनको नाटक के देखने में आनन्द प्राप्त नहीं होता। इसके अतिरिक्त अधिक पात्रों का परिचय देने में पर्याप्त समय व्यतीत हो जाता है और फिर नाटक को तीन घंटे में समाप्त करना बहुत ही कठिन हो जाता है। अधिक पात्रों के होने पर उनका पूर्णरूप से निर्वाह नहीं होने पाता। इन कारणों से नाटक में पात्र-संख्या कम होनी चाहिए। 'वितस्ता की लहरें' नाटक में अलिकसुन्दर, ताया, महाराज पुरु और विष्णुगुप्त ये चार पात्र ही प्रमुख हैं। इनके अतिरिक्त अन्य भी कई पात्र हैं, परन्तु लेखक ने पात्रों की भीड़ नहीं लगाई है। जिन पात्रों को मिश्रजी ने लिया है उनका पूर्णरूप से निर्वाह भी किया है। इस प्रकार यह नाटक इस दृष्टि से पूर्ण सफल है।

असम्भव दृश्यों का अभाव—नाटक में ऐसे दृश्य नहीं होने चाहिएं जिनका रंगमंच पर अभिनय न किया जा सके। प्रस्तुत नाटक में प्रथम दो अंकों में तो ऐसे दृश्यों का पूर्ण अभाव है, परन्तु तीसरे अंक के युद्ध-भूमि के दृश्य तो ऐसे हैं जिनका रंगमंच पर अभिनय किया जाने में पूर्ण सफलता नहीं मिल सकती। जैसे महाराज पुरु का पाँच सौ शत्रु धनुर्धरों के

द्वारा घिरे होना और हाथी का पुरु और अलिकसुन्दर को लेकर वितस्ता की लहरो में उतरना, इन दो दृश्यो के अभिनय में पूर्ण सफलता नही मिल सकती, परन्तु नाटककार ने इन दोनों दृश्यो को सूक्ष्म रूप में रखा है।

स्वगत कथनो का बहिष्कार—'वितस्ता की लहरें' नाटक मे स्वगत कथनो का नाटककार ने पूर्णरूप से बहिष्कार किया है। इस दृष्टि से भी प्रस्तुत नाटक रगमचीय है।

सरल भाषा—अभिनय के लिए भाषा का सरल होना भी बहुत आवश्यक है। यदि भाषा क्लिष्ट हुई तो दर्शको को उसे समझने में कठिनाई पडेगी और कई तो ऐसे होगे जो उसे बिलकुल भी नहीं समझ पायेंगे। इससे नाटक दर्शको के लिए अरुचिकर हो जायेगा। प्रस्तुत नाटक की भाषा सरल है और दर्शकगण उसे अच्छी तरह समझ सकते है।

नाटक को रगमचीयता की दृष्टि से सफल बनाने के लिए अन्य कई और बातो का होना भी आवश्यक है, जैसे रग सकेत का होना, हास्यरस का होना, वर्जित दृश्यो का अभाव। 'वितस्ता की लहरें' नाटक मे हास्य रस के अतिरिक्त सभी अन्य गुण उपलब्ध हैं। प्रत्येक अक के आरम्भ मे रङ्ग-सकेत दिए गए है। इस नाटक मे भारतीय सस्कृति और राष्ट्रीयता का चित्रण है। पाठको के लिए इन विषयो को समझना कठिन कार्य नही है। यह नाटक रगमच की दृष्टि से सफल तो अवश्य है, परन्तु इसमे हास्यरस का अभाव खटकता है। इसके साथ-साथ तृतीय अक मे कुछ ऐसे दृश्यो का आ जाना, जिनको रगमच पर दिखाने मे सफलता नही प्राप्त हो सकती है, इस नाटक की रगमचीयता मे बाधक है। यदि ये अभाव इस नाटक मे न होते तो नाटक पूर्णरूप से रगमच की दृष्टि से सफल होता।"

प्रश्न ८—"हमारी संस्कृति की यात्रा में तक्षशिला के आचार्यों और स्नातको के, चरण चिन्ह अभी नही मिटे।" मिश्रजी के इस कथन की सत्यता सिद्ध कीजिए।

उत्तर—आदि काल से आज तक विश्व की प्रत्येक संस्कृति की यही कहानी रही है कि कोई भी संस्कृति जब उन्नति के शिखर पर पहुंच जाती है तो फिर उसकी अवनति होती है। परन्तु भारतीय सस्कृति इसका अपवाद है।

कला-कौशल, साहित्य और दर्शन-चिन्तन में जिस देश अथवा जाति ने उन्नति की, वह उत्कर्ष के मार्ग के साथ-ही-साथ अपने पतन के बीज भी बोती गई। उन्नत संस्कृति का संहार अर्द्धसभ्य या बर्बर जातियों से होता रहा है। एक समय था जब कि पारस और मिस्र उन्नति के सर्वोच्च शिखर पर थे। पारस का वैभव विश्व में अनुपमेय था। वहाँ के भवनों का निर्माण पाँच-पाँच पीढ़ियों में जाकर समाप्त हुआ था। पारस के भवन कितने वैभवशाली थे, इसका पता शचिगुप्त के इन शब्दों से चलता है : "अलिक्सुन्दर से व्यंग्य में उसने (ताया ने) पूछा कि भारत जीतकर विजयी वैसे ही भवन अपनी भूमि में बनवायेगा—वैसे ही···रत्न-जटित और मूर्ति-मंडित ! विजयी ने उदास होकर कहा, उतनी सम्पत्ति उसके पास कभी न होगी और न तो उसके जीवन में वैसे भवन सम्भव हो सकेंगे।" परन्तु इस उन्नत संस्कृति का अन्त विजयी यवन के सैनिकों ने किया।

यूनानी और रोमन संस्कृतियों का अन्त भी अर्द्धसभ्य और बर्बर लोगों के द्वारा ही हुआ। परन्तु सुमेर की असुर संस्कृति की समकालीन अन्य विकसित संस्कृतियों का अन्त भी सम्भवतः इसी रूप में हुआ था। हमारे देश ने इन सभी संस्कृतियों के उत्थान-पतन को अपनी आँखों से देखा है और इसी संहार के मध्य से गुजरकर हमारा देश अपना नया निर्माण करता रहा है। आज की यूनानी संस्कृति पर पेरिक्लिज की या सिकन्दर के मैसेडन की छाप नहीं है। वह पूर्ण रूप से नवीन है।

हमारे देश में भी हजारों वर्षों से विभिन्न संस्कृति के विदेशी आक्रमणकारी आते हैं। सिकन्दर ने ईसा से तीन शताब्दी पूर्व भारत पर बर्बर आक्रमण किया। महमूद गजनवी ने ग्यारहवीं शताब्दी में यहाँ के मन्दिरों को तोड़ा और उनको लूटा। मुगलों ने यहाँ आकर अपना शासन स्थापित किया। नीति और तलवार के जोर से मुगल सम्राटों ने हमारी संस्कृति पर गहरा आघात किया। अंग्रेज यहाँ पर आए तो उनका भी मुख्य उद्देश्य हमारी संस्कृति को नष्ट करना और ईसाई धर्म का प्रचार करना रहा। इस प्रकार इस दीर्घकाल में हमारी संस्कृति ने अनेकों उतार-चढ़ाव देखे। औरंगजेब जैसे क्रूर शासक की तलवार के नीचे से होकर इसे गुजरना पड़ा। चंगेज खाँ और नादिरशाह

जैसे प्रलयकारी आक्रमणकारियो से उसने टक्कर ली। परन्तु भारतीय संस्कृति में एक विशेषता यही रही कि जितनी वह आग पर तपाई गई, उतनी ही अधिक चमक उसमे आती चली गई। कोई भी विदेशी जाति आज तक हमारी संस्कृति को मिटा नही सकी। वह अपने प्राचीन रूप मे उसी प्रकार आज भी है और उसकी गणना संसार की उन्नत संस्कृतियो मे होती है। इसके विषय मे कहा गया है.

यूनान, मिस्र, रोमां सब मिट गए जहाँ से,
कुछ बात है कि बाकी है नामो निशां हमारा।

प्रश्न ६—"अपनी ओर से मैं बस इतना कहूँगा कि इस नाटक के लिखने में जातीय मोह या देश के गौरव के प्रति मेरा आग्रह नहीं रहा।" मिश्रजी ने अपने नाटक 'वितस्ता की लहरें' के विषय में जो यह स्पष्टीकरण दिया है उससे आप कहाँ तक सहमत है ?

उत्तर—मिश्रजी ने अपने नाटक के प्रारम्भ में दिए कथा-सकेत में लिखा है कि वह उस नाटक के लिखने मे अपनी जाति के मोह अथवा देश के गौरव से प्रभावित नही हुए है। लिखते समय सारे व्यापार जैसे वह अपनी आँखों से देखते रहे है और सवाद सुनते रहे है। प्रश्न यह उठता है कि यदि यह सत्य है कि जातीय मोह अथवा देश के गौरव के प्रति उनका आग्रह नही रहा है तो फिर उन्हें यह स्पष्ट करने की आवश्यकता ही क्यो हुई। उनके इस स्पष्टीकरण से ऐसा प्रतीत होता है कि सभवत. मिश्रजी को यह आशका हुई हो कि कही आलोचकगण अथवा पाठक उनकी इस कृति को पढकर यह न समझ बैठें कि उनको जातीय मोह अथवा देश के गौरव के प्रति आग्रह रहा है। क्योंकि आज के युग मे किसी भी साहित्यिक कृति में इस प्रकार जातीयता की भावना उस देश और जाति के लिए हानिकारक है और ऐसी कृति के लिये साहित्य में उच्च स्थान प्राप्त करने में बाधा पड सकती है।

मिश्रजी ने अपने प्रस्तुत नाटक मे दो विभिन्न जातियो तथा संस्कृतियो का स्पष्ट चित्रण किया है, परन्तु उसमे उन्होंने जहाँ एक ओर हिन्दू संस्कृति को बहुत ऊँचा उठाया है, वहाँ दूसरी ओर उन्होंने यूनानी संस्कृति पर अनेको दोषो का आरोपण किया है। यह तो उचित है कि अपनी संस्कृति की सहायता

और उसके गौरव का चित्रण किया जाय, परन्तु विदेशी संस्कृति की निन्दा करना उचित नही है। क्या उस विदेशी संस्कृति मे एक भी गुण नही था, सभी दोष उसमे आ गये थे और हिन्दू संस्कृति मे एक भी दोष नही था, सभी गुणो का उसमे समावेश हो गया था। यह कहाँ तक सत्य हो सकता है? अब हम प्रस्तुत नाटक की घटनाओ और कथनोपकथनो के आधार पर यह देखते है कि मिश्रजी ने विदेशी (यूनानी) संस्कृति की कितनी निन्दा की है, उस पर कितने दोषो का आरोपण किया है और भारतीय संस्कृति मे किन-किन विशेषताओ का समावेश किया है।

समस्त नाटक मे मिश्रजी ने पुरु, आचार्य विष्णुगुप्त, रुद्रदत्त, रोहिणी, शशिगुप्त आदि पात्रो के मुख से यूनानी संस्कृति पर कीचड उछलवाई है, उस पर व्यग्य कसवाए है। तारा और रश्मी तो यवनो के अत्याचारो से पीडित है ही। उनके द्वारा मिश्रजी ने यवनो की खूब निन्दा करवाई है। इतना ही नही, नाटक के अन्त मे पुरु के व्यवहार से परिवर्तित अलिकसुन्दर और तक्षशिला के स्नातको तथा केकय-जनो के व्यवहार से सन्तुष्ट ताया भारतीय संस्कृति की खुले हृदय से प्रशसा करती है। ताया से भी अन्त मे मिश्रजी ने यवनो के आचरण की निन्दा करवाई है। यदि इन सब बातो को मिश्रजी का देश-गौरव और जाति के प्रति मोह-आग्रह न कहे तो और क्या कहे?

प्रस्तुत नाटक मे मिश्रजी ने यवनो को कपटी, छली, चरित्रहीन, क्रूर, अत्याचारी, अदूरदर्शी, मर्यादा-शून्य बताया है और पुरु, आचार्य विष्णुगुप्त, रुद्रदत्त आदि भारतीय पात्रो को दूरदर्शी, मर्यादा का पालन करने वाले, धर्म-युद्ध करने वाले, चरित्रवान बताया है और उन्हे कपट-छल से दूर रखा है। उनके चरित्र को ही ऊँचा उठाने के लिए या यह कहे कि भारतीय संस्कृति के गौरव और उसकी महानता का चित्रण करने के लिये मिश्रजी ने यह और लिखा है "यूनानी संस्कृति की [illegible] मे तक्षशिला के आचार्यो और स्नातको के, पुरु और विष्णुगुप्त के चरण-चिन्ह अभी नही मिटे। अनेक आघातो के बाद भी भारतीय संस्कृति अपनी पुरानी जडो मे रस लेती चली आ रही है।'

क्रूर एवं अत्याचारी—मिश्रजी ने यवनो की क्रूरता और अत्याचार पर प्रस्तुत नाटक में अतिशयोक्तिपूर्ण प्रकाश डाला है। उनके अत्याचार और क्रूरता की निन्दा पुरु और विष्णुगुप्त के मुख से करवाई है। ताया के द्वारा पारसपुर के सुन्दर भवनो के ध्वस का वर्णन करते हुए शशिगुप्त कहते है : "उसने भभक उठने वाले तेल के लुकार बनवाये और पहला लुकार सब जगह वह लगाती रही। शेष काम इस अग्निदाह का यवन सैनिक कई दिन तक करते रहे।" आचार्य विष्णुगुप्त ने यवनो को उनकी क्रूरता के कारण दानव कहा है : "सकट की इस घड़ी मे जब मिस्र और पारस का गौरव मिट गया, यवन विजयी का ध्वस महाकाल के ध्वस को पछाड रहा है' 'जिस समय दानव पर मानव का जयघोष हमे करना है ' '' '।" एक अन्य स्थान पर आचार्य जी कहते है . "शत्रु के बालको और नारियो का भी वध करते है वे। गन्धार की धरती के साथ उस धरती की कुमारियाँ भी अब यवन-सम्पत्ति है।" तालेमी ने किस क्रूरता से मातग को मारा इसका वर्णन आचार्यजी के सम्मुख करता हुआ अग्निवर्ण कहता है "अलिकसुन्दर के सामने ठीक सामने तालेमी ने हाथ भर लम्बा भल्ल मानंग की पीठ में, देह का सारा बल दाये हाथ में भरकर मारा, नाभि के बीच से आधा भाग बाहर निकल गया।" भद्रबाहु ताया की क्रूरता का वर्णन करता है "मातग का रक्त दोनो हाथो में रोक-कर अपने अगो का लेप करने लगी।"

कपटपरायणता—यवनो को प्रारम्भ से अन्त तक कपटी चित्रित किया गया है। अलिकसुन्दर अश्क दुर्ग के निवासियो को सकुशल निकल जाने का आश्वासन देता है, परन्तु जब वे बाहर निकल आते है तो यवन सैनिक उन पर आक्रमण कर देते हैं। नारियो का अपहरण और बच्चो का वध होता है। यवन विजेता अलिकसुन्दर, शशिगुप्त और अपने दो यवन सेनापतियो को पुरु से सन्धि की बाते करने के लिए भेजकर विश्वासघात करता है। इतना ही नही, पुरु के साथ वितस्ता के मध्य मे अकेले मिलने की सन्धि करके चोरी से वितस्ता पार करना और असावधान शत्रु पर आक्रमण करना एक बहुत बड़ा विश्वासघात है। विष्णुगुप्त यवनो की कपट-परायणता पर प्रकाश डालता हुआ कहता है : "इस देश में मनुष्य का धर्म

जो माना और माना गया है, वह उनमें नही है। युद्ध में उनका सबसे सफल शस्त्र छल है। वचन देकर उसे तोड देना उनकी नीति है।"

चरित्रहीनता—यवनो को सुरा और सुन्दरी में ही लिप्त रहने वालो के रूप मे चित्रित किया गया है। अश्क दुर्ग से निकलती हुई नारियो का धोखे से अपहरण करना और उन्हें अपने सैनिको मे बाँटना, पारसपुर की रानियो का अपहरण करना, पारस-नरेश दारयवाहु की तीनो राजकुमारियो का हरण, सबसे बडी राजकुमारी आर्त्तकाता का तालेमी को दिया जाना, ये सभी घटनाये यवनो की काम-लिप्सा और चरित्र हीनता के ठोस प्रमाण हैं। इतना ही नही, स्वय अलिकसुन्दर 'ताया' के प्रेम मे इतना फँसता है कि वह क्षण भर भी उनसे पृथक् नही हो सकता। प्रत्येक समय सुरा के नशे मे मग्न रहता है। इतना ही नही स्वय ताया नाटक के अन्त में अलिकसुन्दर से कहती है "तुमने, तुम्हारे सैनिको के आचरण से, अपने धर्म की रक्षा के लिये वे पहले ही अपने घरो से निकलकर पूर्व की ओर चल पड़ी हैं, तुम्हारे ससर्ग के दोष से बचने के लिए।" ताया इन शब्दो से अलिकसुन्दर और उसके सैनिक सभी की चरित्रहीनता सिद्ध होती है।

व्यवहार मे शून्यता—जिस समय सियरकस और टियोनस दोनो यवन सेनापति पुरु से सन्धि की वार्ता करते हैं उस समय उनका जो पुरु के प्रति बातचीत करने का ढग होता है, उससे यह स्पष्ट है कि वे व्यवहार में बिल्कुल शून्य है। उन्हे यह भी नही आता कि किस प्रकार बडो से व्यवहार करना चाहिए। पुरु के शब्दो मे . "खीच लो उनके कन्धे से हाथ सैनिक ! बडो के प्रति व्यवहार नही आता तुम्हे ? तुम्हारी भाषा मे बडो के सम्बोधन के शब्द नहीं। बडे छोटो के लिये बस एक शब्द तुम • • ।"

अदूरदर्शिता—यवन-विजेता अलिकसुन्दर अपने गुरु अरिस्तातल के द्वारा विजय का मत्र लेकर विश्व विजय करने चलता है। अरिस्तातल से प्रभावित होकर आचार्य विष्णुगुप्त भी उनके चरण-चिन्हो पर चलने का सकल्प कर लेते है। परन्तु महाराज पुरु के द्वारा मिश्रजी ने उस गुरु को भी अदूरदर्शी सिद्ध करवाया है। महाराज पुरु टिथोनस और नियरकस से कहते है: "जनक के जीवनकाल में पुत्र की मृत्यु ? तुम्हारी विश्व-विजय के इस दारुण फल को सोचकर रोये फूट गये, देख लो! देख रहे हो ? यही मेधा है तुम्हारे अरिस्तातल की ? जिसके शिष्य इतनी दूर से तक्षशिला के आचार्य विष्णु-गुप्त वन गये ? पारस के राजभवन से तुमने एक साथ इतनी तरुणियो का हरण किया, तुम्हारे अपने देश की कुमारियाँ क्या होगी ?"

यवन विजेताओ के यह पूछने पर कि उसके (अलिकसुन्दर के) गुरु ने फिर उसे सारे जगत मे यवन-पद्धति के प्रचार की प्रेरणा क्यो दी? महाराज पुरु कहते है "अहकार के आवेग मे विद्या का धर्म विनय और बल का धर्म शील है। मेधावी अरिस्तातल यही इतना नही जानता। पारस मर गया पर उसकी पद्धति यवन पद्धति को निगल गई। तुम्हारे सैनिक जो किसी दिन अपने घर लौटकर जायेंगे, वहाँ भी पारस का विभव देखना चाहेंगे। यवन किशोरियो के कण्ठ मे पारसीक रत्नो की माल, उनके कपोलो पर पारसीक द्राक्षा का रग, उनकी आँखो मे वही चपलता और उनके अधरो मे वही अनुरजन। पर यह सब उस देश की प्रकृति मे नही है। कोई दिन आयेगा जब उस देश की भी वही गति होगी जो मिस्र और पारस की हुई, निषद, कम्बोज, गान्धार और इस केकय की हुई।"

बुद्धिहीनता—मिश्रजी ने अपने इस नाटक में यवनो की बुद्धिहीनता भी सिद्ध की है। यवन सेनापति महाराज पुरु को अपने सेनापतियो की सख्या वताना अस्वीकार कर देते है परन्तु महाराज पुरु उसी समय उन्हे मूर्ख वनाकर सब कुछ पूछ लेते है।

केवल यही नही कि मिश्रजी ने अपने प्रस्तुत नाटक मे अपने भारतीय पात्रो के मुख से ही शब्द कहलाकर उनको हीन सिद्ध किया हो, अपितु उन्होने स्वय कथा-सकेत मे लिखा है. "पारस भूमि मे जिस छल और

कपट से उसने काम लिया, संहार और प्रतिहिंसा का जो भीषण रूप उसने दिखाया, मानवता के किसी भी गुण का लेश भी उसमे नही मिलता। पारसपुर, सूषा और एकवताना के प्रसादो और मन्दिरो में जो आग उसने लगाई, वह महीनो तक जलती रही। यवन सैनिको के हथौडे कला-कृतियो पर चलते रहे, दारयवहु की कन्याओ और रमणियो का हरण किया गया और वे सैनिको मे बाँट दी गई।" मिश्रजी के इन शब्दो से स्पष्ट है कि विदेशी संस्कृति की उन्होने कितनी कटु निन्दा की है और स्पष्ट शब्दो में कह दिया कि मानवता के किसी भी गुण का लेश उसमे नही मिलता। परन्तु यह बात असम्भव-सी जान पडती है कि विश्व मे कोई भी जाति ऐसी हो कि उसमे मानवता के किसी भी गुण का लेश भी न हो।

दूसरी ओर मिश्रजी भारतीय संस्कृति की रक्षा के प्रति बहुत जागरूक रहे हैं। स्नातको के द्वारा ताया का हरण भारतीय संस्कृति के मस्तिष्क पर एक बहुत बडा कलंक है, परन्तु महाराज पुरु को इस कार्य से अनभिज्ञ रखकर उन्होंने उनकी मानवता की रक्षा की है और साथ ही स्नातको को इस दोषारोपण से मुक्त करने के लिये और भारतीय संस्कृति को कलंकित होने से बचाने के लिए आचार्य विष्णुगुप्त के मुख से नाटककार ने यवन विजेता के सम्मुख कहलाया है "महाराज अपने सैनिको के स्वामी है। तक्षशिला के स्नातक अपने आचरण मे इनसे स्वतन्त्र है। यवन बुद्धि का उत्तर बुद्धि मे दिया गया छल और कौशल हमारे स्नातको ने तुम्हारे सैनिकों मे सीखा उसका यह पहला प्रयोग इस रूप मे हुआ है।"

अब यह स्पष्ट है कि मिश्रजी अपनी भावना को नाटक लिखते समय जातीय मोह और देश के गौरव से परे न रख सके। यद्यपि उन्होंने जान-बूझकर ऐसा नहीं किया, परन्तु भारतीय संस्कृति का अनुराग उनकी रचना में स्वाभाविक ही आ गया है और इसके लिये आलोचकगण मिश्रजी को दोषी नहीं कह सकते हैं।

प्रश्न १०—'वितस्ता की लहरें' नाटक के नामकरण की सार्थकता सिद्ध कीजिये।

[illegible]—किसी भी साहित्यिक कृति का नामकरण या तो उसके किसी

प्रधान पात्र या पात्रा के नाम पर होता है, या किसी विशेष घटना के आधार पर या किसी विशेष घटनास्थल के नाम पर। मिश्र जी ने अपने प्रस्तुत नाटक का नामकरण घटनास्थल के नाम पर किया है। नाटक की अधिकाश घटनाएँ वितस्ता की लहरो मे ही घटित होती है।

प्रथम अक में तक्षशिला के नागरिक, तक्षशिला विद्यापीठ के आचार्य एवं स्नातक, पारस-नरेश दारयवहु की दो पीड़ित कन्याएँ, वितस्ता की लहरो को पार करती है और केकय-नरेश महाराज पुरु और युवराज रुद्रदत्त वितस्ता के तट पर उनका स्वागत करते है। द्वितीय अक मे जिस समय यवन सेनापति टियोनस और नियरकस महाराज पुरु से सन्धि-वार्ता करते है, उस समय यवन सैनिक तीन नावो पर चढकर वितस्ता की थाह लेते है और जाल डालकर ग्रामीण उन्हें वितस्ता की लहरो मे ही पकडते है। तृतीय अक में रात्रि के समय सधि भग करके चोरी से अलिकसुन्दर वितस्ता की लहरे पार करता है। यवन विजेता की प्रेयसी 'ताया' का हरण भी वितस्ता की लहरो के मध्य से ही होता है। यवन विजेता को जब ताया के हरण का समाचार मिलता है तो बहुत व्याकुल हो जाता है। इसी समय वितस्ता की लहरो में उसे ताया के केशबन्ध की माला प्राप्त होती है। वह लहरों की ओर को जाना चाहता है। तब यवन सेनापति उसे रोकते है। उस समय अलिकसुन्दर कहता है. "छोडो, छोड दो मुझे··· वितस्ता की लहरो से पूछूँ, कहाँ है मेरी ताया ·· आह!" वितस्ता की लहरो मे ही महाराज पुरु अलिकसुन्दर की जीवन रक्षा करते हैं। और नाटक की अतिम पक्तियों में मानवता का उद्घोष करने के लिए ताया कहती है. "कुछ ऐसा हो कि मानवता के घाव पर शीतल विलेपन लगे और वितस्ता की लहरो में अनुराग का जल हो!" इस प्रकार हम देखते हैं कि आदि से अत तक समस्त कथानक वितस्ता की लहरो से ही सम्बन्धित है और अन्त मे भी वितस्ता की लहरो मे 'अनुराग के जल' की कामना से ही होता है। इन्ही सब बातो को ध्यान में रखते हुए प्रस्तुत नाटक का नाम 'वितस्ता की लहरें' उचित और सार्थक ही है।

अब प्रश्न यह उठता है कि नाटक का नामकरण मिश्रजी ने घटनास्थल के नाम पर ही क्यो किया? प्रधान पात्र या घटना विशेष के नाम पर क्यो

नहीं किया ? इन विवाद में पड़ने पर पहले यह निर्णय करना होता है कि नाटक चरित्र-प्रधान है या घटना-प्रधान। यदि नाटक को चरित्र-प्रधान माना जाता है तो फिर किस पात्र के नाम पर नाटक का नामकरण हो। यदि महाराज पुरु के नाम पर नाटक का नाम 'पुरु' रखा जाता है, तो फिर आचार्य विष्णुगुप्त की योजना निपुणता की उपेक्षा होती है। और यदि आचार्य विष्णुगुप्त के नाम पर इस नाटक का नाम 'विष्णुगुप्त' मान लिया जाय तो महाराज पुरु के उदार-चरित्र, उनकी वीरता और साहस की उपेक्षा होती है। इसलिए प्रमुख पात्र के नाम के आधार पर प्रस्तुत नाटक का नामकरण सम्भव नहीं और न ही वह सार्थक हो सकता है।

यदि नाटक का नामकरण किसी घटना विशेष के नाम पर किया जाय तो इसके दो नाम सम्भव हो सकते हैं—(१) अलिकसुन्दर का भारतवर्ष पर आक्रमण. (२) महाराज पुरु की विजय। मिश्रजी ने नाटक के आरम्भ में कथा-संकेत में स्पष्ट शब्दों में लिख दिया है : "मकदूनिया के सिकन्दर ने इस पर जो आक्रमण किया था उसकी कोई भी सूचना हमें अपने पुराणों में नहीं मिलती। जैसे वह आक्रमण इस देश के इतिहास साहित्य में स्वीकार ही नहीं किया गया।" इस कथन से जब इतिहास साहित्य में यह आक्रमण स्वीकार ही नहीं किया गया, तो फिर प्रस्तुत नाटक का नाम 'भारतवर्ष पर अलिकसुन्दर का आक्रमण' कैसे रखा जा सकता है। और यदि इसका नाम 'महाराज पुरु की विजय' रखा जाय तो वह भी सम्भव नहीं। क्योंकि नाटक के अन्त में जब लाया महाराज पुरु से पूछती है कि अब क्या होगा महाराज, तब पुरु उत्तर देते हैं : "होनी होकर रहती है सुन्दरी ! इसकी चिन्ता हम नहीं करते। विजयी चाहे हमसे फिर युद्ध करे या लौट जायें। जैसा व्यवहार वे करें मैं उसे सुख से स्वीकार करूँगा।" पुरु के इन शब्दों से स्पष्ट है कि विजय और पराजय का कोई निर्णय नहीं होता है। मिश्रजी ने अन्त में ही परिवर्तित भावनाओं का अन्त मानकर नाटक को समाप्त कर दिया है।

इस प्रकार पर्याप्त विचार करने से हम इसी परिणाम पर पहुँचते हैं कि नाटक का नाम किसी प्रधान पात्र के नाम के आधार पर या घटना विशेष के

नाम पर रखना सार्थक नही है। इसका नाम 'वितस्ता की लहरें' जो कि मिश्र जी ने वहुत सोच-समझ कर घटनास्थल के आधार पर ही रखा है, वहुत ही उचित और तर्क सहित है।

प्रश्न ११—'कुछ ऐसा हो कि मानवता के घाव पर शीतल विलोपन लगे और वितस्ता की लहरों मे अनुराग का जल हो।" नाटक के अन्त में ताया के ये शब्द मानवता के उद्घोष के उद्देश्य से कहे गये हैं, सिद्ध कीजिये।

अथवा

"वितस्ता के तट पर दो विभिन्न जातियों और संस्कृतियों की टक्कर हुई थी, जो अपने विधि-विधान और जीवन दर्शन में एक दूसरी के विपरीत थी। यवन सैनिकों में विजय का उन्माद था तो पुरु और केकय जनपद के नागरिकों में देश के धर्म और पूर्वजो से आचरण की रक्षा का भार। दोनों ने एक दूसरी को जाना और समझा और वहुत अंशों में वैर और द्रोह मिटाकर शील और सहयोग के वढने का अवसर दिया गया।" मिश्रजी के इस कथन की सत्यता प्रमाणित कीजिये।

उत्तर—जव कभी भी कोई भी व्यक्ति कोई रचना करता है, तो चाहे वह उपन्यास हो या नाटक, गद्य हो या पद्य, परन्तु उसका कुछ-न-कुछ उद्देश्य अवश्य होता है। उद्देश्यहीन रचना साहित्यिक नही हो सकती। मिश्रजी ने अपनी सभी रचनाओ को किसी-न-किसी उद्देश्य को ही लेकर लिखा है। उनका प्रस्तुत नाटक 'वितस्ता की लहरें' दानवता पर मानवता की विजय के उद्घोष के उद्देश्य को लेकर लिखा गया है। नाटक का अन्त ताया के इन शब्दो मे होता है "कुछ ऐसा हो कि मानवता के घाव पर विलेपन लगे और वितस्ता की लहरो मे अनुराग का जल हो।" ताया के इन शब्दो में मिश्रजी का उद्देश्य स्पष्ट लक्षित होता है। वास्तव में भारतीय सस्कृति की विजय, मानवता की विजय और यूनानी सस्कृति की पराजय, दानवता की पराजय है।

भारतीय सस्कृति और यवन सस्कृति दोनो अपने विधि-विधान में एक दूसरे के विल्कुल विपरीत थी। भारतीय सस्कृति में उच्च आदेशो का समावेश

था और यवन संस्कृति में संकीर्ण स्वार्थों का समावेश था। यहाँ पर सभी कर्म धर्म के अनुसार किये जाते हैं। हमारा उद्देश्य धर्म और मोक्ष की प्राप्ति होती है, जबकि यवन संस्कृति में धर्म का कोई बन्धन नहीं है। उनके समस्त कार्य अर्थ और काम की प्राप्ति की इच्छा से किये जाते हैं। हमारे यहाँ तो अर्थ और काम की प्राप्ति की इच्छा भी धर्म के विपरीत चलकर नहीं की जाती, उनमें भी धर्म का बन्धन है, इसलिए उनमें स्वार्थ भावना का समावेश नहीं हो पाता। मानव जब अर्थ और काम की महत्वाकांक्षा करता है तो फिर वह दानव बन जाता है। इसी अर्थ और काम की इच्छा में अन्धे होकर यवन सैनिक अपने नेता अलिक्सुन्दर के नेतृत्व में पारस सूषा, एक बताना, मिस्र आदि देशों का ध्वंस करते हुए भारत पहुँचे। यहाँ पर उनकी टक्कर वितस्ता के तट पर केकय महाराज पुरु से हुई या यों कहें कि वितस्ता के तट पर दानवता की मानवता से टक्कर हुई।

प्रस्तुत नाटक में यह दिखाया गया है कि यवन विजेता अलिक्सुन्दर अपने गुरु अरिस्तातल से जगत-विजय का मन्त्र लेकर चला। उसके साथ उसकी प्रेयसी 'ताया' थी। वह सदैव उसे ध्वंस की प्रेरणा देती रही। उसकी जगत-विजय की कामना और अर्थ और काम की इच्छा की अग्नि ने पारसपुर, सूषा, एकबताना, मिस्र आदि गौरवशाली राज्य जलकर राख हो गये। उनका वैभव देखते-ही-देखते धूल में मिल गया। परन्तु उसी अलिक्सुन्दर ने वितस्ता के तट पर युद्ध में भारतीय संस्कृति से कुछ सीखा। यह ही नहीं, उसकी प्रेयसी ताया भी भारतीयों के संपर्क में आकर परिवर्तित हो गई। उसने उस प्रचण्ड ध्वंसाग्नि को प्रज्वलित करने की दिशा से मुख मोड़ लिया।

वितस्ता की लहरों से बाहर आने के पश्चात् महाराज पुरु-अलिक्सुन्दर को विजयी कहकर सम्बोधित करते हैं तो यवन विजेता कहता है: "यह विजय मेरी नहीं, मेरे भीतर के उस अहंकार की, उस दानव की रही है जिसके सुख के लिए मैं यहाँ तक पहुँच गया। क्षण भर की तृप्ति के लिये कितने वर्ष बीत गये, कितने वसन्त, कितने ग्रीष्म, कितने पावस और शीत में उसके

संकेत पर भागा फिरा हूँ ? अरिस्तातल की विद्या के लिए जो कुछ मैं भेज सका बस वही उतना मेरा है। हाथी की सूंड से मुझे छुड़ाना न था।"

"पुरु—क्या कह रहे हो! अपनी आँखों के सामने तुम्हारी मृत्यु देखता?"

"अलिकसुन्दर—मेरे भीतर के दानव की मृत्यु होती वह, जो समूचे जगत का अधिकार दण्ड मेरे हाथों में देकर सबके सुख, दुःख, चिन्ता और शासन का भार मुझ अकेले पर लाद देता।"

अलिकसुन्दर के शब्दों से स्पष्ट है कि वह भी अपनी विजय को दानवता की विजय और अपनी मृत्यु को दानवता की मृत्यु मानता है। अन्त में महाराज आम्भी भी जो महाराज पुरु से ईर्ष्या करते थे और जिन्होंने अलिकसुन्दर को महाराज पुरु से भिड़ने के लिए उत्तेजित किया था, परिवर्तित हो जाते हैं। वह समस्त काण्ड का दोषी अपने को ठहराते हैं।

"आम्भी—इस सारे अनर्थ का कारण मैं हूँ और चुपचाप यह सब सुन रहा हूँ। केकय के संहार के लिए मैंने विजयी को निमन्त्रित किया था। आपकी मेघ-गम्भीर वाणी और श्वेत गज से विशाल शरीर का आतंक मेरी ईर्ष्या का कारण बना। (पुरु के सामने दोनों हाथ जोड़कर खड़ा होता है।)"

अन्त में हम देखते हैं कि भारतीय संस्कृति की पवित्रता ने उस दानवता का संहार कर मानवता को जागृत किया और अन्त में वह ताया ही, जिसकी प्रेरणा से अलिकसुन्दर ने कितने ही देशों के वैभव को धूल में मिला दिया था, कहती है "कुछ ऐसा हो कि मानवता के घाव पर विलोपन लगे और वितस्ता की लहरों में अनुराग का जल हो।"

वास्तव में आज के युग में इसी प्रकार के उद्देश्य को पाठकों के सम्मुख रखने वाली रचनाओं की आवश्यकता है। मिश्रजी का यह नाटक मनुष्य को समय के अनुसार उपयुक्त देन है। आज विश्व-गगन में अशान्ति के मेघ मंडरा रहे हैं। प्रत्येक जाति दूसरी जाति का ध्वंस करने के लिए उद्जन बम, परमाणु बम जैसे विध्वंसकारी शस्त्रों का निर्माण करने में लगी हुई है। इसका कारण है मानव की अर्थ और काम की इच्छा, और उसकी पूर्ति के लिए अधिकार की इच्छा। इस प्रकार आज का मानव दानवता की ओर अग्रसर

हो रहा है। मानव, मानव का शोषण कर रहा है। केवल अपनी कामनाओं की पूर्ति के लिए, अपना जीवन ऐश्वर्य से व्यतीत करने के लिए, स्वयं स्वामी बनने और दूसरो को दास बनाने के लिए। ऐसी अवस्था मे विश्व की कुछ महान् विभूतियाँ आज बांडुग सम्मेलन तथा इसी प्रकार के अन्य सम्मेलनो के द्वारा विश्व को एक मानवता का पाठ पढाने का प्रयत्न कर रहे हैं कि हम जातीय मोह मे पडकर दानव न बनें अपितु मानवता के पथ पर अग्रसर हों। ऐसे समय मे मिश्रजी की कृति 'वितस्ता की लहरें' भी मानव के लिए यही सदेश लेकर आज विश्व में उद्भूत हुई है।

प्रश्न १२—" 'वितस्ता की लहरें' सस्कृति-प्रधान ऐतिहासिक नाटक है"—इस युक्ति का युक्तियुक्त विवेचन करें।

उत्तर—लेखक ने 'वितस्ता की लहरें' नाटक मे इतिहास के आधार-पट पर कल्पना की तूलिका से भारतीय सस्कृति का सुन्दर चित्र प्रस्तुत किया है। सिकन्दर का भारतवर्ष पर आक्रमण, आम्भी के द्वारा उसकी आधीनता स्वीकार करना तथा महाराज पुरु के साथ वितस्ता के तट पर युद्ध आदि ये सभी ऐतिहासिक घटनाएँ है। ये घटनायें ही प्रस्तुत नाटक के कथानक का आधार है। मिश्रजी ने स्वय नाटक की भूमिका में लिखा है. "इस नाटक का आधार वितस्ता के तट पर यवन सेना का पहुँचना, चोरी से वितस्ता पार करना और केकय-वीर पुरु के साथ उसका युद्ध है।" मिश्रजी ने प्रस्तुत नाटक मे आम्भी के द्वारा आधीनता स्वीकार करने के दो कारण बताये है—"तक्षशिला के महाराज आम्भी ने यवन अलिकसुन्दर के पास कोष के स्वर्णरत्न के साथ अपने गान्धार देश की स्वतन्त्रता बेच दी। बर्बर यवन यह अवसर कब चूकता ? आम्भी की सहायता से सिन्धु पार कर उसने तक्षशिला मे अपनी ध्वजा गाड दी।"

"इस सारे अनर्थ का कारण मै हूँ और चुपचाप यह सब सुन रहा हूँ। केकय के सहार के लिए मैंने यवन विजयी को निमन्त्रित किया था। आपकी मेघ-गम्भीर वाणी और श्वेत गज से विशाल शरीर का आतंक मेरी ईर्ष्या का कारण बना।" आम्भी के इन शब्दो से स्पष्ट है कि उसने अलिकसुन्दर की सहायता पुरु को नीचा दिखाने के लिए की।

तक्षशिला के आचार्य विष्णुगुप्त (चाणक्य) का और वहाँ के स्नातको का इस सकट की स्थिति में देश की रक्षा का भार लेना भी इतिहास-समर्थित है, परन्तु मिश्रजी ने आचार्य के इस भार को लेने का वर्णन अपनी कल्पना के आधार पर किया है।

प्रस्तुत नायक मे आचार्य जी के ये शब्द तत्कालीन भारत का अनेक स्वतत्र राज्यो में विभक्त होने पर तथा एक राजा के नीचे सगठित होने को अपने स्वाभिमान के प्रतिकूल समझने पर प्रकाश डालते हैं : "यवन विधान से भारत तभी बचेगा जब इसके सभी अग एक साथ रहे ···सारा देश एक ध्वजा और एक व्यवस्था के नीचे होगा।" आचार्य जी के ये शब्द महाराज पुरु को क्रोधित कर देते है, क्योकि वह किसी की आधीनता सहन नही कर सकता। परन्तु आचायंजी के द्वारा समझाये जाने पर वह सभी गणो के राजाओ को एक सगठन बनाने के लिये निमन्त्रित करने को तैयार हो जाता है, परन्तु वह स्वय ही उस सगठन का नेता बनना चाहता है। वह कहता है : "इस समय यज्ञ मे मुझे सबका आवाहन करना है। गान्धार तो चला गया पर उत्तर का अभिसार, दक्षिण के भद्र, मालव, सौभूति और पश्चिम के मगध तक के जितने जन है सबको निर्मन्त्रित करना है। पर यह ध्रुव है कि इस यज्ञ का कर्ता दैव ने अब मुझे बनाया है।"

आचार्य विष्णुगुप्त ने अलिकसुन्दर के आक्रमण को विफल करने के लिए अद्वितीय नीति-पटुता का परिचय दिया है, यह भी इतिहास-प्रथित सत्य है। मिश्रजी ने भी इस सत्य की उपेक्षा नही की है। विष्णुगुप्त कहता है : "दिन-रात मे भारतीय प्रजा की शक्तियो को केन्द्रित कर एक संगठन और एक नियम-विधान में सचालित कर यवन सेना के सामने खडी कर देना है जैसे पर्वत लहरो के सामने अडा रहता है।"

मगध के राजा नन्द के राज्य को नष्ट करने के लिए चाणक्य तथा चन्द्रगुप्त के उस समय किए गए प्रयत्न इतिहास प्रसिद्ध है। मिश्रजी ने इस घटना का सम्बन्ध तो अपने नाटक से नही जोड़ा है; केवल शशिगुप्त के सवाद मे उसके नगण्य रूप का महत्व प्रदर्शित किया है। हो सकता है प्रस्तुत नाटक का शशिगुप्त इतिहास का चान्द्रगुप्त ही हो।

"यवन दूत बनकर मैं आया हूँ। फिर भी जाति और धर्म के गौरव की कामना मेरे मन मे भी है · · भिड जाने दो इसे शूद्र नन्द की सेना से ····· विष को विष औषध बने। नन्द की इसमे जब टक्कर हो हम इधर की शक्तियो को बटोर कर इसके विरुद्ध शख फूंक दें।······" विष्णुगुप्त भी नागिगुप्त की भांति अलिकसुन्दर की महाराज नन्द ने टक्कर करवाना चाहता है। वह कहता है "अहकारी यवन की नन्दराज से टक्कर होने दें।"

मिश्रजी अपने प्रस्तुत नाटक मे उस समय की राज्य प्रणाली का परिचय देते हुए बताते है कि राजा अपनी परिषद से मन्त्रणा करता था। वैतालिक शख बजाकर सूचना देते थे और सम्भवतः विशेष अवसरो पर विशेष समारोह पूर्वक परिषद् की सभा हुआ करती थी। एक सकटकालीन स्थिति में विशेष अधिकार का भी प्रयोग कर सकता था। जब यवन सैनिक चोरी से वितस्ता पार करते हुए पकडे जाते हैं, तो राजकुमार रुद्रदत्त उनको दण्ड देने के लिए परिषद् को आमन्त्रित करने के लिए महाराज पुरु से आज्ञा मांगता है, तो महाराज कहते है · "नियम यही है। पिछले तीन वर्षो मे सकटकालीन विशेष अधिकार का उपयोग मैंने कभी नहीं किया, इस अवसर पर कर रहा हूँ। परिषद् के सभी सदस्य केकय सेना के संगठन मे लगे हैं। इस युद्ध के बाद ही शान्ति का वह समय आयेगा जब सब को निमन्त्रित करना सम्भव होगा।"

युद्ध-भूमि मे सिकन्दर का घायल होना तथा पुरु की महान् शक्ति से उसका प्रभावित होना भी इतिहास प्रसिद्ध है। प्रस्तुत नाटक में श्रान्त तथा चिन्तित अलिकसुन्दर पुरु की वीरता की प्रशंसा तथा अपने वीरो की मृत्यु पर दुःख प्रगट करता हुआ कहता है. "एक साथ मेरे सात सेनापतियो को मार कर वह जी रहा है। हरिकुल और द्राम के विजयी वीरो का गौरव वितस्ता की लहरो मे डूब रहा है ······ · पुरु के पुत्र पर जो मेरा भाला चला, जो अब तक कभी चूका न था, पुरु ने उसे अपनी ढाल पर रोककर जो भाला मुझे मारा, अंगुल भर हटकर उस घोड़े की पीठ पर जा पडा जो मकदूनियां मे यहाँ तक इतने दिन, उसने वर्ष मुझे अजेय बनाये रहा। आह········ मेरा घोड़ा ही नहीं, प्रत्युत मेरे जन्म का साथी था वह ······ ।"

मिश्रजी ने इतिहास के इसी विराट् आधार पर नाटक की रचना की है और उसी के माध्यम से भारतीय सस्कृति का गौरवगान किया है। भारतीय सस्कृति रूपी रत्नमाला के अनेक अमूल्य रत्न इस नाटक मे विखरे पडे है। मिश्रजी ने भारतीय सस्कृति की अनेक निम्नलिखित विशेषताओ पर प्रस्तुत नाटक में प्रकाश डाला है '

१ धर्म की सर्वोपरि सत्ता स्वीकार करना—उस समय युद्ध मे भाग लेना, ब्राह्मण बालको को भी श्रद्धेय मानना, शरणागत की रक्षा के लिए प्राण की बाजी लगाना, अतिथि सेवा के लिए स्पर्धा का चलना, नारी का सम्मान, राजदूत की रक्षा करना आदि सभी विषयो मे धर्म का आग्रह ही सर्वत्र विद्यमान है।

२ युद्ध को धर्म का अंग मानना—उस समय युद्ध को भी धर्म का ही एक अग माना जाता था। निम्नलिखित वार्तालाप से यह स्पष्ट है

"विष्णुगुप्त—युद्ध की नीति हमारी दूसरी थी जब केवल शस्त्रधारी मरते और मारते थे। कृषक खेत जोतते रहते थे और सेनाएं निकल जाती थी। निःशस्त्र को कोई नही छेडता था। शत्रुओ की देवियो की ओर देखना भी जब पाप था।

शशिगुप्त—समझ नही रहे हो तुम ' ' '' यहाँ लोग विजय के लिये युद्ध नही करते थे।

अलिकसुन्दर—तब किस लिये ?

शशिगुप्त—धर्म के लिए। यहाँ जो रणक्षेत्र मे मरते है, सीधे स्वर्ग में जाते है, सूर्य मडल को पार कर। इसलिए उस सेना मे सभी ऐसे है जिनके आधे बाल पक चुके है। ससार की सारी कामनाएँ जिनकी पूरी हो चुकी है। तरुणो से पहले स्वर्ग पहुँचने का अधिकार है।"

३ नारी सम्मान—भारतीय सस्कृति की यह एक महान् विशेषता है कि वे नारी का सम्मान करते है। नारी का अपमान भारतवासियो के लिए असह्य है। ताया के इन शब्दो से भारतीय सस्कृति की इस महानता पर प्रकाश पड़ता है "न कहो ······ सुनना भी पाप है जिसको। इस देश

के निवासी पराई स्त्री को माता मानते हैं। मेरी आंखो में सीधे किसी ने देखा तक नही। जितना डरते है ये अपनी माता भवानी से उतना ही मुझ से भी डरे है।

४ अतिथि सेवा—पुरु के शब्दो से भारतीय संस्कृति के इस अंग पर प्रकाश पड़ता है "देख लिया आपने वितस्ता के घाट पर उस पार से आने वाले का स्वागत वह जनपद किस उत्साह से कर रहा है। अतिथि-सेवा से अधिक-से-अधिक लाभ लेने के लिए लोगो मे होड मची है। आसन्न यवन-भय पर आज समिति विचार करती रही, नहीं तो कौन किस का अतिथि हो, सारा दिन इसी विचार मे गया और जब तक लोग आते रहेंगे यह विचार भी चलता ही रहेगा।

५ शरणागत की रक्षा—राजकुमार रुद्रदत्त का तारा तथा रजनी को आश्रय देना शरणागत की रक्षा को सर्वोपरि कर्त्तव्य मानने का ज्ञापक है। पुरु के ये शब्द भी इस पर प्रकाश डालते है "एक बार तुम्हे शरण मे लेकर अन्त तक इस धर्म का निर्वाह हम करेंगे। अब इसका फल जो हो।"

६ वर्ण व्यवस्था—भारतीय समाज मे वर्ण व्यवस्था की विशेषता रहती है। पुरु के समय मे भी सुदृढ वर्ण व्यवस्था का आभास मिलता है। प्रत्येक व्यक्ति इस बात का विशेष ध्यान रखता था कि वर्ण और आश्रम की मर्यादा टूटने न पाए।

"बालक ब्राह्मण भी वृद्ध क्षत्रिय से श्रेष्ठ है जिसके चरण का चिन्ह विष्णु के वक्ष का शृंगार है।" पुरु के ये शब्द दर्शनीय है।

७. आचार की उच्चता—पुरु के निम्नलिखित शब्दो से भारतवासियो के आचार की उच्चता पर प्रकाश पड़ता है —

"न में स्तेनो जनपदे न कदर्यो न मद्यपो
नानाहितान्निर्नाविद्वान न स्वरी स्वैरिणी कुत.।"

मेरे जनपद मे न कोई चोर है, न कोई नीच प्रकृति वाला व्यक्ति है, न शराबी है, यज्ञ न करने वाला कोई नही है, मूर्ख कोई नहीं है, जब स्वेच्छाचारी पुरुष कोई नही है तो [illegible] णी कहाँ से होगी।

८ आहार की सात्विकता—"बैठो भद्र ! सुरा का सेवन इस जनपद के निवासी नही करते, सत्कार में यह कमी रह गई।" महाराज पुरु के यवन सेनापतियो से कहे गए इन शब्दो से समस्त राष्ट्र के खान-पान की सात्विकता का प्रकाश पड़ता है।

९ पतिव्रत धर्म—रोहिणी के चरित्र से भारतीय नारियो के चरित्र पर प्रकाश पडता है। जब तक राजकुमार भोजन नही करते है, वह भी भूखी ही रहती है। आचार्य विष्णुगुप्त के द्वारा त्याग की भिक्षा मागने पर वह कहती है: "आर्यपुत्र के रथ पर उनके बायें बैठकर युद्ध मे करूँगी। पत्नी सब कही पति की छाया है, यहाँ भी रहेगी······।" वह अपने पति की प्रसन्नता को ही अपनी प्रसन्नता मानती है, इसीलिए वह रजनी को सपत्नी का पद दिलवाती है। ताया के ये शब्द भी भारतीय नारी के पतिव्रत धर्म पर प्रकाश डालते है "पति से बडा देवता इनका कोई नही होना। दूसरे पुरुष के ससर्ग से बडा पाप भी इनके लिए कोई दूसरा नही। नारी के प्रति इस भाव से यहाँ का एक पुरुप पारस के सौ पुरुपो के बराबर है।"

१०. भावना से कर्त्तव्य को ऊँचा मानना—राजवधू रोहिणी के त्याग तथा युद्ध के रस में पुरु का पुत्र के अनुराग को भी भूल जाना इसका सुन्दर उदाहरण है। भारतीय नवयुवको का देश की रक्षा के लिए अपने घरो को फूँक कर मरने के लिए निकल पड़ना भी कर्त्तव्य से भावना को उच्च मानने का एक ज्वलत उदाहरण है।

११ मृत्यु से भयभीत न होना—भारतवर्ष मे आत्मा को अमर माना गया है। केवल शरीर ही नाशवान् है। इसीलिए मृत्यु से भयभीत न होना स्वाभाविक ही है।

"रोहिणी—··· ··मृत्यु से डरना हमने नही सीखा।"

१२ निष्काम कर्म—"केवल विजय के लिए युद्ध नही किया जाता भद्र ! मृत्यु के लिए भी युद्ध किया जाता है। फल की चिन्ता छोड़कर हमे कर्म भी करना है।" महाराज पुरु के इन शब्दो से भारतीय सस्कृति के निष्काम कर्म का भावना पर प्रकाश पडता है।

१३ बौद्ध धर्म के प्रति अनास्था—पुरु के राज्य में वैदिक धर्म का बोल-बाला था। उस समय बौद्ध धर्म मे लोगो को विश्वास नहीं था। विष्णुगुप्त को भी बौद्ध धर्म को रोकने की चिन्ता है।

१४ देवपूजन और मूर्तिपूजन पर विश्वास—मिश्रजी ने प्रस्तुत नाटक मे युद्ध मे सेना के आगे-आगे गणेश, कुमार आदि की मूर्तियो के ले चलने की ओर सकेत किया है। इससे स्पष्ट है कि उस समय देवताओ तथा मूर्तियो में विश्वास किया जाता था।

१५ संकट में शत्रु पर भी दया—भारतवासियों ने सदैव संकट के समय शत्रु पर भी दया की है। महाराज पुरु गज की सूँड से अलिकसुन्दर की रक्षा करके अपने इस धर्म का पालन करते हैं। महाराज पुरु के इन शब्दों से इस आदर्श पर प्रकाश पड़ता है : "हम युद्ध करते हैं कर्म भाव से, शत्रुभाव वहाँ भी नहीं रहता।"

प्रश्न १३—मिश्रजी की नाट्यकला पर प्रकाश डालिये।

उत्तर—मिश्रजी का हिन्दी नाटककारो में उच्च स्थान है। इनके नाटकों मे दृश्यत्व तथा काव्यत्व का सम्मिश्रण है। मिश्रजी के नाटकों में सर्वत्र साहित्यिकता तथा अभिनेयता का सफल निर्वाह हुआ है। आपने पाश्चात्य नाट्य शैली के कलेवर मे भारतीय आत्मा को प्रतिष्ठित किया है। आपकी नाट्य-कला मे प्राचीन, अर्वाचीन, प्राच्य और पाश्चात्य नाट्य आदर्शों का समन्वित रूप सुन्दर रूप मे दिखाई देता है। मिश्रजी की कृतियो को दो भागो में विभक्त किया जा सकता है।

समस्यामूलक रचनाएँ—सन्यासी, राक्षस का मंदिर, मुक्ति रहस्य, राजयोग, सिन्दूर की होली, आधी रात।

संस्कृति प्रधान ऐतिहासिक रचनाएँ—अशोक, गरुड़ध्वज, वत्सराज, दशाश्वमेध, वितस्ता की लहरें।

मिश्रजी के नाटको मे निम्नलिखित विशेषतायें हैं :

१. रंगमंचीयता—नाटक की सफलता उसके रंगमंचीय होने में है। मिश्र जी के नाटकों में इस विशेषता का विशेष ध्यान रखा गया है। मिश्रजी के प्राय सभी नाटक रंगमंचीय हैं।

२ अपेक्षित काव्यत्व—मिश्रजी के नाटको में अपेक्षित काव्यत्व तो है, परन्तु अनपेक्षित कवित्व नही है। उनमे साहित्यिक सौन्दर्य का सरक्षण भी है। जन-सामान्य की बोधगम्यता भी है और अभिनय की सफलता भी।

३ रंग संकेत—मिश्रजी ने अपने नाटको मे रग-सकेत का विशेष प्रयोग किया है। इससे अभिनेताओ को अभिनय करने मे विशेष सहायता मिलती है।

४ गीतों का अभाव—मिश्रजी का कहना है कि गीत नाटक के प्रभाव की समाग्रता को विकेन्द्रित करते है, इसीलिए उन्होने अपने नाटको मे गीतो का प्रयोग नही किया है। गीतो के अभाव को पूरा करने के लिए उन्होने कही-कही पर अन्य मनोरंजन साधनो को अपनाया है।

५ पाश्चात्य नाट्य-कला से प्रभावित—मिश्रजी का नाटच-विधान पाश्चात्य नाटच-विधान से प्रभावित है, परन्तु उनका यह अनुसरण ऊपरी आकार-प्रकार तक ही सीमित है।

६. बुद्धिवाद—मिश्रजी के नाटको मे बुद्धिवाद का द्वार खोला गया है। उन्होने काल्पनिक भावुकता को छोडकर बुद्धिवाद को अपनाया है। मिश्रजी बुद्धिवाद के पक्ष मे लिखते है

"बुद्धिवाद किसी तरह का हो, किसी कोटि का हो, साहित्य या समाज की हानि नही कर सकता। बुद्धिवाद मे शूगर कोटेड कुनेन की व्यवस्था है ही नही। वह तो तीक्ष्ण सत्य है, उसका घाव गहरा होता है, लेकिन अग-भग करने के लिए नही, मवाद निकालने के लिए। हमारी प्रसुप्त चेतना को जगाकर हमारे भीतर नवीन जीवन स्फूर्ति पैदा करने के लिए।"

७ काम-समस्या—मिश्रजी ने फ्रायड की चिन्तन-पद्धति से प्रभावित होकर अपने सभी नाटको में यौन-समस्या को अपनाया है।

८ नारी जीवन की समस्याओं का नव दर्शन—मिश्रजी ने अपने नाटको में यह स्पष्ट किया है कि आज नारी को भावुकता की भूमि से हटकर अपने विषय मे विचारशील होना है और स्वय निर्णय की क्षमता प्राप्त करनी है। नारी को प्रणय का शिकार होकर अपने जीवन को मूर्तिमती विडम्बना नही,

बनाना है, अपितु परिस्थिति सम्मत और बुद्धि संगत समझौता करके अपने जीवन और व्यक्तित्व का स्वयं निर्माण करना है।

९ उपयोगितावादी दृष्टिकोण—मिश्रजी इस पक्ष में नहीं कि साहित्य केवल मनोरंजन का ही साधन है। वे साहित्य को जीवन के संस्कार का साधन तथा जीवन को आदर्शोन्मुख बनाने का प्रेरक बनाने के पक्ष में हैं।

१० भारतीय संस्कृति के प्रति आग्रह—मिश्रजी का भारतीय संस्कृति के प्रति झुकाव है। ऐतिहासिक नाटकों की रचना करने में भी उनकी यही प्रेरणा रही है। उन्होंने अपने सभी संस्कृति-प्रधान ऐतिहासिक नाटकों में भारतीय संस्कृति की उच्चता, पूर्णता तथा अमरता की घोषणा की है।

११ समस्याओं की मुख्यता—मिश्रजी ने अनेक समस्यामूलक नाटक लिखे हैं। उन्होंने अपने इस कोटि के नाटकों में किसी-न-किसी समस्या को उठाया है और उसका तर्क-संगत और बुद्धि-सम्मत समाधान भी प्रस्तुत करने का प्रयत्न किया है।

१२ भाषा—मिश्रजी के समस्या-प्रधान नाटकों में भाषा स्वाभाविकता तथा तीखापन लिए हुए है, परन्तु वह तीखापन सत्य का है, भाषा का नहीं। संस्कृति-प्रधान नाटकों में प्रेम सम्बन्धी भावुकता के कारण भाषा साहित्यिक तथा कवित्वपूर्ण है। जीवन सम्बन्धी तथ्यों को बहुत ही सुन्दर शब्दों में व्यक्त किया गया है, परन्तु प्रांतीय प्रयोग लिंग, वचन और विशेषण सम्बन्धी प्रादेशिक भिन्नता भी उभरकर पाठकों के सामने आ जाती है।

व्याख्या योग्य आवश्यक संदर्भ

तब मेरे इन कानों ·· ····भंवरें बनाती हैं जैसे। (पृष्ठ ३)

प्रसंग—प्रस्तुत सन्दर्भ श्री लक्ष्मीनारायण मिश्र के नाटक 'वितस्ता की लहरें' के प्रथम अंक से उद्धृत किया गया है। वितस्ता के तट से लौटते समय युवराज [illegible] नगर के समीप आकर अपना शंख बजाते हैं। उस समय सैनिक हयग्रीव रोहिणी देवी से कहता है कि यह युवराज के शंख की ध्वनि है और वह अब लौटकर आ रहे हैं। इस पर रोहिणी उससे कहती है कि यदि कोई दूसरा हुआ तो ··। इसके उत्तर में हयग्रीव रोहिणी से कहता है कि :

व्याख्या—यदि यह ध्वनि युवराज के शंख की नहीं है तो यह मेरे श्रवणों का दुर्भाग्य है कि वे युवराज के शंख की ध्वनी को पहचानने मे भी धोखा खायें। । यह हो सकता है कि कैकय-राजभवन का पहरेदार भी युवराज के शंख की ध्वनि को पहचानने मे असफल रहे। युवराज के शंख की ध्वनि की यह विशेषता है कि जिस समय शंख बजाने के पश्चात् वह अपने मुँह से इसे हटा देते हैं, उसके पश्चात् भी यह शंख-ध्वनि मेघो की गरज के समान वायु-मण्डल मे रहती है। उसके शंख की ध्वनि सरल रेखा मे न चलकर चारो ओर को चक्कर खाती हुई चलती है और उसकी भँवर बनती चली जाती है। ठीक इसी प्रकार जिस प्रकार कि वितस्ता के जल मे भँवर उस समय बनती है जब कि बाढ आई हुई होती है।

(२) मरुद की इस "तुम्हें बनना है। (पृष्ठ १२)

प्रसंग—प्रस्तुत सदर्भ श्री लक्ष्मीनारायण मिश्र द्वारा लिखित 'वितस्ता की लहरें' नाटक के प्रथम अंक से उद्धृत किया गया है। आचार्य विष्णुगुप्त पारस-नरेश दारयवहु की दो राजकुमारियों को लेकर देवी रोहिणी के पास आते है और उससे उन कुमारियो को माता का स्नेह देने के लिए कहते है। उस समय रोहिणी को समझाते हुए आचार्य जी कहते है

व्याख्या—यह हमारी मातृभूमि का विपत्ति का समय है। इस आपत्ति के समय मे मिस्र और पारस जैसे महान् देश भी नष्ट हो चुके है। इस समय अलिकसुन्दर ने वह सहार मचाया हुआ है कि नष्ट करने मे स्वय महाकाल भी उससे पीछे है। इस समय हमारा कर्त्तव्य है कि हम इस दानवता का अन्त कर मानवता को विजय करें। इस समस्त कार्य के लिए हमें अपने पूर्वजो की वीरता और उनके साहस तथा अपने देश के कभी न मिटने वाले यश को याद करना है कि हम कितने महान् रहे है और कैसा गौरवशाली रहा है हमारा देश। इस समय हमे अलिकसुन्दर की सहार की आँधी पर सवार सेना को वितस्ता तट पर रोक देना है और उसे आगे नही बढने देना है, परन्तु इस कार्य को करने के लिए युवको से अधिक देवियो से सहारा प्राप्त करना है। देवियो के त्याग के इस यज्ञ मे सर्वप्रथम तुम्हे आगे बढकर आहुति डालनी है। आज समस्त देश देवी रोहिणी (महाराज पुरु की पुत्रवधू)

का यह महान् त्याग चाहता है। देवी ! तुम्हें यह त्याग करके मनुष्यता की अन्तिम आशा बनना है

(३) भूमंडल की रूपवती ······ दया बाद में। (पृष्ठ १८)

प्रसंग—प्रस्तुत सदर्भ श्री लक्ष्मीनारायण मिश्र के नाटक 'वितस्ता की लहरें' के प्रथम अक से उद्धृत किया गया है। आचार्य विष्णुगुप्त युवराज रुद्रदत्त से पारस-नरेश दारयवहु की यवन सेना से पराजय को कर्म का फेर बताते हुए कहते हैं

व्याख्या—पारस-नरेश दारयवहु का राजमहल समस्त पृथ्वी पर की अति सुन्दर स्त्रियों से भरा रहता था, परन्तु वही दारयवाहु यवन सेना की टक्कर में जब न ठहर सका तो उन सब स्त्रियों को नि सहाय अवस्था में छोड़कर अपने जीवन की रक्षा के लोभ में राजमहल से भाग निकला था। ऐसे व्यक्ति को देखकर किसी भी मनुष्य के हृदय में सर्वप्रथम उसके प्रति घृणा उत्पन्न होती है, फिर कहीं उसके पश्चात् उस पर दया आती है।

(४) समुद्र में लहरें ······ नहीं तोड़ते। (पृष्ठ ६२)

प्रसग—प्रस्तुत सदर्भ श्री लक्ष्मीनारायण मिश्र के नाटक 'वितस्ता की लहरें' के द्वितीय अक से उद्धृत किया गया है। युवराज भद्रबाहु आचार्य विष्णुगुप्त से स्पष्ट शब्दों में कहते हैं कि उन्हें या तो महाराज पुरु के साथ विश्वास रखना चाहिए अथवा अविश्वास। दोनों बातें एक साथ नहीं चल सकतीं। साथ ही वह यह भी बता देता है कि महाराज को उनकी इस नीति के कई प्रमाण प्राप्त हो चुके हैं। यह बताते हुए वह कहते हैं :

व्याख्या—यदि समुद्र में लहरें न उठ रही हों तो इसका अर्थ यह न लगा लेना चाहिए कि वहाँ जल कम गहरा है। ठीक इसी प्रकार आप यह न समझ लीजिए कि यदि महाराज पुरु ने आपसे कुछ कहा नहीं, तो उन्हें आपके इन सब कार्यों का पता नहीं है। महाराज को आप जितना सीधा समझकर मूर्ख बनाना चाहते हैं, वह इतने सीधे नहीं हैं। उन्हें आपकी नीति का पूरा पता है कि आप यवन विजेता से और उसके सेनापतियों से मिलते रहते हो, परन्तु फिर भी उन्होंने आपके साथ बहुत ही अच्छा व्यवहार किया है। इतने पर भी उन्होंने आपसे अपना सम्बन्ध नहीं तोड़ा।

(२) अपनी प्रिया की रक्षा जो न कर सके, वह विश्वविजयी बने ? कैसी विडम्बना है यह।

प्रसंग—प्रस्तुत उद्धरण श्री लक्ष्मीनारायण मिश्र के नाटक 'वितस्ता की लहरें' के तृतीय अंक से उद्धृत किया गया है। वितस्ता के तट पर जिस समय महाराज पुरु और अलिकसुन्दर की सेनाओं मे टक्कर होती है, तो महाराज पुरु भूखे सिंह की भाँति यवन सेना पर टूट पड़ते है। इसी समय तक्षशिला के कुछ स्नातक योजना बनाकर यवन-विजेता की प्रेयसी 'ताया' का हरण कर लेते है। तब राजकुमार भद्रबाहु अलिकसुन्दर के पास जाते हैं और उसके चोरी से वितस्ता पार करने और द्वन्द्व-युद्ध की सन्धि को तोडकर धोखे से असावधान सेना पर आक्रमण करने के उसके नीच कृत्य को धिक्कारते हुए कहते हैं :

व्याख्या—यह ठीक है कि यवन विजेता विश्व को विजय करने का स्वप्न लेकर चले है, परन्तु जो पुरुष अपनी प्रेयसी की रक्षा भी न कर सका और उसके हरण को रोकने की शक्ति भी जिसमें नही है, वह विश्व को विजय करे। यह तो बडी ही विचित्र बात है।

अन्य आवश्यक संदर्भ

कीर्ति-स्तम्भ

प्रश्न १—"कीर्ति-स्तम्भ" नाटक की कथा संक्षेप में दीजिए।

उत्तर—कीर्ति-स्तम्भ श्री हरिकृष्ण प्रेमी जी का ऐतिहासिक नाटक है। इस नाटक की कथा का सम्बन्ध मध्यकालीन राजपूत युग से है। राजपूत सदैव ही अपनी वीरता तथा युद्ध-प्रियता के लिए प्रसिद्ध रहे है। उनकी शक्ति ने उन्हें अन्धा बना दिया था और वे समय-समय पर परस्पर ही भिडते रहते थे। उनकी राष्ट्रीयता की भावना बहुत ही सकीर्ण थी। बात-बात में उनकी तलवारें चल पडती थी। प्रेमीजी ने प्रस्तुत नाटक की रचना राजपूतो की इन्ही विशेषताओ तथा दुर्बलताओ को लेकर की है।

महाराणा कुम्भा के शासनकाल में मेवाड की शक्ति चरमसीमा पर पहुँच चुकी थी। महाराणा कुम्भा एक बहुत ही पराक्रमी तथा योद्धा होने के साथ-साथ कला प्रेमी भी थे। उनके शासनकाल में ललित कला की भी अभिवृद्धि हुई। उन्होने चित्तौड दुर्ग मे एक 'कीर्ति-स्तम्भ' भी स्थापित किया। परन्तु दुर्भाग्यवश उनके ज्येष्ठ पुत्र ऊदा जी ने मुकुट के मोह मे पडकर अपने पिता के प्राण ले लिए और स्वय मेवाड के सिंहासन पर आरूढ हो गए। ऊदा जी के अनुज रायमल को अपने अग्रज का यह अन्याय सहन नही हुआ। उन्होने सामन्तो तथा प्रजा की सहायता से ऊदा जी से सिंहासन छीन लिया। ऊदा जी पुन शासक बनने के लिए सहायता प्राप्त करने को दिल्ली के लोदी बादशाह की शरण मे पहुँचे। ऊदा जी ने लोदी बादशाह के साथ अपनी पुत्री ज्वाला का विवाह करने का वचन दिया। ऊदा जी के पुत्र सूरजमल को अपने पिता का यह घृणित कार्य सहन नही हो पाता है। वह इसकी सूचना देने के लिए महाराणा रायमल के दरबार मे जाता है।

चित्तौड के दरबार मे महाराणा रायमल अपने तीनो पुत्र सग्रामसिह, पृथ्वीराज तथा जयमल सहित उपस्थित है। महाराणा अपने पुत्रो को बप्पा रावल तथा महाराणा कुम्भा के पद-चिन्हो पर चलने का उपदेश दे रहे है।

इसी समय सूरजमल वहाँ पर आ पहुँचता है और महाराणा को सूचना देता है कि ज्वाला का विवाह दिल्ली के बादशाह के साथ हो रहा है। यह सुनकर महाराणा तथा राजकुमारो का खून खौलने लगता है और वे शीघ्र ही युद्ध की तैयारी मे लग जाते है।

ज्वाला पालकी में बैठकर यमुना स्नान करने के लिए जाती है। मार्ग मे दिल्ली दरबार की नर्तकी यमुना से उसकी मुठभेड हो जाती है। यमुना भिखारनी के वेष मे होती है, परन्तु ज्वाला उसको तुरन्त ही पहिचान लेती है। ज्वाला उसे बांधकर अपनी पालकी मे डाल लेती है। इस प्रकार वह दिल्ली के बादशाह की शक्ति को चुनौती देती है। उधर महाराणा रायमल के तीनो पुत्र तथा सूरजमल सेना लेकर दिल्ली के बादशाह से युद्ध करने के लिए मैदान मे आ डटते है। घमासान युद्ध होता है। दिल्ली नरेश की सेना पराजित होती है। चारो राजकुमार खडे हुये युद्ध के बारे मे बातचीत कर रहे हैं कि इसी समय पुरुष वेष मे ज्वाला भी वहाँ आ पहुँचती है। उसने भी युद्ध मे भाग लिया है। वह अपने पिता ऊदा जी के शव को भी साथ लाती है। ऊदा जी का चित्तौड मे राजवंश के सम्मान के साथ दाह-संस्कार कर दिया जाता है।

एक दिन राव सूरतान की पुत्री 'तारा' वीर वेषभूषा मे सजी हुई तथा व्याकुल नदी तट पर बैठी हुई है। इसी समय पृथ्वीराज वहाँ आ पहुँचता है। दोनो का एक दूसरे से परिचय होता है और वे दोनो एक दूसरे के प्रेम-पाश में बँध जाते हैं। पृथ्वीराज लाल पठान से तोड़ा दुर्ग वापिस छीनने में उसकी सहायता करने का आश्वासन देता है। पृथ्वीराज के कहने पर तारा तथा उसके पिता राव सूरतान जगल की झोपडी को छोडकर मेवाड मे आश्रय ग्रहण कर लेते हैं।

एक दिन महाराणा रायमल की पुत्री के द्वारा ज्वाला का राजमहल में अपमान होता है। वह इस अपमान को सहन नहीं कर पाती है और क्रोध की अग्नि में जल उठती है। वह अपने भाई सूरजमल को भडकाती है और उसे राज्यलिप्सा का नशा चढाती है। राज्यलिप्सा तो राजकुमारो में पहले ही तीव्र थी, पर अब और भी तीव्र हो जाती है। सूरजमल ऊदा जी का पुत्र

होने के क कारण अपने को ही सिंहासन का अधिकारी मानता है। पृथ्वीराज का विश्वास है कि शक्तिशाली को सिंहासन का अधिकारी होना चाहिए। उसका कहना है कि किसी को भी केवल इस कारण सिंहासन का अधिकारी नही होना चाहिए कि वह बडा है।

चारो राजकुमार तथा महाराणा रायमल युवराज पद के अधिकारी का निर्णय कराने के लिए भवानी के मन्दिर मे जाते है। पुजारी महाराणा को मृगासन पर बैठने का सकेत करता है और राजकुमारो के लिए तीन चाँदी की चौकियाँ तथा एक मृगासन बिछा देता है। पृथ्वीराज, सूरजमल तथा जयमल तो चाँदी की चौकियो पर बैठ जाते है और सग्रामसिंह मृगासन पर बैठते है। पुजारी सग्रामसिंह के पक्ष में निर्णय देता है, क्योकि बादशाह मृगासन पर ही बैठता है। पृथ्वीराज इस निर्णय से असन्तुष्ट हो जाता है और वह सग्रामसिंह पर तलवार का वार करता है। महाराणा रायमल उसके वार को अपनी तलवार पर लेकर सग्रामसिंह की रक्षा करते है और पृथ्वीराज को उसकी उदण्डता के लिए राज्य से निर्वासित कर देते है। सग्रामसिंह भी गृह-कलह को बचाने के लिए स्वय ही सिंहासन का मोह त्याग कर राज्य से निर्वासित हो जाता है।

चित्तौड दुर्ग मे तारा तथा ज्वाला दोनो एक दूसरे से व्यग्यपूर्ण बातचीत कर रही है। इसी समय घायल सूरजमल वहाँ आकर उन्हे बताता है कि सग्रामसिंह तथा पृथ्वीराज दोनो ही राज्य से निर्वासित हो गए है। ज्वाला को यह जानकर बहुत हर्ष होता है, परन्तु यह जानकर कि पृथ्वीराज ने जाते-जाते सूरजमल को घायल कर दिया है, ज्वाला प्रतिशोध की ज्वाला मे जल उठती है। तारा इस समाचार से बहुत दु खित होती है और वह राजमहल को छोडकर पुन जगल मे चली जाती है।

इस घटना के पश्चात् मच पर संग्रामसिंह तथा राजयोगी प्रवेश करते है। राजयोगी सग्रामसिंह के द्वारा मेवाड त्याग उचित नही मानते है। उनका विश्वास है कि यदि सग्रामसिंह मेवाड मे रहे तो यह सघर्ष शात हो सकता है। परन्तु सग्रामसिंह मेवाड मे या उससे बाहर रहने मे कोई अन्तर नही समझते है। वे राजयोगी को पूरा विश्वास दिला देते है कि वे कही भी रहे,

परन्तु मेवाड की रक्षा का पूरा ध्यान रखेंगे।

तारा सैनिक वेष में सजी हुई एक पत्थर की शिला पर बैठ कर कुछ गा रही है। इसी समय जयमल वहाँ पर आ जाता है। वह पहले ही उसके रूप और यौवन पर मुग्ध हो चुका था। तारा को अकेला पाकर वह उसे अपनी ओर आकर्षित करने का प्रयत्न करता है, वह बलात् उसे अपनी अकशायिनी बनाने का प्रयत्न करता है, परन्तु इसी समय तारा के पिता राव सूरतान का तीर जयमल के सीने मे लगता है और उसके जीवन का अन्त हो जाता है।

संग्रामसिंह तथा पृथ्वीराज के राज्य से निर्वासित हो जाने के पश्चात् सिंहासन प्राप्ति के लिए संघर्ष और अधिक भयंकर रूप धारण कर लेता है। रानी शृंगार देवी महाराणा रायमल को कुसुम्बा पिला-पिलाकर अपने पुत्र जयमल को राज्य देने के लिए विवश करती है। ज्वाला भी राज्य के लिए यमुना की सहायता से षड्यन्त्र रचती है। वह यमुना को सिखाकर महाराणा रायमल के दामाद (आनन्दी देवी के पति) सिरोही नरेश को अपने प्रेम-पाश मे फँसाकर आनन्दी देवी का तिरस्कार करवाने के लिए भेजती है। दूसरी ओर शृंगार देवी भी महाराणा रायमल को जयमल को युवराज पद देने के लिए विवश कर देती है, परन्तु इसी समय तारा वहाँ आकर उनको जयमल के कुकृत्य तथा उसकी मृत्यु का समाचार देती है। यह सुनकर शृंगार देवी आग-बबूला हो जाती है। वह चाहती है कि राव सूरतान को इसके लिए दण्ड दिया जाय, परन्तु महाराणा रायमल राव सूरतान को पुरस्कार मे जागीर देकर मेवाड के न्याय की रक्षा करते है।

इसी समय पृथ्वीराज दरबार मे आता है और बताता है कि उसने लाल पठान को पराजित करके टोडा का दुर्ग उससे छीन लिया है। पृथ्वीराज तथा तारा महाराणा के चरण स्पर्श करते हैं।

एक दिन ज्वाला राजमहल मे जाकर शृंगारदेवी को भड़काने का प्रयत्न करती है परन्तु उसे सफलता नहीं मिलती है। शृंगारदेवी मे ज्वाला की कपट हो जाती है और ज्वाला को फिर अपमानित होना पड़ता है। शृंगार-देवी पृथ्वीराज के साथ उसकी मा के पास जाकर क्षमा याचना करती है।

संग्रामसिंह वन मे रहकर मेवाड की रक्षा के लिए सैनिक संगठन कर

लेते है। राजयोगी भी उन्हें पूर्ण सहयोग देते है। उन्हें शंका है कि सूरजमल तथा पृथ्वीराज मे तलवार चलेगी और मेवाड मे विदेशियो का पदार्पण होगा। इससे मेवाड की स्वतन्त्रता नष्ट हो जायेगी, परन्तु सग्रामसिंह को अपने सैन्य-सगठन पर विश्वास है, इसलिए उन्हें इसकी लेशमात्र भी चिन्ता नही है। सग्रामसिंह तो अखण्ड भारत का स्वप्न देख रहे है।

सूरजमल मुसलमानो की सहायता से मेवाड पर आक्रमण कर देता है। पृथ्वीराज की तलवार के सामने उनके लिए युद्ध क्षेत्र मे ठहरना भी कठिन हो जाता है। सूरजमल युद्ध-भूमि मे घायल हो जाता है। पृथ्वीराज रात्रि के समय उससे मिलने के लिए उसके शिविर मे जाता है। दोनो प्रेमपूर्वक गले लगकर मिलते है। सग्रामसिंह इस युद्ध की प्रगति को बराबर देखता रहता है। अन्त मे पृथ्वीराज की विजय होती है। सूरजमल को तो इस पराजय से बहुत ग्लानि होती है। उसे अपनी गलती का भी आभास होता है, ज्वाला उसको शान्त नही होने देती है।

उधर सिरोही नरेश यमुना के चक्कर मे फँसकर आनन्ददेवी का तिरस्कार करते है। जब पृथ्वीराज को इसकी सूचना मिलती है, तो वह सिरोही नरेश को जा दबोचता है, परन्तु बहन के द्वारा सुहाग की भिक्षा माँगने पर वह उसे क्षमा कर देता है। दुष्ट सिरोही नरेश दूध मे विष मिलाकर पृथ्वीराज को पिला देता है और पृथ्वीराज की जीवनलीला समाप्त हो जाती है। इस दुर्घटना से महाराणा रायमल तथा शृङ्गार देवी बहुत दुःखी होते है।

सूरजमल महाराणा रायमल को निस्सहाय पाकर मेवाड के सिंहासन पर अधिकार करने का प्रयत्न करता है। महाराणा रायमल सूरजमल के साथ युद्ध करके सब कुछ नष्ट कर डालना चाहते है। राजयोगी भी महाराणा को युद्ध करने के लिए प्रेरित करता है। राजयोगी तथा सग्रामसिंह सूरजमल के पास जाकर उसे समझाने का प्रयत्न करते है और उससे कहते है कि उसे अपना पथ छोडकर सही मार्ग पर आ जाना चाहिए। परन्तु वह शक्ति के मद मे उनकी बात नही मानता है। ज्वाला तो सग्रामसिंह को बन्दी बनाने का निष्फल प्रयत्न करती है।

युद्ध मे सूरजमल पराजित होता है। सग्रामसिंह (भील वेष में) सूरजमल

उन ज्वाला को बन्दी बनाकर महाराणा रायमल के सामने लाते हैं। जब संग्रामसिंह अपने वस्त्रों को उतारकर अपने वास्तविक वेष में महाराणा के सामने आते हैं तो महाराणा फूले नहीं समाते हैं।

ज्वाला तथा सूरजमल भी अपना अपराध स्वीकार कर लेते हैं।

प्रश्न २—नाट्यकला की दृष्टि से 'कीर्ति-स्तम्भ' नाटक की समीक्षा कीजिये?

उत्तर—'कीर्ति-स्तम्भ' एक ऐतिहासिक नाटक है। इसका कथानक मेवाड़ के राज-घराने से सम्बन्ध रखता है। इसमें नाटककार ने उनका विदेशी सत्ता के साथ तथा अन्य भारतीय राजाओं के साथ द्वन्द्व या संघर्ष न दिखाकर उनकी पारस्परिक तथा पारिवारिक कलह का ही भीषण रूप अंकित किया है। यह सम्पूर्ण ऐतिहासिक घटना-चक्र मेवाड़ के प्रसिद्ध वीर 'कुम्भा' के पुत्र रायमल, उदयसिंह तथा विशेषत: उनके पौत्र सूरजमल, जयमल, पृथ्वीराज तथा संग्रामसिंह में तथा कुछ अन्य पारिवारिक व्यक्तियों के मध्य में चलता है। यह संघर्ष भीषण हत्याकाण्ड के उपरान्त अन्त में वीरवर, त्यागी, दूरदर्शी राणा साँगा (संग्रामसिंह) के सतत प्रयत्नों से शान्त होता है। नाटक में संघर्ष की ज्वाला अपने चरमोत्कर्ष पर पहुँच जाती है। इसी से प्रस्तुत नाटक विशेष गतिसम्पन्न, रोचक तथा आकर्षक बन पड़ा है।

नाट्यकला के समीक्षण के लिए निम्नलिखित छः तत्व मान्य हैं :

कथावस्तु, पात्र, कथोपकथन, देशकाल, उद्देश्य एव शैली।

कथावस्तु :

नाटक की कथावस्तु के परीक्षण के लिए गठन, गति, रोचकता और जिज्ञासा, ये चार बातें मुख्य मानी जाती है। किसी भी नाटक की कथावस्तु में इन चार बातों का होना अनिवार्य है।

पर ज्वाला के साथ सम्बन्ध रखने वाला आरम्भिक घटना-चक्र, उद्देश्य से तथा उद्देश्य से सम्बद्ध कथानक से पूर्ण सम्बन्धित नही है। यह बात अलग है कि यदि नाटक का उद्देश्य केवल राज्यलिप्सा न मानकर उसके साथ राजपूतो को युद्ध का व्यसन तथा "आन पर मर मिटने का अभिमान"—मान लिया जाय तो फिर आरम्भिक घटना-चक्र भी सगत माना जा सकता है। पर, जैसा कि भूमिका में स्पष्ट है कि इसका सीधा उद्देश्य "सूरजमल ··· रायमल के तीनो पुत्रो सग्रामसिंह, पृथ्वीराज और जयमल—मे भी युवराज पद पाने के लिए प्रतिस्पर्धा आरम्भ हुई ··· इसी अत कलह का चित्रण प्रस्तुत नाटक है।" वैसे भी आरम्भ के कुछ उद्देश्यो को छोडकर सम्पूर्ण कथानक राज्यलिप्सा से सबन्ध रखता है।

आरम्भिक कथावस्तु के असम्बद्ध तथा असगठित दिखाई देने के कारण आरम्भ मे उसकी रोचकता पर भी आघात पहुँचा है, किन्तु गति और जिज्ञासा मे कोई व्यवधान नही आया है। इसी दृष्टि से नाटक पूर्ण अदोष बन पड़ा है।

नाटकीय ढग को सामने रख नाटक की वस्तु में दूसरी बात देखने वाली होती है "नाटक का आरम्भ।" नाटक की आरम्भिक घटना आकस्मिक होनी चाहिए और वह भी ऐसी, जो आधे नाटक के आरम्भ से पूर्व ही घटित हो चुकी हो। तभी नाटक रोचक तथा जिज्ञासापूर्ण बन पडता है। प्रस्तुत नाटक नाट्यविधान से शून्य है, क्योकि नाटक के आरम्भ में जो वार्तालाप चलता है वह आकस्मिक न होकर स्वय स्थापित और साधारण-सा जान पडता है। इसके साथ ही वहाँ के वार्तालाप में क्रम तथा व्यवस्था भी नही है।

प्रशसा 'कीर्ति-स्तम्भ' की है, पर गीत ध्वजा का गाया जा रहा है, जबकि ध्वज के वहाँ होने का या लहराने का नाटककार की ओर से कोई सकेत भी नही है। इस आरम्भिक भाग को छोड़कर सम्पूर्ण नाटक शृङ्खलाबद्ध, सुगठित, सक्रम और वस्तु के उतार-चढाव, चरमसीमा आदि की दृष्टि से अत्यन्त सफल बन पडा है। नाटक का अन्त भी प्रसादान्त है।

पात्र (चरित्र-चित्रण)

पात्रो का उचित प्रयोग तथा स्पष्ट चरित्र-चित्रण आधुनिक कथा-साहित्य का मुख्य अग है। सख्या की दृष्टि से 'कीर्ति-स्तम्भ' मे पात्र ठीक सख्या में

चुने गये हैं। इतने बड़े संघर्ष-पूर्ण नाटक मे १२ के लगभग पात्र हैं, जिनमें भी प्रधान, जिनका घटना-चक्र के साथ अधिक और गहरा सम्बन्ध है, वे छः ही है—रायमल, संग्रामसिंह, पृथ्वीराज, सूरजमल, शृङ्गारदेवी तथा ज्वाला।

प्रस्तुत सभी पात्र मुख्य कथानक के साथ तथा उद्देश्य के साथ पूर्णतया सम्बद्ध हैं। इनमें से भी 'सूरजमल' को छोड़कर सभी का चरित्र-चित्रण प्रेमी जी की कुशल लेखनी ने अत्यन्त सुस्पष्ट हुआ है। इनमें रायमल देश-भक्त, पूर्वजों में श्रद्धा रखने वाला, वीर, दूरदर्शी, शृङ्गार-प्रिय तथा राजपूती आन पर मर मिटने वाला, पृथ्वीराज साहसी, उद्धत, प्रचण्ड वीर, निडर, कोमल हृदय रखने वाला तथा राज्य-लिप्सु, अदूरदर्शी; संग्रामसिंह दूरदर्शी, त्यागी, वीर, साहसी, देश-हित-चिन्तक तथा धीर, सूरजमल वीर, साहसी, उदार, परन्तु राज्यलिप्सा से अपने धर्म से भी पतित हो जाने वाला तथा देश-द्रोह करने वाला, राज्य-लिप्सु, शृङ्गारदेवी ईर्ष्यालु, कुचाली, विलासस्पृहा, स्वार्थपरता, राज्य प्राप्ति को सर्वस्व समझने वाली, परन्तु समझदार, ज्वाला अग्नि की ज्वाला, अहंकारी, अदूरदर्शी प्रतिस्पर्धा रखने वाली, वीर तथा निडर नारी के रूप में चित्रित की गई है।

ऊपर कहा गया है कि सभी पात्रों का चरित्र-चित्रण अत्यन्त स्पष्ट बन पड़ा है, पर 'सूरजमल' का एक पहलू पूर्ण अस्पष्ट है। मुख्यतया इसके जीवन के दो पहलू हैं—"वीर, राज्यलिप्सु तथा देश-द्रोही।" नाटक मे उसका देशद्रोही रूप पूर्ण अस्पष्ट है, क्योंकि नाटक मे नाटककार ने मुसलमानी बादशाह के पास शरण लेने मात्र से पात्रों के मुख से देशद्रोही कहलाकर उसे देशद्रोही सिद्ध करने का प्रयत्न किया है। किसी को देशद्रोही कहने से कोई देशद्रोही नहीं हो सकता, जब तक किसी घटना के द्वारा उसके स्वरूप पर प्रकाश न डाला जाए। इसमें कहीं भी पात्रों की उक्तियों के अतिरिक्त 'सूरजमल' का यह रूप स्पष्ट नहीं होता। नाटककार का यह चरित्र-चित्रण का ढंग दोषपूर्ण रूप है। इस दोष का कारण है, नाटककार का कलेवर बढ़ जाने के भय से भारी घटनाओं का न लाना। इस बात का स्पष्टीकरण भूमिका से भी हो जाता है।

कथोपकथन

कथोपकथन नाटक का प्राण-तत्व है। नाटक में इसी से गति एव रोचकता आती है और पात्रो का चरित्र-चित्रण होता है। प्रस्तुत नाटक के कथोपकथन इस दृष्टि से अत्यन्त सफल बन पडे है। इस नाटक की प्रत्येक घटना के वे जनक कहलाते है। सघर्ष को तीव्र तथा चरमसीमा पर ले जाने मे ये अत्यन्त सहायक बन पडे है।

नाटकीय दृष्टि से भी ये कथोपकथन सक्षिप्त स्वभावानुकूल, सरल तथा प्रभावशाली है। जैसे पृथ्वीराज के कथोपकथन विद्रोह, असयम, आतक, उद्दडता तथा प्रचण्डता, राणा सागा (सग्रामसिंह) के सयम, धीरता, वीरता, निस्स्वार्थ, निश्छलता तथा शात वृत्ति लिए हुए है।

सम्पूर्ण नाटक मे एक भी कथोपकथन नही, जो कथा की गति को रुद्ध करने वाला हो या प्रभावशाली न हो, पर पुनरावृति अवश्य है। राणा सागा के कथोपकथन छोड कर प्राय. सभी मे राजपूती आन की बार-बार दुहाई दी गई। प्राचीन घटनाओ तथा व्यक्तियो से समानता का या अनुकरण का असगत उद्घोष किया गया है, जिससे नवीनता तथा मौलिकता चाहने वालो की रोचकता पर आघात पहुँचता है। राजपूती आन रखने वालो के लिए ऐसा नहीं लग सकता है।

इन कथोपकथन के सम्बन्ध मे कहने वाली एक महत्वपूर्ण बात यह है कि उनकी भाषा भी पात्रानुकूल है। जैसे मुसलमानी दरबार मे सम्बन्ध रखने वाले हिन्दू आज भी बीच-बीच में उर्दू शब्दो का व्यवहार करते हैं, जो स्थिति के अनुरूप और अत्यन्त उपयुक्त है। पात्रो के कथोपकथन की भाषा भी पात्रो के स्वभाव के अनुकूल है, जैसे पृथ्वीराज अपने पिता से बातचीत करते समय भी अप्रिय, अपमानजनक तथा अन्य स्थानो पर भद्दे शब्दो का व्यवहार करता है। इस प्रकार कथोपकथनो की भाषा अत्यन्त उपयुक्त बन पड़ी है।

देशकाल

देश काल का अभिप्राय यह है कि नाटक में 'देश' और 'काल' के अनुरूप वेश-भूषा, भाषा, रीति-रिवाज, रहन-सहन तथा राजनीतिक, धार्मिक, आर्थिक तथा सामाजिक परिस्थितियों का चित्रण होना चाहिए। जिस नाटक मे इन

उपरोक्त बातो का ध्यान नही रखा जाता, वह देश-काल की दृष्टि से कभी सफल नही कहे जा सकते।

प्रस्तुत नाटक का कथानक मेवाड की अत.कलह से सम्बन्ध रखता है। अत यह नाटक ऐतिहासिक है। पात्रो की वेषभूषा राजपुत जाति के अनुकूल है। भाषा भी सस्कृत पदावली के कारण देशकाल के अनुकूल वन पड़ी है। उपाधियो के नाम-धाम भी देशकाल से सगत है।

राजनीतिक स्थिति का चित्रण अत्यन्त स्पष्ट तथा यथार्थ बन पड़ा है। मेवाड के राजघराने की आन्तरिक अथवा पारिवारिक स्थिति का चित्राकन, जितना पूर्ण तथा सुसगठित इसमे हुआ है, वैसा अन्य किसी नाट्यकृति में मिलना असम्भव है।

राजनीतिक परिस्थति में ऊदा जी का दिल्ली के बादशाह की सहायता पाने के लिए अपनी लडकी "ज्वाला" के विवाह का वचन देना, ज्वाला तथा सूरजमल का इसी कारण उससे विद्रोह करना तथा रायमल, पृथ्वीराज और सग्रामसिंह की सहायता से बादशाह की सेना को पराजित करना, उसी युद्ध में ऊदाजी का अन्त होना, सूरजमल, जयमल, पृथ्वीराज, सग्रामसिंह इन सभी राजकुमारो मे राज्य प्राप्त करने के लिए प्रतिस्पर्धा उत्पन्न होना, स्पर्धा मे जयमल, पृथ्वीराज तथा अन्य अनेको वीरो का अन्त हो जाना। इनका चित्रण अत्यन्त सुन्दर, यथार्थ तथा भव्य वन पडा है। इस प्रकार इसमे राजनीतिक परिस्थिति का यथार्थ तथा भीतरी चित्र अकित हुआ है।

धार्मिक परिस्थिति का चित्रण भी मेवाड-राजस्थान के धार्मिक वातावरण के अनुकूल है। मेवाड मे "एकलिंग" तथा "महामाया" की साधना का विशेष प्रचार है। प्रस्तुत नाटक मे महामाया का ही विशेष साम्राज्य है। यह कहना पड़ेगा कि मेवाड की स्थिति को देखते हुए एकलिंग का—जिसका अधिक प्रचार या पूजन अनिवार्य था—अभाव है।

एक शब्द मे, परिस्थितियो का चित्रण अत्यन्त सुन्दर, यथार्थ तथा भव्य बन पड़ा है।

उद्देश्य :

महान् साहित्यकार सदा महान् उद्देश्य लेकर चलता है, क्योकि वह

किसी भी अवस्था मे समाज के उत्तरदायित्व से मुँह नही मोडता है। वह सदा जाति, देश व समाज के महान् आदर्शो, उच्च विचारो और उद्देश्यो को सामने रखता है। और समाज, जाति तथा देश को उन पर चलने की प्रेरणा देता है। देश की नीव को गहरा सुदृढ बनाता है।

प्रस्तुत नाटक का निर्माण भी इसी उद्देश्य को लेकर हुआ है।

नाटक का उद्देश्य है मेवाड राजघराने के गृह-कलह के भीषण रूप को अकित कर उसकी सकीर्ण राज्य-लिप्सा की दुर्भावना को व्यजित करना, उसका दुष्परिणाम दिखाना और स्वतन्त्र भारत के लोगो को सचेत, सावधान तथा जागृत करना कि वे भी कभी ऐसे सकीर्ण विचारो मे फसकर कही पथभ्रष्ट न हो जाएँ और देश को अवनति के पथ पर न धकेल दें।

उपरोक्त तथ्य का स्पष्टीकरण नाटककार ने कीर्ति-स्तम्भ की भूमिका में भी कर दिया है।

इसके अतिरिक्त नाटककार जिस उद्देश्य को लेकर चला है, उसको लेखक के ही शब्दो मे कह देना असगत न होगा—"राजपूत के समान वीर, साहसी और आन पर प्राण देने वाली जाति ससार में सम्भवत दूसरी नही। लेकिन फिर भी ये गुण राजपूतो को पराधीनता के बन्धन मे बधने से बचा नही सके। इसका कारण उनमे दूरदर्शिता का अभाव, पारस्परिक एकता का न होना एवं अपनी शक्ति को बरबाद करते रहना है।"

"बेटे ने बाप के प्राण लिए, भाई ने भाई का गला काटा। प्रस्तुत नाटक 'कीर्ति-स्तम्भ' गृह-कलह के ऐसे ही ऐतिहासिक घटना-चक्र को लेकर लिखा गया है।"

"सूरजमल के हृदय मे भी मेवाड़ के राजमुकुट का मोह जागा और महाराणा रायमल के तीनों पुत्रो, सग्रामसिंह, पृथ्वीराज और जयमल में भी युवराज पद पाने के लिए प्रतिस्पर्धा आरम्भ हुई। इस अन्त कलह ने भीषण रूप धारण किया। इसी अन्त कलह का चित्र प्रस्तुत नाटक है।" इसी भयानक, विकराल विध्वसपूर्ण कलह को व्यक्त करना नाटककार का उद्देश्य है। राज्य-लिप्सा का परिणाम दिखाना ही उसका लक्ष्य है।

शैली .

'प्रेमीजी' सदा ही अपने नाटकों में भारतीय तथा पाश्चात्य शैलियों को एक साथ लेकर चले हैं। प्रस्तुत नाटक में भी दोनों प्रकार की शैलियों को अपनाया गया है।

प्रस्तुत नाटक में गीतों का प्रयोग, दृश्य-विधान कथा की सुखान्त परिणति भारतीय शैली के ही परिणाम हैं। भारतीय नाटक सदा सुखान्त रहे हैं। उनमें कार्य-सिद्धि अथवा फल-प्राप्ति अनिवार्य है। इस नाटक में भी अन्त-कलह पूर्णतया शान्त हो जाती है और संग्रामसिंह का शान्तिस्थापना का प्रयत्न भी पूर्ण हो जाता है।

दूसरी ओर पाश्चात्य शैली के भी चरम तत्त्व नाटक में अपनाये गये हैं। 'कीर्ति-स्तम्भ' के आरम्भ में, दृश्य परिवर्तन के आरम्भ में स्थान, वस्तु, पात्र, स्थिति आदि का परिचय (Introduction), नाटक का तीन अंकों में विभाजन, संघर्ष के आधार पर वस्तु-विन्यास आदि बातें पाश्चात्य शैली का प्रतिनिधित्व करती हैं। अब शेष और महत्त्वपूर्ण बात है, वस्तुविन्यास की। इस नाटक का वस्तु-विन्यास न भारती ही कहा जा सकता है, न एकदम पाश्चात्य ही। वास्तव में आरम्भ तथा अन्त को देखते हुए पता चलता है कि नाटककार का झुकाव भारतीय शैली की ओर अधिक है। किन्तु न तो आरम्भिक घटना ही सीधी कार्य अवस्था के 'आरम्भ' तत्व से सम्बन्ध रखती है और मध्य में विकास भी अनिश्चित है।

सारांश में नाटक दोषपूर्ण होते हुए भी अत्यन्त सफल तथा महत्त्वपूर्ण बन पड़ा है।

प्रश्न ३—'कीर्ति-स्तम्भ' का नायक आप किसे स्वीकार करते हैं ? सप्रमाण उत्तर दीजिये।

उत्तर—आज से कुछ दिन पूर्व तक यही समझा जाता रहा है कि प्रत्येक कृति में नायक का होना अत्यन्त अनिवार्य है, क्योंकि उनका यह विचार रहा है कि नायक के अभाव में वस्तु-विकास असम्भव और कार्य-सिद्धि अस्वाभाविक है। यह धारणा हिन्दी साहित्य या संस्कृत साहित्य [illegible]

सभी उन्नत भाषाओ के साहित्य में आकडे या गणित के समान बद्धमूल-सी रही है।

यही कारण है कि कुछ दिन पूर्व तक कोई ऐसी कृति नही मिलती, जो नायक-विहीन हो।

यही बात नही, पहले तो वह विचार भी सैद्धान्तिक बना रहा कि प्रत्येक कथानक-युक्त कृति मे नायक के साथ नायिका का या नायिका के साथ नायक का होना आवश्यक है। पर यह विचार तो बहुत दिन पूर्व ही विशाखदत्तकृत मुद्राराक्षस जैसे नाटको मे खडित होकर अन्तिम साँस खीच बद हो गया।

किन्तु "नायक" का विचार अटल नियम बनकर चलता ही रहा। पर आज कुछ विदेशीय औपन्यासिक कृतियो तथा प्रस्तुत नाटक मे आकर यह धारणा भी जर्जरित होती हुई दिखाई देती है।

इस बात को—सक्षेप मे—एक शब्द मे कहना चाहे तो कहा जा सकता है कि "कीर्ति-स्तम्भ" एक ऐसी श्रेणी की कृति है जो एक ही मुख्य व्यक्ति को या नायक को न लेकर एक राजघराने को या उसके व्यक्तियो को लेकर चलती है। क्योकि प्रस्तुत नाटक की कथावस्तु तथा उद्देश्य के साथ सभी भाइयो—सग्रामसिंह, पृथ्वीराज, सूरजमल तथा जयमल—का समान सम्बन्ध तथा अधिकार है। किसी एक को किसी भी आधार पर नायक मानना अस्वाभाविक तथा सिद्धात-विरुद्ध है।

नायक शब्द सस्कृति की "नी" धातु से बना है। जिसका अर्थ है लेकर चलना अर्थात् कथा-वस्तु को तथा कार्य (उद्देश्य) को लेकर चलना। इस बात को दो ओर से सैद्धान्तिक रूप दिया जा सकता है।

एक नायक वह है जो कथानक को और कार्य (उद्देश्य) को लेकर चले। दूसरा नायक वह कहला सकता है, जिसका कथानक के साथ सीधा सम्बन्ध हो और इन दोनो पर अधिकार हो।

ऊपर की दोनो बातें एक ही है। इनके आधार पर चारो भाइयो मे—(जयमल को छोडकर) एक भी पात्र ऐसा नही, जिसका कथानक के साथ तथा उद्देश्य या कार्य के साथ सीधा तथा अधिकारपूर्ण सम्बन्ध न हो।

इसका कथानक मेवाड के राजघराने के पारिवारिक सघर्ष से सम्बन्ध

रखता है। इस कथानक से चारो भाई एक तो परिवार के या अधिकार के नाते सम्बन्ध रखते हैं, दूसरे कहानी को आगे-पीछे चलाने में सभी का पूरा हाथ है। जयमल की बात यहीं समाप्त कर दें, वह नायक तो क्या प्रधान पात्र भी नहीं ठहरता। वह तो एक बार मंच पर आया है, उसके बाद समाप्त हो जाता है।

देखने मे यह आता है कि सारी कहानी पृथ्वीराज के ही चारो ओर घूमती है। मृत्यु तक नाटक की घटनाओ मे वही धुरी है। किन्तु वह भी इसलिए नायक नही हो सकता, क्योकि नाटक के अन्त तक वह जीवित नही रहता।

शेष सूरजमल और संग्रामसिंह, ये दोनों कथानक के साथ समान सम्बन्ध रखते हैं और अन्त तक घटनाओ के जन्मदाता, तथा भोक्ता भी रहते हैं। पर फल की दृष्टि से भी ऐसा दिखाई देता है, जैसे संग्रामसिंह ही उसका भोक्ता बनेगा। यही एक थोड़ी-सी बात उसे "नायक" बनने की ओर इंगित करती है। पर फल-प्राप्ति की बात संकेत मे भी गई-बीती है, अतः अनिश्चित है। जिससे नायक का निर्णय भी संदेह-पूर्ण है। देखने में सूरजमल विरोधी नायक तथा संग्रामसिंह वीरता, धीरता, त्यागी आदि गुणो से युक्त होने से नायक दिखाई देता है, पर धीरता, वीरता, त्याग नायक के लिए अनिवार्य नहीं क्योंकि धीरोदत्त नायक भी होता है, जिसमे ये गुण नही होते। जैसे "प्रसाद" का 'अजातशत्रु।'

इस प्रकार कथानक तथा उद्देश्य की दृष्टि से प्रस्तुत नाटक का कोई भी नायक दिखाई नही देता है। अतः इसको नायक-विहीन नाटक कहें तो कोई अत्युक्ति या अनुचित नहीं।

इसका दूसरा पहलू यदि लें और उस दृष्टि से विचार करें तो संग्रामसिंह ही नायक ठहराया जा सकता है।

(१) एक तो फल प्राप्ति का संकेत संग्रामसिंह की ओर ही है, इसलिए वही उस फल का भोक्ता होने के कारण नायक ठहरता है।

(२) दूसरे यदि गृहकलह की शान्ति स्थापना की दृष्टि से देखा जाये तो [illegible] का कार्य समाप्त करता है, जनता के सामने एक आदर्श [illegible] स्वार्थ, देश-जाति तथा समाज के लिए घातक है। इस [illegible] वह नायक कहलाने का अधिकारी ठहरता है।

इस प्रकार दोनो ही ओर से नाटक के नायक का परीक्षण किया जा सकता है, पर प्रधानतया यह नायक विहीन ही रचना दिखाई देती है।

प्रश्न ४—'कीर्ति-स्तम्भ' रंगमंच की दृष्टि से कहाँ तक सफल बन पड़ा है ?

उत्तर—जहाँ एक ओर साहित्यिकता नाटक के लिए एक आवश्यक गुण है, वहाँ दूसरी ओर उसका अभिनेय तत्व (रगमच) की दृष्टि से सफल होना भी अनिवार्य है। किसी नाटक की पूर्ण सफलता उसके साहित्यिक तथा अभिनीत होने मे है। प्रस्तुत नाटक इन दोनो दृष्टियो से, विशेषकर रगमच की दृष्टि से अत्यन्त सफल बन पडा है।

रगमचीय नाट्यकृति मे निम्न बातें अत्यन्त आवश्यक है। एक तो नाटक की कथा-वस्तु उतनी लम्बी होनी चाहिए, जो सरलता से निश्चित समय के भीतर अभिनीत हो सके। दूसरे रगमच पर न दिखाये जाने वाले दृश्यो दृश्य-रूप मे विधान न कर शून्य रूप मे विधान होना चाहिए। तीसरे, सकलनत्रय का पूर्ण ध्यान रखना। चौथे, पात्रो का निश्चित उपयोग। पाँचवें भाषा का व्यावहारिक रूप मे प्रयोग। छठे, रग-सकेतो का व्यवहार।

प्रथम—प्रस्तुत नाटक की कथा-वस्तु उतनी ही लम्बी रखी गई है, जिसका ठीक दो या अधिक-से-अधिक ढाई घटे के भीतर-ही-भीतर अभिनय किया जा सकता है।

द्वितीय—दो प्रकार की वस्तु नाटक में होती है—एक दृश्य, दूसरी सूक्ष्म। दृश्य वस्तु वह है, जो रंगमच पर विना कठिनाई के दिखाई जा सके। सूक्ष्म वह है, जिसको अभिनीत होते न दिखाकर सूचना मात्र दे दी जाय। जैसे—अग्निकाण्ड, हत्याकाण्ड, युद्ध, स्नान आदि। यह सभी वस्तुएँ रगमच पर न दिखाकर इनकी सूचना मात्र दे दी जाती है, क्योकि इन सब का दिखा सकना रगमच पर असम्भव होता है।

प्रस्तुत नाटक इस दृष्टि से अत्यन्त सफल बन पडा है। इनकी अत्यन्त सफलता का कारण ही पहले तो सूच्य वस्तुओ तथा प्रसंगो का कम से कम प्रयोग, दूसरे नाटककार ने युद्ध आदि दृश्यो की सूचना न देकर उनको पृष्ठ-भूमि मे रखा है। यही प्रेमी जी की रगमच की सफलता का एक

ठोस प्रमाण है। इस कुशलता के कारण ही यह नाटक विशेष रंगमंचीय बन पड़ा है।

तीसरे—जहाँ तक बड़े नाटक में सम्भव है वहाँ तक संकलनत्रय का ध्यान भी पूर्ण-रूपेण रखा गया है। संकलनत्रय में तीन बातें आती हैं—काल, स्थान कार्य। यह नाटक काल की दृष्टि से भी निर्दोष बन पड़ा है, क्योंकि बड़े नाटक के लिए जितना—लगभग पाँच वर्ष का—समय लिया जा सकता है, उतना ही काल प्रस्तुत नाटक के घटना-चक्र का है। चाहे घटना दस वर्ष की इतिहास में क्यों न हो पर समय की सूचना न देकर नाटककार कुशलता से इस दोष से मुक्त हो गया है। बड़े नाटकों में एक ही दृश्य का विधान असम्भव है। फिर ऐतिहासिक नाटकों में तो और भी असम्भव है। प्रस्तुत नाटक में अनेकों दृश्य होते हुए भी एक-एक स्थान के रखे गये हैं। रंगमंच को ध्यान में रखकर नाटकों में एक दृश्य गहरा और एक हल्का रखने का विधान किया है, जिससे अभिनय में बाधा न पड़े और सरलता से दृश्य-विधान होता चला जाए। काल-दोष न होने से कार्य-दोष भी नहीं होता।

चौथे—नाटक में चरित्र-चित्रण तथा रंग-मंच का ध्यान रखकर नाटककार ने नाटक में कम-से-कम पात्रों का प्रयोग किया है। पात्रों की कुल संख्या १७ है, जिनमें जयमल तथा कर्मचन्द का कार्य बहुत कम है। इतने पात्रों द्वारा नाटक का रंगमंच भी खचाखच नहीं भरता है।

पाँचवें—नाटक में भाषा का प्रयोग जन-साधारण के लिए तो अवश्य कठिन कहा जा सकता, किन्तु हिन्दी भाषा-भाषियों के लिए तथा साधारण हिन्दी (हिन्दुस्तानी नहीं) जानने वालों के लिए भाषा का रूप क्लिष्ट नहीं कहा जा सकता। यदि हिन्दी भाषा ज्ञान से शून्य अंग्रेजी बाबू क्लिष्टता की दुहाई दें तो इसमें प्रेमीजी के नाटक की भाषा का कोई दोष नहीं। अभिनय की दृष्टि से भी इसे असफल नहीं कहा जा सकता।

छठे—रंगमंचों का अभिप्राय है, विभिन्न पर्दों के द्वारा दृश्य-विधान। प्रेमी जी ने इस बात का पूरा ध्यान रखा है। उन्होंने वही सादे दृश्य रखे हैं, जिनका रंगमंच से काम चलाया जा सकता है। उदाहरण स्वरूप 'कीर्ति-स्तम्भ' का पहला दृश्य ही ले लें। 'कीर्ति-स्तम्भ' का मंच पर उतना

ही भाग दिखलाया गया है, जितना पर्दे पर चित्रित किया जा सकता है। अन्य सभी दृश्य ऐसे ही सरल है।

इन सभी दृष्टियो से नाटक सफल और सुन्दर बनने पर भी प्रत्येक पात्र के कथोपकथन में बार-बार एक ही राजपूती आन की नीरस बाते कभी-कभी खटकने लग जाती है।

ऊपर के विवरण से यह पूर्ण-रूपेण स्पष्ट हो जाता है कि प्रेमीजी ने प्रस्तुत नाटक को रंगमंच के अनुरूप बनाने के लिए पूरा-पूरा ध्यान दिया है। तभी तो वह इतना अभिनय के योग्य बन पडा है।

प्रश्न ५—"कीर्ति-स्तंभ की शैली, जहाँ एक ओर प्राचीन (भारतीय) शैली से सम्बन्ध रखती है, वहाँ दूसरी ओर, उसमें आधुनिक (पश्चिमीय) शैली का भी प्रतिनिधित्व दिया गया है।" यह कहाँ तक ठीक है?

उत्तर—हिन्दी नाट्य-कृतियो का जन्म, उद्भव तथा विकास उन दिनो हुआ, जिन दिनो संस्कृत का नाटक-साहित्य समाप्ति के गर्भ मे विश्राम ले चुका था। दूसरी ओर पश्चिमीय नाट्य-साहित्य शासन-विस्तार के कारण तथा देश की सीमा-दीवारो के भग्न हो जाने के फलस्वरूप देश-देश के नाटक साहित्य पर अपना नवीन प्रभाव छोड रहा था। इन्ही दिनो नाटक का जन्म हुआ। इसलिए आज का हिन्दी-नाटक-साहित्य भारत मे जन्म लेने के कारण एक ओर भारतीय तथा दूसरी ओर पश्चिमीय नाटक-शैली तत्व लिये हुए है।

प्रेमीजी के 'कीर्ति-स्तम्भ' पर भी इसी कारण दोनो नाट्य-शैलियो तथा निर्माण पद्धतियो का स्पष्ट प्रभाव है।

प्रस्तुत नाटक मे प्राचीन शैली के जो तत्व स्वीकार किए गए है वे निम्न-लिखित है. जैसे, नाटक की सुखान्त परिणति, रसाभिव्यक्ति, कथानक के बीचो-बीच अनुरूप गीतो का प्रयोग, अधिक दृश्यो का विधान।

ये चारो बाते 'कीर्ति-स्तम्भ' मे संस्कृत नाट्य-साहित्य के प्रभावस्वरूप है। संस्कृत नाटको मे फल-प्राप्ति साहित्य का एक अनिवार्य लक्षण है। वहाँ नायक को फल प्राप्ति निश्चित होती है। इसलिए भारत नाट्यशास्त्रियो ने वस्तु-विकास की कार्य-अवस्थाओ में अन्तिम अवस्था "फलागम"—फल का आगम=प्राप्त करना—रखी है। अतः नाटक का सुखान्त होना स्वाभाविक है। 'कीर्ति-

स्तम्भ' में भी नाटक की समाप्ति पर कार्य-सिद्धि, और अंत:कलह की समाप्ति दिखाकर उसे सुखान्त बनाया है। भीषण हत्याकाण्ड और भयानक संघर्ष के उपरान्त दूरदर्शी सग्रामसिंह के सतत प्रयत्नों से अंत:कलह समाप्त होता है और नाटक का घटना चक्र जो दुखान्त परिणति की ओर जा रहा था वह सुखान्त से भी आगे बढ़कर प्रसादान्त रूप ग्रहण कर लेता है। अतएव इस अन्त को सुखान्त कहने के साथ-साथ प्रसादान्त भी कहा जा सकता है। यह भारतीयता का ही प्रसाद है।

दूसरी बात नाटक में जो गृहीत है, वह है रसाभिव्यक्ति। भारतीय नाटक क्या, भारतीय साहित्य सदैव रस का ही अनुगामी रहा है। इस नाटक का प्रधान रस वीर रस है और गौण रस रौद्र रस है। नाटक के आरम्भिक वाक्य तथा घटना से लेकर अन्तिम वाक्य पर्यन्त उत्साह स्थायी भाव का ही साम्राज्य दिखाई देता है। सभी पात्र स्थायी भाव तथा वीर रस के साक्षात् अवतार हैं। प्रस्तुत नाटक में दोनों रसों का पूर्ण परिपाक हुआ है।

संस्कृत नाटक साहित्य में गीतों का अत्यधिक प्रयोग हुआ है। इसका एक कारण है 'रोचकता उत्पन्न करना' या "नाटक में आकर्षण भरना" रंगमंचीय दृष्टि से भी यह अत्यन्त उपयुक्त है। इस आधार पर "कीर्ति-स्तम्भ" में भी सुन्दर, सरस, ओजपूर्ण गीतों का विधान किया गया है। सम्पूर्ण नाटक में कुल पाँच गीत हैं, अतः इनकी भरमार भी नहीं जिससे अस्वाभाविकता का [illegible] हो। दूसरे सभी गीत दृश्य के आरम्भ में रखे जाने के कारण रंगमंच की दृष्टि से [illegible] भी बैठते हैं। पारसी कम्पनियों के तमाशाई नाटक की तरह नहीं। किन्तु एक बात दोषपूर्ण अवश्य है, वह यह कि दो गीतों का प्रयोग—[illegible] [illegible], दूसरे द्वितीय का—असंगत तथा असम्बद्ध है। इनका न तो [illegible] [illegible] [illegible] है न वे पात्रों की स्थिति के अनुरूप हैं। उदाहरण स्वरूप [illegible] गीत [illegible] को देखते हुए घटना या प्रसंग को देखते हुए 'कीर्ति-स्तम्भ' [illegible] [illegible] [illegible] था, किन्तु ऐसा न होने से असंगत तथा असम्बद्ध [illegible] [illegible] [illegible] की बात है।

[illegible] [illegible] के [illegible] आठ-आठ दृश्यों का विधान भी प्राचीन [illegible] है।

२ प्रयत्न—इच्छा की प्राप्ति के लिये किये गये यत्न को प्रयत्न कहते हैं।

३ प्रत्याशा—कार्य-सिद्धि की आशा हो जाना।

४ नियताप्ति—आशा का निश्चय मे बदल जाना।

५ फलागम—फल प्राप्ति हो जाना।

प्रस्तुत नाटक की वस्तु मे न तो एक ऐसी आरम्भिक घटना है जो सीधी उद्देश्य से सम्बन्ध रखती हो।

प्रयत्न अवस्था—सभी भाई राज्य प्राप्ति का प्रयत्न करते हैं। पर तीसरी, चौथी अवस्था कहीं भी व्यवस्थित नहीं।

फलागम मे यदि शान्ति-स्थापना फल हो तो ठीक है। यदि राज्य-प्राप्ति उद्देश्य है तो ठीक नहीं, फल प्राप्ति का संकेत है। जो नाटकीय न होकर कहानी के अनुकूल है।

प्रश्न ६—"ऐतिहासिक नाटक ऐतिहासिक व्यक्तियों एवं घटनाओं को लेकर लिखा जाता है, फिर भी इतिहास और नाटक में कुछ अन्तर आ ही जाता है, क्योंकि नाटककार, कल्पना की कूची से इतिहास के फीके चित्रों में रंग भरकर उन्हें आकर्षित बनाता है।" प्रेमी जी के इस कथन को ध्यान में रखते हुए 'कीर्ति-स्तम्भ' की ऐतिहासिकता का परिचय दीजिए।

उत्तर—भारतीय नाट्यशास्त्र मे नाटक की वस्तु तीन प्रकार की कही गई है .

१ प्रख्यात,

२ उत्पाद्य,

३. मिश्र।

प्रख्यात—वह वस्तु कहलाती है, जो ऐतिहासिक अथवा लोक प्रसिद्ध हो।

उत्पाद्य—वह जो कल्पना-प्रसूत हो।

मिश्रित—वह जिसमे कल्पना तथा इतिहास का सम्मिश्रण हो।

इस प्रकार नाटक की कथा-वस्तु ऐतिहासिक, काल्पनिक तथा मिश्रित तीन प्रकार की हुई। किन्तु विशुद्ध ऐतिहासिक वस्तु-प्रधान नाटक एक भी प्राप्त नहीं हो सकता। सभी ऐतिहासिक नाटकों मे कल्पना का सम्मिश्रण स्वाभा-

विक है। इस आधार पर सभी ऐतिहासिक नाट्य-कृतियाँ मिश्रित ही होती है। यह बात अलग है कि किसी मे कल्पना कम तथा इतिहास अधिक होता हे। विशुद्ध ऐतिहासिक रचना असम्भव है। विशुद्ध काल्पनिक रचनाएँ तो कदापि असम्भव या अप्राप्य नही हो सकती। प्रसाद का "एक घूँट", पत जी की "ज्योत्स्सना" विशुद्ध काल्पनिक 'नाटक' या 'नाटिका' है। अत प्रत्येक नाटक मिश्र ही होता है।

प्रस्तुत नाटक यद्यपि ऐतिहासिक वस्तु पर पूर्णतया आधारित है, फिर भी इसमें कल्पना का प्रयोग भी अवश्य हुआ है। इसी आधार पर इसे विशुद्ध ऐतिहास नाटक की सज्ञा देना असगत है।

इसका अभिप्राय यह भी नही कि नाटक मिश्रित कोटि मे आता है। मिश्रित वह कहलाता है है, जिसमे इतिहास तथा कल्पना का समान प्रयोग हो, पर 'कीर्ति-स्तम्भ' मे ऐसा नही है। उसमें कल्पना का प्रयोग उतना ही हुआ है, जिससे ऐतिहासिक घटनाओ की शृ खला जुड जाय, परस्पर शृ खलावद्ध हो जाय।

पीछे कहा गया है कि किसी नाटक में कल्पना का प्रयोग अधिक होता है, इतिहास का कम और किसी मे इतिहास का अधिक, कल्पना का कम।

इसी दृष्टि से "कीर्ति-स्तम्भ" दूसरी कोटि मे आता है। इसमे इतिहास का प्रयोग अधिक हुआ है और कल्पना का अल्प। 'कीर्ति-स्तम्भ' में काल्पनिक प्रधान घटनाएँ चार के लगभग ही कही जा सकती है। वे है—देहली मे जमुना के तट की घटना, रायमल की पुत्री आनन्द देवी तथा उसके पति के मध्य मे सघर्ष पैदा करके पृथ्वीराज की हत्या का सामान प्रस्तुत कर देने की, आनन्द देवी के पति की मृत्यु की घटना। दूसरी ओर राजयोगी का समस्त घटना-चक्र। सेठ कर्मचन्द के सम्बन्ध की तथा तारा के सम्बन्ध की कहानी पूर्ण काल्पनिक अर्थात् स्वकल्पित है।

घटनाएँ या वस्तु ही नही, जमुना, तारा, राजयोगी और कर्मचन्द आदि पात्र भी ऐतिहासिक न होकर कल्पना-प्रसूत हैं।

इस प्रकार यह समस्त घटनाचक्र काल्पनिक अथवा स्वय-निर्मित है, जिसका नाटक मे प्रधान कहानी के अतिरिक्त कोई महत्वपूर्ण स्थान नही।

इसी से यह अप्रधान काल्पनिक वस्तु नाटक को मिश्रित बनाने की शक्ति नहीं रखती।

इस काल्पनिक घटनाचक्र को छोड़कर सारा नाटक ही भयानक, विकराल, उत्साही, प्रपंची, वीर आदि ऐतिहासिक वस्तुओं से मण्डित है। जैसे ऊदाजी का देहली के बादशाह को ज्वाला के साथ विवाह का वचन देना तथा रायमल के पुत्रों की ऊदा जी तथा बादशाह से लड़ाई, युद्ध में ऊदाजी की मृत्यु, बादशाह की पराजय, रायमल के पुत्रों तथा सूरजमल का राज्य-प्राप्ति के लिए परस्पर संघर्ष, अन्त में संग्रामसिंह द्वारा शान्ति की स्थापना।

ये सभी घटनाएँ 'टाड' के "राजस्थान का इतिहास" से मेल रखती हैं। टाड ने अपने 'इतिहास' में सूरजमल को राणा साँगा का एक स्थान पर चाचा और दूसरे स्थान पर ऊदा जी का पुत्र कहा है।

लेखक ने नाटक में ऐसी नाटकीय सुविधा के कारण तथा घटनाचक्र के साथ संगति बैठाने के कारण पुत्र ही मान लिया है।

इस प्रकार नाटक की प्रधान वस्तु इतिहासप्रधान ही है। इस नाटक में विशेष बात यह है कि

कल्पना-प्रसूत वस्तु का इतिहास की वस्तु के साथ अत्यन्त सुन्दर सम्बन्ध स्थापित हुआ है। यहाँ तक कि काल्पनिक वस्तु भी ऐतिहासिक प्रतीत होती है।

यह सब होते हुए भी काल्पनिक-वस्तु प्रधान वस्तु के नाटकीय सौन्दर्य को बढ़ाने में अत्यन्त सहायक हुई है।

ऊपर के विश्लेषण के आधार पर कहा जा सकता है कि 'कीर्ति-स्तम्भ' एक ऐतिहासिक नाटक है, जिसे कल्पना के विविध-विचित्र रंग-सकेतों से सजाया गया है और वे प्रधान रंगों में अत्यन्त सुन्दर उद्भासित हो रहे हैं।

प्रश्न ७—'कीर्ति-स्तम्भ' नामक नाटक का नामकरण कहाँ तक सार्थक बन पड़ा है? युक्तियुक्त उत्तर दीजिये।

उत्तर—नाटक का नामकरण पाँच प्रकार से किया जाता है। वे प्रकार निम्न हैं—

(१) नायक के नाम के आधार पर जैसे (चन्द्रगुप्त)

(२) नायिका के नाम पर जैसे (राजश्री)

(३) नायक-नायिका दोनों के नाम के आधार पर जैसे (माधवानल-कामकंदला)

(४) घटना के आधार पर जैसे (रक्षा-बन्धन)

(५) स्थान के आधार पर जैसे (कोणार्क)

प्रस्तुत नाटक का नाम 'कीर्ति-स्तम्भ' है। यह "मेवाड" के प्रसिद्ध 'कीर्ति-स्तम्भ" के स्तूप के आधार पर रखा गया है। कीर्ति-स्तम्भ मेवाड के प्रख्यात वीर महाराणा कुम्भा के द्वारा स्थापित एक स्तूप है, जो मेवाड की कीर्ति का अचल स्तम्भ है, जिसका नाम कीर्तिस्तम्भ है।

इसी कीर्तिस्तम्भ के आधार पर इसका नामकरण 'कीर्ति-स्तम्भ' रखा है। अत: इसे स्थान के आधार पर नामकरण के भीतर रखा जा सकता है।

किन्तु ऐसा होते हुए भी नाटक का नाम सार्थक नही कहा जा सकता, क्योकि किसी नाटक के नाम की सार्थकता इसी मे होती है कि वह उद्देश्य के साथ ही आधिकारिक कथा-वस्तु से सीधा सम्बन्ध रखता हो। इस तात्विक बात के आधार पर देखने से पता चलता है कि नाटक का नाम न उद्देश्य के साथ कोई सम्बन्ध रखता है, न मुख्य कथा-वस्तु के साथ।

नाटक का उद्देश्य है, राज्यलिप्सा या राजश्रलिप्सा से उत्पन्न अत कलह। जैसा कि 'युवराज पद पाने के लिये प्रति-स्पर्धा प्रारम्भ हुई। इस अन्त कलह ने भीषण रूप धारण किया। इसी अन्त कलह का चित्रण प्रस्तुत नाटक में है।" भूमिका के इन वाक्यो से स्पष्ट है।

इस उद्देश्य के साथ, उसका सीधा या टेढा, कोई भी सम्बन्ध दिखाई नही देता। क्योकि प्रश्न यहाँ राज्य-प्राप्ति का है, कीर्ति-स्तम्भ का नही यदि स्तम्भ को लेकर—कीर्ति-स्तम्भ नामक स्मारक को ही उद्देश्य रूप मे ग्रहण किया जाता, तब तो नाम सार्थक कहा जा सकता था।

'कीर्ति-स्तम्भ' को छोडकर जब हम घटना पर ध्यान देते है तो भी नाम का कोई सम्बन्ध नही। इस नाटक का घटित कथानक 'कीर्ति-स्तम्भ' के निर्माण के वर्षों बाद का है और वह भी कीर्तिस्तम्भ को लेकर नही चलता है, न ही उसके चारो ओर घूमता है।

घटना तो राज्य-प्राप्ति के चारो ओर घूमती है। उसी के लिए भाई-भाई मे प्रतिस्पर्धा और हत्या का ताण्डव-नृत्य होता है। या दूसरी ओर मान-मर्यादा

को लेकर कथानक चलता है जिसमे ज्वाला की रक्षा के लिये देहली के बादशाह से संघर्ष व ऊदाजी की हत्या का घटना-कांड है। इन सभी बातो से कीर्ति-स्तम्भ नाम पूर्ण असम्बद्ध है। अत इस पक्ष से भी नाम सार्थक नही जान पड़ता।

हाँ, एक बात अवश्य है। वह यह कि यदि नाम को सार्थक ही बनाना हो तो खीचातानी से अवश्य सार्थक कहा जा सकता है। वह खीचातानी इस प्रकार है कि नाटक के आरम्भ मे जब सभी भाइयो मे राज्य-लिप्सा का विचार पनपता दिखाई देता है, तो महाराणा रायमल उसकी भयानकता, दुष्परिणाम तथा अत सघर्ष का ध्यान कर कहते हैं :

"मै तो प्रत्यक्ष देख रहा हूँ कि आकाश से बातें करने वाला जो यह कीर्ति-स्तम्भ है उसकी आधार-शिलाएँ काँप रही है।"

इससे उनका आशय यह है कि यदि तुम स्वार्थ के अधीन होकर राज्य-लिप्सा के लिये सघर्ष करोगे, भाई-भाई की हत्या करोगे तो यह वीरवर महाराणा कुम्भा द्वारा स्थापित 'कीर्ति-स्तम्भ' गिरकर भूमिसात् हो जाएगा। तुम्हें स्वार्थ एव राज्य-लिप्सा को त्यागकर 'कीर्ति-स्तम्भ' की रक्षा करनी चाहिये।

यदि इसी बात को लेकर नाम सार्थक समझा जाये तो फिर "एकलिंग" के हिलने की बात कहकर उसके आधार पर नाम अधिक उपयुक्त था, क्योंकि 'कीर्ति स्तम्भ' की अपेक्षा "एकलिंग" का मेवाड वासियो मे अधिक सम्मान है, अधिक पूज्य है।

यह नाम नाटकीय तथा सगत मानना साहित्य के उचित रूप को विकृत करना है।

अत 'कीर्ति-स्तम्भ' नाम किसी भी दृष्टि से युक्ति-युक्त नही।

प्रश्न न—हरिकृष्ण प्रेमी जी के कीर्ति-स्तम्भ' नाटक के आधार पर राजपूती जीवन की स्तुत्य और निन्द्य बातों का उल्लेख कीजिये।

अथवा

'पारस्परिक एकता और दूरदर्शिता का अभाव होने के कारण राजपूतों ने अपनी शक्ति को गृह-कलह में ही नष्ट कर दिया है।" 'कीर्ति-स्तम्भ' नाटक के आधार पर इस कथन का समर्थन कीजिये।

उत्तर—प्रस्तुत नाटक राजपूतो के गृह-कलह को लेकर लिखा गया है।

इसमें नाटककार ने राजपूतो की देश-भक्ति, स्वाभिमान, न्यायप्रियता, सच्चरित्रता, वीरता, साहस, रणकुशलता, जाति-वशाभिमान, निडरता, दृढप्रतिज्ञा, आस्तिकता, कर्त्तव्यपरायण, अभिवादनशीलता आदि स्तुत्य गुणो एवं राज्य-लिप्सा, अदूरदर्शिता आदि निन्द्य अवगुणो का स्पष्ट चित्रण किया है।

स्तुत्य गुण

(१) देश-भक्ति व स्वतन्त्रता के पुजारी—देश-भक्ति और स्वतन्त्रताप्रियता राजपूतो का सर्वश्रेष्ठ गुण है। वे अपनी मातृ-भूमि की स्वतन्त्रता के लिए अपने प्राणो की आहुति हँसते-हँसते देने मे कभी न चूके, इतिहास इसका साक्षी है। "महाराणा लाखा और महारानी ने नित्य एक-एक करके अपने ग्यारह पुत्रो को रण-सज्जा मे सजाकर, हृदय-रक्त से टीका कर, आरती उतारकर, मुस्कराते हुए वीरगति पाने के लिए रणभूमि मे भेजा था और दिशाओ ने विस्मित होकर देखा था कि उनकी आँखो मे एक भी अश्रु-विन्दु नही झलका। अपनी मातृभूमि की स्वतन्त्रता वेचने वाले महाराणा ऊदा जी का विरोध उनके पुत्र सूरजमल और उनकी पुत्री ज्वाला ने किया और अन्त मे रणभूमि मे उनके प्राणों को सम्भवत. उनकी पुत्री ज्वाला ने ही अपने खड्ग से लिया।" गुजरात और मालवा के बादशाहो की सहायता से मेवाड पर अधिकार करने का प्रयत्न करने वाले सूरजमल भी सग्रामसिंह से कहते है—"गहलोत वश का राजकुमार सूरजमल मेवाड़ के राजमुकुट की प्रतिष्ठा रखने के लिए अपने प्राणो की वाजी लगा देगा, भले ही राजमुकुट उसके सिर पर रहे अथवा किसी दूसरे के।"

राजकुमार पृथ्वीराज राज्य-लिप्सा के कारण महामाया के मन्दिर मे अपने अग्रज सग्रामसिंह पर अपनी खड्ग से वार करता है, परन्तु सकट के समय मेवाड़ के लिए अपने प्राणो का वलिदान दे देने की भावना उसमे वलवती है। सग्रामसिंह मेवाड़ राज्य से स्वय निर्वासित होकर एक भील का जीवन व्यतीत करता है, परन्तु उसे मेवाड की स्वतन्त्रता तथा उसकी प्रतिष्ठा की प्रत्येक क्षण चिन्ता रहती है। यह सकट-काल में अपने वैर-भाव को भुलाकर मेवाड के लिए अपना सर्वस्व अर्पण करने को भी तत्पर है। वह वार-वार सूरजमल और पृथ्वीराज को भी यही समझता है कि यह हमारी पारस्परिक कलह हमारे पतन का कारण वन सकती है। विदेशियो को इससे लाभ हो सकता है।

मातृ-भूमि की स्वतन्त्रता और गृह-शान्ति के लिये वह अपने उत्तराधिकारी होने के अधिकार को भी त्याग देता है। कितनी महान् देश-भक्ति और स्वतन्त्रता-प्रियता का उदाहरण है यह।

(२) वीरता, साहस एव निर्भीकता—राजपूत जाति एक वीर, साहसी एव निर्भीक जाति है। स्वय नाटककार ने कीर्ति-स्तम्भ के आरम्भ मे दिये 'दर्पण' मे लिखा है—"राजपूत के समान वीर, साहसी, आन पर प्राण देने वाली जाति ससार मे सम्भवत दूसरी नही है।" उनके लिये रणभूमि मे मर-मिटना साधारण-सी बात है। युद्ध-भूमि मे तो वे रुद्र से विकराल हो जाते है। उन्हे इस बात की तनिक भी चिन्ता नही कि उनकी विजय हो अथवा पराजय। उन्होने तो युद्ध-भूमि मे शत्रु के सम्मुख मुख मोडना नही सीखा। शत्रु की अपार सेना को देखकर भयभीत होना अथवा निराश होना उन्होने नही सीखा है। प्रस्तुत नाटक के पात्र महाराणा रायमल, सग्रामसिंह, पृथ्वीराज, सूरजमल सभी लगभग महान् वीर है। राजयोगी—"पृथ्वीराज वास्तव मे वीरता मे अद्वितीय है।" तारा—"वह चारो ओर से शत्रुओ से घिर गये, किन्तु उनके शरीर पर किसी शत्रु की तलवार का पहुँच सकना असम्भव था। जैसे गृहो में सिंह सहार लीला करता हुआ निर्द्वन्द्व घूमता है, उसी प्रकार वह शत्रु समूह मे विचरण कर रहे थे। यह दृश्य देखकर मेवाडी सैनिको मे उत्साह का तूफान उमडा, वे भी प्रवल वेग से शत्रु पर टूट पडे।" पृथ्वीराज की वीरता को देखकर कौन ऐसा निर्जीव हृदय होगा कि जो वीररस प्लावित होकर देश के लिये वलिदान देने को तत्पर न हो जायेगा। राजपूत की वीरता केवल वीरता ही नही, वल्कि कायरो की नसो मे भी वीरता का सचार करने वाली है।

राजपूतो मे केवल पुरुष ही नही वल्कि स्त्रियो ने भी अपनी वीरता का आदर्श प्रस्तुत किया है। ज्वाला युद्ध-भूमि मे वास्तव मे ज्वाला ही वन जाती है। अपने पिता ऊदाजी के विरोध मे स्वय युद्ध करती है। तारा अपने पिता राव सूरतान के शत्रु लाल पठान से प्रतिशोध लेने के लिये प्रतिज्ञा करती है। उसे भी अपनी वीरता और तलवार पर विश्वास है। सूरजमल जब गुजरात के वादशाह की सहायता लेकर मेवाड पर आक्रमण करता है तो स्वयं तारा भी पृथ्वीराज के साथ मिलकर युद्ध करती है। पृथ्वीराज की मृत्यु के पश्चात्

वृद्ध महाराणा रायमल को निस्सहाय और शोकमग्न पाकर सूरजमल मेवाड के सिंहासन को प्राप्त करने का प्रयत्न करता है, तब महाराणा अपनी वृद्ध रानी शृगार देवी से कहता है—"ससार देखेगा कि सूर्यवशावतस महाराणा रायमल का जीवन-दीप अन्तिम समय अपने अपूर्व प्रकाश से भगवान् भास्कर को भी चकित कर रहा है। (फर्श पर खडे हुए खड्ग को उठाते हैं) यह खून का प्यासा खड्ग अन्तिम बार रक्त मे स्नान करेगा।" वृद्ध राजपूत की नसो मे भी वीरता का अभाव नही लक्षित होता है।

राजपूतो की वीरता की विशेपता यह है कि उनकी वीरता एक आदर्श वीरता है। वीर रस मे डूबकर वे अपने कर्त्तव्य और धर्म को नही भूलते है। स्त्री पर शस्त्र चलाना उन्होने नही सीखा। इतना ही नही, नि शस्त्र शत्रु पर भी वे वार नही करते। सोते हुये सिंह को भी आखेट करने के लिये जगा लेते है। दिन-भर प्राणघातक युद्ध करने के पश्चात् रात्रि के समय अकेले ही घायल सूरजमल को देखने के लिये शत्रु-शिविर मे जाना, उसकी निर्भीकता के साथ-साथ उनके इस विश्वास को भी पुष्ट करता है कि राजपूत कभी भी धोखे से वार नही करता है और न ही अधर्म युद्ध करता है। पृथ्वीराज सूरजमल से कहता है —"मुझे विश्वास है कि ऊदाजी का पुत्र भी समर-भूमि मे चाहे कितना ही भयकर और निर्मम हो, किन्तु समर-भूमि के बाहर एक स्नेही और ममतामय मनुष्य है। मेवाड का राजमुकुट आदि वह अपने मस्तक पर रखेगा तो किसी पर ओछा प्रहार करके नही, किसी षड्यन्त्र के जोर पर नही, वल्कि खुले मैदान में अपने प्रतिद्वन्द्वी को परास्त कर।"

(३) दृढ-प्रतिज्ञता—राजपूत की प्रतिज्ञा अटूट होती है। वह कुछ भी हो, अपनी प्रतिज्ञा को पूर्ण करने के लिये वडे-से-वडे सकट का सामना कर सकता है। यहाँ तक कि अपने जीवन की आहुति भी दे सकता है, परन्तु अपने शब्दों से वापिस नही फिरता। तारा की लाल पठान से प्रतिशोध लेने की प्रतिज्ञा करना और पृथ्वीराज का भी अपने प्राणो की वाजी लगाकर लाल पठान को परास्त करके और उसका वध करके अपनी प्रतिज्ञा पूर्ण करना राजपूत जाति के दृढ प्रतिज्ञ होने के प्रमाण है।

(४) जातीय अभिमान और स्वाभिमान—प्रत्येक राजपूत को अपनी

जातीय वीरता पर गर्व होता है। वह अपने पूर्वजों की वीरता से ही प्रेरणा प्राप्त करता है और पूर्वजों की प्रतिष्ठा को निष्कलंक रखने के लिये वह अपना सर्वस्व लुटा सकता है। उनके जातीय अभिमान ने ही उन्हें किसी के सम्मुख झुकना नहीं सिखाया। इसी स्वाभिमान के कारण ज्वाला राजमहल में हुये अपमान को सहन न कर सकी और वह सर्वनाश की ज्वाला बन गई। यही स्वाभिमान महाराणा रायमल और ऊदाजी की सन्तान में गृह-कलह का कारण बना। पृथ्वीराज के निर्वासित हो जाने पर वह स्वाभिमान की मूर्ति तारा कहती है—"तारा किसी की कृपा का दान नहीं चाहती, इसलिये उसने निश्चय किया है कि वह चित्तौड़ दुर्ग से आज ही विदा ले लेगी।"

(५) कर्त्तव्यपरायणता एवं न्यायप्रियता—महाराणा रायमल अपने एक पुत्र पृथ्वीराज को तो स्वयं निर्वासित कर देते हैं और संग्रामसिंह स्वयं निर्वासित हो जाता है। इसके पश्चात् वह जयमल को शृंगार देवी के कहने के अनुसार और विवशता की परिस्थितियों में युवराज बनाने के अपने निश्चय को त्याग नहीं सकते हैं। इतना ही नहीं, जब तारा का बलपूर्वक हरण करने के प्रयत्न में जयमल राव सुरतान के द्वारा मारा जाता है, तो महाराणा रायमल क्रोधित होकर व आवेश में आकर राव सुरतान को शृंगारदेवी के हठ के होते हुए भी दण्ड नहीं देते हैं। वह अपने कर्त्तव्य को भली-भांति समझते हैं। वे राजा हैं और राजा को न्यायप्रिय होना चाहिए, यह वे नहीं भूलते हैं। न्याय करने वाले का न्याय करते समय किसी से कोई सम्बन्ध नहीं होता है, यह वे जानते हैं। अपनी न्याय-प्रियता का परिचय देते हुए वे गहलौत वंश को ही नहीं, बल्कि समस्त राजपूत जाति को कलंकित करने वाले जयमल के घातक राव सुरतान को एक जागीर पुरस्कार में देते हैं। यह है सच्चे राजपूत की आदर्श न्याय-प्रियता, जो न्याय आसन पर बैठकर अपने पुत्र के हत्यारे को भी पुरस्कार देते हैं।

(६) आस्तिकता—राजपूत जाति भगवान् पर विश्वास करने वाली है। कीर्ति-स्तम्भ नाटक में राजपूतों को 'महामाया' का भक्त दिखाया गया है। महामाया के पुजारी राजयोगी का भी सभी सम्मान करते हैं। महाराणा रायमल चारों राजकुमारों को साथ लेकर युवराज-पद का निर्णय कराने के

लिये महामाया के मन्दिर में जाते है। युद्ध-भूमि में शत्रु से भिड़ते समय वे एकलिंग पर पूर्ण विश्वास रखते है। वे एकलिंग और रणचन्डी के पक्के भक्त है।

निन्द्य अवगुण :

(१) राज्यलिप्सा—'कीर्ति-स्तम्भ' नाटक मे नाटककार ने यह स्पष्ट चित्रित किया है कि राजपूत जाति के इतने अधिक वीर और देशभक्त होने पर भी उनमें एक बहुत बडा दोष है—राज्यलिप्सा। यही राज्यलिप्सा उनकी बरबादी का कारण बनी। प्रेमीजी के शब्दो मे—"यह कलह केवल पडौसी राज्यो तक ही सीमित नही रही बल्कि एक ही राजकुल के व्यक्ति मुकुट-मोह मे पडकर एक-दूसरे के खून के प्यासे बन गये। बेटे ने बाप के प्राण लिये, भाई ने भाई का गला काटा ' ''।" ऊदाजी अपने पिता महाराणा कुम्भा की हत्या करके सिंहासनारूढ हुए। ऊदाजी के अनुज महाराणा रायमल ने पिता के हत्यारे भाई को पराजित कर स्वय सिंहासन पर अधिकार किया। ऊदाजी राज्य-प्राप्ति की आशा में दिल्ली के लोदी बादशाह की शरण में गये। स्वय ऊदाजी के पुत्र सूरजमल व उनकी पुत्री ज्वाला ने अपने पिता के इन कुकृत्यो का विरोध किया और सम्भवत. स्वय ज्वाला की खड्ग ने ही अपने पतित पिता के प्राण लिये। इसके पश्चात् सग्रामसिंह, सूरजमल, पृथ्वीराज और जयमल मे राज्य-लिप्सा जागृत हुई और यही राज्यलिप्सा गृह-कलह का कारण बनी। इसी राज्य-लिप्सा मे डूबकर सूरजमल ने गुजरात के बादशाह से सहायता प्राप्त की। हाँ, सग्रामसिंह को नाटककार ने इस राज्य-लिप्सा के दोष से मुक्त रखा है।

(२) अदूरदर्शिता—सग्रामसिंह को छोडकर अन्य सभी राजकुमारो व ज्वाला मे दूरदर्शिता का अभाव है। रदूरदर्शिता के अभाव के कारण ही उन्होने वे कार्य किये जिनसे देश और जाति को बहुत हानि पहुँची। राजपूतो की शक्ति बहुत क्षीण हो गई। अदूरदर्शिता के अवगुण ने ही उन्हें परतन्त्रता की बेडियो में बाँधा।

(३) पारस्परिक एकता का अभाव—राजपूतो में पारस्परिक एकता का अभाव रहा है। इसका कारण उनका स्वाभिमान है। आपसी फूट के कारण ही विदेशी शक्तियाँ राजपूत जाति को पराजित कर सकी।

वास्तव में राजपूत जाति के विषय मे प्रेमीजी के ये शब्द अक्षरश सत्य है—"राजपूत के समान वीर, साहसी, आन पर प्राण देने वाली जाति ससार मे सम्भवत दूसरी नही है, लेकिन फिर भी ये गुण राजपूतो को पराधीनता के बधन मे बँधने से नही बचा सके। इसका कारण उनमे दूरदर्शिता का अभाव, पारस्परिक एकता का न होना एव अपनी शक्ति को पारस्परिक कलह मे बर्बाद करते रहना है।"

प्रश्न ६—प्रेमी जी की 'कीर्ति-स्तम्भ' नाटक लिखने की मूल प्रेरणा का उल्लेख कीजिये।

अथवा

"प्राचीन इतिहास हमारी शक्ति और दुर्बलता का दर्पण है। मैंने बार-बार यह दर्पण अपने देशवासियों के सम्मुख रखा है"। नाटककार की यह उक्ति 'कीर्ति स्तम्भ' के सम्बन्ध में कहाँ तक चरितार्थ होती है?

उत्तर—हरिकृष्ण प्रेमी के लगभग सभी नाटको मे राष्ट्रीय जागरण की भावना ओत-प्रोत है। प्रेमीजी स्वय स्वतन्त्रता के पुजारी है। उन्होंने साहित्य मे गाधीवाद को अपनाया और भारतवर्ष के परतन्त्रता काल में जो स्वतन्त्रता सग्राम चला, उसमें उन्होंने सक्रिय भाग लिया। अपनी रचनाओ के द्वारा उन्होंने भारतवासियो के सम्मुख भारत के प्राचीन गौरव को रख उन्हे जागृत किया और उनकी नसो मे देशभक्ति, साहस, वीरता और त्याग की भावनाओं का सचार किया। उनको स्वतन्त्रता के यज्ञ मे आहुति देने के लिये ललकारा। अपनी इन रचनाओ के कारण उन्हे कई बार कारावास में रहकर ब्रिटिश सरकार की यातनाओ को सहना पडा। परन्तु ये सब बातें उन्हे अपने पथ से विचलित न कर सकी और उनके हृदय में देश-प्रेम की भावना और बलवती होती गई। अन्त में १५ अगस्त सन् १९४७ ई० को हम स्वतन्त्र हुए। परन्तु भारत [illegible] साम्प्रदायिकता की भावनाओं में जकड [illegible] के पश्चात् हमें चुकाना पडा। लाखों हिन्दू और मुसल-मान [illegible] के शिकार हुए। इतना ही नहीं, राष्ट्रपिता महात्मा गांधी [illegible] देनी पडी। प्रेमीजी का हृदय यह देख-[illegible] के कारण और अपनी स्वार्थपरता

श्रोर नेता बनने की इच्छा के कारण ही हमारी शताब्दियो के सघर्ष के पश्चात् प्राप्त स्वतन्त्रता का यह नवोपार्जित पौधा मुरझा न जाय। विदेशो मे भी अपनी ध्वंसक शक्ति की वृद्धि करने के लिये वैज्ञानिक परमाणु बम, उद्जन बम एव इसी प्रकार के अनेक शास्त्रो का निर्माण करने मे लगे हुए है, यह देखकर प्रेमी जी ने स्वतन्त्रता की रक्षा करने के लिये भारतवासियो को उनकी इस स्वार्थपरता, नेतृत्व की भावना और गृह-कलह के कुपरिणामो से परिचित कराकर उन्हे सन्मार्ग पर लाना आवश्यक समझा। इस उद्देश्य की पूर्ति के लिये उन्होने 'कीर्ति-स्तम्भ' नाटक की रचना की।

प्रेमीजी ने स्वय लिखा है—"मैने नाटको की रचना निरुद्देश्य नही की है। भारत सदियो की पराधीनता के पश्चात् स्वतन्त्र हुआ है और अब इसे नवार्जित स्वतन्त्रता की भी रक्षा करनी है एव राष्ट्र को सुखी, समृद्ध और शक्तिशाली भी बनाना है। प्राचीन इतिहास हमारी शक्ति और दुर्बलता का दर्पण है। मैने बार-बार यह दर्पण अपने देशवासियो के सम्मुख रखा है ताकि हम अपने देश के अतीत को देखकर व्यक्तिगत, सामाजिक एव राजनीतिक जीवन से उन दुर्बलताओ को दूर करें जिन्होने हमे पराधीनता के पाश मे बाँधा, उन गुणो को ग्रहण करें जिन्होने हमे अभी तक जीवित रखा और फिर स्वतन्त्र किया तथा उन गुणो का विकास करें जिनकी राष्ट्र के नवनिर्माण मे अपेक्षा है।"

प्रेमीजी के उपर्युक्त शब्दो से उनकी प्रस्तुत नाटक रचने की प्रेरणा पर पूर्णरूप से प्रकाश पडता है।

वास्तव मे 'कीर्ति-स्तम्भ' के नाटक के कथानक-काल की परिस्थितियो से आज की हमारी परिस्थितियो का पूर्णरूप से मेल खाता है। राज्यलिप्सा पूर्ण करने के लिये ऊदाजी ने अपने पिता कुल-गौरव महाराणा कुम्भा का सिर काटा और ऊदाजी के पुत्र सूरजमल तथा महाराणा रायमल के पुत्रो में भी सिहासन प्राप्ति के लिए सघर्ष हुआ। भाई ने भाई के ऊपर घातक प्रहार किया। वही दशा हमारी आज भी है। आज भी पुत्र पिता का और भाई भाई का रक्त पीने को उतारू है। समाज मे शोषण का कठोर सघर्ष चल रहा है। हम अपने कर्त्तव्य से विमुख हो रहे है। यहाँ आज प्रत्येक व्यक्ति नेता बनना चाहता, प्रत्येक की इच्छा मत्री बनने की है और अपनी इच्छा की पूर्ति के लिए देशद्रोह

व विश्वासघात करना भी हमारे लिए ऊदाजी की भांति साधारण सी बात हो गई है। परन्तु प्रेमीजी ने इन समस्त भावनाओं के कुपरिणामों को हमारे सम्मुख रखकर हमें सग्रामसिंह बनने के लिए उत्तेजित करने का प्रयत्न किया है। हममें सग्रामसिंह की तरह त्याग की भावना होनी चाहिए। स्वतन्त्रता की रक्षा के लिए अपना सर्वस्व स्वाहा कर देना चाहिए। मातृ-भूमि की रक्षा की भावना हममें सर्वोच्च होनी चाहिए। हमें अखण्ड भारत का स्वप्न देखना चाहिए और अपनी प्रान्तीयता तथा साम्प्रदायिकता की सकीर्ण भावनाओं से अपने मस्तिष्क को दूषित होने से बचाना चाहिए। कर्त्तव्यपथ से बड़े-से-बड़े सकट में भी विचलित नहीं होना चाहिए।

प्रेमीजी ने बड़े-बड़े अधिकारियों को भी उनके कर्त्तव्य के प्रति जागरूक करने के लिए महाराणा रायमल के न्याय का उदाहरण उनके सम्मुख प्रस्तुत किया है। न्याय के आसन पर बैठकर प्रत्येक व्यक्ति को महाराणा रायमल की भाँति निष्पक्ष होना चाहिए, जो अपने पुत्र के हत्यारे को भी जागीर पुरस्कार में देता है।

प्रश्न १० - श्री हरिकृष्ण प्रेमी के नाटक 'कीर्ति-स्तम्भ' के गीतों की विवेचना करते हुए बताइए कि वे कहा तक उचित तथा अवसरानुकूल हैं।

उत्तर—आरम्भ से नाटक का सगीत के साथ घनिष्ट सम्बन्ध रहा है। हिन्दी नाटकों में ही नहीं सस्कृत नाटकों में भी गद्य सवाद के साथ-साथ पद्यमयी अभिव्यक्ति के लिए गीत का आश्रय लिया गया है। नाटक यथार्थ जीवन से बहुत अधिक सम्बन्धित ही नहीं है, अपितु यह कहना भी अनुचित नहीं होगा कि नाटक जीवन का अनुकरण है, इसीलिए कथा में जब कभी परिस्थितिवश पात्र के हृदय में तरलता उत्पन्न होती है तो वह गीत का रूप धारण कर लेती है। नाटकीय स्थिति में यथार्थता और सरसता लाने के लिए नाटकों में गीतों का समावेश होता रहा है। हिन्दी के नाटकों में भी भारतेन्दु जी से लेकर प्रसाद जी के नाटकों तक गीतों का समावेश हुआ है। परन्तु अब गत कुछ वर्षों से हिन्दी नाटककारों ने भी पाश्चत्य नाटकों की भाँति अपने नाटकों में शुद्ध गद्य का प्रयोग किया है। परन्तु वास्तविकता तो यह है कि सगीत के अभाव में नाटक अपूर्ण रह जाता है। जब तक नाटक में सगीत न

होगा, तब तक रगमंच पर वह नीरस दिखाई देगा।

'कीर्ति-स्तम्भ' नाटक के लेखक श्री हरिकृष्ण प्रेमी केवल एक प्रसिद्ध नाटककार ही नही, बल्कि एक विख्यात कवि भी है। प्रेमीजी के काव्य का प्रधान विषय-रहस्य-भावना तथा राष्ट्र-प्रेम रहा है। उनके राष्ट्रीय गीत अनुकूल वातावरण की सृष्टि मे विशेष रूप से सहायक होते है। गीतो के द्वारा तो प्रेमीजी अपने पात्रो को दर्शको के बहुत ही निकट लाने का प्रयत्न करते है।

'कीर्ति-स्तम्भ' नाटक के सभी गीतो की रचना एक ही उद्देश्य से की गई है। नाटक में गीतो की अधिकता से कथा की गति मे बाधा पडती है। इसी कारण लेखक ने प्रस्तुत नाटक मे केवल उन्ही स्थलो पर गीतो की योजना की है जहाँ पर उनकी आवश्यकता थी। लेखक ने इस बात का विशेष ध्यान रक्खा है कि जहाँ नाटक का वातावरण अधिक शुष्क और बोझिल होता हुआ सा प्रतीत होता है, वही पर उन्होने गीत के द्वारा सरसता उत्पन्न करने का प्रयत्न किया है।

प्रस्तुत नाटक मे लेखक ने पाँच गीतो की रचना की है। प्रथम गीत—"झंडा ऊँचा रहे हमारा। ..." से ही नाटक का आरम्भ होता है। चित्तौड दुर्ग मे अनेक सैनिक मिलकर यह गीत गाते है। गीत की लय सामूहिक स्वर के अनुकूल है। भाषा मे सरसता तथा ओज है। प्रस्तुत गीत मे केसरिया ध्वज की वन्दना है और मेवाड के पूर्वजो की वीरता का वर्णन है। इस गीत से उत्साह और उल्लासमय वातावरण की सृष्टि हुई है। आरम्भ में ही यह गीत एक दम दर्शको के ध्यान को अपनी ओर आकर्षित कर लेता है। यह दर्शको मे भावी सघर्ष के लिए उत्साह का सचार भी करता है।

दूसरा गीत—"रहा है हृदय यह अकेला-अकेला........." नाटक के प्रथम अक के पाँचवे दृश्य में पृष्ठ ३२ पर है। राव सूरतान की एकमात्र पुत्री तारा नदी तट पर बैठी हुई चाँदनी रात्रि में यह गीत गाती है। इस गीत से बहुत ही कोमल तथा भावपूर्ण परिचय प्राप्त होता है। तारा के हृदय की पीडा इस गीत मे मुखरित हो रही है। तारा एक वीर राजपूत

युवती है। वह पुरुषवेश में अपना जीवन व्यतीत करती है। अभी इसके हृदय में प्रेम का प्रवेश नहीं हुआ है। उसे किसी की प्रतीक्षा विकल कर रही है। चाँदनी रात्रि में गाया गया यह गीत नाटकीय वातावरण की सृष्टि में बहुत सहायक होता है। जब तारा इस गीत की अन्तिम कड़ी को गाती है, उसी समय महाराणा रायमल का द्वितीय पुत्र पृथ्वीराज वहाँ पर आ जाता है। वह केवल इतना सुन पाता है कि—"प्रतीक्षा किसी को विकल कर रही है।"

पृथ्वीराज जैसे वीर के लिए यह दुस्साहस का उचित अवसर होता है और गीत उसके अनुकूल भूमिका बना देता है।

तीसरा गीत—"जय भगवति देविनमो वरदे........." नाटक के प्रथम अंक के सप्तम दृश्य में है। यह गीत भवानी के मंदिर में रात्रि के समय देवि की स्तुति में गाया जाता है। यह गीत प्रेमीजी की स्वयं की रचना न होकर भगवती स्तोत्र के तीन श्लोक हैं। नाटककार ने अवसर के अनुकूल ही इस वन्दना का प्रयोग किया है। भवानी राजपूतों की आराध्य देवी है। इसीलिए भवानी की यह स्तुति परम्परागत ही ली गई है। नाटकीय दृष्टि से इस स्तुति ने जिस भक्तिमयी पीठिका का निर्माण किया है उसके पश्चात् रायमल का प्रवेश दर्शकों के मन में भी एक सात्त्विक भावना का संचार करता है। भवानी के मन्दिर में राजयोगी और महाराणा रायमल में जो वार्तालाप होता है वह इस वातावरण के अभाव में फीका दिखाई देता है। भवानी के द्वारा राजकुमारों का निर्णय कराने के लिए देवी की वन्दना करना आवश्यक था।

चौथा गीत दूसरे अंक के तीसरे दृश्य के आरम्भ में ही पृष्ठ ७७ पर है। यह गीत तारा रात्रि के समय एक शिला पर बैठकर गाती है। तारा के पहले गीत और इस गीत में बहुत अन्तर है। पहले गीत में तो उसे यही शिकवा था कि उसके हृदय में किसी के प्रति प्रणय नहीं है, परन्तु इस गीत में तो वह गाती है—

निराशा की निशा कटती,
प्रतीक्षा की न कट पाती।

गीत की भाषा मार्मिक है। इसमें तारा का मूक-प्रणय मुखरित हो रहा

है। वह बडी व्याकुलता से अपने साजन की प्रतीक्षा कर रही है। परन्तु उसका दुर्भाग्य कि प्रथम गीत की समाप्ति पर पृथ्वीराज का प्रवेश हुआ था और तारा उसके प्रेम-पाश में वँध गई थी, परन्तु इस अवसर पर गीत की समाप्ति पर जयमल का प्रवेश होता है। वह तारा के सौंदर्य पर मुग्ध होकर उचित तथा अनुचित को भूलकर उसे वलात् अपनी भुजाओ मे दवाना चाहता है। इसके परिणाम स्वरूप जयमल की जीवन लीला का अन्त रावं सूरतान के एक ही तीर से हो जाता है। इस गीत से तारा की मनोदशा का अच्छा परिचय प्राप्त होता है। विरह की व्याकुलता मे एकात घडियो मे एक अवाञ्छित पुरुष का प्रवेश उसे उत्तेजित करने के लिए पर्याप्त होता है।

पाँचवाँ गीत नाटक के तृतीय अक के पाँचवे दृश्य में पृष्ठ १३४ पर है। यह गीत पाँचवें दृश्य के आरम्भ में ही है।' ज्वाला सध्या समय अकेली खडी हुई इस गीत को गा रही है। इससे उसके अन्तर की भावनाएँ व्यक्त होती है। वह गाती है—

प्रसूनो को जला दूंगी,
प्रलय की आग बनकर मैं।

ज्वाला को तो जलाने के अतिरिक्त और कुछ आता ही नही है, इसीलिए वह और गा ही क्या सकती है? परन्तु अग्नि की इन चिनगारियो के लिए वह स्वय भी निर्दोष है। जलाने और मिटाने की भावना तो उसकी प्रतिशोध की भावना है। उसकी इस पक्ति से यह स्पष्ट है—

पिलाया विष मुझे जग ने,
वही तो मैं उगलती हूँ।
डसूँगी अब मनुजता को,
भयानक नाग बनकर मैं।

यह अन्तिम गीत बहुत ही उग्र तथा तीव्र है। वास्तव में ऐसा ही गीत ज्वाला के स्वभाव तथा उस अवसर के अनुकूल है। इस गीत से ज्वाला के चरित्र पर भी पर्याप्त प्रकाश पडता है।

अन्त में कह सकते है कि 'कीर्ति-स्तम्भ' नाटक के गीत उचित एव नाटकीय अवसर के अनुकूल है।

प्रश्न ११—निम्नलिखित पात्रों का चरित्र-चित्रण करो—

महाराणा रायमल, संग्रामसिंह, पृथ्वीराज, सूरजमल, ज्वाला, तारा, शृंगारदेवी।

उत्तर—महाराणा रायमल

महाराणा रायमल मेवाड़ के यशस्वी महाराणा कुम्भा के पुत्र हैं। पिता ने उन्हे देश निर्वासन का दण्ड दिया था परन्तु जब उनके अग्रज ऊदाजी ने अपने पिता की हत्या कर राजमुकुट धारण किया, महाराणा रायमल ने समान्तों की सहायता से अपने अग्रज को परास्त कर मेवाड़ का सिंहासन प्राप्त किया। वे देशभक्त, स्वतन्त्रता प्रेमी, वीर, साहसी, निर्भीक, प्रजा को पुत्रवत् समझने वाले तथा वात्सल्य से ओत-प्रोत होने के साथ-साथ न्यायप्रिय भी हैं। उन्होंने राजपूती मर्यादा को स्थिर रखना और अपनी आन पर मरना सीखा है। वास्तव मे वे सच्चे गहलौत है। अपने पूर्वजो बप्पा रावल और महाराणा कुम्भा पर उन्हे गर्व है और वे भी उनका ही अनुकरण करना चाहते है। इन सभी गुणो के साथ-साथ उनका एक गुण रसिकता भी है।

देशभक्त एव स्वतन्त्रता प्रेमी—मेवाड उनकी जन्मभूमि है। मेवाड़के अतीत पर उन्हे गर्व है, परन्तु साथ ही उन्हे मेवाड के भविष्य की चिन्ता सदैव व्याकुल रखती है। नाटक के प्रथम अक के प्रथम दृश्य मे ही अपने पुत्रों से कहते हैं, "मै तो प्रत्यक्ष देख रहा हूँ कि आकाश से बातें करने वाला जो यह कीर्ति-स्तम्भ! खड्ग से मेवाड-राज्यलक्ष्मी की माग मे अखण्ड सिंदूर भरने वाले पूज्य पिताजी महाराणा कुम्भा ने खडा किया है, उसकी आधार शिलायें कांप रही हैं। जिस प्रकार घोर शीतकाल की रात्रि मे निर्धन नग्न व्यक्ति की कृश काया थर-थर कापती है उसी प्रकार आज कीर्ति-स्तम्भ की शिलाएँ कांप उठी है।" मेवाड की स्वतन्त्रता की रक्षा के लिये ही वे दिल्ली के लोदी बादशाह की अपनी सेना से कई गुना बडी सेना से भिड जाते है और उसे परास्त कर देशद्रोही ऊदा का भी अन्त कर देते है। उन्हे यह भी सहन नही कि विदेशियो की सहायता लेकर देशद्रोही सूरजमल बप्पा रावल की पवित्र गद्दी पर बैठे। "रायमल के खड्ग का प्रचण्ड प्रहार हत्यारे ऊदा के पुत्र को भी जिसने एक दिन जन्मभूमि के प्रेम का स्वाग रचा था, किन्तु जो अब अपने पिता के

पद-चिन्हो पर तेजी से भाग रहा है, गद्दी पर नही बैठने देगा। रायमल के पुत्रो ने ऊदाजी की काली करतूतो का दण्ड उसे दिया है, किन्तु आज उनके न रहने पर प्रपची भेड़िये मस्तक उठाने लगे है। आज अपने नौजवान पुत्रो के अभाव में इस बूढे सिंह को इनका कलेजा फाडना होगा।" महाराणा रायमल के इन शब्दो मे उनका स्वार्थ नही, बल्कि मेवाड के प्रति उनका अनुराग बोल रहा है। वे वृद्धावस्था में भी मेवाड के सिंहासन की पवित्रता की रक्षा करने के लिये अपना सर्वस्व न्योछावर करने को प्रस्तुत है। वे नही चाहते कि किसी भी विदेशी के पग से उनकी मातृभूमि अपवित्र हो। चू कि सूरजमल गुजरात और मालवा के बादशाहो की सहायता से मेवाड के सिंहासन को प्राप्त करने का प्रयत्न कर रहा था, इसलिये यह महाराणा को कैसे सहन होता, यद्यपि उस समय प्रकट उत्तराधिकारी केवल सूरजमल ही था।

वीर एव साहसी—महारणा रायमल एक महान् वीर और अदम्य साहसी व्यक्ति है। नाटक के आरम्भ मे ही वे अपने पुत्रो से कहते है— "साहस और शौर्य तो सिसोदिया रक्त के स्वाभाविक गुण हैं"। कुल-कीर्ति को अक्षुण्ण रखने के लिए दिल्ली के लोदी बादशाह से युद्ध करना उनके साहस और शौर्य का प्रत्यक्ष उदाहरण है। युद्ध-भूमि मे घायल हो जाने पर भी युद्ध-भूमि मे जाने की उनकी प्रबल इच्छा होती है। और जब राजयोगी उन्हे विश्राम करने के लिए कहते है तो महाराणा कहते है—"विश्राम! मेवाड़ के महाराणा के लिए असम्भव है। जिस समय सहस्रो मेवाडो वीर रण-भूमि मे अपने प्राणो की आहुति दे रहे है, उस समय मेवाड का महाराणा कायर बनकर अपने डेरे मे मुँह छिपाये बैठा रहे, यह नही हो सकता। मेवाड के महाराणा के शरीर का अन्तिम रक्त-बिन्दु भी अपने साथियों के रक्त में सम्मिलित होने को लालायित है।" महाराणा के इन शब्दो से कितना महान् शौर्य प्रकट होता है—"इस समय मेरा स्थान वहाँ है, जहाँ सहस्रो तलवारें आकाश मे चकाचौध पैदा कर रही है।" महाराणा रायमल के दो पुत्र पृथ्वी-राज और जयमल तो महाकाल की भेंट चढ चुके हैं और सग्रामसिंह स्वेच्छा से निर्वासित हो जाता है और अब उसका महाराणा को कोई पता नही कि वह कहाँ है। वृद्ध महाराणा की ऐसी निस्सहाय अवस्था मे सूरजमल विदेशियो

की सहायता से मेवाड़ के सिंहासन की प्राप्ति के लिए प्रयत्नशील है, तब महाराणा रानी शृंगार देवी से कहते हैं—"संसार देखेगा कि सूर्यवंशावतंस महाराणा रायमल का जीवन दीप अन्तिम समय अपने अपूर्व प्रकाश से भगवान् भास्कर को भी चकित कर रहा है। (फर्श पर पड़े हुए खड्ग को उठाते हैं) यह खून का प्यासा खड्ग अन्तिम बार खून में स्नान करेगा।" महाराणा के इन शब्दों में उनकी महान् वीरता और साहस के दर्शन होते हैं।

कुल गौरव पर गर्व—महाराणा रायमल को अपने गहलौत-वंश की वीरता और साहस पर गर्व है। बप्पा रावल और महाराणा कुम्भा ही उनके आदर्श हैं। अपने कुल का गौरव ही उन्हें यशस्वी और महान् बनाने में सहायक हुआ है। उन्हें सदैव उसी गौरव को बनाये रखने की लालसा और चिन्ता रहती है। "बप्पा रावल के वंशज कुल-कीर्ति को अक्षुण्ण रखने के लिए सर्वनाश के मुँह में कूदना अपना कर्त्तव्य समझते हैं। कुछ भी हो, ज्वाला का दिल्लीपति से विवाह रोकना ही पड़ेगा।" महाराणा के द्वारा कहे गये इन शब्दों से स्पष्ट हो जाता है कि उन्हें अपने कुलगौरव पर कितना गर्व है और उसको बनाए रखने की कितनी चिन्ता है। उनका विश्वास है कि किसी भी गहलौत में वीरता और साहस तो उसके स्वाभाविक गुण है और वह युद्ध-भूमि में अपने जीवन का बलिदान देने से भी कभी पीछे नहीं हटता। वास्तव में उनका यह विश्वास है भी ठीक ही।

कर्त्तव्यविवेकी एवं न्याय-प्रिय—महाराणा रायमल का यद्यपि शृंगारदेवी पर अधिक प्रेम है और उन्होंने झालारानी की उपेक्षा करके उसके प्रति अपने कर्त्तव्य का निर्वाह नहीं किया, परन्तु फिर भी हम यह कह सकते हैं कि उन्हें अपने कर्त्तव्य का पूर्ण ध्यान रहा है। कर्त्तव्यविवेकी होने के साथ-साथ वे न्यायप्रिय भी हैं। वास्तव में उनकी न्याय-प्रियता ही उनके कर्त्तव्यविवेक का प्रमाण है, क्योंकि जो व्यक्ति अपने कर्त्तव्य को भूल जाता है वह उचित न्याय कभी भी नहीं कर सकता। महाराणा की न्याय-प्रियता का उदाहरण अपने पुत्र जयमल के हत्यारे राव सूरतान को जागीर पुरस्कार में देना है। "नहीं बेटी, पुत्र की मृत्यु से पिता का हृदय भले ही सौ टुकड़े हो रहा हो,

फिर भी मेवाड का महाराणा अन्याय नही करेगा। तुम्हारे पिता ने राजपूती परम्परा का पालन किया है; यदि उस समय वे जयमल पर दया कर देते तो मै स्वय उसे फाँसी का दण्ड देता। बेटी, मै तुम्हारे पिता को पुरस्कृत करूँगा।" कितनी न्याय-प्रियता और कर्त्तव्यपरायणता है महाराणा के इन शब्दो मे। वे न्याय जयमल के पिता बनकर नही, बल्कि मेवाड के महाराणा बनकर करते है। पुत्र की हत्या करने वालो को दण्ड देने के लिए जब शृ गारदेवी हठ करती है, तो महाराणा उसे समझाते है—"शृ गारदेवी, तुम्हारा प्रलाप करना स्वाभाविक है, किन्तु यदि तुम्हे भी इस न्याय के सिंहासन पर बैठा दिया जाय तो तुम भी वही फैसला दोगी जो मैंने दिया है। न्याय के सिंहासन पर बैठने वाले का न कोई पुत्र है, न कोई पत्नी, वहाँ सारे नाते समाप्त हो जाते है।" वृद्धावस्था में भी वे अपने कर्त्तव्य को नही भूलते है। मेवाड पर सकट के समय महाराणा का कर्त्तव्य उसकी रक्षा करना है, चाहे उसमे उसे अपने प्राणो की आहुति ही क्यो न देनी पडे। वे शृ गारदेवी से कहते है कि—"मेवाड का महाराणा अपने कर्त्तव्य का पालन करता रहेगा और कर्त्तव्य का पालन करते हुए भी असह्य बोझ को उतार फेंकेगा।"

वत्सलता—यद्यपि महाराणा रायमल अपने पुत्र के हत्यारे को पुरस्कार देते है, परन्तु इसका अर्थ यह नही कि उन्हे अपने पुत्रो से प्रेम नही या उनका हृदय वात्सल्य से शून्य है। यह सब कुछ तो वे न्याय-सिंहासन पर बैठकर करते है जहाँ उनके लिए सब बराबर है। जिस समय पृथ्वीराज लाल पठान का वध करके उनके पास आता है, उस समय उनकी वत्सलता का ज्ञान पाठक को होता है। महाराणा अपने पुत्र पृथ्वीराज को गले लगा लेते है और कहते है—"मेरे विजयी पुत्र, तुमने मेवाड राजवश के गौरव को चार चाँद लगा दिए। मै अपने पुत्र एव राजवधू को केवल आशीर्वाद ही नही देता, बल्कि पुत्र पर से निर्वासन आज्ञा भी वापिस लेता हूँ।" पृथ्वीराज की मृत्यु से वे दुखी होकर कहते हैं—"भगवान्! कहाँ है भगवान्! शृ गारदेवी, भगवान् होता तो क्या हमारे तीन-तीन पुत्र हमसे छिनते ? ...." किन्तु पृथ्वीराज के मरण के प्रहार ने उसकी निर्ममता और कठोरता की चट्टानो को चीर डाला है।

जब उन्हें अपनी पुत्री आनन्ददेवी के विधवा होने का समाचार प्राप्त होता है तो वे बहुत दुःखी होते हैं और स्वयं ज्वाला की गोद मे बैठकर प्राणों की ज्वाला को शांत करने के लिए व्याकुल हो उठते हैं। नाटक के अन्त मे जब महाराणा अपने पुत्र संग्रामसिंह से मिलते हैं तो हर्ष के आवेग में वे उसे गले लगाकर रोने लगते हैं।

रसिकता-प्रिय—"कुसुम्बा की क्या आवश्यकता है शृंगारदेवी ! सुन्दरी नारी की सरस दृष्टि कुसुम्बा से भी अधिक मादक है। दृष्टि ही क्या ! तुम्हारा सम्पूर्ण व्यक्तित्व ही अंगूरी शराब है।" "चाँदनी रात में झरने वाले झरने सा फेनोज्ज्वल तुम्हारा यौवन, बादलों मे चमकने वाली बिजली सा जगमगाता हुआ सौंदर्य, रणभूमि में चमकने वाली तलवार की धार सी तुम्हारी चितवन। यह सर्प के निचले अङ्ग की भाँति चिकनी गोल-गोल भुजाएँ। भुजंगिनी, मुझे तुम्हारा यही रूप भाता है।" महाराणा रायमल के इन शब्दों से यह स्पष्ट हो जाता है कि वे वीर योद्धा होने के साथ-साथ रसिक भी थे। परन्तु उनमे रसिकता के कारण कोई दोष उत्पन्न नहीं हुआ था।

राणा संग्रामसिंह

राणा संग्रामसिंह मेवाड़ के महाराणा रायमल के ज्येष्ठ पुत्र एवं 'कीर्ति-स्तम्भ' नाटक के नायक हैं। उनमें धीरोदात्त नायक के सभी गुणों का समन्वय है। उनका चरित्र एक आदर्श तथा महान् चरित्र है। उनके चरित्र की विशेषतायें हैं उनकी वीरता, साहस, रणकुशलता, जन्म-भूमि का हित-चिन्तन, त्याग, दूरदर्शिता, राष्ट्रीयता, योजनादक्षता, संयम आदि। आदि से अन्त तक उनके चरित्र में एक भी दोष नहीं आ पाया है। इस प्रकार राणा संग्रामसिंह के चरित्र-निर्माण मे प्रेमीजी को आशातीत सफलता प्राप्त हुई है।

नायक—राणा संग्रामसिंह प्रस्तुत नाटक के नायक हैं। वे राजघराने में उत्पन्न हुए हैं। वीरता, साहस, स्वाभिमान और जन्मभूमि से अनुराग तो उनके वंश के स्वाभाविक गुण हैं ही, परन्तु इनके अतिरिक्त उनके चरित्र की विशेषता है उनका महान् त्याग, उनकी दूरदर्शिता एवं योजनादक्षता। इन सब गुणों के कारण वे धीरोदात्त नायक की श्रेणी मे आते है। यद्यपि कुछ आलोचक

संग्रामसिंह को नायक नही मानते, क्योंकि बीच-बीच में कथानक का सग्रामसिंह से सम्बन्ध-विच्छेद सा हो जाता है। वास्तव मे देखा जाय तो जब तक पृथ्वी-राज जीवित रहता है समस्त कथानक उसी के चारो ओर घूमता है। परन्तु अन्त मे फल की प्राप्ति राणा सग्रामसिंह को ही होती है और नाटक के अत में महाराणा रायमल के समस्त दु खो का निवारण सग्रामसिंह के द्वारा ही होता है, अत. सग्रामसिंह को नाटक का नायक मानना उचित है।

वीर एवं साहसी—सग्रामसिंह वीरता, साहस और रणकौशल मे पृथ्वी-राज से कम नहीं है। राज्य-लिप्सा के कारण भाई-भाई मे जो सघर्ष उत्पन्न होता है, उससे वह बचकर स्वय निर्वासन ग्रहण इसलिए नही करता कि वह भीरु है, बल्कि यह सोचता है कि उसके मार्ग से हट जाने से सम्भवत गृह-कलह इतना उग्ररूप धारण न करे। उसके इस कार्य मे हेतु उसका जन्म-भूमि के प्रति अनुराग है। राणा की वीरता का उत्कृष्ट उदाहरण दिल्ली के लोदी बादशाह के साथ युद्ध मे दिखाई देता है। उनकी वीरता और साहस की साक्षी नाटक की प्रत्येक घटना है। वह वनवास में रहकर भी साहस नही छोडते है। लगातार सैन्य-सगठन करते रहते हैं। स्वयं सग्रामसिंह के राजयोगी से कहे शब्दो मे कितना शौर्य और साहस दिखाई देता है: "आपके अनुचर सग्राम-सिंह ने कभी स्वहित अथवा स्वार्थ की दृष्टि से किसी बात को सोचा ही नही, अन्यथा उसकी बाहुओ मे सूरजमल या पृथ्वीराज से कम बल नही है।" उसी की वीरता और साहस के सम्मुख मालवा और गुजरात के बादशाह भी परा-जित हो जाते है। युद्ध-भूमि मे शत्रु-शिविर मे कितनी दक्षता से वह तीन बाण फेंकता है। सूरजमल उसके शर-सचालन की प्रशसा करते हुए कहता है—"वह शर-सचालन मे अर्जुन के समान कुशल है ·· ··वह अवश्य शक्तिशाली व्यक्ति है। वह वीरता का कही दुरुपयोग नही करता और चाहता है कि वीरता के नाम पर अपनी शक्ति का ही विनाश न किया जाय।"

दूरदर्शी एवं सहिष्णु—दूरदर्शिता एव सहिष्णुता राणा संग्रामसिंह के विशेष गुण है। नाटक के आरम्भ में ही जब पृथ्वीराज राजमुकुट के मोह में पड जाता है तो वे उसे समझते है—"राजा बनने की अपेक्षा मनुष्य होना

मानव के लिये अधिक गौरव की बात है, पृथ्वीराज! प्राण-लेने-की वीरता से त्याग की वीरता महान् है।' जब चित्तौड़ दुर्ग के बाहर पृथ्वीराज, जयमल और संग्रामसिंह में युवराज पद के लिये तर्क वितर्क होता है, तब भी वे अपने भाइयों को समझाते हुए अपनी दूरदर्शिता का परिचय देते हैं—"हमारा देश छोटे-छोटे राज्यों में विभाजित है। इसमें पारस्परिक कलह ... . ऐसी स्थिति में मेवाड़ के राजवंश में परस्पर तलवारों की परीक्षा नहीं होनी चाहिये।" महामाया के मन्दिर में पृथ्वीराज संग्रामसिंह पर खड्ग का प्रहार करता है। सभी भाई अपना-अपना खड्ग खींच लेते हैं, परन्तु संग्रामसिंह शांत रहते हैं। कितनी सहिष्णुता प्रदर्शित होती है उनके इस महान् कृत्य में! केवल सहिष्णुता ही नहीं, वह उनकी दूरदर्शिता भी है, क्योंकि वे समझते हैं कि यदि वे भी इस गृह-कलह में कूद पड़े तो विदेशी मेवाड़ को शक्तिहीन पाकर इस पर अधिकार कर सकते हैं। राजयोगी बार-बार उन्हें प्रकट हो जाने के लिये कहते हैं, परन्तु उनका समय से पूर्व प्रकट न होना और छिपे-छिपे शक्ति-संग्रह करना उनकी दूरदर्शिता है। उनकी दूरदर्शिता और सहिष्णुता ही अन्त में मेवाड़ की रक्षा करती है। ज्वाला उन्हें अकेले पाकर अपने सैनिकों से कैद कराना चाहती है, परन्तु वे फिर भी अपनी उदारता व सहनशीलता का परिचय देते हैं और उन दोनों को वहाँ से जाने देते हैं।

योजनादक्षता—वन में रहकर भीलों को संगठित और शिक्षित करना उनकी योजनादक्षता का प्रमाण है।

देशभक्ति—राणा संग्रामसिंह में देशभक्ति कूट-कूटकर भरी हुई है, परन्तु उनका देश केवल मेवाड़ तक ही सीमित नहीं है, वे समस्त भारत को अपना देश समझते हैं और उसको अखण्ड एक छत्र के नीचे देखना चाहते हैं। वे राजयोगी से कहते हैं—"राजयोगी जी, मेरे प्राणों में एक अखंड और सबल भारत का स्वप्न है, जिसे अवसर पाकर पूर्ण करना चाहता हूँ।" मातृभूमि को वे अपनी जननी (साधुरानी) से भी महान् समझते हैं—'माँ से भी बड़ी एक माँ है हमारा देश।"

महान् त्यागी—गृह-कलह को शान्त करने के लिये युवराज पद के मोह को

छोड स्वय निर्वासित हो जाना उनके महान् त्याग का प्रमाण है।

कर्त्तव्यपरायणता—राज्यलिप्सा के वशीभूत होकर सभी भाइयो मे संघर्ष होता है। परन्तु इस गृह-अशान्ति को रोकना, संग्रामसिंह अपना कर्त्तव्य समझते है। रोक सकने मे तो वे अपने को असमर्थ पाते है, परन्तु उसकी प्रचण्डता को कम करने के लिए वे राजयोगी द्वारा युवराज घोषित होने के पश्चात् भी युवराज-पद को त्याग देते है। निर्वासन-काल मे राजयोगी उन्हे उनकी माता की दुर्दशा से अवगत कराकर उन्हे प्रकट होने के लिये उत्तेजित करते है, परन्तु राणा भावुकता मे नहीं आते है। मातृ-भूमि के प्रति वे अपने कर्त्तव्य-पथ से विचलित नही होते है। वे कहते है—"हां, राजयोगी जी, मैं माता जी की परिस्थिति से विचलित हो उठता हूँ। मुझ पर पिता जी कितना ही अन्याय कर ले, मै उसे सह सकता हूँ। किन्तु माता जी के प्रति उनकी उपेक्षा मुझे आकुल कर देती है। यह भी मन की एक दुर्बलता है। माँ से भी बडी एक माँ है हमारा देश। उसके हित के लिये अपनी जननी की दुर्दशा के प्रति मुझे उदासीन बनना ही पड़ेगा। सचमुच मै माँ के कष्ट को कम करने मे असमर्थ हूँ।"

तर्कपटु—राजयोगी उन्हे मेवाड के राजमुकुट को धारण करने के लिये समझाते हुए कहते है—"जिसके भाग्य मे राजयोग है, उसे राजमुकुट अपने मस्तक पर धारण करने मे इन्कार नहीं करना चाहिये। नियति के अमिट लेख को मिटाने का प्रयत्न मत करो संग्रामसिंह!" इसके उत्तर मे संग्रामसिंह कहते है—"नियति का लेख अमिट है तो आप मुझे अपनी चाल बदलने के लिए भी क्यो कहते है। नियति को अपना सामर्थ्य दिखाने का अवसर मिलना चाहिये और मुझे अपना।" कितना तर्कपूर्ण उत्तर है उनका।

पृथ्वीराज

पृथ्वीराज महाराणा रायमल का द्वितीय पुत्र और संग्रामसिंह का अनुज है। वह प्रचण्ड वीर एवं साहसी, निर्भीक, रणकुशल, देशभक्त, स्वाभिमानी, अनि-यमनशील, निरंकुश होने के साथ-साथ उद्दण्ड, अविवेकी एवं राज्यलिप्सु भी है। उसमें सहिष्णुता तो लेशमात्र भी नहीं है। इस प्रकार हम देखते है कि धीरता

ओर साहस को छोडकर उसका चरित्र राणा सग्रामसिह के चरित्र का विपरीत ही है। उसे अपनी वीरता पर गर्व भी बहुत अधिक है और इसी कारण वह अपने को ही महाराणा रायमल का उचित उत्तराधिकारी समझता है।

अदम्य वीर, साहसी, रणकुशल एवं निर्भीक—पृथ्वीराज की वीरता, साहस, रणकुशलता एव निर्भीकता तो उसके स्वाभाविक गुण है। उसके ये गुण अद्वितीय है। दिल्ली के बादशाह के साथ युद्ध करने में वह अपनी वीरता का परिचय देता है। तलवार का वह धनी है। नाटक के आरम्भ में वह राष्ट्रीय गान सुनकर कहता है—"निश्चय ही इस उन्मत्त कर देने वाले तुमुल निनाद को सुनकर मै तो नशे मे झूम उठता हूँ। जी चाहता है, चट्टानो को भुजाओ मे भरकर चूर-चूर कर डालूँ, तूफान से आन्दोलित पारावार में तरणी छोडकर प्रलयकारी लहरो पर झूला झूलूँ, आकाश के नक्षत्रो को तोड लाऊँ।" वह युद्ध-भूमि मे पूर्ण विजय अथवा पराजय चाहता है, सन्धि शब्द उसे रुचिकर नही। उसे तो सहारक रूप ही पसन्द है—"दादा भाई! किसी भी राजपूत का सहारक रूप देखकर पृथ्वीराज को तो आनन्द आता है। जैसे कला के प्रेमी नाटक, नृत्य और सगीत आदि के प्रदर्शनो मे रस विभोर हो आनन्द प्राप्त करते हैं, इसी प्रकार मुझे युद्ध की विनाश-लीला देखकर आनन्द आता है।...... ... ...जिस प्रकार भक्त को भगवान की उपासना मे आनन्द आता है उसी प्रकार पृथ्वीराज शस्त्रो की झनकार और आहतो के चीत्कार से पुलकित होता है।" रात्रि के समय शत्रु-शिविर में अकेले ही घायल सूरजमल से मिलने के लिए जाना उसकी निर्भीकता और साहस का प्रमाण है। स्वयं सूरजमल पृथ्वीराज के रणकौशल की प्रशंसा करता है—"आज तुम्हारा आवेश और रणकौशल आँखों को तृप्त करने वाला था। घोड़े की लगाम मुँह में पकडे हुए दोनो हाथो से खड्ग-सचालन करते हुए तुम मूर्तिमान विनाश के स्वरूप जान पड़ते थे।" सूरजमल केवल रणकुशलता की ही नही बल्कि पृथ्वीराज की वीरता की प्रशंसा भी करता है—"तुमने तो आज अपनी अप्रतिम शूरवीरता से गम्भीर नदी का पानी लाल कर दिया।" युद्ध-भूमि मे तारा महाराणा रायमल से पृथ्वीराज की वीरता के विषय में कहती है—"वे चारो ओर से शत्रुओ से घिर गये, किन्तु उनके शरीर पर किसी शत्रु की तलवार का पहुँच सकना

असम्भव था। जैसे मृगो मे सिंह संहार-लीला करता हुआ निर्द्वन्द्व घूमता है, उसी प्रकार वे शत्रु समूह में विचरण कर रहे थे।

स्पष्टवक्ता—पृथ्वीराज के मन में जो बात होती है वह कह देता है। नाटक से आरम्भ में वह पिता जी के सामने अपने हृदय की उचित अथवा अनुचित सभी बातो को कह देता है। उसे उसके परिणाम की चिन्ता नही। "सत्य को प्रकट करने का पुरस्कार यदि मेवाड राज्य से निर्वासन के रूप में प्राप्त होता है, तो पृथ्वीराज उस अभिशाप को वरदान ही मानेगा।"

चरित्र की महानता—उसका चरित्र उच्च है। वह तारा के रूप की ओर आकर्षित अवश्य होता है, परन्तु कोई ऐसा भाव प्रकट नहीं करता जिससे उसके चरित्र की उच्चता पर कलक लगे। जयमल की मृत्यु का उसे दु ख होता है, परन्तु उससे अधिक सन्ताप उसे उसके आचरण का है। वह स्वय अपने विषय मे कहता है—"कितनी सुकुमारियाँ रूप और यौवन की मादक प्यालियाँ लिए उसे बेहोश करने आई किन्तु विफल रही।" वास्तव मे एक सच्चे राजपूत में यह गुण होना स्वाभाविक ही है, क्योकि उसे तो नारी से अधिक अपना खड्ग प्रिय होता है।

दृढप्रतिज्ञ—पृथ्वीराज दृढप्रतिज्ञ है। वह जो कहता है वही करता है। उसे अपने शब्द अपने जीवन से भी अधिक प्रिय है। वह तारा के सम्मुख की हुई लाल पठान से राव सूरतान का दुर्ग वापिस लेने की प्रतिज्ञा को प्राणो की बाजी लगाकर पूर्ण करता है।

जन्म-भूमि से अनुराग—पृथ्वीराज की जन्मभूमि मेवाड है। वह मेवाड को सकट में फँसा कभी सहन नही कर सकता। मेवाड़ के लिए वह अपने जीवन का बलिदान देने को तत्पर है। वह चाहता है कि मेवाड़ की राज-पताका समस्त भारत पर फहराये। निर्वासित होते समय वह कहता है—"पृथ्वीराज कही भी रहे, मेवाड का बन कर रहेगा। सुख के दिनो में उसे कोई भी याद न करता, किन्तु यदि दुर्भाग्य से मेवाड पर सकट की घटनाएँ घिरेंगी तो यदि वह जीवित रहेगा तो सकट का साझीदार बनने अवश्य आयेगा।"

अभिवादशीलता—यद्यपि पृथ्वीराज के चरित्र में आरम्भ से ही उद्दण्डता

के दर्शन होते हैं, परन्तु फिर भी वह समय-समय पर अपने माता-पिता के चरण स्पर्श करना नहीं भूलता है। उनके आदेशों का पालन भी वह करता है। आवेश में भी वह अपने इस गुण से विमुख नहीं होता है।

राज्यलिप्सु—पृथ्वीराज में आरम्भ से ही मेवाड़ के सिंहासन का उत्तराधिकारी बनने की तीव्र इच्छा है। उसे मेवाड के राजमुकुट से मोह है। वास्तव में वह राजमुकुट पर ज्येष्ठ पुत्र का अधिकार उचित नहीं मानता है। उनका तो विश्वास है कि जो चाहे तलवार के जोर से उसे ग्रहण कर सकता है। यह तो योग्यतम पुत्र का अधिकार है और अपने आपको वह सभी भाइयों से योग्य समझता है। वह कहता है—"राज्यलिप्सा, सत्ता की आकांक्षा, शासन करने की प्रबल इच्छा राजपूत की स्वाभाविक प्रवृत्ति है।" इसी राज्यलिप्सा के कारण वह महामाया के मन्दिर में अपने अग्रज पर तलवार का प्रहार करता है। उसका राजयोगी पर व्यंग कसना और सूरजमल पर प्रहार करना सभी मुकुट-मोह के परिणाम हैं।

उद्दण्ड—नाटक के आरम्भ में ही पृथ्वीराज का उद्दण्ड रूप दिखाई देता है। वह अपने पिता जी से कहता है—"शंकाशीलता कायरों का स्वभाव है। पिताजी, आपको व्यर्थ विभ्रम में नहीं पड़ना चाहिए।" दूसरे स्थान पर वह कहता है—"पिता जब सत्ता-मद में चूर रहकर बूढ़े होने पर ही अपने पुत्र के सबल हाथों में शक्ति और अधिकार नहीं सौंपते तब पुत्र की आशा-आकांक्षायें पथ-भ्रष्ट हो जायें तो उसमें अस्वाभाविक क्या है ? .... मैं तो कहूँगा आपमें पिता की अन्यायपूर्ण आज्ञा का सामना करने का साहस नहीं था।" कितने उद्दण्डतापूर्ण हैं पृथ्वीराज के ये शब्द। इतना ही नहीं महामाया के मन्दिर में संग्रामसिंह पर वार करना भी प्रचण्ड उद्दण्डता का प्रमाण है। स्वयं महाराणा रायमल उसकी उद्दण्डता का अनुभव करते हुए कहते हैं—"पृथ्वीराज, तुम्हारी उद्दण्डता पराकाष्ठा को पहुँच चुकी है।"

विवेकहीन—पृथ्वीराज में विवेक का अभाव है। जब वह रात्रि के समय [illegible] मन्दिर में [illegible] मिलता है तो संग्रामसिंह के तीन पत्र [illegible] में बंधकर [illegible] में आकर पड़ते हैं। उन पत्रों से यह स्पष्ट हो जाता है कि उनका

यह युद्ध और उनका यह मुकुट-मोह मेवाड़ की शक्ति को क्षीण कर देगा, मेवाड़ नष्ट हो जायेगा, हो सकता है पराधीन भी हो जाये। परन्तु यह सब जानते हुए भी पृथ्वीराज अपना मार्ग नही परिवर्तित करता, यह सब कुछ उसके विवेकशून्य होने का प्रमाण है।"

सूरजमल

सूरजमल गलहौत वश के यशस्वी महाराणा कुम्भा के ज्येष्ठ पुत्र व महाराणा रायमल के अग्रज ऊदाजी का एक मात्र पुत्र है। वह बड़ा पराक्रमी, साहसी एवं रणकुशल है। उसमे राजपूती स्वाभिमान पृथ्वीराज से न्यून नही है। जहाँ उसमें मेवाड के प्रति अनुराग है वहाँ उसमे देशद्रोहिता भी है। एक ओर वह महाराणा रायमल के तीनो पुत्रो का सहार कर राजमुकुट प्राप्त करने के लिए दृढप्रतिज्ञ है तो दूसरी ओर भ्रातृत्व व उदारता की भावना भी उसमें दिखाई देती है। एक ओर वह छल-कपट या किसी षड्यन्त्र से राजमुकुट प्राप्त करना नही चाहता, परन्तु साथ ही वह अपनी एकमात्र बहन ज्वाला द्वारा किये गये षड्यन्त्र का विरोध भी नही कर पाता। वही सूरजमल जो अपने पिता के विदेशी शासक की शरण में जाने के कारण स्वय उनका विरोधी ही नहीं हो जाता, बल्कि युद्ध-भूमि मे पिता के विरुद्ध शस्त्र धारण करता है, एक दिन वह स्वय भी पिता के ही मार्ग का अनुसरण करता है। इस प्रकार सूरजमल के चरित्र मे जहाँ एक गुण है वहाँ उसी गुण का विरोधी अवगुण भी दिखाई देता है। इन्ही कारणो से सूरजमल का चरित्र कुछ स्पष्ट नही हो पाया है। पाठक उसके बारे मे कुछ निर्णय करने मे असमर्थ रहते है। परन्तु सूरजमल मे इन सभी दोषो को उत्पन्न करने वाली उसकी बहन ज्वाला है।

वीर, साहसी, रणकुशल एव निर्भीक—सूरजमल पृथ्वीराज के समान ही वीर, साहसी, रणकुशल एव निर्भीक है। उसके इन गुणो का परिचय दिल्ली के बादशाह और ऊदाजी के विरुद्ध किये गए युद्ध मे मिलता है। तारा महाराणा रायमल से युद्धभूमि में सूरजमल की वीरता और रणकौशल का वर्णन करती हुई कहती है—"सूरजमल को मैंने युद्ध करते देखा है। वे भीम-

काय मानव रूप में चलती-फिरती चट्टान, कुम्भकर्ण का अवतार, हाथों में विद्युत् की गति लिये हुए जिधर से तलवार चलाते गुजरते हैं, उधर की सेना काई-सी फट जाती है। प्राणों का मोह त्यागकर वे अपने सजातीय सैनिकों से युद्ध कर रहे हैं।" आगे वह पृथ्वीराज और सूरजमल दोनों के शस्त्र-सचालन-कौशल का वर्णन करती है—"दोनों भाई बलवान् हाथियों की भाँति एक-दूसरे पर टूट पड़े थे। वह दृश्य अपूर्व था। खड्ग-सचालन में दोनों एक-दूसरे के प्रहारों को विफल कर देते थे।

मातृभूमि से प्रेम तथा स्वाभिमानी—सूरजमल में स्वाभिमानता तो गहलौत वंश का स्वाभाविक गुण है। मातृभूमि और स्वाभिमान की रक्षा के लिए वह देशद्रोही पिता ऊदासिंह के विरुद्ध खड्ग उठाकर एक अद्वितीय आदर्श स्थापित करता है। परन्तु उसका स्वाभिमान ज्वाला के मुख से मेवाड़ के राजमहल में हुए बहन के अपमान की बात सुनकर उसे देशद्रोही बना देता है और उसमें राज्यलिप्सा जागृत कर देता है। यद्यपि वह गुजरात और मालवा के बादशाह की सहायता से मेवाड का राजमुकुट प्राप्त करने का प्रयत्न कर रहा है, परन्तु फिर भी उसके हृदय में मेवाड़ की स्वतन्त्रता की रक्षा की भावना कूट-कूट कर भरी हुई है। वह कहता है, "गलहौत वंश का राजकुमार सूरजमल मेवाड के राजमुकुट की प्रतिष्ठा रखने के लिए अपने प्राणों की बाजी लगा देगा, भले ही राजमुकुट उसके सिर पर रहे अथवा किसी दूसरे गहलौत वंशी के।" गहलौत वंश की प्रतिष्ठा की रक्षा की कितनी उग्र भावना उसके हृदय में समाई हुई।

भ्रातृत्व की भावना एवं उदारता—जिस समय पृथ्वीराज रात्रि के समय युद्ध-भूमि में उससे मिलने के लिए उसके शिविर में अकेला आता है, तो उस समय वह चाहता तो पृथ्वीराज पर घातक वार कर सकता था, परन्तु नहीं। पृथ्वीराज को देखकर उसके हृदय में भ्रातृत्व की भावना जागृत हो जाती है, यद्यपि समस्त दिन दोनों एक-दूसरे के रक्त के प्यासे बने रहे हैं। इतना ही नहीं, उस समय तो मातृभूमि का अनुराग उसके हृदय में इतना उमड़ आता है कि वह स्वाभिमान की रक्षा करते हुए सन्धि करने को भी

प्रस्तुत हो जाता है। घायल होते हुए भी वह पृथ्वीराज को विदा करने के लिए शिविर से बाहर तक आ जाता है। उनके इस कार्य से उसकी उदारता का परिचय भी मिलता है।

राज्यलिप्सा—मेवाड के मुकुट का मोह आरम्भ में तो उसमे नही दिखाई देता, परन्तु बाद मे उसका यह मोह बहुत उग्ररूप धारण कर लेता हे। वास्तव मे ज्वाला उसमे इस मोह को जागृत करती है और वही उसकी इस भावना को प्रज्वलित करती रहती है। राजमुकुट के लोभ में पड़ने के कारण ही उसका यहा तक पतन हो जाता है कि वह विदेशियो से भी इस लक्ष्य की प्राप्ति मे सहायता प्राप्त कर अपने पिता के घृणित मार्ग का अनुसरण करता है। "महाराणा रायमल के बाद सग्रामसिंह, पृथ्वीराज अथवा जयमला मे से कोई भी राजसिंहासन पर नही बैठ सकेगा, सूरजमल के जीवन का सकल्प यही है।" पृथ्वीराज की मृत्यु के पश्चात् जब सग्रामसिह सूरजमल को मेवाड की अपनी शक्ति से रक्षा करने के लिए समझाता है, तो वह कहता है, "सग्राम-सिंह ! मेवाड की यह चाह तभी पूर्ण हो सकेगी, जब सूरजमल के मस्तक पर मेवाड़ का राजमुकुट रखा जायगा।"

विवेकशून्य—सूरजमल विवेकशून्य है। वह अपनी वीरता और स्वाभिमान के गर्व मे यह सब कुछ भूल जाता है कि जो भी कार्य वह कर रहा है उसका परिणाम कितना अनिष्टकारी हो सकता है। सग्रामसिंह के समझाने पर भी उसका विवेक जागृत नही हो पाता और यदि कभी होता भी तो ज्वाला उसे न होने देती।

सूरजमल की सबसे बड़ी दुर्बलता उसका ज्वाला के सकेतो पर नाचना है। वह स्वय ज्वाला से कहता है—"तू सूरजमल को पिता जी के पथ पर चलाना चाहती है।" अन्त मे जब सूरजमल और ज्वाला की समस्त योजनाएँ विफल हो जाती है और सग्रामसिंह उन्हे बन्दी बनाकर महाराणा के सम्मुख ले आते है, तब सूरजमल का विवेक जागृत होता है और वह तब अपने अश्रु-जल से महाराणा के चरणो का प्रक्षालन करता है।

ज्वाला

ज्वाला ऊदाजी की पुत्री व सूरजमल की बहन है। उसकी वीरता, स्वाभिमान एवं सच्चरित्रता प्रशंसनीय है, परन्तु साथ ही वह विध्वंस की भी साक्षात् देवी है। वह किसी के द्वारा अपना अपमान सहन नहीं कर सकती। प्रतिशोध के लिए वह न्याय और अन्याय के सभी मार्गों को ग्रहण कर सकती है। वास्तव में ज्वाला के चरित्र से यह स्पष्ट हो जाता है कि यदि एक स्त्री चाहे तो वह विषधर से भी अधिक भयंकर बन सकती है। वह ताण्डव नृत्य कर सकती है।

सच्चरित्रता—ज्वाला के पिता ऊदा जी दिल्ली के लोदी बादशाह से उसका विवाह करना चाहते है, परन्तु वह समस्त वैभव को प्राप्त करने के लिए तथा अपने पिता के मेवाड राज्य की प्राप्ति मे सहायक होने के लिए अपने आप को एक विधर्मी की पत्नी बनना स्वीकार नहीं करती। वह विद्रोह कर बैठती है।

वीर एवं साहसी—वह पुरुष वेश धारण कर नकली दाढी-मूँछ लगाकर दिल्ली के लोदी बादशाह और अपने पिता ऊदासिंह के विरुद्ध युद्ध करती है और संभवत ऊदा जी के प्राणो का अन्त ज्वाला के खड्ग से ही होता है।

स्वाभिमान एवं प्रतिशोध की भावना से ओत-प्रोत—ज्वाला का मेवाड़ के राजमहल में आनन्ददेवी (महाराणा रायमल की पुत्री) के द्वारा अपमान होता है। इस अपमान से वह तिलमिला उठती है। उसे यह अपमान सहन नहीं हो पाता। बस फिर क्या था, वह इस अपमान की कहानी सुनाकर अपने भाई सूरजमल को देश-द्रोही बना देती है। वह उसमें मेवाड के सिंहासन का मोह भी जागृत कर देती है। स्वय प्रतिशोध लेने का प्रण करती है। अपने लक्ष्य की पूर्ति के लिए यमुना को अपना शस्त्र बनाती है। उसी की प्रतिशोध की ज्वाला मे पृथ्वीराज के प्राणों की आहुति होती है। वह सिरोही-नरेश भी अग्नि में कूद कर प्राण दे देता है और इस प्रकार आनन्ददेवी वैधव्य-अवस्था को प्राप्त होती है। शृंगार देवी को भी वह उसके पुत्र की हत्या हो जाने के समय जाकर भड़काती है जिससे सर्वनाश की अग्नि और अधिक प्रज्वलित हो।

व्यंग्य में निपुण—वह व्यंग्य कसने मे निपुण है। पृथ्वीराज, तारा, शृंगार देवी एव संग्रामसिंह भी उसके व्यंग्यो से तिलमिला उठते है।

अन्त मे उसकी सूरजमल को मेवाड के सिंहासन पर बैठाने की सभी योजनाये विफल होती है।

तारा

तारा टोडा दुर्ग के राव सूरतान की एकमात्र पुत्री है। वह एक आदर्श राजपूत बाला है। वह सुन्दरी है, वीर है, स्वाभिमानी है और अपनी प्रतिष्ठा पर आक्रमण करने वाले के प्रति भी उसके हृदय में करुणा है। लाल पठान उसके रूप पर मोहित होकर उसे प्राप्त करने की इच्छा से टोडा पर आक्रमण कर देता है। वह तारा को तो प्राप्त नही कर पाता, परन्तु राव सूरतान के दुर्ग पर वह अपना अधिकार अवश्य कर लेता है। तारा लाल पठान से टोडा दुर्ग वापिस लेने और उसका सिर काटकर उसे प्राप्त करने की कुचेष्टा का उसे दण्ड देने के लिए दृढ़प्रतिज्ञ है। राव सूरतान वृद्ध है और तारा के कोई भाई नही है, जो इस युद्ध में उनका सहायक होता। यह अभाव तारा को खटकता है।

एक दिन नदी तट पर तारा की पृथ्वीराज से भेट होती है। दोनो एक दूसरे के प्रेम-पाश में बँध जाते है, परन्तु दोनो को अपने ऊपर पूर्ण सयम है। पृथ्वीराज उसे विश्वास दिलाता है कि वह लाल पठान का सिर काट देगा और टोडा का दुर्ग राव सूरतान को वापिस दिला देगा, परन्तु स्वाभिमानी तारा यह स्वीकार नही करती है। वह किसी की सहायता पर जीवित नही है, उसे तो अपने खड्ग पर विश्वास है। अपने खड्ग से ही उसने लाल पठान का सिर काटना है। वह नही चाहती कि पृथ्वीराज लाल पठान को पकड कर उसको सामने ले आये और वह अपने खड्ग से उसका सिर काट दे, क्योकि नि शस्त्र शत्रु पर वार करना राजपूती धर्म के विपरीत है। पृथ्वीराज के कहने से वह मेवाड राजमहल का आतिथ्य स्वीकार तो कर लेती है, परन्तु उसे वह बन्दिनी का जीवन पसन्द नही। वह शीघ्र ही उसे छोड़कर चली आती है। ज्वाला के व्यग्य का वह उचित उत्तर देती है।

जब जयमल तारा का अपहरण करने का प्रयत्न करता है, तो उसे सही मार्ग पर लाने के लिए समझाने का पूर्ण प्रयत्न करती है, जब वह नही मानता तो अपने नारी-धर्म की रक्षा करने के लिए तलवार का सहारा भी लेत

है। राव सूरजमल के तीर से जब जयमल घायल हो जाता है, तो तारा के हृदय में उसके लिए करुणा उत्पन्न हो जाती है। वह उसे कुटिया में ले जाकर उसका उपचार करने का प्रयत्न करती है और अन्त में उसकी मृत्यु का समाचार स्वयं ही जाकर महाराणा और शृंगारदेवी को देती है और महाराणा से न्याय की पुकार करती है।

युद्ध-भूमि में जाकर वह अपने पति पृथ्वीराज के साथ मिलकर शत्रु से युद्ध करती है। पृथ्वीराज की मृत्यु के पश्चात् युद्ध-भूमि में जाकर अपने पति के स्थान की पूर्ति करने का प्रयत्न करती है।

तारा का चरित्र वास्तव में एक निष्कलंक, सर्वगुण सम्पन्न आदर्श राजपूत बाला का चरित्र है।

शृंगारदेवी

शृंगारदेवी जोधपुर के राठौर महाराजा की पुत्री एवं मेवाड के गहलौत वंश के महाराणा रायमल की छोटी रानी है। वह अति सुन्दरी है। कर्तव्य-परायण महाराणा को भी वह अपने रूप और माधुर्य की ओर आकर्षित कर और अपने हाथों से तैयार किया हुआ कुसुम्बा पिला-पिलाकर अपने कर्त्तव्य से विमुख करने का प्रयत्न करती है। उन्हें अपने पुत्र जयमल को युवराज पद देने के लिये विवश करती है। पुत्र-प्रेम में वह इतनी अन्धी हो जाती है कि संग्रामसिंह और पृथ्वीराज से ईर्ष्या करने लगती है। महाराणा की कर्त्तव्य परायणता एवं विवेक उसके रूप में विलीन होते से प्रतीत होते हैं, परन्तु जयमल के हत्यारे के साथ उचित न्याय करके वे अपने ऊपर आरोपित होते हुए दोषों का प्रक्षालन कर अपने चरित्र को कलंकित होने से बचा लेते हैं। पुत्र की मृत्यु के समय तो शृंगारदेवी का रूप एक विध्वंसक नारी जैसा प्रतीत होने लगता है, परन्तु जब ज्वाला अवसर का लाभ उठाकर उसे भड़काने का प्रयत्न करती है, तो वह उससे कहती है—"तो मैं पितृकुल की सहायता से पतिकुल का सर्वनाश करूँ? निस्सन्देह मेरे प्राणों में प्रतिहिंसा की ज्वाला जल रही है। किन्तु इस ज्वाला में जलते हुए भी मैं विवेक को सर्वथा तिलाञ्जलि नहीं दे सकती। तू नहीं जानती, नारी के लिए पति क्या है।"

जयमल की मृत्यु के पश्चात् उसके चरित्र मे महान् परिवर्तन दिखाई देता है। वह पृथ्वीराज को ही अपना जयमल समझने लगती है। पृथ्वीराज अपनी माता झालारानी का सन्देश शृ गारदेवी को देता है कि "अपने दोनो पुत्र के चले जाने के बाद से रोग-शैया को छोड ही नही सकी। उनमे उठने का सामर्थ्य होता तो वे आज यहाँ अवश्य आती। आज उनका एक पुत्र लौट आया है और वे अपेक्षाकृत प्रसन्न अवश्य है, किन्तु साथ ही जयमल की मृत्यु से, उन्हे व्यथा भी कम नही है।" झालारानी का यह सन्देश पाकर शृंगारदेवी के मन का रहासहा भेदभाव भी मिट जाता है और वह स्वय जाकर झालारानी से अपनी त्रुटियो के लिए क्षमा-याचना करती है।

नाटक के अन्त तक तो शृ गारदेवी के चरित्र मे इतना परिवर्तन आ जाता है, उसकी कठोरता इतनी कोमलता मे बदल जाती है कि वह सूरजमल को भी सीधे मार्ग पर लाकर रक्तपात बन्द करा देना चाहती है। वास्तव में शृ गारदेवी के चरित्र मे ये परिवर्तन उसकी परिस्थितियो के अनुसार स्वाभाविक ही है और नाटककार को उसके चरित्र मे समय और परिस्थितियो के अनुसार स्वाभाविक परिवर्तन लाने में पूर्ण सफलता प्राप्त हुई है।

कठिन स्थलों की व्याख्या

(१) कर्त्तव्य का पथ .. ..नहीं बनने देते। (पृष्ठ ३४)

प्रसग—प्रस्तुत उदाहरण प्रसिद्ध नाटककार श्री हरिकृष्ण प्रेमी द्वारा लिखित "कीर्ति-स्तम्भ" नाटक के प्रथम अक के तृतीय दृश्य से उद्धृत किया गया है। युद्धभूमि मे देश-विद्रोही ऊदाजी की मृत्यु हो जाने पर उनकी पुत्री ज्वाला उनके शव को घोडे पर लादकर अपने भाइयो के पास ले जाती है। उस समय ज्वाला के हृदय मे पितृ-प्रेम की भावना जागृत होती है। तब सग्रामसिंह उसे समझाते हुए कहते है

व्याख्या—पितृहन्ता ऊदासिह जी ने देश-द्रोह भी किया और मेवाड के सिहासन को प्राप्त करने के लिये गहलौत राजकुमारी (ज्वाला) का विवाह एक विधर्मी बादशाह के साथ करके मेवाड के गौरव और स्वाभिमान को कलकित करना चाहा। विद्रोही पिता को दण्ड देने के लिये उनकी पुत्री को पश्चात्ताप

नहीं करना चाहिए। बहन, तुमने अपने कर्त्तव्य का पालन किया है। कर्त्तव्य मार्ग में अनेको दुविधायें बाधक बनकर उत्पन्न होती हैं, परन्तु वे व्यक्ति जिन्होंने दृढ आदर्श को ग्रहण किया है, मार्ग में माया, ममता अथवा किसी प्रकार के सम्बन्ध को बाधा नहीं बनने देते। वे कभी भी पश्चात्ताप नहीं करते हैं, उन्हें अपने कर्त्तव्य-पालन करने मे ही सन्तोष होता है।

(२) रक्त की वर्षा राजपूतनी …………आवश्यक है। (पृष्ठ ७८)

प्रसंग—प्रस्तुत पंक्तियाँ दूसरे अंक के प्रथम दृश्य में से उद्धृत की गई हैं। ज्वाला राव सूरतान की सुपुत्री तारा से बातचीत करती हुई कहती है कि उसने अपने जीवन मे सदा ही शवो के ढेर तथा रक्त की वर्षा ही देखी है। रक्त-सागर मे अपनी जीवन नौका को खेना उसका ध्येय बन गया है। ज्वाला के यह कहने पर तारा उससे कहती है कि :

व्याख्या—युद्ध करना राजपूतो का स्वाभाविक गुण है। वे कभी युद्ध में रक्तपात देखकर व हा-हाकार को सुनकर भयभीत नही होता है, वह तो युद्ध भूमि में प्रसन्न होता है। परन्तु यह आवश्यक है कि उसकी इस युद्ध प्रियता का सम्बन्ध उसकी किसी क्रूर भावना का परिणाम नहीं होना चाहिए। उसे अपनी तलवार का उपयोग कर्त्तव्य पालन के लिए, किसी अन्याय का नाश कर न्याय की रक्षा करने के लिए करना चाहिए। कर्त्तव्य पालन के लिए और न्याय की रक्षा के लिये युद्ध-भूमि में रक्त वर्षा करना तो उसका धर्म है, परन्तु यदि वह यह कार्य अपनी स्वार्थ-पूर्ति के लिए करता है तो यही क्रूरता कहलाती है। किसी महान् आदर्श के लिये किया गया कोई कठोर व क्रूर कर्म भी पुण्य होता है। अन्याय को नष्ट करने के लिए तथा समाज के कल्याण के मार्ग को अवरुद्ध करने वाली शक्तियो का विनाश करने के लिये युद्ध मे किया गया रक्त-पात भी आनन्द-दायक तथा पावन है।

(३) व्यर्थ ही चट्टान… … ………… टूट पड़ेगी। (पृष्ठ ८८)

प्रसंग—प्रस्तुत सदर्भ "कीर्ति-स्तम्भ" नाटक के द्वितीय अंक के तृतीय दृश्य मे लिया गया है। टोडा दुर्ग के राव सूरतान से लाल पठान ने उसका दुर्ग छीन लिया है। 'तारा' (राव सूरतान की एकमात्र अद्वितीय सुन्दरी पुत्री) लाल पठान का सिर काटकर उससे अपना दुर्ग वापिस प्राप्त करने के लिए दृढ़प्रतिज्ञ है।

संग्रामसिंह और पृथ्वीराज के निर्वासन के पश्चात् एक दिन तारा को एकान्त में पाकर जयमल (मेवाड का राजकुमार) उससे प्रेम प्राप्त करना चाहता है, और विश्वास दिलाता है कि वह लाल पठान को नष्ट कर देगा। परन्तु तारा के यह कहने पर कि वे तो अपनी शक्ति से ही अपनी बपौती का उद्धार करेंगे, उन्हे मेवाड की सहायता की आवश्यकता नही है। इस पर जयमल तारा को समझाता हुआ कहता है :

व्याख्या—बेकार चट्टानो से टक्कर मारना बुद्धिमानी की बात नही है, इससे तो मूर्खता प्रकट होती है, क्योंकि प्रत्येक व्यक्ति जानता है कि चट्टान से टक्कर मारने से अपने ही सिर को आघात पहुँचेगा, चट्टान का कुछ नही बिगड़ेगा। ठीक इसी प्रकार तुम्हारा लाल पठान से टकराना चट्टान से टकराने के समान ही व्यर्थ है। जिस व्यक्ति के पास अपने उद्देश्य की पूर्ति करने के लिये सीधा मार्ग उपस्थित हो, उसे दुर्गम मार्ग अपनाने की क्या आवश्यकता है। जहाँ तुमने एक बार मुझ पर कृपा की, मेवाड के वीरो की सहस्रो तलवारें शत्रु के मस्तक पर टूट पडेंगी अर्थात् मेवाडी सेना टोडा दुर्ग पर आक्रमण कर लाल पठान को तहस-नहस कर डालेगी।

(४) ज्ञान के स्पर्श मात्र······ ······भयानक है। (पृष्ठ ११६)

प्रसंग—प्रस्तुत सदर्भ 'कीर्ति-स्तम्भ' नाटक के द्वितीय अक से लिया गया है। महाराणा रायमल और रानी शृ गारदेवी नशे के अच्छे-बुरे परिणामो पर विचार कर रहे है। उस समय शृंगारदेवी महाराणा से कहती है .

व्याख्या—ज्ञान के छूते ही मनुष्य को नशा हो जाता है, क्योकि अपने-पराये और अच्छे-बुरे का ज्ञान होने पर ही तो मनुष्य मे स्वार्थपरता आती है और स्वार्थ मे अन्धा होकर मनुष्य मनुष्यता से पतित होकर भयकर पशु बन जाता है। परन्तु वास्तव मे देखा जाय तो पशु मे मनुष्य से कम ज्ञान होता है। कम होने के कारण उसमें स्वार्थ की मात्रा भी कम होती है और स्वार्थ के कम होने के कारण वह मनुष्य के समान भयकर नही होता है।

(५) प्रेम और विश्वास······ ···ताकत होनी चाहिये। (पृष्ठ १८१)

प्रसंग—यह उद्धरण हरिकृष्ण 'प्रेमी' जी के 'कीर्ति-स्तम्भ' नाटक के तृतीय अक के सप्तम दृश्य से लिया गया है। संग्रामसिंह ज्वाला को समझाता है कि

वह अपने भाइयों से लड़कर समाप्त होने की निर्धारित रहकर प्रतीक्षा नहीं कर रहा था, बल्कि उसमें अपने भाइयों के रणोन्माद को रोकने की शक्ति नहीं थी यद्यपि वह चाहता था कि भाइयों का यह राजमुकुट प्राप्ति का संघर्ष समाप्त हो जाना चाहिए।

व्याख्या—संग्रामसिंह ज्वाला से कहता है कि वह चाहता था कि उन सभी भाइयों में प्रेम और विश्वास हो, परन्तु प्रेम और विश्वास भी वही मनुष्य प्राप्त कर सकता है जिसमें शक्ति होती है, निर्बल इस प्रयत्न में असफल रहता है। आलिंगन (गले लगना) के लिये भी शक्तिशाली भुजाओं की आवश्यकता होती है।

कुछ अन्य व्याख्या के योग्य स्थल

(१) साहस और शौर्य · ·· · 'आवश्यकता है। (पृष्ठ ६)
(२) विषमता मनुष्यों · · यत्न करते है। (पृष्ठ ११)
(३) राजा बनने की · महान् है। (पृष्ठ १६)
(४) जो होश में रहता है अधिक होती है। (पृष्ठ ४१)
(५) उत्तेजित घडियो समझना चाहिए। (पृष्ठ ४२)
(६) कुसुम्बा और होश · · · महारानी जी। (पृष्ठ ११२)
(७) याद रखो, तुम्हारी · · होनी ही चाहिये। (पृष्ठ १४७)
(८) अज्ञात, अनन्त · · अवतरित होता है। (पृष्ठ १५६)
(९) देवता पुरुषार्थ · ····· समझना चाहिये। (पृष्ठ १५६)
(१०) पिलाया विष मुझे · ·· बनकर मैं। (पृष्ठ १६१-१६२)
(११) ग्रीष्म-ऋतु की तपन ··· ····वर्षा होगी। (पृष्ठ १७४-१७५)
(१२) किन्तु यह तो · ·· ···· ···· नहीं होने देगा। (पृष्ठ १८३)

नये एकांकी

प्रश्न १—एकांकी नाटको के वारे मे आप क्या जानते हैं ? यह स्पष्ट करते हुए उसका विकास लिखिये तथा एकांकी का भविष्य बताइये ।

उत्तर—नाटक काव्य का एक ऐसा रूप है जिसका रंगमच के उपयोगी होना आवश्यक है, क्योकि इसका पूर्ण आनन्द एकान्त की अपेक्षा समाज मे वैठकर अभिनय को देखने मे ही है। इसीलिए यह दृश्य काव्य के अन्तर्गत आता है। एकाकी का अर्थ एक अ क वाला है अर्थात् जिसमे एक ही घटना हो और एक ही विचार हो। आज का मानव वहुत व्यस्त है, उसे अपने जीवन की चक्की को चलाने के लिए अधिक परिश्रम तथा संघर्ष करना पडता है, इसलिए उसके पास समय का अभाव है। वडे-वडे उपन्यास और नाटको के अभिनय देखने की न तो उसमे शक्ति ही है और न ही अधिक समय। अतएव आज का मानव चाहता है कि कम से कम समय मे अधिक से अधिक मनोरञ्जन प्राप्त कर सके। एकाकी ही साहित्य की एक ऐसी विधा है जिसमे न्यून समय मे अधिक मनोरजन कराने की क्षमता है। नाटक के भी सभी गुण इसमे विद्यमान हैं।

हिन्दी के एकाकी का आधार सस्कृत ही है। भाण, व्यायोग, वीथी, अ क आदि इसी श्रेणी के रूपक थे, किन्तु आज का हिन्दी नाट्य-विधान पाश्चात्य नाट्य कला से अधिक प्रभावित हो चुका है और उसी के अनुसार चल रहा है।

एकाकी के मुख्यन चार तत्व हैं—(१) कथावस्तु, (२) पात्र, (३) सवाद, (४) अन्तर्द्वन्द्व।

१ कथावस्तु—डा० रामकुमार वर्मा के मतानुसार एकाकी मे अन्य प्रकार के नाटको से विशेपता होती है। इसमे एक ही घटना होती है और वह घटना नाटकीय कौशल से कौतूहल का सचय करती है, तभी चरमोत्कर्ष आ सकता है। उसमे विपय, समय, स्थान की एकता होती है। कोई भी प्रसंग अप्रधान नही होता। विस्तार नही होता, प्रत्येक घटना कली की भाँति खिल-कर पुष्प की भाँति विकसित हो उठती है। वह वन-स्थली की तरह इधर-उधर फैली हुई नहीं होती अपितु वह तो पुष्प के गुलदस्ते की तरह होती है। कथा

का महत्व, सार्थकता तथा सार्वजनीन रोचकता इसी सघर्ष के यथोचित विकास पर निर्भर है। घटना दो मार्ग से चरम सीमा तक बढ सकती है—एक मे विकास की प्रधानता और दूसरे मे विन्यास की। डा० नरेन्द्र के शब्दो मे "पहले मे क्रमिक उतार-चढाव के सहारे घटना अथवा चरित्र चरम परिणति तक पहुँचता है और अन्त मे एक गाँठ-सी खुल जाती है। दूसरे मे विकास का कोई स्पष्ट क्रम नही होता, उसमे तो घटनाओ अथवा भाव-विचारो की तहें खुलती चली जाती है, और अन्त कही पर भी जाकर हो जाता है। पहला रूप जहाँ हमारी जिज्ञासा को उभारकर तुष्ट कर देता है, वहाँ दूसरे मे परितोष का कोई निश्चित साधन नही होता। हमारी जिज्ञासा प्राय बीच मे उलझी रहती है। वही उसकी सफलता है। पहले मे वस्तु कौशल और दूसरे मे मनोविश्लेषण की शक्ति होती है। एकाकी का कथानक क्षिप्र गति से चलता है और एक-एक भावना को घनी-भूत करते हुए गूढ कौतूहल के साथ चरम सीमा पर चमक उठता है। समस्त जीवन एक घण्टे के सघर्ष मे और वर्षो की घटनायें एक आँसू या एक मुस्कान मे उभर आती है। वे चाहे सुखान्त हो चाहे दुखान्त।"

२ पात्र—एकाकी मे पात्र चार या पाँच से अधिक नही होते। मुख्य पात्र के जीवन की घटना को दिखाना लेखक का उद्देश्य होता है। वह ही सब पात्रो, घटनाओ आदि का केन्द्र होता है। एकाकी के सभी पात्र बडे सजीव होते है और मुख्य पात्र के चरित्र का विकास करने के लिए ही आते है। एकाकी के पात्र बडे क्रियाशील होते है और लेखक मनोविश्लेषण द्वारा ही उनका चरित्र-चित्रण करता है। पात्रो मे स्वाभाविकता अवश्य होनी चाहिये और वे सब उद्देश्य की ओर तीव्र गति से चलने वाले होने चाहियें।

३ सवाद—सवाद ही एक ऐसा तत्व है जिसके द्वारा एकाकी मे मनोरञ्जन उत्पन्न किया जा सकता है। जिसके द्वारा लेखक अपने उद्देश्य की पूर्ति, पात्रो का चरित्र-चित्रण, कथा का विकास कर सकता है। ये सवाद जितने छोटे, मार्मिक, सरस, सरल होगे उतने ही सफल माने जायेंगे। उपदेश या दार्शनिकता के बोझ से लदे हुए नही होने चाहिए। भाषा मे प्रवाह होता है और वह सरल और चुस्त होती है। सवांद की स्वाभाविकता से विशेष चमत्कार उत्पन्न हो सकता है तथा दर्शको की चेतना और वृत्तियाँ अधिक शिष्ट

होकर रसास्वादन करती है। एकाकी मे प्राचीन शैली के सम्वाद नही होने चाहियें क्योंकि उससे स्वाभाविकता नष्ट हो जाती है।

४ अन्तर्द्वन्द्व—दो विरोधी व्यक्तियो, दो विरोधी वर्गों मे सघर्ष तो केवल नाटक मे ही सम्भव है। एकाकी मे इसका कोई महत्व नही है। इसमे तो केवल आन्तरिक सघर्ष ही दिखाया जा सकता है। मानव मे दो प्रवृत्तियाँ होती है—(१) सत्, (२) असत्। असत् पर सत् की विजय द्वारा ही लेखक किसी पात्र के चरित्र को दर्शको के सामने रखता है। इनका पारस्परिक द्वन्द्व भी दिखाता है और अन्त मे एक निर्णय पर पहुचता है। वास्तव मे अन्तर्द्वन्द्व एकाकी का एक आवश्यक तत्व है जिसके द्वारा एकाकीकार किसी भी पात्र का स्पष्ट चित्र दर्शको के सामने उपस्थित कर सकता है।

नाट्य विधान—नाट्य विधान की दृष्टि से एकाकी मे पाँच स्थितियों का होना अनिवार्य है।

(१) उद्घाटन—यह आकर्षक होना चाहिये। इसके साधन मूक अभिनय, रग-सकेत, और छोटे-छोटे सवाद भी हो सकते हैं। (२) टिकाव—आरम्भ के पश्चात् टिकाव आना भी आवश्यक होता है, इससे दर्शक कथानक की रूप-रेखा का आभास पा लेता है। (३) विकास—जब वस्तु मे संघर्ष बढ जाते हैं तभी विकास आता है। विकास मे कौतूहल होना आवश्यक है। (४) चरमोत्कर्ष—यह स्थिति एकाकी मे आनी अनिवार्य है। यह ऐसी स्थिति है जब कि दर्शक अन्त के लिए बेचैन हो जाता है और उसका कोई निर्णय स्वय नही कर सकता। (५) अन्त—अन्त उद्देश्य के अनुकूल होना चाहिये। अन्त का स्वाभाविक होना आवश्यक है क्योंकि यही पर लेखक के सब परिश्रम का मूल्याकन हो जाता है।

संकलनत्रय—(१) विषय की एकता (२) स्थान की एकता, (३) काल की एकता अर्थात् एक स्थान पर, एक ही समय मे, एक ही घटना का प्रतिपादन ही सकलनत्रय है। इसका होना ही एकाकी की सफलता का होना है। यह सकलनत्रय जितना स्वाभाविक होगा, एकाकी उतना ही उत्कृष्ट कोटि का माना जायगा। इसके द्वारा ही एकाकी का अभिनय सरलता से हो सकता है। यदि सकलनत्रय का ध्यान न रखा गया तो एकाकी मे दोष आने अनिवार्य हैं इसलिए एकाकीकार को इस ओर पूर्ण ध्यान देना चाहिए।

हिन्दी एकांकी का विकास—

निम्नलिखित चार युगो मे एकाकी साहित्य को विभाजित किया जा सकता है :—

(१) हरिश्चन्द्र युग से प्रसाद तक—इस युग मे एकाकी की कला विकसित नही हुई थी क्योकि यह आरम्भिक युग था। भारतेन्दु ने प्रहसन लिखे जिन मे समाज पर तीखे व्यग्य तो अवश्य है परन्तु प्रहसन का अभाव है। एकाकियो के कथोपकथन मे प्रवाह और गति बहुत कम है। इन एकाकियो मे से कुछ तो ऐतिहासिक है और अधिकतर समाज-सुधार की मूल भावना को लेकर लिखे गये। इस युग के प्रमुख लेखक भारतेन्दु हरिश्चन्द्र, प्रताप-नारायण मिश्र, बालकृष्ण भट्ट आदि हैं।

(२) प्रसाद युग—प्रसाद जी ने 'एक घूट' एकाकी लिखकर एकाकी क्षेत्र मे एक नवीन युग आरम्भ किया। यह एकाकी सामाजिक है और इसमे विवाह की समस्या है। यही वह एकाकी है जिसमे आधुनिक एकाकी के सभी गुण पाये जाते है। इसी आधार पर वास्तव मे आधुनिक एकाकी का युग इसी एकाकी से आरम्भ हुआ माना जाता है। परन्तु 'एक घूट' ने भी अपने समय के लेखको को अधिक प्रेरणा नही दी। वास्तव मे यह 'एक घूट' बनकर ही रह गया।

(३) भुवनेश्वर प्रसाद के 'कारवा' से एकाकी का तीसरा युग माना जाना चाहिये। 'कारवा' पर पश्चिमी शैली का पूर्ण प्रभाव पाया जाता है। 'इब्सन' और 'बर्नार्ड शा' का प्रभाव इस पर स्पष्टतया लक्षित होता है। इस युग के प्रथम एकाकीकार डा० रामकुमार वर्मा और सेठ गोविंददास इत्यादि हैं।

(४) १९४१ से एकाकी का चौथा युग आरम्भ होता है। इस युग के एकाकी सुन्दर तथा सुगठित हैं। यदि वास्तव मे देखा जाये तो १९४१ से आज तक का समय हिन्दी एकाकी साहित्य के विकास मे बहुत महत्वपूर्ण स्थान रखता है। डा० नगेन्द्र लिखते हैं कि हिन्दी एकाकी का इतिहास गत दस वर्षो मे सिमटा हुआ है। इस युग की एकाकी कला निखरी हुई है और इसका क्षेत्र विकसित है। इस युग के मुख्य एकाकीकार डा० रामकुमार वर्मा, उदयशकर भट्ट, हरिकृष्ण प्रेमी, अश्क, लक्ष्मीनारायण मिश्र तथा सेठ गोविंददास हैं। अब एकाकी के कई सग्रह प्रकाशित हो चुके हैं।

एकांकी नाटक का भविष्य—

इस विवेचना से स्पष्ट हो जाता है कि एकाकी साहित्य • दिन-प्रतिदिन अधिक लोकप्रिय बनता जा रहा है। एकाकी का जीवन के साथ अटूट सम्बन्ध है और जब पाठक इन एकाकियो मे अपने जीवन की किसी यथार्थ झलक को अ कित हुए देखता है तो उसे अवर्णनीय आनन्द की प्राप्ति होती है। इन एकाकियो मे राष्ट्रीयता की सजग चेतना, वर्तमान की उभरती हुई समस्या और वर्नमान समाज की असमानताए प्राचीन सस्कृति तथा आदर्शों की झलक सभी कुछ मिलता है।

इस प्रकार एकाकी साहित्य, दिन-प्रतिदिन वर्तमान जीवन पर छा रहा है। परन्तु कई एकाकियो पर पश्चिम का इतना गहरा प्रभाव दिखाई देता है कि उनमे भारतीयता का नितान्त अभाव होता जा रहा है और लेखक पश्चिमी सभ्यता के रग मे रगे जा रहे है। इस कारण भविष्य मे भारतीय सभ्यता तथा सस्कृति के ह्रास की आशका उत्पन्न होती है। आज स्वतत्र भारत मे आवश्यकता है कि साहित्य द्वारा शुद्ध भारतीयता का प्रचार हो। जो लेखक इस उद्देश्य को सामने रखते हुए साहित्य का सर्जन कर रहे हैं, वे बधाई के पात्र है। एकाकी नाटको मे भी अधिकतर लेखक इस धारणा को लेकर आगे बढने का प्रयत्न कर रहे है। उनकी शैली चाहे पश्चिमी है परन्तु भावना शुद्ध भारतीय है। इसलिए वर्तमान एकाकी साहित्य पर दृष्टिपात करते हुए हमे यह कहने मे सकोच नही कि हिन्दी एकाकी नाटक-साहित्य का भविष्य उज्ज्वल है।

प्रश्न २—विषय-प्रतिपादन की दृष्टि से तथा शैली अथवा शिल्पविधि के अनुसार एकाकी नाटको का वर्गीकरण कीजिये।

उत्तर—विषय-प्रतिपादन की दृष्टि से एकाकी नाटको को निम्नलिखित पाँच भागो मे विभक्त किया जा सकता है :—

(१) समस्यामूलक एकाकी—जिसमे जीवन की आर्थिक, वैयक्तिक और मनोवैज्ञानिक समस्याओ को वर्ण्य विषय बनाया जाता है। जैसे—"मीना कहाँ है।'

(२) धार्मिक एकाकी—वे एकाकी जिनमे धार्मिक मूल्यो, सिद्धान्तो और धारणाओ आदि को लिया जाता है। जैसे—'सस्कार और भावना"।

(३) सामाजिक एकाकी—इस श्रेणी के एकाकियो मे सामाजिक समस्याओ और नैतिक मूल्यो को लिया जाता है। जैसे—"एक तोले अफीम की कीमत"।

(४) ऐतिहासिक एकाकी—वे एकाकी जिनमे इतिहास की कोई घटना व परिस्थिति सवेदना के रूप मे आती है जैसे—'भोर का तारा'।

(५) भावात्मक एकाकी—इस प्रकार के एकाकी नाटको मे नाटककार कल्पना, भावुकता, स्वच्छन्दता आदि विषयो का वर्णन करता है। जैसे—'छाया'।

शैली अथवा शिल्पविधि के अनुसार एकाकी नाटको को निम्नलिखित पांच भागो मे विभाजित किया जा सकता है—

(१) स्वस्थ एकाकी—वे एकाकी स्वस्थ एकाकी की श्रेणी मे आते हैं जिनमे सकलनत्रय स्वाभाविक प्रेरणा से ही होता है। यदि सकलनत्रय भी न हो तो कम से कम प्रभाव और कार्य ऐक्य होना आवश्यक है, चाहे देश-काल का निर्वाह उसमे हुआ हो अथवा नही। जैसे—'तौलिए'।

(२) एकपात्री नाटक (मोनो ड्रामा)—इस प्रकार के एकाकी नाटको मे केवल एक ही पात्र होता है। वह रगमच पर अपने स्वगत-भाषण तथा कार्य-व्यापार से समूचे एकाकी को समाप्त करता है।

(३) फीचर—किसी निबन्ध, कहानी और वार्ता आदि को अगर दृश्यो मे बाँटकर उसे रेडियो पर प्रस्तुत किया जाय, तो इसे 'फीचर' कहते हैं। अनेक दृश्यों और विभिन्न भावचित्रो को सुसम्बद्ध और निश्चित इतिवृत्त मे रखने के लिए इसमे एक कथाकार की अपेक्षा होती है। यह कथाकार एक ओर अप्रकट वस्तु स्थिति को प्रकट करता है, दूसरी ओर यह विभिन्न दृश्यो के सूत्र को भी आपस मे मिलाता जाता है।

(४) रेडियो एकाकी—रेडियो एकाकी मे दृश्य अ श के स्थान पर श्रव्य अ श होता है।

(५) भावनाट्य (फैंटसी)—इस श्रेणी के एकाकी मे नाटककार किसी भावात्मक घटना अथवा अनुभूति का स्वच्छन्द स्वप्नमय ढग से चित्रण करता है। कायिक व्यापार का या तो पूर्णत अभाव होता है या बहुत ही थोड़े होते हैं। इसमे मानसिक चिन्तन आदि से अन्त तक दिखाई देता है।

प्रश्न ३—श्री सुमित्रानन्दन पन्त के 'छाया' एकांकी का कथानक देते हुए उनकी समीक्षा कीजिए और उसके नाम की सार्थकता पर प्रकाश डालिये।

उत्तर—सतीश एक नये विचारो का युवक है। सुनीता प्राचीन सामाजिक विचारो से ग्रस्त एक युवति है। उसके पिता सुनीतिकुमार प्राचीन सामाजिक विचारो मे विश्वास रखते हैं। सुनीता सतीश से प्रेम करती थी, परन्तु अब उसका विवाह प्रमोद से हो गया है। वह इस विवाह मे सन्तुष्ट नही है, परन्तु समाज के सम्मुख उसका मुख भी वन्द ही रहता है।

एक दिन सतीश सुनीता के घर उससे मिलने के लिए आता है। वहाँ पर सर्वप्रथम उसे सुनीता के पिता सुनीतिकुमार मिलते है। सुनीतिकुमार सतीश का अपने घर आना पसद नही करते हैं। वह उन्हे देखकर तन जाता है। सुनीतिकुमार उस पर कडी दृष्टि डालते है। वे सतीश से कहते हैं—"अन्दर चले जाओ। सुनीता वही पर है।" साथ ही वे यह कहकर चले जाते है—"मुझे सिविल लाइन्स जाना है।" सतीश अन्दर कमरे मे जाता है। वहाँ सुनीता का भाई विनय बैठा हुआ है। सुनीता पास के ही कक्ष मे शृगार कर रही है। विनय सतीश को कुर्सी पर बैठाता है। दोनो मे कुछ समय तक वेश-भूषा पर तर्क-वितर्क होता रहता है। सुनीता के आगमन से यह तर्क समाप्त हो जाता है। विनय वहाँ से चला जाता है।

सतीश सुनीता के चित्रो का एलवम देखता है। एलवम मे सुनीता के विवाह का एक चित्र लगा है, जो 'आऊट आफ फोकस' होने के कारण वहुत ही भद्दा वन पडा है। सुनीता सतीश से इस चित्र को देखने के लिये मना करती है, परन्तु उसके मना करने पर सतीश की उस चित्र को देखने के लिए उत्सुकता और अधिक हो जाती है। सुनीता क्षण भर के लिए अपने को भूल जाती है और वह सतीश की गोदी मे रखे हुए एलवम पर अपना सिर रखकर उसे देखने से रोकने का प्रयत्न करती है और क्षण भर निर्निमेष नेत्रो से उसकी ओर देखती है। इसी समय विनय वहाँ आ जाता है। सुनीता और सतीश दोनो खडे हो जाते है। उस समय सतीश उस चित्र को देखकर सुनीता को चिडाने के लिए कहता है—"यह सुनीता का शादी के रोज का चित्र है। · बिल्कुल आउट ऑफ फोकस। ··· मुह का पता नही। वाल बिखरे हुए। साडी

मे जगह-जगह सलवटें पडी हैं। · सिर का पल्ला पछाड खाकर जमीन पर लोट रहा है।—आँखें जैसे लगातार रोने से सूजी हुई हैं। · · ओठ, नाक और गाल, सब फूल कर जैसे एक दूसरे से मिल गये हो। जैसे जीवन का कोई भयानक ग्रावेश करुणा और व्यथा की निर्मम दारुण छाया ··· मन के गहरे अन्धकार से वाहर निकलकर साकार हो उठी हो।" तब सुनीता कहती है—" ··· छि छि छि ······वह भयानक छाया मैं ही हूँ।··· जो जीवन के रूप मे न जाने कब से दारुण मृत्यु तथा आत्म-हनन का भार ढो रही हू।' तब सतीश उसे समझाता है कि मैं यह जानता हू, तुम हमारे समाज मे नारी के मूक दयनीय जीवन की एक करुण उदाहरण भर हो, जिसके हृदय की प्रत्येक धडकन मे युग-युग से नारी की नि शब्द व्यथा छटपटाती रही है। परन्तु आज तुम्हें विद्रोह करने की आवश्यकता नहीं है। आज तो केवल हमारी स्त्रियो और विशेषकर नवयुवतियो को घर से वाहर इस बडे सामाजिक जीवन मे भी अपना स्थान वना लेना है। उन्हें पुरुषो के साथ नवीन लोक-जीवन तथा मानव का निर्माण करने मे हाथ वँटाना है। केवल इसी प्रकार हमारा गृहस्थ-जीवन परिपूर्ण तथा आनन्द-मगलमय वन सकता है। इसके पश्चात् वह चला जाता है।

सतीश के जाने के पश्चात् सुनीतिकुमार आते है। वे कमरे मे इधर-उधर देखकर कहते हैं कि मैं सतीश का अपने घर मे आना पसद नही करता हूँ।

समीक्षा—प्रस्तुत एकाकी मे सुनीतिकुमार प्राचीन रूढ़ियो मे विश्वास रखने वाले व्यक्ति हैं। उनकी पुत्री सुनीता उन प्राचीन विचारो से पीडित एवं नवीन विचारो का अनुकरण करने वाली युवति है। सुनीता के रूप मे नारी की समाज मे दुर्दशा का इस एकाकी मे चित्रण किया गया है। समाज मे नारी की दुर्दशा को लेकर ही कथानक चला है। किस प्रकार समाज मे नारी को अपने जीवन-साथी चुनने के विषय मे वोलने का भी अधिकार नहीं है। सतीश नये युग का सदेश सुनीता को देता है। सुनीतिकुमार यह नही चाहते कि सतीश उनके घर पर आये। मध्यम वर्ग के इन्ही नवीन और प्राचीन विचारो के सघर्ष मे ही प्रस्तुत एकाकी की कथा का धात-प्रतिघात निखर उठा है। यही इसकी चरम सीमा है।

एकाकी मे चार पात्र हैं—(१) सतीश (२) सुनीता (३) सुनीतिकुमार (४) विनय। इनमे प्रथम दो प्रमुख हैं। सभी के चरित्र को स्पष्ट रूप से चित्रित किया गया है। सुनीता का चरित्र प्रस्तुत एकाकी की वह प्राण-भूमि है, जहाँ सतीश के चरित्र का सयोग सम्पूर्ण एकाकी मे अन्तर्द्वन्द्व तथा अनुभूतियाँ बिखेर देता है। इसका कथानक, पात्र एव घटनायें सभी मे स्वाभाविकता है। पन्त जी ने इसमे सकलनत्रय का ध्यान भी रखा है। देश, काल और कार्य-व्यापार मे एकता है।

कथोपकथन सुन्दर एव मार्मिक बन पडे हैं। स्वगत कथनो का अभाव है। सतीश के सवाद व्याख्यान का रूप धारण कर लेने के कारण कुछ लम्बे हो गये है, परन्तु नाटककार ने सतीश के सवाद के द्वारा ही प्रस्तुत एकाकी का उद्देश्य नारी-समाज तक पहुँचाया है। इसमे रग-सकेत भी दिये हुए है जिनसे यह रगमचीय दृष्टि से पूर्ण सफल हो गया है। वास्तव मे 'छाया' का अभिनय प्रसिद्ध कलाविद् उदयशकर की नाट्यशाला मे तथा अनेक अन्य स्थानो मे भी हुआ है।

नामकरण—प्रस्तुत एकाकी का 'छाया' नाम उचित ही है। इसमे मुख्य पात्र 'सुनीता' के आन्तरिक सघर्षो को पर्दे पर पडती हुई 'छाया' के द्वारा ही प्रतीकात्मक ढग से व्यक्त किया गया है। जिस समय सुनीता सतीश से एलबम मे दिये हुए अपने एक चित्र को देखने से रोकने के लिए सतीश की गोद मे अलबम के ऊपर अपना सिर चिपकाए अनिमेप दृष्टि से उसकी ओर देखती है, उस समय पर्दे पर अस्त-व्यस्त-कुन्तला एक युवति की छाया दिखाई देती है। वह दोनो हाथो से अपने बाल खीच रही है। उसका वदन ऐठ रहा है। वह छिन्न लता की तरह गिरकर जमीन पर लेट जाती है। इसी प्रकार नाटक मे सुनीता के सभी मनोवेगो की अभिव्यक्ति परदे पर पडती हुई 'छाया' से होती है। सुनीता स्वय सतीश से कहती है—"......वह भयानक छाया मैं ही हूँ। सतीश, जीवन की वह भयानक छाया मैं ही हू।" वास्तव मे देखा जाये तो प्रस्तुत एकाकी के सभी पात्र भिन्न-भिन्न विचारो के छाया-स्वरूप है। जैसे सुनीतिकुमार मे प्राचीन विचारो की छाया है, सतीश मे आधुनिक युग के क्रान्तिकारी विचारो की छाया है, और सुनीता प्राचीन रूढियो से दलित नारी-

समाज की छाया है। इस प्रकार विवेचन करने के पश्चात् हम इसी निर्णय पर पहुचते है कि प्रस्तुत एकाकी का 'छाया' नाम बहुत ही उपयुक्त है।

प्रश्न ४—रामकुमार वर्मा द्वारा लिखित 'एक तोले अफीम- की कीमत' नामक एकाकी की आलोचना करते हुए बताइये कि लेखक ने इस एकाकी मे समाज की किस कुप्रथा की ओर सकेत किया है तथा क्यो ?

उत्तर—"एक तोले अफीम की कीमत" नामक नाटक हिन्दी के सुप्रसिद्ध नाटककार रामकुमार वर्मा की लेखनी द्वारा साहित्यिक क्षेत्र मे अवतरित हुआ है। इस नाटक का कथानक सक्षेप मे निम्नलिखित है —

मुरारीमोहन एक बी० ए० पास नवयुवक है। इसका पिता, जो कि अफीम का ठेकेदार है, इसका विवाह ऐसी लडकी से करना चाहता है जिसे यह पसद नही करता। विचित्र दुविधा मे पडा हुआ यह युवक रात्रि के दस बजे के पश्चात् अपनी दुकान मे अकेला बैठा हुआ सोच रहा है। पिता सीताराम अफीम का माल समाप्त होने पर बाहर माल लेने के लिए गये हुए हैं। मुरारीमोहन अपने नौकर रामदीन से विवाह-सम्बन्धी चर्चा करते हुए स्वय रस लेता है और उसे दुकान से बाहर घर भेज देता है। फिर आत्महत्या करने का निश्चय करता है। ससार को आखिरी सलाम करता है। कुछ डरता है, झिझकता है, अपने पिता को पत्र भी लिखता है और अफीम की गोली को मेज पर से उठाकर उसे कवित्त पूर्ण भाषा मे कुछ कहता है कि इतने मे ही एक लडकी विश्वमोहिनी आ जाती है। वह भी आत्महत्या करना चाहती है और अफीम लेने आई है। मुरारीमोहन इधर-उधर की बातें करने के पश्चात् उसके हृदय की बात भाँप लेता है और उसे हरड की गोली दे देता है। विश्वमोहिनी झट उसे खा लेती है। वह गिरना चाहती है, मुरारीमोहन उसे बैंच पर लिटा देता है। मुरारीमोहन उसका पत्र पढकर जो कि उसने अपने पिता को लिखा हुआ है यह जान लेता है कि यह दहेज के कारण आत्महत्या कर रही है। कुछ उसकी कहानी सुनता है, कुछ अपनी सुनाता है। विश्वमोहिनी को कहता है, मैं बिना दहेज के शादी करूँगा। आप अपने पिता जी से मेरे पिता जी को कहलवा दीजिये। इतने मे चौकीदार जोखू आता है। मुरारीमोहन एक तोला अफीम इसे दे देता है और स्वय विश्वमोहिनी को छोडने के लिए उसके घर चल देता है और पटाक्षेप हो जाता है।

आलोचना

वस्तु—इस कहानी की कथावस्तु मौलिक है, लेखक की अपनी सूझ है। कथा का आरम्भ मुरारीमोहन और रामदीन के विवाह सम्बन्धी कथोपकथन से होता है। इस नाते इसका आरम्भ मनोरजक है। एकाकी नाटक का आरम्भ भी आकर्षक होना चाहिये क्योकि दर्शको को शीघ्र आकृष्ट करना अनिवार्य होता है। कहानी मे टिकाव तब आता है जबकि मुरारीमोहन रामदीन को भेज देता है और स्वय मरने के लिए उद्यत होता है। दर्शक को पता चलता है कि यह अपने पिता की इच्छानुसार विवाह नही करना चाहता और कथा का विकास विश्वमोहिनी के आने पर होता है, क्योकि विश्वमोहिनी के आये विना कथा आगे नही चल सकती थी। विश्वमोहिनी ने इस कथा को गति दी। जिस समय मुरारीमोहन विश्वमोहिनी को अफीम के वदले हरड की गोली दे देता है और वह उसे खाकर वैच पर लेट जाती है तो कथा चरमसीमा पर पहुँच जाती है। दर्शको मे कौतूहल तथा जिज्ञासा वहुत बढ जाती है क्योकि इस प्रकार से अफीम खाकर मरना उन्हें विचित्र सा लगता है, परन्तु बाद मे जव उन्हें यह ज्ञात होता है कि अफीम के स्थान पर हरड की गोली दी गई तो उनका पर्याप्त मनोरजन होता है और यही पर लेखक दोनो का परस्पर समझौता कराके दर्शको को उनके मिलन की ओर सकेत करता है। यही पर कथा का अन्त हो जाता है। कथावस्तु सुखान्त है। समय की एकता इसमे दिखाई गयी है और विषय की एकता एव स्थान की एकता से भी यह एकाकी परिपूर्ण है। कथा मे कौतूहल, आश्चर्य, जिज्ञासा, मनोरजन, व्यग्य, सरलता, स्पष्टता आदि सभी कुछ है।

पात्र—एकाकी नाटक मे पात्र अधिक नही होने चाहियें क्योकि पात्र बढाने से कथा का कलेवर भी वढ जाता है और लेखक अपने उद्देश्य से भी भटक जाता है। अधिक से अधिक पाँच पात्र होने चाहियें। इस एकाकी मे भी चार ही पात्र रगमच पर आते है। दो पात्र मुख्य हैं तथा दो गौण है। सव पात्रो का चरित्र-चित्रण स्वाभाविक है और लेखक को उसमे पूरी सफलता मिली है।

मुरारीमोहन एक आधुनिक नवयुवक है जो अनमेल विवाह के कारण आत्महत्या करना चाहता है। चतुर भी है, क्योकि वह विश्वमोहिनी के दिल की बात को झट भाँप लेता है। विनोदप्रिय भी है तथा आधुनिक युवको के लिये एक आदर्श भी है क्योकि वह दहेज न लेने की प्रतिज्ञा करता है तथा विश्व-मोहिनी से विवाह के लिए प्रस्तुत हो जाता है।

विश्वमोहिनी एक सरला लडकी है। हमारे समाज मे चार प्रकार की लडकियाँ पाई जाती है जो दहेज प्रथा के कारण अपने मन मे प्रतिक्रिया करती हैं।

(१) दहेज के कारण आत्महत्या करने वाली। (२) दहेज का विरोध करने वाली तथा बारात तक को लौटा देने वाली। (३) दहेज की इच्छुक तथा निज माता-पिता से अपनी सुख-सुविधा के लिए प्रत्येक वस्तु माँगने वाली। (४) मूक रहकर सब कुछ सहती हुई भाग्य के अनुसार चलने वाली लडकियाँ जिनके मुख मे जबान तक नही होती।

उपर्युक्त चार प्रकार की लडकियो मे विश्वमोहिनी प्रथम प्रकार की लडकी है जो दहेज प्रथा का विरोध आत्महत्या करके ही करना चाहती है। यह इतनी चतुर भी नही है क्योकि मुरारीमोहन जब इससे भिन्न-भिन्न प्रकार के प्रश्न करता है तो यह चक्कर मे पड जाती है, जिससे वह इसके मनोरथ को भाँप लेता है। इसके हृदय मे अपने घर के प्रति सहानुभूति है। यह नही चाहती कि जिन माता-पिता ने इसे पाला-पोसा, पढाया-लिखाया, उन्हें जब वह छोडे तो उन्हें दिवालिया कर जाये। इससे तो वह आत्महत्या कर लेना ही उचित समझती है। जो कुछ भी हो हमारे समाज मे इस प्रकार की पढी-लिखी लडकियो की कमी नही है जो विश्वमोहिनी की तरह आत्महत्या का मार्ग अपनाती है। परन्तु यह मार्ग है बहुत भयकर, जिसकी अपेक्षा डटकर लडना, जीवित रहना, श्रेयस्कर है। फिर भी यह तो मानना ही पडेगा कि यथार्थ यथार्थ ही होता है जिसका चित्रण लेखक ने विश्वमोहिनी के चरित्र मे किया है।

अन्य दो पात्र गौण हैं और कथा को विकसित करने के लिये आये हैं। एक रामदीन, दूसरा चौकीदार जोखू है। दोनो का चरित्र-चित्रण

स्वाभाविक हुआ है। इससे स्पष्ट होता है कि यह एकाकी पात्र और उनके चरित्र-चित्रण मे भी सफल है।

कथोपकथन—रूपक कथोपकथन-प्रधान होता है। दो पात्रो के सवादो द्वारा कथावस्तु का विकास होता है, पात्रो का चरित्र-चित्रण होता है, उद्देश्य का स्पष्टीकरण होता है और अन्तर्द्वन्द्व की अभिव्यक्ति होती है। प्रस्तुत नाटक के सवाद बडे मनोरजक है। विशेपतया आरम्भ मे जब मुरारीमोहन रामदीन को कहता है कि तुमने शादी से पहले तेजी की माँ को तो देखा होगा, तो रामदीन का उत्तर सुनने योग्य है। वह कहता है—'-राम कहो सरकार, हम तो उहि को तब जाना जब तेजी का जनम होय का वखत आवा। सरकार भरे घर मा कौन केका देखत हे ? माँ-बाप सबै तो रहे। जब लौ तेजी कै माँ से मुलाकात का वखत आवै तब लौ घर मे अ धियार होयत जात रहा और सरकार, आपन मेहरिया का मुख देखे सँ का ? देखा तौ ठीक, न देखा तौ ठीक।" मुरारीमोहन और विश्वमोहिनी के कथोपकथन भी बडे सरल और छोटे-छोटे हैं। जब विश्वमोहिनी मुरारीमोहन का धन्यवाद करती हुई यह पूछती है कि यह एक तोला अफीम कितने की हुई तो मुरारीमोहन का यह कहना बडा मार्मिक हे—"यो ही ले लीजिये, आपसे कुछ न लूँगा।" और फिर व्यग्य कसता है तथा अपने वाक्य की सफाई भी देता है। जैसे—"आपने रात मे इतनी तकलीफ की है, फिर आपकी माँ की तबियत खराब है, उनके लिये चाहिये, आपसे कुछ न लूँगा।" इससे पता चलता है कि वह अपने अल्हडपन को चालाकी से सहानुभूति मे परिवर्तित कर गया है। अन्तिम कथोपकथन भी बडे मनोरजक हैं। जब विश्वमोहिनी कहती है कि आपको एक तोला अफीम की कीमत भी नही मिली तो मुरारीमोहन का उत्तर देखिये। वह कहता है, "मिली ! बहुत मिली, आप मिल गईं।" सक्षेप मे यदि यह कहा जाये कि इस एकाकी के कथोपकथन बहुत सुन्दर बन पडे हैं तो इसमे कोई अतिशयोक्ति न होगी।

भाषा एवं शैली—शैली ही किसी लेखक का व्यक्तित्व होता है। जैसे किसी कहा है, "Style isthe man" और भाषा किसी शैली का प्राण है। प्रस्तुत एकाकी मे रामकुमार वर्मा जी का व्यक्तित्व निहित है। भाषा पात्रो के अनुकूल हैं।

किसी एकाकी मे स्वाभाविकता तभी आ सकती है, जब कि प्रत्येक पात्र अपनी ही भाषा मे बोले, परन्तु इसका यह अर्थ नही है कि किसी अंग्रेज से अंग्रेजी और जर्मन से जर्मनी बुलानी शुरू कर दी जाय। हिन्दी एकाकी मे मूल भाषा तो हिन्दी ही होनी चाहिये। बीच-बीच मे दूसरे शब्द आ जायें तो खप सकते हैं। मुरारीमोहन बीच-बीच मे अंग्रेजी बोलता है, जैसे—"योर नीड इज ग्रेटर दैन माइन"। रामदीन की भाषा भी इसके अनुकूल है, जैसे—"अब सरकार बापै लगाँई हमार काहे माँ गिनती ? ऊ हमसे कहवाईन–सब ठीक है। हमहुँ आपन मुंडिया हलाय दिहिन।" इस एकाकी की शैली व्यग्य-प्रधान है तथा मुरारी-मोहन के हृदय की कसक को धीरे-धीरे विकसित किया गया है। जब दर्शक इसे देखता है तो प्रभावित हुए बिना नही रह सकता।

अन्तर्द्वन्द्व—एकाकी की विशेषता उसका अन्तर्द्वन्द्व होता है। क्योकि इसके द्वारा किसी पात्र का मनोविश्लेषण हो जाता है। रामकुमार वर्मा जी के नाटको मे अन्तर्द्वन्द्व का निर्वाह खूब हुआ है। आरम्भ मे मुरारीमोहन मे अन्तर्द्वन्द्व दिखाया गया है। इससे उसका चरित्र निखर गया है। कभी मा की याद आती है। कभी पत्र न लिखने की सोचता है, परन्तु लिख भी देता है। चूहे को देख कर चौंकता है। अफीम को देखकर ट्राय की रानी हेलन की याद आ जाती है। ये सब बातें हमे बताती है कि मरने के समय उसके हृदय मे बडा अन्तर्द्वन्द्व चल रहा था। ऐसे ही विश्वमोहिनी मे भी तनिक अन्तर्द्वन्द्व दिखाई देता है। जब वह अफीम लेने आती है तो कभी कुछ कहती है कभी कुछ कहती है। वास्तव मे देखा जाय तो इस नाटक मे अन्तर्द्वन्द्व का बडा महत्व है।

उद्देश्य—इस एकाकी का उद्देश्य हमारे समाज की विवाह समस्या है। आज यही समस्या हमारे जीवन को अधिकतर दूषित कर रही है। विवाह जीवन का एक ऐसा मोड है जो उसे नरक भी बना सकता है और स्वर्ग भी, अशान्ति भी उत्पन्न कर सकता है और शान्ति भी। लेखक ने अपनी पैनी दृष्टि से समाज के दोनो रूप सामने रखे हैं। एक तो गवार और अनपढ रामदीन के विवाह का रूप है जो पुरातन है। रामदीन के हृदय मे अपनी पत्नी के विषय मे न विवाह के पूर्व कोई भावना थी और न विवाह के पश्चात्। उसके लिये तो भली-बुरी सब अच्छी है। दूसरा रूप मुरारीमोहन का है जो शिक्षित होते

हुए अपने पिता के कहने पर किसी अनपढ-फूहड लडकी से विवाह करने की अपेक्षा आत्महत्या को अच्छा समझता है। लेखक यह बताना चाहता है कि शादी कोई व्यापार नही है, जैसे रामदीन हमारे समाज के पूँजीपतियो पर व्यग्य कसते हुए कहता है, "आप लोगन की सरकार रुजगार जैसन सादी होवत है" लेखक ने भारतीय विवाह-पद्धति की एक और समस्या को भी लिया है, जिसे दहेज प्रथा कहते है। मानो हमारे समाज मे लडकी होना पाप हो गया है। यदि किसी व्यक्ति के यहाँ दो-तीन कन्यायें हो गई तो उसका समस्त जीवन उनके विवाह की चिन्ता मे ही समाप्त हो जाता है। विश्वमोहिनी भी एक ऐसी लड़की है जिसके विवाह पर छ हजार रुपया खर्च होगा—क्या यह उचित है ? लेखक मानो हमारे समाज को ललकारते हुए कहता है—यह समाज की रीति न बदली तो विश्वमोहिनी और मुरारीमोहन जैसे कितने ही नवयुवक आत्म-हत्या करने की सोचेंगे और कोई आश्चर्य नही कि वे आत्महत्या कर भी ले। इस कुप्रथा को दूर करने के लिये मुरारीमोहन जैसे नवयुवको की भी आवश्य-कता है जो दहेज के बिना शादी करने के लिए तत्पर हो और विश्वमोहिनी जैसी लडकियो की आवश्यकता है जो अपने प्राणो की बाजी लगाकर भी दहेज का विरोध करे। उपर्युक्त विवेचन से सिद्ध होता है कि "एक तोले अफीम की कीमत" नामक एकाकी एक सफल एकाकी है।

प्रश्न ५—श्री भगवतीचरण वर्मा द्वारा लिखित 'दो कलाकार' एकाकी का सक्षिप्त कथानक देते हुए उसकी समीक्षा कीजिए।

उत्तर—नगर के एक मकान के बडे कमरे मे कवि चूडामणि बैठे कुछ रजिस्टर मे लिख रहे है और पास ही मे एक चित्रकार मार्तण्ड बैठा हुआ चित्र मे तूली से रग भर रहा है। चूडामणि मार्तण्ड से कहता है कि परमा-नन्द (प्रकाशक) ने रुपये नही दिये। कह दिया कि अभी रुपये है ही नही, पुस्तकें ही नही बिक रही है और बदमाश ने कल ही एक मोटर खरीदी है। मार्तण्ड कहता है ऐसा पता होता तो रामनाथ (एक रईस) के हाथ सात ही रुपये मे मै अपना चित्र बेच आता। यह सुनकर चूड़ामणि चौक कर कहते हैं कि तुम भी रुपये नही लाये! मार्तण्ड कहता है कि यह कैसे होता कि मैं पचास रुपये का चित्र सात रुपये मे दे आता। कवि चूडामणि

कहता है कि अच्छा हुआ मैं तुम्हारे स्थान पर न हुआ। तुम तो बुद्धू की तरह वहाँ से चुपचाप ही चले आये। मार्तण्ड ने कहा मैंने क्रोध मे आकर उसे चोर, जेवकतरा, गिरहकट आदि शब्द कहे। जब उसने नौकरो से मुझे पीटने को कहा तो मैंने तानकर रामनाथ की नाक पर एक घूंसा मारा। बस क्या था नौकर तो उसे सँभालने मे लगे और मैं वहाँ से चित्र उठाकर भागा और घर आकर ही सांस ली। जल्दी मे मैं अपना चित्र वही छोड आया और उसके बाप का चित्र, जो आज ही विलायत से बन कर आया था उठा लाया। वह अब यहाँ अवश्य आवेगा। यह सुनकर चूडामणि ने उसे शाबाशी देते हुए कहा कि मैं भी परमानन्द की सोने की घडी ले आया हू और कह आया हूँ कि यदि दो घटे मे रुपये न पहुचे तो घडी को बेच दूँगा।

इसी समय दरवाजा खटखटाने की आवाज आती है। बाहर से पहले चूडामणि जी को दरवाजा खोलने की आवाज लगती है और फिर मार्तण्ड जी को। पहले दोनो मे से कोई दरवाजा नही खोलता है, परन्तु बहुत कहने, सुनने और प्रार्थना करने पर मार्तण्ड जी दरवाजा खोलते है। मकान मालिक बुलाकीदास कमरे मे प्रविष्ट होते है। वह दोनो से छ महीने का मकान का किराया मांगता है परन्तु चूडामणि कहते है कि यह बिल्कुल गलत है कि छ महीने का एक सौ पचास रुपया किराया हमे चुकाना है। वह कहता है कि आपके नाती के मुण्डन के निमन्त्रण पत्र पर मगलाचरण की कविता मैंने लिखी थी, एक महीने का किराया अदा हो गया। मार्तण्ड जी कहते हैं कि आपको पूजा करने के लिए राधाकृष्ण की मूर्ति मैंने बनाई थी, दूसरे महीने का किराया यह अदा हुआ। इसी प्रकार दोनो ने छ के छ महीने का किराया अदा हुआ सिद्ध कर दिया और कहा कि अब जब चढेगा तब देंगे।

इसी बीच में परमानन्द वहाँ आता है। चूडामणि उससे कहता है कि मैंने तो आपकी यश-कीर्ति बखान करने के लिए एक पुराण लिखना आरम्भ किया है।

> झूठ, दगाबाजी, मक्कारी, दुनिया के जितने छल-छन्द।
> नहीं बचे हैं इनसे कोई, धन्य प्रकाशक परमानन्द!

परमानन्द चूडामणि को नोट देता है और वह विना गिने ही उन्हें जेब मे रख लेता है। परमानन्द अपनी सोने की घडी वापिस माँगता है, परन्तु चूडामणि उसके अपयश का बखान करना पुन आरम्भ कर देता है जिससे परमानन्द उस घडी को उसे ही भेंट स्वरूप देकर वहाँ से चले जाते हैं। इतने मे ही लाला रामनाथ जी वहाँ आते हैं। वह मार्तण्ड जी को उनका चित्र देते हुए कहते हैं कि आप गलती से मेरे पिता जी का चित्र ले आये हैं। उसे मुझे लौटा दीजिये। मार्तण्ड जी उनके पिता का चित्र वापिस करते है। चित्र को देखकर लाला जी चकित होकर कहते है कि तुमने तो पिता जी की नाक ही साफ कर दी है। इस पर चित्रकार महोदय कहते हैं कि पचास रुपये के चित्र के सात रुपये लगाकर तो तुमने ही अपने पिता जी की नाक कटवाई है। अन्त मे लाला जी मार्तण्ड को पचास रुपये देकर उसका चित्र ले लेते हैं। मार्तण्ड भी उनके पिता जी के चित्र मे नाक ठीक कर देता है।

लाला रामनाथ के चले जाने के वाद लाला बुलाकीदास उनसे कहते है कि अब तो तुम लोगो के पास रुपये आ गये है हमारा किराया दे दो। परन्तु दोनो कहते हैं कि तुम्हारा अब तक का किराया तो हम दे चुके। आगे चढेगा तब देंगे। लाला बुलाकीदास यह कहकर चले जाते है कि तुम दोनो बदमाश हो। मैं तुम्हे देख लूंगा।

समीक्षा

कथावस्तु—'दो कलाकार' एक चरित्रप्रधान एकाकी है। इसकी विशेषता उसकी व्यंग्यात्मक शैली है। चूडामणि एक कवि, मार्तण्ड एक चित्रकार, परमानन्द एक प्रकाशक, रामनाथ एक रईस, और बुलाकीदास मकान मालिक पात्रो को लेकर नाटककार ने एक ओर उक्त चरित्रो पर व्यंग्य किया है तथा दूसरी ओर उसने दो कलाकारो के जीवन को अत्यन्त सम्वेदनापूर्ण रेखाओ मे बाँधते हुए उनके चरित्र का अध्ययन प्रस्तुत किया है।

इसमे सकलनत्रय का भी निर्वाह किया गया है। स्थान नगर के किसी मकान का कमरा है और सभी घटनाएँ एक-दो घटे मे ही दोनो कला-कारो के उसी कमरे मे वैठे-वैठे घट जाती है। कार्य-व्यापार का भी स्थान-समय के साथ सफल सकलन हो पाया है। इस दृष्टिकोण से एकाकीकार को अपनी इस कृति मे पूर्ण सफलता प्राप्त हुई है।

प्रश्न ६—श्री उदयशकर भट्ट द्वारा लिखित 'नये मेहमान' एकाकी का कथानक देते हुए उसकी समीक्षा कीजिये।

उत्तर—विश्वनाथ एक निम्न मध्यम वर्ग का व्यक्ति है। वह अपनी पत्नी रेवती और बच्चो के साथ एक तग मकान मे रहता है। अधिक आय न होने के कारण अच्छे और खुले मकान का प्रवन्ध नही कर सकता है। गर्मी का मौसम है। वहुत कडी गर्मी पड रही है। रात्रि को सोने के लिए पर्याप्त छत भी नहीं है। एक-एक खाट पर दो-दो, तीन-तीन बच्चे सोते है, तव कही काम चलता है। एक दिन सध्या के समय दोनो गर्मी से परेशान होकर सोने के लिये तैयार हो रहे हैं। रेवती के सिर मे दर्द हो रहा है। वे दोनो ये कहते ही हैं कि ऐसे मे कही कोई अतिथि न आ जाय, इसी समय दो मेहमान आ जाते है। विश्वनाथ उन्हें नही पहचानता है। वार-वार उनसे पूछता है कि वे कौन है, परन्तु उनसे कोई सतोषजनक उत्तर प्राप्त नही होता है। दोनो ही वडे हठी हैं। उनके कहने पर विश्वनाथ वर्फ मँगाकर उन्हे ठडा पानी पिलाता है। उन्हें स्नान कराता है। वे दोनो शीघ्र खाना तैयार करने के लिये कहते है। विश्वनाथ रेवती से खाना वनाने को कहता है। पहले तो वह सिर दर्द कहकर खाना वनाने मे आनाकानी करती है, परन्तु वाद मे वह कहती है कि पहले इनका परिचय तो पूछ लो फिर मैं खाना वना दूँगी।

इसी समय दोनो मेहमानो को अपनी भूल याद आ जाती है। विश्वनाथ का पुत्र प्रमोद उन्हे कविराज रामलाल वैद्य के यहाँ छोड आता है, क्योकि ये उन्ही के परिचित मेहमान है। उनके चले जाने के वाद रेवती की जान मे जान आती है। इसी समय रेवती का भाई वहाँ आ पहुँचता है। उसे देखकर रेवती वहुत प्रसन्न होती है और उसके लिये प्रसन्नतापूर्वक खाना वनाती है। विश्वनाथ के यह कहने पर कि अव सिर मे दर्द नहीं होगा, वह कर्तव्य, प्रेम और अपनेपन का सहारा लेती है।

समीक्षा—प्रस्तुत एकाकी नाटक एक निम्न मध्यम वर्ग के परिवार का आर्थिक-सामाजिक सीमाओ से निर्मित एक विशेष मनोविज्ञान का चित्र है। विश्वनाथ और रेवती की निर्धन गृहस्थी मे दो अनजाने मेहमानो के एकाएक आ जाने से पूरे परिवार मे कितना मानसिक सकट उत्पन्न हो गया है, इसका नाटकीय चित्रण इस एकाकी मे प्रस्तुत हुआ है। लेकिन उनके जाने के वाद

परिवार का एक अभिन्न मेहमान (रेवती का भाई) आता है। उसके आगमन से सब कितने प्रसन्न होते हैं, इसका सुन्दर चित्र प्रस्तुत एकाकी की चरम सीमा है। वास्तव मे एकाकीकार ने अपनी इस कृति मे यह भी स्पष्ट किया है कि वास्तव मे जहाँ अपनापन और प्रेम होता है, वहाँ पर जीवन सुखमय और आनन्दित होता है। जैसे रेवती के भाई के आने पर तो सबको प्रसन्नता होती है, परन्तु प्रथम दो अपरिचित अतिथियो का आगमन सभी को सकट मे डाल देता है।

प्रस्तुत एकाकी का कथानक निम्न मध्यम वर्ग के नगर-जीवन का यथार्थ चित्रण है। उसमे आदि से अन्त तक पाठक की जिज्ञासा बनी रहती है। वस्तु मे कौतूहल है। इन्ही के सहारे एकाकीकार को इस एकाकी की घटनाओ और उसके विकासक्रम को एक सूत्र मे बाँधने मे सफलता मिली है। विश्वनाथ और रेवती के चरित्र-चित्रण, इन्ही के मानसिक सघर्ष और इन्ही की गतिशीलता द्वारा प्रस्तुत एकाकी मे स्वाभाविक रूप से नाटकीय आरोह-अवरोह उपस्थित किया गया है। इस एकाकी मे पात्रो की तो भरमार है, परन्तु मुख्य पात्र विश्वनाथ, रेवती, नन्हेमल और बाबूलाल ही हैं। सन्तोष, किरण, कविराज रामलाल वैद्य आदि पात्रो का नाम तो समस्त कथानक मे एक दो स्थल पर ही आता है। हाँ, यह अवश्य है कि विश्वनाथ व रेवती का चरित्र स्वाभाविक ही है। एकाकी के सभी सवाद छोटे-छोटे, सरस, आकर्षक एव हास्यप्रद है। सवादो के द्वारा ही कथानक आगे को बढा है। विश्वनाथ व रेवती के सवादो से निम्न मध्यमवर्ग के सामाजिक व आर्थिक जीवन पर प्रकाश पडा है। सकलनत्रय भी सुन्दर ढग से हुआ है। चरित्रो की स्वाभाविकता, कार्यों एव घटनाओ की परस्पर अन्विति इसकी कला के परम आकर्षण है।

प्रश्न ७—श्री उपेन्द्रनाथ 'अश्क' के 'तौलिये' एकाकी का कथानक देते हुए उसकी समीक्षा कीजिए और उसके नाम की सार्थकता बताइये।

उत्तर—वसन्त एक मध्यम वर्ग का युवक है। वह किसी फर्म का मैनेजर है। वेतन २५०) रुपया मासिक मिलता है। वह स्वय आधुनिक युवकों की भाँति है, परन्तु आधुनिक जीवन की वर्जनाओ और सुरुचि के बन्धनो मे वह अपने को बाँधना नही चाहता। वह नही चाहता कि घर मे प्रत्येक व्यक्ति का

अलग-अलग तौलिया हो। बिना पैर धोये पलग पर न चढना, सबका अलग-अलग लिहाफ होना, एक दूसरे का एक दूसरे के लिहाफ मे पैर भी न रखना, खाना खाना हो या चाय पीनी हो तो डाइनिंग रूम मे, ड्राइग रूम मे नही, हाथ धोने हो तो बाथ रूम मे, जीवन की ये सब वर्जनाएँ उसे पसन्द नही। वह तो इसके विपरीत वातावरण मे पला है। इसका अर्थ यह नही कि वह सफाई पसन्द नही करता है। वह साफ रहता है, सफाई पसन्द करता है, परन्तु जीवन की उपरोक्त वर्जनायें उसे सहन नही। परन्तु इसके विपरीत उसकी पत्नी मधु का पालन-पोषण ऐसे वातावरण मे हुआ है जहाँ जीवन की उपरोक्त सभी वर्जनाओ का पालन किया जाता है।

एक दिन वसन्त हजामत बनाकर मदन के तौलिये से मुँह पूछ लेता है। मधु यह देखकर आग बबूला हो जाती है। दोनो मे तर्क-वितर्क होता है। दोनो को एक दूसरे की बातें पसन्द नही हैं। परन्तु दोनो ही अपने पूर्वनिर्मित स्वभाव से विवश हैं। मधु जीवन की वर्जनाओ का पालन न करने वालो को मूर्ख और असभ्य कहती है। वसन्त इससे और चिढ जाता है और वह कहता है कि इसका अर्थ यह हुआ कि मैं मूर्ख और असभ्य हूँ। वह मधु को समझाता है कि ये सब व्यर्थ के पचडे है। रोगो का निदान इन पचडो मे पडने से नही होता। रोग सदैव निर्बलो को सताता है, स्वस्थ व्यक्ति रोगो से दूर रहता है। बीमारी के सफेद कीटाणुओ से टकराने के लिए तुम्हारे शरीर मे शक्तिशाली लाल कीटाणुओ का होना आवश्यक है। दोनो एक दूसरे पर व्यग्य कसते रहते हैं। अन्त मे मधु क्रोध मे भरकर नौकरानी मगला को आवाज देती है और उससे अपना बिस्तर बाँधकर और ट्रक को कमरे मे लाने के लिए कहती है। वह वसन्त से कहती है कि वह यह सब कुछ सहन नही कर सकती, वह यहाँ से जा रही है। इसी समय टेलीफोन की घटी बजती है और वसन्त टेलीफोन को उठाकर बातें करता है। उसे साहब का पहली गाडी से काशी जाने का आदेश मिलता है। वह काशी चला जाता है।

दो महीने के पश्चात् एक दिन मधु ड्राइग रूम मे पलग पर रजाई ओढे लेट रही है। वह अपने आपको वसन्त के कहने के अनुसार परिवर्तित करने का प्रयत्न कर चुकी है। वह कुछ उदास है। इसी समय उसकी कालेज की सखी सुरो और चिन्ती उससे मिलने आती हैं। मधु, सुरो और चिन्ती पलग पर

रजाई मे बैठकर चाय पीती है और बात करती है। मधु के इस परिवर्तन से दोनो सखियाँ बहुत चकित होती है। चाय पीकर वे चली जाती हैं। मधु लेटी-लेटी सोचती है कि वे मुझसे बहुत नाराज हो गये है। दो महीने से कोई पत्र नही आया है और आया भी है तो केवल दो पंक्तियो का—"मैं कुशल हू और अपनी कुशलता की खबर देना।"

इसी समय सहसा वसन्त का कमरे मे प्रवेश होता है। वह यह जानकर बहुत प्रसन्न होता है कि अब मधु ने जीवन की वर्जनाओ का पचड़ा छोड़कर उसकी इच्छानुसार परिवर्त्तन कर लिया है। मधु उसके लिये चाय तैयार करती है। वह बाथरूम मे मुँह हाथ धोकर आता है और कुर्सी पर पडे उस तौलिये से मुँह हाथ पूछने लगता है, जिससे सुरो और चिन्ती ने चाय के हाथ पूछे थे। यह देखकर मधु फिर चीख उठती है—"यह सूखा नया तौलिया लिया है आपने? मैं पूछती हूँ, आप सूखे और गीले तौलिये मे भी तमीज नही कर सकते। अभी तो सुरो और चिन्ती चाय पीकर इस तौलिये से हाथ पोछकर गयी है।" और फिर दोनो मे वही तर्क-वितर्क शुरू हो जाता है, जो एकाकी के आरम्भ मे था।

इस प्रकार हम देखते हैं कि मधु बदलने का प्रयत्न करने पर भी अपने आपको न बदल सकी। 'अश्क' जी ने इस प्रकार इस एकाकी मे एक ऐसे दम्पति के चरित्र का चित्रण किया है, जिनके जीवन-दर्शन मे मूलगत अन्तर है।

समीक्षा —'तौलिये' एकाकी के कथानक मे मध्यम वर्ग के दाम्पत्य जीवन की तीव्र अनुभूति है। कथानक मनोवैज्ञानिकता, रोचकता, कौतूहल एव जिज्ञासा को लिये हुए है। कौतूहल के ही कारण प्रस्तुत एकाकी की कथावस्तु घटनाओ एव कार्य-व्यापारो के माध्यम से चरितार्थ होती हुई चरम सीमा तक खिंची है। वसन्त के लौटने पर गृह मे प्रसन्नता का वातावरण छा जाने परन्तु पुन कटुता मे बदल जाने मे इसकी चरम सीमा है और यही पर कथानक समाप्त हो जाता है। समस्त कथानक मे मधु और वसन्त दो प्रमुख पात्र है। अन्य पात्रो के द्वारा तो प्रमुख पात्रो के चरित्र और उनकी मानसिक दशा का उद्घाटन किया गया है। पात्रो के चरित्र-चित्रण पूर्ण मनोवैज्ञानिक धरातल

पर हुए हैं और नाटकीय वातावरण तथा चारित्रिक अन्तर्द्वन्द्व दोनो पूर्ण सफलता से अभिव्यक्त हुए हैं।

सवाद स्वाभाविक हैं। इनके द्वारा पात्रो के स्वभाव और उनके आवेगो की पूर्ण अभिव्यक्ति हुई है। एकाकीकार ने पात्रो के मुख से बडे ही आदर्श वाक्य कहलाये हैं। इस कारण प्रस्तुत एकाकी कला की दृष्टि से ही नही, वल्कि सामाजिक दृष्टि से भी बहुत महत्वपूर्ण है। समाज के लिये सवादो के द्वारा महत्वपूर्ण सदेश दिया गया है। जैसे—

(१) मधु—"आदमी की आधारभूत भावनाओ पर नित्य नये दिन चढते चले जाने वाले पर्दो का नाम ही तो सस्कृति है। सोसायटी के एक वर्ग के लिये दूसरा वर्ग सदैव असभ्य और असस्कृत रहेगा। फिर कहाँ तक आदमी सभ्यता और सस्कृति के पीछे भागे। और रही सुरुचि, तो यह भी अभिजात वर्ग की स्नाब्री का दूसरा नाम है।"

(२) वसन्त—"बीमारी का मुकावला इन नजाकतो और नफासतो से नही होता, वल्कि शरीर में ऐसी शक्ति पैदा करने से होता है, जो रोग के आक्रमण का प्रतिरोध कर सके।"

नाम की सार्थकता—एकाकी के आरम्भ मे हम देखते हैं कि 'तौलिया' ही वसन्त और मधु के मध्य तर्क-वितर्क का कारण वनता है। कथानक के अन्त मे जवकि वसन्त काशी से लौटकर आता है और गृहस्थ जीवन मे पुन प्रसन्नता का वातावरण छा जाता है, फिर 'तौलिये' के कारण ही आपस मे कटुता उत्पन्न हो जाती है। वास्तव में एकाकीकार ने 'तौलिये' को ही कथानक के केन्द्र मे रखा है। अत प्रस्तुत एकाकी का 'तौलिये' नाम सार्थक ही है।

प्रश्न ८—श्री भुवनेश्वर प्रसाद जी के 'स्ट्राइक' एकाकी का सक्षिप्त कथानक देते हुए उसकी समीक्षा कीजिए।

अथवा

"समझने की क्या जरूरत है? मशीन की एक पुली को दूसरी पुली नापने जोखने, समझने नहीं जाती।' स्त्री-पुरुष तो जीवन की मशीन के दो पुरजे हैं।' स्ट्राइक एकाकी की इस उक्ति की सत्यता सिद्ध कीजिए।

उत्तर—'स्ट्राइक' श्री भुवनेश्वर प्रसाद जी का एक मनोवैज्ञानिक आधार पर

लिखा गया सफल एकाकी है। इसमे पति-पत्नी की सवेदनाओ का पूर्ण चित्रण है। पुरुष की प्रथम पत्नी का स्वर्गवास हो जाता है। वह दूसरा विवाह कर लेता है। गृह मे तो पूर्ण शान्ति रहती है, परन्तु पुरुष सीधा-सादा है। वह जानता है कि उसकी स्त्री मे दुराव है। वह कोई भी बात स्पष्ट नही बताती है। परन्तु स्त्री यह सोचती है कि पुरुष को उसके इस दुराव का पता नही है। इसी प्रकार इनकी जीवन रूपी गाडी चल रही है। प्रस्तुत एकाकी मे भुवनेश्वरप्रसाद जी ने उनके जीवन की एक घटना पर प्रकाश डाला है।

कथानक—पुरुष और स्त्री (पति-पत्नी) बैठे हुए बातचीत कर रहे है। वास्तव मे उनकी बातचीत का विषय है ये समाज के प्रतिष्ठित लोग। दोपहर बाद का समय है। दोनो नौकर छुट्टी लेकर चले गये है। पुरुष को नौकरो के चले जाने पर यह चिन्ता है कि सन्ध्या के भोजन का क्या प्रबन्ध होगा। इसी समय स्त्री कहती है कि उसे लखनऊ जाना है और वह रात्रि को जी० आई० पी० से जो सवा दस बजे आती है, लौट आवेगी। पूछने पर वह बताती है कि उसके साथ मिसेज सरदार साहब, मिसेज निहाल तथा मिस मित्तर भी जा रही है। पुरुष के बार-बार पूछने पर भी वह यह स्पष्ट रूप से नही बताती हैं कि वहाँ क्या काम है। पुरुष उससे कार ले जाने के लिए कहता है, परन्तु वह मना कर देती है। अन्त मे पुरुष यह कहकर क्लब चला जाता है—"मिलखी-राम के पैट्रोल पम्प पर मैं कार छोड दूंगा। खाने के लिए यह करना है कि मैं कार मे टिफिन कैरियर रख लूंगा, तुम स्टेशन से सालन वगैरह ले आना, न होगा रोटियाँ यही बन जायेंगी।"

सध्या समय जब पुरुष क्लब से लौटता है तो उसके साथ एक युवक भी आता है। दोनो बरामदे मे पडी कुर्सियो पर बैठ जाते हैं और लाइट जला लेते हैं। कोठी की तालिया तो स्त्री अपने साथ ले गई है और अब साढे नौ बजे है। पुरुष का विचार है कि वह साढे दस बजे तक वापिस लौट आवेगी। इसलिए दोनो वही बैठकर बातचीत करते हैं। पुरुष युवक से पूछता है, तुमने अब तक विवाह क्यो नही किया ? साथ ही वह विवाह को एक गहरी समस्या बताता है। युवक की इस बात का उत्तर देते हुए कि मैं औरत को समझ नही पाता इसलिए विवाह नही कर रहा है, वह पुरुष कहता है—

'जनाव, यह सब कोरी वातें है, वातें ! समझने की क्या जरूरत है ? मशीन की एक पुली दूसरी पुली को नापने जोखने, समझने नही जाती। स्त्री पुरुष तो जीवन की मशीन के दो पुर्जे है—दो।'

युवक के यह पूछने पर कि यदि मशीन का एक पुरजा खराव हो जाय तो क्या होगा, वह तुरन्त उत्तर देता है कि पुरजा वदल डालिए, स्वय वदल जाइए। इसी समय मिसेज निहाल का चपरासी वहाँ आता है और एक लिफाफा उस पुरुष को देते हुए कहता है—'मेम साहव ने कहलाया है वह कल आयेगी। सव मेम साहव वहा रहेगे, मोटर वापिस कर दी।' यह सुनकर पुरुष उतावला हो उठता है और वह कहता है-- 'और खाना, मकान और कार मेरी मिलखीराम के पम्प पर पडी है।" उस समय युवक पुरुष से कहता है—'आइये, मेरे होटल मे, आइये, आपकी फैक्टरी मे तो आज स्ट्राइक हो गयी।'

समीक्षा—प्रस्तुत एकाकी का कथानक तीन दृश्यो मे विभाजित है। इसकी सवेदना मे मूलत एक पुरुष और एक स्त्री (पति-पत्नी) सम्बन्धित है। पुरुष सीधा-सादा और अपने जीवन के दृष्टिकोण मे अत्यन्त अस्पष्ट है। उसकी वर्तमान पत्नी क्रम से दूसरी पत्नी है। वह यह भली भाँति जानता है कि उसकी पत्नी उससे प्रेम नही करती है, उसके मन मे दुराव है। स्त्री का विचार है कि उसका पति उसे समझने मे असमर्थ है। वह समझती है कि इस प्रकार उनका निर्वाह हो सकता है। इस प्रकार स्त्री का चरित्र अत्यन्त गूढ एव द्विचरित्रात्मक वन पड़ा है। सविधान की दृष्टि से प्रथम दृश्य मे स्त्री-पुरुष के व्यक्तित्व के दर्शन होते है। दूसरे दृश्य मे तीन पुरुष और एक युवक के वीच मे वार्तालाप होता है और उनकी वातचीत से प्रथम दृश्य के पुरुष और स्त्री के चरित्र पर प्रकाश पडता है। तीसरे दृश्य पर प्रथम दृश्य के पुरुष और द्वितीय दृश्य के युवक मिलते है। पुरुष अपने विवाह से कितना असतुष्ट, क्रुद्ध एव प्रतिक्रिया से भरा पडा है, इसका प्रत्यक्ष प्रमाण पुरुष की युवक के साथ वातचीत मे हमे मिलता है। वह चाहता है कि उसी की तरह सभी विवाहित हो, कोई अविवाहित न रहे। वह स्त्री और पुरुष को जीवन रूपी मशीन के दो पुरजे वताता है। नाटक की चरम सीमा उस विन्दु पर होती है, जव युवक को यह

स्पष्ट हो जाता है कि उस पुरुष की जीवन-मशीन का एक पुरजा खराव हो गया है, क्योकि पुरुष को उसकी स्त्री, जो प्रथम दृश्य मे लखनऊ चली जाती है, अन्त तक नही आती और वह पुरुष पर व्यग्य कसता है—"आइये मेरे होटल मे आइये। आपकी फैक्टरी मे तो आज स्ट्राइक हो गयी।" इस प्रकार 'स्ट्राइक' के कथानक के मूल धरातल के अन्तराल मे एक तीव्र अनुभूति है, उसमे सरसता, जिज्ञासा और कौतूहल है।

सवाद मनोवैज्ञानिक एव स्वाभाविक है। उनमे पुरुष की मर्मवेदना, क्रोध और उसकी प्रतिक्रिया स्पष्ट दिखाई देती है। एकाकीकार ने सवादो को वाद-विवाद मे परिणत होने से बचाया है। प्रथम दृश्य मे स्त्री और पुरुष का वाद-विवाद नही होने दिया। तृतीय दृश्य मे जब युवक और पुरुष की बात-चीत वाद-विवाद का रूप लेने ही जा रही थी कि मिसेज निहाल के चपरासी के आगमन से और स्त्री के लिफाफे को पुरुष को देने पर कथानक अपनी चरम सीमा पर पहुँचकर समाप्त हो जाता है।

प्रस्तुत एकाकी के तीन दृश्यो मे विभाजित होने के कारण देश (स्थान) का तो निर्वाह नही हो पाया है, परन्तु काल और कार्य व्यापार का निर्वाह भली भाँति हुआ हैं। प्रस्तुत एकाकी रग-मचीय दृष्टि से पूर्ण सफल है। यह अनेक बार अभिनीत हो चुका है।

प्रश्न ६—श्री जगदीशचन्द्र माथुर द्वारा लिखित 'भोर का तारा' एकांकी का कथानक देते हुए उसकी समीक्षा कीजिए।

उत्तर—कथानक—उज्जयिनी नगरी (गुप्त राजाओ की राजधानी) मे एक कवि शेखर एक अस्त-व्यस्त पडे कमरे मे कविता लिख रहा है —

अँगुलियाँ आतुर तुरत पसार।
खीचते नीले पट का छोर॥

अचानक ही उसका मित्र माधव वहाँ आकर पुकारता है। शेखर का ध्यान भग होता है और वह उठकर माधव की ओर बढता है। माधव एक राजकर्मचारी है। वह प्राय शेखर से मिलने आता रहता है। दोनो आपस मे बातचीत करते है। शेखर उसे अपनी कविता सुनाता है और उसका अर्थ भी समझाता है। शेखर माधव से कहता है कि कभी-कभी तो मुझे तुम मे भी

कविता दीख पडती है। परन्तु माधव इस बात का विरोध करता हैं। वह कहता है कि हम राजनीतिज्ञो और सैनिको का कविता से क्या सम्वन्ध हो सकता है। वह यह स्पष्ट कह देता है कि शेखर का जीवन सौंदर्य है, परन्तु मेरा जीवन तो कर्तव्य है, सौदर्य नही।

शेखर उससे कहता है कि सम्राट् के भवन के पास राजपथ के किनारे वह एक भिखमगी को देखता है। उसमे उसे एक कविता, एक लय, एक कथा झलक पडती है। इसलिए वह उसे सदा भीख देता है। इसी समय माधव शेखर को उसकी प्रेयसी 'छाया' का स्मरण कराता है और उसे यह शुभ सूचना भी देता है कि छाया ने राजदरवार मे एक तुम्हारा बनाया हुआ गीत गाया था, जिसको सम्राट् ने वहुत पसन्द किया और उस 'गीत' के वनाने वाले कवि 'शेखर' को राजकवि बनाने का निश्चय कर लिया है। साथ ही वह यह भी बताता है कि आठ दिन वाद छाया का भाई देवदत्त और मैं तक्षशिला विद्रोह-दमन करने के लिए जा रहे हैं। शेखर यह समाचार पाकर बहुत प्रसन्न होता है।

देवदत्त और माधव तक्षशिला रवाना होते है। चलते समय देवदत्त छाया को माता जी का वह पत्र दिखाता है जिसने शेखर और छाया को सर्वदा के लिए वाँध दिया। राजकवि शेखर और उसकी पत्नी छाया का जीवन बहुत सुखपूर्वक व्यतीत हो रहा है। राजदरवार मे दिन-प्रतिदिन शेखर का सम्मान वढता ही जा रहा। साथ ही साथ शेखर और छाया के प्रेम मे भी वृद्धि हो रही है। शेखर 'भोर का तारा' महाकाव्य पूर्ण कर एक दिन छाया को दिखाता है। छाया उसे देखकर वहुत प्रसन्न होती है। वे दोनो सोच रहे हैं कि उनका यह महाकाव्य राजदरवार मे उनकी प्रतिष्ठा को और अधिक बढा देगा और उनका भावी जीवन बहुत ही सुखमय वन जायेगा। इसी समय छाया कुछ चिन्तित दिखाई देती है। वह शेखर से पूछती है कि क्या वह उस महाकाव्य को सम्हालकर रख सकेंगे। उसे उसके नष्ट होने का भय है। इसी समय माधव वहाँ आकर सूचना देता है कि गुप्त साम्राज्य पर महासकट आ गया है। हूणों से युद्ध करते समय देवदत्त वीरगति को प्राप्त हो चुका है। कवि। ऐसे सकटकाल मे देश की रक्षा के लिए सैनिको की आवश्यकता है। तुम

अपनी कविता से सुप्त युवको को जागृत कर दो, उनमे देश-प्रेम, वीरता और साहस का सचार कर दो।

शेखर उसी समय अपने महाकाव्य 'भोर का तारा' को अग्नि की भेंट कर बाहर चला जाता है। कमरे की पिछली खिडकी खोलकर माधव और छाया देखते हैं। इससे बाहर का कोलाहल स्पष्ट सुनाई पडता है—

"नगाड़ें पै डंका बजा है, तू शस्त्रो को अपने सभाल।
बुलाती है वीरो को तुरही, तू उठ कोई रस्ता निकाल।"

छाया के माधव से यह कहने पर कि तुमने मेरा प्रभात नष्ट कर दिया, वह कहता है—"छाया, मैंने तुम्हारा प्रभात नष्ट नही किया। प्रभात तो अब होगा। शेखर तो अब तक भोर का तारा था। अब प्रभात का सूर्य होगा।

समीक्षा–जगदीशचन्द्र माथुर द्वारा लिखित 'भोर का तारा' उनका प्रसिद्ध ऐतिहासिक एकाकी है। इसकी कथा गुप्त सम्राट् स्कन्दगुप्त के शासन काल की है। शेखर उज्जयिनी का कवि है और छाया पहले शेखर की प्रेमिका और बाद मे उसकी पत्नी बनती है। शेखर छाया के प्रेम के प्रतीक मे 'भोर का तारा' नामक महाकाव्य की रचना करता है। इस महाकाव्य के आधार पर छाया और शेखर अपने भावी जीवन के अनेको स्वर्णिम स्वप्न देखते हैं। परन्तु इसी समय हूणो का भारतवर्ष पर आक्रमण होता है और गुप्त साम्राज्य पर सकट छा जाता है। ऐसे समय मे शेखर अपने महाकाव्य को अग्नि की भेंट कर देश की रक्षार्थ स्वय युद्ध की अग्नि मे कूद पडता है, केवल इस आदर्श की प्रेरणा से—"शेखर तो अब तक भोर का तारा था, अब वह प्रभात का सूर्य होगा"। यही पर एकाकी अपनी चरम सीमा पर पहुँचकर समाप्त हो जाता है। प्रस्तुत एकाकी मे दो दृश्य हैं। यह अपने भावपक्ष और कलापक्ष दोनो मे सशक्त है।

संवाद मनोवैज्ञानिक और स्वाभाविक है। सवादो के द्वारा शेखर और माधव दोनो मुख्य पात्रो के स्वभाव और उनके आवेगो की पूर्ण अभिव्यक्ति हुई है। कथावस्तु का विकास भी सवादो के द्वारा ही हुआ है। उनमे जिज्ञासा और कौतूहल है। अत सवादो की दृष्टि से प्रस्तुत एकाकी पूर्ण सफल है। रगमचीय दृष्टि से भी 'भोर का तारा' एकाकी सफल है। यह प्राय अभिनीत होता ही रहता है। देश, काल और कार्यव्यवहार का भी सकलन है। सभी

घटनाएँ उज्जयिनी नगरी के दो मकानो मे ही घटित होती है। इन सभी घटनाओ मे अधिक-से-अधिक पन्द्रह-बीस दिन का समय लगा होगा, परन्तु एकाकीकार ने तो घटनाओ का सम्बन्ध ऐसा जोडा है कि १५ या २० दिन का समय किसी को नही अखरता।

प्रश्न १०—श्री विष्णु प्रभाकर द्वारा लिखित 'मीना कहाँ है ?' एकाकी नाटक का कथानक देते हुए उसकी समीक्षा कीजिए और बताइये उनका यह नाम कहाँ तक ठीक है ?

उत्तर—नरेश एक मध्यमवर्ग का साधारण-सा व्यक्ति है। वह दफ्तर का बाबू है। उसके कोई सन्तान नही होती है। वह शरणार्थी शिविर से एक 'मीना' नाम की लडकी ले आता है। वह उसे बहुत प्यार करता है। नरेश की पत्नी अपने बाप के चली जाती है और नरेश मीना को अपने पास ही रख लेता है। मीना की आयु लगभग सात वर्ष की है। मीना प्राय पडौसी दीनानाथ की पुत्री सीता के साथ खेलने चली जाया करती है। दीनानाथ सीता के लिए बहुत अच्छे-अच्छे खिलौने लाया करते है। एक दिन रात्रि के समय वह बहुत देर तक सीता के साथ खेलती रहती है। नरेश उसे स्वय जाकर वहाँ से जबर-दस्ती लाता है। घर आकर वह नरेश से खिलौने माँगती है। नरेश उसे उसकी इच्छानुसार खिलौने दिलाने मे असमर्थ है। जब मीना खिलौनो के लिए अधिक जिद करती है, तो नरेश को क्रोध आ जाता है। वह उसे बहुत बुरी तरह से पीटता है। वह बेहोश हो जाती है। नरेश घबरा जाता है। वह भय के कारण उसे डाक्टर के पास तो नही ले जाता है। परन्तु घर पर ही उसे ब्राडी वगैरा देता है। परन्तु वह होश मे नहीं आती है और रात्रि के समय वह मर जाती है। नरेश चुपके से उसे उठाकर अपने मकान के पीछे के खण्डहरो मे ले जाता है और वहा गाड देता है।

मीना मर जाती है, परन्तु नरेश की दशा बहुत खराब हो जाती है। वह पागल-सा हो जाता है। वह पुत्री के इस वियोग को सहन करने मे असमर्थ है। अपने अपराध को छिपाने के लिए वह दूसरे दिन दफ्तर से लौटकर मीना को ढूँढने लगता है। वह अपने सभी पडौसियो से कह देता है कि मीना ला-पता है। उसकी दशा को देखकर सभी को दया आती है। नरेश का एक मित्र

सतीश गुप्तचर विभाग मे कार्य करता है। वह मीना का पता लगाने मे बहुत दिलचस्पी लेता है। मीना के गुम होने की रिपोर्ट पुलिस थाने मे दर्ज करा दी जाती है, रेडियो से भी प्रसारित कर दी जाती है। थानेदार पडित दीनानाथ पर सदेह करते है कि उन्ही का मीना के गुम कराने मे हाथ है। थानेदार और सतीश एक साधुग्रो की टोली ग्रौर ग्रनाथालय के मैनेजर को पकड लेते हैं, परन्तु वे निर्दोष सिद्ध होते हैं। थानेदार ग्रौर सतीश के प्रयत्नो का ग्रभी कोई परिणाम नही निकल रहा है।

सतीश एक पुलिस कर्मचारी 'रामसिह' को दीनानाथ ग्रौर नरेश की गतिविधि देखने को छोड देता है। बीच-बीच मे थानेदार ग्रौर सतीश दीनानाथ ग्रौर नरेश से मिलकर वाल की खाल निकालने का प्रयत्न करते हे। नरेश की विगडती दशा को देखकर सतीश बार-बार उसे धैर्य बँधाता है कि वे 'मीना' का पता ग्रवश्य ही लगाकर छोडेंगे। एक दिन रामसिह सतीश ग्रौर थानेदार को सूचना देता है कि नरेश दफ्तर से वापिस ग्राकर ग्रपने मकान के पीछे पडे खण्डहर मे चला गया ग्रौर वह मीना को याद कर-करके बहुत रोया। सतीश उसे फिर उसकी गतिविधि देखने को भेज देता है। रामसिह एक प्रात (ग्रभी ग्रन्धकार ही था) ग्राकर सूचना देता है कि नरेश उसी खडहर मे बैठा रो रहा है, वह लगभग पागल ही हो गया है।

सतीश ग्रौर थानेदार रामसिह के साथ उस खडहर मे जाते है। वहाँ पर नरेश उन्हें देखकर घबरा जाता है ग्रौर सतीश के ग्राश्वासन पर ग्रपना सारा ग्रपराध बता देता है। थानेदार नरेश को हथकडियाँ लगाकर ले जाता है ग्रौर सतीश मीना के शव को खुदवाता है।

समीक्षा–प्रस्तुत एकाकी नाटक विशुद्ध मनोविज्ञान के धरातल पर निर्मित हुग्रा है। किसी भी वस्तु ग्रथवा प्राणी के प्रति जिनको मनुष्य ग्रपनी ग्रात्मा से प्यार करता है, प्राय एकात्मता हो जाती है। यह एकात्मता की भावना कभी-कभी इतनी तीव्र ग्रौर भयानक हो जाती है कि मनुष्य ग्रपने प्रिय वस्तु ग्रथवा प्राणी को, किंचिन्मात्र भी उसकी स्नेह-सीमा से उसे दूर हटा देखकर, क्षमा नही कर सकता, चाहे जीवन भर उस प्रिय वस्तु ग्रथवा प्राणी के लिए उसे तडपना पड़े या पागल हो जाना पडे। 'मीना कहाँ है ?' मे यही मनोविज्ञान इसका

प्राणविन्दु है। मीना का पिता नरेश अपनी प्राणो से प्रिय पुत्री मीना को प्रेम की प्रतिक्रियावश मारता है और सयोगवश वह मर जाती है। परन्तु इसके पश्चात् नरेश मीना के लिए पागल हो जाता है। इसी सवेदना की पूर्ण नाटकीय अभिव्यक्ति इस नाटक मे हुई है।

प्रस्तुत एकाकी मे शुरू से ही मर्मवेदना है। इसमे कौतूहल एव जिज्ञासा है। पाठक आरम्भ से ही इसके परिणाम को जानने के लिए बेचैन हो उठता है। अन्त मे नरेश की गिरफ्तारी इसकी चरम सीमा है और यही पर यह नाटक समाप्त हो जाता है। सवाद स्वाभाविक एव मनोवैज्ञानिक है। नरेश के कथोपकथन मे जहाँ पिता का प्रेम लक्षित हो रहा है, वहाँ एक खूनी किस प्रकार अपने अपराध को छिपाने का प्रयत्न करता है, यह सभी कुछ नाटककार ने सफलतापूर्वक इसमे चित्रित किया है। सतीश के सवादो से स्पष्ट होता है कि किस प्रकार गुप्तचर विभाग के कर्मचारी बाल की खाल निकालने का प्रयत्न करते हैं।

यह एकाकी छ दृश्यो मे विभाजित है। इसी कारण से इसमे स्थान और काल की एकता का निर्वाह नही हुआ है। हाँ, कार्य-व्यापार का निर्वाह पूर्ण रूप से हुआ है। रगमच की दृष्टि से भी नाटक सफल है।

नामकरण—कथानक का आरम्भ मीना के खोने से प्रारम्भ होता है और फिर अन्त तक सतीश, थानेदार आदि सभी की जीभो पर 'मीना कहाँ है ?" प्रश्न सवार रहता है। समस्त कहानी 'मीना' से ही सम्बन्धित है और 'मीना' ही इसकी मुख्य पात्रा है। अन्त मे मीना के शव का पता लगाने के साथ-साथ नाटक समाप्त हो जाता है। अत नाटक का यह नाम उचित है।

प्रश्न १—श्री लक्ष्मीनारायण लाल द्वारा लिखित 'मड़वे का भोर' एकाकी नाटक का कथानक देते हुए उसकी समीक्षा कीजिए और यह भी बताइये कि इस एकाकी मे किस समाजिक समस्या का चित्रण किया है।

उत्तर—दादू एक मध्यवर्ग का व्यक्ति है। उसके तीन पुत्रियाँ सीता, सोना और लाजो है, परन्तु उसके पास उनकी अच्छी शादी करने के लिए पर्याप्त धन नही है। पांडे के कहने के अनुसार दादू शेखूपुरा के चौधरी से सीता का विवाह कर देता है। चौधरी की आयु चालीस वर्ष से कम नही है।

परन्तु पाडे ने इस कार्य का सम्पन्न करने के लिए रुपया खाया है। वास्तव मे पाडे दादू जी का बहुत हितैषी बनता है। परन्तु भीतर ही भीतर अपना स्वार्थ सिद्ध कर रहा है। सीता का विवाह हो जाता है। परन्तु सीता के विदा हो जाने के पश्चात् घर मे विषाद का वातावरण छा जाता है।

दूसरे दिन प्रात काल घर का नौकर भीखी आकर लाजो और सोना को जगाता है। वह उनसे हँसी भी करता है, परन्तु उसका भी हृदय सीता के लिए दु ख से भरा हुआ है। वही पर सीता की ममेरी बहन कचन और माँ सो रही हैं। वे भी जाग उठती है। सभी सीता के वियोग मे दु खी है और विवाहोत्सव पर चारो ओर मिठाइयाँ व नमकीन आदि सभी सामान अस्त-व्यस्त पडा है। कुत्ते और विल्लियाँ अपनी दावत कर रहे है। माँ उस सामान को सगवाने के लिए कहती है, पर काम करने की अब किस मे सामर्थ्य है। अकेला भीखी ही कहाँ-कहाँ तक कार्य करे।

हीरा एक २२ वर्षीय युवक है। वह सीता को वहुत प्यार करता है और सीता उसे वहुत प्यार करती है, परन्तु वह सकोचवश सीता को अपना नही वना सका। सीता के विवाह पर गत तीन दिन से उसने भोजन नही किया है। कचन सोना को वताती है कि सीता ने हीरा से भाग चलने के लिए कहा, अपनी माग मे सिंदूर भरने के लिए कहा, परन्तु हीरा की निर्वलता व सकोच ने उसे अपने हाथो से निकाल दिया। दोनो यह निश्चय करती है कि आज हठपूर्वक हीरा को भोजन खिलाना है। भीखी सोना से कहता है कि जव मैं पिपरी के चौराहे पर आखिरी वार सीता को पानी पिलाने लगा तो वह मुझ से चिपककर सुवकने लगी और यह सुहाग की अँगूठी उतार कर मुझे दी और कहा कि इसे मेरे हीरा को दे देना। वह यह भी वताता है कि हीरा ने उसे अँगूठी को लेने से मना कर दिया है। वह उस अँगूठी को सोना को देता है और इसे हीरा को देने के लिए कहता है। सोना ये सव वातें कचन को वता देती है। लाजो हीरा को साथ लेकर आती है। सोना और कचन के हठ करने पर वह एक गिलास शर्वत पी लेता है और कुछ नमकीन भी खा लेता है। वह आज कुछ प्रसन्न दिखाई देता है। सोना कहती है कि मैं 'जोगी वीर' के थान पर गई थी। वातचीत के वीच मे सोना हीरा से पूछती है कि क्या तुम मेरी एक वात मानोगे? हीरा कहता

है कि एक नही सौ। और वह साथ ही यह भी वताता है कि रात्रि को उसने एक स्वप्न देखा था जिसमे उसने सीता को सुहाग के वस्त्रो मे देखा था। सीता ने उससे कोई बात भी कही है। यह सुनकर कचन और सोना यह वात पूछने के लिए पीछे पड जाती हैं। हीरा सोना से कहता है कि "तुम मेरी एक वात मानोगी ?" सोना कहती है कि "एक नही सौ" "बुरा तो नही मानोगी ?" "नहीं।"

सोना हीरा के सम्मुख सीता के सुहाग की अँगूठी पेश करते हुए कहती है कि मेरी वात मानो तो इस अँगूठी को स्वीकार कर सीता की इच्छा पूर्ण करो। हीरा अँगूठी लेकर काँपते हुए हाथो से सोना की अँगुली में उसे पहना कर कहता है—'यही सीता ने स्वप्न मे मुझसे कहा था।' सोना शर्मा कर चली जाती है। हीरा कचन से पूछता है कि मैंने कुछ बुरा तो नही किया। सोना ने बुरा तो नही माना। कचन उत्तर देती है इसमे बुरा मानने की क्या वात है ? इससे वढकर और खुशी क्या हो सकती है।

हीरा चुपचाप वैठा हुआ है। दादू और पाँडे साथ-साथ वहाँ आते हैं। विवाह मे दादू का वहुत रुपया व्यय हो गया है। उस पर ऋण भी काफी हो गया है। दादू को पाँडे ने सेंधुआ के चौधरी से कुछ रुपया ऋण पर दिलोया था। दोनो वैठे वातें कर ही रहे हैं कि इसी समय जागी हलवाई ६० रुपये का विल वनाकर लाता है और दादू से गिडगिडाकर रुपया माँगता है। पाँडे उसे साठ रुपये दे देता है। वह सोहन का ऋण भी अदा करा देता है। पाँडे दादू को वताता है कि आज प्रात जव वह सेंधुआ से आ रहा था तो चौधरी ने तुम्हारी आवश्यकता का अनुभव करते हुए मुझे पाँच सौ रुपया दिया है। दादू से पाँडे कहता है कि तुम अपनी पुत्री सोना का विवाह सेंधुआ के चौधरी के लडके से कर दो। मैंने चौधरी को तैयार कर लिया है। ऐसा घर आसानी से किसी को भी नही मिल पाता है। वेचारा दादू विवश है, वह हाँ करने के अतिरिक्त और कर क्या सकता है।

सोना के विवाह की वात सुनकर हीरा की चीख निकल जाती है। वह परेशान हो उठता है। उसके सारे शरीर पर पसीना वहने लगता है। दादू और पाँडे के चले जाने के वाद कचन सोना को लेकर वहाँ आती है। वह शर्म

से नीचे को मुँह किये हुए है। हीरा अचानक कचन से कहता है कि आज रात्रि को ही मैंने सोना को लेकर भाग जाना है, क्या तुम इसमे मेरी सहायता करोगी। सोना यह सुनकर काँपने लगती है। वह कहती मुझे डर लग रहा है। हीरा स्पष्ट बता देता है कि सोना का विवाह पक्का हो गया है, वह भी मुझ से छिन जायेगी। इसी समय भीखी आकर सूचना देता है कि शेखूपुरा से एक आदमी आया है। सीता बीमार है। आज रात्रि को भोर मे ही वह गिर पडी हीरा यह सुनकर तेजी से बाहर चला जाता है।

समीक्षा—'मडवे का भोर' एक सामाजिक एकाकी नाटक है। इसमे उस सम्पूर्ण स्थिति का वह अनूठा नाटकीय चित्र है जो इन तमाम निम्न मध्यम वर्गीय परिवार मे उस भोर—सुबह को बनता है जहाँ से एक दिन पूर्व उस घर की लडकी विवाहोपरान्त ससुराल को विदा हो जाती है। विवाह के पश्चात् दूसरी ही प्रातः को लडकी के पिता के सम्मुख विवाह की समस्त कटु यथार्थ स्थितियाँ आती हैं। इस वातावरण और स्थिति के मध्य इस एकाकी की समस्या अपने एक नाटकीय कथासूत्र के साथ आगे बढती है। सीता को हीरा से प्रेम था। परन्तु आर्थिक समस्या के कारण ही उसका विवाह ४० वर्षीय व्यक्ति से होता है। हीरा सीता के प्रेम की पवित्रता मे उसकी छोटी बहन सोना को अपनी पत्नी बनाने की कल्पना करता है, लेकिन उन्ही आर्थिक, सामाजिक विवशताओं से अन्त मे सोना भी हीरा के भाग्य से छिन जाती है और ऐसी सम्भावना प्रतीत होती है कि सोना का भाग्य भी सीता की भाँति ही होगा। इसी समय सीता की बीमारी की हीरा को खबर मिलती है। इस स्थिति मे प्रस्तुत एकाकी कथानक अपनी चरम सीमा पर पहुच जाता है और नाटक समाप्त हो जाता है। कथानक मे स्वाभाविकता, कौतूहल एवं जिज्ञासा है। पाठक को अन्त तक परिणाम जानने की जिज्ञासा बनी रहती है।

प्रस्तुत एकाकी मे हीरा, सोना, कचन, सीता, दादू और पाडे आदि कई पात्र हैं, परन्तु प्रमुख पात्र व पात्रा केवल हीरा, सोना व कचन ही हैं। सभी पात्रो के चरित्र स्वाभाविक ही हैं। हीरा, दादू, सोना आदि के मानसिक सघर्ष और इन्ही की गतिशीलता द्वारा एकाकी मे स्वाभाविक रूप से नाटकीय आरोह-अवरोह उपस्थित हुआ है। मूल पात्र हीरा है। वह प्रस्तुत एकाकी के चरम

लक्ष्य का नायक है, यही वह शक्ति है, जिसके सहारे नाटक की मूल संवेदना चरम सीमा तक पहुची है, और नाटक की अनुभूति साकार हो उठी है। सोना, कचन आदि अन्य पात्र तो हीरा की सहायतार्थ हैं।

सम्पूर्ण नाटक मे नाटकीय स्थितियाँ, अन्तर्द्वन्द्व और घात-प्रतिघात की अवतारणा इतने सुन्दर कथोपकथन और वातावरण के बीच से हुई है कि नाटक की प्रभविष्णुता मे अपार बल आ जाता है। प्रस्तुत एकाकी नाटक मे देश, काल और कार्य-व्यापार का सकलन पूर्ण सफलता से हुआ है। अभिनय की दृष्टि से तो इसमे शहर और ग्राम दोनो को रिझा लेने की शक्ति है।

प्रस्तुत एकाकी मे मध्यम वर्ग के उन माता-पिता और उनकी पुत्रियो की दशा का यथार्थ चित्र खीचा गया है, जिनके पास धनाभाव होता है। सीता हीरा से प्रेम करती है, परन्तु उसका विवाह ४० वर्ष के व्यक्ति से होता है। इसके दो कारण है। एक तो दादू (सीता के पिता) के पास धन का अभाव और दूसरा कारण पाडे जैसे समाज के दुष्ट व्यक्ति जो अपने स्वार्थ को सिद्ध करने के लिए एक १६-१७ वर्षीय युवति का विवाह चालीस वर्ष के व्यक्ति से कराते हैं और फिर इस पर भी अपना अह-सान रखते हैं। ऋणी होने की विवशता और अपने पास धन न होने के कारण ही तो दादू सोना का विवाह सेंधुआ के चौधरी के पुत्र के साथ करने के पाँडे के प्रस्ताव को चुपचाप मान लेते है, यद्यपि हृदय से उनकी इच्छा ऐसा करने की नहीं है। दादू के इन शब्दो से समाज के निर्धनो की विवशता पर प्रकाश पडता है—"ईश्वर किसी को लडकी न दे॰ सच, कलेजा फटा जाता है।"

उपर्युक्त के अतिरिक्त 'मड़वे का भोर' एकाकी से समाज की शिकार होने वाली मूक सीता और सोना जैसी लडकियो पर प्रकाश पडता है। आज समाज मे न जाने कितनी सीता और सोना मूक रहकर अपने जीवन को अस्वाभाविक पति पाकर नष्ट कर रही हैं। यह सब माता-पिता का अपनी सतान पर अनु-शासन (विशेषकर विवाह के मामले मे) और धनाभाव का कुपरिणाम है।

प्रश्न १२—निम्नलिखित पात्रो का चरित्र-चित्रण कीजिये :—

सतीश, मुरारीमोहन, विश्वनाथ, मधु, वसन्त, शेखर, माधव, छाया, नरेश, भीखी, सोना, हीरा।

सतीश—'सतीश' पन्त जी के 'छाया' एकाकी का प्रमुख पात्र है। वह नवयुवक है। सुनीतिकुमार की पुत्री सुनीता का उससे स्नेह है। वह भी उससे प्रभावित है और सुनीता के मन के भावो को भली-भाँति जानता है। प्राचीन सामाजिक रूढियो से पीड़ित नारी समाज की प्रतीक सुनीता का विवाह खिलाडी युवक प्रमोद से हो जाता है, परन्तु उसका सतीश से स्नेह बना ही रहता है। सतीश आधुनिक क्रान्तिकारी विचारो का है। उसे यह सहन नही है। वह नारी समाज मे क्रान्ति ला देना चाहता है, परन्तु विद्रोह के द्वारा नही। वह सुनीता से कहता है—"······तुम हमारे समाज मे नारी के मूक दयनीय जीवन की एक करुण उदाहरण भर हो।······जिसके हृदय की प्रत्येक धड़कन मे युग-युग से नारी की नि:शब्द व्यथा छटपटाती रही है। ——कुछ साल पहिले मैं शायद तुमसे विद्रोह करने को कहता···· किन्तु अब मै उसे ठीक नही समझता।······नारी समाज को दूसरा रास्ता खोजने की आवश्यकता नही है····· केवल हमारी स्त्रियो और विशेपकर नवयुवतियों को घर से वाहर, इस वडे सामाजिक जीवन मे भी अपना स्थान बना लेना है। ····· उनके विना हमारा समाज एकदम अधूरा है।······उन्हें पुरुषो के साथ नवीन लोक-जीवन तथा मानव का निर्माण करने मे हाथ बँटाना है। ·· केवल इसी प्रकार हमारा गृहस्थ-जीवन परिपूर्ण तथा आनन्द-मगलमय बन सकता है।······हम दाम्पत्य प्रेम तथा घरो मे विभक्त पारिवारिक जीवन को जरूरत से ज्यादा महत्त्व देते हैं।······और अपने असली वडे परिवार को और उस सामाजिक जीवन को भूल गए हैं जिसकी पसलियों के भीतर हमारे गृहस्थ जीवन का हृदय धडकता है, जहाँ से उसकी नाड़ियो मे रक्तप्राण का संचार होता है।······मैं चाहता हू कि तुम लोक-निर्माण के इस महान् कार्य को अपना सको।······हमारे देश मे शिक्षित अशिक्षित स्त्रियो की दो पीढियो के बीच एक बहुत वडी खाई है।······तुम्हारी पीढी का यही काम है कि तुम नई पीढी के लिए रास्ता बनाओ।······अपने वाल-बच्चों के लिए सुन्दर स्वस्थ सामाजिक जीवन का निर्माण करो।" देश की अस्त-व्यस्त व असगठित दशा से वह घृणा करता है। "ये गदी गलियाँ,······मधुमक्खी

के छत्ते की तरह सटे हुए शहर के छोटे-बड़े बेसिलसिले मकान," "हमारे देश का तरह-तरह का बेढगा पहनावा······रागद्वेष से भरे, जीवन से ऊबे हुए लोगो के छोटे-मोटे घिनौने काम······यही सब हमारे सदियो से असगठित देश का बिखरा हुआ मन है। सब कुछ बेतरतीब। सतुलन और सामजस्य से हीन। इस सब के ढेर प्रभाव से बचना क्या आसान है ?" सतीश के अपने सवादो से ही उसका चरित्र पूर्ण रूप से स्पष्ट हो जाता है।

मुरारीमोहन—मुरारीमोहन डाक्टर रामकुमार वर्मा के एकाकी 'एक तोले अफीम की कीमत' का नायक है। उसके पिता अफीम का व्यापार करते हैं। वह बी० ए० पास आधुनिक विचारो का युवक है। उसके पिता अपनी पसन्द की किसी लडकी से उसका विवाह करना चाहते है, परन्तु वह पिता के इस विचार का विरोधी है। वह अपनी पसन्द की लडकी से विवाह करने के पक्ष मे है। एक दिन पिता जी की अनुपस्थिति मे वह रात्रि के समय अफीम खाकर आत्म-हत्या करने का निश्चय करता है। वह अपने नौकर रामदीन को तो उसके घर भेज देता है और स्वय दरवाजा बन्द करके आत्महत्या करने का नाट्य करता है। परन्तु उसकी कायरता उसे ऐसा नही करने देती।

उसी समय विश्वमोहिनी नाम की एक नवयुवति वहाँ आती है और एक तोला अफीम माँगती है। पूछने पर वह बताती है कि उसकी माता जी की तबियत बहुत खराब है, उनके लिए चाहिए, परन्तु वह एक युवति की भावनाओ को ताडने मे चतुर है। वह तुरन्त समझ जाता है कि उसे आत्म-हत्या करने के लिए अफीम चाहिए। वह उससे विनोद करता है और उसे अफीम के स्थान पर 'हरड़ की गोली' दे देता है।

मुरारीमोहन अनमेल विवाह और दहेज प्रथा का विरोधी है। वह अपने विवाह मे दहेज न लेने की प्रतिज्ञा करता है और विश्वमोहिनी के साथ विवाह करने के लिए तैयार हो जाता है।

विश्वनाथ—श्री उदयशकर भट्ट के एकाकी 'नये मेहमान' का प्रमुख पात्र है। वह निम्न मध्यम वर्ग से सम्बन्धित है। उसकी आय साधारण ही है। नगर के एक तग मकान का एक भाग किराये पर लेकर रहता है। गर्मी के दिनों में उन्हें उस मकान मे बहुत कष्ट होता है, परन्तु वह सब चुपचाप सह

करता है। उसे अपनी पत्नी और बच्चो के आराम का बहुत ध्यान है। छत पर पर्याप्त स्थान न होने के कारण वह स्वय नीचे आगन मे सोने को तैयार है और अपनी पत्नी से बच्चो के साथ ऊपर जाकर सोने के लिए कहता है।

उसका स्वभाव सकोची है और उसमे भारतीय आदर्श भी दिखाई देता है। दो अपरिचित मेहमानो को तो बर्फ का ठडा पानी पिलाता है और स्वय गर्म जल पीता है। जब उसकी पत्नी उससे कहती है कि पहले यह तो मालूम कर लो ये कौन है, हमारे परिचित हैं भी या नही, तभी तो मैं खाना बनाऊँगी, तब वह कहता है—"खाना तो बनाना ही पडेगा। कोई भी हो, जब आये हैं तो खाना जरूर खायेंगे, थोडा-सा बना लो।" वह उनके नहाने का भी उचित प्रबन्ध करता है। परन्तु वह सकोची इतना है कि उनसे उनका परिचय भी ठीक ढग से नही पूछ पाता है।

विश्वनाथ का स्वभाव शान्त है। जब पड़ौसी की छत पर उसके नये मेहमान हाथ धो लेते है तो वह लडने को आता है। परन्तु वह बहुत शान्ति-पूर्वक उसे समझाते हुए कहता है—"अनजान आदमी से गलती हो ही जाती है। उसे क्षमा कर देना चाहिए। कल से ऐसा नही होगा।"

मधु—मधु श्री उपेन्द्रनाथ अश्क के "तौलिये" एकाकी की नायिका है। वह आधुनिक वातावरण व शिक्षा मे बहुत आगे बढी हुई है। उसका पालन-पोषण ऐसे वातावरण मे हुआ है, जहाँ जीवन के नित्य के कार्यक्रम वर्जनाओ और सिद्धान्तो मे बँधे हुए है। जहाँ प्रत्येक व्यक्ति का तौलिया अलग-अलग है। एक दूसरे का तौलिया प्रयोग मे नहीं ला सकते। हाथ धोने हैं तो बाथरूम मे जाकर ही, एक ही रजाई मे दो-तीन मित्र नहीं बैठ सकते। चाय पीनी है तो डाइनिंग रूम मे ही जाकर। मधु पर भी इन्ही सब सस्कारो का पूर्ण रूप से प्रभाव पडा है। परन्तु मधु का पति बसन्त इसके विपरीत है। उसे मधु के बन्धन अच्छे नही लगते हैं। वह उसे एरिस्टोक्रेट समझता है। इन्ही कारणों से पति-पत्नी मे मन-मुटाव रहता है। बसन्त समझता है कि वह उसे मूर्ख एव पशुवत् समझती है। एक दिन मधु खीझकर कह देती है—"मेरा ख्याल था, मैं आपको सुख पहुँचा सकूँगी। आपके अव्यवस्थित जीवन को व्यवस्था सिखा दूँगी, किन्तु मैं देखती हू कि मेरे सारे प्रयत्न विफल हैं··· आपको

इस गन्दगी, इस अव्यवस्था मे सुख मिलता है। आपको, मेरी व्यवस्था, मेरं सफाई बुरी लगती है। मैं आपकी दुनिया में न रहूंगी।"

अचानक ही एक दिन वसन्त फर्म के काम से काशी चला जाता है। उसको गये हुए दो मास व्यतीत हो जाते हैं। मधु का यह विचार दृढ हो जाता है कि उसका पति उससे नाराज होकर ही काशी गया है। वह अपने को पति की इच्छानुसार परिवर्तित करने का प्रयत्न करती है। पलग को ड्राइग रूम मे ही डाल लेती है। एक दिन अचानक उसकी दो पुरानी सखियाँ उससे मिलने आ जाती हैं। वह उन्हें अपनी रजाई मे बैठा लेती है। पलग पर ही बैठकर वे तीनो चाय पीती हैं। मधु के स्वभाव का यह परिवर्तन दोनो को चकित कर देता है। चाय पीकर वे दोनो चली जाती हैं। थोडी देर मे वसन्त काशी से वापिस आ जाता है। वसन्त को यह जानकर बहुत प्रसन्नता होती है कि मधु का स्वभाव अब पूर्णरूप से परिवर्तित हो चुका है। परन्तु पड़े हुए सस्कारो का दूर करना बडा ही कठिन कार्य है। उसी दिन फिर पुराने तौलिये के वसन्त द्वारा प्रयोग किये जाने पर मधु आग-बबूला हो जाती है। उसक वही रूप फिर दिखाई देता है। और उसके अपने को परिवर्तित करने के दा महीने के सभी प्रयत्न व्यर्थ हो जाते हैं।

वसंत—वसन्त उपेन्द्रनाथ अश्क के "तौलिये" एकाकी का मुख्य पात्र है। वह एक फर्म मे मैनेजर है। अढाई सौ रुपया मासिक वेतन पाता है। उसका तो निर्धन वातावरण मे पालन-पोषण हुआ है। वह सफाई तो अवश्य पसन्द करता है, परन्तु अपनी पत्नी मधु की भांति एरिस्टोक्रेट नही है। वह अपनी पत्नी के इस बन्धन का विरोध करता है कि प्रत्येक का अलग-अलग तौलिया होना चाहिए। बिना धोये पलग पर पाँव न रखो। अपनी रजाई मे किसी दूसरे को न आने दो। चाय पीओ तो डाइनिंग रूम मे और हाथ धोने हो तो बाथरूम मे। इसी कारण से पति-पत्नी मे मन-मुटाव रहता है। वह मधु को समझाा हुए कहता है—"बीमारी का मुकाबिला इन नजाकतो और नफासतो से नह होता, बल्कि शरीर मे ऐसी शक्ति पैदा करने से होता है, जो रोग के आक्रमा का प्रतिरोध कर सके।" इससे स्पष्ट है कि वह बीमारी से दूर रहने के लि स्वस्थ होना आवश्यक समझता है। वसन्त मधु से कहता है—"कल्पना।

करो—सर्दियो की सुबह-शाम एक ही चारपाई पर एक ही रजाई घुटनों पर ओढे, चार-पाच मित्र बैठे है। गप्पें चल रही हैं। सुख-दुख की बातें हो रही हैं। वही चाय आ जाती है। साथ-साथ बातें होती हैं, साथ-साथ चुस्कियाँ लगती हैं—इस कल्पना मे कितना आनन्द है, कितनी स्निग्धता है। अब मित्र आते हैं। अलग-अलग कुर्सियो पर बैठ जाते है। एक-दूसरे पर बोझ मालूम होता है। (जोश से) चिडिया तक तो फटकने नही देती तुम बिस्तर के पास। मैं तो इस तकल्लुफ मे घुटा जाता हूं।" उसके विचारो से स्पष्ट है कि वह किस प्रकार का जीवन पसन्द करता है।

वसन्त मे सहनशीलता भी पर्याप्त है। मधु उससे कटु वचन कह जाती है—"जिसे बैठने, उठने, बोलने का सलीका नहीं; वह मनुष्य क्या पशु है।" परन्तु वह सब कुछ सहन कर लेता है। दो मास के पश्चात् काशी से लौटने पर यह समाचार सुनकर बहुत प्रसन्न होता हैं कि मधु ने अपने आपको उसकी इच्छा के अनुसार परिवर्तित कर लिया है। उसने जीवन मे प्रत्येक कार्य को छूट दे दी है। परन्तु उसी दिन उसे पता चल जाता है कि मधु के ये भी प्रयत्न व्यर्थ हैं, पडे हुए सस्कार दूर नही किये जा सकते है।

शेखर—शेखर श्री जगदीशचन्द्र माथुर के 'भोर का तारा' एकाकी का नायक है। वह उज्जयिनी नगर मे रहने वाला एक साधारण-सा कवि है, परन्तु गुप्त सम्राट् स्कन्दगुप्त को उसकी कविता बहुत पसन्द आती है, और वह उसे राजकवि का पद दे देते है। शेखर का एक घनिष्ठ मित्र माधव है। वह राज-कर्मचारी है। शेखर छाया से प्रेम करता है और अन्त मे माधव की सहायता से उसे छाया के साथ विवाह करने मे सफलता प्राप्त होती है।

शेखर एक सच्चा प्रेमी है। वह छाया से प्रेम करता है। वास्तव मे सौंदर्य और कविता उसके लिये एक ही वस्तु हैं। वह छाया मे सौंदर्य देखता है और तब उससे कविता की प्रेरणा प्राप्त करता है। इसलिये छाया ही उसकी कविता है। उसके इन शब्दो से छाया के प्रति उसका सच्चा प्रेम स्पष्ट होता है—"मेरे लिये तो जीवन मे ऐसी सूखी चट्टानें थोडे ही है। मेरी कविता ही मेरी हरी-भरी वाटिका है। मै उसे प्यार करता हू, क्योकि मुझे तुम्हारे हृदय मे सौंदर्य दीखता है। जिस रोज मैं तुमसे दूर हो जाऊँगा, उस रोज मैं सौंदर्य से दूर हो

जाऊँगा। अपनी कविता से दूर हो जाऊँगा। मेरी कविता मर जायगी।"

शेखर एक सच्चा कवि एव पक्का देशभक्त है। वह 'भोर का तारा' नामक महाकाव्य की रचना करता है। उसे आशा है कि जव वह अपने इस महाकाव्य को राजदरवार मे सुनायेगा तो उसका सम्मान और अधिक होगा और उसका नाम महाकवि के रूप मे अमर होगा, परन्तु यह एक शृगार ग्रथ है। इसी समय भारतवर्ष पर हूणो का तोरमाण के नेतृत्व मे आक्रमण होता है। वह भारतीय राज्यो को पददलित करता हुआ गुप्त साम्राज्य मे प्रविष्ट हो चुका है। चारो ओर त्राहि-त्राहि मच जाती है। देश पर भारी सकट आ जाता है। ऐसे समय मे शेखर अपने 'भोर का तारा' महाकाव्य को अग्नि मे जलाकर जनता के बीच मे जाता है। वहाँ एक राष्ट्रीय, देश प्रेम और वीर रस के काव्य का सर्जन कर उनमे वीरता और साहस का सचार करता है और उनमे देश के लिये वलिदान हो जाने की प्रेरणा उत्पन्न करता है। उसका गीत है—

नगाडे पै डंका बजा है, तू शस्त्रो को अपने संभाल।
बुलाती है वीरो को तुरही, तू उठ कोई रस्ता निकाल॥

इस प्रकार शेखर देश के प्रति कवि के नाते अपने कर्तव्यो का पालन कर 'भोर का तारा' के स्थान पर 'प्रभात का सूर्य' वन जाता है।

माधव—माधव श्री जगदीशचन्द्र माथुर के 'भोर का तारा' एकाकी का एक पात्र है। वह उज्जयिनी के गुप्त राजदरवार का कर्मचारी है। वह राजकवि शेखर का परम मित्र है। वास्तव मे उसके प्रयत्नो के परिणामस्वरूप ही शेखर राजकवि वनता है और अपनी प्रेयसी छाया को अपनी पत्नी वनाने मे सफलता प्राप्त करता है। वह जीवन सौंदर्य को नहीं, वल्कि कर्तव्य को मानता है—"तुम सपना देखते हो कि जीवन सौन्दर्य है, हम जागते रहते हैं और देखते हैं कि जीवन कर्तव्य है।"

जव शेखर उससे यह कहता है कि कभी-कभी तो तुममे भी कविता दीख पडती है, तो वह इस कथन से सहमत न होते हुए कहता है— "शेखर कविता तो कोमल हृदय की चीज है, मुझ जैसे कामकाजी राजनीतिज्ञो और सैनिको के तो छूने भर से मुरझा जायगी। हम लोगो के लिये तो दुनिया की और ही

उलझने वहुत हैं।" उसकी यह पक्की धारणा है कि कवि सासारिक उलझनो से बाहर निकलने का प्रयास न कर उन्हे भूलने का प्रयत्न करता है। सैनिक और राजकर्मचारी ही दिन-रात मनुष्यो की नई-नई उलझनो को सुलझाने का प्रयत्न करते है—"और हम लोग करते ही क्या है ? रात-दिन मनुष्यो की नई-नई उलझनें सुलझाने का ही तो उद्योग करते रहते हैं।"

माधव सच्चा देश-भक्त है। वह तक्षशिला मे वीरभद्र के विद्रोह को दवाने के लिए छाया के भाई देवदत्त का परामर्शदाता वनकर जाता है, परन्तु जब वह वहाँ पर देखता है कि हूणो का भारतवर्ष पर आक्रमण एक भयानक सकट है जिसमे देवदत्त अपनी आहुति दे चुका है, तो वह उज्जयिनी लौट आता है और शेखर को वीर रस और राष्ट्रीय कविता रचने की प्रेरणा देता है। शेखर ! प्रेरणा पाकर देश के वीरो को अपनी कविता के द्वारा मातृभूमि के लिये वलि देने को प्रेरित करने मे सफल होता है। माधव का देश प्रेम उसके इन शब्दो से स्पष्ट होता है—"आज साम्राज्य को सैनिको की आवश्यकता है। शेखर ! ओजमयी कविता के द्वारा तुम गाँव-गाँव मे जाकर वह आग फैला दो जिससे हजारो और लाखो भुजायें अपने सम्राट् और अपने देश की रक्षा के लिये शस्त्र हाथ मे ले लें। कवि, देश तुमसे यह वलिदान माँगता है।"

माधव सच्चा मित्र है। वह अपने मित्र शेखर की आरम्भ से अन्त तक सहायता करता है। अन्त मे वह ही शेखर को 'भोर का तारा' के स्थान पर 'प्रभात का सूर्य' वनाता है।

छाया—श्री जगदीशचन्द्र माथुर के 'भोर का तारा' एकाकी की नायिका है। वह उज्जयिनी के गुप्त राजा स्कन्दगुप्त के मत्री देवदत्त की वहन है। पहले यह शेखर की प्रेयसी के रूप मे आती है, परन्तु वाद मे इसका उससे विवाह हो जाता है। वह सच्ची प्रेमिका है। राजदरवार मे वह शेखर की कविता सुना कर राजा को प्रसन्न करती है और फिर वनाने वाले कवि शेखर को राजकवि का पद दिलाती है। उसकी माँ की इच्छा के अनुसार उसका भाई देवदत्त उसका विवाह शेखर से ही कर देता है।

छाया शेखर की कविता है, उसका सौन्दर्य है। वास्तव मे उसी से वह काव्य-सर्जन की प्रेरणा प्राप्त करता है। उसी की उपस्थिति मे वह सुन्दर

कविता लिख सकता है। वह स्त्री को पुरुष के ऊबे हुए मन को बहलाने वाली समझती है। शेखर 'भोर का तारा' महाकाव्य लिखकर छाया को दिखाता है। दोनो बहुत प्रसन्न होते हैं और सुखमय भविष्य की कल्पना करते हैं। परन्तु इसी समय माधव के द्वारा अपने भाई देवदत्त का वीरगति को प्राप्त हो जाने का समाचार उसे दुखी बना देता है। और अन्त मे शेखर भी अपने महाकाव्य को अग्नि की भेंट कर देश की रक्षार्थ सैनिको और युवको मे अपनी कविता के द्वारा देश-प्रेम और बलिदान देने की भावना भरने के कार्य मे लग जाता है। इस प्रकार छाया की सुन्दर और सुखमय भविष्य की कल्पना नष्ट हो जाती है।

नरेश—नरेश 'मीना कहाँ है?' एकाकी नाटक का प्रमुख पात्र है। वह मध्यम वर्ग से सम्बन्धित है। किसी सरकारी दफ्तर मे नौकर है। उसके कोई सतान नहीं है। उसके पास उसकी एक पालिता पुत्री 'मीना' है, जिसकी आयु लगभग सात वर्ष है। वह मीना को बहुत प्यार करता है। मीना की प्रत्येक इच्छा की पूर्ति करने का प्रयत्न करता है। एक दिन मीना पडौसी दीनानाथ के घर बहुत अच्छे-अच्छे खिलौने देखकर आती है। वह नरेश से वैसे ही खिलौने के लिये हठ करती है। नरेश मे इतना आर्थिक सामर्थ्य नही कि वह उसे वे खिलौने ला दे। जब वह नही मानती है तो खीझकर उसे पीटना शुरू कर देता है और इतना मारता है कि वह बेहोश हो जाती है और अन्त मे मर जाती है। रात्रि के समय वह पुलिस से भयभीत होकर उसे अपने मकान के पीछे खण्डहर मे गाड आता है।

नरेश का मीना के प्रति प्रेम उसे दुखी और व्याकुल कर देता है। वह अपना अपराध छिपाने के लिये उसके गुम हो जाने का बहाना करता है। पुलिस मीना का पता लगाती है। नरेश को मीना का प्रेम इतना सताता है कि वह पागलो की तरह विलाप करता है। वह नित्य रात्रि को खडहर मे जाकर विलाप करता है—"मीना ! बोल बेटी ! तू देखती नही, मैं तेरी याद मे पागल हो रहा हू। तू अनाथ थी। मैंने तुझे पाला-पोसा, अपनी बेटी बनाया" पर मैं पिता का हृदय नही पा सका। मैं गरीब था। मैं सचमुच गरीब था।" पुलिस का सिपाही रामसिंह उसकी इन सभी गतिविधियो पर निगरानी रखता है।

नरेश कायर है। वह अपनी कायरता के कारण ही अपनी मूर्छित

अवस्था मे पडी पुत्री मीना को डाक्टर के पास नही ले जा सका। वह भीरु स्वभाव के कारण ही पुलिस से अपना दोष छिपाने का प्रयत्न करता है, परन्तु सब कुछ व्यर्थ हो जाता है। सतीश, एक गुप्तचर विभाग का कर्मचारी, नरेश से सब कुछ रहस्य खुलवा लेता है और इसके परिणामस्वरूप नरेश गिरफ्तार हो जाता हैं।

भीखी—भीखी 'मड़वे का मोर' एकाकी नाटक का एक पात्र है। वह दादू परिवार का पुराना नौकर है। उसे वह अपना ही घर समझता है। घर के प्रत्येक कार्य को वह वडी लगन से करता है। उसे परिवार की मर्यादा का भी ध्यान है। छोटे से उसे प्यार है और वडो का वह सत्कार करता है। पैसे के प्रभाव और पाँडे के वहकाने मे आकर जब दादू सीता का अनमेल विवाह कर देते है, तो वह बहुत दु खी होता है। सीता के वियोग से उसका हृदय दुखी है। वह दु ख भरे गीत गाता है। सोना, लाजो सभी को वह प्यार करता है, उन्हें खिजाता और चिढाता भी रहता है। एक वार सोना के चिढ जाने पर वह उससे कहता है—"राजकुमारी सोना को पगला भीखी उस दिन याद आयेगा, जब ये अपने घर पहुचेगी और वहाँ सुवह जल्दी न उठने के नाते इस पर नागन सास की फटकारें पडेंगी।"

"वहू जी! दिल को रोकिए, नही तो सीता वेटी उतनी ही वहाँ तडपेगी।" भीखी के इन शब्दो से स्पष्ट है कि वह दूसरो को समझाने मे वहुत चतुर है। वह सासारिक नीति मे भी चतुर है। दादू अपनी पुत्री सीता के विवाह से ऋण लेकर रुपया पानी की तरह व्यय कर डालते हैं, तब वह कहता है—"व्याह-शादी, वैर-प्रीति अपने वरावर वालो से करनी चाहिये—यह नही कि झूठी शान मे आकर स्वय टुकडे-टुकडे हो जाय।"

वह वडो का आदर करता है। सीता की माँ जबकि सीता की सुसराल की प्रशसा करती है तो वह चुप ही रहता है, यद्यपि उसे ये सभी वातें अरुचिकर थी। उसे तो वास्तविकता का पता है। अपने विषय मे वह स्वय सोना से कहता है—"हम लोग भीतर रोते हुए वाहर से गाते हैं। सोच, किया ही क्या जाय?" उसके इस वाक्य से उसके चरित्र की सहनशीलता पर प्रकाश पडता है।

सोना—सोना 'मडवे का भोर' एकाकी की एक प्रमुख पात्रा है। वह दादू की मझली पुत्री अर्थात् सीता की छोटी बहन है। उसकी आयु लगभग १६ वर्ष की है। उसे अपनी दीदी सीता से बहुत प्रेम है। उसे सीता का पति पसन्द नहीं आता है और वह सीता के भाग्य पर दुखी होकर कहती है—"कहाँ मेरी फूल सी सीता दीदी और कहाँ चौड़े पत्थर की तरह वे शेखूपुरा वाले—" उसे सीता के चले जाने पर बहुत दुख होता है।

सोना हीरा मे कुछ अपनापन देखती है। उसके प्रति उसे बहुत सहानुभूति है और यही सहानुभूति आगे चलकर प्रेम मे परिवर्तित हो जाती है। वह हीरा को प्रसन्न देखने के लिये सध्या समय 'जोगीवीर के थान' पर जाती है। हीरा को बुलाकर हठपूर्वक खाना खिलाती है। उसे हीरा के तीन दिन से खाना न खाने का बहुत दुख है।

उसे इसमे अधिक प्रसन्नता होती कि सीता का विवाह हीरा में होता। जब भीखी सीता की सुहाग की अंगूठी लाकर देता है और बताता है कि हीरा ने इसे लेने को मना कर दिया है, तो वह बहुत दुखी होती है और हीरा को वह अंगूठी देकर ही छोडती है। जब हीरा स्वप्न मे सीता को दिए वचन के बारे मे कहता है, तो वह उसे शपथ दिलाकर वह बात पूछती है। जब हीरा उसे सीता के सुहाग की अंगूठी पहना देता है तो वह शरमा जाती है और यद्यपि उसे इसमे बहुत प्रसन्नता होती है, पर अब हीरा के सामने आने मे लजाती है। कंचन कहती है—"वह तो बहुत खुश है। मेरे साडी के पल्ले मे अपना बच्चो की तरह मुंह छिपाकर मुझसे पूछ रही थी कि भला बताओ, अब मैं उनका नाम कैसे लूंगी।"

उसका स्वभाव भीरु है। जब हीरा उससे भाग चलने के लिये कहता है तो वह कांपने लगती है, भयभीत हो जाती है। अन्त मे वह भी हीरा को प्राप्त करने मे असफल रहती है।

हीरा—हीरा 'मडवे का भोर' एकाकी का प्रमुख पात्र है। वह एक २२ वर्षीय सुन्दर एवं हृष्ट-पुष्ट युवक है। सीता उसको प्यार करती है और वह सीता को प्रेम करता है। परन्तु दुर्भाग्यवश धनाभाव मे सीता का विवाह शेखूपुरा के ४० वर्षीय चौधरी के साथ होता है। सीता के विवाह के दिनो मे वह बहुत

ही उदास रहता है। तीन दिन तक खाना नही खाता। विषाद के कारण उसे ज्वर आ जाता है। सीता इसको इतना प्रेम करती है कि विवाह के दिनो मे वह इससे कही भाग चलने के लिए कहती है, परन्तु हीरा परिवार की मर्यादा का ख्याल करके ऐसा नही करता और सीता के वियोग के दु.ख को हृदय को पत्थर बनाकर सहन करता है। उसका सीता के प्रति सच्चा प्रेम उसके इन शब्दो से स्पष्ट होता है—"मैंने एकाएक स्वप्न मे देखा कि उदास, पीली, बहुत थकी हुई सीता अपनी सुहाग की चुनरी मे सजी हुई मेरे पास आई है और अपने काँपते हुए ठण्डे हाथों से मेरे बालो को सहला रही थी। वह मौन थी :·· और अपलक भीगी निगाहो से मुझे देख रही थी और मैं भी उस अजीब सुहागन को देख रहा था—गभीर घूँघट के नीचे उसकी सिंदूरी माँग, सुहाग बिन्दी, भीगी पलको की कोर मे काजल-रेखा, सुर्ख उदास होंठो से लेकर दाएँ गाल तक छाई हुई उसकी हीर-कनी वाली नथुनी।" सीता उसे उदास न रहने के लिये शपथ खिलाती है और उसे अपने सुहाग की अँगूठी भिजवाती है। इससे स्पष्ट है कि सीता को उसकी बहुत चिन्ता है।

सीता के विदा हो जाने पर वह सोना (सीता की छोटी बहन) से प्रेम करता है, उससे विवाह करना चाहता है, परन्तु दुर्भाग्यवश सोना को प्राप्त करने मे भी वह असफल रहता है, यद्यपि सोना भी उससे विवाह करने को तैयार है। वह भी हीरा को प्रेम करती है। अन्त मे देखते हैं कि वही हीरा जो सीता के साथ मर्यादा की रक्षा के लिये भागने को तैयार नहीं होता है, सोना को भाग चलने के लिए कहता है, परन्तु वह नहीं आती है।

प्रश्न १३—निम्नलिखित सन्दर्भों की व्याख्या करिये।

(१) अब ठीक है। मेरा पीछा छुटेगा। (पृष्ठ २३)

प्रसंग—प्रस्तुत सदर्भ डा० रामकुमार वर्मा के 'एक तोले अफीम की कीमत' एकाकी से उद्धृत किया गया है। मुरारीमोहन के पिता उनका विवाह एक अशिक्षिता लड़की से करना चाहते हैं, क्योंकि वहाँ से भारी दहेज मिलने की पूर्ण आशा है, परन्तु मुरारीमोहन किसी सुशिक्षित लडकी से विवाह करना चाहता है। उसके पिता जी अपनी बात पर अडिग हैं, उन्हें पुत्र के मानने न मानने की लेशमात्र भी चिन्ता नहीं है। एक दिन पिता जी तो बाहर चले

जाते हैं और मुरारीमोहन बडी कठिनाई से अपने नौकर रामदीन को रात्रि के समय उसके घर भेज देता है। फिर वह दरवाजा बन्द करके कहता है :—

व्याख्या—बडी कठिनाई से शैतान (रामदीन) से पीछा छुटा है। बाबू जी ने इस नौकर को बहुत हिला लिया है। अब सब ठीक होगा। वह सोचता है कि क्या मेरा विवाह एक असभ्य, अशिक्षित लड़की से होगा, यह मैं कभी भी सहन नही कर सकता हूं। पिता जी यह क्यो नही सोचते कि हमारे भी हृदय है, हम भी कुछ इच्छायें रखते हैं। अब उन्हें पता पड जायगा कि मेरी बात कहाँ तक सत्य थी। मुझे आज अफीम खाकर आत्म-हत्या करनी ही होगी और तब मेरा मृतक शरीर उन्हें सब कुछ बता देगा कि मैंने जो कुछ कहा था सब सत्य था।

(२) 'आइये, मेरे होटल मे आइये, आपकी फैक्टरी में तो आज स्ट्राइक हो गई।' (पृष्ठ १०५)

प्रसंग—प्रस्तुत उद्धरण श्री भुवनेश्वरप्रसाद के 'स्ट्राइक' एकांकी से लिया गया है। पुरुष एक युवक के साथ अपनी कोठी के बरामदे में कुर्सीयो पर बैठा अपनी पत्नी के लखनऊ से लौटने की प्रतीक्षा कर रहा है। कोठी की चाबियाँ भी पत्नी साथ ही ले गई है। उसे रात्रि के साढे दस बजे वापिस आना है लगभग दस बजे हैं। पुरुष उस युवक से जो क्लब से उसके साथ चला आया है विवाह करने के लिए आग्रह करता है और कहता है कि पुरुष के जीवन मे स्त्री का होना आवश्यक है, परन्तु वह इस बात का विरोध करता है। यह पुरुष अपनी पत्नी की प्रशंसा करता है। दोनो मे तर्क-वितर्क हो रहा है कि इसी समय सदेश मिलता है कि मेम साहब लखनऊ से दूसरे दिन आयेंगी। वह पुरुष छटपटा उठता है। तब वह युवक व्यंग्य कसते हुए ये शब्द कहता है :—

व्याख्या—यदि आप की पत्नी आज नही आ रही हैं, आज उन्होंने स्ट्राइक (हडताल) कर दी है, तो कोई चिन्ता की बात नही है। आप आज मेरे साथ होटल पर विश्राम कीजिए। वास्तव मे युवक का यह एक बडा भारी व्यंग्य है जिनसे पुरुष के द्वारा अपनी पत्नी की की गई प्रशसा पर गहरा आघात होता है।

(३) हम दोनो नदी के किनारे हैं जो एक दूसरे की ओर मुड़ते हैं पर मिल नही पाते। (पृष्ठ ११०)

प्रसंग—प्रस्तुत उद्धरण श्री जगदीशचन्द्र माथुर द्वारा लिखित 'भोर का तारा' एकाकी नाटक से लिया गया है। कवि शेखर अपने मित्र को यह बताता है कि उसके जीवन की दो ही साधना हैं—छाया का प्यार और कविता। तब माधव (मित्र) कवि से पूछता है कि क्या छाया को प्राप्त करने की उसकी इच्छा नही है। तब शेखर कहता है —

व्याख्या—जिस प्रकार नदी के दो किनारे होते है जो एक दूसरे की ओर मुडते तो अवश्य है, पर कभी भी उनका आपस मे मिलना असम्भव ही है, ठीक इसी प्रकार वह स्वयं नदी का एक तट है और छाया दूसरा। वे भी कभी आपस मे न मिल सकेंगे। इसका कारण यह है कि शेखर एक निर्धन कवि है। उनकी गणना उज्जयिनी नगरी के मध्यम वर्ग के व्यक्तियो मे है। परन्तु छाया का भाई देवदत्त गुप्त सम्राट् स्कन्दगुप्त का मत्री है। फिर वह कैसे सहन कर सकता है कि उसकी बहन 'छाया' का विवाह शेखर से हो।

(४) मैं परवाह करता हूं वाले तारो की। (पृष्ठ ११३)

प्रसंग—प्रस्तुत पंक्तियाँ श्री जगदीशचन्द्र माथुर के 'भोर का तारा' एकाकी से ली गई है। जब माधव शेखर से कहता है कि छाया तुम्हारे इस कूडे मे कैसे रहेगी ? ये बिखरे हुए कागज, टूटी चटाई, फटे हुए वस्त्र। शेखर ! लापरवाही की सीमा होती है। तब शेखर माधव से कहता है कि उसे इन बातो की परवाह नही है। वह भावुकता मे कहता है —

व्याख्या—मैं इन बातो की परवाह नही करता हू। मुझे पुष्पो की पखुडियों पर पडी हुई ओस की बूदो की परवाह है। मुझे परवाह है उन मेघो की जो सध्या समय अस्तगामी सूर्य की किरणो को अपनी गोद मे लपेटता है, उन तारो की जो प्रात:काल के समय आकाश के एक छोर पर टिमटिमाते दिखाई देते हैं।

(५) शेखर तो अब तक भोर का तारा था। अब प्रभात का सूर्य होगा।

(पृष्ठ १२३)

प्रसंग—प्रस्तुत उद्धरण श्री जगदीशचन्द्र माथुर द्वारा लिखित 'भोर का तारा' एकाकी से उद्धृत किया गया है। जिस समय माधव की प्रेरणा से

शेखर अपने महाकाव्य 'भोर का तारा' को अग्नि की भेंट कर देशोद्धार और देश-रक्षा के लिए सुप्त वीरो को जागृत करने के लिए घर से बाहर चला जाता है, तो छाया उससे कहती है—"तुमने तो मेरा प्रभात नष्ट कर दिया।" तब माधव उसे समझाता हुआ कहता है :—

व्याख्या—छाया मैंने तुम्हारा प्रभात नष्ट नही किया है। अभी तो तुम्हारा प्रभात हुआ ही नही था। तुम्हारे प्रभात का समय तो अब आया है। प्रभात सूर्योदय पर होता है। तुम्हारा पति शेखर अब तक तो भोर का तारा ही था, परन्तु अब वह प्रभात का सूर्य बनेगा। कहने का तात्पर्य यह है कि तुम्हारे पति की कविता अब फैलकर समस्त देश को ऐसे प्रकाशित करेगी जैसे सूर्य की किरणें। भोर के तारे का प्रकाश फीका होता है, परन्तु सूर्य का प्रकाश तीव्र। भोर का तारा तो सूर्य के प्रकाश मे छिप जाता है। इसी प्रकार अब तक शेखर की दशा भी भोर के तारे के समान ही थी, परन्तु वह अब प्रभात का सूय बनकर मातृभूमि के भाग्य-आकाश पर देदीप्यमान होगा।

चतुर्थ पत्र

तैयार करने की विधि

इस पत्र मे निम्नलिखित तीन पुस्तके नियत है जिनके अंकों का विभाजन इस प्रकार है—

(१) समीक्षा शास्त्र अथवा काव्य के रूप	६० अंक
(२) अलंकार-पारिजात	२० ,,
(३) प्रभाकर छन्द शिक्षा	२० ,,
कुल	१०० अंक

इस पत्र मे प्राय पाच प्रश्न ही पूछे जाते है। इन प्रश्नो मे से तीन प्रश्न 'समीक्षा-शास्त्र' पर तथा दो प्रश्न 'अलंकार-पारिजात' व 'प्रभाकर-छन्द शिक्षा' पर होते है। 'अलंकार तथा छन्द-रचना सम्बन्धी दोनो प्रश्नो मे से एक-एक प्रश्न करना होता है। इस प्रकार प्रत्येक प्रश्न २० अंक का होता है। प्रभाकर के पाठ्य-ग्रन्थों मे समीक्षा-शास्त्र को अपेक्षाकृत कठिन समझा जाता है परन्तु ऐसी बात नहीं। विधि अनुसार कार्य करने से इस विषय की जटिलता एव कठिनाई स्वत ही दूर हो जाती है। यहाँ क्रमश तीनो पुस्तको पर प्रकाश डाला जाएगा।

(क) समीक्षा-शास्त्र अथवा काव्य के रूप

ये दोनो पुस्तकें विश्वविद्यालय की ओर से अध्ययन के लिए नियत की गई है। इन पुस्तको मे साहित्य के गुण-दोष, देखने तथा उसको कसौटी पर कसने के लिए प्राचीन तथा आधुनिक दृष्टिकोणो की एक प्रकार से व्याख्या है। विद्यार्थी को इन दोनो मे से एक पुस्तक का गभीर एव विशद अध्ययन करना चाहिए। यदि सभव हो सके तो एक बार दोनो पुस्तको को देख ले। ऐसा करने से विद्यार्थी इन दोनो ग्रथो मे जहा विषय की समानता से परिचित होगा वहाँ उनका दो लेखको के विभिन्न दृष्टिकोणो का ज्ञान भी प्राप्त होगा जो विद्यार्थी के मानसिक वृत्त को विस्तृत कर देगा। गर्व की बात है कि प्रस्तुत

(ग) प्रभाकर छन्द शिक्षा

इस पुस्तक पर भी २०-२० अंको के दो प्रश्न पूछे जाते है, परन्तु उसमे से एक प्रश्न करना होता है। एक प्रश्न मे कुछ छन्दो की परिभाषा एव उदाहरण पूछे जाते हैं। दूसरे मे या तो कुछ पद्याश दिए होते है और उनमे 'कौन छन्द' है ऐसा बताना होता है, अथवा छन्द-शास्त्र के विषय मे कोई प्रश्न पूछा जाता है। इस पुस्तक मे वार्णिक, मात्रिक छन्दो के लक्षण एव उदाहरणो के अतिरिक्त प्रस्तार, नष्ट, उद्दिष्ट, आदि प्रत्ययो पर भी लिखा गया है।

हमारी गाइड मे पुस्तक के आधार पर पूरी सामग्री जुटाई गई है। सरल उदाहरण देकर विद्यार्थियो के लिये सामग्री को यथासम्भव रोचक बनाने का प्रयत्न किया गया है।

इस विषय मे भी विद्यार्थी अपनी स्मरण-शक्ति को ही अधिक कष्ट दे।

काव्य के रूप या समीक्षा-शास्त्र

(गुलाब राय) (दशरथ ओझा)

समीक्षाकार—मधुसूदन शर्मा 'मधुकर'

नोट—इस वर्ष पंजाब विश्व विद्यालय में उपरोक्त दोनों पुस्तकें स्वीकृत की हैं। विद्यार्थी कोई-सी एक का अध्ययन कर सकता है। हमने विद्यार्थियों की सुविधा के लिए दोनों पुस्तकों पर प्रश्न-उत्तर दिए हैं। विशेषकर जो परीक्षा में पूछे जाने योग्य हैं।

प्रश्न—साहित्य का स्वरूप निर्धारित करते हुए उसके तत्वों को स्पष्ट कीजिए।

उत्तर—साहित्य मे कलाकार के जीवन का प्रस्फुटन होता है। उसके अपने हृदय की उसके भीतर झाँकियां होती है। उसके अपने व्यक्तित्व की छाप (उसकी कृति में) होती है। इसीलिए साहित्य और कलाकार का गहरा सम्बन्ध है। परन्तु कलाकार सामाजिक प्राणी है वह अपनी कथा का चयन समाज से ही करता है। इसीलिए साहित्य और समाज का अटूट सम्बन्ध है या यों कहें अन्योन्याश्रित सम्बन्ध है। समाज का चित्रण, समाज की चेतना, युग का प्रवाह भी उसके साहित्य में होता है। साहित्य और समाज चिरकाल से डग से डग मिलाते चले आ रहे है। वैदिक काल मे मानव प्रकृति का पुजारी था। वह धर्मी, कर्मी, उपासना और भक्ति की ओर झुका था। वेदो में भी उसी का वर्णन है ज्यों ही सभ्यता ने पल्टा खाया त्यों ही समाज सगठन ने चोला बदला और जीवन मे नवीनता आई तथा साहित्य भी पलट गया। कलाकार का ध्यान अन्तर्मुखी प्रकृति की ओर गया जिसका चित्रण उपनिषद मे मिलता है। तदन्तर साहित्य-पुराण, रामायण-महाभारत काल, जैन-बौद्ध काल, मुस्लिम युग और आधुनिक युग मे हमे भिन्न रूप में दृष्टिगोचर हो रहा है। साहित्य उपर्युक्त कालो में अपनी वस्तु को समाज से ही ग्रहण करता रहा। उसने अपनी सामग्री समाज के जीवन से ली पर समाज के जीवन को भी उसने निर्मित किया, दोनो एक-दूसरे पर अवलम्बित रहे। दोनो मे घनिष्ट और अटूट सम्बन्ध होता चला। इसीलिए साहित्यकार के समझने के लिये तत्कालीन वातावरण पर विशेष ध्यान रख कर चलना पड़ता है। क्योंकि उसी के भीतर अनुभवों भावनाओ को जो प्रगट किया वह उसकी अपनी न होकर समाज की अनुभूतियाँ, भावनाएँ, विश्वास और विचारधारा का चित्रण है। इसलिए त

साहित्यकार को अपने समय का प्रतिनिधि कहा जाता है। उसे जैसा खाद्य मिलेगा उसका साहित्य भी वैसा ही होगा। वैसे साहित्य के लिए वाङ्मय शब्द भी प्रचलित है। यह निश्चित रूप से नही कहा जा सकता कि साहित्य का उदय कैसे और कब हुआ है। मानव की दो स्वाभाविक प्रवृतियां होती है, अनुभूति और अभिव्यक्ति। जब अनुभूति परिष्कृत होकर भाषा के माध्यम से साहित्यकार द्वारा प्रगट होती है तो उसे साहित्य कहते हैं। वैसे विद्वानो ने सहितेन भाव साहित्य और सहित्यस्य भाव साहित्य भी माना है। या "मानव मन मे तरगित होने वाली ललित भावनाओ की अभिव्यक्ति को साहित्य कहते है।" अग्रेजी मे इसे 'लिटरेचर' कहा गया है। साहित्य के व्यापक व सकुचित दो अर्थ माने जाते है। सकुचित मे केवल काव्य आता है और व्यापक में डाक्टरी साहित्य, बीमा साहित्य, पार्टी साहित्य आदि प्रकार के साहित्य भी आते है। साहित्य शब्द की उत्पत्ति सबसे पहले व्याकरण शास्त्र मे मिलती है। राजशेखर के समय तक इसे काव्य के नाम से पुकारा जाने लगा। तत्पश्चात साहित्य शब्द का प्रयोग 'साहित्य मीमांसा' मे तथा विश्वनाथ के 'साहित्य दर्पण' मे मिलता है। कालान्तर मे साहित्य शब्द काव्य के सभी गुणो का परिचय बनता गया। तदन्तर साहित्य को विद्या के नाम से पुकारा जाने लगा। राजशेखर ने साहित्य विद्या और काव्य पुरुष की कल्पना कर दोनो का सम्बन्ध पति-पत्नी के समान बता दिया।

आधुनिक समीक्षा के प्रागण मे काव्य और साहित्य को ललित कला के रूप मे माना जा रहा है। विद्वानों ने कला की परिभाषा "अभिव्यक्ति की कुशल शक्ति" को माना है। या किसी वस्तु मे, सुन्दरता और सरसता लाना ही कला समझा जाता है।

साहित्य को परिष्कृत व परिमार्जित और परिविनष्ठित करने के लिए उसके चार उपकरण बताये गये हैं जिन्हे हम तत्व भी कह सकते है जो इस प्रकार से हैं (१) भावा तत्व (२) कल्पना तत्व (३) बुद्धि तत्व (४) शैली तत्व।

(१) भाव तत्व—कलाकार के हृदय मे स्थाई रूप से कुछ भाव होते है, उन्हे वह अभिव्यक्त करने के लिए व्यग्र रहता है। वह अपने हृदय के भावो

को गला कर उन्हें प्रगट करता है वही साहित्य है ; वही साहित्य हृदयस्पर्शी और मार्मिक भी होता है। कलाकार का हृदय सम्वेदनाशील वस्तु को अधिक प्रगट करता है। कलाकार में जितनी सम्वेदनशीलता होगी उतने ही उसके भाव सबल, स्थायी और तीव्र होंगे। ससार का सम्पूर्ण साहित्य इन्ही भावो का साकार रूप है। किसी लेखक की महानता उसके उच्च भावो के कारण ही होती है। इन भावो के बिना उसका साहित्य बुद्धिपंगु तथा मूक समझा जाता है। कलाकर मे दो प्रकार के भाव होते है। व्यक्तिगत और समष्टिगत। व्यक्तिगत मे काव्य का सम्वन्ध कवि से होता है : समष्टिगत में समाज से सम्वन्ध होता है, जिस साहित्य मे यह भाव प्रवल होता है वह साहित्य महान् और शाश्वत होता है, जैसे, रामायण, सूर-सागर, महाभारत आदि-आदि।

(२) कल्पना तत्व—इसके द्वारा कलाकार असाधारण को साधारण, असुन्दर को सुन्दर, अप्रत्यक्ष को प्रत्यक्ष, अमूर्त को मूर्त, क्लिष्ट को सरल बनाता है। क्योकि साहित्य का मूल उद्देश्य मनोवेगो को झकृत करना है। परन्तु ऐसा तभी हो सकता है जबकि हृदय के भाव नयन पटल के सम्मुख आ उपस्थित हो। इसी कल्पना के द्वारा कलाकार सहस्रो वर्षों से अतीत की घटनाओ को ला कर उपस्थित कर देता है तथा असत्य को भी सत्य बना देता है, व भूत भी वर्तमान-सा बना देता है। कलाकर इसी कल्पना के द्वारा शब्द चित्र उपस्थित कर (पर कभी-कभी भूल-भुलैया में ही फसाकर रखना है, मुक्तक काव्य की सुन्दर रचना करता है।

(३) बुद्धि तत्व—साहित्य जीवन की व्याख्या करता है। मानव का जीवन विस्तृत है। जीवन मे उत्थान-पतन, उत्कर्ष-अपकर्ष, आशा-निराशा, आदान-प्रदान सभी प्रकार के भाव होते है। पर जीवन तो एक पहेली के समान है। कलाकार उनमें से अच्छी-अच्छी समस्याओ को उठा कर साहित्य मे प्रगट कर देता है। यह कार्य उसकी बुद्धि करती है। उसे सार-सार चुन कर थोथा उड़ा देना होता है। वह नीर-क्षीर विवेकिनी बुद्धि के द्वारा सत्य-असत्य को पहचानता है। वह यथार्थ-आदर्श, सुख-दुख, हर्ष-विषाद में से अपने विषय को चुन लेता है और फिर सन्देश, आदेश, उपदेश जो भी उसे देना हो, दे देता है। बुद्धि तत्व का प्रयोग उसे परोक्ष रूप मे व अल्प मात्रा मे करना होता है। कलाकार कड़वी बात को भी ढग से प्रस्तुत

करता है ताकि पाठक को अरुचिकर न प्रतीत हो। ऐसा करने मे उसे बुद्धि तत्व की आवश्यकता होती है।

(४) शैली तत्व—इसे कला तत्व के नाम से भी पुकारते है। शैली भावो को अभिव्यक्त करने का एक विशेष साधन होता है। इसमे शब्द, अर्थ, भाषा का सगठन, अलकारो का समावेश, छन्दो की योजना गुण और वृतियो का पालन होता है। स्थल-स्थल पर वक्रोक्ति, लक्षणा, व्यजना का प्रयोग अधिक होता है। शैली वास्तव मे साहित्य रूपी पुरुष का बाहरी आवरण है।

प्रश्न—"साहित्य का लक्ष्य मनुष्य तथा समाज की उन्नति होनी चाहिए" क्या आप इससे सहमत हैं ? (जून, १६५८)

या

साहित्य और समाज के सम्बन्ध की समीक्षा कीजिए। (नवम्बर, १६५८)

या

भारतीय साहित्य और समाज का सिंहावलोकन करते हुए यह सिद्ध कीजिए कि साहित्य समाज का दर्पण है। (नवम्बर, १६५७)

या

साहित्य और समाज के सम्बन्ध पर विवेचनात्मक दृष्टि से प्रकाश डालिए। (जून, १६५७)

या

"साहित्य ससार के प्रति हमारी मानसिक प्रतिक्रिया अर्थात् विचारो, भावों और सकल्पो की शाब्दिक अभिव्यक्ति है और वह हमारी किसी न किसी प्रकार के हित का साधन करने के कारण सरक्षणीय हो जाती है," सिद्ध कीजिए।

या

"समय के प्रभाव से जब सत्य निरादृत और असत्य गौरववान बनने लगे तो साहित्य इस विषमता को दूर करके सत्य के गौरव की रक्षा करे" यही समाज और साहित्य का सम्बन्ध है, सिद्ध कीजिए।

या

साहित्य और समाज दोनों एक दूसरे के निर्माता और विधाता भी हैं, स्पष्ट कीजिए।

या

साहित्य समाज का प्रतिविम्ब नहीं उसका नियामक और उन्नायक भी होता है, इस कथन की पुष्टि कीजिए।

उत्तर—साहित्य क्या है? इसके सम्बन्ध मे जानना अत्यन्त दुष्कर कार्य है। जिस प्रकार जीवन की व्याख्या नही की जा सकती उसी प्रकार साहित्य को भी किसी निश्चित रूप में नही बाँधा जा सकता। परिभाषा तो केवल उसके स्वरूप को समझने मे सहायक हो सकती है। युग के परिवर्तन के साथ ही साहित्य की परिभाषा भी बदलती जा रही है। सस्कृत मे साहित्य के स्थान पर 'काव्य' शब्द का प्रयोग किया जाता था। कृति रूपी से पुष्प भी इसी काव्य रूपी वृक्ष खिले होगे। यदि श्रेष्ठ समाज हुआ तो श्रेष्ठ साहित्य बनेगा और श्रेष्ठ साहित्य का प्रभाव आने वाले युग पर पडेगा इसीलिए तो कलाकार का व्यक्तित्व महान् समझा जाता है। वह अपने समाज का मुख और मस्तिष्क होताहै। वह समाज सेवा तन-मन से करता है, तथा समाज के उत्थान-पतन सुख-दुख का भागीदार होता है। प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष रूप मे वह अपनी कृति मे इस प्रभाव को प्रतिपादित कर देता है। कलाकार जिस जाति का होगा उसी जाति विशेष का प्रभाव उस पर अवश्य पडेगा।

प्रत्येक राष्ट्रीय कविता जाति की तथा समाज की अपनी मान्यतायें, आदर्श व विशेषतायें होती है। पश्चिम और पूर्व मे विचारधाराओ का आकाश-पाताल का अन्तर है। देशकाल के अनुसार सिद्धान्तो में भी परिवर्तन होता है। इन्हीका प्रतिविम्व उसमें अवश्य मिलता है। पश्चिम मे 'स्टाक जेम्स' ने पाश्चात्य आलोचना-पद्धति पर प्रकाश डालते लिखा है कि वहाँ 'अरिस्टाटल' के सिद्धान्त 'कला' कला के लिये अपनाये जा रहे थे। किन्तु 'मैथ्यू आरनोल्ड' के सिद्धान्त 'कला' जीवन के लिए की पताका अब फहराई जा रही है। इस प्रकार के सिद्धान्त को मानने वाले व्यक्ति कला के प्रति सद्भावना तथा सहानुभूति प्रदर्शित करते है। २०वी शताब्दी मे इस प्रकार के सिद्धान्तो का

प्रभाव भारत पर भी पडा। इसीलिए हमारे राष्ट्र मे एक नई चेतना जागी। आर्थिक विषमता समाज की आँखो मे खटकने लगी। इसका प्रभाव साहित्य पर भी पडा क्योकि साहित्य और समाज पति-पत्नी की भाति सम्बन्धित हैं। 'एशिया' मे समाजवाद के आधार पर साहित्य की रचना हुई। 'मार्क्स' व 'फ्रायड' के सिद्धान्तो का व्यापक प्रभाव पडा और इस प्रकार साहित्य आर्थिक विषमता को मिटाने मे ही सहायता देने लगा। परन्तु इस प्रकार के साहित्य मे स्थायित्व की भावना नही आने पाई। क्योकि इस भावना ने आदर्श पर अन्ध विश्वासो व रूढियो तथा परम्पराओ पर गहरी चोट की और सबको भस्म कर के रख दिया। इस प्रकार का साहित्य शाश्वत धर्म से च्युत होता है। वैसे भी साहित्य को राजनीति के चक्कर मे नही पडना चाहिए। हमारा देश अभी भी प्राचीन परम्पराओ को ले कर चलता है इसीलिए वह शाश्वत है। प्रेमचन्द ने भी कहा है कि साहित्यकार बहुधा अपने देश से प्रभावित होता है। जब कोई लहर देश मे उठती है तो साहित्यकार के लिए उसमे अविचलित रहना असम्भव हो जाता है। उसकी विशाल आत्मा देश-बन्धुओ के कष्टो से विकल हो उठती है। इसी विकलता मे वह रो पडता है और इसीलिए उसका साहित्य सार्वदेशिक सार्वभौमिकता को लेकर चलता है। यही भावना साहित्य को विज्ञान से अलग कर देती है क्योकि दर्शन और विज्ञान हमेशा परिवर्तित होते रहते है और साहित्य चिरस्थाई रहता है। आज भी तुलसी, बाल्मीकि के हृदय से उठने वाली आशा-निराशा, हर्ष-विषाद की भावनायें सहस्रो वर्षो से हमारे हृदय मे हिलोरे ले रही है।

हमारे मन मे दो प्रकार की मनोवृत्तियाँ है। (१) सद्वृत्तिया और (२) असद्वृत्तिया। साहित्य हमारे मनोविज्ञान का रहस्योद्घाटन करके असद्-वृत्तियो रूपी नटखट बालक को दुलार-पुचकार कर राह पर ला देता है। जब ज्ञान, उपदेश, नीति और धर्म असद्वृत्तियो को सुधारने मे असफल रहते है वहा साहित्य व्यग्य, वक्रोक्ति के द्वारा हृदय की तन्त्री को झकृत कर मधुर सगीत से असद्वृत्ति रूपी फन फैलाई हुई नागिन को वश मे कर लेता है और उसके विशाल दन्त उसकी मस्ती की स्थिति मे जादू की छडी फेर धीरे से निकाल लेता है। इसीलिये कहा है कि—

"कवि में अमिट शक्ति है, चाहे तो गीदड़ को सिंह बना दे। कवि वह जादूगर है, चाहे तो सागर मे आग लगा दे ।।"

साहित्य कठोर से कठोर व्यक्ति पर भी अपना प्रभाव डालता है और उसे कोमल बना देता है , जैसे नादिरशाह के कत्ले-आम को साहित्य की शक्ति ने ही रुकवाया था। साहित्य जीवन रूपी सरिता मे समाज रूपी नौका का कर्णधार है।

कवि पर अपने समय की क्रान्तियो और परिवर्तनो का प्रभाव पड़े बिना नही रह सकता। इसीलिये उसकी कविता उसके अनुभव और सस्कारो की अभिव्यजना है और वह स्वय भी क्रान्तिदर्शी होता है। वह त्रिकालदर्शी है। उसके लिए वर्तमान पक्षी, तो भूत व भविष्य पख होते है। जिस कवि के पास जितनी अधिक जीवनदायिनी शक्ति होगी उसका उतना ही श्रेष्ठ साहित्य होगा। एक बार प्रेमचन्द ने पूर्व और पश्चिम के साहित्य की तुलना की और बताया पश्चिम का साहित्य सघर्ष से युक्त है। वहाँ के लोग सघर्ष, वासना, छल, और कपट के पुजारी है और पूर्व मे (हमारे यहा) धर्मी, कर्मी, तपस्वी, सत्यमार्गी है। वहा प्रत्येक वस्तु को स्वार्थ के काँटे पर तोला जाता है और हमारे यहाँ माया से मुक्ति को जीवन की सफलता समझते है। वे लोग भौतिक और स्थूल तथा मस्तिष्क पर विश्वास करते है और हम आध्यात्मिकता पर चलते है। हमारे यहा के आदर्श व्यास, वाल्मीकि, तुलसी है, तो यूरोप मे 'वेजली', 'शेक्सपीयर' व 'मिल्टन' है।

कोई सजग साहित्यकार वर्तमान की परिस्थितियो से अनभिज्ञ नहीं रह सकता पर यदि वह प्रचलित वाद के चक्कर मे न पडे तो अच्छा है , क्योंकि वैसे वाद जीवन-सम्बन्धी विचारो और भौतिक निरूपता को कहते है। वाद सिद्धान्तो से युक्त एक देशीय भाव है जो धीमे-धीमे सार्वभौमिकता की ओर जाता है। परन्तु काव्य चिर नवीन सम्वेदनशील होता है तथा सूक्ष्म होता है। वाद का सम्बन्ध जीवन की भावनाओ से है।

नाटक भी साहित्य का एक अग है। उसका प्रभाव समाज पर अधिक पडता है। प्राचीन समय मे इसका लक्ष्य मनोरंजन करना और साहित्य को परिष्कृत करते हुए चलना था परन्तु अब हमारे यहाँ पश्चिम का प्रभाव पड

गया है। इसीलिए नाटक का सम्बन्ध साधारणतः छूटता जाता है। प्राचीन समय में नायिका देवी होती थी परन्तु आज नायिका स्वच्छन्द विहारिणी तथा कामुक रमणी भी हो सकती है।

आज साहित्य आदर्श को छोड़ कर यथार्थ का चोला पहन रहा है जिसमें व्यभिचार, असभ्यता और निर्लज्जता के भाव दिखाये जा रहे हैं। यदि काल के प्रभाव से समाज का मनोविकार रोगी हो जाये तो, साहित्य उनका उपचार करे। इतना होने पर भी यह निश्चित नहीं कहा जा सकता कि समाज से साहित्य प्रभावित होता है या साहित्य समाज से, जैसे यह निर्णय नहीं किया जा सकता कि बीज पहले हुआ या वृक्ष। साहित्य व समाज एक-दूसरे पर अवलम्बित है। एक-दूसरे का विकास और ह्रास एक-दूसरे को प्रभावित करता है।

प्रश्न—काव्य में कवि के व्यक्तित्व की अभिव्यक्ति किस प्रकार होती है है, सिद्ध कीजिये।

या

कवि के व्यक्तित्व से क्या अभिप्राय है ? व्यक्तित्व के सम्बन्ध में विभिन्न विद्वानों का क्या मत है ? क्या काव्य में भी कवि के व्यक्तित्व की अभिव्यक्ति दृष्टिगोचर होती है ?

या

"व्यक्तित्व द्वारा कवि के अहंम का संस्कार होता है और समाज की आत्मा का सुधार।" सिद्ध कीजिए।

उत्तर—व्यक्तित्व के विषय में विद्वानों के भिन्न-भिन्न प्रकार के मत हैं, जो निम्न प्रकार से है

१ फ्रायड—"आदर्श व्यक्तित्व का लक्षण यह है कि वह मनुष्य को इस परिवर्तनशील जगत् की नित नूतन बनाने वाली गतिविधि के अनुरूप चलने के लिए उनके विचारों को प्रगति देता रहे।"

२ गेटे—"जिस व्यक्ति का व्यक्तित्व विकसित हो जाता है वह निष्पक्ष भाव से ऐसी विवेक बुद्धि बना लेता है जो परिस्थितियों के अनुकूल सर्वोत्तम सिद्ध होती है।"

३. कुन्तक—"काव्य की मूल प्रेरक शक्ति कवि है। उसकी प्रतिभा ही काव्य का एक मात्र आधार है।"

व्यक्तित्व वास्तव मे एक बहुत बडी वस्तु है। उसे तोला नही जा सकता। व्यक्तित्व मनुष्य की अपनी देन होती है। वह तो केवल अनुभव करने की वस्तु है। कवि जिस शक्ति से मानव भावनाओ का अध्ययन कर उपस्थित करता है व नैसर्गिक वस्तुओ को जिस रूप में देखता है उसे उसी रूप में प्रगट कर देता है, इसी शक्ति को व्यक्तित्व कहते है। प्रकृति की रम्य वस्तुओं को हम सभी देखते है परन्तु कवि किसी और दृष्टि से देखता है; जैसे कीचड के पास से हम निकल जाते है, पर कवि उसे घटो देखा करता है। जब उसमें का पानी समाप्त हो जाता है और जगह-जगह दरारें पड जाती है तो कवि कह उठता है—पक का प्रीतम नीर उससे बिछुड गया है; इसलिए उसका हृदय फट गया है। कितना सजीव चित्र बन पडा है। कवि का व्यक्तित्व महान् है, वह अनुभूति के द्वारा भाव व विचार प्रगट करने की क्षमता रखता है। वाल्मीकि, व्यास, कालिदास, भवभूति, सूर, तुलस जितने भी कवि हुए हैं केवल उनके अपने महान् व्यक्तित्व के कारण। इसी व्यक्तित्व के कारण असुन्दर-सुन्दर, लघु-महान्, सत्य-असत्य, सभी वस्तुओ में वह चेतना फूंक देता है। कवि जो कुछ देखता है उसे अपने व्यक्तित्व के रस मे घोल कर फिर अभिव्यक्त करता है।

प्रकृति की प्रत्येक रमणीय वस्तु अपनी सुन्दरता को कवि की आँखो में उडेल देने के लिए, कानो में मधुर रस घोलने के लिये तत्पर रहती है। कवि उन्हे शीघ्रातिशीघ्र ग्रहण कर लेता है परन्तु साधारण व्यक्ति नही। इसी-लिए तो कहा है—"जहाँ न पहुँचे रवि, वहाँ पहुँचे कवि।"

साहित्य मे व्यक्तित्व का महत्वपूर्ण स्थान है। इसीलिये जब हम प्राचीन कवियो को पढते है तो उनकी कृतियो में आत्म-विभोर हो उठते हैं। उसका मूल कारण उनका व्यक्तित्व है, जो जगत् के अनुभवो को अपने व्यक्तित्व मे मिला कर प्रकृति को शब्द-चित्र के रूप में ला कर उपस्थित कर देते है। आधुनिक युग मे इसी प्रकार की रचनाओं को श्रेष्ठता दी जाती है। व्यक्तित्व कुशाग्र बुद्धि, प्रतिभा-सम्पन्न ज्ञान और सत्य पर टिका रहता है। कवि जीवन

की समस्याओ पर चिन्तन करते-करते जीवन के रहस्यो का उदघाटन करने के लिये व्याकुल हो उठता है। प्रकृति ने इन रहस्यो को अपने आचल मे छुपा रखा है। सच्चा कवि उस आचल को खोल देता है। इसलिए तो उसे ब्रह्मा और प्रजापति कहा जाता है। वह बुद्धि और हृदय का मेल कराता है, अनुभूति के क्षणो में वह सत्य का दर्शन कराता है और उसे किसी पात्र के द्वारा साहित्य मे प्रगट कर देता है। प्रकृति के साथ उसका तादात्म्य सम्बन्ध होता है। वह सुन्दरता को विश्व का सृष्टा समझता है, अन्तर्जगत से भी खिलवाड करता है। वह अपने सौंदर्य ज्ञान से छोटे-बडे, सुन्दर-भयानक सभी को अक मे समा रखता है। प्रकाश अन्धकार सभी उसके लिए समान है। वह निर्जीव वस्तुओ मे भी सजीवता ला देता है। उषा, सन्ध्या, विद्युत, गिरि, निर्झर, सभी उसे आकर्षित करते है।

कवि इस विशाल ससार को नित्य देखता है। उसके नयन पटल मे अलौकिक सुन्दरता नाचती है। उसके हृदय मे जिज्ञासा उठती है, वह कुछ पदार्थों को हेय और कुछ को उपादेय समझता है। उसकी जिज्ञासा मे अलौकिकता के दर्शन होते है तो उसको वह सुन्दर भाषा मे व्यक्त कर देता है। ठीक वैसी ही अनुभूति पाठको को कराता है जैसी कि वह स्वयं करता है। वह जड को चेतन और चेतन को सुन्दर बना देता है। राधा, सीता, पार्वती और शारदा सब उसकी आत्मा के सुन्दरता के प्रतीक है। इसी सुन्दरता को उसने चेतन रूप बना कर रख दिया। राधा, सीता, पार्वती, यह सब उसके जीवन के अनुभव है, उसकी आकाक्षाओ की प्रतिमायें हैं। उसने यह प्रतिमाएँ समाज से ग्रहण की। समाज का प्राणी होने के नाते वह समाज के उत्थान-पतन की कल्पना करता है इसलिए वह पलायनवादी नही हो सकता। वह जीवन के सुख-दुःख, आशा-निराशा और ह्रास का जिस रूप मे अनुभव करता है उसी रूप मे प्रगट कर देता है। यही उसका व्यक्तित्व है।

व्यक्तित्व और समाज—कवि का व्यक्तित्व व मौलिक शक्तियाँ समाज मे विकसित व समाप्त होती है। कवि पर समाज का प्रभाव पडता है और कवि का प्रभाव उसकी कृति द्वारा समाज पर पडता है। उसके व्यक्तित्व मे यदि प्रभाव हुआ तो समाज उसके आगे नतमस्तक हो जायेगा और फिर वह

ऐसी अवस्था में रूढ़ियों को तोड़ देता है और उसे खण्ड-खण्ड कर देता है तथा समाज को नवीन साँचे में ढालता है। ऐसा कवि ही श्रेष्ठ समझा जाता है।

कृति में व्यक्तित्व—कवि जिन बातों को हृदय में छुपा कर रखता है समय आने पर चतुराई से उन पर पड़े हुए आवरणों को खोलता है। वह छुपे रत्नों को बाहर निकालता है। अनुभूति में जो कुछ उसे ग्रहण करना होता है उन्हें वह ग्रहण करता जाता है। वह अपनी चतुराई से सत्य के स्वाभाविक रूप को दिखाने के लिए कृत्रिम नायक-नायिका बनाता है और उन्हीं को माध्यम बना कर अपनी प्रतिभा के आधार पर अपने अभीप्शित (अभिप्राय) को अभिव्यक्त कर देता है। (जैसे वाल्मीकि ने राम के द्वारा अपने अभीष्ट अर्थ को स्पष्ट कर दिया।) उसके ये काल्पनिक पात्र मुँह-बोलते पात्र होते हैं। और उन्हीं के माध्यम से उसका व्यक्तित्व प्रगट होता है कभी-कभी उसे प्रतिनायक की उद्‌भावना करनी पड़ती है। प्रतिनायक को वह इसलिए लाकर खड़ा करता है कि उसके नायक का चरित्र उससे उज्ज्वल हो। सचमुच ऐसे कलाकार के पात्र देशकाल का अतिक्रमण कर व्यक्ति और सृष्टि के जीवन में चेतना उत्पन्न करते हैं। इस चेतना से आत्म-विश्वास उत्पन्न होता है, और समाज सशक्त बनता है।

स्थायी और अस्थायी साहित्य—जिन कवियों का व्यक्तित्व महान् था उन का साहित्य भी अभी तक ज्यों-का-त्यों है जैसे सूर, तुलसी, वाल्मीकि आदि का साहित्य। इनके पात्रों में वे स्वयं बोलते हैं। भले ही इनके पात्र काल्पनिक हों, इनके सुख-दुःख में हम सुखी-दुखी होते हैं, उसके साथ हम तादात्म्य सम्बन्ध जोड़ लेते हैं। सच्चे साहित्यकार की पहचान भी यही है जो पाठकों के हृदय में रमता रहे। ऐसे कलाकारों की कृति महान् होती है और महान होता है उनका व्यक्तित्व। जिनका व्यक्तित्व महान् नहीं होता, उनका साहित्य अस्थायी होता है।

पात्रों में व्यक्तित्व—काव्य में पात्रों का आचरण और व्यवहार प्रत्यक्ष होता है। उनसे हमें प्रेरणाएँ मिलती हैं। उनके बताये हुए आचरण और व्यवहार पर हम अपना आचरण और व्यवहार उसी रूप में ढाल देते हैं क्योंकि उनके भीतर उनका व्यक्तित्व रहता है। कभी-कभी कलाकार अति-मानव पात्रों द्वारा

भी व्यक्तित्व बतलाता है, जैसे राम उस धनुष को उठा लेते है जिसे १०,००० व्यक्ति एक बार भी नही उठा सकते, हनुमान सुरसा नाम की राक्षसी के मुह से दुगुने होते चले गये थे। क्या ऐसा भला कभी हो सकता था ? तो यही कहा जा सकता है कि मानव शक्ति असीम है। वह कब मानव से दानव या देव बन जाये, कोई नही कह सकता। कलाकार इन असीम पात्रो को अध्यात्मिक शक्ति से युक्त बता देता है। इसीलिए हम उनके प्रति श्रद्धा व धार्मिक भाव रखने लगते है। कवि तो उन के द्वारा अपने व्यक्तित्व को ही प्रकट करता है। तुलसी ने हनुमान मे, सूर ने उद्धव मे अपना व्यक्तित्व बताया है। कभी तो विपरीत पात्रो मे भी विरोध की प्रवृति दिखाते है, जैसे रावण—ज्ञानी, ध्यानी, वीर और पुजारी था, परन्तु उसे मूर्ख, चोर और देव-द्रोही भी बताया है। तो इसमे यही प्रतीत होता है कि कलाकार पाठको पर जान-बूझ कर अविश्वास और सन्देह बनाये रखना चाहता है। वह जब चाहे इस संदेह को दूर कर सकता है।

छायावाद के भीतर भी कवियो का व्यक्तित्व स्पष्ट हुआ है। गीति काव्य मे प्राय सभी कवि अपने व्यक्तित्व को ले कर उपस्थित हुए हैं, जैसे—महादेवी का विरह-वर्णन 'निराला' की निर्भयता, प्रसाद की रहस्यात्मकता, 'पन्त' की राष्ट्रीयता। प्राय इनके गीतो मे इनका व्यक्तित्व स्पष्ट दृष्टिगोचर होता है। इससे सिद्ध हुआ कि काव्य मे कवि का व्यक्तित्व अवश्य अभिव्यक्त होता है।

प्रश्न—'रसात्मकम् वाक्यम् काव्यम्' काव्य की इस परिभाषा से आप क्या समझते है ? (जून, १९५७)

या

काव्य मे रस व व्यंजना की मान्यता क्यो है ? इसके उदाहरण का परिचय देते हुए व्यजना के भेदो तथा उपभेदो का वर्णन कीजिए। (जून, १९५८)

या

विभिन्न विद्वानो के मतो का उल्लेख करते हुए काव्य के स्वरूप को निर्धारित कीजिए तथा उसके भेदो का सोदाहरण परिचय दीजिए।

या

काव्य की परिभाषा देते हुए उसकी आलोचना पद्धतियो पर प्रकाश डालिए। (नवम्बर, १९५८)

या

रस की उत्पत्ति के सिद्धान्त तथा काव्य के सम्प्रदायों का विवेचन कीजिए।

उत्तर—काव्य-मीमासाकारो ने वाङ्मय के दो रूप निश्चित किये है, १—शास्त्र व २—काव्य। इनमे काव्य को अधिक महत्ता दी गई है, क्योकि उसका क्षेत्र व्यापक है तथा उसमें प्रभावोत्पन्न करने की शक्ति है। काव्य का निर्माता कवि प्रजापति होता है। उसके पास विलक्षण बुद्धि होती है। उसकी प्रतिभा भी अद्वितीय होती है। वह हृदय की अनुभूति को भापा के माध्यम से अभिव्यक्त करता है। इसलिए उसकी कृति में भाव-पक्ष और कला-पक्ष दोनो होते हैं।

भारतीय आचार्यों ने काव्य के विपय मे विस्तृत विवेचना की है। अनत काल से जो भी परिभापाएँ मिलती है उनमें मतभेद है। किसी ने अनुभूति पर वल दिया है तो किसी ने अभिव्यक्ति पर वल दिया है। यही कारण है कि अनेक प्रकार से काव्य की परिभापाएँ लिखी है। हमारे यहाँ के आचार्यों ने काव्य तथा साहित्य को एक माना है। इसीलिए प्राचीन आर्यो ने परिभापा, भेद और उद्देश्य वताते समय समान दृष्टि से देखा है। पर आज काव्य को साहित्य का एक अग माना जाता है। इसी दृष्टिकोण से छन्दोवद्ध रचना को काव्य माना है और इसी दृष्टिकोण को सन्मुख रखते हुए इन्होने काव्य की परिभापा, भेद और उद्देश्य प्रकट किये है :

(१) आचार्य मम्मट ने दोपो से मुक्त गुणो युक्त अलकारो से प्रयुक्त रचना को काव्य माना है।

(२) पडितराज जगन्नाथ ने रमणीयार्थ के प्रतिपादक वाक्य को काव्य माना है।

(३) आचार्य विश्वनाथ का कहना है रस से भरा हुआ वाक्य ही काव्य है।

(४) अम्बिका दत्त व्यास ने लोकोत्तर आनन्द देने वाली रचना को काव्य माना है। इन सब मे आचार्य विश्वनाथ की परिभापा अत्यन्त समवत जान पड़ती है क्योंकि इसमे भाव-पक्ष और कला-पक्ष का समावेश सुन्दरता से हो जाता है। शेप परि-भापाओ में काव्य का एकागी स्वरूप ही प्रस्तुत किया गया है।

पाश्चात्य विद्वानो ने साहित्य के चार उपकरणो (बुद्धि, कल्पना, शैली, व भाव) मे से किसी एक पर ही वल दिया है। हिन्दी के विद्वानो ने निम्न प्रकार से परिभाषाएँ की। 'पत' जी ने कहा है—

(१) विरही होगा पहला कवि, आह से उपजा होगा गान।
नयनों से बरस पड़ी होगी कविता अजान॥

(२) 'दिनकर' जी कहते है—

'जल कर चीख उठा वह कवि था।'

(३) 'निराला' जी ने कहा है—

यदि तुम विमल हृदय उच्छ्वास हो।
तो मैं कान्त कामिनी कविता॥

(४) रामचन्द्र शुक्ल जी कहते है "आत्मा की मुक्तावस्था ज्ञान दशा है तो हृदय की मुक्तावस्था रस दशा है। इसी मुक्ति को मानव जब शब्द विधान द्वारा प्रकट करता है तव उसे कविता कहते है।"

(५) वावू गुलाबराय जी ने "काव्य को ससार के प्रति कवि की भाव-प्रधान मानसिक प्रतिक्रियाओ के श्रेय को प्रेय का रूप देने वाली अभिव्यक्ति" कहा है।

सभी परिभाषाओ मे अनुभूति और अभिव्यक्ति को समान स्तर पर देखा गया है। काव्य मे वैसे भी मानव-जीवन की अनुभूतियाँ, चितवृतियाँ सुन्दरता के साथ व्यक्त होती हैं जिसमें श्रोता या पाठक के मनोवेग तरगित होते है। कलाकार इन मनोवेगो को अलौकिक आनन्द के द्वारा प्रकट करता है। जिसे पढ कर व्यक्ति प्रकृति के साथ आत्मसात करता है। इसी के साथ-साथ कलाकार समाज की आलोचना भी कर जाता है।

कवि दु खात्मक और सुखात्मक दोनो भावो से लोक-रजन करता है। वह अपनी कविता द्वारा जन-जन के हृदय मे एक भाव स्थापित करता है। क्योकि वह स्वय सहृदय प्राणी है। इसी से वह दूसरो को रसमग्न करा देता है। काव्य का चरम लक्ष्य भी मनोवृत्तियो का सशोधन कर धर्म की ओर ले कर चलना होता है जिससे लोकोत्तर आनन्द की प्राप्ति होती है। ऐसा आनन्द सार्वकालिक, सार्वदेशिक और सार्वभौमिक होता है।

काव्य के प्रयोजन—

१—यश की प्राप्ति ।	२—आत्मा की तुष्टि ।
३—अमगल से रक्षा ।	४—कान्ता सम्मति आदेश ।
५—व्यवहार कुशलता में पटु ।	६—धन की प्राप्ति ।
७—मोक्ष की भावना ।	८—रोगो का नाश ।
९—प्रकृति से तादात्म्य सम्बन्ध ।	१०—लोक-शास्त्र का ज्ञान ।

इन सब मे कान्ता सम्मति आदेश सर्वश्रेष्ठ प्रयोजन है; क्योकि इसमें सरसता अधिक होती है। कवि की कीर्ति का अक्षय भण्डार उसका काव्य होता है जिसमें वह अभिप्रेत सकेतो द्वारा अपने भावो को व्यक्त कर देता है। उसकी वाणी का प्रभाव वेद, शास्त्र, पुराण की अपेक्षा अधिक पडता है क्योकि उसके काव्य में कल्पना का उद्रेक भाव अधिक होता है और दूसरे ग्रथ तर्क प्रधान होते है जिसमें रूखापन अधिक होता है।

काव्य का वर्गीकरण—पश्चिमी विद्वानो के मतानुसार व्यष्टि और समष्टि में भेद है इसलिए उन में यहाँ काव्य के दो भेद हो जाते है (वैसे तो उन्होने शैली, सौन्दर्य, प्रभाव, चमत्कार, प्रवाह आदि गुणो पर काव्य का वर्गीकरण किया है) ·

१—विषयीगत और २—विषयगत ।

विषयीगत मे कवि अपने दु ख-सुख, आशा-निराशा और जीवन के दृष्टि-कोण को प्रस्तुत करता है। उसका हृदय जब उद्रेक अवस्था मे आता है तो वह अपनी अनुभूति और भावनाओ को सजीव रूप दे कर पाठक के सन्मुख प्रस्तुत करता है। पाठक उसके साथ पढते-पढते तादात्म्य सम्बन्ध जोड़ देता है कवि की अनुभूति और भावनाओ को समझने लगता है। इस प्रकार की भावना मुक्तक मे अधिक देखी जाती है। इन्हे प्रगीतकाव्य भी कहा जाता है क्योकि यह भाव-प्रधान भी होती है।

विषयगत मे कवि समाज, देश, जाति और विश्व के कार्य-कलापो का सृजन करता है। उसे अपनी कथा का चयन समाज से ग्रहण करना होता है। उसे अपनी कृति मे जाति, समाज, देश और विश्व को कल्याण से युक्त दिखाना होता है। वह समाज का प्रतिनिधि बन कर समाज की समस्याओ को प्रस्तुत

करता है और उसके समाधान के लिए कोई मार्ग अपनाता है। ऐसी कविताओं मे वर्णन की प्रधानता होती है। ऐसी कविताओ को जग-बीती या वाह्यार्थ निरूपक की दृष्टि से भी पुकारा जाता है। यही वर्गीकरण भारतीय विद्वानो को भी अधिक जचता है।

भारतीय आचार्यों की दृष्टि से काव्य का वर्गीकरण—

भारतीय आचार्यों ने काव्य का वर्गीकरण निम्न प्रकार से किया है —

[१] शैली की दृष्टि से तीन भेद किये जाते है

(१) गद्य, (२) पद्य, (३) चम्पू।

(१) गद्य—छन्दोहीन रचना को गद्य कहते है। इसमे कवि अपनी इच्छा के अनुकूल वाक्य-रचना करता है। गद्य शैली रचनाओ की परख की कसौटी है। इसलिए इसमे व्याकरण और भाषा के नियमो को मानना पडता है। आम जनता इसी का प्रयोग अधिक करती है।

(२) पद्य—छन्दोवद्ध रचना को पद्य कहते है। इसमे छन्दो के नियमो का पालन करना होता है। इसमे कल्पना की ऊँची उडान और हृदय के उन्मुक्त भाव होते है।

(३) चम्पू—गद्य-पद्य मिश्रित रचना को चम्पू कहते हैं। इसमें अलकारो का चमत्कार, समासो का गुम्फन और कल्पना का उद्रेक अच्छा होता है।

[२] वन्ध की दृष्टि से दो भेद होते है

(१) प्रबन्ध (२) मुक्तक।

(१) प्रबन्ध मे जीवन का आद्योपात वर्णन होता है और इसकी कथा क्रमवद्ध होती है। पूर्व और पर का सम्वन्ध इसमे जोडना पडता है।

(२) मुक्तक—यह गुलदस्ते की भाँति उन्मुक्त होता है। अपना अर्थ-द्योतन करवाने मे स्वत पूर्ण होता है।

प्रवन्ध के तीन भेद होते है·

(१) महाकाव्य, (२) खण्ड-काव्य, (३) एकार्थ प्रतीति-काव्य।

(१) महाकाव्य मे कम-से-कम आठ सर्ग होते है इसमे नायक धीरोदात्त होता है। मगलाचरण और कथा का सम्बन्ध निर्वाह सुन्दरता के साथ होता है। जिसमे नवीन छन्द, प्राकृतिक वर्णन,षड्ऋतु वर्णन, युद्ध, प्रेम, आदि

की घटनायें होती है और अन्त में धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष मे से एक फल की प्राप्ति बताई जाती है। रामायण, पद्मावत आदि महाकाव्य है।

(२) खण्ड-काव्य—इसमे महाकाव्य के सभी गुण मिश्रित होते है पर इसमे एक घटना एक झलक और एक दृश्य होता है, जैसे यशोधरा, पचवटी, आदि।

(३) एकार्थ-काव्य—इसमें जीवन का एक मुख्य रूप से भाव होता है, जैसे—कामायनी, प्रियप्रवास, आदि।

[३] अर्थ की दृष्टि से तीन भेद हैं :

(१) उत्तम-काव्य (२) मध्यम-काव्य (३) अधम-काव्य।

(१) उत्तम-काव्य—जिस रचना मे व्यगार्थ प्रधान और चमत्कारपूर्ण हो, जैसे—

अबला जीवन हाय तुम्हारी यही कहानी।
आँचल में है दूध और आँखों मे पानी॥

(२) मध्यम-काव्य—जिसमे व्यग्यार्थ वाच्यार्थ की अपेक्षा अधिक चमत्कारपूर्ण न हो जैसे—

पिउ से कहेउ संदेसडा, हे भौरा हे काग।
सो धनि विरहे जरि मुई, तेहिक धुआँ हम लाग॥

(३) अधम-काव्य—जिसमें केवल शब्दो का चमत्कार हो। इसे चित्र-काव्य भी कहते है, जैसे—

करत-करत अभ्यास के जडमति होत सुजान।
रसरी आवत जात ते सिल पर पड़त निसान॥

१—रस की निष्पति, और २—काव्य की आत्मा —

काव्य के सिद्धान्तों को मापदण्ड भी कहा है। आचार्यों ने काव्य का बहुत विस्तृत विवेचन किया है और काव्य के शरीर की अपेक्षा उसकी आत्मा पर बल दिया है। यही कारण है कि उन्होने काव्य को भी आत्मा के आधार पर परखा। मनुष्य सौन्दर्य की भावना अपने हृदय में रखता है। उसी के द्वारा अपने हृदय के उद्गारों मे रस भरता है। इससे अलौकिक आनन्द की प्राप्ति होती है। इसे ब्रह्मानन्द का सहोदर भी कहा है। हमारे हृदय मे जो स्थायी भाव रहते है जब वे जग जाते है तो हमें रस की प्राप्ति होती है। यह रस

किसमे होता है इसी पर विद्वानो का मतभेद है। वैसे सब ही रस को ही काव्य की आत्मा मानते है।

१ भट्ट लोल्लट—इन्होने उत्पत्तिवाद चलाया। ये मूल पात्रो में इस अनुकार्य को मानते है। इन्होने निष्पति का अर्थ आरोप माना है। जब पात्र रंगमच पर कार्य करता है तो दर्शक अपने भावो का उसमे आरोप कर लेता है।

२. आचार्य शकुक—इन्होने अनुमितिवाद चलाया। निष्पति को, उन्होने अनुमान लगाया, अभिनेता द्वारा अनुकरण करने पर दर्शक अपने भावो को उससे मिला देता है और चित्र तुरग न्याय की भाँति उसे समझने लगता है।

३. भट्ट नायक—इन्होने भुक्तिवाद चलाया। अनुकार्य के भावो को इन्होने अनुकर्ता, दर्शक या पाठक मे अनुमान कर लेता है और इसका भोग करता है। साथ-ही-साथ रसानुभूति के लिए भोजक और भोज्य शक्ति बताई। (परन्तु हमारे यहाँ वह मत प्रचलित नही है क्योकि हमारे यहाँ अभिधा, लक्षणा और व्यजना, तीन ही शक्तियाँ है।)

४ अभिनव गुप्त आचार्य—इन्होने अभिव्यक्तिवाद चलाया क्योकि व्यजना शक्ति के आधार पर पाठक के स्थायी भाव जगते हैं और इसी मे रस का आनन्द होता है तथा हृदय रस दशा तक पहुँचता है।

काव्य की आत्मा के विषय मे विद्वानो के निम्नलिखित सम्प्रदाय प्रचलित है—

१. अलकार सम्प्रदाय—इसमे अलकारो की प्रमुखता मानी जाती है। इसके आचार्य भामह, रूद्रट, उद्भट्ट आदि हैं (वास्तव मे अलकार तो साधन हैं न कि साध्य। यह शोभा को बढाते है।)

२ वक्रोक्ति सम्प्रदाय—आचार्य कुन्तक "टेढे ढग से बात करना" ही 'काव्य की आत्मा' मानते है। इससे कविता मे एक विशेष आनन्द मिलता है। ज्ञानी इसका प्रयोग अधिक करते है। जन-साधारण की समझ मे यह नही आता।

३. रीति सम्प्रदाय—इसके प्रवर्त्तक वामन है। इन्होने विशिष्ट पद रचना शैली को ही काव्य की आत्मा माना है।

४ ध्वनि सम्प्रदाय—इसके प्रवर्त्तक आनन्द वर्धनाचार्य है। उन्होंने व्यग्य को काव्य की आत्मा माना है। इससे काव्य मे मधुरता और मिठास आ जाती है।

५. औचित्य सम्प्रदाय—इसके प्रवर्तक क्षेमेन्द्र है। वे काव्य में उचित का ध्यान रखना ही काव्य की आत्मा मानते है।

६. रस सम्प्रदाय—(इसका विवेचन ऊपर हो चुका है।)

प्रश्न—'काव्य में जीवन की व्याख्या' किस प्रकार होती है उसको स्पष्ट कीजिए।

उत्तर—विद्वानो ने काव्य की भिन्न-भिन्न प्रकार की परिभाषायें की हैं। प्राचीन और अर्वाचीन परिभाषाओ में आकाश-पाताल का अन्तर है। प्राचीन समय में काव्य का विस्तृत विवेचन हुआ था। आधुनिक युग में केवल पद्य-बद्ध रचनाओ को ही काव्य माना गया है। इसी का दूसरा नाम कविता है। वैसे तो साहित्य के सभी अगो मे जीवन की व्याख्या होती है परन्तु काव्य में विशेष प्रकार से व्याख्या होती है जिससे अधिक सरसता आ जाती है। शुक्ल जी आत्मा की मुक्तावस्था को रस दशा मानते हैं। मनुष्य की वाणी इस मुक्ति की साधना के लिये जो शब्द-विधान करती है उसे ही काव्य कहते है। प्रेम-चन्द जी जीवन की आलोचना ही साहित्य को कहते है। 'अरिस्टाटल' प्रकृति की अनुकृति को ही कला मानते है। 'जानसन' श्रेय व प्रेय का गठ-बन्धन ही कला मानते है। 'कालरिज' का कहना है मानव ज्ञान-तरु का परिमल रूप ही काव्य है। उसमे मानव के विचार, मनोवेग और भावनाओ का सार रूप है।

काव्य के अन्तर्गत गद्य-पद्य दोनो आते हैं। पद्य में कल्पना शक्ति अधिक होती है और वह प्रभाव अधिक डालती है इसीलिये उसमे जीवन की व्याख्या विशेष होती है। कवि कविता मे व्याख्या को सरस और हृदयग्राही बनाता है। उसकी जीवन-व्याख्या की पद्धति बडी रोचक होती है। वह विशिष्ट घटनाओ के बल पर मानव-जीवन के सत्य की विशद व्याख्या करता है। इस व्याख्या के भीतर कवि जीवन के सामान्य सिद्धान्तो के साथ व्यक्तिगत कार्यों की तुलना करता है। काव्य के भीतर व्यक्ति और समाज दोनो का चित्रण अत्यन्त सुन्दरता से होता है। कलाकार मनुष्य और मन की गुत्थियों को सुलझाता है। मनुष्य के सिद्धान्त के साथ वह व्यक्तिगत जीवन की तुलना करता है। तुलना से घृणा, प्रेम, सत्य, मिथ्या, विलासिता, क्षमा व क्रोध सभी का सुन्दर चित्रण बतलाता है मानो हृदय के अन्तर्हित भावनाओ का प्रकाशन

करता है। परन्तु साथ-ही-साथ बाहरी प्रभावो को भी ग्रहण करता चलता है। अदृश्य को दृश्यवान, अश्रुत को श्रुतवान बनाता चलता है। हमे भौतिक से वह अध्यात्म की ओर ले चलता है।

व्याख्या करते समय उसे उपचार का भी ध्यान रखना पड़ता है। समाज के रोगो का निदान व उपचार घटनाओ या चरित्रो द्वारा करता है। प्रकृति के प्रकोप के द्वारा या नियति के क्रोध द्वारा घटनाओ को वह ले कर आता है और फिर विपत्तियो का कारण ढूँढता है और बाधाओ के निरूपण के लिये समाधान का चित्रण करता है, जैसे प्रलय से पीडित मनु का विषाद से युक्त चित्रण देखिये—

"किन्तु जीवन कितना निरुपाय,
लिया है देख, नहीं सन्देह,
निराशा है जिसका परिणाम;
सफलता का वह कंपित गेह।।"

इसके प्रत्युत्तर मे श्रद्धा आ कर कहती है—

"कहा आगन्तुक ने सस्नेह,
अरे तुम इतने हुए अधीर,
हार बैठे जीवन का दांव,
जीतते मर कर जिसको वीर।"

कितनी सुन्दर जीवन की व्याख्या यहाँ हुई है। कर्म करते जाओ और जीवन को सुखी बनाते जाओ। जीवन मे उत्थान-पतन आते ही रहते है, सृष्टि अपना कार्य करती जाती है। इसीलिये प्रसाद जी कहते है—

"युगों की चट्टानों पर सृष्टि।
डाल पद चिन्ह चली गम्भीर।।
देव गन्धर्व असुर की पंक्ति।
अनुसरण करती उसे अधीर।।"

इस प्रकार प्रसाद जी ने कर्म और नियति का संघर्ष दिखाते हुये काव्य मे जीवन की अत्यन्त सरस व्याख्या की है। जीवन के इस रहस्य को समझने के लिये आध्यात्मिक दृष्टिकोण की आवश्यकता होती है। सूर, तुलसी, कबीर,

सभी कवियो ने आध्यात्मिक दृष्टि से जीवन के रहस्यो को उद्घाटित किया है।

प्रेम और सौन्दर्य मानव-जीवन के प्रमुख तत्व हैं। यही कारण है कि कविता मे दोनो तत्व अत्यधिक महत्ता रखते हैं। जीवन में स्त्री के प्रति पुरुष का आकर्षण बहुत बडी बात है। वसन्त ऋतु में तो पुरुष अपनी काम वासना को नियन्त्रित नही कर पाता। कलाकार प्रेमी और प्रेमिका को अपनी कृति का पात्र बना लेता है और फिर प्रेम की अत्यन्त सुन्दर व्याख्या कर देता है। यही आकर्षण विधाता की सृष्टि का मूल आधार है और कवि का भी। केवल काव्य ही ऐसी वस्तु है जो प्रेम की सुन्दर व्याख्या कर सकता है। वाल्मीकि से ले कर आज तक सभी कवियो ने प्रेम की व्याख्या कर दी। इसी प्रेम के कारण दानव और मानव के युद्ध छिड़े। प्रसाद की ये पक्तियाँ देखिये—

"उज्जवल वरदान चेतना का,
सौन्दर्य जिसे सब कहते है,
जिसमें अनन्त अभिलाषा के,
सपने सब जगते रहते हैं।"

मानव-जीवन और प्रकृति का अत्यन्त घनिष्ठ सम्बन्ध है इसीलिये कविता मे प्रकृति का निखार अपने आप ही आ जाता है। वैसे भी प्रेम जीवन का सार-भूत अग है। कवि प्रेम मे सुन्दरता को देखता है। सफल कवि बाहरी सौन्दर्य को ही नही आन्तरिक सौन्दर्य की भी खोज कर लेता है और जब कवि प्रेम का वर्णन करने जाता है सुन्दरता अपने-आप चली जाती है। आकर्षण और सौन्दर्य नारी मे होता है। नारी को एक ओर सती-साध्वी तो दूसरी ओर ताडका जैसी निकृष्ट भी बताया जाता है। जिस साहित्य मे नारी जीवन की जितनी ही व्याख्या सत्य और स्वाभाविक होती है वह काव्य उतना ही सरल और सुन्दर होता है।

कवि शशि का निर्मल आकाश मे सुन्दर प्रकाश, तो कभी-कभी काले घन घमण्ड में बिजली की चमक-दमक देखता है। वह प्रकृति की आँख-मिचौनी भी देखता है। उषा, सन्ध्या, ज्योत्सना सभी उसे आकर्षित करती है। सध्या कवि प्रकृति को अपनी सहचरी के रूप मे देखता है और उसके प्रागण में

जो भी छोटी-छोटी क्रियायें देखता है उनमे उसे जीवन की पुकार सुनाई देती है और जो कुछ अनुभूति से प्राप्त करता है उसे प्रगट कर देता है। क्योंकि उसका व्यक्तित्व पचभूत के अणु-अणु मे व्याप्त रहता है। वह उसके साथ अपनी आत्मा को भी समिश्रित कर देता है। इस बात के साक्षी सारे काव्य हैं परन्तु इससे यह तात्पर्य नही कि कवि कोरा उपदेशक या राजनीतिज्ञ न बन जाये। वह इन सब से ऊपर है। उसका अस्तित्व सार्वकालिक, सार्वदेशिक रूप में होता है। कठोर सत्य की खोज करना उसका अपना लक्ष्य है। वैसे भी कवि सामाजिक प्राणी है। चतुर्दिक वातावरण का प्रभाव उस पर अवश्य पडता है। समाज के उत्थान-पतन का प्रभाव उस पर अवश्य पडता है। सामाजिक दुर्गुणो को और असद्वृतियो को दूर करता है। इस उत्थान-पतन में पुरुष स्त्री सभी भागीदार होते है। पुरुष अपनी शक्ति से, स्त्री अपने हृदय से, समाज को उन्नत कर सकती है, इसका प्रत्यक्ष प्रमाण रामायण से मिल सकता है।

निष्कर्ष रूप मे कहे कवि द्वारा निर्मित सौन्दर्य कभी भी मलीन नहीं पड़ता। जीवन के सत्य की व्याख्या करना उसके जीवन का धर्म होता है। कवि अपने तक योगी और एकान्त साधक, फिर समाज के लिये सुधारक, पथ-प्रदर्शक और युग-निर्माता है। वह समाज की बुराई को अपनी वाणी से गंभीर गर्जना कर निकाल बाहर फेंकता है। उसकी कविता कानून बन कर आती है, शब्दों मे आकर्षण होता है जिससे वह ससार को उगलियो पर नचाता है। सचमुच उसकी यह अनुपम शैली होती है।

प्रश्न—हिन्दी के आधुनिक महाकाव्य पर एक सक्षिप्त निबन्ध लिखिए।
(नवम्बर, १९५७,५८)

या

महाकाव्य के सम्बन्ध में भारतीय तथा पश्चिमी दृष्टिकोण उपस्थित करते हुए हिन्दी महाकाव्यों का सक्षिप्त परिचय दीजिए।

या

महाकाव्य और खण्ड-काव्य का उदाहरणसहित अन्तर बताते हुए महाकाव्यों के तत्वों का परिचय दीजिये। (नवम्बर-जून, १९५८)

या

भारतीय और पश्चिमी विद्वानों के मत से महाकाव्य के लक्षण एवम् विशेषताओं का परिचय देते हुए हिन्दी महाकाव्यों का शास्त्रीय स्वरूप निर्धारित कीजिए।

उत्तर—बन्ध की दृष्टि से भारतीय समीक्षको ने काव्य के दो भेद निर्धारित किये है।

१ प्रवन्ध काव्य व २. मुक्तक काव्य।

प्रवन्ध में छन्द एक-दूसरे से शृखलाबद्ध होते हुए प्रस्तुत किये जाते हैं। छन्दो की जरा-सी गड़बडी से अर्थ और रस दोनों भंग हो जाते है।

मुक्तक काव्य का प्रत्येक काव्य अपने-आप मे पूर्ण होता है। पूर्व और पर का सम्बन्ध उसमे नही जोड़ा जाता है। आगे चल कर विद्वानो ने प्रवन्ध काव्य को दो भागो मे विभक्त किया है। १. महाकाव्य और २ खण्ड-काव्य। महाकाव्य का क्षेत्र विस्तृत होता है। उसे अग्रेजी में Epic कहते हैं। उसमें जीवन का सम्पूर्ण चित्रण होता है। खण्ड-काव्य मे किसी एक ही दृश्य को, घटना को या विचार को प्रमुखता दी जाती है। पाश्चात्य समीक्षको ने भी काव्य के दो भाग किये है। (१) विषयी प्रधान और (२) विषय प्रधान। हमारे यहाँ काव्य को विषय प्रधान के अन्तर्गत ही माना जाता है। पाश्चात्य विद्वानो ने निम्नलिखित महाकाव्य के लक्षण बताये है :—

(१) वृहद आकार का और वर्णन प्रधान जिसमें व्यक्ति की अपेक्षा जाति भावना प्रधान होती है।

(२) विषय परम प्रिय व लोक प्रिय तथा पात्र मानव व देवत्व या वीरत्व के गुणो से युक्त होता है।

(३) एक ही छन्द का प्रयोग होता है और उसमे वीर रसप्रधान हो तथा नायक का सम्बन्ध देवताओ से हो जिसे विशेष प्रकार की शैली में प्रकट किया जाता है।

भारतीय आचार्य के द्वारा निर्धारित महाकाव्य के लक्षण :—

१. कथा शृखला बद्ध हो।

२. प्रकृति चित्रण हो, जैसे उषा, सध्या, गिरि, निर्झर, पर्वत, नदी, झील, आदि-आदि का ········।

३ सम्बन्ध निर्वाह हो। (इसके न होने से काव्य गडबडा जाता है।)

४ मार्मिक स्थलो का चुनाव सुन्दरता से हो।

५ कथा सर्गबद्ध हो।

६. इसका नायक धीरोदात्त या धीर ललित हो।

७ वीर, शृ गार, शान्त रसो मे से एक प्रधान हो, और दूसरे उसके सहायक रूप मे हो।

८ कथानक ऐतिहासिक या पौराणिक होता है। जिसे कम-से-कम ८ सर्गों मे बताया हो तथा सर्ग बदलने के पूर्व छन्द बदल दिया हो।

९ कथा के प्रारम्भ मे प्रार्थना, ईश वन्दना, और दुष्ट-जन की निन्दा हो तथा सतो का गुणगान हो।

उपर्युक्त विवेचन से प्रतीत होता है कि भारतीय और पाश्चात्य विद्वानों के मतो मे अन्तर नही है क्योकि दोनो विषय की लोकप्रियता और नायक की महत्ता मानते है और दोनो ही आकार की विशालता चाहते हैं। दोनो ने कथानक के सगठन पर वल दिया है। पाश्चात्य ग्रथ आदर्श व जनता की प्रधानता पर चलते है। भारत मे आदर्श के अतिरिक्त विश्व-बन्धुता की भी महत्ता स्वीकार की गई है। हमारे यहाँ नायक की श्रेष्ठता इतिहास प्रसिद्ध है जिसमे सभी जाति-गौरव को ही बताते है, जैसे 'राम चरित मानस' मे राम का चरित्र। वैसे तो महाकाव्य आकार-प्रकार मे वडा होता है, उसका उद्देश्य भी महान होता है जिसमे मानवीय गौरव की स्थापना होती है। आधुनिक युग मे महाकाव्य के दृष्टिकोण मे अन्तर आ गया है। आजकल के महाकाव्यो मे नारी की महत्ता अधिक वताई जाती है, मगलाचरण आदि नही होते। यह आकार-प्रकार मे छोटे होते हैं। आजकल नायक के सम्वन्ध का दृष्टिकोण भी वदल गया है जैसे कामायनी मे श्रद्धा की महत्ता मनु की अपेक्षा अधिक है। वैसे नायक तो मनु ही है। वावू गुलाबराय निम्नलिखित परिभाषा महाकाव्य के विषय मे देते है—"महाकाव्य वह विषय-प्रधान काव्य है जिसमे अपेक्षाकृत वडे आकार मे जाति मे प्रतिष्ठित और लोकप्रिय नायक के उदात्त कार्यों द्वारा जातियो, भावनाओ व आदर्शों का उद्घाटन किया हो।"

पश्चिमी महाकाव्य—

१—महाकवि होमर द्वारा रचित 'ईलियड' और 'ओडेसी', २—वर्जील द्वारा रचित 'ईलियड', ३—मिल्टन का 'पैराडाइस लास्ट'।

संस्कृत के महाकाव्य—

१—वाल्मीकि द्वारा रचित 'रामायण' २—व्यास जी का 'महाभारत'। ३ हर्ष का 'नैषध चरित्र', ४. कवि माघ का 'शिशुपाल वध', ५. कवि भारवि का किरातार्जुनीय।

हिन्दी के महाकाव्य—

१. कवि चन्दवरदाई का 'पृथ्वीराज रासो', २. जायसी का 'पद्मावत,' ३. कविकुलगुरु चूडामणि तुलसीदास जी का 'रामचरित मानस', ४ कठिन काव्य के प्रेत केशव द्वारा रचित 'रामचन्द्रिका', ५. अयोध्यासिंह उपाध्याय का 'प्रिय प्रवास', ६. राष्ट्रकवि गुप्त जी का 'साकेत', ७ प० बलदेव प्रसाद मिश्र का 'साकेत सत', ८ द्वारका प्रसाद मिश्र का 'कृष्णायन', ९ दिनकर जी का 'कुरुक्षेत्र' आदि।

१. चन्दवरदाई का पृथ्वीराज रासो—यह अपभ्रंश का अन्तिम महाकाव्य और हिन्दी का प्रथम महाकाव्य है। इसमे महाकाव्य के प्राय: सभी गुण मिलते है। इसे विद्वान् अर्ध ऐतिहासिक व अर्ध-प्रमाणिक मानते है। इसके कथा प्रवाह मे शिथिलता है। इसमें अनेक प्रक्षिप्त अंशो की भरमार है। इसे महाकाव्य न कह कर कुछ विद्वान इसे विशालकाय वीर काव्य कहते है। इसमे पृथ्वीराज की ३ शादियां, १७ युद्ध, ऋतुवर्णन व बारहमासा का सजीव वर्णन है। यह कई अध्यायो से युक्त १२०० पृष्ठों का ग्रंथ है।

२ जायसी का पद्मावत—यह एक उच्चकोटि का सूफी धर्म का काव्य है। इसमें ५९ खण्ड है। कथा का प्रवाह अटूट है, और अबाध गति से चलता है। शृंगार रस और वीर रस प्रधान है। प्रकृति वर्णन, बारहमासा अत्यन्त सशक्त बन पड़े है। प्रेम के वियोग पक्ष को अत्यन्त सुन्दरता के साथ उभारा है। विप्रलम्भ शृंगार तो इतना सरस बन पड़ा है कि विश्व के किसी भी ग्रंथ में ऐसा वर्णन नहीं मिलेगा। इसके भीतर इतिहास के साथ कल्पना का पुट

अत्यन्त सुन्दर बन पडा है। इसे मसनवी और भारतीय पद्धति पर लिखा गया है। इसकी भाषा ग्रामीण अवधी है। ब्रह्मवाद और एकेश्वरवाद का सुन्दर समिश्रण कराया है।

३ तुलसीकृत रामायण—यह हिन्दी का सर्वोत्कृष्ट सर्वश्रेष्ठ महाकाव्य है। इसकी कथा का प्रवाह अटूट है। सम्बन्ध निर्वाह, प्रकृति चित्रण, युद्ध निर्वाह, वन गमन, धनुष यज्ञ खूब बन पडे है। जायसी की चौपाई-दोहा बन्ध शैली की भाँति लिखा गया है। स्थल-स्थल पर अलकार भी देखते ही बन पडते है। इसमे शान्त रस प्रधान और अन्य रसो का परिपाक सुन्दर हुआ है। इसमे आदर्श मर्यादा पुरुषोतम दशरथ पुत्र श्री राम के चरित्र को उभाडा है। राजनैतिक, सामाजिक, धार्मिक और पारिवारिक दृश्य देखते ही बन पडते हैं। इसमे आदर्श पिता, आदर्श पुत्र, आदर्श माँ, आदर्श भ्राता का वर्णन किया है। इसमे कर्मों का समन्वय, युगो का समन्वय, वर्णाश्रम धर्म का समन्वय, भाषा का समन्वय और काव्य शैलियो का भी समन्वय कराया है। भारत के कोने-कोने मे इसे धार्मिक ग्रथ समझ कर पूजा जाता है।

४ केशव की रामचन्द्रिका—कठिन काव्य के प्रेत केशवदास ने अपनी बुद्धिमता, गुरुता और विद्वता का सम्पूर्ण रूप से इस ग्रथ मे परिचय दिया है। कवि ने वर्णन करते समय जरा भी सहृदयता से काम नही लिया। ग्रथ में सम्बन्ध निर्वाह नही बन पडा। इसे छन्दो का अजायबघर और अलकारो का भण्डार कहा है। भाव-पक्ष की अपेक्षा कला-पक्ष अधिक पनपा है। कवि ने राम को उल्लू तक कह दिया है। इसकी भाषा भी काव्य के अनुकूल नही है। रावण के व्यक्तित्व के नीचे राम का व्यक्तित्व दब गया है।

५ अयोध्यासिंह उपाध्याय का प्रियप्रवास—इसे सस्कृत निष्ठ भाषा में लिखा गया है। यह महाकाव्याभास है। खडी बोली का सर्वप्रथम ग्रन्थ है। कथा मे शिथिलता है। लगभग १४सर्ग है। सब का प्रारम्भ प्रकृति वर्णन से ही होता है। इसमे मुख्य दो घटनाएँ है। (कृष्ण का मथुरा गमन और उद्धव का आगमन)। कवि ने इसे वर्णिक छन्दो मे लिखा है, वह भी अतुकान्त मे।

६. मैथिलीशरण गुप्त का साकेत—यह गुप्त जी की अक्षय कीर्ति का भण्डार है। इस पर उन्हे मगलाप्रसाद पारितोषिक मिला। इसमे नायक-नायिका लक्ष्मण और उर्मिला है। परन्तु राम और सीता बरबस इस स्थल पर आ टपकते है। इसका नवा व दसवा सर्ग हिन्दी साहित्य की अमूल्य देन है जिसमे उर्मिला का विरह वर्णन अन्तिम सीमा तक पहुँचा दिया है।

७ पं० बलदेव प्रसाद मिश्र का साकेत संत—यह महाकाव्य भरत के चरित्र पर है। वैसे तो तुलसी बाबा ने भरत को अत्यन्त महत्वपूर्ण स्थान रामायण के भीतर दिया है। उसका चरित्र अत्यन्त पावन बनाया है। परन्तु यहाँ कवि नायक के साथ-साथ लगा हुआ है। यही कारण था कि कथा में मथरा के विषय मे केवल सकेत-भर कर दिया है। कवि की ऊहा-पोह की शक्ति बडी विशाल रूप लेकर प्रस्तुत हुई है। यही कारण था कि ग्रथ प्रसिद्ध हुआ इसे के भीतर उसने नवीन भावनाओं का सुन्दर परिचय दिया। भरत जब पचवटी मे आगमन करते है तो उसका दल-बल के साथ जाने का कारण पहले बता दिया और दूसरी ओर उनकी आगमन की सूचना राम तक कोल और भील द्वारा बतला दी। लक्ष्मण को क्रोध का मौका ही नंही दिया। इस ग्रथ मे मानव हृदय के तप और त्याग की झाकी बडे सुन्दर रूप मे प्रस्तुत की है। ग्रथ विचार प्रधान है इसलिए भावुकता का प्राधान्य कविता की अपेक्षा बहुत ही कम स्थलो पर दिखाई पड़ता है।

८ प्रसाद की कामायनी—प्रसाद जी का यह महाकाव्य है। यह विश्व साहित्य की एक महान देन है और प्रसाद जी की अक्षय कीर्ति का अमर तरु। इसमें वैदिककालीन कथा के आधार पर ऐतिहासिकता का पुट दे कर कथा मनोवैज्ञानिक ढग से चित्रित की गई है। इसमे भाव-पक्ष, कला-पक्ष, कूट-कूट कर भरे है। छायावाद का यह सर्वोत्कृष्ट ग्रथ है। इसमे ऐतिहासिकता, दार्शनिकता, कविता, छायावाद, रहस्यवाद, नारी चित्रण, शैव्य धर्म, नूतन छन्द,नवीन कल्पना तथा नवीन उद्भावना अत्यन्त सुन्दर बन पड़े है।

९ दिनकर जी का कुरुक्षेत्र—इसमे कौरव-पाण्डवो का युद्ध है। युधिष्ठिर भीष्म पितामह के पास पश्चाताप करने जाते है, भीष्म पितामह उन्हे समझाते

है कि अन्याय के विरुद्ध युद्ध करना कोई पाप नही, जो युद्ध से डरता है वही युद्ध को निमन्त्रण भी देता है। इसी ग्रंथ से दिनकर हिन्दी मे अधिक प्रसिद्धि कर पाये हैं।

प्रश्न —हिन्दी काव्य का कलात्मक विश्लेषण कीजिए।

या

गीतिकाव्य का रूप स्पष्ट करते हुए हिन्दी में गीतिकाव्य का इतिहास बताइये।

उत्तर—हिन्दी साहित्य में गीतिकाव्य की धारा स्वत प्रभावित होती जा रही है। इसे प्रगति के नाम से भी पुकारा जाता है। अंग्रेजी में इसे Lyric के नाम से पुकारते है। कविता हृदय की झकृति है, तो गीति भावना कविता के अन्तर्गत सार वस्तु है या यूं कहें इसमें गीत और कविता के दोनो गुण मिल जाते हैं।

बन्ध की दृष्टि से काव्य के दो भेद किये है—प्रबन्ध और मुक्तक।

मुक्तक के भी दो भेद होते है—पाठ्य मुक्तक और गेय मुक्तक। पाठ्य में जीवन की अनुभूतिया व गेय मे विचारो, नीति और उपदेश तथा भाव रस और निजी अभिव्यक्ति की प्रधानता रहती है।

ढाचा—गीतिकाव्य काव्य-सागर के मथन के नवनीत की भांति है। देवी जी लिखती है – 'सुख-दु.ख की भावावेश में अवस्था विशेष का गिने-चुने शब्दो में स्वर-साधना के उपयुक्त चित्रण कर देना ही गीति है।' गुलाबराय जी कहते हैं "गीतिकाव्य मे सगीतात्मकता को कोमल कान्त पदावली निजी रागात्मक सक्षिप्तता और भावो की एकता होती है। परन्तु आत्म-निवेदन भावना को उच्चता, सक्षिप्तता, रागात्मकता और भाव विशेष अवस्था को ही गीति काव्य समझते है।" पत इसलिए तो कह उठे

वियोगी होगा पहला कवि आह से उपजा होगा गान।
नयनों से बरबस निकल पडो होगो कविता अनजान॥

पश्चिम के विद्वानो का मत है कि किसी विचार, भाव या स्थिति को प्रगट कर देने वाली गीतिकाव्य की ही प्रकृति है। उपर्युक्त विवेचनो से प्रतीत होता है गीतिकाव्य मे गेयत्त्व, सहानुभूति और कोमल भावनाओ का

समावेश होता है। जिसमें भी यह तीन भाव पाये जाते हैं, उसे श्रेष्ठ गीति-काव्य कहेंगे।

गीतिकाव्य के भेद—पश्चिमी भेदो के गीतिकाव्य के छ भेद है—

(१) गीतिकाव्य (२) सम्बोधन गीत (३) शोक गीत (४) व्यग्य गीत (५) विचारात्मक गीत (६) उपदेशात्मक गीत।

इन विधाओ मे केवल आकार की प्रधानता है शेष सभी मे विशेषता की प्रधानता है। हिन्दी मे प्राय सब भेद उपलब्ध हो जाते है। क्योकि हमारे गीतिकाव्य पर अग्रेजी की छाप है। प्रभाकर माचवे, प्रसाद, 'निराला' आदि इसी प्रकार के गीतिकार है। भारतीय आलोचको ने गीतिकाव्य को दस प्रमुख भेदो में विभक्त किया है —

(१) प्रकृति सम्बन्धी गीत (छायावादी गीत)
(२) अध्यात्मिक गीत (रहस्यवादी गीत)
(३) जीवन सम्बन्धी गीत (दार्शनिक गीत)
(४) लोक-प्रेम गीत (प्रेम और सौन्दर्य के गीत)
(५) प्रगतिवादी गीत (शोषण के गीत)
(६) प्रचार गीत (वाद व सम्प्रदाय के गीत)
(७) एकता सम्बन्धी गीत (वर्गो की एकता पर बल के गीत)
(८) परिकृति गीत (परिहास की भावना के गीत)
(९) नाटकीय गीत (छन्दोबद्ध आत्म-चरित के गीत)
(१०) राष्ट्रीय गीत (राष्ट्र सम्बन्धी गीत)

गीतिकाव्य का इतिहास—गीतिकाव्य मानव जीवन का एक अङ्ग है। सृष्टि भी परम सत्ता का एक गीत है। इसीलिए मनुष्य संसृति व सगीत से संबद्ध है, इसलिए झुकता है। गीत वेदो में भी होते है। सामवेद तो गीतो का भण्डार है। वाल्मीकि रामायण मे भी यत्र-तत्र गान के दर्शन हो जाते है। बौद्ध साहित्य मे थेय गाथाए गीति के रूप मे ही मिलती है।

हिन्दी का कलात्मक विश्लेषण करने पर गीतो को दो भागो मे बाट सकते हैं, प्राचीन व अर्वाचीन। प्राचीन गीत शृगार, भक्ति और नीति को ले कर चलते है परन्तु आधुनिक गीतो मे मधुरता और मृदुलता व वेदलता

है। वीरगाथा काल ही से हिन्दी मे गीतिकाव्य का प्रारम्भ माना जाता है। उस समय के आल्हा-ऊदल खण्ड मे भी वीर गीति भावना स्पष्ट दृष्टिगोचर होती है। हिन्दी के सर्वप्रथम गीतिकार मैथिली कोकिल श्री विद्यापति को ही कह सकते है। उन्होंने सस्कृत के कवि जयदेव के गीत गोविन्द से ही प्रेरणा प्राप्त की। उनके गीतिकाव्य मे जयदेव की भावना की प्रतिध्वनि स्पष्ट रूप से परिलक्षित होती है। इनके पदो मे रागात्मकता विशेष प्रकार की है। स्वर सौन्दर्य, वाग्विदग्धता, तन्मयता, मधुरता, पेशलता इनके गुणो मे अधिक है, इसीलिए ये जयदेव से भी बाजी मार ले गये है।

कबीरदास—हिन्दी मे रहस्यवाद के जन्मदाता ये ही है। आत्मा-परमात्मा की एकता का इन्होने सुन्दर चित्रण उपस्थित किया है। इनकी काव्य-रचना भी वस्तुत गीति रूप मे ही है जिससे गीतो में तल्लीनता और भावुकता है।

सूरदास—यह गीतिकाव्य के उज्ज्वल नक्षत्र हैं। उनमे अनुभव की तीव्रता, भाषा की सरलता स्पष्ट दृष्टिगोचर होती है। इन्होने वात्सल्य और शृ गार का कोना-कोना झाक लिया है।

मीराबाई—इनका जीवन ही स्वय सगीतमय हो गया है। सुख-दु ख, विरह-निवेदन, आशा-निराशा सभी इनके गीतो में मिलते है।

तुलसीदास—इनके गीतो की मधु झकार को विनय पत्रिका, गीतावली मे भली प्रकार सुना व देखा जाता है। यहाँ गीतो में भक्ति भावना का सुन्दर चित्रण मिलेगा।

वर्तमान युग में गीतिकाव्य मे भाव, भाषा और विषय की दृष्टि से अनेक परिवर्तन हुए है। इस समय के काव्य पर अग्रेजी साहित्य भी खूब बन पड़ा है।

भारतेन्दु हरिश्चन्द्र—ये कविता कामिनी को रीतिकाल के पक से निकाल कर राष्ट्रीयता और समाज-सुधार की ओर ले कर आए और नाटको मे यत्र-तत्र 'प्रबोधिनी' जैसे गीत दिखाई पडने लगे। कही-कही आत्म-निवेदन के पद भी मिलते है।

द्विवेदी युग मे श्रीधर पाठक और मैथिलीशरण गुप्त की गूंज रही है।

गुप्त जी ने साकेत, जयद्रथ वध, पचवटी यशोधरा आदि-आदि ग्रन्थ लिखे। जिनमे इन्होने मार्मिक और हृदयस्पर्शी भाव लिखे। नाथूराम शकर शर्मा ने आर्य समाज की बौद्धिक एवम् सुधारक प्रकृति की ओर अधिक ध्यान दिया।

प्रसाद जी – गीतिकाव्य के तो आप महान कवि समझे जाते है। इनके गीतो मे अद्भुत माधुर्य और सरसता है। आसू, झरना, गीतिकाव्य के उज्ज्वल ग्रंथ है। इनके नाटको में भी गीतो की भावना अत्यन्त सुन्दर बन पड़ी है। इन्ही के नाम से प्रसाद युग भी चला। पाठक जी की कविताओ में यही से लिरिक का दर्शन होना शुरु होता है। इस समय के साहित्य पर रवीन्द्रनाथ ठाकुर के गीताञ्जली पर नोवल पुरस्कार का, अग्रेजी के लिरिक का प्रभाव तथा इतिवृतात्मक कविता की प्रतिक्रिया का प्रभाव पडा है और गीतिकाव्य कल्पना कोमल भाव, वेदना और करुणा के भावो से भर गया और इसमें निम्नलिखित विशेपतायें आ टपकी।

१, लाक्षणिक भाषा, २ प्रकृति का मानवीकरण, ३. प्रतीक सयोजन, ४. परम सत्ता का आलम्बन, ५ व्यक्तिगत अनुभूतियो की प्रधानता, ६. प्रकृति का सुन्दर चित्रण, ७. सास्कृतिक चेतना की भावना, ८ नये छन्द, ९ नवीन कल्पना, १०. नवीन भावनाए और ११. भाव जगत मे नूतन सस्कार, परिष्कृत बन कर आये। उपर्युक्त बातें छायावाद व रहस्यवाद दोनो में पाई जाती हैं फिर भी दोनो मे अन्तर है विषय का शैली का नही। वैसे छायावाद के सम्बन्ध मे आत्मा का सम्बन्ध आत्मा के साथ (स्थूल के प्रति सूक्ष्म का विद्रोह) और रहस्यवाद मे आत्मा का सम्बन्ध परमात्मा के साथ बताया है या चिन्तन के क्षेत्र मे जो अद्वैतवाद है वही काव्य के क्षेत्र मे रहस्यवाद है।

निराला जी – विविध रूपों में निराला जी का चरित्र दृष्टिगोचर होता है। भिक्षुक, विधवा, तोडती पत्थर, अत्यन्त सुन्दर गीतिकाव्य के पद बन पड़े है। इनके गीतों में यथार्थ और व्यंग्य की प्रधानता है।

पन्त जी—ये प्रकृति के कोमल कान्त कवि हैं। प्रकृति को कहीं-कहीं पर सहचरी, पत्नी और कही सहेली के रूप मे देखा है। इनमें कल्पना और रागात्मकता की प्रधानता है। इन्होंने भौतिकता, आध्यात्मिकता का भी समन्वय कराया है। रचनाओं में शब्द चमत्कार, चित्रोमय भाषा अच्छी प्रकार

से दिखाई पड़ती है।

महादेवी जी—गीतिकाव्य की सामग्री में व्यक्तिगत भावना खूब बन पडी है। इनके गीतिकाव्य मे सभी गुण, जैसे व्यथात्मक, सगीतात्मक, अनुभूति, कल्पना बन पडे है जिनमें उनका जीवन नितात एकाकी और वेदनायुक्त है।

आधुनिक युग में रायकृष्णदास, चतुरसेन शास्त्री, वियोगी हरि, दिनेश नन्दिनी आदि के नाम गिनाये जा सकते है जो कि गीति साहित्य को भरते जा रहे हैं।

आजकल गद्य गीत लिखने की परिपाटी भी चल पड़ी है जिसमें भगवतीचरण वर्मा, विद्यार्थी जी, जगदीश जी आदि के नाम गिनाये जा सकते हैं।

(गद्य गीत पृष्ठ ७१ पर देखिये।)

प्रगतिवाद और प्रयोगवाद—इन गीतो में रहस्यवाद और छायावाद की प्रतिक्रिया है। किसान, मजदूर, श्रमजीवी कविताओ के केन्द्र-विन्दु है। समाजवाद और मार्क्सवाद इनके काव्य की दार्शनिकता का आधार है। इनकी कविताएँ सिद्धान्त-प्रधान चल रही है। रूस की प्रशसा, लाल झण्डे, लाल सेना के गीत गाये जा रहे है। प्रगतिवाद राष्ट्रीय भावना है। शोपितो के प्रति सद्भावना और शोषित के प्रति उग्र रूप है। कविता वाह्यमुखी होती जा रही है। साहित्य में स्थूलता, नग्नता तथा रूढियो को तोडने का प्रयास किया जा रहा है। ये गीत लोक गीतो के निकट आ गये है। इन गीतो को पाँच प्रकार से बाँटा जा मकता है -

१—किसान-मजदूर सम्बन्धी गीत। २—प्रचार गीत। ३—उन्मुक्त प्रेम सम्बन्धी गीत। ४—वर्ग गीत। ५—हिन्दू-मुस्लिम एकता सम्बन्धी गीत।

अब प्रयोगवाद में एक नया ही स्वर मुनाई पड रहा है। इसमें और प्रगतिवाद में थोडा ही अन्तर है। प्रगतिवाद वर्गहीन समाज की स्थापना कर रहा है तो प्रयोगवाद शैली और विधान मे नित्य नये प्रयोग कर रहा है। प्रयोगवाद चिन्तन प्रधान है। इसमें छन्दो को वडी वुरी तरह से मरोडा जा रहा है। परन्तु भाषा सरलतम और प्रान्तीयता के शब्दो को ले कर चलती है। कवियो ने उपेक्षित वस्तुओ पर अधिक से अधिक कविता की है। गिरजा कुमार माथुर, शमशेरसिंह, अ`य जी का नाम इन गीतकारो की कोटि मे लिया जा सकता है।

प्रश्न—रूपक के भेदों का सोदाहरण परिचय दीजिए। नाटक की उत्पत्ति पर प्रकाश डालते हुए साहित्य में नाटक का स्थान निर्धारित कीजिए।

(जून, नवम्बर, १९५७, जून १९५८)

उत्तर—नाटक रूपक का ही एक प्रधान भेद है। संस्कृत के आचार्यों ने नाटक के दो भेद निर्धारित किये है: १—दृष्य व २—श्रव्य। नाटक भी दृष्य का ही एक अंग है। वैसे इसे रूपक भी कह सकते है, या यूँ कहिये किसी व्यक्ति के रूप को आरोप करके अभिनय करना रूपक समझा जाता हैं।

नाटक शब्द की व्युत्पत्ति नट धातु से बनी है जिसका अर्थ है अभिनय करना। अभिनय एक व्यक्ति दूसरे व्यक्ति का करता है उसे ही नाटक कहते है या यों कहे अनुकरण की कला ही नाटक है। इसके भीतर नयन पटल के सम्मुख दृश्य उपस्थित होते जाते है। विद्वान इसी आनन्द को श्रवण के द्वारा प्राप्त करते है।

नाटक की उत्पत्ति के विषय में अनेक मतभेद है। पश्चिमी विद्वान् यूनानी नाटको की भाँति भारतीय नाटको का जन्म 'इन्द्रध्वज' उत्सव से होना बताते है। डा० रिजवे 'वीर पूजा' से नाट्य कला की उत्पत्ति बतलाते है। डा० कीट्स का कथन है ऋतु परिवर्तन से जो नृत्य गान आदि होते है उससे नाटक की उत्पत्ति हुई। जर्मन विद्वान् 'पिशल' साहब का कथन है कि कठपुतलियों से नाटक का जन्म हुआ। कुछ विद्वान ऐसे भी है जो यवनिका शब्द का आधार ले कर यूनानी नाटकों से भारतीय नाटको की उत्पत्ति बताते है। परन्तु ऐसी बात नही क्योंकि यूनान मे ईसा के बाद नाटकों का आरम्भ हुआ जब कि हमारे यहाँ ईसा से ५००० वर्ष पूर्व लिखे हुए नाटक अब भी मिलते हैं।

भारतीय विद्वानों ने नाटक की उत्पत्ति वेदो से स्वीकार की है। भरत मुनि के नाट्यशास्त्र में नाटक को पंचम वेद माना गया है। इसकी उत्पत्ति भी ब्रह्मा ने चारो वेदो से की। ऋग् वेद से सम्वाद, साम वेद से गीत, यजुर्वेद से नाट्य, अथर्व वेद से प्लाट (plot) ग्रहण किया गया। शिवजी ने ताण्डव नृत्य तथा पार्वती जी ने लास्य नृत्य दिया। इस प्रकार लोक-कल्याण की भावना से नाटक का उदभव हुआ जिसमे भरतमुनि ने नाट्यशास्त्र की रचना की।

साहित्य में नाटक का महत्व—साहित्य के अनेक अंग-उपांग हैं सब के अपने-अपने गुण, विशेषताएँ हैं। परन्तु नाटक मे गुण तथा विशेषताएँ विशेष प्रकार की है। प्रथम इसमे प्रभाव उत्पन्न करने की शक्ति अधिक है, दूसरे इस

में सामाजिकता की भावना अधिक है। शब्द काव्य मे शब्दो द्वारा कल्पना का सहारा ले हृदयग्राही चित्र उपस्थित किये जाते हैं तो नाटक मे प्रत्येक दृष्य नयन पटल के सम्मुख दृष्टिगोचर होते है। दृष्यो में सजीवता, पात्रो में वेशभूषा और भाव-भगिमा, दर्शक पर अधिक-से-अधिक प्रभाव डालते हैं। तीसरा नाटक मे लोक-कल्याण की भावना विशेष प्रकार की होती है क्योकि वेद, उपनिषद का ज्ञान नीरस और दुरूह होने के कारण जनता पर उसका प्रभाव कम पड़ता है परन्तु नाटक द्वारा अनेक व्यक्तियो पर उसका अधिक-से-अधिक लाभ होता है। चौथी विशेषता नाटक द्वारा मनोरजन के साथ-साथ हमे शिक्षा भी मिलती है। पांचवी विशेषता नाटक के भीतर ललित कला के पाँचो अग सन्निहित होते है (वस्तुकला, मूर्तिकला, चित्रकला, सगीतकला और काव्यकला)। विशेषकर सगीत और काव्य कला नाटक के प्राण बन कर आते हैं इसीलिए तो कहा गया है ससार का कोई कर्म, कोई योग, कोई शिल्प ऐसा नही जो नाटक मे नही आने पाये। छठवी विशेषता नाटक के भीतर गद्य-पद्य दोनो आते है—एक ओर गीतो की सरसता तो दूसरी ओर सम्वादो की मार्मिकता आती है।

उपर्युक्त कारणो से यह कहा जा सकता है कि साहित्य के सभी अगो में नाटक अधिक उपयोगी, महत्वपूर्ण और उच्च रचना है जिसके आधार पर समाज भी होता है और साहित्य की अभिवृद्धि भी।

प्रश्न—आधुनिक और प्राचीन नाटकीय तत्वो पर विशद विवेचन कीजिए।

उत्तर—विद्वानो ने काव्य के दो भेद किये है—श्रव्य और दृष्य। श्रव्य का आनन्द विद्वान लोग लेते है जिन्हे कल्पना, अनुभूति और बुद्धिमत्ता पर श्रवण करना पडता है, परन्तु दृष्य मे सब कुछ बिना कठिनाई के चित्रपट की भांति देखने को मिल जाता है। दृष्य काव्य मे अनुकरण की कथा पर अधिक बल दिया गया है। अनुकरण आगिक, वाचिक, आहार्य और सात्विक होता है। आगिक मे मुँह, हाथ, कमर आदि का हिलाना, वाचिक मे स्वर, गीत, भाषा आदि आते है, आहार्य मे वेश-भूषा तथा सात्विक मे पसीना, रोमाँच, आदि भाव आते है। वैसे रूपक के दस भेद है

(१) नाटक—इसकी कथावस्तु ऐतिहासिक, पौराणिक तथा काल्पनिक होती है। इस का नायक धीरोदात्त होता है।

(२) प्रकरण—इसकी कथावस्तु कविकल्पित, लौकिक होती है तथा

शृङ्गार रस प्रधार। नायिका कुलीन कन्या या वेश्य होती है।

(३) भाण –इस में धूर्त और दुष्टो का चरित्र होता है तथा हास्य रस प्रधान होता है।

(४) व्यायोग—कथावस्तु प्रख्यात, नायक धीरोदात्त होता है।

'(५) समवकार—कथा इसकी प्रख्यात, वीर रस-प्रधान और धीरोदात्त नायक होता है।

(६) डिम—कथा पौराणिक तथा रौद्र रस-युक्त होती है।

(७) ईहा मृग—कथा प्रख्यात और कल्पित होती है तथा शृ गार रस प्रधान होता है।

(८) अक—कथा प्रख्यात, नायक साधारण तथा करुण रस होता है।

(९) वोथो—कथा कल्पित होती है, एक अक तथा शृ गार रस अधिक होता है।

(१०) प्रहसन—कथा कल्पित तथा हास्य रस-प्रधान होती है।'

उपरूपक—इस के अठारह भेद होते है। इसमें नायिका प्रधान है जिसमें स्त्री पात्र अधिक, कथा कल्पित, धीर ललित नायक होता है।

तत्व—प्राचीन दृष्टिकोण से कथा, नेता और रस तीन तत्व है। आधुनिक दृष्टि से १—कथावस्तु, २—पात्र व चरित्र-चित्रण, ३—सम्वाद, ४—देशकाल, ५—शैली, ६—उद्देश्य, ७—रगमचीयता।

समन्वय—प्राचीन समय में कथावस्तु के साथ देशकाल तथा वातावरण हुआ ही करता था। इसमे नेता के साथ चरित्र-चित्रण तथा कथोपकथन लगे ही रहते थे। रस के अन्तर्गत भाषा, शैली तथा उद्देश्य आ जाते हैं। प्राचीन नाटको की एक विशेषता थी कि वे सब के सब रगमच के अनुकूल ही लिखे जाते थे इस लिए आधुनिक रगमचीयता उसी के अतर्गत सन्निहित हो जाती है। इसीलिए हम इन दोनो का समिश्रण कर प्रत्येक पर विवेचन करते चलेगे।

(१) कथावस्तु—नाटक में वर्णित कथानक को कथावस्तु कहते है। नाटक की सफलता कथावस्तु के 'निर्वाचन पर ही होती है कथा का कलेवर परिमाण मे उतना ही होता है जो २½ या तीन घण्टो मे अभिनीत हो सके। असम्भव दृश्यो का इसके भीतर अभाव होना चाहिए, जैसे, विवाह, मृत्यु, नदी, युद्ध आदि के दृश्य।

कथावस्तु का विभाजन :—भारतीय आचार्यों ने १—वस्तु के आधार पर : कथावस्तु के प्रख्यजात (ऐतिहासिक या पौराणिक), २—उत्पाद्य (काल्पनिक).

तथा, ३–मिश्रित, भेद किये है। प्रख्यात मे कथावस्तु ऐतिहासिक या पौराणिक होती है, उत्पाद्य में कल्पना का पुट अधिक होता है, इसके द्वारा कथावस्तु मे सरसता लाई जाती है। मिश्रित मे कथा का कुछ भाग पौराणिक या ऐतिहासिक लिया जाता है और कल्पना के द्वारा उसे आगे वढाया जाता है, जैसे, "वितस्ता की लहरें।"

. (२) **नायक के आधार पर** कथा के दो रूप किये है—आधिकारिक तथा प्रासगिक। आधिकारिक नाटक की मूल कथा को कहते है जिसका सम्वन्ध नायक के साथ होता है, आदि से अन्त तक वही कथा चलती है। प्रासगिक मे मुख्य कथा को सरस या रोचक वनाने के लिए तथा गति देने के लिए जो कथा प्रसग वहाँ आती है, उसे प्रासगिक कहते है। जो कथा मूल कथा के साथ तक चलती रहे उसे पताका-प्रासगिक कहेंगे और जो वीच में समाप्त हो जाए उसे प्रकरी-प्रासगिक कहेंगे।

(३) **अभिनय की दृष्टि से** इस दृष्टि से कथावस्तु को दो भागो मे विभक्त किया गया है—(१) दृश्य तथा (२) सूच्य। दृष्य में कथा का वह अश आता है जिसे अभिनीत किया जा सके, सूच्य मे केवल सूचना दे दी जाती है।

(४) **सम्वादों की दृष्टि से** · इसके तीन भेद किए जा सकते है (१) सर्व श्राव्य—जो सभी को सुनाई दें, (२) नियत श्राव्य—जिसे केवल कुछ ही सुन सकें, (३) अश्राव्य—जो किसी को भी सुनाई न दें।

कथावस्तु को उत्कृष्ट वनाने के लिए आचार्यो ने नाटकीय अगो का भी विवेचन किया है। कथा मे रोचकता लाने के लिए पाच अवस्थाए वताई हैं। (१) प्रारम्भ, (२) प्रयत्न, (३) प्राप्त्याशा. (४) नियताप्ति, (५) फलागम। कथावस्तु मे गति लाने के लिए पाँच प्रकृतियाँ भी वताई है—(१) वीज, (२) विन्दु, (३) पताका, (४) प्रकरी, (५) कार्य।

पाँच अवस्थाओं तथा प्रकृतियो को जोडने के लिए पांच सधिया वताई हैं—

(१) मुख		(२) प्रतिमुख		(३) गर्भ		(४) विमर्श		(५) निर्वहणा	
प्रारम्भ	वीज	प्रयत्न	विन्दु	प्राप्त्याशा	पताका	नियताप्ति	प्रकरी	फलागम	कार्य

नाटक की सूच्य सामग्री को अर्थोपक्षक कहते है। यह पाँच है—(१) विपकम्भक, (२) प्रवेशक, (३) चूलिका, (४) अकमुख, (५) अकावतार।

(२) नेता—यह नाटक का दूसरा तत्व है। वैसे तो नाटक मे अनेक पात्र होते हैं परन्तु नायक-नायिका प्रधान होते है। उन के पात्रो के सम्वादो तथा क्रिया-कलापो द्वारा कथा का सचालन होता है। कोई नाटक नायक-प्रधान तो कोई नायिका-प्रधान होता है। नायक कथा को फलागम की ओर ले जाता है। नायक के गुण २२ प्रकार के बताए गए है, जैसे, विनीत, त्यागी, मधुर-भाषी, युवक, उत्साही, तेजस्वी, कलाकार, आदि। स्वभाव की दृष्टि से नायक चार प्रकार के होते है—१ धीरोदात्त में शक्तिशाली, धीर, वीर, गम्भीर, बलवीर क्षमा, दृढता, स्थिरता, आत्म-सम्मान होना जैसे, रामचन्द्र।

२ धीरोद्धात—प्रचड स्वभाव, चचल, क्रोधी, आत्म-प्रशसी, आदि गुणो वाला, जैसे, रावण, भीम।

३ धीर ललित—शृगार प्रेमी, कलाविज्ञ, कोमल चित्, स्त्री स्वभाव वाला, जैसे, दुष्यन्त।

४ धीर प्रशांत—सतोषी, शान्तिप्रिय, कोमल, वीतराग, कुलीन, जैसे, चारुदत्त तथा गौतम बुद्ध।

शृङ्गार रस की दृष्टि से भी नायक चार प्रकार के होते है, जैसे (१) अनु-कूल नायक, (२) दक्षिण नायक, (३) शठ नायक, (४) धृष्ट नायक।

नायिका—नायक की पत्नी या प्रेयसी को कहते है, इसमे भी नायक जैसे गुण होते है। इसे तीन रूपों में विभक्त किया जा सकता है—(१) स्वकिया, (२) परकिया, (३) गनिका।

प्रतिनायक—नायक के कार्यों मे बाधा उपस्थित करने वाला होता है, यह कथा में सघर्ष पैदा करता है। हास्य रस को बनाने वाला विदूषक समझा जाता है, यह वेष-भूषा, हाव-भाव के द्वारा जनता को हँसाता है।

चरित्र-चित्रण में पात्रो की चारित्रिक विशेषताओं का विश्लेषण होता है। नाटककार स्वगत-कथन द्वारा या परोक्ष द्वारा या क्रिया-कलापों द्वारा चरित्रो को उघेड़ता है। पात्र जो कुछ कहता है वह कथोपकथन कहलाता है जो कि नाटक के पास है। इन्ही से चरित्र-चित्रण स्वाभाविक, मनोवैज्ञानिक तथा मार्मिकतापूर्ण बनता है।

(३) रस—प्राचीन दृष्टि से इसकी बड़ी महत्ता थी। प्रत्येक नाटक मे कोई न कोई रस अंगी रूप में रहता है और दूसरे रस भी अग रूप मे आते है। पश्चिमी नाटक रस की जगह उद्देश्य को ले कर चलते है। रस के द्वारा ही दर्शकों का तादात्म्य सम्बन्ध जुड़ता है। इससे अलौकिक आनन्द की प्राप्ति

होती है। शृगार या वीर रस ही प्रधान हुआ करता था। शान्त रस को वैराग्य की भावना से सम्बन्धित होने के कारण नही लिया जाता था। इसके द्वारा धर्म, अर्थ, काम तथा मोक्ष की प्राप्ति बताई जाती थी।

आधुनिक युग मे विशेष साचे को शैली के नाम से पुकारा जाता है। भाषा के माध्यम से कलाकार सरल, सुन्दर, सुस्पष्ट भावो को व्यक्त करता है। आजकल तो अभिनय को भी विद्वानो ने नाटक का एक मुख्य तत्व मान लिया है। नाटक के भीतर सकलनत्रय को भी विशेषरूप से महत्ता मिली है। आज नाटको की जगह चित्रपटो ने ले ली है जिसके भीतर अश्लील वातावरण, तुच्छ मनोरजन की वासना को भडकाने वाले भाव दिखाए जा रहे है जिसका प्रभाव भारतीय युवक तथा युवतियो पर बुरी तरह पड रहा है।

अभिनय—यह नाटक का विशेष अग है। नाटक की सफलता असफलता उसी पर होती है। यह तत्व नाटक को साहित्य के शेष अगो से विभक्त कर देता है। अभिनय से तात्पर्य है वह साधन जो नाटक की सामग्री को अर्थ पूर्ण अभिव्यक्ति तक पहुँचाता है। अभिनय चार प्रकार का होता है—

१ आगिक, २ वाचिक, ३ आहार्य व ४. सात्विक।

१ आगिक—अनुकार्य के अग सचालन को अनुकर्त्ता उसी प्रकार अभिनीत करता है तो उसे आगिक अभिनय कहते है, जैसे—तैरना, तलवार चलाना, आदि।

२, वाचिक—अनुकार्य ने जो कुछ कहा हो उसे वैसे ही हू-ब-हू प्रगट कर देना वाचिक कहा जाता है। परिस्थिति, अवस्था और भाव के अनुकूल कोमल, कठोर शब्दो को कहना वाचिक अभिनय कहलाता है।

३ आहार्य—पात्रो की वेश-भूषा आभूषण, आदि को आहार्य अभिनय कहते हैं।

४. सात्विक—पसीना, रोमांच, अश्रु आदि सात्विक भावो के अनुकरण को सात्विक अभिनय कहते है।

इन तत्वो के अतिरिक्त कथावस्तु की सीमितता, संवादो मे रोचकता, सकलत्रय, रग सकेत, गीतो की अनिवार्यता भी आती है जिससे नाटक अत्यन्त सरस व सुन्दर बन जाता है।

प्रश्न—रंग-मच का नाट्यकला में क्या स्थान है ? हिन्दी रंग-मंच के विकास का परिचय दीजिए और बताइए चित्रपट का प्रभाव उस पर कैसे पड़ा ?

(नवम्बर, १९५६)

उत्तर—१८५७ की क्रान्ति के पश्चात् देश में साहित्यिक प्रचार का जागरण, प्रचड झझावात के रूप में प्रस्तुत हुआ। वह हमारे साहित्य-उद्यान में भी आ पहुँचा। पुरातन वृक्ष भी उसने समाप्त कर दिये और कितने ही की शाखाओं को झकझोर दिया। हिन्दी उद्यान का सरक्षक निद्रा से जाग उठा और उसने मोह निद्रा को छोड़ कर लोगों को जगाया। देश में जीवन के ढाँचे को बदलते हुए उसने देखा। यह बदलता हुआ ढाँचा हिन्दी को भी प्रभावित करने लगा। अंग्रेजी नाटक के आलोचकों ने हमारी अडिग नाटक-परम्परा को उच्छिष्ट कर दिया। सुखान्त नाटकों के स्थल पर दुखान्त नाटकों की पद्धति को अपनाया। हमारे यहाँ तो आदि आचार्य भरत मुनि हुए हैं, पश्चिम में 'अरिस्टाटल'। दोनों में पृथ्वी-आकाशों का अन्तर था। भरत मुनि के विचारों की जगह 'अरिस्टाटल' के विचार अपनाए जाने लगे। इसीलिए रग-मच भी बदल गया।

रग-मच उस स्थल को कहते है जहाँ पर कलाकार अपना अभिनय दिखलाते हैं। इसका प्राचीन नाम नाट्यशाला या नाट्यगृह है। रग-मच के बिना अभिनय हो ही नही सकता। यदि रंग-मच शरीर है तो नाटक उसकी आत्मा, रग-मच रूपरेखा है तो नाटक कला। प्राचीन समय में रग-मच, राजभवन या मन्दिरों के पास होते थे। इसके दो खण्ड थे प्रेक्षागृह और रग-मच। प्रेक्षागृह से लोग देखते थे। रंग-मच में रंगशीर्ष, रगपीठ और नेपथ्यगृह होते थे। रग-मच भी तीन प्रकार के होते थे। (१) विकृष्ट (२) चतुरस्त्र (३) त्र्यस्त्र।

रग-मच का विकास नाट्यकला के साथ-साथ ही हुआ। ज्यो-ज्यो नाट्यकला अविकसित रूप से प्रौढता पाती गई त्यो-त्यो रग-मच भी अपनी प्रारम्भिक अवस्था से विकसित होता गया। भरत मुनि ने नाट्यशास्त्र में मडप का वर्णन कर के नाट्यकला और रंग-मच का अटूट सम्बन्ध स्थापित किया। प्राचीन युग मे रग-मच पर्याप्त मात्रा में पनपा परन्तु मध्ययुग मे पहुँच कर मुसलिम शासन की स्थापना से रग-मच के साथ-साथ नाट्यकला भी लुढक गई। मूर्ति-खण्डन के समय नाट्य कला तथा रग-मच दोनो समाप्त हो गए जो कि हमारी सस्कृति के प्रतीक थे। नाट्यकला अपने पति रग-मच के वियोग में करुण चीत्कार कर रही थी। ऐसी अवस्था मे रामलीला, रासलीला ने दोनों को मरते-मरते बचा लिया। वही परम्परा लुढकती, गिरती, अन्तिम श्वास लेती रही।

हिन्दी के रग-मंच—कहने को हिन्दी के रग-मच का मूल उद्गम सस्कृत है,

परन्तु वह पारसी रग-मच, अध्यवसायी रग-मच और स्वाग रग-मच के रूप में बाँटा जा सकता है। बडे-बडे घनाढ्य, व्यवसायिक लोगो ने जनता का मनो-रजन करने के लिए और धन एकत्रित करने के लिए—'अलफ्रेड', 'ओरिजनल' आदि थियेट्रिकल कम्पनियाँ, हिन्दी के असख्य नाटक, रंगमच पर खेलती रही। इससे बडा दुष्परिणाम निकला। धन के घमण्ड मे रग-विरगे परदे, भडकीली वेष-भूषा, शृ गारी प्रवृत्ति, युद्धो के दृष्य, व सस्ता-सा मनोरजन खूब किया और हिन्दी के नाटको की खूब दुर्दशा की। अध्यवसायी रग-मच को हम साहित्यिक रगमच भी कह सकते है। यह पारसी रगमचो के प्रतिक्रिया के रूप से ही निर्मित किए गए 'बेताब', 'रामलीला', नाटक मडली, भारतेन्दु नाटक मडली जैसी कम्पनियो ने रग-मच की उन्नति की जिसमे स्कूल और कालिज के विद्यार्थियो ने भी भाग लिया। इनके पास धार्मिक राष्ट्रीय प्रेम, साहित्यिक गुण और सुधार की सुरुचि थी। इनसे रग-मच की मिटती हुई पवित्र भावना बच गई। स्वाग मे रग-मच बिलकुल नही, वह तो केवल रक्षा का साधन-मात्र था। रामलीला, रासलीला जैसी मडलियाँ जनता का हल्का-सा मनोरजन करती रही।

सिनेमा का प्रभाव—आधुनिक युग के सिनेमा ने तो रग-मच की काया को ही पलट दिया और ऐसे-ऐसे करतव दिखाए जिसे नाट्यकला दस जन्म तक न कर सकती थी। रेलगाडी, समुद्र, लाखो की भीड, महल, उपवन, वाटिका, आदि-आदि दृश्य दिखाए गए। सिनेमा के विकास के दृष्य विधान मे अपूर्व परिवर्तन दिखाया। इससे अभिनय कला मे यथार्थ विकास हुआ। इसके द्वारा श्रेष्ठ कलाकार जैसे अशोक कुमार, किशोर, नरगिस, गीताबाली, आदि-आदि हमारे सम्मुख आए तथा उत्कृष्ट सिनेमा भी आए, जैसे, सीमा, जागृति, देवदास, दो बीघा जमीन, मदर इण्डिया, आदि-आदि। इससे अच्छी नाटक कम्पनियाँ भी बनी, जैसे, बाम्बे टाकीज, न्यू थयेटर्ज, पृथ्वी थियेटर्ज आदि-आदि। नृत्य, सगीत के भीतर भी प्राचीन तथा अर्वाचीन कला मिल गई। "झनक-झनक पायल बाजे" जैसे चित्र-पट मे सगीत कला पनप उठी। इससे हिन्दी भाषा की रक्षा भी हुई। इमसे स्पष्ट होता है कि सिनेमा रंग-मच के लिए बाधक नहीं साधक रूप मे आया है। सरकार ने दिल्ली मे भी एक कला केन्द्र खोला है जिसके द्वारा नाट्यकला को उभारने का प्रयास किया जा रहा है।

प्रश्न—सुखान्त तथा दुःखान्त नाटको को स्पष्ट कीजिए तथा रेडियो रूपक पर टिप्पणी लिखिए। (जून, १९५७)

उत्तर—आजकल दुखान्त तथा सुखान्त दो प्रकार के नाटक मिलते हैं। दुखान्त में दुख की भावना आपद-ग्रस्त तथा भाग्यहीन की गाथा होती है। यह तीन प्रकार के होते है। साहसिक, आतकपूर्ण और पारिवारिक। साहसिक मे नायक की रोमाचकारी प्रबल इच्छा का दर्शन होता है और अन्त मे असफल हो वह विनाश की ओर बढता है। आतक मे भयानक दृश्य होते है। पारिवारिक मे आर्थिक विषमता से उत्पन्न सघर्ष को दिखा कर अन्त मे अति दुखान्त मे उसे छोड़ा जाता है। सुखान्त में नायक फलता-फूलता है। सुखान्त नाटक चार प्रकार के होते है—

(१) उदात्त सुखान्त—इसमें गम्भीर-भावपूर्ण चरित्र होता है।

(२) प्रहसन—ऐसे पात्र होते है जिसे पाठक देख कर लोट-पोट हो जाते हैं।

(३) रोमांस—इसमे प्रेम और साहस का पुट होता है। नायक दुखो को हँसते-हँसते झेलता है।

(४) व्यग्य प्रधान सुखान्त—इसमे मनुष्य की चरित्रगत कमजोरियो पर व्यग्य कसा जाता है।

पश्चिमी प्रवाह—अग्रेजो की राजनीतिक नवचेतना के साथ-साथ साहित्यिक परम्परा मे भी एक नया मोड आया। प्राचीन तत्वो से विद्वानो का ध्यान हट कर 'इवसन', 'वर्नार्डशा' की ओर ध्यान गया। इसीलिए हमारे यहाँ अक विभाजन, सैक्स भावना, मनोविज्ञान, रग सकेतो मे परिवर्तन और कथानक मे सघर्ष भी अधिक-से-अधिक बताए जा रहे है।

(१) रेडियो नाटक—यह पश्चिम का एक नया आविष्कार है। रूस, अमेरिका और इगलैंड मे इसका अधिक प्रचार है। इसे रेडियो रूपक या श्रव्य नाटिका भी कहते है। इसे केवल सुना जाता है। पात्र सवादो द्वारा अपने मस्तिष्क के भावो को प्रकट कर देता है। इसमे सूक्ष्म तथा वाद्य यन्त्रो का प्रयोग अधिक होता है। जब उपन्यास का नाटक मे रूपान्तर होता है तो उसे रेडियो फीचर कहते है, जैसे, प्रभाकर माचवे का 'गवन' की जगह 'चन्द्र-हार' कर देना। ग्रामीण जनता के लिए भी जन नाटक, जो कि रेडियो नाटक का ही रूपान्तर है चला है जैसे ढोला मारू। व्यग्य नाटक भी रेडियो नाटक का एक भेद है, जैसे, अश्क जी का "अधिकार का रक्षक"।

स्टेज के नाटको को कुछ हेर-फेर के साथ रेडियो के अनुकूल बना लिया

जाता है। इन नाटकों मे सकलनत्रय का ध्यान नही रखा जाता। स्वगत कथन स्वप्न वा आकाश भाषित रेडियो पर बड़े आराम से दिखाया जा सकता है। रेडियो रूपक मे कथाकार वर्णन के द्वारा घटनाओ को मिलाता चलता है। आज का कलाकार इस प्रकार के नाटक लिख रहा है कि वह आकाशवाणी व रग-मच पर भी खेले जा सके परन्तु उसे ऐसा नही करना चाहिए क्योकि दोनो के टेकनिक अलग है।

प्रश्न—हिन्दी की एकांकी नाटक पर सक्षिप्त निबन्ध लिखिए।

या

एकांकी के आरम्भ पर प्रकाश डालते हुए उसके स्वरूप और तत्वों पर आलोचना कीजिए।

उत्तर—एकाकी से तात्पर्य है वह नाटक जिसमें एक अक व थोडे पात्र हो। कम से कम समय लगे, तथा अधिक-से-अधिक मनोरजन हो और एक ही उद्देश्य हो, एक ही घटना या एक ही झलक हो गागर मे सागर भरा हुआ हो, एक घटना या एक झलक या एक पहेली के आकार पर विशेष परिस्थिति का चित्रण करवाते हुए जीवन का मूल्याकन कर एक ही घटना को चरम सीमा तक पहुँचा दिया हो। इसके भीतर निरर्थक प्रसग नाम-मात्र को भी नही आते। कथा मे जीवन की सजीवता होती है। पाठक, श्रोता या दर्शक के मस्तिष्क रूपी रग-मच पर सुन्दरता के साथ अभिनीत हो जाता है। एकाकी नाटक का प्रारम्भ नववघू के घूँघट-सा आकर्षक, फिर बद कमल की भाँति विकसित हो, और समाप्ति, प्रीतम के वियोग के समान मधुर पीड़ा देने वाली हो, आरम्भ जिज्ञासापूर्ण हो।

आज के विद्वान एकाकी को पश्चिमी देन मानते हैं। पर यह बात असगत है क्योकि एकाकी भाण, वीथि और प्रसग के रूप मे पहले ही सम्मिलित है। प्राचीन और अर्वाचीन एकाकियों मे अन्तर अवश्य है। इगलैंड मे यह नाटक तीस-चालीस वर्ष से चल रहे है और यहाँ हमारे बीस वर्ष से। परन्तु प्रसाद व भारतेन्दु ने क्रमश. 'एक घूँट' और 'अन्धेर नगरी चौपट राजा' जैसे नाटक पहले ही लिख दिए थे। एकाकी अपने नाटक रूपी पितृगृह से निकल कर अपना अस्तित्व बना बैठी है। एकाकी को निम्नलिखित तत्वो पर खड़ा किया जा सकता है—कथावस्तु, पात्र चरित्र-चित्रण, सवाद, सकलनत्रय और उद्देश्य।

कथावस्तु—इसमें एक ही घटना होती है, एक ही समस्या होती है जिसमे

कौतूहलता रहती है। और उसे चरम सीमा पर पहुँचा दिया जाता है। चरम सीमा पर पहुँचने के लिए कथा मे तीव्र गति मानी जाती है। इसमे जिज्ञासा और सघर्ष का पुट दिया जाता है। इसकी कथावस्तु फूल की भाति एकदम विकसित होनी है। किसी एक के चरित्र को अकित किया जाता है। कथावस्तु मे पाँच अवस्थाएँ होती है—उद्घाटन, विकास, सघर्ष, चरम सीमा, व अन्त (निगति)।

उद्घाटन —इसमें कथा का आरम्भ अकस्मात् हो जाता है।

विकास—इसमें घटना व वातावरण का पूर्ण विकास होता है और दर्शक पात्रो के परिणाम का उत्सुक होता है।

संघर्ष—पात्रो के हृदय का द्वद्व बताया जाता है।

चरम सीमा—नाटक उत्कर्ष सीमा तक पहुँच जाता है।

अन्त—द्वन्द्व और जिज्ञासा को समाप्त कर नाटक की समाप्ति होती है।

पात्र—इसमे कम-से-कम पात्र होते है। मुख्य पात्र के आस-पास घटना घूमती रहती है। शेष पात्र उद्देश्य की ओर चलते हैं। इसके भीतर चरित्र भी घटना और सघर्ष के द्वारा उद्भासित होते चलते है। स्त्री पात्र कही होते हैं कही नही होते। पात्र उत्थान-पतन की ओर चलते है और अन्त में पाठको के लिए एक अमिट प्रभाव छोड जाते है। उनके छोटे से कर्त्तव्यो से जीवन की झाँकी स्पष्ट रूप से दिखाई पडती है।

सवाद -नाटकीय वार्तालाप पर घटना का विकास या चरित्र की स्पष्टता निर्भर है। सवाद सक्षिप्त, सजीव, सरस, सरल, रोचक होने चाहिएँ। जिससे कथावस्तु मे गति आये। सवाद से एकाकी के पात्रो का चरित्र स्पष्ट होता है। सवादो की भाषा क्लिष्ट नही होनी चाहिये और न ही इतनी सरल हो कि उसमें साहित्यिकता के गुण न पाये जायें। प्राचीन नाटको में भी सवादो को एक विशेष महत्ता दी है, लेकिन आजकल तो संवाद शक्तिशाली, तर्कशाली, छोटे और सरस होते हैं जिसमें गागर में सागर होता है।

द्वन्द्व—दो विरोधी मार्गों के संघर्ष के रूप में माना जाता है तथा उनके आन्तरिक और वाह्य द्वन्द्वो को दिखाया जाता है। इसी प्रकार के घात-प्रतिघात से दर्शक उलझ जाता है और कथा मे रोचकता आ जाती है। आज का पात्र मानसिक गुत्थियो को अधिक सुलझाता है। उसका नाटक उतना ही रोचक और सरस बनता है। अन्तर्द्वन्द्व से पात्रो

की चित्तवृत्ति सुलझ जाती है। मनुष्य मे वैसे भी सद्वृत्ति और असद्वृत्ति पाई जाती है। उन्ही को दिखलाना एकाकीकार का कर्त्तव्य होता है।

सकलनत्रय—इसमे वस्तु का, देश का, काल का सुन्दर समन्वय कराया जाता है। कुछ विद्वान इस तत्व को मानते है और कुछ नही। इसमे स्थान की, कार्य की और समय की एकता पाई जाती है। जिस स्थान की घटना हो, जितने समय की हो, जिस रूप मे हो, उसी को चित्रित करना एकाकीकार का कर्त्तव्य है। यदि हास्य शृगार और वीर रस की प्रवृत्ति हो वही प्रवृत्ति अन्त समय तक चलती है।

उद्देश्य—एकाकी का एक ही उद्देश्य होता है। एकाकीकार उसे चतुराई के साथ अभिव्यक्त करता है। यदि इसके उद्देश्य के साथ दूसरा कोई उद्देश्य अपने आप आ जाये तो कोई बात नही होती।

रंगमचीयता—एकाकी प्राय ४५ मिनट के भीतर ही समाप्त हो जाने चाहिये। (सब-के-सब नाटक रग-मच के अनुकूल ही होते हैं।) उसमे रगसकेतो के द्वारा कितनी ही वस्तुओ को ग्रहण कराया जा सकता है।

प्रश्न १—उपन्यास शब्द की उत्पति और परिभाषा को बतलाते हुए उसके तत्वों पर प्रकाश डालिये। या

उपन्यास की परम्परा, उसका स्वरूप, जीवन से उसका सम्बन्ध और उसके तत्वो पर विशद् विवेचन कीजिये।

उत्तर— वर्त्तमान युग को वैज्ञानिक युग की सज्ञा दी है। सब बातो को तार्किक ढग से सोचना, उन्हे क्रमवद्ध युक्ति-ढग से कहना, आज के युग की पूर्ण विशेषता है। इसमे भाव प्रवणता का निराकरण होता है। विचारो की गहराई का समर्थन होता है। भावो की अधिकता पर कविता का जन्म होता है, तो विचारो मे गद्य का परिमार्जन। इस युग के भीतर गद्य का उद्भव व उत्कर्ष हुआ है। गद्य मे निबन्ध, प्रबन्ध, कहानी, उपन्यास, आ जाते है पर गद्य की चरम सीमा उपन्यास ही है। उपन्यास मे ही दूसरे अग साहित्य के समा जाते हैं।

१ उपन्यास की भारतीय परम्परा—

वर्त्तमान रूप मे उपन्यास का चोला है तो नया, पर भारतीय साहित्य मे यह अत्यन्त प्राचीनतम है, और नवयुग के कारण उपन्यास अपने नामो को पनटता हुआ दिखाई देता है ? आज उपन्यास समन्वय के लक्ष्य को ले

कर उपस्थित होता है। इसीलिये प्रेमचन्द ने कहा, "कि मैं उपन्यास को मानव जीवन का चित्र मानता हूँ" और मानव जीवन पर प्रकाश डालना मानव जीवन का मूल तत्व है। उपन्यास मे सामान्य जीवन का कल्पना-जन्य विवेचन है। वेदो ने भी जीवन के रहस्यो को खोलते हुए कल्पना द्वारा जीवन का निरूपण किया है। इसीलिये वेदो से ही उपन्यास की परम्परा को मान लेना चाहिये। वेदो के पश्चात् उपनिषद, फिर पुराणो ने इसका रूप धारण कर किया। इन में देवताओ के तत्पश्चात् राजाओ को और आज हर किसी को नायक बनाया जा रहा है। पुराणो की कथाये परोक्ष रूप में मनोरजन करती चलती थीं। इसमे मानवी गुण और विकार भी थे। उन कथाओ मे तन्मयता, मनो-रजन लाने की शक्ति होती थी। उसमें कल्पना का पुट भी होता था या यूँ कहे कि बड़ी कहानी ही उपन्यास का रूप धारण कर बैठी। हिन्दी मे किस्सा तोता मैना आदि कथायें चलती थी परन्तु वे साहित्यिक नही थी।

पाश्चात्य में भी उपन्यास जो कि 'फिक्शन' के नाम से प्रसिद्ध है, बाईबल विकसित से मान सकते है। यही परम्परा बाईबल से चल कर मध्ययुग तक आ पहुँची। फ्रास और स्पेन में इसका प्रादुर्भाव हुआ। जिसमे प्रेम और युद्ध की गाथायें थी। इसमें शौर्य और साहस की कहानियाँ भी थीं। फिर तो साहित्य उस स्थान पर जा पहुचा कि आज वह परिपूर्ण बन बैठा है।

२ उपन्यास की व्युत्पत्ति—

उपन्यास अत्यन्त प्राचीन है। उसका व्यवस्था दो प्रकार की है—१ पाठक को प्रसन्न करना, २ किसी अर्थ को युक्तियुक्त कहना ही उपन्यास कहलाता है या यो कहे कि उपन्यास उप+न्यास से बना है। इसका अर्थ हुआ हेतु द्वारा किसी वस्तु की स्थिति को निश्चित करना दूसरा अर्थ है सगति। न्यास का अर्थ है स्थापन करना, अर्थात हेतु द्वारा स्थितियो का निश्चय करना, उसमे सगीत और सामजस्य बैठाना। तार्किक ढग के साथ वास्तविकता की व्याख्या करना, यही उपन्यास का धर्म है। उपन्यास अग्रेजी मे 'नावल' शब्द नाम से पुकारा जाता है। आजकल कुछ लोगो ने इसका नाम गल्प दे दिया और धीरे-धीरे इसमे कल्पना हटा कर वास्तविक रूप ला दिया है।

३. उपन्यास के तत्व—

१ कथावस्तु—यह उपन्यास का महत्वपूर्ण अग है। जैसे चित्रकार को दीवार

की आवश्यकता होती है, उसी प्रकार उपन्यासकार को अपनी कुशलता का परिचय घटनाओ मे देना होता है। जैसे कलाकार सगीत और लय का विशेष ध्यान रखता है। इसी प्रकार उपन्यासकार भी अस्त-व्यस्त घटनाओ मे तथा कथावस्तु के निर्माण मे रोचकता, सम्भाव्यता, मौलिकता, कौशल और सगठन का ध्यान रखता है। रोचकता मे उसे कौतुहल और नवीनता पैदा करना होता है। उसे जिज्ञासा पैदा करनी होती है। इसी से वह चमकता है। जिज्ञासा को वह बनाये रखता है। सम्भाव्यता मे वह सूक्ष्म से सूक्ष्म बातो को ग्रहण करता है और उसमे पाठक की सहानुभूति को बनाये रखना होता है। मौलिकता मे उसे उचित मनोरजन कराना होता है। समस्याओ का समाधान अपनी बुद्धि से लेना होता है। यही उस वर्णन मे उसे नवीनता देनी होती है। उसे नया दृष्टिकोण और नया मार्ग दिखाना होता है। कौशल और सगठन मे उसे निम्नलिखित बातो का ध्यान रखना होता है—

१. ऐतिहासिकता की शैली —इसमे अन्य पुरुष के द्वारा उपन्यासकार सारी कहानी कहता है, जैसे, प्रेमचन्द के उपन्यास।

२ आत्म-चरित्र की शैली—उपन्यासकार स्वय नायक बन कर आत्म कथा कहता है। जैसे सियाराम शरण का उपन्यास 'अन्तिम आकाक्षा'।

३. पत्रात्मक शैली —इसमे उपन्यासकार पत्रो के रूप मे बातें कहता है जैसे, उग्र जी का 'चन्द हसीनो के खतूत।'

(२) पात्र व चरित्र-चित्रण—यह उपन्यास का दूसरा तत्व है। इसके द्वारा लेखक जीवन की व्यवस्था तथा निर्माण करता है। पात्रो की आन्तरिक विशेषताओ का विश्लेषण करता है। पात्र कल्पना प्रस्तुत होते हुए भी अपना अस्तित्व रखते हुए अपना प्रभाव रखता है। चरित्र-चित्रण मे ज्ञान, इच्छा और क्रिया के सम्मुख से मनुष्य के पीछे और आन्तरिक रूप देखने को मिलता है। उसके हृदय और मस्तिष्क की परीक्षा होती है। कलाकार उनके चरित्र मे आदर्श और प्रेरणा शक्ति देता है। पात्रो के चरित्र-चित्रण मे अनेक प्रणालियाँ होती है, जैसे, प्रत्यक्ष व अप्रत्यक्ष। इन्ही दो शैलियो के द्वारा चरित्र का उद्घाटन होता है। पात्र दो प्रकार के होते है, व्यक्ति-प्रधान और समाज-प्रधान। उन्ही दोनो मे दोनो शैलियाँ चलती है। अभाव की दृष्टि से पात्रो के भी दो भेद होते है, गतिशील और अस्थिर।

(३) कथोपकथन—यह उपन्यास का तीसरा तत्व है। इसका भी कथा मे

महत्वपूर्ण स्थान है। यदि कथानक उपन्यास का शरीर है तो संवाद उसे जीवित रखने वाला रक्त है। सवादो को सजीव और सुदृढतापूर्ण बनाने के लिए नाटकीयता, संक्षिप्तता, गतिशीलता, रोचकता आदि गुणो का होना अनिवार्य है। कथानक सवादो से कथा का विकास व चरित्र-चित्रण होता है। कथोपकथन के द्वारा आन्तरिक मनोवृत्तियो को सुन्दरता के साथ खोला जाता है। कथोपकथन सजीव होने के लिये भाषा को भी सरल रखना पडता है।

(४) वातावरण—यह उपन्यास का चौथा तत्व है। इसी के द्वारा समाज और राष्ट्र की परिस्थितियो का ह्रास होता है। इन्ही परिस्थितियो से मानव को सघर्ष करना पडता है। इसी से कथा का विकास होता है। कथाकार को देशकाल की जजीरो में रहना होता है। ऐतिहासिक कलाकार को भी अधिक कडे बन्धनो मे रहना है क्योकि ऐतिहासिक काल व वर्तमान काल की परिस्थितियो में आकाश-पाताल का अन्तर होता है। कलाकार को सामाजिक, राजनीतिक, धार्मिक तथा रीति-रिवाज, रहन-सहन का अधिक ध्यान रखना होता है। उसे इन बातो पर अधिक बल नही देना होता है। वह तो अपने-आप आ जाएँ। कही पर प्रकृति का दृश्य भी उपस्थित करता चलता है।

(५) शैली—यह उपन्यास का पाँचवाँ तत्व है। पद-पद पर शैली को प्रसन्नता का पुट देना होता है। जिज्ञासा जगाये रखनी होती है। प्रसाद गुण को साथ ले कर चलना होता है। उसकी भाषा चलती-फिरती, मुहावरेदार, सरस और स्पष्ट होनी चाहिए। यदि अलकार अपने-आप आ जाते है तो कोई बड़ी बात नही। वैसे भी शैली उपन्यास का शरीर है। इसमें लेखक का व्यक्तित्व छिपा रहता है। विलक्षणता, नवीनता और रोचकता शैली के विरोधी गुण हैं। किसी के द्वारा चरित्र की स्वाभाविकता व कथा का सगठन होता है। शैली दो प्रकार की होती है : १—समास, २—व्यास। समास को गुम्फन शैली और व्यास को सरस शैली भी कह सकते है।

(६) उद्देश्य—यह उपन्यास का अन्तिम तत्व है। कोई भी उपन्यास निरुद्देश्य नही होता। प्राचीन समय मे मनोरंजन करना होता था, परन्तु अब शिक्षा देना, उपदेश देना, जीवन को सुधारना व उसका निर्माण करना है। सफल उपन्यासकार तो पात्रों के चरित्र द्वारा ही सन्देश के चक्र में नही पडता। वह अपने उद्देश्य को व्यग्य-रूप मे प्रकट कर देता है। उसका उद्देश्य प्रभावशाली होता है व पाठको को अधिक-से-अधिक प्रभावित करता है।

प्रश्न – हिन्दी उपन्यासो का वर्गीकरण कीजिए ?

उत्तर—वास्तविक जीवन के कल्पना-जन्य विवेचन होने के नाते उपन्यास का क्षेत्र प्रतिदिन विस्तृत होता जा रहा है। हम देखते है कि मनुष्य विविध उलझनो मे भटकता रहता है। कल्पना का तो कोई ओर-छोर नही जहाँ सूर्य भी नही पहुँच सकता,वहाँ कल्पना,जल्दी पहुँच जाती है। उपन्यास एक साथ शिक्षा और मनोरजन का साधन है। दर्शन-शास्त्र, मनोविज्ञान, समाज शास्त्र व इतिहास की कठिनाइयो को उपन्यास के माध्यम से समझाया जा सकता है। इसका विषय इतना रोचक, आतकपूर्ण तथा मनोहर होता है कि पाठक विना किसी कठिन परिश्रम किये विषय को समझ सकता है। जीवन और कल्पना दोनो उपन्यास को जन्म देते है तो इसका क्षेत्र विशाल होना असम्भव है। अत. उपन्यास के विविध प्रकार के भेद हो जाते है। या यो कहे कि जितने लेखक है, उतने प्रकार के उपन्यास माने गये है। विकास की रूप रेखा के लिये कुछ भागो मे वाँटना अनिवार्य हो जाता है—

(१) वाह्यमुखी उपन्यास, (२) अन्तर्मुखी उपन्यास, (३) समन्वित उपन्यास।

इन तीनो भेदो के आगे जा कर उपभेद हो जाते है—

१—वाह्यमुखी उपन्यास के तीन भेद होते है

१—नीति-प्रधान, २—घटना-प्रधान, ३—ऐतिहासिकता प्रधान।

२—अन्त-मुखी उपन्यास के भी दो खण्ड होते है

१—मनोविश्लेपणात्मक, २—सिद्धान्त-प्रधान।

३—समन्वित उपन्यास के दो भेद माने गये है

१—चरित्र-प्रधान, २—समस्या-प्रधान।

१—बहिर्मुखी .—जो व्यक्ति जीवन को केवल आर्थिक और सामाजिक दृष्टिकोण से देखते है, जिनके लिए भौतिक सुखो की प्राप्ति ही लक्ष्य है। वे वहिर्मुखी है।

२—अन्तर्मुखी—मनुष्य के अन्तर्जगत का निरीक्षण करते है। यह लोग स्थूल पर ही विश्वास न करके सूक्ष्म भावना को अपनाते है। यह भौतिक सुखो को ही सत्य न मानते हुए मनुष्य के अन्तर्जगत का निरीक्षण करते है।

३—समन्वित में—वहिर्मुखी जगत और अन्तर्मुखी जगत के सामन्जस्य का चित्रण रहता है।

(१) बहिर्मुखी उपन्यास—

१ नीति प्रधान उपन्यास—हिन्दी उपन्यासो का इतिहास नीति प्रधान उपन्यासो से आरम्भ होता है। इसके अन्तर्गत श्रीनिवास दास का 'परीक्षा गुरु' है। 'परीक्षा गुरु' मे एक सेठ के लड़के के विगडने और अपने मित्र की सहायता से सुधरने की कथा बताई है। इस मे सस्कृत की नीति कथाओ की शैली अपनाई गई है। इस प्रकार के उपन्यासो मे वालकृष्ण-भट्ट का 'सौ सुजान एक अजान', राधाकृष्ण दास का 'निस्सहाय हिन्दु' भी उल्लेखनीय है।

२—घटना प्रधान—बहिर्मुखी उपन्यास का दूसरा भेद घटना प्रधान उपन्यासो का है। हिन्दी के आरम्भिक काल में लोकरुचि कौतूहल और तिलिस्म की ओर अधिक दिखाई देती है। इन उपन्यासो का एक मात्र उद्देश्य कौतूहल की सृष्टि और मनोरजन था। इस परिवृत्ति के लिये वावू देवकीनन्दन खत्री का नाम चिरस्मरणीय रहेगा। ये विस्मय और कौतूहल से भरा हुआ उपन्यास हिन्दी के लिए वरदान रूप था। रामायण और महाभारत की तरह लोग प्रात. सायं दोनो समय पढते थे। कितने लोगो ने इसके पढने के लिए हिन्दी सीखी।

घटना प्रधान उपन्यासो का दूसरा रूप जासूसी उपन्यास, अय्यारी तथा तिलस्मी उपन्यासो में घटना क्रम आगे की ओर और जासूसी मे पीछे की ओर होता है, जैसे, किसी ने अपने घर का दरवाजा खोला तो उसमे एक स्त्री की लाश पडी थी। इस प्रकार घटना क्रम पीछे की ओर जायेगा।

३—एतिहासिक प्रधान—हिन्दी मे ऐतिहासिक उपन्यास काआरम्भ किशोरीलाल गोस्वामी से होता है। इन उपन्यासो मे इतिहास की घटना को आधार वनाकर समाज का चित्रण किया जाता है। इस प्रकार के उपन्यासों का वृन्दावनलाल वर्मा ने विकास किया। वर्मा जी पहले व्यक्ति हैं, जिन्होंने निर्भीक हो कर अपने उपन्यास "झाँसी की रानी" मे सन् १८५७ की घटना को मामूली सिपाही विद्रोह न कह कर के स्वतन्त्रता का सग्राम कहा है। वृन्दावन लाल वर्मा के 'गढ कुण्ढार', विराटा की पद्मिनी' इसके अच्छे उदाहरण मान लिये गये है।

(२) अन्तर्मुखी उपन्यास—

१ मनोविश्लेषण प्रधान—हिन्दी उपन्यासो की इस नई धारा का आरम्भ

श्री जैनेन्द्र से माना जाता है । इन उपन्यासो में पात्रो के भावो का मनोवैज्ञानिक विश्लेषण किया जाता है । इनमे किसी प्रकार नीति या आदर्श को स्थान नही दिया जाता । श्रीजैनेन्द्र के उपन्यासो मे मानसिक उथल-पुथल विशेष है आन्तरिक जीवन पर प्रकाश डालना उसका उद्देश्य है । 'फ्रायड' के विचारो का इन पर गहरा प्रभाव लक्षित होता है । श्री भगवती प्रसाद वाजपेयी के उपन्यास भी इसी प्रकार के हैं । इन्होने इस विश्लेषण के लिए नारी की प्रेम वासना, कर्त्तव्य के सघर्ष को बताया है । प्रेम पथ', 'पिपासा', 'दो बहिनें', इसी श्रेणी के ही उपन्यास हैं । 'दो बहिनें' नामक उपन्यास में इन्होंने नारी जाति के चरित्र को दिखाने का प्रयास किया है ।

२. सिद्धान्त प्रधान—इनमे किसी सिद्धान्त विशेष का प्रचार किया जाता है । आजकल हिन्दी मे समाजवादी या मार्क्सवादी सिद्धान्तो का प्रचार करने के लिए उपन्यासो की रचना हो रही है । राहुल सांकृत्यायन जी, यशपाल आदि इसी श्रेणी के लेखक हैं ।

(३) समन्वित उपन्यास—

१ चरित्र प्रधान—किसी भी विषय पर चरित्र प्रधान उपन्यास की रचना हो सकती है । उपन्यास चाहे मनोवैज्ञानिक हो, सामाजिक हो, या राजनैतिक हो, यदि उसमे लेखक का ध्यान घटनाओ की अपेक्षा पात्रो की ओर अधिक रहा तो उसे चरित्र प्रधान कहते हैं । ऐसे उपन्यासो के लेखक अपने पात्रो को घटनाओ और परिस्थितियो के हवाले कर देता है । धीरे-धीरे इन परिस्थितियो का चरित्र स्पष्ट होने लगता है । अन्त में एक-दो पात्र रह जाते है, जिन पर पाठक की दृष्टि केन्द्रित हो जाती है । प्रेमचन्द के उपन्यास चरित्र प्रधान कहे जा सकते है ।

२ समस्या प्रधान—इन उपन्यासो मे समाज की समस्याओ को चित्रित करना मुख्य लक्ष्य होता है । प्रेमचन्द इस श्रेणी के अग्रदूत के रूप मे आते है । आपके पात्रो मे आपका व्यक्तित्व होता है । वह किसी वर्ग विशेष का प्रतिनिधित्व करते है । समाज की समस्यायें मुख्य, व्यक्तित्व ग्रामीण । प्रेमचन्द की परम्परा मे ऐसे बहुत उपन्यास लेखको के नाम गिनाये जाते हैं, जैसे, प्रसाद का 'तितली', कौशिक की 'माँ' और 'भिखारिन'-आदि-आदि ।

हिन्दी उपन्यास का साहित्य निरन्तर प्रखर गति से बढ रहा है। विदेशो की भाँति यहाँ नये प्रयोग तो आरम्भ नही हुए, फिर भी प्रभाव अवश्य पड़ा है। अज्ञेय जी का 'शेखर—एक जीवनी' हिन्दी उपन्यासो मे नया प्रयोग है। इस प्रकार स्पष्ट है कि हिन्दी उपन्यास का विकास निश्चित रूप से हो रहा है।

प्रश्न—छोटी कहानी की विशेषताएँ बताते हुए लिखिए कि आप किन कहानियों को हिन्दी की आदर्श कहानियाँ मानते है और क्यों ? (जून, १९५९)

या

कहानी के प्रमुख तत्त्वों का परिचय देते हुए हिन्दी कहानी के क्रमिक विकास पर प्रकाश डालिये।

उत्तर—कहानी की कहानी बहुत पुरानी है। उसका आरम्भ प्राचीन काल से ही हुआ। जिस दिन से मनुष्य ने बोलना सीखा उसी दिन से कहानी का आरम्भ हुआ। प्रचीन युग मे देवी-देवताओ की, भूत-प्रेतो की, पशु-पक्षियो की, और रजा रानियो की कहानियाँ थी। हमारे यहाँ हिन्दी कहानियो की आयु ६०-६५ वर्ष की ही होगी जिन पर अग्रेजी का प्रभाव पडा। आज की कहानी लघु कथा, गल्प तथा आख्यायिका के नाम से प्रचलित है। आज की कहानियाँ प्राचीन कहानियो की ही सम्पत्ति है, फिर भी वह सर्वथा नवीन सस्कार ले कर आई है उनकी आत्मा तो भारतीय है परन्तु उनका कलेवर विदेशी है उनमें काट-छाँट विलायती ढग से की गई है। कहानी आज के युग मे साहित्य का सर्वाधिक लोकप्रिय अग है। वह प्राचीन समय से ही अपना अस्तित्व रखती आई है। आज कहानी का विकास दिन-प्रतिदिन उन्नति की ओर बढता जा रहा है। कहानी अपने पितृ-गृह, उपन्यास, से सर्वथा अलग हो गई और उसने अपना अस्तित्व अलग बना लिया। कहानियो का जन्म वर्तमान युग की आवश्यकताओ मे हुआ क्योकि कहानी आज के व्यस्त जीवन मे कम-से-कम समय मे अधिक-से-अधिक मनोरजन कराने आई है जिसमें गागर मे सागर भरा हुआ है।

प्राचीन और अर्वाचीन कहानियों में अन्तर—प्राचीन कहानियाँ मौखिक होती थी आज की लिखित। प्राचीन कहानियो की कथावस्तु राजा-रानी, शेर-गधा, भूत-प्रेत से शुरु होती थी, आज की कहानियों का केन्द्र बिन्दु मानव है, तथा उसके पात्र हमारे चतुर्दिक वातावरण के ही होते है, जिन्हें हम चिर परिचित कह सकते है, जिनके द्वारा

लेखक मनोविज्ञान का सहारा ले कर अपने मनोभावो को प्रगट करता है। प्राचीन कहानियाँ व्यक्तित्वहीन होती थी, परन्तु आज की कहानियो में व्यक्तित्व प्रधान होता है। प्राचीन कहानियो का उद्देश्य कौतूहल चमत्कार तथा आनन्द प्रदान करना होता था, पर आज की कहानियो का लक्ष्य मनुष्य जीवन के किसी रहस्य को खोलना और उसका समाधान करना है। पुरानी कहानियों मे लम्बे-लम्बे सम्वाद, विस्तृत विवरण, लम्बे-लम्बे प्रकरण, लौकिक उपकरण और अलकार भरे पडे रहते थे, पर आधुनिक कहानियो मे छ तत्त्व होते हैं, जिनका आपस मे सगठन होता है, तथा शब्द चित्र, बौद्धिक कला, उद्देश्य, शिक्षा, मौलिकता, मार्मिक प्रसग और नूतनता के दर्शन होते हैं। प्राचीन कहानियाँ बडी लम्बी होती थी, पर आधुनिक कहानियाँ अधिक-से-अधिक ४ मिनिट की होती हैं।

वर्तमान युग मे कहानी के विकसित रूप को देखते हुए उसे एक निश्चित आकार मे बाँधना दुष्कर है क्योकि वह अविराम गति से बढती जा रही है और उसमे अनेक तथ्यो का समावेश भी होता है। फिर भी उसके विषय मे विद्वानो ने अपना मत प्रगट किया है—

१. 'वेल्स' महोदय कहते है कि "कहानी वह कथा है जो एक घटे मे पढी जा सके।"

२ 'अडगर ऐलन पो' का मत है कि "छोटी कहानी एक ऐसा आख्यान है जो कि एक-ही बैठक में पढा जा सके, जिसमें एक-ही प्रभाव हो तथा जिसे एक-ही उद्देश्य को ले कर लिखा हो।"

३ डाक्टर श्यामसुन्दर आख्यायिका को एक निश्चित लक्ष्य या प्रभाव को ले कर लिखा गया नाटकीय आख्यान मानते है।

४ मुन्शी प्रेमचन्द ने कहा है कि "गल्प एक ऐसी रचना है जिसमे जीवन के किसी एक अग या मनोभाव को प्रदर्शित करना लेखक का उद्देश्य है। इसलिए वह एक रमणीय उद्यान नही जिसमे भाँति-भाँति के फूल, पौधे खिले हुए हों अपितु वह ऐसा गमला है जिसमे एक पौधे का माधुर्य अपने समुन्नत रूप मे दृष्टिगोचर हो रहा है।"

५ बाबू गुलाबराय कहते है "छोटी कहानी एक सम्पूर्ण घटना है जिसमे एक तथ्य या प्रभाव को ले कर अग्रसर होने वाली व्यक्ति केन्द्रित घटना और घटनाओ के आवश्यक परन्तु कुछ अप्रत्याशित उत्थान-पतन और मोह के साथ पात्रो के चरित्र पर प्रकाश डालने वाला कौतूहलपूर्ण वर्णन हो।"

कहानी के तत्त्व—यद्यपि कहानी उपन्यास की अपेक्षा एक संक्षिप्त और सामान्य रचना है तथापि उपन्यास की भाँति कहानी भी अपने नियम और विशेषताएँ ले कर चलती है—उपन्यास की भाँति कहानी के भी ६ मूल तत्त्व होते हैं।

१ कथावस्तु, २ पात्र वा चरित्र-चित्रण, ३ सम्वाद, ४ देशकाल, ५. शैली, ६ उद्देश्य।

१ कथावस्तु—कहानी जीवन की झलक होती है। जैसे शरीर में रीढ़ की हड्डी होती है, उसी प्रकार कहानी की भी रीढ की हड्डी होती है जिस पर सारा कथानक चलता है। इस कथा के भीतर घटनाओ का विकास मनोवैज्ञानिक ढग से होता है। एक-एक अग का गम्भीर विश्लेषण होता है। सुख-दु ख जो भी हो उसे चित्रण करना होता है। उसे केन्द्रीभूत कर लिया जाता है। अनावश्यक बातो को निकाल कर बाहर फेंक दिया जाता है। इसके भीतर एक ही सवेदना होती है। सभी कहानिया एक ही लक्ष्य की ओर लक्षित होती है। कहानी को प्रभावित बनाने के लिए कुछ उपकरण बनाये गये—आरम्भ, विकास, सघर्ष व कौतूहल, चरम सीमा और अन्त।

आरम्भ — घटना अकस्मात् आरम्भ होनी चाहिए। साथ ही उसकी रोचकता के अभाव में कहानी फीकी रहेगी। कुछ व्यक्ति वातावरण की दृष्टि से, कुछ पात्रो की दृष्टि से कहानी आरम्भ करते है। कहानी किस दशा को जायेगी इसका ज्ञान यही से कराना होता है।

विकास—उद्देश्य की प्राप्ति के लिए कहानी आवेग (गति) से चलती है। यहाँ नये पात्र अपने चरित्र को ले कर प्रस्तुत होते है।

सघर्ष और कौतूहल—कहानी का यह मुख्य भाग होता है। कहानी अनेक भागो से घूमती हुई उद्देश्य की ओर बढती है। सघर्ष के आ जाने से कहानी में मादकता आ जाती है। उत्थान-पतन से ही जीवन आगे बढता है। यही से जिज्ञासा का भी आरम्भ होता है।

चरम सीमा—कहानी जीवन के अन्तिम मोडपर मुडती है। जिज्ञासा इतनी बढ जाती है कि ठीक उद्देश्य जानने के लिये पाठक का धैर्य छूट जाता है। सम्पूर्ण घटना, चरित्र-चित्रण, वातावरण व कौतूहल यहाँ पर आ कर केन्द्रीभूत हो जाता है।

अन्त—चरम सीमा की सभी प्रवृत्तियाँ यहाँ पर आ कर निगति की ओर जा कर डूब जाती है, और कथा का उद्देश्य यही पर आ कर प्रकट हो जाता है।

पात्र व चरित्र-चित्रण—कहानी के पात्र कम सख्या के होने चाहिये क्योंकि कथा की अपेक्षा पात्रो की महत्ता अधिक होती है जिससे जीवन की सारी झाँकी व जीवन का सार स्पष्ट होता है। पात्रो का जीवन उज्ज्वल और महत्तापूर्ण होना चाहिए। पात्रो का चरित्र-चित्रण चार प्रकार से किया जाता है—१. विश्लेषण द्वारा, २ सकेत द्वारा, ३. घटना द्वारा, ४. सवाद द्वारा।

१ विश्लेषण मे लेखक स्वय वर्णन करता है। २. सकेत यह कलात्मक ढग को अपनाता है जिसमे कल्पना का पुट होता है। ३. घटना मे फंसा हुआ व्यक्ति अपनी बात आप प्रगट कर देता है। ४ संवाद मे पात्रो के वार्तालाप पर एक-दूसरे का चरित्र उघडता है।

सवाद—यह कौतूहल की वृद्धि करता है। इससे पात्रो का चरित्र-चित्रण होता है, कथा का प्रवाह आगे बढता है। रोचकता के चिन्ह इसमे अकित होते हैं। यह नाटक के प्राण होते हैं। अन्तर्द्वन्द्व इसके द्वारा ही प्रकट होता है। अनावश्यक, अनुपयोगी, लम्बे काव्य से युक्त कथोपकथन इसके भीतर नही होने चाहिए।

वातावरण—वातावरण से पात्रो की स्थिति का सम्पूर्ण ज्ञान होता है परन्तु वातावरण का कहानी मे कोई महत्व नही है। फिर भी आरम्भ से अन्त तक चित्रो के द्वारा वातावरण को यदा-कदा प्रस्फुटित करना होता है।

शैली—भावाभिव्यक्ति के माध्यम को शैली कहते है। शैली कलाकार के व्यक्तित्व को बनाती है। भाव, भाषा और कल्पना तथा गुण का सम्बन्ध शैली के भीतर सन्निहित होता है। शैली कथात्मक, आत्म-कथात्मक और पत्रात्मक ढग से लिखी जाती है। (कुछ विद्वान सवाद शैली को भी मानते है।) शैली के भीतर भाव, शब्द व कल्पनाओं का विशेष ध्यान देना होता है।

उद्देश्य—प्राचीन कहानियां केवल मनोरजन के लिए होती थी, उनमे उत्कृष्टता नही होती थी, पर आज की कहानी में जीवन का कोई-न-कोई सकेत अवश्य होता है। आज इसके द्वारा निश्चित लक्ष्य बताया जाता है। उच्च भावो को जागृत किया जाता है।

अच्छी कहानी के गुण—१ कहानी अधिक-से-अधिक एक घण्टे की होती है जिसे एक बैठक मे पढा जा सके। २. कहानी का निश्चित प्रभाव होना

चाहिये। ३ उसका प्रभाव हृदय पर अंकित हो, न कि बुद्धिपर। ४. कहानी मौलिक हो, कौतूहल तथा उत्सुकता के कारण कहानी में गतिशीलता हो। ५ कहानी मे जीवन सकेत के साथ-साथ मनोरजन हो। ६ कहानी में सम्भावना का गुण भी अवश्य हो। ७ कहानी में जीवन का एक चित्र प्रभाव लक्ष्य होना चाहिए। ८. कहानी मे समन्वयात्मकता हो, विश्लेषणात्मकता नही। ९. कहानी की उत्पत्ति कौतूहल मे हो। १० इसकी भाषा सरल, सभ्य तथा शुद्ध हो। ११ कहानीकार को वातावरण से परिचित होना चाहिए। १२ कहानी मे अनुभूति अधिक होनी चाहिए।

प्रश्न—हिन्दी निबन्ध की परिभाषा, विशेषतायें व शैलियों का निर्देश कर वर्गीकरण कीजिए।

उत्तर—निबन्ध की परिभाषा भिन्न-भिन्न विद्वानो के मुँह से भिन्न-भिन्न प्रकार से सुनी जाती है। निबन्ध अंग्रेजी के Essay अर्थ में प्रयुक्त होता है। जिसमे हृदय के उद्‌गारो तथा लोक-जीवन के प्रति अपनी प्रतिक्रियाओं को सार, सभ्य रूप में और शृंखला में व्यक्त किया जा सके उसे ही Essay पुकारा जाता है। पहले इसमे न भावों का विकास, न विन्यास, न भाषा का लाघवपन था, परन्तु रचना-पद्धति की ओर एक सफल सकेत था, और जब पश्चिम मे इसकी उन्नति होती गई, तो अन्त में "डाक्टर जॉनसन" ने उसकी परिभाषा की, कि "निबन्ध स्वच्छन्द मन की तरंग है, जिसमें शृ खला ही प्रधान रूप में विद्यमान रहती है"। धीरे-धीरे आगे आने वाले निबन्धकार "हर्बटरीड" ने उस असम्बन्धता को दूर किया और साढे-तीन हजार से साढे-पाँच हजार शब्दो तक उसका स्वरूप निर्धारित किया। तीसरे सज्जन "रीड साहब" ने इसकी परिभाषा की है कि "इसमें जीवन-वृत या आलोचनात्मक विश्लेषण नही होता; न ही यह इतिहास है, न ही यह प्रबन्ध, न ही व्यक्तित्व का विशेषण होता है न ही इसमें आत्मीयता का विवेचन होता है, पर यह एक विशेष प्रकार की शैली है'। शुक्ल जी ने परिभाषा की है कि "मानसिक श्रम साध्य नूतन उपलब्धि ही निबन्ध है"। प्रायः देखने मे आता है कि ससार की सब बातें असम्बद्ध हैं। निबन्ध लेखक उन्हे शृखला के रूप में बाँधने का प्रयास करता है, अर्थात् निबन्ध एक रचना शैली है जिसमें लेखक विषय का

व्यक्तित्व ढग से विचार करता है। बाबू गुलाबराय ने उस गद्य-रचना को निबन्ध माना है "जिसमे एक सीमित आकार के भीतर किसी विषय का प्रतिपादन एक विशेष निजीपन, स्वच्छन्दता, सौष्ठव और सजीवता तथा आवश्यकता, सगीत और सम्बद्धता के साथ किया गया हो"। शुक्ल जी तो यहाँ तक कहते है कि "यदि गद्य कवि की कसौटी है तो निबन्ध गद्य की कसौटी है"।

निबन्ध के तत्व

(१) गद्य का होना—निबन्ध का मुख्य तत्व गद्य-रचना है। परन्तु एकआधी जगह पद्य का सहारा भी लिया जाता है।

(२) व्यक्तित्व—लेखक इसमे विषय के सम्बन्ध मे अपना मत रखता है जिसके भीतर उसकी अनुरक्ति व विरक्ति स्पष्ट रूप से परिलक्षित होती है।

(३) स्वत पूर्ण—निबन्ध अपने मे स्वत पूर्ण होता है। उसमे पूर्व और पर का सम्बन्ध नही रहता।

(४) रोचकता—रोचकता निबन्ध की सफलता और लोक प्रियता का प्राण है। आधुनिक पत्र-पत्रिकाओ मे भी अग्रेजी शैली की तरह ही हिन्दी में इसका विकास हुआ। इसमे लेखक की प्रतिभा का समावेश अपने आप से हो जाता है। इसमे लेखक शैली के उत्कर्ष के लिए ध्वनि, हास्य, व्यग्य, लक्षण शक्तियो का प्रयोग करता है।

(५) सम्बन्धता—इसमे अच्छे निबन्धो में भावो का योग साथ ही रहता है। यही उसका ज्ञान और भाव साथ-साथ चलता है। या यो कहे कि बुद्धि रूपी राही को स्थल-स्थल पर हृदय रूपी वाटिका मे ठहरना ही पडता है।

(६) औपचारिकता—उच्च रचनाओ की अपेक्षा निबन्ध मे औपचारिकता कम नही होती। इसमे निबन्धकार व पाठक का सीधा सम्बन्ध एक-दूसरे से होता है। वास्तव मे उत्कृष्ट निबन्ध एक खुला पत्र है। जो भी सहृदय पाठक इसे पढता है वह समझता है कि लेखक मुझे सम्बोधित कर रहा है।

(७) प्रवाह—निबन्ध का प्रवाह इतना सुन्दर हो कि पाठक को वह बरबस अपनी ओर आकर्षित कर ले। उसमें पूर्व व पर का सम्बन्ध न जोडा जा सके। भावो मे गति अपने आप आती हो।

(८) विषय निर्वाचन—इसका विषय इतना सुन्दर होना चाहिए

कि पाठक के मस्तिष्क व हृदय को स्पर्श करे।

निबन्धों का वर्गीकरण

निवन्धो की वर्णन शैली और अनेक प्रकार के विषय देख कर निवन्धो को दो भागो मे वाटा जा सकता है।

१. परिवन्ध २ निबन्ध

१. परिबन्ध—इसमें निवन्ध का आकार लघु होता है। सगति और व्यवस्था वरावर चलती है। विचार-भूमि कटी-छटी रहती है और इसमें विषय और व्यक्तित्व की प्रधानता रहती है। रामचन्द्र शुक्ल जैसे विद्वान इसी कोटि में आते है। इसमें विषय का विश्लेषण, यथार्थता, सूक्ष्मता और सहृदयता व सतर्कता रहती है। यही पर निवन्धकार हृदय, पक्ष व बुद्धि को ले कर चलता है और दोनो का समन्वय कराता है।

२ निर्बन्ध—इस निवन्ध में लेखक की मन स्थिति व स्वच्छन्दता रहती है। इन निबन्धो मे मन के भाव एक सूत्र मे वधे रहते है। ऐसी रचना का हृदय से निकलने के कारण अधिक प्रभाव पडता है। उसमे सम्वेदना अधिक होती है। इसमे कोई भाव, घटना, प्रसग व वात-चीत की एक शृखला-सी वधी रहती है। इसमे लेखक का व्यक्तित्व प्रधान रहता है और विषय गौण। ऐसे निवन्धो को सुलझाने के लिए लेखक का जीवन-परिचय अवश्य होना चाहिए क्योकि उसमे लेखक का उद्देश्य, अपनी प्रतिक्रिया व व्यक्तिगत विशेपताओ को वतलाना होता है। ऐसा लेखक माप-दडो की परवाह नही करता, जो कुछ हृदय मे आया कह देता है। उसकी शैली अव्यवस्थित होती है, भाव विखरे होते है। वुद्धिपक्ष प्रधान नही होता—

अभिव्यक्ति की दृष्टि से निवन्ध चार प्रकार के है।

१ कथात्मक, २ वर्णनात्मक, ३ चिन्तनात्मक, ४ भावात्मक।

१. कथात्मक—इसका अधिकाश सम्वन्ध समय से है। इसमें वस्तु को गीत शैली मे देखा जाता है। ऐसे निवन्ध तीन रूपो मे मिलते है, स्वप्नो की कथा के रूप मे, जैसे लल्ली प्रसाद पाडे की "कविता का दरवार"। ये निवन्ध वर्णनात्मकता की ओर वढते है। इसीलिए इसमे लेखक की भापा भावपूर्ण और व्यजना युक्ति-युक्त होती चलती है। दूसरी शैली आत्म-चरित्र की

है। जिसमें किसी भावना, वस्तु का मानवीकरण कर दिया जाता है और उसका चरित्र उसी शब्दो मे सुनाया जाता है। पार्वती नन्दन का "तुम हमारे कौन हो" नामक निबन्ध इसी कोटि मे आता है तीसरी शैली कहानी शैली की है। जैसे "राजकुमारी हिमागिनी"।

२ वर्णनात्मक—इसमे प्रकृति, वस्तु, पात्र, स्थान प्रान्त अथवा किसी आनन्दकारी सुन्दर दृष्य का वर्णन निबन्धकार करता है। इस प्रकार के लेखक दो कोटियो मे बटे है। एक समास शैली अपनाने वाले, दूसरे व्यास शैली अपनाने वाले। व्यास शैली में सब कुछ स्पष्ट कर दिया जाता है तथा भाषा सरल-से-सरल होनी है। उसे आगमन शैली भी कहते है। समास शैली मे सस्कृत शब्दों की बहुलता होती है। शब्द एक पर एक ठूँसा जाता है। इसमे निष्कर्ष का वाक्य पहले दिया जाता है और अन्त मे इसे स्पष्ट किया जाता है। वर्णनात्मक निबन्धो मे व्यास शैली होती है। लेकिन कही-कही समास का भी प्रयोग होता है।

३ चिन्तनात्मक या विचारात्मक—इसमें तर्क का सहारा लिया जाता है। यह मस्तिष्क की वस्तु होती है। बुद्धि पक्ष प्रधान होता है। वर्णनात्मक तथा विवरणात्मक मे बुद्धि पक्ष होता है और भावात्मक में हृदय पक्ष। शुक्ल जैसे विद्वान ही भावात्मक व विचारात्मक निबन्धो का समन्वय कर सकते हैं। इसमे एक वाक्य को दूसरे वाक्य से आगे-पीछे नही किया जा सकता। इसमे समास शैली अधिक अपनाई जाती है, जैसे 'भाव या मनोविकार' मे "वैर क्रोध का अचार या मुरब्बा है या प्रेम और श्रद्धा मिल कर भक्ति होती है"। श्यामसुन्दरदास जी ने व्यास शैली का प्रयोग किया है। विचारात्मक के भी तीन भेद किये जा सकते है—आलोचनात्मक, विवेचनात्मक, गवेषणात्मक। इसमे शुक्ल जी, श्यामसुन्दर दास और महावीर प्रसाद द्विवेदी जैसे विद्वान रचना करते थे।

४ भावात्मक—इन निबन्धो में रस और भाव प्रधान होता है। इसका सम्बन्ध आत्मा के साथ होता है। लेखक के हृदय मे जब भावो का तूफान खडा होता है तब उन्हें एक रस की धारा मे बहा देता है तो पढते ही बनता है। एक शोकावेग का उदाहरण देखिए—"हाय पडित जी तुम हमें

छोड़ गये। यह विपत्ति का भार अचानक सिर पर टूट पडा, हृदय विदीर्ण हो गया।" कभी-कभी ऐसे निबन्ध स्वगत भाषण का रूप धारण कर लेते है, जैसे, "पाडेयवेचन शर्मा का"।

इस प्रकार के निबन्धो मे प्रलाप शैली होती है। इन्ही भावात्मक लेखो में कवित्वपूर्ण ढग से समझाया जाता है। ये निबन्ध धारा शैली, तरग शैली और विक्षेप शैली द्वारा लिखे गए है। प्रथम शैली मे भावो का प्रवाह, दूसरे में उतार-चढाव, तीसरे मे तारतम्य व नियन्त्रण का ध्यान रखा जाता है। प्रथम शैली मे मजदूरी और प्रेम या ब्रह्मक्रान्ति, दूसरी शैली मे माखनलाल चतुर्वेदी का 'साहित्य देवता, तृतीय शैली मे वियोगी हरि के निबन्ध आते है। भावात्मक निबन्धो मे मर्म स्पर्शता, ओजस्वी सकीर्णता और भावो के अनुसार भाषा का प्रवाह होता है।

शैलियो के प्रकार—

१ समास शैली—इसमें तत्सम शब्दो का प्रयोग अधिक, भाषा क्लिष्ट पर प्रभावोत्पादक होती है। (इसमे शुक्ल जैसे व्यक्ति रचना करते है।)

२. व्यास शैली—शब्द अधिक विचार कम होते है। लेखक भाषा व शब्दो के कारण उछलता रहता है। (इसमें महावीर प्रसाद द्विवेदी व श्याम सुन्दर दास जी आते है।)

३ विक्षेप शैली—भाषा उखडी-उखडी, वाक्यो की आवृति बार-बार होती है। (डा० रघुवीर इसी शैली के पोषक है।)

४. धारा शैली—इसमें विचारो की गति सराहनीय होती है। प्रत्येक वाक्य दूसरे से सम्बन्धित होता है। इसे भावात्मक निबन्धो मे प्रयोग किया जाता है, जैसे, पद्मसिंह शर्मा आदि।

निष्कर्ष रूप में हम कह सकते है कि निबन्ध साहित्य में, बड़े-बडे भाग ले रहे है। निबन्धो का भविष्य उज्ज्वल दिखाई पड रहा है। हजारी प्रसाद द्विवेदी, नगेन्द्र जैसे कई कलाकार इसमे रचना कर रहे है।

समालोचना

प्रश्न—आलोचना के विभिन्न प्रकारो का परिचय दीजिए। (जून, १९५१)

साहित्य के विकास में आलोचना किस प्रकार सहायक होती है। युक्तियुक्त उत्तर दीजिए। (जून, १९५५)

साहित्य में आलोचना का स्थान निर्धारित कीजिए। (नवम्बर, १९५७)

या

उत्तम समालोचक के आवश्यक गुणों का विवेचन कीजिए। (जून, १९५७)

उत्तर—समालोचना साहित्य का एक नवीन और महत्वपूर्ण अंग है। गद्य साहित्य की अन्य विद्याओं के साथ-साथ आलोचना का जन्म हुआ। लगभग इसे सौ वर्ष हो गये हैं। प्राचीन साहित्य के भीतर समालोचना हुई थी पर वह किसी और ढंग की थी। वैसे समालोचना का अर्थ है किसी कृति को सम्पूर्ण रूप से आद्योपान्त देखने के पश्चात् अपनी सम्मति देना।

समालोचना का महत्व – कवि काव्य का सृष्टा है और आलोचक उसका दृष्टा। कवि यदि अपने काव्य का ब्रह्मा है तो आलोचक विष्णु और शंकर की भांति। कवि विचार के क्षणों में अपनी प्रतिभा को प्रस्फुटित करता है तो आलोचक विचार के उन क्षणों में उसकी काट-छांट कर उसका मूल्यांकन करता है। कुछ विचारक समालोचकों में दोष देखते हैं। पहला यह है कि समालोचक आलोचना करते समय अपना दृष्टिकोण ठूंस देता है (जबकि पाठक और साहित्यकार के भीतर कोई सम्बन्ध नहीं रहना चाहिए।) दूसरा दोष यह बताते हैं कि एक पुस्तक पर असत्य अच्छी-बुरी आलोचनाएं होती हैं। पाठक निर्णय ही नहीं कर पाते कि किनका मत मानें जबकि उतने ही समय में मूल पुस्तक को पढा जा सकता है। तीसरा आक्षेप इसमें यह है कि पाठक को मूलकृति पढने के पश्चात् अपना स्वतन्त्र मत याद नहीं रहता। पर देखने में आया है कि इससे सहयोग ही प्राप्त होता है। चौथा यह दोष कि पाठक अनेक आलोचनाओं को पढ कर अपने कर्तव्य को भूल जाता है परन्तु अधिक आलोचनाए होने से अधिक ज्ञान बढता है)। इतने आक्षेप लगाने पर भी समालोचना का महत्व कम नहीं होता। साहित्य का उद्देश्य तो जीवन की व्याख्या करना होता है। समालोचक साहित्यकार को सुन्दर और कल्याणकारी पथ का

प्रदर्शन कराता है। साहित्य रूपी सागर तरने के लिए वह आलोचना रूपी नौका से हमें पार करवा देता है जिसमें केवट आलोचक है और पाठक पार जाने वाले।

हम यह निश्चित नही कर पाते है कि कौन-सी कृति हमें पढनी चाहिए कौन-सी नही - इसलिए समालोचक सत-साहित्य पर प्रकाश डालते हुए पाठको को प्रोत्साहित करता है और सन्मार्ग पर चलने के लिए प्रेरणा देता है तथा पाठको की रुचि को परिष्कृत करता है। समालोचक अपने उत्तर-दायित्व को समझता है। वह आलोचना के तीनो उद्देश्यो को स्पष्ट करता चलता है।

(१) व्याख्या करना—जिसके द्वारा पाठक को वह कृति का सच्चा रसास्वादन करवाता है। कृति की व्याख्या कराने पर वह उसके गोपनीय रहस्यो को उद्-घाटित कर देता है।

(२) विश्लेषण करना—कृति के भीतर गुण-दोष कई प्रकार के होते हैं आलोचक उसके भीतर में नीर-क्षीर विवेकिनी वुद्धि के आधार पर निर्णय देता है। वह हस की भाति मोतियो को चुग लेता है। वह कवि की अनुभूतियो के आदर्शो को, समाज की अच्छाई-वुराई को अपने गम्भीर हृदय से अलग करता है। यही विश्लेपण करना होता है।

(३) मत निर्धारण करना--व्याख्या और विश्लेपण के पश्चात् समालोचक को अपना मत देना होता है। वह कृति के गुण-दोपो को वतलाने के पश्चात् जाने या अनजाने वह कवि की सत्य-असत्य की कोटि में रख देता है जिससे हम निकम्मी पुस्तको से वच जाते हैं और साहित्यकार फिर अपनी वुद्धि का दुरुपयोग नही कर सकता। समालोचक साहित्य के उद्यान मे लगने वाले झाड-झखाड को उखाड़ फेंकता है। कितनी वस्तुओ की कलमे कर वगीचे मे लह-लहाता हुआ दीखता है वह साहित्यरूपी मत्त गजराज, पर अपनी आलोचना रूपी अकुश मे उसे सभालता है। इससे साहित्यकार को प्रोत्साहन और मार्ग-प्रदर्शन मिल जाता है।

समालोचक के गुण (आलोचना के तत्व)—

१—पांडित्यपूर्ण, २—सहृदयता, ३—निष्पक्षता, ४—निर्व्यक्तिक्ता, ५—सयम, ६—स्वाभाविक प्रतिभा, ७—तुलनात्मक दृष्टिकोण, ८—विस्तृत और गम्भीर अध्ययन, ९—कवि के लक्ष की परख, १०—नूतनता ही कसौटी नही, ११—अहमन्यता का निषेध, १२—तार्किकता और सगति।

(१) पांडित्यपूर्ण—आलोचक का विद्वान् होना आवश्यक है। उसे आलोचना के गुण का सम्पूर्ण ज्ञान हो तथा शास्त्रीय नियमो का ज्ञान होना आवश्यक है।

(२) सहृदयता—समालोचक रसज्ञ भी होता है। कवि के प्रति उसे सहृदयता का भाव रखना चाहिए।

(३) निष्पक्षता—आलोचक को किसी भी बात के चक्र में न पड़कर मित्र या शत्रु की भावना का ध्यान नही करना चाहिए। लेखक के प्रति उसे अन्याय या विश्वासघात नही करना चाहिए।

(४) निर्व्यक्तिक्ता—आलोचना रचना की करनी चाहिए न कि व्यक्तिगत जीवन की, क्योंकि व्यक्तिगत जीवन से भी बढाकर समष्टिगत भाव होता है।

(५) संयम—आलोचक सयम मे ही रह कर कार्य करें। कवि के अधिक दोषो को देख कर, कठोर उक्ति को देख कर, अशलीलता को देख कर, अशिष्ट भाषा का प्रयोग करते हुए देख कर सन्तुलन रखे और उसे सही मार्ग का प्रदर्शन करे।

(६) स्वाभाविक प्रतिभा—समालोचक मे यह गुण होना भी आवश्यक है। उसके बिना उसकी आलोचना निरर्थक होगी।

(७) तुलनात्मक दृष्टिकोण—उसे तुलना करते समय तत्कालीन वातावरण या किसी कवि की कृतियो को सामने रख कर अच्छी परख करनी चाहिए।

(८) विस्तृत और गम्भीर अध्ययन—सुनी-सुनाई बात पर या सरसरी निगाह से देख कर कृति की आलोचना नही करनी चाहिए। उसे तो गोताखोर की भांति कृति रूपी समुद्र मे गोता लगाना चाहिए और भाव रूपी मोतियो को निकाल कर लाना चाहिए।

(९) कवि के लक्ष की परख—आलोचना करते समय कवि के उद्देश्य को उसे ध्यान मे रख कर आलोचना करनी चाहिए।

(१०) नूतनता ही कसौटी नहीं—व्यक्तिगत अनुभूति और नवीनता के नाम पर कोई भी बात उसे नही बतलानी चाहिए।

(११) अहमन्यता का निषेध—उसे अहकार में आ कर कोई बात नहीं कहनी चाहिए।

(१२) तार्किकता और सगति—उसे अपने तर्कों के आधार पर समालोचना करनी होगी। उसको आलोचना मे यह देखना है कि उसे आदि से अन्त तक एक-ही विचारधारा का प्रतिपादन है या नही।

समालोचना के प्रकार—प्राचीन तथा नवीन समालोचना मे कोई विशेष अन्तर नही है। वैसे समालोचना शब्द नवीन है परन्तु इसका कार्य प्राचीन है।

वैसे मुख्य रूप से चार प्रकार की ही आलोचनाएँ मानी गई है—

(१) व्याख्या प्रधान, (२) सिद्धान्त प्रधान, (३) निर्णय प्रधान, (४) आत्म प्रधान।

नोट—कुछ विद्वान् व्याख्या प्रधान आलोचना के भी—ऐतिहासिक, तुलना प्रधान व मनोवैज्ञानिक—भेद मानते हैं—

आधुनिक युग मे कुछ व्यक्ति प्रगतिवादी समीक्षा और आत्म प्रधान समीक्षा भी मानते है तो कुछ शास्त्रीय आलोचना भी। इनमे से व्याख्या प्रधान, तुलनात्मक, निर्णय प्रधान और सैद्धातिक, प्राचीन आलोचनाए और बाकी अर्वाचीन है।

१. व्याख्या प्रधान—इसमे समालोचक रचना के अर्थ, गुण, दोष, रस, भाव, भेद, वृत्तियाँ, रीतियाँ सब को अलग-अलग स्पष्ट करता हुआ चलता है और इसी प्रकार की आलोचना पर लोक महत्ता रखते है। इसमे कृति की सम्पूर्ण रूप से व्याख्या होती है।

२ सिद्धान्त प्रधान—कृति की व्याख्या करते समय काव्य में आलोचना के कुछ सिद्धान्त बताये जाते है। साहित्य, काव्य, नाटक, उपन्यास आदि के तत्वो के सम्बन्ध मे विभिन्न मत ले कर उनकी परिभाषाएँ निर्धारित की जाती है। इसमे आलोचक को तर्कों के द्वारा कार्य लेना होना है।

३ निर्णय प्रधान—इसमे किसी ग्रथ के गुण-दोषो की मीमासा कर मूल्य निर्धारित करने का प्रयत्न किया जाता है। व्याख्या प्रधान और सिद्धान्त के पश्चात् जो परिणाम निकलता है वही निर्णय प्रधान होता है।

४. आत्म प्रधान—वास्तव मे कुछ आलोचक इसे आलोचना नही मानते। कृति का प्रभाव आलोचक के हृदय पर जो भी पडता है उसे ही वह प्रगट करता है। हर्ष-विषाद, उत्थान-पतन की प्रवृत्ति उसके भीतर होती है। पर फिर भी आलोचना कृति की नही होती। इसमे आलोचक का व्यक्तित्व स्पष्ट दृष्टि गोचर होता है। आलोचक लेखक की रचना पर मुग्ध हो कर, आनन्द-विभोर हो कर प्रशसा के पुल बाँधता है और ऐसा प्रतीत होता है मानो वह स्वय कविता बन जाता है, वह लिखता है गद्य में पर उसके भाव बनते है कविता में इसीलिये उसकी कृति गद्य गीत की भाँति बन जाती है, इसलिए उसे प्रभाव वादी आलोचना भी कहते हैं।

५ ऐतिहासिक—ऐसी आलोचना में समालोचक कवि की कृति के साथ-साथ इतिहास की खोज करता है। इसके द्वारा चतुर्दिक वातावरण का अच्छा चित्रण होता है। क्योकि कवि समकालीन परिस्थितियो से घिरा रहता है, उसका चित्रण उसकी कृति मे अवश्य आता है।

६ तुलनात्मक—इस प्रकार की आलोचना मे दो कवियो की रचनाओं का समसामयिक तुलनात्मक अध्ययन होता है और दोनो मे से किसी एक की ओर बढता जाता है। इस प्रकार की समालोचनाएँ कटु विवाद को जन्म देती हैं क्योंकि इसके द्वारा समालोचक पक्षपात करता हुआ चलता है। इस आलोचना से गुण-दोषो का अच्छा विवेचन होता है। कितने ही रहस्य आखों के सम्मुख आते-जाते है।

७ मनोवैज्ञानिक—इस प्रकार की आलोचना में लेखक पर हर प्रकार की परिस्थितियो का पडा हुआ प्रभाव व्याख्या करके दिखाया जाता है। मनो-विज्ञान के आधार पर उसके हृदय के भाव की भली प्रकार से आलोचना हो जाती है। इसमे लेखक की व्यक्तिगत, सामाजिक, राजनैतिक, पारिवारिक और आर्थिक स्थिति का चित्रण होता है।

८ प्रगतिवादी—इस समालोचना का मुख्य ध्येय मार्क्सवादी और यथार्थ-वादी है। यह हिन्दीमे नवीनतम प्रणाली है इसका जन्म रूस मे हुआ था। इस मे शिवदान सिंह और डा० रामविलास शर्मा जैसे व्यक्ति आलोचना करते है।

९ शास्त्रीय—यह प्राचीन प्रणाली है। इसमे शास्त्रीय नियमो के आधार

पर काव्य के गुण-दोषो की छान-बीन की जाती है। अलकार, गुण, वृति व रुचि विवेचन होता है।

समीक्षा की यह विभिन्न प्रणालियाँ अपने में पूर्ण नहीं कही जा सकती। जितनी अधिक नवीन प्रणालियाँ ग्रहण की जायेंगी उतना ही समालोचना का साहित्य भर-पूर होगा।

प्रश्न—हिन्दी कविता का वर्गीकरण कीजिए।

उत्तर—कविता साहित्य का एक विशेष अग है। प्राचीन युग कविता का युग था। उस समय गद्य न्यूनतम रूप ले कर ही चलता था। यही कारण था कि प्राचीन आचार्यों ने गद्य की अपेक्षा पद्य पर अधिक विवेचन किया है। परन्तु प्राचीन साहित्य के माप-दण्ड आधुनिक कविता के वर्गीकरण मे नही चल सकते, क्योकि नित-प्रति नूतन प्रयोगो के कारण आजकल काव्य की उन्नतिशील धारा एक व्यापक श्रेय बन चुकी है, नित्य नये प्रयोग हो रहे है। पाश्चात्य काव्यधारा का प्रभाव वगला और हिन्दी पर भी पड़ा। इसीलिए हिन्दी कविता का वर्गीकरण भी विभिन्न दृष्टिकोणो से किया जाता है।

वगला दृष्टिकोण—दास गुप्त जी 'काव्य लोक' के लेखक है। उन्होने वगला कविता को दो रूपो मे बाँटा है। रस बोध और रम्य बोध की दृष्टि से द्युति काव्य और दीप्ति काव्य। द्युति काव्य के भी तीन भेद है—

१ रसोक्ति, २ भावोक्ति, ३. स्वभावोक्ति।

दीप्ति काव्य के भी दो भेद है।

१. गौरवोक्ति, २ वक्रोक्ति।

वगाल के दूसरे विद्वानो ने काव्य स्वरूप की दृष्टि से काव्य के चार भेद किये है—

१ रस काव्य, २. वोध काव्य, ३. नीति काव्य, ४ काव्याभास।

१. रस काव्य— स्थायी भावो की रस रूप मे अभिव्यक्ति की जा सकती है। इसमे कोई-न-कोई एक रस प्रधान होता है।

२ बोध काव्य—इसमें मस्तिष्क पक्ष प्रधान होता है जिससे गूढ विषय का प्रतिपादन होता है और उसे सरल बनाया जाता है।

३ नीति काव्य—इससे नीति उपदेश शिल्प का पद्य वद्ध वना कर सुरुचिपूर्ण किया जाता है।

४ काव्याभास—इन कविताओ में रस, भाव, विचार, दर्शन, नीति, शिक्षा, कुछ भी नही होता केवल इसमें तुकबन्दी होती है।

रवीन्द्रनाथ ने काव्य कर्त्ता के आधार पर दो भेद किये है। प्रथम मे कवि जो कि सुख-दुःख कल्पना की बातो को वतलाता है और विश्व का आदर करता है। दूसरे मे वह कवि है जिनकी कविता युग तथा विश्व की समग्रादरणीय वन जाती है।

पाश्चात्य दृष्टिकोण—पश्चिम के विद्वानो ने वाह्य जगत् और अन्त जगत के आधार पर काव्य के दो भाग किये है—(१) विषय प्रधान तथा विपयी प्रधान। प्रथम मे वाह्य जगत की प्रधानता रहती है तो दूसरे मे कवि के भावो का प्रदर्शन होता है।

कुछ पाश्चात्य विद्वान् विशेपताओ के आधार पर काव्य को आठ भागो मे वताते हैं—(१) महा काव्य, (२) नाट्य काव्य, (३) प्रकृति काव्य, (४) उपदेशात्मक काव्य, (५) सौंदर्य चित्रणात्मक काव्य,(६) गीति काव्य, (७) प्रवृत्ति काव्य, (८) आदर्श काव्य।

भारतीय दृष्टिकोण—

वर्तमान युग मे शैली के आधार पर विद्वानो ने काव्य का एक नया विभाजन किया है—

१. प्रवन्ध काव्य, २. वर्णात्मक काव्य, ३. भावात्मक काव्य।

१ प्रवन्ध काव्य—मे ही महाकाव्य खण्ड काव्य और एकार्थ प्रतीती काव्य के साथ-साथ मुक्तक, प्रवन्ध, नाट्य, प्रगति, आत्म चरित्र आते है।

२. वर्णनात्मक काव्य—मे व्यक्ति, स्थान, दृश्य अथवा यात्रा का सुन्दर चित्र उपस्थित किया जाता है।

३ भावात्मक काव्य—मे व्यक्तिगत तथा मुक्तक कवितायें, शोक, प्रेम, प्रार्थना स्थिति, उपालम्भ आदि गीत आते है।

उपर्युक्त विभाजन के अतिरिक्त निम्नलिखित वर्गीकरण भी प्रचलित है—

१ चित्र काव्य—इसमे कमवन्व खड्गवन्ध, समस्यापूर्ति, अन्तर्रालाप, कूट प्रश्नोत्तर आदि होते हैं।

२ विचारात्मक काव्य—इसमें उपदेश, धर्म, नीति, आदि आते है। कुछ भारतीय विद्वानो ने निम्नलिखित भेद किये है—

१ एकार्थ—इसमे एक अर्थ की प्रतीती होती है।

२ मुक्तक—मुक्तक छन्दो मे प्रवन्ध लिखा जाता है।

३ नाटकीय—आत्म-चरित्र शैली पर पात्र स्वय अपने अनुभव को प्रस्तुत करता है।

४ शोक गति—शोक तथा प्रेम की भावना पर काव्य की रचना होती है।

५ गीति कथा—गीतो के आधार पर कथा को प्रस्तुत किया जाता है।

६. गीतिका -- इसमे १४ पक्तियाँ होती हैं। इसमे भाव बडे परन्तु आकार लघु होते है।

७ परिकृति—इसमे किसी कवि या शैली पर परिहास किया जाता है।

८ सम्बोधन गति—इसमे किसी को सम्बोधन कर गीत लिखे जाते हैं।

उपर्युक्त सभी शैलियो में गीति शैली अधिक प्रचलित है क्योकि आज का पाठक और कवि दोनो चिन्तनशील व भावुक हो चुके हैं।

गद्य साहित्य की अन्य विधायें

(आत्म-चरित्र, जीवनी, पत्र-साहित्य, संस्मरण, रेखा-चित्र, रिपोर्ताज, गद्य गीत)

प्रश्न—आत्म-चरित्र का महत्त्व प्रतिपादन कर उपन्यास और इतिहास से उसका अन्तर स्पष्ट कीजिए तथा बताइए जीवनी के कितने भेद हो सकते हैं ?

उत्तर—उपन्यास, नाटक आदि की तरह ही जीवनी भी साहित्य की विधा है उसमे साहित्य काव्य के सभी गुण हैं। घटनाओ का चित्रण मनुष्य के आन्तरिक व बाह्य रूप का चित्रण कलात्मक ढग से बताना पडता है।

आत्म-चरित्र को नायक स्वय लिखता है। जीवनी के भीतर चरित्र नायक का मित्र, शिष्य, प्रेमी, भक्त, उपासक उसके जीवन पर प्रकाश डालता है। आत्म चरित्र का विषय मनुष्य ही होता है, उसमे मानव-जीवन का विवेचन प्रत्यक्ष या वास्तविक रूप मे होता है।

उपन्यास व जीवनी में अन्तर—पाश्चात्य विद्वानों ने उपन्यास को जीवन शैली के आधार पर लिखा है। हिन्दी मे अज्ञेय जी का 'शेखर-एक जीवनी' इसी शैली पर लिखा गया है। उपन्यास मे जीवन की झाकी कही-कही धुँधली देखने को मिलती है क्योकि कल्पना के भार से उसमे जीवन का अग दब सा जाता है। उपन्यासकार कला के बल से पाठक को चरित्र नायक के ढूँढने को बाध्य करता है। आत्म-कथा में कल्पना कम होती है उसे तो केवल मनुष्य के चरित्र पर ही प्रकाश डालना होता है किन्तु उपन्यासकार घटनाओ पर हल्के-हल्के आवरण चढाता चलता है जिनसे नायक का रूप सुन्दरतम दिखाई देता है। जीवनीकार अपने नायक के सभी भेदों को बतलाने पर भी सर्वज्ञता का दावा नही करता।

जीवनी और इतिहास—इतिहास मे सब कुछ सत्य होने पर भी अप्रिय और कटु है। उसमे भी व्यक्तियो के जीवन का परिचय प्राप्त करते है। उसे तो देश की पृष्ठ-भूमि पर ही घटनाओ का चरित्र-चित्रण करना पडता है। उसके लिए अगी देश और व्यक्ति उसका अग है परन्तु जीवनी मे व्यक्ति प्रधान होता है, घटनाएँ उसकी अनुगामिनी बन कर चलती है। सामान्य से सामान्य बात उसके लिए महत्वपूर्ण होती है। नायक की दिनचर्या तक का वर्णन करना पडता है। गाँधी, नेहरू, राजेन्द्र बाबू की आत्मकथायें ५० वर्ष से हमारे यहाँ प्रचलित है।

जीवनी का साहित्यिक मूल्य—जीवनीकार तथा दरबारी कवि मे अन्तर होता है—प्रथम को अपने चरित्र का व्यक्तित्व अभिव्यक्त करना होता है, द्वितीय को चरित्र नायक को अत्युक्ति व अतिशयोक्ति से बतलाना होता है। प्रथम मे चरित्र नायक अपने व्यक्तित्व बल से महान बनता है दूसरे मे दोषो को छिपाया जाता है। जीवनीकार साहित्य का पल्ला नही छोडता परन्तु कल्पना के पखो पर विचरण करता है।

जीवनी की शैली—लेखक को एक साचा तैयार करना होता है। उसे शैली कहते है उसे लिखित, अलिखित तथ्यो को सकलित कर सुन्दर तरीके से सजाना पडता है जो पाठक के हृदय मे घर कर जाये। इसमे बुद्धि-कौशल की आवश्यकता होती है। यदि लेखक का मुख्य लक्ष्य सत्य को ही बतलाना है तो उसे प्राप्त सामग्री मे से आवश्यक तथ्यो का सश्लेषण, विश्लेषण, निर्वाचन तथा सस्थापन करना पडता है परन्तु यह कार्य भी सरल नही जान पडता, क्योकि चरित्र लेखक का कार्य इतना दुष्कर होता है जितना कि जीवन मे निर्वाह करना। शैली से ही जीवनी आकर्षक बन जाती है। यदि उसमे निम्न गुण हो तो वह सुन्दर भी बन जाती है

(१) चरित्र नायक महान हो, उसका चरित्र ही काव्य हो। (२) लेखक में ऐसा गुण हो कि वह पारस पत्थर और कलम के जादू के समान होना चरित्र को उत्तम व आकर्षित बना दे? प्रथम मे 'बोसवैल' (Boswell) की रचना, दूसरे मे 'जॉनसन' कृतियाँ आ जाती है। प्रथम मे नायक प्रधान होता है तो दूसरे मे लेखक। जैसे, गाधी व जवाहर की कृतियाँ।

हिन्दी मे अब तक तो रामकृष्ण, दयानन्द, आदि की जीवनियाँ लिखी गई है।

जीवनियों के प्रकार—सस्मरण के ढंग पर ही जीवनी लिखने की प्रथा चल पडी। एक ओर 'इन्टर्व्यू' की शैली, तो दूसरी कलात्मक ढग की शैलिया प्रचलित है। प्रथम में प० सीताराम की लिखी हुई 'मालवीय जी की जीवनी' आती है।

आजकल आत्म-कथा की भी विविध प्रकार की शैलिया है। जैसे महात्मा गाँधी की आत्म-कथा, श्यामसुन्दरदास की आत्म-कथा, महादेवी जी के अतीत के चल-चित्र, सियारामशरण गुप्त की 'बाल स्मृति', आदि-आदि रचनाये है।

हमारे यहाँ—८४ वैष्णवो की वार्ता और 'भक्त माल' ये जीवन-साहित्य पर दो ग्रन्थ मिलते है। उसके पश्चात् प्रताप नारायण मिश्र ने भी प्रयास किया। फिर श्रद्धानन्द का कल्याणी, जवाहरलाल की 'मेरी कहानी' आदि-आदि ग्रन्थ आते है।

आत्म-सस्मरण मे लेखक जीवन के एक भाग को लिखता है जिसमे जीवन का नया मोड होता है। आज हिन्दी का साहित्य कितनी ही आत्म-कथाओ से भरता जा रहा है।

पत्र-साहित्य

साहित्य की इस विधा का अधिक प्रचार प्रतीत नही होता। इसका पत्रो के भीतर व्यावहारिक क्षेत्र अधिक प्रस्तुत है। आत्मकथा मे व्यक्ति का सम्बन्ध इतिहास से होता है। परन्तु पत्रो मे इतिहास का सम्बन्ध असम्बद्ध-सा रहता है। पत्र-साहित्य में लेखक का व्यक्तित्व स्पष्ट होता है पर कहीं-कही अस्वाभाविकभी होता है। पत्र साहित्य मे लेखक का व्यक्तित्व अचेतन अवस्था में और साहित्य के अन्य रूपो मे चेतन अवस्था मे रहता है। जब लेखक पत्रो को प्रकाशित कराने के लिए ही लिखता है तो उसमे स्वभाविकता चली जाती है। पत्रों का महत्व या तो विषय की दृष्टि से होता है या शैली की दृष्टि से। पत्र में लेखक बिना छल-कपट के, बिना शृ गार के, बिना सकोच के अपने भावों को व्यक्त करना है क्योंकि उसे यह मालूम होता है कि उसका पत्र केवल वही व्यक्ति पढेगा जिसको कि वह पत्र लिख रहा है।

साधारण साहित्य और पत्र-साहित्य मे रेडियो और टेलिफोन का जितना अन्तर होता है उतना ही अन्तर होता है। टेलिफोन मे एक ही व्यक्ति बात-चीत कर सकता है रेडियो मे अनेकों। रेडियो में दूर बैठ कर भी रसास्वादन

कर सकते हैं और पत्र मे भी पत्र का अच्छा या बुरा होना उसकी शैली पर वह निर्भर होता है। कभी-कभी पत्रकार अपने पत्र मे शब्द-चित्र प्रस्तुत करता है। वहरेखा-चित्र भी ऐसा खीचता है मानो व्यक्ति हमारे सम्मुख खडा हो। जो पत्र ज्ञान के लिए लिखे है वह भाव गरिष्ठ और बोझिल होते है। जो पत्र आप-बीती के होते है उनमे भी ऐसा ही होता है।

अब प्रश्न यह उठता है कि निजी पत्र प्रकाशित करवाने चाहिए या नही क्योकि इसमे लेखक का व्यक्तिगत जीवन और समसामयिक वातावरण रहता है। इसमे लेखक की पोल खुल जाने का डर रहता है। लोगो की इसके प्रति जो सद्भावना होती है उसके बदलने का डर रहता है। कुछ कहते है कि अपना नाम-ग्राम कल्पित ही उन्हे छपवा देना चाहिए, पर हमारे यहा इस प्रकार का साहित्य उगलियो पर ही गिनाया जा सकता है। अग्रेजी उर्दू मे एक-एक व्यक्ति के हजारो-हजारो पत्र है। हिन्दी मे शनै शनै यह साहित्य की विधा पनपती जा रही है।

संस्मरण

जो अन्तर कहानी और उपन्यास मे है वही अन्तर जीवनी और सस्मरण मे है। जीवनी नेता, नायक या पात्र के जीवन को अपने स्वय के घेरे में बाध के चलती है परन्तु सस्मरण, उसके जीवन की घटित झाकियो को चित्रित करता है और ऐसा वर्णन करता है कि उसका वर्णन शब्द-चित्र उपस्थित कर दे। जीवन की झलक व सारे जीवन का प्रतिपादन कर दे। इस छोटी-सी एक घटना मे गागर मे सागर की माहि सारा चित्र उपस्थित हो जाता है। आजकल इस प्रकार के लेखक महादेवी वर्मा, बनारसी दास चतुर्वेदी, रामवृक्ष 'बेनीपुरी', कन्हैया लाल मिश्र और रामनाथ 'सुमन' आदि है।

रेखा-चित्र

यह भी शब्द-चित्र से मिलती-जुलती विधा है। लेखक लेखनी द्वारा सहृदयता से रेखा-चित्र प्रस्तुत करता है तथा वर्णन की प्रधानता से चित्र उपस्थित करता है। परन्तु यह चित्र विशेप प्रकार के व्यक्तियो पर ही रेखा से खीचा जाता है। उन चित्रो मे सजीव पात्रो के साथ चरित्र की विशेपताए भी होती है। यह दोनो प्रकार से लिखा जाता है। 'रेखा' और 'मिट्टी की मूर्ति' कृतियां अच्छे चित्र प्रस्तुत करती है।

रिपोर्ताज

यह एकदम नवीन वस्तु है। गद्य का एक विशेष रूप है जो पश्चिम से यहाँ आ पहुँचा है। यह रिपोर्ट का बिगड़ा हुआ रूप रिपोर्ताज है। इसमें घटना का वर्णन होता है।

परन्तु साहित्यकार के निजी उत्साह को साथ ले कर, एक घटना का जीता-जागता क्रम चित्रित होता है। इसी के आधार पर चरित्र पर प्रकाश डलता है। इसमे आख-देखी बातें होती हैं। लेखक कलम का धनी होता है तथा साहसी और वीर होता है।

प्रश्न—गद्य गीत के विकास का इतिहास दीजिए।

गद्य जब अपनी सीमा मे नही रहा तो वह पद्य की ओर बढ गया और गीत जो अपनी परिधि छोड कर गद्य की ओर चला गया। दोनों मिल कर गद्य गीत बन गये। गद्य ने पद्य से कुछ स्वीकार किया और पद्य ने गद्य से। दोनों के इस आदान-प्रदान की वृत्ति से नवीन शैली को जन्म मिला। गद्य ने कविता से भावुकता को ग्रहण किया, रस लिया और आन्तरिक-मिलन के लिए कहा और गद्य-भाव प्रवण कल्पना प्रधान तथा रसशील बन गया उसने गति की कई विशेषताओं को ग्रहण कर लिया। इसका आकार लघु रहा। इसमे एक भाव, एक वृत्ति, एक वातावरण, एक विचार का ही आद्योपान्त निर्वाह किया। गद्य के भीतर वाक्यांशों की प्रवृति इस प्रकार से होती है कि वह छन्दों जैसा आनन्द देता है।

गद्य लिखते समय लेखक जब भावावेश में आता है तो उसकी प्रक्रिया अपने-आप ही फूट पड़ती है। इसका लेखक हृदयवान होता है।

गद्य गीत का प्रारम्भ कृष्णदास से ही होता है। उसके पश्चात् वियोगी हरि आते हैं। उनके गीतों में पारिभाषिक शब्दों का जमघट होता है। संस्कृत के शब्दों के कारण उनकी भाषा गरिष्ठ और बोझिल हो गई है। उन्हें रूपक और अनुप्रास बहुत प्रिय है। गीतों में ब्रजभाषा का माधुर्य अपने-आप फूट पड़ता है।

भगवतीचरण वर्मा—इनके गद्य गीत चिन्तन प्रधान हैं। उस परमसत्ता की ओर संकेत कर लिखे गये हैं। यह प्रेम-रस में पगे हैं, बुद्धि ज्ञान से परे हैं। इन्होंने 'पनघट', 'पुजारी' और 'कलाकार' रचनाएँ प्रस्तुत की हैं जो अत्यन्त मार्मिक हैं।

वात्स्यायन जी—इन्होने 'भग्न दूत' और 'चिन्ता' में अपने गद्य गीतो को सग्रह किया है जो प्रेम-भावना से प्रस्तुत हैं। गीतों में भाव-मग्नता कम है, पर विचार-तत्त्व अधिक। नारी और पुरुष के चिरन्तन सम्बन्ध को अच्छी तरह से बताया है। लेखक जिस उद्देश्य को लेकर काव्य-रचना करना चाहता था वह उससे बन नही पाई।

दिनेश नन्दिनी—इन्होने 'शबनम' 'दोपहरिया के फूल' और 'शोर दिया' सग्रह लिखे। 'शबनम' मे ईश्वर, जीव, प्रकृति, जीवन, मृत्यु सभी से थोडा-बहुत सम्बन्ध रखा है। अधिकता प्रेम के गीतो की है जिसमे कुछ आध्यात्मिकता की ओर भी झुके। इन गीतो से अलौकिकता की ओर भी सन्देश दिया। दूसरे ग्रथ के गीत विचार प्रधान हैं। उनमें सरसता बिलकुल नही है इसमें लेखक ने अपने-आप को राधा के रूप मे रखा है। तृतीय कृति में उन्नतिशील के प्रति भक्ति प्रतिपादन किया। इसमें वैष्णव, शैख, सूफी सभी सिद्धातो का समिश्रण मिलता है।

रामप्रसाद विद्यार्थी—आपके गीतो में एक स्वच्छ हृदय के निवेदन है। यह गीत लोकिक है या अध्यात्मिक, पर गीतो मे हृदय की कोमलता प्रत्यक्ष दिखाई पडती है। हृदय की भावनाओ को इतने सम्मिलित रूप मे प्रकट किया है। भाषा इनकी सरल-सुलझी हुई है।

ब्रह्मदेव—'निशिथ' नाम की पुस्तक मे २५ गीतो का सग्रह है। इन गीतो मे अर्चना है। भक्ति इन गीतो की प्रमुख विशेषता है। लेखक की कल्पनाएँ कोमल और रम्य हैं।

रजनीश—'आराधना' इनके गीतो की पुस्तक है। इसमे भावो को सीधे-सादे ढग से कहा है। व्यजना का सहारा नही है। लेखक का हृदय निश्चिन्त मन मे पवित्रता है। हृदय मे यदि वासना उठती है तो उसने उसे भी उसमे बताया है। सरलता इन गीतो में चित्रित है।

नागरजी—'प्रणय गीत' इनका काव्य-सग्रह है। इसमे प्रेम की सुकोमल और मधुर भावना को प्रकट किया है।

———

अलंकार-पारिजात

प्रश्न १—काव्य की विभिन्न परिभाषाएँ करते हुए उसके प्रयोजन तथा काव्य सम्बन्धी भिन्न-भिन्न मत स्पष्ट कीजिए।

उत्तर—भिन्न-भिन्न आचार्यों ने काव्य की भिन्न-भिन्न परिभाषाएँ की है। इस विषय पर दो आलोचको के एक मत नही है। भारतीय और पश्चिमी विद्वानो की की हुई परिभाषाए निम्नलिखित है —

(१) पंडित जगन्नाथ—रमणीय अर्थ के प्रतिपादक वाक्य का नाम काव्य है।

(२) विश्वनाथ—रस से परिपूर्ण वाक्य को काव्य कहते है।

(३) आचार्य मम्मट—दोष रहित तथा गुणयुक्त और कही-कही अलकार रहित रचना को काव्य कहते है।

(४) मैथ्यू आर्नल्ड—काव्य जीवन की समीक्षा है।

(५) वर्ड्सवर्थ—काव्य शान्ति के समय में स्मरण किए हुए प्रबल मनोवेगो का स्वतन्त्र प्रवाह है।

इस प्रकार ऊपर दी गई प्रत्येक परिभाषा पूर्णरूप से काव्य को स्पष्ट नही करती। वास्तव मे काव्य को एक परिभाषा मे बाँधना कठिन है। उसमे मुख्यत. अलौकिक आनन्द का होना आवश्यक है। अलौकिक आनन्द का अर्थ सासारिक आनन्द नही है। जैसे —"यदि किसी के नाम एक लाख की लाटरी आ जाए या किसी के घर पुत्र उत्पन्न हो जाए तो आनन्द तो उसे भी होगा परन्तु वह लौकिक आनन्द है। काव्य के पढने से जो आनन्द उत्पन्न होता है उसे ब्रह्मानन्द-सहोदर कहा गया है। अर्थात् जब एक योगी ब्रह्म का अनुभव करते हुए इसमे लीन हो जाता है, उसे भूख-प्यास कुछ नही सताती तो उसे अलौकिक आनन्द कहते है। यही काव्य के पढ़ने से उत्पन्न होता है। जिस रचना मे अलौकिक आनन्द देने की शक्ति होती है चाहे वह जीवन की समीक्षा हो, प्रकृति का चित्रण हो, उसे काव्य कहते हैं। वैसे काव्य मे निम्नलिखित बातो का होना आवश्यक है .—

(१) हृदय की भावनाओ का होना ।

(२) ललित भावनाओ का होना ।

(३) कलापूर्ण अभिव्यक्ति ।

काव्य के प्रयोजन—

(१) यश-प्राप्ति—काव्य के द्वारा यश की प्राप्ति होती है। कालीदास, कबीर, सूर, तुलसी, पन्त, निराला आदि काव्य के द्वारा ही समाज मे यश प्राप्त कर रहे है।

(२) धन-प्राप्ति—यश के साथ-साथ धन की प्राप्ति भी काव्य से होती है। गग कवि को रहीम ने एक छप्पय पर छत्तीस लाख रुपये दिए। भूषण को शिवाजी ने बहुत धन दिया और आधुनिक युग में लेखक अपनी रचनाओं को लिखकर उनकी बिक्री से धन की प्राप्ति करते है।

(३) व्यवहार ज्ञान की प्राप्ति—काव्य पढने से बहुत सी मनोवैज्ञानिक बातो का पता चलता है और इससे ही पाठक को व्यवहार का ज्ञान हो जाता है।

(४) कल्याण-प्राप्ति—अच्छे काव्य को पढकर समाज के हृदय में पवित्र भावनाएँ जागृत होती है और अपवित्रता नष्ट हो जाती है। यथा—रामायण को पढकर मन मे कल्याण की भावनाएँ उत्पन्न होती है।

(५) धर्म, अर्थ, काम, मोक्ष प्राप्ति—काव्य के द्वारा जीवन की ओर पाठक अग्रसर होता है। अर्थ प्राप्ति ऊपर कही गई है। मन को शान्ति मिलती है इसलिए काम की पूर्ति भी स्पष्ट है। मीरा काव्य के द्वारा ही मुक्त हुई। यही मोक्ष है।

(६) गुरजन आदि को प्रसन्न करना—काव्य के द्वारा देवता आदि की स्तुति करके उन्हें प्रसन्न किया जा सकता है।

(७) कोमल शिक्षा की प्राप्ति—काव्य कान्ता-सम्मत उपदेश देता है अर्थात् काव्य में जो उपदेश दिया जाता है उसका प्रभाव बड़ा गहरा पड़ता है इसलिए काव्य के द्वारा आनन्द के साथ-साथ शिक्षा की प्राप्ति भी होती है।

काव्य-सम्बन्धी विभिन्न मत—काव्य सम्बन्धी विद्वानो के छ मत हैं।

१ रस सम्प्रदाय—इस सम्प्रदाय को भरत मुनि ने चलाया। उन्होंने रस को ही काव्य की आत्मा माना है।

२ अलंकार सम्प्रदाय—इसके प्रधान आचार्य दण्डी, रुद्रट आदि है। इसमें अलंकारो को ही मुख्यता दी गई है अर्थात् अलकारो के विना काव्य का अस्तित्व नही माना।

३ रीति सम्प्रदाय—इस सम्प्रदाय मे आचार्य वामन मुख्य है। विशिष्ट पद रचना को रीति कहते है। ये तीन है :—

(१) वैदर्भी (२) गौणी (३) पाचाली।

इनमें तीन गुण माने गये है—(१) माधुर्य, (२) ओज, (३) प्रसाद।

४ ध्वनि सम्प्रदाय—इसके मुख्य आचार्य अभिनव गुप्त है। व्यग्य अर्थ को ही ध्वनि कहते है।

५ वक्रोक्ति सम्प्रदाय—इस सम्प्रदाय के मुख्य आचार्य कुन्तक है। विदग्ध पुरुषो की वाणी को वक्रोक्ति कहते है।

६. औचित्य सम्प्रदाय—इसे सव आचार्यो ने माना है। परन्तु क्षेमेन्द्र इसमे मुख्य है। इसमे विशेषतया काव्य के औचित्य पक्ष पर जोर अधिक दिया गया है।

ये छ पद्धतियाँ काव्य मे प्रचलित है परन्तु रस को ही काव्य की आत्मा माना गया है और रस-पद्धति मे ही शेप पाँच पद्धतियो का समन्वय हो जाता है।

प्रश्न २—काव्य के भेदो को स्पष्ट करते हुए वताएँ कि सर्वश्रेष्ठ काव्य कौन-सा है।

उत्तर—काव्य के मुख्यत. दो भेद हैं :—

(१) दृश्य काव्य, (२) श्रव्य काव्य।

१ दृश्य काव्य—उसे कहते है जिसका अभिनय हो सके। यथा 'शकुन्तला', 'चन्द्रगुप्त' आदि।

२ श्रव्य काव्य—उसे कहते है जिसके पढने व सुनने से आनन्द की प्राप्ति हो सके। जैसे—साकेत, रामायण आदि।

दृश्य काव्य के भी दो भेद है—(१) रूपक, (२) उपरूपक। रूपक के दस भेद हैं और उपरूपक के सोलह भेद है। परन्तु हिन्दी मे इनका प्रचलन नही है। हिन्दी मे तो रूपक के भेद, नाटक और एकाकी का ही प्रचलन है।

श्रव्य काव्य के तीन भेद है—(१) गद्य, (२) पद्य, (३) चम्पू ।

गद्य—जहाँ पर मात्रा आदि का कोई नियम न हो । विचार के समाप्त होने पर विराम लगा दिया जाए ।

इसके निम्नलिखित भेद है ,—

(१) कहानी, (२) उपन्यास, (३) निवन्ध, (४) जीवनी, (५) आलोचना ।

पद्य—छन्दोवद्ध रचना को पद्य कहते है । अर्थात् जिसमें मात्रा यति और गणो आदि का नियम हो ।

इसके निम्नलिखित भेद है —

१ प्रवन्ध काव्य—उसे कहते है जहाँ कोई कथा पद्य मे शृ खलावद्ध लिखी जाती हो । जैसे —रामचरितमानस, पचवटी । प्रबन्ध काव्य को भी दो भागो मे बाँटा जा सकता है —

(i) महाकाव्य—सम्पूर्ण जीवनी की शृ खला बद्ध पद्यमय रचना को महाकाव्य कहते है । जैसे रामचरितमानस और साकेत ।

(ii) खण्ड काव्य—उसे कहते हैं जिसमे जीवन की किसी एक घटना का वर्णन पद्यमय हो, जैसे पचवटी ।

२ मुक्तक—उस पद्यमय रचना को कहते है जिसकी दूसरे पद्यो के साथ कोई शृ खला न हो, और जो प्रत्येक दृष्टि से अपने मे सम्पूर्ण हो । जैसे कवीर, विहारी के दोहे । मुक्तक के भी दो भेद है —

(i) गेय—जो गाया जा सके । जैसे मीरा और सूर के पद ।

(ii) पाठ्य—जो केवल पढा जा सके । जैसे रहीम, कवीर के दोहे ।

रमणीयता के आधार पर काव्य के भेद—

१ उत्तम काव्य २ मध्यम काव्य ३ अधम काव्य ।

(१) उत्तमकाव्य —उसे कहते है जिसमे व्यग्य अर्थ प्रधान हो । यथा —

"अबला जीवन हाय तुम्हारी यही कहानी ।
आँचल मे है दूध और आँखो मे पानी ॥"

(२) मध्यम काव्य —जिसमे व्यग्य अर्थ चमत्कार पूर्ण तो हो परन्तु प्रधान न हो । इसे गुणीभूतव्यग्य भी कहते हैं । यथा—

"रघुवर विरहानल तपे, सह्य शैल के अन्त।
सुख सो सोये शिशिर में, कपि कोपे हनुमन्त।"

(३) अधम काव्य—उसे कहते है कि जिसमे शब्द या शब्दार्थ मे ही चमत्कार हो। यथा—

"कनक कनक तें सौ गुणी मादकता अधिकाय।
उहि खाये बौराय जग इहि पाये बौराय" ॥

इस प्रकार हम देखते है कि काव्यो के भेदो मे उत्तम काव्य ही सर्वश्रेष्ठ माना जाता है। अपने भावो को वाच्य करना ग्रामीणता है। वास्तव मे देखा जाए तो ससार के सभी महापुरुष और कलाकार अपने भावो को व्यजना शक्ति के द्वारा ही प्रकट करते आये है। क्योकि जहाँ पर व्यग्य अर्थ होगा वही पर चमत्कार होगा और वही रचना अधिक प्रभाव उत्पन्न कर सकेगी। काव्य के सम्पूर्ण गुण व्यग्य अर्थ में ही पाये जाते है। जिस प्रकार सूरदास जी लिखते है कि "निसि दिन बरसत नैन हमारे।" इसी प्रकार प्रसाद, तुलसी, मीरा, महादेवी, जायसी आदि मुख्य कलाकारो के काव्य व्यग्य से परिपूर्ण है। इस विवेचना के पश्चात् हम कहते है कि काव्य मे सर्वश्रेष्ठ स्थान उत्तम काव्य का है।

प्रश्न ३—शब्द शक्ति किसे कहते हैं? उसके भेदो, उपभेदो का लक्षण उदाहरण सहित दीजिए।

उत्तर—किसी शब्द के अर्थ का ज्ञान कराने वाले बुद्धि के व्यापार को "शब्द शक्ति" कहते है। प्रत्येक शब्द का कोई न कोई अर्थ होता है। उस अर्थ का ज्ञान हमे हमारी बुद्धि से होता है। यथा—यदि "गाय" शब्द कहा जाए तो इसका अर्थ सीग, पूँछ आदि रखने वाला पशु विशेष है। यह अर्थ बुद्धि के द्वारा ज्ञात हुआ। इस बुद्धि के कर्म को शब्द शक्ति कहते है।

शब्द शक्ति के तीन मुख्य भेद हैं :—

(१) अभिधा (२) लक्षणा (३) व्यजना।

१ अभिधा—इस शक्ति द्वारा शब्द के उस अर्थ का बोध होता है जो लौकिक व्यवहार मे प्रचलित है और जिसे कोष से जाना जा सकता है।

अभिधा शक्ति द्वारा शब्द का जो अर्थ ग्रहण किया जाता है उसे वाच्यार्थ कहते है। जैसे "कुर्सी" शब्द का अर्थ वैठने का एक विशेष साधन है। जब एक ही शब्द के अनेको अर्थ होते है तो वाक्य मे उस शब्द का अर्थ निम्नलिखित साधनो से जाना जा सकता है— विप्रयोग, सयोग, प्रयोजन, विरोध, साहचर्य, प्रकरण, चिह्न, सन्निधान, सामर्थ्य, देश, काल, औचित्य आदि। "सौरभ" शब्द का अर्थ सुगन्धि और आम है। परन्तु निम्नलिखित पद मे सयोग के कारण सौरभ का अर्थ आम है —

वसन्त ने, सौरभ ने, पराग ने,
प्रदान की थी अति कान्त भाव से।
वसुन्धरा को, पिक को, मिलिन्द को,
मनोज्ञता, मादकता, मदान्धता।"

लक्षणा — वाच्यार्थ के रुक जाने पर उससे सम्बन्ध रखने वाले अन्य अर्थ का वोध कराने वाले वुद्धि के व्यापार को लक्षणा कहते है। यथा "देवदत्त गधा है।" इस वाक्य मे "गधे" का अभिधा के द्वारा निकला हुआ मुख्य अर्थ एक पशु विशेष है। परन्तु वह तो यहाँ लगता नही। क्योकि देवदत्त तो मनुष्य है वह तो गधा नही अर्थात् उसके चार टागें और लम्बे-लम्बे दो कान नही है। फिर इसका अर्थ हमारी वुद्धि और निकालती है। वह "मूर्ख" है। यह मूर्ख अर्थ हमारी वुद्धि की जिस शक्ति से निकला उसे लक्षणा कहते है। लक्षणा द्वारा दूसरा अर्थ जानने के लिए तीन वातें होती है।

(१) मुख्य अर्थ का रुक जाना।

(२) मुख्य अर्थ और लक्ष्य अर्थ का पारस्परिक सम्वन्ध।

(३) रुढि या कोई विशेष प्रयोजन का होना।

लक्षणा के मुख्यत दो भेद है।

(1) रूढा लक्षणा—जहाँ लक्ष्यार्थ की प्रतीति प्रसिद्धि के द्वारा हो। जैसे वह चौकन्ना है इस वाक्य में चौकन्ना शब्द का मुख्य अर्थ चार कानो वाला है। परन्तु यह तो असभव है। फिर लक्ष्यार्थ सावधान है। सावधान अर्थ अब रूढ होचुका है।

(ii) प्रयोजनवती लक्षणा—जहाँ पर लक्ष्यार्थक शब्द किसी विशेष प्रयोजन

के द्वारा वाक्य मे प्रयुक्त हो। यथा—"देवदत्त गधा है।" इस वाक्य मे "गधा" शब्द विशेष प्रयोजन को लेकर प्रयुक्त किया गया है। कहने वाले का आशय मूर्खता की अधिकता बताना है। अत यह प्रयोजनवती लक्षणा है।

लक्षणा के और भी भेद है। विद्यार्थियो की सुविधा के लिए उसका चित्र नीचे दिया जाता है।
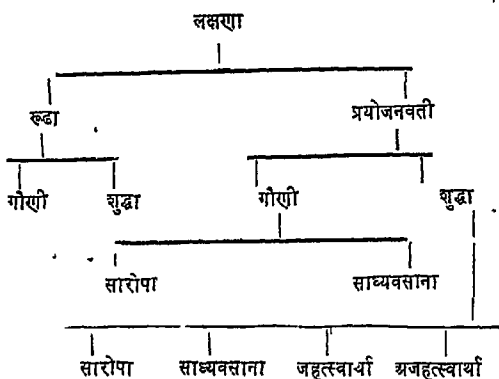
इस प्रकार लक्षणा के आठ भेद हुए। जो निम्नलिखित है—

(१) गौणी रूढा—जिस रूढा मे मुख्यार्थ और लक्ष्यार्थ का सादृश्य सम्बन्ध हो। जैसे "देवदत्त चौकन्ना है"।

(२) शुद्धा रूढा—जिस रूढा मे मुख्यार्थ और लक्ष्यार्थ का सादृश्य सम्बन्ध न हो। जैसे "पजाब देश वीर है।"

(३) सारोपा गौणी प्रयोजनवती—जिस प्रयोजनवती लक्षणा मे सादृश्य सम्बन्ध हो और एक वस्तु मे दूसरी का आरोप हो यथा—"देवदत्त गधा है।"

(४) साध्यवसाना गौणी प्रयोजनवती—जिस प्रयोजनवती लक्षणा मे सादृश्य सम्बन्ध हो और उपमान उपमेय का निगरण कर जाए। जैसे—"अरे गधे कहाँ जाता है।"

(५) सारोपा शुद्धा प्रयोजनवती—जिस प्रयोजनवती लक्षणा में मुख्यार्थ

और लक्ष्यार्थ का सादृश्य से भिन्न सम्बन्ध हो और जिसमे एक वस्तु का दूसरी मे आरोप हो। जैसे "घी ही मेरा जीवन है।"

(६) साध्यवसाना शुद्धा प्रयोजनवती—जिस प्रयोजनवती लक्षणा मे सादृश्य सम्बन्ध से भिन्न सम्बन्ध के साथ-साथ उपमान उपमेय का निगरण कर जाये जैसे—"मेरा जीवन डुल गया।"

(७) जहत्स्वार्था शुद्धा प्रयोजनवती—जिस प्रयोजनवती शुद्धा लक्षणा मे अपना स्वार्थ बिल्कुल न हो।

यथा "गगा पर आश्रम है।"

(८) अजहत्स्वार्था शुद्धा प्रयोजनवती—उस प्रयोजनवती शुद्धा लक्षणा को कहते है जिसमे लाक्षणिक शब्द का निजी स्वार्थ भी हो। जैसे "आम तो आम ही है।"

३ व्यजना —जो शक्ति व्यग्य अर्थ को बताए उसे व्यजना कहते है। व्यग्य अर्थ छिपे हुए अर्थ को कहते हैं। यह प्रसग से ही जाना जा सकता है।

जैसे यदि चार व्यक्ति सैर के लिए जा रहे हो और सूर्य अस्त होने पर उनमे एक यदि यह कहे कि सूर्य डूब गया है तो इसका अर्थ यह हुआ कि अब घर वापिस चलो। यदि चार डाकू कही जगल मे छिपे हो और सूर्य अस्त होने पर एक डाकू दूसरे को कहे कि सूर्य डूब गया है तो इसका अर्थ यही हुआ कि चलो डाका मारें। यह अर्थ व्यजना शक्ति द्वारा निकलता है। व्यजना के मुख्यत दो भेद है —

(१) शाब्दी व्यजना —जहाँ व्यग्य अर्थ विशेष शब्दो मे पाया जाय वहाँ शाब्दी व्यजना होती है।

यथा .—"रहिमन पानी राखिए, बिन पानी सब सून।
पानी गए न ऊबरे, मोती मानस चून॥"

(२) आर्थी व्यजना .—जहाँ व्यग अर्थ विशेष शब्दो मे न होकर अर्थ में पाया जाए वहाँ आर्थी व्यजना होती है।

जैसे .—अबला जीवन हाय तुम्हारी यही कहानी।
आँचल में है दूध और आँखो में पानी।"

आर्थी व्यजना के भी दो भेद है :—

(१) अभिधामूलक व्यजना (२) लक्षणामूलक व्यजना।

प्रश्न ४—साहित्य का कला और विज्ञान से अन्तर स्पष्ट कीजिए।

उत्तर —साहित्य की परिभाषा हमारे यहाँ निम्नलिखित प्रकार से की गई है :—

"हितेन सह वर्तते, इति सहित, सहितस्य भावः साहित्यम्।"

इस प्रकार कला की परिभाषा भी निम्नलिखित है —

कलयति स्वस्वरूपावेशेन तत्तद्वस्तु परिच्छिनत्ति इति कलाव्यापार.।"

भारतीय दृष्टिकोण से कला और साहित्य को भिन्न-भिन्न माना गया है। हमारे विद्वानो ने दोनो का अन्तर दिखाते हुए यह स्पष्ट किया है कि साहित्य भावना-प्रधान होता है। इसका अर्थ यह नही है कि साहित्य में कला पक्ष नही होता। परन्तु इतना ही है कि साहित्य के प्राण भाव है। कला को हमारे विद्वानो ने अभिव्यक्ति-प्रधान माना है। इसका तात्पर्य भी यही है कि भाव गौण होते है और अभिव्यक्ति मुख्य होती है। अनुभूति मे आत्मिक सुख स्थायी होता है। इसके विपरीत अभिव्यक्ति मे आत्मिक सुख क्षणिक होता है। भारतीय विद्वान् भावपक्ष को कलापक्ष से बहुत उच्च मानते है। वास्तव मे देखा जाए तो पूर्वी और पश्चिमी दृष्टिकोण मे जो मूल अन्तर है वही यहाँ भी पाया जाता है। भारतीय विद्वानो ने आत्म-तत्त्व को प्रधानता दी है और पश्चिमी विद्वानो ने भौतिकता को अधिक महत्ता दी है। पश्चिमी विद्वान् 'हेगल' ने कला को साहित्य के अन्तर्गत ही माना है। परन्तु भारतीय विद्वान् इससे सहमत नही। वे तो साहित्य को "सत्य शिव सुन्दरम्" तीनो का समन्वय मानते है। और कला को केवल सुन्दरम् तक ही सीमित रखते है। इससे यह स्पष्ट हो जाता है कि साहित्य और कला मे अन्तर है।

साहित्य और विज्ञान—साहित्य और विज्ञान मे भी पर्याप्त अन्तर है। विज्ञान का जन्म बुद्धि तत्त्व से होता है और वैज्ञानिक प्रत्येक वस्तु का विश्लेषण करके उसे जानना चाहता है। अर्थात् वह किसी के गुण, दुर्गुण, रूप आकार आदि को देख कर तुलनात्मक दृष्टिकोण से उसका वर्गीकरण करता है और उसका अध्ययन करता है। परन्तु साहित्य मे भावना जगत् और कल्पना जगत् विराजमान है। एक वैज्ञानिक जब किसी पुष्प को देखता है तो वह उसके रगो का वर्णन करता है। उसकी सुगन्ध से वातावरण शुभ्र हुआ

मानता है और यह बता सकता है कि इस पुष्प से क्या-क्या वस्तुए बन सकती हैं। परन्तु जब एक साहित्यकार उस पुष्प को देखता है तो वह उसमे किसी की मुस्कराहट को देखता है। वास्तव मे देखा जाए तो वैज्ञानिक किसी वस्तु के बाह्य रूप तक सीमित रहता है। परन्तु साहित्यकार उस वस्तु के अन्तस्तल तक पहुँच जाता है। साहित्य मे भाव और कल्पना पक्ष की प्रधानता है। और विज्ञान मे इसका नितान्त अभाव है। विज्ञान मे भौतिक आनन्द है तो साहित्य मे आत्मा का विस्तार होने के कारण ब्रह्मानन्द-सहोदर रस प्राप्त होता है। साहित्यकार की कल्पना वैज्ञानिक के लिए प्रेरणा है। आकाश मे पक्षियो को उडते देखकर साहित्यकार ने कल्पना की थी कि आज मेरे भी पख होते तो मै भी आकाश मे उड जाता। इस भावना से प्रेरणा प्राप्त करके वैज्ञानिक अनुसन्धान के लिए डट गया, और उसने वायुयान का निर्माण कर दिया। इससे यह स्पष्ट होता है कि साहित्य का विज्ञान से अन्तर होते हुए भी पारस्परिक सम्बन्ध है।

प्रश्न ४—रस की परिभाषा करते हुए उसके अङ्गों का परिचय दीजिए।

उत्तर—परिभाषा—काव्य के पढने, सुनने और देखने से सहृदय सामाजिक के मन मे अलौकिक आनन्द का जो अनुभव होता है उसे ही रस कहते है। वास्तव मे देखा जाए तो शास्त्रो मे रस को बडा महत्त्वपूर्ण स्थान दिया है। इसे ही काव्य की आत्मा माना है। काव्य की परिभाषा करते हुए यह स्पष्ट होता है कि रस से परिपूर्ण वाक्य ही काव्य है। रसहीन रचना को काव्य कहा ही नही जाता। क्योकि जिस रचना मे समाज की कोमल भावनाओ को स्पन्दित करने की शक्ति होती है उसे ही काव्य कहते है। रस का काव्य से अटूट सम्बन्ध है। भरतमुनि ने रस की निष्पत्ति के बारे मे कहा है कि जब कोई स्थायी भाव, विभाव, अनुभाव और सचारी भावों से परिपुष्ट हो जाए, तो उसे रस कहते हैं।

यथा— "विभावानुभावव्यभिचारिसंयोगाद् रसनिष्पत्ति.।"

स्थायी भाव—हमारे विद्वानो ने कुछ ऐसे भावो की खोज की है जो प्रत्येक मनुष्य के हृदय मे स्थायी रूप से विराजमान होते है अर्थात् ये भाव सब में होते है। ये भाव सुप्तावस्था में होते है और समय पाकर ये जागृत होते

रहते हैं। ये भाव दस है—(१) रति, (२) शोक, (३) हास, (४) क्रोध, (५) उत्साह, (६) भय, (७) जुगुप्सा, (८) विस्मय, (९) निर्वेद, (१०) वात्सल्य।

विभाव—जो स्थायी भाव को जगा दे और उसे भडका दे उसे विभाव कहते हैं। इसके निम्नलिखित भेद है—

१ आलम्बन विभाव—उसे कहते हैं जो स्थायी भाव को जगाने का कारण होता है। जैसे—सामाजिक के हृदय मे रग-मच पर आया हुआ विदूषक हास का भाव जागृत कर देता है। इसलिए विदूषक आलम्बन है।

२ उद्दीपन विभाव—जो स्थायी भाव के जागृत होने पर उसे भड़का दे, उसे उद्दीपन कहते हैं।

आश्रय विभाव—उसे कहते हैं जिसके हृदय मे स्थायी भाव जागृत हो रहा हो। जैसे—मा। परन्तु लक्षण ग्रन्थो मे आलम्बन और उद्दीपन का ही विशेष वर्णन है, आश्रय का नही।

अनुभाव—जिन चेष्टाओ के द्वारा सामाजिक को यह ज्ञात हो कि आश्रय मे कोई स्थायी भाव जागृत हो कर भडक चुका है, उन्हे अनुभाव कहते हैं। अर्थात् आश्रय की समस्त चेष्टाए इसके अन्तर्गत आएँगी। यदि आश्रय को आलम्बन के प्रति क्रोध हुआ तो उसका मुख लाल हो जाएगा। होठ फडकने लगेंगे। मुह से उग्र वचन निकलेंगे। इस प्रकार ये चेष्टाएँ प्रत्येक भाव मे भिन्न-भिन्न होती है। अनुभाव के चार भेद है —

(१) कायिक, (२) वाचिक, (३) आहार्य, (४) सात्विक।

(१) कायिक अनुभाव—उसे कहते है जो शारीरिक चेष्टाओ द्वारा प्रगट हो।

(२) वाचिक अनुभाव—जो वाणी द्वारा प्रगट हो, उन्हें वाचिक अनुभाव कहते हैं।

(३) आहार्य अनुभाव—कृत्रिम वेष रचना को आहार्य अनुभाव कहते हैं।

(४) सात्विक अनुभाव—ये आश्रय के शरीर के वे विकार या व्यापार है जो उसके शरीर मे भाव की उत्पत्ति के फलस्वरूप आप से आप प्रकट होते हैं। इसके आठ भेद हैं।—

(१) स्तंभ, (२) स्वेद, (३) रोमांच, (४) वेपथु, (५) स्वर भंग, (६) विवर्णता, (७) अश्रु, (८) पुलक।

संचारी भाव —रस की परिपुष्टि होने तक जो भाव बीच-बीच में बिजली की तरह अपनी झलक दिखा कर लुप्त हो जायें उन्हें संचारीभाव कहते हैं। इन्हें व्यभिचारी भाव भी कहते हैं। क्योंकि वे सदा नहीं रहते। ये तो स्थायी भाव के विकास का परिचय देते हैं। जैसे —

किसी व्यक्ति के हृदय में रति स्थायी के उदय होने पर कभी प्रसन्नता आयेगी, कभी झुन्झलाहट, कभी आशा और कभी पागलपन। वैसे तो ये असंख्य माने गये हैं। परन्तु साहित्यदर्पण के अनुसार ये निम्नलिखित तेंतीस माने गये हैं —

१ निर्वेद
२ ग्लानि
३ शंका
४ असूया
५ मद
६ श्रम
७ आलस्य
८ दैन्य
९ चिन्ता
१० मोह
११ स्मृति
१२ धृति
१३ व्रीड़ा
१४ चपलता
१५ हर्ष
१६ आवेग
१७ जड़ता
१८ गर्व
१९ विषाद
२० औत्सुक्य
२१ निद्रा
२२ अपस्मार
२३ स्वप्न
२४ विबोध
२५ अमर्ष
२६ अवहित्था
२७ उग्रता
२८ मति
२९ व्याधि
३०. उन्माद
३१ त्रास
३२ वितर्क-
३३ मरण

प्रत्येक स्थायी भाव से एक रस बनता है। इसलिए रस संख्या में दस है, जो निम्नलिखित है —

	स्थायी भाव	रस
१.	रति (प्रेम)	शृंगार
२.	हास	हास्य
३.	शोक	करुण
४.	क्रोध	रौद्र
५.	उत्साह	वीर
६	जुगुप्सा (घृणा)	बीभत्स
७.	भय	भयानक
८	विस्मय	अद्भुत
९	निर्वेद (ससार की नश्वरता के ज्ञान से उत्पन्न भाव)	शात
१०	वात्सल्य (बच्चो के प्रति प्रेम)	वत्सल

प्रश्न ६—रसों के लक्षण उदाहरण सहित घटा कर दिखाओ।

उत्तर—

शृंगार रस

इसके दो भेद होते है—(१) सयोग शृंगार (२) वियोग शृंगार।

स्थायीभाव—रति। आलम्बन—नायक-नायिका। उद्दीपन—नायिका आदि की चेष्टाएँ या वाह्य वातावरण। अनुभाव—नायक,-नायिका के उद्गार, प्रेम से देखना, मुस्कराना आदि। सचारी भाव—स्मृति, चिन्ता, लज्जा।

सयोग शृंगार का उदाहरण :—

"सोई सविध सकी न करि सफल मनोरथ मजु।
निरखति कछु मीचे नयन, प्यारी पिय मुख कजु॥

वियोग शृंगार का उदाहरण—

'देखत मिसु मृग विहग तरु, फिरै बहोरि-बहोरि।
निरखि-निरखि रघुबीर छवि, वाढी प्रीति न थोरि॥"

हास्य रस

लक्षण—जब हास स्थायी भाव, विभाव, अनुभाव और सञ्चारी भाव

से परिपुष्ट हो जाये तो हास्य रस बन जाता है।

उदाहरण—"गोपी, गुपालकौं बालिका कै वृषभानु के भौन सुभाइ गईं।
'उजियारे' विलोकि-विलोकि तहाँ हरि राधिका पास लिवाइ गईं।
उठी हेली मिली या सहेली सो यो कहि कठ-से-कठ लगाइ गईं।
भरि भेंटत श्रक निसंक उन्हें वे मयकमुखी मुसकाइ गईं।

स्थायी भाव—हास, आलम्बन—कृष्ण, उद्दीपन—विचित्र वेशभूषा।
अनुभाव—मुस्कराना, सचारी भाव—हर्ष आदि।

करुण रस

लक्षण—जब शोक स्थायी भाव, विभाव, अनुभाव और सञ्चारी भाव से परिपुष्ट हो जाता है तो उसे करुण रस कहते है।

उदाहरण—सब बन्धन को सोच तजि, तजि गुरुकुल को नेह।
हा सुशील सुत! किमि कियो, अनत लोक तैं गेह॥

आलम्बन—मृत पुत्र। उद्दीपन—बाधवों का दर्शन आदि।
अनुभाव—रोदन। हा पद द्वारा सूचित दैन्य सचारी भाव।
स्थायीभाव—शोक।

रौद्र रस

लक्षण—जब क्रोध स्थायी भाव, विभाव, अनुभाव और सचारी भावो से परिपुष्ट हो जाये तो रौद्र रस बन जाता है।

उदाहरण—'अधर चव्व गहि गव्व अति, गहि रावण को काल।
दृग कराल मुख लाल करि, दौरेउ दशरथ लाल॥'

आलम्बन—अपराधी रावण। अनुभाव—ओठ चबाना, आँखो की भयानकता और मुख की लाली। गर्व, आवेग आदि सचारी भाव। स्थायी-भाव—क्रोध।

वीर रस

लक्षण—जब उत्साह स्थायी भाव, विभाव, अनुभाव और सञ्चारी भावो से परिपुष्ट हो जाए तो उसे वीर रस कहते है। जिसके चार भेद है। (१) युद्धवीर, (२) दानवीर, (३) दयावीर, (४) धर्मवीर। यहां केवल युद्धवीर

का उदाहरण है—

उदाहरण—"धनुष चढावत भे तबहिं, लखि रिपुकृत अपमान।
हुलसि गात रघुनाथ को, बखतर में न समान॥"

शत्रु आलम्बन है। उसके द्वारा किया हुआ अपमान उद्दीपन है। धनुष चढाना, शरीर का हुलसना आदि अनुभाव हैं। गर्व, अमर्ष आदि संचारी भाव और स्थायी भाव उत्साह है।

भयानक रस

लक्षण—जब भय स्थायी भाव, विभाव, अनुभाव और संचारी भाव से परिपुष्ट हो जाए तो वह भयानक रस बन जाता है।

उदाहरण—"नभ ते झपटत बाज लखि, भूल्यो सकल प्रपञ्च।
कम्पित तन व्याकुल नयन लावक हिल्यो न रंच॥

बाज आलम्बन है। उसका झपटना उद्दीपन है। शरीर कांपना, नेत्रों की व्याकुलता अनुभाव है। दैन्य संचारी भाव और भय स्थायी भाव है।

बीभत्स रस

लक्षण—जब घृणा स्थायी भाव, विभाव अनुभाव और संचारी भावों से परिपुष्ट हो जाए तो बीभत्स रस बन जाता है।

उदाहरण—"फाडि नखन शव आंतडिन, रुधिर मवाद निकारि।
लेपति अपने मुखन पै, हरसि प्रेत गण नारि॥"

इस पद में मुर्दे आलम्बन हैं। आंतड़ियों का चीरना उद्दीपन, आंख मीचना, नाक सिकोडना आदि अनुभाव है। आवेग संचारी भाव, घृणा स्थायी भाव है।

अद्भुत रस

लक्षण—जब विस्मय स्थायी भाव, विभाव, अनुभाव और संचारी भावों से परिपुष्ट हो जाए तो उसे अद्भुत रस कहते हैं।

उदाहरण—"अखिल भुवन चर अचर सब, हरि मुख में लखि मातु।
चकित भई गद्‌गद् वचन, विकसित दृग पुलकातु॥"

श्री कृष्ण का मुख आलम्बन है। मुख में भुवनों का दिखाई देना उद्दीपन है।

आँखो का खिल जाना, गद्गद् वचन तथा चकित होना अनुभाव है। त्रास सचारी भाव और विस्मय स्थायी भाव है।

शान्त रस

लक्षण—जब निर्वेद स्थायी भाव, विभाव, अनुभाव और सचारी भावो से परिपुष्ट हो जाए तो शान्त रस बन जाता है।

उदाहरण—क्या भाग रहा हूँ भार देख, तू मेरी ओर निहार देख।
मैं त्याग चला निस्सार देख, अटकेगा मेरा कौन काम ॥
ओ क्षण भंगुर भव राम राम ॥

इस पद में ससार की असारता आलम्बन, उसकी क्षणभगुरता उद्दीपन ससार को छोडकर जाना अनुभाव, मति-उद्वेग सचारी भाव है। स्थायी भाव निर्वेद है।

वत्सल रस

लक्षण—जब वात्सल्य भाव, विभाव अनुभाव और सचारी भावो से परिपुष्ट हो जाए तो वत्सल रस बन जाता है।

उदाहरण—"किलक अरे मैं नेक निहारूँ, इन दान्तो पर मोती वारूँ।
पानी भर आया फूलो के मुंह में आज सवेरे
हां गोपा का दूध जमा है राहुल मुख में तेरे।
लटपट चरण चाल अटपट सी मन भाई है मेरे
तू मेरी अंगुली धर अथवा मैं तेरा कर धारूँ ॥"

इस पद मे बच्चा राहुल आलम्बन है। उसकी अटपटी चाल लटपटे चरण उद्दीपन है। गोपा का यह कहना कि तू मेरी उगली पकड अथवा मै तेरा कर पकडू तथा प्यार से देखना अनुभाव है। हर्ष आदि सचारी भाव है। स्थायी-भाव वात्सल्य है।

प्रश्न ७—काव्य मे गुण और रीति को स्पष्ट करो तथा बताओ कि कौन-कौन से दोष काव्य में पाये जाते है?

उत्तर—रीति का अर्थ विशेष प्रकार की शब्द-योजना है। जिस से साहित्य को प्रभावशाली बनाया जाता है। रीति सम्प्रदाय को मानने वाले

विद्वानो ने इसे काव्य की आत्मा कहा है और गुण रीतियो की विशेषता है। वास्तव मे देखा जाए तो इसमें विशेष प्रकार की वर्ण-योजना से कुछ गुण उत्पन्न हो जाते है। आचार्य वामन ने तीन रीतियाँ मानी है—(१) वैदर्भी रीति, (२) गौडी रीति, (३) पाचाली रीति।

कई आचार्यों ने दस गुण माने है। परन्तु मुख्य तीन गुण माने गए है, जो कि रीति से ही बने है। इनका वर्णन निम्नलिखित है :—

१ माधुर्य गुण—यह वैदर्भी रीति से बना है। इसमे ट् ठ् ड् ढ् को छोड़ कर र, ण और अनुस्वार युक्त शब्दो के जोड से रचना की जाती है। यह शृगार, शान्त आदि रसो के लिए प्रयोग मे लाया जाता है।

जैसे— चारु चन्द्र की चंचल किरणें
खेल रही है जल थल में।
स्वच्छ चांदनी बिछी हुई है
अवनि और अम्बर तल में।
पुलक प्रकट करती है धरती
हरित तृणों की नोको से।
मानों झूम रहे हैं तरु भी
मन्द पवन के झोंको से।

२ ओज गुण—यह गौडी रीति से बनता है। इसमे ट् ठ् ड् ढ् वर्णों की अधिकता होती है। इसमे अधिक लम्बे-लम्बे समास होते है। तथा वर्ग के पहले चारो अक्षरो के मेल से बने शब्द र् श् ष् के सयोग से बनते है। वीर, रौद्र आदि रसो मे इसे प्रयुक्त किया जाता है।

जैसे —गतबल खानदलेल हुव खान बहादुर मुद्ध।
सिव सरजा सलहेरि ढिग कुद्धद्धरि करि जुद्ध।

३ प्रसाद गुण—पाचाली रीति से प्रसाद गुण बनता है। इसको सरलता से समझा और पढा जा सकता है। इसमे लम्बे-लम्बे समास नही होते और यह सब रसो मे प्रयुक्त हो सकता है। जितना कि किसी रचना मे प्रसाद गुण होता है उतनी ही वह रचना हृदय पर प्रभाव डालने वाली होती है। जैसे—

"अबला जीवन हाय तुम्हारी यही कहानी।
आँचल मे है दूध और आंखो मे पानी ॥"

काव्य के दोष

दोष काव्य की सुन्दरता को नष्ट करने वाले हैं। जिस प्रकार ससार मे रहने वाले प्राणियो मे गुणो के होते हुए दोष भी होते है, ठीक इसी प्रकार कविता मे उचित गुण होने पर भी कई प्रकार के दोष होते है। वैसे तो दोष अनेक हैं परन्तु यहाँ पर केवल तीन प्रकार के दोष दिए जा रहे है—

अर्थगत दोष

१ क्लिष्टत्व—जिस कविता मे ऐसे शब्दो का प्रयोग किया जाए जिससे अर्थ का ज्ञान बडा कठिन हो अर्थात् कोई पाठक उसे सरलता से समझ न सके उसे क्लिष्टत्व दोष कहते हैं। सूरदास जी के दृष्टकूट पद तथा कबीर दास जी की उलटवासियाँ इसके अन्तर्गत आती हैं। यथा—

वेद, ग्रह, नछत्र, जोरि के, अर्ध करें, हम खाहिं।'

इस पद मे गोपियाँ कृष्ण के विरह मे तडप रही हैं और वे कहती है कि अब हमे जहर खाने से कौन रोक सकता है परन्तु यह अर्थ आसानी से नही निकलता। यथा वेद का अर्थ ४, ग्रह का अर्थ ९, नक्षत्र २७ जोड ४० इसका आधा बीस हुआ जिसे बिगाड कर विस बना दिया गया है। इस प्रकार इसमे क्लिष्टता आ गई है।

२ अप्रयुक्त—जब किसी शब्द को ऐसे अर्थ मे प्रयुक्त किया जाए जिसका प्रयोग लोक-व्यवहार मे न हो, वहाँ यह दोष होता है।

जैसे—"नभ मधि अध ऊरध डबे मनहुं रुधिर हजार।"

इस पक्ति मे रुधिर शब्द का प्रचलित अर्थ रक्त नही- अपितु अप्रचलित अर्थ मगल लिया गया है जो कि यहाँ पर ठीक नही जँचता। अत यह अप्रयुक्त दोष है।

३. नेयार्थ —किसी उक्ति को चमत्कार के लिए प्रयुक्त किया जाय परन्तु उससे भद्दापन आ जाए उसे नेयार्थ दोष कहते है।

यथा—"तेरे मुख ने चाँद को दई चपेट लगाय।"

— इस पक्ति का कहने का तात्पर्य तो यह है कि नायिका ने अपने मुख की सुन्दरता से चन्द्रमा को भी जीत लिया है। परन्तु 'चपेट लगाना' भद्दा है।

४ सन्दिग्ध—जहाँ पर कवि ऐसे शब्द का प्रयोग करे जिसके दो अर्थ हो और पाठक को कवि के अभिप्राय का निश्चय न हो सके। यथा—"इस वन्द्य पर करिए कृपा।" इसमे वन्द्य शब्द के दो अर्थ है। (१) वन्दना के योग्य, (२) वन्दी। यह यहाँ स्पष्ट नही होता कि लेखक क्या कहना चाहता है। इसलिए यह सन्दिग्ध दोष हुआ।

शब्द-दोष

१ श्रुतिकटु—कोमल रसो के वर्णन में कठोर वर्णों के प्रयोग से श्रुतिकटु दोष आ जाता है। जैसे—

"देखत कछु कौतिक इतै, देखौ नेकु विचार।
कब को इक टक डटि रहै टटिया अंगुरिन डारि॥"

शृंगार रस के इस वर्णन मे टकार अक्षर का प्रयोग श्रुति कटु है।

२ असमर्थ—जब किसी शब्द का ऐसे अर्थ मे प्रयोग किया जाए जिससे अभीष्ट अर्थ का ज्ञान न हो। यथा—

"करत कृशोदरी कुञ्ज हनन।"

इसमे हनन शब्द जाने के लिए प्रयुक्त हुआ है परन्तु यह असमर्थ शब्द-दोष है।

३ ग्राम्यत्व—ग्राम्यत्व दोष उसे कहते है जब किसी कविता मे ग्रामीण शब्द आ जाए, जो साहित्यिक न हो। जैसे—

"भरि ताम्बूल गल्ल में बैठी नायिका आय।"

इसमे गल्ल शब्द ग्रामीण है।

४. निरर्थक—जहाँ पर पाद की पूर्ति के लिए ऐसे शब्द का प्रयोग किया जाये जिसका वहाँ कोई अर्थ न हो, उसे निरर्थक दोष कहते है। यथा—

"वचन की चातुरी देहु तथा तुम ग्यान।"

इसमें 'तथा' शब्द का कोई अर्थ नही।

रस-दोष

(१) किसी पद्य में वर्णित रस, स्थायी भाव, सचारी भावो का नाम लेना भावाभिव्यक्ति दोष माना जाता है। जैसे—

"मानों तरवार वीर-रस ही उघारी है।"

यहाँ वीर रस का नाम लेने से दोष आ गया है

(२) जहाँ विभाव, अनुभाव की कष्टजन्य कल्पना हो वहाँ भी रस-दोष होता है। यथा—

"चहति न रति यह विगतमति चितहु न कित ठहराय।"

(३) जहाँ किसी रस के वर्णन मे विरोधी रस की सामग्री भी आ जाये। जैसे—करुण रस के वर्णन मे हास्य रस का वर्णन।

इसी प्रकार १ अकाण्ड-कथन, २ प्रकृति-विपर्यय, ३. वर्णाश्रम-विरुद्ध वर्णन करने मे भी रसगत दोष माना गया है।

प्रश्न ८—अलकार का लक्षण देते हुए इसकी उपयोगिता बताएँ तथा काव्य में अलकारो का स्थान निर्धारित कीजिए।

उत्तर—अलकार शब्द का अर्थ अलकृत करना है। जिन साधनो के द्वारा किसी वस्तु को विभूषित किया जाए अर्थात् सजाया जाय उन्हे अलकार कहते है। जिस प्रकार स्त्री को सजाने के लिए भिन्न-भिन्न गहनो की आवश्यकता होती है, ठीक उसी प्रकार कविता-कामिनी को सजाने के लिए भी अलकारो की आवश्यकता होती है। भिन्न-भिन्न आचार्यों ने इसकी परिभाषा भिन्न-भिन्न प्रकार से की है। दण्डी ने काव्य के शोभाकारक धर्मों को, कुन्तक ने वक्रोक्ति को, रुद्रट ने वर्णन के विशेष प्रकार को, वामन ने भूषित करने वाले को अलकार माना है। वास्तव में देखा जाए तो अलकार कहने के ऐसे ढग को कहते है जिससे दूसरा प्रभावित हो सके।

अलकार का काव्य में प्रयोग प्रभाव उत्पादन करने के लिए किया जाता है। यदि कोई व्यक्ति घर मे आए तो उसे बैठने के लिए सीधा भी कह सकते है कि "आ बैठ"। परन्तु उसपर इसका प्रभाव अच्छा नही पडेगा। यदि इसी बात को अलकृत भाषा मे यो कहा जाऐ कि "आइए,

पधारिये, इस आसन को सुशोभित कीजिए" तो आगन्तुक निज को सम्मानित समझेगा। ससार मे प्रत्येक व्यक्ति यह चाहता है कि वह दूसरो पर अपना प्रभाव डाले। शिष्ट-मण्डल मे यदि अपनी बात को विभूषित करके कोई व्यक्ति नही कहता तो असभ्य समझा जाता है और जो सजाकर कहे वही सभ्य। इसलिए यदि हम यो कहे कि भाषा मे अलकार सभ्यता की कसौटी है तो इसमें तनिक भी अतिशयोक्ति नही है। साहित्य मे कल्पना तत्व का सम्बन्ध अलकार से ही है। यदि कोई कलाकार इसका उपयोग नही करता तो उसकी रचना मे वह चमत्कार नही आ सकता। जितनी जिसकी कल्पना उच्च होगी उतनी ही वह प्रभावोत्पादक होगी।

काव्य मे अलकारो का महत्त्वपूर्ण स्थान है। आचार्य केशव ने अलकारो को अधिक महत्त्व दिया है। वे लिखते है —

"जदपि सुजाति सुलच्छनि सरस सुवर्ण सुवृत्त।
भूषण बिनु न बिराजई, कविता वनिता मित्त ॥"

अर्थात् आचार्य केशव ने कहा है कि चाहे कविता रस से परिपूर्ण हो, अच्छे विषय वाली हो तो भी अलकारो के बिना उसका कोई महत्त्व नही। इसके विपरीत कविवर 'विहारी' अलकारो को "दर्पण के से मोर्चे" कहते है। वह तो शीशे मे लगे हुए जग से अलकारो की तुलना करते है। यही नही, उन्होने अलकारो को पायदान तक कह दिया है। वे लिखते है —

दृग पग पोंछन के लिए, भूषण पायंदाज।

वास्तव मे देखा जाय तो काव्य की आत्मा रस या भाव है, अलकार नही। जिस प्रकार यदि किसी स्त्री मे प्राण न हो और उसे अलकारो से सजा दिया जाए तो वह किसी को भी आकर्षित नही करेगी। ठीक इसी प्रकार काव्य में भावो का गला घोटकर उसे अलकारो से सजाना व्यर्थ है। आचार्य केशव ने कई स्थानो पर ऐसा किया है। उन्होने अलकारो के चक्कर मे पड़ते हुए राम को उल्लू से भी उपमा दे दी है। यथा "वासर की सम्पदा उल्लूक ज्यों न चितवत।" और उन्होने राम, सीता और लक्ष्मण की सिर झुका कर जाते हुए ठग से उपमा दी है। ऐसी उपमाओ का कोई महत्त्व नही जो भावनाओ पर कुठाराघात करें। किसी को यदि यह कह दिया जाये कि

तुम तो कुत्ते की तरह वफादार हो तो सुनने वाले के मन पर उलटा ही प्रभाव पडेगा। इससे यह सिद्ध होता है कि काव्य की आत्मा भाव या रस है, अलकार नही। वैसे तो अग्रेजी में भी कहा गया है, "Beauty needs no ornaments" परन्तु फिर भी यदि स्वाभाविक रूप से अलंकारो का प्रयोग किया जाए तो सौन्दर्य को चार चाँद लग जाते है। अलंकारो की अधिकता भी भाव-सौन्दर्य को नष्ट कर देती है। जिस प्रकार किसी रमणी को अलकारो से लाद देने पर उसका सौन्दर्य नष्ट हो जाता है। कहा भी है, "वह गहना क्या जो अगो को फाडे।" ठीक इसी प्रकार कविता में भी अलकारो की बहुलता हानिकारक है। रीति काल के कवि देव बिहारी से इसीलिए पिछड जाते है कि उन्होने अपने काव्य मे यत्र-तत्र अनुप्रासो को घसीटते हुए भावो की भी उपेक्षा कर दी है और अलकारो का इतनी अधिकता से प्रयोग किया है कि काव्य-सौन्दर्य नष्ट हो गया है। इससे यह स्पष्ट होता है कि अलकार कविता-कामिनी के सौन्दर्य को विकसित करने वाले है, उसके प्राण नही है और वह भी तब जबकि अलकार स्वाभाविक रूप मे हो।

प्रश्न ६—अलकारो के मुख्य-मुख्य भेद बताते हुए उदाहरणों द्वारा अपना उत्तर स्पष्ट कीजिए।

उत्तर—पिछले प्रश्न मे हम अलकारो का लक्षण और उसकी उपयोगिता देख चुके हैं। अलकारो के मुख्यत तीन भेद है :—

1 शब्दालंकार—जब किसी पद का सौन्दर्य उसमें वर्णित किन्ही दो शब्दो पर आधारित हो तो उसे शब्दालकार कहते है। यदि उन शब्दो के समानार्थक दूसरे शब्द उनकी जगह रख दिये जायें तो चमत्कार लुप्त हो जाता है। जैसे—

"कनक कनक ते सौ गुनी, मादकता अधिकाय।
उहि खाय बौराय जग, इहि पाये बौराय॥"

इसमे चमत्कार 'कनक' शब्द में है। यदि इसके स्थान पर समानार्थक दूसरा शब्द रख दिया जाय तो चमत्कार लुप्त हो जाता है।

२. अर्थालकार—जब चमत्कार अर्थ में ही हो, शब्द विशेष में न हो तो अर्थालकार होता है। इसमे किसी शब्द के स्थान पर उसका समानार्थक शब्द

रख देने से चमत्कार समाप्त नही होता। अर्थालंकार के कई भेद हैं —

(१) साम्यमूलक अलकार—उन्हे कहते हैं, जहाँ दो वस्तुओ में समानता दिखाई जाये। जैसे उपमा, रूपक, उत्प्रेक्षा आदि।

(२) विरोधमूलक अलंकार—उन्हे कहते हैं जहाँ दो विरोधी वस्तुओ का वर्णन किया जाये। जैसे असगति, विरोधाभास, विभावना आदि।

(३) शृंखलामूलक अलकार—उन्हें कहते हैं जहाँ पर वस्तुओ का वर्णन क्रम से हो। जैसे सार, एकावली और कारणमाला आदि।

(४) अन्यसंसर्गमूलक अलकार—उन्हे कहते हैं कि जिनमे दूसरी वस्तुओ के ससर्ग से किसी वस्तु के चमत्कार का वर्णन हो। जैसे यथासख्य, काव्यलिग आदि।

(५) गूढार्थप्रतीतिमूलक अलकार—उन्हें कहते हैं जहाँ गूढ अर्थों की प्रतीति कराई जाये। जैसे व्याजोक्ति, स्वभावोक्ति आदि।

३ उभयालकार—जब किसी एक पद मे शब्दालकार और अर्थालंकार दोनो आ जायँ तो उसे उभयालकार कहते हैं।

शब्दालंकार

"अनुप्रास"

लक्षण—स्वरो की विषमता होने पर भी जहाँ व्यजनो की बार रसानुकूल आवृत्ति हो, उसे अनुप्रास अलकार कहते है।

उदाहरण—क्या आर्य वीर विपक्ष-वैभव देख कर डरते कहीं ?

इस वाक्य मे व व्यजन की आवृति हुई है, इसलिए यह अनुप्रास अलकार है।

(१) छेकानुप्रास—छेकानुप्रास मे एक या अनेक वर्णों की एक ही बार आवृत्ति होती है।

उदाहरण—"जाती जहाँ तक दृष्टि थी मिलता न उसका छोर था।"

इस वाक्य मे "जाती", 'जहाँ' में 'ज' की केवल एक बार आवृति हुई है।

(२) वृत्त्यनुप्रास—लक्षण—जहाँ एक या अनेक वर्णो की एक से अधिक बार आवृत्ति हो उसे वृत्त्यनुप्रास कहते है।

उदाहरण—"चारु चन्द्र की चचल किरणें खेल रही थी जलथल मे।"

इस वाक्य मे "च" व्यजन की आवृति एक से अधिक बार हुई है इसलिए यह वृत्यनुप्रास अलकार है।

लाटानुप्रास

लक्षण—जहाँ समानार्थक शब्दो अथवा वाक्यो की आवृत्ति हो, परन्तु अन्वय करने से अर्थ बदल जाय, वहाँ 'लाटानुप्रास' होता है।

उदाहरण—पराधीन जो जन, नहीं स्वर्ग नरक ता हेतु।
पराधीन जो जन नहीं, स्वर्ग नरक ता हेतु ॥

यहाँ समान अर्थ वाले शब्दो का दो बार प्रयोग हुआ है। किन्तु 'नहीं' का स्वर्ग के साथ सम्बन्ध करने पर अर्थ निकलता है जो मनुष्य पराधीन है, उसके लिए स्वर्ग नरक के समान है। "नहीं" का जन के साथ सम्बन्ध करने पर अर्थ निकलता है—जो मनुष्य पराधीन नही है, उसके लिए नरक भी स्वर्ग है।

यमक

लक्षण—जहाँ शब्दो अथवा वाक्याशो की आवृत्ति हो परन्तु वे निरर्थक अथवा भिन्नार्थक हो उसे यमक अलकार कहते है।

उदाहरण—"कनक कनक ते सौ गुनी मादकता अधिकाय।"

इसमे "कनक" शब्द दो बार आया है। पहले 'कनक' का अर्थ है "सोना" और दूसरे का "धतूरा"। इसलिए यह यमक अलकार है।

पुनरुक्तवदाभास

लक्षण—जहाँ भिन्न आकार वाले ऐसे शब्दो का प्रयोग हो जो समान अर्थ वाले मालूम पडें पर वास्तव मे न हो, उसे पुनरुक्तवदाभास अलकार कहते हैं।

उदाहरण—"समय जा रहा और काल है आ रहा।
सचमुच उलटा भाव भुवन में छा रहा ॥"

यहाँ "समय" और "काल" समान अर्थ के लगते है, पर वास्तव में काल का अर्थ मौत है।

पुनरुक्तिप्रकाश

लक्षण—जहाँ एक शब्द दो या दो से अधिक बार अर्थ को रुचिर बनाने के लिए प्रयुक्त हो उसे पुनरुक्तिप्रकाश कहते है।

उदाहरण—"जाती जाती गाती गाती कह जाऊँ यह बात।"

इस वाक्य मे 'जाती' 'गाती' शब्द दो-दो बार हैं। पुनरुक्ति का उद्देश्य केवल सौन्दर्य बढाना है। अत पुनरुक्तिप्रकाश अलकार है।

वीप्सा

लक्षण—जहाँ पर आदर, आश्चर्य, घृणा आदि आकस्मिक भावो को प्रगट करने के लिए एक शब्द अनेक बार प्रयुक्त हो वहाँ वीप्सा अलकार होता है।

उदाहरण—"जय जय भारतवासी कृती, जय जय जय भारत मही।"

इस वाक्य मे "जय" शब्द बार-बार आया है और आदर भाव को प्रगट करता है, अत वीप्सा अलकार हैं।

श्लेष

लक्षण—जब एक शब्द एक ही बार प्रयुक्त हो और उसके एक से अधिक अर्थ होते हो, उसे श्लेप अलकार कहते है।

उदाहरण—"जो रहीम गति दीप की, कुल कपूत की सोय।
वारे उजियारो करै, बढ़े अन्धेरो होय॥"

इसमें "वारे" और 'बढे' के दो अर्थ है।

वारे—(१) जलाने पर, (२) लड़कपन मे।

बढे—(१) बुझ जाने पर, (२) बडा होने पर।

इसमे (१) वारे (२) बढे के दो-दो अर्थ है इसलिए श्लेप अलकार है।

श्लेप के दो भेद हैं—(१) शब्दश्लेप, (२) अर्थश्लेप।

ऊपर का उदाहरण शब्द श्लेप है।

अर्थ श्लेप मे श्लिष्ट शब्द मे उसको पर्याय से बदल देने पर भी चमत्कार बना रहता है। अर्थ श्लेप में शब्द का अर्थ तो एक ही होता है, परन्तु वह दोनो पक्षो में उसी अर्थ के द्वारा भिन्न तात्पर्य देता है।

वक्रोक्ति

लक्षण—जब किसी उक्ति का वक्ता के अभिप्राय से भिन्न सारा अर्थ लिया जाय तब वक्रोक्ति अलकार होता है।

उदाहरण—"को तुम ? है घनश्याम हम, तो बरसो कित जाय।
नहिं मनमोहन है प्रिय। फिर क्यों पकरत पायं॥"

इस वाक्य में राधा कृष्ण से कहती है कि तुम कौन हो ? उत्तर देते हुए कृष्ण कहते है कि मै घनश्याम हूँ तो राधा कहती है कि कही जाकर बरसो। इस वाक्य मे कृष्ण के कहने का अभिप्राय कुछ और है परन्तु राधा कुछ और ही समझती है। इसलिए यह वक्रोक्ति अलकार है।

अर्थालंकार

उपमा

लक्षण—किसी वस्तु का उत्कर्ष प्रतिपादित करने के लिए जब हम उसकी तुलना किसी लोकप्रसिद्ध वस्तु के साथ करते है, तब उपमा अलकार बनता है।

उदाहरण—"हो क्रुद्ध उसने शक्ति छोडी एक निष्ठुर नाग-सी।"

इसमे कवि को शक्ति का वर्णन करना है और वे उसकी निष्ठुरता, भयकरता का वर्णन करना चाहते है। इस बात को सुन्दरता से कहने के लिए वे निष्ठुरता के लिए प्रसिद्ध अवर्ण्य नाग से उसकी तुलना करते है। अत यह उपमा अलकार है।

उपमा के भेद—(१) पूर्णोपमा अलकार, (२) लुप्तोपमा अलकार।

(१) पूर्णोपमा अलकार—जहाँ उपमा के चारो अङ्ग विद्यमान हो अर्थात् जहाँ उमेपय, उपमान, साधारण धर्म और वाचक पद हो उसे पूर्णोपमा कहते हैं।

उदाहरण—"थी स्वयं ही वह सुवर्ण रत्न-राजि समान।"

इस वाक्य मे चारो अङ्ग मिलते हैं।

वह—उपमेय, रत्न-राजि—उपमान, सुवर्ण—साधारण धर्म, समान वाचक शब्द।

लुप्तोपमा

लक्षण—उपमा के चार अङ्गो मे से किसी एक या दो के लुप्त होने पर

लुप्तोपमा होती है।

उदाहरण—"रति रमणीय मूर्ति राधा की।"

इसमे उपमेय (राधा की मूर्ति) उपमान (रति) और साधारण धर्म (रमणीय)—उपमा के तीन अग ही विद्यमान है इसलिए यह लुप्तोपमा है।

मालोपमा

लक्षण—जब एक उपमेय की बहुत-से उपमानो से उपमा दी जाय तो मालोपमा अलकार होता है।

उदाहरण—"खजरीट-मृग-मीन से व्रजवनितन के नैन।"

इसमे व्रजवासिनी स्त्रियो के नेत्रो की तुलना तीन उपमानो से की गई है—(१) खजरीट, (२) मृग, (३) मीन। इसलिए यह मालोपमा अलकार है।

समुच्चयोपमा

लक्षण—जब किसी उपमेय की उपमान से समानता करते हुए दो या अधिक धर्मों से उपमा दी जाय तो समुच्चयोपमा अलकार होता है।

उदाहरण—"निज जनक अर्जुन तुल्य ही गुणवान था, बलवान था।"

उपमेय—"अभिमन्यु", उपमान—अर्जुन। साधारण धर्म दो है—(१) गुणवान् (२) बलवान्। इसलिए यह समुच्चयोपमा अलकार है।

रसनोपमा

लक्षण—जहाँ उपमा अलकारो की परस्पर शृ खला बनती जाए अर्थात् पहला उपमेय दूसरे उपमेय का उपमान बन जाये इसी प्रकार आगे क्रम चलता जाये उसे रसनोपमा अलकार कहते है।

उदाहरण—मति सी नति, नति सी विनति, विनति सी रति चारु।

इस वाक्य में पहला उपमेय 'नति' (नम्रता) विनति रति का उपमान बन गया है। अत यह रसनोपमा अलकार है।

उपमेयोपमा

लक्षण—जब उपमेय की उपमान से समता कर दी जाए तो उपमेयोपमा अलकार होता है।

उदाहरण—"राम सम शभु, शंभु सम राम है।"

इसमे राम पहले उपमेय और शभु उपमान हे। परन्तु तुरन्त ही राम उपमान वन गया और शभु उपमेय वन गया है अत यह उपमेयोपमा अलकार है।

८ अनन्वयोपमा

लक्षण—जहाँ उपमेय स्वय उपमान हो, और कोई भी उसकी समता न कर सके उसे अनन्वयोपमा अलकार कहते है।

उदाहरण—"वस भारत सम भारत है।"

इसमे भारत ही उपमेय और भारत ही उपमान है।

प्रतीप

लक्षण—जहाँ उपमान को उपमेय की अपेक्षा घटा कर वताया जाये उसे प्रतीप अलकार कहते है।

प्रथम प्रतीप—जव उपमान की उपमेय से उपमा दी जाए उसे प्रथम प्रतीप कहते है।

उदाहरण—'तुव प्रताप सम सूर्य है, जस सम सोहत चंद।
कर सम कहियतु कल्पतरु, जय-जय श्री रघुनन्द॥'

यहाँ सूर्य, चद, कल्पतरु आदि उपमानो को उपमेय के समान वताया गया है, इसलिए यह प्रथम प्रतीप है।

द्वितीय प्रतीप—जव उपमान के द्वारा उपमेय का अनादर कराया जाय, तव द्वितीय प्रतीप है।

उदाहरण—'का घूंघट मुख मूंदहु अबला नारि।
चन्द सरग पै सोहत, यहि अनुहारि॥

इस वाक्य में 'चन्द' को उपमेय वताकर उसके द्वारा वास्तविक 'मुख' को यह कह कर कि उसे घूघट में क्यो छिपाया जा रहा है, हीन ठहराया गया है।

तृतीय प्रतीप—जव उपमेय को उपमान वना कर उसका वास्तविक उपमान द्वारा अनादर किया जाय, तव तृतीय प्रतीप अलकार होता है।

उदाहरण—"गरव करति कत चाँदनी, हीरक छीर समान।
फैली इती समाज में, कीरति शिवा खुमान॥

इस उदाहरण में उपमान चाँदनी को उपमेय मानकर उसका वास्तविक उपमेय 'कीरति' द्वारा अनादर किया गया है।

चतुर्थ प्रतीप—जब उपमान की तुलना उपमेय से करके उपमान को अयोग्य ठहराया जाए, तब चतुर्थ प्रतीप है।

उदाहरण—"बहुरि विचार कीन्ह मन माहिं। सीय वदन सम हिमकर नाहिं॥

यहाँ उपमान हिमकर की तुलना उपमेय सियवदन से करके उपमान को तुलना के अयोग्य ठहराया गया है।

पंचम प्रतीप—जहाँ उपमेय के मुकाबले में उपमान व्यर्थ बताया जाए, उसे पंचम प्रतीप अलंकार कहते है।

उदाहरण—"मुख से विश्व प्रकाशित होता।
तब क्या काम चन्द्रमा का।"

इस पद मे उपमेय (मुख) उपमान (चन्द्रमा) का काम कर सकता है, यह कहकर उपमान का होना व्यर्थ बताया गया है, इसलिए पंचम प्रतीप है।

व्यतिरेक

लक्षण—जब उपमेय मे उपमान की अपेक्षा अधिक उत्कर्ष बताया जाए उसे व्यतिरेक अलंकार कहते है।

उदाहरण—जैसे—"राधा मुख को चन्द्र सा कहते हैं मतिरंक।
निष्कलंक है वह सदा उसमें प्रकट कलंक।"

इसमे "राधामुख" उपमेय है और चन्द्र उपमान। इसमे राधामुख को निष्कलंक और चन्द्र को कलंक वाला प्रकट करके उपमेय को बढाया गया है, अतः व्यतिरेक अलंकार है।

रूपक

लक्षण—जब उपमेय और उपमान एक रूप हो जाएँ तब रूपक अलंकार होता है अर्थात् उपमेय में उपमान का आरोप किया जाए।

उदाहरण—"चरण-कमल बन्दौ हरिराई।"

यहाँ सादृश्य के कारण उपमेय (चरण) पर उपमान (कमल) का आरोप किया गया है।

रूपक के तीन भेद है—

(१) साङ्गरूपक—जब उपमेय मे उपमान का अगो सहित आरोप हो, तब साङ्गरूपक अलकार होता है।

उदाहरण—जीवन की चचल सरिता में फेंकी मैंने मन की जाली।
फस गई मनहर भावों की मछलियां सुघर भोली भाली।"

जीवन उपमेय पर उपमान चचल सरिता (नदी) का आरोप हुआ है। साथ ही उपमेय के अग मन पर जाली का, और उपमेय के अग भावो पर, मछलियो का आरोप हुआ है, इस कारण साङ्गरूपक अलकार है।

(२) निरग रूपक—अगो के रहित उपमान का जहाँ उपमेय में आरोप होता है।

उदाहरण—"कर-सरोज सिर परसेउ कृपा-सिन्धु रघुवीर।"

इसमे 'कर' उपमेय मे 'सरोज' उपमान का आरोप है।

अगो रहित आरोप है, इसलिए यह निरगरूपक अलकार है।

(३) परम्परित रूपक—जहाँ एक आरोप दूसरे आरोप का कारण हो, वहाँ परम्परित रूपक अलकार होता है।

उदाहरण—"दुख है जीवन तरु के फूल'

इसमे दुख को फूल बनाने के लिए जीवन को तरु बनाया गया है। इसलिए यह परम्परित रूपक है।

उत्प्रेक्षा

लक्षण—जब उपमेय मे उपमान का आरोप हो तब रूपक अलकार होता है। परन्तु जब उपमेय में उपमान की सम्भावना की जाए तब उत्प्रेक्षा अलकार होता है।

उदाहरण—"कहती हुई यों उत्तरा के नेत्र जल से भर गए।
हिमकणों से पूर्ण मानो हो गए पंकज नए।"

यहाँ उत्तरा के नेत्रो (उपमेय) में और पकजो (उपमान) की सम्भावना

की गई है, अत यह उत्प्रेक्षा अलकार है। इसके तीन भेद है—

(१) वस्तूत्प्रेक्षा—जहाँ उपमेय मे उपमान की सम्भावना की जाए, वहा वस्तूत्प्रेक्षा अलकार होता है।

उदाहरण—"सोहत ओढ़े पीतपट स्याम सलोने गात।
मनो नील मणि शैल पर आतप पर्यो प्रभात॥"

पीताम्बर पहने हुए कृष्ण जी के श्याम शरीर मे प्रातकालीन सूर्य की धूप से सुशोभित नीलम के पहाड की सम्भावना की गई है। श्री कृष्ण का श्याम शरीर उपमेय है और नीलम का पहाड उपमान है। अत वस्तूत्प्रेक्षा अलकार है।

हेतूत्प्रेक्षा—जहाँ अहेतु मे हेतु की सम्भावना की जाए अर्थात् अकारण मे कारण समझकर उत्प्रेक्षा की जाती है।

उदाहरण :—"मनो चली आंगन कठिन ताते राते पांय।"

यहाँ पाव के लाल होने का कारण कठिन आगन पर चलना बताया गया है, जोकि वास्तविक हेतु नही हो सकता, अत. हेतूत्प्रेक्षा अलकार है।

फलोत्प्रेक्षा—जहा अफल मे फल की सम्भावना हो उसे फलोत्प्रेक्षा अलकार कहते है।

उदाहरण—"लम्बा होता ताड़ का वृक्ष जाता,
मानो छूना व्योम को चाहता है।

यहाँ बताया गया है कि ताड का वृक्ष आकाश को छूने के लिए लम्बा होता जा रहा है। परन्तु वास्तव मे यह फल (उद्देश्य) नही है, अतः फलोत्प्रेक्षा अलकार है।

अपह्नुति

किसी सच्ची बात या वस्तु को छिपा कर उसके स्थान पर झूठी बात या वस्तु की स्थापना की जाय तो उसे अपह्नुति अलंकार कहते है। इसके छ भेद है :—

(१) शुद्धापह्नुति—जब उपमेय का निषेध करके उसके स्थान पर उपमान की स्थापना की जाए तो शुद्धापह्नुति अलकार है।

उदाहरण —"कृष्ण नहीं पीताम्बर पहने, बिजली चमक रही है घन में।"

इसमे वास्तविक उपमेय (कृष्ण) का निषेध करके उपमान (बिजली सहित बादल) की स्थापना की गई है। इसलिए शुद्धापह्नुति अलकार है।

(२) हेत्वपह्नुति—जहाँ उपमेय का निषेध करके उसके स्थान पर उपमान की स्थापना की जाय तथा उसका कारण भी बताया जाए उसे हेत्वपह्नुति अलकार कहते हैं।

उदाहरण—"अभी उमर कुल तेईस की थी, मनुज नहीं अवतारी थी।
हमको जीवित करने आई बन स्वतंत्रता नारी थी॥

इसमे लक्ष्मीबाई के मनुष्यत्व का निषेध करके उन्हे अवतारी कहा गया। साथ ही इसका कारण भी बताया गया है कि वह स्वतत्रता देवी नारी बन कर हमे जीवित करने आई। अत यह हेत्वपह्नुति अलकार है।

(३) पर्यस्तापह्नुति—जब उपमान मे उसके गुणो का निषेध करके उपमेय वस्तु में उन गुणो की स्थापना की जाए, तब पर्यस्तापह्नुति अलकार होता है।

उदाहरण—"है न सुधा यह, है सुधा सगति साधु समाज।"

इसमे सुधा के सुधापन को हटा कर के साधु समाज की सगति में स्थापित किया गया है।

(४) भ्रांतापह्नुति—जब किसी वस्तु मे किसी दूसरी वस्तु का भ्रम हो जाय और सच्ची बात कहकर उसका भ्रम दूर किया जाये तो भ्रातापह्नुति अलकार होता है।

उदाहरण—"बैसर मोती दुति झलक पड़ी अधर पर आय,
चूनो होय न, चतुरतिय ! क्यो पट पोछो जाय।"

इसमे स्त्री की नथ के मोती की परछाई मे अपने ओठ पर चूने के लगे होने का भ्रम हो गया था जिसे सच्ची बात कहकर दूर कर दिया है अत भ्राता-पह्नुति अलकार है।

(५) छेकापह्नुति—इसमे झूठी बात को कह कर सच्ची बात को छिपाने का प्रयत्न किया जाता है। इसे कहमुकरी भी कहते है।

उदाहरण—"वह आवे तब शादी होय, उस बिन दूजा और न कोय,
मीठे लागें वाके बोल। ए सखि साजन न सखि ढोल॥

इसमे कवि वर्णन करता है कि कोई नारी अपने पति की याद मे अपनी सखी को कह रही है कि ऐ सखी वह आवे तब शादी होगी। उसके विना और कुछ नही है। उसके शब्द मीठे लगते हैं। इतनी बात सुन कर सखि कहती है कि क्या तुम्हारे साजन के आने से ? तो वह कहती है नही ढोल से। इससे उसने सच्चाई को छिपाया अत छेकापह्नुति है।

(६) कैतवापह्नुति अलंकार—जब मिस, व्याज, कैतव, छल आदि शब्दो के द्वारा सत्य का निषेध करके असत्य की स्थापना की जाती है, वहाँ कैतवापह्नुति अलकार होता है।

उदाहरण—"मेरे अश्रु ओस के मिस से छल-छल करके छलक रहे।"

इसमे कवि ओस के बहाने से आसुओ का वर्णन कर रहा है। यहाँ 'मिस' शब्द के प्रयोग से सच्ची वस्तु 'आँसू' का निषेध करके असत्य वस्तु 'ओस' की स्थापना की है। अत यह कैतवापह्नुति अलकार है।

स्मरण

लक्षण—जब पहले देखी या सुनी, समझी हुई किसी वस्तु का स्मरण, उससे मिलती जुलती या सम्बन्ध रखने वाली किसी वस्तु को देखने, सुनने या चिन्तन करने से हो जाय तब स्मरण अलकार होता है।

उदाहरण—"लोने-लोने हरित दल के पादपो को विलोके।
प्यारा प्यारा विकच मुखडा है मुझे याद आता॥"

इसमें हरे पत्तो को देखकर मुखडे की याद आती है अत यह स्मरण अलकार है।

भ्रान्तिमान्

लक्षण—जब कोई किसी वस्तु को देखकर उसे सादृश्य के कारण कुछ और समझ ले तब भ्रान्तिमान् अलकार होता है।

उदाहरण—नाक का मोती अधर की कान्ति से
बीज दाडिम का समझ कर भ्रान्ति से
देख उसको ही हुआ शुक मौन है
सोचता है अन्य शुक यह कौन है।

इसमे ऊर्मिला के नाक का मोती ओठ की लाली से लाल हो गया है और अनार के दाने के समान लगता है। तोता उसे देख कर भ्रान्ति में पड जाता है कि दूसरा तोता कहाँ से आ गया। इसलिए भ्रान्तिमान् अलकार है।

संदेह

लक्षण—जब उपमेय और उपमान की समता के कारण यह निश्चय न हो सके कि वह वास्तव मे क्या है, दुविधा बनी रहे तब सदेह अलकार होता है।

उदाहरण—"लक्ष्मी थी या दुर्गा थी वह स्वयं वीरता की अवतार।"

यहाँ रानी की वीरता को देखकर यह निश्चय नही किया जाता कि यह दुर्गा थी कि लक्ष्मी या वीरता की अवतार थी, अत सन्देह अलकार है।

उल्लेख

लक्षण—जब एक वस्तु का अनेक प्रकार से वर्णन किया जाए तो उल्लेख अलकार होता है। उसके दो भेद हैं।

१. प्रथम उल्लेख—जहाँ एक वस्तु को अनेक व्यक्ति अनेक प्रकार से समझें, देखे और वर्णन करें, वहाँ प्रथम उल्लेख है।

उदाहरण—"कविजन कल्पद्रुम कहँ, ज्ञानी ज्ञान-समुद्र।
दुर्जन के गण कहत है, भावसिंह रनरुद्र॥"

यहाँ एक वस्तु भावसिह का अनेक व्यक्तियो (कविजन, दुर्जन, ज्ञानी) ने अनेक प्रकार से वर्णन किया है अतः प्रथम उल्लेख है।

द्वितीय उल्लेख—इसमे एक वस्तु को एक व्यक्ति अनेक प्रकार से देखता, सुनता, श्रवण करता है।

उदाहरण—"तू रूप है किरन में, सौंदर्य है सुमन में
तू प्राण है पवन में, विस्तार है गगन में।"

इसमे एक वस्तु परमात्मा का एक व्यक्ति अनेक प्रकार से वर्णन करता है, अत. द्वितीय उल्लेख है।

प्रतिवस्तूपमा

लक्षण—जब उपमेय और उपमान दो भिन्न-भिन्न वाक्यो में एकार्थवाची दो भिन्न-भिन्न शब्दो द्वारा एक ही धर्म से तुलना की जाए, तब उसे प्रतिवस्तूपमा अलकार कहते है। अर्थात् वाक्य दो, धर्म एक परन्तु अलग-अलग शब्दो में।

उदाहरण—"तिनहिं सोहाई न अवध बधावा,
चोरहि चांदनी राति न भावा।"

इसमें, तिनहिं सोहाई न अवध बधावा = उपमेय वाक्य है।
चोरहिं चाँदनी राति न भावा = उपमान वाक्य है।

दोनो का साधारण धर्म—अच्छा न लगना—एक ही है जो दो शब्दो से बताया है, इसलिए प्रतिवस्तूपमा अलकार है।

दृष्टान्त

लक्षण—जब दो उपमेय और उपमान वाक्यो का साधारण धर्म भिन्न भिन्न होते हुए उनमे विम्ब-प्रतिविम्ब भाव होता है और कोई समता-वाचक शब्द उनमे नही होता तब दृष्टान्त अलकार होता है।

उदाहरण—"पापी मनुज भी आज मुंह से राम नाम निकालते।
देखो भयंकर भेडिये भी आज आँसू डालते॥"

इसमे बताया गया है कि पापी लोग भी मुँह से राम नाम निकालने लग गये है। जिस प्रकार बड़े भयङ्कर भेड़िये भी रोने लगते है। अत दृष्टान्त अलकार है।

उदाहरण

लक्षण—जब उपमेय और उपमान सम्बन्धी दो वाक्यो मे साधारण धर्म भिन्न होने पर भी वाचक शब्दो द्वारा समता दिखाई जाए तब उदाहरण अलकार होता है।

उदाहरण—"सिमिट-सिमिटि जल भरहिं तलावा।
जिमि सद्गुण सज्जन पहुं आवा॥"

जल धीरे-धीरे आ रहा है और तालाब भर गया है जिस प्रकार अच्छे गुण धीरे-धीरे सज्जनो के पास आते है। अत उदाहरण अलकार है।

निदर्शना

लक्षण—जब दो वाक्यो के अर्थ मे विभिन्नता रहते हुए भी ऐसा सबन्ध स्थापित किया जाता है जिससे उनमे समता जान पडने लगती है तब निदर्शना अलकार होता है।

उदाहरण—"युद्ध जीतना जो चाहते है तुमसे वैर बढाकर।
जीवित रहने की इच्छा वे करते है विष खा कर॥"

इसमे दोनो वाक्यो का फल एक है "असम्भव" और एक वाक्य दूसरे के विना अपूर्ण है। अत निदर्शना अलकार है।

अतिशयोक्ति

लक्षण—जब किसी की अत्यन्त प्रशसा के लिए बहुत बढा कर बात कही जाए तब अतिशयोक्ति अलकार है। इसके छ भेद है —

१ सम्बन्धातिशयोक्ति—जब योग्य मे अयोग्यता बताकर उपमेय की अतिशय प्रशसा की जाए तब सम्बन्धातिशयोक्ति अलकार है।

उदाहरण—"देख लो साकेत नगरी है यही
स्वर्ग से मिलने गगन मे जा रही॥"

यहाँ साकेत नगरी का स्वर्ग से मिलना, आकाश मे जाने का वर्णन है। वास्तव मे साकेत का स्वर्ग के साथ सम्बन्ध नही है पर सम्बन्ध किया गया है, अत. सम्बन्धातिशयोक्ति अलकार है।

२ अक्रमातिशयोक्ति—जब कार्य और कारण के एक साथ होने का वर्णन हो, तब अक्रमातिशयोक्ति अलकार है।

उदाहरण — चले तुम्हारे बाण धनुष से रिपु सेना के प्राण चले॥"

इसमे बताया गया है कि जब तुम्हारे बाण चले, उधर सेना के प्राण जाने लगे। कार्य और कारण एक ही साथ हो गए है, अत अक्रमातिशयोक्ति अलकार बन गया।

३ अत्यन्तातिशयोक्ति—इसमे कार्य के कारण से पहले हो जाने का वर्णन होता है।

उदाहरण—"हनुमान की पूँछ मे लगन न पाई आग।
लंका सिगरी जरि गई, गए निशाचर भाग॥"

इसमे "हनुमान् की पूँछ मे आग लगाना" कारण है और लका का जलना कार्य है। हनुमान की पूँछ मे आग लगने से पहले लका के जलने का वर्णन है अत अत्यन्तातिशयोक्ति अलकार है।

४ भेदकातिशयोक्ति—जहा किसी पदार्थ मे अन्य पदार्थों से भेद न होने पर भी भेद दिखा कर उसका उत्कर्ष बताया जाये, वहाँ भेदकातिशयोक्ति अलकार होता है।

उदाहरण—"किन्तु प्राप्ति होगी इस जन की
इस से बढकर किस धन की।।"

यहाँ जिस धन की प्राप्ति की बात कही गई है उसे सबसे बढकर बताया गया है, अत यह भेदकातिशयोक्ति अलकार है।

५ रूपकातिशयोक्ति—जब उपमेय का उत्कर्ष बताने के लिए उपमेय के स्थान पर उपमान का ही कथन किया जाए, तब रूपकातिशयोक्ति अलकार होता है।

उदाहरण—आचार्य देखो तो नया वह सिंह सोते से जगा।

जब बडे-बडे महारथी अभिमन्यु द्वारा मारे गये तो कर्ण यह वाक्य आचार्य से कहते है। इसमे अभिमन्यु की वीरता की अतिशय प्रशसा करने के लिए अभिमन्यु न कहकर सिंह बताया गया है।

६ चपलातिशयोक्ति—इसमे कारण का ज्ञान होते ही उसे कहते, सुनते या देखते ही कार्य के हो जाने का वर्णन होता है।

उदाहरण—कैकेयी के कहत ही रामगमन की बात।
नृप दशरथ के ताहि छिन, सूख गये सब गात।

इसमे कैकेयी के मुख से राम गमन के ज्ञान मात्र होने से दशरथ के गात सूखने लगते है, अत- चपलातिशयोक्ति अलकार है।

अत्युक्ति

लक्षण—जब किसी व्यक्ति की प्रशसा करने के लिए बहुत बढा-चढा कर झूठी बात कही जाती है तब अत्युक्ति अलकार होता है।

उदाहरण -"डूब रहा राधा दगम्बु मे है व्रज, कहाँ गये हरि आज।"

इसमे राधा के वियोग की अत्युक्ति है।

व्याजस्तुति

लक्षण—जहाँ निन्दा के बहाने स्तुति और स्तुति के बहाने निन्दा की जाये वहा व्याजस्तुति अलकार होता है।

उदाहरण—"मर्दानगी फिर भी हमारी देख लीजो कम नहीं।
क्या भिन-भिनाती मक्खियाँ ये, मारते हैं हम नहीं॥"

यहाँ ऊपर से प्रशसा दिखाई देती है परन्तु वास्तव मे निंदा है। अत व्याजस्तुति अलकार है।

तुल्ययोगिता

लक्षण—जब क्रिया अथवा गुण (विशेषण) के द्वारा कई व्यक्तियों या प्रदार्थों का एक धर्म कहा जाय तब तुल्ययोगिता अलकार होता है।

उदाहरण—'श्री रघुवर के नख चरण मुख सुखमा सुखखान।"

यहाँ मुख, नख, चरण सभी उपमेय है। इन तीनो का साधारण धर्म "सुख की खान होना" है। अत यह तुल्ययोगिता अलकार है।

दीपक

लक्षण—जब उपमेय और उपमान का एक ही क्रिया द्वारा एक धर्म कहा जाय तब दीपक अलकार होता है।

उदाहारण—ढोल गवार शूद्र पशु नारी।
ये सब ताडन के अधिकारी॥"

इसमे उपमेय नारी है और ढोल, गवार उपमान है। दोनो का एक धर्म ताडन है। अत दीपक अलकार है।

अप्रस्तुत प्रशंसा

लक्षण—जब अप्रस्तुत का ऐसे ढग से वर्णन किया जाय कि इससे प्रस्तुत का बोध हो, तब अप्रस्तुतप्रशसा अलकार होता है।

उदाहरण—"प्रथम परीक्षा किये बिना जो प्रेम किया जाता है।
ठीक है कि वह वैर भाव ही पीछे प्रकटाता है।"

मुनि-शिष्यो ने यह सामान्य अप्रस्तुत बात कही, परन्तु इसमे प्रस्तुत

विशेष अर्थ निकलता है कि "शकुन्तला" तुमनें दुष्यन्त की परीक्षा किए बिना प्रेम किया उसी का यह फल है, अत अप्रस्तुतप्रशसा अलकार है।

सहोक्ति

लक्षण—जहाँ सह, साथ, सग आदि शब्दो के प्रयोग से दो या दो से अधिक वस्तुओं के साथ काम करने का चमत्कारपूर्ण वर्णन हो, उसे सहोक्ति अलकार कहते है।

उदाहरण—"विजय सखी के संग शुद्ध सीता को लेकर।"

इसमे सग शब्द के प्रयोग से दो का वर्णन चमत्कारपूर्वक किया गया है, अत. सहोक्ति अलंकार है।

विनोक्ति

लक्षण—जब बिना, रहित, हीन आदि शब्दो की सहायता से एक पदार्थ का दूसरे के बिना शोभित अथवा अशोभित होना कहा जाय।

उदाहरण—"जिय बिनु देह नदी बिनु वारी।
तैसे ही नाथ पुरुष बिनु नारी॥"

यहा प्राणो के बिना देह, जल के बिना नदी और पुरुष के बिना नारी के अशोभित होने का वर्णन किया गया हैं, अत विनोक्ति अलकार है।

समासोक्ति

लक्षण—जब प्रस्तुत का वर्णन ऐसे ढग से किया जाए कि उससे अप्रस्तुत का भी ज्ञान हो तब समासोक्ति अलकार होता है।

उदाहरण—"यद्यपि होत सुन्दर कमल, उलटो तदपि सुभाव।
जो नित पूरण चंद सो, करत विरोध बनाव।"

कवि का अभिप्राय है कि यदपि कमल सुन्दर होता है तथापि उसका स्वभाव उलटा होता है। वह सदा पूर्ण चन्द से विरोध करता है। यहाँ कमल का चन्द्र से विरोध प्रस्तुत है परन्तु कई लोग चन्द्रगुप्त से विरोध रखते हैं, यह अप्रस्तुत है, अत. समासोक्ति अलकार है।

परिकर

लक्षण—जहाँ विशेषण का प्रयोग किसी विशेष अभिप्राय से किया

जाय, वहा परिकर अलकार होता है। जैसे—

देहु उतर अरु करौ कि नाही। सत्यसध तुम रघुकुल माही॥

यहा 'सत्यसध' विशेषण का प्रयोग विशेष अभिप्राय से किया गया है। इसलिए यह परिकर अलकार है।

परिकरांकुर

लक्षण—जहाँ विशेष्य का प्रयोग विशेष अभिप्राय से किया जाए वहाँ परिकराकुर अलकार होता है।

उदाहरण—करुणानिधे करुणा तुम्हारी हाय यह कैसी अहो।"

यहाँ करुणानिधे विशेष अभिप्राय (व्यग्य) से प्रयोग मे लाया गया है। इसलिए परिकराकुर अलकार है।

श्लेष

लक्षण—जहाँ शब्द प्राय एक ही हो परन्तु उसके एक से अधिक कई पक्षो मे अर्थ लगते हो।

उदाहरण—"नर की अरु नल नीर की, गति एकै करि जोय।
जेतो नीचो ह्वै चलै, तेतो ऊँचौ होय॥"

इसमे 'नीचौ' और 'ऊँचौ' के वास्तव मे एक ही अर्थ हैं परन्तु प्रसग मे नल-नीर और नर के लिए अलग-अलग अर्थ लिए जाते है, इसलिए श्लेष अलकार है।

पर्यायोक्ति

लक्षण—जब किसी बात को स्पष्ट न कह कर के कुछ घुमा-फिरा कर कहा जाय तब पर्यायोक्ति अलकार होता है।

उदाहरण—"अब इस समय तुम निज जनो को एक बार निहार लो।"

इस वाक्य को अभिमन्यु ने दुर्योधन के पुत्र लक्ष्मण को कहा था। अपितु घुमा-फिराकर कहा था, इसलिए यह पर्यायोक्ति अलंकार है।

विरोधमूलक अलकार

विरोधाभास

लक्षण—जहाँ दो वस्तुओ के वर्णन मे विरोध न होते हुए भी विरोध-सा प्रतीत हो, उसे विरोधाभास अलकार कहते है।

उदाहरण—"नैन लगे जब से सखी, तब से लगत न नैन।"

यहाँ 'नैन लगे' और 'लगत न नैन' मे परस्पर विरोध दिखाई देता है। पर वस्तुत विरोध नही। एक सखी दूसरी सखी को कह रही है कि जब से मेरे नैन लगे है अर्थात् प्रेम हुआ है तबसे मुझे नीद नही आती इसलिए विरोधाभास अलकार हुआ।

विभावना

लक्षण—जहाँ कारण के अभाव से ही कार्य के होने का वर्णन हो उसे विभावना अलकार कहते है।

उदाहरण—बिनु पद चलै सुनै बिनु काना।
कर बिनु कर्म करे विधि नाना॥"

यहाँ बिना पैरो के चलना और बिना हाथो के काम करना कहा गया है। बिना कारण के कार्य हुआ है अत विभावना अलकार बन गया।

विशेषोक्ति

लक्षण—जब कारण के विद्यमान होने पर भी कार्य न हो सके उसे विशेषोक्ति अलकार कहते है।

उदाहरण—"देखो दो दो मेघ बरसते, मैं प्यासी की प्यासी।"

यहाँ मेघ कारण के विद्यमान होने पर भी प्यास बुझना कार्य नही हो पाता, अत विशेषोक्ति अलकार है।

असंगति

लक्षण—जहाँ पर कार्य और कारण भिन्न-भिन्न स्थान मे विद्यमान हों वहा असगति अलकार है।

उदाहरण—"तुमने पॉव मे लगाई मेहदी।
मेरी ऑख मे समाई मेहदी॥'

इसमे कारण और कार्य दोनो के होने का स्थान अलग-अलग है इसलिए असगति अलकार है।

विषम

लक्षण—जब ऐसे अनमेल पदार्थो का एक स्थान पर सयोग किया जाय जिनका सयोग अनुचित हो तब विषम अलकार होता है।

उदाहरण—"कहं कुम्भज कहँ सिन्धु अपारा।"

यहाँ कुम्भज (अगस्त्य मुनि) और अपार सिन्धु का एक साथ संयोग किया गया है जो अनुचित है इसलिए यह विषम अलंकार है।

अन्य—संसर्गमूलक अलंकार

अन्योन्य

लक्षण—जब दो व्यक्तियो या पदार्थों का समान सम्बन्ध वर्णित हो तो अन्योन्य अलकार होता है।

उदाहरण—"सर की शोभा हंस है,
राजहंस की ताल।"

यहाँ हस और तालाब दोनो एक दूसरे को शोभित करते है इसलिए यह अन्योन्य अलकार है।

अर्थान्तरन्यास

लक्षण—जब किसी सामान्य बात का विशेष से समर्थन किया जाए या विशेष बात का सामान्य से समर्थन किया जाय तब अर्थान्तरन्यास अलकार होता है।

उदाहरण—अति लघु भी सतसंग से पाते पदवी उच्च।
चढ़े ईश के शीश पर सुमन संग कृमि तुच्छ॥"

यहा पहली पक्ति मे एक सामान्य बात कही गई है। फिर दूसरी पक्ति मे एक विशेष बात कह कर उसका समर्थन किया गया है। इससे अर्थान्तरन्यास अलकार है।

प्रत्यनीक

लक्षण—जब कोई व्यक्ति दूसरे व्यक्ति से जैसा व्यवहार उसने किया था वैसा व्यवहार करने मे असमर्थ हो और उसके किसी सम्बधी से वैसा व्यवहार करे तब प्रत्यनीक अलकार होता है।

उदाहरण—"चलत मोहि चूड़ामणि दीन्ही।
रघुपति हृदय लाई सो लीन्ही॥"

यहाँ पर हनुमान् जी ने सीता जी की चूडामणि रामचन्द्र जी को लाकर दी और श्री राम ने उन्हे छाती से लगा लिया, इसलिए यह प्रत्यनीक अलकार हुआ।

काव्यार्थापत्ति

लक्षण—जब किसी बात को इस प्रकार कहा जाए कि उससे निकलने वाले अर्थ से एक और बात स्वय सिद्ध हो जाए तब काव्यार्थापत्ति अलकार होता है।

उदाहरण—"छूट जाता धैर्य ऋषि-मुनियो का।
देवो भोगियों की तो बात ही निराली है।"

इस वाक्य मे यह सिद्ध हो जाता है कि जब ऋषियो का धैर्य तो छूट जाता है तब देवो एव भोगियो का तो छूटना अपने आप हुआ। इसलिए काव्यार्थापत्ति अलकार है।

काव्यलिङ्ग

लक्षण—जब कवि कोई ऐसी बात कहे जिसकी पुष्टि अपेक्षित हो और उसकी पुष्टि के लिए कवि किसी कल्पित कारण की अवतारणा करे तब काव्य-लिङ्ग अलकार होता है।

उदाहरण—"कनक कनक ते सौ गुनी, मादकता अधिकाय।
उहि खाय बौराय जग, इहि पाये बौराय।"

पहली पक्ति मे कवि ने कहा है कि सोना, धतूरे से सौ गुणा अधिक मादक है। इस बात की पुष्टि अपेक्षित है, ऐसे ही इसको कोई न मान लेगा। दूसरी पक्ति में कही बात की पुष्टि करता है कि धतूरे के खाने से मनुष्य पागल होता है परन्तु सोने को पा जाने से ही पागल हो जाता है। इस प्रकार कल्पित कारण द्वारा पहले कही बात की पुष्टि की गई है, इसलिए काव्यलिङ्ग अल-कार है।

परिसंख्या

लक्षण—जब किसी वस्तु, गुण, धर्म या जाति को अन्य सब स्थानों से हटाकर एक ही स्थान पर स्थापित किया जाय तब परिसख्या अलकार होता है।

उदाहरण—"है चाटुकारी में चतुरता, कुशलता, छलछद्म में।"

इसमें चतुरता और कुशलता का उनके स्थानो में निषेध करके अन्य

वस्तुओ मे उनका होना वर्णित है, इसलिए यह परिसख्या अलकार है।

प्रतिषेध

लक्षण—जहाँ किसी वस्तु का निषेध होने पर भी विशेष उद्देश्य से पुनः निषेध किया जाए उसे प्रतिषेध अलकार कहते है।

उदाहरण—यह खेल पासो का नहीं है प्राण का पण आज है।
जो आज जीतेगा उसी का जीतना कुरुराज है।

इसमे द्रोणाचार्य ने महाभारत के सग्राम का वर्णन करते हुए पासो का निषेध किया है और कहा है कि जो इसमें जीतेगा वही वास्तव मे विजेता होगा। अर्थात् युद्ध मे जीतना दुर्योधन के लिए कठिन है। प्रतिषेध अलंकार है।

कारणमाला

लक्षण—जहाँ एक वस्तु या अनेक पदार्थों की कारण-कार्य रूप की शृंखला हो, उसमे प्रत्येक पिछला पदार्थ आगामी पदार्थ का कारण बनता जाय, तब कारणमाला अलकार होता है।

उदाहरण—"होत लोभ ते मोह, मोहहि ते उपजै गरब।"

यहाँ पहले कहा गया है कि लोभ से मोह होता है लोभ कारण हुआ और मोह कार्य। आगे कहा गया है कि मोह गर्व को उत्पन्न करता है इसमे मोह कारण बन गया, अत कारणमाला अलकार है।

एकावली

लक्षण—जब बहुत से पदार्थों का शृंखलाबद्ध विशेष्य-विशेषण रूप में वर्णन किया जाए तब एकावली अलकार होता है।

उदाहरण—"सो न सभा जहाँ वृद्ध न राजत।
वृद्ध न ते जु पढ़े कछु नाहिं।"

इसमे सभा, वृद्ध, पढे आदि शब्दो का पारस्परिक विशेष्य-विशेषण सबन्ध है और इनकी एक शृखला सी बन गई है, अत एकावली अलकार हुआ।

सार

लक्षण—जब पहले कही हुई वस्तुओ का उत्तरोत्तर, उत्कर्ष या अपकर्ष

कहा जाए तब सार अलकार होता है।

उदाहरण—"शिला कठोरी काठ ते, ताते लोह कठोर।
ताहु ते कीनो कठिन, मन तुम नन्द किसोर॥"

इसमे उत्तरोत्तर काठ से शिला, शिला से लोहा, लोहे से नन्दकिशोर के मन को कठोर कहा गया है, इसलिए सार अलकार हुआ।

यथासंख्य या क्रम

लक्षण—जब कुछ पदार्थों का वर्णन करके उनसे सम्बन्ध रखने वाले अन्य पदार्थों का उसी क्रम से वर्णन किया जाता है, तब यथासख्य या क्रम अलकार होता है।

उदाहरण—"अमी हलाहल मदभरे श्वेत श्याम रतनार।
जियत, मरत, झुकि झुकि परत, जेहि चितवत इक बार॥"

इस पद मे आँखो का वर्णन क्रम से किया गया है। जैसे अमृत के समान श्वेत आँखे जिससे वह जी उठेगा। विष के समान काली आँखे जिसे देखे वह मरेगा और मस्ती से भरी लाल आँखे जिसे देखे वह झूम उठेगा। यहाँ प्रत्येक शब्द का क्रम से अन्वय किया है। इसलिए यह यथासख्य अलकार है।

पर्याय

लक्षण—जब एक वस्तु की अनेक और अनेक की एक स्थान पर स्थिति बताई जाए तो पर्याय अलकार होता है।

उदाहरण—"जहाँ लाल साडी थी तन मे,
बना चर्म का चीर वहाँ।"

यहाँ तन एक स्थान पर साडी और चर्म-चीर का वर्णन किया है, इसलिए यह पर्याय अलकार है।

तद्गुण

लक्षण—जब कोई वस्तु अपना गुण त्याग कर पास की किसी दूसरी वस्तु का गुण ग्रहण कर ले तब तद्गुण अलकार होता है।

उदाहरण—"अधर धरत हरि के परत ओंठ डीठि पट ज्योति।
हरित बाँस की बाँसुरी, इन्द्र धनुष रंग होति।"

इसमे हरे बाँस की बाँसरी अपना गुण छोडकर इन्द्र धनुष के समान बन गई है, अत यह तद्गुण अलकार है।

पूर्वरूप

लक्षण—जब कोई वस्तु समीपस्थ के ससर्ग मे आकर अपना गुण छोड कर उसका गुण प्राप्त करले और फिर किसी और वस्तु के ससर्ग मे आने से या किसी और प्रकार से अपना पहले का गुण प्राप्त कर ले तब पूर्वरूप अलकार होता है।

उदाहरण—"नल बल जल ऊँचौ चढ़ै अन्त नीच को नीच।"

जल का गुण है नीचे रहना। परन्तु नल का गुण लेकर वह ऊँचे आ गया परन्तु नल के न होने से अन्त मे नीचे ही जाता है इसलिये यह पूर्वरूप अलकार है।

अतद्गुण

लक्षण—जब कोई वस्तु अपनी समीपस्थ वस्तु का गुण ग्रहण न करे तब अतद्गुण अलकार होता है।

उदाहरण—"चन्दन विष व्यापै नहीं लपटे रहत भुजंग।"

चन्दन के वृक्ष, जिस पर साँप लिपटे रहते है, पर उनके विष का प्रभाव नही पडता, इसलिये यह अतद्गुण है।

मीलित

लक्षण—जब दो पदार्थों के गुण (कर्म) समान होने के कारण एक दूसरे मे इस प्रकार मिल जायें कि दोनो में भेद न मालूम हो, तब मीलित अलंकार होता है।

उदाहरण—वे आभा बन खो जाते शशि-किरणो की उलझन में,
जिससे उनको कण-कण मे ढूँढ़ूँ पहिचान न पाऊँ।

यहाँ किसी का प्रिय चन्द्रमा की चाँदनी से एकाकार हो गया है। दोनो वस्तुओ के परस्पर मिल जाने के कारण प्रेमिका उनमें भिन्नता नही देखती और इसी कारण कहती है कि 'ढूढू पहिचान न पाऊँ'। अत यहा मीलित अलकार है।

उन्मीलित

लक्षण—जब दो पदार्थों का गुण (धर्म) समान होने के कारण एक वस्तु दूसरे मे विलीन हो जाये परन्तु उसकी किसी विशेपता के कारण उनका भेद प्रकट हो जाये तब उन्मीलित अलकार होता है।

उदाहरण—"समुझ्यो परत सुगन्ध ते, तन केसर को लेप।"

इस पद्य में केसर और शरीर के समान रग वाला होने के कारण मिल जाने से सुगन्ध से केसर का ज्ञान हो गया, अत. यह उन्मीलित अलकार है।

परिवृत्ति

लक्षण—जब किसी वस्तु के लेने-देने का चमत्कार पूर्ण वर्णन हो, वहाँ परिवृत्ति अलकार होता है।

उदाहरण—"अधिक लाभ के लोभ सों, क्रूर त्यागि सब नेह।
बदले इन आभरन में, तुम बेच्यो मम देह॥"

यहाँ किसी को कोई वस्तु (आभरण) के लेने का चमत्कारपूर्ण वर्णन है। इसलिये परिवृत्ति अलकार है।

सम

लक्षण—एक समान वस्तु तथा घटनाओ के वर्णन मे 'सम' अलकार होता है।

उदाहरण—"चिर जीवौ जोरी जुरै क्यों न स्नेह गम्भीर।
को घटि ये वृषभानुजा, वे हलधर के वीर॥"

इसमें राधा और कृष्ण की समानता है। इसलिये यह सम अलकार है।

उदात्त

लक्षण—जहाँ किसी महापुरुष के चरित एव समृद्धि-सम्पत्ति का चित्ता-

कर्षक वर्णन हो, वहाँ उदात्त अलकार है।

उदाहरण—"नन्द द्वार जे भोगन आया।
बहुरो फिर याचक न कहाया॥"

इसमे नन्द की स्तुति है, इसलिए उदात्त अलकार है।

व्याजोक्ति

लक्षण—जहाँ किसी बात का भेद प्रगट होने को हो पर उसे किसी बहाने से छिपा लिया जाए, वहाँ व्याजोक्ति अलकार होता है।

उदाहरण—ललन-चलन सुन पलन में, असुआं झलके आय।
भई लखात न सखिन हुँ, झूठे ही जमुहाय॥

जब नायिका ने देखा कि नायक जा रहा है तो उसकी आँखो में आँसू आ गए। सखियाँ पास ही खडी थी। नायिका ने सोचा कही भेद न खुल जाए झट से झूठ-मूठ जम्हाई लेने लगी। इस द्वारा उसने सत्य को छिपाया, अत' व्याजोक्ति अलकार है।

स्वभावोक्ति

लक्षण—जहाँ पशु, पक्षी, बालक आदि का स्वाभाविक एव चमत्कार-पूर्ण वर्णन हो वहाँ स्वभावोक्ति अलकार होता है।

उदाहरण—चढकर, गिरकर, फिर उठकर तू कहता अमर कहानी।
गिरि के अचल में करता कूजित कल्याणी वाणी।

इसमे झरने का अत्यन्त स्वाभाविक वर्णन कल्पना मे डुबाकर किया है, इसलिए स्वभावोक्ति अलकार है।

उभयालंकार

लक्षण—जब एक पद मे एक से अधिक अलकार हो, उसे उभयालकार कहते है। इसके दो भेद है —

१ संसृष्टि—जब दो अलकार किसी उक्ति मे एक दूसरे के विना स्वतन्त्र रूप मे मिले रहते है और आसानी से पहचाने जाते हैं तो उनके मेल को संसृष्टि अलकार कहते है।

उदाहरण—"खजन, मधुकर, मीन, मृग यह सब एक समीप।
घूंघट पट मे देखिये पाले मदन महीप॥

इस दोहे के पूर्वार्द्ध मे उपमेय आँखो का वर्णन न होकर केवल उपमान खजन, मधुकर आदि का वर्णन होने से रूपकातिशयोक्ति अलकार है और उत्तरार्द्ध मे मदन-महीप के आरोप होने से रूपक अलकार है। इन दोनो का परस्पर कोई सम्बन्ध नही, अतः यह ससृष्टि है।

२ सकर—जहाँ एक ही पद्य मे अनेक अलकार दूध और पानी की तरह मिले होते हैं।

उदाहरण—"नाक का मोती अधर की कान्ति से,
बीज दाडिम का समझ कर भ्रान्ति से।
देखकर सहसा हुआ शुक मौन है,
सोचता है अन्य शुक यह कौन है।"

नाक के मोती ने ओठ के गुण को ग्रहण कर लिया इसलिए तद्गुण अलकार बन गया और तोते को दूसरे तोते का भ्रम हुआ तो भ्रातिमान् अलकार बन गया। इसमे दोनो अलकार मिले हुए हैं। इसलिए यह सकर अलकार है।

अलंकार : एक दृष्टि में

नीचे अलंकारो की संक्षिप्त सूची दी जा रही है। विद्यार्थीगण की सुविधा के लिये परीक्षा मे शीघ्र स्मरण रखने के लिए छोटे-छोटे उदाहरण दिये है। आवश्यक अलंकारो के साथ चिन्ह दे दिये है।

अलंकार	लक्षण	उदाहरण
अनुप्रास	वर्णों की क्रम से आवृत्ति, चाहे स्वर भेद हो	'कलिका कल था कुंजन में'।
*यमक	शब्दो की आवृत्ति, अर्थ भिन्न भिन्न	'कनक कनक ते सौ गुनी, मादकता अधिकाय'।
*पुनरुक्तवदाभास	भिन्न आकार वाले, समानार्थं प्रतीत होने वाले शब्दो की आवृत्ति, अर्थ भिन्न हो	'अली भौर गूंजन लगे'।
पुनरुक्ति प्रकाश	रोचकता के लिये शब्दो की आवृत्ति	'जाती जाती गाती गाती कह जाऊँ यह बात'।
*श्लेष	शब्द एक, अर्थ अनेक।	'ज्यो रहीम गति दीप की कुल कपूत की सोय। बारे उजियारो करै, बढे अंधेरो होय'।
वक्रोक्ति	वक्ता के अभिप्राय को श्रोता अन्य समझ ले	'को तुम ? है घनश्याम हम, तो बरसो कित जाय'।
*उपमा	उपमेय और उपमान की परस्पर समता	'तीर सी लगती थी वह तान'।
*मालोपमा	एक उपमेय की अनेक उपमानो से समता	'खंजरीट, मृग, मीन से ब्रज वनितन के नैन'
उपमेयोपमा	एक उपमा के उपमेय, उपमान अगली उपमा मे बदल दिये जायें	'राम सम शम्भु, शम्भु सम राम है'।
अनन्वयोपमा	उपमेय और उपमान का एक शब्द से कथन	'भारत के सम भारत है'।

अलंकार	लक्षण	उदाहरण
*प्रतीप	—प्रसिद्ध उपमेय को उपमान और प्रसिद्ध उपमान को उपमेय	'तव प्रताप सम सूर्य है'।
*व्यतिरेक	—उपमेय मे उपमान से उत्कर्ष	'साधु ऊँचे शैल सम, किन्तु प्रकृति सुकुमार'।
*रूपक	—उपमेय मे सादृश्य के कारण उपमान का आरोप	'चरण-कमल बन्दौ हरिराई'।
*उत्प्रेक्षा	—उपमेय मे उपमान की सम्भावना	'मनो चली आगन कठिन ताते राते पाय'।
अपह्नुति	—उपमेय मे निषेधपूर्वक उपमान का आरोप	'यह न भग है तव चरण की रेखिया है'।
स्मरण	—किसी वस्तु को देखकर पूर्व अनुभव की हुई वस्तु का स्मरण	'मकरालय मर्याद लखि सुधि आवत श्री राम'।
*भ्रान्तिमान्	—उपमेय मे उपमान का मिथ्या ज्ञान	किंशुक फूल जानकर झटका भवरा शुक की लाल चोच पर। तोते ने भी चोच चलाई, जामुन का फल उसे समझ कर"।
सन्देह	—वस्तु को देखकर सुन्दर सन्देह का वर्णन	कोई पुरन्दर की किंकरी है या सुर की सुन्दरी है।
उल्लेख	—एक वस्तु का अनेक प्रकार से वर्णन	'तू रूप मे किरण, सौन्दर्य है सुमन मे'।
*प्रतिवस्तूपमा	—उपमेय और उपमान दो वाक्य, एक धर्म परन्तु दो शब्दो द्वारा	सोहत भानु प्रताप सो, लसत सूर धनुबान।
*दृष्टान्त	—उपमेय और उपमान वाक्यो के धर्मो मे बिम्ब-प्रतिबिम्ब भाव	"रहिमन असुवा नयन ढरि, जिय दुख प्रकट करेई जाहि निकारो गेह ते, कसन भेद कहि देइ"।

अलंकार	लक्षण	उदाहरण
उदाहरण	सामान्य से विशेष का और विशेष से सामान्य का समर्थन	'सिमिटि सिमिटि जल भरहि तलावा, जिमि सदगुण सज्जन पहु आवा'।
*निदर्शना	जहाँ उपमेय वाक्य मे उपमान वाक्य का आरोप हो	'मूरख को समझाना हथेली पर सरसो जमाना है'।
अतिशयोक्ति	वस्तु का बढा चढा कर वर्णन	देखो दो दो मेघ वरसते मै प्यासी की प्यासी।
अत्युक्ति	वस्तु का बढा-चढा कर मिथ्या वर्णन करना—	'नाजुक कमर लचक गई फूलो के हार से'।
व्याजस्तुति	निन्दा से स्तुति और स्तुति से निन्दा ज्ञान—	'अहो मुनीस महा भट मानी'।
तुल्ययोगिता	जहाँ केवल उपमेयो या उपमानो का एक धर्म से कथन—	'श्री रघुवर के नख चरण, मुख, सुपमा, सुख खान'।
दीपक	उपमेयो और उपमानो का एक धर्म से कथन—	'ढोल, गवार, शुद्र, पशु, नारी, ये सब ताडन के अधिकारी'।
अप्रस्तुतप्रशंसा	अप्रस्तुत के वर्णन से प्रस्तुत की प्रतीति—	"नहि पराग नहि मधुर मधु, नहि विकास इहि काल। अलि कलि ही सो वन्ध्यो, आगे कौन हवाल"।
सहोक्ति	जब वाक्य मे सह, साथ, सग शव्दो का चमत्कारपूर्ण वर्णन हो—	विजय सखी के सग शुद्ध सीता को लेकर।
विनोक्ति	विना आदि शव्दो से किसी पदार्थ के दूसरे पदार्थ से सुन्दर या असुन्दर होने का वर्णन—	'विन घन निर्मल सरद नभ'।

अलंकार	लक्षण	उदाहरण
समासोक्ति	प्रस्तुत के वर्णन से अप्रस्तुत की प्रतीति—	'कुमुदिनिहु प्रमुदित भई, साँझ कलानिधि जोय' ।
परिकर	जहाँ विशेषणो का साभिप्राय वर्णन हो—	'रखिये अबला रत्न अबला की लज्जा' ।
परिकरांकुर	विशेष्य पद का साभिप्राय होना—	'करुणानिधे, करुणा तुम्हारी हाय ! यह कैसी अहो'
अर्थ श्लेष	एक अर्थ वाले शब्दो के अनेक अर्थ—	नाहि नाहि करे (कजूस और दानी दोनो के पक्ष मे)
पर्यायोक्ति	घुमा फिरा कर अभीष्ट अर्थ को कहना—	'अब इस समय तुम निज जनो को एक बार निहार लो' ।
विरोधाभास	विरोध न होने पर विरोध की प्रतीति—	'शान्ति में है अशान्ति का वास' ।
विभावना	कारण के विना कार्य का होना—	'विनु पद चले, सुने विनु काना' ।
विशेषोक्ति	कारण के होने पर कार्य का न होना—	'देखो दो दो मेघ बरसते मैं प्यासी की प्यासी' ।
असंगति	कारण कही हो और कार्य कही हो—	'तुमने पैरो पर लगाई मेहदी मेरी आँखो मे समाई मेहदी' ।
अन्योन्य	दो पदार्थ एक दूसरे की शोभा बढायँ—	'सर की शोभा हस, राजहस की ताल' ।
विषम	दो बे मेल वस्तुओ का सयोग—	'कहँ कुम्भज कहँ सिन्धु अपारा' ।
अर्थान्तरन्यास	सामान्य का विशेष से और विशेष का सामान्य से समर्थन, वाचक शब्द नही—	'टेढ जानि सका सब काहू, वक्र चन्द्रमहि ग्रसे न राहू' ।

अलंकार	लक्षण	उदाहरण
प्रत्यनीक	व्यवहार करने वाले सम्बन्धी के साथ वैसा ही व्यवहार करना।	'रावन दूत हमहि सुनि काना' कपिन बाँधि दीने दुख नाना'।
अर्थापत्ति	एक अर्थ से दूसरे अर्थ की स्वतः सिद्धि—	'सिंह पछार्यो बाहुबल, कहा स्यार की बात'।
काव्यलिंग	समर्थनीय अर्थ का समर्थन—	'कनक कनक ते सौ गुणी मादकता अधिकाय। उहि खाये बौराय जग, इहि पाये बौराय'।
परिसंख्या	अन्य स्थान में निषेध कर एक ही स्थान में पदार्थों का वर्णन—	'कारीगरी है शेष अब साथी बनाने में यहाँ।
प्रतिषेध	निषेध होने पर दुबारा निषेध करना—	'यह खेल पासों का नहीं प्राण का प्रण आज है'।
कारण माला	कार्य कारण की श्रृंखला का होना पाया जाये—	'दुख पाप ते, पाप सु दारिद ते।'
एकावली	विशेष्य विशेषण भाव की श्रृंखला का होना—	'विद्या वही जा ते ज्ञान बढ़ै अरु ज्ञान वही कर्त्तव्य सुझावै।'
सार	उत्तरोत्तर अपकर्ष या उत्कर्ष होना—	'शिला कठोरी काठ ते, ताते लोह कठोर।'
यथासंख्य	पदार्थों का जिस क्रम से वर्णन उसी क्रम से अन्वय—	'अमी हलाहल मद भरे, सेत श्याम रतनार। जियत मरत झुकि-झुकि परत, जेहि चितवत इक बार।

अलंकार	लक्षण	उदाहरण
पर्याय	अनेक वस्तु की एक और एक की अनेक स्थानो पर स्थिति—	'जहा लाल साडी थी तन में, बना चर्म का चीर वहाँ।'
तद्गुण	अपना गुण छोडकर समीपवर्ती वस्तु का गुण ग्रहण करना—	'नाक का मोती अधर की कान्ति से बीज दाडिम का समझ कर भ्रान्ति से।'
पूर्वरूप	समीपवर्ती वस्तु का गुण ग्रहण कर भी अपना गुण फिर ग्रहण करना—	'नल बल जल ऊँचो चढै, अन्त नीच को नीच।'
अतद्गुण	समीपवर्ती वस्तु का गुण ग्रहण न करना—	'कहा होत पय पान कराये, बिष नहि तजत भुजग।'
उन्मीलित	दो वस्तुओ के मिल जाने पर कारण विशेष से किसी वस्तु का स्पष्ट होना —	'समुझ्यो परत सुगध ते तन केसर को लेप।'
परिवृत्ति	लेने देने का चमत्कारपूर्वक वर्णन—	'ले त्रिलोक की साहिबी, दे धतूर को फूल।'
सम	समान वस्तुओ का चमत्कारपूर्वक वर्णन—	'जस दुलह तस बनी बराता।'
उदात्त	महापुरुष के चरित या सम्पत्ति का आकर्षक वर्णन—	'नन्द द्वार जे मागन आया' बहुरो फिर याचक न कहाया।'
व्याजोक्ति	सच्ची बात के प्रकट होने पर उसे छिपाना—	'ललन चलन सुन पलन मे असुवा झलके आय। भई लखात न सखिन हूँ, झूठे ही जमुहाय।'

अलंकार	लक्षण	उदाहरण
स्वभावोक्ति	—पशु, पक्षी, बालक का स्वाभाविक और चमत्कार-पूर्ण वर्णन—	'चढकर, गिर कर, फिर उठकर, कहता तू अमर कहानी।'
संसृष्टि	—दो अलकारो का एक ही पद्य मे तिल-चावल की तरह आना—	'कनक-कनक ते सौ गुणी'—
संकर	—दो अलकारो का एक ही पद्य मे दूध-पानी की तरह आना—	'नाक का मोती अधर की कान्ति से'

———

छन्द शिक्षा

प्रश्न :—छन्द का लक्षण और उपयोगिता बताते हुए साहित्य में छन्दों का स्थान निर्धारित कीजिए।

उत्तर :—छन्द का लक्षण —छन्द उस रचना का नाम है जिसमे अक्षरों मात्राओ और यति (विराम) का नियम हो। वास्तव मे वाक्य रचना के दो भेद होते हैं।

(१) गद्य (२) पद्य

गद्य :—जिस वाक्य रचना मे अक्षर मात्रा आदि का कोई विशेष नियम न हो और जहां पर किसी वाक्य की समाप्ति को सूचित करने के लिए ही अन्त मे यति दी जाती हो उसे गद्य कहते है। गद्य में वक्ता या लेखक मात्राओ और अक्षर के बन्धन से परे होता है। अपने भाव या विचार को प्रकट करने के लिए वह वाक्य को अपनी इच्छा के अनुसार छोटे से छोटा बना सकता है और बड़े से बड़ा।

पद्य :—छन्दोबद्ध रचना को पद्य कह सकते हैं अर्थात् लेखक या वक्ता को अपना अभिप्राय प्रकट करने के लिए जब निश्चित मात्रा और अक्षरो में ही वाक्य को बांधना पड़ता है और वाक्य को सुन्दर तथा प्रभावशाली बनाने के लिए जब स्थान-स्थान पर यति करनी पडती है वही रचना पद्य बन जाती है।

गोदान, चेतन, साहित्यालोचन आदि पुस्तकें गद्य मे आयेंगी और साकेत, कामायनी तथा अन्य कविता सग्रह पद्य मे आएँगी। छन्दो का सम्बन्ध पद्य के साथ है गद्य के साथ नही।

साहित्य मे छन्दो का स्थान निर्धारित करने से पहले यह देखना अत्यन्तावश्यक है कि छन्दो की क्या उपयोगिता है क्योकि किसी साहित्यिक विद्या का स्थान निश्चित तभी हो सकता है जबकि उसका लाभ प्रभाव आदि स्पष्ट हो जाये।

उपयोगिता :—छन्दो की निम्नलिखित उपयोगिता है।

(१) प्रभावोत्पादक शक्ति :—छन्दोबद्ध रचना के द्वारा एक व्यक्ति अपने विचारो या भावो का प्रभाव दूसरो पर गद्य की अपेक्षा अधिक डाल सकता है क्योकि छन्दो मे लय होती है तथा अन्त मे तुक भी होती है। सुनने वालो पर इसका प्रभाव स्वमेव सीधे हृदय पर होता है। इसलिए अच्छे वक्ता अपना भाषण देते समय अधिक प्रभाव डालने के लिए बीच २ मे दोहे आदि पद्य बोला करते हैं।

(२) प्राचीन साहित्य की सुरक्षा—इस बात का श्रेय हम अकेले छन्द शास्त्र को ही देंगे कि इसके द्वारा वेद आदि प्राचीन धर्म ग्रंथ आज तक भी जीवित हैं क्योकि उन्हें हमारे प्राचीन ऋषियो ने छन्दो मे बांध दिया था आज भारत मे मुद्रण कला का प्रसार हो चुका है परन्तु सहस्त्रो वर्ष पहले जब कागज इत्यादि भी नही थे और लोगो को मौखिक रूप से किसी विषय को रचना पडता था तो उस विषय मे परिवर्तन होना या उसका रूप बदल जाना असम्भव नही था। ऐसे समय मे छन्द शास्त्रो ने हमारे प्राचीन ग्रंथो को जीवित रखा।

(३) उच्चारण की शुद्धता—छन्दो के ज्ञान द्वारा कविता पाठ मे उच्चारण दोष नही आ सकता क्योकि छन्द ही किसी अक्षर की लघु या गुरु आदि मात्रा निश्चित करते हैं। कौन सा लघु अक्षर दीर्घ बोलना है और कौन सा दीर्घ अक्षर ह्रस्व मात्राओ मे बोलना है। इसका ज्ञान हमें छन्द शास्त्र से ही हो सकता है।

(४) सरसता—छन्द के कारण ही लेखक की वाणी मे रस आ जाता है और कई विद्वान् तो यहाँ तक कहते हैं कि छन्दो के कारण ही गीत मे मधुरता का सचार अधिक मात्रा मे हो सकता है। सगीत का सम्बन्ध भी छन्द के साथ साथ है तथा लय तुक गीत के कारण छन्दो मे सरसता आना स्वाभाविक है। कुछ भी हो यह तो निश्चित है कि गद्य की अपेक्षा छन्दोबद्ध रचना सुन्दर होती है।

(५) साहित्य मे स्थान—उपर्युक्त विवेचन से हमे यह बात कहते हुए तनिक भी संकोच नही होता कि साहित्य मे छन्दो का महत्त्वपूर्ण स्थान है।

वास्तव मे देखा जाय जो स्थान शरीर मे वस्त्रो का है वही स्थान काव्य मे छन्दो का है। छन्द ही कविता रूपी सुन्दरी के रूप को अधिक चमत्कृत करते है तथा उसके शारीरिक दुगुणों को ढांप भी लेते हैं। जिस प्रकार वस्त्रो के नये-नये फैशन चलते रहते हैं जो कि मनुष्य की सजावट को अधिक आकर्षित करते हैं ठीक उसी प्रकार छन्दो मे भी नये प्रयोग होते रहने चाहिये क्योकि इसी से ही कविता रूपी कामनी का सोंदर्य विकसत तथा निखर सकता है।

प्रश्न—निम्नलिखित पर संक्षिप्त नोट लिखिए।

अक्षर, मात्रा, यति, यतिभंग, गीत, पाद, क्रमध्वनि, तुक, जाति।

उत्तर—अक्षर—अक्षर उसे कहते है जो बिना किसी सहायता के बोला जा सके। इसके दो भेद है (१) स्वर (२) व्यञ्जन।

छन्द शास्त्र मे स्वरो की सख्या को ही अक्षरो की संख्या मानी जाती है। यथा :—

"गिरी जा पति मो मन भायो"

इसमे दस स्वर हैं इसीलिए हम इसमे दस अक्षर भी कहते है।

(२) मात्रा—प्रत्येक अक्षर के उच्चारण मे जो काल व्यतीत होता है उस काल को ही मात्रा कहते हैं। एक मात्रा वाले ह्रस्व दो मात्रा वाले दीर्घ कहलाते है। छन्द शास्त्र मे व्यञ्जनों की पृथक गणना नही होती इसलिये व्यजन ह्रस्व हैं और न दीर्घ। यथा —

।ऽ	।।	ऽ।	।ऽ	।।	ऽ।
भजो	इक	राम	तजो	सब	काम

इसमें भ, इ, क, म, त, स, ब, म की एक एक मात्रा है और जो, रा, जो, का, की दो दो मात्रा हैं।

(३) यतिः—छन्द बोलते समय स्थान २ पर ठहरना पडता है। उस ठहरने को यति कहते हैं। यति का अर्थ है विराम। वैसे तो एक शब्द के बाद दूसरा शब्द बोलते समय कुछ समय ठहरने मे लग ही जाता है परन्तु यदि उससे अधिक समय ठहरना पडे उसे यति कहेंगे। यति प्रायः वाक्य के अन्त में दी जाती है परन्तु लम्बे २ वाक्यो के बीच मे भी यति देनी पडती है। यति देने के दो उद्देश्य होते है (१) भाव को स्पष्ट करना। (२) प्रभावोत्पादन

करना। यदि किसी वाक्य में यति न दी जाय तो अर्थ समझने में अति कठिनता हो जाती है। यथा :—

"उसे रोको मत जाने दो"

इस वाक्य में यदि रोको पर यति दी जाये तो अर्थ हो जायेगा इसे जाने मत दो और यदि मत पर यति दी जाए तो अर्थ हो जायेगा जाने दो।

(४) यति भंग।—यति किसी शब्द के बीच में नहीं होनी चाहिये। क्योंकि पद्य के मध्य में यति होने से यति भंग दोष माना जाएगा। यति भंग दोष से अर्थ की रोचकता समाप्त हो जाती है।

यथा—"हर हरि केशव मदन मो, हन घनश्याम सुजान"

क्योंकि मोहन शब्द के बीच में यति डाल दी गई इसलिये यहाँ पर यति दोष है।

(५) पादः—किसी पद्य के चतुर्थ अंश को पाद कहते हैं। परन्तु छन्द शास्त्र में ऐसा नहीं माना गया, वास्तव में देखा जाये तो किसी पद्य के एक अंश को पाद कहेंगे। जिस प्रकार छप्पय में छः पंक्तियाँ होती हैं। प्रत्येक षष्टांश को पाद कहेंगे।

(६) गति.—छन्द की स्वाभाविक चाल को गति कहते हैं। जिस कविता में बनावट होती है वहाँ गति नहीं आ सकती। गति का तात्पर्य है "लय पूर्ण पाठ प्रवाह"। यही एक कविता का विशेष गुण है। यदि इस लय का पूर्ण पालन न किया गया हो तो कवित्व बहुत कुछ नष्ट हो जाता है। यथाः—

"जो घनी भूत पीड़ा थी मस्तक में स्मृति सी छाई
दुर्दिन में आँसू बन कर वह आज बरसने आई"

इस पद्य में लय भी है। मात्रिक छन्द भी है परन्तु यदि इसे यों लिखा जाये।

"मस्तक में स्मृति सी छाई जो घनी भूत पीड़ा थी
वह आज बरसने आई दुर्दिन में आँसू बन कर।"

तो भी इस में मात्राएँ तो पूरी हैं यति भंग भी नहीं हुआ परन्तु जो

सौंदर्य पहले पद में था वह नही रहा। वास्तव मे जिस पद्य में गति निर्वाह जितना सुन्दर और स्वाभाविक होगा उतना ही वह सुनने वालो के लिये प्रिय होगा।

(७) क्रम—लघु और गुरु लगाने के नियम को क्रम कहते है। वार्णिक छन्दो मे गणो के कारण यह क्रम स्वंयमेव आ जाता है। परन्तु मात्रिक छन्दो मे भी इस क्रम की आवश्यकता पडती रहती है। यह तो सत्य ही है कि क्रम मे रखी सभी वस्तुएँ शोभायमान होती हैं।

(८) ध्वनि.—(Sound) किसी पाद की सब से छोटी इकाई को ध्वनि कहते हैं। छन्द शास्त्र मे एक समय मे बोली गई आवाज को ध्वनि माना गया है। उर्दू मे आवाज भी कहते हैं।

(९) तुक किसी पद्य के प्रत्येक पाद में आने वाले अक्षरों की समानता को तुक कहते हैं। आजकल भिन्न तुकान्त रचनाएँ भी चल पडी हैं। तुक के द्वारा कविता रोचक और प्रभावोत्पादक हो जाती है। तथा तुक से याद करने मे भी बडी सहायता मिलती है। परन्तु कोरी तुक ही कविता कदापि नही कही जा सकती है। कविता का मुख्य प्राण तो भाव है।

(१०) जाति—किसी भी एक छन्द को व्यक्ति कहा जा सकता है परन्तु वह छन्द जिस श्रेणी का होता है उसे जाति कहा जाता है। वार्णिक छन्दो की एक से लेकर ३२ तक जातियाँ मानी जाती है। एक-एक जाति के कई छन्द होते हैं। यहाँ तक कि हजारो तक हो जाते हैं।

प्रश्न—छन्द शास्त्र का सक्षिप्त विकास बताते हुए भारतीय छन्द शास्त्र पर विदेशी छन्द शास्त्र के प्रभाव की चर्चा कीजिए।

उत्तर—वेदो को पढने के लिये षडागो मे छन्द शास्त्र का भी उल्लेख है और ऋक्वेद मे तो कुछ छन्दो का वर्णन भी है इससे यह स्पष्ट ज्ञात होता है कि वैदिक मन्त्रो के लिखने के समय मे छन्दो का आरम्भ हो चुका था। उनका शास्त्रीय अध्ययन इतना अधिक नहीं हुआ था। हाँ आगे चल कर निदान सूत्र सांखायन गोत्र सूत्र, तथा ब्राह्मण ग्रन्थो मे छन्दो का शास्त्रीय विवेचन हुआ है। परन्तु यह सब छन्द अलौकिक थे। सस्कृत के लौकिक पद्य साहित्य मे सब से प्राचीन और प्रमाणिक ग्रन्थ "छन्द सूत्र" मिलता है। इसे पिंगल ऋषि ने लिखा। इसका प्रचार इतना हुआ कि छन्दों

को ही पिंगल कहने लग गये जितना प्रचार व्याकरण शास्त्र मे पाणनीय लिखित 'अष्टाध्यायि" का हुआ उतना ही छन्द शास्त्र मे "छन्द सूत्र" का हुआ। इस ग्रन्थ मे ही लघु गुरु तथा गणो के नाम करण की प्रक्रिया आरम्भ हुई। तत्पश्चात् भरत मुनि ने अपने नाट्य शास्त्र मे छन्दो का विस्तृत वर्णन किया है। अग्नि पुराण और वृहत्संहिता मे भी छन्द शास्त्र पर पर्याप्त लिखा गया है।

लोक प्रिय ग्रन्थो मे दो तीन लेखको के ग्रन्थ वर्णनीय हैं।

(१) केदार भट्ट कृत "वृत्तरत्नाकर"

(२) गगा दास कृत "छन्दोमजरी"

(३) कालिदास कृत 'श्रुत वोध"

इन ग्रन्थो की लोक प्रियता का सब से वडा कारण यह है कि इन मे वर्णित छन्दो के लक्षण और उदाहरण एक है। इससे विद्यार्थियो मे इस ग्रन्थ का वडा प्रचार हुआ। कारण विद्यार्थियो को दुगना परिश्रम करने से मुक्ति मिली। वैसे तो जयदेव ने "जयदेव छद "जय कीर्ति ने "छन्दोऽनुशासन और सस्कृत साहित्य मे कवि दपर्ण "छन्द सार" "वृतदीपिका" आदि अनेको रचनाएँ प्राप्त हैं।

हिन्दी साहित्य मे छन्द ग्रन्थो की रचना सस्कृत के आधार पर हुई क्योकि निम्नलिखित है।

(१) चिन्तामणि का छन्द विचार
(२) मतिराम का छन्दसार
(३) भिखारी दास का छन्दोऽर्णव
(४) पद्माकर का, छन्दोमजरी
(५) ज्वालास्वरूप का, रुद्र पिंगल
(६) ऋषिकेश का, छन्दोबोध
(७) गदाधर का, वृत्तचन्द्रिका
(८) सुखदेव मिश्र का, वृत्त विचार
(९) रामकिशोर का, छन्दभास्कर
(१०) रघुवर दयाल का, पिगल प्रकाश
(११) राम प्रसाद का, छन्द प्रकाश
(१२) जगन्नाथप्रसाद का, छन्द प्रभाकर

छन्दो के प्रयोग मे हिन्दी मे पर्याप्त मात्रा मे परिवतर्न हुआ। पुराने छन्दो का स्थान नए छन्दो ने ले लिया। वास्तव मे देखा जाए तो हिन्दी कविता मे ऐसे छन्दो का प्रयोग अधिक हुआ है जो सस्कृत काव्य मे नही हैं। सवैये, चौपाई, दोहे आदि छन्द हिन्दी साहित्य मे वहुत लोक प्रिय हुए।

प्रसिद्ध विद्वान "जैकोवी" केमन मे अपभ्रंश का दूहा छन्द यूनानी के एक डोई छन्द का एक रूप है । परन्तु इसमे बडा मतभेद है । यह वात तो मान्य है कि जाति का दूसरी जाति पर कला कौशल का प्रभाव पडता है । भारतवर्ष पर भी इस प्रकार का प्रभाव पड सकता है । परन्तु जब तक प्रमाणो से यह वात सिद्ध न हो जाये तव तक उसे स्वीकार नही किया जा सकता ।

हिन्दी साहित्य के रीति काल और भक्ति काल के साहित्य को देखने से ज्ञात होता है कि उस पर विदेशी छन्द शास्त्र का प्रभाव नही पडा । जायसी और तुलसी की दोहा और चौपाई की शैली सूर और मीरा के गीत भूषण देव आदि की कवित्व शैली मे अपनापन है । वह शुद्ध भारतीय है । यह मानते हैं कि सूफी महात्माओ के विचार और फारसी कवियो का उक्ति वैचित्र्य हिन्दी रचनाओ मे मिलेगा । परन्तु जहाँ तक छन्दो का सम्वन्ध है वह विदेशी प्रभाव से मुक्त है । वास्तविक वात तो यह है कि भारतीय छन्द शास्त्र का स्वतन्त्र और वैज्ञानिक विकास हुआ । अनेको विदेशी छन्द स्वयमेव इसके अन्तर्गत आ जाते हैं । यथा—

"अरे ! उठ कि अव तो सवेरा हुआ
नहीं दूर तेरा अन्धेरा हुआ"

यह हिन्दी का शक्ति छन्द है । इस की तुलना उर्दू के इस पाद्याश से करें ।

"करीमा बवख्शाय वरहालमा, कि हस्तम असीरे कमन्दे हवा"

हमे इससे ज्ञात होगा कि दोनो की अलग-अलग सत्ता है । उर्दू और हिन्दी की कविता मे वर्ण साम्य नही है । हाँ ध्वनि अवश्य पाया जाता है । भारत मे उर्दू की कविता की लोक प्रियता का कारण उसके छन्दो को नही अपितु भावो को है । रसखान, रहीम, खुसरो, आदि कवियो ने भी पुराने छन्दो का प्रयोग किया ।

अंग्रेजो के आने पर भारत मे वडे २ परिवर्तन हुए । अंग्रेजी साहित्य के प्रभाव से हमारा साहित्य भी प्रभावित हुआ और छन्दो पर प्रभाव पड़ना भी स्वाभाविक ही था । आधुनिक युग के नवीन कवियो ने अंग्रेजी छन्दो-

शैली पर अपनी कविताओ की रचना की है। और अंग्रेजी कविता के प्रभाव के साथ-साथ हिन्दी मे छन्दो के निमार्ण मे नवीनता आई। अग्रेजी के अन्य और भी प्रभाव पडे।

(१) स्वच्छन्द छन्द:—हिन्दी साहित्य मे स्वच्छन्द छन्द को भी अपनाया गया। कई कलाकारो ने इसे बगला के द्वारा अपनाया। कईयो ने सीधे अग्रेजी से अपनाया। इस रचना पद्धति पर बड़ा वाद-विवाद हुआ। महाकवि निराला ने इस पद्धति को हिन्दी मे चलाया। सारे विरोधो को सहते हुए यह पद्धति हिन्दी मे चल निकली। निराला जी छन्दो से कविता की मुक्ति चाहते हैं। और इसीलिए उन्होने छन्दो के बन्धन को तोड दिया। आज स्वच्छन्द छन्द का बडा प्रचार है।

(२) भिन्न तुकान्त कविता:—यह भी अग्रेजी से हिन्दी मे आई। इसे हिन्दी मे आयोध्यासिंह उपाध्याय ने सर्वप्रथम आरम्भ किया। इस का भी हिन्दी मे प्रर्याप्त प्रचार हुआ। उपर्युक्त विवेचन से यह सिद्ध होता है कि अग्रजी छन्दो का तनिक प्रभाव हिन्दी साहित्य पर है। अन्यथा हिन्दी साहित्य की छन्द रचना सस्कृत के आधार पर ही है।

प्रश्न—वर्ण की परिभाषा करते हुऐ दग्धाक्षर और अशुभगण को समझाइये तथा यह भी बताओ कि ये कब अशुभ नही माने जाते।

उत्तर:—वर्ण छन्द शास्त्र मे स्वरो को ही वर्ण माना जाता हैं। वैसे तो व्याकरण मे स्वर और व्यजन दोनो को ही व्याकरण का भेद माना जाता है। परन्तु छन्द शास्त्र मे शब्द मे उतने ही वर्ण माने जाएँगे जितने उनमे स्वर हो जैसे "पथ्य" मे दो वर्ण हैं। क्योकि प में अ और थ मे अ है। वास्तव मे देखा जाये तो कोई भी व्यञ्जन स्वरो की सहायता के बिना बोला ही नही जा सकता और छन्दोशास्त्र मे तो स्वर के आधार पर ही सब कुछ चलता है।

दग्धाक्षर—(अशुभ अक्षर) दग्धाक्षर उन अक्षरो को कहते हैं जिन्हें छन्दशास्त्र के आचार्यों ने अशुभ माना है। यह वैसे तो उन्नीस हैं परन्तु पांच वर्णों को ही अधिक अशुभ माना जाता है। यथा—

'दीजो भूलि न छन्द के, आदि झ, ह, र, भ, ष, कोय।

दग्धाक्षर के दोष तें, छन्द दोष युक्त होय ॥" [भानु कवि]

झ, ह, र, भ, ष, यह पाँच दग्धाक्षर हैं। इन्हें किसी पद्य के आरम्भ मे न देना चाहिये। अन्यथा वह पद्य दोष पूर्ण माना जाएगा।

अपवाद—यदि किसी पद्य के प्रथम शब्द का प्रथम अक्षर दग्धाक्षर हो तथा वह शब्द देवता वाचक मगल सूचक या उस का पहला अक्षर गुरु हो तो दग्धाक्षर दोषयुक्त नही माना जायेगा। यथा·

"भूल जाता जो दियो को, पुण्य सो पाता।
डूब जाता है उसी का, जो फिरे गाता॥" (भानु)

यहाँ पद्य के प्रारम्भ मे दीर्घ उकार से युक्त होने के कारण "भ" दग्धाक्षर का दोष नही माना जाता।

"रघुवर विरहानल तपे, सह्य शैल के अन्त।
सुख सो सो शिशर मे, कपि, कोपे हनुमन्त॥"

इस पद्य मे पहले र दग्धाक्षर है परन्तु रघुवर शब्द देवता वाचक होने के कारण "र" दग्धाक्षर नही माना जाता।

"हिमगिरि के उत्तुङ्ग शिखर पर, बैठ शिला की शीतल छाह
एक पुरुष भीगे नयनो से, देख रहा था प्रलय प्रवाह"

इस पद्य मे दग्धाक्षर है परन्तु मंगल वाचक हिमालय शब्द होने के कारण "ह" दग्धाक्षर दोष युक्त नही माना गया।

अशुभ गण—गणो मे निम्नलिखित चार गण अशुभ माने जाते है।
(१) सगण (२) रगण (३) जगण (४) तगण।

परन्तु इन मे भी यदि देवता वाचक और मगल वाचक शब्द हा तो पद्य के आरम्भ मे इन गणो को अशुभ नहीं माना जाता। यथा:—

जगण

। ऽ ।

"मुकुन्द चाहे यदुवश के बने, रहे सदा या वह गोप वश के।"

इस मे आरम्भ मे जगण है परन्तु "मुकुन्द" शब्द देवतावाचक होने के कारण अशुभ नही माना जाता।

"महिमा उमडे लघुता न लड़े, जड़ता जकड़े न चराचर को
शठता सटके मुदिता भटके, प्रतिभा भटके न समादर को"

यहाँ महिमा शब्द मे पहले सगण है। परन्तु महिमा शब्द मगलवाचक होने के कारण दोष युक्त नही माना जा सकता।

प्रश्न .—छन्दो के भेदो का वर्णन करते हुए मात्रिक और वर्णिक छन्दों मे अन्तर स्पष्ट कीजिए। दोनो के चार चार उदाहरण देकर स्पष्ट कीजिए।

(प्रभाकर १९५२-१९५६)

उत्तर —छन्दो के मुख्यत. दो भेद हैं।

[१] वैदिक [२] लौकिक।

वैदिक छन्दो का प्रयोग अधिकतर वेदो मे हुआ है। इसके गायत्री आदि सात भेद हैं। परन्तु लौकिक छन्दो के भेदो की गणना कठिन है मुख्यता लौकिक छन्दो के दो भेद हैं।

[१] वर्ण छन्द [२] मात्रा छन्द।

वर्ण छन्द—जिन छन्दो मे अक्षरो की संख्या और लघु गुरु अक्षरो का स्थान होता है उसे वर्ण छन्द कहते हैं।

वर्ण छन्द तीन प्रकार का होता है [१] सम [२] अर्धसम [३] विषम।

समवर्ण का लक्षण—जिस पद्य के चारो पाद समान लक्षण से युक्त हो उसे समवर्ण कहते हैं। यथा द्रुतविलम्बित, मालिनी और छन्द।

अर्धसम वर्ण छन्द—जिस पद्य के प्रथम और द्वितीय पाद तथा तृतीय और चतुर्थ पाद समान हो उसे अर्धसम वर्णछन्द कहते हैं यथा—सुन्दरी आदि।

विषम वर्ण छन्द—जो न सम हो न अर्धसम हो उसे विषमवर्ण छन्द कहते हैं। जैसे आपीड आदि छन्द।

समवर्ण छन्द के भेद—समवर्ण छन्द के दो भेद है।

(१) साधारण वर्ण छन्द—साधारण वर्ण छन्द मे एक एक छन्द से २६ अक्षर तक माने जाते है। इसकी २६ जातियाँ होती है। इनमे छन्दो की संख्या करोडो तक पहुँच जाती है।

(२) दण्डक समवर्ण छन्द—उन्हें कहते हैं जो २६ अक्षरो से अधिक वाले होते हैं।

मात्रा छन्द :—जिन छन्दों मे मात्राओ की सख्या और लघु गुरु अक्षर का स्थान नियत होता है। उसे मात्रा छन्द कहते हैं।

मात्रा छन्द के भेद :—मात्रा छन्दो के भी निम्नलिखित तीन भेद हैं। (१) सम (२) अर्धसम (३) विषम।

(१) **सममात्रा छन्द** .—उसे कहते हैं जिसके चारो पाद समान मात्रा वाले होते हैं। यथा सखि, तोमर, हाकलि आदि।

[२] **अर्धसम मात्रा छन्द**—उसे कहते हैं जिसके प्रथम और तृतीय द्वितीय और चतुर्थ पाद की मात्रायें समान हो। यथा बरवै, अतिबरवै आदि।

[३] **विषम मात्रा छन्द**—जो सम भी न हो और अर्धसम भी न हो। उसे विषम मात्रा छन्द कहते है। यथा लक्ष्मी आदि।

सममात्रा छन्द के भी निम्नलिखित दो भेद है।

(१)**साधारण सममात्रा छंद** —उसे कहते हैं जिसमे एक से लेकर ३२ मात्राएँ हो।

(२) **दंडक सममात्रा छन्द** :—उसे कहते है जिसमे ३२ से अधिक मात्रायें हों।

मात्रिक छन्द	वार्णिक छन्द
(१) मात्रिक छन्दो मे मात्रायें निश्चित होती हैं। अर्थात् इनमे मात्रा के आधार पर ही छन्दो का निर्णय होता है। कही मात्राओ का क्रम भी निश्चित किया जाता है। इन छन्दो मे वर्णों की गणना नही होती।	(१) वर्ण छन्दो म वर्ण के आधार पर ही छन्द बनते हैं। मात्राओ की गणना नही होती। हो सकता है मात्राये भी समान हो।
(२) मात्रा छन्दो मे द्विकल, त्रिकल, पचकल आदि गणों का नियम चलता है।	(२) वर्ण छन्दो मे तीन अक्षरो का एक गण होता है। सगण भगण आदि।
(३) मात्रिक छन्दो मे ३२ मात्राओ तक का साधारण सम मात्रा	(३) वर्ण मे २६ अक्षरो तक का साधारण समवर्ण छन्द और २६ से

छन्द और ३२ से ऊपर मात्राओं का अधिक का दंडक वर्ण छन्द कहलाता दडक मात्रा छन्द माना जाता है। है।

वर्ण और मात्रा छन्दो के उदाहरण —

"तू मंगला मगलकारिणी है, सद्भक्त के धाम विहारिणी है
माता ! सदा पूर्ण पिता समेता, कीजै हमारे चित्त मे निकेता"
[रायदेवी प्रसाद "पूर्ण"]

इन्द्रवज्रा वर्ण छद है क्योंकि इसमे दो तगण, जगण दो गुरु के क्रम से ग्यारह अक्षर हैं।

"जो मै कोई विहग उड़ता देखती व्योम मे हू,
तो उत्कठा, वश विवश हो चित्त मे सोचती हूँ ॥
होते मेरे, विवल तन में, पक्ष जो पक्षियो से
तो यों ही मैं समुद्र उडती, श्याम के पास जाती ॥"

प्रिय प्रवास

यह मन्द्राकाता वर्ण छद है क्योंकि इसमे मगण, भगण नगण, तगण, तगण क्रम से दो गुरु है सत्रह अक्षर हैं।

मात्रिक छंद के उदाहरण :—

"हे देवो ! यह नियम सृष्टि मे अटल है,
रह सकता है वही सुरक्षित जिसमे बल है।
निर्बल है नहीं जगत मे कहीं ठिकाना,
रक्षा साधन उसे प्राप्त हो चाहे नाना ॥"

यह रोला मात्रिक छद है। इसमे चौबीस मात्रायें ग्यारह, तेरह पर यति है। इसलिए यह मात्रा छद है।

'अवधि शिला का उर पर था गुरु भार।
तिल-तिल काट रही थी दृग जलधार ॥

यह बरवै मात्रिक छद है क्योंकि इसके प्रथम और तृतीय पाद मे १२-१२ २-४ मे सात २ मात्राएं होती हैं।

इसी प्रकार वर्ण और मात्रा छंदो के अन्य दो दो उदाहरण दे देने चाहिए।

प्रश्न :—आधुनिक हिन्दी कविता मे कितने प्रकार के छन्दों का प्रयोग हो रहा है। उन सबका साधारण परिचय दीजिए। (जून १९५५)

या

नये प्रयोगों को दृष्टि मे रखते हुए हिन्दी छन्दो के कितने भेद किये जा सकते हैं। उन सबकी उदाहरण सहित व्याख्या कीजिए। (जून १९५४)

उत्तर—समय का चक्कर चलता जाता है। भिन्न भिन्न युगो की परिस्थितियाँ इस बदलने के लिए विवश करती रहती हैं। यह तो यथार्थ सत्य है कि ससार मे एक सा समय कभी नही रहा। बडी-बडी क्रान्तियाँ हुई। कई देश परतन्त्रता के कन्कट को उतार कर स्वतन्त्र हो गये और आधुनिक युग मे राजतत्र तथा अधिनायकतन्त्र से मुक्त होकर समाज प्रजातन्त्र मे विचर रहा है। आज मानव के बन्धन टूट चले हैं। ठीक इसी प्रकार आधुनिक युग का कलाकार भी किसी प्रकार के बन्धनो को स्वीकार करने से हिचकिचाता है। आज का कवि पुराने छदो के कडे नियम को तोड रहा है। क्योकि साहित्य का सम्बन्ध भी तो समाज के साथ है। यदि समाज मे परिवर्तन होगा तो साहित्य मे परिवर्तन होना अनिवार्य है। साहित्यकार जीवन ही की तो समीक्षा करता है। ठीक इसी प्रकार आज का कवि जहाँ पर भिन्न-भिन्न नए वादो को जन्म दे रहा है नई कल्पनाऐं नई भावनाए अपना रहा है, वहाँ पर उसने कलापक्ष मे भी नई शैली का प्रयोग करना आरम्भ कर दिया है। कई कलाकार कविता को छंदों के बन्धन से पूर्णतया मुक्त करना चाहते है। निराला जी ने भी छदो के प्रति विद्रोह किया। वह अपने मत का समर्थन करते हुए परिमल की भूमिका मे लिखते हैं 'मनुष्यो की मुक्ति की तरह कविता की भी मुक्ति होती है। मनुष्यो की मुक्ति कर्म के बन्धन से छुटकारा पाना है और कविता की मुक्ति छदो के शासन से अलग हो जाना है जिस प्रकार मुक्त मनुष्य कभी किसी के प्रतिकूल आचरण नही करता। उसके प्रत्येक कार्य औरो को प्रसन्न करने के होते है। .... इसी प्रकार मुक्त काव्य साहित्य अनर्थकारी नही होता, प्रत्युत उससे साहित्य मे एक प्रकार की स्वाधीन चेतना फैलती है जो साहित्य के कल्याण की ही मूल होती है।

परन्तु फिर भी हम यह नही कह सकते कि आधुनिक युग में छन्दो का पूर्णतया बहिष्कार हो गया है। वास्तविकता तो यह है कि छन्द कविता के वस्त्र है। युग के साथ नए-नए फैशन चल पड़ते हैं। वस्त्रो की सिलाई के नए-नए ढंग होते हैं। ठीक इसी प्रकार ये छन्द भी बदलते रहते हैं और इनमे नई-नई काँट-छाँट होती रहती है। इसीलिए प्रत्येक युग के छन्द एक दूसरे से भिन्न दिखाई देते हैं। वैदिक युग मे अलौकिक छन्दो का प्रयोग हुआ। संस्कृत साहित्य मे अधिकतर वर्ण छन्दो का प्रयोग हुआ। हिन्दी साहित्य के आरम्भ मे मात्रिक छन्दो को अपनाया गया और उनमे भी प्रत्येक समय एक जैसे छन्द नही चले। किसी ने दोहा अपनाया, किसी ने सोरठा, किसी ने गीतिका, किसी ने तोमर। हिन्दी मे एक प्रवृति यह भी आई कि इसमें लय और उच्चारण के अनुसार किसी अक्षर को लघु या गुरु माना गया। यथा :—

"अब हौं नाच्यो बहुत गोपाल"

उपरलिखित पक्ति मे गो की मात्रा लघु ही मानी जाएगी क्योकि उच्चारण काल मे गो को लघु पढा जाएगा।

आधुनिक युग मे तो पूर्ण रूप से क्रांति हुई। परन्तु बहुत से महान् कलाकार ऐसे भी हुए जिन्होने वर्ण और मात्रा छन्दो का प्रयोग पर्याप्त मात्रा मे किया है। आधुनिक कविता मे निम्नलिखित छन्दो का अधिकतर प्रयोग किया जा रहा है।

(१) मिलिन्दपाद (२) स्वछन्द छन्द (३) उभय छन्द (४) मुक्तक छन्द।

(१) मिलिन्दपाद—मिलिन्द का अर्थ भवरा है। भवरे के छ: पाँव होते है। इसलिये इस छन्द का नाम मिलिन्दपाद इसलिये रखा कि इसके भी छः चरण होते है अर्थात् जब किसी छद के चार चरणो के स्थान पर छः चरण रख दिये जायें तो उस छद को ही मिलिन्दपाद कहने लग जाते हैं। यथा :—

"अजन्मा न आरम्भ तेरा हुआ है।
किसी से नहीं जन्म मेरा हुआ" है।।
रहेगा सदा न अन्त तेरा न होगा।
किसी काल में नाश मेरा न होगा।।

खिलाड़ी खुला खेल तेरा रहेगा।
मिटेगा नही मेल मेरा रहेगा॥

यह भुजगप्रयात छद है परन्तु इसके छ चरण हैं इसलिए मिलिन्दपाद छद बन गया।

स्वछन्द छन्द—स्वछद छद मे हिन्दी जगत के प्रसिद्ध कवि सूर्यकांत त्रिपाठी निराला वडे सफल और सिद्धहस्त माने जाते हैं। इस छद मे मात्रा और वर्ण की संख्या का कोई मूल्य नही है। ना ही गणो आदि का नियम है। इसमे केवल लय और गति आदि का घ्यान रखा जाता है। यथा .—

"यहाँ हृदयवालों का जमघट, पीड़ाओ का मेला है
अर्ध्यदान है अपनेपन का, यह पूजा का वेला है
आज विस्मरण के आंगण मे जीवन की अवहेला है
जो आया है यहाँ प्राण पर वह अपने ही खेला है
फिर न मिलेगा ये दीवाने, फिर न मिलेगा इनका त्याग
जल उठ ! जल उठ ! अरे धधक उठ ! महानाश सी मेरी आग।

इस छद का प्रचार भी हिन्दी साहित्य मे बहुत हुआ। छायावादी और प्रगतिवादी कवियो ने इसे भी अधिक अपनाया।

उभय छन्द—इस छन्द में उभय का अर्थ होता है। दो अर्थात् जिसमे वार्णिक और मात्रिक दोनो छन्दों का समिश्रण हो उसे उभय छद कहते हैं। इस छन्द के चारो चरणों मे मात्रा और वर्णों की समानता का घ्यान रखा जाता है परन्तु इसमे क्रम नही होता इसलिये यह वर्ण छन्द नही कहा जा सकता यथा :—

"मैं ढूंढता तुझे था जब कुंज और वन में।
तू खोजता मुझे था दीन के वतन मे॥
तू आह बन किसी की, मुझ को पुकारता था।
मे था तुझे बुलाता संगीत में भजन मे॥

मुक्तक छन्द—मुक्तक छन्द मात्राओं के सहारे पर चलता है। इस छन्द की यह विशेषता है कि यदि किसी पद के मध्य मे ही वाक्य पूर्ण हो जाये तो

वही पर पूर्ण विराम लगा दिया जाता है। कई लोगो को यह भ्रम हो गया है कि स्वछन्द और मुक्तक दोनो एक ही हैं परन्तु वास्तव मे यह दोनो भिन्न २ रूपो मे व्यवहारित किये जाते हैं। इनमे मुख्य अन्तर यही है कि स्वछन्द और मुक्तक दोनो एक हैं परन्तु वास्तव मे यह दोनो भिन्न है। इनमे पर्याप्त अन्तर है। यह वात सत्य है कि दोनो शब्दो का अर्थ समान है परन्तु छदशास्त्र मे दोनो भिन्न २ रूपो मे व्यवहारित किये जाते हैं। इनमे मुख्य अन्तर यही है कि स्वछंद छद मे अन्तानुप्रयास चलता है और मुक्तक मे ऐसा नही। इसका उदाहरण निम्नलिखित है; जैसे—

"मानस सर मे विकसित नव अरविन्द का
परिमल जिस मधुकर छु भी गया हो।

इसके अतिरिक्त अन्य भी कई प्रकार के प्रयोग आजकल चल रहे हैं। परन्तु यह वात जान लेनी चाहिये कि जव कोई कलाकार पिछली सव छन्द रचना का वहिष्कार करके कोई नई शैली के आधार पर रचना करता है। तो एक नवीन छन्द का जन्म ही होता है। आखिरकार कलाकार अपनी कविता कामिनी को कोई न कोई परिधान तो अवश्य पहनाएगा ही। उसे नग्न तो रखने से रहा। इसलिये नवीन छन्दो की सृष्टि होती ही रहेगी और प्राचीन छन्दो के प्रति विद्रोह चलता ही रहेगा।

प्रश्न —प्रत्यय की परिभाषा करते हुए इसके भेदो का सोदाहरण वर्णन कीजिए।

उत्तरः—प्रत्यय शब्द का वाच्यार्थ ज्ञान है। छन्दो को जानने के लिये ज्ञान की आवश्यकता होती है।

परिभाषा —जिस साधन के द्वारा छन्दो के पृथक्-पृथक् रूप संख्या आदि का ज्ञान हो उसे प्रत्यय कहते हैं। इनके निम्नलिखित चार भेद हैं। (१) सख्या (२) प्रस्तार (३) नष्ट (४) उद्दिष्ट।

सख्या—सख्या प्रत्यय उसे कहते हैं जिसके द्वारा जातियो के भेदो की सख्या जानी जाये। इसके दो भेद हैं। (१) वर्णिक सख्या प्रत्यय (२) मात्रिक संख्या प्रत्यय।

(क) वार्णिक संख्या प्रत्यय—वार्णिक सख्या प्रत्यय वर्ण छन्दो की संख्या जानने के लिये काम मे आता है। यदि वर्ण जाति की सख्या निकालनी हो तो ऊपर जाति लिख कर नीचे से दो से आगे दुगना करते जायें यथा—

१	२	३	४	५	६	= जाति
२	४	८	१६	३२	६४	= सख्या

इस प्रकार छ वर्णों की जाति के छन्दो की सख्या ६४ मानी जाएगी।

मात्रिक सख्या प्रत्यय—जिस प्रत्यय के द्वारा मात्रिक, जाति के छन्दो की सख्या जानी जाती है उसको मात्रिक सख्या प्रत्यय कहते है। इसके निकालने की विधि यह है कि ऊपर छन्द मात्राएँ लिखकर नीचे की दो सख्याओ को जोड़ते हुए आगे लिखते जाएँ। यथा—

१	२	३	४	५	६	= जाति
१	२	३	५	८	१३	= सख्या

इस प्रकार छ मात्राओ की जाति के १३ भेद हुए।

(२) प्रस्तार प्रत्यय

प्रस्तार प्रत्यय उसे कहते है जिसके द्वारा छन्दो के भेदो की सख्या तथा उसके रूप का ज्ञान हो। इसके भी दो भेद हैं।

(१) वार्णिक प्रस्तार प्रत्यय (२) मात्रिक प्रस्तार प्रत्यय

इसके निकालने की विधि यह है कि वर्ण जाति का प्रस्तार करते समय पहले उतने ही वर्ण गुरु लिख लिये जाते हैं। उसके पश्चात् दूसरा रूप वनाते समय वाऐं तरफ से ऊपर के पहले गुरु के नीचे लघु लगा दिया जाता है तथा दाऐं ओर ऊपर की नकल करदी जाती है। तीसरे रूप मे दूसरे रूप के दूसरे गुरु वर्ण के नीचे लघु लगा दिया जाता है और दायें ओर ऊपर का वैसे ही उतार दिया जाता हे अर्थात् वायें ओर सदा लघु लगा कर वर्ण पूरे कर दिये जाते हैं। इसी प्रकार वाकी के रूप भी निकाल लिए जाते हैं। मात्रा प्रस्तार जानने के जितना मात्राओ का प्रस्तार जानना अभीष्ट हो उतनी मात्राओ के गुरु वना-कर ऊपर रख लिये जाते हैं। यदि कोई लघु वच जाये तो उसे वाऐं ओर लगा दिया जाता है और फिर वर्ण प्रस्तार की तरह चला जाता है। इसमें

एक बात का ध्यान विशेष रखा जाता है कि प्रत्येक रूप मे मात्राओ की संख्या पूरी होनी चाहिये। इनके उदाहरण निम्नलिखित हैं। यथा—

वर्ण प्रस्तार (चार वर्णों की जाति का)	मात्रा प्रस्तार (छ मात्रा की जाति का)
	ऽ ऽ ऽ
ऽ ऽ ऽ ऽ	I I ऽ ऽ
I ऽ ऽ ऽ	I ऽ I ऽ
ऽ I ऽ ऽ	ऽ I I ऽ
I I ऽ ऽ	I I I I ऽ
ऽ ऽ I ऽ	I ऽ ऽ I
I ऽ I ऽ	ऽ I ऽ I
ऽ I I ऽ	I I I ऽ I
I I I ऽ	ऽ ऽ I I
ऽ ऽ ऽ I	I ऽ I I I
I ऽ ऽ I	ऽ I I I I
ऽ I ऽ I	I I I I I I
I I ऽ I	१३ संख्या
ऽ ऽ I I	
I ऽ I I	
ऽ I I I	
I I I I	
१६ संख्या	

नष्ट प्रत्यय उसे कहते हैं कि जिसके द्वारा प्रस्तार के बिना ही किसी जाति के छन्द का कोई भी अज्ञात रूप जाना जा सके। इसके भी दो भेद हैं।

(१) वर्ण नष्ट प्रत्यय—मात्रिक नष्ट प्रत्यय।

(क) वर्ण नष्ट प्रत्ययः—उसे कहते हैं जो किसा वर्ण जाति के छन्द के रूप को बताये। इसका ढंग यह है यदि हम चौथी वार्णिक जाति का दशवाँ

रूप जानना चाहें तो दशवीं संख्या सम है। अत. सम के लिये (।) यह चिह्न लगायें। फिर आधा कर लें। पांचवी संख्या का विषम (ऽ) यह चिह्न लगावें (।ऽ) यह रूप बन गया। पाँच का आधा नही हो सकता एक मिला कर आधा कर लें। ३ भाग (ऽ) विषम रूप और जोड़ दो (।ऽऽ) यह रूप बन गया इसी प्रकार तीन मे एक जोड़ कर आधा कर लें। दो का फिर (।) समरूप जोड ले। कुल रूपो को मिला लें तो (।ऽऽ।) यह रूप बन जाएगा। बस यही दशवां रूप है। प्रस्तार मे देख लें।

(ख) मात्रा नष्ट प्रत्यय उसको कहते हैं जिसके द्वारा मात्रिक जाति के विशेष छन्द का रूप जाना जाए। इसे निकालने का ढग निम्नलिखित है।

हम छठी मात्रिक जाति के छठे रूप को जानना चाहते हैं तो पहले छठी जाति की सख्या निकाल लें। कुल संख्या मे से पूछे हुए रूप की सख्या घटा लें। शेप संख्याओ को पूर्व संख्याओ मे से घटाते जाएँ। जब तक शून्य न रह जाये घटाते जायें। जो अंक घटे हैं उनके नीचे (गुरु) का चिह्न लगाओ। गुरु चिह्नो के सामने वाले (।) लघु चिह्नों को काट दो। बस शेष जो रहें छठी जाति का छठा रूप है।

। । । । । । = जाति

१ २ ३ ४ ५ ६ = संख्या

१३ मे से ६ घटायें शेष सात रह जाते हैं। सातवे से पहले ५ घट सकता है और दो मे से दो घट सकता है। दोनों के ऊपर चिह्नो को गुरु बना दें। (।ऽ।ऽ।।) यह रूप बन गया। गुरु के सामने से चिह्नो को काट दें।

(।ऽऽ।) यह रूप ही छठी जाति का छठा रूप है।

प्रत्यय की आवश्यकता

प्रस्तार प्रत्यय के होते हुए नष्ट प्रत्यय की आवश्यकता इसलिये पडी कि प्रस्तार प्रत्यय मे रूपो का बहुत विस्तार हो जाता है। उससे अशुद्धि होने का डर रहता है। यदि किसी दश वर्णों की जाति के १२० वें रूप को जानना अभिप्रेत हो तो प्रस्तार प्रत्यय के द्वारा उसके सारे रूप निकालने पड़ेंगे फिर १२० वाँ रूप गिनना पड़ेगा। इस प्रकार यदि थोड़ी सी अशुद्धि हुई तो सही रूप नही निकलेगा और दुबारा फिर आरम्भ से उसके रूपों को निकालना

पड़ेगा। इसलिये नष्ट प्रत्यय के द्वारा ही विशेष रूप को निकालना उचित है क्योंकि इस मे प्रस्तार करना नही पडता।

नष्ट प्रत्यय के किसी छन्द के रूप को निकालने से समय की भी वचत होती है तथा कागज आदि का भी बचाव हो जाता है। इसलिये नष्ट प्रत्यय की आवश्यकता प्रस्तार से अधिक होती है।

उद्दिष्ट प्रत्यय

जिस प्रत्यय के द्वारा किसी दिये गए विशेष रूप की संख्या जानी जाए उसे उद्दिष्ट प्रत्यय कहते हैं।

नोट—यह प्रत्यय अधिकतर परीक्षा मे पूछा नही जाता इसलिये इसका वर्णन खोल कर हम यहां नही दे रहे।

छन्दो की परिभाषा—(लक्षण) तथा उदाहरण।

अब हम पाठको की सुविधा के लिये पाठ्यक्रम मे निश्चित छन्दों के लक्षण और उदाहरण दे रहे हैं। पाठकगण को चाहिये कि वह इन्हें अच्छे ढग से याद कर लें। इसमे यदि शुद्ध उत्तर दिया जाता है तो पूर्णांक प्राप्त होते है। और विद्यार्थी की डिवीजन मे प्रर्याप्त अन्तर पड़ता है। छन्दो के लक्षण स्मरण करते हुए कई विद्यार्थी केवल मात्रा या गणो को याद करते है परन्तु उन्हें क्रम, लघु, गुरु आदि का पूरा ध्यान रखना चाहिये और उन्हें घटा के भी दिखा देना चाहिये। इससे निरीक्षक को तथा विद्यार्थी दोनो को सुविधा रहती है। निरीक्षक महोदय को जाँचने मे तथा पाठक को अपने उत्तर की शुद्धता पर विश्वास हो जाता है।

कई विद्वानो का मत है कि उदाहरण न याद करने पर भी काम चल सकता है परन्तु यह उचित नही है क्योकि आजकल यूनिवर्सिटी मे अलग लक्षण और अलग उदाहरण को जाँचने की विधि है। इसलिये प्रत्येक विद्यार्थी को चाहिये कि वह लक्षण और उदाहरण अलग-अलग से याद करे। इसमे ही उसका लाभ है। वैसे हमने छदो के लक्षणो को ऐसे ढग से लिखा है कि वे उदाहरण भी वन सकते है। परन्तु अलग से उदाहरण भी घटा कर दिये हैं।

विद्यार्थीगण को चाहिये कि वे याद करते समय उदाहरण की प्रत्येक

पक्ति के प्रत्येक शब्द की शुद्धता पर ध्यान दें। कई वार विद्यार्थी यह कहते हुये पाये गये है कि मैंने उदाहरण तो ठीक लिखा था परन्तु मेरा छद गलत कर दिया है। कारण यह है कि उसके उदाहरण मे शब्दो मे मात्रायें आदि ठीक नही होती। कही "इ" के स्थान पर "ई" लगा देते है और कही दूसरी अशुद्धि करते है।

विद्यार्थीगण की सुगमता के लिये यहाँ एक छद का लक्षण उदाहरण दिया जा रहा है।

वसन्त तिलका

लक्षण.—जानो "वसन्त तिलका" त भ जा ज ग गा।

वसन्त तिलका छद मे तगण, भगण, दो जगण तथा दो गुरु के क्रम से चौदह अक्षर होते हैं।

	त	भ	ज	ज	ग	ग
	SSI	SII	ISI	ISI	S	S
उदाहरण—फूले हु	ये कुमु	द देख	सरोव	रो	में	

माधो सु-उक्ति यह थे सब को सुनाते

इस प्रकार इस पद्यांश मे क्रमश. तगण, भगण, दो जगण और दो गुरु के क्रम से चौदह अक्षर हैं।

बाकी छदो को भी इसी प्रकार से लिखा जा सकता है।

प्रश्न.— निम्नलिखित छन्दों के लक्षण उदाहरण सहित दो —विद्युन्माला, प्रमाणिका, माणवक, चम्पक माला, शलिनी, इन्दिरा दोधक, स्वागता, रथोद्धता, भुजंगी, इन्द्रवज्रा, उपजाति मोदक, तोटक, स्त्रग्विणी, प्रमिताक्षरा, भुजंगप्रयात, इन्द्रवंशा, वंशस्थ, द्रुतविलम्बित, मोतियदाम जलोद्धत गति, मंजुभाषिणी, तारक वसन्ततिलका, चामर, मालिनी. निशिपाल, पञ्च चामर, चञ्चला, मंदाक्रान्ता, शिखरणी, पृथ्वी, चचरी, शार्दूलविक्रीडत, गीतिका, सग्धरा, मदिरा मत्तगयन्द, दुर्मिल, किरीट, सुन्दरी, कुन्दलता, मत्तमातगर्लालाकर, कुसुमस्तबक, घणाक्षरी, रूपघनाक्षरी, देवधनाक्षरी, आपीड सौर भक, प्रमाणिक मिलिन्दपाद, भुजंगी मिलिन्दपाद, तोटकमिलिन्दपाद, भुजगप्रयात मिलिन्दपाद पञ्च चामर मिलिन्दपाद।

उत्तर वर्ण छन्द

विद्युन्माला

लक्षण — मा मा गा गा 'विद्युन्माला'।

विद्युन्माला छन्द मे दो भगण और दो गुरु होते हैं।

SS S,S SS, SS

उदाहरण:—गंगा माता तेरी धारा, काटे फन्दा मेरा सारा।
विद्युन्माला जैसी सोहे, वीची माला तेरी मोहे॥

इसके प्रत्येक पाद मे दो भगण और दो गुरु पाये जाते हैं अत: यह विद्युन्माला छन्द है।

प्रमाणिका

लक्षण — ज रा ल गा 'प्रमाणिका'।

प्रमाणिका छन्द मे जगण, रगण लघु गुरु के क्रम से आठ अक्षर होते हैं।

ISI SI S I S

[illegible]—नमामि भक्त वत्सलम्, कृपालु शीलकोमलम्।
भजामि ते पदाम्बुजम्, अकामिनां स्वधामदम्॥

इसके प्रत्येक पाद मे जगण, रगण, लघु गुरु पाये जाते हैं। अत यह प्रमाणिका छन्द है।

माणवक

लक्षण —भात ल ग 'माणवकम्'।

माणवक छन्द मे भगण, तगण, लघु गुरू के क्रम से आठ अक्षर होते हैं।

S I I S S I I S

उदाहरण.—पालक-गो-विप्रन को, शालक है शत्रुण को।
शत्रु-अनि-पच्छिन को, वाल सिवा वच्छिन को॥

इस के प्रत्येक पाद मे क्रमश. भगण, तगण, लघु गुरु पाया जाता है अत. यह माणवक छन्द है।

पंक्ति जाति

चम्पकमाला

लक्षणः—'चम्पकमाला' है भ म सा गा ।

चम्पकमाला छन्द मे भगण, मगण, सगण और गुरु के क्रम से दस अक्षर होते हैं ।

SI IS S SII SS

उदाहरण—चाह नही तो वैभव फीका ।
खेल नही तो शैशव फीका ॥
मान नही तो जीवन फीका ।
रूप नही तो यौवन फीका ॥

इस के प्रत्येक पाद मे क्रमश भगण, मगण, सगण, और गुरु पाये जाते है अत यह चम्पकमाला छन्द है ।

त्रिठटुप् जाति

शालिनी

लक्षण—मा ता ता गा गा युता 'शालिनी' है ।

शालिनी छन्द मे मगण, दो तगण, और दो गुरु के क्रम से ग्यारह अक्षर होते है ।

SS SS SIS S ISS

उदाहरण—कैसी कैसी ठोकरें खा रहा है ।
तीखी पीड़ा चित्त मे पा रहा है ।

इस के प्रत्येक पाद मे मगण और दो तगण, दो गुरु पाये जाते हैं अतः यह शालिनी छन्द है ।

इन्दिरा

लक्षणः—न र र ला ग सौ 'इन्दिरा' सजै ।

इन्दिरा छन्द मे नगण, दो रगण, लघु गुरु के क्रम से ग्यारह अक्षर होते है ।

। । । ऽ । ऽ ऽ । ऽ । ऽ

उदाहरणः—तव सुधामयी प्रेम जीवनी, अघनिवारणी क्लेशहारिणी।
श्रवण-सौख्यदा विश्वतारिणी, मुदित गा रहे धीर अग्रणी।

इस के प्रत्येक पाद मे क्रमशः नगण, दो रगण लघु गुरु पाये जाते है अत यह इन्दिरा छन्द है।

दोधक

लक्षण—'दोधक' तीन भकार गुरु दो।

दोधक छन्द मे तीन भगण, दो गुरु के क्रम से ग्यारह अक्षर होते हैं।

ऽ । । ऽ । । ऽ । । ऽ ऽ

उदाहरण—राम गये जब ते वन माहि, राकस बैर करे बहुधा हो।
राम कुमार हमे नृप। दीजै, तौ परि पूर्ण यज्ञ करीजै॥

इस के प्रत्येक पाद मे क्रमश. तीन भगण और दो गुरु पाये जाते है अतः यह दोधक छन्द है।

स्वागता

लक्षण.—'स्वागता' र न भ दो गुरु सोहै।

स्वागता छन्द मे रगण, नगण भगण और दो गुरु के क्रम से ग्यारह अक्षर होते हैं।

ऽ । ऽ । । । ऽ । । ऽ ऽ

उदाहरण—वासुदेव वसुदेवसहायी, श्री निवास हरि जी यदुरायी।
दुख वृन्द मम मेटहु सारे, हौं अनाथ तुम राखनहारे॥

इस के प्रत्येक पाद मे रगण, नगण, भगण, दो गुरु पाये जाते हैं अत यह स्वागता छन्द है।

रथोद्धता

लक्षणः—रा न रा ल ग कहे 'रथोद्धता'

रथोद्धता छन्द मे रगण, नगण, रगण और लघु गुरु के क्रम से ग्यारह अक्षर होते हैं

S I S I I I S I S I S

उदाहरण—भारतीय जन ! वेद भारती, ध्यान दे सुनहु वो पुकारती।

दोष हीन समता सदा गहो, छोड़ दो विषमता सुखी रहो ॥

इस के प्रत्येक पाद मे क्रमश रगण, नगण, रगण और लघु गुरु पाये जाते है अत रथोद्धता छन्द है।

भुजंगी

लक्षण—त्रि या औ ल गा सौ 'भुजगी' रचौ।

भुजगी छन्द मे तीन भगण और लघु गुरु के क्रम से ग्यारह अक्षर होते हैं।

I S S I S S I S S I S

उदाहरणः—नहीं लालसा हे विभो। वित्त की,
हमे चेतना चाहिये चित्त की।
भले ही न दो एक भी सम्पदा,
रहे आत्म विश्वास पूरा सदा ॥

इस के प्रत्येक पाद मे क्रमश. तीन यगण और लघु गुरु पाये जाते हं अतः यह भुजगी छन्द है।

इन्द्रवज्रा

लक्षण—हो 'इन्द्रवज्रा' त त जा ग गा सो।

इन्द्रवज्रा मे दो तगण, जगण, दो गुरु के क्रम से ग्यारह अक्षर होते है।

S S I S S I I S I S S

उदाहरण—तू मंगला मंगल कारिणी है, सद्रूपत के धाम विहारिणी है।

माता। सदा पूर्ण पिता तमेता, कीजे हमारे चित्त में निकेता ॥

इसके प्रत्येक पाद मे क्रमश' दो तगण, जगण और दो गुरु पाये जाते हैं अत' यह इन्द्रवज्रा छन्द है।

उपेन्द्रवज्रा

लक्षण.—'उपेन्द्रवज्रा' जत जा ग गा सो।

उपेन्द्रवज्रा छन्द मे जगण. तगण, जगण, और दो गुरु के क्रम से ग्यारह

अक्षर होते हैं।

। ऽ । ऽ ऽ । । ऽ । ऽ ऽ

उदाहरण —बड़ा कि छोटा कुछ काम कीजै,
परन्तु पूर्वापर सोच लीजै।
बिना विचारे यदि काम होगा,
कभी न अच्छा परिणाम होगा॥

इस के प्रत्येक पाद में क्रमश जगण, तगण, जगण और दो गुरु पाये जाते हैं। अत यह उपेन्द्रवज्रा छन्द है।

उपजाति

लक्षण —इन्द्रवज्रा और उपेन्द्रवज्रा के सयोग से उपजाति छन्द बनता है।

। ऽ । ऽ ऽ । । ऽ । ऽ ऽ ऽ । । । ऽ । । ऽ । ऽ ऽ

उदाहरण —परोपकारी वनवीर आओ, नीचे पड़े भारत को उठाओ।
हे मित्र त्यागो मद मोह माया, नहीं रहेगी यह नित्य काया॥

इस के प्रत्येक पाद में इन्द्रवज्रा और उपेन्द्रवज्रा छन्द पाये जाते हैं अतः यह उपजाति छन्द है

मोदक

लक्षण —चार भकार रचौ तुम 'मोदक'
मोदक छन्द में चार भगणो के क्रम से बारह अक्षर होते हैं।

ऽ । । ऽ । । ऽ । । ऽ । ।

उदाहरण —दोष मयी जु इनारि लगी अति,
देत सही तिही को जु जरै मति।
भोग की आश न गूढ़ उजागर,
ज्यो रज सागर में मुनीनागर॥

इस में क्रमश चार भगण पाये जाते है अत यह मोदक छन्द है।

तोटक

लक्षण —विलसं सचतुष्टय 'तोटक' में।
तोटक छन्द में चार सगण के क्रम से बारह अक्षर होते हैं।

। । ऽ । । ऽ । । ऽ । । ऽ

उदाहरण:—मत भेद भयानक पार रहा, बिन नेह न मेल मिलाप रहा।
अभिमान अधोमुख ठेल रहा, अवकाथम ढोंग ढकेल रहा ।।

इस के प्रत्येक पाद मे क्रमशः चार सगण पाये जाते हैं अतः यह "तोटक" छन्द है।

स्त्रग्विणी

चार हो रेफ तो 'स्त्रग्विणी' छन्द है।

लक्षण :—स्त्रग्विणी छद मे चार रगण के क्रम से बारह अक्षर होते हैं।

स स स न
ऽ । ऽ ऽ । ऽ ऽ । ऽ ऽ । ऽ

उदाहरण :—राम आगे चली मध्य सीता चली।
बन्धु पाछे भये सोभ सोभै भली ।।
देखि देही सबै कोटिधा कै भनो।
जीव जीवेश के बीच माया मनो ।।

इसके प्रत्येक पाद मे चार-चार रगणों का क्रम है अतः स्त्रिग्विणी छद है।

प्रमिताक्षरा

लक्षण:—'प्रमिताक्षरा' स ज स सा विलसै।

प्रमिताक्षरा छद मे सगण, जगण और दो सगणों के क्रम से बारह अक्षर होते हैं।

स ज स स
। । ऽ । ऽ । । । ऽ । । ऽ

उदाहरण—अब भी समक्ष वह नाथ खडे, वह किन्तु रिक्त यह हाथ पड़े।
न वियोग है यह न योग सखी यह कौन भाग्य मम भोग सखी।।

इस छद के प्रत्येक पाद मे सगण, जगण और दो सगण क्रमशः आते है। इसलिए यह प्रमिताक्षरा छंद है।

भुजंगप्रयात

लक्षण :—'भुजगप्रयात' बने चार या से।

भुजगप्रयात मे चार यगणों के क्रम से बारह अक्षर होते है।

य य य य

ISS ISS ISS ISS

उदाहरण :—अजन्मा न आरम्भ तेरा हुआ है,
किसी से नही जन्म मेरा हुआ है।
रहेगा सदा अन्त तेरा न होगा,
किसी काल मे नाश मेरा न होगा ॥

इन छद के प्रत्येक पाद मे चार यगण विद्यमान हैं इसलिए यह बारहवीं जाति का भुजगप्रयात् है।

इन्द्रवंशा

लक्षण —है इंद्रवशा त त जा र शोभिनी।

इन्द्रवशा मे दो तगण, जगण और रगण के क्रम से बारह अक्षर होते हैं।

उदाहरण—त त ज र

SSI SSI ISI SIS

यो ही बड़ा हेतु हुए बिना कही, होत बड़े लोग कठोर यो नही।
वे हेतु भी यो रहते सुगुप्त हैं, ज्यो अद्रि अम्भोनिधी मे प्रलुप्त हैं॥

इस छद के प्रत्येक पाद मे क्रमश दो तगण, जगण और रगण आते हैं अत यह इद्रवशा छन्द बन जाता है।

वंशस्थ

लक्षण —लसै 'सुवशस्थ' ज ता ज रा शुभा।

वशस्थ छन्द मे जगण, तगण, जगण और रगण के क्रम से बारह अक्षर होते हैं।

IS IS SI IS ISI S

उदाहरण :—बना रहे प्रेम सदा स्वदेश का,
तथा रहे ध्यान सदा स्वदेश का।
बुरा हमारा न विभो! चरित्र हो,
विचार धारा अति ही पवित्र हो॥

इसके प्रत्यक पाद मे क्रमश जगण, तगण, जगण, तथा रगण पाये जाते है इसलिए यह बारहवी जाति का वशस्थ है।

द्रुतविलम्बित

लक्षण :—'द्रुतविलम्बित' भाहि न भा भ रा।

इस छद मे नगण दो भगण और रगण के क्रम से बारह अक्षर होते है।

।।।ऽ।।ऽ।।ऽ।ऽ

उदाहरण —सरसता-सरिता जयनि जहा, नवनवा नवनीत पदावली।
तदपि हा ! वह भाग्यविहीन की सुकविता कवि-तापकरीहुई ।।

इसके प्रत्येक पाद मे नगण, भगण, भगण तथा रगण पाये जाते है। इस लिए यह द्रुतविलम्बित छद है।

मोतियदाम

लक्षण —जकार चतुष्टय 'मोतियदाम'।

पोतियदाम छन्द मे चार जगण होते है।

।ऽ।।ऽ।।ऽ।।ऽ।

उदाहरण —गयो बलि भूपति पै दरवान, कियो द्विज को इमि रूप बखान।
सुनो विनती मम दानव भूप, खड़ो दर पै वटु एक अनूप ।।

इसके प्रत्येक पाद मे क्रमशः चार जगण ही आये है इसलिए यह मोतिय-दाम छद है।

जलोद्धतगति

लक्षण —कहै ज स ज सा 'जलोद्धतगति'।

जलोद्धदतति छद मे जगण, सगण, जगण, सगण के क्रम से बारह अक्षर होते हैं।

।ऽ।।।ऽ।ऽ।।।ऽ

उदाहरण —असार जग को ससार समझो,
प्रपंच लख के उदास मत हो।
डिगो नहीं विचलो चलो संभल के.
प्रसन्न मन से स्वधर्म पथ मे ।।

इसके प्रत्येक पाद मे क्रमश जगण, सगण, जगण, सगण आते है इसलिए यह जलोद्धतगति छद है।

अतिजगती जाति

मञ्जुभाषिणी

लक्षण :—स ज सा ज गा भनत मजुभाषिणी।

मजुभाषिणी छद मे सगण, जगण, सगण, जगण और एक गुरु के क्रम से तेरह अक्षर होते हैं।

।। ऽ। ऽ। ।। ऽ। ऽ।ऽ

उदाहरण :—चुप बैठे राम शुभ नाम लीजिये,
गुण से अतीत गुणगान कीजिये।
मत्त वाम दाम पर चित्त दीजिये,
तजि मोह जाल हरि-भक्त भीजिये ।।

इसके प्रत्येक पाद मे क्रमश: सगण, जगण, सगण, जगण और एक गुरु आता है। इसलिए यह मजुभाषिणी छद है।

तारक

लक्षण :—तारक छद मे चार सगण और एक गुरु के क्रम से तेरह अक्षर होते हैं।

।। ऽ।। ऽ। ।ऽ।। ऽऽ

उदाहरण:—यह कीरति और नरेशन सोहै।
सुनि देव अदेवन को मन मोहै ।।
हमको बपुरा सुनि ये ऋषि राई।
सब गाऊ छ-सातक की ठकुराई ।।

इसके प्रत्येक पाद मे क्रमश: चार सगण और एक गुरु आये हैं इसलिए यह तारक छद है।

शक्वरी जाति

वसन्ततिलका

लक्षण :—जानो 'वसन्ततिलका' त भ जा ज गा गा।

वसन्ततिलका छद मे तगण, भगण दो जगण और दो गुरु के क्रम से चौदह अक्षर होते हैं।

SS IS III SI ISISS

फूले हुए कुमुद देख सरोवरों में।
मानो सु-उक्ति यह थे सबको सुनाते॥
उत्कर्ष देख निज गोद पले शशी का।
है वारि-राशि मिस कैरव हृष्ट होता॥

इस छद के प्रत्येक पाद मे तगण, भगण, दो जगण और गुरु पाये जाते है अत. यह वसततिलका छद है।

अतिशक्वरी जाति

चामर

लक्षण— राज राज रेफ सों लसै सुचारु 'चामरम्'

चामर छद मे रगण, जगण, रगण, जगण, रगण के क्रम से पद्रह अक्षर होते है।

SIS ISI SI SIS ISIS

कुंज मे गुपाल लाल राधिका विराजहीं,
वृन्द गोपिकान के सुराग रंग साजही।
नृत्य में उमंग संग वीन वेनु वाजही,
लच्छरी विलोकि वृन्द अच्छरी सु-लाजही॥

इसके प्रत्येक पाद मे रगण, जगण, रगण, जगण, रगण पाये जाते हैं। अत यह चामर छद है।

मालिनी

लक्षण :— न न म म य गणों से 'मालिनी' सोहती है।

मालिनी छद मे क्रमश' दो नगण, मगण, और दो यगणो के क्रम से द्रट् अक्षर होते हैं।

IIIIIISS SI S SIS S

उदाहरण:-पल पल जिसके मैं पंथ को देखती थी

IIII IISS SISS ISS

निशिदिन जिसके ही ध्यान में थी बिताती।

उर पर जिसके है सोहती मुक्तमाला,
वह नवनलिनी से, नैन वाला कहाँ है ?

इस छद के प्रत्येक पाद मे दो नगण, दो मगण, और एक यगण पाये जाते है अतः यह पंद्रवी जाति का मालिनी छद है।

निशिपाल

लक्षण—निशिपाल छंद मे क्रमश. भगण, जगण, सगण, नगण, और रगण के क्रम से पन्द्रह अक्षर होते हैं।

S I I I S I I I S I I I S I S

उदाहरण—गान बिनु, मान बिनु, हास बिनु जीवहीं।
तप्त नहिं खाहिं जल शीतल न पीवहीं॥
तेल तजि खेल नजि खाट तजि सोवहीं।
शीत जल न्हाई नहिं, उष्ण जल जोवहीं॥

इसके प्रत्येक पाद मे भगण, जगण, सगण, नगण और रगण पाये जात हैं। अत यह निशिपाल छद है।

अष्टि जाति

पंचचामर

लक्षण— ज रा ज रा ज गा कहैं कवीन्द्र 'पचचामरम्'

पचचामर छन्द मे जगण, रगण, जगण, रगण, जगण गुरु के क्रम से सोलह अक्षर होते है।

उदाहरण :—महेश के महत्त्व का विवेक बार बार हो,
I S I S I S I S I S I S I S I S
अखंड एक तत्व का, न नेकधा विचार हो।
बिगाड़ के समाज के प्रवन्ध का सुधार हो,
प्रवीण पंचराज के, प्रपंच का प्रचार हो॥

इस छद के प्रत्येक पाद मे जगण, रगण, जगण रगण, जगण, रगण, एक गुरु पाये जाते है अत. यह पचचामर छन्द है।

चंचला

लक्षण—'चंचला' रजा रजा रला कहन्त छंदमाल।

चंचला छंद में रगण, जगण, रगण, जगण, रगण लघु के क्रम से सोलह अक्षर होते हैं।

SIS IS ISI SI SI IS II

उदाहरण—रामचन्द्र जू कहन्त जात रूप लंक देखि,
ऋच्छ वानरालि घोर ओर चारिहू विशेखि।
मंजु कुञ्ज गन्ध लुब्ध भौंर भीर सी विशाल,
'केशुदास, आस पास शोभजै मनो मराल॥

इस छंद के प्रत्येक पाद मे रगण, जगण, रगण, जगण, रगण और लघु आये जाते है अत. यह चंचला छन्द है।

अत्यष्टिजाति

मन्दाक्रान्ता

लक्षण .—'मन्दाक्राता' म भ न त त गा गा कहै छंदवेदी।

मन्दाक्राता छद मे मगण, भगण, नगण, दो तगण और दो गुरु के क्रम से सत्रह अक्षर होते हैं।

S S S S I I I I I S S I S S I S S

उदाहरण:—दो वंशो में प्रकट करके पावनी लोक लीला।
सौ पुत्रो से अधिक जिनकी पुत्रियां पूत शीला॥
त्यागी भी है शरण जिनके, जो अनासक्त गेही।
राजा योगी जय जनक वह पुण्यदेही विदेही॥

इसके प्रत्येक पाद में मगण, भगण, नगण, तगण, तगण और दो गुरु के क्रम से आते हैं अतः यह मन्दाक्राता छन्द है।

शिखरिणी

लक्षण :—कवीन्द्रो को मोहै य म न स भ ला गा 'शिखरिणी'।

शिखरिणी छंद मे यगण, मगण, नगण, सगण, भगण लघु गुरु के क्रम से सत्रह अक्षर होते हैं।

ISSSSS IIIIISSI IIS

उदाहरण :—छटा कैसी प्यारी, प्रकृति-तिय के चन्द्र मुख की,
नया नीला ओढ़े, वसन चटकीला गगन का,
जरी सिल्मा-रूपी, जिस पर सितारे सब जड़े,
गले मे स्वंगंगा, अतिललित माला सम पड़ी ॥

इसके प्रत्येक पाद मे यगण, मगण, नगण, सगण, भगण गुरु पाये जाते है अत यह शिखरिणी छद है

पृथ्वी

लक्षण :—ज सा जस य ला ग कहत शेष 'पृथ्वी' शुभा।

पृथ्वी छंद मे जगण, सगण, जगण, सगण, यगण, लघु गुरु के क्रम से सत्रह अक्षर होते हैं।

उदाहरण —न जा उधर हे सखि, वह शिखी सुखी हो नचे,
न संकुचित हो कहीं, मुदित लास्य लीला रचे।
बनूं न फिर विघ्न मैं, बस मुझे अबाधा यही,
विराग-अनुराग में अहह इष्ट एकान्त ही ॥

धृति जाति

चंचरी

लक्षणः—र स जा ज भा र कवीन्द्र लोग कहा करें।

चचरी छद मे रगण, सगण, दो जगण, भगण और रगण के क्रम से अठारह अक्षर होते हैं।

SISIISISIISISIISIS

उदाहरणः—दुष्ट संग जु मित्रता अरु शत्रुता कुछ कीजिए,
बोऊ मे नहिं नोक होवहिं, चित्त मे यह दीजिए।
अग्नि केर अंगार लीजिय हाथ, हाथ जराव ही,
सोई सीतल होई के कर कालिमाहिं लगावही ॥

इस छन्द के प्रत्येक पाद मे रगण, सगण, दो जगण, भगण, रगण पाये जाते हैं अत. यह चंचरी छद है।

अति धृति जाति

शार्दूल विक्रीड़त

लक्षण.—जा मे हो म स जा स ता त ग वही 'शार्दूल विक्रीड़त' ।

शार्दूल विक्रीड़त छद मे भगण, सगण, जगण, सगण, दो तगण और एक गुरु के क्रम से उन्नीस अक्षर होते हैं ।

S SS I I S I S I I I S I S I S S I S

उदाहरणः—आ बैठी उर मोह जन्य जड़ता विधा विदा हो गई,
पाई कायरता मलीन मन को हा ! वीरता खो गई ।
जागी दीन दशा दरिद्रपन की श्री सम्पदा सो गई,
माया शंकर की हँसाय हमको खरा बनी रो गई ।।

इस छंद के प्रत्येक पाद मे मगण, सगण, जगण, तगण, तगण और गुरु पाये जाते हैं अतः यह शार्दूल विक्रीड़त छद है

कृति जाति

गीतिका

लक्षणः—स ज जा भ रा स ल गा, महामति शेष गावहिं गीतिका ।

गीतिका छन्द में सगण, जगण, जगण, भगण, रगण, सगण और लघु गुरु के क्रम से बीस अक्षर होते हैं ।

उदाहरणः—सज जोभ री, सुलगै मुहीं सुन, भो कहा चित्त लाय के,
नय काल लक्खन जानकी सह, राम को नित गाय कै ।
पद मो शरीरहिं राम के कल, धाम को लय धावहू,
कर दीन लै अति दीन है, नित गीति कान सुनावहू ।।

इसके प्रत्येक पाद मे सगण, जगण, जगण, भगण, रगण, सगण लघु क्रम से आते हैं अतः यह गीतिका छन्द है ।

प्रकृति जाति

स्रग्धरा

लक्षणः—मा रा भा ना य या या, कविवर-सुखदा स्रग्धरा छन्दरानी ।

स्रग्धरा छन्द मे मगण, रगण, भगण, नगण, तीन यगण के क्रम से इक्कीस अक्षर होते हैं।

SS SS ISS IIIIIIS SIS S ISS

उदाहरणः—नाना फूलों-फलों से, अनुपम जग की वाटिका है विचित्रा।
भोक्ता है सैकड़ो ही, मधुप शुक तथा कोकिला गानशीला॥
कौवे भी हैं अनेकों, परधन हरने मे सदा अग्रगामी।
कोई है माली, सुधि इन सब की जो ले रहा है॥

इस छन्द के प्रत्येक पाद मे मगण, रगण, भगण, नगण और तीन यगण पाये जाते हैं अतः यह स्रग्धरा छन्द है।

आकृति जाति

मदिरा

लक्षण:—सात भकार गकार जबै तब पिंगल वेदी कहैं मदिरा।

अर्थात् मदिरा छन्द मे सात भगण एक गुरु के क्रम से बाईस अक्षर होते हैं।

SI IS IIS IIS IIS IISIIS IIS

उदाहरण—सिन्धु तरयो उनको, बरना तुम पै धनुरेख गई न तरी।
बाँदर बाँधत सो न बँध्यो उन वारिधी बाँधि के बाट करी।
श्री रघुनाथ प्रताप की बात तुम्हें दसकण्ठ न जानि परी।
तेलहू तूलहू पूंछ जरि न जरि, जरि लंक जराइ जरी॥

इसके प्रत्येक पाद मे सात भगण और एक गुरु पाये जाते हैं अत. यह मदिरा छन्द है।

विकृति जाति

मत्तगयन्द

लक्षण:—सात भकार गुरु युग हों जब 'मत्तगयन्द' कह तब ताको।
मत्तगयन्द छन्द मे सात भगण और दो गुरु के क्रम से तेईस अक्षर होते हैं।

S I I S I I S I I S I I S I I S I I S I I S S

उदाहरणः—जाल प्रपंच पसार घनें कुल गौरव का उर फाड़ रहा है,
मानव मण्डल मे मिल दाहक दानव दुष्ट दहाड़ रहा है।
जाति समुन्नति की जड़ को कर घोर कुकर्म उखाड़ रहा है,
भूल गया प्रभू शंकर को जड़ जीवन जन्म विगाड़ रहा है।

इसके प्रत्येक पाद मे सात भगण पाये जाते हैं अत यह मत्तगयन्द छन्द है।

संस्कृति जाति

दुर्मिल

लक्षण—'सगणाष्टक' को कहते कवि अति दुर्लभ 'दुर्मिल' 'चन्द्रकला'।

दुर्मिल छन्द मे आठ सगण के क्रम से चौबीस अक्षर होते है।

I I S I I S I I S I I S I I S I I S I I S I I S

उदाहरण—उपदेश अनेक सुने मन को रुचि के अनुसार सुधार चुके,
धर ध्यान यथाविधी मंत्र जपे, पढ़ वेद पुराण विसार चुके।
गुरु गौरवधार महन्त बनु, धन-धाम कुटम्ब विसार चुके,
कवि शकर ज्ञान वितान तरे सब ओर फिरे झख मार चुके॥

इसके प्रत्येक पाद मे क्रमश आठ सगण पाये जाते है अतः यह दुर्मिल छन्द है।

'किरीट'

लक्षण—आठ भकार लसै सु 'किरीट' सवैयन मे सिरमौर कहावत।

किरीट छन्द मे आठ भगण के क्रम से चौबीस अक्षर होते है।

S I I S I I S I I S I

उदाहरणः—मानुष हौं तौ वही रस खानि,

I S I I S I I S I I S I I

बसौ व्रज गोकुल गांव के ग्वारन।

जो पशु हौं तौ कहा बसु मेरो,
चरौं नित नन्द के धेनु मंझारन।
पाहन हौं तौ वही गिरि को,
जु धरयौ करि छत्र पुरन्दर कारन।
जो खग हौं तौ बसेरौ करौं,
नित कालिंदि कूल कदम्ब की डारन।

इसके प्रत्येक पाद मे आठ भगण पाये जाते है अत. यह किरीट छद है।

अतिकृति जाति

सुन्दरी

लक्षण :—सगणाष्टक अन्त गुरु-युत जो तब 'सुन्दरी छन्द बनै 'सुखदानी'

सुन्दरी छद मे आठ सगण और एक गुरु के क्रम से पच्चीस अक्षर होते है।

। । S । । S । । S । । S

उदाहरण —सुख शान्ति रहे सब ओर सदा

। । S । । S । । S । । S S

अविवेक तथा अघ पास न आवें।
गुण शील तथा बल बुद्धि बढ़े,
हठ वैर विरोध घटें, मिट जावें।
सब उन्नति के पथ मे विचरे,
रति-पूर्व परस्पर पुण्य कमायें।
दृढ़ निश्चय और निराभय हो,
कर निर्भय जीवन मे जय पावें।।

इस छद के प्रत्येक पाद मे क्रमश. आठ सगण और एक गुरु पाये जाते अत यह सुन्दरी छन्द है।

उत्कृति जाति

कुन्दलता

लक्षण :—यदि आठ सकार रु अन्त लसै लघु दो तब 'कुन्दलता' मनमोहन।

कुन्दलता के छन्द मे आठ सगण और दो लघु के क्रम से छब्बीस अक्षर होते है।

। । S । । S । । S । । S

उदाहरण—जग में नर-जन्म दियो प्रभु ने,

। । S । । S । । S । । S । ।

मृदु भाषत वोल सु राखत लाजहु
सत कर्म करैं सत वृत्त बनैं,
समरत्थ रहै नित ही पर काजहु।
वखं मनधीर 'विहार' सदा,
करवें करनी जिहो मे जस छाजहु
सत्संग सदा सुख सौं सजवैं,
तजवैं भ्रम को भजवैं व्रज राजहु॥

इसके प्रत्येक पाद मे आठ सगण और दो लघु पाये जाते हैं अतः यह कुन्दलता छद है।

मत्तमातंगलीलाकार

लक्षण :—रेफ हो नौ जवै तौ कहैं छदतत्त्वाववोधी उसे 'मतमातंगलीला-कर'

जिसमे नौ रगण या नौ से अधिक रगण आ जाये उसे मतमातंगलीलाकार कहते है।

S । S S । S S । S S । S S । S S । S

उदाहरण :—योग जाना नहीं यज्ञ दाना नहीं वेद माना नहीं,

S । S S । S S । S

या कलो माहिं मीता ! कहूँ।
ब्रह्मचारी नहीं दंडधारी कर्म कारी नहीं,
है कहा भाग मै जो छहूँ।

इसके प्रत्येक पाद मे नौ रगण पाये जाते है अत. यह मत्तमातंगलीलाकर छद है।

कुसुमस्तवक

लक्षण .—सगण यदि नौ तव दडक हों।
कुसुमस्तवक प्रिय जो कवि मण्डल को।

कुसुमस्तवक छद मे नौ या इससे अधिक सगण होते हैं।

IIऽI IऽIIऽIIऽ
उदाहरण .—जगदम्ब ! जरा करुणा कर दो
IIऽIIऽII ऽIIऽIIऽ
निबली पर-पीड़ित दीन-दुखी हम हैं।
हम में भरदो बुध दारिद हारिणी,
शक्ति महेश्वरि हे ! हम वेदम हैं।
मन-मन्दिर मे विकसे विमलामति,
धीर बने हम वीर शिरोमणि हो।
यह आरत भारत भारत हो,
इसमें फिर वे रणशूर-शिरोमणि हो।

इसके प्रत्येक पाद मे नौ ही सगण पाये जाते हैं अत. यह कुसुमस्तवक छद है।

घनाक्षरी

लक्षण:—घनाक्षरी दडक मे इकत्तीस वर्ण होते है। अन्तिम वर्ण गुरु होते है। सोलहवें और इकत्तीसवें अक्षर पर यति होती है।

IIऽI ऽII IऽIIऽIऽII
उदाहरण:—सुनसान कानन भयावह है चारो ओर
ऽIऽIऽऽIऽऽIIIऽIऽ
दूर दूर साथी सभी हो रहे हमारे हैं।
कांटे बिखरे हैं जावें जहा पावें ठौर,
छूट रहे पैरों से रुधिर की फुहारें हैं।

इसके प्रत्येक पाद मे इकत्तीस वर्ण पाये जाते है और सोलहवें और इकत्तीसवें वर्ण पर यति है अत· यह घनाक्षरी छंद है।

रूपघनाक्षरी

लक्षण:—'रूपघनाक्षरी छंद मे बत्तीस वर्ण होते हैं। अन्तिम गुरु-लघु होते है। प्रत्येक सोलहवें अक्षर पर यति होती है।

I I I I S I I I I S I S I I I

उदाहरण :—छन छन छीजत देखहिं समाज तन,

I I I I I I S I S I S I S I I I

हेरहिं न विधवा छन्टूक होत छतियान'

जाति को पति अवलोकहिं न आकुल है,

भूलि न विलोकहिं कलकी होत कुल मान ।।

इसके प्रत्येक पाद मे बत्तीस वर्ण पाये जाते हैं अत· यह रूपघनाक्षरी छद है।

देवघनाक्षरी

लक्षण .—'देवघनाक्षरी' छद मे तेंतीस वर्ण होते है। अन्तिम गण, नगण होना चाहिए।

I S I I S S I I S I I I S S I I

उदाहरण :—झिल्ली झनकोरे पिक चातक पुकारे वन,

S I I I S S I S I I I I I I I I I

मोरनि गुहारें उठै, जुगनि चमकि चमकि।

घोर घन कारे भारे, धुरना धुरारे वायु,

धूमनी मचावै नाचै, दामनि दमकि दमकि।।

इसके प्रत्येक पाद में तेंतीस वर्ण पाये जाते हैं अत. यह देवघनाक्षरी छद है।

आपीड़

लक्षण :—इसके प्रथम पाद मे ८, दूसरे मे १२, तीसरे मे १६ और चौथे

मे २० अक्षर होते हैं। इसके प्रत्येक पाद मे अन्तिम दो वर्ण गुरु होते हैं और सभी वर्ण लघु होते हैं।

उदाहरण.—प्रभु असुर संहर्ता,
जगविदित पुनि जगतभर्ता !
दनुजकुल अरि जगहित धरम धर्ता,
सरबस तज मन, भज नित प्रभु सब दुख हर्ता !

इसके प्रत्येक पाद मे चार चार अक्षर बढते जाते है अत. यह आपीड छद है।

सौरभक

लक्षण :—स ज सा ल हो प्रथम पाद, न स ज गुरु हो द्वितीय मे रा न भा गुरु तृतीय कहै, स ज सा ज्ग सौरभक तुर्य पाद मे सौरभक छद के

प्रथम पाद मे सगण, जगण, सगण, और लघु।
दूसरे पाद मे नगण, सगण, जगण और गुरु।
तीसरे पाद मे रगण, नगण, भगण और गुरु।
चतुर्थ पाद मे सगण, जगण, सगण, जगण और गुरु होता है।

उदाहरण :—मत छोड़िए सुजन संग,
हरि-भगति धारिये हिये।
वेगि पाप-चय छार करौ,
जपिये निरन्तर हरी हरी हरी।

इसके प्रत्येक पाद मे अलग अलग पाये जाते है अतः यह सौरभक छंद है।

प्रमाणिका मिलिन्दपाद

ज रा ल ग्य "प्रमाणिका" इसमे जगण, रगण और लघु गुरु होते है।

उदाहरण :—सुधार धर्म कर्म को, बिसार दो अधर्म को।
बढ़ाये नेह वेलि को, कथा सुनीति रीति को।
सुना करो अनेक से, कथा सुनीति रीति को।
सुना करो अनेक से, मिलो महेश ऐक से॥

इसका प्रत्येक पाद 'प्रमाणिका' छद का है।

भुजंगी मिलिन्दपाद

य य ल ग

तीन मगण और एक लघु तथा गुरु होता है।

उदाहरण :—अरे ओ अजन्मा! कहां तू नहीं,
न कोई ठिकाना जहां तू नहीं।
किसी ने तुझे ठीक जाना नहीं,
इसी से यथा तथ्य माना नहीं।
शिखा सत्य की झूठ ने काट ली,
न विज्ञान फूला न विद्या फली।

इस 'मिलिन्दपाद' के छहो चरण भुजगी' छद के हैं।

तोटक मिलिन्दपाद

उदाहरण —जल तुल्य निरन्तर शुभ्र रहो,
प्रवलानल से तुम दीप्त रहो।
पवनोपम सत्कृतिशील रहो,
अवनीतलवद धृतिशील रहो।
करलो नभ-सा सुचि जीवन को,
न निराश करो मन को।

इस 'मिलिन्दपाद' के छहो पाद तोटक छद हैं अत यह तोटक मिलिन्दपाद है।

भुजंगप्रयात मिलिन्दपाद.

उदाहरण :—अजन्मा न आरम्भ तेरा हुआ है,
किसी सेनही जन्म मेरा हुआ है।
रहेगा सदा, अन्त तेरा न होगा,
किसी काल मे नाश मेरा न होगा।
खिलाड़ी खुला खेल तेरा रहेगा,
मिटेगा नहीं मेल मेरा रहेगा॥

इस 'मिलिन्दपाद' का प्रत्येक पाद 'भुजगप्रयात' छंद का है अत यह भुजंगप्रयात मिलिन्दपाद है।

पंचचामर मिलिन्दपाद

उदाहरण:—चलो अभीष्ट मार्ग मे सहर्ष खेलते हुए,
विपत्ति विघ्न जो पड़े उन्हें ढकेलते हुए।
घटे न हेल मेल हां बढे न भिन्नता कभी,
अतर्क एक पन्थ के सतर्क पंथ हों सभी .

इस 'मिलिन्दपाद' का प्रत्येक पाद पचामर छद का है। अत यह पंचचामर मिलिन्दपाद है।

जाति

सम मात्राछन्द प्रकरण

रौद्र जाति

अहीर

लक्षण .—शिव कल कहत 'अहीर' अन्त ज-युत मतिधीर।

अहीर छद मे ग्यारह मात्राएँ होती है अन्त मे जगण होता है।

। । ।। । ऽ ।ऽ।
उदाहरण —सुरभित मन्द बयार।
सरसे सुमन सुढार।
गूंज रहे मधुकार।
धन्य वसन्त बहार॥

इसके प्रत्येक पाद मे ग्यारह मात्राए हैं और अत मे जगण पाया जाता है अत यह अहीर छद है।

आदित्य जाति

तोमर

लक्षण .—द्वादश कल ग ल 'तोमर'।

तोमर छद मे कुल बारह मात्राएँ होती हैं और अन्त मे क्रमश: एक गुरु और एक लघु होते हैं।

ऽ ऽ । । । ऽ ऽ ।

उदाहरण :—प्रस्थान वन की ओर।
या मन लोक की ओर।
होकर न धन की ओर।
है राम जन की ओर॥

इसके प्रत्येक पाद मे बारह मात्राएँ हैं और अन्त मे क्रमश गुरु लघु पाये जाते हैं अत यह तोमर छद है।

मानव जाति

विजात

लक्षण —चतुर्दश हो कला जिसमे,
प्रथम अक्षर लघु जिसमें।
'विजाता' नाम है उसका,
लुभाया ना हृदय किसका॥

विजात मे चौदह मात्राए होती है। इसके आदि का अक्षर लघु होता है।

। ।। । ऽ ऽ ऽ । । ऽ

उदाहरण—मदन किनारी जीवन का,
भजन सुकारी जीवन का।
नमन बनाती कीरति को,
सुयश बनाता निवृति को।

इसके प्रत्येक पाद मे चौदह मात्राए पाई गई हैं और आदि का अक्षर लघु है अत यह विजात छंद है।

हाकलि

लक्षण —त्रै चौकल गुरु 'हाकलि' है।

'हाकलि' छद मे चौदह मात्राए होती हैं। इसमे तीन चौकल के बीच मे एक गुरु होना चाहिए।

। । ऽ । । ऽ । । । । । ऽ

उदाहरण —जग पीड़ित है अति दुख से,
जग पीड़ित है अति सुख से।
मानव जग में बँट जावे,
सुख दुख से औ दुख सुख से।

इसके प्रत्येक पाद मे चौदह मात्राएँ पाई गई हैं अत यह हाकलि छद है।

संस्कारी जाति

पादा कुलक

लक्षण:—चार चतुष्कल सुहावैं, वेई 'पादा कुलक कहावैं।

पादाकुलक छन्द मे सोलह मात्राओ के चार चौकल होते हैं।

। ।। ।।। ।। ऽ ।। । । ऽ

उदाहरण —सुमति कुमति सब के उर रह ही,
नाथ! पुराण निगम अस कह हीं।
जहाँ सुमति तहँ सम्पति नाना,
जहाँ कुमति तहँ विपति निदाना॥

इसके प्रत्येक पाद मे सोलह मात्राएँ पाई जाती हैं अतः यह पादाकुलक छन्द है।

पद्धरि

लक्षण:—सोलह कलयुत पद्धरि कहात,
अन्त जगण अरु वसु यति सुहात।

पद्धरि छन्द मे सोलह मात्राएँ होती हैं। प्रत्येक आठ-आठ मात्रा पर यति होती है। अन्त मे जगण होता है।

ऽ ऽऽ ऽ ।। ।। । ऽ ।

उदाहरण:—मैं जन्मा था इस पर अबोध,
पापा इस ही पर सृष्टि बोध।

इसने ही देकर बल विशेष,
है सिखलाया उड़ना सुरेश।

इसके प्रत्येक पाठ मे सोलह मात्राएँ और आठ आठ पर यति, अन्त में जगण पाया गया है अत. यह पद्धरि छन्द है।

चौपाई

लक्षण—कल सोलह जहँ सदा सुहावं, जाके अन्त ज त नहि आवं।
सम-सम विषम-विषम सुखदाई, फणि पति ताहि कहैं चौपाई।।

चौपाई छन्द मे सोलह मात्राए होती है। इसके अन्त मे जगण, तगण नही होते।

। ऽ ऽ । ऽ ऽ ऽ ऽ ऽ
उदाहरणः—उठो लाल आँखों को खोलो,
पानी लाई हूँ मुँह धोलो।
बीती रात कमल सब फूले,
उनके ऊपर भौरे भूले।।

इसके प्रत्येक पाद मे सोलह मात्राए पाई जाती हैं। अतः यह चौपाई छन्द है।

पौराणिक छन्द

शक्ति

लक्षणः—जहाँ दो तिकल चौकला औ' तिकल,
कला पांच फिर 'शक्ति' सोहै सरल।
स र न सोहते अन्त में हैं वहाँ,
प्रथम और छठी ग्यारहवीं लघु तहाँ।

शक्ति छंद मे अठारह मात्राएँ होती हैं। इसमे क्रमशः पहले दो तिकल, फिर चौकल, फिर तिकल और पंचकल आता है। पहली, छठी, ग्यारहवीं मात्रा लघु होती है। अन्त मे सगण, रगण, नगण में से एक होता है।

।ऽ।।। ।।ऽ।ऽऽ ।ऽ

उदाहरण—अरे उठ कि अब तो सवेरा हुआ,

नहीं दूर तेरा अन्धेरा हुआ।

बहुत दूर करना तुझे है सफर,

नहीं ज्ञात है राह घर की किधर॥

यह अठारह मात्राओं का छंद है। इसके प्रत्येक पाद में अठारह मात्राए है अन्त में रगण है अतः यह शक्ति छन्द है।

महापौराणिक छन्द

पीयूष वर्ष

लक्षण:—हो कला उन्नीस, जिसमें औं' जहां,

हो लघु गुरु अन्त, दस नौ यति जहां।

छन्द वह 'पीयूषवर्षक' है कहा,

अति मनोहर चरण, सुन्दर कवि महा।

पीयूषवर्ष छन्द में उन्नीस मात्राएँ होती हैं लघु गुरु और दस तथा नौ पर यति होती है।

ऽऽ ऽऽऽ। ऽऽ।।ऽ

उदाहरण.—ब्रह्मा की है चार जैसी मूर्तियाँ,

ठीक वैसी चार माया मूर्तियां।

धन्य दशरथ जनक पुण्योत्कर्ष है,

धन्य भगवद् भूमि भारतवर्ष है॥

इसके प्रत्येक पाद में उन्नीस मात्राएँ होती हैं। आदि में लघु वर्ण होता है। इसके अन्त में क्रमश लघु गुरु पाये जाते हैं अतः यह पीयूषवर्ष है।

सुमेरु

लक्षण:—सुमेरु छंद में उन्नीस मात्राऐं होती हैं। आदि में लघु वर्ण होता है। इसके अन्त में तगण, रगण, जगण मगण, कभी नही आते।

S । ।। । । । । । । S । S S

उदाहरण.—तुम्हें कर जोर कर विनती सुनाऊँ।
तुम्हे तज पास और काके जाउँ।।
निहारौ जू निहारौ जू निहारौ।
विहारी जू भरोसौ है तुम्हारौ।।

इसके प्रत्येक पाद मे उन्नीस मात्राएँ पाई जाती है। अत यह सुमेरु छन्द है।

महादैशिक जाति

हंस गति

लक्षण—हस गति छन्द मे त्रीस मात्राएँ होती हैं। ग्यारहवी मात्रा और पादान्त मे यति होती है।

S । S । । । । । S । । । । । ।

उदाहरण:—होते हैं छवि देख, विलोचन विकसित।
होता है गुण देख हृदय आनन्दित।।
प्रिय पर लगता नहीं, रूप से दुर्गुण।
कुरूपता को ढक देता है सद्गुण।।

इस मे प्रत्येक पाद मे बीस मात्राएं पाई जाती है और ग्यारहवी और पादान्त पर भी यति पाई गई है अत यह हंस गति छंद है।

महारौद्र जाति

राधिका

लक्षण—राधिका छन्द मे बाईस मात्राएं होती हैं।

तेरहवी और पादान्त पर यति होती है।

। । । । S S । । S । । S । । S S

उदाहरण—यह सच है तो फिर लौट चलो घर भैया।
अपराधिन मैं हूँ, तात तुम्हारी मैया।।

दुर्बलता का ही चिन्ह, विशेष शपथ है।
पर अबला-जन के लिये, कौन सा पथ है ॥

इसके प्रत्येक पाद मे वाईस मात्राए पाई जाती है और तेरहवीं और पादन्त पर यति आती है अत यह राधिका छन्द है !

कुण्डल

लक्षण.—कुण्डल छन्द मे वाईस मात्राएँ होती हैं। इसमे द्विकल, चतुष्कल, त्रिकुल, द्विकल और यगण पाये जाते हैं। वारहवी मात्रा और पादान्त पर यति होती है।

।ऽ ।। ऽ। ऽ। ऽ।ऽ । ऽ।
उदाहरण—मेरो मन राम नाम, दूसरो न कोई,
सन्तन ढिग वैठि-वैठि, लोक लाज खोई।
अब तु बात फैल गई, जानत सब कोई,
अंसुवन जल सींचि सीचि प्रेम वेनि वोई ॥

इस के प्रत्येक पाद मे वाईस मात्रा होती है। वारहवी और पादान्त पर यति पाई गई। अत यह कुण्डल छन्द है !

[अवतारी जाति]

रोला

लक्षणः—रोला मे चौवीस कला, यति ग्यारह तेरा।

रोला मे चौवीस मात्राएँ होती है और ग्यारह तेरह पर यति होती है।

ऽऽऽ । ऽ। ऽ। ऽ। । ऽ।
उदाहरण—माताओं के भाग, आज सोते से जागे,
पहुंचे पहुंचे राम, राज तो रण के आगे।
न कुछ कह सकी न वे, देख ही सको सुती को,
रो कर लिपटीं उठा, उठा उन प्रणति श्रुतो को।

इस के प्रत्येक पाद मे चौवीस मात्राएँ है तथा ग्यारह तेरह पर यति पाई जाती है। अत यह रोला छन्द है।

दिक्पाल

लक्षणः—प्रति बारह यति होवें 'दिक्पाल' छन्द सोहे।

दिक्पाल छन्द मे चौबीस मात्राएँ होती है और बारह के बाद यति पाई जाती है।

S।   ।S।।   ।   S।   ।।।।S   ।

उदाहरण.—आते समीर के ये, झोके मधुर कहाँ से।
बहते निकुंज मे हैं, जो मन्द-मन्द गति से।।
किसका सन्देश ला कर, कहते प्रसून से हैं।
क्यों फूल फूल उठता, उड़ती सुगन्ध क्यो है।।

इसके प्रत्येक पाद म चौबीस मात्राएँ है और बारह-बारह पर यति पाई गई है। अत' यह दिक्पाल छन्द है।

रूपमाला

लक्षण.—रत्न दिस कल रूपमाला अन्त सोहे गाल।

रूपमाला छन्द मे चौबीस मात्राएँ होती हैं। चौदह और दस पर यति होती है। अन्त मे क्रमश गुरु लघु होता है।

S।S S S।।। S ।S।। S S

उदाहरण'—चूमता था भूमितल को, अर्धविधु सा भाल।
बिछ रहे थे प्रेम के दृग, जाल बनकर बाल।।
छत्र सा सिर पर उठा था, प्राणपति का हाथ।
हो रही थी प्रकृति अपने, आप पूर्ण सनाथ।।

इसके प्रत्येक पाद मे चौबीस मात्राएँ पाई गई है। चौदह और दस पर यति पाई गई है। अन्त मे क्रमश. गुरु लघु है। अत यह रूपमाला छन्द है।

महावतारी जाति

मुक्तामणि

लक्षणः—तेरह बारह द्वै गुरु 'मुक्तामणि' रचि लीजै।

मुक्तामणि छन्द मे पच्चीस मात्राएँ होती हैं। तेरह बारह पर यति होती है, और अन्त में दो गुरु होते हैं।

S I I I I I I S I I I I I I I I S I I

उदाहरण—कुण्डल ललित कपोल पर, सुछवि देत है ऐसे।
घन मे चपला दमकि अति, लग नीकी द्युति जैसे ॥
चन्दन खौर विराज शुचि, ननु लछमी अतिराजै।
सब आभा तिहुँ लोक की, मुख के आगे लाजै ॥

इस के प्रत्येक पाद मे पच्चीस मात्राएँ हैं तथा तेरह बारह पर यति पाई जाती है। अन्त मे क्रमश दो गुरु है अतः यह मुक्तामणि छन्द है।

महाभागवत जाति

गीतिका

लक्षण:—रत्न रवि कल धारिकै ल ग अन्त रचिनै गीतिका।

गीतिका छन्द म छब्बीस मात्राएँ होती हैं। चौदह और बारह पर यति होती है। अन्त मे क्रमश लघु गुरु होते हैं।

S I S S S I S S I S S I I I I I

उदाहरण:—साधु भक्तों में सुयोगी, संयमी बढ़ने लगे।
सभ्यता की सीढ़ियों पे, सूरमा चढने लगे ॥
वेद मन्त्रो को विवेकी, प्रेम से पढ़ने लगे।
वंचको की छातियो में, शूल से गढ़ने लगे ॥

इसके प्रत्येक पाद मे छब्बीस मात्राएँ पाई गई हैं। अन्त मे क्रमश. लघु गुरु रखे गये हैं। चौदह और बारह पर यति है। अत. यह गीतिका छन्द है।

नाक्षत्रिक जाति

सरसी

लक्षण—सोलह ग्यारह यति ग ल जा मे 'सरसी' छन्द सुजाल।

सरसी छन्द में सत्ताईस मात्राएँ होती हैं। अन्त मे एक गुरु तथा लघु होता है। सोलह और ग्यारह पर यति होती है।

S I S I I I S I S I S I I I S I I S I

उदाहरण.—काम-क्रोध-मद-लोभ-मोह को, पचरंगी कर दूर,
एक रंग तन मन वाणी में, भर ले तू भरपूर।

प्रेम पसार, न भूल भलाई वैर विरोध विसार,
भक्ति भाव से भज शंकर को, भक्ति दया उरधार ॥

इसके प्रत्येक पाद मे सत्ताईस मात्राएँ पाई जाती है। अन्त मे क्रमश: गुरु-लघु मिलते हैं। सोलह और वारह पर यति पाई गई है अतः यह सरसी छन्द है।

यौगिक जाति

सार

लक्षण—सोलह वारह अन्ते द्वै गुरु 'सार' छन्द अति नीको।

सार छन्द मे अट्ठाईस मात्राएँ होती है। अन्त मे दो गुरु और सोलह वारह पर यति होती है।

SS S SSSS S SS ||| |S S

उदाहरण.—लज्जा की लाली फैली थी, भौंहें तनिक चढ़ी थी,
ग्रीवा नीचे थी पर आँखें, नृप की ओर बढी थी।
कहती थी मानो वे उन से, क्या हम को छोडो गे,
आर्य पुत्र दो दिन पीछे ही, क्या यह मुँह मोडोगे।

इस मे अट्ठाईस मात्रा हैं और अन्त में दो गुरु, सोलह वारह पर यति पाई जाती है। अत. यह सार छन्द है।

हरिगीतिका

लक्षण—हरिगीतिका मे अट्ठाईस मात्राएँ होती है। सोलह और वारह पर यति होती है। अन्त मे लघु-गुरु होता है।

|| S| ||||S| | S S|S SS| S

उदाहरणः—इस भाँति गदगद कण्ठ मे तू रो रही है हाल मे,
रोती फिरेगी कौरवो की नारियाँ कुछ काल मे।
लक्ष्मी सहित रिपु सहित पाण्डव शीघ्र ही हो जायेंगे,
निज नीच कर्मो का उचित फल कुटिल कौरव पायेंगे।

इसके प्रत्येक पाद मे अट्ठाईस मात्राएँ और सोलह, वारह पर यति

होती है । अन्त मे क्रमश लघु-गुरु पाये जाते हैं अत. यह हरिगीतिका छन्द है ।

विधाता

लक्षण —विधाता मे अट्ठाईस मात्राएँ होती हैं । पहली, आठवी और पन्द्रहवी मात्राएँ लघु होती हैं । चौदह पर यति होती है ।

। ऽऽऽ।ऽ ।ऽ।ऽ ऽ।ऽ।ऽऽ

उदाहरण —न होती आह तो तेरी दया का क्या पता होता ?
इसी से दीन जन दिन-रात हाहाकार करते हैं ।
हमे तू सींचने दे आँसुओं से पंथ जीवन का,
जगत के ताप का हम तो यही उपचार करते हैं ॥

इस के प्रत्येक पाद मे अट्ठाईस मात्राएँ है । पहली, आठवी और पन्द्रहवी मात्राएँ लघु हैं और चौदह चौदह पर यति पाई जाती है । अत. यह विधाता छन्द है ।

महायौगिक जाति

मरहटा

लक्षण —मरहटा छन्द मे उन्तीस मात्राएँ होती है । दस, आठ और ग्यारह पर यति होती है । अन्त मे गुरु-लघु होता है ।

।।।।।ऽऽऽ।।।। ऽऽ ऽ। ऽ।।। ऽ।

उदाहरण —यह सुनि गुरु वाणी धनु-गुन- तानी, जानि द्विज मुख दानी ।
ताडका सहारी, दारुण भारी, नारी अति बल जानि ।
मारीच विदारयो, जलधि उतारयो, मार्यो सबल सुबाहु ।
देवन गुन हर्ष्यो, पुष्पन बर्ष्यो, हर्ष्यो अति सुरनाहु ॥

इसके प्रत्येक पाद मे उन्तीस मात्राएँ और दस, आठ, ग्यारह पर यति पाई जाती है । अन्त मे गुरु-लघु पाया जाता है । अतः यह मरहटा छन्द है ।

महातैथिक जाति

चतुष्पदी (चवपैया)

लक्षण:—चवपैया छन्द मे तीस मात्राएँ होती है । दसवी, आठवी,

और बारहवी मात्रा पर यति होती है। अन्त मे एक गुरु होता है।

। । ऽ । । ऽ ऽ ऽ ऽ । । ऽ ऽ ऽ ऽ ऽ । । ऽ ।

उदाहरण.—भये प्रगट कृपाला, दीनदयाला, कौशल्या हितकारी।
हर्षित महतारी, मुनि मनहारी अद्भुत रूप निहारी।
लोचन अभिरामा, तन घनश्यामा, निज आयुध भुजचारी।
भूषण वनमाला, नैन विशाला, शोभा सिन्धु खरारी॥

इसके प्रत्येक पाद मे तीस मात्राएँ पाई जाती है। दसवी और बारहवी मात्रा पर यति है। अन्त मे एक गुरु पाया जाता है अतः यह चवपैया छन्द है।

ताटंक

लक्षण —सोलह रत्न कला प्रतिपार्दाहि है ताटक भो अन्ते।

ताटक छन्द मे तीस मात्राएँ होती है। अन्त मे मगण और सोलह-चौदह पर यति होती है।

। । ऽ ऽ । । । । ऽ । । । । । ऽ । ऽ । ऽ

उदाहरण—देव तुम्हारे कई उपासक, कई ढंग से आते हैं।
सेवा मे बहुमूल्य भेंट वे, कई रंग से लाते हैं॥
धूम धाम से साज-बाज से, वे मन्दिर मे आते हैं।
मुक्तामणि बहुमूल्य वस्तुएँ, लाकर तुम्हे चढ़ाते हैं॥

इसके प्रत्येक पाद मे तीस मात्राएँ होती है। सोलह-चौदह पर यति होती है। अन्त मे मगण आता है अत. यह ताटंक छन्द है।

अश्वावतारी जाति

वीर

लक्षण:—वीर छन्द मे इकत्तीस मात्राएँ होती हैं। इसके अन्त मे क्रमशः गुरु लघु होता है। सोलह-पन्द्रह पर यति होती है।

ऽ ऽ ऽ ऽ ऽ । । ऽ ऽ । । । । ऽ । ऽ । । ऽ ।

उदाहरण—मारू बाका बाजन लागे, घुमरन लागे लाल निशान।
तुरही महुअर बजै,नफीरी क्षत्रिन ताको लीन्ह मंदान॥

भौरा हाथी पर पिरथी पत, ठाकुर चढ़ा वीर चौहान।
कम्मर तेगा नाग दमन का, हाथन साधे तीरकमान ॥

ईसके प्रत्येक पाद मे इकत्तीस मात्राएँ पाई जाती हैं। अंत में गुरु लघु हैं। सोलह, पन्द्रह पर यति है। अत यह वीर छन्द है

लाक्षणिक जाति

त्रिभगी

लक्षण.—त्रिभगी छन्द मे वत्तीस मात्राएँ होती है। पाद के अन्त मे एक गुरु होता है। इसमे दस, आठ, छ पर यनि होती है।

।।ऽ।।ऽऽ ।।।।ऽऽ।।।।।ऽ।ऽऽऽ

उदाहरण —मुनि साप जुदीन्ह, अति भल कीन्हा, परम अनुग्रह मैं माना।
देखिऊँ भरि लोचन हरि भव मोचन,
इहै लाभ शकर जाना ॥
विनती प्रभु। मोरी, मैं मति मोरी,
नाथ। न मागो, वर आना।
पदकमल परागा, रस अनुरागा,
मम मन, मधुप करै पाना ॥

इसके प्रत्येक पाद मे वत्तीस मात्राएँ पाई जाती हैं। दस, आठ, छ पर यति हैं। अन्त में एक गुरु है अत यह त्रिभगी छन्द है।

विजय दण्डक

लक्षण —विजय दण्डक मे चालीस मात्राएँ होती है। प्रति दसवी मात्रा पर यति होती है। पाद के अन्त मे प्रायः रगण होता है।

।। ।।।।ऽ ऽ ऽ।।। ।ऽ ऽ

उदाहरण —सित कमल-वस सी, सीतकर अ स सी,
विमल विधि हस सी, हीर वर हार सी।
सत्य गुन सत्य सी, सान्त रस तत्व सी,
ज्ञान जिन चित्त सी, सिद्धि-विस्तार-सी ॥

कुन्द सी, काम सी, भारती वास सी,
सुरतरु निहार सी, सुधारस सार सी।
गंग-जल धार सी, रजत के तार सी,
कीर्ति तव विजय की सभु-आगार सी ॥

इसके प्रत्येक पाद मे चालीस मात्राए हैं। प्रति दन पर यति है और अन्त मे रगण है। अतः यह विजय दण्डक छन्द है।

बरवै

।।।। ।। ।।।।ऽ।। ।। ऽ।

लक्षण—विपमनि रवि (१२) कल बरवै, सम मुनि साज।

बरवै छद के विपम पादो मे बारह-बारह और सम मे सात-सात मात्राएँ होती हैं।

।।। ।ऽ ऽ ।।।। ऽ।ऽ ऽ।

उदाहरणः—अवधि शिला का उर पर था गुरु भार।
तिल-तिल काट रही थी, दृग-जल-धार ॥

इसके प्रथम और तृतीय पाद मे बारह-बारह और दूसरी और चौथी मे सात-सात मात्राऐं होती हैं अत. यह बरवै छन्द है।

दोहा

लक्षण—जान विपम तेरह कला, सम शिव दोहा मूल।

दोहा के विपम चरणो मे तेरह-तेरह और सम चरणो मे ग्यारह-ग्यारह मात्राएँ होती हैं।

।।। ।ऽऽ।।। ।। ।।।ऽ। ।। ऽ।

उदाहरण—नयन सलौने अधर मधु, कहु रहीम घटि कौन।
मीठो भावै नौन पर, मीठे ऊपर नौन ॥

इसके विपम चरणो मे तेरह-तेरह और सम चरणो मे ग्यारह-ग्यारह मात्राऐं पाई जाती। ह अत यह दोहा छद है।

सोरठा

लक्षण—सम तेरह विपमेश, दोहा उलटे 'सोरठे'।

सोरठा के विषम पाद मे ग्यारह-ग्यारह और सम पाद मे तेरह तेरह मात्राएं होती हैं।

ıısıısı sı sı ısssıııs

उदाहरणः—सुनि केवट के वैन, प्रेम लपेटे अटपटे।
विहंसे करुणा ऐन, जानकी लखन तन ॥

इसके विषम पाद मे ग्यारह-ग्यारह और सम पाद मे तेरह-तेरह मात्राएं है अत. यह सोरठा छद है।

कुण्डलिया

लक्षण—दोहा रोला जोरिकै, छै पद चौबीस मत्त।
आदि अन्त पद एक सो, 'कुण्डलिया' सत्त ॥

कुण्डलिया छद दोहा और रोला के मेल से बनता है।

ııs ss sı s ss ıı s sı

उदाहरण—बगला बैठा ध्यान मे, प्रात जल के तीर।
मानो तपस्वी तप करे, मल कर भस्म शरीर ॥
मलकर भस्म शरीर, तीर जब देखी मछली।
कहै 'मीर' ग्रसि चोच, समूची फौरन निगली ॥
फिर भी आवे शरण, वैर जो तज के अगला'
उनके भी तू प्राण हरे, रे छी छी बगला ॥

इस पाद में दोहे और रोले का मेल है अत. यह कुण्डलिया छद है।

छप्पय

लक्षणः—रोला के पद चार, मत्त चौवीस धारिये।
उल्लाला पद होय, अन्त माही सुधारिये ॥

छप्पय के आदि के चार पाद 'रोला' के और अन्त में चार पाद उल्लाला के होते हैं।

ııs ıı s sısı ıı ıs ıs s

उदाहरण—जिसकी रज में लोट-लोट कर बड़े हुए हैं।
घुटनों के बल सरक-सरक कर खड़े हुए हैं ॥

परमहंस-सम बाल्यकाल मे सब सुख पाये ।
जिसके कारण धूल भरे हीरे कहलाये ॥
हम खेले कूदे हर्ष युत, जिसकी प्यारी गोद मे ।
हे मातृ-भूमि ! तुझको निरख मग्न क्यो न हो मोद मे ॥

इसके पहले चार पाद रोला के हैं और पिछले दो पाद उल्लाला के हैं। अत. यह छप्पय छन्द है ।

सार-मिलिन्द पाद

लक्षणः—इस मिलिन्दपाद का प्रत्येक चरण 'सार' छन्द का होता है ।

S I S I S I I S I S I I I I S S S S

उदाहरण—भाव राशि के रूप राशि के अभिनय सांचे ढाली ।
नवरसमय-यौवन-तरंग की लेकर छटा निराली ॥
मंजु अलंकारों से सजकर जगमग जगमग करती ।
कोमल कलित ललित छन्दो के नूपर पहन थिरकती ॥
गज गामनि ! अनुपम शोभा की दिव्य विभा दरसाओ ।
छम-छम करती हृदय कुंज मे आओ कविते ! आओ ॥

इस मिलिन्द पाद का प्रत्येक चरण 'सार' छन्द का है । अत: यह 'सार मिलिन्दपाद' है ।

प्रसाद-मिलिन्द पाद

उदाहरण—

S S S I I I S S I I S I S I I I I S I S S S
पाप का क्षणिक प्रभाव विलोक, लोभ यदि सके न कोई रोक ।
शोक तो उसकी मति पर शोक, बना क्या, बिगड़ा जब परलोक ॥
विजय है वही कि सब ससार, करे पीछे भी जय-जयकार ॥

इस 'मिलिन्दपाद' का प्रत्येक चरण 'प्रसाद' छन्द का है । अत. यह 'प्रसाद मिलिन्दपाद' है ।

विधाता-मिलिन्दपाद

।ऽ।　ऽऽऽऽ।　ऽ।ऽ　ऽ　।ऽऽ।

उदाहरण—बड़ो के मन्त्र मानेंगे, प्रसगों को न भूलेंगे।
कहो क्या उँच्च उँच्चो की, ऊँचाई को न छू लेंगे।
भरे आनन्द से चारो फलो के झाड़ फूलेंगे।
चढ़े कर्तव्य के झूले मे हम सानन्द झूलेंगे॥
सबो को शकरानन्दी, अनिष्टो से उबारेंगे।
बिगाड़ो को बिगाड़ेंगे, सुधारो को सुधारेंगे॥

इसका प्रत्येक पाद विधाता छद का है। अत यह विधाता-मिलिन्द पाद है।

छन्द एक दृष्टि मे

छन्द	लक्षण	उदाहरण
विद्युन्माला	म, म, ग, ग	गंगा माता०
प्रमाणिका	ज, र, ल, ग	नमामि भक्तवत्सलम०
माणवक	भ, त, ल, ग	पालक-गी-विपुन की०
चम्पकमाला	भ, म, स, ग	चाह नही तो०
शालिनी	म, त, त, ग, ग	कैसी-कैसी ठोकरें०
इन्दिरा	न, र र, ल, ग	तव सुधामयी०
दोधक	भ, भ, भ, ग, ग	राम गये जब ते०
स्वागता	र, न, भ, ग, ग	वासुदेव वासुदेव०
रथोद्धता	र, न, र, ल, ग	भारतीय जन०
भुजंगी	य, य, य, ल, ग	नही लालसा है०
इन्द्रवज्रा	त, त, ज, ज, ग	तू मंगला०
उपेन्द्रवज्रा	ज, त, ज, ग, ग	बड़ा कि छोटा०
उपजाति	इन्द्रवज्रा और उपेन्द्र वज्रा का सयुक्त रूप	परोपकारी बन वीर०
मोदक	न, म, भ, भ	दोषमयी जु दवारि०

तोटक	स, स, स, स	मतभेद भयानक०
स्रग्विणी	र, र, र, र	राम आगे चले०
प्रमातिक्षरा	स, ज, स, स	अब भी समक्ष०
भुजगप्रयात	य, य, य, य	अजन्मा न आरम्भ०
इद्रवशा	त, त, ज, र	यो ही वडा हेतु०
वसस्थ	ज, त, ज, र	वना रहे प्रेम०
द्रुतविलम्बित	न, भ, भ, र	मरसता सरिता०
मोतिदाम	ज, ज, ज, ज	गयो वलि०
जलोद्धतगति	ज, स, ज, स	असार जग की०
मंजुभापिणी	स, ज, स, ज, ग	जुप बैठे राम०
तारक	स, स, स, स, ग	यह कीरति और०
वसन्त तिलका	त, भ, ज, ज, ग	फूले हुए कुमुद
चामर	र, ज, र, ज, र	कुज मे गुपाल लाल०
मालिनी	न, न, म, म, य, य	पल-पल जिसके मै०
निशिपाल	भ, ज, स, न, र	गान विनु, मान विनु०
पचचामर	ज, र, ज, र, ज, ग	महेश के महत्व का०
चंचला	र, ज, र, ज, र, ल	रामचद जु कहंत०
मद्राक्राता	म, भ, न, त, त ग, ग	दो वशो मे प्रकट०
शिखरिणी	य, म, न, स, भ, ल, म	घटा कैसी प्यारी०
पृथ्वी	ज, स, ज, य, ल, म	न जा उधर हे सखि०
चचरी	इ, स, ज, ज, भ, र	पुष्ट सग जु०
शार्दूल विक्रीडित	म, स, ज, म, त, त, म	आ वैठी उर मोह०
गीतिका	स, ज, ज, भ, र, स, ल	सज जीम री०
स्रग्धरा	म, र, भ, न, य, य, य	नाना फूलो से०
भविस	स, स, स, स, स, स, स, म	सिंधु तरयो उनके वनरा०
मत्तगयद	भ, भ, भ, भ, भ, भ, भ, म	जाल प्रपंच पसार०
दुर्मिल	स, स, स, स, स, स, स, स	उपदेश अनेक सुने०
करीट	भ, भ, भ, भ, भ, भ, भ, भ	मानुष हौं तो०

सुन्ददरी	स, स, स, स, स, स, स, स, ग	सुख शात रहे०
कुदलता	स, स, स, स, स, स, स, स, ल, ल	जग मे नर जन्म०
मत्तमातग लीलाकर	नौ या नौ से अधिक रगण	योग जाना नही०
कुसमस्तवक	नौ या नौ से अधिक सगण	जगदम्ब, जरा करुणा०
घनाक्षरी	इकत्तीस वर्ण, अत मे गुरु, यति—१६ वे और ३१ वें अक्षर पर	सुनसान कानन०
रूप घनाक्षरी	३२ वर्ण अत मे गुरु, लघु यति—प्रत्येक १६ वें अक्षर पर	छन २ छीजत देखहिं०
देवघनाक्षरी	३३ वर्ण, अत मे नगण	झिल्ली झनकोरें०
आपीड	प्रथम पाद ८ अक्षर, दूसरे पाद १३ तीसरे १६ चौथे २०	प्रभु असुर
सौरभ	१ मे स, ज, स, ल, २ मे न, स, ज, ग, ३ मे स, भ, ग, ४ मे स, ज, स, ज, ग १ मे ८, २ मे १२, ३ मे १६ और ४ मे २० वर्ण	मत छोड़िए०
प्रमाणिका मिलिंदपाद	प्रमाणिका के ६ चरण	सुधार धर्म कार्य को०
भुजगी मिलिंदपाद	भुजगी के ६ चरण	अरे ओ अजन्मा०
भुजग प्रयात मिलिंदपाद	भुजगप्रयात के ६ चरण	अजन्मा न आरम्भ०
पचचामार मिलिंदपाद	पचचामर के ६ चरण	चलो अभीष्ट मार्ग मे०
अहीर	११ मात्रायें अत मे जगण	सुरभित मंद बयार०
तोमर	१२-११, अत मे ग, ल	प्रस्थान वन की ओर०
विजाति	१४ मात्रायें, आदि मे लघु	मदन विकारी जीवन का०
हाकलि	१४ मात्रायें (३ चौकल, ए गुरु)	जग पीड़ित है अति दुख से०
पादाकुलक	१६ मात्रायें (४ चौकल)	सुम्मती कुमति०
पद्धार	१६ मात्रायें, अंत मे ज ८-८ पर यति।	मैं जन्मा था०
चौपाई	१६ मात्रायें, अंत मे जगण तगण नही	कल सोलह जहँ०

शक्ति	१८ मात्रायें, अ त मे स, र नही	अरे उठ कि०
पीयूष वर्ष	१९ मात्रायें, अंत मे ल, ग, १०-९ पर यति।	ब्रह्मा की है०
सुमेरु	१९ मात्रायें, अ त मे य	तुम्हे कर जोड कर०
हंसगति	२० मात्राये, ११-९ पर यति	होते है छवि देख०
राधिका	२२ ११, १३-९ पर यति	यह सच हैं तो०
कुण्डल	२२, ,, अ त मे य १२-१० पर यति।	मेरो मन राम नाम०
रोला	२४ मात्रायें ११-१३ पर यति	माताओ के भाग०
दिकपाल	२४ ,, १२-१२ पर यति	आते समीर के ये०
रूपमाला	२४ मात्रायें, १४-१० यति	चूमता था भूमिवल०
मुक्तामणि	२५ ", यति १३-१२ अन्त मे २ गुरु	कुण्डल ललित कपोल०
गीतिका	२६ मात्रा यति १४-१२ अन्त मे लघु गुरु	साधु भगतो मे०
सरसी	२७ मा० यति १६-११, अन्त में गुरु लघु	काम क्रोध मद०
सार	२८ मा० यति १६-१२ अन्त मे दो गुरु	लज्जा की लाली०
हरिगीतिका	२८ मा० यति १६-१२, अन्त मे लघु, गुरु	इस भांति गदगद०
विधाता०	२८ मा० यति १४-१४	न होती आह तो०
मरहटा	२९ मा०-यति १०-८११	यह सुनी गुरु वानी०
चतुष्पदी	३० मात्रा १०-८-१२ यति	भये प्रगट कृपाला०
ताटंक	३० मात्रा १६-१४ पर यति अन्तँ मे मगण	देव तुम्हारे कहे०
वीर	३१ मा० ' ८-८-१५ पर यति	मारू बाजा बाजन०

त्रिभंगी	३२ मा० । १०-८-८-६ पर यति	मुनि साप जु०
विजय दण्डक	४० मात्रा १०-१०-१०-१० पर यति	सित कमल वस०
बरवै	१-३ मे १२, २-४ मे ७, अन्त मे जगण	अवधि शिला का० डर०
दोहा	१-३ मे १३, २-४ मे ११, अन्त मे लघु	नयन सलोने०
सोरठा	१-३ मे ११ २-४ मे १३,	सुनि केवट के०
कुण्डलिया	दोहा और रोला के मेल से।	बगला बैठा०
छप्पय	रोला X उल्लाल	जिसकी रज मे०
सार मिलिन्दपाद	प्रत्येक चरण सार छद	भावराशि के रूपराशि०
प्रसाद मिलिन्दपाद	प्रत्येक " प्रसाद "	पाप का क्षणक०
विधाता "	" विधाता "	बडो के मन्त्र०

पँचम पत्र

तैयार करने की विधि

इस पत्र मे निम्नलिखित तीन पुस्तके नियत है जिनके अङ्को का विभाजन इस प्रकार है—

(१) हिन्दी भाषा और साहित्य का इतिहास	...५० अङ्क
(२) महाकवि सूरदास	२५ अङ्क
(३) प्रेमचन्द और उसकी साहित्यिक साधना या उपन्यास सम्राट् प्रेमचन्द	...२५ अङ्क
	कुल १०० अङ्क

इस पत्र मे भी प्राय बीस-बीस अङ्को के पाँच प्रश्न होते है। तीन प्रश्न हिन्दी-साहित्य इतिहास पर तथा दो प्रश्न 'सूरदास' व 'प्रेमचन्द' जी पर पूछे जाते है। अनिवार्य विकल्प (Compulsory choice) रहता है। अत विद्यार्थी को प्रश्न-चयन के लिए यह आवश्यक है कि विद्यार्थी प्रश्न को करने से पूर्व प्रश्न-पत्र मे दिए गए निर्देश एव आदेश' धाराओ को भली-भाँति समझ ले। इस प्रश्न-पत्र मे प्रश्नो को क, ख, ग, घ चार खण्डो मे विभाजित किया होता है। 'क' भाग में 'हिन्दी-साहित्य' के पाँच प्रश्न होते है, जिनमे से दो प्रश्न करने होते है। 'ख' भाग मे हिन्दी-साहित्य का एक अनिवार्य प्रश्न होता है। 'ग' भाग में सूरदास पर दो प्रश्न होते है जिनमें से एक प्रश्न का उत्तर देना होता है। इसी प्रकार 'घ' भाग मे प्रेमचन्द पर दिये दो प्रश्नों मे से एक का उत्तर देना होता है।

हिन्दी भाषा और साहित्य का इतिहास

विश्वविद्यालय की ओर से इस परीक्षा में श्री हजारीप्रसाद द्विवेदी कृत 'हिन्दी-साहित्य' नामक इतिहास-ग्रन्थ निश्चित किया गया है जिसमे भाषा की उत्पत्ति से लेकर इसके विकास-क्रम तथा उन्नति पर सामग्री दी गई है। तत्सम्बन्धी काल सम्बन्धी कवियों और रचनाओ का उल्लेख किया गया है। आदि काल से आधुनिक पद्य, गद्य युग तक का क्रमिक विकास ही लेखक का उद्देश्य है। महा-

यता के लिए और साहित्य-इतिहास ग्रन्थ भी देखे जा सकते हैं परन्तु मेरी व्यक्तिगत सम्मति यह है कि हिन्दी-साहित्य के इतिहास को तैयार करने के लिये प्रथम पत्र के अन्तर्गत 'कवियो का विवेचनात्मक अध्ययन' के दोनो भाग विद्यार्थी ध्यान से देखे तथा प्रस्तुत गाइड में हिन्दी-साहित्य के इतिहास पर दिए गए प्रश्नो को स्मरण कर ले, तो उनके लिए परीक्षार्थ पर्याप्त सामग्री एकत्रित हो जायगी।

इस पुस्तक पर तीन प्रश्न २०-२० अङ्क के होगे। अत विद्यार्थी उन प्रश्नो को लें जिनके विषय मे वे काफी लिख सके। इतिहास के प्रश्नो को लिखते हुए समय का ध्यान रखना बहुत आवश्यक है। विस्तार से जहाँ तक हो दूर रहें क्योकि इस पत्र मे तीन पुस्तकें है और तीनो का विषय विस्तृत है। अत समय-विभाजन के अनुसार लिखना बहुत ही आवश्यक है।

महाकवि सूरदास

इस परीक्षा मे 'महाकवि सूरदास' नामक पुस्तक नियत है। इसमे सूरदास जी के जीवन तथा साहित्य-दर्शन तथा भाव-जगत् पर विशद रूप से लिखा है। विद्यार्थी इस विषय पर अन्य सहायक पुस्तक भी देख सकते हैं परन्तु इस गाइड मे 'महाकवि सूरदास' के आधार पर प्रत्येक प्रश्न का उत्तर बहुत ही विस्तार से लिख दिया गया है। विद्यार्थी सूरदास की रचनाओ, रस, भाषा तथा काव्य-सौंदर्य पर भली-भाँति सामग्री जुटा लें। 'सूर' का शृङ्गार तथा वात्सल्य-वर्णन तो हिन्दी-साहित्य को कवि की अमर एव अक्षय देन है। अत इस प्रश्न को भली-भाँति तैयार करना चाहिए।

सूर के सम्बन्ध मे दो प्रश्न होते है। एक प्रश्न उनके साहित्य के सम्बन्ध मे और दूसरा किसी रचना के विषय मे पूछा जाता है। इन प्रश्नो मे भी विकल्प रहता है अत विद्यार्थी प्रश्न-चयन मे सावधानी से काम ले।

उपन्यास-सम्राट् प्रेमचन्द

उपन्यास सम्राट् 'प्रेमचन्द' पर विश्वविद्यालय ने नन्ददुलारे वाजपेयी तथा रामविलास शर्मा द्वारा कृत पुस्तके नियत की है। प्रेमचन्द के सम्बन्ध में दो

प्रश्न पूछे जाते है। एक प्रश्न मे प्रेमचन्द जी के किसी एक उपन्यास की आल
चना पूछी जाती है और दूसरा प्रश्न मु शी जी के साहित्य अथवा उनके जीव
से सम्बन्धित होता है। प्रेमचन्द-साहित्य मे विद्यार्थियो को उनके कहानी त
उपन्यास पक्ष को ही भली-भाँति देखना चाहिए। यदि सभव हो सके तो परीक्ष
से पूर्व उनकी औपन्यासिक रचनाओ मे 'गोदान', 'कर्मभूमि', 'प्रेमाश्रम', 'सेव
सदन' और 'निर्मला' को अवश्य पढ लेना चाहिए। इन रचनाओ के अध्यय
से ही विद्यार्थी प्रेमचन्द के दृष्टिकोण को समझ सकेगे। साथ ही विद्या
प्रेमचन्द जी की उन राजनीतिक, सामाजिक तथा आर्थिक समस्याओ से भ
परिचित हो जायेंगे जो उन्होने समाधान के लिए पाठक वर्ग के सम्मुख रर
हैं।

प्रत्येक उपन्यास की कथावस्तु, उसका उद्देश्य तथा उस रचना सम्बन्ध
समस्या को स्मरण कर लेना बहुत आवश्यक है। सभी प्रश्नो का आलोचनात्म
उत्तर ही परीक्षक को अभीष्ट होता है अत विद्यार्थी जो कुछ भी लिखे उस
स्वस्थ तर्क का आधार होना आवश्यक है।

सरलता के लिए यह लाभप्रद होगा कि विकल्प अनुसार प्रेमचन्द जी का
किसी रचना की आलोचना की जाय।

— —

हिन्दी साहित्य का इतिहास

प्रश्न १—हिन्दी से पूर्व अपभ्रंश साहित्य का संक्षिप्त परिचय दो।

अथवा

'अपभ्रंश काव्य की सभी परपराएं हिन्दी साहित्य में सुरक्षित रही हैं।' इस उक्ति की विवेचना उदाहरण देकर करो।

अथवा

हिन्दी साहित्य का आरम्भ कब हुआ? उसके विकास की मूल प्रेरणा के कारणों को स्पष्ट करते हुए उस में जैन साहित्य, नाथ सम्प्रदाय साहित्य का स्थान निर्धारित कीजिये।

अथवा

अपभ्रंश साहित्य की प्रमुख विशेषताओ और काव्य शैलियों (वन्धों) पर प्रकाश डालो।

उत्तर—अपभ्रंश और हिन्दी—अनेक विद्वानो ने अपभ्रंश साहित्य को हिन्दी साहित्य के इतिहास मे पृष्ठ भूमि के रूप में ग्रहण किया है। 'शिवसिंह सरोज' में पुष्प भाट को हिन्दी का प्रथम कवि माना गया है, जो नि.सन्देह दसवी शताब्दी का अपभ्रंश कवि पुष्पदन्त ही है। इसी प्रकार गुलेरी जी ने भी अपभ्रंश के साहित्य को 'पुरानी हिन्दी' का साहित्य घोषित किया है। मिश्र बन्धु तथा आचार्य शुक्ल के इतिहास ग्रन्थो में भी अपभ्रंश को स्थान दिया गया है। राहुल सांकृत्यायन भी अपभ्रंश की रचनाओ को हिन्दी के अन्तर्गत मानते हैं। उन्होने 'हिन्दी काव्यधारा' में आठवी शताब्दी से लेकर १३ वी शताब्दी तक के अपभ्रंश कवियो की रचनाओं का संग्रह किया है। इनमे सरहपा, स्वयम्भू (८वीं), पुष्पदन्त, धनपाल (१०वीं), हेमचन्द्र, सोमप्रभ (१२वीं) के नाम विशेष उल्लेखनीय हैं।

वास्तव मे भाषा विज्ञान की दृष्टि से तीन प्राकृतो मे अन्तिम प्राकृत को अपभ्रंश कहते हैं, जिससे आधुनिक भारतीय भाषाओ का विकास माना जाता है। ग्रियर्सन के अनुसार प्रत्येक आधुनिक भाषा का विकास एक पृथक् पृथक् अपभ्रंश भाषा के रूप से हुआ है। उदाहरण के लिए वर्तमान बंगला, उडिया, विहारी, मैथिली, आसामी भाषाओ का विकास अपभ्रंश के किसी एक ही रूप से सभव नही है। हेमचन्द्र ने अपने व्याकरण मे जिस अपभ्रंश के उदाहरण दिए हैं, उसे 'नागर अपभ्रंश' समझना चाहिये। किन्तु उसके भी दो रूप मिलते हैं—एक शुद्ध साहित्यिक रूप और दूसरा ग्राम्य रूप। खड़ी वोली, व्रज भाषा आदि आधुनिक भाषाओ का सीधा विकास दूसरे रूप से ही हुआ है, प्रथम रूप से नही। प्रथम रूप का आधार ५वी और ६ठी शताब्दी मे वोली जाने वाली अपभ्रंश भाषा होगी, जिसके आगे चल कर अनेक रूपो मे से विभिन्न आधुनिक आर्य भाषाएं विकसित हुई। अतएव खडी वोली और व्रज भाषा (हिन्दी) का प्रत्यक्ष सबध हेमचन्द्र की साहित्यिक अपभ्रंश से न होकर उसकी मूल अपभ्रंश से ही है। किन्तु साहित्यिक अपभ्रंश की सभी काव्य-परम्पराओ का उचित विकास सुरक्षित रूप से हिन्दी साहित्य में होता रहा है, यही कारण है कि विद्वानो ने अपभ्रंश की गणना भी हिन्दी में कर ली है। डा० हजारीप्रसाद द्विवेदी अपभ्रंश को 'पुरानी हिन्दी' का नाम देने के पक्ष मे नही हैं, किन्तु परम्परा की दृष्टि से वे हिन्दी के परवर्ती साहित्य को अपभ्रंश साहित्य से विकसित अवश्य मानते हैं।

काव्य-शैलिया—अपभ्रंश साहित्य में तीन प्रकार की काव्य-शैलिया प्रधान रूप से पाई जाती हैं, जिनका विकास आगे हिन्दी कवियो ने भी किया है। वे तीन शैलिया हैं—(१) दोहा शैली, (२) पद्धरिया शैली, (३) गेय शैली।

(१) दोहा-शैली—जिस प्रकार आर्या छन्द सस्कृत का प्रतीक है और गाथा छद प्राकृत भाषा का, ठीक उसी प्रकार दोहा या दूहा छन्द से अपभ्रंश काव्य का ही वोध होता है। इस छन्द का प्रयोग अपभ्रंश के कवियो मे ही सर्वप्रथम किया गया है, जिसे हिन्दी के कवियो ने भी वहुत लोकप्रिय वना दिया है। अपभ्रंश मे जैन मुनियो और वौद्ध सिद्धो ने जिस श्रेणी के

उपदेशप्रधान दोहों की रचना की, उनकी स्पष्ट झलक निर्गुणपंथी संत कवियों की हिन्दी रचनाओं में देखी जा सकती है। हेमचन्द्र के व्याकरण और 'प्रबन्ध चिन्तामणि' में प्राप्त शृङ्गारी दोहों की परम्परा आगे बिहारी और मतिराम की सतसइयों में सुरक्षित मिलती है। हेमचन्द्र के नीतिसम्बन्धी दोहों के प्रकाश में रहीम, वृन्द और तुलसी का साहित्य रखा जा सकता है। दोहा-पद्धति का प्रयोग युद्ध में जाने वाले पतियों को लक्ष्य करके कही गई पत्नियों की वीररस पूर्ण जिन उक्तियों में हुआ है, उसकी परम्परा भी डिंगल-भाषा के साहित्य के रूप में हिन्दी के पास सुरक्षित है।

(२) पद्धरिया शैली—पद्धरिया १६ मात्राओं का एक छन्द है। इस छन्द में अपभ्रंश के अनेक सुन्दर चरित काव्य और कुछ नीति ग्रंथ लिखे गए। इन काव्यों में उक्त छन्द की आठ पंक्तियों के पश्चात् एक दोहा (कडवक) रखने की प्रवृत्ति है। स्वयभू, पुष्पदन्त और चतुर्मुख इस पद्धति के श्रेष्ठ कवि हैं। पूर्वी भारत में पद्धरिया छन्द के स्थान पर चौपाई (१६ मात्रा का छन्द) का प्रयोग कवियों ने किया है। सरहपा इस प्रकार का प्रथम कवि था। तुलसी-दास ने अपने प्रसिद्ध महाकाव्य 'रामचरित मानस' में इस परम्परा का पूर्ण विकास किया।

(३) गेय शैली—हेमचन्द के व्याकरण में प्रयुक्त अपभ्रंश भाषा का जो ग्राम्य रूप है, उसमें गेय शैली का प्रयोग प्रधान रूप से मिलता है। यह साहित्यिक 'काव्य भाषा' न होकर उस समय की प्रचलित 'लोक भाषा' थी। ११वीं शताब्दी में अब्दुर रहमान ने एक सुन्दर विरहात्मक 'रासक ग्रन्थ' लिखा। रासक नामक छन्द आगे चलकर गीतिकाओं का प्रतिनिधि सा बन गया। वीर गाथा काल में अनेक वीररस प्रधान रासो ग्रन्थों की रचना हुई। अपभ्रंश के गेय पदों की परम्परा का विकास हिन्दी में कबीर, सूरदास, मीरा, तुलसी-दास आदि ने बड़ी कुशलता के साथ किया।

इसके अतिरिक्त 'प्राकृत पैंगलम्' में वर्णित कुण्डलिया, रोला, उल्लाला आदि अनेक छन्दों का व्यवहार भी हिन्दी काव्यों में उचित मात्रा में किया गया। इस प्रकार अपभ्रंश काव्य की प्रायः सभी परम्पराएं हिन्दी में ज्यों की त्यों सुरक्षित बनी रहीं। इसलिए डा० हजारीप्रसाद द्विवेदी के शब्दों में यदि

इसी साम्य को देखकर इतिहासलेखकों ने अपभ्रंश साहित्य को हिन्दी साहित्य का मूल समझ लिया हो, तो ठीक किया है।

अपभ्रंश साहित्य—अपभ्रंश साहित्य को प्रधान रूप से तीन भागों में विभाजित किया जा सकता है—(१) बौद्ध सिद्धों का साहित्य, (२) नाथपंथी योगियों की रचनाएं, (३) जैन मुनियों के काव्य।

१ वज्रयानी बौद्ध सिद्धों की रचनाएं—बौद्धमत का जब पतन काल आरम्भ हुआ, तब उस में दो प्रधान सम्प्रदाय हो गए—(१) महायान, (२) हीनयान। महायान सम्प्रदाय में भी अनेक छोटी-छोटी शाखाएं उत्पन्न हो गई, जिनमें वज्रयान प्रसिद्ध है। वज्रयानी लोग मन्त्र-तन्त्र की साधनाओं पर विश्वास करते थे और 'सिद्ध' कहलाते थे। इन सिद्धों की संख्या चौरासी मानी जाती है, उनमें प्रमुख सरहपा, कण्हपा, गोरक्षपा, आदि के नाम उल्लेखनीय हैं। 'महासुखवाद' के ये उपासक पंचमकार (मैथुन, मांस, मदिरा, मुद्रा और मत्स्य का) स्वच्छंदतापूर्वक आचरण करते थे। सिद्धि को प्राप्त करने में इन वस्तुओं का उपयोग आवश्यक मानते थे। इन सिद्धों की जो रचनाएं मिलती हैं, उनमें सरल अर्थ बड़ा ही कुत्सित और दुराचार सम्बन्धी निकला है किन्तु एक दूसरा साधना का रहस्यार्थ भी उसमें छिपा रहता है। इस प्रकार की 'उलटवासियों' को 'सन्ध्याभाषा' या 'रहस्यवाणी' कहा जाता है। विद्वानों का अनुमान है कि 'सन्ध्या' का अर्थ है—अस्पष्ट भाषा, जिस प्रकार सन्ध्या के समय प्रकाश धुंधला रहता है, उसी प्रकार उन रचनाओं का अर्थ भी स्पष्ट नहीं रहता। कुछ लोग 'सन्ध्या' शब्द का सम्बन्ध 'अभिसंधि' अर्थात् अभिप्राययुक्त भाषा के साथ जोड़ते हैं। अस्तु, बौद्धसिद्धों के गूढ़ अर्थों को समझने के लिए पारिभाषिक शब्दावली का ज्ञान आवश्यक है। इसी धारा की स्पष्ट छाप कबीर आदि निर्गुण धारा के सन्त कवियों पर दिखाई पड़ती है। अन्तर इतना है कि व्यभिचार अथवा दुराचार सम्बन्धी उपासनाओं का निर्गुणधारा में कोई स्थान नहीं। इस विषय में वे 'नाथपंथ' से प्रभावित हुए हैं।

२ नाथपंथी योगियों की रचनाएं—नवीं, दसवीं शताब्दी में मत्स्येंद्रनाथ (मछन्दर नाथ) और गोरक्षनाथ (गोरखनाथ) दो प्रसिद्ध सिद्ध उत्पन्न हुए। इन सिद्धों की गणना चौरासी बौद्धसिद्धों में भी होती है और

नाथपंथी चौरासी सिद्धो में भी। गोरखनाथ ने हठयोग का आधार लेकर नाथ सम्प्रदाय की स्थापना की। ये शिव के अवतार माने जाते थे। उनकी रचनाओं में योग की साधना के साथ वाह्य आडम्बर का कड़ा विरोध, जाति-पाति भेद की निन्दा और गुरु महिमा के भाव पाए जाते हैं। इनकी शैली भी वज्रयानी सिद्धो की शैली से बहुत कुछ मिलती जुलती है। गोरखनाथ के नाम से प्रचलित अनेक गद्य-पद्यमय पुस्तकें पाई जाती हैं। डा० पीताम्बरदत्त बड़थ्वाल ने केवल चौदह पुस्तको को ही प्रामाणिक माना है। गोरख बोध, सबदी, गोरक्ष-शिवजी सवाद, गोरख गणेश गुष्टि उनमे प्रसिद्ध हैं। सम्वाद रूप में दार्शनिक विचारो को प्रकट करने की शैली का प्रचार नाथपथियो मे बहुत पाया जाता है; नैतिक सिद्धातो पर दृढ विश्वास, सदाचार की भावना उनमें प्रधान पाई जाती है। गृहस्थ के प्रति अनादर की भावना से नाथपथ का साहित्य नीरस और शुष्क बन गया है। निर्गुणधारा के सन्त कवियो पर इनका प्रभाव निर्विवाद रूप से सिद्ध है। बौद्धो और नाथपथी सिद्धो की रचनाएँ कितनी पुरानी हैं, अभी तक इस बारे में निश्चित कुछ नही कहा जा सकता।

३. जैन मुनियों के काव्य—इनकी भाषा अपेक्षाकृत साहित्यिक थी। यद्यपि यह साहित्य अधिकाश रूप मे मध्य देश (हिन्दी के प्रदेश) से बाहर लिखा गया और अपने विशेप धार्मिक सिद्धातो की दृष्टि से भी हिन्दी को विशेष प्रभावित नही कर सका, तथापि जैन साहित्य का महत्त्व कम नही है। सब से पहली बात तो यह है कि जैन मुनियो का लिखा काव्य ही प्रामाणिकता की सीमा में आता है, शेप साहित्य के विपय मे सन्देह की पूरी गुंजायश है। दूसरे अपभ्रश के जैन कवियो द्वारा रचित 'चरितकाव्यो' की परम्परा ही हिन्दी में आगे चलकर विकसित हुई। तुलसी का 'रामचरितमानस' तथा सूफी कवियो के प्रेमाख्यान उसी परम्परा के रूप हैं। पुष्पदन्त, स्वयभू, ईशान, चतुर्मुख, सुप्रसिद्ध जैन कवि हैं। हरिषेण ने अपभ्रश के तीन श्रेष्ठ कवि चतुर्मुख स्वयभू और पुष्पदन्त ही माने हैं। स्वयभू को पद्धरिया पद्धति का प्रवर्तक भी समझा जाता है। १०वी शताब्दी में धनपाल ने 'भविष्यत् कथा' नामक सुप्रसिद्ध चरित काव्य लिखा। ये चरित काव्य पद्धरिया शैली में अथवा दोहा-

चौपाई शैली में लिखे गए हैं, जिनमें आठ-आठ चौपाइयों के पश्चात् एक घता (कडवक) देने की प्रथा है। भाषा, शैली, विषय, उद्देश्य सभी दृष्टि से यह साहित्य सुन्दर बन पड़ा है।

प्रश्न २—आदि काल को 'वीरगाथा काल' कहना कहाँ तक उचित है?

अथवा

वीरगाथाकालीन परिस्थितियों का वर्णन करते हुए इस काल के साहित्य की प्रमुख विषशेताओं पर भी प्रकाश डालो।

उत्तर—परिस्थितियां—आचार्य शुक्ल ने सं० १०५० से स० १३७५ तक 'वीरगाथाकाल' माना है। इस काल को कुछ विद्वान् 'आदिकाल' के नाम से पुकारना अधिक उचित समझते हैं। डा० हजारीप्रसाद द्विवेदी इसी मत के समर्थक हैं। उनका विचार है कि आचार्य शुक्ल ने 'वीरगाथाकाल' नाम इस कारण दिया था, क्योंकि वे इस काल में प्राप्त साहित्य में अधिकाश प्रामाणिक रचनाएं वीरगाथाओं को ही मानते थे। किन्तु आज उन रचनाओं की प्रामाणिकता के विषय में पर्याप्त सन्देह है तथा अनेक दूसरी अज्ञात रचनाओं का भी पता इस काल में चला है, जिसके प्रकाश में 'वीरगाथाकाल' नाम उपयुक्त नही जान पडता। किन्तु 'आदिकाल' नाम से भी यह नहीं समझ लेना चाहिये कि यह काल किसी पूर्वकाल से सर्वथा भिन्न काल है। वास्तव में अपभ्रश साहित्य की विकास-परम्परा में ही इस काल की गणना होती है। अन्तर केवल भाषा के क्षेत्र में है। 'आदिकाल' की भाषा इससे पूर्व काल की परिनिष्ठित (अपभ्रश) भाषा से कुछ आगे बढी हुई भाषा है, जिसका रूप हिन्दी से अधिक निकट है और जो आगे चलकर व्रजभाषा और अवधी भाषा का रूप धारण कर लेती है। अस्तु;

हिन्दी साहित्य का आदिकाल राजनीतिक दृष्टि से संघर्ष का काल था। भारत में चक्रवर्ती सम्राट् न होने से राजा हर्ष के पश्चात् छोटे-छोटे प्रदेशों पर सामन्त शासन करते थे। इन राजाओं और सामन्तों मे भी परस्पर ईर्ष्या की अग्नि जला करती थी और ये राजपूती आन के झूठे उन्माद मे अपनी शक्ति का अपव्यय एक-दूसरे से लडने में कर रहे थे। भारत गृह-युद्ध का अखाडा बन गया था। भाई भाई का गला काटने के लिए तैयार था। स्वार्थ मे अन्धे

होकर ये सामन्त अपने राज्य की सीमा के विस्तार के लिए अथवा कुछ परम्परागत किसी पुरानी शत्रुता के कारण अथवा किसी रूपवती राजकुमारी से विवाह रचाने की धुन में अपने पडोसी राज्यो पर आक्रमण करते रहते थे। इन सब कारणो से भारत खडित ही नही, क्षीण भी हो चुका था। इस अवसर से अनुचित लाभ उठाते हुए यवन आक्रमणकारियो ने भारत को लूटने के उद्देश्य से चढाई की। फलत विदेशी आक्रमणकारियो का भी सामना करने के लिये कुछ स्वाभिमानी राजपूतो ने तलवारें निकाल ली। चारो ओर युद्धो का भयानक वातावरण ही छाया हुआ था। तलवारो की झङ्कार ही सुनाई देती थी। राजनीतिक परिस्थितियो से तत्कालीन साहित्य भी अछूता न रह सका। वीररस से भरी वीरगाथाओ की रचना होने लगी। भाट और चारण आश्रय-दाता की सेना में भी सहायता देते और लेखनी के चमत्कार को भी दिखाते थे। यह समस्त वीर साहित्य उस समय प्रचलित 'देशभाषा' मे लिखा गया, जबकि इससे पूर्व साहित्य की भाषा अपभ्रश थी।

रचनाएं—इस काल में दो प्रकार की रचनाए मिलती हैं—(१) देश-भाषा काव्य, (२) जैन मुनियो के अपभ्रश काव्य। प्रथम श्रेणी मे आने वाली रचनाएँ पृथ्वीराज रासो, बीसल देव रासो, खुमान रासो, आल्हा खड आदि वीरगाथाए हैं, जिनकी प्रामाणिकता में सदेह किया जाता है। दूसरी श्रेणी मे हेमचन्द्र का 'शब्दानुशासन', मेरुतुङ्ग की 'प्रबन्ध-चिंतामणि', राजशेखर का 'प्रबन्धकोश', अब्दुर रहमान का 'सन्देशरासक' और लक्ष्मीधर का 'प्राकृत पैंगलम्' गिने जा सकते हैं। ये सभी ग्रन्थ प्रामाणिक माने जाते हैं। सभी प्रामाणिक माने जाने वाले ये ग्रन्थ प्राय मध्यदेश (हिन्दी के प्रदेश) से बाहर ही रचे गए। मध्यदेश मे रचा गया देशभाषा का साहित्य सामान्यत सदिग्ध ही है। इसका प्रधान कारण डा० हजारीप्रसाद द्विवेदी ने तत्कालीन अव्य-वस्थित और परिवर्तनशील अशात राजनीतिक परिस्थितियो को ही माना है। इसी के फलस्वरूप न तो राजकीय-सरक्षण और न धार्मिक सरक्षण उन पुस्तको को प्राप्त हो सका। केवल लोक-परम्परा में ही वे देशभाषा की रचनाए सुरक्षित रह सकी और उनमे भी समय के साथ-साथ बहुत परिवर्तन होता गया।

(१) खुमान रासो—इस ग्रन्थ मे दूसरे खुमान के राज्यकाल (९वी सदी) का वर्णन किया गया बतलाया जाता है। इसका लेखक दलपति विजय था। किन्तु वर्तमान खुमान रासो की प्रति मे राणा प्रताप तक का उल्लेख पाया जाता है, जिससे इस ग्रथ की प्रामाणिकता सदिग्ध हो जाती है। डा० हजारीप्रसाद द्विवेदी इस ग्रथ को १७वी सदी का लिखा मानते हैं।

(२) बीसलदेव रासो—इसके लेखक नरपति नाल्ह हैं। इन्होने ग्रथ का रचना काल भी दिया है—"बारह सौ बहोत्तर" अर्थात् १२१२ सम्वत्। किन्तु इस काव्य में अनेक इतिहासविरुद्ध और कालविरुद्ध बातो का समावेश है। राजा बीसलदेव एक प्रतापी शासक के साथ-साथ सस्कृत के सुन्दर कवि भी थे। सोमदेव सस्कृत का नाटककार दानी का राजकवि था। किन्तु नरपति नाल्ह के काव्य में यह सब कुछ नही मिलता। मोतीलाल मणेरिया के मत में यह ग्रथ १६वी सदी का हो सकता है। उसकी रचना प्रबन्ध शैली न होकर मुक्तक गीतो के रूप में हुई है और बीसल देव के विवाहो का इतने विस्तार से वर्णन है कि यह रचना 'वीरगाथा' न होकर 'शृङ्गार गाथा' जान पडती है।

इसी प्रकार भट्ट केदार और मधुकर कवियो की जयचन्द की प्रशसा में भी लिखी रचनाए तथा शार्ङ्गधर का 'हम्मीर रासो तथा 'विजयपाल रासो' भी अप्रामाणिक रचनाएं मानी जाती हैं।

(३) परमाल रासो या आल्हा खंड—इसके लेखक जगनिक कवि माने जाते हैं। इसमे महोबे के दो प्रसिद्ध वीरो आल्हा और ऊदल-के युद्धो तथा विवाहो का वर्णन मिलता है। किन्तु वर्तमान ग्रथ में जगनिक के नाम से असख्य 'प्रक्षिप्त अश' मिल गए हैं, जिन्हे देखकर इस की प्रामाणिकता कुछ सन्दिग्ध हो गई है। आज भी उत्तर प्रदेश में इन वीर रसभरे गीतो का गान बहुत सुनाई देता है। इस लोकप्रिय ग्रन्थ की चर्चा तुलसीदास के समय तक किसी भी पुराने लेखक ने नही की, अतः अनुमान है कि इस ग्रन्थ की रचना उतनी पुरानी नही है। 'पृथ्वीराज रासो' के समान ही डा० हजारीप्रसाद द्विवेदी इस ग्रन्थ को 'अर्ध प्रामाणिक' समझते हैं।

(४) पृथ्वीराज रासो—इस प्रसिद्ध ग्रन्थ के लेखक चन्द-बरदाई पृथ्वीराज चौहान के राजकवि, मित्र और सलाहकार माने जाते हैं। ढाई हजार

पृष्ठो का यह विशाल काय महाकाव्य ६९ अध्यायो (समयो) में विभाजित है। किन्तु विद्वानो में इस सुन्दर ग्रन्थ की प्रामाणिकता को लेकर चिरकाल से विवाद चला आ रहा है (जिसक विस्तारपूर्वक वर्णन प्रश्न ४ में किया गया है)।

विशेषताए :—

१—आदिकाल की वीरगाथाओ में भाट और चारण कवियो ने अपने आश्रयदाताओ की प्रशसा बडी अतिशयोक्ति के साथ की है। उनके रूप, गुण और वीरता सभी में उन्होने बढा-चढा कर प्रशसा के पुल बाधे हैं।

२—युद्धो के वर्णन अधिक पाए जाते हैं। स्वय युद्धो में भाग लेने के कारण भाटो की लेखनी से इस प्रकार के वर्णन सजीव हो उठे हैं। सेनाओ की तैयारी, आक्रमण का भयानक दृश्य, रणबाकुरो का उत्साह, युद्ध-समाप्ति पर युद्ध के मैदान का दारुण दृश्य का वर्णन अत्यन्त ही प्रभावशाली ढग से किया गया है। वीर रस से भरी उक्तिया भी अद्वितीय हैं।

३—वीर रस के साथ-साथ शृङ्गार रस का पुट मिला रहता है। प्रायः सभी युद्धो का कारण किसी न किसी सुन्दरी राजकुमारी को मान लिया गया है। इस बहाने उसकी छवि का सरस वर्णन भी आ गया है। वीरगाथाओ के नायक शूरता के प्रतीक और विलास की मूर्ति दोनो रूपो मे चित्रित किए गए हैं।

४—वीरगाथाओ में ऐतिहासिक तथ्यो की ओर बिल्कुल ध्यान नही दिया गया। काल्पनिक घटनाओ की भरमार से इतिहास एक दम दब गया है। यही कारण है कि अधिकाश उस काल की रचनाए प्रामाणिक नही मानी गईं।

५—वीर रस की मात्रा होने पर भी राष्ट्रीय भावना का सच्चा स्वरूप उनमे नही मिलता। युद्धो का वर्णन मात्र वीररस की पुष्टि के लिए प्रमाण नही माना जा सकता। कहीं-कहीं वर्णनात्मक शैली बड़ी नीरस भी हो गई है।

६—वीरगाथाओ के दो रूप उपलब्ध होते हैं—(१) प्रबन्ध, (२) मुक्तक गीत। खुमान रासो और पृथ्वीराज रासो प्रथम शैली के उदाहरण हैं तथा बीसलदेव रासो और आल्हा खण्ड दूसरी शैली के। इन चरित्रकाव्यों पर जैन-मुनियो की रचनाओ का प्रभाव पड़ा है।

७—इन वीरगाथाओं की भाषा शुद्ध नहीं है। प्रधानतया वीर-रस के वर्णन मे 'डिंगल' भाषा का प्रयोग हुआ है और शृङ्गार रस के वर्णन में 'पिंगल' भाषा का। अपभ्रंश से प्रभावित पुरानी राजस्थानी को 'डिंगल' कहा जाता है तथा कोमल परिमार्जित भाषा 'पिंगल' कहलाती है, ब्रजभाषा आगे चल कर इसी का विकसित रूप है। 'डिंगल' भाषा के विषय मे बताया जाता है कि जिस में डमरू की डिमडिम जैसी कर्कश ध्वनि पाई जाती हो अथवा जिसमे डींगें भरी अतिशयोक्तियां कही जाती हो।

८—वीरगाथाओं मे अनेक वार्णिक और मात्रिक छन्दों का प्रयोग किया गया है। छन्दों का परिवर्तन केशव के समान वीरगाथा-लेखकों ने भी बहुत बार किया है।

प्रश्न ३—रासो किसे कहते है यह बताते हुए यह स्पष्ट कीजिए कि क्या 'बीसल देव रासो' रासो कहा जा सकता है। साथ ही बीसल देव रासो की साहित्यिक एवं ऐतिहासिक दृष्टिकोण से आलोचना कीजिये।

उत्तर—'रासो' शब्द के अर्थ के विषय में विद्वानों का भिन्न-भिन्न मत है। आचार्य शुक्ल के अनुसार रासो शब्द का अर्थ 'रसायण' है। जैसा कि बीसल देव रासो के रचियता नरपति नाल्ह ने लिखा है कि "नाल्ह रसायन आरम्भई"। "रसायण" से तात्पर्य वास्तव में जीवन की विविध वृत्तियों का मिलन है। दूसरी ओर रासो का अर्थ 'रहस्य' भी माना जाता है। यह अर्थ डा० रामकुमार वर्मा भी मानते हैं। इसका साधारण अर्थ है कि जीवन के रहस्यो का उद्घाटन जिन काव्यों में किया गया है वे रासो हैं। कुछ विद्वानों ने 'राजसूय' से इस शब्द की व्युत्पत्ति मानी है, तो कुछ विद्वानों ने 'रासा' शब्द से। रासो शब्द का वास्तविक अर्थ 'लड़ाई' या 'युद्ध' है। इसी रूप में ब्रजभाषा तथा राजस्थानी भाषा मे आज भी यह शब्द प्रयोग में आ रहा है। वास्तविकता यह है कि जिसे अंग्रेजी में (Ballad) बलेड कहते हैं उसे ही हिन्दी में रासो कहते हैं। हजारीप्रसाद द्विवेदी का मत है कि अपभ्रंश काल मे दो प्रकार का साहित्य था—(१) रासका, (२) डोम्बिका। रासका लोक काव्य के रूप में था। इस में राजाओं के युद्ध का वर्णन होता था। यही रासका साहित्य 'रासो' साहित्य के रूप मे है।

जहाँ तक बीसलदेव रासो का प्रश्न है, इसमें कहीं भी युद्ध वर्णन नहीं; अतएव इस काव्य को रासो नही कहा जाना चाहिये था परन्तु अपभ्रंश काल में जो परम्परा चली उस दृष्टिकोण से परम्परा के रूप में उस समय के सभी काव्यो को रासो कहा गया। नरपति नाल्ह ने भी अपने काव्य का नाम रासो रखा। इसी प्रकार की परम्परा का निर्वाह 'सन्देश रासक' में भी मिलता है। इन काव्यो का रासो नाम का एक कारण और भी यह है कि ये दोनो ही काव्य वास्तव में लोक-काव्य के रूप मे थे तथा जनता के दृष्टिकोण से लिखे गये थे। लोक-काव्य परम्परा के काव्यो को उस समय रासो कहा जाता था।

जहा तक 'बीसल देव रासो' के ऐतिहासिक मूल्य का प्रश्न है, यह काव्य प्रतापी सामर नरेश बीसल देव पर लिखी एक शृंगारिक रचना है। इस काव्य मे अनेक इतिहास विरुद्ध बातें हैं। वैसे तो यह काव्य वर्तमान क्रिया मे प्रारम्भ होता है पर घटनाए यह सिद्ध करती हैं कि यह उपरान्त की रचना है। प्रथम तो वीसलदेव या विग्रहराज चतुर्थ से सम्बन्धित इस काव्य में कही भी युद्ध वर्णन नहीं, जबकि इतिहास साक्षी है कि वीसल देव ने उत्तरी भारत के अनेक शासको के साथ मिल कर मुसलमानो को उत्तरी भारत से निकालने का प्रयत्न किया था। द्वितीय इस काव्य मे धार नगरी के राजभोज परमार की पुत्री राजमती से वीसलदेव का विवाह वर्णन है जबकि राजभोज का शासनकाल शताब्दी दो है। तृतीय, इसकी भाषा वीरगाथा काल की भाषा नही। चतुर्थ, इसका निर्माण गीत काव्य के रूप में हुआ जो वस्तुत. उस युग की राजाओ पर लिखित रचनाओ की परम्परा नही। इन सब दृष्टियो से देखते हुए मोतीलाल मनेरिया ने इस रचना को १६ शताब्दी की रचना माना है। परन्तु हजारी प्रसाद द्विवेदी के मतानुसार यह रचना अप्रमाणित है तथा वे भी इसका रचना समय १६ शती मानते हैं। प० रामचन्द्र शुक्ल का मत है कि रचना तो उसी समय की है परन्तु उपरान्त इसमें बहुत कुछ जोड़ दिया गया है। साथ ही इस रचना का दृष्टिकोण क्योंकि लोकगीत रहे इसलिये इसमें ऐतिहासिकता का ध्यान नहीं रखा गया। उन्होंने राजभोज, धार नगरी के राजाओ की उपाधि बता कर यह सिद्ध किया कि बीसल देव के समकालीन किसी धार नगरी के शासक की पुत्री से ही बीसलदेव का विवाह हुआ था।

वे इस रचना का काल १२१२ के लगभग मानते हैं।

जहा तक साहित्यिक मूल्याकन का प्रश्न है वहां तक यदि इस काव्य को वीरगाथा काल का काव्य मान लिया जाय तो यह काव्य प्रथम शृंगार का काव्य है विशेष कर इसका मूल्य विरह शृंगार के कारण बढ जाता है। राजमती के विरह शृंगार के कारण ही आगे चल कर जायसी के नागमती का विरह वर्णन पद्मावत में आया। इसका मूल्य लोकगीत काव्य के कारण भी बढ जाता है। इसमे प्रकृति-वर्णन व बारहमासा वर्णन भी रहे। साथ ही इस काव्य के अन्तर्गत नारी का नखशिख वर्णन भी रहा। कहने का तात्पर्य यह है कि हिन्दी साहित्य का प्रथम शृंगारिक काव्य होने से इसका साहित्यिक मूल्य बढ जाता है। इसे यदि १६वी शती की रचना भी मानें तब भी इसके साहित्यिक मूल्याकन में कोई अन्तर नही आता। फिर भी यह शृंगार की अद्वितीय रचना है।

प्रश्न ४–'पृथ्वीराज रासो' की प्रामाणिकता के विषय में तुम क्या जानते हो ? पक्ष और विपक्ष की युक्तियो का विवेचन करते हुए अपने मत की स्थापना करो।

या

चन्द बरदाई के 'पृथ्वीराज रासो' का परिचय दो।

उत्तर—'पृथ्वीराज रासो' की प्रामाणिकता को लेकर चिरकाल से विवाद चला आ रहा है। म० म० गौरीशकर हीराचन्द ओझा रासो को अप्रामाणिक सिद्ध करने वालो में प्रमुख हैं और आचार्य शुक्ल ने भी अपने हिन्दी साहित्य के इतिहास में इनका समर्थन किया है। जब कलकत्ता की रायल एशियाटिक सोसाइटी ने 'पृथ्वीराज रासो' को प्रकाशित करना आरम्भ किया था, उसी समय प्रो० बूलर का पत्र उसको मिला था, जिसमे उन्होने 'रासो' को अप्रामाणिक तथा जयानक द्वारा लिखित 'पृथ्वीराज विजय' नामक सस्कृत काव्य को ऐतिहासिक बतलाया था। इसके पश्चात् ओझा जी आदि कुछ विद्वानों ने भी अनेक तर्क देकर इसे जाली ग्रन्थ सिद्ध करने का प्रयत्न किया। रासो को प्रामाणिक मानने वालो मे मोहनलाल विष्णुलाल पांड्या, मिश्र-

बन्धुओं तथा डा० श्यामसुन्दर दास का बडा हाथ है। इस विषय मे पक्ष और विपक्ष का साराश निम्न लिखित है—

(क) 'रासो' को अप्रामाणिक सिद्ध करने वालो का मत है—

१—इसमें चौहानो, प्रतिहारो और सोलकियो की उत्पत्ति, उनकी वशावली, पृथ्वीराज की माता, भाई, बहिन, पुत्र के नाम तक की कल्पना झूठी है।

२—अधिकांश घटनाओ के सम्वत् इतिहास लेखको तथा शिलालेखो के साथ मेल नही खाते। पाड्या जी ने जो 'अनन्द संवत्' की कल्पना की है, वह व्यर्थ खीचतान मात्र है।

३—गुजरात का राजा भीमसेन पृथ्वीराज के हाथो मारा गया था। किन्तु वास्तव में उसका जीवन काल पृथ्वीराज के बाद का है।

४—मुहम्मद गौरी की मृत्यु पृथ्वीराज के बाण से न होकर इतिहासकारो के मत में गक्खर जाति के हाथो हुई थी।

५—पृथ्वीराज की बहिन पृथा चित्तौड़ के राजा समरसिंह से विवाहिता लिखी गई है। किन्तु समरसिंह पृथ्वीराज के १०० वर्ष पश्चात् हुआ था।

६—भाषा में फारसी-अरबी के शब्दो की प्रधानता से भी रासो की प्राचीनता में सदेह उत्पन्न होता है।

७—राज-समुद्र नामक तालाब की चौकी पर खुदी हुई एक राज-प्रशस्ति (१६७५) में ही सर्वप्रथम 'रासो' का उल्लेख हुआ है। अत. यह ग्रन्थ इसी काल की रचना हो सकता है।

८—जयानक ने 'पृथ्वीराज विजय' में चन्द बरदाई नाम के किसी कवि का उल्लेख न ी किया।

(ख) इस मत के विरोध में विद्वानो ने कुछ तर्क दिए है—

१—'रासो' का मूल आकार छोटा था, किन्तु बाद में इसके कई संपादन हुए, फलत. कुछ क्षेपक अश मिल गए, जिससे इसका आकार बढ़ गया और कुछ कल्पित सामग्री भी मिल गई।

२—पृथ्वीराज की माता आदि के नाम अनेक भी हो सकते हैं और विवाह आदि अवसरो पर नाम परिवर्तन की रीति भी प्रचलित है।

३—पाड्या जी ने रासो के सवतो का इतिहास से मेल सिद्ध करने के लिए 'अनन्द' सवत् की कल्पना की है।

४—यदि यह सोलहवी शताब्दी की रचना होती तो कवि तत्कालीन आश्रयदाता की ही प्रशसा करता।

५—जयानक ने अपने 'काव्य' मे ईर्ष्यावश ही कदाचित् चन्द वरदाई का नाम न लिया होगा।

६—भाषा मे फारसी और अरबी के केवल १० प्रतिशत शब्द ही मिले हैं। चन्द वरदाई लाहौर निवासी था, जहा मुसलमानों का आगमन दो सौ वर्ष पूर्व हो चुका था। अत पजाब निवासी के ग्रन्थ में इतने शब्दो की मिलावट आश्चर्यजनक नही कहला सकती।

७—उदयपुर के राजकीय पुस्तकालय में जो रासो की प्रति मिली है, उसमें लिखा है कि राजा अमरसिंह ने सत्रहवी सदी में रासो के लुप्त छन्दो का सग्रह कराया था। डा० ग्रियर्सन का मत है, इसी समय कदाचित् प्रक्षिप्त अश इसमे मिल गए, जिससे इसकी प्रामाणिकता सदिग्ध हुई।

निष्कर्ष—वास्तव में ग्रियर्सन के अनुमान मे कुछ सच्चाई प्रतीत होती है। अभी मुनि जिनविजय ने जो 'पुरातन प्रबन्ध संग्रह' में चन्द वरदाई के प्रामाणिक चार छन्द प्रकाशित किए हैं, वे ज्यो के त्यो 'पृथ्वीराज रासो' में भी मिलते हैं। जिससे इतना तो स्पष्ट हो ही जाता है कि चन्द वरदाई ने पृथ्वीराज के समय उनकी वीरगाथा लिखी थी। यह सत्य है कि काल-क्रमानुसार उसमें कल्पित अश जोड दिया गया, जिसके कारण कवि की मूल सामग्री छांटने में अवश्य कठिनाई प्रतीत होती है। परन्तु डा० हजारीप्रसाद द्विवेदी का मत है कि "फिर भी कुछ बातो का स्पष्ट आभास हमें मिल ही जाता है—यथा, उन दिनो प्रायः सभी काव्य-कथाए 'सवाद' रूप में ही लिखी जाती थी। 'सदेश रासक' की शैली का भी सर्वत्र प्रचार था। छन्दो की परिवर्तनशीलता भी साधारण थी। इस प्रकार अनेक प्रसङ्ग रासो के प्रामाणिक कहे जा सकते हैं।

इन प्रसङ्गो में द्विवेदी जी के मतानुसार "चन्द वरदाई का कवित्व भी निखरा है। भाषा का स्वरूप भी प्राचीनता लिये हुए है। मूल रासो शुक-शुकी के सवाद में ही लिखा गया था, जिसमे आगे चलकर मिलावट होती गई।"

प्रश्न ५–विद्यापति और अमीर खुसरो पर सक्षिप्त टिप्पणी लिखो।

उत्तर–विद्यापति–मिथिला के विसपी नामक गाव में इनका जन्म चौदहवीं सदी में हुआ। राजा शिवसिंह और रानी लखिमा देवी इनके प्रिय आश्रयदाता रहे। अपनी प्रसिद्ध 'विद्यापति पदावली' के प्रत्येक पद के अन्त मे अपने आश्रयदाता का नाम कवि ने लिया है। इन्हे 'मैथिल कोकिल' भी कहा जाता है। राजा शिवसिंह ने विद्यापति को 'अभिनव जयदेव' की उपाधि से विभूषित किया था। विद्यापति मैथिली (हिन्दी) के अतिरिक्त सस्कृत और अपभ्रश के भी सिद्धहस्त कवि थे। 'कीर्तिलता' और 'कीर्ति-पताका' इनकी अपभ्रश रचनाएँ हैं। कवि ने इनकी भाषा को 'अवहट्ट' नाम दिया है, जो निश्चित ही साहित्यिक परिनिष्ठित अपभ्रश भाषा से कुछ आगे बढी हुई भाषा थी। डा० हजारीप्रसाद द्विवेदी के अनुसार 'कीर्तिलता' ऐतिहासिक काव्यो में एक अनुपम कृति है। आश्रयदाता राजा कीर्तिसिंह की प्रशंसा मे लिखा हुआ यह काव्य परम्परागत कथा-काव्यो अथवा चरितकाव्यो से पृथक् अपनी विशेषता रखता है। इस ग्रंथ में कवि ने इतिहास की हत्या नही की और न ही काव्यत्व का पक्षपात करके कल्पना का विलास दिखाया है। 'कीर्तिलता' कविदृष्ट सुन्दर जीवन है। भृङ्ग और भृङ्गी के संवाद रूप में इसकी सारी कथा कही गई है, जिसे लेखक ने कथा न कहकर 'काहाणी' कहा है। 'कीर्तिलता' की एक और विशेषता इसका गद्य-पद्यमय होना भी है।

हिन्दी मे विद्यापति का स्थान और महत्व प्रथम गीतिकार के रूप मे है। 'विद्यापति पदावली' में कवि ने राधा और कृष्ण सम्बन्धी प्रेम भरे रसीले गीतो की रचना की है। इन गीतो का प्रचार पूर्वी भारत में विशेष रूप से हुआ तथा असम, बंगाल और उडीसा के अनेक कवि इस धारा से मुखरित और प्रेरित हुए। बगाल मे तो चैतन्य महाप्रभु इन गीतो को गाते-गाते मूर्छित

हो जाया करते थे। कुछ काल पूर्व तो बंगाल निवासी विद्यापति को 'बंगाली कवि' मानते थे, परन्तु पश्चात् ग्रियर्सन तथा सुनीतिकुमार चटर्जी के प्रयत्नों से इन्हें 'मैथिल कवि' सिद्ध किया गया।

विद्यापति को कुछ आलोचक भक्त कवि और कुछ तो रहस्यवादी कवि तक मानते हैं। किन्तु दूसरे विद्वान् इन्हें शृङ्गारी कवि कहते हैं। वास्तव में 'विद्यापति पदावली' के अंत में शिव, गंगा, राम, सीता, कृष्ण के कुछ भक्ति सम्बन्धी पद अवश्य पाए जाते हैं, परन्तु अधिकांश पद राधा और कृष्ण की शृंगारी भावनाओं को लेकर ही लिखे गए हैं। संयोग और वियोग दोनों पक्षों को कवि ने खूब निखारा है। उन मधुर पदों को देखते हुए विद्यापति को भक्तकवि कहने में सकोच होता है। डा० रामकुमार वर्मा आदि अनेक आलोचक निश्चयात्मक रूप से विद्यापति को 'शृंगारी कवि' ही मानते हैं।

अमीर खुसरो—अमीर खुसरो का जीवनकाल १६वी सदी माना जाता है यह फारसी के सुप्रसिद्ध कवि थे। इन्होंने अनेक राजाओं, बादशाहों, नवाबों का शासनकाल देखा था। बड़े ही मेधावी और मिलनसार व्यक्ति थे। साधु स्वभाव के इस महान् कवि ने खड़ी बोली में भी कविता लिखी और इस प्रकार इसके प्रथम कवि के रूप में प्रसिद्ध हुए। इनकी लिखी 'मुकरियां' और 'पहेलियां' बड़ी प्रचलित हैं। एक-एक उदाहरण लीजिए —

पहेली— एक थाल मोती से भरा,
सबके सिर पर औंधा धरा।

मुकरी— वह आवै तो शादी होय,
उस बिन दूजा और न कोय।
मीठे लागें वाके बोल,
कह सखी, साजन ? नां सखी ढोल॥

इनकी भाषा में व्रजभाषा की झलक स्पष्ट मिलती है। कुछ विद्वानों का विचार है कि अमीर खुसरो ने व्रजभाषा में कुछ शृंगारी कविता भी लिखी थी। अमीर खुसरो ने एक कोष भी तैयार किया था, जिसका नाम

है—खालिकबारी। इसमें फारसी शब्दो के हिन्दी पर्यायवाची दिए गए हैं। खुसरो की सगीत मे भी पर्याप्त रुचि थी। विशेष रूप से 'कव्वाली' राग इन्ही के नाम से सम्बोधित बताया जाता है।

प्रश्न ६—भक्ति साहित्य के प्रेरक कारणों को स्पष्ट करते हुए इस युग के साहित्य का वर्गीकरण कीजिए ?

अथवा

भक्तिकाल का प्रारम्भ कैसे हुआ ? इस काल की प्रमुख साहित्यिक प्रवृत्तियो का वर्णन करो।

उत्तर—आचार्य रामचन्द्र शुक्ल ने स० १३७५ से स० १७०० तक भक्ति-काल की सीमा निश्चित की है। अभी तक भक्तिकाल के कारणो में मुसलमान आक्रमणकारियो के अत्याचारो को प्रधानता दी जाती थी। विद्वानो का विचार था कि मुसलमानी शासन में जब हिन्दुओ के मन्दिर गिराये जाने लगे, मूर्तिया तोडी जाने लगी, उनकी बहू-बेटियो की इज्जत लूटी जाने लगी, आश्रयदाता राजाओ की पराजय होने से अथवा मुसलमानो की आधीनता स्वीकार कर लेने से हिन्दू जनता की आखो के सामने निराशा-अन्धकार छाने लगा, ठीक ऐसे समय वह दीन-हीन जनता भगवान् को सहायता के लिए पुकार उठी। समाज में भक्तिभावना का प्रचार हुआ, फलत साहित्य भी उससे प्रभावित हुए बिना न रह सका। इस प्रकार हिन्दी साहित्य में भक्तिकाल का आगमन हुआ।

परन्तु डा० हजारीप्रसाद द्विवेदी ने अपने 'हिन्दी साहित्य' में इस तर्क का खण्डन किया है। उनका विश्वास है कि यदि मुसलमानो के अत्याचार के कारण भक्तिभावना का उदय होना था, तो उत्तर भारत में इसका आरम्भ होता, जब कि भक्ति की प्रबल धारा दक्षिण से बह निकली, जहा यवनो का आक्रमण हुआ ही नहीं था। अत. उनका विचार है कि दक्षिण के आचार्यों द्वारा प्रवर्तित भक्ति धारा का सहारा पाकर उत्तर भारत की धार्मिक भावना ने ही हिन्दी के भक्तिकालीन साहित्य को आधार प्रदान किया। दक्षिण में आलावार सन्तो की परम्परा में जो वैष्णव भक्त आचार्य उत्पन्न हुए, उनके प्रचार से ही भक्तिभावना दक्षिण से उत्तर भारत में फैली। रामानुज आचार्य,

वल्लभ आचार्य, निम्बार्क आचार्य, मध्वाचार्य ये सभी दक्षिण के ही वासी थे। उत्तर भारत की निराश हिन्दू जनता को इस भक्ति आन्दोलन से बड़ा साहस मिला और भक्तिकालीन साहित्य के लिए भूमि तैयार हो गई।

उत्तर भारत में पौराणिक धर्म की भावना पहले से ही विद्यमान थी। यद्यपि नाथ पथ, योगियो तथा सिद्धो के आन्दोलन भी विकृत होकर अभी तक जीवित थे। वाममार्ग और हठयोग के चमत्कार सर्वसाधारण जनता को पथ-भ्रष्ट करके उसे सहज धर्म-भावना से दूर ले जा रहे थे। इसी के साथ-साथ एक विदेशी जाति के आक्रमण और विजय ने एक नवीन धर्म की दृढ भावना को फैलने का भी अवसर दिया था। इस्लाम अपने हाथ में शासन का सहारा पाकर भारत पर छा रहा था। सामूहिक धर्म-भावना उसकी मुख्य विशेषता थी। जाति के बन्धनों को उसमें स्थान ही नही मिला था। नीच जाति से सम्बन्धित होने के कारण योगी और सिद्ध भी जाति-पाति के बन्धनो को नहीं मानते थे। इस प्रकार दो जातियो और दो सस्कृतियो के मेल से एक 'सामान्य भक्ति-मार्ग, की आवश्यकता भी कुछ सुधारक महात्माओ को अनुभव होने लगी थी, जिसका फल 'सन्तो के साहित्य' के रूप में प्रकट हुआ।

इस काल मे आश्रयदाता राजाओ के लुप्त हो जाने से कविसमाज भी राजदरबार से निकल आया था और वह साधारण जनता के हृदयो का प्रतिनिधित्व करने लगा था। उत्तर भारत के पौराणिक धर्म-भाव को जब दक्षिण के आचार्यों की ठोस भक्ति धारा का सहारा मिला, तो अवतारवाद के रूप में राम और कृष्ण को प्रधानता देकर इस काल में अनेक श्रेष्ठ कवियों ने साहित्य रचना की तथा जन-मनरजन के साथ-साथ उसके सामने आदर्श-मर्यादा का सन्देश भी रखा।

साहित्य धारायें—भक्तिकालीन साहित्य में एक ओर इस्लाम और नाथ पंथी योगियो और सिद्धो से प्रभावित जिस 'सामान्य भक्तिमार्ग' या निर्गुण धारा का आरम्भ हुआ, उसका आधार एकेश्वर-वाद का सिद्धान्त था। इसमें जाति-पाति के बधनो को नही माना गया था तथा आडम्बरपूर्ण जीवन-साधना का भी कड़ा विरोध पाया जाता था। इस धारा की दो शाखाएं हिन्दी साहित्य में प्रचलित हुई—(१) ज्ञानाश्रयी शाखा, (२) प्रेमाश्रयी शाखा। प्रथम शाखा में

सन्त कबीर, नानक, सुन्दरदास, मलूकदास, सहजोबाई, दयाबाई दादूदयाल आदि सन्त कवि हुए और दूसरी शाखा में कुतबन, मझन उसमान, नूर मुहम्मद और जायसी जैसे सुप्रसिद्ध सूफी कवियो ने लोक-साहित्य में अध्यात्म का प्रेम सन्देश दिया।

इस काल मे दूसरी धारा सगुण भक्ति की धारा थी। इस धारा के भी दो वर्ग बन गये। एक वर्ग ने कृष्णभक्ति को अपनाया और उसका लोकरंजक रूप सामने रखा। इस धारा के मुख्य आचार्य वल्लभाचार्य थे और कवि अष्ट-छाप के सूरदास, नन्ददास आदि। रामभक्ति को सर्वप्रथम रामानन्द का नेतृत्व मिला और इस शाखा के सर्वश्रेष्ठ कवि भक्त, तुलसीदास हुए, जिन्होने 'राम-चरित मानस' में भगवान् राम का मर्यादा-पुरुषोत्तम रूप ही मुख्य रूप से हिन्दू-समाज के सामने प्रस्तुत किया।

भक्तिकालीन साहित्य की सामान्य विशेषताएं—यद्यपि भक्तिकाल मे निर्गुण धारा और सगुण धारा की दो भिन्न-भिन्न साहित्य धाराओ का विकास हुआ, तथा इन दोनो के अन्तर्गत भी कुछ शाखाएं-प्रशाखाए चल निकली तथापि कुछ ऐसी समान विशेषताएं स्पष्ट रूप से दृष्टिगोचर होती हैं, जिनका आधार लेकर भक्तिकाल के सभी कवियो ने अपने साहित्य की रचना की। प्रधान रूप से वे सामान्य गुण पाँच ही हैं—(१) नाम की महत्ता, (२) गुरु-महिमा, (३) भक्तिभावना या आत्मसमर्पण की भावना, (४) अहकार का त्याग, (५) सदाचार की प्रवृत्ति।

१. नाम की महत्ता—निर्गुणधारा की ज्ञानमार्गी शाखा के प्रवर्तक कबीर ने भगवान् के नामस्मरण पर बडा महत्व दिया है। जायसी आदि सूफी कवियों ने भी स्थान-स्थान पर नाम की महिमा को गाया है। सूरदास और तुलसीदास तो भक्त कवि ही थे। उनके काव्य मे तो यही स्वर सबसे अधिक प्रधान रहा। कुछ उदाहरणो से ही यह स्पष्ट हो जायगा :—

(१) सुमिरूं आदि एक करतारू। (जायसी)
(२) अगुन सगुन दुइ ब्रह्म स्वरूपा।
अकथ अगाध अनादि अनूपा।
मोरे मत बड़ नाम दुहूँ ते। (तुलसी)
(३) तुलसी अलखहि का लखै राम नाम जपु नीच।

२. गुरु-महिमा—कबीरदास ने तो गुरु और भगवान् दोनो में अभेद माना है। कहीं-कहीं तो गुरु का स्थान भगवान् से भी उन्होने ऊचा सिद्ध करने का यत्न किया है। जैसे—

गुरु गोविन्द दोनो खडे, काके लागूं पाय,
बलिहारी गुरु आपने, जिन गोविंद दियो दिखाय॥

जायसी के 'पद्मावत' में भी तोता गुरु माना गया है, और सिद्धि के मार्ग का प्रदर्शक उसे ही समझा गया है।

गुरु सूआ जेहि पंथ दिखावा।
बिनु गुरु जगत को निरगुन पावा॥

सगुण भक्त कवियो ने भी गुरु महिमा के अनेक पद गाए हैं। सूरदास-ने वल्लभाचार्य और विट्ठलनाथ की स्तुति की है। सन्त तुलसीदास ने भी रामायण के आरम्भ मे सर्वप्रथम गुरुवन्दना करते हुए लिखा है—

बदौं गुरुपद कज कृपा सिन्धु नररूप हरि।

३. भक्तिभावना—सगुण धारा तो भक्तिप्रधान है ही, निर्गुण धारा के कवियो ने भी ज्ञान की अपेक्षा भक्ति की माधवी का रसपान किया है। कबीरदास कहते हैं—

हरिभक्ति जाने बिना बूडि हुआ संसार।

जायसी ने भी सूफी मत की चार साधनाओं (ज्ञान, कर्म, उपासना और सिद्ध अवस्था) को भक्ति का साधन ही माना है। सूरदास की गोपिया कृष्ण भक्ति की साक्षात् मूर्ति ही हैं। तुलसीदास ने यद्यपि 'ज्ञानहि भक्तिहि नहि कछु भेदा' कहकर दोनो को अभिन्न माना है तथापि ज्ञान मार्ग को उन्होने 'कृपाण की धारा' जैसा कठिन कहा है और भक्ति को मुख्यता प्रदान की है।

४ अहकार का त्याग—भक्त कवियो में अभिमान और गर्व के भाव नहीं हैं, उनमें सेवा, दीनता और तुच्छता का भाव विद्यमान है। कबीरदास का प्रसिद्ध दोहा लीजिये —

बुरा जो देखन मैं गया, बुरा न मिलिया कोय।
जब मन देखा आपना, मो सा बुरा न होय॥

सूरदास के विनय के पद भी इसी का समर्थन करते हैं —

'मैं सब पतितन को टीको'

इसी प्रकार भक्त तुलसीदास ने भी विनय और दीनता के अनेक पद रचे हैं।

५ सदाचार की प्रवृत्ति—सन्त कवियो ने भी आडम्बरमय जीवन का घोर विरोध करके मानवता के उदात्त विचारों का प्रचार किया तथा सगुण धारा में तुलसी का काव्य ही आदर्शवादी बन गया। राम के मर्यादा पुरुषोत्तम रूप को ही हिन्दू समाज के सामने रख कर तुलसी ने शील की जो शिक्षा दी, वह आज भी स्मरणीय और अनुकरणीय है।

भक्ति काल की कुछ अन्य विशेषताएं भी हैं। जैसे :—

(१) इस काल में सभी कवि सन्त थे। वे विरक्त थे। उन्होने कविता काव्य रचना के लिए नही की, अपितु उन्होने भक्ति-भावना से प्रेरित होकर या समाज सुधार के लिये अथवा उपदेश देने के लिये काव्य-रचनाएँ की।

(२) इस काल के अन्तर्गत प्रबन्ध, मुक्तक, पाठ्य गेय सभी प्रकार की रचनाए मिलती हैं। प्रबन्ध काल में भी इस काल मे महाकाव्य तथा खण्ड काव्य दोनो ही प्रकार के काव्य मिलते हैं। उदाहरणार्थ तुलसी ने रामचरित मानस महाकाव्य की रचना की तो साथ ही पार्वती मगल तथा जानकी मगल खड काव्य की रचना भी की।

(३) इस काल में सभी प्रकार की भाषा मिल जाती है। जहा सन्त कवियो ने सधुक्कडी या खिचडी भाषा का प्रयोग किया वहा सूफी कवियो ने अवधी भाषा को अपनाया। सूर ने ब्रज भाषा में अपने गीतों का सर्जन किया। कहने का तात्पर्य है कि सभी प्रकार की भाषाओ को अपनाया गया है।

(४) इस काल मे छन्दों के पूर्व प्रचलित सभी छन्द अपना लिये गये। साथ ही काव्य की भी सभी शैलिया कवियो ने ग्रहण कर ली। विद्यापति द्वारा प्रणीत गीति शैली सूर व मीरा में आई तो चन्दवरदाई द्वारा प्रणीत प्रबन्ध काव्य शैली जायसी व तुलसी में पदार्पण कर गई।

प्रश्न ७—कबीर समाज-सुधारक थे या कवि ? इस विषय में अपनी युक्तियाँ और उदाहरण प्रस्तुत करो।

अथवा

"कबीर का व्यक्तित्व बहुमुखी है. वे धार्मिक गुरु हैं, समाज-सुधारक हैं और वेदान्त के व्याख्याता दार्शनिक।" इस कथन की समीक्षा कीजिए।

अथवा

संतकाव्य की विशेषताएं लिखो।

उत्तर–कबीर हिन्दी के महान् क्रांतिकारी कलाकार के रूप में सामने आते हैं। परिस्थितियो ने भी इस महापुरुष को बनाने में पूरा-पूरा साथ दिया। कबीर के समय में दो विरोधी जातियो और संस्कृतियो की टक्कर हो रही थी। एक ओर अवतारवाद और बहु-ईश्वरवाद पर विश्वास करने वाली हिन्दू जनता थी, जो सगुण भक्ति की उपासना करती थी और जात-पात के बन्धनो का पूरा पालन भी करती थी। इसके विपरीत इस्लाम में एकेश्वर वाद का सिद्धांत मान्य था। उसमें ऊँच-नीच और छून-छात का कोई प्रश्न ही नहीं था। मुसलमान विजेता भी थे। उनके शासन में हिन्दू-मन्दिरो और देव-मूर्तियो का अपमान भी हो रहा था। इसके अतिरिक्त धार्मिक दशा भी उस समय की शोचनीय थी। उसके सच्चे स्वरूप को सामने न रखकर सिद्धो और नाथ-पंथी योगियो ने जनता को रहस्यमय पाखण्ड भरी बातों में उलझा रखा था। सत्य, सेवा, परोपकार के स्थान पर उन्हे विविध जन्त्र-मंत्र के चमत्कारो और पच-मकार की घृणित उपासनाओ में जकड रखा था। धर्म के नाम पर सुरापान और सुन्दरी-सेवन का नाटक खेला जा रहा था। ठीक ऐसे समय एक ऐसे क्रांतिकारी नि.स्वार्थी समाज-सुधारक महापुरुष की बड़ी

आवश्यकता थी, जो राजाओ से निराश, धर्म के ठेकेदारो से ठगी हुई जनता को सीधा मार्ग दिखाकर सच्चे धर्म का प्रचार करता और मानवता की शिक्षा प्रदान करता। कबीर ने इसी समय प्रकट होकर इस अभाव की पूर्ति की और हिन्दा साहित्य में निर्गुण धारा का सूत्रपात हुआ।

सुधारक रूप—विधवा ब्राह्मणी के गर्भ से उत्पन्न और मुसलमान जुलाहे के घर मे पल कर कबीर जाति-पाति के बन्धनो को तोड चुके थे। इसके साथ ही उनका सपर्क गुरु रामानन्द से हुआ, जो कट्टर वैष्णव भक्त होते हुए भी काशी में जात-पात के बन्धनो से दूर मानवमात्र को धर्म की अमृत-धारा मैं स्नान करा रहे थे। राम-भक्ति के उस महान् उदार प्रचारक रामानन्द को गुरु धारण कर कबीर ने राम का नाम लेना और सुनाना आरम्भ किया। उस समय जनता का विश्वास देव-मन्दिरो के गिराये जाने और देव-मूर्तियो के तोडे जाने से उन पत्थर के देवताओ की चमत्कारक शक्ति पर से उठ चुका था अत. सगुण भक्ति का स्वर कदाचित् उस समय समयानुकूल नही था। दूसरे इस्लाम विजेता के रूप मे निर्गुण एकेश्वर का प्रचार कर रहा था। हिन्दू धर्म मे भी वेदात को मानने वाले लोग निराकार ब्रह्म के उपासक थे। दो विरोधी धर्मों को मिलाने के उद्देश्य से भी कबीर की दृष्टि में एक सामान्य 'भक्तिधर्म' अथवा 'मानव धर्म' के लिये निर्गुण धारा ही वाछनीय लगी। उन्होने इसी मार्ग का उपदेश देने का व्रत ले लिया तथा इसके विरोधी पण्डित तथा मौलवी-मुल्लाओ के सिद्धातो को भेद-बुद्धि फैलाने वाला जानकर पूरे विरोध के साथ उनका खण्डन करना शुरू कर दिया। उन्होने स्पष्ट घोषित किया

अरे इन दोउन राह न पाई।

हिन्दू अपनी करे बड़ाई गागर छुअन न देई।
वेश्या के पायन तल सोवै यह देखो हिंदुवाई॥

मुसलमान के पीर औलिया मुरगा मुरगी खाई।
खाला केरी बेटी ब्याहैं घर में करैं सगाई॥

कबीर के लिए राम-रहीम के झगड़े और मन्दिर-मस्जिद के ढोग व्यर्थ थे। 'काबा फिर काशी भया, राम भयो रहीम' का सन्देश देकर कबीर ने हिन्दू-

मुसलमानो में एकता का पाठ पढाया। उन्हें मानव बनाने का पुण्य कार्य किया। एक ओर यदि हिन्दुओ को तीर्थों पर स्नान करने की व्यर्थता बतलाई तो दूसरी ओर रोजा रखने वाले मुसलमानो को मास खाने पर फटकार भी दी। कबीर सम्प्रदायवाद से परे और पक्षपात से दूर थे। समाज मे स्वार्थी साधुओ और धर्म के ढोगी ठेकेदारो की पोल खोलते समय कबीर की वाणी मे कुछ कठोरता और उपहास की मात्रा भी आ गई। उदाहरण के लिए देखिए—

'पत्थर पूज हरि मिले तो मैं पूजूं पहाड़'

अथवा

ककर पत्थर जोड़कर मस्जिद लइ बनाय।
ता चढि मुल्ला बांग दे, बहरा भयो खुदाय।

इसी के साथ कुछ गर्वोक्तिया भी कबीर के मुख से निकली :—

'तू बामन मैं कासी का जुलाहा, बूझहू मोर गिआना।

अथवा

झीनी झीनी भीनी चदरिया,
यह चादर सुर मुनि नर ओढ़ी,
ओढ के मैली कीन्ही चदरिया।
दास कबीर जतन ते ओढ़ी,
जैसी की तैसी धर दीन्हीं चदरिया।

यह प्रवृत्ति सुधारको के लिए स्वाभाविक कही जा सकती है। कबीर ने वैष्णव भक्तो, इस्लाम, सूफी मत, हठयोग और सिद्धो सबसे कुछ न कुछ प्रभाव ग्रहण किया था। उनके शिष्यो मे भी हिन्दू, मुसलमान सभी शामिल थे। अत सब पर अपने पाडित्य का प्रभाव डालना तथा अपनी कही बात को उत्तम सिद्ध करना उनके लिये आवश्यक था। तभी कबीर ने वेद और कुरान तक का अनुकरण करने से जनता को रोक दिया। उन्होने पडित और मुल्ला को ललकार कर कहा —

तू कहता कागद की लेखी।
मैं कहता आँखन की देखी॥

अपनी 'आखन देखी' बात पर भरोसा करके उस स्पष्टवादी और सत्य-भाषी महापुरुष ने सर्वसाधारण को अपना बना लिया। उच्च वर्ग तथा शिक्षित वर्ग तक कबीर की पहुँच न हो सकी। उसने तो निम्न वर्ग को अपनाया, जो उच्च वर्ग के हाथो बुरी तरह पीडित हो चुका था। कबीर ने

'जाति पाति पूछे नहि कोई।
जो हरि को भजे सो हरि का होई।'

जैसी घोषणा कर दी। फल यह हुआ कि हजारो की सख्या में निम्न वर्ग के लोग कबीर के झण्डे के तले एकत्र होने लगे। कबीर ने उन्हे प्रेम, भक्ति और ज्ञान का उपदेश दिया और अपनी सीधी-सादी 'सधुक्कडी' भाषा में एक अमूल्य साहित्य की रचना कर डाली।

कुछ आलोचको का मत है कि कबीर पढे-लिखे नही थे। उनकी भाषा भी साहित्यिक नही थी। छन्द-अलकारो का पर्याप्त ज्ञान भी उन्हे नही था। अत कबीर के साहित्य मे 'कवित्व' का अभाव है। उसमे नीरस धार्मिक उपदेश की शुष्कता है। कबीर को धार्मिक नेता तो माना जा सकता है, परन्तु एक महाकवि नही। उनकी बात यद्यपि गलत नही है, किन्तु उनका निष्कर्ष सच नही है। कबीर ने स्वय कहा है—

"ढाई अक्षर प्रेम के पढ़े सो पडित होइ"

कबीर तो इस दृष्टि से 'पडित' थे और तथाकथित पडितो को ललकारते भी थे, फटकारते भी थे। फिर भाषा और छन्द का ज्ञान कवि के लिए साधन मात्र है, साध्य तो उसका सन्देश होता है। कबीर के मानवता-सम्बन्धी दृष्टि-कोण की कौन प्रशसा नही करेगा? वह जीवन में सत्य का खोजी रहा, सत्य का अनुयायी रहा। उसने जो कुछ कहा, सत्य की प्रेरणा से कहा। यदि 'मैथ्यू आर्नल्ड' के शब्दो में 'काव्य जीवन की सच्ची समालोचना है।' तो कबीर नि सदेह 'महाकवि' थे। महाकवि के लिए महाकाव्यत्व की नही, 'महा-कवित्व' की आवश्यकता पडती है? जिसकी मात्रा कबीर में पर्याप्त है। कबीर की सरल वाणी ने सरलता से सर्वसाधारण के सरल हृदयो तक पहुँच उन्हे प्रभावित किया है। इसके अतिरिक्त कबीर "प्रथम रहस्यवादी" कवि माने

जाते हैं। उनके रहस्यवादी पदो में केवल काव्य-सौन्दर्य और उक्ति-चमत्कार का ही दर्शन नही होता, अपितु अलकारो की सुन्दर झलक भी बिना आयास दृष्टिगोचर हो जाती हैं। उदाहरण के लिये देखिये—

"कबीरा सोई पीर है जो जाने पर पीर" (यमक)
"सिर राखे सिर जात है" (विरोधाभास अलकार)

रहस्यवादी रूप—आचार्य शुक्ल के शब्दो में 'चिन्तन-क्षेत्र का अध्यात्म-वाद भावना-क्षेत्र में रहस्यवाद कहलाता है'। कबीर के पद और दोहे बीजक नाम से सगृहीत हैं, जिसके तीन भाग हैं-साखी, सबद, रमैनी। कबीर ने जहाँ, एक ओर समाज-सुधारसम्बन्धी रचनाए की हैं, वहां कुछ अध्यात्म-चिंतन के विचार तथा रहस्यवाद के मधुर प्रेममय पद भी गाए। ईश्वर के विषय में कबीर के विचारो में कुछ लोग स्थिरता नही पाते। उनका मत है कि कबीर कही निर्गुण ब्रह्म का उपासक दीखता है तो कहीं गोविंद, हरि, राम आदि सगुण ब्रह्म के नामो का जाप करता है। निर्गुणमार्गी होने से ज्ञान पर विश्वास करने वाला कबीर भक्ति की भी प्रशसा करता है, जो सगुण ब्रह्म के लिए आवश्यक साधन मानी गई है। इसी प्रकार कही-कही कबीर की वाणी में अवतारो की चर्चा भी की गई है। रामानन्द का शिष्य होने से भी कबीर पर सगुण भक्ति की छाप का अनुमान होता है। किन्तु यह सब होने पर भी कबीर ने सिद्धात रूप से जो पथ अपनाया या दिखाया है, वह निर्गुण धारा का पथ ही है। कबीर राम के उपासक अवश्य थे, पर राम को उन्होने दशरथ का पुत्र कभी नही माना।

'दसरय-सुत तिहु लोक बखाना।
राम नाम का मर्म है आना॥

एक दूसरे स्थान पर उन्होने स्पष्ट किया है —

'जाके मुख माया नहिंनाहीं रूप कुरूप।'

इस प्रकार कबीर निसकोच निर्गुणोपासक ही थे। उन पर वेदान्त का प्रभाव भी था, अतः माया को 'महा ठगिनी' जानकर उसका घोर विरोध किया गया था। काचन और कामिनी माया के ही दो रूप हैं, जिससे बचना

कबीर ने आवश्यक बतलाया है। यह माया का परदा ज्ञान की आंधी से ही फटता है।

सन्तों आई ज्ञान की आंधी रे।
भरम की टाटी सभी उडानी माया गई न बांधी रे।

ज्ञान के द्वारा माया का बन्धन जब मिट जाता है तभी आत्मा और परमात्मा का मिलन हो जाता है--

लाली मेरे लाल की, जित देखूं तित लाल।
लाली देखन मैं गई, मैं भी हो गई लाल॥

कबीर ने इसी बात को आध्यात्मिक प्रतीक दे कर बडी ही सुन्दरता से समझाने का प्रयत्न किया है।

जल में कुंभ कुंभ में जल है, बाहर भीतर पानी।
टूटा कुंभ जल जल में समाना, यह तत कह्यो ज्ञानी॥

रहस्यवाद मे तीन अवस्थाए विद्वानो ने स्वीकार की हैं-(१) जिज्ञासा, (२) ज्ञान, (३) मिलन। कबीर के पदो मे तीनो अवस्थाओ के दर्शन होते हैं। परमात्मा से बिछुड कर आत्मा की कितनी व्याकुल दशा होत है, इसकी झलक कबीर के अनेक दोहो में मिलती है। विरह की वेदना में कबीर का कोमल हृदय चिल्लाता है। वैद्य रोग की दवाई देने पहुँचता है, परन्तु कबीर कहते हैं-

जाहु बैद घर आपने, तेरा किया न होय।
जा यह वेदना निर्मई, भला करेगा सोय॥

उसकी प्रेमभावना का एक सुन्दर उदाहरण लीजिये—

नैणां अन्दर आव तू, नैण ढांपि तोहि लेहुं।
ना मैं देखूं और को, ना तोहि देखन देहुं॥

इसी प्रकार कबीर ने जहा सुधारवाद के क्षेत्र मे कटु उक्तियां कहीं, गर्व के बोल बोले, वहा जब वह 'राम की बहुरिया' बनकर प्रियतम से मिलने को चुनरी ओढता है, तो स्पष्ट स्वीकार करता है—

'मेरी चुनरी में लागो दाग पिया'
तथा 'घूंघट का पट खोल रे तोहि पिया मिलेंगे।'

माया का घूंघट खोलते ही प्रियतम की लाली में कबीर स्वयं भी रंग जाता है। तब तो उसे कान फड़वाने तथा आंख मूंद कर साधना करने की भी आवश्यकता नहीं रह जाती। वह कहता है—

"उघरे नयन साहब देखूं"

इसी क्रम में कबीर ने प्रेम पर जो उक्तियां कही हैं वे भावपूर्ण और अनुभूति का सजीव उदाहरण हैं। इनमें बलिदान का स्वर गूंजता है। कुछ उदाहरण देखिये—

१—यह तो घर है प्रेम का, खाला का घर नाहिं

२—कबिरा खड़ा बाजार में, लिए लकुटिया हाथ।
जो घर फूंके आपना, चले हमारे साथ॥

इस प्रकार निर्गुण धारा का प्रवर्तक और प्रतिनिधि कबीर एक ही साथ धर्मोपदेशक भी है, समाज-सुधारक भी और रहस्यवादी कवि भी।

प्रश्न ८—जायसी की प्रबन्ध-कुशलता पर प्रकाश डालो।

अथवा

भाषा, विषय और शैली के आधार पर प्रेमकाव्यों की समीक्षा करो।

अथवा

'पद्मावत' का समालोचनात्मक परिचय दो।

उत्तर—प्रेममार्गी शाखा के अन्तर्गत सूफी साहित्य का महत्वपूर्ण स्थान है। सूफी शब्द के बारे में अनेक विद्वानों ने अटकलें लगाई हैं। कुछ साफ शब्द से पवित्र आचरण वाले भक्त लोगों का अर्थ निकालते हैं तो कोई 'सूफ' अथवा श्वेत ऊन से बनी कफनी पहनने वाले ईश्वर-प्रेमी फकीरों से इसका सम्बन्ध जोड़ते हैं। जो हो, सूफी मत इस्लाम का एक प्रधान अंग समझा जाता रहा है। मुहम्मद साहब की प्रशंसा भी सूफी काव्यों की एक सामान्य विशेषता रहा है। किन्तु इस्लाम और मसीही धर्म में अलौकिक प्रेम तत्व को

ही आधार मानकर सूफी संतो ने जो साधना-मार्ग अपनाया, वह अपनी कुछ विशेषताएं भी रखता है और अन्य मतो को कुछ प्रभावित भी करता है।

भारतवर्ष में सूफियो का आगमन ख्वाजा मुइनुद्दीन चिश्ती (१२ वी सदी) से माना जाता है। इन साधु मुसलमानो के भारत आगमन से जहा एक ओर ईरानी और अरबी वातावरण की झलक मिली, वहा भारतीय अद्वैतवाद तथा योगियो के हठयोग के साथ भी उसका समन्वय हुआ। भारतीय सूफियो के प्रेम के काव्यो में यह विशेषता स्पष्टता पूर्वक दिखाई देती है।

सूफीमत के अनुसार परमात्मा एक है और निर्गुण है। वह प्रेम का अखंड भंडार है। साधक उसकी प्राप्ति के लिये कठोर साधना करता है। साधना के चार मार्ग बताए जाते हैं—शरीयत, तरीकत, हकीकत और मार्फत। हिन्दी में इन्हे कर्म, उपासना, ज्ञान और सिद्धावस्था कहते हैं। जीव और ब्रह्म को सूफी सन्त भी अद्वैतवादी विद्वानो के समान अभिन्न मानते हैं। जीव और ब्रह्म मे उसी प्रकार अन्तर नही है, जिस प्रकार समुद्र के पानी मे और उससे बने बुलबुले में कोई भेद नही होता।

लौकिक प्रेम-कथाओ पर आधारित इनके प्रेम-काव्यो में अलौकिकता अथवा आध्यात्मिकता का सुन्दर आभास मिलता है। प्राय सभी सूफी काव्य लेखक मुसलमान हैं और उन्होने प्रबन्ध-शैली पर ही अपनी रचनाए लिखी हैं। किन्तु भारतीय साहित्यशास्त्र के अनुसार ये काव्य सर्गबद्ध न होकर फारसी की मसनवी शैली पर लिखे गये हैं, जिनमे खुदा, मुहम्मद और शाहे-वक्त की प्रशसा होती है।

प्राय सूफी कवि रहस्यवादी भी होते हैं। इनके रहस्यवाद का आधार भारत का अद्वैतवाद ही है। किन्तु फारसी के प्रभाव के कारण इन काव्यों में साधक को पुरुष और साध्य अर्थात् ब्रह्म को नारी का रूप प्रदान किया गया है। कबीर इस दृष्टि से भारतीय पद्धति के अनुयायी थे। दूसरी बात यह भी है, कि जहा कबीर आदि सन्त अन्तर्मुखी थे, वहा जायसी आदि सूफी बहिर्मुखी। प्रमाण लीजिये—"पिउ मन में पर भेंट न होई।"

सूफी काव्य मे 'प्रेम की पीर' का स्वर प्रधान है। साधक प्रियतम के विरह की ज्वाला में जलकर आनन्द का अनुभव करता है। आत्मा और परमात्मा के मिलन में शैतान को बाधक समझा जाता है जो वेदांतियो की 'माया' का ही प्रतिनिधि प्रतीत होता है। शैतान के छल को गुरु की सहायता से भक्त काटता है। इस प्रकार गुरु महिमा पर जायसी आदि सूफी कवियो ने भी अपना मस्तक झुकाया है।

सूफी कवियो ने लोकचरित का सहारा लेकर जो हिन्दू प्रेमाख्यान अपने काव्यो के लिए चुने हैं, उनकी भाषा बोलचाल की अवधी है। सात-सात चौपाइयों के पश्चात् एक दोहे की परम्परा का पालन किया गया है। यह परम्परा अपभ्रंश भाषा के चरितकाव्य-लेखक जैन मुनियो में भी पाई जाती है।

हिन्दी के सूफी कवियो में कुतबन (मृगावती), मझन (मधुमालती), जायसी (पदमावत), उसमान (चित्रावली) आदि उल्लेखनीय हैं। इन सबमें सूफी काव्य की विशेषतायें जायसी के 'पद्मावत' में पराकाष्ठा को पहुँची हुई है।

मलिक मुहम्मद जायसी

जायसी सूफी कवियो में श्रेष्ठ कवि हैं। हिन्दी के श्रेष्ठ तीन महाकवियो में विद्वानो ने सूरदास और तुलसीदास के साथ जायसी की भी गणना की है। तुलसीदास की अमर पुस्तक 'रामचरित मानस' का प्रेरणा स्रोत भी (शैली की दृष्टि से) जायसी का 'पद्मावत' ही माना जाता है। सूफी काव्य की उक्त सभी विशेषताए जायसी के काव्य में पूरी प्रकार से अभिव्यक्त हुई हैं। जायसी ने तीन ग्रन्थ लिखे हैं—(१) अखरावट, (२) पद्मावत, (३) आख़िरी कलाम। किन्तु केवल 'पद्मावत' महाकाव्य के कारण ही जायसी का महत्व हिन्दी-जगत् में पर्याप्त बढ चुका है। आचार्य शुक्ल को ही इस महाकवि को प्रकाशित करने का श्रेय प्राप्त है।

जायसी ने अपने 'महाकाव्य' का आधार एक हिन्दू प्रेमाख्यान को बनाया। इस प्रचलित लोक-कथा की ऐतिहासिकता के विषय में पूर्ण ऐकमत्य नही है।

डा० हजारीप्रसाद द्विवेदी के अनुसार चन्द वरदाई ने पृथ्वीराज रासो में पद्मावती की जो लोकप्रसिद्ध कथा लिखी है, जायसी के 'पद्मावत' का भी वही आधार समझनी चाहिये। अस्तु, सूफी कवियो की परम्परानुसार जायसी ने भी अपने काव्य का ताना-बाना कल्पना और इतिहास द्वारा बुना। 'पद्मावत' का पूर्वार्द्ध जहा पूर्णतया कवि की कल्पना की वस्तु है, वहा उत्तरार्द्ध में पद्मिनी और अलाउद्दीन खिलजी की प्रसिद्ध ऐतिहासिक कथा का समावेश कर दिया गया है। किन्तु कल्पना और इतिहास के इस सुन्दर समिश्रण में लेखक ने जो प्रबन्ध-कुशलता दिखाई है, वह प्रशसनीय है।

जायसी एक बहुश्रुत व्यक्ति थे। हिन्दू घरानो से उनका परिचय निकट का था। तभी 'पद्मावत' का वातावरण शुद्ध भारतीयता का दर्पण सा लगता है। फारसी की मसनवी शैली में लिखा जाने पर भी 'पद्मावत' पद्मावती और नागमती जैसी सती महिलाओ के तेज से आलोकित हो उठा है। चरित्रचित्रण की दृष्टि मे भी लेखक को पूर्ण सफलता मिली है। स्वय देहाती होने पर भी लेखक ने राजकुमार और राजकुमारियो के चरित्र को बडी ही कुशलता पूर्वक चित्रित किया है।

जायसी के 'पद्मावत' में लोक-कथा को अलौकिक प्रेमकथा बनाने का जो प्रयत्न किया गया है, वह सूफी काव्य का एक प्रधान अग है। 'पद्मावत' के अन्त में कवि ने इस रूपक को स्वय स्पष्ट करते हुए लिखा है—'तन चितउर मन राजा कीन्हा आदि। इस प्रकार राजा रतनसेन को मन, पद्मावती को बुद्धि या ब्रह्म, तोते को गुरु, राघवचेतन को शैतान, अलाउद्दीन खिलजी को 'माया' तथा नागमती को 'दुनिया धन्धा' कहा गया है। यह रूपक काव्य के पूर्वार्द्ध में पूरी तरह से घटित हो जाता है। परन्तु उत्तरार्द्ध में अनेक त्रुटिया तथा आपत्तिया उठ खडी होती हैं। उदाहरणार्थ—आत्मा और परमात्मा के मिलन के पश्चात् अलाउद्दीन रूपी माया का बखेडा अनुचित है। मिलन के पश्चात् नागमती रूपी दुनिया धन्धा के पास लौट आना भी समझ नही आता। इसी प्रकार माया और शैतान का भेद भी अस्पष्ट है। इन सब को दृष्टि में रखते हुए यही निष्कर्ष निकाला जा सकता है कि जायसी के 'पद्मावत' को महाकाव्य समझना भूल है। प्रधान रू

परंपरा के अनुसार अलौकिक प्रेम की झलक दिखाने का सफल प्रयत्न किया गया है। समासोक्ति के ढग से अप्रस्तुत रूप में एक आध्यात्मिक अर्थ भी निकलता है। प्रत्येक पंक्ति मे अध्यात्म को खोजना व्यर्थ होगा। "जिस प्रकार रतनसेन तोते के मुंह से पद्मावती के सौंदर्य को सुनकर उस पर मोहित हो जाता है तथा नागमती को छोडकर अनेक कष्टो को उठाने के पश्चात् अन्त में उससे विवाह कर लेता है।" ठीक इस कथा से केवल इस अंश मे अध्यात्म-अर्थ की झलक मिल जाती है कि उसी प्रकार "एक साधक जब गुरुमुख से परमात्मा की महिमा सुनकर उस पर मोहित होता है तो वह दुनिया-धन्धे को त्याग कर साधना के अनेक कष्टों को झेलता हुआ अन्त में उस को प्राप्त कर लेता है।"

जायसी ने 'पद्मावत' मे नागमती का जो विरह-वर्णन किया है, उसे आलोचको ने हिन्दी साहित्य में बेजोड माना है। मानवीय भावना का इतना सुन्दर चित्रण अन्यत्र दुर्लभ है। कहीं-कहीं अतिशयोक्ति के कारण कुछ भद्दापन अवश्य आ गया है, जैसे—

पिउ से कहु सदेसडा, हे भवरा हे काग।
सो धन विरह जल मरी, ताक धुआ हम लाग॥

किन्तु सामान्यतः नागमती के हृदय की वेदना की अभिव्यक्ति अत्यन्त ही कलात्मक ढग से की गई है। नागमती को एक आदर्श भारतीय महिला के रूप मे चित्रित किया गया है जो अनन्य भाव से अपने प्रिय की उपासिका है। एक उदाहरण लीजिए :—

यह तन जारौ छारि के, कहौं कि पवन उडाव।
मकु तेहि मारग डारि दे, कंत धरे जहं पांव॥

इस दोहे में आत्म-बलिदान की भावना पराकाष्ठा को पहुँची हुई है। मानव के दुःख से प्रकृति भी बिना प्रभावित हुए नही रह सकी। यह जायसी की अपनी मौलिक उद्भावना है, जिसने उसके विरह वर्णन को अनुपम बना दिया है। जरा देखिए—

"उठि उठि रोव कोई नही बोला, आधी रात विहगम बोला।"

'पद्मावत' मे कवि ने पद्मावती का रूप वर्णन भी बडी सुन्दरता और प्रभावशाली ढग से किया है। प्रकृति के वर्णनो मे यद्यपि कही-कही गणना-शैली को अपनाया गया है, तो भी उसका सवेदनशील वर्णन अत्यन्त ही मार्मिक बन पडा है। उपमान और प्रतीक रूप में भी कवि ने प्रकृति का चित्र खीचा है।

सूफी कवि विचारो की दृष्टि से बडे उदार थे। कबीर आदि सन्त कवियो के समान सूफी कवियो ने भी हिन्दू और मुसलमानो मे एकता स्थापित करने मे बडा योग दिया है। उनके हिन्दू प्रेमाख्यान इस का एक प्रमाण है। परन्तु कबीर की तरह खडन-मंडन की कठोर शैली और शब्दावली इन सूफी कवियों में नही पाई जाती। इनकी जिह्वा पर तो सदैव प्रेम की मधुरता रही है। जायसी ने कहा भी है—

जो नहि सीस प्रेम पथ लावा, सो पृथ्वी में काहे को आवा?

जायसी के 'पद्मावत' मे प्रबन्ध काव्य की तथा सूफी मत की सभी विशेषताएँ मिलती हैं। अवधी भाषा और दोहा-चौपाई शैली में लिखा गया 'पद्मावत' हिन्दी का प्रथम प्रामाणिक 'महाकवि' कहा जा सकता है। कहते हैं, लोग कुरान के साथ रख कर 'पद्मावत' का पाठ करते थे। यदि यह सच है तो इससे जायसी और उसकी अमर रचना का महत्त्व सहज ही समझा जा सकता है। रहस्यवादी कवियो मे कबीर के साथ-साथ जायसी का नाम भी आता है। कबीर की शुष्कता के स्थान पर जायसी मे कला और काव्यत्व की सरसता है। इस प्रकार जायसी की गणना यदि हिन्दी के तीन चोटी के महाकवियो में की जाती है, तो उचित ही है।

प्रश्न—सन्त काव्य व सूफी काव्य का तुलनात्मक विवेचन कीजिए।

उत्तर—भक्तिकाल में जो निर्गुणधारा की सरिता बही वह दो रूपो मे परिणित हो गये। (१) ज्ञानाश्रयी शाखा (२) प्रेममार्गी शाखा। ज्ञानाश्रयी शाखा को सत काल कहते हैं जबकि प्रेम मार्गी शाखा को सूफी काव्य कहते

हैं। यद्यपि दोनो शाखाओ मे बहुत सा साम्य है फिर भी दोनो काव्य धाराओ में अन्तर भी है।

दोनो में साम्य :—

(१) दोनो ही धाराओ के अन्तर्गत परमात्मा निर्गुण है।
(२) दोनो ही के कवि दार्शनिक पृष्ठ भूमि मे खडे हैं।
(३) दोनो ही प्रकार के कवि रहस्यवादी थे।
(४) दोनो ने ही गुरु की महिमा स्वीकार की है।
(५) दोनो ही प्रकार के कवि सच्चे सन्त, दृढ भक्त तथा ससार की निस्सारता को जानते हैं।
(६) दोनो ही प्रकार के कवियो ने हृदय से सर्व धर्म समन्वय को स्वीकार किया।
(७) दोनो ही प्रेम के माधुर्य को जानते थे तथा दोनो ने ही ईश्वरीय प्रेम को दाम्पत्य प्रेम के रूप में स्वीकार किया।
(८) दोनो ने माया को सासारिक बन्धन का कारण माना।

दोनो में अन्तर :—

(१) सन्त कवि परमात्मा से मिलन का साधन ज्ञान मानते थे जबकि सूफी कवि परमात्मा से मिलन का साधन प्रेम स्वीकार करते हैं।
(२) सन्त कवियो ने ईश्वर को प्रियतम रूप में स्वीकार किया जब कि सूफी कवियो ने परमात्मा को प्रियतमा रूप मे ग्रहण किया।
(३) सन्त कवि भारतीय वेदान्त से प्रभावित थे जबकि सूफी कवियो का प्रेरणा स्रोत फारस है।
(४) सन्त कवियो ने वाह्य आडम्बर का खण्डन किया जबकि सूफी कवि खण्डन व मण्डन दोनों से ही दूर रहे।
(५) सन्त कवियो में अहम् रूप का प्रधान है पर सूफी कवि विनम्रता तथा सरलता को ग्रहण किये हुए हैं।
(६) सन्त कवियो ने केवल मुक्तक काव्य लिखा और सूफी कवियो ने प्रबन्ध काव्य लिए।

(७) सन्त कवियो की भाषा-खिचडी है परन्तु सूफी कवियों की भाषा अवधी है।

(८) सन्त कवियो के रहस्यवाद में जिज्ञासा भाषा व मिलन के दर्शन होते हैं पर सूफी कवियो मे शरीअत, तरीकत, हकीकत व मार्फत के दर्शन होते हैं जो कि फारस के सिद्धान्त से प्रभावित हैं।

(९) सन्त कवि प्रधानत धर्मोपदेशक व समाज सुधारक थे जब कि सूफी कवियो ने साहित्यिक दृष्टिकोण भी अपनाया व खण्ड काव्यो एवम् महाकाव्यों की रचना भी की।

(१०) सन्त कवि शुष्कता व ज्ञान के बोझ को ग्रहण किये हुए जब कि सूफी कवियो ने प्रेम की सरसता व लोक कथानको को प्रेम की पीर द्वारा प्रकट किया।

प्रश्न ८—'तुलसी मानव प्रकृति के सच्चे पारखी थे।' इस कथन की सत्यता 'रामचरित मानस से सिद्ध कीजिये। (प्रभाकर १९५३)

अथवा

'तुलसीकृत भक्तिनिरूपण की सबसे बड़ी विशेषता यह है कि इस में ज्ञान की महत्ता स्वीकृत हुई है। साथ ही सुगम न होने से उसे अव्यवहार्य कहा गया है।' यह उक्ति कहाँ तक तक सत्य है ? (प्रभाकर १९५३)

अथवा

तुलसी को सर्वाङ्गीणता सिद्ध करते हुए बताओ कि उन्होंने अपने से पूर्व सभी काव्य शैलियों में कविता लिखी।

उत्तर—तुलसीदास को आचार्य शुक्ल ने हिन्दी साहित्य का सर्वश्रेष्ठ कवि माना है। डा० ग्रियर्सन ने कहा है कि 'महात्मा बुद्ध के पश्चात् तुलसी ही सबसे बडे लोक नायक हुए।' इसी प्रकार 'कलियुग के वाल्मीकि' आदि अनेक उपाधियो से विभूषित हिन्दी के इस अद्वितीय महाकवि को 'युगद्रष्टा' और 'युगस्रष्टा' दोनो ही रूपो में देखा जा सकता है। महापुरुष की सबसे बड़ी कसौटी यही होती है। वह केवल समाज का प्रतिनिधि ही नहीं होता, उसका प्रदर्शक भी होता है। तुलसी ने भारतीय समाज का अध्ययन बड़ी सूक्ष्मता के

साथ किया और उसके आगे नई आशा और नए जीवन का महान् आदर्श भी स्थापित किया।

१६वी शताब्दी में अकबरी शासन का सुख साम्राज्य फैला हुआ था किन्तु इसी काल में राणा प्रताप ने तलवार उठाई और इसी काल मे तुलसीदास ने लेखनी चलाई। इन दोनो महान् युग-प्रवर्तको ने उस समय की शांति में भी अशांति का अनुभव किया। 'कलि महिमा' मे तुलसी ने जो सामाजिक चित्र खीचा है, वह अत्यन्त शोचनीय है। राजनीतिक दृष्टि से भी भारत निर्जीव हो चुका था। यवनो के अत्याचारो का दर्पण 'रामचरित मानस' में रावण का चरित्र कहा जा सकता है। तुलसी ने बडी कुशलता के साथ अपने अमर ग्रन्थ मे तत्कालीन राजनीतिक अशान्ति, अन्याय, अत्याचार की स्थापना सकेत रूप मे कर दी और उसका निस्तार भी राम द्वारा रावण पर विजय के रूप में बतला दिया। उन्होने स्पष्ट लिखा—

'जाके राज प्रिय प्रजा दुखारी, सो नृप अवस नरक अधिकारी।'

इसी का उत्तर तुलसी ने 'राम-राज्य' द्वारा उपस्थित किया। उन्होने रावण पर राम की विजय को 'रावणत्व पर रामत्व की विजय' घोषित किया। इस प्रकार सप्रदायवाद की तग गली से निकल कर विश्व के सामने एक सनातन सत्य का आदर्श स्थापित किया। तुलसी के 'राम-राज्य' की कल्पना साम्प्रदायिक न होकर मानवीय थी।

तुलसी एक महान् समाज-सुधारक के रूप में भी सामने आते हैं। उनके समय में धार्मिक और सामाजिक अवस्था बहुत ही अव्यवस्थित थी। नाथपथी जोगियो का प्रचार हो रहा था। 'अलख' ब्रह्म की रहस्यमयी साधना में सर्व साधारण की सहजबुद्धि उलझ कर रह गई थी। तुलसी ने उनको डाटते हुए 'रामभक्ति' का सदेश दिया था। इसी प्रकार कबीर की निर्गुण धारा तथा सूरदास की कृष्णभक्ति की प्रेमपूरक भक्ति की मधुर धारा भी खूब प्रचलित थी। तुलसी ने उसी समय समाज की वर्णव्यवस्था पर भी आघात होते देखा था। ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र सभी अपने कर्त्तव्यो से गिर चुके थे। धर्म और शास्त्र अनधिकारी लोगो के हाथ में आकर आडम्बर का रूप धारण

कर चुके थे। अहकार की मात्रा बढ रही थी। इस भयानक स्थिति को सम्भालने के लिए क्राति की नही, 'समन्वय' की आवश्यकता थी। डा० हजारी प्रसाद द्विवेदी के शब्दो मे 'समन्वय भावना ही किसी लोकनायक के व्यक्तित्व की सबसे प्रधान विशेषता है।' तुलसी ने समन्वयवादी दृष्टिकोण को ही मुख्य माना और उसकी सहायता से वह मानव-प्रकृति के सच्चे पारखी भी सिद्ध हुए।

तुलसी ने अपनी समन्वय बुद्धि का प्रमाण सभी क्षेत्रो में दिया। सामाजिक क्षेत्र में वैष्णवो और शैवो के बीच जो शत्रुता की भावना उभर रही थी, तुलसी ने उसको समाप्त करने में प्रशसनीय प्रयत्न किया। 'रामचरित-मानस' मे राम के मुख से शिवजी की तथा शिवजी के मुख से राम की महिमा बतला कर दोनो सप्रदायो मे समन्वय की भावना जगाने का सफल प्रयत्न किया। इसी प्रकार धार्मिक क्षेत्र में भी निर्गुण और सगुण धाराओ को अभिन्न सिद्ध करने की चेष्टा की। तथा 'ज्ञानहि, भक्तिहि नहि कछु भेदा' कहकर दोनो मार्गों का महत्व स्वीकार किया।

तुलसीदास रामानन्द की परम्परा में ही माने जाते हैं। रामानन्द पर रामानुजाचार्य के विशिष्टाद्वैत का प्रभाव था। किन्तु रामानन्द ने केवल 'सीता-राम' की भक्ति का प्रचार किया और अपना पृथक् वैष्णव सप्रदाय स्थापित किया। उन्होंने राम के मर्यादा पुरुषोत्तम रूप को ही प्रधानता दी तथा सबसे बढकर सस्कृत के स्थान पर देश-भाषा मे साहित्य रचने का पथ-प्रदर्शन किया। उनके शिष्यो मे सगुण भक्तो के अतिरिक्त कबीरदास जैसे निर्गुणोपासक महात्मा भी थे। इस प्रकार सिद्धान्तदृष्टि से यद्यपि तुलसीदास ने भी रामानुज के 'विशिष्टाद्वैतवादी' सिद्धात के अनुसार जीव को ब्रह्म का अश ही माना—

'ईश्वर अश जीव अविनाशी।'

तथापि अपनी समन्वय बुद्धि के कारण उन्होंने सभी शास्त्रीय सिद्धातों का समुचित सम्मान भी किया। उनकी 'विनयपत्रिका' का आरम्भ रामवन्दना से न होकर गणेश वन्दना से ही किया गया। इसी प्रकार शकराचार्य के

अद्वैतवाद की झलक भी उनके अनेक पदो मे देखने को मिलती है। स्वयं भक्त होते हुए भी उन्होने ज्ञान की महिमा गाई है। परन्तु सर्वसाधारण के लिए 'ज्ञान को कृपाण की धार' कहकर उसे अव्यवहार्य भी कह दिया। इस प्रकार तुलसी ने केवल रामभक्ति के सरल मार्ग को ही सबसे बढकर माना, भिन्न मतवादो के अनुकरण में उलझने की आवश्यकता नही समझी। रामभक्ति के अनन्य उपासक होकर भी तुलसी ने उसके जिस मर्यादापुरुषोत्तम रूप को सामने रखा, वह हिन्दू समाज के लिए आदर्श बन गया। तभी तो किसी विद्वान् ने कहा है कि आज हिन्दू समाज का धर्म तुलसी द्वारा प्रतिपादित धर्म ही है। तुलसी का राम "आज हिन्दू समाज का प्राण बन गया है। पारिवारिक दशा को सुधारने के लिए तुलसी ने रामायण द्वारा आदर्श माता, आदर्श पिता, आदर्श भ्राता, आदर्श पति, आदर्श पत्नी, आदर्श सेवक और आदर्श राजा सभी रूपों में स्वर्णिम आदर्श की स्थापना की। इस प्रकार एक साथ धर्मोपदेश और समाज-सुधारक की पदवी प्राप्त की।

काव्य की दृष्टि से भी तुलसी का स्थान हिन्दी साहित्य में सबसे श्रेष्ठ माना जाता है। तुलसीदास की १२ रचनाओं को ही प्रामाणिक माना गया है। इनमें रामचरित मानस, विनय पत्रिका, कवितावली, दोहावली, कृष्ण-गीतावली के नाम उल्लेखनीय हैं। तुलसी एक 'सिद्धहस्त' कवि थे। उन्होने अपने समय की प्रचलित सभी काव्य पद्धतियो पर सफलतापूर्वक लेखनी उठाई। वीरगाथाकालीन कवित्त और छप्पय पद्धति, विद्यापति और सूरदास की गीति-पद्धति, कबीर की दोहा पद्धति और जायसी की दोहा-चौपाइयो में प्रबन्ध पद्धति सभी प्रकार की रचनायें तुलसी ने लिखीं। भाषा की दृष्टि से यदि देखा जाय तो उस समय की प्रचलित ब्रज भाषा और अवधी भाषा दोनो में अधि-कारपूर्वक ढग से साहित्य सर्जन किया। सूरदास और जायसी ने क्रमश. ब्रजभाषा और अवधी भाषा के बोलचाल के रूप को ही अपने काव्य का आधार बनाया था। परन्तु तुलसी सस्कृत के महान् पण्डित थे। उन्होने इन दोनों भाषाओं को साहित्यिक रूप प्रदान किया तथा सस्कृतनिष्ठ ब्रज और अवधी का अपने काव्यों में प्रयोग किया। छद, अलकार और रस की दृष्टि से

भी तुलसी किसी कवि से पीछे नही रहे। उन्होने सभी रसो मे अत्यन्त आकर्षक शैली से काव्यकला का चमत्कार दिखाया।

कलापक्ष के समान भावपक्ष भी तुलसी का अत्यन्त सुन्दर है। 'रामचरित मानस' में तुलसी के पाडित्य और लौकिक अनुभव का स्पष्ट पता चलता है। लोक और शास्त्र का समन्वय बड़ा ही सुन्दर हुआ है। प्रबन्ध की दृष्टि से रामायण हिन्दी का सर्वश्रेष्ठ महाकाव्य स्वीकार किया जाता है। चार-चार वक्ताओ और श्रोताओ के होते हुए भी 'मानस' की कथावस्तु मे कही भी शिथिलता का भाव नही आने पाया। यह प्रबन्धकुशलता का अद्भुत चमत्कार समझना चाहिये। इसके अतिरिक्त चरित्र-चित्रण की दृष्टि से डा० हजारीप्रसाद द्विवेदी ने तुलसी को ससार के इने-गिने महान् कवियो की कोटि में गिना है। राम को केन्द्र मानकर सभी पात्रो का चरित्र बडी सफलतापूर्वक अंकित किया गया है। सर्वत्र मर्यादा का ध्यान रखा गया है। अलौकिक चरित्रों को भी अमानवीय नही बनने दिया। उनके व्यक्तित्व को पथ-प्रदर्शक और आकर्षक बनाने का पूरा प्रयत्न किया गया है। तभी तो राम, लक्ष्मण, भरत और सीता के चरित्रो को अनुकरणीय कहा जाता है। नर मे नारायण की दृष्टि रखने से राम का ईश्वरीय रूप भी भक्त तुलसी के सामने से नही हट सका। स्थान-स्थान पर तुलसी ने राम मे 'सत्य शिवं सुन्दर' की स्थापना करके हिन्दू समाज के आगे एकमात्र लोकरक्षक सिद्ध करने का सफल प्रयत्न किया है।

मानस के सवाद भी साहित्यिक सौंदर्य से पूर्ण हैं। उनमें राजनीति के दाव-पेच, पारिवारिक कलह, हास्य और विनोद की मात्रा, नीति और धर्म का उपदेश, वैराग्य एव दर्शन की चर्चा सभी कुछ मिलता है। कथा-प्रवाह में बाधक न बनते हुए मानस के कथोपथन लेखक के विचारो के प्रतिनिधि बन गए हैं। उद्देश्य की दृष्टि से तो 'रामचरित' मानस को कल्प--वृक्ष कहना उचित प्रतीत होत है। यद्यपि तुलसी ने प्रारम्भ मे केवल 'स्वांतःसुखाय' ही इस ग्रन्थ की रचना का उद्देश्य माना है, तथापि 'मानस' का गम्भीर अध्ययन सिद्ध करता है कि तुलसी का उद्देश्य कितना महान् और व्यापक था। अपने समय तथा समाज की कितनी बडी सेवा तुलसी के साहित्य द्वारा हुई, इसे सभी

जानते और मानते हैं। राजनीतिक, सामाजिक और धार्मिक समस्याओं का चित्रण और समाधान तुलसी ने किया। रामराज्य की सुन्दर और आदर्श कल्पना निराश भारतीय समाज के सामने रखी। उसमे नवजीवन और शक्ति-संचार किया। वास्तव मे उनका साहित्य 'लोकहिताय' की भावना से ही प्रेरित था।

प्रबन्ध-काव्य मे कुछ मार्मिक स्थल ऐसे होते हैं जहा कवित्व का चमत्कार दिखाया जा सकता है। इस दृष्टि से तुलसी ने अनेक सुन्दर प्रसग रामचरित मे से चुनकर उन्हे कलात्मक ढग से अभिव्यक्त किया है। उदाहरण के लिए राम वन गमन, पथ मे ग्रामीण स्त्रियो के साथ सीता का वार्तालाप, भरत मिलाप, सीताहरण और राम का विरह विलाप, स्वयवर मे फुलवाडी का दृश्य, अशोकवाटिका में सीता की मनोदशा, लक्ष्मण की मूर्च्छा आदि अनेक मार्मिक स्थलो को तुलसी ने चमत्कृत करके रख दिया है।

राम भक्ति के अतिरिक्त कृष्ण चरित को भी तुलसी की उदार मनोवृति ने अपनाया और इस प्रकार समन्वय बुद्धि का सुन्दर उदाहरण स्थापित किया। सक्षेप मे तुलसी में भारतीय सस्कृति का स्वर्गीय चित्र देखा जा सकता है। तुलसी की सर्वाङ्गीणता के दर्शन उसे 'लोकनायकत्व' प्रदान करते हैं। निर्विवाद रूप से तुलसीदास को हिन्दी साहित्य का सर्वश्रेष्ठ कवि स्वीकार किया जा सकता है।

प्रश्न ६—सूरकाव्य की विशेषताओं पर प्रकाश डालो।

अथवा

'सूरदास की गणना महाकाव्य रचने वाले कवियो की अपेक्षा महान् गीतिकारों मे की जाती है।" सिद्ध करो। (प्रभाकर जून १६५६).

अथवा

कृष्णभक्ति काव्य की विशेषतायें बताकर सूरदास का हिन्दी साहित्य में स्थान निर्धारित करो।

उत्तर—इसका उत्तर आगे 'सूरदास' मे देखो।

प्रश्न १०—काव्य प्रतिभा के आधार पर सूर और तुलसी की तुलनात्मक आलोचना कीजिए। (प्रभाकर १९५१, १९५३)

अथवा

'सूर-सूर तुलसी-ससी' की उक्ति की विवेचना करो।

उत्तर—सूरदास और तुलसीदास हिन्दी साहित्य के आकाश में दो जगमगाते हुए उज्ज्वल नक्षत्र हैं। कुछ विद्वान् सूरदास को सूर्य तथा तुलसीदास को चन्द्रमा की उपमा देते हैं तो कुछ आलोचक सूरदास की अपेक्षा तुलसी को श्रेष्ठ कवि सिद्ध करने का प्रयत्न करते हैं। वास्तव में सूर और तुलसी का काव्य-क्षेत्र भिन्न-भिन्न है। दोनो के दृष्टिकोण भी पृथक्-पृथक् हैं। दोनो महान् कवि अपने सीमित क्षेत्र मे अद्वितीय और सर्वश्रेष्ठ हैं। वात्सल्य के क्षेत्र में तुलसी ही नही, ससार का अन्य कोई भी कवि सूर की समता नही कर सका। इसी प्रकार जीवन की व्यापक व्याख्या करने तथा मानवता को उच्च सदेश देने मे सूरदास तुलसी से बहुत पीछे रह गए हैं।

सूरदास ने केवल कृष्ण के चरित्र को अपनाया और उसके बाल्य-जीवन को आधार मानकर उनकी लीलाओ का अत्यन्त ही सरस रूप मे वर्णन किया। परन्तु तुलसी ने यद्यपि प्रधान रूप मे रामचरित का ही गान किया, फिर भी कृष्ण के जीवन की उपेक्षा वे न कर सके। कृष्ण-गीतावली इस बात का प्रमाण है। जहा सूरदास ने कृष्ण को लोकरजक रूप प्रदान किया, वहां तुलसी को दृष्टि लोकहिताय रहने के कारण सामाजिक पक्ष का निरादार न कर सकी। तुलसी के राम मर्यादापुरुषोत्तम और लोकरक्षक बनकर हिन्दू समाज के सामने आए। इस प्रकार तुलसी भारत की तात्कालिक राजनीतिक, सामाजिक और धार्मिक परिस्थितियो से पूर्णतः प्रभावित हुए, किन्त सूर ने केवल अपने इष्ट देव की लीलाओ के गान मे ही अपने चित को रमा रखा। इस प्रकार सूर का दृष्टिकोण व्यक्तिवादी बना रहा। सूरकाव्य मे सुन्दर का चित्र खीचा गया, जबकि तुलसी साहित्य में 'सत्य', 'शिव' और 'सुन्दर' का समन्वय था।

सूर एक सफल मुक्तक लेखक और गीतिकार हैं। तुलसी ने मुक्तक के

साथ-साथ प्रबन्ध शैली मे भी 'मानस' जैसे उत्कृष्ट ग्रन्थ की रचना की। इसमें सन्देह नही, सूर के वात्सल्य के पदो के सामने तुलसी की 'कृष्णगीतावली' के पदो की तुलना कुछ फीकी पड जाती है। तुलसी के पदो में दार्शनिकता और पांडित्य की छाप है। 'विनयपत्रिका' इसका उदाहरण है, परन्तु सूर के पदों में सरस कोमल हृदय की मार्मिक अनुभूति छिपी हुई है। यद्यपि सूरदास ने तुलसी के समान जीवन के व्यापक रूप को नही अपनाया और बाल्यकाल के सीमित क्षेत्र को ही अपने काव्य का विषय बनाया, तथापि उस सीमित क्षेत्र को बडी गहराई और अनेकरूपता के साथ चित्रित करने मे वे सबसे बाजी ले गए। गीतिकाव्य की दृष्टि से भी सूर की सरसता और लोयप्रियता तुलसी के भाग्य में नही आई।

भाषा, छन्द अलङ्कार और रस की दृष्टि से तुलसी सूरदास की अपेक्षा अधिक सफल कहे जा सकते हैं क्योकि तुलसी के काव्य में इन सबकी विविधता पाई जाती है। सूर ने केवल बोलचाल की भाषा का प्रयोग किया और प्रधान रूप से वत्सल एव शृङ्गार रस में ही अपनी कुशलता दिखलाई। तुलसीदास को व्रज और अवधी दोनो भाषाओ पर पूर्ण अधिकार था। उनकी भाषा भी पूर्ण साहित्यिक तथा सस्कृतगर्भित थी। प्राय सभी रसो की कविता तुलसी की लेखनी से निकली। इस प्रकार तुलसी सूरदास से कुछ आगे निकले हुए थे। किन्तु वात्सल्य और भ्रमर गीत के पदो की मधुरता, भाषा की सरलता, तथा सरसता वस्तु का स्वाभाविक, मनोवैज्ञानिक वर्णन, गहराई तथा अनेकरूपता, सगीतात्मकता तथा भावप्रवणता सूर साहित्य की ऐसी विशेषताएँ हैं, जो उसे अपने क्षेत्र में अद्वितीय सिद्ध कर देती हैं।

प्रश्न ११—रहीम और मीरा पर सक्षिप्त टिप्पणी लिखो।

(प्रभाकर १९५३, १९५४)

उत्तर—रहीम अकबर के प्रधान सेनापति बैरमखा के सुपुत्र थे। स्वयं अकबर के सेनापति होने के साथ-साथ अत्यन्त उदार चरित्र के दानी और ब्रजभाषा के सुन्दर कवि भी थे। 'रहीम सतसई' और 'बरवै नायिका भेद' उनकी उल्लेखनीय रचनायें हैं। 'बरवै' छन्द की उत्पत्ति के विषय में तो एक

जनश्रुति प्रचलित है, जिससे रहीम को ही इस छन्द का प्रथम लेखक बताया जाता है। तुलसी के समकालीन होने के कारण उनसे मिलाप का अवसर भी इन्हें अवश्य मिला होगा। निम्नलिखित दोहे मे दोनो महाकवियो के प्रश्नोत्तर की गध भी वतलाई जाती है।

गज सिर पर धूली धरत, कहो रहीम किहि काज।
जा रज ते अहिल्या तरी, सो ढूंढत गजराज ॥

रहीम के दान के अनेक उदाहरण दिए जाते हैं। कहते हैं कि एक छन्द सुनाने पर गंग को कवि ने छत्तीस लाख रुपये दे डाले थे। अकबर की मृत्यु के पश्चात् किसी कारण जहागीर रहीम से रुष्ट हो गया और कवि की सारी सम्पत्ति छीन ली गई। रहीम के द्वार पर नित्य मागने वालो की भीड लगी रहती थी। निर्धन हो जाने पर जब रहीम मारे-मारे फिरने लगे तब भी भिखारियो ने उनका पीछा न छोडा। उस समय रहीम ने कहा था।

यारी यारी छोड़ दो अब रहीम वे नाहि।

रहीम के विषय मे प्रसिद्ध है कि वे दान देते समय आखें नीची किए रहते थे। यह उनकी नम्रता का प्रमाण था। पूछने पर उन्होने सुन्दर उत्तर भी दिया था।

देनहार कोई और है, जो देता दिन रैन।
लोग भरम हम पर करे, ताते नीचे नैन ॥

रहीम ने यद्यपि एक पुस्तक 'नायिका भेद' पर लिखी थी, तो भी उनका महत्त्व 'रहीम सतसई' के कारण ही है। रहीम ने नीति और व्यवहार-सम्बन्धी अत्यन्त सुन्दर दोहे लिखे हैं। स्वय मुसलमान होते हुए भी भगवान् कृष्ण की भक्ति सम्बन्धी इनके दोहे अत्यन्त भावपूर्ण तथा सरस हैं। इसके अतिरिक्त शृङ्गारी दोहो की सख्या भी पर्याप्त मिलती है, जिनमें कल्पना की रगीनी दर्शनीय है। कुछ उदाहरण देखिये—

१—करत करत अभ्यास के, जड़मति होत सुजान।
रसरी आवत जात ते, सिल पर परत निसान ॥

२—रहिमन ज्यों गति दीप की कुलकपूत की सोय।
बारे उजियारो करै, बढ़े अँधेरो होय॥

३—रहिमन असुआ नयन ढरि, जिय दुख प्रकट करेइ।
जाहि निकारो गेह ते, कस न भेद कह देइ॥

मीरा—

कृष्ण भक्ति की परम्परा मे मीरा का अपना विशेष स्थान है। राजस्थान की यह अमर गायिका अपने लोकप्रिय मधुर पदो के कारण तथा उसमें व्यक्त भक्ति की अनन्य भावना के कारण आज भी सर्वत्र सम्मानित हो रही है। वास्तव में मीरा के पदो को भाषा, शैली तथा शास्त्रीय पद्धति की कसौटी पर जाचना उसके साथ अन्याय करना है। क्योंकि मीरा मूल रूप में भक्त थी। उसने कविता को कभी लक्ष्य नहीं बनाया। भक्ति के आवेश में जो कुछ उसके मुख से सहसा निकल गया, वह कविता बन गय। काव्य के कलापक्ष की ओर उस 'दरद दिवानी' ने कभी ध्यान ही नही दिया था। यही कारण है कि मीरा के पदो में कल्पना के रगो के स्थान पर अनुभूति की गहराई मिलती है। अलकारो के चमत्कार के स्थान पर भावना का मनोहर सागर लहराता है। भाषा की सादगी किन्तु मिठास मीरा के साहित्य की प्रमुख विशेषतायें हैं।

मीरा को बाल्यकाल से ही कृष्ण से प्रेम हो गया था। किसी साधु द्वारा दी हुई कृष्ण की मूर्ति को पाकर मीरा ने उसी के साथ ही विवाह का सकल्प कर लिया था। व्यावहारिक ससार के बन्धनो के कारण विवश होकर चाहे बाद में उसे विवाह राजा भोज से करना पडा, किन्तु मन से वह 'सावरिया' को ही अपना पति मान चुकी थी। राणा भी इस सत्य से परिचित थे। कुछ समय पश्चात् जब राणा की मृत्यु हो गई, तो मीरा ने अब स्वतन्त्रतापूर्वक मन्दिरों में जाना और कृष्ण की भक्ति में मस्त होकर नाचना-गाना प्रारम्भ कर दिया। उसके देवर को यह सब बुरा लगा। उसने बहुत समझाया, धमकाया भी, किन्तु प्रेम की मतवाली मीरा पर कुछ प्रभाव न पडा। कहते हैं, तब राणा ने मीरा को मारने के लिए जहर भी भेजा, जिसे मीरा अमृत जान कर पी गई। इस की ध्वनि एक पद से भी मिलती है—

राणा भेज्यो जहर का प्याला, अमृत कर पी जाणा।

घरेलू बन्धनो से तग आकर मीरा ने घर को त्यागने का निश्चय किया। उसे लोक-लाज की चिन्ता थी ही नही—

"साधुन सग बैठि बैठि लोक लाज खोई"

वह तीर्थयात्रा को निकल पडी। जभी गोसाईं से भी परिचय हुआ। कुछ विद्वानो का कहना है कि तुलसीदास को भी मीरा ने पत्र लिखा था और उनसे मिलन भी हुआ था। इस विषय में गोस्वामी जी का यह पद प्रमाण के लिए प्रस्तुत किया जाता है—

"जाके प्रिय न राम बैदेही"

अस्तु' मीरा के साहित्य में वेदना की मार्मिक अभिव्यक्ति हुई है। कृष्ण की अनन्य भक्ति मे मीरा को कोई नही पा सकता—

'मेरो तो गिरधर गोपाल, दूसरो न कोई।"

मीरा की प्रेममूलक भक्ति में दांपत्य-भाव की छाप है। कभी मीरा प्रियतम के मिलने के लिए शृङ्गार करती है तो कभी स्वप्न मे प्रिय-मिलन की अनुभूति कर प्रसन्न होती है। सयोग और वियोग के अनेक अवसर मीरा की कविता मे आये हैं। माधुर्य भाव की सरस धारा से अनुप्राणित मीरा का काव्य नि सन्देह गीति काव्य की दृष्टि से एक अनुपम वस्तु है।

प्रश्न—केशव आचार्य थे या कवि यह स्पष्ट करते हुए केशव कृत राम चन्द्रिका का साहित्यिक मूल्यांकन कीजिए :—

उत्तर—केशव के विषय में यह झगडा कि केशव आचार्य थे या कवि बहुत समय से चला आता है। लाला भगवान 'दीन' मिश्रबन्धु, पद्मसिंह शर्मा, चन्द्रबली पान्डेय आदि प्रभृति विद्वानो ने केशव को आचार्य स्वीकार किया है तथा महाकवि भी माना है पर रामचन्द्र शुक्ल, हजारी प्रसाद द्विवेदी जैसे विद्वानो के मतानुसार न केशव आचार्य थे न कवि अपितु वे केवल पण्डित (विद्वान) थे। स्वय केशव के समकालीन कवियो में भी इसी प्रकार का मत-भेद है। प्राचीन साहित्य में हमें जहा यह उक्ति मिलती है कि "सूर सूर तुलसी शशि उडगन केशवदास" वहा यह उक्ति भी प्राप्त होती है कि—

"कवि की देन, न चहे विदाई ।
पूछे केशव की कविताई ॥"

कहने का तात्पर्य है कि केशव के विषय में अब तक विद्वान एक मत नहीं हो सके हैं।

वास्तविकता यह है कि केशव वास्तव में आचार्य नही थे। आचार्य के गुण तो ये हैं कि वह अपने समकालीन साहित्य की कमियो को दूर करके साहित्य का नवीन मार्ग प्रदशन करता। उसके अन्दर मौलिकता की कमी न होती, लक्षण व आलोचना ग्रन्थो के लिये व मौलिक सिद्धान्तो का निरूपण करता, परन्तु केशव ने कही भी ऐसा नही किया। उसके साहित्य में उसे आचार्य के पद पर बैठाने वाली दो पुस्तकें मानी जाती हैं एक कवि प्रिया व दूसरी रसिक प्रिया। ये दोनो ही दण्डी का अनुवाद है।

उदाहरणत'—केशव ने उपमा अलकार के २२ भेद किये हैं जिनमें १५ तो पूर्ण रूपेण दण्डी का अनुवाद है ५ के केवल नाम बदले हैं तथा दो अपनी ओर से दिये व दोनों ही गलत हैं अतएव केशव आचार्य नही।

जहा तक कवि होने का प्रश्न है केशव कवि भी नही हैं। कवि के हृदय में जो अनुभूति होती है तथा उसकी जितनी मार्मिक अभिव्यक्ति होती है वह केशव में नही। केशव ने तो पडिताई दिखाने का प्रयत्न किया है। तभी तो उनकी प्रसिद्ध पुस्तक रामचन्द्रिका के विषय में किसी आधुनिक आलोचक ने कहा था कि यह पुस्तक "छन्दो की नुमायश व अलकारो का पिटारा है। इस दृष्टिकोण से केशव न आचार्य ही ठहरते हैं और न केशव कवि ही हैं जहा तक केशव द्वारा रामचन्द्रिका का प्रश्न है यह पुस्तक महाकाव्य माना जाता है। तुलसीदास के केशव ने ही राम के कथानक पर इतना बडा महाकाव्य लिखा। परन्तु इस महाकाव्य में न तुलसी रचित रामचरित मानस जैसी मार्मिकता है न उतना कथानक का प्रवाह। स्वय केशव ने प्रारम्भ में ही कहा है कि :—

"रामचन्द्र की चन्द्रिका बरनतहु बहु छन्द" वास्तव में यह पुस्तक छन्दो का पिटारा बन गई है। वैसे भी केशव मानते थे कि :—

"भूषन बिन न विराजहि कविता बनितामित्त" तो अलकारो को सब से अधिक महत्त्व देते हैं। अलकारो की दृष्टि से केशव राम को शनीचर व उल्लू कहने में भी नही हिचकिचाये हैं। एक जगह केशव कहते हैं कि —

'भरवतूल के झूल झुलावत केशव
भानु मनो शनि अक लिये'

इस प्रकार दूसरे स्थान पर कहते हैं कि रावण की महिमा राम कैसे देख नही पाते जैसे कि .—

"वासर की महिमा उलूक न चितवत"

तात्पर्य यह है कि अन्धकार व छन्दो की पुस्तक बन कर ही राम चन्द्रिका रह गई है।

जहा तक भक्ति का प्रश्न है वहा तक भी राम चन्द्रिका को भक्ति ग्रन्थ नही कहा जा सकता। न भक्ति के दृष्टि कोण से यह पुस्तक लिखी गई है। केशव को तो एक महाकाव्य की रचना करनी थी। तथा यह ग्रन्थ महाकाव्य के दृष्टिकोण को रख कर ही लिखा गया है। भक्ति इस काव्य में नही है।

महाकव्य के दृष्टिकोण से नि सन्देह इसमे दस सर्ग से अधिक सर्ग हैं तथा इसमें इसके नायक राम नायिका सीता है। इसका रस श्रृंगार व सहायक वीर है वैसे सभी रस है इसमें प्रकृति वर्णन है यहा तक लका मे केसर की क्यारियों का वर्णन है, बहते पानी में कमलो का वर्णन है। इसमें वस्तु वर्णन भी है तात्पर्य यह है कि कवि ने महाकाव्य के सभी प्राचीन सिद्धान्तो को इसमें अपना लिया है।

इस महाकाव्य का आधार यद्यपि केशव ने बाल्मीक रामायण रक्खा है पर इस महाकाव्य में मार्मिक स्थलो की बडी कमी है। उदाहरणत राम बन को विदा ले रहे है। कौशिल्या मां विदा दे रही है कितना मार्मिक स्थल है पर यहा केशव ने राम के द्वारा कौशिल्या को पतिव्रत धर्म का उपदेश दिलवा दिया है तथा समस्त मार्मिकता की हत्या कर दी है।

उपर्युक्त वर्णन का अर्थ यह न निकाला जाय कि राम चन्द्रिका में कुछ नही है। राम चन्द्रिका कही-कही तो वास्तव में तुलसी से भी बढ गये हैं।

राजनीति, युद्ध वर्णन, महल वर्णन आदि मे वे तुलसी से कही अधिक श्रेष्ठ है कही-कही तो उक्तिया भी बडी मार्मिक दी हैं जैसे कि एक स्थान पर केशव ने जब हनुमान अशोक वाटिका पहुँचे हैं और उन्होने राम की मुद्रिका पेड़ से डाली है तब कहा है

सीता—"श्री उर मे वन मध्य हों तुमग करी अनीति
कह मुदरी अब तीयन की को करि है परतीति"

हनुमान उत्तर देते हैं कि—

"तुम पूछत कह मूदरी या कटि नहि नाम
कगन की सज्ञा दई तुम विन यह श्री राम"

इस पुस्तक की भाषा वृज पर सस्कृत मिश्रित है। भाव गहरे है। तथा महाकाव्य के दृष्टिकोण से सफल हैं।

प्रश्न १२—हिन्दी साहित्य मे किस काल को 'रीति काव्य' कहते हैं और क्यो ? रीतिकाल की विशेषताओं का उल्लेख कीजिए।

(प्रभाकर सन् १९५३)

अथवा

'रीति काल' की परिस्थितियां क्या थीं ? क्या इस काल के कवि कवि थे या आचार्य ?

उत्तर–आचार्य शुक्ल ने स० १७०० से स० १९०० तक रीतिकाल माना है। इस समय भक्ति-काल की भक्ति-भावना शृङ्गार भाव मे बदल गई थी। इसके अनेक कारण हो सकते हैं। कुछ विद्वानो का अनुमान है कि राजनीतिक परिस्थितियां ही इस परिवर्तन का मूल कारण थी। शाहजहां के समय तक ललित कलाओं का पूर्ण विकास हो चुका था। किन्तु औरगजेब तथा उसके पश्चात् जब मुगल वश का पतन आरम्भ हुआ तब देश छोटे-छोटे रजवाडो मे बंट गया। उनके मालिको और राजाओं एव नवाबों के राज-दरबारो में मुगलो की विलासिता का पूर्ण प्रभाव देखने को मिलता था। किन्तु साथ ही नैतिक पतन और अन्यन्य भावों की अभिव्यक्ति के भी ये केन्द्र थे। उनके पास अनेक विलास के साधन थे। सुरा और सुन्दरी के साथ कवियों की कला को भी सम्मिलित कर लिया गया। कवि जन-समाज से एक बार पुनः विमुख

होकर राजदरबार में जा बसे और आश्रयदाताओं की विलासी मनोवृत्तियों को उभारने तथा उसे शांत करने में सहायता देने लगे। सारा वातावरण विलासमय हो गया अतः उस काल में 'शृङ्गारी कविता' का बड़ा प्रचार हुआ।

इसी के साथ-साथ कृष्ण-भक्ति साहित्य को भी 'रीतिकाल' का एक प्रधान कारण समझा जाता है। भक्तिकाल के अन्त मे कृष्ण की मधुरा प्रेम-मूलक भक्ति ने अनेक सम्प्रदायों का रूप धारण कर लिया था। सूरदास और मीरा के काव्य में भी कृष्ण की माधुरी मूर्ति और उनका गोपीवल्लभ रूप बड़ा स्पष्ट होकर आया था। 'सखी सम्प्रदाय' आदि ने उस मे कुछ और भी रंग भरा। फलत रीति-काल में आते-आते कृष्ण की भक्ति-धारा कलुषित होने लगी। राधा और कृष्ण का ईश्वरीय रूप भुला दिया गया, उन्हें लौकिक नायक-नायिका के रूप में चित्रित किया गया। यद्यपि तुलसीदास ने राम की मर्यादापुरुषोत्तम के रूप मे कल्पना की थी किन्तु इस काल मे उसे भी शृङ्गार-रंजित बनाने का प्रयास किया गया। अतः उस समय कवियों की मनोवृत्ति पूर्णरूप से भक्ति का आवरण हटा कर नग्न शृंगार की ओर झुक गई।

इसी समय संस्कृत के शृंगारी साहित्य का भी हिन्दी कवियों पर बड़ा प्रभाव पड़ा। राधा और कृष्ण को लेकर प्राकृत तथा संस्कृत के अनेक कवियों ने जो शृंगारी कविता की थी, उसका अनुवाद ही नहीं, उनके अनुकरण पर रीतिकाल के तीन कवियों ने काव्यरचना आरम्भ कर दी। 'रीतिग्रन्थों की आड़ लेकर रस, अलङ्कार आदि के विवेचन के बहाने कवियों ने खुलकर अपनी कामुक मनोवृत्ति की अभिव्यक्ति की। इस प्रकार राधा और कृष्ण का नाम भी बचाव के लिए ले लिया गया। अस्तु, इन सभी कारणों से समाज की जो कलुषित भावना विलास और शृंगार के सागर में डूब चुकी थी, उसकी झलक तत्कालीन 'रीतिकाल' में स्वयं दिखाई पड़ती है।

मुख्य विशेषताएँ—

१. शृङ्गार—रीतिकाल साहित्य में शृङ्गारी काव्य की मात्रा सब से अधिक है। चिंतामणि, मतिराम, देव, बिहारी और पद्माकर इस काल के प्रतिनिधि कवि हैं। कुछ विद्वान् शृङ्गार की प्रधानता के कारण इस काल का

नाम ही 'शृङ्गार काल' मानते हैं। परन्तु आचार्य शुक्ल ने इस काल को 'रीतिकाल' कहना उचित समझा है। क्योंकि इस काल में स्वतन्त्र रूप से शृंगार रस की कविता अधिक नहीं लिखी गई। जितने भी शृंगारी कवि हुए हैं, उन सबने लक्षण ग्रन्थों की आड लेकर ही वासना प्रधान भावनाओं की अभिव्यक्ति की है। किसी रस या अलङ्कार का लक्षण लिख कर उसके उदाहरण के रूप मे ही अपनी कविता-चातुरी दिखाने का प्रयत्न किया है। इस प्रकार शृंगारी कविता रीतिबद्ध पथ पर ही रची गई। घनानन्द आदि ने अवश्य इस परम्परा को तोडने का यत्न किया और राधा-कृष्ण का आधार लेकर स्वतन्त्र रूप से हृदय की मार्मिक प्रेम-भावना को प्रकट किया। इस प्रकार साधारणतया रीतिकाल का समस्त वातावरण ही शृंगारी कहा जा सकता है।

शृंगार रस । भी कवियों ने स्त्री-सौंदर्य को आधार मान कर कामशास्त्रों की ही मानो रचना कर डाली है। नारी को केवल भोग-विलास की सामग्री समझा गया है। नायिका भेद के बहाने उनके अनेक प्रकार दिखला कर उनका नख-शिख वर्णन करने मे धरती-आकाश को मिलाने का यत्न किया गया है। नायक और नायिका यद्यपि राधा और कृष्ण ही बताए गए हैं पर उनका रूप पूर्णतया विलासी और कामुक ही दिखाई देता है। प्रेम की अनन्य भावना और एक निष्ठता के स्थान पर 'हरजाईपन' के दृश्य दिख ई देते हैं। शालीनता को तो बिल्कुल त्याग ही दिया गया है। शृंगार को आत्मिक और हार्दिक न बना कर भौतिक और शारीरिक बना दिया है।

२. लक्षण ग्रन्थ—रीतिकालीन साहित्य की दूसरी प्रधान विशेषता रीति-ग्रन्थ की रचना है। प्राय प्रत्येक कवि ने इस परम्परा को निभाया है। इस काल में यह प्रथा भी चल पडी थी कि रस, अलकार आदि के बहाने ही अपनी मानसिक कलुषित भावना को प्रकट करना है। फलत दोहे मे लक्षण देकर कवित्त और सवैयों मे उसके अनेक रसीले उदाहरणों की भरमार मिलती है। किन्तु ऐसा करने से यह सिद्ध नहीं होता कि रीतिकालीन कवि काव्य शास्त्र के मर्मज्ञ विद्वान् अथवा आचार्य थे। इन रीति-कवियों में आचार्यत्व के लक्षण कम ही दिखाई पड़ते हैं। यद्यपि केशव, चिंतामणि, देव, भिखारीदास, जसवन्तसिंह

श्रीपति, प्रतापसिंह आदि कुछ उल्लखनीय कवियो ने विविध विषयो को लेकर नायिका-भेद, रस-विवेचन अथवा अलङ्कार-निरूपण करने का प्रयास किया है, तथापि आचार्य शुक्ल के मत मे इनमें से कोई भी सफल आचार्य कहलाने के योग्य नही है। आचार्य के लिए अपेक्षित सिद्धात-निरूपण तथा विचार-विवेचन करने की योग्यता किसी में भी विद्यमान नही है। इन रीतिकवियो ने तो सस्कृत के आचार्यो द्वारा लिखे हुए लक्षण ग्रन्थो का अनुवाद मात्र अथवा नकल करने का ही प्रयत्न किया है। वास्तव में इन कवियो का उद्देश्य आचार्यत्व का प्रदर्शन न होकर शृ गारी कविता की चातुरी दिखाना था। अत सस्कृत शास्त्र के लक्षणो को ज्यो का त्यो नकल करके लच्छेदार शृङ्गारी उदाहरणो की भरमार कर दी है। अतः इस काल मे कवि आचार्य न होकर केवल कवि ही थे। भूषण जैसे वीर रस के कवि होकर भी इसी परम्परा में लिप्त रहे। उनका 'शिवराज भूषण' भी अलकार ग्रन्थ के रूप मे लिखा गया है। उदाहरणो मे शृ गार के स्थान पर वीर रस का प्रयोग किया है।

३ वीर रस — रीति-काल में भूषण कवि ने रीति-परम्परा को निभाते हुए वीर रस की कविता लिखी। यदि इस काल का नाम 'शृङ्गार काल' रख दिया जाय, तो भूषण को इस काल का प्रतिनिधि कवि नही माना जा सकता। भूषण ने यद्यपि वीर रस की ही कविता लिखी किन्तु लक्षण ग्रन्थ लिख कर ही केवल उदाहरण रूप में शिवाजी की प्रशसा की। लाल आदि अन्य कवि रीति मुक्त धारा के कवि हैं, जिन्होंने शृङ्गार को न अपना कर वीर रस में काव्य रचे।

४. प्रकृति—रीतिकालीन कवियो ने मानव-प्रकृति का तो सूक्ष्म निरूपण किया किन्तु भौतिक प्रकृति की ओर आंख उठा कर भी नही देखा। प्रकृति-वर्णन का जो अश रीति काव्यो में मिलता भी है, उसमें उस प्रकृति को शृ गार रस के लिए उद्दीपन रूप मे वर्णित किया गया है। अतः परम्परागत काव्य रूढियो, स्त्री-पुरुषो के अ गो के उपमानो अथवा प्रेम भाव को उद्दीप्त करने के साधनो के रूप मे ही विशेषतया प्रकृति का उपयोग किया गया है।

५. मुक्तक धारा—रीति काल में उल्लेखनीय एक भी प्रबन्ध काव्य नहीं रचा गया। इसका एक कारण यह था कि राजाओ और नवाबो को कविता

भी एक प्रकार की विलास सामग्री दिखाई देती थी। अतः आश्रयदाताओं के रंगीनी भावनाओं को उभारने के लिए कवि भी राजदरबार के वेतन-भोगी बन गए थे। उस समय आश्रयदाताओं को कुछ भड़कीली और चुभती हुई पंक्तियाँ सुना कर धन लेने की रुचि प्रधान थी। वह वातावरण लम्बे-लम्बे प्रबन्ध-काव्य लिखने के अनुकूल न था। न ही सुनने वालों को इतना धैर्य था कि वे महाकाव्य सुन कर आनन्द लूट सकें। अतः रीतिकाल के प्रायः सभी कवियों ने मुक्तक छन्दों में ही अपनी काव्य रचना की है। विहारी के दोहे मतिराम के सवैये और भूषण के कवित्त इसकाल में बहुत चमके।

६. भाषा—रीतिकालीन कवियों ने अवधी में रुचि न लेकर केवल ब्रज-भाषा को ही काव्य भाषा बनाया। मुक्तक काव्यों के लिए भक्ति काल में भी इसी भाषा का प्रकोप हुआ था। अब तो यही भाषा मुक्तक साहित्य की प्रतिनिधि बन गई। शृंगार जैसी कोमल भावना की अभिव्यक्ति के लिए भी ब्रज-भाषा की कोमल कान्त पदावली अनुकूल सिद्ध हुई। ब्रज की माधुरी में आकृष्ट होकर कवि शृंगार रस लिखने में अधिक उत्साहित हुए। किन्तु भाषा के परिष्कार की ओर इस काल में कम ध्यान दिया गया। विहारी और देव जैसे महान् कवियों की भाषा भी परिमार्जित नहीं रह सकी भूषण ने तो वीर रस के उपयुक्त बनाने के लिए ब्रजभाषा में बहुत तोड़-मरोड़ की। घनानन्द की ब्रजभाषा इस विषय में आदर्श भाषा कही जा सकती है।

७ लोक धर्म—रीतिकालीन कवियों के सामने तुलसी की लोक-धर्म भावना का पवित्र आदर्श न रह सका। मर्यादापुरुषोत्तम राम की ओर ध्यान न देकर उन्होंने जनमनरंजन कृष्ण के शृंगारी रूप को ही अपनी कविता का आधार बनाया और समाज की कल्याण की भावना से विमुख हो गये। रीति-काव्य मन बहलाने की वस्तु बन गया, जीवन को उन्नत बनाने के लिए संदेश न दे सका।

प्रश्न १३—'विहारी सतसई' की समालोचना करते हुए हिन्दी साहित्य में उसका स्थान निर्धारित कीजिए। (प्रभाकर १९५४)

अथवा

'विहारी रीतिकाल के प्रमुख कवि थे' इस मत की समीक्षा कीजिए। (प्रभाकर १९५३)

उत्तर—बिहारी रीति काल के सवश्रेष्ठ कवि माने जाते हैं। इस विषय पर हिन्दी साहित्य के कुछ आलोचको मे खूब वाद-विवाद चलता रहा। मिश्र-बन्धुओ ने 'हिन्दी नवरत्न' में बिहारी को देव से छोटा सिद्ध करने का प्रयत्न किया, जिस पर प० पद्मसिंह शर्मा ने बडी ही चटकीली शैली में वकीलो जैसी बहस करके बिहारी को देव से ही नही, रीतिकाल के सभी कवियो से श्रेष्ठ सिद्ध कर दिखाया। कृष्णबिहारी मिश्र ने तटस्थ आलोचक का दावा करते हुए एक पुस्तक लिखी—'देव और बिहारी'। इसमे देव को प्रथम स्थान और बिहारी को दूसरा स्थान दिया गया। इसका पूर्ण खण्डन करते हुए लाला भगवानदीन ने 'बिहारी और देव' नामक पुस्तक लिखी और एक बार फिर बिहारी की श्रेष्ठता सिद्ध हो गई। इस प्रकार के वाद-विवाद को यदि छोड दिया जाय, तो भी बिहारी में काव्य-कौशल का इतना चमत्कार है, जिससे उसे रीतिकाल का श्रेष्ठ कवि माना जा सकता है।

आचार्य शुक्ल ने 'हिन्दी साहित्य के इतिहास' में यद्यपि बिहारी के काव्य मे कुछ दोष भी ढूढे हैं, परन्तु उन्होने स्वीकार किया है कि 'भावो की समाहार शक्ति और भाषा की समास शक्ति जितनी बिहारी मे पाई जाती है उतनी अन्य कवियो में नही।" बिहारी के काव्य के विषय में इसी भाव का एक दोहा भी बहुत प्रचलित है—

सतसैया के दोहरे, ज्यों नावक के तीर।
देखन मे छोटे लगें घाव करें गम्भीर ।।

'गागर मे सागर' भरने की यह कुशलता बिहारी के दोहो में सब से प्रधान है। छोटे से छन्द में भावो का इतना विस्तार सचमुच प्रशंसनीय है। प० पद्मसिंह शर्मा ने 'बिहारी सतसई' की व्याख्या करते हुए अनेको दोहो के अनेक अर्थ निकाले हैं। 'बिहारी सतसई' पर पचासो टीकाएं लिखी जा चुकी हैं। इसमें गद्य तथा पद्य दोनो मे टीकाएं मिलती है। विभिन्न विद्वानो ने बिहारी के दोहो की भिन्न-भिन्न व्याख्याएं प्रस्तुत की हैं, जिससे अर्थ की गम्भीरता और व्यापकता का पता चलता है। उसी के साथ एक और गुण भी बिहारी का प्रसिद्ध है— हाव-भावो का सजीव चित्रण। अनुभावो के वर्णन मे बिहारी को अत्यन्त सफलता मिली है। एक उदाहरण लीजिए—

कहत नटत रीझत खिझत, हिलत मिलत लजियात।
भरे भौन मे करतु है, नखियन ही सों बात॥

इस दोहे में एक जनाकीर्ण भवन में नायक और नायिका प्रेम मिलन की सभी बातें आंखो ही आंखो मे कर लेते हैं। यह विस्तृत चित्र कितना हृदयाकर्षक है। इसी प्रकार के अनेक दोहे विहारी ने रचे हैं।

अधिकाश आलोचको ने विहारी के विरह-वर्णन पर आपत्ति की है और उसे दोष पूर्ण बताया है। इसमें कोई सन्देह नही कि बिहारी के विरह-वर्णन में अतिशयोक्ति अलकार का उपयोग किया गया है। विरह की ज्वाला के कारण 'गुलाब की शीशी का सूख जाना, सरदी के मौसम मे सखियो का रात्रि समय गीले वस्त्र करके विरहिणी को मिलना, वियोग की अग्नि में जलती हुई नायिका के श्वासो मे सरदी मे गरम हवाओ का चलना अथवा पडोसियो को रजाई न ओढने की आवश्यकता का अनुभव न होना' ऐसी बातें हैं जिनमें हृदय की मार्मिक अनुभूति का नाम तक नही मिलता। उचित वैचित्र्य तथा कल्पना की झूठी उड़ान मात्र को काव्यत्व कहा भी नही जा सकता। विहारी के विरह वर्णन में नि सन्देह इस प्रकार के दोष मिलते हैं। परन्तु कहीं-कही जहाँ सादगी के साथ और हृदय की भावना को लक्ष्य करके इस महान् कवि ने लिखने का प्रयत्न किया है, वहाँ विरह की वेदना प्रभावोत्पादक ढग से व्यक्त हुई है। एक दोहा लीजिए—

कागद पर लिखत ना बनत, कहत सदेस लजात।
कहि है सब तेरो हियो, मेरो हिय की बात॥

विहारी की केवल एक ही रचाना प्राप्त होती है और उसी के आधार पर उसका रीतिकाल का श्रेष्ठ कवि सिद्ध होना अपने आप में एक बडी वस्तु है। ७१९ दोहे लिखकर विहारी ने शृगारी कवियो में महत्वपूर्ण स्थान प्राप्त किया है। 'विहारी सतसई' यद्यपि लक्षण-ग्रन्थ तो नही कहा जा सकता क्योंकि इसमें रस, अलकार आदि के लक्षण नही दिए गए परन्तु सूक्ष्मतापूर्वक अध्ययन करने से यह बात स्पष्ट हो जाती है कि इस सरस ग्रन्थ की रचना रीति पद्धति पर ही हुई है। लेखक रीति काव्य की परम्पराओ से पूर्ण परिचित प्रतीत होता है। केवल लक्षण न देकर रीति-ग्रन्थो में वर्णित सभी विषयो के

उदाहरण 'बिहारी सतसई' में मिल जाते हैं। बिहारी ने "आचार्य" बनने का ढोंग भरना उचित नहीं समझा।

बिहारी की लेखनी में चमत्कारप्रियता का गुण है। रूप वर्णन करते समय बिहारी ने जहाँ कल्पना के रंग बिखेरे हैं, वहाँ अनेक दोहों में गणित, ज्योतिष, वैद्यक, पुराण, दर्शनशास्त्र, इतिहास आदि के पांडित्य का भी परिचय दिया है। इन विषयों को काव्योपयोगी बनाने में कवि की निपुणता दर्शनीय है। कहीं-कहीं भक्ति तथा नीति के दोहे भी मिलते हैं। दो उदाहरण देखिये—

१—कनक कनक ते सौ गुनी, मादकता अधिकाय।
उहि खाये बौराय जग, इहि पाए बौराय॥
२—मेरी भव बाधा हरो, राधा नागरि सोय।
जा तन की झाईं परत, स्याम हरित दुति होय॥

बिहारी की कविता में ब्रजभाषा का निर्दोष रूप चाहे न मिले, किन्तु जो अव्यवस्था साधारण रीति-कवियों की रचना में देखी जाती है, बिहारी उससे बचे हुए हैं। भाषा और भाव दोनों पर कवि का पूर्ण अधिकार है। भावाभिव्यंजना सशक्त है, शैली चमत्कारपूर्ण है। अलंकारों का प्रयोग भाषा और भाव दोनों के सौंदर्य में वृद्धि करने वाला है।

प्रश्न १४—भूषण की काव्य-विशेषताओं पर प्रकाश डालते हुए इस विषय पर विचार प्रकट करो कि वह राष्ट्रीय कवि थे या नहीं?

(प्रभाकर १९५१, १९५२, १९५४)

उत्तर—वीररस के श्रेष्ठ कवि भूषण रीति-कवि चिन्तामणि और मतिराम के भाई थे। उनके वास्तविक नाम के विषय में अभी तक कुछ ज्ञात नहीं हो सका। एक सोलंकी राजा ने इन्हें 'कवि-भूषण' की उपाधि प्रदान की थी, फिर उसी नाम से ये प्रसिद्ध हो गये। कहते हैं भूषण स्वाभिमानी बहुत थे। एक बार भावज ने जब भोजन के समय नमक मांगने पर निखट्टू होने का उपालम्भ दिया तो भूषण घर छोड़कर निकल भागे। देवी की आराधना अथवा अभ्यास के द्वारा ये कवि बन गये। अनेक राजाओं, महाराजाओं के पास गये, परन्तु वहाँ तो रंग ही दूसरा था। विलासिता का साम्राज्य भूषण की रुचि के

अनुकूल नहीं था। अत भूषण ने अन्त में महाराष्ट्र-शिरोमणि वीर शिवाजी के पास जाकर शरण ली। दोनों के स्वभाव में ही नहीं, उद्देश्य में भी एकता थी। यवन अत्याचारियों से पीडित हिन्दू जनता की रक्षा करने के लिये शिवाजी की तलवार और भूषण की लेखनी ने मिलकर जो अद्भुत काम किया, वह साहित्य और इतिहास दोनों में अमर रहेगा।

कुछ लोग भूषण को यवनों का निंदक और इस्लाम का शत्रु समझकर उसे साम्प्रदायिक कवि सिद्ध करने की चेष्टा करते हैं, जो अनुचित है। इसमें सन्देह नहीं कि भूषण ने मुसलमान सेनाओं और विशेष रूप से औरंगजेब का भद्दा चित्र उपस्थित किया है। उनकी भीरुता का उपहास ही नहीं, उनकी काली करतूतों का कच्चा चिट्ठा भी लिखा है। परन्तु यह सब उसे साम्प्रदायिक कवि सिद्ध नहीं करता। भूषण औरंगजेब-विरोधी अवश्य था, किन्तु मुसलमान-विरोधी कदाचित नहीं। भूषण की लेखनी से हुमायूं, शाहजहाँ और शेरशाह की प्रशंसा भी लिखी गई है, जो उक्त बात का समर्थन करती है। भूषण ने अत्याचारियों के विरुद्ध लेखनी उठाई थी। उसने आततायी मुसलमानों की निंदा की थी, जो सदा और सर्वत्र उचित है। संसार में औरंगजेब जैसे राक्षसों का दमन करने के लिए शिवाजी जैसे वीर पुरुषों की आवश्यकता है, यही सन्देश इस वीर रस के अमर कवि ने समाज को दिया। अत ये निःसन्देह राष्ट्रीय कवि थे।

स्वयं शिवाजी के उदार चरित्र के विषय में अनेक जनश्रुतियाँ प्रचलित हैं कि उन्होंने मुसलमान कन्याओं के सतीत्व की रक्षा की और उनका उचित सम्मान किया। अपने शासन में किसी मस्जिद को हानि नहीं पहुँचाई और न ही मुसलमानों की धर्म-पुस्तकों को जलाने का प्रयत्न किया। जब आश्रयदाता इतना उदार मानव हो, तो उसका आश्रित कवि भला कैसे साम्प्रदायिक होगा, यह बात विचारणीय है।

भूषण ने युद्धों का वर्णन बड़ा ही सजीव और रोमांचकारी किया है। मुसलमानों की पराजय और शिवाजी की वीरता के दृश्य अत्यन्त ही प्रभावशाली हैं। 'शिवराज भूषण' चूंकि रीति-परम्परा में लिखा गया काव्य है, अत अलंकारों के लक्षण देकर भूषण ने उदाहरण रूप से शिवाजी की प्रशंसा लिखी है। यमक का यह उदाहरण बहुत ही प्रसिद्ध है—

ऊँचे घोर मन्दर के अन्दर रहन वारी
ऊँचे घोर मन्दर के अन्दर रहाती हैं। आदि

यद्यपि 'वीरगाथाकाल' में भी कवियो ने अनेक वीरगाथायें लिखी थीं, परन्तु उनमें वीररस का सुन्दर परिपाक नही हो सका। उनमे राष्ट्रीय भावना का अभाव था। भूषण ही सर्वप्रथम वीर रस के कवि के रूप मे प्रकट हुए। शिवाजी की मृत्यु के पश्चात ये 'छत्रसाल' के पास गए थे, जो शिवाजी के समान ही हिन्दू जाति के रक्षक माने जाते हैं। कहते हैं, एक समय भूषण की पालकी को उठाने के लिए स्वय महाराज ने कन्धा लगा दिया था। इस पर कवि ने कहा था :—

'साहू को सराहौं कि सराहौं छत्रसाल को'

भूषण ने 'छत्रसाल दशक' और 'शिवाबावनी' भी लिखी हैं। इनकी भाषा में तोड़ मरोड़ का दोष आ गया है। क्योंकि व्रजभाषा जैसी कोमल भाषा को वीर रस के उपयोगी बनाने में कवि को यह विकार लाना पडा। स्थान-स्थान पर ओज लाने के लिए फारसी-अरबी शब्दो के प्रयोग करने से भी सकोच नही किया गया।

प्रश्न— "किसी कवि का परिमाण नहीं अपितु परिणाम उसे श्रेष्ठ सिद्ध करता है।" शुक्ल इस उक्ति को ध्यान मे रखते हुए देव व बिहारी की तुलनात्मक आलोचना कीजिए।

या

देव व बिहारी की तुलना करते हुए सिद्ध कीजिए कि आप किसको रीतिकाल का प्रतिनिधि कवि मानते हैं और क्यो ?

उत्तर :—देव व बिहारी दोनो ही रीति काल के प्रसिद्ध तथा महान कवि हैं। इन दोनो कवियो को लेकर बहुत समय तक आलोचको में मतभेद रहा है कि किस कवि को रीतिकाल का प्रतिनिधि सिद्ध किया जाय। वास्तविकता तो यह है कि कवियों की तुलनात्मक आलोचना करके किसी को छोटा या किसी को बडा बताना उचित दृष्टिकोण नही है। उसका एक मात्र कारण है कि प्रत्येक कवि मे अपनी स्वय की विशेषताएँ होती है जो कि अन्य कवियो में नही होती। प्रत्येक कवि का अपना व्यक्तित्व होता है। वह व्यक्तित्व अन्य

में नही हो सकता है। तुलसी यदि अपने स्थान पर ठीक तो ग्रामीण कवि "भोला" अपने स्थान पर उचित है। फिर यह कहना कि तुलसी की हर पक्ति श्रेष्ठ है और किसी अन्य कवि की प्रत्येक पक्ति निकृष्ट है यह भी भूल है। कहने का तात्पर्य यह है कि तुलनात्मक दृष्टिकोण तो उत्तम है परन्तु किसी कवि को गिराना तथा किसी कवि को उठ ना उचित नही।

देव व बिहारी का झगडा हमारे आलोचना साहित्य का प्रसिद्ध झगडा है। इन दोनो की तुलना प्रथम बार मिश्र बन्धुओ ने 'हिन्दी नवरत्न' नामक पुस्तक में की। उपरान्त इन दोनो कवियो को लेकर जो विवाद उपस्थित हुआ वह हिन्दी साहित्य में १० वर्ष तक रहा। कभी कोई 'बिहारी व देव' लिख लाता था तो कभी कोई 'देव व बिहारी'। आलोचक प्रवर प० पद्मसिह शर्मा ने 'बिहारी' पुस्तक लिखकर कविवर बिहारी को देव से ही नही अपित तुलसी सूर, आदि हिन्दी कवियो से तथा शेक्सपीयर, मिल्टन आदि अग्रेजी कवियो से, गालिब' अकबर इलाहाबादी आदि उर्दू कवियो से श्रेष्ठ सिद्ध कीया। उन्होने कहा कि "बिहारी जी बूरे की रोटी है जिधर से भी काटो उधर से ही मीठी"। ब बू राधाकृष्ण दास ने बिहारी के विषय में कहा कि "यदि सूर सूर्य है तुलसी चन्द्र है, केशव नक्षत्र है तो बिहारी पीयूषवर्षी मेघ है जिनके माते ही सूर्य, चन्द्र तारे छिप जाते हैं मन भरपूर नाचने लगता है कवि कोकिल कुहकने लगता है आदि"।

उधर इसी प्रकार देव को मिश्र बन्धुओ ने आचार्य व महाकवि सिद्ध किया तथा उनको रीतिकाल का प्रतिनिधि कवि सिद्ध किया। लाला भगवान दीन 'दीन' तथा कृष्ण बिहारी मिश्र ने भी देव को कही कही तो हिन्दी साहित्य का श्रेष्ठतम कवि स्वीकार कीया।

आचार्य प्रवर प० रामचद्र शुक्ल ने इन दोनो कवियो के विषय में निर्णय देते हुए कहा था कि "किसी कवि का परिमाण उसे श्रेष्ठ सिद्ध करता है" वास्तव में यह एक कसौटी है जिस पर आधारित तुलना उपस्थित की जा सकती है।

जहाँ तक इन दोनो कवियो के साम्य का प्रश्न है यह तो स्पष्ट है ही कि दोनों ही रीतिकाल के कवि हैं तथा दोनो ही श्रृङ्गार रस के श्रेष्ठ कवि हैं।

दोनो को ही राजाश्रय प्राप्त था। दोनो का ही मान था। परन्तु दोनो कवियो में अन्तर अत्याधिक है।

प्रथम तो दोनो कवियो में यह अन्तर है कि बिहारी ने केवल एक पुस्तक लिखी जिसे हम "बिहारी सतसई" कहते हैं। इसमें ७१९ दोहे हैं। देव ने ७५ पुस्तकें लिखी। शुक्ल देव द्वारा रचित ५५ पुस्तकें स्वीकार करते हैं। २५ पुस्तकें तो उपलब्ध भी है। इस दृष्टिकोण से निःसन्देह देव बड़े कवि प्रतीत होते हैं परन्तु देव की ये पुस्तके ऐसा प्रतीत होता है प्रथक रूप में नही रचित हुई अपितु जब कभी वे किसी आश्रय दाता के पास गये ४-६ पद्य नये रच कर कुछ पुराने पद्यो में से लेकर एक नई पुस्तक तैयार कर देते थे फलतः पुस्तको का ढेर होते हुए भी उनकी पुस्तको में नवीनता व मौलिकता की कमी है। बिहारी सतसई पर अब तक ५० टीकायें हो चुकी हैं व देव बहुत कम आलोचको ने लिखा। इससे बिहारी की श्रेष्टता व लोकप्रियता सिद्ध होती है।

द्वितीय बिहारी ने केवल एक दोहा छन्द अपनाया जबकि देव ने विविध छन्दो को अपनाया। उनके कवित्त, सवैये, दोहे आदि सभी छन्द लिये! फिर भी बिहारी के दोहो मे जो उक्तिवैचित्र्य तथा भावो की गहराई मिलती है वह देव में कहाँ। देव की एक पूर्ण पुस्तक मिलकर भी बिहारी के एक दोहे की तुलना में खरी नही उतरेगी। उदाहरण के रूप में बिहारी का निम्नलिखित दोहा देखिये :—

'पलन पीक, काजर अधर दीयो महावर भाल।
आज मिले सो भली भई, भले बने हो लाल॥

इस दोहे की पृष्ठ भूमि मे एक पूरी कहानी पूर्ण कार्य व्यापार तथा व्यंजना लक्षित होती है। उधर इस दोहे की तुलना में देव की पुस्तक भी नही ठहर सकती।

तृतीय देव ने रीति पद्धति पर अपनी जाति विलास, भाव विलास, कुशल विलास आदि पुस्तकें लिखी जिनमे अलंकार रस नायिका भेद, आदि उपस्थित किये, पर बिहारी ने कही भी रीति पद्धति पर कुछ नही लिखा। इसकी ओर बिहारी की दृष्टि परोक्ष रूप में इन्ही अलकारो आदि पर थी। इसलिये उनके एक २ दोहे में १६-१६ अलकार आ चुके हैं। उदाहरण के लिये असंगात

अलंकार दे दिये।

"दृग उरझत टूटत कुटुम, जुरत चतुर चित प्रीति।
पड़त गाठ दुरजन हिये दई नई यह रीति॥

चतुर्थ देव चमत्कारी वादी कवि थे। वे अलंकारों को कविता में बहुत स्थान देते थे। अनुप्रासों से उनका काव्य लदा पड़ा है। आचार्य शुक्ल ने कहा है। "कवि देव बड़े २ मजमूनों का हौसला बांधते थे परन्तु उनकी कविता अनुप्रास के दलदल में फसकर छकड़ा बन जाती थी" सही है। दूसरी ओर विहारी तो अलकारों को "दरपन के से मोरचा" या "हडापग दोहान को भूषण पापदाज" समझते थे तभी तो उनके काव्य में उक्तिवैचित्र्य और भवित व्यंजना अवश्य हैं परन्तु कोरा चमत्कार वाद नहीं। इस दृष्टिकोण से विहारी श्रेष्ठ ठहरते हैं।

इसका अर्थ यह नहीं कि देव में कुछ नहीं था। देव हमारे सामने आचार्य रूप में आते हैं जबकि विहारी नहीं। निःसन्देह 'जाति विलास' नामक पुस्तक लिखकर उन्होंने नायिका भेद की नवीनतम परिपाटी डाली। यह दूसरी बात है कि उनके बताये मार्ग पर आगे आचार्य ने ध्यान नहीं दिया इसी प्रकार उन्होंने 'छल' नायका एक और सचारी भाव दिया। भले ही इसे आचार्य द्वारा स्वीकार नहीं किया गया।

फिर जहाँ कहीं भी देव अनुप्रासों से बचकर आये हैं वहाँ तो वे वास्तव में श्रेष्ठ हैं। जैसे कि निम्नलिखित कवित्त से प्रतीत होता है :—

डार द्रुम दलना, बिछौना नवपल्लव के
सुमन झगूला सोहे तन छवि भारी है।
पवन झुलावे केकी कीर बहरावे 'देव'
कोकिल हलावें हुलसावे करतारी है॥
पूरित पराग सों उतारो करें राई लोन
कंजकली नायिका लतानि सिरसारी है।
मदन महीप जू को बालक वसत ताहि
प्रातहि जगावत गुलाब चटकारी दें॥

तात्पर्य यह है कि देव व विहारी अपने २ स्थान पर श्रेष्ठ हैं यदि परिमाण के दृष्टिकोण से देखा जाय तो विहारी देव से ऊँचे उठे हुए ।

विहारी जैसी उक्तिवैचित्र्य, चित्र ममता, भाव व्यजना, रस व्यजना आदि देव में नहीं मिलेगी। परन्तु कही २ देव विहारी को मात अवश्य कर गये।

जहाँ तक यह प्रश्न है कि इन दोनो मे रीतिकाल का प्रतिनिधि कवि कौन है निःसदेह इस दृष्टि से विहारी ही कसौटी पर खरे उतरते हैं। यह ठीक है कि रीतिकाल के प्रतिनिधि कवि बनने के लिये यह आवश्यक है, कवि रीति बद्ध काव्य लेकर आया हो और विहारी ऐसा नही कर सके। परन्तु विहारी की दृष्टि परोक्ष रूप में अलंकार रस, नायिका भेद, प्रकृति वर्णन की ओर थी। इसलिए उनके काव्य मे ये सभी वस्तुएँ मिल जायेंगी जो कि रीति बद्ध कविता के लिए आवश्यक हो फिर विहारी व्यजना, रस ममता, चित्र ममता आदि के लिए भी श्रेष्ठ हैं। अतएव विहारी ही रीतिकाल के प्रतिनिधि कवि ठहरते हैं।

प्रश्न १५—निम्नलिखित पर टिप्पणी लिखिये—

चिन्तामणि, मतिराम, जसवन्तसिंह, देव, रीति बद्ध काव्य' रीति बद्ध, काव्य, पद्माकर, आलम, घनानन्द।

चिन्तामणि :—चिन्तामणि का जन्म सं० १६६६ में थानपुर के पास तिकवापुरा गाव में हुआ था। इन्होने कवि-कुल-कल्पतरु, काव्य-प्रकाश, काव्य विवेक रामायण और छन्द विचार—ये पाच पुस्तकें लिखी।

रामचन्द्र शुक्ल महाकवि चिन्तामणि से ही रीतिकाल का प्रारम्भ मानते हैं। कारण कि आपसे पहले केशव ने जिस अलकार सम्प्रदाय का प्रतिपादन किया था वह निरर्थक रहा। आप ही से रस सम्प्रदाय हिन्दी साहित्य में आया। रीतिकाल एक क्रम बद्ध रूप मे आगे बढा। इसके साथ-साथ शृङ्गार रस की जिस भयानक बाढ़ का दिग्दर्शन हमें रीतिकाल में मिलता है वह इन्ही चिन्तामणि से प्रारम्भ हुआ। आप ही ने प्रथमवार रस अलकार आदि की परिपाटी डाली।

आप अनेक राज दरबारो में रहे। बाबू रुद्र साहि सोलकी, शाहजहाँ बादशाह, मकरन्द शाह, जैनती अहमद शाह आदि ने आपको पुरस्कार रूप में बहुत सा दान दिया। "छन्दविचार" नामक पुस्तक रूप में आपने पिंगल के अनुकरण पर छोटा सा छन्द ग्रन्थ लिखा। रामायण में नाना प्रकार के छन्दो में एक वर्णन शृङ्गार-युक्त रक्खा। इनके अन्य तीन ग्रन्थ काव्यांगो पर लिखे

गये। जिनमे काव्य प्रकाश तथा काव्य विवेक अलकारो के ग्रन्थ हैं। आपकी भाषा यद्यपि ललित ब्रज भाषा हैं परन्तु अनुप्रास युक्त है। विषय यद्यपि वही भक्तिकाल के राधा कृष्ण हैं परन्तु शृङ्गार का वर्णन ही इनका प्रमुख विषय है। यदा कदा अपने आश्रयदाताओ पर भी आपने कलम चलाई।

मतिराम—मतिराम का जन्म सम्वत् १६७४ में तिकवापुर गाँव मे हुआ था। आप चिन्तामणि तथा भूषण के भाई प्रसिद्ध थे। आप भी अपने बडे भाई की भाति अनेक राज दरबारो मे गये तथा सुन्दरतम काव्य लिखे। सबसे अधिक आप बू दी के महाराज भावसिंह जू के यहाँ रहे। इन्ही के लिए आपने अपना प्रसिद्ध ग्रन्थ 'ललित ललाम' लिखा। आप शम्भुनाथ सोलकी के दरबार में भी गये थे। ज ाँ आपने 'छन्दसार' ग्रन्थ लिखा। आपने सबसे प्रसिद्ध ग्रन्थ 'रसराज' लिखा। साहित्य सार, लक्षण शृ गार व मतिराम सतसई तीन ग्रन्थ अ य और भी लिखे।

'ललित ललाम' एक अलकारिक ग्रन्थ है जिसमें सभी अलकारो को लेकर भावसिंह जी की प्रशसा की गई है। 'छन्दसार' पिंगल शास्त्र का हिन्दी रूप है। रसराज मे रसो का निरूपण है तथा साहित्य सार व लक्षण शृङ्गार दोनो ही आपके लाक्षणिक ग्रन्थ हैं। मतिराम 'सतसई' के दोहे बिहारी सतसई के टक्कर के हैं। मतिराम की सबसे बडी विशेषता यह है उनमें कृत्रिमता नही है। उनकी सी भाषा तो रीतिकाल में सिवाय पद्माकर के कही नही मिलती।

जसवन्त सिंह :—ये मारवाड के प्रसिद्ध हिन्दू राजा थे। ये अपने भाई अमरसिंह के स्थान पर शासक बने थे। इनके दरबार में साहित्य की बड़ी चर्चा रहा करती थी। ये साहित्य के स्वय भी बडे मर्मज्ञ थे। आपने अनेक ग्रन्थ लिखे। आप का जन्म स० १६८३ मे तथा मृत्यु १७३५ में हुई।

रीतिकाल मे यदि किसी को आचार्य का पद दिया जा सकता है तो केवल महाराज जसवन्त सिंह को। आपका सबसे प्रसिद्ध ग्रन्थ 'भाषा भूषण' है। इस ग्रन्थ का आपने 'चन्द्रलोक' की छाया पर लिखा है। एक ही दोहे में अलकार का लक्षण व उदाहरण दोनो ही दिये हैं। इसी एक ग्रन्थ के कारण आप हिन्दी साहित्य में प्रसिद्ध हो गये। इनके अनुकरण पर हिन्दी में और भी

अनेक पुस्तकें लिखी गई। इस पुस्तक के अलावा आपने और भी अनेक ग्रन्थ लिखे जिनमें अपरोक्ष सिद्धान्त, अनुभव प्रकाश, आनन्द विलास, सिद्धान्त बोध आदि प्रसिद्ध हैं। वास्तव मे ये आचार्य हैं।

देव—देव इटावा के रहने वाले धनाढ्य ब्राह्मण थे। इनका जन्म सम्वत् १७३० मे हुआ था। आपने अपना प्रसिद्ध 'ग्रन्थ विलास' १६ वर्ष की आयु मे लिखा था। इनके जीवन के विषय मे बहुत कम मिलता है। इनकी लिखी ७५ पुस्तकें कही जाती हैं। शुक्ल जी ने ५५ मानी हैं जब कि अब तक २५ मिली हैं। इनकी प्रवृत्ति थी कि ये कुछ इधर से उधर लेकर नई किताब बना दिया करते थे। इसी कारण इतनी किताबें बन गईं।

इनकी निम्नलिखित पुस्तकें प्रसिद्ध हैं—अष्टयाम व भाव विलास आजम शाह के लिए लिखे। 'भवानी विलास' भवानी दत्त वैश्य के लिये लिखे। 'कुशल विलास' कुशलसिंह के लिए बनाया। प्रेम चन्द्रिका की रचना राजा उद्योत के लिए की। 'रस विलास' राजा भोगीलाल के लिये बनाया। सुजान विनोद सुजानसिंह के लिए लिखा। 'जाति विलास' में अपने भ्रमण का अनुभव दिया। कुछ पुस्तकें वैराग्य पर भी बनाई।

कवि देव को बहुत आलोचक कवि व आचार्य दोनों ही मानते हैं। परन्तु शुक्ल के अनुसार कवि देव आचार्य नहीं कवि थे। यह अवश्य था कि उन्होंने आचार्य बनने का प्रयत्न किया था उसमें वे सफल न हुए।

आपने रस श्रृङ्गार अपनाया है सयोग व वियोग दोनों ही आपने लिखे। छन्द में भी विविधता है। आपको मिश्र बन्धुओं ने हिन्दी साहित्य में तृतीय स्थान दिया है। हिन्दी साहित्य में दस वर्ष तक यह झगडा रहा कि देव बड़े हैं या कवि बिहारी। अनेकों ने देव को बडा बताया तथा अनेकों ने कवि बिहारी को। वास्तव मे कवि बिहारी ने एक पुस्तक लिखकर जितनी प्रसिद्धता प्राप्त की उतनी कवि देव ने नहीं। शुक्ल जी ने यह झगडा यह कह कर समाप्त किया था कि किसी कवि का परिमाण नहीं परिणाम उसे बड़ा बनाता है। उनके दृष्टिकोण से बिहारी बडे हैं परन्तु फिर भी देव में बिहारी से कुछ तो विशेषता है ही। देव की भाषा व्रज है तथा उनका क्षेत्र विशाल है।

रीति बद्ध काव्य—रीति बद्ध काव्य वह काव्य है जिसके अन्त 'त रीति ग्रन्थ

की रचना की गई। रीति का अर्थ है काव्य व्याकरण। काव्य व्याकरण में काव्य के लक्षण, अलंकार, छन्द, रस, नायिका भेद, नखसिख वर्णन, षट्ऋतु वर्णन, बारहमासी वर्णन आदि आते हैं। जिन कवियो ने इन वर्णनो को स्पष्ट रूप से तथा सपी रूप में लिखा वे रीति बद्ध कविता करने वाले कवि कहे जायेंगे। इन कवियो मे भूषण, देव, कालिदास, सुखदास, जसवन्तसिंह, मतिराम चिन्तामणि, इलह श्रीनाथ आदि कवि आते। इनसभी कवियो ने स्पष्ट रूप से रीति बद्ध कविता की। उदाहरण के रूप में भूषण द्वारा रचित शिवराज भूषण ऐसी ही रचना है। इसमें ऊपर एक दोहे में अलकार की परिभाषा तथा नीचे कवित्त या सवैये में अलकार का उदाहरण दिया हुआ है। इसी प्रकार जसवत सिंह द्वारा रचित भाषा भूषण भी ऐसा ही काव्य है।

रीति बद्ध काव्य—रीति काल में लिखा हुआ वह काव्य जिसमें कि रीति अर्थात् काव्य व्याकरण के लिए जो कविता नही लिखी गई। उदाहरण तथा कवि विहारी, रसलीन, आलम, घनानन्द, बोधा आदि वे कवि थे जिन्होंने कि रीति ग्रन्थ नही लिखे अपितु स्वतन्त्र कविता की। आलम द्वारा लिखित-आलम केलि काव्य इसी कोटि का काव्य है। इसमें कृष्ण भक्ति या शृङ्गार आदि तो है पर अलकार आदि के लक्षण नही लिखे गये। इसी प्रकार घनानन्द द्वारा लिखित 'सुजान विनोद' भी ऐसा ही काव्य है। इसमें काव्य के लक्षण नहीं हैं।

पद्माकर—पद्माकर तैलग ब्राह्मण थे। इनका जन्म बादे नामक स्थान में सं० १८१० में हुआ। ये कई राजाओ के आश्रय रहे। इनके प्रमुख आश्रय दाता थे बादा के नवाब, अवध के बादशाह, सितारा के महाराज, जयपुर-राजा, जगतसिंह तथा ग्वालियर के महाराज दौलतराव सिंधिया। जीवन के अन्तिम समय में इनके कोढ हो गया था इस कारण ये गगा के किनारे कानपुर चले गये। वहीं इनकी मृत्यु स० १८९० में हो गई।

इनकी रचनायें निम्नलिखित प्रसिद्ध हैं।

जगद्विनोद, पद्माभरण, हिम्मत विरुदावली, प्रबोध पचासा, गगालहरी।

इन्होंने अनुवाद भी किये। अनुवादो मे 'राम रसायन' तथा हितोपदेश प्रसिद्ध है।

जगद्विनोद पुस्तक एक काव्य ग्रन्थ है तथा जयपुर के महाराज जगतसिंह के लिए लिखा गया था। इसमें अलंकारो व रसो का वर्णन है तथा अत्यन्त प्रसिद्ध काव्य है। पद्माभरण भी इनका काव्य के लक्षणो का ग्रन्थ है। इसमें अलकारो का निरूपण है। 'हिम्मत बहादुर विरुदावली' इनका वीररस से परिपूर्ण काव्य है तथा यह महन्त अनूपगिरि या हिम्मत बहादुर के लिए लिखा था। गगा लहरी इनकी अत्यन्त प्रसिद्ध रचना है जो कि गंगा की प्रार्थना पर लिखे, कवित्त और सवैयो से युक्त है।

इस कवि की भाषा अत्यन्त सरल तथा सुन्दर एवम् सही है कही भी भाषा से खिलवाड नही की। इनकी भाषा मतिराम से बहुत मिलती है—

घनानन्द—ये किसी नवाब के यहाँ मीर मु शी थे। इसी नवाब के यहाँ वैश्या थी जिसका नाम सुजान था। ये उसी पर मोहित थे। परन्तु सुजान ने इनका साथ न दिया व नवाब ने सुजान के कारण ही नाराज होकर इन्हें निकाल दिया ये वृन्दावन आकर भजन करने लगे।

इनका सबसे प्रसिद्ध काव्त सुजान विनोद है। इन्होने अपने इष्ट देव कृष्ण का नाम ही सुजान रख लिया तथा उनके ऊपर अत्यन्त मार्मिक हृदय स्पर्शी, सुन्दरतम सवैयो की रचना की। इनके काव्य में भाषा सौष्ठव, भाव प्रभावोत्पादक मार्मिक एवम् रस के परिपूर्ण हैं ये रस सृजन करने के सिद्ध-हस्त कवि थे।

आलम—यह आजमशाह के दरबारी कवि थे। पहिले ये ब्राह्मण थे परन्तु उपरान्त में एक शेख नामक रगरेजिन पर मोहित होकर मुसलमान बन गये। तथा उससे विवाह कर लिया। कहते हैं कि एक दिन कही जा रहे थे तो एक पनिहारिन को देख कर इन्होने दोहे की रचना की। "कनक छरी सी कामिनी काहे को कटि छीन"। परन्तु एक ही पंक्ति बन पाई। इन्होने इसको पगड़ी मे बाध लिया। यह पगड़ी रगरेजिन शेख के पास रगने को दे दी। उसने इसकी पूर्ति इस प्रकार कर दी—

"कनक छरी सी कामिनी काहे को कटि छीन,
कटि को कंचन काटि के कुचन मध्य धर दीन॥

इसी से प्रसन्न होकर इन्होंने उससे ब्याह कर लिया तथा मुसलमान बन गये। इनकी सबसे प्रसिद्ध पुस्तक 'आलम केलि' है। इसमें कवियत्री शेख की कवितायें भी हैं। यह भी कृष्ण के सौन्दर्य, लीलायें गोपियों के विरह, उद्धव सन्देश आदि के कवित्तो से युक्त है। इस कवि की भाषा जटिल है, परन्तु इसमें भाव सौंदर्य, मार्मिकता, कल्पना, तथा अलंकार योजना सुन्दर है। कहीं-कहीं तो अनुप्रास अतीव श्रेष्ठ है।

प्रश्न १६—खड़ी बोली के गद्य पर प्रकाश डालो। (प्रभाकर १६५३)

अथवा

हिन्दी गद्य के विकास में ईसाइयो ने किस प्रकार योग दिया ?

(प्रभाकर १६५५)

उत्तर—आधुनिक काल को 'गद्यकाल' का नाम दिया जाता है, क्योंकि इसी काल में ही गद्य का परम विकास हुआ। इससे पूर्व यद्यपि गद्य की पुस्तकें थोड़ी बहुत मिलती अवश्य हैं, किन्तु साहित्यक दृष्टि से वे महत्वपूर्ण नहीं। हिन्दी साहित्य के प्रारम्भिक तीन कालो मे पद्य की ही प्रधानता रही। उसका प्रधान कारण छापेखाने का अभाव था। अग्रेजो के भारत आने पर प्रेस और यातायात के साधनो की सुविधा मिली। स्वय अग्रेजी के गद्य साहित्य ने प्रेरणा दी तथा शान्तिपूर्ण राजनीतिक व्यवस्था ने भी साहित्य के विकास मे योग दिया। इन कारणो से हिन्दी गद्य की ओर ध्यान दिया जाने लगा।

ऐतिहासिक दृष्टि से यदि देखा जाए, तो सब से पहले कुछ पट्टे और परवाने राजस्थानी गद्य के उदाहरण कहे जा सकते हैं। इसके पश्चात् गोरखनाथ की लिखी पुस्तको का नाम लिया जाता है, जिनकी भाषा व्रज है। किन्तु भाषा अत्यन्त अव्यवस्थित है। गोस्वामी गोकुलनाथ की दो पुस्तकें भी व्रज भाषा गद्य में उल्लेखनीय हैं। उनके नाम हैं, (१) दो सौ वैष्णवो की वार्ता, (२) चौरासी वैष्णवो की वार्ता। उनकी भाषा भी अशुद्ध और अपरिमार्जित है। नाभादास का 'अष्टयाम' एवं 'वैकुण्ठमणि' की दो पुस्तकें 'अगहन माहात्म्य' और वैशाख माहात्म्य' भी व्रज भाषा गद्य में मिलती हैं। 'नासिकेतोपाख्यान' नामक पुस्तक के लेखक का नाम ज्ञात नहीं हो सका। इन

पुस्तकों के अतिरिक्त रीति काल में अनेक पुस्तकों की टीकाएं ब्रजभाषा में लिखी गई मिलती हैं, जो अधिक क्लिष्ट होने के कारण साहित्य में महत्व नहीं रखती।

खड़ी बोली में गद्य रचना तो पुराने समय से होने लगी थी। १२ वीं सदी में हेमचन्द्र के व्याकरण में भी कुछ दोहे खड़ी बोली की झलक प्रस्तुत करते हैं। अमीर खुसरो को खड़ी बोली का प्रथम कवि माना ही जाता है। परन्तु गद्य में खड़ी बोली का प्रयोग पश्चात् की वस्तु है। अकबर के शासन काल में गंग कवि ने 'चन्द छन्द बरनन की महिमा' नामक पुस्तक खड़ी बोली गद्य में लिखी। जटमल की 'गोरा बादल की कथा' भी उल्लेखनीय पुस्तक है। पटियाला-नरेश के कथावाचक रामप्रसाद निरंजनी ने 'भाषा योग वासिष्ठ' नामक ग्रंथ अत्यन्त ही परिमार्जित खड़ी बोली में लिखा। दौलतराम के 'जैन पद्म पुराण' की भाषा निरंजनी की भाषा से बहुत निम्न कोटि की है। इन प्रारम्भिक रचनाओं द्वारा खड़ी बोली गद्य का श्रीगणेश हो गया था। उसी समय अंग्रेजों ने भी शासन कार्य चलाने के लिए सं० १८६० में कलकत्ते के फोर्ट विलियम कालिज की स्थापना की और उसमें देशी भाषाओं के अध्ययन-अध्यापन का प्रबन्ध किया। लल्लूलाल और सदल मिश्र इसी कालिज के हिन्दी अध्यापक थे। जिन्होंने जान गिलक्राइस्ट की प्रेरणा से क्रमशः 'प्रेम सागर' और नासिकेतोपाख्यान' नामक पुस्तकें खड़ी बोली गद्य में लिखीं।

कुछ विद्वान् खड़ी बोली गद्य का जन्म अंग्रेजों की प्रेरणा से मानते हैं। परन्तु फोर्ट विलियम कालिज की स्थापना से पहले सदासुखलाल और सैयद इंशा अल्ला खां जैसे लेखक बिना किसी की प्रेरणा के खड़ी बोली गद्य लिख रहे थे। सदासुखलाल के 'सुखसागर' की भाषा बहुत ही सुन्दर और शुद्ध है। फारसी-अरबी शब्दों का बहिष्कार किया गया है। इसी प्रकार इंशा अल्ला खां ने 'रानी केतकी की कहानी' लिखी। इस में लेखक ने शुद्ध 'हिन्दी' का प्रयोग करने का प्रयत्न नहीं किया है। फिर भी फारसी का प्रभाव वाक्य-विन्यास

से स्पष्ट झलक पडता है। भाषा में मुहावरे और उर्दू की सी चुलबुलाहट भी मिलती है। तुकान्त शैली का प्रयोग भी किया गया है। लल्लूलाल की भाषा पर व्रज भाषा की छाप है। उनकी शैली कथावाचकों की सी है परन्तु फारसी-अरबी के शब्दो का प्रयोग उस में नही है। सदल मिश्र की भाषा अपेक्षाकृत अधिक शुद्ध है। यद्यपि इन पर पूर्वी प्रभाव स्पष्ट है, फिर भी भाषा में चलता पन और व्यावहारिकता आ गई है। इन 'चार लेखको' को हिन्दी द्य का 'प्रतिष्ठापक' समझा जाता है।

खडी बोली गद्य के प्रचार में ईसाई पादरियो तथा आर्यसमाज के कार्य-कर्त्ताओ का भी बडा हाथ रहा है। ईसाई-मत प्रचार के उद्देश्य से ईसाइयो ने अनेक प्रेस खोले और अपनी धर्म पुस्तको के अनुवाद छपवाए। इन की भाषा शुद्ध खडी बोली थी। उर्दू के शब्दो तक का उन में व्यवहार छोड़ा जाता था। उन पुस्तको को थोडे मूल्य पर बेच कर तथा अनेक मिशन स्कूलो की स्थापना करके ये लोग अपना उद्देश्य पूरा कर रहे थे। स्कूल बुक-सोसाइटियो की स्थापना से अनेक पाठ्य पुस्तकें हिंदी में प्रकाशित की गई। इस प्रकार यद्यपि प्रधान उद्देश्य उन लोगो का मत-प्रचार ही था, तथापि हिन्दी गद्य को निखारने का भी अवसर मिलता रहा। इन इसाइयो के बढते हुए धर्म-प्रचार को रोकने के लिए गुजरात में स्वामी दयानन्द तथा बगाल में राजा राममोहन राय का जन्म हुआ। इन दो महान् सुधारको ने हिन्दू समाज की त्रुटियो को दूर करने का बडा प्रशसनीय प्रयत्न किया। आर्य समाज और ब्रह्मसमाज की स्थापना करके इन दो महापुरुषो ने ईसाई मत के प्रचार को रोका। स्वामी दयानन्द सरस्वती स्वय गुजराती होने पर भी हिन्दी के लेखक बन गए। उनका 'सत्यार्थ प्रकाश' हिन्दी में लिखा हुआ है। नए उत्साह में भर कर आर्य-समाजियो ने पजाब और उत्तरप्रदेश मे हिन्दी के प्रचार मे बडा योग दिया।

उसी समय शिक्षा-विभाग में हिन्दी-उर्दू का प्रश्न उठ खडा हुआ। सर सैयद महमद मुसलमानो के प्रतिनिधि थे और उर्दू के पक्षपाती। अदालती भाषा उनके प्रयत्नो से उर्दू हो चुकी थी। अब वे स्कूलो में से हिन्दी को निकालने की चेष्टा कर रहे थे। सौभाग्य से राजा शिवप्रसाद सितारे-हिन्द

शिक्षा इन्स्पेक्टर नियुक्त होकर आए और उन के प्रयत्नो से हिंदी को स्कूलो मे स्थान मिल गया। उन्होने स्वयं 'राजा भोज का सपना' जैसी पुस्तकें सुन्दर और सरल हिंदी में लिखी किन्तु शीघ्र ही मुसलमानो को प्रसन्न करने के उद्देश्य से वे उर्दू-मिश्रित हिन्दी के ऐसे पक्षपाती बने कि लिपि को छोड कर कुछ भी हिन्दी नही रह गया। उनकी उर्दू प्रधान भाषा के विरोध मे राजा लक्ष्मणसिंह ने संस्कृतनिष्ठ हिन्दी का व्यवहार आरम्भ कर दिया। उनका 'शकुन्तला नाटक, इसी शैली मे लिखा गया। हिन्दी जगत् के सामने किसी एक निश्चत्र गद्य शैली का अभाव था। इस अभाव की पूर्ति भारतेन्दु हरिश्चन्द्र ने आकर की। उन्होने न तो उर्दू प्रधान शैली अपनाई और न ही संस्कृत के कठिन शब्दो का प्रयोग किया। साधारण रूप से प्रचलित सरल शब्दावली को ही उन्होने अपने गद्य का आधार माना और इस प्रकार विवाद का अन्त किया।

भारतेन्दु युग मे हिन्दी गद्य का बहुमुखी विकास आरम्भ हो गया। द्विवेदी युग मे उसे व्याकरण के नियमो से जकड कर परिष्कृत कर दिया गया। 'प्रसाद युग' मे नाटक, उपान्यास, आलोचना, निबन्ध आदि द्वारा श्रेष्ठ लेखको ने हिन्दी गद्य को प्रौढावस्था मे पहुँचा दिया। इस प्रकार आज हिन्दी गद्य का विकास पूर्ण गति से हो रहा है।

प्रश्न १७—'भारतेन्दु युग की प्रधान विशेषताओ का परिचय दो।

या

'बाबू हरिश्चन्द्र ही आधुनिक युग के प्रवर्तक है, इस उक्ति को सिद्ध करो।

उत्तर—'भारतेन्दु युग' आचार्य शुक्ल के मतानुसार सं० १९२५ से १९५० तक है। स० १९०७ मे काशी में बाबू हरिश्चन्द्र का जन्म हुआ और स० १९४१ मे ही इनका स्वर्गवास हो गया। इतने अल्पकाल काल मे भी इन क्रांतिकारी कलाकार ने हिन्दी साहित्य की इतनी सेवा की कि आधुनिक काल का यह जन्मदाता स्वीकृत हो गया। १७ वर्ष की अवस्था में अपनी पुरी यात्रा

करते समय भारतेन्दु बाबू का बंगला के साहित्य से परिचय हुआ। उसके बहु-मुखी विकास को देख हिन्दी साहित्य के अभाव को दूर करने की प्रेरणा इन्हें मिली। अपनी लाखों की सम्पत्ति हिन्दी प्रचार और साहित्य के विकास में लगा दी। 'भारतेन्दु मेगजीन' और 'कवि वचन सुधा' नामक दो पत्रिकाएँ निकालीं। एक हाई स्कूल खोला जो अब कालिज बन चुका है। 'भारतेन्दु मण्डल' की स्थापना की और अनेक साहित्यकारों को आर्थिक सहायता देकर उन्हें उत्साहित किया। स्वयं १७५ ग्रन्थों का सम्पादन किया।

भारतेन्दु द्वारा की गई हिन्दी सेवाएँ अनन्त है। उन्होंने हिन्दी की गद्य शैली का झगडा, जो राजा शिवप्रसाद और राजा लक्ष्मणसिंह में चल रहा था, समाप्त किया और एक मध्यम मार्ग निकाल कर सरल हिन्दी की शैली को जन्म दिया। इसी प्रकार पद्य की भाषा ब्रजभाषा को परिष्कृत करके उसको गीतिकाव्य के उपयुक्त बनाया। किन्तु सबसे प्रधान काम भारतेन्दु जी का था—नवीन राष्ट्रीय चेतना का विकास। बाबू हरिश्चन्द्र ने सर्वप्रथम रीति-कालीन कवियों की रूढ़िग्रस्त कविता के विरुद्ध आवाज उठाई और काव्य में 'स्वच्छन्दधारा' का प्रचार किया। नारी के नखशिख वर्णन से कवियों का ध्यान हटाकर उन्हें भारतमाता की दयनीय परिस्थिति से परिचित कराया। समाज सुधार और देश प्रेम का स्वर काव्य में गूंजने लगा। यद्यपि कहीं कहीं यह स्वर राजभक्ति के स्वर में दब सा अवश्य गया किन्तु सामान्यत. वे हिन्दी हिन्दू-हिन्दुस्तान की रक्षा के लिए अपनी लेखनी चलाते रहे।

भारतेन्दु की दूसरी महान् देन हिन्दी-साहित्य के बहुमुखी विकास की ओर प्रयत्न है। हिन्दी में नाटकों का आरम्भ यद्यपि उनसे पहले ही हो चुका था, किन्तु उन्हें 'काव्यात्मक नाटक' कहना ही अधिक ठीक होगा। कला की दृष्टि से भारतेन्दु ही हिन्दी के प्रथम नाटककार कहे जाते हैं। 'भारत दुर्दशा', 'सत्य हरिश्चन्द्र', 'नील देवी' आदि नाटक तथा, 'वैदिकी हिंसा हिंसा न भवति' और 'अंधेर नगरी' जैसे प्रहसनों द्वारा लेखक ने तत्कालीन समाज पर व्यंग्य करते हुए नई आशा का संदेश भी दिया। भारतेन्दु से प्रेरणा पाकर अनेक लेखकों ने नाटक लिखे जिनमें प्रतापनारायण मिश्र, अंबिक दत्त व्यास, ला०

का रहा। 'सरस्वती' पत्रिका के सम्पादक पद पर आरूढ़ होकर इन्होंने हिन्दी साहित्य के कठोर प्रहरी का काम किया। लेखकों पर अंकुश रख कर अव्यवस्थित होती खड़ी बोली को व्याकरण द्वारा नियन्त्रित किया। इसी के साथ ही खड़ी बोली को, जो अभी तक केवल गद्य की ही भाषा थी, गद्य और पद्य दोनों की भाषा बनाया। इन महान् प्रयत्नों के द्वारा जहाँ द्विवेदी जी ने भाषा संस्कार का काम किया, वहाँ साहित्य की धारा को शृंगार की कलुषित धारा से पवित्र रखने का भी भरसक प्रयत्न किया। 'भारतेन्दु युग' में यद्यपि रीतिकाल' की प्रतिक्रिया आरम्भ हो चुकी थी। तथापि उसकी पूर्ण प्रतिक्रिया 'द्विवेदी युग' मे ही देखने को मिलती है।

द्विवेदी युग के कवियों ने शृंगार-रहित कविता लिखी, समाज-सुधार धर्म-सुधार तथा राजनैतिक समस्याओं को उसमें प्रमुख स्थान मिला। 'इतिवृत्तात्मक' हो जाने से कविता मे कलात्मकता का अभाव सा हो गया। शुष्कता और नीरसता उपदेश और शिक्षा की प्रधानता से उत्पन्न हुई। मैथलीशरण गुप्त, अयोध्यासिंह उपाध्याय और माखनलाल चतुर्वेदी की आरम्भिक रचनायें द्विवेदी युग की प्रतिनिधि कही जा सकती हैं। यद्यपि इस शुष्कता का विरोध धीरे-धीरे बढ़ता ही गया, किन्तु द्विवेदी जी के जीवनकाल में उसका प्रभाव मन्द रहा।

कहानी और उपन्यास के प्रभावशाली माध्यम द्वारा हिन्दी के प्रचार में इस युग में बहुत सहायता मिली। देवकीनन्दन खत्री के 'चन्द्रकान्ता संतति' आदि तिलस्मी उपन्यासों की लोकप्रियता बहुत बढ़ गई। लाखों लोगों ने केवल इन उपन्यासों को पढ़ने के लिए ही हिन्दी सीखी। किशोरीलाल गोस्वामी ने लगभग ६५ उपन्यास लिखे, जिनमें कुछ ऐतिहासिक, प्रेम प्रधान और सामाजिक थे। गोपालराम गहमरी ने जासूसी उपन्यास लिखने में प्रसिद्धि पाई। अयोध्यासिंह उपाध्याय के 'अधखिला फूल' और 'ठेठ हिन्दी का ठाठ' नामक दो उपन्यास प्रकाशित हुए। इस युग के उपन्यासों में प्रधान स्वर कौतूहल और शिक्षा ही रही। कला की दृष्टि से ये महत्वपूर्ण ग्रन्थ नहीं थे।

नाटकों के क्षेत्र में मौलिक रचनायें कम लिखी गईं। अंग्रेजी, संस्कृत

और बंगला के प्रसिद्ध नाटको का अनुवाद ही अधिकांश किया गया। लाला सीताराम बी० ए० ने संस्कृत और अंग्रेजी के अनेक नाटको का अनुवाद प्रस्तुत किया। बंगला के प्रसिद्ध नाटककार डी० एस० राय के लगभग सभी नाटक हिन्दी में अनूदित हुए। उनके अनुवादको मे रूपनारायण पाण्डेय का नाम उल्लेखनीय है। इसी युग में बेताब का 'महाभारत' और माखनलाल चतुर्वेदी का 'कृष्णार्जुन युद्ध' मौलिक नाटक भी अपना महत्व रखते हैं।

निबन्ध और आलोचना क्षेत्र में महावीरप्रसाद द्विवेदी ने नेतृत्व किया। 'काशी नागरी प्रचारिणी सभा' और 'हिन्दी साहित्य सम्मेलन' जैसी महान् संस्थाओ की स्थापना से भी बड़ी सहायता मिली। बाबू श्यामसुन्दर दास का इस विषय में नाम उल्लेखनीय है। द्विवेदी जी ने बेकन के अंग्रेजी निबन्धो का अनुवाद बेकन विचार रत्नावली' नाम से किया। द्विवेदी जी के निबन्ध विचारात्मक होते थे। भाषा सुबोध और सुन्दर होती थी। भावात्मक निबन्धकारो मे अध्यापक पूर्णसिंह का विशेष स्थान है। अन्य निबन्ध-लेखको में श्यामसुन्दर दास, मिश्र-बन्धु, बालमुकुन्द गुप्त, गुलेरी, पद्मसिंह शर्मा उल्लेखनीय हैं।

आलोचना को पुस्तक रूप में प्रकाशित करने का प्रयत्न द्विवेदी जी ने ही किया। उन्होने संस्कृत लेखको के हिन्दी अनुवाद ग्रन्थो को ही अपनी आलोचना का विषय बनाया और अधिक ध्यान भाषा की शुद्धि पर ही दिया। 'कालीदास की निरंकुशता' आदि में यः बात स्पष्ट है।' मिश्र बन्धु विनोद' और हिन्दी नवरत्न' के लेखक मिश्र बन्धु थे। प० पद्मसिंह शर्मा और भगवानदीन ने बिहारी और देव सम्बन्धी तुलनात्मक आलोचना का मार्ग प्रशस्त किया। कृष्णबिहारी मिश्र ने 'देव और बिहारी' पुस्तक लिखी। 'नागरी प्रचारिणी पत्रिका' मे श्यामसुन्दर दास और गौरीशंकर हीराचन्द्र ओझा के अनेक आलोचनात्मक लेख प्रकाशित हुए।

इस प्रकार द्विवेदीयुग में गद्य-पद्य दोनो क्षेत्रो का समुचित विकास हुआ।

प्रश्न १६—'प्रसाद-युग' की प्रधान विशेषताओ का वर्णन करो।

उत्तर—सं० १६७५ से लगभग स० २००० तक 'प्रसाद-युग' का

समय माना जाता है। इस युग में गद्य और पद्य सभी दृष्टियों से हिन्दी साहित्य अपने चरम विकास को पहुँच गया। छायावाद और रहस्यवाद नामक दो महान् काव्य-धाराओं का इसी युग में विकास हुआ, (इनका संक्षिप्त परिचय अगले प्रश्न में दिया गया है)। द्विवेदी युग की नीरस और उपदेश प्रधान इतिवृत्तात्मक कविता की ही यह प्रतिक्रिया थी। छायावाद में सजीव प्रकृति की तथा रहस्यवाद में आत्मा-परमात्मा के सम्बन्धों की कलात्मक अभिव्यक्ति कवियों ने बड़ी सुन्दरता से की। जयशंकर प्रसाद, महादेवी, सुमित्रानन्दन पंत, निराला और डा० रामकुमार वर्मा इस युग के प्रतिनिधि-कवि हैं।

नाटक क्षेत्र में प्रसाद जी के ऐतिहासिक नाटकों का मुख्य स्थान है। चन्द्रगुप्त, स्कन्दगुप्त, अजातशत्रु आदि इनके नाटकों में भाषा और कला की प्रौढ़ता मिल गई है। भारतीय इतिहास को आधार मानकर सुन्दर अतीत की झलक दिखा वर्तमान के लिए आशाप्रद सन्देश भी इन नाटकों की विशेषता है। प्राचीन और पश्चिमी नाट्य शैलियों का सुन्दर संयोग उनमें मिलता है। चरित्र-चित्रण में अन्तर्द्वन्द्व की प्रधानता है। कवि होने के कारण प्रसाद ने अनेक सुन्दर गीतों की सृष्टि भी नाटकों में की है। किन्तु रंगमंच की दृष्टि से प्रसाद के नाटक पूर्णतया सफल नहीं कहे जा सकते। हरिकृष्ण 'प्रेमी' ने आगे चलकर मुगल इतिहास पर आधारित कुछ नाटक लिखे। रंगमंचीय होते हुये भी ये नाटक प्रसाद की टक्कर के नहीं बन सके। लक्ष्मीनारायण मिश्र ने समस्यामूलक नाटकों का आरम्भ किया। उनके नाटकों में 'राक्षस का मन्दिर' और 'सिन्दूर की होली' प्रसिद्ध हैं। अन्य नाटककारों में सेठ गोविन्ददास, गोविन्द वल्लभ पन्त, उपेन्द्रनाथ अश्क, उदयशंकर भट्ट के नाम उल्लेखनीय हैं।

उपन्यासों में यथार्थवाद का प्रारम्भ प्रेमचन्द ने किया। सेवासदन, निर्मला प्रेमाश्रम, गोदान, रंगभूमि आदि उनके उपन्यासों में प्रथम बार भारतीय समाज का यथार्थ चित्र देखने को मिलता है। राजनैतिक और सामाजिक समस्याओं को लेकर प्रेमचन्द ने आदर्शोन्मुख यथार्थवादी उपन्यासों की रचना की। ग्रामीण जीवन का सजीव चित्र उनकी लेखनी की विशेषता रही। प्रेमचन्द द्वारा कहानी और उपन्यासों के इस क्रान्तिकारी परिवर्तन से हिन्दी

उपन्यास रोमांस और तिलस्मी जाल से निकलकर जीवन के क्षेत्र में पहुँच गया। जयशंकर प्रसाद ने 'कंकाल' और 'तितली' जैसे उत्कृष्ट उपन्यास लिखे। वृन्दावनलाल वर्मा ऐतिहासिक उपन्यास-कला में प्रसिद्ध हुए। भगवतीचरण वर्मा ने 'चित्रलेखा', कौशिक ने 'म' और 'भिखारिणी', जैनेन्द्रकुमार ने 'परख' 'दिव्या' नामक सुन्दर उपन्यास लिखे। आगे चलकर यशपाल ने समाजवादी उपन्यास अज्ञेय तथा अश्क ने सामाजिक उपन्यासों में नाम कमाया।

हिन्दी के श्रेष्ठ निबन्ध-लेखक तथा सर्वोत्तम आलोचक आचार्य शुक्ल भी इसी समय पैदा हुए। उनके विचारात्मक निबन्धों का संग्रह 'चिन्तामणि' है, जिसमें सूक्ष्म मनोभावों तथा विचारणीय साहित्य-सिद्धान्तों पर उनके गम्भीर निबन्ध लिखे हुए हैं। आलोचना के क्षेत्र में तो उन्होंने महान् क्रान्ति उपस्थित कर दी। जायसी, तुलसी और सूरदास पर लिखी उनकी आलोचनाएँ अपना विशेष स्थान रखती हैं। 'हिन्दी साहित्य का इतिहास' उनकी एक और महत्वपूर्ण रचना है। मनोवैज्ञानिक तथा ऐतिहासिक आधार पर व्याख्यात्मक आलोचना का मार्ग शुक्ल जी ने ही प्रशस्त किया। अन्य निबन्धकारों तथा आलोचकों में डा० हजारीप्रसाद द्विवेदी, शांतिप्रिय द्विवेदी, नन्ददुलारे वाजपेयी, गुलाब राय डा० नगेन्द्र आदि के नाम उल्लेखनीय हैं।

प्रश्न २०—छायावाद और रहस्यवाद में क्या अन्तर है ? आधुनिक रहस्यवादी कवियों में आप किसे श्रेष्ठ मानते हैं ? (प्रभाकर १९५१,१९५२)

अथवा

छायावाद को आप क्या समझते हैं ? छायावाद के प्रतिनिधि कवि की रचनाओं पर प्रकाश डालो। (प्रभाकर १९५३)

अथवा

आधुनिक काव्य धाराओं का संक्षेप से परिचय दो।

उत्तर—रीतिकालीन शृंगारी कविता की पुरानी रूढ़ियों को तोड़कर भारतेन्दु युग में 'स्वच्छ काव्य धारा' का विकास हुआ जिसकी पूर्ति द्विवेदी युग की 'इतिवृत्तात्मक कविता' के रूप में हुई। इस कविता में नारी के नख-शिख वर्णन के स्थान पर भारतीय समाज की आर्थिक समस्यायें, राजनीतिक

विषय, देश-प्रेम धर्म और समाज का सुधार-भावनाओ को अभिव्यक्त किया गया। शिक्षा और उपदेश की मात्रा प्रधान रहने से कलात्मक का अभाव इस कविता में खटकता है। इसी की प्रतिक्रिया 'छायावादी कविता' के रूप में प्रकट हुई।

'छायावाद' के विषय में आलोचक अपना भिन्न-भिन्न मत देते हैं। डा० नगेन्द्र मन की कुंठित वासनाओ को इसका आधार बतलाते है। पन्त जी छायावाद को 'पाश्चात्य साहित्य की रोमांटिक परम्परा' में मानते हैं। डा० हजारीप्रसाद द्विवेदी के शब्दो में बदलते हुए जीवन-मूल्यो की अभिव्यक्ति, विशाल सांस्कृतिक चेतना एव आध्यात्मिकता की झलक को नवीन शैली में व्यक्त करने वाली कविता ही छायावाद है।' 'आचार्य शुक्ल इसे 'काव्य-शैली मात्र' कहते थे। कुछ लोग 'स्थूल की सूक्ष्म के प्रति विद्रोह भावना' को छायावाद का मूल मानते हैं। जो हो, वर्तमान छायावादी कविता मे जड़ प्रकृति को मानवीय रूप प्रदान करके जो सौन्दर्य और माधुरी से भरी कविता की प्रधानता है, इसका मूल समाज की भौतिक स्थूल समस्याओ से पलायन है। इसमे प्रकृति की आड में श्रृंगारी भावना का भी खूब प्रदर्शन हुआ है। महादेवी ने तो इस वाद की परम्परा वेदो तक में ढूंढी है। छायावादी कवियो मे जयशंकर प्रसाद, पन्त, निराला, महादेवी का मुख्य स्थान है। पन्त को इस धारा का प्रतिनिधि कहा जा सकता है। 'पल्लव' उनका श्रेष्ठ छायावादी कविता संग्रह है। 'छाया' और 'बादल' नामक कविता इसके उदाहरण हैं। छायावाद की प्रधान विशेषताओ मे सौन्दर्य-भावना, श्रृंगार, मानवतावादी दृष्टिकोण, पलायन, आध्यात्मिकता की झलक, प्रकृति तथा कोमल-कान्त-पदावली प्रमुख हैं।

छायावाद और रहस्यवाद में विशेष अन्तर है। यद्यपि अनेक विद्वान दोनों को भिन्न नहीं समझते तथापि छायावादी कविता का प्रधान विषय प्रकृति है और रहस्यवाद का क्षेत्र आत्मा का चिंतन। रहस्यवादी कवि भी प्रकृति के माध्यम द्वारा आत्म-परमात्मा के सम्बन्धो को ही सुन्दर रूप अभिव्यक्त करते हैं। निराला की 'तुम और मैं' कविता इसका उदाहरण है। दर्शन-क्षेत्र का 'अध्यात्मवाद' ही काव्य-क्षेत्र का 'रहस्यवाद'

कहलाता है। संसार के कण-कण मे व्याप्त ईश्वर की झलक का अनुभव करके उसमे मिलने की उत्कंठा की भावना ही रहस्यवाद की प्रेरक भावना है। इसमें तीन अवस्थाएँ मानी जाती हैं—(१) जिज्ञासा (२) ज्ञान, (३) मिलन। जब कवि उस अज्ञात शक्ति को जानने के लिए पुकारता है—'नभ के परदे के पीछे करता है कौन इशारे ?' तो 'जिज्ञासा' भाव प्रकट होता है। निराला की 'तुम और मैं' कविता दूसरी कोटि की रहस्यवादी कविता है। महादेवी के—बीन भी हूँ मैं तुम्हारी रागिनी भी हूँ, अथवा 'तुम मुझ में प्रिय, फिर परिचय क्या ?' गीत मिलन अवस्था के गीत कहे जाएंगे।

प्रगतिवादी कविता छायावादी कविता की प्रतिक्रिया कही जा सकती है। जब कवि कल्पना के रंगीन आकाश में उड रहा था और वास्तविकता की धरती को भूल गया था, तभी परिस्थितियो ने उसे यथार्थवादी बनाया और साहित्य में राजनीति का समाजवाद 'प्रगतिवाद' बनाकर आया। साम्यवादी या मार्क्सवादी सिद्धान्तो का तथा फ्रायड के मनोविज्ञान का 'प्रगतिवादी' साहित्य' पर बड़ा प्रभाव पडा है। आधुनिक प्रगतिवादी कवियो में अञ्चल, नरेन्द्र शर्मा। सोहनलाल द्विवेदी, नवीन, दिनकर, मिलिंद, हरिकृष्ण प्रेमी आदि के नाम उल्लेखनीय हैं। किन्तु इन कवियो के काव्य-संग्रहो में फुटकर रूप मे ही प्रगतिवादी कविताएँ देखने को मिलती हैं, सामूहिक रूप से नही।

प्रगतिवादी कविता में रूस, चीन आदि साम्यवादी देश, उनके नेताओ और सिद्धान्तों की प्रसंशा होती है। जीवन की यथार्थवादी दृष्टिकोण से व्याख्या की जाती है। सुधार के स्थान पर हिंसा और क्रांति का स्वर प्रधान रहता है। नवनिर्माण के लिये संहार की आवश्यकता पर जोर दिया जाता है। ग्रामीण निम्न वर्ग की समस्याओ, शोषको के अत्याचार और उनसे पीडित शोषित वर्ग की दयनीय स्थिति का मर्मस्पर्शी वर्णन बडे विस्तार के साथ किया जाता है। यथार्थ के परदे मे नग्न शृंगारी दृश्य दिखाये जाते हैं। भाषा-शैली सरल सादी, स्वभाविक और अलंकारहीन होती हैं। नए प्रतीको का प्रयोग किया जाता है। 'मुक्तक छन्द' तो प्रगतिवादी कविता का प्रतीक सा बन गया हैं। निराला की 'भिक्षुक' नामक कविता इसका उदाहरण है।

प्रश्न २१–निम्नलिखित कवियों पर संक्षिप्त टिप्पणी लिखो—मैथिलीशरण गुप्त, निराला, पन्त, प्रसाद, महादेवी। (प्रभाकर १९५१, ५२, ५३, ५४.)

उत्तर –जयशंकर प्रसाद—कविता, नाटक, उपन्यास, कहानी, निबंध सभी क्षेत्रों में अपनी बहुमुखी प्रतिभा का चमत्कार दिखलाने वाले प्रसाद एक युगान्तरकारी कलाकार थे। 'कामायनी' इनका प्रसिद्ध महाकाव्य है। बौद्ध दर्शन और शैव दर्शन की अभिव्यक्ति, छायावादी व रहस्यवादी उक्तियाँ, प्रकृतिवर्णन आदि इस आधुनिक काल की सर्वश्रेष्ट रचना की प्रमुख विशेषताएँ हैं। चन्द्रगुप्त, स्कन्दगुप्त, अजातशत्रु आदि ऐतिहासिक नाटकों में भारत के सुन्दर अतीत की उज्ज्वल झलक तथा वर्तमान के लिए सुन्दर संदेश मिलता है। 'कंकाल' और 'तितली' प्रसाद के यथार्थवादी उपन्यास हैं। 'आकाश दीप' और 'आँधी' इनके कहानी-संग्रह हैं। संक्षेप मे प्रसाद जी का व्यक्तित्व उनके साहित्य में प्रतिबिम्बित होता है।

मैथिलीशरण गुप्त–किसी विद्वान् ने कहा है कि किसी माला में प्रथम मणि, उपवन में प्रथम पुष्प, गगन में प्रथम नक्षत्र का जो महत्वपूर्ण स्थान है, वही स्थान वर्तमान काव्य में गुप्त जी का है।' गुप्त जी द्विवेदी युग के प्रतिनिधिकवि हैं। खड़ी बोली में कविता को लोकप्रिय बनाने में उनकी 'भारत भारती' नामक राष्ट्रीय रचना का बड़ा हाथ है। गुप्त जी ने अतीत भारत का चित्र खींचा है, और वर्तमान समस्याओं का समाधान उनमें खोजा है। गुप्त जी हिन्दी के राष्ट्र कवि के रूप में प्रसिद्ध हैं। गुरुकुल, हिन्दू, किसान, अनघ, द्वापर आदि के अतिरिक्त उन्होंने 'काबा और कर्बला' नामक काव्य भी लिखा है। 'साकेत' इनका प्रसिद्ध महाकाव्य है, जिसमें उर्मिला के चरित्र का गान किया गया है। 'यशोधरा' इनकी अन्य सुन्दर रचना है। इन दोनों काव्यों मे कवि की कलात्मकता का विकास देखने को मिलता है। इनमें कवि ने उपेक्षित नारी-पात्रों को अपना विषय बनाया है। यह प्रेरणा गुप्त जी को अपने गुरु महावीर प्रसाद द्विवेदी से ही मिली थी। गुप्त जी ने केवल कविता-क्षेत्र को ही अपनाया है। कला को जीवन के लिए मानने वालों में गुप्त जी की गणना मुख्य है।

सुमित्रानन्दन पत—पन्त जी छायावादी कविता के प्रतिनिधि कवि माने जाते हैं। 'पल्लव और गुञ्जन' इनकी प्रसिद्ध रचनाएँ हैं, जिनमे 'प्रकृति के सुकुमार कवि' के रूप में पन्त का मधुर और सुन्दर व्यक्तित्व उभर आया है। किन्तु ग्राम्या' और 'युगवाणी' में पन्त ने प्रगतिवादी कवि का रूप दिखाया है। ग्रामीण जीवन और समाजवादी दृष्टिकोण उपस्थित कर चुकने पर आज पन्त पुन चेतनावादी बन गए हैं। उनकी आधुनिक रचनाएँ 'स्वण-धूलि', स्वर्ण-किरण'और 'उत्तरा' इसके प्रमाण हैं। खड़ी बोली को ब्रजभाषा जैसी कोमल-कात-पदावली प्रदान करने में पन्त का विशेष हाथ है। इस प्रकार भाव-पक्ष और कला पक्ष दोनो की दृष्टि से पन्त का काव्य हिन्दी में महत्वपूर्ण स्थान रखता है।

निराला—प सूर्यकात त्रिपाठी 'निराला' हिन्दी के युगप्रवर्तक महाकवि है। इनकी गणना छायावादी और रहस्यवादी कवियो में की जाती है। 'जुही की कली' और'तुम और मैं' इनकी दो प्रसिद्ध कविताएँ क्रमश दोनों वादो की प्रतीक बन चुकी है। 'भिक्षुक' नामक कविता मे प्रगतिवाद का स्वर भी सुनाई देता है। निराला जी के काव्य में दार्शनिकता होने से कुछ कठिनाई आ गई है। इन पर रामकृष्ण परमहंस के आध्यात्मिक विचारो का प्रभाव है। 'परिमल', 'अनामिका' 'गीतिका' इनके कविता-संग्रह है। हिन्दी काव्य को निराला जी की सबसे महत्वपूर्ण देन मुक्तक छन्द का प्रयोग है। निराला जी ने ही सर्वप्रथम छन्दहीन कविता का विरोध किया। आज उसका प्रयोग समाप्त हो गया है-आधुनिक कविता प्राय: मुक्तक छन्दो में ही लिखी जा रही है। कविता के अतिरिक्त निराला एक सफल उपन्यासकार, लेखक, कहानीकार और निबन्धकार के रूप में ही हमारे सामने आते हैं। साहित्य की निरन्तर सेवा करने वाला यह निर्भीक कलाकार आज आर्थिक कठिनाइयो का शिकार हो रहा है।

महादेवी वर्मा—छायावाद और रहस्यवाद के उपवन मे गाने वाली यह कोकिला हिन्दी साहित्य में अपना विशेप स्थान रखती है। उनको आधुनिक काल की 'मीरा' भी कहा जाता है। क्योकि महादेवी के काव्य में वेदना और

विरह का स्वर प्रधान है। 'नीरज', 'नीहर', 'रश्मि', 'संध्यागीत' उनके सुन्दर कविता-संग्रह हैं। 'दीपमाला' इनका और भावपूर्ण कविता-संग्रह प्रकाशित हुआ है इनके रहस्यवादी गीतो मे हृदय की मार्मिकता अनुभूति और माधुर्य भरा हुआ है। पद्य के साथ-साथ गद्य में भी लेखिका ने अपनी प्रतिभा का चमत्कार दिखाया है। 'अतीत के चलचित्र' इसका सुन्दर प्रमाण है।

नोट:—आधुनिक कवियो एवं उनके महाकाव्यो के पूर्ण विवेचन के लिए कृपया प्रथम पत्र के आधुनिक कवियो का अध्ययन कीजिए।

———

सूर समीक्षा

अथवा

महाकवि सूरदास

प्रश्न १— अंतः साक्ष्य तथा बहिः साक्ष्य के आधार पर सूरदास की प्रामाणिक जीवनी लिखिए।

अथवा

सूरदास की जन्मतिथि तथा उनके जीवन का परिचय दीजिए।

(प्रभाकर जून १६५७)।

उत्तर—किसी कवि या लेखक की जीवनी लिखने के लिए अंत साक्ष्य (कवि के द्वारा अपने विषय मे लिखी गई बातें) और बहिः साक्ष्य (कवि के विषय मे दूसरो के द्वारा लिखी गई बातें) का आश्रय लिया जाता है। सूरदास के आत्म-विषयक पद जहाँ-तहाँ यत्र-तत्र प्राप्त होते हैं, जो प्रसंग-वश आए हैं; परन्तु उनके आधार पर निश्चित रूप से कुछ नही कहा जा सकता कि वे वाक्य उन्होंने अपने लिए कहे हैं, या उनके द्वारा उन्होने लोगो की साधारण मनोवृत्ति का परिचय दिया है।

बहि साक्ष्य के रूप मे निम्नलिखित रचनाओ मे सूरदास के विषय में न्यूनाधिक सामग्री मिलती है—(१) गोकुलनाथ की 'चौरासी वैष्णवन की वार्ता' और 'निजवार्ता' (२) नाभादास का 'भक्तमाल' (३) हरिराम का 'भाव प्रकाश', (४) ध्रुवदास की 'भक्तनामावली', (५) ठा० रघुराजसिंह की 'रामरसिकावली', (६) मियासिंह का 'भक्त विनोद', (७) 'आइने अकबरी', (८) 'मुन्तखिब-उल-तवारीख' और (९) 'मुंशियात-अबुलफजल'। इनमें वार्ता-ग्रन्थ इस विषय में हमारे लिए विशेष उपयोगी है। 'भक्तमाल' मे सूर विषयक केवल एक ही पद है, जिसमें उनकी जन्मांधता का उल्लेख है।

उक्त अंत. साक्ष्य और वहि साक्ष्य के आधार पर सूरदास की जीवनी कुछ इस रूप मे हो सकती है —

नाम—सूर के पदों में सूर, सूरदास, सूरज, सूरजदास और सूरश्याम ये पाँच नाम आते हैं। डा० मुंशीराम के अनुसार सभी सूर के प्रामाणिक नाम है। वस्तुत उनका नाम 'सूरदास' ही होगा, जो छन्द के अनुरोध से उनके पदो में विभिन्न रूपो मे आया है। वार्त्ताग्रन्थ में भी उनको 'सूर' या 'सूरदास' कहा गया है।

जन्म-स्थान—'साहित्य-लहरी के एक पद मे सूर के पिता को गोपाचल (वर्तमान ग्वालियर) का निवासी बताया गया है। डा० पीताम्बरदत्त बड़थ्वाल के मत में यही सूर की जन्म-भूमि है। 'भक्त विनोद' के अनुसार सूरदास का जन्म-स्थान मथुरा का कोई गाँव है। पं० रामचन्द्र शुक्ल एवं डा० श्यामसुन्दरदास रुनकता (आगरा और मथुरा के बीच एक छोटा-सा गाँव) को सूरदास की जन्मभूमि मानते हैं। वार्त्ता ग्रन्थ के अनुसार सूर का जन्म स्थान सीही (दिल्ली से चार कोस दूर पर एक गाँव) है। गोकुलनाथ के समकालीन प्राणनाथ कवि ने भी सूर को सीही गाँव का माना है। जनश्रुति से भी इस बात का समर्थन होता है। इसलिए सूरदास की जन्मभूमि सीही गाँव ही है।

जन्मतिथि—'सूर सारावली' मे एक स्थान पर लिखा है—'गुरु परसाद होत यह दरसन सरसठ बरस प्रवीन', जिसके आधार पर आलोचक 'सूर-सारावली' की रचना के समय सूर की आयु ६७ वर्ष निश्चित करते हैं। साहित्य-लहरी' मे एक पद इस प्रकार मिलता है—'मुनि पुनि रसन के रस लेख दसन गौरी नन्द को ····।' [मुनि=७; रसन=०, रस=६; दसन गौरी नन्द को=१ अर्थात् अंको की उल्टी गति के अनुसार, १६०७ स०]। यदि 'साहित्य लहरी' और 'सूरसारावली' एक समय की रचनाएं हैं, तो इसका अर्थ यह हुआ कि स० १६०७ मे सूरदास ६७ वर्ष के थे, अर्थात् उनका जन्म सं० १५४० में हुआ। मिश्र बन्धु और प० रामचन्द्र शुक्ल का यही मत है।

परन्तु 'साहित्य लहरी' और 'सूर सारावली' को एक समय की रचना मानने का कोई प्रमाण नहीं। 'सूर निर्णय' के लेखकों (प्र० द० मीतल और डा० ना० पारीख) ने वल्लभ सम्प्रदाय के इतिहास की सगति से 'सूरसारावली'

का रचना काल सं० १६०२ माना है। उस समय सूरदास की आयु ६७ वर्ष थी। इसके अनुसार, सूर का जन्म सवत् १५३५ सिद्ध होता है।

पुष्टि सम्प्रदाय की 'निज वार्ता' के अनुसार सूरदास श्री वल्लभाचार्य से दस दिन छोटे थे। श्री आचार्य जी का जन्म स० १५३५, वैशाख कृष्ण ११ रविवार को हुआ था। अत. इसके अनुसार भी सूरदास की जन्म तिथि सं० १५३५ (वैशाख शुक्ल, ५, मंगलवार) ही ठहरती है। डा० हरवशलाल शर्मा इसी मत को मानते हैं।

वश-परिचय तथा जाति—'साहित्य-लहरी' के ११८वें पद के आधार पर सूर की वशावली इस प्रकार बनती है. ब्रह्मराव > कुछ अज्ञात वशधर > चन्द > गुणचन्द > शीलचन्द > वीरचन्द > कुछ अज्ञात वशधर > हरिचन्द > [सूर के पिता, नाम अज्ञात] > सूरजचन्द (और उसके छः बड़े भाई)। महामहोपाध्याय हरप्रसाद शास्त्री के [नानूराम भट्ट से, प्राप्त] वंश-वृक्ष के साथ उक्त वशावली पर्याप्त मेल खाती है। नानूराम वाले वशवृक्ष में सूरदास के पिता का नाम 'रामचन्द' है, जो वैष्णव भक्ति के अनुसार 'रामदास' बन जाता है। 'आइने अकबरी' में रामदास के बेटे सूरदास गवैया का उल्लेख है। यह समर्थन पाकर डा० मुशीराम, डा० पीताम्बरदत्त बडथ्वाल और डा० ग्रियर्सन ने गायक रामदास को ही कवि सूरदास का पिता मान लिया एव चन्द बरदायी को भट्ट या भट्ट ब्राह्मण मानकर सूरदास की भी वही जाति उन्होने निश्चित की।

परन्तु 'साहित्य-लहरी' का उक्त पद सदिग्ध है, नानूराम वाली वशावली भी अप्रामाणिक सिद्ध की जा चुकी है तथा सूरदास का अकबर का दरबारी कवि होना भी ऐतिहासिक प्रमाणो से सिद्ध नही। ऐसी स्थिति में इसके आधार पर सूरदास की जाति का निर्णय नही किया जा सकता।

डा० ब्रजेश्वर वर्मा ने अन्त साक्ष्य के आधार पर सूरदास को ब्राह्मणेतर सिद्ध करने का प्रयत्न किया है, परन्तु वहि साक्ष्य द्वारा इसका समर्थन नहीं होता।

इस विषय में वार्ताग्रंथ अधिक प्रामाणिक हैं। उनके आधार पर सूरदास सारस्वत ब्राह्मण थे। गो० यदुनाथ, श्रीनाथ भट्ट और प्राणनाथ कवि द्वारा

भी इसी मत का समर्थन होता है। आजकल भी उस प्रान्त में सारस्वत ब्राह्मणों का ही बाहुल्य है। इस प्रकार सूरदास का सारस्वत ब्राह्मण होना तथ्य के अधिक निकट है।

अंधता—सूरदास जन्मांध थे अथवा बाद मे अन्धे हुए, इस विषय पर विद्वानों मे मतभेद है। उनके काव्य मे रगो, हाव-भावो, जीवन के सूक्ष्म व्यापारो एव शरीर के विभिन्न अ गो का जो वर्णन है, वह जन्मांध व्यक्ति के द्वारा होना सम्भव नहीं—इस तर्क द्वारा उनके बाद मे अन्धे होने की बात सिद्ध की जाता है। परन्तु इस प्रकार की कल्पना सूर जैसे पहुंचे हुए महात्मा के सम्बन्ध मे उचित नही। अघटित घटना घटा देनेवाले भगवान् के भक्त अपनी दिव्य दृष्टि से संसार को प्रत्यक्ष देख सकते हैं। कई विद्वान् बिल्वमंगल सूरदास के जीवन की एक घटना [जिसमे एक वेश्या से विरक्त होकर सूरदास ने अपनी आँखें फोड ली] को कवि सूरदास से सम्बन्धित बताकर सूरदास के बाद मे अन्धे होने की बात का समर्थन करते हैं। परन्तु बिल्व मगल सूरदास बनारस के निवासी थे और हमारे कवि सूरदास से भिन्न थे।

बाह्य साक्ष्य के आधार पर सूरदास की जन्मांधता सिद्ध होती है। 'भक्त विनोद' मे लिखा है—"जनम अंध दृग ज्योति विहीना।" 'रामरसिकावली' के अनुसार भी वे "जन्महि ते हैं नैन विहीना।" श्रीनाथ भट्ट भी लिखते हैं—"जन्मांधो सूरदासोऽभूत्।" प्राणनाथ कवि और हरिराय भी उन्हे जन्मांध मानते हैं। अभी हाल मे 'सूरनिर्णय' [ले० मीतल और पारीख] मे सूर के कुछ ऐसे पद उद्धृत किये गए हैं, जिनसे उनकी जन्मांधता सिद्ध होती है। इन पदों मे स्पष्ट 'जनम अंध करयो।', 'जनम को आँधरो' और 'जनम को अ धो' कहा गया है। इस प्रकार उनका जन्मांध होना निश्चित सिद्ध है।

आरम्भिक जीवन—'भावप्रकाश' के अनुसार सूरदास शुरू से ही विरक्त थे। घर-बार छोडकर ये दूर किसी गाँव के बाहर रहते थे। ये १८ वर्ष तक यहाँ रहे, फिर श्रद्धालुओं की अधिकता हो जाने पर ये उस गाँव से चलकर गऊघाट आ गये और स्थायी रूप मे वहाँ रहने लगे। यहाँ ये विद्या और सगीत का नियमित अभ्यास करते थे।

'भक्तविनोद' के अनुसार सूरदास अपनी जन्म भूमि मथुरा से एक समय

यात्रा करते वृंदावन आये; मन इतना रमा कि यही टिक गये और सत्संग आदि मे समय बिताने लगे। एक दिन किसी कुएँ मे गिर पड़े। भगवान् ने इनका उद्धार किया। फिर जब वे हाथ छुड़ाकर भागने लगे, तो सूरदास ने कहा—

अब तो बलकरि छोरकर, चले निबल कर मोहि।
पै मन तें टूटो न जब, तब देखों प्रभु तोहि॥

भगवान् ने उनकी आँखें खोल दी। दर्शन पाकर सूर ने पुन. आँख बन्द करने की प्रार्थना की। फलत भगवान् ने फिर उनकी आँखें बन्द कर दी।

वल्लभाचार्य से दीक्षा—सूरदास श्रीनाथ जी की स्थापना के बाद गौघाट पर आचार्य के शिष्य हुए। परन्तु श्रीनाथ का स्थापना-काल निश्चित नहीं। आचार्य शुक्ल के अनुसार श्रीनाथ की स्थापना सं० १५७६ मे हुई। सूरदास स० १५८० मे शिष्य बने तथा आचार्य जी की मृत्यु स० १५८७ मे हुई। परन्तु श्री मीतल ने 'सूरनिर्णय' मे सिद्ध कर दिया है कि श्रीनाथ स० १५५६ में स्थापित हुआ और सूरदास स० १५६७ मे दीक्षित हुए।

इस विषय में कहा जाता है कि जब आचार्य वल्लभ ने सूर को भगवान् का यशोगान करने को कहा तो अन्धे सूर ने 'प्रभु हौं सब पतितन को टीकों' का पद सुनाया। महाप्रभु वल्लभाचार्य ने उनसे कहा—'सूर ह्वै के ऐसे काहे को घिघियात है, कछु भगवत-लीला वरनन करि।' तत्काल ही सूर ने गुरु मन्त्र लिया और पुष्टि मार्ग में दीक्षित हो गए। आगे चलकर सूर ने भागवत की कथा को पदबद्ध करना आरम्भ किया। महाप्रभु के प्रसाद से श्रीनाथ के कीर्तन का भार उन्हे सौंपा गया। वे श्रीनाथ की सेवा मे लग गये।

दीक्षित होने के बाद की घटनाएं विस्तार से 'चौरासी वैष्णवो की वार्ता' में दी गई हैं।

अकबर से भेंट—श्रीनाथ जी का कीर्तन करते हुए सूर ने हजारो पद बनाए, जिनसे उनकी प्रसिद्धि सर्वत्र फैल गई। बादशाह अकबर ने उनसे भेंट की, परन्तु कहाँ और कब—यह निश्चित नहीं। 'रामरसिकावली' के अनुसार भेंट दिल्ली मे हुई। कई फतेहपुर सीकरी में भेंट हुई मानते हैं। परन्तु ये दोनों मत अमान्य है।

'मुन्शियात-अबुलफजल' में अकबर द्वारा सूरदास को लिखित एक पत्र है, जिसमें बादशाह ने उन्हें प्रयाग आने को कहा है। अकबर सं० १६६१ में प्रयाग गये थे, जबकि सूरदास का देहात हो चुका था। स्पष्ट ही यह मत भी मान्य नहीं।

'अणु भाष्य' की भूमिका में सं० १६२८ के लगभग अकबर का मथुरा जाना लिखा है। सं० १६२३ में सूरदास मथुरा चले गये थे। हरिराय ने भेंट का स्थान मथुरा लिखा है। इन सब बातों के आधार पर श्री नन्द दुलारे वाजपेयी ने भेंट का समय स० १६२३ से १६२८ के बीच मथुरा में माना है। 'सूर निर्णय' के लेखकों ने स० १६२३ माना है। परन्तु ऐतिहासिक घटनाओं के आधार पर डा० ब्रजेश्वर वर्मा स० १६३२ के बाद मानते हैं। डा० दीनदयालु और डा० हरवंशलाल भी इसी मत का समर्थन करते हैं।

तुलसी से भेंट—बेनी माधव दास की 'मूल गोसाईं चरित' के अनुसार स० १६१६ मे सूरदास तुलसीदास से मिले। परन्तु 'प्राचीन वार्ता साहित्य' के अनुसार पारसौली गाँव में तुलसीदास सूरदास से मिले, जब वे अपने भाई नंद-दास से मिलने ब्रज आए थे।

अष्ट छाप में स्थापना—गो० विट्ठलनाथ ने जब पुष्टि मार्ग का आचार्यत्व ग्रहण किया, तब स० १६०२ मे उन्होंने सम्प्रदाय के श्रेष्ठ आठ कवियों को लेकर 'अष्ट छाप' की स्थापना की, जिसमें चार (सूरदास, कुम्भनदास, कृष्णस्वामी और परमानन्द दास) आचार्य वल्लभ के शिष्य थे और चार (गोविन्द स्वामी, नन्ददास, छीतस्वामी और चतुर्भुजदास) विट्ठलनाथ के शिष्य थे। इनमे सूर का स्थान सर्वोच्च था।

मृत्यु—सूरदास की निधन-तिथि मिश्रबन्धु और पं० रामचन्द्र शुक्ल ने सं० १६२० मानी है। परन्तु सूर और अकबर की भेंट यदि स० १६३२ मे हुई, तो उनकी मृत्यु १६३२ के बाद ही हुई होगी। 'वार्ता साहित्य' के अनुसार सूरदास जी की मृत्यु के समय गो० विट्ठलनाथ जी जीवित थे। गो० विट्ठलनाथ की मृत्यु स० १६४१ में हुई। इसलिए सूर की मृत्यु सं० १६३२ और १६४१ के बीच कभी हुई होगी। 'भाव प्रकाश' के अनुसार उनका निधन-संवत् १६४० है। यह संवत् ठीक ही मालूम पड़ता है।

'चौरासी वैष्णवो की वार्ता' के अनुसार सूरदास मृत्यु से कुछ समय पहले पारसौली चले गये। गोसाईं जी भी भक्तो के साथ वहाँ पहुचे। सूरदास ने 'देखो-देखो, हरिजू का एक सुभाव' यह पद गाया। प्रार्थना करने पर उन्होने महाप्रभु का यशोगान भी किया—'भरोसे इन दृढ़ चरणन केरो' अन्त मे 'खंजन नैन सुरंग रस माते।' पद गाकर उन्होने अपनी इहलीला समाप्त कर दी।

प्रश्न २—सूरदास के समय की धार्मिक, राजनीतिक, सामाजिक एवं साहित्यिक परिस्थितियों का उल्लेख करते हुए सूरदास के साहित्य पर उनका प्रभाव बताइये।

अथवा

सूर-साहित्य की पृष्ठ भूमि का उल्लेख कीजिये।

उत्तर—सूर-साहित्य की पृष्ठ भूमि को समझने के लिए भारत के मध्य-कालीन इतिहास का अध्ययन आवश्यक है। इस मध्यकाल(६ठी से १२वी सदी) में उस व्यापक आन्दोलन का जन्म हुआ, जिसने ऐसी अनेक भावनाओ को जन्म दिया जो एक ओर मानवता के क्षेत्र का विस्तार करती हैं और दूसरी ओर अनेक संकीर्णताओ को पैदा करती हैं। यह काल राजनीतिक, सामाजिक, धार्मिक सभी दृष्टियो से महत्व का है।

धार्मिक परिस्थितियाँ—दसवीं शताब्दी से लेकर सोलहवी शताब्दी तक के युग को धार्मिक दृष्टि से समन्वय वादी युग कहा जा सकता है। एक ओर सगुण धारा के भक्त कवियो ने अपने विभिन्न सप्रदायो के आपसी विरोधों को भूलकर शैव, शक्ति आदि अन्य सप्रदायों से सम्बन्ध जोड़ा। दूसरी ओर सत कवियों ने निर्जीव और निराश हृदयो मे जीवन और आशा का प्रकाश किया। इन कवियो का व्यक्तित्व ही समन्वय की भावनाओ से भरा हुआ था। १३ वी से लेकर १७वीं शताब्दी तक ये भक्त कवि समाज और साहित्य की सेवा करते रहे। इतिहासकारो ने धार्मिक आन्दोलन के इस युग को भक्ति का विशेष काल माना है।

मध्ययुग के इतिहास में यह आन्दोलन बेजोड़ कहा जा सकता है। १५वीं-१६वी सदी में यह प्रवाह व्रज भूमि में वेग से प्रवाहित हुआ, और जैसा कि डा० ग्रियसन कहते हैं, अचानक बिजली की चमक के समान यह आन्दोलन

देश के एक कोने से दूसरे कोने तक फैल गया। ऐतिहासिक दृष्टि से यह युग पराजय का काल भले हो, सांस्कृतिक दृष्टि से इसका विशेष महत्व है, क्योंकि इस काल मे मानवता के सामान्य धरातल पर विभिन्न संस्कृतियो और धार्मिक भावनाओ का मेल हुआ।

वैदिक काल से चली आती हुई भक्ति की धारा, जो ब्राह्मणों, उपनिषदो, स्मृतियो और पुराणो के माग से बहती हुई अपना रूप बदल चुकी थी, इस भक्ति के आन्दोलन के प्रवाह मे विलीन हो गई। बौद्ध और जैन धर्मों की साधना, जो अब तक विकृत हो चुकी थी, ने भी इस आन्दोलन पर अपना प्रभाव डाला। दक्षिण के आलवार भक्तो का भी इस आन्दोलन पर प्रमुख प्रभाव पडा। इन्ही की भक्ति भावना दक्षिण के आचार्यों के सम्प्रदायों के सिद्धांतो का मूल कारण बनी। शैव, शाक्त, पाशुपत आदि सम्प्रदायो ने भी इसे काफी प्रभावित किया। नाथ सम्प्रदाय भी इस आन्दोलन की पृष्ठभूमि मे महत्वपूर्ण स्थान रखता है। इन भारतीय भावनाओ के अतिरिक्त सूफियो की प्रेम साधना भी सशक्त पृष्ठ भूमि के रूप मे आई। इन विभिन्न धाराओ को लेकर भक्ति की विशाल सरिता १६ वी शताब्दी तक गभीरता और वेग से प्रवाहित हुई, जिसमे तत्कालीन समाज ने तृप्ति पूर्वक स्नान किया।

इस युग का सबसे अधिक महत्वपूर्ण ग्रन्थ भागवत है, जिसका आज भी वैष्णव भक्ति-भावना पर गहरा प्रभाव है। भक्ति-सिद्धांतो के निरूपण के लिए अनेक संप्रदायो का जन्म अब तक हो चुका था एव अब भी हो रहा था। इनमे ये सप्रदाय मुख्य हैं–(१) शकराचार्य का अद्वैतवाद, (२) रामानुज का विशिष्टाद्वैतवाद, (३) मध्वाचार्य का द्वैतवाद, (४) रामानन्द की उपासना पद्धति, (५) निंबार्क का द्वैताद्वैतवाद और (६) वल्लभाचार्य का शुद्धाद्वैतवाद।

इन सभी सप्रदायो ने 'भागवत' को मान्यता दी, और उसी के आधार पर अपने-अपने सिद्धातो का प्रचार किया। इन सप्रदायों में अनेक सच्चे भक्त दीक्षित हुए। जिनकी भक्ति के गीत १५वी से १७वीं सदी तक समस्त देश में गूंजते रहे। यही इस भक्ति-आन्दोलन का चरम उत्कर्ष था। अकबर के राज्य काल में यह आंदोलन विशेष रूप से पनपा।

राजनीतिक परिस्थितियां—हिंदी साहित्य के इतिहासकारों ने राजनीतिक दवाव, सामाजिक अव्यवस्था और धार्मिक अत्याचारों को ही भक्ति-आन्दोलन का मूल कारण माना है। प० रामचन्द्र शुक्ल के मत मे, देश मे मुसलमानों का राज्य प्रतिष्ठित हो जाने पर हिन्दू जनता के हृदय में गौरव और उत्साह के लिए वह स्थान न रह गया। उनके सामने ही देवमदिर गिराये जाते थे···। ऐसी दशा में अपनी वीरता के गीत न तो वे गा ही सकते थे और न लज्जित हुए बिना सुन ही सकते थे।...अपने पौरुष से हताश जाति के लिए भगवान् की शक्ति और करुणा की ओर ध्यान ले जाने के अतिरिक्त दूसरा मार्ग ही क्या था ?" वस्तुत भक्ति के आन्दोलन को मुसलमानी प्रतिक्रिया मानना सर्वांश मे ठीक नही है।

सूरदास का काल स० १५३५ से १६४० तक था। इस दीर्घ काल मे दिल्ली-साम्राज्य मे अनेक परिवर्तन हुए। लोदी, सूरी और मुगल बादशाहो का आधिपत्य दिल्ली पर रहा। सिकन्दर लोदी (सं० १५४६-१५७४) से लेकर (स० १६१३-१६६२) तक के बादशाह इस लम्बी अवधि में आते हैं। लोदी वश के राज्य काल मे धार्मिक कट्टरता थी, जिसके कारण हिन्दुओ को अनेक कष्ट सहने पड़े। परन्तु अकबर के समय तक स्थिति काफी बदल चुकी थी। अकबर उदार प्रकृति का बादशाह था, जिसने अपने समय में प्रचलित सभी धार्मिक भावनाओ के समन्वय का प्रयत्न किया और इसके लिए अपना 'दीने इलाही' चलाया, चाहे वह अपने प्रयत्न मे सफल न हो सका।

सामाजिक परिस्थितियां—अकबर से पहले अनेक सुलतानों के राज्य काल मे हिन्दुओं को सामाजिक अधिकार पूर्ण रूप से प्राप्त न थे। उनकी स्थिति डांवाडोल थी। साधारण जनता गरीब थी; उच्च वर्ग मे ऐश्वर्य और विलासिता थी। वर्ण व्यवस्था शिथिल थी। जातीयता की भावना लुप्त हो रही थी। अस्पृश्यता का प्रचार था। पारस्परिक ईर्ष्याद्वेष बढ़ रहा था।

अकबर के समय मे हिन्दू और मुसलमान जातियो के बीच की खाई को कम करने का प्रयत्न किया गया। परन्तु सदियों से चली आ रही सामाजिक जीवन की शिथिलता अभी तक थी। कबीर ने हिन्दू-मुसलमान दोनों को ही

उनकी आचरण-हीनता के लिए फटकारा है। तुलसीदास ने भी तत्कालीन समाज की दुरवस्था का चित्र खींचा है।

निष्कर्ष यह कि अकबर से पहले हिन्दुओं का 'सामाजिक जीवन संतोष-जनक न था, परन्तु इसका कारण विदेशी सत्ता या उसके अत्याचार ही न थे, अपितु उसके आन्तरिक जीवन मे ऐसी कुरीतियां आ गई थी, कि उसका ढांचा जर्जर हो गया था। वस्तुत रोग शारीरिक ही नहीं, मानसिक भी था, जिसका सम्बन्ध हमारे इतिहासकार आँखें मूंद कर मुसलमानी शासन से जोड़ देते हैं।

साहित्यिक परिस्थितियां—जैसा आचार्य शुक्ल का अनुमान है, "सूर सागर किसी चली आती हुई गीत परम्परा का, चाहे वह मौखिक ही रही हो, पूर्ण विश्वास-सा प्रतीत होता है।...सूर के शृंगारिक पदों की रचना बहुत-कुछ विद्यापति की पद्धति पर हुई है। यही नहीं, कुछ पदो के तो भाव भी बिल्कुल मिलते हैं।. ." गेय पदो की यह साहित्यिक पद्धति अपभ्रंश काल से चली आ रही थी, जो विद्यापति की 'पदावली' मे देश भाषा के रूप मे सामने आई। अमीर खुसरो ने भी यह गीति-पद्धति अपनाई है। सूरदास के प्रम और लीला के गीत इसी परम्परा के आधार पर खड़े हैं। वस्तुत गेयपदो की परपरा भारत में अत्यन्त प्राचीन है, जो अपभ्रंश काल से तो लगातार चली आ रही है। बौद्ध-सिद्धों और नाथ-योगियो के अनेक गेय पद आज भी मिलते हैं।

गेयपदों की इस परम्परा के साथ लीला गान की परम्परा भी काफी पुरानी है। जैसा डा० हजारीप्रसाद द्विवेदी कहते हैं। जयदेव (१२ वीं शती), चण्डीदास और विद्यापति के पद इस बात के सबूत हैं कि भगवान् के अवतार को लक्ष्य बनाकर लीलागान करने की परम्परा काफी पुरानी है। यह परम्परा भागवत की लीला-गान-परम्परा से भिन्न थी। दोनो परम्पराओं का प्रचलन साहित्य के क्षेत्र में था।

सूर के साहित्य पर परिस्थितियों का प्रभाव—सूरदास के सम्प्रदाय मे दीक्षित होने से पहले के पदों में उक्त परिस्थितियो का जितना प्रभाव दीखता है, उतना उनके साम्प्रदायिक साहित्य पर नहीं। उनके विनय के पदों में भी

केवल समाज की ही झाँकी मिलती है, राजनीतिक उलझनो से सूर दूर ही रहे। उनके समाज-चित्रण मे भी परम्परागत विचारो का ही बाहुल्य है, जो सभी संतो की रचनाओं में समान रूप से मिलते हैं। सूर के साहित्य मे धार्मिक अत्याचार का कोई वर्णन नही मिलता; केवल सामाजिक दुरवस्था का ही संकेत प्राप्त होता है।

दीक्षा के बाद के उनके साहित्य मे सामाजिक अथवा राजनीतिक चित्रण नही मिलता। राधा और कृष्ण-सम्बन्धी ये वर्णन तत्कालीन स्थिति नहीं बताते। विषय की दृष्टि से सूर पर परम्परा और सम्प्रदाय दोनो का प्रभाव पड़ा है। लीलागान और पर्व आदि के वर्णन परम्पराओ और लोकगीतो से प्रभावित हैं। कथा के विषय पर भागवत एव अन्य पुराणो का प्रभाव है। मुख्य प्रभाव भागवत का ही है।

यद्यपि सूरदास पुष्टिमार्ग में दीक्षित हुए थे, फिर भी उनके ऊपर अन्य वैष्णव संप्रदायों का भी प्रभाव पडा था। जहाँ एक ओर वे नाथो और सिद्धों के सकेतो का प्रयोग करते हैं और सतों के दार्शनिक सिद्धान्तो का उल्लेख करते हैं, वहाँ दूसरी ओर अन्य वष्णव सप्रदायों से भी उन्होने कई बातें ली हैं। यद्यपि सूर शैव न थे, उन पर शिव-भक्ति का प्रभाव दीख पड़ता है।

प्रश्न ३—सूरदास के प्रामाणिक ग्रन्थों का विवेचन कीजिए।

अथवा

सूरदास की किन रचनाओं ने हिन्दी साहित्य कोष को श्री सम्पन्न किया है? उनका विस्तृत परिचय दीजिए और उनकी प्रामाणिकता के सम्बन्ध में अपने समुक्तिक विचार प्रकट कीजिए। (प्रभाकर जून १९५६)

उत्तर—सूर से सम्बन्धित २५ ग्रंथ बताए जाते हैं, जिनमे से बहुत तो 'सूर सागर' के ही अंश हैं और कुछ ऐसे हैं जो केवल टेक के कारण ही सूर के माने गये हैं। वे पच्चीस ग्रन्थ इस प्रकार हैं—सूर सारावली, भागवत भाषा, सूर रामायण, गोवर्धन लीला, भ्र ंवर गीत, प्राण प्यारी, सूर साठी, सूर के पद, एकादशी-माहात्म्य, साहित्य लहरी, दशमस्कंध भाषा, मानलीला, नाग-लीला, दृष्टिकूट पद, सूर पचीसी, नल-दमयन्ती, सूर सागर, सूरसागर सार,

राधारस केलि-कौतूहल, दान लीला, व्याहलो, सूर शतक, सेवाफल, हरिवश टीका, रामजन्म ।

आलोचको द्वारा तीन रचनाएँ ही—सूर सारावली, साहित्य लहरी और सूर सागर—प्रामाणिक मानी गई हैं। वार्ता साहित्य मे सहस्रावधि और लक्षावधि पदो का निर्देश है। 'सूर सारावली' मे भी 'एक लक्ष पद बध' का उल्लेख है। किंतु अब तक की खोज के फलस्वरूप केवल आठ-दस हजार पद ही प्राप्त हो सके हैं। कई आलोचको ने सूर के केवल एक हजार पद माने हैं और कई सवालाख तक मान बैठे हैं।

'सूर सागर' की प्राप्त प्रतियो मे पद सख्या मे महान् अन्तर है। मालूम पड़ता है जैसे-जैसे पद प्राप्त होते गए, उनको पुस्तक रूप मे सकलित कर लिया गया। उनके कीर्तन के पदो का सकलन उनके जीवन काल मे ही हो गया था, यद्यपि उनके समय की कोई प्रति सुरक्षित नही। सूर जैसे कवि के लिए अपने लम्बे जीवन मे सवा लाख पदों की रचना करना कोई असमंव बात नही। दीक्षा के पहले और बाद में उन्होंने इतने पदों की रचना अवश्य की होगी। काल के लम्बे व्यवधान मे न जाने कितने पद दब गए होंगे।

कालक्रम के अनुसार सूर के पदो को हम तीन भागो में बांट सकते हैं—(१) दीक्षा से पहले के पद (२) दीक्षा के बाद के वल्लभ कालीन पद और (३) गो० विट्ठल नाथ कालीन पद। इनमे से पहले दो काल के पदो का नियमित सग्रह न हुआ। गो० विट्ठलनाथ के समय में ही कीर्तन के पदो का सग्रह आवश्यक समझा गया, जो तीन सकलनों मे सामने आया—'नित्य कीर्तन, 'वर्षोत्सव' और 'बसत धमार'। इस प्रकार के और कई सग्रह ग्रथ हैं। ये सग्रह ग्रंथ ही मूल रूप मे 'सूर सागर' के जनक हैं। इस प्रकार सूर के केवल वे ही पद प्राप्त हैं, जो उन सगहो मे हैं, और वे भी पूर्ण रूप मे नही मिलते, क्योंकि जिन लोगों के पास वे हैं, वे उन्हें किसी को दिखाना भी नहीं चाहते।

आज केवल तीन सग्रह प्रसिद्ध हैं, सूरसारावली, साहित्य लहरी और सूर सागर।

(१) सूर सारावली—नाम से यह ग्रन्थ 'सूरसागर' का सार प्रतीत होता

है। परन्तु है नही। यह स्वतन्त्र संग्रह है। इसमे कुल ११०७ पद हैं। सम्पूर्ण ग्रन्थ मे लेखक ने ससार को होली का रूप दिया है। इस रूपक में सृष्टि की उत्पत्ति का सुन्दर वर्णन है, जो भागवत तथा अन्य पुराणों पर आधारित है। पहले इसमे सृष्टि निर्माण की कथा है, फिर २४ अवतारो के वर्णन के पश्चात् कृष्णावतार की कथा आरम्भ होती है। कृष्ण-लीलाओ का विस्तार से वर्णन हुआ है। कुछ अन्य विषय भी (जैसे रागो के नाम, वसत और होली का वर्णन आदि) हैं। अंतिम चार पदों में सारावली के पाठ का माहात्म्य दिया गया है।

डा० व्रजेश्वर वर्मा इस ग्रथ को अप्रामाणिक मानते है। डा० दीनदयालु के अनुसार यह सूरकृत ही है। 'सूर निर्णय' के लेखको ने काफी खोज के पश्चात् ये निष्कर्ष निकाले हैं—(१) कथा, भाव, भाषा और शैली की दृष्टि से यह सूरदास की प्रामाणिक रचना है। (२) इसकी रचना सं० १६०२ मे हुई। (३) इसका आधार 'पुरुषोत्तम सहस्रनाम' है। (४) इसका दृष्टिकोण सैद्धान्तिक है।

डा० मुशीराम और डा० हरवशलाल भी इसे प्रामाणिक रचना मानते हैं। वास्तव मे इसमे भागवत की कथा का निर्वाह 'सूरसागर' की अपेक्षा अधिक सावधानी से हुआ है। भावात्मकता के अभाव मे इसकी शैली 'सूरसागर' से भिन्न है। यह ग्रन्थ होली गान के रूप मे लिखा गया है। यह स्वतन्त्र रचना है। भक्तो मे इस प्रकार की रचनाओ की परम्परा भी रही है।

डा० हरवशलाल के शब्दो मे 'सूरसारावली' सिद्धान्त रूप में लिखा हुआ पृथक् शैली में एक पृथक् ग्रन्थ है।"

(२) साहित्य-लहरी—इस ग्रन्थ मे दृष्टि कूट-पदो का सग्रह है। इसमे ११८ पद हैं। इसकी दो टीकाए भी हैं। इसके विषय मे विचारणीय प्रश्न यह है कि यह एक स्वतन्त्र रचना है या 'सूरसागर' के दृष्टि कूट पदो का सग्रह मात्र। डा० हरवशलाल इसे स्वतन्त्र ग्रन्थ मानते है, जिसका संकलन सूरदास के जीवनकाल मे ही हो गया था। इसके वर्तमान रूप मे कुछ पद अवश्य प्रक्षिप्त हैं। इस ग्रन्थ के अधिकांश पदों मे नायिका भेद, अलकार आदि का विवेचन है। डा० व्रजेश्वर वर्मा इस ग्रन्थ को अप्रामाणिक मानते हैं।

पद संख्या १०६ अवश्य विचारणीय है — "मुनि पुनि रसन के रस लेख। दसन गौरीनन्द को लिखि सुबल संवत पेख।…" यह पद सम्भवत: बाद में जोड दिया गया हो। इस पद के बाद के पद तो निश्चयत: प्रक्षिप्त हैं।

'साहित्य-लहरी' के आधार पर कई आलोचक सूर की भक्तिभावना को शृंगार से लांछित ठहराते हैं, परन्तु वास्तव मे सासारिक धरातल से ऊंचे उठे हुए सूर के प्रणय लीलाओ के वर्णन मे सरसता, विह्वलता और मादकता तो है, परन्तु वासना या ऐन्द्रियता नहीं। उसकी अलौकिकता के साथ है।

(३) सूरसागर—यह कवि की प्रामाणिक और महत्वपूर्ण रचना है। सम्भवत: सूर के जीवन काल में ही यह सगृहीत हो गई हो। 'सूर-सागर' की दो प्रकार की प्रतियाँ हमे प्राप्त होती हैं—(१) सग्रहात्मक और (४) द्वादश स्कधात्मक। दोनो के पदक्रम मे बहुत अन्तर है। सग्रहात्मक प्रतियाँ द्वादश स्कधात्मक प्रतियो की अपेक्षा सौ वर्ष पुरानी हैं। सग्रहात्मक प्रतियों का पाठ अधिक शुद्ध है, उनका पदक्रम भी अधिक प्रामाणिक है।

मुद्रित प्रतियो मे नवलकिशोर प्रेस, लखनऊ वाला सस्करण प्राचीन प्रति पर आधारित है। इसके दो भाग हैं, 'नित्यकीर्तन के पद' और 'लीला के पद'। द्वादशस्कधात्मक प्रतियो मे सबसे प्रामाणिक काशी नागरी प्रचारिणी द्वारा प्रकाशित सस्करण है, जो दो भागो मे है। दोनो भागों मे पदो की संख्या ४९३६ है, इनके अतिरिक्त दो परिशिष्टो मे ४७३ पद और हैं। इस प्रकार कुल ५४०९ पद हैं। सपादक की दृष्टि से परिशिष्ट के पद सदिग्ध हैं।

पुष्टि मार्ग की सेवा पद्धति के दो क्रम हैं—दैनिक और वार्षिक। सूरदास का अधिकाश काव्य दैनिक और वर्षोत्सव के कीर्तन-रूप मे है। उसके अन्य सखा भी दोनो प्रकार की सेवाविधियो के पद बनाते थे। इस प्रकार 'अष्ट-छाप' के कवियो ने अगणित पद रचे।

द्वादश स्कंधात्मक प्रतियो का क्रम 'भागवत' के अनुसार है, फिर भी दोनों में पर्याप्त अन्तर है। आजकल 'द्वादश स्कन्धात्मक' प्रति का ही विशेष प्रचार है।

प्रश्न ४—भक्ति का आरम्भ बताते हुए भक्ति सम्बन्धी उन दार्शनिक सम्प्रदायों का परिचय दीजिए, जिनसे सूर-साहित्य प्रेरित हुआ।

अथवा

वैदिक युग से भक्ति का विकास बताते हुए सगुण भक्ति का विवेचन कीजिए।

उत्तर—ऋग्वेद में यद्यपि विष्णु सम्बन्धी ऋचाएँ कम हैं, तथापि उसकी श्रेष्ठता मानी गई है। कुछ ऋचाओं मे विष्णु के सामीप्य की प्रार्थना भी मिलती है। अवतार वाद के विषय में यद्यपि वेदो में स्पष्ट कुछ नही मिलता, तो भी उसके सिद्धान्त का आधार 'पुरुषसूक्त' मे मिल जाता है। विष्णु में कुछ ऐसी विशेषताए हैं, जिनके कारण उसके विषय में अवतारवाद का सिद्धान्त बना। वेदो मे यह बीज रूप मे है, परन्तु उपनिषदो तक आते-आते यह सिद्धान्त कुछ आगे बढ़ा। कुछ उपनिषदो मे भक्ति के विभिन्न अ गो का यथेष्ट विवेचन मिलता है। भक्ति के लिए आवश्यक ब्रह्म के निर्गुण और सगुण दोनो रूपों का वर्णन उपनिषत्कारो ने किया है। चिंतन के क्षेत्र में निर्गुण एवं भक्ति के क्षेत्र में सगुण ब्रह्म का प्रतिपादन इनके द्वारा हुआ है, और इन्हीं से आगे चलकर राम, कृष्ण आदि की भक्ति प्रारम्भ हुई। ब्रह्म के सगुण स्वरूपो मे विष्णु की महत्ता बढती गई और अब वह त्रिदेवो मे स्थापित हुआ तथा सर्वश्रेष्ठ बना। विष्णु की यह बढती हुई महत्ता वैष्णव भक्तिमार्ग के विकास की द्योतक है। आचार्य शुक्ल के शब्दो मे "उपास्य के अधिक सानिध्य की उत्कंठा से···विष्णु की नराकार भावना नारायण (विष्णु) के रूप में हुई।" ('सूरदास')

विष्णु के इस स्वरूप के साक्षात्कार के लिए विधान रूप मे कुछ कर्मों की आवश्यकता बताई गई। ब्राह्मण ग्रन्थो में पच महायज्ञों का विधान मिलता है।

रामायण काल में भक्ति के सिद्धान्तो का यथेष्ट विकास हुआ। इस काल मे अवतारवाद की पूर्ण प्रतिष्ठा हो चुकी थी। वाल्मीकि ने भक्ति के लिए रामनाम के स्मरण और कीर्तन का महत्त्व बताया है। भक्ति मार्ग की वास्तविक प्रतिष्ठा महाभारत काल मे हुई। महाभारत के पात्र कृष्ण को सगुण अवतार के रूप मे मानते हैं। कृष्णोपासना के नारायणीय, सात्वत आदि विभिन्न सम्प्रदायो का प्रतिपादन हमें यहाँ मिलता है।

जनता में इस भक्ति भावना का विकास प्राचीन शिला-लेखों से प्रमाणित

होता है। नानाघाट, घोसुंडी और बेसनगर के इस्वी पूर्व दूसरी-तीसरी सदी के शिलालेखो से मालूम पडता है कि उस समय वासुदेव की पूजा होती थी और उनके उपासक 'भगवत' कहलाते थे। बेसनगर के शिलालेख (ई पू. २००) मे हेलियोदोर [जो एक ग्रीक राजदूत था] अपने को वासुदेव का गरुडध्वज बनानेवाला कहता है। इस प्रकार यूनानी भी इस भागवत धर्म को मानते थे।

इससे भी पहले पाणिनि [ई. पू ६ठी सदी] के समय मे भी भगवत धर्म का प्रचार था। जैसा कि कहा जा चुका है, महाभारत मे अवतार वाद की पूर्ण प्रतिष्ठा है। बुद्ध के निर्वाण के पश्चात् बौद्धो मे जो भ्रष्टाचार फैला, उससे असन्तुष्ट जनता ने वेदव्यास द्वारा स्थापित भक्तिमार्ग को विशेष समान दिया। फलस्वरूप भक्ति का यह आन्दोलन पहले से अधिक विकसित रूप लेकर आया। इस भक्तिपथ को अंतिम और सुनिश्चित स्वरूप गीता में मिला। गीता का भगवत धर्म और नारायणीय तथा सात्वत धर्म मूलत एक ही हैं।

इस भक्तिभावना के प्रसार के साथ नामो मे भी परिवर्तन हुआ। महाभाष्य मे वासुदेव के केशव, जनार्दन और कृष्ण, तीनो नाम आते हैं। इनमे कृष्ण नाम अधिक प्रचलित होता गया। यह नाम सर्वप्रथम ऋग्वेद मे मिलता है। छान्दोग्योपनिषद् मे देवकी-पुत्र कृष्ण का उल्लेख है। आगे चलकर कृष्ण और वासुदेव को मिला दिया गया।

वैष्णव धर्म के क्रमिक विकास के साथ-साथ दार्शनिको ने हृदय योग की भी आवश्यकता अनुभव की और तदनुसार ब्रह्म के स्वरूप के निरूपण के साथ भक्ति मार्ग की प्रक्रियाओ का विधान भी हुआ। गीता मे ज्ञान के साथ आत्म-समर्पण को भी मोक्ष का साधन माना गया है। दूसरे शब्दो मे, गीता के अनुसार श्रद्धा, समर्पण और भक्ति भावना महत्वपूर्ण है। यद्यपि उसमे कर्मयोग का प्रतिपादन है, तथापि वह कर्म को उपासना रूप मे ग्रहण करने को कहती है, जिससे हम आत्म-समर्पण तक पहुच जाएँ। गीता के अन्तिम अध्याय में कृष्ण कहते हैं कि हे अर्जुन, तुम अपने हृदय मे मुझे बसा कर मेरी शरण मे आ जाओ। इस प्रकार आत्म-समर्पण के भाव से ओत प्रोत है, जो भक्ति की सर्वश्रेष्ठ प्रक्रिया है। वास्तव मे गीता भक्ति का सर्व प्रथम शास्त्रीय ग्रन्थ है। वास्तव में गीता भक्ति का प्रतिपादन है। श्रवण, भजन, कीर्तन,

नामस्मरण, पादसेवन, आत्म—निवेदन आदि भक्ति के विभिन्न सोपानो का वर्णन गीता मे जहाँ-तहाँ हुआ है। इससे विदित होता है कि गीता एक भक्ति-ग्रन्थ है और उसमे भक्ति की समस्त विधियो का समावेश है।

भक्ति का विस्तृत विवेचन सूत्र काल मे हुआ। नारद और शाडिल्य ने भक्ति की विशद व्याख्या की है। नारद के अनुसार "भक्ति चित्त की वह वृत्ति है, जिसकी प्राप्ति होने पर व्यक्ति के सारे कर्म ईश्वर को अर्पित हो जाते हैं।" शाडिल्य के अनुसार ईश्वर मे अनुराग 'परा भक्ति' है—'सा परानुरक्ति रीश्वरे। दूसरे शब्दो मे वह शुद्ध रागात्मिका वृत्ति है। इन दोनो आचार्यों की भक्ति का स्वरूप प्राय एक जैसा है। भक्ति की इनकी व्याख्या शास्त्रीय है।

सर्व प्रथम भक्ति के विविध अङ्गो का विस्तृत निरूपण श्रीमद्भागवत मे हुआ। भक्ति का वास्तविक प्रचार भागवत द्वारा ही हुआ। इसी ने कृष्ण के चरित्र की मधुरता का रसास्वादन कराकर भारत के विभिन्न प्रदेशो मे कृष्णो-पासना के वैष्णव सिद्धातो की स्थापना की। अजामिल, अम्बरीष आदि भक्तो के उद्धार की कहानियों द्वारा भक्ति-मार्ग की उपादेयता का इसके द्वारा प्रतिपादन हुआ।

भक्ति मार्ग में भक्त को जिन भावो को हृदय मे धारण करना चाहिए, उनका आदर्श-निरूपण भागवत मे हुआ है। पहले के ग्रन्थो में इसका अभाव है। दास्य भाव वाले भक्त की दिनचर्या आदि का विस्तृत विवेचन यहाँ हमे मिलता है। सख्य और वात्सल्य भावो का वर्णन भी विशद रूप मे हुआ है। कृष्ण की बाल लीलाओ मे ये भाव वर्णित हैं। रति भाव भागवत का आदर्श भाव है, जो माखन लीला, चीरहरण, रासलीला आदि मे व्यजित हुआ है। रतिभाव द्वारा इन लीलाओ मे परम आनन्द की प्राप्ति भागवत की विशेपता है।

भागवत की रस सरिता मे जनता को नहलाकर, उसका मधुरस पान कराने वाले आगे चलकर रामानुज, मध्व, निम्बार्क और वल्लभ आदि हुए।

भारतवर्ष मे आठवी शताब्दी अशाति और अव्यवस्था से पूर्ण थी। बौद्धो की तर्कवादी विचार-धारा सर्वत्र फैल रही थी। फलत. शंकराचार्य का आगमन हुआ, जिन्होंने अद्वैत सिद्धात की स्थापना की। इस सिद्धात के सामने दास्य भक्ति का सिद्धात न टिक सकता था, क्योंकि जब ब्रह्म और जीव एक

हैं तो कौन किसकी भक्ति करे ? इस प्रकार अद्वैतवाद की प्रतिष्ठा से वैष्णव धर्म की सहज गति मे बाधा पडी, यद्यपि स्वय शकर भक्ति के कई सिद्धातो को मानते थे। इसका विरोध करने के लिए यामुनाचार्य ने अपने शिष्य रामानुज को वेदात सूत्र पर भाष्य करने को कहा। अद्वैतवाद भी वेदात सूत्र पर आधारित था, उसी के आधार पर अब भक्तिवाद की स्थापना करती थी। रामानुज के भक्ति-सिद्धातो के साथ अन्य भक्ति-सिद्धान्तो का भी प्रसार हुआ। इन सबका परिचय इस प्रकार है —

रामानुजाचार्य—इन्होने अद्वैतवाद के विरोध मे विशिष्टाद्वैतवाद का सिद्धात चलाया। इनके सिद्धांत के अनुसार ईश्वर एक तो है, पर वह जीव, जगत् और ईश्वर—इन तीन रूपों में विशिष्ट है। इसीलिए इनका सिद्धात 'वि[illegible]ष्ट अद्वैतवाद' कहलाता है। आचरण की दृष्टि से इस मत ने भक्ति को प्रधानता दी।

रामानन्द—दर्शन पक्ष में रामानन्द रामानुज की ही परम्परा में आते हैं, परन्तु जहाँ रामानुज के उपास्य लक्ष्मीनारायण हैं, रामानन्द के उपास्य सीताराम हैं। साथ ही इन्होने रामानुज के कर्म काड की उपेक्षा कर एक मात्र भक्ति को सर्व श्रेष्ठ घोषित किया।

माध्वाचार्य—इन्होंने द्वैतवाद का प्रवर्तन किया, जिसके अनुसार ब्रह्म और जीव की पृथक् स्वतन्त्र सत्ता है। अपने मत का आधार इन्होंने 'भागवत' को ही बनाया। इनके मत में विष्णु ही सर्वोच्च परम तत्त्व हैं। माध्व ने सभी अवतारो को पूर्ण कहा, जबकि 'भागवत' के अनुसार केवल कृष्णावतार ही पूर्ण है।

निंबार्काचार्य—इन्होंने 'द्वैताद्वैत वाद' का प्रवर्तन किया, जिसके अनुसार ब्रह्म से भिन्न होता हुआ भी जीव ब्रह्म में अपना अस्तित्व खो देता है। ये रामानुज से काफी प्रभावित हैं, परन्तु कृष्ण के साथ राधा के महत्व की स्थापना इनकी अपनी विशेषता है। इसमे राधा कृष्ण की युगल मूर्ति की उपासना होती है। 'भागवत' में राधा का कही उल्लेख नही। 'स्कन्द पुराण' में इनका प्रथम उल्लेख मिलता है। 'राधिकोपनिषद्' म राधा को कृष्ण की आनन्द दायिनी शक्ति कहा गया है। निंबार्क की राधा का भी यही स्वरूप है।

विष्णु स्वामी—इन्होंने 'शुद्धाद्वैतवाद' का प्रतिपादन किया, जिसे आगे चलकर वल्लभाचार्य ने अपनाया। इन्होने भक्ति क्षेत्र मे कृष्ण के साथ राधा को भी स्थान दिया।

वल्लभाचार्य—इन्होंने 'शुद्धाद्वैत वाद' को अपनाया। शंकर की माया के लिए इसमे कोई स्थान नही, इसलिए यह अद्वैतवाद 'शुद्ध' कहलाया। इसमें भक्ति को ज्ञान से श्रेष्ठ स्थान मिला है। भक्ति कृष्ण (जो ब्रह्म है) के अनुग्रह से प्राप्त होती है। इस अनुग्रह को 'पुष्टि' कहते हैं, इसीलिए इनका मार्ग 'पुष्टि-मार्ग' कहलाता है। यह पुष्टि चार प्रकार की होती है, प्रवाह पुष्टि, मर्यादा पुष्टि, पुष्टि पुष्टि और शुद्ध पुष्टि। इनमे शुद्ध पुष्टि ही भक्त का चरम उद्देश्य होता है, जिसमें जीव राधा-कृष्ण के साथ गोलोक मे निवास पाता है।

इन सम्प्रदायो के अतिरिक्त दक्षिण के आचार्यों के प्रभाव से कुछ ऐसे सम्प्रदाय चले, जिनमे केवल रागात्मिका भक्ति की ही प्रधानता थी। हरिदास के सखी सम्प्रदाय मे राधाकृष्ण की युगल उपासना पर ही विशेष बल दिया गया। दूसरा सम्प्रदाय राधा वल्लभीय था, जिसके प्रवर्तक हित हरिवंश थे। राधा को इष्टदेवी मानना (कृष्ण को नही) इस सम्प्रदाय की विशेषता है। इनके साथ शैव सम्प्रदायो की परम्परा भी दक्षिण मे चल रही थी, जिनमे पाशुपत, शाक्त आदि मुख्य हैं। उत्तरी भारत मे बौद्धो, जैनो और नाथो की भी अनेक शाखाएँ थी। इन विभिन्न सम्प्रदायो के अतिरिक्त एक ऐसा वर्ग भी था जो मनुष्य की सामान्य भावभूमि पर ईश्वर प्रेम का प्रतिपादन कर रहा था। कबीर, नानक, दादू, नामदेव आदि इसी परम्परा मे आते हैं। इस प्रकार भक्ति का आन्दोलन अनेक रूपो मे चल रहा था।

सूर-साहित्य के प्रेरणास्रोत—सूरदास के पहले की पाँच-छः शताब्दियाँ धार्मिक क्षेत्र मे उथलपुथल की शताब्दियाँ थी। सूर यद्यपि एक सम्प्रदाय में दीक्षित थे, तथापि वे अपने युग के धार्मिक आन्दोलन को तटस्थ की भाँति केवल देख ही नही रहे थे। इसलिए उनके साहित्य मे सम्प्रदाय की परम्परा के अनुकूल वर्णन के साथ-साथ सामयिक परिस्थितियो की ओर भी सकेत है।

यद्यपि सूर पर 'भागवत' का सर्वाधिक प्रभाव पडा है [क्योकि पुष्टि सम्प्रदाय मे इसका विशेष महत्त्व है], तो भी उन्होने अन्य पुराणो से भी कथाओं के सूत्र लिए हैं। 'सूरसागर' को 'भागवत' का अनुवाद कहना गलत है। वस्तुत:

दशमस्कध को छोड़कर अन्य स्कधो मे भागवत के अनुसरण की बात केवल दुहराई ही गई है। उसमें तो केवल वे ही स्थल आए हैं, जहाँ भगवान् के यश का वर्णन, 'हरिभक्ति की महिमा और भक्तो का गुणगान है। केवल वर्णनात्मक प्रसगो मे ही 'भागवत' का अनुसरण है। 'भागवत के पौराणिक आख्यानो तथा दार्शनिक सिद्धान्तो को सूर ने नही लिया-ऐसे स्थलो पर उसका मन रमा नही है। 'सूरसागर' में उनकी कविता के हमें कई रूप प्राप्त होते हैं—[१] दीक्षा से पहले का रूप, [२] दीक्षा के बाद का रूप और [३] सामयिक प्रभाव से प्रभावित रूप। विषय की दृष्टि से सूर के सारे पदो को हम तीन भागो में बांट सकते हैं—

[१] ऐतिहासिक और वर्णनात्मक पद—जिनका आधार 'भागवत' के अतिरिक्त हरिवंश पुराण, विष्णु पुराण, पद्मपुराण आदि तथा रामायण और महाभारत हैं।

(२) भक्ति तथा दर्शन सम्बन्धी पद—जिनका आधार उक्त सामग्री के अतिरिक्त उनका अपना भक्तहृदय मुख्यत है।

[३] लीला परक पद—चार प्रकार के हैं-[क] भागवत पर आधारित जो मुख्य. दशमस्कध मे हैं। [ख] भागवत पर आधारित, किंतु कवि-कल्पना द्वारा विस्तारित। [ग] पूर्णतया मौलिक, जैसे राधाकृष्ण मिलन, पनघट प्रस्ताव और दान लीला आदि। [घ] वामन पुराण, ब्रह्मवैवर्त पुराण आदि अन्य पुराणो पर आधारित।

वस्तुत सूर ने अपने गुरु से जो भागवततत्त्व सुना था, उसी के आधार पर उन्होंने साहित्य सृजन किया। अन्य पुराणों की चर्चाएँ भी उन्होने सुनी होगी और उन सबके आधार पर कृष्ण लीलाओं का विविध गान किया। आधार के चक्कर म वे नही पड़े। वे एक सिद्ध कवि थे जिनकी प्रतिभा बिजली के तार की भाँति स्पर्शमात्र से चमक उठती थी।

प्रश्न ५ "सूर उच्च कोटि के भक्त थे। उनकी भक्ति अत करण की प्रेरणा और हृदय की अनुभूति थी।" सूरदास की भक्ति का स्वरूप बताते हुए उक्त उक्ति का समर्थन कीजिए।

उत्तर—सूरदास ने जहाँ एक ओर समकालीन परिस्थितियो के प्रति उदासीनता दिखाई, वहाँ दूसरी ओर समाज की माननीय दुर्बलताओ से समझौता

भी किया है। विलासिता उस युग की प्रमुख दुर्बलता थी और इसका सुन्दर उपयोग उन्होने किया है। डा० हजारीप्रसाद के शब्दो मे "उन्होने भजन के पारस पत्थर से स्पर्श कराके विलासिता रूपी कुधातु को भी सोना बना दिया है। गौ० विट्ठलनाथ ने समस्त विलास सामग्री अपने आराध्य को अर्पित करके मन से विलासिता को दूर करने का उपाय निकाला। सूर के साहित्य मे यद्यपि विलास है, किन्तु वह मर्यादा मे है यथा भक्तिभाव द्वारा पावित है।

'भागवत' मे भक्त को सर्वोपरि माना गया है, परन्तु ज्ञान और कर्म को भी अपनाया है। सूर ने भक्ति को तो महत्त्व दिया है, परन्तु ज्ञान और कर्म की प्रतिष्ठा नही की। उनके अनुसार भवसागर से छूटने का एक मात्र उपाय हरि भक्ति है, जिसके द्वारा मन स्वच्छ होता हैं। भक्ति स्वत पूर्ण है; वह साधन नही, साध्य है। हरि-भक्ति स्वय हरि है, वह ब्रह्मा और शिव से भी महान् है। भक्ति के बिना ज्ञान और कर्म व्यर्थ हैं। विनय के पदो मे इसी प्रकार की भक्ति भावना भरी है। उन्होने उनके पापियो के उदाहरण द्वारा सिद्ध किया है कि भक्ति से सब पाप नष्ट हो जाते हैं। उनके विनय पदो की तुलना तुलसी की 'विनय पत्रिका' से की जा सकती है। दोनो मे दैन्य भाव की पराकाष्ठा है और भक्ति की महिमा का वर्णन है। सूर के पदो मे तल्लीनता और मार्मिकता विशेष है। आत्मसमर्पण उनमें पूर्ण रूप से है—"करी गोपाल की सब होइ। जो अपनौ पुरुषारथ मानत अति भूठौ है सोइ। ''सूरदास' स्वामी करुणामय श्यामचरन मन पोइ।" वे कहते हैं—"सबै समर्पौ 'सूर' श्याम को।" सारे प्रथम स्कध मे हरि भक्ति की महिमा का ही गान है। द्वितीय स्कध भी भजन की महिमा से शुरू हुआ है।

सूर ने स्थान-स्थान पर वैराग्य का महत्त्व बताया है। भक्तों के लिए वैराग्य अनिवार्य है, क्योंकि इसीसे पूर्ण आत्म-समर्पण का भाव पैदा हो सकता है। अनेक स्थलो पर सूर ने वैराग्य पूर्ण भक्ति का प्रतिपादन किया है। आत्मज्ञान भी भक्ति के लिए आवश्यक है।

सूरदास ने अपनी भक्ति मे सतमत के तत्त्वों को भी अपनाया है। जाति-पांति के विषय मे उनके विचार कबीर से बिल्कुल मिलते हैं। वे कहते हैं—"जाति पाँति कोऊ पूछत नाहीं श्रीपति के दरबार।" सूर के दीक्षा से पूर्व के कई पद कबीर के पदो के समकक्ष रखे जा सकते हैं। हाँ, उनके बाद के

पदो म, जहाँ उन्होने कृष्ण की लीलाओ के आधार पर सहज भक्ति-मार्ग का निरूपण किया है, सतमत से अवश्य विरोध है। 'भ्रमरगीत' मे उनका विरोध स्पष्ट भासित हो जाता है।

'भागवत' मे नवधा भक्ति का उल्लेख है; परन्तु सूर ने प्रेमस्वरूपा भक्ति का प्रतिपादन किया है और उसके साधन के रूप मे नवधा भक्ति को माना है। श्रवण, कीर्तन, स्मरण, पादसेवन, अर्चन, वदन, दास्य, सख्य और आत्म-निवेदन नवधा भक्ति है। इन नौ प्रकारो मे प्रथम छ का विस्तृत विवेचन सूर ने नही किया, क्योकि उनका सम्बन्ध मुख्यत भगवान् के नाम और रूप से है। अ तिम तीन प्रकार मन से सबद्ध हैं और यही रस की कोटि तक पहुँचाते है।

श्रवण, कीर्तन, स्मरण—इन तीनो मे भगवान् के नाम का ही महत्त्व है। नाममहिमा के प्रतिपादन मे सूर ने अनेक पद लिखे हैं। वे कहते हैं—को न तरयो हरि नाम लिये। सुआ पढावति गनिका तारी, व्याध तरो सर घात किये।" 'कीर्तन' का महत्त्व उन्होने प्रतिपादित किया है—"सोइ भलो जो रामहि गावै।" कीर्तन मे सगीत का पुट देकर उन्होने सोने मे सुगन्ध पैदा कर दी। 'हरिस्मरण' मुक्ति के लिए अनिवार्य है—"सौ बातनि की एकै बात, 'सूर' सुमरि हरि हरि दिन रात" हरि गुणो का 'श्रवण' भी महत्त्वपूर्ण है, क्योकि "जो यह लीला सुनै सुनावै, सो हरि भक्ति पाइ सुख पावै।"

पादसेवन, अर्चन, वन्दन—ये तीनो साधन भगवान् के रूप से सम्बन्धित हैं। 'पादसेवन' मे मूर्ति पूजा, गुरुपूजा और भक्त पूजा समिलित है 'सूरसागर' का पहला पद ही चरणवदन से आरम्भ होता है —"चरण कमल वन्दौ हरि-राई।" भगवान् के स्वरूप की उपासना 'अर्चन' है। वल्लभ सम्प्रदाय मे अर्चन भक्ति का बडा महत्त्व है। कृष्ण के रूप का वर्णन इसके अ तगत आता है। सूर के विनय पद 'वंदन' के पद कहे जा सकते हैं। उनकी भावुकता इन पदो मे शतमुखी होकर प्रवाहित हुई है।

दास्य, सख्य, आत्मनिवेदन—ये तीनो मानसिक भाव हैं और भक्ति रस के मूल है। रूप गोस्वामी ने इन तीनो को पाँच भक्ति रसो के अन्तर्गत मान है। ये पाँच भक्ति रस है शात, सख्य, वात्सल्य, माधुर्य और प्रेम। इन के आधार पर सूर की भक्ति भावना का निरूपण किया जाएगा।

(१) शांत भक्ति—वैराग्य, दैन्य, विनय आदि भावो से प्रेरित होकर सूर ने जो पद लिखे है, उन्हे शान्ता भक्ति विषयक पद कहा जा सकता है। सूर के विनय पदो मे इस प्रकार के भाव भरे पडे है। इनके अतिरिक्त दीक्षा के वाद के पदो मे भी दैन्यभाव प्रकट किया गया है। यह कहना गलत है कि सूर की शान्ता भक्ति दीक्षा से पहले की है, क्योकि आचार्य वल्लभ स्वय शाता भक्ति को महत्त्व देते थे।

(२) सख्य-भक्ति—पुष्टि मार्ग मे सख्य भाव का बडा महत्त्व है। सूरदास के सख्य भाव की विशेपता है कि उसमे स्वभाविक मानवीय सम्बन्धो के निर्वाह के साथ-साथ भक्ति की पूरी तल्लीनता और भावात्मकता की पूर्ण अनुभूति है। सखाओ के प्रति कृष्ण की आत्मीयता स्वभाविक है। जिससे स्नेह की मधुरिमा टपकती है। सूर का सख्य वर्णन विश्व साहित्य मे वेजोड़ है। कृष्ण के प्रति सखाओ की भावना का वर्णन कम हुआ है, कृष्ण भी सखाओ को अपने गौरव से दवाना नही चाहते। 'सूरसागर' मे वाल लीलाएँ, गो-चारण लीलाएँ और सुदामा की दरिद्रता-ये प्रसग सख्य-भक्ति के है। सखाओ मे सुवल, सुदामा और श्रीदामा मुख्य हैं। हलधर भी उनके सखा ही तो हैं। कुछ सखा छोटे हैं जो उनके स्नेह पात्र है। उनके समवयस्क सखा ही उनके पूर्ण विश्वास पात्र और भक्त हैं। कृष्ण और उनके मित्रो के सख्यभाव को देखकर ब्रह्मा का गर्व भी नष्ट हो जाता है। वह भी व्रज मे उत्पन्न होने की कामना करते हैं। इस सख्यभाव की सवमे वडी विशेषता है उसमे स्वाभाविकता का समावेश, कालियदमन, गोवर्धन धारण आदि प्रसगो मे कृष्ण के सखा कृष्ण की अलौकिकता को भूलकर स्वाभाविक सखाभाव को अपनाए हुए हैं।

दान लीला मे भी सखा उनके साथ हैं। रास लीलाओ मे भी कृष्ण इनसे परामर्श लेते थे। ये सखा मोहन की मुरली से अत्यन्त आकृष्ट है। कहते हैं—'छबीले मुरली नैकु वजाउ।' डा० हजारी प्रसाद के मत मे, इस पद मे स्वय कवि अपनी व्याकुलता प्रकट कर रहा है। वियोग मे भी यह सख्यभाव वना हुआ है। इन सखाओ के लिए वे सखा ही है, चाहे वे आज महाराज हो गए हो, उनके लिए तो माखन चोर, मुरलीधर श्याम ही हैं।

(३) वात्सल्य—मनोवैज्ञानिक दृष्टि से वात्सल्य भक्ति अन्य सव प्रकार की भक्तियो से उच्च है, क्योकि इसमे स्वार्थ का वास नही होता, इसे हम

निष्काम भक्ति का पोषक कह सकते हैं। यह एक व्यापक भाव है, जो प्राणि-मात्र के हृदय मे होता है। सूर का वात्सल्य भाव अद्वितीय है। पुरुष होकर भी सूर ने माता का हृदय पाया था। वस्तुत वह यशोदा के माध्यम से कृष्ण की शिशु लीलाओ का आनन्द लेते थे।

डा० हजारी प्रसाद के शब्दो मे, "यशोदा के वात्सल्य मे वह सब-कुछ है जो माता शब्द को इतना महिमाशाली बनाये हुए है। उसके बहाने सूरदास ने मातृहृदय का ऐसा स्वाभाविक, सरल और हृदयग्राही चित्र खीचा है कि आश्चर्य होता है।" सयोग और वियोग मे माता की मन स्थिति का सजीव चित्रण सूर ने किया है। यशोदा के साथ वात्सल्य भाव का आश्रय नन्द भी है, परन्तु वात्सल्य की पूर्ण निष्पत्ति यशोदा मे हुई है, जो भक्ति रस की कोटि तक पहुँचा है। वात्सल्य ही भक्ति का सर्व शुद्ध भाव है, क्योकि इसमे न विरक्ति है, न स्वार्थ, न एन्द्रियता। वात्सल्य का वियोग पक्ष अधिक मार्मिक है—

सँदेसो देवकी सौं कहियौ।
हौं तो धाय तिहारे सुत की, माया करत ही रहियौ।
जदपि टेव तुम जानति ह्वै हौ, तऊ मोहिं कहि आवै।
× × ×
'सूर' पथिक सुनि' मोहिं रैनि दिन, बढ्यौ रहत उर सोच।
मेरो अलक लडैतो मोहन, ह्वैहै करत संकोच।

यशोदा के वात्सल्य मे सूर ने इतनी तन्मयता और मनोवैज्ञानिकता भरदी है कि कृष्ण के अलौकिक कार्यों को सामने देखकर भी उस भाव मे विकार नही आने पाया (वात्सल्य रस के लिए देखिए, प्रश्न १३)।

(४) मधुरा भक्ति—अपने 'शृंगार रस मडल' मे गो० विट्ठलनाथ ने इस भक्ति का प्रतिपादन किया है। माधुर्य भाव की भक्ति शृंगार प्रेम की भक्ति कही जा सकती है। लोक पक्ष का शृंगार रस भक्ति पक्ष मे मधुर रस कहलाता है। गो० विट्ठल नाथ ने मन को विषयो से हटाने के लिए इसे एक उत्तम साधन बताया है। सूरदास की भक्ति भावना स्त्री भाव मे ओतप्रोत है, जिसका प्रतिनिधित्व गोपियां करती हैं। सयोग-वियोग मे गोपियो का प्रेम एकरूप है। आत्म समर्पण और अनन्य भाव, जो इस भक्ति के लिए अनिवार्य है, दान लीला, चीरहरण और रासलीला के प्रसगो मे पूर्णता को प्राप्त हुए हैं।

मधुर भक्ति का अभूतपूर्व वर्णन सूर ने किया है।

सूरदास का विरह सयोग से भी अधिक उज्जवल और प्रबल है। गोपियो की विरह स्थिति कितनी मार्मिक है जब वे कहती हैं—

निशिदिन बरसत नैन हमारे।

सदा रहत पावस रितु हमपै, जबतें श्याम सिधारे।

[विस्तार के लिए देखिये, प्रश्न १३, रस।]

(५) प्रेम-भक्ति—इस प्रेम भक्ति की प्राप्ति सूर ने नवधा भक्ति द्वारा मानी है। इसकी प्राप्ति का मुख्य साधन प्रभु का अनुग्रह है। इसका फल व्रज मे निवास है, जिसके मिलने पर भक्त को कोई चिंता नही रहती। इसीलिए उनकी गोपियाँ कहती हैं—"ऊधो, मन मे नाहिन ठौर।' या 'ऊधो, मन नाहीं दस-बीस। एक हुतो सो गयो श्यामसंग को आराधे ईस॥" प्रेम की अनन्यता मे प्रेमी अन्य किसी वस्तु की कामना नही करता, चाहे वह वस्तु कितनी ही अच्छी हो, क्योकि यह तो 'मन भाने की बात' है गोपियो का प्रेम हिमालय की भाँति अटल है, उद्धव के ज्ञानोपदेश की झंझा उसे हिला नही सकती।

चूंकि इस प्रेम की प्राप्ति भगवान् के अनुग्रह से होती है, सूर ने इस अनुग्रह का कई स्थानो पर वर्णन किया है। प्रेम भक्ति के स्वरूप का पूर्ण विवेचन हमे 'सूरसागर' मे मिलता है।

सूर का प्रेम वर्णन मर्यादित है। गोपियो के सम्बन्ध में जो कुल मर्यादा का उल्लघन है, वह कृष्ण के प्रति तादात्म्य स्थापित करने के लिए है। अन्यथा कवि ने सर्वत्र सदाचार को बल दिया है। इसलिए वे स्वकीया भाव को लेकर आगे बढे हैं।

सूर की प्रेम भक्ति अपने आप मे पूर्ण है। उसमे सामयिक प्रभाव और मौलिकता भी है। प्राचीन परम्परा के दर्शन भी उसमे होते हैं। कृष्ण और गोपियो की शृ गारिक चेष्टाओ के पीछे भक्ति का निर्मल स्वरूप झाँक रहा है। एक युग कवि की भाँति, सूर धार्मिक क्षेत्र मे भी युग का प्रतिनिधित्व करते हैं।

सूर उच्च कोटि के भक्त थे। उनकी भक्ति अन्त.करण की प्रेरणा और हृदय की अनुभूति थी। साथ-साथ कवि भी होने से उनकी अनुभूति मे कल्पना

का भी सुन्दर योग हुआ है। सगीत-रसिक होने के कारण उनकी कविता में सगीत तत्त्व भी आ गया है।

भक्ति और साहित्य के विशाल क्षेत्र मे कवि की कल्पना ज्ञान और अनुभव के पख खोल कर इतनी ऊंची उडी है कि प्रतीत होता है कि वह किसी अन्य लोक की यात्रा कर रही है, परन्तु सत्य यह है कि अनन्त वातावरण में उड़ते हुए भी उसकी दृष्टि सदैव धरती पर ही लगी हुई है।

प्रश्न ६—सूरदास के कृष्ण, राधा तथा गोपियो का चरित्र-चित्रण करते हुए सिद्ध कीजिए कि सूर चरित्र-चित्रण में अद्वितीय हैं।

उत्तर—कृष्ण के चरित्र-चित्रण मे सूरदास को पूर्ण सफलता मिली है। उन्होने कृष्ण के बालरूपो पर प्रकाश डाला है। कृष्ण के बालरूप का चित्रण तो विश्वसाहित्य मे बेजोड है। गोपियो और विशेषकर राधा का चित्रण भी स्वाभाविक और मनोवैज्ञानिक रूप मे हुआ है। वस्तुत मानव चरित्र के सूक्ष्म अकन मे कवि अद्वितीय है।

सूरदास के कृष्ण—सूर का सारा काव्य कृष्णमय है। उन्होने कृष्ण के सभी रूपो पर प्रकाश डाला है, फिर भी उनका बालचित्रण अद्वितीय है। मथुरा पहुचने पर तो उनके निष्ठुर रूप के ही दर्शन होते है। सूर ने भागवत के अनुसार कृष्ण को पर ब्रह्म माना है और उसे पुष्टि सम्प्रदाय के अनुकूल वृ दावन में लीला करने वाले के रूप में देखा है। लीलाओ का गान करते हुए भी सूर कृष्ण के अलौकिक ब्रह्म रूप को नही भूलते। कृष्ण की अलौकिकता का वर्णन वे बार-बार करते हैं। कालियदमन, गोवर्धन धारण और दान लीला आदि के प्रसगों में वे भगवान् के ब्रह्म रूप का ध्यान दिला देते हैं। परन्तु उनका उद्देश्य ब्रह्मरूप की व्याख्या करना नही था, उन्होंने तो कृष्ण के मानव रूप का ही चित्रण किया है। मानव रूप मे भी उन्हें बालरूप ही अधिक रुचा है, जिसके वर्णन मे उन्हें अभूत पूर्व सफलता मिली है। इस वर्णन को हम चार भागो मे बाँट सकते हैं—(१) रूप-सौंदर्य वर्णन, [२] बाललीलाओ का वर्णन, [३] विभिन्न उत्सवादि का वर्णन, [४] कृष्ण का अलौकिक चरित्र।

(१) रूप सौंदर्यवर्णन—कृष्ण का सौंदर्य अनन्त है। कवि इस सौंदर्य का भराव वर्णन करता है —

सोभा सिंधु न अन्त रही री।

नन्दभवन भरि पूरि उमंगि चलि, व्रज की वीथिनि फिरति वहि री।

कृष्ण के घुंघराले बाल, दूध की दँतुलियाँ, काजर का डिठौना—सभी सुन्दर हैं। उनकी रूपराशि पर सारा व्रज लट्टू है।

(२) बाल लीलाओ का वर्णन -कृष्ण घुटनो के बल चलने लगते हैं। उसको लक्ष्य करके नन्द और यशोदा मे होड लग जाती है। इधर से नन्द बुलाते हैं, उधर से यशोदा, श्याम खिलौना बन जाते हैं। कृष्ण लडखडाते खड़े होते हैं और धीरे-धीरे दौड भी शुरू हो जाती है। यशोदा उन्हे नचाती है। पर जब वे हठ पर उतर जाते है तो यशोदा को भी नचा देते हैं। अब वे बोलने लगे तोतली बोली मे। रूठना भी अब बढ गया। दही के घडे मे अपना प्रति-बिंब देखा, बिगड गये। मा ने जैसे-तैसे मनाया। अब वह दूध नही पीते, रोटी चाहिए। मा चोटी बढने का प्रलोभन देती है, दूध पी लेते है। लेकिन चोटी तो बढी नही, पूछ उठते हैं—"मैया कबहिं बढ़ैगी चोटी ?" अब खेलने लायक हुए। साथी खिझाते है। माँ के पास शिकायत आती है—

मैया मोहिं दाऊ बहुत खिझायो।

मोसों कहत मोल को लीनो, तोहिं जसुमति कब जायो ?

इस बाल क्रीडा के साथ माखन चोरी शुरू हो जाती है। गोपियाँ उलाहना लेकर यशोदा के पास आती हैं, परन्तु कृष्ण के पास अनेक युक्तियाँ है। सब निरुत्तर हो जाते हैं। गोचारण, दानलीला और चीरहरण आदि प्रसग दिन प्रतिदिन गोपियो के हृदय में कृष्ण के प्रति प्रेम को दृढ़ करते चले जाते है। कृष्ण मुरली बजाते है और गोपियाँ लोक लज्जा छोडकर रास के लिए तैयार हो जाती हैं। किशोरावस्था के ये व्यापार आगे चलकर प्रेम के रूप मे बदल जाते हैं।

[३] विभिन्न उत्सवादि का वर्णन—बालसुलभ और जननी-सुलभ चेष्टा-ओ के बीच-बीच कनछेदन आदि अनेक सस्कारो का कवित्वपूर्ण वर्णन हुआ है।

[४] अलौकिक चरित्र—पूतनावध से लेकर भौमासुर वध तक कृष्ण की लीलाएं अलौकिक है और सर्वत्र उनके असुरसंहारक और भक्त-उद्धारक रूप के दर्शन होते है। इन कार्यो को करते समय भी कृष्ण सुकुमार चित्रित किए गए हैं। वस्तुतः सूर को कृष्ण का सुकोमल रूप ही विशेष प्रिय है।

कृष्ण का बालरूप सब प्रकार से पूर्ण है। वात्सल्य का चित्रण कवि ने मनोवैज्ञानिक ढंग से किया है। अलौकिकता का सकेत होते हुए भी अधिकांश वर्णन मानवीय धरातल पर स्वाभाविक रूप मे हुए हैं। ये वर्णन भारतीय जीवन का सुन्दर विश्लेषण करते हैं और प्रकृति के अंचल से झाँकते हुए विराट् पुरुष की झाँकी दिखा देते हैं।

सूर की गोपियाँ—गोपियो को कवि ने सामूहिक रूप से लिया है, इस कारण किसी भी गोपी का स्वतन्त्र व्यक्तित्व नही आ पाया है, जैसा 'भागवत' मे हो सका है। 'सूरसागर' मे चीरहरण, रासलीला आदि प्रसंगो में गोपियों के सौन्दर्य का ही वर्णन है। उनके सरल ग्रामीण स्वभाव का भी स्वाभाविक चित्रण हुआ है। वसत और होली के प्रसगो मे उनकी चंचलता के भी दर्शन होते हैं। सयोग और वियोग दोनो दशाओ मे गोपियो की मनोदशा का भावात्मक वर्णन सूर ने किया है। विरह वर्णन दो रूपो मे हुआ है, साधारण रूप मे और भ्रमरगीत के रूप में।

कवि ने गोपियो द्वारा इतने आसुओ की धारा प्रवाहित कराई है कि उस धारा मे ब्रज का कण-कण डूब गया है। यह विरह वर्णन एकांगी नही। सूर ने गोपियो द्वारा प्रकृति के अङ्गो को भी उपालभ दिलाया है—

> मधुबन, तुम कहत रहत हरे ?
> विरह वियोग श्यामसुन्दर के, ठाढे क्यों न जरे ?

'भ्रमर गीत' सूर का विरह काव्य है जिसमे विरह के असंख्य भावो और अन्तर्दशाओ का समावेश है। स्वाभाविकता और सजीवता से भरा यह काव्य गोपियों के मन का निर्मल दर्पण है। गोपियाँ प्रेम की सरल अनुभूति ही कर सकती है। उन्हे उद्धव का योग कुछ अटपटा-सा लगता है। दूसरे, इस योग के लिए उनके पास मन भी तो न रहा—'एक हुतो सो गयो श्याम संग, को आराधै ईश ? फिर उनकी आँखें तो 'हरिदर्शन की भूखी' हैं, इसलिए "कैसे रहें रूप रस राती ये बतियाँ सुनि रूखी ?"

भ्रमर गीत' मे गोपियो के हृदय की सरलता का जैसा चित्रण हुआ है, वह बेजोड़ है। यहाँ गोपियों का स्वरूप सरल, निश्छल और ग्रामीण है। यह 'सूरसागर' के सर्वश्रेष्ठ प्रसंगों मे से एक है।

सूर की राधा—राधा 'सूरसागर' की नायिका है। कृष्ण का राधा से

परिचय उस समय होता है जब वे भौंरा चकडोरी खेलने घर से निकल पड़ते हैं। अचानक वे राधा को देखते हैं। बडी-बड़ी आँखें, माथे पर रोली का टीका, नीला लहगा, काली वेणी—कृष्ण देखकर मुग्ध हो जाते है। कृष्ण इस समय युवक नही, किशोर हैं। बचपन उनमे है। पूछ बैठते हैं—"कौन तू गोरी ? कहाँ रहित काकी है बेटी, देखी नहीं कहू ब्रज खोरी ?" राधा चतुराई से उत्तर देती है—"हम ब्रज क्यो आएँ ? हम अपनी पौरी मे ही खेलती हैं और सुनती रहती हैं कि नन्द का ढोटा दही और मक्खन चुराता रहता है।" लेकिन भोली राधा आखिर कृष्ण की बातो मे आ ही जाती है। राधा को देखकर यशोदा भी प्रसन्न होती है। राधा भी कहानियाँ गढकर अपनी माँ से इधर आने की अनुमति ले लेती है। एक दिन जब यशोदा राधा को उपालम्भ देती है, तो राधा स्पष्ट कह देती है कि तू अपने पुत्र को क्यो नही रोकती ? वही कहते है, तुम्हारे बिना प्राण नही टिकते, मैं उनपर दया करके आ जाती हूँ।

सूर की राधा का सर्व सुन्दर रूप उद्धव के आने पर दीखता है। इस समय गोपियाँ तो मुखर हैं, पर राधा मौन है, एक शब्द भी वह नही कहती। खडी-खडी वह गिर पडती है; क्या कहे ? जब गोपियाँ कृष्ण को कोसती है, तो वह कह पड़ती हैं—

सखि री, हरि को दोष जनि देहु।
ताते मन इतनो दुख पावत, मेरोइ कपट सनेहु।

यहाँ राधा को सूर ने आदर्श प्रेमिका के रूप मे चित्रित किया है। इस विरह के बाद कवि ने राधा और कृष्ण का अन्तिम महा-मिलन कराया है—"राधा-माधव भेंट भई। राधा माधव, माधव राधा, कीट भृंग गति ह्वै जु गई।" परन्तु इसके बाद राधा फिर विरहणी बन कर ही रह गई। उसका त्याग हिमाद्रि से भी उच्च है, फिर भी वह विनय से नत है, उसकी कर्त्तव्य भावना पत्थर से भी कठोर है, फिर भी मक्खन से भी कोमल है।

राधा का चित्रण जयदेव, चंडीदास और विद्यापति ने भी किया है। जयदेव की राधा प्रेम की धारा मे पूरी तीव्रता के साथ बह गई है। चडीदास की राधा मे प्रेम और भक्ति की पराकाष्ठा है। विद्यापति ने परकीया राधा का चित्रण किया है। उन्होंने शृङ्गार रस की अविरल धारा बहाई है। अन्तः सौंदर्य की अपेक्षा उन्होंने बाह्य सौंदर्य का अधिक चित्र खींचा है। सूर की

राधा में इन तीनो कवियो की राधा की विशेषताएं एकत्रित हो गई हैं और उन सबके ऊपर सूर ने अपनी राधा को ऐसा स्वाभाविक और मनोवैज्ञानिक रूप दिया कि उनसे पहले के राधा के सभी चित्र फीके पड गए। उनकी राधा मे यौवन की चचलता और परकीया की तीव्र वेदना नही, अपितु उसमे बचपन की सहज सरलता और स्वकीया की गभीर तथा स्वाभाविक उत्कण्ठा है। यह सूर की अपनी और मौलिक देन है।

प्रश्न ७—सूरदास के काव्य के दार्शनिक पक्ष की विवेचना कीजिए।

उत्तर—यद्यपि सूरदास दार्शनिक न थे और न ही दार्शनिक सिद्धान्तो का विवेचन उनका लक्ष्य था, फिर भी वह एक संप्रदाय मे दीक्षित थे और इसलिए उसके सिद्धातो का उन पर प्रभाव पडा था। इसके अतिरिक्त तत्कालीन अन्य धार्मिक मतवादो का प्रभाव भी उनमे देखा जा सकता है, परन्तु मुख्य रूप से वे वल्लभाचार्य के दार्शनिक सिद्धान्तो से ही प्रभावित थे। यहाँ हम उनके ईश्वर, जीव, जगत्, माया और मोक्ष सम्बन्धी सिद्धान्तो पर विचार करेंगे।

ईश्वर—सूरदास के इष्ट भगवान् श्रीकृष्ण रूप परब्रह्म हैं। उनका यह ब्रह्म अमित शोभाशाली, अपार, निर्गुण और सगुण है, यही श्रीकृष्ण हैं। वल्लभाचार्य के समान इन्होंने भी ब्रह्म, प्रकृति और पुरुष को एक माना है, उनकी अद्वैतता स्थापित की है। दशम स्कंध के आरम्भ मे उन्होंने परब्रह्म की विस्तृत व्याख्या की है। भगवान् के विराट रूप का वर्णन भी उन्होंने किया है।

परब्रह्म कृष्ण निर्गुण स्वरूप है, परन्तु वह वृन्दावन मे नित्य लीला विहार करते हैं। उनका कृष्ण के रूप मे यह अवतार पूर्णावतार है। अवतार धारी कृष्ण भक्तवत्सल हैं, वह भक्तो पर कृपा करते हैं। इस 'हरि कृपा' का वर्णन सूर ने अनेक स्थलो पर किया है। यहाँ पर उनका मुख्य आधार 'भागवत' और वल्लभ का पुष्टिमत है।

जीव—जीव गोपाल का अंश है। यह माया से ढँका रहता है। माया के हटने पर ब्रह्म और जीव मे कोई अंतर नही रह जाता। भगवान् की कृपा से जीव माया से छूटकर आनन्द प्राप्त करता है। यहाँ पर आलोचक गण सूर पर शंकर के मायावाद का प्रभाव देखते हैं। सूर के इन सिद्धांत वाले पद दीक्षा से पहले लिखे गये थे, इसलिए हो सकता है कि उन्होंने उस समय प्रचलित शंकर के सिद्धान्तों का प्रभाव ग्रहण किया हो। जीव के सम्बन्ध मे सूर कर्मगति को

अटल मानते हैं। वल्लभाचार्य के समान सूरदास ने जीव के विभिन्न भेदो (पुष्टि, मर्यादा और प्रवाह जीव) की व्याख्या नही की है। साधारणत: उन्होंने प्रवाह जीवो का वर्णन किया है। भगवान् की नित्य लीला के सम्बन्ध मे पुष्टि जावो का वर्णन भी हो गया है।

जगत और संसार—वल्लभ-सम्प्रदाय में जगत् और संसार अलग-अलग हैं। जगत् सत्य है और संसार असत्य। जगत् गोपाल का अंश है, उसकी उत्पत्ति ब्रह्म से होती है। दूसरी ओर संसार माया से उत्पन्न हुआ है, वह मिथ्या है। सृष्टि की उत्पत्ति का वर्णन भी सूर ने किया है; सत्त्व; रजस् और तमस् के मेल से सृष्टि रचना से कुछ सिद्धान्तो में सूर वल्लभ-सम्प्रदाय से कुछ अलग प्रतीत होते हैं, क्योकि उन्होंने माया को त्रिगुणात्मिकता सत्त्व, रजस् और तमस् से युक्त) मानकर माया की असत्यता सिद्ध की है।

माया—वल्लभ के अनुसार माया सत्य और असत्य दोनो है, परन्तु सूर ने इसे असत्य ही माना है। यह माया जीव को भ्रम में डालती है। भक्ति द्वारा इस माया से छुटकारा हो सकता है। यह माया वस्तुत. ब्रह्म की मोहक शक्ति है, जिसको योगमाया कहा गया है। इसका वर्णन भी सूर ने किया है। सक्षेप में सूर की माया शकर और वल्लभ की माया का मिला हुआ रूप है। माया के विषय मे सूर मौलिक कहे जा सकते हैं।

मोक्ष—सूर ने कही मुक्ति का सैद्धान्तिक विवेचन नही किया। सूर भक्ति का फल वैकुण्ठ धाम मानते हैं, निर्वाण पद और मुक्ति का उल्लेख भी उन्होने किया है। जीवन मुक्ति का सकेत उन्होने अनेक वार किया है, विशेषकर 'भ्रमर गीत' मे ऐसे अनेक सकेत मिलते है।

सालोक मुक्ति [भगवान् के लीलाधाम में पहुंचना], सामीप्य मुक्ति [कृष्ण के चरणो मे स्थान पाना] सारूप्य मुक्ति [कृष्ण के समान आचरण करना] और सायुज्य मुक्ति (कृष्ण में मिल जाना)—इन चारो मुक्तियो का सैद्धान्तिक रूप यद्यपि सूर में नही है, फिर भी इनकी अनुभूति उसने पूर्ण रूप से की है। प्रधानता इनमे उन्होने सायुज्य मुक्ति को ही दी है। भगवान् के नित्य-रास का वर्णन सायुज्य मुक्ति का ही रूप है। गोपियाँ कृष्ण मे पूर्ण रूप से लीन हो जाती हैं, यह भी सायुज्य मुक्ति का ही रूप है। वैसे गोपियां चारो मुक्तियो को एक साथ भोगती हैं—

ऊधो, सूधे नैंक निहारौ।

× × ×

सेवत सुलभ स्याम सुन्दर कौं. मुक्ति रही हम चारी।

हम सालोक्य, सरूप, सायुजौ, रहित समीप सदाई।

यही सूरदास की जीवन-मुक्ति है, जिसे उनकी गोपियाँ जीते-जी भोग रही है।

इन मुख्य सिद्धान्तो के अतिरिक्त सूर ने व्रज, वृन्दावन, रास और मुरली के विषय मे भी अपनी आध्यात्मिक भावनाएँ व्यक्त की हैं।

व्रज गोलोक का अवतार है। ब्रह्मा भी उसकी महिमा गाते हैं, शारदा भी व्रज लीला का पार नही पा सकती। वृन्दावन की धूलि भी प्रशंसनीय है, इसकी समता कल्प वृक्ष और कामधेनु भी नही कर सकते। यह नारायण के वैकुण्ठ से भी बढकर है। जब वृन्दावन से—

मुरली धुनि बकुंठ गई।

नारायण कमला सुनि दपति' अति रुचि हृदय भई।

सुनो प्रिया, यह बानी अद्भुत, वृंदावान हरि देखी।

रास—को भी आध्यात्मिक रूप मिला है। सूर का रास 'रासपंचाध्यायी' पर आधारित है, उसमे सूर की मौलिकता भी है। कुछ बगाल का प्रभाव भी पडा है। रास लीला तथा उसमे प्रवेश करना सूर का अंतिम लक्ष्य है, यही सबसे बडी मुक्ति हैं। रास का प्रभाव अलौकिक है, वर्णन शक्ति से परे है। सूर के रास वर्णन में लौकिक और अलौकिक भावों का सुन्दर मेल है।

मुरली—का वर्णन भी लौकिक और अलौकिक दोनो रूपो मे हुआ है। उनका मुरली-वर्णन अनुपम है।

सूर के दार्शनिक पक्ष की विशेषता—भागवत, वल्लभसंप्रदाय आदि पर आधारित होते हुए भी सूर के सिद्धातो मे पर्याप्त मौलिकता है। भागवत और वल्लभ के अनुसार यदि उनके कृष्ण परब्रह्म हैं, तो साथ ही उसमे मानवीय गुणों का स्वाभाविक समावेश भी है। यह सूर की मौलिकता है। जीव, जगत् आदि संबधी अपने सिद्धातो में सूर ने मौलिकता के साथ-साथ निर्भीकता भी दिखाई है। विवेचन मे उनका मन नहीं रमा है, परन्तु उनकी कवित्वपूर्ण व्याख्या हृदयहारी है। सिद्धात स्वाभाविक रूप से आ सके हैं, यही सूर की

विशेषता है, क्योकि उन्होंने सिद्धांतों के पचड़े मे पड़ना पसंद नही किया। वास्तव में सूर की कविता मे सिद्धातों को ढूँढना असगत है, वैसे यदि अपने-आप सिद्धांत मिल जाएँ तो उनके आधार पर उनके दार्शनिक सिद्धातों की विवेचना की जा सकती है।

प्रश्न ८:—"यदि हम भागवत के अध्यात्म-ग्रन्थ होने में संदेह नहीं करते तो 'सूरसागर' के संबध में भी नहीं कर सकते।" सूरदास की दार्शनिक पृष्ठ-भूमि का परिचय देते हुए श्री नंददुलारे वाजपेयी के उक्त कथन का विस्तार कीजिये।

उत्तर:—वेदात या ब्रह्म विद्या की जो धारा इस देश में चिरकाल से वहती चली आ रही है, सूरदास उसके सफल कवि हैं। इस आधार पर हम उनके 'सूरसागर, को आध्यात्मिक ग्रथ कह सकते हैं, जिसमे 'भागवत' का सपूर्ण भाव-जगत् उतारा गया है। आध्यात्मिकता की दृष्टि से 'भागवत' और 'सूरसागर' मे कोई अन्तर नही। हाँ, काव्य की दृष्टि से 'सूरसागर' का मौलिक महत्त्व है।

व्यास और सूर की यह एकता विषय या शैली के साम्य के कारण नही, अपितु आध्यात्मिक दृष्टिकोण की समानता के कारण है। इस दृष्टिकोण की समानता हमे व्यास और सूर के वीच ही नही, अपितु उपनिषद्, गीता, पुराण; रामानुज आदि आचार्यो और कवीर, तुलसी आदि कवियों के वीच भी प्राप्त हो जाती हैं। इन सभी मे यह आध्यात्मिक एकता है।

दृष्टिकोण के आधार पर साहित्य को दो भागो में बाँटा जा सकता है; आध्यात्मिक और लौकिक। व्यास, वाल्मीकि आदि का साहित्य आध्यात्मिक है एव कालिदास, भवभूति आदि का लौकिक। परन्तु अलौकिक या आध्यात्मिक आनन्द दोनो साहित्यों मे है, इस दृष्टि कोण से दोनो प्रकार के साहित्यो मे कोई अन्तर नही।

हाँ, तो भागवत और सूरसागर का आध्यात्मिक दृष्टिकोण एक ही है। अध्यात्म-साधना लौकिक साधनाओ से भिन्न है। इसकी सिद्धि हो जाने पर मनुष्य जीवन-मुक्त हो जाता है। इसकी साधना ज्ञान, कर्म और भक्ति द्वारा होती है। गीता मे इन तीनो का सुन्दर समन्वय है, जो वाद मे वेदान्त की त्रिवेणी धारा के रूप मे वही। सूरदास इसी धारा का 'दर्शन मज्जन पान' करते रहे हैं। शकराचार्य वेदान्त के वड़े व्याख्याता हो गये हैं, जिनका मत

'अद्वैतवाद' के नाम से प्रसिद्ध है। शकर के बाद वेदात का पर्याप्त प्रचार हुआ, सभी दार्शनिको ने अपने सिद्धातो का आधार वेदात को बनाया। इस प्रकार वेदात भारतीय धर्मो के समन्वय का उत्कृष्ट उपकरण सिद्ध हुआ।

मुक्ति वेदात की सबसे बडी शिक्षा है, जिसका सबध एक सार-सत्ता या पुरुषोत्तम से है, जो भक्तो का उपास्य भगवान् है। मुक्ति का सर्वश्रेष्ठ मार्ग योग है, जो भगवान् के प्रति सर्व कर्म समर्पण का नाम है। यह योग उद्धव के के 'योग' से भिन्न है। यह तो आत्म-समर्पण का नाम है, जो भक्ति का एक अनिवार्य अग है। श्री कृष्ण से सायुज्य (एक हो जाना) ही मुक्ति है। जब जीव पति या स्वामी रूप मे श्रीकृष्ण की सेवा करता है और उसके प्रेम मे परम आनन्द का अनुभव करता है तब भगवान् प्रसन्न होकर उसे मुक्त करते हैं। यही भगवान् की भक्ति है। इस भक्ति के दो भेद हैं, मर्यादा-भक्ति (जैसे अवरीष आदि की) और पुष्टि-भक्ति (जैसे गोपियो की)। भगवान् स्वय पुष्टि (=अनुग्रह) करके भक्ति देते है, यही पुष्टि-भक्ति का आशय है, यही पुष्टि मार्ग है। इस मार्ग मे ज्ञान आवश्यक नही, प्रेम अनिवार्य है।

सूरदास जी की यही प्रेममयी भक्ति थी। यही कारण है कि भागवत की अन्य चर्चाओ मे उनका मन न रमा और उसके नौ स्कधो की कथा उन्होंने ५०० पदों मे समाप्त कर दी। दूसरी ओर कृष्ण की प्रेमलीलाओ मे वे इतने रमे कि आधे स्कध के लिए ५००० पद लिख डाले। इसी प्रेममयी भक्ति की तीव्रता के कारण सूर अन्य विषयो का विस्तार नही करते। उद्धव अपने साथ ज्ञान का खजाना लाए थे, परन्तु सूर ने उन्हें दस-पद्रह पदो से अधिक कहने का मौका नही दिया। हाँ, गोपियों से प्रभावित उद्धव की उमडती प्रेम भावना का चित्रण सूर ने पूरी तन्मयता के साथ किया है। प्रेम की इस तीव्रता ने 'सूर-सागर' को प्रेम गीतो से भर दिया है।

इन गीतो में भक्ति और वेदात-तत्त्व का अपूर्व मेल है। एक गीत देखिए —

राधा श्याम, श्याम राधा रँग।
प्रिय प्यारी को हिरदय राखत, प्यारी रहति सदा प्रिय के संग।

यहाँ वेदात का अद्वैत वाद (आत्मा-परमात्मा की एकता) साफ झलक रहा है। नंद जब कृष्ण को मथुरा से वापिस लेने के लिए आते हैं, तब कृष्ण

कहते हैं, "आप लौट जाइए। आप समझें, हममे आपमे कोई अन्तर नही।" इन पक्तियो मे वेदात के अद्वैतवाद का उच्चतम तत्त्व निहित है। वस्तुतः 'सूरसागर' प्रेम-रस का सागर है, जिसमें वेदात का अमृत मिला हुआ है। भक्त और भगवान् की ऐसी अनन्यता का वर्णन अन्यत्र नही हुआ। गोपियो के इस कथन में —"नाहिन रह्यौ हिय मँह ठौर।

नंद नंदन अछत, कैसे आनिये उर और।
चलत, चितवत दिवस जागत, सुपन सोवत राति।
हृदय तै वह स्याम मूरति छिन न इत उत जाति।

भक्त और भगवानु की इसी अनन्यता की ओर सकेत है। सूर की प्रेम-भक्ति इससे भी आगे जाती है। कृष्ण [illegible] प्रेम [illegible] रते है गोपियो को इसी से सतोष है। कृष्ण सभी मे प्रे[illegible] [illegible] सभी उसके अभाव मे दुखी हो जाते हैं। प्रेम का यह व्यापक [illegible] सू[illegible] की [illegible]जी विशेपता है। इस व्यापक रूप का केन्द्र है कृष्ण, और सूर[illegible] [illegible] का कोई ऐसा प्रसग, पद या शब्द नही, जो इस कृष्ण की महिमा न गाए। सब ओर से सर्वस्व समर्पण हो जाने पर कृष्ण की अखड सत्ता ही दीख पड़ती है। यहाँ आकर सूर का आध्यात्मिक लक्ष्य पूर्ण होता है।

इस प्रकार सूर का 'सूरसागर' उसी प्रकार आध्यात्मग्रंथ है, जिस प्रकार व्यास का 'भागवत'।

प्रश्न ६.—सूर की कविता के रसास्वादन के लिए उनकी आत्म-परक भावभूमि को समझना पहले आवश्यक है। इस कथन का समर्थन युक्तियों द्वारा कीजिए।

उत्तर—पाश्चात्य दृष्टिकोण के अनुसार धार्मिक और आध्यात्मिक रचनाएं काव्य की सीमा मे नही आती। इसी कारण पश्चिम के आलोचक भारतीय साहित्य को, जिसमे धर्म और अध्यात्म भावना प्रमुख है, अस्वाभाविक और अयुक्तिपूर्ण कह देते हैं। परन्तु भारत [illegible] साहित्य की सीमा इतनी संकुचित नही और इसीलिए भारतीय [illegible] धर्म और मोक्ष से सम्बद्ध होती हुई भी कविता है। लौकिकता और आ[illegible] का मेल ही भारतीय कविता की विशेपता है। वाल्मीकि और कालीदास मे यही हुआ है। 'शाकुंतल' मे धरती और स्वर्ग के मेल को [illegible]

कविता भावो की भाषा है । भावो की कोई सीमा नही हो सकती । भाव भेद और रस भेद, अपार है । यदि हम किसी देश की कविता के भावो को असभव कहते है, तो यह हमारा अज्ञान है । भावो की स्वाभाविकता या असम्भवता की जांच के लिए हमे कवि की उस भाव-भूमि पर उतरना पड़ेगा, जहाँ बैठकर कवि ने अपनी रचना की है । प्रत्येक देश के प्रत्येक कवि की भाव भूमि भिन्न-भिन्न होती है । हमे प्रत्येक कवि की अपनी भाव-भूमि से सहानुभूति रखनी होगी और उसके आधार पर उसकी कविता का मूल्य निर्धारण करना होगा । यही सत्समालोचना का मुख्य सिद्धात है ।

यह भी कहा जाता है कि कला रूप की अभिव्यक्ति करती है, अरूप की नही । यदि इस कसौटी पर भारतीय और विशेषत. सतसाहित्य को कसें तो हमे निराश होना पडेगा, क्योकि हमारी अधिकाश भक्ति कविता अरूप की व्याख्या मे लगी हुई है । इस भक्ति कविता से हमारी मानसिक तृप्ति होती है, इसलिए कविता तो यह निःसदेह है । हाँ, कविता की उपर्युक्त कसौटी गलत है ।

अब हम सूर की ओर मुडें । सब से पहले हमें सूर की भाव-भूमि देखनी होगी । सूर की भाव-भूमि आत्म-परक है । इसीलिए वे कृष्ण का चरित्र लिखने में उतना रस नही लेते, जितना प्रत्येक पद की अन्तिम पक्ति मे अपने हृदय की भावना को उमडा देने में लेते हैं । यही उनके भावो की आत्म-परकता है । जो आलोचक कवि की इस आत्म-परक भावनाओ को समझने का प्रयत्न नही करते, वे इन अन्तिम पक्तियो को कथा का बाधक और अस्वाभाविक मानते हैं । उनके अनुसार उत्पन्न होते ही कृष्ण का 'सूर के स्वामी' बन जाना, या गोचारण करते-करते ही 'जगत का प्रभु' हो जाना अस्वाभाविक और असंभव है ।

भारतीय रस शैली के अनुसार 'सूरसागर' को महाकाव्य मानने मे आपत्ति है, क्योकि इसमे प्रबन्ध रूप मे कहानी नहीं चलती और इसका प्रधान रस शृगार, वीर या करुण नही । किन्तु वास्तव में 'सूरसागर' एक महाकाव्य है । हमारी महाकाव्य की परिभाषा सकुचित है, इसलिए हम उसे महाकाव्य कहने से झिझकते हैं । एक कहानी न सही, एक उद्देश्य, आदि से अन्त तक, तो सूरसागर में है, और वह उद्देश्य है कृष्ण गुण-गान । और इसमे एक प्रधान रस

भी है, परन्तु वह रस साहित्य शास्त्र की रस-कोटि में नही आता—वह अलौकिक भक्ति रस है। यह भक्ति-रस विशेषकर प्रत्येक पद की अन्तिम पंक्तियो में दीख पडता है। सूर की कविता मे महाकाव्य के सभी उत्तम गुण हैं। उनकी अनन्य तन्मयता और मधुर भाव की पवित्र उपासना उनके काव्य को महाकाव्य बना देती है। वस्तुत सूर की कविता साहित्य शास्त्र की संकुचित सीमाओ को विस्तार देती है, सीमा के स्थान पर निस्सीम सौंदर्य की झलक दिखा देती है।

कला के क्षेत्र मे भी सूर ने उत्तमोत्तम प्रयोग किये। कालिदास के युग के बाद काव्यो का अलौकिक आनन्द समाप्त हो गया था। सूर ने अपनी भक्ति की आधार भूमि पर कृष्ण की शृंगार मूर्ति की प्रतिष्ठा करके उस अलौकिक आनन्द को पुन. स्थापित किया। माइकेल इंजिलो की भाति उन्होंने कला में धर्म भावना भी भर दी, जिससे उनका शृंगार भी पवित्र और श्लील है। केवल भक्तों के लिए ही नही, अपितु काव्यरसिक के लिए भी सूर का काव्य रसपूर्ण है। कला की सार्थकता इस बात मे है कि उसका तत्त्व जो पारदर्शी रसिक ही पा सकें, किन्तु उसका सामान्य आनन्द सर्वजन सुलभ हो। सूर की कला इस कसौटी पर पूरी उतरती है। यदि हम सकल विश्व को कृष्णमय समझ सूर काव्य से तादात्मय नहीं जोड सकते, तो कृष्ण की लीलाओ में रस तो ले ही सकते हैं। सूर के काव्य-सौंदर्य का भंडार सब के लिए खुला है, परन्तु उनका अलौकिक और आध्यात्मिक पक्ष अधिकारियो के लिए सदैव सुरक्षित है।

सूर सगुण का गान करने आगे बढते हैं। वे उन सगुण—साकार को सुन्दर भी बना देते हैं। प्रत्येक महान कवि सुन्दर मूर्त्ति का निर्माण करना चाहता है। बायरन ने 'चाइल्ड हेराल्ड' की विशाल सृष्टि की और रोम्याँ रोला ने जॉन क्रिस्टोफर नामक उदात्त पात्र का निर्माण किया है। इसी प्रकार सूर ने कृष्ण का सृजन किया है। काव्य कला और मनोविज्ञान की दृष्टि से सूर का कृष्ण कही अधिक सुन्दर, चमत्कारी और सबल है। उसकी कृष्ण की कल्पना अप्रतिम है। सूर सगुण का गान करने निकले थे, पर न सगुण के गुणों की सामा है' न गान की अवधि।

सूर के आत्म-परक पदो में प्रेम की मार्मिक व्यथा है, उनकी पवित्र आत्मा

का स्वच्छ प्रतिविम्ब है। इन पदो मे पपूर्व अनन्यता है। कृष्ण के प्रेम मे कवि ने अपने को पूर्ण रूप से भुला दिया है। भावनाओ का विस्तार करके उसने उन्हे वना दिया है कृष्णमय ऐसा एकान्त साधक कवि काव्य कला या मनोविज्ञान के वन्धनो को मानकर नहीं चलता। वह अलौकिक मन स्थिति वनाकर भावनाओं के क्षेत्र में विचरता है अतः सामान्य आलोचक उसे समझने मे गलती कर जाते हैं। सूर के इन पदों मे मनोवैज्ञानिक आलोचको को अस्वाभाविकता ही दीखेगी।

जब मोहन कर गही मथानी।

परसत कर दधिमाट, नेती, चित उदधि, सैन वासुकि भय मानी।

परंतु ऐसे पदो को समझने के लिए हमे कवि की इस पद की व्याख्या के लिए प्रश्न ११ देखिए। अपनी भावभूमि पर उतरना पडेगा। कवि की भावना जब कृष्ण मय हो जाती है तो वह सभव-असभव के वन्धन मे नही वधता उसकी भाव-भूमि व्यापक हो जाती है। आत्म तृप्ति सूर का लक्ष्य था, इसलिए जहाँ आत्मा ले गई, वे चले गये, चाहे वह प्राकृतिक भूमि थी, चाहे अप्राकृतिक इसी कारण आलोचको को सूर की कविता अप्राकृतिक लगती है, परन्तु यदि उनकी भाव-भूमि का अध्ययन करके उनकी कविता का निरीक्षण किया जाए, तो यह अप्राकृतिकता प्राकृतिकता मे वदल जाएगी।

प्रश्न १० — सूर की कविता के सांस्कृतिक और नैतिक पक्ष की विवेचना कीजिए।

उत्तर—भारत अपनी आध्यात्मिकता के लिए प्रसिद्ध रहा है। ऊँची से ऊँची और सूक्ष्म मानवीय अनुभूतियो को जीवन का अभिन्न अ ग वना लेना ही आध्यात्मिकता है। इसी की अभिव्यक्ति वेद, पुराण, काव्य, दर्शन तथा कला एव हमारे राष्ट्रीय जीवन मे हुई है। आज भी यह भारतीय जीवन की अपनी विशेषता है। हमारा विशाल हिंदू धर्म सहस्र शाखाओ मे विभक्त होकर भी एक है। यह इसकी आश्चर्यजनक व्यावहारिकता है। यह वस्तुत मानवता के विकास का एक पवित्र भावचित्र है। यह विशाल धर्म सार्वभौम है। इस धर्म का आरम्भ यद्यपि वेदो से होता है, तथापि इसने उपनिषदो, पुराणो आदि से भी अपना आधार ग्रहण किया है।

पुराणों मे वैदिक मत का विस्तार है। वैदिक कालीन अनुभूतियो के रूप

में विस्तृत हुई हैं। ये अनुभूतियाँ जीवन के विभिन्न अंगो पर प्रकाश डालती हैं। गीता में युद्ध का दृश्य है और भागवत मे गृह की शोभा का चित्र है। दोनों जीवन के अंग हैं। दोनो मे कृष्ण निसग और निर्लेप है, दूसरे शब्दो में वे लीला कर रहे हैं। प्रश्न होता है, वह लीला क्यो कर रहे हैं? अर्जुन को युद्ध का उपदेश देते हैं, परन्तु स्वय शस्त्र[1] तक नही उठाते, गोपियो से शृंगार-लीलाएँ करते हैं, फिर भी वे उनसे अलग रहते हैं, ऐसा क्यो? इन प्रश्नो का प्रामाणिक उत्तर पाने के लिए हमे भारतीय शास्त्रो का गम्भीर अध्ययन करना होगा। किस प्रकार अवतार वाद की भावना आई और ईश्वर के लीला करने की भावना ने जन्म लिया तथा राम और कृष्ण को लीला धारी रूप मे माना गया?—इसका ऐतिहासिक अध्ययन उक्त प्रश्नो का उत्तर पाने के लिए आवश्यक है तब हम लीला-भावना की स्वाभाविकता और कृष्ण लीला की रहस्यमयता को सरलता से समझ सकेंगे। कृष्ण-लीला मे प्रेम की एकाग्रता, वियोगावस्था की सहनशीलता, अटल व्रत आदि उदात्त मानव भाव, जो मनुष्य को पशु से अलग करते हैं, विद्यमान हैं। यही कृष्ण की लीलाओ का उदात्त उद्देश्य है। इनके द्वारा पशुभावना का सस्कार हुआ है।

कुछ आलोचक 'भागवत' मे और फलस्वरूप 'सूरसागर' मे अनैतिकता और असास्कृतिकता का दोष लगाते हैं। उनके अनुसार इनमे अश्लीलता है। 'चीरहरण' के दृश्य को अश्लील कहकर उद्धृत किया जाता है। वस्तुत यह दृश्य पूर्ण सामाजिक है। जो गोपियाँ अनन्य रूप से कृष्ण को चाहती हैं, उन्हे कृष्ण के सामने क्या दुराव? 'चीरहरण' की योजना सच्चे प्रेम की परीक्षा के लिए हुई है। यदि कृष्ण अन्य पुरुषो के समक्ष गोपियो को नग्न रूप में देखते, तो अश्लीलता होती। धार्मिक दृष्टि से यह एक अलौकिक लीला है, जो भक्त और भगवान् की एकता को प्रकट करने के लिए है। इसीलिए एक कृष्ण की सोलह हजार प्रेमिकाओ की कल्पना हुई है, जो समूह का परिचायक है। भगवान् के हजारो-लाखों भक्तो का आध्यात्मिक सकेत इसके द्वारा हुआ है। यह कवि की व्यक्तिगत पवित्र भावना का मनोवैज्ञानिक प्रमाण है। हजारों गोपियो के एक साथ चीरहरण की कल्पना से नग्नता की ओर हमारा ध्यान ही नहीं जाता। हमारा ध्यान जाता है कवि के आशय की ओर, जो पति-पत्नी या भक्त-भगवान् के सत्य-मिलन का सकेत कराना है। साहित्यिक कला की

दृष्टि से भी इस कृष्ण लीला का महत्त्व है। यह लीला दुःखांत है और सूर-सागर विरह काव्य का एक सफल नमूना है। गोपियों का विरह स्वाभाविक है, विरह की तीव्रता दिखाने के लिए प्रेम की तीव्रता दिखाना अनिवार्य है। 'चीरहरण' की योजना प्रेम की तीव्रता दिखाने के लिए हुई है। यही इसका साहित्यिक मूल्य है।

एक आपत्ति और इस सम्बन्ध मे की जाती है, वह यह कि ईश्वर एक अलौकिक सत्ता है, इसलिए वह केवल चिंतन का विषय है, साहित्य या कला के चित्रण की सामग्री नही। ईश्वर निराकार है, वैदिक देवताओ के नाम उस निराकार ईश्वर के विशेषण हैं, ईश्वर अवतार नही लेता—इन कारणो से उसके अवतारो का वर्णन अस्वाभाविक और असत्य है।

परन्तु निराकार ईश्वर की सिद्धि करके हम राम, कृष्ण आदि के संसर्ग से उत्पन्न होने वाली मनुष्य की विकासशील भावनाओ से वंचित रह जाएंगे। फिर क्या हमने युगो तक तप करके ईश्वर की दुर्बल कल्पना ही की? क्या हमारा ईश्वर निर्गुण ही है? नही, हमारा ईश्वर सृष्टि से उदासीन, निर्लेप और निर्गुण नही है। वेदो का ईश्वर एक ठोस सत्ता है। पुरुष में प्रकृति के मिल जाने का आदर्श रखकर आर्यो ने ईश्वर की सत्ता प्रवर्तित की। वेदो के बाद हमारी ईश्वर भावना और विकसित हुई। वेदो की परम्परा मे हमारे पुराण हैं, जिनके राम, कृष्ण वैदिक ईश्वर के साकार और स्पष्ट रूप हैं। राम और कृष्ण ने हमारे राष्ट्रीय जीवन को युगो तक प्रभावित किया और आज भी कर रहे हैं। राम और कृष्ण में ईश्वर की भावना हमारे पुराणो की देन है और यह हिंदू धर्म की मौलिक विशेषता है।

इस प्रकार सांस्कृतिक और नैतिक दृष्टि से 'भागवत' और 'सूरसागर' भारतीय साहित्य के महत्त्वपूर्ण ग्रन्थ हैं। इनमे जहाँ 'भागवत' धर्म प्रधान ग्रन्थ है, वहाँ 'सूरसागर' साहित्य-प्रमुख पुस्तक है। और इस दृष्टि से 'सूरसागर' का विशेष महत्त्व है। एक साहित्यिक की दृष्टि से कहा जा सकता है मोती जिस प्रकार खान मे शोभित न होकर राजा के मुकुट पर सुशोभित होता है, उसी प्रकार धर्म और साहित्य के रत्न पुराणो मे उतने अलकृत न होकर 'सूर-सागर' मे चमकते हैं। इससे पुराणों का महत्त्व कम नहीं होता, क्योकि मोती के मूल जन्म स्थान तो वही हैं।

प्रश्न ११—"कुछ दार्शनिक पंडित और आलोचक सूर तथा अन्य भक्त कवियों के प्रत्येक वर्णन का लाक्षणिक अर्थ मानते हैं और तदनुकूल उसका रस भी लेते हैं।" श्री नन्ददुलारे वाजपेयी की इस उक्ति के आधार पर सूर-काव्य में प्रतीक योजना पर अपने विचार प्रकट कीजिए।

उत्तर—कुछ आलोचक सूर के प्रत्येक वर्णन का लाक्षणिक अर्थ मानते हैं। यह नहीं कहा जा सकता कि सूर का आशय अपने पदो मे सर्वत्र लाक्षणिक रहा है। कई पद ऐसे अवश्य हैं, जहाँ सूर का आशय लाक्षणिक कहा जा सकता है। जैसे—"जब मोहन कर गही मथानी। परसत कर दधि माट, नेति, चित उदधि, सैल वासुकि भय मानी।" जब कृष्ण हाथ मे मथानी लेते हैं, तब नागराज भी डर जाते हैं। इसे बाल लीला मात्र नही कहा जा सकता। यहाँ तो समुद्र मंथन और प्रलय का दृश्य हमे दीख रहा है। यही दृश्य दिखाना सूर का यहाँ लाक्षणिक आशय है। इसी प्रकार जब बालकृष्ण मुँह मे अगूठा डालते हैं, तो सारी सृष्टि काँप उठती है। इस प्रकार के वर्णनो में बाललीला की झलक दिखाने के साथ कवि अपने अलौकिक लाक्षणिक अर्थ को भी प्रकट करना चाहता है। परन्तु कई आलोचक सब जगह लाक्षणिक अर्थ ढूँढते है और सूर के काव्य मे सर्वत्र ईश्वर, जीव और जगत् सम्बन्धी दार्शनिक सिद्धात खोजते हैं।

सूर की कविता से चाहे लाक्षणिक अर्थ निकलें, परन्तु लाक्षणिक अर्थ व्यक्त करने के लिए वे कभी कवित्व का तिरस्कार नही करते। उनके पद से काव्य-गुणो से पूर्ण हैं। पदो की अ तिम पक्तियो मे 'सूर के स्वामी' जैसे प्रयोग उनके प्रेमातिरेक को व्यक्त करते है, परन्तु काव्य-गुण की हानि उनके द्वारा नहीं होती। कृष्ण के होली खेलने, रास रचने आदि वर्णनो मे लाक्षणिक अर्थ की झलक मिलती है, परन्तु काव्य-चमत्कार कहीं नष्ट नही होता। दार्शनिक भी सूर की कविता मे अपने सिद्धान्त पा लेते हैं, और काव्य रसिक भी उसमें कविता का रसास्वादन कर लेते हैं। सूर-काव्य की विशेषता है कि उसमे कविता और दर्शन की धाराएं समानान्तर रेखा पर बहती हैं।

"सूर सगुण लीला पद गावै।" से यह निश्चित है कि कृष्ण की सभी लीलाओ मे अरूप को रूप तथा निर्गुण ब्रह्म को विभिन्न आधार-आशय प्राप्त हुए हैं। हरि अनन्त, हरि कथा अनन्ता' के अनुसार

लाक्षणिक अर्थ सूर के पदो मे पा सकते हैं। परन्तु ये लाक्षणिक अर्थ स्वाभाविक हो, दूरानीत (Farfetched) न हो। सूर के काव्य मे कुछ प्रतीक-योजनाए स्पष्ट हैं। वे ये हैं —

चोली वद तोड़ना—कृष्ण का चोली वद तोडना यदि लौकिक दृष्टि से देखा जाए, तो अनैतिक है। वस्तुत कृष्ण नि.सग और निर्लिप्त हैं। वह ऐसे अनैतिक कर्म की ओर प्रवृत्त नही हो सकते। 'जन्म कर्म च मे दिव्यम्' के अनुसार यह कृष्ण का अलौकिक कर्म है, लौकिक नही। इसलिए यह पूर्ण नैतिक है। दार्शनिक इसका अर्थ लेते हैं चोली (शरीर) का वन्द (वन्धन) तोडना, अर्थात् भक्तो को मुक्त करना। इस लाक्षणिक अर्थ को देखते हुए हम कह सकते हैं कि उन्होने काव्य की मर्यादा का उल्लघन नही किया, प्रत्युत उसका विस्तार किया है।

वेणु गीत—वल्लभाचार्य वेणुगीत की व्याख्या करते हुए लिखते है कि इससे भगवान् के नामात्मक स्वरूप का वोध होता है। उनके अनुसार 'व' वह ब्रह्म सुख है, जिसके सामने 'इ' (सासारिक सुख) 'अणु' (नगण्य) वन जाते हैं (व+इ=वे+अणु=वे ऽ णु > वेणु)। इस प्रकार कृष्ण की वेणु ब्रह्म प्राप्ति का अमूल्य साधन है। वल्भाचार्य की यह व्याख्या उनके शिष्य सूरदास द्वारा गृहीत हुई और फलत. उनके पदो मे हमे इस व्याख्या की छाप पडी दीखती है। सूर ने इस वेणु को लेकर इतनी नई उद्भावनाएँ की हैं कि उनके नाम रूपात्मक स्वरूप का वोध करने वाली वंशी, से परिचय के विषय में कोई सदेह नही रह जाता। यह वशी जो कृष्ण को भी नचाती है और गोपियो का भी तिरस्कार करती है, अवश्य असाधारण है। यह सगीत की सृष्टि करती है; दूसरों को मोहती है। कृष्ण इसे हमेशा अधरो पर रखते हैं। कृष्ण की इस मुरली का लाक्षणिक अर्थ हो सकता है 'भगवान् का नाम', और तव मुरली की महिमा का अर्थ होगा 'भगवान् के नाम की महिमा'। तुलसी ने भी भगवान् के नाम-माहात्म्य पर प्रकाश डाला है परन्तु वह उपदेशात्मक और वाच्य है, सूर के वर्णन के समान कलात्मक और लक्ष्य नही। सूर की वंशी मे नाम की महिमा अधिक सुरीली होकर व्यजित होती है। नाम

रास—रास एक नृत्य का नाम है जिसमे वहुत सी नर्तकियाँ गोल घेरे मे नाचती हैं। यह नृत्य तन्मयता का प्रतीक है। गोपियों का रास उनके प्रेम

की तन्मयता को व्यक्त करता है। गोपियो के मण्डल के मध्य मे कृष्ण हैं; इसका अर्थ यह है कि गोपियो की तन्मयता का केन्द्र कृष्ण हैं। यह रास वस्तुत प्रेम का नृत्य है। भारतीयो ने प्रलय मे भी लय देखा था। शकर का सहार 'ताडव नृत्य' कहलाता है। यहाँ पर भक्त और भगवान् के अनन्य प्रेम को रास का रूप दिया गया है। जो इस रासलीला को नैतिक दृष्टि से निम्न कोटि का समझते हैं, वे इस रूपक को समझने की चेष्टा नही करते।

भागवत के अनुसार रास जीवन की साधनाओ के अंतिम फल के रूप में यह रास रचाया था। यह उनके अनन्य प्रेम की अतिम परिणति थी। इस प्रकार रास को पूर्ण आध्यात्मिक रूप मिल जाता है। इसका अधिक स्पष्टीकरण भागवत मे मिल जाता है।

भ्रमरगीत–यह प्रसग अनूठे विरह काव्य के रूप मे है। इसके दो भाग हैं, एक उद्धव के पहूँचाने के पूर्व की वियोग-कथा और दूसरा उद्धव-गोपी सवाद, जिसमे सर्वत्र प्रेम की अनन्यता ध्वनित हुई है। कुछ आलोचको के अनुसार, सूर ने इसके द्वारा निर्गुण ब्रह्म का खडन करके सगुण का प्रतिपादन किया है। अन्य आलोचक इसमे व्यक्ति को क्षुद्र बनाने वाले पडो और पुजारियो के पाखडो का खडन देखते हैं। वस्तुतः ये दोनो बाते सूर को अभीष्ट न थी। 'भ्रमरगीत' मे गोपियो की निरवलब दशा मे भी कृष्ण के प्रति प्रेम भावना का प्रतिपादन किया गया है। यह निष्ठा या व्रत, जिसमे साधक एक को ग्रहण कर अन्य को नही स्वीकार करता एव मृत्यु का सामना करके भी अमर बना रहता है, वन्दनीय और अभिनन्दनीय है। प्रेमसाधना के इसी पहलू का सकेत 'भ्रमर गीत' द्वारा होता है। यहाँ कवि का आशय कृष्ण और गोपियों का तादात्म्य दिखाना है, और तादात्म्य भी तब जबकि कृष्ण 'अदृश्य' हो गये हैं। गोपियाँ 'अदृश्य' की उपासिका थी, साथ ही 'दृश्य' की भी। कृष्ण के दोनो रूपो को न पहचानने के कारण ही आलोचक सगुण और निर्गुण के झगडे में पड़ते हैं, क्योकि कृष्ण तो वास्तव मे दृश्य और अदृश्य (सगुण और निर्गुण) दोनो हैं।

वैसे सीधी बात तो यह है कि सूर कृष्ण के उपासक थे और वे उनके रमणीय अशो का गायन करने बैठे थे। काव्य दृष्टि से उन्होने इस मार्मिक प्रसंग को लिया और इसपर उन्होने अपने अनन्य प्रेम के गीत गाए। इसमें

कहीं निर्गुण का खंडन नही। उसे केवल शुष्क और कष्टसाध्य ही बताया है। सामान्यतः गोपियो के उत्तर मे केवल कृष्ण के प्रति उत्कट प्रेम की ही व्यंजना है।

व्रज की ललित लीलाओ के बाद सूर ने कष्टकारी विरह की कथा कही। यही उन्हें और परवर्ती कवियो को अलग-अलग करती है। अन्यथा सूर और बिहारी मे क्या अन्तर है? दोनो शृंगारी कवि हैं, दोनो ने नायकाभेद लिखा है, दोनो के उपास्य राधा-कृष्ण हैं, तब क्यो हम सूर को भक्त और बिहारी को शृंगारिक कवि कहते हैं? दोनो की रचनाओं के मनोवैज्ञानिक अनुशीलन से हम इस प्रश्न का उत्तर पा सकते हैं। सूर की भावना स्वच्छ और व्यापक थी, उन्होने सयोग के साथ वियोग वर्णन मे भी रस लिया है। वियोग की मर्म व्यथा सूर जैसे भक्त ही सहन कर सकते थे, बिहारी जैसे शृंगारी कवि के लिए यह असह्य थी। सूर के पदो की अंतिम पंक्तियो मे उनकी आत्मा बोल उठी हैं, वैसे काव्य दृष्ट्या इनकी कोई आवश्यकता न थी। वस्तुतः सूर ने वासना जनित शृंगार को भस्म करके लेखनी उठाई थी, बिहारी ने यह नही किया था। यही दोनो मे अन्तर स्पष्ट होता है।

यो तो सूर की कविता मात्र मे उनकी सजीव भक्ति-भावना विकसित हुई है, किन्तु इस विरह काव्य मे वह मनोहर रूप मे व्यक्त हुई है। 'भ्रमरगीत' के विरहपक्ष द्वारा भक्ति की अनन्यता तथा प्रगाढता का सकेत करना ही कवि का लाक्षणिक आशय है। यह लाक्षणिक अर्थ स्वाभाविक और महान् है।

प्रश्न १२—"महाकवि सूरदास की गीति-शैली में हमें विविधता और विचित्रता दोनों के ही दर्शन होते हैं।" सूर की गीतिशैली की विशेषता बताते हुए डा० हरवंशलाल की उक्त उक्ति का समर्थन कीजिए।

उत्तर—सूर की रचना मे गीति-काव्य के सभी लक्षण पाए जाते हैं। गेय पदों की शैली यद्यपि उन्हें परम्परा से प्राप्त थी, तथापि भावपक्ष और कलापक्ष मे उस शैली का परिष्कार सूर ने नवीन ढग से किया। उनकी गीति शैली जयदेव और विद्यापति की शृंगारिक भावनाओं और कोमलकान्त पदावली को अपनाती हुई तथा साथ ही अपने व्यक्तित्व की अभिव्यंजना करती हुई विकसित हुई है।

सूर की कविता में भावात्मक स्थलों का ही विस्तार हुआ है। घटनाएं

के इतिवृत्तात्मक वर्णन मे उनका मन नही रमा। वस्तुतः सूर का उद्देश्य नाट्य वर्णन न होकर भगवान् के प्रति अपनी भक्ति रसपूर्ण भावनाओ को गीतों के प्रवाह में उमडा देना था। उन्हें अपनी आत्मा को अभिव्यक्ति देनी थी, इसीलिए उन्होने मुक्तक काव्य की गीति शली अपनाई। इसी शैली मे भावों के उन्मुक्त प्रवाह का अवसर उन्हे मिल सकता था। दूसरे, वे श्रीनाथ के कीर्तन-कार थे। कीर्तन के लिए गीत ही उपयुक्त हो सकते थे। इन कारणो से उन्होने गेयपद शैली अपनाई।

काव्य और सगीत का जैसा सुन्दर सामजस्य सूर के पदो मे मिलता है, वैसा अन्यत्र दुर्लभ है। जिस सफलता के साथ सूर ने विभिन्न गेय छन्दो का प्रयोग किया है, अन्य कोई कवि उस सफलता के साथ न कर सका। वस्तुतः गीति शैली उनके हाथो पड़कर मज गई है। भाव, कल्पना, सौन्दर्य और लय का मेल उनके पदो मे अपूर्व है। उनकी गीति शैली विविधता पूर्ण है। बाल-लीला वर्णन, कृष्ण-गोपी-रति-क्रीडा वर्णन और विरहवर्णन—इन तीन स्थलो पर कवि भावोन्मुख हो उठा है। इन प्रसगो में व्यंजना, वक्रोक्ति और रसानुभूति का उत्कृष्ट प्रवेश है; कवि की कल्पना खुलकर खेली है। भावों की मनोवैज्ञानिकता की दृष्टि से भी उनके गीत अनुपम हैं। एक गीत देखिए—

जसोदा हरि पालनै झुलावै।
हलरावै, दुलराई, मल्हावै, जोइ-सोइ कछु गावै।
मेरे लाल को आय निंदरिया काहे न आन सुवावै।
तू काहे नहि वेगिहि आवै, तोकों कान्ह बुलावै।

शब्दो का मनोवैज्ञानिक क्रम, व्यंजना का गूढ व्यापार और रस वन्न सहृदय-सवेद्य अनुभूति इस प्रकार के पदो की विशेषता है। विरह के पदो मे कवि की गीतिशैली अ तर्मुखी हो गई है और उन पदो मे कवि के व्यक्तित्व की पूर्णछाप मिलती है। सूर का विरह वर्णन रीति-कालीन कवियो की भाँति आत्माभिव्यक्ति से शून्य नही है, उसमे हमे भक्त की विह्वल अ तरात्मा के दर्शन होते हैं।

कवि ने छोटे-छोटे कथा प्रसंगो और घटनाओ को भी गीतिवद्ध किया है। ऐसे स्थलों पर, हम स्थिति विशेष का दिग्दर्शन भी करते हैं, घटना-क्रम का आभास भी पाते हैं और साथ ही भाव सौन्दर्य की पूर्ण झलक भी हमे मिल

जाती है। यह सूर की विशेपता है। गोचारण और गोवर्धन धारण के प्रसंग कथात्मक हैं, किन्तु इन्हे कवि ने सुन्दर भावगीतो मे सजा दिया है। कथा और भावो का अद्‌भुत मेल इन गीतो मे हुआ है। कही संवादो के प्रयोग द्वारा गीतों में कथा सूत्र का परिचय दे दिया गया है। इस प्रकार वे मुक्तक गीतो के अन्तर्गत कथा सूत्र की रक्षा करने मे समर्थ हुए हैं। परन्तु जहाँ काव्य अन्तर्मुखी हो गया है (जैसे वशी के प्रति उपालम्भ) वहाँ भाव ही कथा रूप मे परिणत हो गए हैं; कथा की पृथक् योजना वहाँ नही है।

कवि ने अपने दृष्टि कूट पद भी गेय शैली मे लिखे हैं, परन्तु इनमे स्वाभाविकता की अपेक्षा चमत्कार और सरलता की अपेक्षा दुर्बोधता अधिक है। रहस्यात्मक भावो की अभिव्यक्ति के लिए कवि ने दृष्टिकूट पद लिखे, (जिसकी परम्परा का आरम्भ ऋग्वेद मे मिलता है, और उपनिषदों, सिद्धो की वाणियों कबीर की उलट बाँसियो आदि मे जिसका क्रमिक विकास मिलता है)।

इस प्रकार सूरदास की गीति शैली की निम्न विशेषताएँ हम देखते हैं—(१) आत्म व्यक्तित्व की अभिव्यजना, (२) भावात्मक स्थलो का विस्तार, (३) काव्य और सगीत का मेद, (४) व्यजना, वक्रोक्ति और रसानुभूति का प्रवेश, (५) कल्पना और भावो की मनोवैज्ञानिकता, (६) गीति वद्ध कथाप्रसंगो मे कथा और भावो का अद्‌भुत मेल, (७) दृष्टिकूट पदो मे रहस्यात्मकता का प्रवेश और (८) कोमल कान्त पदावली।

प्रश्न १३—रस, अलंकार और भाषा-शैली की दृष्टि से सूर काव्य की आलोचना कीजिए।

उत्तर—कृष्ण कथा की परम्परा यद्यपि पुरानी है, फिर भी सूर की कविता मे आकर वह नवीन प्रतीत होती है। सूर ने उसमे अपने भावरस का मिश्रण कर, कल्पना के दिव्य साँचे मे उसे ढाल कर और आकर्षक भाषा में सजाकर इतने सुन्दर रूप में जनता के सम्मुख रखा है कि वह राधा-कृष्ण की दिव्य और सफल प्रतिकृति प्रतीत होती है। इस प्रतिकृति में प्रेम की तरगें हैं, पर कोलाहल नहीं, वियोग के काले मेघ हैं, पर गर्जन नहीं, भावो का मेल है, पर स्पदन नही। यहाँ आग्रह-सकोच, औत्सुतय-सतोष, चपलता-गम्भीरता और साधना-साध्य का अद्‌भुत मेल है।

रस—भगवान् के शील, शक्ति और सुन्दर रूपों में से सूर ने सुन्दर का

ही चित्रण मुख्यत किया है। तुलसी के समान तीनो का चित्रण उनमे नहीं मिलेगा। सूर का वर्ण्य विषय सीमित है। कृष्ण के शैशव और यौवन की ही झाँकियाँ उन्होंने दिखाई हैं। उनके आराध्य (कृष्ण) का जीवन भी उतना सामाजिक न था, जितना तुलसी के आराध्य [राम] का। जैसा कि आचार्य शुक्ल कहते हैं, "कृष्ण के चरित में जो यह थोडा-बहुत लोकसंग्रह दीखता है। उसके स्वरूप मे सूर की वृत्ति लीन नही हुई है।" फिर भी अपने सीमित क्षेत्र में सूर ने ऐसी कमनीय कला का प्रदर्शन किया है कि अन्य कलाकार उनके सामने फीके पड जाते हैं। शुक्ल के अनुसार, "जिस परिमित पुण्यभूमि में उनकी वाणी ने संचरण किया, उसका कोई कोना अछूता न छूटा। शृंगार और वात्सल्य के क्षेत्र मे जहाँ तक इनकी दृष्टि पहुची, वहाँ तक और किसी कवि की नही। इन दोनो क्षेत्रो मे तो इस महाकवि ने मानो औरो के लिए कुछ छोडा ही नही।" डा० हरवंशलाल शर्मा के शब्दो में 'वात्सल्य और शृंगार के रस की जो धारा उन्होने बहाई, उसका प्रसार जितना कम है, गम्भीरता उतनी ही अधिक है।"

वात्सल्य का संयोग-पक्ष—शिशु की विविध चेष्टाओ एवं माता की मानसिक हलचलो का जीवत चित्र सूर ने खीचा है। शिशु कृष्ण का एक चित्र देखिए—

बलिगइ वालरूप मुरारि।
पाइ पैंजनि रटति रुनझुन, नचावति नद नारि।
कबहिं हरि को लाइ अंगुरी, चलन सिखवत ग्वारि।

मा के हृदय की कोमल भावनाओ का स्फुरण देखिए—

जसुमति मन अभिलाष करै।
कब मेरो लाल घुटुरुवनि रेंगै, कब धरनी पग द्वैक धरै।
कब द्वै दांत दूध के देखौं, कब तोतरे मुख वचन भरै।

बच्चो को मा दूध पिलाना चाहती है, वह कहती है—"कजरी को पय पियहु लाल, जासो तेरी वेनि बढ।" मा का हृदय शकालु होता है, वह बच्चे को वाहर नही जाने देना चाहती; कहती है—"खेलन दूर जात कित कान्हा। आज सुन्यो मैं 'हाऊ आयो' तुम नहिं जानत नान्हा।" कृष्ण मक्खन खा रहे हैं, धूलि मेने स हैं, कवि कहता है—"सोभित कर नवनीत लिये। घुटुरुनि

चलत रेनुतन मंडित, मुख दधि लेप किये।"

जब दूध पीने पर भी चोटी नही बढती तो बालक कह उठता है—"मैया कबहि बढ़ैगी चोटी ?" जब उसे दाऊ खिजाते हैं, तो वह मा को न कहे, तो किसे कहे ?—मैया, मोहि दाऊ बहुत खिझायौ।" जब बलराम उसे बच्चो के साथ देखकर खीझते हैं, तो वह कह उठता है—"खेलन अब मेरी जात बलैया।" जब दूसरो को गाए चराते देखते हैं तो खुद भी चराने की इच्छा पैदा होती है— "मैया, हौं गाइ चरावन जैहौं।"

इस प्रकार बाल-जीवन के हजारो शब्द चित्र सूर की कविता में मिलेंगे।

वात्सल्य का वियोग-पक्ष—कृष्ण मथुरा चले जाते हैं, यशोदा विलाप करती रह जाती है—"मेरौ माई, निधनी कौ धन माधौ।" कितनी निरीहता और विवशता है। यह मा के हृदय से निकला हुआ वह नि श्वास है जो समस्त विश्व को प्राणवान् बनाता है। यशोदा कृष्ण को पाने के लिए देवकी की दासी बनने को तैयार है। माता के हृदय का यह अविश्वास कितना स्वाभाविक है—

प्रातकाल उठि माखन रोटी को बिनु माँगे दैहै ?
को मेरे वा कान्ह कुंवर कौं छिनु-छिनु अंकमलै है।

शृंगार का संयोग-पक्ष—कृष्ण और गोपियो के प्रेम का विकास स्वाभाविक रूप मे हुआ है। बचपन के सरल हृदय साथी किशोरावस्था के आकर्षण आदि भावो मे गुजरते हुए यौवन मे प्रेमी और प्रेमिका बन जाते हैं। युवक कृष्ण का सौंदर्य अनुपम है। बड़ी-बडी आँखें, गालो पर डोलते हुए कुंडल, अधरो पर थिरकती हुई मुरली—सब-कुछ इतने मादक हैं, कि कवि को कहना पडता हैं—

तरुनी स्याम रस मतवारि।
प्रथम जोवन रस चढायौ, अतिहि भई खुमारि।

एक दिन राधा से भी परिचय हो जाता है, और इधर भी साहचर्य का रस पाकर प्रेम का अंकुर फूट पड़ता है। यह अंकुर प्रतिदिन पनघट प्रस्ताव, यमुनाविहार, भरे घर में सकेतों द्वारा बातचीत, हिंडोला, रास आदि द्वारा विकसित हो जाता है। कवि ने इन उद्दीपनो का सफल वर्णन किया है; इनके वर्णन में अनन्त भावो की कल्पना की है।

शृंगार का वियोग-पक्ष—संयोग की अपेक्षा वियोग अधिक मार्मिक होता है। इसमें आत्मा का पूर्ण प्रसार हो जाता है। यह वह सात्त्विक अवस्था है, जिसमे हृदय से दुराव का आवरण हट जाता है। सूर की कविता मे इसका व्यापक रूप आया है। कृष्ण के मथुरा चले जाने पर व्रज सूना हो गया, गोपियो का हृदय भी सूना हो गया है। यमुना विरह मे काली हो गई है। गोपियाँ इस अवस्था मे मधुवन को हरा-भरा नही देख सकती—"मधुवन तुम कत रहत हरे ?" विरह मे गोपियो का चित्त स्थिर नहीं रहता। जो यमुना अभी-अभी उन्हें 'विरह जुरजारी' लग रही थी, वही अब गोपियो और कृष्ण के बीच मे बाधा होने के कारण कोसी जा रही है। कभी चातक गोपियो को समवेदना-भाव प्रकट करता दीखता है, कभी उन्हें अधिक जलाता हुआ।

गोपियो की दीन दशा उन्ही के शब्दो मे सुनिए —

निशदिन बरसत नैन हमारे।
सदा रहति पावस ऋतु हम पै, जब तें स्याम सिधारे।

सन्देशवाहक उद्धव को देखकर गोपियो के हृदय मे प्रेम का अन्त स्रोत फूट पडता है। 'निर्गुण' के उपदेश से उन्हें झल्लाहट भी होती है—"कौन काज या निरगुन सौं ? चिर जीवहु कान्ह हमारे।" अन्तिम शब्दो मे उनका चिरसचित प्रेम मुखर हो उठा है। प्रेम के आवेश में गोपियाँ कभी उद्धव पर बरस पडती हैं, कभी विनय पूर्वक आग्रह करने लग पड़ती हैं, विरह मे यह स्थिति स्वाभाविक है। डा० हरवंशलाल शर्मा के शब्दो में "भ्रमरगीत मे... विप्रलम्भ शृंगार की उद्दाम सरिता का अबाध प्रवाह व्रजनारियो के नयनाबु से पूरित होकर उमडता हुआ पाठक की मनोभूमि को आप्लावित करता चलता है...।"

सूर का विरह वर्णन हिन्दी साहित्य मे बेजोड है। उनके वियोग-वर्णन की पूर्णता देखते ही बनती है। आचार्य शुक्ल के शब्दों में "वियोग की जितनी अन्तर्दशाएं हो सकती हैं ..वे सब उसके अन्दर मौजूद हैं।"

अलकार—सूर की रचना मे जैसी भाव प्रवणता है, वैसी ही चमत्कृति भी। उनकी अलकार-योजना मे न तो शास्त्रीय ज्ञान-प्रदर्शन की प्रवृत्ति है, न व्यर्थ का भारातिरेक। आचार्य शुक्ल के शब्दों मे, "सूर मे जितनी सहृदयता है, उतनी ही वाग्विदग्धता।" सूर की कविता मे शब्दालकारो की अपेक्षा अर्थालकार ही अधिक आए हैं। शब्दालकारो मे उन्होने यमक, अनुप्रास, श्लेष और वक्रोक्ति का सुन्दर प्रयोग किया है। वक्रोक्ति प्राय व्यंग्योक्तियो मे है। अर्थालंकारो मे सादृश्यमूलक अलकारो की अधिकता है। कुछ उदाहरण देखिए—

उपमा—हरि दरसन को साध मुई।
सखति 'सूर' धान-अंकुर-सी, बिनु बरसा ज्यों मूल तुई।

रूपक—हरि हौं सब पतितन को राजा।
तृष्णा देश अरु सुभट मनोरथ, इन्द्रिय खड्ग हमारी।
मंत्री काम, कुमति दीवे कौं, क्रोध रहत प्रतिहारी।
उत्प्रेक्षा—मुखछवि कहा कहौं बनाइ।
निरखि निसिपति वदन सोभा, गयो गगन दुराइ।
अनत अलि मनु पिवन आये, आइ रहे लुभाइ।
व्यतिरेक—देखि री, हरि के चचल नैन।
राजिव दल, इदीवर, सतदल, कमल, कुसेसय जाति।
निसि मुद्रित, प्रातहि वै विकसित, ये विकसित दिनराति।
अपह्नुति— चातक न होइ, कोउ बिरहिनि नारि।
अजहू 'पिय पिय' रटति सुरति कर, झूठे हि माँगत वारि।

कवि ने साग रूपक का सर्वाधिक प्रयोग किया है। अन्य अलंकारों में उल्लेख, प्रतीप, सन्देह, अतिशयोक्ति, सम्भावना आदि मुख्य हैं। भगवान् के गुण वर्णन मे अतिशयोक्ति, विरोधाभास, चकई आदि के प्रति कहे गए पदों मे अन्योक्ति, प्रेमगोपन मे सन्देह, विस्मय जताने मे असगति, रूप वर्णन में साग रूपक, व्यतिरेक और अपह्नुति का प्रयोग हुआ है।

भाषा—सूर की भाषा व्रज भाषा है। उनकी रचनाओं मे सर्वप्रथम इसका साहित्यिक रूप मिलता है। कोमल कान्त पदावली, भावानूकूल शब्द चयन, धारावाही प्रवाह, सगीतमयता और सजीवता सूर की भाषा की विशेषताएं हैं।

यद्यपि व्याकरण की कसौटी पर उनकी भाषा खरी नहीं उतरती (क्योंकि शब्दो की तोडमरोड के साथ-साथ उन्होंने अन्य भाषाओं के शब्द भी अपनाए हैं), फिर भी बोल-चाल की भाषा को सबसे पहले साहित्यिक रूप देने के कारण उनका महत्त्व है। तुकबन्दियो मे उनके द्वारा शब्दो की तोडमरोड़ हुई है। उन पदो मे, जहां किसी सिद्धान्त का प्रतिपादन हुआ है, संस्कृत के तत्सम और तद्भव शब्दों का प्रयोग हुआ है। अधिकता तद्भव शब्दो की है। इसके अतिरिक्त खड़ी बोली, अवधी, बुन्देलखडी और पजाबी के शब्दो की भी कमी नहीं है। देसी भाषाओं के अतिरिक्त, अरबी, फारसी शब्दो का प्रयोग भी सूर काव्य मे हुआ है। सूर की भाषा विषयक यह उदारता व्रज-भाषा को समृद्ध बनाने में पर्याप्त सहायक हुई।

सूर की भाषा मे लोकोक्तियो और मुहावरों का भी प्रचुर प्रयोग है, जिनसे भाषा मे प्रौढ़ता और सजीवता आगई है। कवि के 'सूर-सागर' में से हजारों सूक्ति-'रत्न' निकाले जा सकते हैं, जिनसे सूर ने अपनी वाणी का अनुपम शृंगार किया है।

इस प्रकार भावपक्ष [रस] और कलापक्ष [अलकार, भाषा] दोनों

दृष्टियों से सूरदास को पूर्ण सफलता मिली है।

प्रश्न १४—सूरदास के प्रकृति वर्णन के विविध रूपों की व्याख्या करते हुए सिद्ध कीजिए कि उनके प्रकृतिवर्णन का महत्त्व उद्दीपन रूप में सर्वाधिक है।

अथवा

प्राकृतिक सौंदर्य का चित्रण करने में सूरदास कहाँ तक सफल हुए हैं? सयुक्तिक उत्तर दीजिए। (प्रभाकर नवम्बर ५६, जून५७)

उत्तर—सूरदास का व्यक्तित्व प्रकृति के अंचल मे विकसित हुआ और वही उनकी बाललीलाओं और प्रेम-क्रीडाओ का रंगस्थल बना। वन प्रदेश, यमुनातट, वृंदावन के कुंज, कदम्ब-कानन, गोवर्धन पर्वत—ये ही कृष्ण की लीला भूमियाँ हैं। इस लीला भूमि के प्रति सूर का अनन्य अनुराग स्वाभाविक है—"कहाँ सुख ब्रज कौ सो ससार। कहाँ सुखद बंशी बट, यमुना, यह मन सदा विचार ...।"

प्रकृति के चित्र पटो के सहारे ही सूर ने कृष्ण, राधा और गोपियो का वर्णन किया है। प्रकृति के विभिन्न अग इनकी भावनाओ को उद्दीप्त करते हैं। इस प्रकार पात्रो की मनोदशाओं के वर्णन मे प्रकृति के रूपों और व्यापारो का चित्रण कवि ने किया है। इसी को उद्दीपन के रूप मे प्रकृति-चित्रण कहते हैं। इसी रूप मे सूर के प्रकृतिवर्णन का सर्वाधिक महत्त्व है। स्वतन्त्र प्रकृतिचित्रण प्राय सूर नही करते। उनकी कविता मे इसकी खोज करना "मानव और प्रकृति के भावात्मक मिलन को चुनौती देना है।", तथापि एक-दो स्थल ऐसे हैं, जहाँ आलम्बन के रूप मे भी प्रकृति वर्णन उन्होने किया है। उदाहरण के लिए प्रभात का यह वर्णन देखिए—

> जागिये, ब्रजराज कुंवर, कमल कुसुम फूले।
> कुमुद-वृन्द संकुचित भए, भृंग लता भूले।
> तमचुर खगरोर सुनहु, बोलत बनराई।
> राँभति गो खरिकनि में, बछरा हित धाई।

हाँ, तो मुख्य रूप से सूर काव्य मे उद्दीपन रूप मे ही प्रकृति चित्रण हुआ है। चतुर दूती की भाँति प्रकृति राधा और कृष्ण के मिलन के लिए, उनके प्रेम भाव को उद्दीप्त करने के लिए, अनुकूल वातावरण उपस्थित करती है। प्रकृति यहाँ शरद ऋतु के रूप मे प्रकट हुई है—

> आजु निसि सोभित सरद सुहाई।
> सीतल मंद सुगंध पवन बहि रोम-रोम सुखदाई।
> जमुना पुलिन पुनीत परम रुचि, रचि मंडली बनाई।

उक्त पद सयोग पक्ष में प्रेम के उद्दीपन के रूप में है। वियोग पक्ष में भी शरद् का वर्णन हुआ है—

गोविंद बिनु कौन हरैं, नैनन की जरनि।
सरद निशा अनल भई, चन्द भयौ तरनि।

इसी प्रकार पावस का सयोग के समय वर्णन देखिए—

नयौ नेह, नव गेह नयौ रस, नवल कुंवरि बृषभानु किशोरी।
नयौ पिताम्बर, नई चूनरी, नइ-नइ बूंदनि भीजति गोरी।

वियोग के समय बरसात के बादल कामदेव की सेना बनकर विरहिणी गोपियों पर चढ़ाई कर देते हैं—

देखियत, चहु दिसि तैं घन घोरे।
मानो मत्त मदन के हथियन, बल करि बंधन तोरे।

जहाँ प्रिय के साथ प्रकृति प्रेम भाव को उद्दीप्त करके सुखी बनाती है, वहाँ प्रिय के विरह मे वही रति को उद्दीप्त करके व्याकुल बना देती है। नए प्रेम के समय के नये बादल प्रिय के अभाव मे भयकर हाथी बन जाते हैं। मिलन की शरद्-निशा विरह मे आग बन जाती है। अन्य ऋतुएँ भी इसप्रकार सूर की कविता मे उद्दीपन के रूप मे आई हैं।

यद्यपि कवि प्रकृति के कोमल अंगो के वर्णन मे ही रुचि रखता है, तो भी उसके कठोर अगो का भी उसने सफलता पूर्वक वर्णन किया है। दावानल का जीवन्त चित्र एक अवसर पर कवि ने खीचा है, जहाँ उसे पूर्ण सफलता मिली है।

अलकारो मे उपमान के रूप मे भी कवि ने प्रकृति वर्णन किया है। उनके उपमान प्रकृति से ही लिए गए हैं, जिनमे अधिकाश परम्परा प्राप्त हैं। कहीं-कही नवीनता भी है—

अद्भुत एक अनूपम बाग।
जुगल कमल पर गज क्रीडत है, ता प सिंह करत अनुराग।

कवि का यह पद रूपक अतिशयोक्ति का उत्कृष्ट उदाहरण है।

कहीं-कही रहस्यानुभूति के वर्णन के लिए भी प्रकृति चित्रण हुआ है; जैसे—

चकई री, चलि चरण सरोवर, जह नहि मिलन वियोग।

इस प्रकार सूर की कविता मे चार रूपों मे प्रकृति का चित्रण हुआ है—(१) आलम्बन के रूप मे (बहुत कम) (२) उद्दीपन के रूप मे (मुख्यत) (३) अलकारो में उपमानो के रूप में और (४) कहीं-कही रहस्यानुभूति के वर्णन के रूप मे। इनमे सूर के प्रकृति वर्णन का महत्त्व उद्दीपन रूप में ही सर्वाधिक है।

प्रश्न १५—"स्वाभाविकता में अलौकिकता का विन्यास सूरदास की मुख्य काव्य-साधना है। इस साधना में सर्वत्र वे सफल ही हुए हों, यह नहीं कहा जा सकता।" नन्द दुलारे वाजपेयी के उक्त कथन का समर्थन कवि के काव्य सौंदर्य पर प्रकाश डालते हुए कीजिए।

उत्तर—सूर का 'सूरसागर' धार्मिक काव्य है। कुछ विद्वान् अपने सकुचित दृष्टिकोण के कारण कृष्ण गोपी चरित्र को आत्मा-परमात्मा सम्बन्धी रूपक मात्र समझकर इसे केवल धार्मिक ग्रंथ कह देते हैं। दूसरी ओर एक और असाहित्यिक दृष्टिकोण है जो राधा और कृष्ण का नाम सुनकर ही चौंक उठता है। ये दोनों दृष्टिकोण सूर के काव्य और उसकी कलात्मक विशेषताओं के अध्ययन मे बाधक हैं। वस्तुतः कथा के आधार पर ही काव्य-विवेचन अधूरा है। कथा तो ऊबड़-खाबड़ पत्थर है, जिसे कवि काट-छाँट कर सवारता है। कला की परख तो मूर्ति को देखकर ही की जा सकती है। कुमारी मरियम ने कौमार्य में ही ईसामसीह को जन्म दिया था, कथा की दृष्टि से यह कितना निन्दाजनक है, किन्तु इसी को लेकर ईसाई कलाकारो ने संसार की श्रेष्ठ कलाकृतियो का निर्माण किया है। कला के सौंदर्य की परीक्षा के लिए हमे देखना चाहिए कि कलाकार की मनोभूमि कितनी प्रशस्त है, उसकी कल्पना कितनी उदात्त है और मानव-हृदय के रहस्यो को समझने की उसमें कितनी क्षमता है। इसी दृष्टि से हम 'सूरसागर' की परीक्षा करेंगे।

'सूर सागर' सूरदास की कीर्ति का स्थायी स्तम्भ है। इसमे सूर का उद्देश्य कृष्ण के चरित्र का आलेख करना है, इसीलिए अन्य बातो को एक चौथाई भाग मे समाप्त करके वह बाकी भाग (दशम स्कंध) को कृष्ण चरित्र गान मे लगाता है। इसी भाग में उसकी काव्य-कला का सर्वाधिक विकास हुआ है। शेष भाग तो भागवत का सक्षिप्त अनुवाद मात्र है।

'सूर सागर' के दशम स्कंध की मुख्य विशेषताएँ ये हैं—

(१) कृष्ण जन्म वर्णन मे क्षणिक अलौकिक आभास द्वारा कृष्ण के ऐश्वर्य की कलात्मक झलक दिखाई गई है।

(२) कृष्ण यशोदा के योनिज पुत्र नही, पर उसके मन मे कृष्ण के प्रति पूर्ण पुत्र-भाव है, क्योकि यशोदा वास्तविकता नही जानती। पाठक जानते हैं। इस द्विविधा के द्वारा काव्य सौंदर्य मे वृद्धि हुई है।

(३) कृष्ण के व्यक्तित्व मे आवश्यक रहस्यात्मकता का समावेश किया गया है, जो आध्यात्मिक काव्य के लिए अनिवार्य था। साथ ही उसके चरित्र में मनोवैज्ञानिक विश्वसनीयता भी है।

(४) चोरी करते हुए भी कृष्ण सबके प्रिय हैं। अकर्म के भीतर से पवित्र

मनोभावना का यह प्रसार एक रहस्य की सृष्टि करता है, जो सूर की विशेषता है।

(५) सर्वत्र कवि कृष्ण के स्वाभाविक चरित्र मे अलौकिकता का विन्यास करता है, जो सूर की मुख्य काव्य-साधना है। इस प्रकार उन्होने काव्य और भक्ति की दोहरी आवश्यकता-पूर्ति की है।

(६) दान लीला और चीर हरण के प्रसंगों द्वारा उन्होंने प्रेम और गार्हस्थ्य प्रसग को रहस्य से अनुरजित किया है।

(७) रास लीला द्वारा कवि ने प्रेमी-प्रेमिका के सम्बन्ध को रहस्यमयी भक्ति मे परिणत किया है, जो व्यक्तिगत प्रेम का पूर्ण समाजी-करण है। रास-वर्णन मे सूर का काव्य पूर्ण आध्यात्मिक ऊँचाई पर पहुँच गया है।

(८) वसत, होली के अवसरो पर सामूहिक गान, वाद्य एव प्रेम के दृश्यों तथा इसके पश्चात् सुनहरे हिंडोल में राधा-कृष्ण की झाँकी का मनोहारी वर्णन 'सूर सागर' मे हुआ है।

(९) 'भ्रमर गीत' का विरह वर्णन सूर की कला का उत्कृष्टतम निदर्शन है (इसके लिए देखिए, प्रश्न १३)।

(१०) राधा का व्यक्तित्व सूर काव्य मे पूर्ण रूप से स्फुट है, जो भागवत मे नहीं। जिस कौशल के साथ राधा और कृष्ण के एक निष्ठ प्रेम सम्बन्ध को सामूहिक स्वरूप सूर ने दिया है, धार्मिक काव्य के इतिहास मे उस के जोड़ की शायद ही मिले।

अपनी काव्य साधना मे सूर सर्वत्र सफल नही कहे जा सकते। कहीं-कहीं वे रूढियों मे फंस गए हैं, 'मान' आदि के विस्तृत विवरणो मे इतने व्यस्त हो गये हैं कि उनका रहस्यात्मक पक्ष नीचे दब गया है और स्थूल शृंगारिकता ऊपर आ गई है। सूर-काव्य के कतिपय दोष ये हैं—

(१) कृष्ण के साथ बाल्यावस्था में राक्षस वध की जो अलौकिक लीलाए जुडी हुई है, उनका मानसिक आधार नही मिलता, वध के उन कारणों का ज्ञान नहीं होता, जिनके कारण वध अनिवार्य था।

(२) पूतना-वध आदि प्रसगो का मनोवैज्ञानिक आधार नही मिलता।

(३) कृष्ण की सोलह हजार गोपियाँ दिखाने मे रहस्यात्मक पक्ष पीछे रह गया है और कृष्ण का बहुनायकत्व और स्थूल चारित्र उभर आया है। इसका अनावश्यक विस्तार भी अखरता है। यहाँ सूर की कला अपने उच्च लक्ष्य और समुन्नत मानसिक धरातल से नीचे उतर गई है।

(४) मान लीला प्रसग मे भी वर्णन की अतिरंजना से कवि का मूल उद्देश्य लुप्त हो गया है और राधा की भ्रांति के स्थान पर कृष्ण का अपराधी रूप ही उभर आया है। निश्चय ही यह कवि की भावना के अनुरूप सृष्टि

नहीं है।

(५) कहीं-कहीं अलंकार-प्रियता के कारण कवि की कल्पना हास्यास्पद हो गई है। 'हरि कर राजत माखन रोटी' के प्रसंग मे छोटी सी रोटी पर पृथ्वी का भार लादना ऐसी ही कल्पना है।

ये सूर-काव्य की कुछ असफलताएं हैं, किन्तु सफलताएं इनसे कहीं अधिक हैं। वस्तुत सूर के असफल स्थल अपवाद स्वरूप हैं। मुख्यतः उनकी कला उदात्त मानसिक भूमि पर ही खडी है। सूर के उक्त दोष अपवाद स्वरूप होने के कारण उनके बृहत्काव्य पर कोई गहरा धब्बा नही लगाते और उनके गुणों में खो जाते हैं, जैसा कि महाकवि कालिदास कहते हैं—

एको हि दोषो गुण-सन्निपाते निमज्जतीन्दोः किरणेष्विवाङ्कः।

अर्थात् अनेक गुणो के बीच एक दोष उसी प्रकार डूब जाता है जिस प्रकार चाँद की किरणो मे उसका कलंक।

प्रश्न १६—'सूर-साहित्य की पृष्ठभूमि भारत के मध्यकालीन युग का इतिहास है, जिसमें वह महान और व्यापक आंदोलन अन्तर्हित है जिसने ऐसी अनेक भावनाओ को जन्म दिया, जो एक ओर तो मानवता के क्षेत्र को विस्तृत करने वाली हैं तथा दूसरी ओर अनेक संकीर्णताओं को उत्पन्न करती हैं।" डा० हरवंशलाल शर्मा की इस उक्ति के आधार पर सूर-साहित्य की पृष्ठ-भूमि पर प्रकाश डालिए।

उत्तर—देखिए, प्रश्न २।

प्रश्न १७—"सूरदास ने वस्तुत अपने काल की सारी विलासिता का सुन्दर उपयोग किया है और कोई भी सहृदय इस बात को अस्वीकार नहीं करेगा कि सचमुच उन्होंने भजन के पारस पत्थर से स्पर्श कराके विलासिता रूपी कुधातु को भी सोना बना दिया है।" डा० हरवंशलाल द्वारा उद्धत डा० हजारी प्रसाद के उक्त कथन का समर्थन करते हुए सूर की भक्ति भावना का निरूपण कीजिए।

उत्तर—देखिए प्रश्न ५।

प्रश्न १८—भाव पक्ष और कलापक्ष दोनो दृष्टियों से सूरदास को पूर्ण सफलता मिली है, सिद्ध कीजिए।

उत्तर—देखिये, प्रश्न ११।

प्रश्न १९—"सूर का सारा काव्य कृष्णमय है। यद्यपि सूरदास ने कृष्ण के सभी रूपों पर प्रकाश डाला है, फिर भी बाल-कृष्ण सूर-साहित्य में बेजोड़ है।" कृष्ण के चरित्र पर प्रकाश डालते हुए सिद्ध कीजिए।

उत्तर—देखिये, प्रश्न ६ (सूरदास के कृष्ण)।

प्रश्न २०—"सूर की राधा मे विद्यापति, जयदेव, चंडीदास और ब्रह्म वैवर्त की राधा की विशेषताएं सहित हो गई हैं और उन सबके ऊपर स्वा-स्वाभाविकता और मनोवैज्ञानिकता के स्वर्णिम वर्ण से सूर ने अपनी राधा को ऐसा रूप दिया कि उनसे पहले के राधा के सभी चित्र फीके पड गये।" डा० हरवंशलाल के उक्त कथन का समर्थन करते हुए सूर की राधा पर प्रकाश डालिए।

उत्तर—देखिये प्रश्न ६ (सूर की राधा)।

प्रश्न २१– सूरदास तत्वत: दार्शनिक न थे, फिर भी वे एक विशेष सम्प्रदाय में दीक्षित थे, जिसके सिद्धात पक्ष से वह अवश्य प्रभावित हुए थे।" इस कथन के प्रकाश में सूर के दार्शनिक सिद्धांतों की व्याख्या कीजिए।

उत्तर – देखिए, प्रश्न ७।

प्रश्न २२—"वात्सल्य और श्रृंगार की जो धारा उन्होंने बहाई उसका प्रसार जितना कम है गभीरता उतनी ही अधिक है।" डा० हरबंशलाल शर्मा के उक्त कथन का समर्थन कीजिए।

उत्तर – देखिए, प्रश्न १३ (रस)।

प्रश्न २३—"सूर ने वात्सल्य और दाम्पत्य—दोनों प्रकार की रति का बडा ही मर्मस्पर्शी अभिव्यजन किया है, जिसमें सयोग और वियोग दोनों पक्षों के अनेक हृदय ग्राही चित्र हैं।" डा० हरवंशलाल शर्मा की उक्ति का विस्तार कीजिए।

उत्तर—देखिए प्रश्न १३।

प्रश्न २४—"वेदान्त, ब्रह्म विद्या या मोक्ष विद्या की जो अजस्र धारा इस देश में चिरकाल से बहती चली आ रही है, महात्मा सूरदास अपने समय में उसके एक निष्णात कवि हो गए है।" आचार्य नंददुलारे वाजपेयी के उक्त कथन का विस्तार कीजिए।

देखिए, प्रश्न ८।

प्रश्न २५—"सूरदास जी का सूरसागर केवल काव्य ही नहीं है, वह धार्मिक काव्य भी है।" श्रीनन्द दुलारे की इस उक्ति का समर्थन करते हुए सूरदास के काव्य सौन्दर्य पर प्रकाश डालिए।

उत्तर—देखिए, प्रश्न १५।

प्रश्न २६—सूरदास की गणना महाकाव्य रचने वाले कवियों की अपेक्षा की जाती है। यह धारणा कहाँ तक सत्य है? अपना मत युक्तियां एवं प्रमाण देकर पुष्ट कीजिए। (प्रभाकर जून १९५६)।

उत्तर—देखिए प्रश्न १२।

उपन्यास सम्राट् प्रेमचंद

या

प्रेमचंद और उनकी साहित्य-साधना

प्रश्न १ उपन्यास क्या है ? उसका साहित्य की अन्य विधाओ से अंतर स्पष्ट करते हुए उसके तत्वो की व्याख्या कीजिए ।

उत्तर : उपन्यास क्या है ? सस्कृत के प्राचीन लक्षण ग्रन्थो मे 'उपन्यास' शब्द का प्रयोग 'किसी वस्तु को युक्तियुक्त रूप मे सामने रखने' या 'प्रसन्न करने' के अर्थ मे हुआ है। परतु आज का उपन्यास इन लक्षणो द्वारा लक्षित नही किया जा सकता । आज काल्पनिक गद्यमय कहानी के रूप में 'उपन्यास' शब्द का ग्रहण हो रहा है, जिसे अग्रेजी मे नॉवल (Novel) कहते हैं। 'न्यू इग्लिश डिक्शनरी' के अनुसार उपन्यास एक लबे आकार की काल्पनिक गद्य कथा है, जिसकी कथा-वस्तु मे वास्तविक जीवन का प्रतिनिधित्व करने वाले पात्रो और क्रियाओ का चित्रण होता है । डा० श्यामसुदर दास के अनुसार 'उपन्यास मनुष्य के वास्तविक जीवन की काल्पनिक कथा है ।' उपन्यास की परिभाषा प्रेमचद के शब्दो मे यह है "मैं उपन्यास को मानव चरित्र का चित्रमात्र समझता हूँ। मानव चरित्र पर प्रकाश डालना और उसके रहस्यो को खोलना ही उपन्यास का मूल तत्त्व है।" इस प्रकार उपन्यास मानव के वास्तविक जीवन और चरित्र की गद्यमय काल्पनिक कहानी का नाम है।

उपन्यास का साहित्य की अन्य विधाओ से अन्तर

उपन्यास और कविता : कविता मे भावतत्त्व का प्रधानता होती है, परतु उपन्यास मे कथातत्त्व की । इस कारण जहाँ कविता मुख्यत रागात्मक होती है, वहाँ उपन्यास लय-शून्य गद्य मे यथार्थ-विवरणात्मक होता है । कवि की मनोवृत्ति अन्तर्मुखी होती है, वह अदर की ओर झाँकता है, उपन्यासकार बहिर्मुखी दृष्टि रखता है, वह बाह्यजगत् को देखता है । कवि के लिए कथावस्तु और पात्र अनिवार्य नही; उपन्यासकार का इनके बिना काम नही चल सकता । यही कविता और उपन्यास का अतर है ।

उपन्यास और नाटक नाटक मे स्थान, समय और विस्तार का बधन होता है, उपन्यास में नही । उसे आप कही और चाहे कितनी ही देर तक बैठे पढ सकते हैं। वह एक प्रकार का जेबी थियेटर है । इसके अतिरिक्त नाटक मे लेखक स्वतत्र रूप से कुछ नही कह सकता, पात्रो द्वारा ही वह अपना वक्तव्य प्रकट कर सकता है। दूसरी ओर, उपन्यास लेखक को इस बात की पूरी सुविधा होती है। वह अपनी रचना मे स्वय प्रकट होकर अपने पात्रो एव उनकी चेष्टाओ की छानबीन कर सकता है।

उपन्यास और इतिहास : इतिहास मे कल्पना का कोई स्थान नही होता, उपन्यास में कल्पना द्वारा ही जीवन के नीरस तथ्यो का सरस चित्रण होता है। जहाँ इतिहासकार घटनाओ के यथार्थ वर्णन और तिथिनिर्धारण को ही प्रमुखता देता है, वहाँ उपन्यासकार कहानी के साथ-साथ भावों और अनुभूतियो की ओर भी ध्यान रखता है । इतिहास मे समाज का रूप तो झलकता है, पर व्यक्ति की आत्मा की झाँकी उसमे नही मिलती। दूसरी ओर उपन्यास मे समाज पृष्ठभूमि में रहता है और व्यक्ति की आत्मा का सूक्ष्म चित्रण होता है। इतिहास मे मौलिकता के लिए कोई स्थान नही, वह घटनाओ की प्रतिलिपि मात्र है, परन्तु उपन्यास प्रतिलिपि न होकर नई घटनाओ का सृजनकर्ता भी होता है । इतिहास में तिथि एव घटना-क्रम के अतिरिक्त सब झूठ होता है, उपन्यास मे इनको छोडकर बाकी सत्य होता है। यही इन दोनो मे अतर है।

उपन्यास और कहानी . उपन्यास सम्पूर्ण जीवन एव उसके सभी पहलुओ की व्याख्या करता है, कहानी जीवन के किसी उभरे अग पर एक सक्षिप्त टिप्पणी का नाम है । उपन्यास मे जहाँ एक साथ वस्तु, चरित्र-चित्रण एव सवाद की प्रमुखता हो सकती है, वहाँ कहानी में इनमे से केवल एक की ही प्रधानता हो सकती है । उपन्यास एक विस्तृत उपवन है, जहाँ सभी प्रकार के फूलो और फलो की सत्ता होती है, कहानी वह गमला है जिसमें जीवन का एक पौधा ही पनप सकता है।

उपन्यास के तत्व : कथावस्तु, पात्र चरित्र-चित्रण, सवाद, देशकाल वातावरण, विचार-उद्देश्य और शैली—साधारणत ये छ तत्त्व उपन्यास के हैं।

कथावस्तु : उपन्यास की कहानी या उसका ढाँचा है । यह मुख्य भी हो सकती है और प्रासगिक भी । विषय की दृष्टि से यह राजनीतिक, सामाजिक, धार्मिक, पौराणिक, ऐतिहासिक आदि भेद से कई प्रकार की हो सकती है। कथा-

वस्तु मे मौलिकता, रोचकता, रचना कौशल एव सगठन का होना नितात आवश्यक है। मौलिकता कथावस्तु का अनिवार्य गुण है। रोचकता के विना कहानी पाठको को आकृष्ट नही कर सकती। रचना कौशल से अभिप्राय कौतूहलपूर्ण कहानी और उसके तर्कपूर्ण सबध निर्वाह से है। कथा का उत्तम चुनाव भी इसके अतर्गत है। सभी घटनाएँ एक दूसरे से भली-भाँति जुडी हुई हो, शृखला न टूटे, कई कथाओ का जमघट न हो, इसी मे सगठन की सफलता है।

पात्र चरित्र-चित्रण : चरित्र-चित्रण आज के उपन्यास का सबसे महत्त्वपूर्ण तत्त्व है। मानव चरित्र का यथार्थ चित्रण ही उपन्यास-कला की विशेषता है। पात्रो के आतरिक और वाह्य व्यक्तित्व पर यथेष्ट प्रकाश डालने मे चरित्र-चित्रण की सफलता है। इसके लिए दो पद्धतियाँ काम मे लाई जाती हैं (१) विश्लेषणात्मक पद्धति (जिसमें लेखक पात्रो के भावो एव मानसिक गतिविधियो की स्वय छानवीन करता है) और (२) नाटकीय पद्धति (जिसमें लेखक अपनी ओर से कुछ नही कहता, पात्र स्वय अपने या एक-दूसरे के चरित्र की व्याख्या करते हैं)। आजकल दोनो शैलियाँ अपनाई जा रही हैं।

उपन्यास में दो प्रकार के चरित्र आते हैं—(१) वर्गगत (जो किसी वर्ग का प्रतिनिधित्व करते हैं, जैसे 'गोदान' मे होरी, जो किसान वर्ग का प्रतिनिधि है) और (२) व्यक्तिगत (जो अपने ही प्रतिनिधि होते हैं, जैसे 'अज्ञेय' के 'शेखर एक जीवनी' मे शेखर)।

कथावस्तु और चरित्र-चित्रण मे सामजस्य होना आवश्यक है। सजीवता, स्वाभाविकता और सूक्ष्म अध्ययन चरित्र-चित्रण के अनिवार्य गुण हैं, जिनके विना उपन्यास जीवन का चित्र न होकर मदारी का पिटारा मात्र रह जाएगा।

संवाद : सवाद कथावस्तु के विस्तार और पात्रो के चरित्र-चित्रण में सहायक होते हैं। इनके द्वारा पात्रो के मानसिक अन्तर्द्वन्द्व की झाकी मिलती है एव वस्तु मे नाटकीयता आती है। सवाद सरल, आकर्षक, सगत एवं सक्षिप्त होने चाहिएँ। पात्रानुकूलता तथा प्रसंगानुकूलता भी सवाद के मुख्य गुण हैं।

देशकाल वातावरण : इसके अतर्गत आचार-विचार, रीति रिवाज तथा राजनीतिक-सामाजिक परिस्थितियो का यथार्थ चित्रण आता है। सामाजिक-उपन्यासो मे विभिन्न समस्याओ को दिखाते हुए तदनुकूल वातावरण भी उपस्थित करना पडता है। ऐतिहासिक उपन्यासो में वातावरण का चित्रण अधिक सावधानी के साथ करना पड़ता है। ऐतिहासिक उपन्यासकार को युग-विशेष

का राजनीतिक तथा सामाजिक वातावरण जुटाना पड़ता है और उसके अनुसार तत्कालीन समाज का वास्तविक रूप देना पडता है।

विचार उद्देश्य यद्यपि उपन्यास का मुख्य उद्देश्य कथा द्वारा मनोरंजन होता है, तथापि उसमे लेखक के कुछ विचार एव उद्देश्य निहित होते हैं, जो सामाजिक, राजनीतिक अथवा धार्मिक हो सकते हैं, उपन्यास में विचार और उद्देश्य निश्चित सीमा मे आ सकते हैं, अन्यथा वह इनके भार से दब कर नीरस विवेचना मात्र बन जाएगा। कई आलोचक उपन्यास में विचार और उद्देश्य नही देखना चाहते। परन्तु उनका यह 'कलावाद '(कला कला के लिए है का सिद्धात) आज के विपन्न, दु खी और त्रस्त समाज के अनुकूल नही।

भाषा-शैली · उपन्यास की भाषा सरल, प्रसगानुकूल और पात्रानुकूल होनी चाहिए। भाषा की समास और व्यास शैलियो मे से व्यास शैली ही उपन्यास के उपयुक्त है। उपन्यास में शैली का वही स्थान है जो शरीर मे आकृति और वेशभूषा का। प्रत्येक लेखक की शैली स्वतत्र होती है। आजकल कथा क्षेत्र में वर्णनात्मक, मनोविश्लेषणात्मक, नाटकीय और विचारात्मक शैलियाँ मुख्य रूप से प्रचलित हैं।

उपर्युक्त तत्त्वो की दृष्टि से सफल उपन्यास ही लोकप्रिय होते एव साहित्य क्षेत्र मे समान पाते हैं।

प्रश्न २ . हिंदी-उपन्यास की परम्परा पर प्रकाश डालते हुए उसमें प्रेमचद के उपन्यासों का स्थान निर्धारित कीजिए। अथवा प्रेमचद से पूर्व के कथा साहित्य का परिचय देते हुए प्रेमचद की उपन्यास-कला की विशेषताएँ बताइए।

उत्तर : कहानी कहने और सुनने की प्रवृत्ति प्राचीन काल से चली आ रही है। इसी प्रवृत्ति का विकसित रूप उपन्यास है। उपन्यास प्राचीन कथा से कई बातो मे भिन्न है। प्राचीन कहानियाँ अद्भुत घटनाचक्र और कल्पना की उडान से पूर्ण हैं, जिन पर बौद्धिक दृष्टि से अविकसित समाज सहज ही विश्वास कर लेता था। समाज मे जब तक सामती व्यवस्था रही, तब तक ऐसी कहानियो का प्रचार रहा। इशा अल्ला खा की 'रानी केतकी की कहानी' जिसे हिंदी का प्रथम उपन्यास कहा जा सकता है, इसी प्रकार की कहानियो पर आधारित है। 'सिंहासन-बत्तीसी' 'बैताल पच्चीसी', 'सुआ बहत्तरी' आदि मे अद्भुत तत्त्व की ही प्रधानता है। इस प्रकार की लबी कहानियाँ या उपन्यास हमारे साहित्यिक उपन्यासो के पूर्वज हैं। हमारे प्रारभिक उपन्यासो पर इनकी गहरी छाप है।

हिंदी मे उपन्यासो का अरम्भ भारतेंदुयुग से हुआ इस काल मे श्री निवास दास ने 'परीक्षा गुरु' (ई० १८८२) की रचना की, जिसे हिंदी का सर्वप्रथम मौलिक उपन्यास कहा जा सकता है। इसकी कथावस्तु छोटी है, विशेष आकर्षक भी नही, फिर भी सर्वप्रथम उपन्यास होने के कारण महत्त्वपूर्ण है।

इसी युग मे बाल कृष्ण भट्ट ने 'नूतन ब्रह्मचारी' और 'सौ अजान, एक सुजान' की रचना की। दोनो उपन्यास उपदेश प्रधान हैं। राधाकृष्ण दास का 'नि सहाय हिंदु और' अम्बिकादत्त व्यास का 'आश्चर्य वृत्तात' भी इसी युग के हैं।

उपन्यास साहित्य के विकास का दूसरा युग किशोरीलाल गोस्वामी के उपन्यासो से प्रारभ होता है। इन्होने सामाजिक, ऐतिहासिक, प्रेम सबधी, तिलिस्मी, अय्यारी, सभी प्रकार के उपन्यास लिखे। 'कुसुमकुमारी' 'तारा' 'अगूठी का नगीना' आदि इनके प्रमुख उपन्यास हैं। अयोध्यासिह उपाध्याय के 'ठेठ हिंदी का ठाठ' और 'अधखिला फूल' नामक उपन्यास भाषा के नमूने दिखाने के लिए ही लिखे गए हैं। इस युग मे सर्वाधिक ख्याति प्राप्त करने का सौभाग्य देवकीनंदन खत्री को मिला। उनके 'चन्द्रकान्ता' और 'चन्द्रकाता-सतति' ने हिंदी मे पाठक और लेखक पैदा किए। इनके अन्य उपन्यासो मे 'कुसुम कुमारी' 'नरेन्द्र मोहिनी' आदि मुख्य हैं। घटनाओ की विचित्रता के द्वारा कौतूहल की वृद्धि इन उपन्यासो की मुख्य विशेषता है। तिलिस्म और अय्यारी का कोई ऐसा कोना नही जिसे खत्री जी ने न छुआ हो। हिंदी में विस्तृत पाठक समाज उत्पन्न करने एव हिंदी गद्य को व्यवहारिक रूप देने के कारण इनका प्रारम्भिक युग मे महत्त्वपूर्ण स्थान है।

इसी समय गोपालराय गहमरी ने अपने जासूसी उपन्यासो के साथ हिंदी मे प्रवेश किया। नवीन वस्तु होने के कारण हिंदी में इनका खूब स्वागत हुआ। इन उपन्यासो मे 'चतुरचचल', 'भानुमती' 'नये बाबू' आदि प्रमुख हैं। इसके अतिरिक्त इस युग के अन्य लेखको मे मेहता लज्जाराम शर्मा, बाबू व्रजनन्दन सहाय आदि उल्लेख योग्य हैं।

उपर्युक्त परपरा से स्पष्ट है कि प्रेमचद के इस क्षेत्र मे आने से पूर्व कौतूहल पूर्ण घटना प्रधान उपन्यासो का ही साम्राज्य था। इस के साथ परपरा गत प्रेम पद्धति पर लिखे गए सामाजिक उपन्यास एवं भावना प्रधान उपन्यास भी प्रेम चद से पूर्व लिखे गए। सामाजिक जीवन का यथार्थ चित्रण करने वाले उपन्यासो का अब तक अभाव था। जिसकी पूर्त्ति प्रेमचद के उपन्यासो द्वारा हुई।

प्रेमचद जी हिंदी के सर्वोत्कृष्ट मौलिक लेखक थे, जिन्होंने हिंदी-पाठकों की अभिरुचि को चन्द्रकाता के गर्त से निकाल कर सुदृढ साहित्यिक नीव पर स्थिर किया।

प्रेमचद के उपन्यास वस्तुतः नये युग का सदेश लेकर आते हैं। इसी युग में हिंदी उपन्यास ने निश्चित कला-रूप को प्राप्त किया और अपनी आत्मा को पहचाना। प्रेम चद के उपन्यास अपनी मौलिक विशेषताएँ लेकर हिंदी में आये। उनकी प्रमुख विशेषता है उनका आदर्शोन्मुख यथार्थवाद। जीवन के यथातथ्य चित्रण को यथार्थवाद कहते हैं। और जीवन के सुधरे रूप को सामने रखना आदर्शवाद है। यथार्थवादी जीवन के उग्र सत्य को उपस्थित करता है, कभी-कभी वह कुत्सितता तक पहुँच जाता है, आदर्शवादी जीवन को प्यार करता है और इस लिए उसे सुन्दर देखना चाहता है। सफल उपन्यासकार वह है, जो दोनों के समन्वय के द्वारा अपनी कला को अमर बनाए। प्रेमचद ने यही किया है। उन्होंने यथार्थ की भित्ति पर आदर्श का महल खड़ा किया है। इस प्रकार उनका यथार्थ आदर्शोन्मुख है। 'सेवासदन' और 'प्रेमाश्रम' में वह समाज के यथार्थ रूप का चित्रण कर के अत मे सेवासदन और प्रेमाश्रम की स्थापना कराके आदर्श समाज के रूप की ओर सकेत करते हैं।

श्री नद दुलारे वाजपेयी 'प्रेमचंद : साहित्यिक विवेचन' में लिखते हैं "कोई कलाकार या तो यथर्थवादी हो सकता है या आदर्शवादी ही। इन दोनों परस्पर विरोधी विचार धाराओं का मिश्रण एक रचना में संभव नहीं" साहित्यिक जगत में आदर्शोन्मुख यथार्थ वाद की सत्ता वे नहीं मानते। उन के अनुसार प्रेम चद आदर्शवादी लेखक थे। परन्तु मानव जीवन और उसपर आधारित हो सकता है। इस प्रकार उपन्यास में यथार्थवादी और आदर्श का सामजस्य उपन्यास के बहुमुखी होने के कारण उसमें विरोधी प्रवृत्तियों का भी सुन्दर सामजस्य संभव है। प्रेमचद जी के उपन्यासों में यह सामजस्य हुआ है और इसीलिए उनके उपन्यास आदर्शोन्मुख यथार्थवादी हैं। स्वय प्रेम चद इस विषय में लिखते हैं "वही उपन्यास उच्चकोटि ही के समझे जाते हैं जहाँ यथार्थवाद और आदर्शवाद का समावेश हो गया हो। उसे आप आदर्शोन्मुख यथार्थवाद कह सकते हैं। प्रेमचद के उपन्यासों में यही 'आदर्शोन्मुख यथार्थवाद' है।

प्रेमचद के उपन्यासों की दूसरी विशेषता है ध्येयोन्मुखता। उन्होंने सर्वत्र राजनीतिक और सामाजिक प्रश्न उठाए हैं और उनके सुझाव भी पेश किए

है। इस दृष्टि से वे उद्देश्यवादी या ध्येयोन्मुख है।

उनकी तीसरी विशेषता है उपदेशात्मकता। अवसर आने पर प्रेमचंद उपदेश देने से नही चूकते। चरित्र-चित्रण उनकी चौथी विशेषता है। उनके उपन्यासो के चरित्र विविध है। उन्हो ने वर्गगत, व्यक्तिगत और प्रतीकात्मक सभी प्रकार के चरित्र रखे हैं, जिन मे हिंदु, मुसलमान, ईसाई, नागरिक, ग्रामीण, गरीब अमीर आदि सभी सम्मिलित है।

उन की पाँचवीं विशेषता है वातावरण का सजीव चित्रण, जिसके द्वारा वे पात्रो का परिस्थितियो पर एव परिस्थितियो का पात्रो पर प्रभाव दिखाते हैं। यथार्थवाद की ओर झुकाव उनकी छठी विशेषता है। अधिकारियो का दबाव, पुलिस के हथकडो, जमीदारो के अत्याचारो एव किसानो की समस्याओ का यथार्थ चित्रण उनके उपन्यासो मे हुआ है।

उनकी सातवीं विशेषता है जीवन के प्रति एक व्यापक दृष्टिकोण। भारतीय सामाजिक जीवन के सभी पहलुओ को उन्होने सूक्ष्मता के साथ देखा है और सर्वत्र उनकी दृष्टि व्यापक है। विभिन्न राजनीतिक एवं सामाजिक समस्याओ के चित्रण के साथ उनके समाधान के सुझाव भी उन्होने प्रस्तुत किए है। स्त्रियो के आपभूण प्रेम, अनमेल विवाह, विधवाओ की समस्या आदि विविध नारी-समस्याओ एव मजदूर-किसान-समस्या, भूमि-समस्या आदि सामाजिक प्रश्नो पर उन्होने सूक्ष्म प्रकाश डाला है।

जीवन के विराट् रूप का व्यापक चित्रण उन्होने अपने उपन्यासों मे किया है। एक आलोचक के अनुसार 'प्रेमचद हिंदुस्तान के उन थोडे-से कलाकारो मे से हैं जो हिंदु और मुसलमान दोनो पर समान अधिकार से लिख सकते हैं। वे बच्चो, बूढो, सधवाओ, विधवाओ, पढी-लिखी स्त्रियो और अपढ किसान स्त्रियो का समान सफलता से चित्रण कर सके हैं।' सामाजिक जीवन के सभी वर्गों और रूपो के यथार्थ चित्रण के साथ-साथ उन्होने उनकी विविध समस्याओ का समाधान भी अपने दृष्टिकोण से प्रस्तुत किया है। 'समाज की पीडित विधवाएँ, सौतेली माताओं से पीडित बालक' महान्तो और पुरोहितो से ठगे जाने वाले किसान, दूसरो की गुलामी करके भी पेट न भरनेवाले अछूत, महाजन का सूद भरते-भरते जिन्दगी गारत करने वाले किसान—इस तरह के सभी लोग प्रेमचंद मे एक अच्छा-दोस्त और सलाहकार पाते हैं।' (एक आलोचक)।

पात्रो के निर्माण की अपूर्व शक्ति उनकी आठवीं विशेषता है। यहाँ यह बात ध्यान देने योग्य है कि पात्रो का निर्माण तो वे सफलता पूर्वक कर सके है, परन्तु उनका निर्वाह नही कर पाए है। परिणाम स्वरूप उनके कई पात्र अकाल मृत्यु के शिकार बनते है।

जीवन की कठोर वास्तविकताओं और कटु यथार्थताओ के बीच भी जीवन के प्रति आशावादी दृष्टिकोण सर्वत्र हमे उनके उपन्यासो मे मिलता है। यह उनकी नवीं विशेषता है। एक आलोचक के अनुसार, 'प्रेमचद जी के उपन्यास एव कहानी-साहित्य मे एक विलक्षण आशावाद, मानव महत्त्व के प्रति अमिट विश्वास और समाज की अनिष्टकारी शक्तियो के विरुद्ध एक कठोर व्यग्य का भाव हुआ है।

भाषा पर पूर्णाधिकार उनकी दसवी विशेषता है। (विस्तार के लिए भाषा-विषयक अलग प्रश्न [स० २१] देखिए)

अपनी इन विशेषताओ को लेकर प्रेमचद जी उपन्यास क्षेत्र मे आए; और पुरानी औपन्यासिक प्रवृतियो मे महान् परिवर्तन उत्पन्न करके उन्होने एक नया युग खडा कर दिया। उन्होने सभी प्रवृत्तियो का सफल समन्वय किया। उन्होने सब से ग्रहण किया और फिर भी अत तक मौलिक बने रहे। इस दृष्टि से उनकी तुलना तुलसीदास से हो सकती है। अपने युग के प्रतिनिधि साहित्यकार के नाते भी तुलसीदास के बाद प्रेमचद का ही नाम आता है।

प्रश्न ३ प्रेमचद के जीवन और व्यक्तित्व पर प्रकाश डालते हुए सिद्ध कीजिए कि प्रेमचद का साहित्य उनके जीवन और विचारो की एक झांकी है, जिसमें उनकी आत्मकथा की पुकार समाई हुई है।

उत्तर· प्रेमचद का जन्म ३१ जुलाई, ई० १८८० मे बनारस के पास लमही गाव में एक निम्न मध्यवर्ग के परिवार में हुआ। इनके पिता डाकखाने में नौकर थे और बीस रुपये पाते थे। प्रेमचद का आरम्भ का नाम धनपत राय था। इनकी प्रारम्भिक शिक्षा उर्दू मे हुई। जब ये आठ वर्ष के थे, इनकी माता का देहात हो गया। सन् १८९५ मे ये बनारस हाई स्कूल मे भरती हुए, परन्तु आर्थिक कठिनाइयो के करण स्कूल छोड प्राइवेट पढना आरम्भ किया। इसी वर्ष इनका विवाह हुआ। अपनी पत्नी से ये सतुष्ट न थे, वस्तुत. यह इनका अनमेल विवाह था। घर मे सौतेली मा के दुर्व्यवहार के कारण भी इनका जीवन दु खी रहे। १८९६ मे इनके पिता की मृत्यु हो गई, और ये अब आश्रयहीन हो गए।

किसी तरह ट्यूशनें कर-करके इन्होने द्वितीय श्रेणी मे मैट्रिक पास की। गणित मे ये शुरू से कमजोर थे। अक थोडे होने के कारण फीस माफ न होने से कालेज मे प्रविष्ट न हो सके। नौकरी का खोज मे रहे। इस बीच इन्होंने 'तिलिस्म होशरुबा' के १७ भाग एव अन्य लेखको के बीसियो उपन्यास पढ डाले।

एक दिन एक पुस्तक लेकर बेचने के लिए दूकान पर पहुचे, तो वही एक स्कूल के हैडमास्टर से इनकी जान पहचान हो गई, जिन्होंने इन्हे अपने स्कूल मे अठारह रुपये पर अध्यापक रख लिया। इसके बाद इनका सहित्यिक जीवन भी आरम्भ हो गया। १६०१ मे इनका पहला उपन्यास उर्दू मे प्रकाशित हुआ जो बाद मे 'प्रतिज्ञा, के रूप मे हिंदी मे आया। १६०२ मे 'वरदान' का प्रकाशन हुआ। १६०४ मे इन्होंने 'ओरियटल इलाहाबाद यूनिवर्सिटी' की स्पेशल वर्नाक्युलर परीक्षा पास की। इसी वर्ष ये 'जमाना' के सपादक मुशी उदयनारायण के सपर्क मे आए। 'प्रेमा' का प्रकाशन इसी वर्ष की घटना है। इनकी पहली पत्नी की मृत्यु भी इसी वर्ष हुई। अपने मित्रो के आग्रह पर इन्होंने दूसरा विवाह शिवरानी देवी, जो एक बाल विधवा थी, से किया। उनका यह विवाह सफल रहा। श्रीमती शिवरानी देवी ने अपने पति की प्रेरणा से लिखना आरम्भ किया और आज वे हिंदी की सुप्रसिद्ध कहानी-लेखिका हैं।

ई० १६०५ मे प्रेमचद ने पढाने का प्रमाण पत्र प्राप्त किया जिस पर विशेष रूप से लिखा था कि वह गणित पढाने के योग्य नही हैं। इसी वर्ष वे मॉडल स्कूल के हैडमास्टर हो गए। १६०७ मे इनकी पहली कहानी 'ससार का सबसे अनमोल रत्न' 'जमाना' मे छपी। अगले वर्ष ये डिस्ट्रिक्ट बोर्ड के सब-इन्स्पेक्टर हो गए और इसी वर्ष इनका पहला उर्दू कहानी-सग्रह 'सोज़े वतन' के नाम से निकला, जिसकी सारी प्रतियाँ जब्त करके जला दी गई। अब तक ये नवावराय के नाम से लिखते थे। अब इन्होंने प्रेमचद के नाम से लिखना आरम्भ कर दिया।

ई० १६१० मे गणित के ऐच्छिक विषय होने पर इन्होंने इण्टर पास की। १६१५ मे गवर्नमेंट स्कूल मे सहायक अध्यापक नियुक्त हुए। १६१६ मे इनका पहला महत्त्वपूर्ण उपन्यास 'सेवासदन' प्रकाश मे आया। साथ ही इनका अध्ययन क्रम भी चलता रहा और १६१६ मे इन्होंने बी० ए० पास की। १६२१ में इन्होंने महात्मा गाधी के भाषणो से प्रभावित होकर सरकारी नौकरी छोड दी। एक वर्ष तक काशी विद्यापीठ मे हैडमास्टर रहे। तत्पश्चात् नौकरी छोडकर अपने

गाँव मे रहने लगे। १६२२ में 'प्रेमाश्रम' का एव १६२३ मे 'निर्मला' का प्रकाशन हुआ।

ई० १६२४ मे अलवर नरेश ने इन्हे अपने राज्य में ४०० रुपया मासिक और कार तथा बगला पर निमन्त्रित किया। परन्तु इन्होने यह निमन्त्रण सविनय अस्वीकार किया, क्योकि वह स्वतन्त्र लेखक का जीवन बिताना चाहते थे। बधन उन्हें अभीष्ट न था। इसी वर्ष वे 'माधुरी' के सपादक बने। इनकी प्रसिद्धि से प्रभावित हो यू० पी० की सरकार इन्हें रायसाहिबी देना चाहती थी, परन्तु इन्होंने स्वीकार न की।

ई० १६२५ में 'रगभूमि' एव १६२८ मे 'कायाकल्प' का प्रकाशन हुआ। १६३० मे इन्होने 'हस' पत्रिका निकाली। अगले वर्ष उनका 'गबन' पकाश में आया। १६३२ मे 'कर्मभूमि' का प्रकाशन हुआ। १६३४ मे फिल्म कपनी के निमन्त्रण पर बबई गए। परन्तु वहाँ के वातावरण मे वे अधिक दिन और न टिक सके और 'अवसर मिलते ही रस्सी तुडाकर भाग आए।' १६३६ मे 'गोदान' का प्रकाशन हुआ। इसी वर्ष वे रोग शय्या पर पड गए। इन दिनो वे 'मगल सूत्र' लिख रहे थे। स्वास्थ्य चिताजनक होने पर भी उन्होने गोर्की के मृत्यु दिन पर सभापति के पद से भाषण दिया, जो इनका अतिम भाषण था। आठ अक्तूबर को इन्हें अतिम मूर्च्छा आई और भारती-मा का यह वरद पुत्र सदा के लिए चल बसा।

व्यक्तित्व . प्रेमचद का व्यक्तित्व साधारण था। देखने में प्रभावशाली न था। पीला मुख, धँसे हुए झुर्रियो वाले गाल और धँसी हुई आँखें इस बात की सूचना देती थी कि उन्हें अपने जीवन मे बडे-बड़े सघर्षो का सामना करना पडा था। खुले गले का खादी का कुर्ता और ढीली धोती—यह उनका वेश था।

परतु इस सीधे सादे व्यक्तित्व और वेश के पीछे एक महान् आत्मा छिपी हुई थी, जिसने अत्याचारो के सामने कभी सिर नही झुकाया, भखे-प्यासे रहकर भी आत्मसम्मान नही छोडा और आवश्यकता पडने पर जो सर्वदा आत्मबलिदान के लिए तैयार रहा।

पढने का अत्यन्त शौक था, परन्तु साधन न थे। फिर भी उपन्यासों के विशाल साहित्य का उन्होंने अध्ययन किया। विपत्तियाँ आई, परन्तु प्रेमचद कभी अपने जीवन में निराश न हुए। जीवन से उन्होने बहुत सीखा। डा० रामविलास के शब्दों मे, उन्हें "जहाँ वास्तविक शिक्षा मिली वे विश्वविद्यालय दूसरे ही थे। उनके अध्यापक लमही के किसान, बनारस के महाजन और

किताबो के नोट्स बिकाने वाले बुकसेलर थे।"

अध्यापक जीवन मे भी उन्होने स्वाभिमान न खोया। अपने घर के सामने से गुजरते हुए इस्पेक्टर को देख कर भी वे न उठे और पूछने पर उन्होने निर्भीकता पूर्ण उत्तर दिया—"मैं जब स्कूल मे रहता हूँ तब नौकर हूँ। बाद मे मैं अपने घर का बादशाह हूँ। यह आपने अच्छा नही किया, इसका मुझे अधिकार है कि आप पर केस चलाऊँ" जहाँ काम किया, निर्भीकता और ईमानदारी के साथ किया।

प्रेमचद हृदय से कोमल थे और स्वय कष्ट सह कर भी दूसरे के सुख का ध्यान रखते थे। बलिदान उनके जीवन का अनिवार्य अग था। सरस्वती की सतत आराधना के लिए एव बधन मुक्त होने के लिए उन्होने सरकारी नौकरी छोड दी। पैसे के लिए किसी का बधन उन्हे स्वीकार न था। यदि वे चाहते तो अलवर नरेश के सपन्न आश्रय मे वे निश्चित जीवन बिता सकते थे, परन्तु उनकी उन्मुक्त आत्मा ने यह स्वीकार न किया।

उनकी सादगी भारतीय किसान की सादगी थी, फिर भी उनकी महानता छिपी न रहती थी। जो भी उन से मिलता, उनका भक्त हो जाता था। बातचीत साधारण और विनीत, ठहाका मार कर हँसना, उन्मुक्त हँसी के पीछे एक सजीव व्यक्तित्व—यही उनकी महानता थी। अपरिचित से भी वे दिल खोल कर मिलते थे। कृत्रिमता से उन्हे घृणा थी। वे स्पष्ट कहने और सुनने के अभ्यस्त थे।

जैसे कि हसराज 'रहबर लिखते' हैं—"जीवन मे इतनी विपत्तियाँ और कठिनाइयाँ सहने के बाद भी अगर वे हँस सकते थे, तो यह स्पष्ट है कि उन्होने जीवन के महत्त्व को समझ लिया था। इसलिए मुसीबतो के बावजूद वे खुद हँस सकते और दूसरो को हँसा सकते थे।" दीन और दुखी को देख कर उनका हृदय पिघल जाता था। कई बार पैसो के सबध मे धोखा खाकर भी उनकी सहानुभूति का भाव जागरित रहता था।

प्रेमचद सच्चे लेखक थे। वे कलम के मजदूर थे। लिखने के लिए ही वे सारा जीवन सघर्ष और दौड धूप करते रहे। लेखको के प्रति उनमे महान् आदर भाव था। नए लेखक हमेशा उन से प्रोत्साहन पाते थे।

प्रेमचद सच्चे मानव थे और मानव ही रहना चाहते थे। इसीलिए वे गरीबी मे भी सतत सघर्ष करते रहे। वे अपनी धुन के पक्के थे और अपने विचारो के दृढ थे। वे परिश्रमी और स्वाध्यायशील थे। मृत्यु पर्यन्त उन्होने कठिन परिश्रम

किया और मधुमक्खी की भाँति जीवन के काँटे-भरे फूलो मे साहित्य के लिए रस संचित करते रहे।

प्रेमचद के जीवन और व्यक्तित्व का उनकी रचनाओं पर अमिट प्रभाव पडा है। निर्धन परिवार में जन्म, सरकारी और दूसरी नौकरी के अनुभव, ग्रामीण जीवन से पूर्ण परिचय, गृहस्थ जीवन के कटु अनुभव, सरकारी कर्मचारियो के क्रूर अत्याचार, पूंजीपतियो और मिलमालिको के हथकडे आदि से परिचय और संघर्ष उनके जीवन की कहानी है। उनके उपन्यासो में भी तो यही है। विधवा विवाह के प्रश्न, अनमेल विवाह की समस्या, जो इनके उपन्यासो मे हैं। सब उनके जीवन की घटनाओं की ही प्रतिमूर्ति है।

उनकी रचनाओं मे गरीबो के प्रति जो सहानुभूति सर्वत्र दिखाई पडती है, उसकी तह मे उनकी अपनी गरीबी थी। वे दु खी हिन्दुस्तान के गरीबो के लेखक थे। उनका साहित्य तमाम पीडितो का मानसिक सबल है। पीडितो के प्रति उनकी सहानुभूति कोरी न थी। उन्होने स्वय गरीबी के दिन देखे थे, अत उनकी सहानुभूति हार्दिक (Sincere) थी

इस प्रकार यह स्पष्ट है कि प्रेमचद का साहित्य उनके जीवन और विचारों की एक झाँकी है, जिसमे आत्मा की पुकार समाई हुई है।

प्रश्न ४ प्रत्येक प्रगतिशील साहित्यकार अपने समकालीन साहित्य तथा सामाजिक एव राजनीतिक परिस्थितियों से प्रभावित होता है इस कथन के आधार पर प्रेमचद के साहित्य पर विभिन्न प्रभाव दिखाइए।

उत्तर. यदि प्रगतिशील साहित्य का प्रभाव आने वाले साहित्य पर पडता है, तो दूसरी ओर वह स्वय भी अपने से पहले के साहित्य से प्रभाव ग्रहण करता है। इसी प्रकार जहाँ साहित्य आने वाले युग की परिस्थितियो और विचार धाराओं पर प्रभाव डालता है, तो वह स्वय भी अपने से पहले की और अपने समय की परिस्थितियों से प्रभावित होता है। इस रूप में वह सब कुछ समाज से ही लेता है और फिर भी यदि मौलिक बना रहता है तो वह उसकी महानता है। प्रेमचद के साहित्य मे यही महानता है। उन्होंने सब से सब कुछ लिया है और फिर भी, कालिदास, तुलसीदास और शेक्सपीयर की रचनाओं के समान उनकी रचनाएँ सर्वाधिक मौलिक सिद्ध हुई हैं।

प्रेमचद के जीवन पर उनके व्यक्तिगत जीवन, समकालीन साहित्य, सुधार एव राजनीतिक आंदोलनों का गहरा प्रभाव पड़ा है।

व्यक्तिगत जीवन का प्रभाव : प्रेमचद के उपन्यासो में चित्रित निर्धनता लेखक के अपने जीवन का प्रभाव है। आलोचक तो 'गोदान' के होरी को प्रेमचद मानते हैं। वास्तव मे जो व्यक्तिगत समस्याएँ एव कठनाइयाँ उनके अपने जीवन मे आई। उन्ही का चित्रण उनके उपन्यासो मे हुआ है। (विशेष विस्तार के लिए देखिए—प्रश्न ३)

साहित्यिक प्रभाव : प्रेमचद ने उपन्यास लिखने से पूर्व ही हिंदी और उर्दू के मौलिक तथा अनूदित उपन्यास पढ डाले थे। अग्रेजी उपन्यासो का भी उनका अध्ययन विशाल था। उनकी प्रारम्भिक शिक्षा उर्दू मे होने के कारण उनका साहित्यिक जीवन उर्दू से आरभ हुआ। उर्दू भाषा का प्रभाव उनके हिंदी उपन्यासो मे पर्याप्त पडा। उनकी भाषा की चुस्ती उर्दू की देन है। हिंदी उपन्यास-साहित्य का उनका अध्ययन विशाल था, शैली की दृष्टि से उसका प्रेमचद पर गहरा प्रभाव पडा। बगला साहित्य और विशेषत' शरत् और रवीन्द्र का उन की रचनाओ पर गहरा प्रभाव है। कहानियो का कलात्मक ढाचा और यथार्थ के साथ कल्पना का मेल सभवत बगला का प्रभाव है।

पाश्चात्य लेखको से भी प्रेमचद ने प्रभाव ग्रहण किया है। उनका यथार्थ-वाद फ्रेंच लेखको का एव आदर्शवाद टॉल्स्टाय आदि का है। यद्यपि जोला, मोपासा, हार्डी, गाल्संवर्दी, शॉ आदि के कथा-साहित्य की विशेषताओ को भी उन्होंने अपनाया है, तथापि टॉल्स्टाय और गोर्की से विशेष रूप से वे प्रभावित हुए हैं।

इन सबसे प्रभाव ग्रहण करके भी उन्होंने अपनी मौलिकता की रक्षा की है, यही उनकी विशेषता है।

सामाजिक प्रभाव . प्रेमचद के युग में आर्य समाज के सुधार आदोलनो की बडी धूम थी। बाल विवाह, विधवा विवाह, दहेज प्रथा, वेश्या वृत्ति आदि सामाजिक प्रश्नो को लेकर लेख लिखे जाते थे। अछूतोद्धार और शुद्धि का आदोलन भी इसके साथ था। इन सब आदोलनो एव सुधारो का प्रभाव प्रेमचद के उपन्यासो मे स्पष्ट दीखता है। उनके अधिकाश उपन्यासो मे सामाजिक प्रश्नो की ही विवेचना है। उनकी रचनाओ का मुख्य उद्देश्य ही सामाजिक है। (सामाजिक समस्यायो के लिए प्रश्न ५ देखिए।)

राजनीतिक प्रभाव : बीसवी शताब्दी के तीन-चार दशको में भारत के राजनीतिक क्षेत्र मे अनेक आदोलन हुए, जो मुख्यत' गाधीजी द्वारा प्रवर्तित थे। १९१९ के जलिया वाला हत्याकाड से इस आंदोलन को गति मिली और वह दो

वर्ष तक चलता रहा। १६२२ का टैक्स न देने का आदोलन, १६३० का असहयोग आदोलन तथा १६३५ का नमक सत्याग्रह प्रमुख राष्ट्रीय आंदोलन थे। गाधी जी के अनुयायी होने के कारण प्रेमचद पर इन आदोलनो का पर्याप्त प्रभाव पड़ा। उन्होने गाधी जी के प्रभाव मे आकर सरकारी नौकरी छोड़ दी, और खद्दर प्रचार का कार्य आरभ कर दिया। उनकी पत्नी भी जेल मे गई। उनके उपन्यासो में इन आदोलनो एव सत्याग्रहो की छाया है। 'प्रेमाश्रम,'रगभूमि' और 'कर्मभूमि में इनका विस्तृत चित्रण है।

इस प्रकार स्पष्ट है कि प्रेमचद के साहित्य पर व्यक्तिगत जीवन, तत्कालीन साहित्य, समाज और राजनीतिक का यथेष्ट प्रभाव पड़ा है। एक सच्चे कलाकार के नाते उन्होने अपने उपन्यासो का मसाला पुस्तको से न लेकर अपने एव आसपास के जीवन से लिया है, और सब कुछ लेकर भी मौलिकता अक्षुण्ण रखी है।

जैसे शेक्सपियर सबसे सब-कुछ लेकर भी शेक्सपियर रहे, उसी प्रकार प्रेमचद उर्दू, हिंदी, बगाली, फारसी, अग्रेजी—सबसे ग्रहणीय बातो को लेकर भी अपने से पहले के एव समकालीन सब हिंदी लेखको मे सबसे अधिक मौलिक रहे हैं। यही इनकी विशेषता है।

बीसवी शताब्दी के पूर्वभाग का भारतीय राजनीतिक, सामाजिक एव साहित्यिक अध्ययन प्रेमचद के उपन्यासो के अनुशील के बिना अधूरा रह जाता है। इस दृष्टि से उनके साहित्य का मूल्य और अधिक बढ जाता है।

प्रश्न ५ : प्रेमचंद ने अपने उपन्यासो में किन सामाजिक एवं राजनैतिक समस्याओं पर प्रकाश डाला है ? अथवा प्रेमचंद के उपन्यास मूल रूप से समस्या मूलक उपन्यास हैं, सिद्ध कीजिए ।

उत्तर सामाजिक उद्देश्य को लेकर चलने के कारण प्रेमचन्द के उपन्यासो मे सामाजिक समस्याओ को प्रमुख स्थान मिलता है। उनका दृष्टिकोण कलावादी न होकर जीवनवादी था। उस फूल के सौदर्य को क्या करें जो फल के रूप में न आए ? पानी न बरसने वाले मेघो के अस्तित्व से क्या लाभ ?

प्रेमचद के उपन्यास लिखने का उद्देश्य समकालीन समस्याओ का चित्रण करके उनके समाधान के उपाय प्रस्तुत करना था। उनके सभी उपन्यास समस्या प्रधान हैं। समाज के सभी वर्ग उनके उपन्यासो मे अपनी समस्याएँ लेकर आये है। राजा, नवाब, अग्रेज, अधिकारी, मध्यवर्ग के कर्मचारी, पुलिस के सिपाही,

सूदखोर महाजन, मिल मालिक, पूजीपति, व्यापारी, किसान, मजदूर, अछूत—सभी प्रकार के पात्र उनके उपन्यासो मे आते हैं और अपने-अपने वर्ग का प्रतिनिधित्व करते हैं।

इन समस्याओ को हम तीन भागो मे बाँट सकते हैं, (१) सामाजिक, (२) राजनीतिक एव, (३) सास्कृतिक समस्याएँ। सामाजिक समस्याओ मे विधवा की असहाय दशा और नारी की पराधीनता पर 'प्रतिज्ञा' मे प्रकाश डाला गया है। 'वरदान' मे अनमेल विवाह का प्रश्न है। 'निर्मला' मे अनमेल विवाह' वृद्धविवाह और दहेज की कुप्रथा का वर्णन है। 'गबन' मे आभूषणप्रियता और उससे उत्पन्न होने वाली बुराइयो तथा मिथ्या-प्रदर्शन की हानियो का चित्र है। 'सेवासदन' मे दहेज की बुरी प्रथा एव वेश्या-वृत्ति पर प्रकाश डाला गया है। इसी प्रकार अन्य उपन्यासो मे भी एकाधिक सामाजिक प्रश्नो पर विचार है और इन प्रश्नो के समाधान का भी सकेत यथास्थान दिया गया है।

राजनैतिक समस्याओ मे, नगर से सबधित प्रश्न उद्योगीकरण का है, जिस पर 'रगभूमि' और 'गोदान' मे विचार है। मजदूरो की समस्या भी इन उपन्यासो मे आई हैं। देहात से सबधित प्रश्नो मे किसान जीवन की विधि समस्याओ पर विस्तृत विचार 'प्रेमाश्रम' कर्मभूमि' और 'गोदान' में हुआ है। किसानवर्ग के कष्टमय जीवन का स्पर्शी चित्र इन रचनाओ मे है। जमीदारो के अत्याचार, सरकारी कर्मचारियो का क्रूर व्यवहार एव महाजनो के अत्याचारो का यथार्थ चित्र भी इसमे है।

सास्कृतिक समस्याओ में उन्होने प्राचीन इतिहास को लिया है। परतु वे मुगल काल से पीछे नही हटे। उन्होने मुगल काल के पतन कालीन वैभव और राजपूतो के वलिदान का सजीव चित्र खीचा है, इसके लिए इन्होने नाटको एव कहानियो को अपनाया।

कुछ अन्य समस्याओ पर भी प्रेमचद ने प्रकाश डाला है। अछूतो के मदिर प्रवेश और चमारो के सुधार का प्रश्न 'कर्मभूमि' मे आया है एव अनाथो की समस्या पर 'प्रेमाश्रम' मे विचार हुआ है।

इस प्रकार प्रेमचद के सभी उपन्यासो मे राजनीतिक और सामाजिक प्रश्नो पर प्रकाश डाला गया है। (विस्तार के लिए उपन्यासो पर आलोचनात्मक प्रश्नो को देखें। प्रश्न १७ भी देखिए।

प्रेमचंद के उपन्यास

प्रश्न ६. 'सेवासदन' की संक्षिप्त कथा देते हुए उसकी आलोचना कीजिए। (१६५२; १६५६ नवंबर)

उत्तर कहानी : दारोगा कृष्णचन्द्र के परिवार मे उनकी पत्नी और दो लडकियाँ—सुमन और शांता—हैं। दरोगा जी बहुत ईमानदार हैं, , अन्य पुलिस कर्मचारियो के समान उन्होंने अपने जीवन में कभी रिश्वत न ली। फल स्वरूप पच्चीस वर्ष तक नौकरी करने के पश्चात् भी वे अपनी लडकी सुमन के विवाह के लिए दहेज नही जुटा पाते हैं। विवश होकर आखिरी दिनो मे रिश्वत लेते है, परतु नौसिखिया होने के कारण पकडे जाते है। उन्हे चार वर्ष का कारावास दड मिलता है।

इधर सुमन का विवाह गजाधर नामक एक प्रौढ व्यक्ति से हो जाता है। गजाधर दुहेजा है और पन्द्रह रुपये महीने का क्लर्क है। कुछ दिनो के बाद ही पति-पत्नि मे मनमुटाव हो जाता है। एक दिन सुमन अपने मुहल्ले के वकील पद्मसिंह के यहाँ भोली नामक वेश्या का मुजरा देखने जाती है और रात को दो बजे के लगभग घर लौटती है। गजाधर उसे घर से निकाल देता है। सुमन कुछ दिन तो वकील पद्मसिंह के घर में रहती है, परतु अत में निराश्रित हो कर भोली वेश्या की शरण में जाती है और वेश्या बन जाती है। गजाधर आत्मग्लानि से साधु बन जाता है।

समाज सुधारक विट्ठल दास सुमन का उद्धार करना चाहता है। सुमन पचास रुपए मासिक की सहायता मिलने पर वेश्यावृत्ति छोडने पर सहमत हो जाती है, परतु विट्ठलदास प्रयत्न करने पर भी कोई प्रबंध नही कर पाते हैं।

सुमन की छोटी बहन शांता का विवाह पद्मसिंह के भतीजे सदन से होना निश्चित होता है। परन्तु जब वर पक्ष को पता चलता है कि उसकी बहन वेश्या है, तो शादी टूट जाती है। इसी अवसर पर कृष्णचद्र चार वर्ष की कारावास से छूट कर आते हैं और सुमन और शांता के समाचारो से दुःखी हो कर नदी मे डूब कर आत्महत्या कर लेते हैं। सुमन भी जब सुनती है कि शांता का विवाह सबंध टूट गया, आत्महत्या के लिए निकल पड़ती हैं। मार्ग में उसे साधु गजानद (गजाधर) मिलते हैं, जिनके समझाने पर वह एक आश्रम में आ जाती है। शांता भी उसी आश्रम में आ जाती है। दोनों बहिनें वहाँ इकट्ठी रहती हैं।

उच्छृ खल सदन इसी बीच में सुधर जाता है और स्वतन्त्र रूप से गगा नदी मे मल्लाही शुरु करता है । गगा के किनारे वह कुटिया बनाकर रहता है । सुमन और शाता आश्रम के अपने विरोधी वातावरण से तग आकर निकल पडती हैं; गगा के किनारे अचानक उनकी सदन से भेट हो जाती है । सदन अब शाता को पत्नी के रूप मे स्वीकार करता है। तीनो वही सुख पूर्वक रहने लगते हैं।

सुमन एक दिन अपने प्रति शाता के व्यवहार मे अतर पाकर, वहाँ से निकल पडती है। मार्ग मे उसकी भेंट स्वामी गजानद से होती हैं। वह उसके चरणो मे गिरकर अपने उद्धार की भीख माँगती है। गजानद उसे धर्म का उपदेश देते हैं और वेश्याओ को सम्भ्रान्त युवतियाँ बनाने के विचार से खोले गए 'सेवासदन' मे शिक्षिका के रूप में कार्य करने की उसे प्रेरणा देते हैं। सुमन 'सेवासदन में शिक्षिका के रूप में रहने लगती है।

आलोचना

कथावस्तु सामाजिक समस्या प्रधान उपन्यासो मे 'सेवासदन' का प्रमुख स्थान है। इस उपन्यास मे पहली बार लेखक प्रेमकथा छोडकर समाज चित्रण की ओर आता है। इससे पहले के 'प्रतिज्ञा' और 'वरदान' प्रेमकथा मात्र हैं।

सेवासदन मे तीन अवातर कथाएँ साथ-साथ चलती हैं—(१) सुमन-गजाधर की कथा, (२) शाता-सदन की कथा और (३) चौक से वेश्याओ के हटाए जाने की कथा। प्रथम दो कथाओ का सगठन भली भाँति हुआ है। तीसरी कथा मुख्य कथा से अच्छी तरह सबद्ध नही है, क्योकि चौक से वेश्याओ के हटाए जाने के लिए म्युनिसिपैलिटी की कार्यवाहियो, बहसो आदि का सुमन से अधिक सबध नही है। शाता-सदन की कथा ने सुमन-गजाधर की मुख्य कथा के प्रवाह को शिथिल कर दिया है, क्योकि इस कथा में सुमन गौड हो जाती है।

मौलिकता और रोचकता की दृष्टि से कथानक सफल है। वस्तु का महत्त्व इसलिए भी है कि वेश्या-वर्णन के प्रसग में भी विलासिता नही आने पाई। पाठको के मन मे वेश्याओ के प्रति करुणा और सहानुभूति उत्पन्न की गई है एव दूसरी ओर सामाजिक अत्याचारो के प्रति घृणा और विद्रोह की भावना।

म्युनिसिपैलिटी के लबे वाद-विवाद अवश्य कथा-प्रवाह को रोककर अरुचि पैदा करते हैं। सभवता की दृष्टि से वेश्यावृत्ति ग्रहण कर लेने वाली सुमन का एक ही दिन में सुधार दिखा देना कृत्रिम है। इसके लिए पर्याप्त पृष्ठभूमि की आवश्यकता थी। श्री नंददुलारे वाजपेयी इसकी त्रिमुखी कथा योजना को शिथिल और

असफल मानते हैं। परन्तु डा० पद्मसिंह वेश्या समस्या के परिपूर्ण प्रकाशन के लिए इन तीनों कथाओं को आवश्यक और सफल कहते हैं।

चरित्र-चित्रण : चरित्र-चित्रण की दृष्टि से 'सेवासदन' प्रेमचद की उपन्यास कला का उत्कृष्ट उदाहरण है। पात्रो का मनोवैज्ञानिक चरित्र-चित्रण इस उपन्यास की विशेषता है। इसके प्रमुख पात्र हैं सुमन, गजाधर, शाता, सदन, एव गौण हैं विट्ठलदास आदि।

सुमन उपन्यास की नायिका है। वचपन में सुदर, चचल और स्वाभिमानिनी है। अनमेल विवाह और आर्थिक परवशता के कारण यह वेश्यावृत्ति स्वीकार करने पर विवश होती है। समाज के कुव्यवहार के प्रति उसमें विद्रोह की भावना है। वह स्पष्टवादिनी, निर्भीक और स्वाभिमान की मूर्ति है। सक्षेप में सुमन का चरित्र सफल है और लेखक को उसके चित्रण में पूर्ण सफलता मिली है।

गजाधर परिस्थितियो से प्रभावित पुरुष है, असफल पति और अयोग्य गृहस्थी है। वाद मे उसका चरित्र सच्चे साधु और लोकसेवक के रूप में आता है। शाता का चरित्र गौण है, फिर भी लेखक उसके द्वारा भारत की चिरतन नारी के दर्शन कराना चाहता है। अत मे इसका चरित्र साधारण वन कर ही रह जाता है। सदन तीन रूपो में हमारे सामने आता है। पहले वह एक अक्खड और आवारा लडका है। वाद में उसमें एकाएक सुधार होता है। तीसरे रूप मे वह पुन निम्न स्तर पर उतर आता है।

वातारवण : नागरिक और ग्रामीण वातावरण का इसमे सजीव और स्वाभाविक अकन हुआ है। इस दृष्टि से लेखक को पूर्ण सफलता मिली है।

नगर के धनिको, समाज-सुधारको आदि का यथार्थ अकन लेखक ने यहाँ किया है। भोली के नृत्य के समय का दृश्य देखने योग्य है। दालमण्डी का चित्रण यथार्थ है। म्युनिसिपैलिटी के सभा भवन मे वाद-विवाद का अकन भी स्वाभाविक और सुदर है। वातावरण का सजीव अकन इस उपन्यास की अन्यतम विशेषता है।

विचार और उद्देश्य 'सेवासदन', मूलत समस्या प्रधान उपन्यास है जिनकी प्रमुख समस्याएँ दहेज-प्रथा, रूढिवादिता, समाज की झूठी नैतिकता ए वेश्या समस्या हैं। अतिम समस्या उपन्यास की मुख्य समस्या है, जिसका समाधा लेखक ने सुधारवादी दृष्टिकोण से किया है परन्तु समस्या के मूल मे जो आर्थि कारण हैं उनकी ओर उपन्यासकार का ध्यान नही गया। यहाँ लेखक की आदर्श वादी प्रवृत्ति का परिचय हमें मिलता है। सुमन का एकदम वेश्यावृत्ति छोड़ देना

अस्वाभाविक लगता है, फिर सेवासदन की स्थापना तो प्रेमचंद की आदर्शवादी भावना का ही परिणाम है । फिर भी आदर्श की स्थापना लेखक ने यथार्थ वातावरण के चित्रण द्वारा की है । इसे उसका आदर्शोन्मुख यथार्थवाद कहा जा सकता है।

श्री मन्मथनाथ गुप्त के अनुसार, उपन्यास की केन्द्रीय समस्या ब्रिटिश पुलिस पद्धति की बुराई (जिसके कारण आदमी भला नही रह सकता) एव पूजीवाद का प्रभाव है, जो रिश्वत के रूप में प्रगट होता है। डा० रामविलास शर्मा के अनुसार "इस उपन्यास की वास्तविक समस्या है लडकियो को कुएँ मे ढकेलना और फिर सतीत्व के गीत गाना ।" डा० पद्मसिंह ने इसकी मूल समस्या नारी के अधिकार को ही मानी है, जिसे लेखक सब ओर से पूरी सामाजिक व्यवस्था के बीच रख कर देखना चाहता है। इस प्रकार नारी की आर्थिक पराधीनता उपन्यास की मुख्य समस्या है ।

कलापक्ष रचना-शैली और भाषा की दृष्टि से भी 'सेवासदन' सफल है। भाषा यद्यपि 'गोदान' की भाषा के समान स्थिर नही, फिर भी उसमें पर्याप्त शक्ति है। मुसलमान पात्रो की उर्दू अधिक कठिन हो गई है। कही-कही सवाद लवे हो गए हैं। वाद-विवाद भी कथानक को शिथिल करते हैं । प्रासगिक कथाओ के अनावश्यक विस्तार से भी कथा का प्रवाह रुकता है।

साधारणत. कला की दृष्टि से यह उपन्यास पर्याप्त पुष्ट और सफल है। विचारो और कला की दृष्टि से इसकी शरच्चद्र के सामाजिक उपन्यासो से की जा सकती है ।

'सेवासदन' प्रेमचद का प्रथम मुख्य उपन्यास है, जिसमें उन्होने नारी समाज की समस्याओ को उपस्थित किया है। यह हिंदी के उन उपन्यासो में पहला है, जिनमे यथार्थ को कला की भव्य वेशभूषा मे प्रस्तुत किया गया है।

प्रश्न ७ : उपन्यास-कला की दृष्टि से 'प्रेमाश्रम' की समीक्षा कीजिए। (१९५२)

उत्तर कहानी : लखनपुर प्रभाशकर और उनके भतीजे ज्ञानशकर की जमीदारी मे हैं। प्रभाशकर के परिवार मे आठ प्राणी और ज्ञानशकर के परिवार में तीन प्राणी हैं। दोनो परिवार सम्मिलित हैं। ज्ञानशकर अपने सकुचित हृदय के कारण इस सम्मिलित परिवार प्रथा से असतुष्ट है।

प्रभाशकर अपने भाई जटाशकर (ज्ञानशकर के पिता) की बरसी मनाने

के लिए गाँव वालो से सस्ता घी लेने का प्रवन्ध करते हैं। मनोहर नामक एक किसान सस्ता घी देने से अस्वीकार करता है। उसे ज्ञानशकर के सामने उपस्थित किया जाता है। वह मनोहर पर बरस पडता है। प्रभाशकर नरमी से काम लेना चाहते हैं, इस पर चचा-भतीजे मे कहा सुनी हो जाती है।

प्रभाशकर का लडका दयाशकर पुलिस में दारोगा है वह एक बार पकडा जाता है। मुकद्दमा ज्ञानशकर के पुराने सहपाठी ज्वालासिंह की कचहरी में जाता है। प्रभाशकर ज्ञानशकर को अपने पुत्र को सहायता के लिए कहते हैं, परतु वह ज्वालासिंह को परोक्ष रूप से दयाशकर के विरुद्ध भड़काता है। दयाशकर दोष सिद्ध न होने से छोड दिया जाता है। ज्ञानशकर अपने चाचा से सम्पत्ति का बँटवारा कर लेता है।

अपने एक मात्र साले की मत्यु पर ज्ञानशकर मन-ही-मन प्रसन्न होता है। अपनी पत्नी विद्या की बडी बहिन गायत्री पर वह डोरे डालता है। अमेरिका गए हुए अपने बडे भाई प्रेमशकर के स्वदेश लौटने पर दुखी होता है। उसका बडा भाई प्रेमशकर उदार है। स्वदेश आने पर वह ज्ञानशकर को यह विश्वास दिला देता है कि उसे उसकी सम्पत्ति से कोई सरोकार नही है। अपनी जमीदारी के साथ ज्ञानशकर गायत्री की रियासत की मैनेजरी भी सम्हालता है। साथ ही गायत्री से अपना प्रेम सम्बन्ध भी बढाने लगता है।

इधर गाँव में ज्ञानशकर का कारिंदा गौस खाँ किसानो पर बहुत अत्याचार करता है। अंत मे मनोहर और बलराज के हाथो उसकी मृत्यु होती है। सभी गाँव वालो के विरुद्ध मुकद्दमा चलता है, यद्यपि मनोहर अपना दोष स्वीकार कर लेता है। मनोहर इस पर आत्म-हत्या कर लेता है। गाँव वाले सगठित होकर मुकद्दमा जीत लेते हैं।

अपने ससुर रायबहादुर कमलानद की सम्पत्ति हडपने के लिए ज्ञानशकर उसको विष देता है। कमलानद जान जाते हैं। योगाभ्यासी होने के कारण उन पर विष का कोई प्रभाव नही पडता। ज्ञानशकर अब अपने ससुर के घर से भाग कर पुन गायत्री से प्रेम का नाटक रचता है। एक दिन उसकी पत्नी देख लेती है और ग्लानि वश आत्म-हत्या कर लेती है। गायत्री भी आत्म-लज्जित होकर अपनी सपत्ति ज्ञानशकर के पुत्र मायाशकर के नाम कर देती है और स्वय तीर्थ यात्रा के लिए चली जाती है। रायबहादुर भी अपनी सपत्ति मायाशकर के नाम लिख देते हैं।

प्रेमशकर 'प्रेमाश्रम' के नाम से एक आश्रम खोलते हैं। मायाशकर अपने तिलकोत्सव के अवसर पर अपनी सारी सपत्ति 'प्रेमाश्रम' को दे देते है। ज्ञानशकर यह नही देख सकता और गगा मे डूबकर आत्म-हत्या कर लेता है।

आलोचना

कथावस्तु उपन्यास की वहुमुखी कथायोजना से लेखक की कलात्मक महत्ता का परिचय मिलता है। वहुमुखी कथायोजना के प्रयत्न मे लेखक सफल है। उपन्यास में दो मुख्य कथाएँ हैं, जिनमे एक का सबध लखनपुर के किसानो के सघर्षों से है और दूसरी का ज्ञानशकर के विविध षडयत्रो से। इन दोनो कथाओ को बडे कौशल से जोडा गया है। पहली कथा मनोहर की मृत्यु के बाद समाप्त होती है, दूसरी प्राय अत तक चलती है। कला की दृष्टि से ज्ञानशकर की कथा पहली कथा की अपेक्षा अधिक सगठित है। इसमें ज्ञानशकर का चारित्रिक पतन क्रमिक और सतुलित ढग से वर्णित है।

उपकथाएँ तीन हैं। पहली रायवहादुर कमलानद की है, जो मुख्य कथा के साथ कुशलता से जुडी है। दूसरी प्रेमशकर की कथा मुख्य कथाओ के साथ भलीभाँति न जुड पाई है। तीसरी उपकथा प्रभाशकर के पुत्रो की है, यह गौण है।

सभी कथाओ में रोचकता, सम्भवता आदि गुण प्रशस्य हैं। योजना मे एक त्रुटि अवश्य है कि लेखक एक कथा को रोक कर दूसरी को चलाता है, फिर उसे रोककर तीसरी को चलाता है फिर पहली को पकडता है। इससे कथाप्रवाह मे वाधा पहुँचती है। पात्रो की अस्वाभाविक मृत्यु भी खटकती है। मनोहर और विद्या की मृत्यु तो कुछ स्वाभाविक कही जा सकती है, परतु ज्ञानशकर को 'प्रेमाश्रम' की स्थापना की वेदी पर वलिदान कर दिया गया है, उसे उपन्यास के अत तक नही पहुँचाया गया है। यह दोष है।

चरित्र-चित्रण चरित्र-चित्रण की दृष्टि से उपन्यास सफल है। इसमे अनेक पात्र आए हैं, जिनमे ज्ञानशकर, प्रेमशकर, प्रभाशकर, कमलानन्द, गायत्री, मनोहर आदि, उल्लेखनीय हैं।

ज्ञानशंकर उपन्यास का खलनायक है। डा० रामविलास शर्मा के शब्दो मे तो "प्रेमचन्द के उपन्यास साहित्य में यह तमाम खलपात्रो का सिरमौर है।" इसके चरित्र मे उच्चवर्ग की स्वार्थपरता का चिन्ह है, जिसके द्वारा सम्मिलित परिवार प्रथा का खोखलापन अच्छी तरह दिखाया गया है। यह अपने वर्ग का प्रतिनिधि

है, धूर्तता, लोभ, क्रूरता और कामुकता उसके चरित्र के मुख्य अग हैं। स्वार्थ उसमें कूट-कूट कर भरा है। ऐश्वर्य लोलुपता उसको पतन की ओर ले जाती है। उसका सारा जीवन षडयन्त्रो से पूर्ण है। दूसरी ओर प्रेमशकर उपन्यास का आदर्श पात्र है, सेवा और त्याग की साक्षात मूर्त्ति है। उनका स्वभाव ज्ञानशकर से ठीक विपरीत है। अपने महान् व्यक्तित्व से वह उपन्यास के कई पात्रो को पवित्र करता है। प्रभाशंकर पुराने ढग के रईसो और जमीदारों का प्रतिनिधि हैं। सम्मिलित परिवार का समर्थक और मर्यादावादी है। रायबहादुर कमलानन्द के चरित्र-चित्रण मे कुछ अलौकिकता आ गई है। मनोहर उद्दण्ड, साहसी और दृढ नवयुवक है।

स्त्री पात्रो मे गायत्री प्रमुख है। वह पहले सरल और विनोद-प्रिय रूप में आती है। चरित्र भी निंद्य नही, परन्तु उसकी नैतिकता उदारता और कृतज्ञता के भार से दब जाती है। उसकी भक्ति भावना ज्ञानशकर के मेल से विलासिता-प्रधान हो जाती है। अन्य स्त्री पात्रो में विद्या, श्रद्धा, विलासी आदि हैं।

विचार-उद्देश्य 'प्रेमाश्रम' मूलत. राजनीतिक समस्या-प्रधान उपन्यास है, यद्यपि इसका सामाजिक पहलू भी है। राजनीतिक समस्याओ में किसान-जमीदार की समस्या मुख्य है। इसमे किसानो और जमीदारो के सघर्ष की कहानी है। किसानो की दयनीय दशा, उनमे सगठन की आवश्यकता, जमीदारो के अत्याचार आदि प्रश्नो पर इसमे गहराई से विचार हुआ है। प्रथम महायुद्ध के बाद जो कृषक-जागरण हुआ उसका सर्वप्रथम सदेशवाहक 'प्रेमाश्रम' बना। लेखक ने यहाँ किसानो की दरिद्रता का उत्तरदायित्व उन परिस्थितियो पर डाला है जिनके अधीन उनका जीवन व्यतीत होता है। ये परिस्थितियाँ क्या हैं ? स्वय लेखक के शब्दो मे, "आपस की फूट, स्वार्थ परायणता और एक ऐसी सस्था का विकास जो उनके पाँव की बेडी बनी हुई है। परस्पर प्रेम और सद्भाव क्यों नही ? इसलिए कि यह (विदेशी) शासन इस सद्भाव को अपने लिये घातक समझता है और उन्हे पनपने नही देता। इसका . फल क्या है ? भूमि का क्रमश छोटे-छोटे भागों मे विभाजित हो जाना और उसके लगान की अपरिमित वृद्धि।" इस प्रकार लेखक कृषको की दुर्दशा का कारण जमीदारी प्रथा को मानता है। लेखक मायाशकर के मुख से कहलवाता है—"भूमि या तो ईश्वर की है...या किसान की, जो इसका उपयोग करता है।...जमीदार को समझना चाहिए कि वह प्रजा का मालिक नही, वरन् उसका सेवक है।...वह इसलिए नही है कि उसके टूटे-फूटे झोपडो के सामने अपना ऊँचा महल खड़ा करे...।"

प्रेमचन्द के विचार मे ये जमीदार अँग्रेजो के दलाल हैं। स्वतन्त्रता आदोलन के लिए अँग्रेजो के इन दलालो का विनाश वे आवश्यक मानते हैं। प्रेमशकर और मायाशकर अपनी सम्पत्ति और जमीदारी त्यागकर आदर्श प्रस्तुत करते हैं। परन्तु गाँव को स्वर्ग बनाने का साधन प्रेमचन्द 'प्रेमाश्रम' को बताते हैं, जो वैसा ही दुर्बल साधन है जैसा 'सेवासदन'। फिर भी इस उपन्यास मे प्रेमचन्द ने गाँव की समस्याओ को गहराई और विस्तार से छुआ है।

सामाजिक समस्याओ में हिन्दू-मुस्लिम-ऐक्य, अधविश्वास, धार्मिक पाखड आदि महत्वपूर्ण प्रश्नो पर यथेष्ट प्रकाश डाला गया है। सम्मिलित परिवार प्रथा के दोष बताए गए हैं एवं भक्ति-भावना की आड मे होने वाली प्रेम-लीला का भडा फोड किया गया है।

वातावरण : ग्राम्य जीवन का सजीव वातावरण उपन्यास मे चित्रित है। किसानो के खेत, उनके अखाडे, लावनी-ख्याल आदि मनोरजन के साधन आदि का यथार्थ चित्र है। पुलिस अधिकारियो के गाँव मे आने पर जैसी हलचल मचती है, उसका भी विशद चित्र है। वातावरण के सजीव अकन मे लेखक को यहाँ पूरी सफलता मिली है, इस सफलता का कारण है कि इस उपन्यास में उसने अपना चिर परिचित क्षेत्र—ग्राम्य जीवन—चुना, जिसके वातावरण से उसे पूरी जानकारी थी। इसमें कृपक वर्ग की दुरावस्था, जमीदारो के अत्याचार, पुलिस-कर्मचारियो के हथकण्डे आदि का सजीव अकन लेखक ने किया है।

कलापक्ष 'प्रेमाश्रम' मे आकर लेखक की कला-प्रतिभा निखर गई है। यहाँ 'वरदान' की शैली सम्बन्धी शिथिलता या सेवासदन की शैलीगत अस्थिरता नही है। भाषा सजीव है। 'सेवासदन' के समान लम्बे भाषण नही हैं। शैली की दृष्टि से यह 'सेवासदन' प्रौढतर कृति है। चरित्र-चित्रण में विश्लेषणात्मक शैली अपनाई गई है। इस प्रकार कला दृष्टि से उपन्यास सफल है। हाँ, व्यर्थ की आत्म-हत्यायें पापियो का क्षण भर मे सुधार आदि कुछ दोप हैं, जो लेखक की आदर्शवादिता और सुधारवादी मनोवृत्ति के कारण आ गए हैं।

शिवनारायण श्रीवास्तव के शब्दो मे "'प्रेमाश्रम' वास्तव मे बथुए की भाजी और जौ की रोटियाँ खाने वाले किसानो के और खस्ता कचौडियाँ तथा सोने के पत्र लगे हुए पान बीडे का आनन्द उठाने वाले जमीदारो के अधिकार-युद्ध की मार्मिक एक कहानी है।" डा० पद्मसिंह के अनुसार "इस उपन्यास को अपने युग का महाकाव्य कहा जा सकता है। .....आज भी यह उतना ही नया है, जितना अपने प्रथम प्रकाशन के समय था।"

प्रश्न ८. उपन्यास-कला की दृष्टि से 'निर्मला' की आलोचना प्रस्तुत कीजिए। (१९५३, जनवरी)

उत्तर कहानी बाबू उदयभानु की लडकी निर्मला का विवाह भालचन्द्र सिन्हा के लडके भुवन मोहन से, जो डाक्टरी पढता है, निश्चित होता है विवाह की तैयारी के सम्बन्ध में पत्नी से कुछ खटपट हो जाने पर बाबू उदयभानु घर से निकल पडते हैं। मार्ग मे मतई नामक उनका पुराना शत्रु उनका काम तमाम कर देता है। उनकी मृत्यु से उक्त विवाह सम्बन्ध टूट जाता है, क्योंकि वर पक्ष को अधिक दहेज प्राप्ति की आशा अब नही है। बेचारी निर्मला का विवाह मुशी तोताराम से हो जाता है।

मुशी जी के तीन लडके पहले ही हैं—मसाराम, जियाराम और सियाराम। मसाराम की आयु लगभग निर्मला के समान है। वह निर्मला को अंग्रेजी पढाता है। मुशी जी अपने पुत्र पर सदेह करते हैं और उसे छात्रावास में भेज देते हैं। मसाराम और निर्मला पर यह सदेश प्रगट हो जाता है। मानसिक आघात पाकर मसाराम छात्रावास मे बीमार पड जाता है। उसके घर जाने से मना करने पर उसे अस्पताल में दाखिल कर दिया जाता है, जहाँ उसकी कुछ समय के पश्चात् मृत्यु हो जाती है। अस्पताल के डाक्टर श्री भुवन मोहन सिन्हा की पत्नी से निर्मला का परिचय हो जाता है और धीरे-धीरे श्रीमती सिन्हा जान जाती हैं कि उनके पति से ही निर्मला का विवाह पहले निश्चित हुआ था। डा० साहब को पश्चाताप होता है और प्रायश्चित रूप में वे निर्मला की छोटी बहिन का विवाह अपने छोटे भा[illegible] से करवा देते हैं।

इधर मुशीजी का लडका जियाराम निर्मला के गहनो की चोरी करता है और भेद खुल जाने पर आत्म- हत्या कर लेता है। घर की दशा खराब हो जाती है। मकान नीलाम हो जाता है। छोटा लडका सियाराम भी घर से भागकर साधु बन जाता है। मुशी जी उसे खोजने जाते हैं, परतु नही लौटते।

एक दिन निर्मला श्रीमती सिन्हा से मिलने जाती है। उनके घर न होने पर डा० सिन्हा निर्मला को अपना प्रेम जताने लगते हैं। वह चली आती है। श्रीमती सिन्हा के आग्रह पर वह उसे डा० साहब की करतूत बता देती है। डा० सिन्हा अपनी पत्नी से भर्त्सना पाकर आत्म-ग्लानि से आत्म-हत्या कर लेते हैं।

निर्मला बीमार रहने लगती है और अत मे एक दिन इन पारिवारिक

दुःखो से छूट कर परलोक सिधार जाती है। जिस समय उसकी अर्थी निकल रही होती है, मुशी तोताराम वहाँ आ पहुँचते हैं।

आलोचन।

कथावस्तु · सक्षिप्त होने के कारण इसकी कथावस्तु पुष्ट और सुसबद्ध हैं। प्रासगिक कथाओ के अभाव से कथानक मे सुगठितता आगई है। रोचकता और सभवता की दृष्टि से वस्तु सफल है। कौतूहल का गुण भी उचित मात्रा मे है। कुछ स्थल विशेष मार्मिक बन पडे हैं, जिनमे उपन्यास का अतिम दृश्य भी एक है।

चरित्र-चित्रण . निर्मला मे मुख्य पात्र हैं तोताराम, निर्मला, भुवन मोहन, सुधा (श्रीमती सिन्हा) और मसाराम। अन्य पात्रो मे उदयभानु, कल्याणी, भालचन्द्र आदि हैं। इस उपन्यास मे अपेक्षा कृत पात्र थोडे हैं।

तोताराम चालीस वर्ष की अवस्था में विवाह करता है। वह स्वभाव से सदेहशील है। परिणामस्वरूप उसका घर उजड जाता है। अपने सकुचित व्यवहार के कारण वह पाठको की सहानुभूति भी खो बैठता है। निर्मला का चरित्र क्रूर सामाजिक रूढियो से पीडित दु खी नारी का चरित्र है, जो दहेज और वृद्ध विवाह की कुप्रथा का शिकार बनती है। लेखक ने उसके हृदय मे कर्त्तव्य और वात्सल्य का जो सघर्ष दिखाया ह, वह मार्मिक और स्वाभाविक है। निर्मला एक सफल चरित्र है।

भुवन मोहन सिन्हा दहेज लोलुप, अतृप्त और कायर नवयुवको का प्रतिनिधित्व करता है। सुधा आज की उन सुशिक्षित लडकियो की प्रतिनिधि है, जो अन्याय का प्रतिकार दृढता-पूर्वक करती है। पति के आत्महत्या कर लेने पर उसके शब्द हैं—"ऐसे सौभाग्य से मैं वैधव्य को बुरा नही समझती।" उसका चरित्र उत्कृष्ट है।

मसाराम आत्माभिमानी बालक है। उदयभानु रईसी और अभिमानी प्रकृति के व्यक्ति हैं। ऊपर से कठोर, किंतु स्वाभाव से भोले-भाले हैं। कल्याणी तेज स्वाभाव की स्त्री है। भालचन्द्र सिन्हा भुवन मोहन सिन्हा के पिता दहेज लोलुप और ढोंगी व्यक्ति हैं।

विचार और उद्देश्य 'निर्मला' सामाजिक समस्या-प्रधान उपन्यास है, जिसकी मूल समस्या दहेज और अनमेल दोहाजू-विवाह की है। इसमें युग-युग से

इन कुप्रथाओं की शिकार नारी की करुण-कथा वर्णित है। नारी का विद्रोही रूप यहाँ उभर आया है। इस उपन्यास के लेखक ने शुद्ध सामाजिक समस्या का समावेश किया है। उपन्यास पूर्णत यथार्थवादी है, यहाँ 'सेवासदन' और 'प्रेमाश्रम' के आदर्श की स्थापना नही है। यह नारी के करुण अत की मार्मिक कहानी है।

इसके साथ-साथ दहेज-लोलुप युवक, दहेज के लालची संपन्न परिवार और वृद्धावस्था मे विवाह कराने वाले कामुक व्यक्ति के दुर्दशापूर्ण परिणाम की कहानी भी हमे यहाँ मिलती है। लेखक और पाठको की सहानुभूति युगो से पद-दलित नारी को मिलती है, अपनी शोषणा-वृत्ति और वासना के परिणाम-स्वरूप विनष्ट होने वाले परिवारो को नही। यह उपन्यास वस्तु और उद्देश्य की दृष्टि से पूर्ण यथार्थ वादी है।

डा० रावविलास शर्मा के शब्दो में, "यह पहला उपन्यास है जिसमें लेखक ने किसी 'सेवासदन' या 'प्रमाश्रम' का निर्माण करके पाठक को झूठी सात्वना नही दी। लेखक ने · यथार्थ वाद को पूरी तरह निवाहा है। .. · यथार्थवाद को लाने मे 'निर्मला' का महत्वपूर्ण स्थान है।"

कलापक्ष 'निर्मला' लेखक की प्रौढशैली का नमूना है। पहले उपन्यासों से यह अधिक सुगठित है। मनोविश्लेपण की शैली का अच्छा उपयोग है। भाषा भी प्रारभिक रचनाओ की अपेक्षा प्रौढतर है। कला की दृष्टि से यह उपन्यास सफल है। फिर भी दो-एक दोप, जैसे आत्म-हत्याओ की अधिकता और सायोगिक घटनाओ (Coincidences) का समावेश, यहाँ भी आ गए हैं।

सामान्यत उपन्यास लेखक के उत्कृष्ट उपन्यासो की पक्ति में रखा जा सकता है।

प्रश्न ६ · 'रगभूमि' का सक्षिप्त कथानक देते हुए औपन्यासिक कला की दृष्टि से उसकी समीक्षा कीजिए। (१९५३, जून)

उत्तर कहानी बनारस के समीप पाडेपुर नामक एक गाँव मे सूरदास, एक अन्धा भिखारी, रहता है। उसके पास कुछ जमीन है और पाँच सौ रुपए भी हैं। वह उन रुपयो से अपनी जमीन पर एक कुआँ और धर्मशाला बनवाना चाहता है, जिससे गाँव वालो को आराम हो जाए।

जानसेवक नामक एक ईसाई सज्जन सूरदास की उस भूमि पर सिगरेट का कारखाना खोलना चाहते हैं। वह सूरदास से उस जमीन को हथियाना चाहते हैं,

परतु वह किसी भी मूल्य पर वह जमीन नही देना चाहता। जानसेवक बनारस म्युनिसिपल वोर्ड के प्रधान राजा महेद्र कुमार की सहायता से सूरदास की जमीन ले लेता है। वहाँ पर सिगरेट की फैक्टरी वन जाती है। अब इसके बाद मजदूरो के क्वार्टर्स के लिए पाडेपुर की बस्ती खाली करने की योजना बनती है। सूरदास तन जाता है, वह अपनी झोपड़ी छोडने को कदापि तैयार नही है, उसकी दृढता और सगठन शक्ति से हडताल होती है। राजा महेन्द्र कुमार सभी मकान और झोपडियाँ गिरवा देते हैं। सूरदास सत्याग्रही वनकर खड़ा होता है कि एक गोली लगती है और वह मर जाता है। लोग उसकी मूर्त्ति बनाकर बडे धूम-धाम से उसकी स्थापना करते हैं। राजा महेन्द्र कुमार इसे अपना अपमान समझते हैं और उस मूर्त्ति को तोडने जाते हैं। तोडने के प्रयत्न में उनकी मृत्यु हो जाती है। यह उपन्यास की मूल कथा है।

इसके साथ महेद्र कुमार के साले विनय और जानसेवक की लडकी सोफिया की प्रेमकथा भी वढती है, जिसमे क्लार्क नामक एक अंग्रेज अफसर भी प्रतिद्वन्द्वी प्रेमी वनकर आता है। सूरदास द्वारा चलाए गए सत्याग्रह मे विनय भाग लेता है और जनता द्वारा व्यग्य किए जाने पर आत्महत्या कर लेता है। उसकी मृत्यु के पश्चात् सोफिया की मा सोफिया को मि० कलार्क के साथ वाँधना चाहती है, पर वह भी गगा में डूबकर मर जाती है।

स्वतत्र रूप से चलने वाली इन मुख्य कथाओ के अतिरिक्त पाँच उप-कथाएँ और हैं, (१) जानसेवक परिवार की कथा, जो एक स्वार्थी ईसाई परिवार की कहानी है, (२) राजा महेन्द्र कुमार और इदु की कथा, जो अनमेल विवाह की विडवना की कहानी है, (३) भैरो-सुभागी की कथा, जो मारपीट करने वाले पति और उसकी दुखी पत्नी की कहानी है, (४) ताहिरअली की कथा, जो एक निर्धन मुस्लिम परिवार की दुखात कहानी है और (५) उदयपुर की कथा, जो देशी राज्यो की दयनीय परिस्थिति और उसके फलस्वरूप उत्पन्न होने वाले प्रजा के असतोषपूर्ण आदोलनो का चित्र है।

आलोचना

कथावस्तु : 'रगभूमि' कई कथानको पर आधारित है। इसमें दो मुख्य कथाएँ है–१. सूरदास की कथा, २. विनय और सोफिया की कथा। सोफिया और

विनय की प्रेम कथा उपन्यास का मुख्य आकर्षक है। इससे लेखक की उत्कृष्ट औपन्यासिक कला की सूचना मिलती है दोनो कथाएँ स्वतन्त्र रूप से अलग-अलग चलती हैं, दोनो का निर्वाह अच्छा हुआ है। इनका सयोजन अन्त में सत्याग्रह आदोलन के सूक्ष्म ततु द्वारा हुआ है, जिसमे लेखक को सफलता मिली है। इनके अतिरिक्त चार परिवारिक उपकथाएँ एव एक राजनीतिक उपकथा भी है (१) जान सेवक परिवार की कथा एक स्वार्थी ईसाई-परिवार की कहानी है। (२) महेन्द्रकुमार और उसकी पत्नी इदु की कथा अनमेल विवाह के दुष्परिणाम की कहानी है। (३) भैरो-सुभागी की कथा सूरदास की परोपकार-भावना को सिद्ध करने के लिए रखी गई है। (४) ताहिरअली की कथा मुसलमान जनता की भावनाओ का प्रतिनिधित्व करती है। यह कथा मुख्य कथाओ से असवद्ध होने के कारण उपन्यास के प्रवाह मे वाधा पहुँचाती है।

उदयपुर की राजनीतिक कहानी देशी राज्यो की विकृत परिस्थितियो एव फलस्वरूप उत्पन्न होने वाले जन आन्दोलन का जीवित चित्र है।

उक्त कथातन्तुओ को लेखक ने वडे विस्तार से उपस्थित किया है, जिससे उपन्यास का कलेवर आवश्यकता से अधिक वढ गया है। यह प्रेमचन्द के उपन्यासो में सवसे वडा उपन्यास है। इसकी सभी मुख्य घटनाएँ प्रस्तुत आकार से आवे में लिखी जा सकती थी। उपकथाओ की प्रचुरता और घटनाओ के असयत विस्तार से उपन्यास की कथावस्तु वोझिल वन गई है।

चरित्र-चित्रण यह प्रेमचन्द का पहला चरित्र प्रधान उपन्यास है। मुख्य चरित्र एक अन्वे भिखारी का है, जिसका समाज मे कोई स्थान ही नही। इस उपन्यास मे पात्रो की भरमार है। फिर भी प्रमुख पात्र कम हैं, सूरदास, विनय, सोफिया, जानसेवक और महेन्द्रकुमार के चरित्र उपन्यास मे प्रमुख हैं।

सूरदास प्रेमचन्द के अमर चरित्रो में है। यह अत्यन्त सहृदय और परोपकारी व्यक्ति है। यह निराश्रित सुभागी को आश्रय देता है। भैरो जव उसकी झोपडी जला देता है, फिर भी वह उसे तीन सौ रुपये देकर उसकी सहायता करता है।

वह नैतिक दृष्टि से भी महान् है। वह सत्य और न्याय का पुजारी है, उसे लोक विरोध की कोई चिंता नहीं। वह दृढ विचारो का स्पष्टवादी व्यक्ति है। सत्याग्रह का सचालन वह पूरी योग्यता से करता है। उसके चरित्र में गाधीजी के चरित्र की महिमा झलकती है। प्रेमचन्द के शब्दो मे "क्रोध, लोभ, मोह, अहकार

ये सभी दुर्गुण उसके चरित्र मे भरे हुए थे, गुण केवल एक था।...और वह गुण क्या था ? न्यायप्रेम, सत्यभक्ति, परोपकार, दर्द, या उसका जो नाम चाहे रख लीजिये।" इसी कारण अकिंचन होता हुआ भी वह जनता के हृदय का शासक था। राजा महेन्द्रकुमार के प्रति कहे गये मि० क्लार्क के शब्द सूरदास के चरित्र की सुन्दर व्याख्या करते हैं— "हमें आप जैसे मनुष्यो से भय नही है, भय ऐसे मनुष्य से है, जो जनता के हृदय पर शासन करते हैं। यह राज्य करने का प्रायश्चित है कि इस देश में हम ऐसे आदमियो का वध करते हैं जिन्हे इगलैंड मे हम देवतुल्य समझते।"

सूरदास के लिए जीवन 'रगभूमि' है, एक खेल है। खेलना–ईमानदारी के साथ खेलना—सबका कर्त्तव्य है। वह मरते समय कहता है–"हम हारे तो क्या ? मैदान से भागे तो नही, रोये तो नही, धाँधली तो नही की।"

विनय का चरित्र उतना विकासशील नही। वह त्यागी, जनसेवक और आदर्श-प्रेमी है। सोफिया आरभ से ही आदर्शवादी है। वह एक भावुक नारी है, जो सेवा, सहानुभूति और देश-प्रेम को परम् कर्त्तव्य समझती है उसका दृष्टि-कोण उदार है विनय के समान ही वह सच्ची प्रेमिका है। उसमें भारतीय नारी के गुणों का उत्कर्ष है। जन्म से ईसाई होती हुई भी वह सस्कारो से आर्य महिला है।

जानसेवक पूंजीवादी मनोवृत्ति का प्रतीक है, जो प्रलोभन देकर जनता को फुसलाना चाहता है। वह कट्टर ईसाई है, परतु पैसे के लिए वह प्रत्येक उचित अनुचित उपाय काम मे ला सकता, जो है क्रिश्चियन धर्म से किसी प्रकार मेल नही खाते। वह गिरजाघर भी जाता है तो अपने व्यापारिक लाभ को दृष्टि मे रखकर। महेन्द्रकुमार सामतवादी और विलासी व्यक्ति का चरित्र हमारे सामने रखता है,

रानी जाह्नवी आदर्श क्षत्रिय नारी है। इन्दु का भी चरित्र आदर्श नारी का रूप है। मिसेज जानसेवक कट्टर ईसाइन है सुभागी एक अच्छी साधारण नारी है।

विचार-उद्देश्य 'रगभूमि' मे उद्योग-पतियो के कार नामो और उनके विरुद्ध उभरती जन-भावनाओ का चित्रण हुआ है। यह एक ओर अंग्रेज शासको की शोषण प्रवृत्ति की ओर सकेत करता है, तो दूसरी ओर देशी रियासतो की नीति और अवस्था पर प्रकाश डालता है। अहिंसात्मक सत्याग्रहो के साथ उग्र आतक वादी कार्य-वाहियो को भी इसमे उचित ठहराया गया है। श्रीमन्मथनाथ

गुप्त के अनुसार, सूरदास के सामाजिक विचार गाधीवादी होते हुए भी प्रतिक्रिया-वादी दर्शन की श्री रामरतन भटनागर 'रगभूमि' को गाधीवादी दर्शन की सबसे बडी कहानी मानते है। डा० पद्मसिह के शब्दो में यह -'१६२० और ३० के बीच के भारत की राजनीतिक और उससे सबधित सामाजिक और धार्मिक समस्याओ का दिग्दर्शन कराने वाला उपन्यास है।'

औद्योगीकरण की बुराइयो का प्रदर्शन, अंग्रेजी साम्राज्य की नकली आदर्शप्रियता, निरीह जनता और क्रूर अधिकारी वर्ग का सघर्ष, पूंजीपतियो के हथकडे एव धार्मिक अन्धविश्वास की हानियां दिखाना— ये 'रगभूमि' में लेखक के प्रमुख उद्देश्य हैं।

इस उपन्यास मे, "प्रेमचद उगते हुए पूंजीवाद को लेकर चले हैं। उसके कारण राजनीति, धर्म और व्यक्तिगत जीवन में कैसा भयकर परिवर्तन होता है, यह दिखाना उनका लक्ष्य है।" (प्रेमचन्द और उनकी साहित्य साधना, पृ० १०७)

'रगभूमि' का अमर सदेश सूरदास के इन शब्दो मे है—"तू रगभूमि में आया, दिखलाने अपनी माया ! क्यो धर्म नीति को छोडे, भइ, क्यो रण से मुँह मोडे ?" सूरदास अपने इस सदेश का दृढता से प्रसार करता है; इसके लिए वह अपनी वलि भी दे देता है। सूरदास के माध्यम से प्रेमचद इस उपन्यास में अपने प्रगतिशील विचारो को अभिव्यक्ति देते हैं।

वातावरण : इस उपन्यास में वातावरण के यथार्थ चित्रण में लेखक को सर्वाधिक सफलता मिली है। गाँव और नगर के सैकड़ो दृश्य इस दृष्टि से महत्व-पूर्ण हैं।

कलापक्ष · पिछले उपन्यासो की अपेक्षा ·'रगभूमि' मे लेखक कला की दृष्टि से बहुत आगे बढा है। इसमें घटनाओ की अनावश्यक खीचतान नही, न ही किसी आश्रम की स्थापना का सुझाव है। कथा प्रवाह में कोई विशेष व्याघात नही। कथावस्तु कुछ बोझीली अवश्य हो गई है। प्रथम वार इस उपन्यास में लेखक कुछ सजीव और मानवीय पात्रो की सृष्टि करने मे सफल हुआ है।

उपन्यास की भाषा प्रौढ है। शैली सजीव है।

डा० इन्द्रनाथ मदान को लिखे गये एक पत्र मे प्रेमचद ने इसे अपना सर्व-श्रेष्ठ उपन्यास स्वीकार किया था। (उस समय अभी 'गोदान' समाप्त नही हुआ

था।) डा० पद्मसिंह के शब्दो में, "अपने युग की समस्याओं को प्रतिबिंबित करने वाला प्रेमचद का सबसे बडा उपन्यास है।" विस्तार की दृष्टि से तो इसे प्रथम स्थान प्राप्त है ही, कला की दृष्टि से भी 'रगभूमि' को कई आलोचक प्रथम स्थान देना चाहते हैं। यदि प्रथम स्थान 'गोदान' को प्राप्त हो, फिर भी भारत की विशाल रगभूमि का सुदर कलापूर्ण ढग से यहाँ उपस्थापन हुआ है, और इस दृष्टि से विश्व-साहित्य में इसको महत्वपूर्ण स्थान दिया जा सकता है।

प्रश्न १० उपन्यास-कला की दृष्टि से 'कायाकल्प' की आलोचना कीजिए।

उत्तर कहानी . तहसीलदार वज्रधर सिंह के पुत्र चक्रधर सिंह ने एम० ए० पास करली। अब वह समाज सेवा करना चाहता है। बहुत आग्रह करने पर वह जगदीशपुर के दीवान की कन्या मनोरमा को ट्यूशन पढाता है, जो उससे प्रेम करने लग पड़ती है। इधर आगरा के वकील यशोदानद की पाली लडकी अहिल्या से उनका विवाह निश्चित होता है। जगदीशपुर की विधवा रानी देवप्रिया बहुत विलासिनी है। एक दिन उसके पास एक राजकुमार आता है जो अपने आपको उसका पूर्व-जन्म का पति बताता है। रानी देवप्रिया अपना राज्य विशालसिंह को देकर उस राजकुमार के साथ कही चली जाती है। आदर्शवादी विशालसिंह राज्य मिलते ही प्रजापीडक हो जाता है।

राज्य मे राजा विशाल सिंह के तिलकोत्सव की तैयारियाँ होती हैं। खर्च पूरा करने के लिये आसामियो से बेगार लिया जाता है। चक्रधर बेगार लेने के विरोध में मजदूरो को सगठित करता है और फलस्वरूप जेल जाता है। मनोरमा के प्रयत्नो से वह छूटता है कि आगरे में दगा होता है, जिसमे यशोदानंद मारे जाते हैं और अहिल्या का अपहरण हो जाता है। चक्रधर अहिल्या को पा लेता है एवं उसस विवाह कर लेता है।

उधर मनोरमा का विवाह राजा विशालसिंह से हो जाता है। मनोरमा चक्रधर को समाज सेवा के लिये आर्थिक सहायता देने के लिये यह विवाह करती है। चक्रधर और अहिल्या अब प्रयाग में रहते हैं। उनके पास एक पुत्र भी है। मनोरमा की बीमारी का तार पाकर चक्रधर अपनी पत्नी और पुत्र शखधर को लेकर मनोरमा के पास आते हैं। यहाँ भेद खुलता है कि अहिल्या राजा विशालसिंह की लड़की है, जो मेले में खोई थी। फलस्वरूप शखधर राज्य का

उत्तराधिकारी वन जाता है, क्योकि राजा साहव की कोई पुरुष-सतान नही। चक्रधर और अहिल्या भी राजभवन मे रहते है।

परन्तु जनसेवी चक्रधर घर से निकल पड़ता है। वड़ा होने पर उनका पुत्र उनको पाँच साल के वाद साधु भगवानदास के रूप में पा लेता है। वह पिता को घर लौटाने के लिये कह ही नही पाता कि अहिल्या की वीमारी का तार पाकर चला आता है।

आगरा जाते हुए जैसे ही वह हर्षपुर स्टेशन पर पहुँचता है, उसकी पूर्वजन्म की स्मृतियाँ जाग जाती हैं, और वह पूर्व जन्म की प्रेयसी देवप्रिया (कमला) के पास पहुँचता है। देवप्रिया का प्रेमी महेन्द्रसिह था, जो मरकर हर्षपुर के राजकुमार के रूप में उसका प्रेमी बना। प्रथम सयोग के समय वह भी मर गया और उसी ने शखधर के रूप मे जन्म लिया शखधर भी प्रथम मिलन के समय ही मर जाता हैं। मरने से पहले वह कहता है—"प्रिये, फिर मिलेंगे। यह लीला उस दिन समाप्त होगी, जव प्रेम मे वासना न रहेगी।" इस दृश्य को देख राजा विशालसिह भी मर जाता है। अत मे चक्रधर आता है और उसे एक वार देखकर अहिल्या भी चल बसती है। चक्रधर फिर वाहर निकल पडता है।

मनोरमा और देवप्रिया रह जाती है, पहली महलो मे रोने के लिए और दूसरी किसी दूसरे रूप मे अपने पति से मिलने के लिए!

आलोचना

कथावस्तु उपन्यास का कथानक दो मुख्य कथाओ पर आधारित है—(१) चक्रधर की कथा और (२) देवप्रिया की कहानी। पहली आदर्शोन्मुख यथार्थवाद पर आश्रित है और दूसरी जन्मान्तर वादी अध्यात्मवाद पर। उपन्यास का नाम दूसरी कहानी पर रखा गया है, क्योकि रानी देवप्रिया का वार-वार कायाकल्प (पुन यौवन को प्राप्त होना) दिखाया गया है। इसमे लेखक का झुकाव चमत्कारिक अगो की ओर अधिक है। देवप्रिया के ज़ीवन से सवधित सारी घटनाएँ किसी तिलिस्मी उपन्यास की भाँति मालूम पड़ती हैं। जन्मजन्मातर का अलौकिक प्रेम हमें वाण की 'कादवरी' की याद दिलाता है। परंतु एक यथार्थ-वादी रचना में तिलिस्म का यह मेल जटिलता उत्पन्न करता है, जिसे देखकर आलोचक 'कायाकल्प' को कथानक की दृष्टि से सबसे शिथिल रचना कहते हैं

और आश्चर्य करते हैं कि 'सेवासदन' और 'निर्मला' जैसे उत्कृष्ट सामाजिक एव 'प्रेमाश्रम' और 'रगभूमि' जैसे उत्तम राजनीतिक उपन्यास लिखने वाले लेखक ने 'कायाकल्प' में तिलिस्मी और जासूसी तत्वो का समावेश क्यो किया। यह आश्चर्य स्वाभाविक है। परतु 'कायाकल्प' में वस्तु की इतनी जटिलता नही, जितनी समझी जाती है।

आरम्भ मे घटनाओ का विकास सुदर ढग से हुआ है, किंतु बीच में अलौकिक अश बाधा उपस्थित करते हैं। कई उपकथाएँ तो अनावश्यक ही हैं, (जैसे साँढ की उपकथा) प्रेमाख्यान की दृष्टि से कथानक सुदर है। इसमे कई प्रेमि-युगलो के प्रेम और उसकी सफलता-असफलता का सुदर वर्णन हुआ है।

चरित्र-चित्रण : चरित्र चित्रण की दृष्टि से लेखक को पूर्ण सफलता मिली है। चक्रधर, मनोरमा, अहिल्या, विशालसिंह, देवप्रिया, शखधर आदि प्रमुख पात्र हैं।

चक्रधर दो रूपो में आता है, जनसेवक के रूप मे और प्रेमी के रूप मे, जनसेवक के रूप में वह महान्नेता, राष्ट्रसेवी और समाज-सुधारक है, यद्यपि परिस्थितिवश उसका पतन होता है [वह बेगार देना अस्वीकार करने पर एक व्यक्ति को इतना पीटता है कि बाद मे वह मर जाता है।] प्रेमी रूपमे वह असफल और भीरु है। मनोरमा आदर्श प्रेमिका है। वह चक्रधर से प्रेम करती है। और आजीवन निभाती है। उसका कर्त्तव्य पालन भी महान् है। उसके जीवन की अतिम झाँकी करुण है। अहिल्या एक साधारण नारी है, धन पाने पर पति और पुत्र को भूल कर वैभव मद मे डूब जाती है।

राजा विशालसिंह अपने वर्ग के लोगो का ठीक प्रतिनिधित्व करता है। राज्य मिलने से पहले प्रजा सेवक, परतु मिलने के बाद प्रजापीडक बन जाता है। है। विलासी भी वह है; चार के बाद पाँचवी शादी के लिये भी तैयार रहता है। अन्त में वह ऊपर उठ जाता है। रानी देवप्रिया विलासिनी नारी है, जो जन्म जन्मातर में प्रेमी को पाने की प्रतीक्षा करती है। शखधर सच्चा प्रेमी और पितृ-भक्त है।

विचार और उद्देश्य इस उपन्यास में सामयिक राजनीतिक एव-सामाजिक समस्याओ के साथ आध्यात्मिक समस्या पर भी विचार है। राज-नीतिक समस्याओं में अंग्रेजी सरकार की दमन-नीति मुख्य है। अंग्रेजो के कैंप से मजदूरो पर गोलियाँ चलती हैं। मजदूर सगठित होकर मुकाबला करते हैं। चक्र-

घर मजदूरो को शात करता है। इस प्रकार दमन-नीति की समस्या का हल लेखक ने गाँधीवादी दृष्टिकोण से किया है। इसकेअतिरिक्त राजाओ के अत्याचार, पुलिस कर्मचारियो की क्रूरता आदि का भी यथार्थ अकन हुआ है। सामाजिक समस्याओ में सांप्रदायिकता का प्रश्न मुख्य है। लेखक इसका भी गाधीवादी समाधान करता है।

आध्यात्मिक समस्या मे जनमान्तर के प्रश्न पर प्रकाश डाला गया है एवं जनमातरो मे भी प्रेमियो के मिलन का समर्थन किया है। शुद्ध प्रेम में वासना नही होती— यह 'कायाकल्प' का नवीन सदेश है। डा० पद्मसिंह के अनुसार लेखक के मन मे प्रेम और विवाह से सबधित अनेक प्रश्न हैं। इसकी प्रेम-समस्या उच्चवर्ग से सबद्ध है। लेखक उच्चवर्ग की विलासिनी मनोवृत्ति का चित्र खीचता है। विशालसिंह पाँचवी शादी की तैयारी कर रहा है। देवप्रिया भी चिर यौवना बनी रहकर विलास मे डूबी रहना चाहती है। 'कायाकल्प' का सबसे बडा उद्देश्य उच्च वर्ग के इसी घृणित जीवन का दिग्दर्शन कराना है।

सयोगो (coincidences) एव अद्भुत तत्वो के मेल से यह उपन्यास लेखक की यथार्थवादी परम्परा से दूर जा पडता है, फिर भी चक्रधर और मनोरमा की कहानी मे समाज का यथातथ्य अकन हुआ है। अहिल्या खोई हुई लडकियो की समस्या लेकर आती है जिसका समाधान चक्रधर द्वारा कराया गया है।

कलापक्ष कला की दृष्टि से 'कायाकल्प' प्रयोगात्मक रचना है। जन्मातरों की कहानी को घसीटने के कारण कथानक मे शिथिलता आ गई है। यदि देवप्रिया की कथा न होती तो वस्तु का सुन्दर विकास हो पाता। परन्तु, जैसा डा० पद्मसिंह कहते हैं, "यह लेखक के साथ अन्याय है कि केवल कथा-सगठन के आधार पर उसे निकृष्ट करार दे दिया जाये।"

डा० रामरतन भटनागर इस उपन्यास के विषय में अपने 'प्रेमचन्द' में लिखते हैं "सारे उपन्यास मे अनेक रसो और भावो का ऐसा अजस्र प्रवाह बह रहा है कि पाठक पल-पल मे उसमें डूबता-उतराता है। वह कथा की बात भूल जाता है, चरित्र-चित्रण की बातें भूल जाता है और उपन्यास के प्रवाह मे डूब जाता है। भाषा की सारी शक्ति, मनोविज्ञान और कल्पना की सारी सूक्ष्मता...रसपूर्ण प्रसगो को जीवन देने में लग जाती है। इसीसे यह उपन्यास प्रेममूलक महाकाव्यो की श्रेणी में उठ गया है।"

आलोचको के अनुसार 'कायाकल्प' लेखक की प्रयोगवादी रचना ह। इसमें उसने प्रेम-कथा और राजनीतिक कहानी के जमघट का एक नया प्रयोग किया है, परतु उसे इसमें सफलता प्राप्त न हो सकी है।

प्रश्न ११. उपन्यास कला की दृष्टि से 'गबन' की समीक्षा कीजिए। (नवम्बर १९५४, १९५५ नवम्बर)

उत्तर. कहानी रमानाथ के पिता दयानाथ कचहरी मे नौकर थे। रमानाथ का विवाह उसके पिता मुशी दीनदयाल की पुत्री जालपा से करते हैं। विवाह में वर पक्ष की ओर से सब गहने चढते हैं, परतु चद्रहार नही दीखता, जिसके लिए जालपा बचपन से जान देती है। रमानाथ शेखीखोर है। चुगी घर मे १३० रु० का नौकर है। पत्नीके कहने पर गहने खरीदनेमें वह ऋणभारसे दब जाता है। जालपा की एक सहेली है रतन, जो कगन बनवाने के लिए ६०० रुपये रमानाथ को देती है। रमानाथ उन रुपयो से अपना ऋण उतारता है। रतन के बार-बार कहने पर वह चुगी के ६०० रु० गबन करता है और समय पर रुपयो का प्रबन्ध न हो सकने पर कलकत्ता भाग जाता है। रास्ते मे देवीदीन खटीक उसे मिलता है, जो उसे कलकत्ते मे अपने घर में आश्रय देता है। वह घर से बाहर नही निकलता। एक दिन नाटक देखने बाहर निकलता है। रास्ते में पुलिस को देखकर घबरा जाता है, पुलिस उसे सदेह में गिरफ्तार कर लेती है। देवीदीन छुड़ाने का असफल प्रयत्न करता है। वैसे रमानाथ का कोई वारट नही है क्योकि जालपा उसके जाने के बाद ही सब आभूषण बेचकर चुगी का रुपया भर देती है।

निर्दोष रमानाथ को डरा-धमका कर उसका उपयोग एक राजनीतिक मुकद्दमे में किया जाता है। वह आतकवादियो के मुकद्दमे मे उनके विरुद्ध झूठी शहादत देता है। जालपा एक चतुर ढग से रमानाथ का पता पाकर कलकत्तापहुँचती है। वहाँ यह जानकर कि उसका पति झूठी शहादत दे चुका है, वह उसका तिरस्कार करती है। रमानाथ ग्लानि से भरकर अपना बयान बदल देता है। परिणाम स्वरूप निरपराध व्यक्ति छूट जाते हैं अब रमानाथ औरजालपा जन सेवा का व्रत लेकर देवीदीन के यहाँ रहने लगते हैं। उनकी प्रेरणा से जोहरा नामक एक वेश्या का (जिसे पहले पुलिस कर्मचारियो ने रमानाथ के मनोरजन के लिए नियुक्त किया था) उद्धार होता है। एक दिन रमानाथ, जालपा और जोहरा गगा के किनारे खडे हैं। नदी में बाढ आई हुई है। सहसा एक नाव नदी मे उलट जाती है यात्रियो को बचाने

के लिए जोहरा पानी में कूद पडती है और स्वय भी वह जाती है। रमानाथ और जालपा दु खी मन से लौटते हैं।

कथावस्तु उपन्यास की कथावस्तु का सवध मध्यवर्ग के साधारण परिवार से है। मुख्य कथा एक ही है—रमानाथ और जालपा की। उपकथाएँ तीन हैं जिनका सवध रतन, देवीदीन और जोहरा (वेश्या) से है। रतन और जोहरा की उपकथाएँ प्रेमचद के आदर्शवाद पर स्थिर हैं। देवीदीन की उपकथा यथार्थ प्रधान है, जो मुख्य कथा को आगे बढाने मे सहायक होती है। तीनो उपकथाएँ मूल कथा से कलात्मक ढग से जुडी हैं, उसमें किसी प्रकार की रुकावट नही। कथा का पूर्वार्द्ध प्रयाग से सबधित है और उत्तरार्द्ध कलकत्ता से। दोनो भागो की कथा में एक सूत्रता है, क्योंकि दोनो भाग रमानाथ से सबधित हैं। दोनो के जोडने से उपन्यास के स्थान सकलन और प्रभाव की एकता में कमी अवश्य आ गई है।

उपन्यास में अनावश्यक विस्तार कही नही है कहानी समगति से आगे बढ़ती है। घटनाएँ स्वाभाविक हैं। वस्तु की दृष्टि से उपन्यास सफल है।

चरित्र-चित्रण चरित्र-चित्रण की दृष्टि से भी 'गबन' सफल है। केवल तीन पात्र प्रमुख हैं, रमानाथ, जालपा और देवीदीन। रतन जोहरा आदि गौण पात्र हैं।

रमानाथ उपन्यास की कथा-वस्तु का केन्द्र बिंदु है। वह दुर्बल नायक है; उसके चरित्र का कोई पहलू स्थायी नही। वह शेखीखोर, कायर और पतित है। अन्त में उसका नैतिक उत्थान हो ही जाता है। उसका चरित्र एक साधारण व्यक्ति का चरित्र है, जो परिस्थितियो की धारा में डूबता-उतराता रहता है और जालपा के सहारे अपने को सभालता है।

जालपा का चरित्र सबल व्यक्तित्व से पूर्ण है। वह मूलत अच्छी प्रेरणाओं की नारी है। परिस्थितियो ने उसे आभूषण प्रिय बना रखा है। परिस्थितियाँ ही उसे त्यागमयी नारी बना देती हैं। उसके चरित्र द्वारा मध्यवर्गीय वातावरण में पत्नी नारी की दुर्बलताओं पर अच्छा प्रकाश पडता है। उसका परिवर्तित रूप राजपूत नारियो के समान तेजस्वी हो जाता है। उसके चरित्र मे भारतीय नारी अपनी समस्त सबलताओं और दुर्बलता के साथ आती है। श्री नद दुलारे वाजपेयी के शब्दों मे "वह उस धातु की बनी है जिसे किसी भी साँचे में ढाला जा सकता है। ...उसके चरित्र में कोई मूलगत विकृति नहीं है।"

देवीदीन उपन्यास का सजीव पात्र है। यह सच्चा देश भक्त है। इसका चरित्र स्वाभाविक है। वह प्रगतिवादी विचारो का व्यक्ति है, दृढ और स्पष्ट वादी है।

रतन विलासिता मे पली एक वृद्ध पुरुष की युवती भार्या। जोहरा आरभ में सामान्य वेश्या है, जो वाद मे सवल और सशक्त नारी वनकर आती है,

विचार और उद्देश्य इस उपन्यास मे लेखक एक सामाजिक बुराई—आभूषण प्रियता— की ओर हमारा ध्यान आकृष्ट कराता है। इसके अतिरिक्त पुलिस के हथकडो और न्यायालयो के न्यायो का भी भडाफोड इसमे किया गया है। स्वार्थी नेताओ का कच्चा चिट्ठा भी सामने रक्खा गया है। उनके प्रति देवीदीन की भविष्य-वाणी कितनी खरी उतरती है—"अभी तुम्हारा राज नही है, तव तो तुम भोग विलास पर इतना मरते हो, जव तुम्हारा राज्य हो जायगा, तो गरीबो को पीसकर पी जाओगे।"

समिलित परिवार प्रथा के विषय मे लेखक रतन द्वारा कहलवाता है—किसी समिलित परिवार मे विवाह न करना, और अगर करना तो जव तक अपना घर अलग न वना लो, चैन की नीद न सोना।" वेश्या जोहरा का हृदय परिवर्तन प्रेमचद के आदर्शवाद का प्रभाव है। डा० पद्मसिह के शब्दो मे, "जहाँ कही प्रेमचद वेश्या का चित्रण करते हैं, उसे ऊँचा अवश्य उठाते हैं।" यहाँ भी यही हुआ है।

देवीदीन के माध्यम से उपन्यास मे राजनीतिक समस्या भी आ गई है। डा० पद्मसिह के अनुसार, समाज, राजनीतिक, धर्म और विदेशी शासन की वुराइयो का यथार्थवादी चित्रण 'गवन' की वडी भारी विशेपता है। वैसे मुख्यत. 'गवन' सामाजिक समस्या-मूलक उपन्यास है। इस उपन्यास की प्रमुखविवेपता है घटनाओ, पात्रो और परिस्थितियो का परस्पर अटूट सवध। प्रारभ से ही घटनाओ और पात्रो का घात-प्रतिघात होता है और अन्त तक इसका सफलता-पूर्वक निर्वाह होता है। परिस्थितियाँ भी साथ-साथ घटनाओ और पात्रो के स्वरूप-निर्माण मे सहायक होती हैं। वस्तुत परिस्थितियाँ ही इस उपन्यास की कहानी और पात्रो का सृजन करती हैं।

कलापक्ष कला की दृष्टि से 'गवन' प्रेमचन्द का श्रेष्ठसामाजिक उपन्यास है। इसकी तुलना 'निर्मला' से हो सकती है। यदि 'निर्मला' वस्तुगठन की दृष्टि

से श्रेष्ठ है।, तो 'गबन' वस्तु की रोचकता की दृष्टि से । मनोवैज्ञानिक चरित्र-चित्रण की दृष्टि से तो उपन्यास आशातीत सफल है। भाषा प्रौढ एवं पात्रानुकूल है।

डा० रामरतन भटनागर के कथानुसार यह प्रेमचन्द का अंतिम सामाजिक उपन्यास है एव कला और दृष्टिकोण की परिपक्वता की दृष्टि से उनके सारे सामाजिक उपन्यासो मे श्रेष्ठतम है।

प्रश्न १२ · उपन्यास कला की दृष्टि से 'कर्मभूमि' की आलोचना कीजिए (नवंबर १९५३, ; जून १९५६,)

उत्तर कहानी : लाला समरकांत बनारस के मुख्य व्यापारियो मे हैं। धन कमाने के लिए हर उचित-अनुचित साधन का प्रयोग वह निःसकोच करते हैं। उनकी दो ही सतानें हैं—अमरकात और नैना। पत्नी की मृत्यु के पश्चात् वे अमरकात का विवाह एक धनी परिवार की इकलौती लड़की सुखदा के साथ करते हैं। अमरकांत सामाजिक सेवा के कार्यों मे रुचि लेता है, परन्तु उसके पिता और पत्नी को यह बिलकुल पसद नही। एक दिन वह मुन्नी नामक एक स्त्री को गोरो के अत्याचारो से बचाता है।

कुछ दिन बाद वही मुन्नी एक गोरे को छुरी मारती हुई गिरफ्तार होती है। अमरकात अपने साथियो से मिलकर बडी दौड धूप के बाद मुन्नी को छुडाता है मुन्नी घर न जा कर कहीं निकल जाती है । घर में पत्नी से न बनने के कारण अमरकात घर छोड देहात में चला जाता है और वहाँ सुधार-कार्यो में लग जाता है। वहीं एक दिन उसे मुन्नी मिलती है। दोनो पाठशाला खोलते हैं। एवं सामाजिक सुधार का कार्य करते हैं वहाँ दोनो में प्रेम हो जाता है।

उधर लाला समरकात अपने ठाकुरद्वारे में रोज कथा करवाते हैं। शातिकुमार और सुखदा के प्रयत्नो से अछूतो को भी वहाँ आकर कथा सुनने की छूट मिलती है। अब सुखदा समाज सेवा के कार्यो में अधिक रुचि लेने लगती है। वह शांतिकुमार के साथ मिलकर मजदूरों के लिए सस्ते मकान बनवाने के लिए म्युनिसिपैलिटी से जमीन मागती है। अपने इस प्रयत्न मे वह जेल जाती है।

अमरकात का एक मित्र सलीम उसी इलाके का अधिकारी नियुक्त होता है। इस प्रदेश का जमीदार अत्याचारी है। अमरकांत यहाँ लगानबदी आंदोलन

शुरू करता है। वह गिरफ्तार होता है। सलीम भी उसका साथ देने के कारण जेल जाता है।

बनारस मे सुखदा के जेल जाने के बाद समरकात-शातिकुमार, सकीना आदि भी गिरफ्तार होते हैं समरकांत की लडकी नैना नेतृत्व सभालती है। उसका पति उसे रोकता है। उसके न मानने पर वह उस पर गोली चला देता है। उसका बलिदान सफल होता है। म्युनिसिपैलिटी की ओर से मजदूरो के मकानो के लिए जमीन मिल जाती है। उधर देहात मे लगानबदी आदोलन भी सफल होता है। जेल से छूटने पर अमरकात अपनी पत्नी सुखदा से क्षमा माँगता है। उधर सलीम और सकीना का विवाह हो जाता है।

आलोचना

कथावस्तु . उपन्यास मे समस्यात्मक घटनाओ की मुख्यता है। शहर और गाँव के आदोलनो का सजीव चित्रण है सभी कथातंतु, जो पहले बिखरते चले जाते हैं; अन्त मे एकत्रित हो जाते हैं। घटनाओ की अधिकता है, परन्तु सब एक केन्द्र-क्राति पर केन्द्रित हैं। रोचकता का मात्र पर्याप्त हैं। आत्महत्याओ की भी कमी हैं। श्रीनद दुलारे वाजेपयी के शब्दो मे "कर्मभूमि के कथानक के बारे मे प्रेमचद जी को पर्याप्त सफलता प्राप्त हुई हैं।"

वस्तुत इसमें शहर और गाँव की कथा को मनोवैज्ञानिक ढग से अमर कात द्वारा जोडा गया है। दोनो कथाएँ स्वाभाविक गति से आगे बढती हैं। इनके साथ कुछ प्रासगिक कथाएँ भी जुडी हैं, जो मुख्य कथाओ को बाधा नही पहुंचाती आगे बढाती है। इनमे [१] मुन्नी की कहानी, (२) महत के मठ की कथा और (३)अमरकात और सकीना की प्रेमकथा मुख्य हैं। मुन्नी की कहानी करुणापूर्ण है। वह लेखक और पाठको की पूरी सहानुभूति पाती है रोचकता की दृष्टि से अमरकात और सकीना की प्रेमकथा महत्वपूर्ण है। इसके कथानक की मुख्य विशेषता प्रेम-निरूपण के साथ-साथ विभिन्न उपकथाओ के मुख्यकथा सयोजन में है। प्रेम कहानियो मे रोमास की पर्याप्त पुट हैं।

प्रो० रत्नचन्द्र के शब्दो मे 'रगभूमि' और 'गबन' में उन्होंने जिस उच्च-कोटि की रचनात्मक प्रतिभा का परिचय दिया था, 'कर्मभूमि' मे उसका पूरी तरह निर्वाह किया गया है।"

चरित्र-चित्रण : 'कर्मभूमि' चरित्र प्रधान उपन्यास है। पात्रो की अधि-

कता होने पर भी उनके मनोवैज्ञानिक चित्रण मे लेखक को यथेष्ट सफलता मिली है मुख्य पात्रो में अमरकात, सुखदा, डा ०शाति कुमार, समर कात, सकीना, मुन्नी और सलीम उल्लेख्य हैं।

अमरकांत आदर्शवादी और क्रियाशील व्यक्ति है । गाधीवाद के झडे को उठाए वह आदि से अन्त तक उपस्थित रहता है और अपने देश-और समाज-सेवा के व्रत को निभाता है। क्रांति का समर्थक होते हुए भी सहिष्णु और उदार है। सुधारवाद पर विश्वास रखता है। सुखदा आरम्भ में विलासप्रिय नारी के रूप मे आती है, परन्तु वाद मे उसमे अभूतपूर्व परिवर्तन होता है। वह कर्मठ क्रांतिकारिणी वन जाती है। उसका यह चरित्र परिवर्तन स्वाभाविक और सुदर वन पडा है।

डा० शान्तिकुमार देश सेवा तो करना चाहता है, पर उसमें यथेष्ट सघर्ष-शक्ति नही है। समरकांत मे सुखदा के समान ही एकाएक परिवर्तन होता है। सकीना का चरित्र ठीक विकसित न हो पाया । वह एक भोली-भाली स्नेहमयी नारी के रूप में आती है। देश प्रेम की भावना भी उसमे है। मुन्नी का चरित्र प्रेम-चद के सशक्त नारी पात्रो की पूर्व परपरा का विकास है। उसमें लेखक ने भार-तीय नारी का प्रतिशोध दिखाया है। उसका चरित्र सतीत्व की ऊँची भावना का उदाहरण है। देश प्रेम भी उसमें अपूर्व है। सलीम मूलत एक सहृदय पात्र है। परन्तु उसके चरित्र का स्वाभाविक विकास नहीं हो पाया।

विचार उद्देश्य : 'कर्मभूमि' राजनीतिक समस्या प्रधान उपन्यास है। इनकी मुख्य समस्या जमीन की है। नगर मे वह मजदूरो के मकान वनाने के लिए उठाई गई है और गाँव मे किसानो को लगान से छूट दिलाने के लिए। लेखक का दृष्टिकोण यहाँ यथार्थवादी है, कोरे आदर्शवाद से यहाँ काम नही लिया गया।

अछूतोद्धार की समस्या सामाजिक है, जो धार्मिक, पाखड और सामाजिक विषमता की ओर सकेत करती है। धार्मिक ठेकेदारो और विलासी महतो की आलो चना भी की गई है। पुलिस के अत्याचारो, जमीदारो की क्रूरताओ और जेल कर्मचारियों की निर्दयताओ पर भी पूरा प्रकाश डाला गया है। ग्रामसुधार की समस्या भी उपन्यास में आई है। सलीम और अमरकात की मित्रता हिंदू-मुस्लिम एकता की ओर सकेत करती है। 'कर्मभूमि' ने भारत के स्वातत्र्य-आदोलन का प्रतिविव भी झलक रहा है। सामान्य राष्ट्रीय चेतना की जागृति के साथ-साथ 'सविनय आज्ञा भग' के प्रसिद्ध आदोलन की छाया भी यहाँ देखने को मिलती है।

इस उपन्यास से पता चलता है कि लेखक की दृष्टि गाँवो के भीतर और भी गहरी जा रही थी। अपने समय की सभी समस्याएँ उपन्यास मे सुन्दर ढग से आई हैं। देश की तत्कालीन परिस्थितियाँ पूर्ण रूप से इसमे प्रतिबिंबित हुई हैं।

इस उपन्यास का क्षेत्र बहुत विस्तृत है, जिसमे छात्र, शिक्षक, मजदूर, किसान, अछूत, जमीदार, व्यापारी सभी अपनी-अपनी समस्याएँ लेकर उपस्थित होते हैं। देश की दीन हीन अवस्था का साकार चित्र यहाँ हमे प्राप्त होता है। दीनावस्था का नग्न चित्र यहाँ सामने आता है, जहाँ सकीना वस्त्र के अभाव मे अन्धेरे में दीपक बुझाकर बैठी रहती है और अमरकात के आ जाने पर गीले वस्त्र धारण करती है।

कलापक्ष : भाषा शैली की दृष्टि से उपन्यास प्रौढ है। कला दृष्टि से प्रेमचन्द के उपन्यासो में इसका महत्वपूर्ण स्थान है। वैसे समस्या प्रधान होने के कारण रचना की मार्मिकता की ओर लेखक का इसमे कम ध्यान रहा है। नद दुलारे वाजपेयी के अनुसार, यह "प्रेमचन्द जी की एक औसत कृति है, जिसे अधिक शिथिल नही कहा जा सकता।"

डा० पद्मसिह के शब्दो मे "रगभूमि' की भाँति यह भी उनकी प्रतिनिधि रचना है।" प्रो० रत्नचन्द्र शर्मा के अनुसार, "यह उनकी सफल कृतियो मे से एक" है।

प्रश्न १३ : उपन्यास कला की दृष्टि से 'गोदान' की आलोचना करत हुए सिद्ध कीजिए कि यह आधुनिक युग का सर्वश्रेष्ठ उपन्यास है (१९५३)

उत्तर : कहानी : होरी एक साधारण किसान है, जिसके पास केवल चार-पांच बीघे जमीन है। उसके परिवार मे उसकी पत्नी धनिया, पुत्र गोबर और लडकियाँ सोना और रूपा हैं। हीरा और शोभा उसके दो भाई हैं, जिनको उसी ने पाला-पोसा है। अब तीनो भाई अलग-अलग रहते हैं।

अपने जमीदार रायसाहब अमरपालसिह से मिलते-जुलते रहने से होरी की प्रतिष्ठा बनी है। एक दिन उसे राह मे उसका परिचित ग्वाला भोला मिलता है। उसकी पत्नी मर चुकी है। वह विवाह करना चाहता है। होरी आश्वासन देता है और साथ ही गाय की अपनी लालसा प्रकट कर देता है। भोला गाय देना स्वीकार करता है। वह एक दिन होरी के घर भूस लेने आता है, उसका स्वागत

होता है। जाते समय होरी और गोबर स्वयं उसके यहाँ भूसा डाल आते हैं और आते समय गाय साथ ले आते हैं। इसी बीच भोला की युवा लड़की झुनिया और गोबर परस्पर प्रेमपाश में बंध जाते हैं।

गाय आने की सबको प्रसन्नता होती है। सभी गाय देखने आते हैं, परन्तु हीरा और उसकी पत्नी पुनिया नही आते। आषाढ के दिन थे। बुवाई का समय था जमींदार के कारिंदे ने कह दिया—बाकी चुकाओ, फिर खेत जोतो। होरी घबराता है। झिंगुरी सिंह होरी की गाय को गिरवी रखने को तैयार है। उसी रात जब होरी बीमार शोभा को देखकर आ रहा होता है, वह हीरा को गाय के पास खडा देखता है। हीरा के जाने के कुछ देर बाद गाय तडपने लगती है और सुबह तक मर जाती है। हीरा ने गाय को विष दे दिया था।

हीरा घर से भाग जाता है। थानेदार आता है। हीरा के घर तलाशी लेने की बात होती है। होरी अड़ जाता है, यह उसका अपमान है। तीस रुपये बटेश्वरी पटवारी से लेकर होरी थानेदार का मुँह बंद करता है। वह हीरा के बाद उसके खेतों को जोत-बोकर बडे भाई के धर्म का पालन करता है।

इधर गोबर और झुनिया के प्रेम का परिणाम यह होता है कि गोबर तो लखनऊ भाग जाता है, परतु पाँच महीने का गर्भ लिए झुनिया होरी के घर आ खडी होती है। जब प० मातादीन अपने घर में सिलिया चमारिन रख सकते हैं, तो होरी को झुनिया के रखने मे क्या आपत्ति हो सकती ? वह रख तो लेता है, पर इसका डांड उसे सौ रुपये नकद और तीन मन अनाज भरना पडता है। होरी बेचारा किसान से मजदूर हो जाता है।

गोबर लखनऊ में नौकरी करता है। इधर होरी की अवस्था बुरी हो जाती है। भोला गाय के बदले बैलो की जोडी ले जाता है। ईख की फसल अच्छी होती है, पर सब रुपये साहूकार ले जाते हैं। होरी खाली रह जाता है। वह अब दातादीन का नौकर हो जाता है। इसी समय शहर से गोबर आता है और सारा ऋण चुका देता है और फिर शहर चला जाता है। होरी जैसे तैसे सोना का विवाह करता है, फिर रूपा का। उसकी अवस्था फिर बिगड जाती है। एक दिन मजदूरी करते समय होरी को लू लग जाती है। थोड़े समय के बाद वह चल बसता है। धनिया उसी दिन सुतली बचने से मिले हुए बीस आने के पैसे लाकर पति के ठंडे हाथो पर रखती है और "महाराज, घर में न गाय है और न बछिया, यही पैसे हैं,

यही इनका गोदान है !" कह कर पछाड़ खाकर गिर पडती है !

इस कथा की समानातर रेखा में रायसाहब और उसके मित्रो की कथा भी चलती है। रायसाहब अमर पाल सिह के मित्रो में प० ओकारनाथ 'बिजली' के सपादक हैं, मि० खन्ना शक्कर की मिल चलाते हैं, मि० तखा बीमा कम्पनी के एजेंट हैं, प्रो० मेहताव विद्यालय मे दर्शन के प्राध्यापक हैं, मिर्जा खुर्शेद एक जिदा-दिल व्यापारी हैं और मिस-मालती लेडी डाक्टर हैं। ये सब रामलीला के धनुष यज्ञ पर मिलते हैं। एक बार सब शिकार को भी जाते हैं।

रायसाहब के मित्रो की यह कथा वस्तुत एक शृखलित कहानी नही है; यह विविध नागरिक परिवारो की झाँकी मात्र है।

आलोचना

कथावस्तु : 'गोदान' मे दो कथाएँ समानातर रेखा पर चलती है। एक ग्राम जीवन से सबधित है दूसरी नागरिक जीवन से। किसानो की करुण गाथा को और अधिक प्रभावोत्पापक बनाने के लिए लेखक ने तुलनात्मक ढग पर जमीदारो और नागरिको के विलासमय जीवन का रेखा चित्र भी जोड दिया है। दोनो कथाओ का एक ओर होरी और उसके गाँव वालो की दीनता, सघर्ष और पराजय की मार्मिक कहानी है, दूसरी ओर नागरिक जीवन के विविध वैभवपूर्ण आमोद प्रमोदो एव विलासमय मनोरजनो के चित्र हैं। परस्पर विशेष सबध नही है। यद्यपि रायसाहब को होरी के गाँव से और गोबर को शहर से जोड कर एव मेहता को होरी के गाँव लाकर दोनो कथाओ में टाँके लगाए हैं, परन्तु इस कार्य में लेखक को सफलता नही मिली। तुलना अवश्य सुन्दर बनी है, जिससे होरी की दीनता को बल मिला है। मूलत 'गोदान' होरी की जीवन-कहानी है, जिसे गहरा रग देने के लिए शहर की कथा जोडी गई है, यद्यपि कथा सम्बन्ध की कमी के कारण केवल तुलनामात्र हो सकी हैं, रग को गहराई नही बढ सकी है।

कुछ आलोचक 'गोदान' मे ग्रामीण-जीवन के साथ नागरिक-जीवन के चित्रण को आवश्यक मानते हैं। इसके लिए निम्नलिखित कारण दिये जाते हैं, (१) नागरिक पाठक के लिए कथा मे आकर्षण पैदा करना, (२) परस्पर घनिष्ठ होने के कारण ग्राम्य और नागरिक जीवन के चित्रण द्वारा सपूर्ण भारतीय जीवन को अकित करना, (३) नगर के सपर्क से ग्राम्य जीवन को प्रभावशाली बनाना और (४) मध्यवर्गीय नागरिक समाज का ग्रामीण जीवन से सम्बन्ध स्थापित करना।

परन्तु ये सब कारण थोथे और निर्बल हैं और इनके द्वारा 'गोदान' की कथावस्तु की पुष्टि नहीं हो सकती। प्रो० रत्नचन्द्र शर्मा के शब्दो मे "यदि प्रेमचन्द जी ने नागरिक समाज को न जोडकर केवल होरी के कथानक को ही रहने दिया होता, तो 'गोदान' 'गबन' की तरह अत्यत सगठित उपन्यास बन जाता। ..और यदि दोनो को मिलना ही था तो अधिक कलात्मकता के साथ मिलना चाहिए था। (मुन्शी प्रेमचन्द, पृ० १५४-५५)

होरी की मुख्य कथा मे भी अनेक उपकथाएँ जोडी गई हैं, जिनसे मुख्य कथा का सौंदर्य निखर गया है। इनमे भोला की कथा, मातादीन-सिलिया की कथा और दमडी व सोर की कथा मुख्य हैं। इनका परस्पर सुन्दर समन्वय हुआ है।

रायसाहब के मित्रों की कथा वास्तव मे एक शृखलाबद्ध निश्चित कथा न होकर विविध पारिवारिक कथाओ का समूह है, जिनमे से प्रत्येक को सरलता से अलग-अलग किया जा सकता है। इनके माध्यम से सम्पन्न जीवन का यथार्थ चित्रण हुआ है।

चरित्र-चित्रण . चरित्र-चित्रण की दृष्टि से उपन्यास विशेष सफल है। इसमे वर्ग चरित्रो की अधिकता है। प्राय प्रत्येक पात्र अपने वर्ग का प्रतिनिधित्व करता है।

होरी भारतीय किसान का प्रतिनिधित्व करता है, जो जीवन भर सघर्ष करके भी पराजित ही होता हैं। उसमें गुण-दोष दोनों हैं। वह उदार, सरल, ईमानदार और धर्म भीरु है। उसकी बुराइयाँ मौलिक नहीं, उसकी परिवारिक परिस्थितियो की उपज है। वह परिश्रमी है, पर विद्रोह भावना से बहुत दूर ? वह कहता है—"जब दूसरों के पाँव तले अपनी गरदन दबी हुई है, तो उनके पाँवो को सहलाने में ही कुशल है।" यही कुशलता उसके लिए घातक बनती है।

उसके जीवन की सबसे बडी साध है गौ रखने की। थोडी देर के लिए यह पूरी भी होती है, पर फिर अन्त तक अधूरी ही रहती है। प्राय कहा जाता है, होरी प्रेमचन्द का ही रूप है, पर डा० रामविलास शर्मा के अनुसार, "मेहता को होरी से जोडा जा सके तो जो व्यक्ति बनेगा, वह बहुत कुछ प्रेमचन्द से मिलता-जुलता होगा।"

धनिया स्त्रीपात्रों मे सबसे सबल है। वह विद्रोहिणी नारी का प्रतिनिधित्व करती है। ऊपर से कठोर, किन्तु भीतर से कोमल, वह सुख दुख में सदैव

पति का साथ देती है। उसका जीवन त्याग-पूर्ण है। गोबर नवीन विचारो के गरीब युवको का प्रतिनिधि है। उसका दर्प मानो किसान की नई पीढी का दर्प है, जो समस्त सामाजिक व्यवस्था को चुनौती देता है। उसकी परिस्थितियाँ उसे उठने नही देती। प्रेम के क्षेत्र मे वह भगोडा है।

रायसाहब जमीदार वर्ग के प्रतिनिधि हैं जो अपनी प्रतिष्ठा के लिए झूठे-सच्चे सभी साधन अपनाते हैं। कथनी करनी मे अन्तर है, मीठी मार करते हैं। किसानो को लूटते हुए भी वे किसानो के देवता बने रहते हैं।

खन्ना खद्दर पहनते हैं और फ्रास की शराब पीते हैं।

प्रो० मेहता में चरित्र की दृढता है? वे झूठी प्रतिष्ठा के विरुद्ध है। वे आदर्श वादी व्यक्ति हैं। उपन्यास मे उनके चरित्र का सैद्धातिक रूप तो निखरा है, परन्तु क्रियात्मक रूप नही,।

मालती आधुनिक शिक्षित महिला वर्ग का प्रतिनिधित्व करती है, जो पश्चिमी सभ्यता से प्रभावित है। मेहता के सपर्क से उसका चरित्र आदर्शवादी बन जाता है। गोविंदी आदर्श भारतीय नारी है, जो त्याग, तप और सयम की मूर्त्ति है। ओंकारनाथ असवर वादी सपादक हैं। मि० तंखा ठग हैं। झिंगुरी सिंह पक्का सूदखोर है, दातादीन पाखडी ब्राह्मण है।

विचार उद्देश्य . 'गोदान से पहले के प्रेमचन्द के सामाजिक एव राजनीतक समस्या-प्रधान उपन्यास आदर्शवादी थे, उनकी समस्यायो का हल सुधारवादी था, जो गाधी वादीप्रभाव था 'गोदान' मे आकर वे इस प्रभाव से मुक्त हो जाते हैं, इसमें उन्होने परिस्थिति का यथातथ्य चित्रण करके छोड दिया है हाँ वे विचारक के रूप मे नही आते, वरन् यथार्थ का चित्रण करके विचारने का कार्य पाठको पर छोड देते है। भारतीय किसान समाज और धर्म की रूढियो एव अपने अन्धविश्वासो के कारण किस प्रकार किसान से मजदूर होकर भूखा प्यासा दम तोड देता है, यही 'गोदान' का प्रतिपाद्य है। लेखक ने यहाँ आदर्शवाद का चोगा बिल्कुल उतार दिया है।

गाँव के भीतर का खोखलापन, पारिवारिक कलह, पटवारी, महाजन पुलिस, जमीदार और कारिंदा आदि की लूट–सब कुछ 'गोदान' मे है। इसके द्वारा लेखक बताना चाहता है कि किसान ही सर्वहारा होकर मजदूर बन जाते है। प्रेमचन्द इस उपन्यास मे मजदूर-क्रांति की ओर बढने लग रहे हैं।

प्रो० रत्न चन्द्र के शब्दो मे 'गोदान' मे लेखक का मुख्य उद्देश्य "ऋण के द्वारा हुई किसान की दुर्दशा का चित्रण करना है।", प्रेमचन्द जी को ऋण का कडवा अनुभव था और जिन दिनो वे 'गोदान' लिख रहे थे, वे स्वय ऋण मे फँसे थे। ऋण-समस्या के साथ-साथ भारतीय गाँवो के अनेकमुखी जीवन पर भी प्रकाश डाला गया है।

इन मुख्य समस्याओ के चित्रण के अतिरिक्त इस उपन्यास में लेखक के अन्य उद्देश्य भी हैं। वे ये है (१) पाश्चात्य जीवन से प्रभावित स्त्री पुरुपो के स्वच्छद प्रेम का चित्रण करना (२) गृहस्थ जीवन का वैषम्य दिखाना (३) ग्रामीणो के दीन दलित जीवन और नागरिको के विलास वैभवपूर्ण जीवन की विषमता दिखाना और (४) यह दिखाना कि किस प्रकार नागरिक जीवन से प्रभावित होकर ग्रामीण जन आराम परस्त और उत्तरदायित्वहीन बन जाते हैं।

कला पक्ष : कला की दृष्टि से गोदान' महत्वपूर्ण है। पहले के उपन्यासो में प्रौढता नही, जो यहाँ दीखती है। कथा प्रवाह धीमा है, परन्तु धीमेपन मे अपूर्व आकर्षण है। भापा अत्यन्त सरल, मुहावरेदार और पात्रानुकूल है। कथोपकथन नाटकीय हैं। कला दृष्टता 'गोदान' लेखक की प्रौढतम कृति है और हिन्दी उपन्यास की यथार्थवादी परपरा मे उसका सर्वप्रथम स्थान है।

श्री नददुलारे वाजपेयी 'गोदान' को युग की प्रतिनिधि रचना नही मानते, क्योकि उसमे युग के सामजिक और राजनीतिक सघर्ष का बहुत कम आभास होता है। उनके मत में 'गोदान को समाज का सर्वतोमुखी चित्रण नही कह सकते।' फिर भी, विस्तार में न सही, गहराई मे यह उपन्यास युग का प्रतिनिधित्व करता है क्योकि, जैसा प्रो० रत्नचन्द्र लिखते हैं, "इसमे लेखक ने अपनी संपूर्ण चितना की अभिव्यक्ति को और अपने प्रौढतम अनुभवो को एक सूत्र में बाँधकर भारतीय किसान की जीवन गाथा गाई है।" वस्तुत गोदान एक भारतीय किसान के करुण जीवन की जीवत कहानी है।

डा० पद्मसिंह के शब्दो मे, 'गोदान' आधुनिक युग का सर्वश्रेष्ठ उपन्यास है। पद्य मे 'कामायनी' और गद्य में 'गोदान' वर्तमान हिंदी साहित्य के दो छोर है—एक मे आनन्दवाद की प्रतिष्ठा है और दूसरे में यथार्थ जीवन की विभीषिका......। ये दोनो इसीलिए प्रतिनिधि रचनाएँ हैं। कला की दृष्टि से प्रसाद का चरम विकास 'कामायनी, में है, तो-प्रेमचन्द का 'गोदान, में।"

प्रश्न १४ : उपन्यास कला की दृष्टि से 'प्रतिज्ञा' की आलोचना कीजिये (१९५४ जून)

उत्तर : कहानी : अमृतराय और प्रो० दाननाथ घनिष्ठ मित्र हैं। दोनो प्रेमा से प्रेम करते हैं, जो रिश्ते मे अमृतराय की साली है। प्रेमा अमृतराय को चाहती है। एक दिन पं० अमर नाथ के भाषण से प्रभावित होकर अमृतराय विधवा से विवाह करने की प्रतिज्ञा करता है। प्रेमा का विवाह प्रो० दाननाथ से हो जाता है। अमृतराय विधवाश्रम खोलते हैं।

प्रेमा का भाई कमला प्रसाद दुराचारी है। वह निश्रित विधवा पूर्णा को अपनी वासना का शिकार बनाना चाहता है। अमृतराय उसकी रक्षा करता है। अन्त मे वह अमृतराय के विधवाश्रम मे ही रहने लगती है। एक दिन अमृतराय बताते हैं कि उन्होंने विधवा के बदले विधवाश्रम से विवाह करके अपनी प्रतिज्ञा पूरी करली।

आलोचना

कथावस्तु : इसकी कथा मे प्रेम का एक त्रिकोण है, जो दो प्रेमियो और एक प्रेमिका के रूप मे बनता है। यही मुख्य कथा है। कमला प्रसाद और पूर्णा की उपकथा गौण है दोनो का मेल अच्छा हुआ है। प्रेम के सरल त्रिकोण मे समस्या लाने के लिए यह उपकथा आई।

चरित्र-चित्रण की दृष्टि से उपन्यास 'वरदान' की अपेक्षा सफल है। अमृत राय, दाननाथ, कमलाप्रसाद, उसके प्रेमा और पूर्णा मुख्य पात्र हैं। अमृतराय आदर्श चरित्र, उसके चरित्र में कोई दुर्बलता नही। दाननाथ एक साधारण चरित्र है, जिसका स्वाभाविक चित्रण उपन्यास मे हुआ है। कमलाप्रसाद का चरित्र क्रमश विकसित होता, उसमे यथार्थ है। प्रेमा का चरित्र 'वरदान' की विरजन से मिलता-जुलता है। लेखक उसे आदर्श नारी के रूप मे उपस्थित करता है। पूर्णा का चरित्र एक निर्धन विधवा का चरित्र है। पूर्णा और कमला प्रसाद के चरित्र मे अन्तर्द्वन्द्व का मनोवैज्ञानिक समावेश किया गया है।

उद्देश्य : प्रेम समस्या के साथ उपन्यास में विधवा-समस्या भी आ गई है, लेखक ने विधवाश्रम के रूप मे उसका समाधान प्रस्तुत किया है। नारी की आर्थिक पराधीनता का प्रश्न भी इसके साथ जुड़ा है। उपन्यास मे लेखक का यथार्थवादी स्वर भी पर्याप्त मुखर है, वैसे सामान्यत. दृष्टिकोण सुधारवादी ही है।

कला की दृष्टि से उपन्यास प्रारम्भिक है तथा अपरिपक्व शैली का एक नमूना है।

प्रश्न १५ : 'वरदान' की समीक्षा कीजिए।

उत्तर : कहानी : इसमें तीन परिवारो की कथा है । पहले परिवार में सवाया और उसका पुत्र प्रताप है। दूसरे परिवार में सजीवनलाल, और उसकी पत्नी सुशीला और इकलौती लडकी विरजन है तीसरा परिवार डिप्टी श्यामचरण का है। जिसकी पत्नी प्रेमवती है और एक मामा का लडका कमलाचरण है।

सवाया विरजन को पुत्रबधु बनाना चाहती है विरजन भी प्रताप को चाहती है दूसरी ओर प्रेमवती उसे पुत्रबधु बनाना चाहती है, प्रताप निराश होकर विरजन को भूलने के लिए प्रयाग चला जाता है। एकदिन विरजन की बीमारी का तार पाकर वह जाता है, दोनो प्रेमातुर होकर मिलते हैं विरजन का पति कमला चरण भी पढने प्रयाग आ जाता है वहाँ एक माली की लड़की से प्रेम कर बैठता है; एक दिन प्रेमालाप करते देख लिए जाने पर भाग खडा होता है। किसी तरह ट्राम से गिरते-गिरते बचता है पर अन्तमे बिना टिकट पकडे जाने के डर से चलती गाडी से कूद कर अपनी जान दे देता है पुत्र-शोक में उसके माता-पिता भी चल बसते हैं।

प्रताप की दबी आकाक्षा जाग जाती है। वह एक दिन चोरी से विरजन के घर आ जाता है, पर उसका तेजपूर्ण वैधव्य देखकर लौट जाता है एव देश-सेवा का व्रत लेता है। अब वह "बालाजी स्वामी है।"

बारह वर्ष बाद वह घर जाता है। उसकी माँ उसे माधवी से परिणय-सूत्र मे आबद्धदेखना चाहती है। जब माधवी को देखता है, तो वह उसके प्रेमपर सन्यास छोडने को तैयार हो जाता है, पर माधवी स्वय बैरागिन बनने का सकल्प करती है।

आलोचना

कथावस्तु - कथानक में कोई प्रासगिक कथा नही । मुख्य कथा त्रिभुज-मूलक प्रेम कहानी है , जिसके एक कोण पर विरजन है और दो कोणो पर प्रताप और कमलाचरण । माधवी के आने से कथावस्तु जटिल हो गई है एव उसमें शिथिलता भी आ गई है।

चरित्र-चित्रण की दृष्टि से भी उपन्यास साधारण है । पात्रो का यथेष्ट चरित्र-विकास नही हो पाया है। प्रताप, कमलाचरण, विरजन और माधवी मुख्य

पात्र हैं। प्रताप का आरम्भिक रूप दुर्बल मनोवृति वाले ईर्ष्यालु युवक का रूप है। बाद में वह कर्मठ और तेजस्वी बन जाता है। उसमें यह परिवर्तन विरजन को साधना-लीन देखकर होता है। माधवी के लिए सन्यास को न्योछावर करना उसके चरित्र को हलका बना देता है। कमलाचरण एक आवारा और दुराचारी लड़का है। विरजन भारतीय आदर्श नारी की प्रतीक है। वह मौन प्रेमिका, कर्त्तव्य-परायण नारी एव त्यागमयी विधवा के रूप में आती है। प्रताप के प्रति उसका प्रेम कविता-साधना द्वारा अभिव्यक्त होता हैं। माधवी का चरित्र काल्पनिक प्रेम का आदर्श रखता है, जिसमें अस्वाभाविकता है। वह लेखक के थोथे आदर्शवाद का चित्र है।

विचार-उद्देश्य · लेखक का आदर्श समस्त उपन्यास पर छाया हुआ है। इसमें अनमेल विवाह की समस्या के साथ प्रेम के प्रश्न पर प्रकाश डाला गया है। डा०. पद्मसिंह के अनुसार प्रथम कृति होने के कारण इसमे "कथावस्तु और चरित्र के लाख दोष हो (वे स्वाभाविक भी हैं) प्रेमचन्द ने समाज मे स्वच्छन्द प्रेम की उठती हुई प्रवृत्ति का परिचय देने की जो चेष्टा की थी, उसमे वे सफल हैं" प्रो०-रत्नचन्द शर्मा के अनुसार, इसमें थोथापन झलकता है और इसलिए इसे सफल कहने में कुछ हिचकिचाहट होती है। श्री मन्मथ नाथ गुप्त शरच्चन्द्र के 'देवदास' से 'वरदान' की तुलना करते हुए लिखते हैं—"'देवदास' तो जब तक प्रेम पर सामाजिक रोक रहेगी, एक अमर उपन्यास समझा जायेगा। इसकी तुलना में 'वरदान' तो प्रेम का एक प्रकार से उपहास है।"

कलापक्ष : प्रयोगकालीन रचना होने के कारण 'वरदान' मे कला की दृष्टि से प्रौढता का अभाव हैं। अतिशयोक्ति की भूलें (थानेदार द्वारा सारे गाँव को एक रस्सी मे बाँधना आदि) तथा घटना और शिल्प विधान (Technique) की अशुद्धियाँ खटकती हैं। देश काल विरोध भी है (जैसे प्रयाग में ट्राम का उल्लेख है।)

'वरदान' एक साधारण प्रयोगात्मक रचना है।

प्रश्न १६ : 'मंगलसूत्र' पर संक्षिप्त टिप्पणी दीजिये।

उत्तर · 'मंगल सूत्र' प्रेमचन्दजी का अधूरा उपन्यास है। वह सत्तर पृष्ठ ही लिख पाए थे कि उनका देहान्त हो गया। कुछ आलोचको का विचार है कि इसमें प्रेमचन्द जी अपनी ही कहानी लिख रहे थे। डा० पद्मसिंह इसे राजनीतिक समस्या प्रधान उपन्यासो मे रखते हैं, क्योकि "गोदान के बाद प्रेमचन्द जी कुछ

लिखते उसका मजदूर क्राति से सबध न होता, यह सभव नही।' 'गोदान' मे कृषक को श्रमिक होते दिखाया था तो 'मगल सूत्र' मे उस श्रमिक की मुक्ति का उपाय वे अवश्य खोजते ।'' परतु उपन्यास के अपूर्ण रूप को देख कर अनुमान ही किया जा सकता है, कोई निश्चित धारणा नही बनाई जा सकती।

उपलब्ध कहानी इस प्रकार है—देवकुमार एक साहित्यिक व्यक्ति हैं, जिन्होने निर्धन रहकर भी साहित्य-सेवा की। उन्हे यश तो मिलता है, पर धन नहीं। उनका बडा लडका उनके आदर्शवाद से सहमत न होकर जीवन का सुख लूटना चाहता है, परतु छोटा लडका उन्हीं के आदर्शो पर चलता है। समय के बदले रूप से देवकुमार को धक्का-सा लगता है । उसकी आदर्श भूमि डोलती-सी दिखाई देती है, मन डॉवाडोल हो जाता है' ।

इसमे प्रेमचद के अपने जीवन की झलक अवश्य दीखती है। शैली प्रौढ एव नवीन है पूर्ण होने पर अवश्य ही एक नवीन दिशा का सूचक होता।

प्रश्न १७ · प्रेमचन्द के उपन्यासो को समस्या की दृष्टि से कितने भागो में बाटा जा सकता है ? उनके उपन्यासो का सिंहावलोकन करते हुए बताइए।

उत्तर : प्रेमचन्द ने सबसे पहले अपने युग की सामाजिक और राज-नीतिक क्राति की सभावनाओ को अपने साहित्य मे स्वर दिया। उन्होंने ही सर्व-प्रथम सामाजिक जीवन की कटुता और राष्ट्र की व्यापक पीडा को लेकर साहित्य का शृगार किया । उनकी कृतियो मे गाधी-युग का भारत मुखरित हो उठा है। दृष्टिकोण की व्यापकता ने प्रेमचन्द को जनता का सच्चा साहित्यकार बना दिया।

प्रेमचन्द ने ग्यारह उपन्यास लिखे हैं—प्रतिज्ञा या प्रेमा (१९०४, जो उर्दू में 'हम खुरमा हम कवाब' के रूप में १९०१ में निकला था) , वरदान (१९०५), सेवासदन (१९१६), प्रेमाश्रम (१९२२), निर्मला (१९२३), रगभूमि (१९२५), कायाकल्प (१९२८), गवन (१९३१), कर्मभूमि १९-३२), गोदान (१९३६) और मगलसूत्र (अपूर्ण)।

जब प्रेमचन्द ने लिखना प्रारम्भ किया, तब देश मे समाज-सुधार की ओर विशेष रुचि थी और राजनीतिक आदोलन का बीज, अभी अकुरित ही हुआ था । १९२०–२१ में पहली बार सगठित रूप मे देश ने विदेशी शासन से लोहा

लिया। प्रेमचन्द ने देश की विविध राजनीतिक उतार-चढावो को देखा था। समाज की नस-नस से तो वे पहले से ही परिचित थे। वे अपने समय के जीवित इतिहास वन गए, समाज और राजनीति की एक-एक धडकन का रिकार्ड जैसे उन्होने ले लिया हो।

अपने उपन्यासो मे उन्होने समाज और राजनीति की हर समस्या को लिया है। कुछ मे समाज प्रधान हो गया है, कुछ मे राजनीति। यद्यपि दोनो एक दूसरे पर आश्रित एव एक दूसरे से प्रभावित होते हैं, और प्रभाव की दृष्टि से दोनो के बीच कोई रेखा नही खीची जा सकती, फिर भी कही सामाजिक रूप को प्रधानता मिल जाती है, कही राजनीतिक रूप को। इस दृष्टि से प्रेमचन्द के उपन्यासो को हम दो भागो मे बाँट सकते हैं—सामाजिक समस्या प्रधान और राजनीतिक समस्या प्रधान।

सामाजिक समस्या-प्रधान उपन्यास : सामाजिक समस्याओ मे आर्य-समाज आन्दोलन के मुख्य प्रश्न लिए गए हैं, बालविवाह, वृद्धविवाह, दोहाजू-विवाह, अनमेल विवाह, दहेज, विधवा और वेश्याओ के प्रश्न इनमें मुख्य हैं। सक्षेप मे सामती समाज मे पिसती नारी की दयनीय स्थिति का चित्रण इन सामाजिक उपन्यासो में है

प्रेमचद के सामाजिक समस्या प्रधान उपन्यासो मे 'वरदान' प्रेम की समस्या के साथ अनमेल विवाह के प्रश्न को लेता है। 'प्रतिज्ञा' मे भी यही समस्या है, पर यहाँ विधवा-समस्या और साथ जुड गई है। 'सेवासदन' मे नारी समस्या को और गहराई के साथ उठाया गया है। यहाँ केन्द्रीय समस्या वेश्या की है, जिसका मूल दहेज और अनमेल विवाह मे है। 'निर्मला' की मूल समस्या दहेज और दोहाजू अधेड से विवाह की है। यह पहला उपन्यास है, जिसमें लेखक यथार्थवादी रूप में आता है। 'कायाकल्प' मे उच्चवर्ग से सबधित प्रेम की समस्या है। 'गबन' प्रेमचंद का अतिम सामाजिक उपन्यास है, जिसमे वह समाज की एक और बुराई—आभूषण प्रियता—की ओर हमारा ध्यान खीचता है।

लेखक के इन सभी सामाजिक उपन्यासो मे निम्नलिखित बातें सामने आती हैं–(१) समाज की सभी समस्याओ पर सभी दृष्टियो से विचार हुआ है। (२) लेखक आदर्शवाद का पल्ला नही छोडता। 'निर्मला' में अवश्य वह यथार्थ की ओर खिच गया है। (३) नायक या अन्य एक पात्र अवश्य सेवा-कार्य

में जुटने के लिए लेखक तैयार करता है ('वरदान' का प्रताप, 'प्रतिज्ञा' का अमृत-राय, 'सेवासदन' का विट्ठलदास, 'कायाकल्प' का चक्रधर, 'गबन' का देवीदीन और 'निर्मला' की श्रीमती सिन्हा ऐसे ही पात्र है) । (४) साम्प्रदायिक समस्याएँ और उनका उदार दृष्टि से हल सभी का ध्येय है । (५) नगर और गाँवो को साथ साथ लिया गया है। 'सेवासदन' और 'कायाकल्प' में ग्राम जीवन, एवं अन्य सामाजिक उपन्यासो में नागरिक जीवन विशेष उभरा है। (६) सभी में मुख्यत मध्य-वर्ग का चित्रण हुआ है।

राजनीतिक समस्या-प्रधान उपन्यास : राजनीतिक उपन्यासो में लेखक ने नगर और मध्यवर्ग को मुख्यता न देकर गाँवो और निम्नवर्ग के लोगो की समस्याओ को प्रमुख स्थान दिया है। उनके राजनीतिक उपन्यास हैं—'प्रेमाश्रम' 'रगभूमि' 'कर्मभूमि' 'गोदान' और 'मगलसूत्र'। सभी में गाँवो का प्राधान्य है—'मगलसूत्र' को छोडकर । 'मगलसूत्र' अधूरा है। डा० पद्मसिंह के मत में, वह इसमें गाँव को प्रधानता अवश्य देते। इनमें नागरिक जीवन का चित्रण ग्रामीण जीवन के चित्रो को सजीव रूप देने के लिए हुआ है।

'प्रेमाश्रम' उनका पहला राजनीतिक समस्या प्रधान उपन्यास है, जिसमें किसान-जमीदार का सघर्ष दिखाया गया है । 'रगभूमि' में निम्नवर्ग और पूँजी-पति के सघर्ष का चित्र है । यद्यपि इस सघर्ष में औद्योगिक पूँजीपति ही जीतता है, तथापि प्रेमचन्द की सहानुभूति गाँव की दृढता के प्रति है, जो उनके 'जन-कलाकार' होने का सबसे बडा प्रमाण है। 'कर्मभूमि' १६३०–३१ के राजनीतिक आदोलन की पृष्ठभूमि पर लिखा गया उपन्यास है, जिसमें किसान-मजदूर समस्या के साथ अछूतोद्धार की समस्या भी आई है। 'गोदान' लेखक के अन्य सभी उपन्यासो से भिन्न कोटि का है। इसमें आकर वे गाधीवाद और आदर्शवाद से मुक्त हो जाते हैं। यह लेखक की यथार्थवादी प्रवृत्ति की महत्त्वपूर्ण सूचना है।

'मगलसूत्र' को डा० पद्मसिंह ने राजनीतिक इस आधार पर माना है कि प्रेमचन्द 'गोदान' के बाद मजदूर क्रांति-पर अवश्य लिखते। परन्तु यह केवल अनुमान का ही विषय है।

प्रेमचन्द के उपन्यासो का यह सिंहावलोकन डा० पद्मसिंह के इन शब्दो के साथ समाप्त किया जा सकता है—'प्रेमचन्द की दृष्टि की व्यापकता, समाज और राजनीति के विभिन्न पहलुओ पर उनके विचार, हमारे व्यक्ति—

गत जीवन की विकृति और उससे मुक्ति की दिशा, आवारा और समाज बहिष्कृत पात्रो से लेकर राजा-महाराजाओ तक के जीवन के सजीव चित्र, ग्राम्य-जीवन के प्रति उनकी सहानुभूति और देश-विदेश के परिवर्तनो के प्रकाश मे अपने देश के उद्धार की योजना, भारतीयता के आदर्श के शुद्ध रूप की कल्पना, युगानुकूल परिस्थितियो के आधार पर नये जीवन का निर्माण आदि का बडा ही सु दर समावेश उन उपन्यासो मे हुआ है और दो महायुद्धो के बीच के भारत का सही इतिहास जानने के लिए उनके उपन्यासो से अधिक प्रामाणिक लेखा कही और नही मिलेगा।" (प्रेमचद और उनकी साहित्य-साधना, पृष्ठ १२५)

प्रश्न १८ "प्रेमचद उतने ही बडे कहानीकार थे, जितने बडे उपन्यासकार।" प्रेमचद के कहानी-साहित्य का परिचय देते हुए उक्त कथन की समीक्षा कीजिये। (१९५३ जनवरी)

उत्तर : प्रेमचद ने उपन्यास के क्षेत्र मे जैसा महत्वपूर्ण काम किया, वैसा ही कहानी के क्षेत्र मे भी। हिन्दी के सर्वश्रेष्ठ उपन्यासकार के साथ-साथ वे सर्वश्रेष्ठ कहानीकार भी हैं। कुछ आलोचक तो उन्हें कहानीकार के रूप मे अधिक सफल समझते हैं; क्योकि दो समानातर कथाओ के समावेश से जहाँ उनके उपन्यास वस्तु की दृष्टि से शिथिल हो गये हैं, वहाँ उनकी कहानियों में ऐसा नही हुआ। उनकी कुछ कहानियो को तो विश्व की श्रेष्ठ कहानियो मे स्थान मिल सकता है।

अन्य समालोचक, जिनमे डा० रामविलास शर्मा भी हैं, कहते हैं कि कहानी की परिधि उन्हें अपनी प्रतिभा का पूरा करतब दिखाने से रोकती थी। कुछ भी हो हिन्दी के कहानी-साहित्य मे उनका सर्वश्रेष्ठ स्थान है। श्री शिवदान-सिंह चौहान के शब्दो मे, उन्होने "यदि कहानी छोडकर कुछ और न लिखा होता तो भी विश्व-साहित्य में उनका स्थान सुरक्षित रहता।"

प्रेमचद जी ने २५० कहानियाँ हिन्दी मे एव १७८ कहानियाँ उर्दू मे लिखी। उनका सर्वप्रथम कहानी-सग्रह 'सोजे वतन', उर्दू मे था, जो ई० १९०७ में छपा था और जिसे सरकार ने जब्त कर लिया था। उनकी प्रमुख कहानियाँ 'मानसरोवर' के आठ भागो में सगृहीत हैं।

उपन्यासो के समान प्रेमचद की कहानियो मे भी कला की दृष्टि से क्रमिक विकास हुआ है। उनकी प्रारम्भिक कहानियाँ कला और भाव की दृष्टि से

अधिक सफल नही है। वे मुख्यत वर्णनात्मक, घटना प्रधान, उपदेशमूलक और शैली की दृष्टि से अपरिष्कृत हैं। उनकी बाद की कहानियाँ भाव,भाषा और शैली सभी दृष्टियो से प्रौढ हैं। उनमे ये मुख्य बातें है—(१) भावो को व्यक्त करने की क्षमता, (२) वर्णनात्मकता और भावुकता का सुन्दर मेल (३) चरित्र चित्रण मे मनोवैज्ञानिकता, (४) आदर्शवादी प्रवृत्ति का सयमन, (५) जीवन के प्रति प्रगतिशील दृष्टिकोण (६) विचारो और भावो की प्रौढता और (७)भाषा-शैली मे परिष्कार।

प्रेमचद की कहानियो का वर्गीकरण कई प्रकार से किया जा सकता है। शैली की दृष्टि से उन्होने सभी रचना-शैलिओ को अपनाया है—(१)कथात्मक शैली जैसे 'शतरज के खिलाडी', 'रानी सारधा' आदि। (२) आत्म कथात्मक शैली चोरी, 'बडे भाईसाहब'। (३) सवाद शैली 'कानूनी कुमार', 'जादू'। (४) डायरी शैली 'मोटेराम शास्त्री'। (५) पत्र शैली 'कुसुम' 'दो बहनें'।

कथावस्तु की दृष्टि से उनकी कहानियाँ तीन प्रकार की है—[१] घटना प्रधान जैसे, 'पचपरमेश्वर, 'कफन', 'झाकी' आदि। [२] चरित्र प्रधान एव मनोवैज्ञानिक 'बडे भाई साहब', आत्माराम', 'दो बहने', 'माता का हृदय' आदि। [३] भावप्रधान 'आत्म सगीत' [प्रेमचन्द ने ऐसी कहानिया कम लिखी हैं]।

विषय की दृष्टि से इनका कई प्रकार से वर्गीकरण हुआ है डा० सत्येन्द्र ने दो मुख्य वर्ग माने है—(१) स्त्री-पुरुष से सबधित कहानियाँ, और (२) सासारिक मानव से सबधित कहानियाँ। उन्होने प्रथम वर्ग के दस भेद एव द्वितीय के २५ भेद किए है, फिर कई उपभेद किए है। परन्तु इन भेदोपभेदो के फेर में पडना व्यर्थ है। प्रो० नददुलारे वाजपेयी और प्रो० रत्नचन्द्र शर्मा ने थोडे अन्तर के साथ (१) ऐतिहासिक (२) राजनीतिक (३) सामाजिक (४) मनोवैज्ञानिक, (५) ग्राम सबधी, (६) नारी-सबधी (७) हिंदू-मुस्लिम एक्य सबधी (८) अछूतोद्धार सबधी एव (९) हास्य पूर्ण कहानियो के रूप मे इनको बाटा है। परन्तु ये सभी प्रकार तीन मुख्य प्रकार के अन्तर्गत आ जाते है—

(१) सामाजिक कहानियाँ, (२) राजनीतिक कहानियाँ एव (३) ऐतिहासिक कहानियाँ।

प्रेमचन्द ने मुख्य रूप से सामाजिक कहानियाँ ही लिखी है। इनमे शहर और गाँव दोनो के जीवन के चित्र है। उनकी प्रसिद्ध सामाजिक कहानियो मे 'बडे घर की बेटी', 'पचपरमेश्वर', 'शखनाद', 'अमावस्या की रात्रि', 'कायर', 'अलग्योझा', 'माता का हृदय', 'नशा', 'बडे भाई साहब,' 'बूढी काकी' और 'घर जमाई' उत्कृष्ट कोटि की हैं। इनमें अधिकाश का सबन्ध परिवार से है। 'शखनाद,' 'अलग्योझा' और 'घर जमाई' मे सयुक्त परिवारो की दयनीय दशा का चित्रण है। अन्य कहानियो मे भी विविध पारिवारिक चित्र हैं।

राजनीतिक कहानियो मे 'सोजेवतन' (जब्त) और 'समरयात्रा' की कहानियाँ हैं। इनमें कुछ काँग्रेस आन्दोलन से सम्बन्धित है, कुछ साम्प्रदायिक समस्याओ से और कुछ किसानो एव मजदूरो के शोषण से। 'सत्याग्रह', 'मैकू' और 'समर-यात्रा' का सबन्ध काग्रेस आन्दोलनो से है। "होली का उपहार', 'सुहाग की साडी' और 'आहुति' भी ऐसी ही कहानियाँ है। साम्प्रदायिक प्रश्न को लेकर लिखी गई कहानियो मे 'पचपरमेश्वर', 'मत्र' और हिंसा परमो धर्म . आदि मुख्य है। शोषण और गरीबी सबन्धी कहानियो मे 'कफन', 'सवासेर गेहूँ', 'पूस की रात' आदि उल्लेख्य है। 'कफन' लेखक की सर्वश्रेष्ठ यथार्थवादी कहानी है।

ऐतिहासिक कहानियाँ लेखक ने कम ही लिखी हैं। जो लिखी हैं, उनका सबन्ध राजपूत काल और मुगल काल से है। राजपूत काल से सबन्धित कहानियो मे 'राजा हरदौल" रानी सारधा', 'मर्यादा की वेदी' और 'धोखा' विशेष प्रसिद्ध हैं। मुगल इतिहास से सम्बन्धित कहानियो मे 'वज्रपात', 'परीक्षा', 'दिल की रानी' और 'शतरज के खिलाडी' प्रमुख हैं।

प्रेमचंद की कहानियों की मुख्य विशेषताएं .—

(१) इन कहानियो में सामयिक सामाजिक, राजनीतिक, धार्मिक और सास्कृतिक समस्याओ पर विशद प्रकाश डाला गया है। नारी जीवन की समस्याये, किसानो-मजदूरो की समस्याएं, अछूतोद्धार प्रश्न, साम्प्रदायिक प्रश्न आदि पर इन कहानियो मे विस्तृत विचार किया गया है।

(२) इनमे यथार्थ परिस्थिति का चित्र है। कुछ कहानियो मे 'रोमास' को भी स्थान मिला है। मनोविज्ञान इन कहानियों का प्राण है। उनका मनोविज्ञान फ्रायड से प्रभावित नही, वह जीवन को गतिशीलता को लेकर

चला है।

(३) इनमें भारतीय आदर्श की प्रतिष्ठा है। इनमे लेखक व्यक्ति के त्याग और बलिदान की भावना को सामने लाता है। दूसरे शब्दो मे उसने यथार्थवाद की भित्ति पर आदर्शवाद को खड़ा किया है।

(४) कहानी के तत्वो के आधार पर भी ये कहानियाँ प्राय सफल हैं। वस्तु-सगठन, चरित्र-चित्रण और शैली की दृष्टि से अधिकाश कहानियाँ उत्कृष्ट कोटि की हैं। कहानियो का आरम्भ साधारण ढंग से होता है, कथानक भी साप की गति से नही चलता। अपनी कहानियो मे लेखक पहले पात्रो का परिचय दे कर फिर घटनाओ के घात-प्रतिघात की ओर बढता है। 'जन कलाकार' होने के नाते वह 'कलाबाजी' से दूर रहना चाहता है। डा० राम विलास शर्मा के शब्दो में, "उनकी काफी कहानियाँ ऐसी है, जिनमे ग्रामीण कथाओ का रस और उनकी शैली अपनाई गई है।" कथानक सरल होने पर भी वे पात्रो की मनो-वृत्ति, वातावरण की झाकी और वर्णन कौशल से उसे रोचक बनाए रखते है। कभी-कभी व्यग का प्रयोग भी कर जाते हैं। जैसा कि श्री नद दुलारे वाजपेयी लिखते हैं, "प्रेमचन्द जी की प्राय सभी कहानियाँ सामाजिक पृष्ठभूमि पर वर्णनात्मक शैली मे लिखी गई हैं। उनमें शैली सबन्धी विविधता नही है।"

इन विशेषताओ के कारण प्रेमचन्द को 'कहानी-सम्राट' की उपाधि दी जा सकती है। उन्होने हिन्दी के कथा-साहित्य मे एक नवयुग का प्रवर्तन किया। वे उतने ही बडे कहानीकार थे, जितने बडे उपन्यासकार।

प्रश्न १९ · "प्रेमचन्द हिंदी-साहित्य में उपन्यासकार और कहानी-लेखक के नाते ही विशेष प्रसिद्ध हैं। परन्तु उनका शेष साहित्य भी कम महत्व-पूर्ण नहीं है।" डा० पद्मसिह की इन उक्ति पर विचार कीजिए।

उत्तर : उपन्यास और कहानियो के अतिरिक्त प्रेमचन्द के साहित्य की शेष निधि इस प्रकार है —

(क) नाटक [१] मौलिक 'कर्बला, सग्राम', 'प्रेम की वेदी'।

[२] अनूदित 'चादी की डिबिया' [गाल्सवर्दी के Silver Box का अनुवाद], 'हडताल' [Strife का अनुवाद], 'न्याय' [justice का अनुवाद] आदि।

(ख) निबन्ध . 'साहित्य का उद्देश्य'।

[ग] जीवनी 'महात्मा शेख सादी', 'दुर्गादास' और 'कलम' त्याग और तलवार'।

इन रचनाओ मे से उनके मौलिक नाटक और निबन्ध विशेष महत्व के हैं।

प्रेमचन्द के नाटक : आलोचको के अनुसार प्रेमचन्द नाटककार के रूप में असफल रहे है। वस्तुत नाटक उनका क्षेत्र न था। पता नही, उन्होने क्यो यह क्षेत्र अपनाया। उन्होने स्वय तो इसका कारण कथानक की मजबूरी बताया है। 'सग्राम' की भूमिका मे वे लिखते है "इस कथा का ढग ही ऐसा था कि मै उसे उपन्यास का रूप नही दे सकता था।" परन्तु 'सग्राम' का कथानक नाटक की अपेक्षा उपन्यास के लिए ही अधिक उपयुक्त है।

कर्बला ऐतिहासिक नाटक है, जिसकी कहानी मुस्लिम इतिहास की प्रसिद्ध घटना 'हुसेन की मृत्यु' से ली गई है। ढाई सौ पृष्ठो की यह पुस्तक अभिनय के लिए बिल्कुल अनुपयुक्त है। लेखक स्वय कहता है—"यह महज पढने के लिए लिखा गया है, खेलने के लिए नही।" इसका उद्देश्य हिंदू-मुस्लिम एक्य है, परन्तु सिया मुसलमानो ने इस धार्मिक घटना को नाटक-बद्ध करना पसद ही नही किया, जिससे प्रेमचन्द को काफी निराशा हुई। सवादो मे फारसी की भर-मार है, पात्रो की अधिकता भी खटकती है। सक्षेप मे नाटक असफल है।

संग्राम किसान-जमीदार सघर्ष पर आधारित है, जैसे उनके अधिकाश उपन्यास हैं। २६३ पृष्ठो के इस नाटक की कहानी को सरलता से उपन्यास का रूप दिया जा सकता था। नाटक के रूप में यह असफल है। सभवत उपन्यास के रूप में सफल हो पाता। कथा की अस्वाभाविकता एव व्यर्थ की हत्याएँ खटकती है। चरित्रचित्रण भी स्वाभाविक नही। डा० पद्मसिंह के मतानुसार, "यद्यपि इसमें भूमि, धन और नारी के लिए सग्राम है, पर प्रेमचन्द ने जीवन का जो चित्र अकित किया है, वह लाजवाब है। उपन्यासो की कडी को जोडने वाले इस नाटक के ग्राम्य-चित्र वैसे ही सजीव हैं। ....'स ग्राम' के किसान बडे सजग हैं।......यो प्रेमचन्द ने हमारी वर्तमान व्यवस्था का कच्चा चिट्ठा सग्राम' मे खोला है। . नाटक के सवाद बडे ही चुस्त और अर्थपूर्ण हैं। ...भाषा पात्रा-नुकूल है। गठन की दृष्टि से भी नाटक बुरा नही है।"

उक्त मत सर्वांश में सत्य नही कहा जा सकता।

प्रेम की वेदी मे एक मध्यम ईसाई परिवार का दृश्य है जिसमें अंत-र्जातीय विवाह का प्रश्न उठाया गया है। जेनी ईसाई होते हुए भी योगराज से विवाह करना चाहती है, धर्म बाधक है। जेनी सोचती है कि प्रेम की वेदी पर किसका बलिदान किया जाए, व्यक्ति का या धर्म का। अन्त में उसे मा द्वारा योगराज से विवाह करने की अनुमति मिल जाती है।

नाटक मे चरित्र-चित्रण अधूरा है। कथा भी अविकसित है। नाटक असफल है। डा० पद्मसिंह के मत मे, 'रंग-भूमि' मे सोफिया और विनय के प्रेम के रूप में जो प्रेम की समस्या है वह वहाँ राजनीतिक समस्याओ के बीच अविकसित ही रह गई है। उसे स्पष्ट करने के लिए ही यह कथानक चुना गया है। नाटक का सबलतम पात्र जेनी है, जो क्रान्तिकारी विचारो की लडकी है। उसके द्वारा लेखक अपनी धार्मिक उदारता का परिचय देता है।

इन नाटको का महत्व नाटको की दृष्टि से भले ही न हो, पर प्रेमचन्द जैसे विकास शील कलाकार को जानने के लिए ये आवश्यक है।

प्रेमचन्द के निबन्ध 'साहित्य का उद्देश्य' (जो पहले 'कुछ विचार' [दो भाग] के रूप मे छपा था) मे प्रेमचन्द के चालीस निबंधो का संग्रह है। इसमें साहित्य और कला, उपन्यास और कहानी, राष्ट्र भाषा आदि विषयो का समावेश है। इनसे उनकी जीवन और कला-संबंधी धारणाओं पर यथेष्ट प्रकाश पडता है। [प्रेमचन्द की जीवन, कला आदि सम्बन्धी धारणाओ के लिए अगला प्रश्न देखिए]।

प्रश्न २०: जीवन, साहित्य और कला तथा उपन्यास और कहानी के सम्बन्ध मे प्रेमचद की क्या धारणाएँ थी ?

उत्तर: जीवन सम्बन्धी धारणाएं: जीवन के प्रति प्रेमचन्द का दृष्टि-कोण आशावादी था। उनकी दृष्टि मे "जीवन का उद्देश्य कर्म है।" "आदमी अपने संघर्ष से घबराये तो कायर है।" "मानव जीवन मे त्याग बड़े महत्त्व की वस्तु है।" वे जवानी को आदर्श और आत्मत्याग समझते हैं। जीवन को सुखी बनाना ही भक्ति और मुक्ति है। वे कहते हैं—"यदि तुम हँस नही सकते, रो नहीं सकते, तो तुम इन्सान नहीं हो।" विवाह को प्रेमचन्द आत्मविश्वास का साधन समझते हैं। "वह शुभघडियाँ, जिनसे हमारे जीवन मे नवयुग का सूत्रपात

होता है, हमारी भावनाओं मे सहृदयता और विश्वास उत्पन्न करती हैं।"

स्वय अपने जीवन के विषय मे प्रेमचन्द कहते हैं—"मेरा जीवन सपाट, समतल मैदान है, जिसमे गड्ढे तो कहीं-कहीं हैं; पर टीलो, पर्वतो, घने जंगलो, गहरी घाटियो और खण्डहरो का स्थान नही है।"

साहित्य और कला : प्रेमचन्द जीवन और साहित्य का अटूट सम्बन्ध मानते हैं। उनके मत मे "साहित्य का आधार जीवन है। इसी नीव पर साहित्य की दीवार खडी होती है। वे कला वादी नही, क्योंकि कला के लिए कला का समय वह होता है जब देश सम्पन्न और सुखी हो।" वे "और चीजो की तरह कला को भी उपयोगिता की तुला पर तोलते हैं" "साहित्य का जन्म उपयोगिता की भावना का ऋणी है।" साहित्य के उद्देश्य के विषय मे वे लिखते हैं, "साहित्य का उद्देश्य जीवन के आदर्श को उपस्थित करना है।"

उनके मत मैं "साहित्य उसी रचना को कहेंगे, जिसमे कोई सचाई प्रकट की गई हो।" "उसकी सर्वोत्तम परिभाषा जीवन की आलोचना है।" वह "अपने काल का प्रतिबिंब होता है।"

उपन्यास और कहानी प्रेमचद की उपन्यास की परिभाषा है—"मैं उपन्यास को मानव चरित्र का चित्रमात्र समझता हूँ।" "चरित्र सम्बन्धी समानता और विभिन्नता–अभिन्नत्व में भिन्नत्व और भिन्नत्व मे अभिन्नत्व, दिखाना उपन्यास का मुख्य कर्त्तव्य है।" "उपन्यास के चरित्रो का चित्रण जितना ही स्पष्ट, गहरा और विकास पूर्ण होगा, उतना ही पढने वालो पर उसका असर पडेगा।" उपन्यासो के भविष्य के विषय मे वे लिखते हैं, "भावी उपन्यास जीवन चरित्र होगा। वह चरित्र इस ढग से लिखा जायगा कि उपन्यास मालूम हो।"

कहानी के विषय में वे कहते हैं–"वह केवल एक घटना है," जबकि 'उपन्यास घटनाओ, पात्रो और चरित्रो का समूह है।" "सबसे उत्तम कहानी वह है, जिसका आधार किसी मनोवैज्ञानिक सत्य पर हो।" "तत्व हीन कहानी मे चाहे मनोरजन भले ही हो जाय मानसिक तृप्ति नही होती।"

यथार्थवाद और आदर्शवाद के विषय मे उनके विचार महत्वपूर्ण हैं। "साहित्य की आत्मा आदर्श है और उसकी देह यथार्थ-चित्रण।" "यथार्थवाद यदि हमारी आँखें खोल देता है, तो आदर्शवाद हमे उठाकर किसी मनोरम स्थान में पहुँचा देता है।" "वही उपन्यास उच्च कोटि के समझे जाते हैं, जहाँ

यथार्थ और आदर्श का समावेश हो गया है। उसे आप 'आदर्शोन्मुख यथार्थवाद' कह सकते है।" प्रेमचन्द के उपन्यासो में 'यही आदर्शोन्मुख यथार्थवाद आया है। पीछे उनका झुकाव यथार्थवाद की ओर हो गया था, जैसे 'गोदान'से स्पष्ट है। पर ये "नग्न यथार्थता को घृणित" समझते हैं।

प्रश्न २१ : प्रेमचद की शिल्प विधान-कला, भाषा एव लेखन शैली पर प्रकाश डालिये।

उत्तर : शिल्पविधान प्रेमचद जी के उपन्यासो की कथाओं का चित्र-पट बडा विशाल है। बडे उपन्यासो में तो स्पष्ट दो कथाएँ चलती है। छोटे उपन्यासो मे भी कथानक लम्बे हैं। प्राय सभी मे अनावश्यक आत्महत्याएँ एव अति नाटकीय प्रसगो की योजना है। कही-कही उनकी कल्पना वेलगाम दौडती है। 'निर्मला' के डा० सिन्हा को वे एक कोयले की मूर्ति कह देते हैं। 'कर्मभूमि' में एक मदिर मे 'एक पूरा कमरा पलवलो से भरा हुआ था।' वहाँ २५-३० हाथी चार पाँच सौ गाएँ-भैंसें थी। वस्तु गठन की दृष्टि से यह दोष है। यह क्यो हुआ ? डा० इद्रनाथ मदान के शब्दो मे, "प्रेमचद को कोई परम्परा विरासत मे नही मिली, उनको अपना शिल्प विधान स्वय गढना पडा।"

परन्तु जहाँ उन्होने सयम से काम लिया है, वहाँ उनके वर्णनो को पढ कर उनके सूक्ष्म निरीक्षण की शक्ति की प्रशशा करनी पडती है। मुगल बादशाहो के अतिम दिनो का लखनऊ कैसा था, यह 'शतरज के खिलाडी' मे कुशलता से अकित है। 'रग भूमि' के सूरदास की झोपडी का वर्णन कितना सजीव है—"न खाट, न विस्तर, न बर्तन-भाँडे। एक कोने में एक मिट्टी का घडा था, जिसकी आयु का अनुमान उसपर जमी काई से हो सकता था। चूल्हे के पास हाँडी थी। एक पुराना . .तवा और एक छोटी सी कठौत और एक लोटा—बस यही उस घर की सारी सपत्ति थी। मानव लालसाओ का कितना सक्षिप्त स्वरूप।"

कथा का विभाजन वे आदि मध्य और अत की दृष्टि से करते थे और सीधी रेखा मे बढ़ते थे। घटना चक्र मे न पडकर वे पात्रो के चरित्र खोलने में लगते थे। उनके पात्र परिस्थितिओ के आधीन चलते हैं, उनसे लडते हुए या वे मर जाते हैं या जीत जाते हैं दोनो हालतो मे वे आदर्शवादी होते हैं उनके पात्र सहसा बदल जाते है यह उनके आदर्शवाद का प्रभाव है फिर भी उनके पात्रो का सजीव व्यक्तित्व होता है वे दुर्बल भी होते हैं और सबल भी।

भाषा : प्रेमचद की कला की सफलता बहुत कुछ उनकी भाषा पर निर्भर है। वे उर्दू से हिन्दी मे आए थे, इसलिए शुरू मे उनकी भाषा कुछ उखड़ी-सी रही, पर जैसे-जैसे वे आगे बढते गए, उनकी भाषा व्यवस्थित हो गई और उसमे प्रौढता आती गई।

उनकी भाषा की पहली विशेषता यह है कि वह न तो सस्कृत निष्ठ है, न अरबी-फारसी से लदी हुई। वह दोनो के बीच की है, भाषा मे पात्रानुकूलता दूसरी विशेषता हैं। हिन्दू पात्र सस्कृत गर्भित भाषा बोलते है और मुसलमान पात्र अरबी-फारसी मिश्रित। आरभिक रचनाओ में ऐसे भी स्थल है, जहाँ उर्दू जानने वाले भी चक्कर में पड जाते है। परतु पीछे उन्होने यह प्रवृति छोड दी। ग्रामीण पात्रों की भाषा मे वे शब्दो का ग्रामीणीकरण कर देते हैं जैसे दर्द को दरद, रईस को रहीस, दर्शन को दरसन, गृहस्थी को गिरस्ती। उनके अधिकाश पात्रो का नामकरण दो ग्राम्य भाषा में हुआ है (जैसे होरी, धनिया, गोबर आदि)।

तीसरी विशेषता यह है कि वे प्रकृति चित्रण और भावाभिव्यजना के अवसर पर अपनी भाषा मे कवित्व पूर्ण प्रभाव ला देते हैं। ऐसे स्थलों पर उनकी भाषा अलंकृत होती हैं। मुहावरे और कहावतें उनकी भाषा की चौथी विशेषता है। मुहावरो के अधिकारपूर्ण प्रयोग से उनकी भाषा का सौन्दर्य निखर उठा है। इनके साथ-साथ भाषा के बीच जुगनू से चमकने वाले विचारकण भी उनकी भाषा की शोभा है। 'सच्चा प्रेम सयोग मे भी वियोग की मधुर वेदना का अनुभव करता है।' कायरता भी वीरता की भाँति सक्रामक होती है।' 'विपत्ति में हमारा मन अतर्मुखी हो जाता है।'—जैसे वाक्य उनकी भाषा के रत्न हैं।

व्यग और परिहास शैली उनकी पाँचवीं विशेषता है, अवसर मिलने पर प्रेमचद शिष्ट हास्य मे नही चूकते—"इन्जीनियरो का ठेकेदारो से कुछ वैसा ही सबन्ध है, जैसा मधुमक्खियो का फूलो से! यह मधुरस 'कमीशन' कहलाता है।"

डा० पद्मसिह के शब्दो मे, "प्रेमचद की भाषा-शैली प्रवाह पूर्ण, सरल, स्वच्छ, अलकृत, और मधुर है। इसमे मानव-जीवन और प्रवृत्ति की सूक्ष्म भाव-व्यजना को मूर्त करने की शक्ति है। शब्दो का सुष्ठु प्रयोग, वाक्य विन्यास की चुस्ती, मुहावरे और कहावतो का समावेश, व्यग और विनोद की छटा—उनकी उन्नत गद्य-शैली के उपकरण हैं।"

लेखन-शैली. प्रेमचन्द ने किसी एक शैली को न अपनाकर विभिन्न शैलियो को अपनाया है। ये शैलियाँ हैं—(१) वर्णनात्मक शैली, (२) मनोविश्लेषणात्मक शैली, (३) नाटकीय शैली, (४) विचारात्मक शैली और (५) उपदेशात्मक शैली।

वर्णनात्मक शैली प्रेमचन्द को बहुत प्रिय है। उनके शब्द-चित्र यथार्थ हैं। चरित्र चित्रण एव दृ य चित्रण में उन्होने यह शैली अपनाई है। उनका प्रकृति वर्णन स्वाभाविक एव सजीव है। मनोविश्लेषणात्मक शैली का भी प्रौढ उपयोग उन्होने किया है। नाटकीय शैली का सबध मुख्यत पात्रो के कथोपकथन से रहता है। प्रेमचंद जी के कथोपकथन स्वाभाविक, पात्रानुकूल, रोचक एव श्लील हैं। विचारात्मक शैली पात्रो के आत्म भाषणो मे प्रयुक्त हुई है। आदर्शवादी लेखक होने के कारण उनके उपन्यासो मे उपदेशात्मक शैली भी मिलती है। कही-कही तो उनकी उपदेशात्मकता अखरने लगती है। 'गोदान' में मि० मेहता का उपदेशपूर्ण भाषण पाठक को उबा देने वाला है।

प्रश्न २२ यथार्थवाद और आदर्शवाद से क्या अभिप्राय है ? प्रेमचद के उपन्यासो के आदर्शोन्मुख यथार्थवाद' की व्याख्या कीजिये।

उत्तर देखिये प्रश्न २ का उत्तरार्ध।

प्रश्न २३ प्रेमचद की उपन्यास-कला की विशेषताएं बताइये।

उत्तर देखिये प्रश्न २, विशेष रूप से उत्तर भाग।

प्रश्न २४ "प्रेमचद जी हिन्दी के सर्वोत्कृष्ट मौलिक लेखक थे, जिन्होने हिन्दी पाठको की अभि चि को चन्द्रकान्ता के गर्त से निकाल कर सुदृढ़ साहित्यक नींव पर स्थिर किया।" इस कथन की आलोचना कीजिये।

उत्तर देखिये प्रश्न २।

प्रश्न २५ प्रेमचद के उपन्यासो तथा कहानियों में गरीबो के प्रति जो सहानुभूति सर्वत्र दिखाई पडती है, उसकी तह में उनकी अपनी गरीबी थी। उक्त कथन की सत्यता उनके जीवन का उल्लेख करते हुए प्रमाणित कीजिये [१६५२]

उत्तर देखिये प्रश्न ३.

"प्रश्न २६. प्रेमचंद जी ने सबसे सब कुछ लेकर भी किसी से कुछ नहीं लिया।" इस कथन का युक्ति युक्त समर्थन करो।

उत्तर देखिये प्रश्न ४.

प्रश्न २७ : एक सच्चे कलाकार के नाते प्रेमचद ने अपने उपन्यासो का मसालापुस्तको से न लेकर अपने एवं आस पास के जीवन से लिया है और सब कुछ लेकर भी मौलिकता अक्षुण्ण रखी । है' सिद्ध कीजिये । (१९५६)

उत्तर : देखिये प्रश्न ३ और ४

प्रश्न २८ : सिद्ध कीजिये कि प्रेमचंद ने सामाजिक और राजनीतिक समस्या-प्रधान उपन्यास ही लिखे है । अथवा "प्रेमचंद के प्रत्येक उपन्यास में किसी-न-किसी राजनीतिक अथवा सामाजिक समस्या को अपनाया गया है।" इस कथन का समर्थन कीजिये ।

उत्तर : देखिये प्रश्न ५ और १७

प्रश्न २९ : हिन्दी के उपन्यास-साहित्य में प्रेमचंद जी का स्थान निर्धारित कीजिये ।

उत्तर : देखिये प्रश्न २

प्रश्न ३० : "गोदान' प्रेमचन्द का सर्वश्रेष्ठ उपन्यास है ।" इस उक्ति से आप कहाँ तक सहमत हैं ?

उत्तर : देखिये प्रश्न १३

प्रश्न ३१ "प्रेमचन्द ने आधुनिक जीवन की अधिक से अधिक समस्याओं और परिस्थितियो के चित्रण को अपनी कला का उपकरण बनाया ।" सिद्ध कीजिए ।

उत्तर देखिए प्रश्न ५ और १७

प्रश्न ३२ : "प्रेमचन्द 'गोदान' में विचारक के रूप में नहीं आते, वरन् यथार्थ का चित्रण करके विचारने का कार्य पाठको पर छोड देते हैं ।" इस कथन से आप कहाँ तक सहमत हैं ?

उत्तर देखिए प्रश्न १३ (विचार-उद्देश्य) ।

प्रश्न ३३ : प्रेमचन्द की कहानियो का विकास दिखाते हुए उनका वर्गीकरण कीजिए ।

उत्तर : देखिए प्रश्न १८

प्रश्न ३४ : "प्रेमचन्द : 'नाटककार के रूप में' पर संक्षिप्त निबंध लिखें ।

उत्तर : देखिए प्रश्न १९ (प्रेमचन्द के नाटक) ।

प्रश्न ३५ : "भाषा और लेखन-शैली की दृष्टि से प्रेमचन्द हिंदी के उपन्यास साहित्य और कहानी-साहित्य में एक विशिष्ट स्थान रखते हैं ।" इस कथन का समर्थन कीजिए ।

उत्तर : देखिए प्रश्न २१

प्रश्न ३६ : "जैसे शेक्सपियर सबसे सब कुछ लेकर भी शेक्सपियर रहे, उसी प्रकार प्रेमचन्द्र उर्दू, हिन्दी, बंगला, फारसी, अंग्रेजी सबसे ग्रहणीय बातो को लेते रहने पर भी वे अपने पहले के तथा समसामयिक सब हिंदी लेखको में सबसे अधिक मौलिक रहे ।" सिद्ध कीजिए । (१९५३ जनवरी)

उत्तर : देखिए प्रश्न ३ और ४

प्रश्न ३७ : "प्रेमचन्द ने हिंदी के कहानी साहित्य में एक नवयुग का प्रवर्तन किया।" सिद्ध कीजिए। (१९५३ नवम्बर)

उत्तर : देखिए प्रश्न १८

प्रश्न ३८ 'उपन्यासो के लिए पुस्तक से मसाला न लेकर जीवन ही से मसाला लेना चाहिए।' प्रेमचन्द जी के कथन की समीक्षा उनके कोई से दो उपन्यासो के आधार पर कीजिए। [१९५२]

उत्तर : देखिए प्रश्न तीन और चार।

प्रश्न ३९ . 'वास्तव में सच्चा आनन्द सुन्दर और सत्य से मिलता है। उसी आनन्द को दरसाना, वही आनन्द उत्पन्न करना साहित्य का उद्देश्य है।' प्रेमचन्द जी की यह उक्ति उनके अपने उपंयासो पर कहाँ तक चरितार्थ होती है ? १९५३, जून

उत्तर : देखिए प्रश्न २ का उत्तरार्ध। (सुंदर = आदर्श, सत्य। यथार्थ)।

प्रश्न ४० : 'साहित्य की सर्वोत्तम परिभाषा जीवन की आलोचना है।' क्या प्रेमचंद जी का साहित्य इस कसौटी पर खरा उतरता है ? १९५४, नवम्बर

उत्तर देखिए, प्रश्न ३ और ४

प्रश्न ४१ 'कर्मभूमि' हिंदुस्तान के स्वाधीनता आंदोलन की गहराई और प्रसार का उपयास है। इसमें प्रेमचंद जी का यथार्थ बुलंदी पर पहुंचा है।' 'कर्मभूमि' में वर्णित घटनाओं और पात्रों के चरित्रचित्रण के आधार पर इस कथन की समीक्षा कीजिए। १९५६, जून

उत्तर देखिए प्रश्न १२

प्रश्न ४२ : 'प्रेमचंद जी की कृति 'सेवासदन' विचार विवेचन और कला विवेचन की दृष्टि से कहाँ तक सफल रही है ? पात्रो के चरित्रचित्रण और घटनाओं के निर्वाह के आधार पर अपने उत्तर को प्रमाणित कीजिए। [१९५६, नववर]

उत्तर देखिए प्रश्न ६।

प्रश्न ४३ 'कोई कलाकार या तो यथर्थवादी हो सकता है या आदर्शवादी ही।' क्या आप [नंददुलारे वाजपेयी] इस उक्ति से सहमत हैं ? प्रेमचंद को आप यथार्थवादी कहेंगे या आदर्शवादी ? लेखक के ग्रंथो की ओर निर्देश कर उत्तर दीजिए। [१९५७, जून]

उत्तर : देखिए प्रश्न २ का उत्तरार्ध।

प्रश्न ४४ प्रेमचंद के किस उपन्यास को आप सर्वोत्कृष्ट समझते और क्यों ? [१९५७, नववर]

उत्तर गोदान प्रेमचंद का सर्वोत्कृष्ट उपन्यास है। (देखिए प्रश्न-२३।)

प्रश्न ४५ टिप्पणी लिखिए 'गोदान' का होरी किसानों का प्रतिनिधि है। [१९५७, नवंबर]

उत्तर : देखिए प्रश्न १३ (चरित्र चित्रण)।

षष्ठ पत्र

तैयार करने की विधि

इस पत्र मे निम्नलिखित विषयो का अङ्क-विभाजन इस प्रकार है—

(१)	निबन्ध	५० अङ्क
(२)	अनुच्छेदन लेखन	१० ”
(३)	सार-लेखन	१५ ”
(४)	भारतीय संस्कृति	२५ ”
		कुल १०० अङ्क

यह पत्र बाह्य रूप मे जितना सरल जान पड़ता है वास्तव मे उतना ही कठिन है। अत इसको तैयार करने के लिए विशेष सावधानी की आवश्यकता है। प्रस्तुत खण्ड मे विद्यार्थियो के लिये विवरणात्मक तथा साहित्यिक निबन्ध दिये गये है। उनको विद्यार्थी ध्यान मे पढें। निबन्ध के विषय मे दूसरी बात यह है कि विश्वविद्यालय ने अपनी प्रभाकर परीक्षा सम्बन्धी विवरण-पत्रिका मे स्पष्टतया लिखा है कि प्रभाकर के विद्यार्थी साहित्यिक एव विवरणात्मक निबन्ध ही तैयार करे। इसलिये सामाजिक अथवा साहित्यिक विषय का अध्ययन विद्यार्थी की सफलता के लिए सहायक सिद्ध हो सकता है।

अत हिन्दी भाषा के विकास, उन्नति, साहित्य आदि से सम्बन्धित विषय ही तैयार कर लेना विद्यार्थियो के हित की बात है।

विद्यार्थी को इस बात का विशेष ध्यान रखना चाहिए कि उसका निबन्ध अधिक विस्तृत नही होना चाहिए। ऐसा करने पर परीक्षा मे उसे अच्छे अक प्राप्त नही होगे। इसलिये विद्यार्थी अपने निबन्ध मे असगत बातो को स्थान न दे, अपितु अपने वाक्यो को ऐसे रखे कि वे विषय के तथ्य को लेकर इस प्रकार आगे बढे जैसे एक शृङ्खला की कड़ियाँ एक दूसरे से सम्बन्धित होती हुई भी शृङ्खला को विस्तार प्रदान करती है। विद्यार्थियो की यह भावना कि अधिक विस्तृत निबन्ध पर अधिक अङ्क मिलेंगे सर्वथा निर्मूल है। विषय-प्रतिपादन, भाषा का सरल रूप, सरल एव स्पष्ट वाक्य ही उत्तम निबन्ध के गुण है। उदाहरण के लिए यदि यह पूछता है कि 'राजनीति महिलाओं का

क्षेत्र नहीं', तो हमें महिलाओं का स्थान निश्चित करना होगा न कि नारी का जन्म किन परिस्थितियों में हुआ अथवा नारी-प्रादुर्भाव सम्बन्धी भावुकतापूर्ण अन्य अनुश्रुतियों का उल्लेख। इससे जहाँ छात्र विषयान्तर हो जाते है वहाँ उन्हें इस पत्र में अङ्क भी कम मिलने की सम्भावना रहती है। इसी प्रकार जब वह 'भारतीय युवकों पर सिनेमा के प्रभाव' पूछता है तो वहाँ सिनेमा का आरम्भ कब हुआ या उससे पूर्व पुतलियाँ नाचती थीं, आदि-आदि अनर्गल बातें लिख कर छात्रों को अपना समय नष्ट नहीं करना चाहिए। परीक्षक विस्तार की अपेक्षा तथ्य को अधिक देखता है। अतः किसी भी प्रस्ताव को आरम्भ, विस्तार और अन्त इन तीनों भागों में बाँट कर पहले में भूमिका, दूसरे में उसकी पुष्टि के लिए तर्क एवं उदाहरण और अन्त में विषय अनुसार निर्णय इतना ही पर्याप्त होगा।

अनुच्छेद-लेखन

इसके विषय में विद्यार्थी प्रस्तुत गाइड में यथा स्थान विस्तृत रूप में देखें। यहाँ इतना ही समझ लेना आवश्यक है कि अनुच्छेद में विस्तार के लिए सर्वथा स्थान नहीं होता। इसलिए विस्तृत उदाहरण एवं निर्देश के लिए कोई गुंजाइश नहीं रहती। विद्यार्थी को चाहिए कि सागर में सागर भरने की नीति को अपनाये।

प्रस्तुत गाइड में अनुच्छेद के गुण तथा लिखने की विधि आदि सब कुछ दिया गया है।

सार-लेखन

सार लेखन में विद्यार्थी को समास शैली का आश्रय लेना चाहिए। इसके लिए भी विद्यार्थी प्रस्तुत गाइड यथास्थान पूर्ण रूप से देखें। यहाँ एक उदाहरण ध्यानपूर्वक देखिये —

'विधान' शब्द से किसी 'विधि' अथवा 'रीति' का बोध होता है। राजनीति शास्त्र में किसी देश के शासन का स्वरूप और वहाँ की सरकार के अधिकार तथा कर्त्तव्यों के क्षेत्रों को निर्धारित करने के लिए एक निश्चित व्यवस्था या विधि होती है। सरकार के कर्त्तव्यों और अधिकारों की सीमा का

उल्लेख करने वाली यह लिखित अथवा अलिखित विधि ही शासन विधान कहलाती है। प्रत्येक देश का शासन विधान वहा की सस्कृति, प्रवृत्तियो तथा सामाजिक परिस्थितियो के सघर्ष का निष्कर्ष होता है, अत. उसमे समय, काल और देश के विचार से भिन्नता का होना कोई आश्चर्यजनक बात नही।"

(१) उपरोक्त गद्यांश के लिए उपयुक्त शीर्षक दीजिए।

(२) इन पक्तियो का भाव अपनी सरल भाषा मे अभिव्यक्त कीजिए।

(१) 'देश का विधान' या 'विधान'।

(२) सरकार और प्रजा के पारस्परिक कर्त्तव्यो एव अधिकारो की सीमा को निर्धारित करने वाली व्यवस्था का ही नाम विधान है। विधान 'लिखित' और 'अलिखित' दो रूपो मे होता है। विधान के निर्माण तथा परिवर्तन मे सम्बन्धित देश की सामाजिक परिस्थितियो तथा सांस्कृतिक प्रवृत्तियो के सघर्ष का पर्याप्त प्रभाव होता है।

सक्षेप मे यह बात ध्यान रखने योग्य है कि सार प्राय मूल अनुच्छेद का एक तिहाई होता है और शीर्षक के लिए सर्वदा अनुच्छेद मे वर्णित भाव को समझ लेना पर्याप्त है।

भारतीय सस्कृति —परीक्षा मे इस पुस्तक मे से २५ अक के दो प्रश्न पूछे जायेगे। विश्वविद्यालय द्वारा निर्धारित पाठ्यक्रम के अनुसार इसमे से दस-बारह प्रश्न ही सभव है। वे सभी प्रश्न प्रस्तुत गाइड मे दिए गए है। विद्यार्थियो को इन प्रश्नो को भली भाँति याद कर लेना चाहिए।

विश्वविद्यालय द्वारा निर्धारित पाठ्यक्रम —(१) वैदिक युग की सस्कृति तथा साहित्य। (२) रामायण महाभारत कालीन सभ्यता (३) पौराणिक युग (४) बुद्धमत, जैनमत। (५) जाति पाँति से लाभ–हानियाँ, षड्दर्शन। (६) गुप्तकालीन सस्कृति, साहित्य, विज्ञान। (७) राजपूत सस्कृति (८) मध्यकाल कला, राजनीति, शिक्षा की रूपरेखा। (९) विदेश मे भारतीय सस्कृति का प्रसार। (१०) हिन्दू धर्म और इस्लाम। (११) भारतीय सस्कृति की मुख्य विशेषताये।

निबन्ध और रचना

निबन्ध का उद्भव और विकास

निबन्ध का महत्व—"गद्य' कवीनां निकष वदन्ति" के अनुसार गद्य लेखको की कसौटी है और निबन्ध गद्य-लेखको की कसौटी है। आज के युग मे निबन्ध-लेखको का बडा भारी महत्व माना गया है। क्या शिक्षा और क्या राजनीति सभी क्षेत्रो मे ही इसका मूल्य वढा हुआ है। अपने विचारो की अभिव्यक्ति के लिए कौन है, जो छटपटाता नही ? इन विचारो को प्रकाशित करने की प्रवल भावना निबध को जन्म देती है। जीवन का कोई ऐसा भाग भी नही पाया जाता जिसमे निबन्ध की आवश्यकता अनुभव न की जाती हो। विशेषतया परीक्षाओ मे तो निबन्धो की सफलता दूसरे पत्रो की सफलता को सहल बना देती है क्योकि

(१) इसके द्वारा हमे अपने विचारो को प्रकाशित करने का ढग आता है।

(२) इसके द्वारा विचारो मे क्रमवद्धता आती है।

(३) इसके द्वारा लिखने की कला का विकास होता है।

(४) इसके द्वारा शैली का परिमार्जन होता है।

(५) इसके द्वारा मानव के विचारो को अमरता प्राप्त होती है।

(६) सबसे वढकर इसके सतत अभ्यास के द्वारा परीक्षा मे सफलता निश्चित हो जाती है।

जव इसका इतना व्यापक महत्व है, तो यह आवश्यक हो जाता है कि हम यह जानें कि निबन्ध है क्या ? उसके कौन-कौन से अग हैं ? उसके कितने भेद है ? और उसमे कैसे सफलता मिल सकती है ? नीचे की पक्तियो मे इन सभी वातो पर सक्षेप मे प्रकाश डाला जाता है।

निबन्ध क्या है ?—प्रबन्ध, निबन्ध अथवा प्रस्ताव विल्कुल पारिभाषिक शब्द ही हैं। व्युत्पत्ति के आधार पर ये शब्द भिन्न होते हुए भी कार्य-

क्षेत्र मे समान ही हैं। किसी विचार को जब प्रकर्षेण (प्र) अच्छी प्रकार बाँधा जाता है, तो उसे 'प्रबन्ध' कहते हैं। किसी विचार को जब नि शेष (नि)—पूरी तरह, मजबूती से बाँधा जाता है, तो उसे हम निबन्ध कहने लगते हैं। प्रस्ताव मे विशेष विचार को प्रस्तुत किया जाता है। यहां तक कि अंग्रेजी मे भी, जहाँ इसे ऐसे (Essay) के नाम मे पुकारते हैं, उसका अर्थ भी यही है कि प्रयास और प्रयत्न। इस प्रकार निबन्ध एक ऐसी कला है, जिसमे कि अपने विचारो को विशेष रूप से एक सूत्र मे बाँधने का प्रयास होता है।

निबन्ध एक प्रकार की ऐसी गद्य-रचना है जिसमें किसी विषय से सम्बन्ध रखने वाले कुछ प्रमुख ज्ञात और ज्ञातव्य तथ्यो का संकलन उसकी बौद्धिक प्रतिपत्ति के लिए किया जाता है। ज्ञातव्य तथ्यों के निर्देश मे लेखक के विशिष्ट दृष्टिकोण का प्रधान अंश रहता है और बौद्धिक प्रतिपत्ति में यथा-शक्ति सुग्राह्यता का गुण अभीप्सित होता है, यद्यपि 'सुग्राह्यता' सापेक्ष वस्तु है और उसकी अपेक्षा पाठको की विभिन्न कोटियो के साथ निर्धारित होती है। उदाहरणार्थ, एक अनुभवी या विशेषतया शिक्षित व्यक्ति को जो-जो विषय और तर्क सुग्राह्य हो सकते हैं, वे एक अनुभव-विहीन और कम शिक्षित व्यक्ति को उतने सुग्राह्य कदापि नहीं हो सकते।

'निबन्ध' क्या है ? इस विषय में कुछ अन्य लेखकों की परिभाषाओ को देखना आवश्यक होगा।

निबन्ध और अन्य लेखक—'निबन्ध' की प्रारम्भिक परिभाषाओ में डा० जानसन की दी हुई परिभाषा का विशेष रूप से उल्लेख किया जाता है जानसन ने 'निबन्ध' को मन की एक स्वच्छन्द, स्फोट-वृत्ति (a loose sally of the mind) के रूप मे लक्षित करके निबन्ध-रचना को एक अनियमित, अव्यवस्थित, विचारो की दृष्टि मे अपरिपक्व और अनिर्दिष्ट (an irregular, undigested, not a regular and orderly performance) कहकर व्याख्यात किया है। निस्सन्देह इस व्याख्या सार्वजनीनता, लोकप्रियता का ही लक्ष्य है और व्यवहार की परिमिति की अवहेलना है। यह व्याख्या निबन्ध पर वैसी लागू न होकर आजकल 'गद्य काव्य' कहलाई जाने वाली रचनाओ पर ही शायद अधिक चरिता

होगी। एडिसन आदि के आरम्भिक निबन्धो मे भी इतनी अव्यावहारिकता, ऐसी अनिर्दिष्टता नही थी, जैसी इस व्याख्या मे अभिप्रेत मालूम होती है, और हम देखते हैं कि निबन्ध-विकास के इतिहास मे जानसन की व्याख्या के होते हुए भी धीरे-धीरे दृष्टिकोण की निर्दिष्टता की ओर ही अधिक प्रगति दिखाई दी है।

"आधुनिक पाश्चात्य लक्षणो के अनुसार निबन्ध उसी को कहना चाहिए, जिसमे व्यक्तित्व अर्थात् व्यक्तिगत विशेषता हो।" (श्री रामचन्द्र शुक्ल)

"निबन्ध उसे कहते हैं जिसमे किसी भी विषय पर विचारो का परिमार्जित स्पष्टीकरण लेखक ने किया हो।" (द्विवेदी)

"निबन्ध लिखना अभ्यास से आता है। निबन्ध लेखक के ज्ञान की कसौटी है।··· 'निबन्ध शब्द का अर्थ है 'बँधा हुआ।' ···निबन्ध के विषय की सीमा नही है। आकाश-कुसुम से लेकर चीटी तक निबन्ध का विषय होता है।

"निबन्ध उस गद्य-रचना को कहते हैं, जिसमे एक सीमित आकार के भीतर किसी विषय का वर्णन और प्रतिपादन एक विशेष निजीपन, स्वच्छन्दता, सौष्ठव और सजीवता तथा आवश्यक सगति एवं सम्बद्धता के साथ किया गया हो।" (श्री गुलाबराय)

"निबन्ध उसे कहते हैं, जिसमे किसी गहन विषय पर विस्तार और पाण्डित्यपूर्वक विचार किया जाता है।" (श्री श्यामसुन्दरदास)

निबन्ध के प्रमुख अंग—प्रबन्ध के मुख्यतया तीन भाग होते हैं।

(क) भूमिका अथवा प्रस्तावना भाग।

(ख) विवेचना अथवा मध्य भाग।

(ग) उपसहार अथवा परिणाम भाग।

(क) **भूमिका**—निबन्ध रूपी शरीर मे भूमिका उसका शीर्ष है। जिस प्रकार किसी के सिर से ही उसके सम्पूर्ण शरीर का संतुलन रहता है, उसी प्रकार ही इसी भूमिका भाग पर ही सारा निबन्ध सतुलित रहता है। इस लिए प्रस्तावना के लिखते समय विशेष ध्यान देने की आवश्यकता है। भूमिका प्रबन्ध का आवश्यक अङ्ग तो है, पर ध्यान रखना चाहिए कि यह बडी नही हो। प्रस्तावना तो निबन्ध-रचना रूपी रमणी के मस्तिष्क की बिन्दी है। अतः

इसका अधिक महत्त्व है। रहा प्रश्न कि इसे प्रारम्भ कैसे किया जाय, तो समय और परिस्थिति के अनुसार इसे अलग-अलग ढग से प्रकाशित करने की शैली है। फिर भी इसे प्रकट करने के चार प्रकार प्रसिद्ध है :—

(क) किसी लेखक की उक्ति तथा दोहे के द्वारा।

(ख) किसी कहानी अथवा उदाहरण के द्वारा।

(ग) किसी समस्या अथवा सिद्धान्तो के प्रतिपादन के द्वारा।

(घ) सीधा विषय लेकर।

जैसा कि ऊपर बताया गया है कि प्रस्तावना ही किसी निबन्ध की जान है, अत वह आकर्षक, सन्तुलित, सुन्दर और भावयुक्त हो, जिसे पढते ही पाठक की रुचि का परिष्कार होता चले।

(ख) प्रसार अथवा मध्य—यह भाग किसी निबन्ध का महत्त्वपूर्ण अङ्ग होता है। इसमे एक चित्रकार अपनी तूलिका से रग भरता है। इसीलिए लेखक को इस बात का विशेष ध्यान रखना चाहिए कि इसमे न तो कोई गौण बात ही आये और न ही कोई आवश्यक बात छूटने पाये। इस विश्लेषण मे इस बात का ध्यान रखना चाहिए कि आपका विषय कही ऐतिहासिक और वैज्ञानिक सिद्धान्तो का प्रतिपादक न हो जाये। इसमें आप पाठक की रुचि का जितना ही परिष्कार करते चले जायेंगे आपका निबन्ध उतना ही सुन्दर और प्रभावपूर्ण होता जायेगा।

(ग) उपसहार अथवा परिणाम—यह निबन्ध का अन्तिम अंश होता है। प्रस्तावना के समान ही यह भी प्रभावोत्पादक तथा आकर्षक होना चाहिए। इसके लिखने मे इस बात का ध्यान देना चाहिए कि ऊपर जो कुछ भी आपने कहा है, इसमें उसका सार दे दीजिए। इसके अन्त करने के अनेक प्रकार होते हैं। कभी तो भूमिका के शब्दो को ही दोहरा दिया जाता है, कभी उपदेशात्मक प्रवृत्ति का आश्रय लिया जाता है, कभी एक प्रश्नात्मक रहस्य का आश्रय लिया जाता है, कभी-कभी कुछ पाठक के सोचने के लिए छोडकर ही लेखक अपने निबन्ध को समाप्त कर देता है और इस प्रकार उसे सोचने का अवसर प्राप्त होता है। यह शैली कुतूहल-प्रधान शैली कहलाती है। विद्यार्थी के लिए यह विशेष सकेत है कि वह निबन्ध के अन्त मे ऐसी कोई बात न

लिखे, जो कि परीक्षक के हृदय पर बुरा प्रभाव छोड़े और न ही किसी प्रकार का दबाव परीक्षक पर डाले।

निबन्धों के प्रकार—विषय की दृष्टि से निबन्ध का क्षेत्र असीमित है। उस में विश्व के सकल तत्त्वों, भावनाओ, वस्तुओ और क्रिया-प्रतिक्रियाओ का विवेचन हो सकता है। हिन्दी मे विषयो के वैविध्य के लिए भारतेन्दु युग सबसे आगे है। द्विवेदी युग मे इतिवृत्तात्मक दृष्टिकोण होने के कारण विषयों मे वह मनमौजीपन, आकर्षण और विविधता नही मिलती जो भारतेन्दु युग मे थी। इसी विषय-वैविध्य को ध्यानगत करते हुए विद्वानो ने इस के चार भेद किये हैं—

(१) वर्णनात्मक निबंध (Descriptive essays),

(२) विवरणात्मक निबध (Narrative essays),

(३) विचारात्मक निबध (Reflective essays), इन्हें विवेचनात्मक निबध भी कहते हैं।

(४) भावात्मक निबध (Emotional essays)।

निबधो के क्षेत्र के नि सीम होने के कारण उनके उपर्युक्त चार प्रकारो को सर्वसम्मत नही कहा जा सकता। क्योंकि इनके और भी भेदोपभेद किये जा सकते हैं, जैसे—विश्लेषणात्मक निबध (Expository essays) या विवादात्मक निबध (Argumentative essays) आदि। किन्तु यदि तात्विक दृष्टि से देखा जाय तो इन भेदो को बडी आसानी से निबध के उपर्युक्त चारों प्रकारो मे अन्तर्भूत किया जा सकता है।

उपर्युक्त चारो भेदो मे से वर्णनात्मक का सम्बध अधिकतर देश से, विवरणात्मक का काल से, विचारात्मक का तर्क (मस्तिष्क) से तथा भावात्मक का हृदय से होता है। यद्यपि काव्य के चारों तत्त्व कल्पना, राग, बुद्धि और शैली, सभी प्रकार के निबधो मे अनिवार्य होते हैं। तथापि विवरणात्मक एवं वर्णनात्मक निबन्धो में कल्पनातत्त्व का प्राचुर्य रहता है। विचारात्मक निबधो मे बुद्धितत्त्व एव भावात्मक निबन्धों मे रागतत्त्व का प्राधान्य रहता है। शैली तत्त्व चारों मे समानरूप से विद्यमान रहता है।

वर्णनात्मक निबन्ध—इनमे प्राकृतिक उपकरणो तथा भौतिक पदार्थों को स्थिर रूप मे देखकर वर्णन किया जाता है। इनका सम्बन्ध प्रायः देश से होता

है। इनकी वर्णन-शैली व्यास-शैली कहलाती है जिसमें वर्ण्य-विषय का विस्तृत विवेचन होता है। उदाहरण देखिए—

"निर्मल वेत्रवती पर्वत को विदार कर बहती है और पत्थरो की चट्टानो से समभूमि पर, जो स्वयं पथरीली है, गिरती है, जिससे एक विशेष आनन्द-दायक वाद्यनाद मीलो से कर्ण-कुहर मे प्रवेश करता है और जल-कण उड़-उड़ कर मुक्ताहार की छवि दिखाते और रवि-किरण के सयोग से सैकड़ो इन्द्रधनुष बनाते हैं।" (कृष्णबलदेव वर्मा)

ठा० जगमोहनसिंह का 'श्यामा-स्वप्न' तथा मिश्र-बन्धुओ का "रूसी जापानी युद्ध" ऐसे ही निबन्ध हैं।

विवरणात्मक निबन्ध—इनका सम्बन्ध अधिकाश मे काल से है। इनमे वस्तु को उसके स्थिर रूप मे न देखकर उसके गतिशील रूप में देखा जाता है। शिकार, पर्वतारोहण, दुर्गम प्रदेश की यात्रा, साहसपूर्ण कृत्य आदि का वर्णन इन निबन्धो का वर्ण्य-विषय रहता है। वर्णनात्मक निबन्धो के समान इनमे भी व्यास-शैली का प्रयोग किया जाता है। जैसे—

"वे दोनों टौरिया की दिशा मे चली। टौरिया के नीचे पहुच कर देखा तो टौरिया को इतनी उलझी हुई झाड़ी से भरा हुआ पाया कि उसमे लेट कर जाने की गुंजाइश न थी। उनको विश्वास था कि टौरिया के ऊपर से आहट नही आई, बल्कि पीछे या बगल से। भूमि ऊची नीची थी और घास कुछ अधिक ऊची। कही नाहर पड़ा हो और उछल कर सिर पर आ धमके, भालू किसी अदृष्ट झाडी मे से झपटकर गले से आ चिपके, सुअर सपाटा भर कर घुटने तोड दे और जांघ फाड डाले और यदि कहीं किसी अगोचर झाडी के पीछे एक ही अरना हुआ और छाती पर आ टूटा—तो क्या होगा ?"

("मृगनयनी"—वृन्दावनलाल वर्मा)

विचारात्मक या विवेचनात्मक निबन्ध—इनमे बौद्धिक विवेचन की प्रधानता रहती है। दार्शनिक, आध्यात्मिक, मनोवैज्ञानिक आदि की विवेचना इन मे होती है। ऐसे निबन्धो की सृष्टि के लिए गम्भीर अध्ययन, मनन एवं अनुभवो की आवश्यकता है। आचार्य शुक्ल के शब्दो मे—"शुद्ध विचारात्मक ही कहा जा सकता है, जहाँ एक-एक पैराग्राफ मे

विचार दबा-दबा कर ठूस से गये हों और एक-एक वाक्य किसी सम्बद्ध विचार-खंड को लिये हुए हो। ऐसे निबन्धो मे तर्क के साथ-साथ भावना का भी कभी-कभी सम्मिश्रण रहता है। इमर्सन तथा कार्लाइल आदि जगद्विख्यात निबन्ध-लेखको के निबन्धो मे इसी प्रकार का बौद्धिक एव आध्यात्मिक विवेचन रहता है। हमारे यहाँ आचार्य रामचन्द्र शुक्ल, डा० श्यामसुन्दर दास, जैनेन्द्रकुमार आदि ने बहुत ऊचे विचारात्मक निबन्ध लिखे है।

विचारात्मक निबन्ध व्यास-शैली के अतिरिक्त समास-शैली में भी लिखे जाते हैं। समास का अर्थ है सक्षेप। इसीलिए इसमे सक्षिप्तता को अधिक महत्त्व दिया जाता है। इस शैली मे थोडे शब्दो द्वारा अधिक से अधिक विचार व्यक्त करने का प्रयत्न किया जाता है। महावीरप्रसाद द्विवेदी के निबन्ध, अधिकांश मे, व्यास-शैली मे लिखे गये हैं और आचार्य शुक्ल के निबन्धो में समास शैली का आधिक्य है। जैसे—

व्यास शैली में—"कविता मे कुछ न कुछ झूठ का अ श जरूर रहता है। असभ्य अथवा अर्ध-सभ्य लोगो को यह अ श कम खटकता है। शिक्षित और सभ्य लोगो को बहुत। तुलसीदास की रामायण के खास-खास स्थलो का स्त्रियों पर जितना प्रभाव पडता है, उतना, पढे-लिखे आदमियो पर नही। पुराने काव्यो को पढने से लोगो का चित्त जितना पहले आकृष्ट होता था उतना अब नही होता।" (महावीरप्रसाद द्विवेदी)

समास शैली में—"विशिष्ट वस्तु या व्यक्ति के प्रति होने पर लोभ वह सात्विक रूप प्राप्त करता है जिसे प्रीति या प्रेम कहते हैं। जहा लोभ सामान्य या जाति के प्रति होता है वहाँ वह लोभ ही रहता है; पर जहा किसी जाति के एक ही विशेष व्यक्ति के प्रति होता है वहाँ वह 'रुचि' या 'प्रीति' का पद प्राप्त करता है। लोभ सामान्योन्मुख होता है और प्रेम विशेषोन्मुख। कही कोई अच्छी चीज सुनकर दौड पडना लोभ है। किसी विशेष वस्तु पर इस प्रकार मुग्ध रहना कि उससे कितनी ही अच्छी-अच्छी वस्तुओ के सामने आने पर भी उस विशेष वस्तु से प्रवृत्ति न हटे, रुचि या प्रेम है।" (रामचन्द्र शुक्ल)

विचारात्मक निबन्धो के आलोचनात्मक, गवेषणात्मक, विवेचनात्मक आदि कितने ही भेद होते हैं।

भावात्मक निबन्ध—इन निबन्धो का सम्बन्ध हृदय से है। इनमे बुद्धितत्त्व की अपेक्षा भावतत्त्व का प्राधान्य रहता है, इसी कारण इनमें रागात्मकता भी अधिक रहती है। इनमे रागात्मकता का प्राचुर्य होने से कवित्वपूर्ण उद्गार एव शैली का सौन्दर्य प्रस्फुटित हो जाता है। भावात्मक निबन्धो में एक विशेष सजीवता, तडप और हार्दिक सौन्दर्य विद्यमान रहता है।

इनमे प्राय. तीन प्रकार की शैलियो का प्रयोग किया जाता है— धारा-शैली, तरग शैली और विक्षेप शैली। इस सम्बन्ध मे बाबू गुलाबराय का कथन है—"धारा शैली मे भावो की धारा प्रवाहमय रहकर प्राय. एक गति से चलती है। किन्तु तरग शैली मे वे भाव लहराते हुए से प्रतीत होते हैं, तरग की भाति वे उठते और गिरते प्रतीत होते हैं। विक्षेप शैली मे वह कुछ-कुछ उखडी हुई रहती है, उसमे तारतम्य और नियन्त्रण का अभाव रहता है।"

धारा शैली का उदाहरण—"जो धीर हैं, जो उद्वेग रहित हैं, वही संसार मे कुछ कर सकते हैं। जो लोहे की चादर की भाति जरा ही मे गर्म हो जाते हैं और जरा ही में ठडे पड जाते हैं, उनके किये क्या हो सकता है? मसल है—जो बादल गरजते हैं, वे बरसते नही।"

तरग शैली में—"मैं तुम्हारी एक तस्वीर खीचना चाहता हूँ। मेरी कल्पना की जीभ को लिखने दो, कलम की जीभ को बोल लेने दो। किन्तु हृदय और मसिपात्र दोनो तो काले हैं। तब मेरा प्रयत्न, चातुर्य का अर्थ विराम, अल्हडता का अभिराम, केवल श्याम मात्र होगा।" (माखनलाल चतुर्वेदी)

विक्षेप शैली में—"आज भी उन सफेद पत्थरो से आवाज आती है—मैं भूला नहीं हूँ। आज भी उन पत्थरो से न जाने किस मार्ग से होती हुई पानी की एक बूंद प्रतिवर्ष उस सुन्दर सम्राज्ञी की कब्र पर टपक पडती है, वे कठोर निर्जीव पत्थर भी प्रतिवर्ष उस सम्राज्ञी की मृत्यु की याद मनुष्य की उस करुण कथा के इस दु:खान्त को देखकर पिघल जाते हैं और उन पत्थरो मे से अनजाने एक आंसू ढुलक पडता है।"

(महाराज कुमार रघुवीरसिंह)

२ साहित्य और समाज

कलायें दो प्रकार की मानी गई हैं—एक ललित कलाएं, दूसरी उपयोगी कलाएं। ललित कलाओं की विशेषता यह है कि उनसे उपयोग की अपेक्षा हृदय मे आनन्द-प्राप्ति प्रधान रूप से होती है और उपयोगी कलाये आनन्द-प्राप्ति की अपेक्षा व्यावहारिक जीवन के उपयोग म ही अधिक आती हैं। साहित्य को ललित कलाओ मे गिना जाता है अत. इसका प्रयोजन भी स्पष्ट है कि इसके द्वारा आनन्द प्राप्ति ही होती है, किन्तु इससे किसी और प्रकार का व्यावहारिक लाभ प्राप्त नहीं किया जा सकता। किन्तु मानव-जीवन की श्रेष्ठता ने इस प्रश्न को उठाया है कि जब विधाता की समस्त सृष्टि मे सारे पदार्थ मानव-समाज की सेवा करने और उसके उपयोग की वस्तु हैं, तो साहित्य को भी उसी मे क्यों न सम्मिलित कर लिया जाये ? यह भी कोई बात है कि साहित्य मे केवल मन बहलाने और अपनी मस्ती मे मस्त रहने का तत्व तो पाया जाये, किन्तु यथासमय समाज-सुधार या समाज-निर्माण का कार्य वह न कर सके। यद्यपि इस विषय पर दो सम्प्रदाय हो गये—एक का दृष्टिकोण साहित्य के क्षेत्र को केवल मनोरंजन तक ही सीमित करने का रहा, और दूसरे को समाज-सेवा भी स्वीकार्य हुई, किन्तु वस्तुतः ये दो विरोधी या भिन्न बातें नही हैं। अंग्रेजी कवि कीट्स ने अत्यन्त ही मार्मिक शब्दों मे कहा है कि—

Truth is Beauty, Beauty Truth.

अर्थात् सत्य ही सुन्दर है तथा सुन्दर ही सत्य है। वस्तुत. जो वस्तु सच्ची नही है, उसे पूरी तरह सुन्दर नही कहा जा सकता। जो आज तो सुन्दर है परन्तु कुछ काल के पश्चात् वह सुन्दर नहीं रहती, उसे सुन्दर कहना झूठ है। सौन्दर्य सच्चा होना चाहिये, जो किसी काल और देश के अन्तर से भी फीका न पड़े। इसलिये सत्य का नाम ही सुन्दर है। इसी प्रकार जो वस्तु असुन्दर है उसे कभी अच्छा नही कहा जा सकता। मानव मन के लिए सुन्दर वस्तु ही उसके लिए सच्ची वस्तु है क्योंकि मानव सौन्दर्य का इच्छुक है और सौन्दर्य उसे सच्चा आनद प्रदान करता है। जिस जीवन में सुन्दर की

भावना नहीं, वह जीवन नीरस और शुष्क है और जिस जीवन मे सत्य नहीं, वह जीवन सुन्दर नहीं कहला सकता । इसीलिए अंग्रेज कवि ने सत्य और सुन्दर को अभिन्न माना है । सत्य के विना सुन्दर खोखला है, असार है, किसी अंश तक भयानक भी है और सुन्दर के विना सत्य नीरस, अप्रिय और निर्जीव है। इससे यह सिद्ध होता है कि सुन्दर वस्तु सुन्दर होते हुए सत्य भी है और सत्य वस्तु सत्य होते हुए सुन्दर भी । यदि साहित्य को केवल जीवन-सौन्दर्य से पूर्ण मान लिया जाये तब भी उसमे जीवन-सत्य का होना माना जायेगा । अत. साहित्य अपने महत्व को और अपनी सीमा को न छोडता हुआ भी समाज के जीवन के उत्तरदायित्व के प्रति कभी उपेक्षामय नहीं हो सकता ।

विद्वान् प्राय कहा करते हैं कि 'साहित्य समाज का दर्पण है'—

Literature is the mirror of the society

और साहित्य जीवन का निर्माता और पथ-प्रदर्शक है, वह जीवन की व्याख्या करता है, उसे आदर्श और उन्नत बनाने का प्रयत्न करता है । मैथ्यू आर्नल्ड ने भी यही कहा है कि 'काव्य जीवन की सच्ची समालोचना है ।'

The Poetry is a true criticism of life.

किन्तु दोनो मत ऐकांतिक प्रतीत होते हैं । इनमे एक समझौते का मार्ग निकल सकता है कि 'साहित्य समाज का प्रतिनिधि या दर्पण भी है और उसका निर्माता या पथ-प्रदर्शक भी ।'

यदि साहित्य समाज का केवल दर्पण ही रहे, तो उसकी रचना समाज का विशेष कल्याण नहीं कर सकती । दर्पण का काम होता है जैसा आकार हो, उसका ठीक वैसा प्रतिविम्ब दिखा दे । यदि समाज बुराइयो का घर है तो उसके दर्पण साहित्य मे भी बुराइयो की झलक अवश्य होनी चाहिए । यदि समाज मे निराशा और दुर्बलता की भावनाएं विद्यमान हैं, तो साहित्य में भी वही कुछ होना चाहिए । किन्तु ऐसा होने से तो समाज का सुधार होने के स्थान पर उलटा अकल्याण होगा । आजकल समाज में नैतिकता का पतन पराकाष्ठा तक पहुँचा हुआ है । विद्वेष, छल, कपट, ईर्ष्या, घृणा आदि के भावो से समाज के शरीर में से दुर्गन्ध आ रही है, ऐसी स्थिति मे यदि उसके

दर्पण साहित्य मे से भी वही दुर्गन्ध आती रही, तो कोई उसे सत्साहित्य नही कह सकता।" इसलिए साहित्य को समाज का केवल प्रतिनिधि नही बनना चाहिए, उसे समाज का निर्माण और पथ-प्रदर्शन भी करना चाहिये। जब तक तो समाज मे सुख-शान्ति का राज्य है, नैतिक आदर्श और धर्म का बोल-बाला है, उस स्थिति मे तो साहित्य भले ही उसका दर्पण बने, परन्तु जब उसका पतनकाल हो, निराशा और मौत की छाया उस पर पड़ रही हो, वह नि शक्त और निर्जीव हो, उस समय साहित्य को नि शक्त और निर्जीव नही बने रहना चाहिए। प्रत्युत उसे शक्ति, जीवन, आशा और उन्नति का उपदेश देना चाहिए। सच्चा साहित्य सदा ही अपने समाज के उत्थान मे प्रयत्नशील रहता है। साहित्य ने व्यक्ति का, जाति का, समाज और राष्ट्र का निर्माण किया है, उनमे क्रान्तियाँ उत्पन्न करके उनका रूप ही बदल दिया है। साहित्य की यह अमोघ शक्ति और व्यापक प्रभाव सर्वविदित है। विहारी के एक ही दोहे ने विलास के सागर मे डूबे हुए महाराज जयसिंह को वासना के गन्दे कीचड से निकालकर कर्तव्योन्मुख कर दिया था।

नहिं पराग नहिं मधुर मधु, नहिं विकास यहि काल।
अली कली ही सो बंध्यौ, आगे कौन हवाल॥

भूषण की वीर रस से भरी ओजस्विनी कविता ने मुर्दा मरहठो मे प्राण फूक दिये थे। शिवाजी की तलवार के साथ भूषण की लेखनी भी जब मिल गई, तभी अत्याचार और अन्याय का मुह फेर कर रख दिया गया। शिवाजी की विजय मे भूषण का गहरा हाथ रहा था। इसी प्रकार हिन्दू-समाज मे शक्ति सचार करने का श्रेय तुलसी के 'रामचरितमानस' को दिया जा सकता है। जब यवनो के अत्याचारो से भयभीत निराश्रय हिन्दू जीवन-रक्षा के प्रयत्नों से निराश हो चुके थे, निर्जीव और नि शक्त हिन्दू समाज मे हिलने तक की क्षमता न रही थी, उसी समय, धनुर्धारी राम का आदर्श सामने रखकर तुलसी ने घने अन्धकार में आशा की जीवन-ज्योति दिखलाई। विपत्तियो से अकेले लड़ने वाले नि सहाय किन्तु दृढव्रती और न्यायपथ के वीर पथिक भगवान् राम का जीवन देखकर हिन्दू-समाज के ककाल मे जान आई और आज यह निःसंदेह कहा जा सकता है कि जब तक तुलसी का 'रामचरित मानस' रहेगा

हिंदू समाज का ह्रास भले ही हो, उसका नाश कभी नहीं हो सकता। रूसो के साहित्य ने तो फ्रांस मे राज्य-क्रांति कराकर साहित्य की अतुल शक्ति का ज्वलत उदाहरण रख दिया है। मेजिनी के साहित्य ने भी इटली के राष्ट्रीय जीवन मे जो परिवर्तन किए, वे भी कम महत्वपूर्ण नही थे। रूस मे जो समाजवादी क्रांति हुई, उसमे भी मार्क्स और मार्क्सवादी साहित्य का ही हाथ समझना चाहिए।

जिस प्रकार शरीर के लिए भोजन की आवश्यकता रहती है; उसी प्रकार मानव मस्तिष्क को भी सदैव स्वस्थ रखने के लिए साहित्य रूपी भोजन की आवश्यकता है। बिना भोजन जैसे शरीर नि.शक्त और अन्त मे निर्जीव हो जाता है, ठीक उसी प्रकार बिना साहित्य के मानवीय मस्तिष्क भी बेकार हो जाता है। अच्छे साहित्य के सेवन से मस्तिष्क अच्छा बनता है, अच्छे मस्तिष्क में अच्छे विचार उत्पन्न होते हैं और अच्छे विचारो से व्यक्ति अच्छा बनता है और अच्छे व्यक्ति ही तो अच्छा समाज बनाते हैं। अत' यदि समाज को उन्नत और महान् बनाना ही अभीष्ट है, तो व्यक्तियो को उन्नत बनाना होगा। व्यक्तियो की उन्नति सदैव उदात्त विचारो पर आधारित रहती है। अच्छे विचार अच्छे मस्तिष्क मे से ही निकल सकते हैं और अच्छे मस्तिष्क का आधार अच्छा साहित्य होता है। गदे भोजन से शरीर रुग्ण हो जाता है, अत. यदि साहित्य अच्छा न होगा तो वह मस्तिष्क को खराब करेगा, जिससे गन्दे विचार उत्पन्न होगे और व्यक्तियो का नैतिक स्तर निम्न होने से समाज का पतन स्वाभाविक है। इससे सिद्ध होता है कि साहित्य के अन्दर महान् शक्ति छिपी हुई है। वह समाज के उत्थान और पतन दोनो का उत्तरदायी है।

महान् कलाकार अपनी रचनाओं में सत्य सदेश इसी उद्देश्य से रखते हैं कि पाठको को आनन्द प्राप्ति के साथ-साथ उनके जीवन का भी उत्थान हो सके। साहित्य मे विशेषता यह है कि उनका उपदेश सरल होता है, अतः उसका प्रभाव भी शीघ्र पडता है। साहित्य में सजीवनी शक्ति होती है, जो मुर्दो को जीवित कर देती है। परन्तु आदर्श कल्पना के साथ वह यथार्थ चित्रण को भी नहीं भूलता। साहित्य समाज का प्रतिनिधि और दर्पण भी होता है।

आवेष्टन का प्रभाव जब जड वस्तुओ पर पडता है तो कवि जैसा सवेदनशील प्राणी भला उससे कैसे बच सकता है। बसत की मधुर ऋतु मे फूल भी मुस्करा पडते हैं किन्तु ग्रीष्म की कडी धूप में उनका मुख कुम्हला जाता है। कवि अपने चारो ओर के, वातावरण से प्रभावित होकर साहित्य की रचना करता है। समाज यदि दु ख की ज्वाला मे जल रहा हो, तो उसका कवि हर्ष के गाने नही गा सकता . उसे भी देश के सुख और दु ख का साथी बनना पडता है। सजीव मनुष्यो की तो बात ही क्या, वह जड प्रकृति को देख कर भी कभी हसता और कभी रोता रहता है। शबनम के आँसू देख कर उसे खेद होता है और कुचली हुई कली को देख कर उसकी छाती फट जाती है। इसलिए जब वह मृग का वर्णन करता है तो मृगनयनी को कैसे भूल सकता है। शबनम का चित्र लेने वाला कवि अबला के आसुओ की उपेक्षा नही करता। ठडी हवाओ के झोको मे दु खियो की ठडी आहे भी उसे याद रहती है। सच्चा कवि अपने समाज की कथा को अपनी वाणी द्वारा मुखरित करता है। इस-लिए कवि की आत्मा विश्वात्मा कही जाती है। कवि का हृदय विश्व का हृदय और कवि की वाणी विश्व की वाणी बन जाती है। कवि की आप-बीती मे भी जग-बीती छिपी रहती है। विश्व के महान् साहित्यकारो ने अपनी रचनाओ मे अपने ही भाव अकित नही किये, अपितु अपने समय के समाज की मु हबोलती तस्वीर खीची है। गोर्की और प्रेमचन्द अपने समाज के सच्चे प्रतिनिधि थे।

यह साहित्य ही है जिसमे समाज का उत्थान, पतन सभी कुछ देखा जा सकता है। किसी भी देश या जाति का वृत्तान्त जानने के लिए उस देश की साहित्यिक रचनाओ को पढ लेना चाहिए। जिस जाति का साहित्य आध्या-त्मिक भावनाओ से भरा हुआ है, वह जाति भी धर्मात्मा होगी। वैदिक काल मे जब आर्यो का समाज यज्ञादि कर्मकाण्ड मे लीन रह कर प्रकृति के उपकरणों में देव भावना का आरोप कर रहा था, उस समय वेदो का साहित्य रचा गया, जिसमे अग्नि, जल, वायु आदि देवताओ को आहुति द्वारा प्रसन्न करने के विविध मत्र दिए गए। धीरे-धीरे जब समाज मे गम्भीर चिंतन की रुचि जागने लगी और वे भावुकता से तर्कशीलता की ओर जाने लगे और आत्म-

तत्व का विश्लेषण, ब्रह्म स्वरूप का विवेचन एवं सृष्टि की उत्पत्ति के प्रश्न उनके जीवन के मुख्य उद्देश्य बन गये, तो उपनिषद् और दर्शन साहित्य की सृष्टि हुई। याज्ञिक कर्मकांड में हिंसा के कारण जब महात्मा बुद्ध ने अहिंसा का जयघोष किया और जीवन की सात्त्विकता को मुख्य बतलाया तभी बौद्ध दर्शन का जन्म हुआ। किन्तु जिस समय बौद्ध संस्कृति की दुर्बलता का भाँडा फोड कर शंकराचार्य जैसे विद्वानो ने समाज मे फिर से आस्तिक भावना को जागृत कर दिया, तभी अद्वैतवादी विचारप्रधान साहित्य की रचना होने लगी। और जब जन-समाज अद्वैत ब्रह्म की दुर्बोधता के कारण सरल सगुण पथ की ओर झुका, उसी समय वैष्णवो का धार्मिक साहित्य सामने आया।

हिन्दी साहित्य के इतिहास को भी देखने से उक्त सिद्धान्त की पुष्टि होती है कि साहित्य समाज से सदैव प्रभावित होता रहता है। यवनो के आक्रमण काल मे भारत युद्धो की ज्वाला मे जल रहा था। आपसी फूट के कारण राजपूतो में भी गृहयुद्ध चल रहे थे, उस समय के वातावरण के अनुकूल ही चारण कवियो ने अपने आश्रयदाताओ की प्रशंसा मे वीरगाथाएं लिखीं। किंतु जब यवनो की प्रबल सेनाओ के सामने भारतीय क्षात्रशक्ति ने सिर झुका दिया और यवनो ने खुल्लम-खुल्ला आर्यों के देवस्थानो का अपमान करना आरम्भ कर दिया, उनके सामने उनके देवमन्दिर गिरा दिए गए, उनके देवो की मूर्तियो को तोड दिया गया, उनकी बहू-बेटियो का अपमान होने लगा तो अपनी रक्षा के लिए जनता ने भगवान् की शरण ली, क्योकि 'निर्बल के बल राम'। इसी के परिणामस्वरूप समाज के प्रतिनिधि कवियो ने भी धार्मिक साहित्य प्रस्तुत किया। कबीर, सूर, तुलसी आदि की भक्तिरस से पूर्ण रचनायें इसी काल में लिखी गई। कालान्तर मे जब देश मे शांति स्थापित हो गई, मुगल दरबार मे विलास के सभी साधन जुटने लगे, राज-दरबारो मे नृत्य और संगीत के साथ सुरा और सुन्दरी का सेवन भी होने लगा, उस समय बिहारी, देव, मतिराम आदि ने शृंगारी कविता द्वारा जन-रंजन करने मे कमाल कर दिया। आधुनिक साहित्य मे जब भारतीय स्वातन्त्र्य-संग्राम की चिनगारियाँ भड़क उठीं, तो साहित्य मे भी भारतेन्दु हरिश्चन्द्र

मैथिलीशरण गुप्त आदि ने उसका चित्रण किया। समाज मे आजकल मार्क्स-वाद का प्रभाव बढ रहा है, राजनीति मे साम्यवादी विचारधारा फैल रही है, इसका सरस रूप 'प्रगतिवादी' साहित्य में स्पष्ट देखा जा सकता है। इसलिए यह सिद्ध हो जाता है कि साहित्यकार जहाँ अपने समाज का प्रभाव ग्रहण करता है, वहाँ वह आवश्यकता पडने पर उसे प्रभावित भी करता रहता है। यदि समाज साहित्य का जन्मदाता है तो साहित्य भी समाज का निर्माता है। मुर्गी यदि अडे पैदा करती है तो अण्डे भी कालातर मे मुर्गी को जन्म देते हैं।

---

३ भारतीय संस्कृति

ससार की प्राचीन सस्कृतियो मे एक भारतीय सस्कृति भी मानी जाती है। चीन, मिश्र, रोम और यूनान की सस्कृतियाँ भी बहुत पुरानी हैं। किन्तु आज इन देशो मे जिस सस्कृति के दर्शन होते हैं, वह अधिक प्राचीन नही कही जा सकती। वर्तमान इटली, यूनान, मिश्र आदि देशो पर आधुनिक पश्चिमी सभ्यता का ही अधिक प्रभाव मिलता है। इन देशो के पूर्वजो का रहन-सहन, विचारधारा, धर्मभावना, साहित्यिक रुचि, कलात्मक दृष्टिकोण, राज्यशासन और सामाजिक सगठन आदि आज कही देखें नही जाते। जिस सस्कृति के गौरव से इन देशो का गौरवशाली स्थान ससार के इतिहास मे था, वह संस्कृति इन देशों मे पूर्णत· लुप्त हो चुकी है। परन्तु आज भी अतीत के घने अन्धकार को चीर कर अपनी सत्ता का प्रमाण देने वाली एक सस्कृति धरती पर फल-फूल रही है। हजारो वर्ष पुराने आचार-विचार सभ्यता के रग-ढग, धर्मभावना के विविध रूप और राजनीति की पद्धति आदि आज भी किसी न किसी अश और रूप मे अवश्य देखी जा सकती हैं। वह देश है, भारतवर्ष। भारत की वैदिक सस्कृति के नमूने आधुनिकता की गहरी छाप से भी नही मिटाये जा सके। आर्यों की धर्म-भावना भौतिक वाद के तूफान मे भी चट्टान की तरह भारत के कण-कण में विद्यमान है। विदेशी संसर्ग भारत के शरीर को प्रभावित भले ही कर पाया हो, परन्तु उसकी आत्मा आज भी भारतीय है। इण्डिया और हिन्दुस्तान के चित्र मे

भी भारत की भव्य मूर्ति झांकती हुई स्पष्ट दृष्टिगोचर होती है। दूसरे देशो मे प्राचीन गौरवशाली सस्कृतियाँ मृत हो चुकी हैं, एक पुरानी कहानी बन चुकी हैं, स्मृति की वस्तु रह गई हैं, जब कि भारत मे भारत की प्राचीन महिमामयी सस्कृति आज भी जीवित-जागृत दिखाई पड रही है। यूनान, रोम, मिश्र आज वे नही है, जो कल थे, किन्तु भारत आज भी वही है, जो कल था। भारत कल भी भारत था और आज भी भारत है, परन्तु यूनान और रोम कल तक तो यूनान और रोम थे, आज कुछ और ही बने हुए हैं। कदाचित् इसी सत्य का सकेत उर्दू के प्रसिद्ध कवि इकबाल ने अपनी प्रसिद्ध कविता 'हिन्दोस्तान हमारा' मे किया था—

यूनानो मिश्र रूमा सब मिट गए जहाँ से।
बाकी मगर है अब तक हिन्दोस्ताँ हमारा॥

सस्कृति और सभ्यता दोनो शब्द एक दूसरे से परस्पर निकट सम्बन्धित होने पर भी कुछ अपनी पृथक् विशेषताए लिये हुए हैं। सभ्यता समाज के बाहरी विकास को कहते है, उसकी भौतिक उन्नति को कहते हैं, जबकि सस्कृति में समाज की मानसिक और आध्यात्मिक उन्नति का सम्बन्ध रहता है। सभ्यता समाज का शरीर है और सस्कृति उसकी आत्मा। इसीलिए शरीर का विकास शीघ्र होता है जब कि आत्मा की विकास-परम्परा में बहुत देर लगती है। कोई भी व्यक्ति धोती-कुर्ता उतार कर पश्चिमी सभ्यता का अनुकरण करने के लिए बूट, पतलून और हैट पहन सकता है, किन्तु केवल वेषभूषा के परिवर्तन के साथ उस व्यक्ति की विचारधारा तो नही बदली जा सकती। केवल दाढी रखने या चोटी कटवाने मात्र से ही तो कोई मुसलमान नही हो जाता। इस्लामी सस्कृति का सम्बन्ध समाज की आतरिक अवस्था से है न कि बाह्य बन्धनो से। यद्यपि सभ्यता के महत्त्व को नहीं भुलाया जा सकता। सस्कृति के निर्माण मे भी सभ्यता का गहरा हाथ रहता है, परन्तु सस्कृति की अपेक्षा सभ्यता शीघ्र परिवर्तनशील है, यह मानने मे कोई सकोच नहीं। सभ्यता की आयु छोटी होती है किन्तु सस्कृति चिरायु और चिरतन रहती है। सस्कृति के निर्माण मे, उसकी स्थिति मे और उसके

नाश मे भी समय लगता है। शताब्दियो तक सस्कृति का जन्म होता रहता है, युगो तक वह फलती, फूलती और फलती रहती है और एक लम्बे समय तक उसका ह्रास होता रहता है।

किसी देश की संस्कृति का सम्बन्ध उस देश की प्रधानतया चार बातो से ही रहता है और वे चार बातें ही उस जाति की स स्कृति को जानने के साधन है, माध्यम हैं या कसौटिया हैं। वे चार बातें हैं, साहित्य, राज्यशासन, समाज-व्यवस्था और धर्म-भावना। कला-विज्ञान का अन्तर्भाव साहित्य मे और दर्शन का धर्म मे हो सकता हैं। इसी प्रकार राज्यशासन मे भी आर्थिक विकास का समावेश होता है। किसी भी देश या जाति की सामाजिक परम्परायें और व्यवस्थाए, उसके धार्मिक व दार्शनिक विश्वास, एव राज-नीतिक पद्धति तथा साहित्यिक रुचि ही एक ऐसा दर्पण है, जिसमे उस देश और जाति की संस्कृति का सच्चा चित्र देखा जा सकता है। एक देश के लाखो-करोडो मनुष्य सैकडो-हजारो वर्ष तक एक साथ रहने मे रहन-सहन के कुछ समान ढग अपना लेते हैं, समान राजनीतिक और सामाजिक नियम बना कर समान विचार-धारा के द्वारा हृदय और मस्तिष्क मे एक स्थायी स स्कारो की छाप डाल लेते है, जो उनके जीवन को एक विशेष दिशा मे अग्रसर करती हुई उनमे एकता और अभिन्नता की स्थिति उत्पन्न कर देती है, जिसका अमर प्रभाव युगो तक उस जाति के जीवन पर से नही उठता। वही सस्कार, जीवन-लक्ष्य, विचार-धारा आदि 'सस्कृति' के नाम से प्रसिद्ध होती है। इस सस्कृति मे उस देश की भौगोलिक स्थिति का भी गहरा हाथ होता है। यही कारण है कि ससार के भिन्न-भिन्न प्रदेशो में भिन्न-भिन्न सस्कृतियो का विकास हुआ है।

भारतीय स स्कृति की विशेषताओ को भी जानने के लिए भारत के युगो के पुराने साहित्य का अध्ययन करना पडेगा। आर्यों की धार्मिक रूढियो, दर्शन की विभिन्न विचारधाराओ और सामाजिक परम्पराओ की भी जानकारी प्राप्त करनी होगी। उसके राजनीति-शास्त्र को भी देखना पडेगा। भारतीय स स्कृति का इतिहास बहुत पुराना है और इसलिए बहुत विस्तृत भी। जैसा कि ऊपर कहा जा चुका है कि भारत की प्राचीन स स्कृति का आज भी लोप

नही हुआ। विदेशी आक्रमणकारियो के निरन्तर प्रयत्नो से भी इसकी अमरता मे कुछ परिवर्तन नही आया। हजारो वर्षो के असंख्य आघातो को सहन करती हुई भी यह संस्कृति गिरती-पडती आगे बढती चली गई। कुछ समय के लिए इसका ह्रास अवश्य हो गया, किन्तु इसका पूर्ण नाश कभी न हो सका। औरंगजेब की तलवार बेकार हो गई। नादिरशाह का 'कत्ले आम' नाकाम हो गया। 'तबलीग' की भयानक आग भी उस को आंच न पहुँचा सकी। 'जिहाद' के भूकम्पो मे भी इसकी स्थिरता मे कुछ अन्तर न आया। और सबसे बडी विशेषता तो यह है कि पाश्चात्य सभ्यता की मधुर छुरी ने भी इसका गला काटने का जो भयानक किन्तु गुप्त प्रबन्ध किया, वह भी सफल न हो सका। पश्चिम ने पूर्व को भी पश्चिम बनाना चाहा, किन्तु प्रकृति के अटल नियमो को और शाश्वत धर्मो को भला कौन बदल सकता है? विज्ञान कितना भी एडी-चोटी का जोर क्यो न लगाये, वह पूर्व को पश्चिम तो नही बना सकता। पूर्व सदा पूर्व ही रहेगा और पश्चिम सदा पश्चिम। सभ्यता और संस्कृति का प्रकाशमान सूर्य पूर्व से निकला था, जो समय की गति के अनुसार पश्चिम मे जा कर डूब गया। किन्तु वह डूबना पुन उदय होने के लिए ही था। युगो के अन्धकार के पश्चात् स्वामी दयानन्द सरस्वती, राजा राममोहन राय, स्वामी विवेकानन्द, परमहंस रामकृष्ण, महात्मा गांधी, लोकमान्य तिलक, पंडित मदनमोहन मालवीय और योगी अरविन्द के प्रताप से पूर्व दिशा पुन जगमगा उठी है और भारतीय संस्कृति के जीर्ण-शीर्ण शरीर मे जीवन की ज्योति फिर से चमक उठी है। आज के भारत मे भी भारतीय संस्कृति की अतीत आभा के दर्शन सहज में हो सकते हैं। मंदिरो मे देवपूजा के लिए इतने घण्टे, शंख और घड़ियाल उसी भारतीय संस्कृति का जयघोष करते सुनाई पड़ते हैं। हवनकुण्डो मे वेदमंत्रो के साथ पडती हुई घी और दूध की आहुतियां वैदिक कालीन ऋषि जीवन की पवित्र झलक दिखा देती हैं। कोट, पतलून पहने हुए भारतीयो के मस्तक पर देदीप्यमान तिलक की रेखाएं सनातन हिन्दू धर्म का चित्र खींच देती हैं। पश्चिमी शिक्षा-दीक्षा में दीक्षित व्यक्तियो के विवाह-संस्कार और मुंह से निकले हुए 'जयराम जी की' या 'नमस्ते' के शब्द भारतीय संस्कृति की

अमरता को ही दोहराते है। इससे स्पष्ट ज्ञात होता है कि भारत की सस्कृति में ऐसी संजीवनी शक्ति है, जो उसे मिटने नही देती। भारतीय संस्कृति के पश्चात् विकसित होने वाली संस्कृतिया उसके सामने ही मिट गई, परन्तु भारत की अमर सस्कृति आज भी फूल-फल और फैल रही है। आखिर इसका क्या कारण है ?

भारत की महान् सस्कृति का एक महत्वपूर्ण आधार उसकी आध्यात्मिक भावना है। इसी भावना ने उसे सदैव आस्तिक बनाये रखा। सहनशीलता सिखाकर विश्वबन्धुता की भावना उसमे जीवित रखी। किसी को भी भिन्न न समझ करके 'वसुधैव कुटुम्बकम्' का सिद्धान्त आर्यो के जीवन का चिरतन लक्ष्य बन गया। भौतिक जगत् के पीछे छिपी हुई कोई और शक्ति है, जो इस सासारिक लीला को चला रही है। सूर्य, चन्द्र और तारे उसी की ज्योति से ज्योतिष्मान् होते है। प्रकृति का कण-कण उसी के स्पर्श से स्पदनशील है। वह चेतन सत्ता सर्वव्यापक और सर्वशक्तिमान् है। उसी की खोज करना और उसकी प्राप्ति आर्यो के जीवन का परमोद्देश्य है। यह भावना केवल भारत के विद्वान् विचारको मे ही नही, अपितु जनसाधारण में भी सदा विद्यमान रही है। भारत का बच्चा-बच्चा ईश्वर के अस्तित्व पर विश्वास करता है। 'ईशावास्यमिद सर्वं" का वैदिक सिद्धान्त सबका अनुभूत सत्य बना हुआ था।

सभी प्राणियो में एक ही आत्मा है, इस विश्वास ने आर्यो में भेद मे भी अभेद की धारणा को जन्म दिया। उनकी यह नित्य प्रार्थना होती थी कि—

सर्वे भवन्तु सुखिनः सर्वे सन्तु निरामयाः ।
सर्वे भद्राणि पश्यन्तु मा कश्चिद् दुःखभाग्भवेत् ॥

अर्थात् 'ससार के सभी प्राणी सुखी और नीरोग जीवन व्यतीत करें। सभी को कल्याण का दर्शन हो, कोई भी व्यक्ति दुःखी न रहे।'. कितनी उदार और उदात्त भावना है। सबको 'मित्र की चक्षु से देखने' की मनोवृत्ति आर्यों मे जाग रही थी। यही कारण था कि 'अनेकेश्वरवाद' की तथाकथित प्रवृत्ति ने भी उनमे द्वेष और भेदभाव को जन्म नही दिया। "एक सद् विप्रा बहुधा वदन्ति" अर्थात् एक ही ईश्वर भिन्न भिन्न रूप धारण करता है और

लोग भी उसी एक का विविध रूपो मे वर्णन करते हैं। कोई किसी से भिन्न नही और कोई किसी का विरोधी नही। सबका लक्ष्य एक है, केवल मार्ग ही भिन्न हैं। इसलिए सहनशीलता का सद्गुण आर्य जीवन का मुख्य अग बन गया है। 'मैं सब मे हूँ और सब मुझ मे हैं' के विचार से अपनत्व की दृष्टि जाग उठी, फलत चारो ओर मित्रता, प्रेम और सहानुभूति का वातावरण फैल गया।

आर्यों मे उक्त भावना ने 'ग्रहणशीलता' की भी शिक्षा दी। कोई भी धर्म और धर्मावलम्बी पराया नही है, उसे अपना समझकर अपना बनाने की मनोवृत्ति भी उसमे जागने लगी। भारतीय सस्कृति ने अनेक विरोधी संस्कृतियो को भी आत्मलीन करके उन्हे अपना अभिन्न अ ग बना लिया। इस देश मे द्राविड, कोल, शक, हूण, यवन, मुसलमान, आदि अनेक सस्कृतियो ने अपने अस्तित्व के लिए सघर्ष किया, किन्तु सभी अन्त मे भारतीयता के रग मे ही रगी गई। महात्मा बुद्ध यद्यपि वेदो की निन्दा करते थे, उन्होंने ईश्वर पर भी विश्वास प्रकट नही किया, तथापि उन्हे भारतवासियो ने विरोधी न समझ कर अपना लिया। विष्णु के चौवीस अवतारो मे बुद्ध की भी गणना की जाती है। यह भारतीय उदारता और ग्रहणशीलता का सुन्दर उदाहरण है।

भारतीय सस्कृति मे पुनजन्म की स्वीकृति ने आशावाद का खूब प्रचार किया। इस्लाम और ईसाई मत मे यह विश्वास पाया जाता है कि मरने के पश्चात् हमारी आत्मा भी सो जाती है। कबरो मे मुर्दे भी सोते रहते हैं। जब प्रलय का दिन आता है, तब भगवान् के दरबार मे प्रत्येक व्यक्ति के कर्मों का न्याय होता है। उस समय सभी मुसलमान और ईसाई अपनी-अपनी कबरो में से निकल कर उठ खडे होते हैं। इस प्रकार एक बार मर कर मनुष्य फिर प्रलय तक नही उठता। इस विचार ने निराशावाद को जन्म दिया। किन्तु भारतीय सस्कृति में यह घोषणा कर दी गई कि केवल शरीर का ही नाश होता है, आत्मा का नही। शरीर के मर जाने पर भी आत्मा अमर रहती है। जैसे एक व्यक्ति पुराने वस्त्रो को उतार कर नया वस्त्र पहर लेता है, उसी प्रकार आत्मा भी एक शरीर को छोड कर नये शरीर को धारण कर लेती है।

अत मृत्यु का भय व्यर्थ है। आर्यों का यह विश्वास रहा है कि यदि किसी का मनोरथ एक जीवन मे पूर्ण नही हो पाया, तो वह अगले जन्म मे अवश्य पूर्ण होगा। भारतीय नारी तो अपने पति को जन्म-जन्मान्तर मे प्राप्त करने की प्रार्थना किया करती थी। भारत के इस सिद्धात ने मानव-जीवन को उत्साह, कल्याण, हर्ष और सतोप से भर कर मगलमय बनाने का प्रशंसनीय प्रयत्न किया।

वर्णव्यवस्था भारतीय जीवन का एक और प्रधान अङ्ग था। यद्यपि आज वर्ण-व्यवस्था रूढिगत बधनो से जकडी जाकर कही-कही विकृत रूप भी धारण कर चुकी है, तथापि प्राचीन काल मे किसी भी मानव-जीवन के लिए चार आश्रमो तथा चार वर्णों की आवश्यकता को अस्वीकार नही किया जा सकता। मनुष्य जीवन की सफलता के लिए धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष इन चार पुरुपार्थों की कल्पना की गई थी। किन्तु धर्म और मोक्ष को ही प्रधानता देकर अर्थ और काम को गौण पद दिया गया। अर्थ का सम्बन्ध धर्म के साथ था, अर्थात् धन कमाओ, जिससे धर्म के कार्य हो सकें, तथा कामनाएं ऐसी करो जिस से मोक्ष या मुक्ति मिल सके। जीवन की यात्रा को सुचारु रूप से चलाने के लिए भारत के विद्वान् धर्मशास्त्रियो ने ब्रह्मचर्य, गृहस्थ, वानप्रस्थ और सन्यास आश्रमो की व्यवस्था की। विद्याध्ययन २५ वर्ष तक करने के पश्चात् ब्रह्मचारी को गृहस्थ धर्म मे प्रवेश करने की आज्ञा थी। २५ वर्ष तक गृहस्थ का सुख भोग कर फिर आर्यों को वानप्रस्थ बन कर वन मे जाना पडता था। जहाँ २५ वर्षों के साधनापूर्ण समय के पश्चात् वह सन्यासी बन कर विकारहीन जीवन बिताता तथा ससार की कल्याण-कामना और परोपकार मे अपनी शेप आयु बिता देता था। सामाजिक कार्यों को कुशलतापूर्वक करने के लिए अध्ययन-अध्यापन करने वाले वर्ग को 'ब्राह्मण' कहा जाता था, युद्ध करना तथा शत्रुओं को हटा कर प्राण रक्षा करना 'क्षत्रियों' का धर्म था, व्यापार आदि द्वारा धन उपार्जन करके समाज की आर्थिक स्थिति को ठीक रखना 'वैश्य' का कर्तव्य था तथा तीनो वर्णों की सेवा का भार 'शूद्र' वर्ण पर रहता था।

किन्तु चारो वर्णों में किसी प्रकार का कोई ऊंच-नीच भाव नही

था। एक वेदमन्त्र के अनुसार चारो वर्णों का अपना-अपना महत्वपूर्ण स्थान था। समाज एक शरीर के समान माना गया है, जिसमे ब्राह्मण सिर है, क्षत्रिय उसकी भुजाए, वैश्य उसका उदर तथा शूद्र चरण माने गए हैं। बिना पाँव के शरीर खड़ा भी नही हो सकता, अत पाँव को क्षुद्र नही समझा गया। सबके लिए शास्त्रकारो का आदेश था कि वे अपने कर्तव्यो का पालन करते हुए भी सद्गति पाने के अधिकारी हो सकते हैं। जिस व्यक्ति का जो धर्म है, वह उसके लिए आवश्यक है, चाहे वह दूसरो की दृष्टि में घृणित भी क्यो न हो। सभी को अपने ही धर्म का आचरण करना चाहिये। गीता में तो भगवान् कृष्ण ने यहाँ तक कह दिया -

स्वधर्मे निधनं श्रेय. परधर्मो भयावह.।

अर्थात् स्वधर्म मे मर जाना कल्याणकारी है, किन्तु दूसरे के धर्म को ग्रहण करना उचित नही। इसी स्थान पर यह कह देना भी अनुचित न होगा कि महाभारतकार ने आर्यों के लिए जिस सुनहरे सिद्धांत का आदेश दिया है, उसे आज के पश्चिमी विचारक भी अन्तर्राष्ट्रीय हित के लिए साधन मानते हैं। वह सूक्ति है—

आत्मनः प्रतिकूलानि परेषा न समाचरेत्।

अर्थात् जो वस्तु अपनी आत्मा या अपने आपके लिए प्रतिकूल है, उसे दूसरो के लिए भी नही करना चाहिये। अग्रेजी मे भी कहा है—

Do unto others as you wish to be done by.

भारतीय संस्कृति की एक प्रधान विशेषता है—गीता मे कहा हुआ कर्मयोग का सिद्धान्त। मुक्ति प्राप्त करने के लिए निष्काम कर्मयोग का उपदेश भगवान् कृष्ण ने दिया था। इसका आशय है कि मनुष्य को केवल कर्म करते रहना चाहिये, उनसे फल की कामना कभी न रखनी चाहिये। फल की चिंता न रखने से मनुष्य मे सुख-दुख, जय-पराजय, आशा-निराशा, हानि-लाभ, जन्म-मृत्यु मे समत्व बुद्धि उत्पन्न होती है। ऐसे व्यक्ति जीवन्मुक्त कहलाते हैं। धूप-छाया मे समान रूप से अपना जीवन-रथ चलाते हुए वे दुखों से मुक्त रहते हैं। ऐसा आदर्श जीवन सतोगुण से पूर्ण होने

जहाँ अपने लिए अनन्ददायक होता है, वहाँ दूसरो के लिए भी अविरोधी और पथ-प्रदर्शक बन जाता है।

भारतीय संस्कृति सदैव आध्यात्मिक भावना की पोषक रही है। आत्म-तृप्ति और आत्मसतोष ही आर्य-जीवन का चरम लक्ष्य रहा है। मुक्ति की भावना से प्रेरित होकर भारत मे नाना धार्मिक सप्रदाय भी चले, किंतु उनके मूल सिद्धान्त अविरोधी और एक थे। किंतु भारतीय सस्कृति एकागी न होकर सर्वाङ्गीण है। उसने भौतिकवाद को अस्वीकार कभी नही किया। शरीर से आत्मा को श्रेष्ठ अवश्य माना है किंतु शरीर का महत्व कभी नहीं भुलाया। यही कारण है कि भारत मे जहाँ एक ओर ब्रह्मर्षि उत्पन्न हुए, वहाँ राजर्षि भी कम नही हुए। चक्रवर्ती सम्राटो ने भौतिक सपत्ति से भी देश को समृद्ध करने और कभी-कभी तो विदेशो मे जाकर साम्राज्य-स्थापना के भी सफल प्रयोग किये। महाभारत और रामायण काल मे अनेक क्षत्रियो के शक्ति-शाली साम्राज्य इस उक्ति को पुष्ट करते है। अत भारतीय सस्कृति केवल प्राचीन ही नही, ईश्वरविश्वासिनी, अध्यात्मवादिनी, ग्रहणशील होने के साथ सर्वाङ्गीण भी है। इन्ही विशेषताओ के कारण ही वह आज तक जीवित है और सदा जीवित रहेगी।

---

४ कला कला के लिये अथवा मानव जीवन के लिये

कला की उत्पत्ति—मानव आदि काल से ही अपने हृदय की भावनाओ को प्रकाशित करने के लिए छटपटाता रहा है। इस मानव-मन की भावनाओ की अभिव्यक्ति जब सौदर्य को लेकर चलती है तो उसे कला के नाम से पुकारते हैं। सौन्दर्य की अभिव्यक्ति और निर्माण का नाम ही कला है। प्रत्येक वस्तु मे सौदर्य-दर्शन की लालसा ने ही कला को जन्म दिया है।

पाँच कलाएँ और उनमें काव्य-कला का महत्त्व—इलाचन्द जोशी ने 'मुक्ति-पथ' नामक उपन्यास मे कला की विवेचना करते हुए कहा है कि संस्कृति ने

ही मानव को हमेशा के लिए विनाश के गढे में गिरने से बचाया है। यदि सस्कृति की मानवता के प्रति कोई सबसे बडी देन है, तो वह है 'कला'। भर्तृहरि जी ने भी पशु और मानव मे जो अन्तर स्पष्ट किया है तो वह भी कला को ले करके ही। वे कहते हैं कि—

"साहित्य-सगीतकलाविहीन साक्षात् पशुः पुच्छविषाणहीन।"

इस प्रकार कला का जीवन मे एक महत्त्वपूर्ण स्थान पाया जाता है। कला मानव-विकास के युग से ही जीवन के साथ-साथ चली आई है। यही कारण है कि प्राचीन कला से ही आचार्यों का उसके प्रति मोह रहा है। वे कला के सकुचित अर्थ को न लेकर उसके व्यापक अर्थ को ही लेते रहे हैं। व्यापक अर्थ मे कला एक विशेष चेष्टा है जिसके द्वारा एक ऐसे रागात्मक तत्त्व की भी सृष्टि की जाती है, जो अपने परिणाम मे अलौकिक आनन्द को देता है। इस प्रकार कला मे तीन बातो का सिद्ध होना हो जाता है—

(१) सौन्दर्यमय अभिव्यक्ति, (२) निर्माण और (३) अलौकिक आनन्द की प्राप्ति।

इसके विषय-भेद से प्राचीन आचार्यों ने पाच भेद किये हैं—(१) वास्तु-कला, (२) मूर्ति कला, (३) चित्र-कला, (४) संगीत-कला, (५) काव्य-कला। इन पाँचो कलाओ में अपनी सूक्ष्मता और प्रभावकुशलता के कारण काव्य-कला सर्वश्रेष्ठ है।

आधुनिक युग में कला का क्षेत्र अथवा कला का प्रयोजन—समय के परिवर्तन से जहाँ हमारी भावनाओ के दृष्टिकोण मे अन्तर आ गया है, वहाँ उसके प्रयोजन मे भी विभिन्नता पाई जाती है। ससार मे कोई भी वस्तु बिना प्रयोजन के नही होती और विशेष रूप से कला जैसी वस्तु का निष्प्रयोजन होना युक्तिसगत प्रतीत नही होता। आजकल आचार्यो ने कला के अनेक प्रयोजन माने है। उनमे से कुछ नीचे दिये जाते हैं —

(१) कला कला के लिए, (२) कला जीवन के लिए, (३) कला जीवन की वास्तविकता मे पलायन के लिए, (४) कला जीवन की उपयोगिता तथा आनन्द-प्राप्ति के लिए, (५) कला सेवा के लिए, (६) कला आनन्द प्राप्ति के

लिऐ, (७) कला आनन्द के लिए, (८) कला आत्माभिव्यक्ति के लिए, (९) कला भोजन प्राप्ति के लिये, (१०) कला सर्जनात्मक निर्माण के लिये।

इन सभी पर प्रकाश न डालते हुए हम केवल इसके पहले दो प्रयोजनो को ही लेंगे।

कला कला के लिए—इस भावना का अधिक प्रचार यूरोप मे पाया जाता है। आज वहाँ इस बात की चर्चा चलती है कि कला का आर्थिक या नैतिक दृष्टिकोण से विवेचन करना कलाकार का कर्तव्य नही। कलाकार और जीवन के व्याख्याकार का क्षेत्र बिल्कुल भिन्न-भिन्न पाया जाता है। कला की सौन्दर्यमयी अभिव्यक्ति ही सच्चे कलाकार की कसौटी है। इस मत पर अधिक न लिखते हुए केवल मात्र उसके समर्थको का मत दे देना ही पर्याप्त होगा।

आस्कर वाइल्ड—ये कहते हैं कि "समालोचना मे सबसे पहली बात यह है कि समालोचक को यह परख हो कि कला और आचार का क्षेत्र पृथ पृथक् है।"

फ्रायड—ये इसकी उत्पत्ति स्वप्नविज्ञान से मानते है। उनका यह क है कि "जीवन मे जिस चीज की प्राप्ति नही होती, वह स्वप्न अर्थात् कल्प ही है। इसलिये जीवन का आधार स्वप्न ही है। इस प्रकार कला जीवन व्याख्या न होकर, कला की व्याख्यामात्र ही है।"

ब्रेडले—ये "काव्य काव्य के लिये" नामक शीर्षक से यह लिखते हैं "शुद्ध कला के दृष्टिकोण से कला के मूल्य को कला के ही मापदंड से, सौन्दर्य है नापना चाहिए।"

क्रोचे—ये कहते हैं कि "कला, जिसका मूल अभिव्यक्ति मे है, कलाक के मन मे ही रूप धारण कर लेती है। कलाकार के मन में उत्पन्न ह वाला रूप ही सच्ची कला है। वह नीति, सदाचार और उपयोगिता नियत्रण मे परे है।"

इलाचन्द जोशी—यूरोपियन विद्वानो के साथ-साथ भारतीय विद्वान् (सब नही) इस विषय में अपना मत प्रकट करते हैं। जिन हिन्दी लेखको पर इस मत का प्रभाव पड़ा है 'जोशी' जी उसमे प्रमुख हैं। ये एक जगह कहते

हैं कि "विश्व की इस अनन्त सृष्टि की तरह कला भी आनन्द का ही प्रकाश है। उसके अन्दर नीति अथवा शिक्षा का स्थान नही।"

रवीन्द्रनाथ ठाकुर—ये भी कला को कला के लिये ही मानते थे। किन्तु उनके विचारो मे सयम है। वे कहते है—"सौन्दर्य की मूर्ति ही मगल की पूर्ण मूर्ति है। मगल मूर्ति ही सौन्दर्य का पूर्ण स्वरूप है।"

कला जीवन के लिये—पर कला कला के लिये मानने वालो की भावनाएं नष्ट होती जा रही हैं। रस्किन, टाल्सटाय आदि विद्वान् तो कला और सदाचार के समन्वय पर बल देते हैं। "मैथ्यू आर्नल्ड" तो यहाँ तक कह देते है कि नैतिकता के प्रति विद्रोह करना कला के प्रति विद्रोह करना है। आज के आलोचक जिस मत को आज प्रकट कर रहे है, हमारे प्राचीन आचार्यों ने दो हजार वर्ष पूर्व ही इसे कह दिया था। वे काव्य को जीवन के लिये मानते थे। "आचार्य मम्मट" काव्य का निर्माण यश के लिये, धन के लिये, व्यवहार-ज्ञान लिये, अमगल नाश के लिये, आनन्द देने के लिये और प्रयसी के समान मधुर उपदेश देने के लिये कहते है। कई लोग उस पर यह आक्षेप करते है कि उपदेश का काम तो धर्मशास्त्रियो का है फिर कला को जबरदस्ती घसीट कर वहाँ क्यो लाया जाय, पर वे यह नही जानते कि साहित्य का उपदेश कान्ता के वचन समान सरस और लोकोत्तर आनन्द का दायक होता है जिस काम को बडे-बडे उपदेशक नही कर सके, बिहारी के एक दोहे ने वह कर दिखाया। रत्नावली की मधुर झिडकी ने जो कार्य किया था, उस काम को करने की शक्ति बडे-बडे आचार्यो मे भी नही पाई जाती। इसलिये वे कला को जीवन में मधुरता और उचित सन्तुलन लाने के लिये न मानकर उसे जीवन के लिये मानते थे। आज "गुप्त" जी भी कला की मूल भावना में जीवन की पुकार के दर्शन कराना चाहते है। वे लिखते हैं—

"केवल मनोरजन न कवि का कर्म होना चाहिये।
किन्तु उचित उपदेश का भी मर्म होना चाहिये॥"

कला का मुख्य उद्देश्य तो जीवन का दर्शन कराना है। हरिभाऊ उपाध्याय सच्ची कला उसे ही मानते हैं जो जीवन के असन्तुलन में सतुलन और विनाश मे निर्माण के स्वप्न लेती है। जीवन से भागकर कलाकार जायगा।

कहा ? सच्ची कला तो जीवन से हारे हुए पथिक की विश्रान्ति-भूमि है। जब कला की उत्पत्ति ही जीवन से होती है तो क्या यह उसकी बडी अकृतज्ञता नही होगी कि वह जीवन से भागने का सदेश दे। अन्त मे हमे यह भी विचारना चाहिए कि जीवन की सीमाएँ क्या हैं ? साहित्य मे, केवल सामयिक समस्याओ को स्थान देना ही जीवन नही है। यह ठीक है कि आज का कलाकार खुले आसमान के नीचे सर्दियो और गर्मियो मे कार्य करने वाले किसानो, लगातार मशीनो के सघर्ष मे निष्प्राण जीवनयापन करने वाले मजदूरो के सुख दुःख का वर्णन कर देता है। पर जीवन का उद्देश्य केवल वर्तमान ही नही, किन्तु भूत के आदर्शो मे भविष्य का निर्माण है, इस जीवन की और आगे के जीवन की बातों को सुलझाना है। एक सच्चे कलाकार का उद्देश्य है—"सच्ची मानवता द्वारा विश्व-कल्याण की भावनाओ को विश्वजनबन्धुत्व मे लय कर देना ही कला का सच्चा प्रयोजन है। जो कला इस प्रकार के जीवन के पौष्टिक तत्वो के द्वारा विश्व-शान्ति, विश्वबन्धुत्व तथा विश्वकल्याण की भावनाओ को जगाती है, सच्चे अर्थो मे उसे ही कला कहते हैं।"

---

५ साहित्य में प्रकृति-चित्रण

कविता और प्रकृति का सम्बन्ध सहज और सनातन है। जब प्रकृति मानव-कल्पना के समक्ष अपने जडत्व को त्याग कर सजीव बनती है, सवेद्य और सवेदनशील होती है, कविता स्वत प्रकट हो जाती है। जब नदी नदी न होकर माँ हो जाती है, अपना गाँव और देश एक भूखण्ड न होकर 'मातृभूमि' बन जाता है, एक पर्वत विशेष पत्थर, जंगल और बर्फ का समूह न होकर देवता बन जाता है, तभी कविता हो जाती है। कविता को "शेष सृष्टि के साथ रागात्मक सम्बन्ध स्थापित करने का साधन है।" आदि कवि वाल्मीकि के मुख से कविता का स्फुरण तभी हुआ था, जब वे क्रौंचमिथुन के सुख-दुख में ऐसे सवेदनशील हुए कि उन्हें प्रतीत हुआ कि व्याध का बाण क्रौंच पक्षियों के जोडे को नहीं लग रहा है स्वय उनका वक्षस्थल वेधा जाने वाला है।

प्रत्येक देश का कवि प्रकृति के माध्यम से अपने हृदय का उद्गार प्रगट करता है। अरब के कवि रेगिस्तान की रेत, ऊँटों की चाल और झाड़-झंखाड़ों के सौन्दर्य पर ही मुग्ध हैं और उनकी शायरी में इनका उल्लेख प्राप्त होता है। इंग्लैंड के कवि वर्ड्सवर्थ, शेली, कीट्स, कालरिज, बायरन, टेनीसन की कविता से वे प्रकृति के ही कवि हैं। प्रकृति का जितना रम्य रूप भारत में है, संसार के किसी भी भू-खण्ड में सुलभ नहीं है। यहां की पत्ती-पत्ती में नवीनता है और क्षण-क्षण पर उसमें नवीन परिवर्तन होता जाता है। पशु-पक्षी, जीव-जन्तु, पर्वत सरिता, वन, उपवन पुष्प लता, गगन, मेघ चन्द्र, सूर्य, तारागण सभी नवोन्मेषशालिनी प्रेरणा के देने वाले हैं। साधारण जन भी सुरम्य वनस्थली के बीच पहुंचकर कल्पना के संसार में रमने लगता है। ऐसे देश के कवि प्रकृति के साथ रागात्मक सम्बन्ध स्थापित किये बिना रह ही कैसे सकते हैं। संस्कृत साहित्य में प्रकृति के सुरम्य चित्र सर्वत्र प्राप्त होते हैं। वाल्मीकि, कालिदास, भवभूति, माघ आदि कवियों के काव्य प्रकृति-चित्रण से भरपूर हैं। अलंकारों का सारा क्षेत्र प्रकृति-निरीक्षण से ही सम्बन्धित है। काव्य-परम्परा में उपमान चन्द्र, कमल मृग, मीन, खंजन, अलि, पुष्प, सिंह, गज, सर्प, मेघमाला, गिरि, कोकिल, हंस, मयूर, शुक पिक आदि ही होते रहे हैं। चातक, चकोर चकवा-चकई, हंस आदि सम्बन्धी कवि-प्रसिद्धियाँ बनी चली आ रही हैं। चातक केवल स्वाति का जल पीता है, चकोर चन्द्र की ओर एकटक देखता, अंगारे खाता, चकवा-चकई रात्रि में वारपार होते और हंस मोती खाता और नीर-क्षीर को अलग करता है, आदि कवि-प्रसिद्धियाँ प्रकृति-सम्बन्धी ही हैं। कालिदास का मेघदूत, नैषध-चरित में हंस का दूतत्व, आदि संस्कृत साहित्य के प्रकृति-सम्बन्धी दृष्टिकोण के ज्वलन्त उदाहरण हैं।

हिन्दी साहित्य में भी प्रकृति चित्रण प्रारम्भ काल से ही पाया जाता है। वीरगाथा काल युद्ध काल था, फिर भी बीच-बीच में आखेट आदि के वर्णन पाये जाते हैं। सन्तों साहित्य में भी उपमा-उत्प्रेक्षाओं का रूप पूर्ववत् प्रकृति के माध्यम से ही है। परम्परा-पालन के रूप में भी प्रकृति के चित्र वर्णन मिलते हैं। विद्यापति की पदावली में प्रकृति उद्दीपन के रूप में ही गृहीत है।

वसन्त पवन नायिका मे कामोद्दीपन करती है, मोर, पपीहे, पिक सभी का उल्लेख उद्दीपन के रूप मे ही हुआ है।

भक्ति-काल हिन्दी कविता का स्वर्ण-युग था, पर प्रकृति-वर्णन की दृष्टि से उसमें बहुत व्यापकता न आई। भक्ति-काव्य मे दर्शन और आध्यात्मिक विचारो की प्रधानता थी—फिर भी प्रकृति की अवहेलना नही हुई। प्रत्येक कवि की रचना मे प्रकृति के सुन्दर और प्रचुर मात्रा मे चित्रण मिलते है। इतना अवश्य है कि प्रकृति ही काव्य का आलम्बन न थी। प्रसगवश ही प्रकृति के भिन्न भिन्न रूपो का चित्रण होता था, पर उद्दीपन के रूप मे ही उसका वर्णन होता था। रीतिकाल मे तो प्रकृति उद्दीपन का प्रधान उपकरण बन गई। शृङ्गार के सयोग और वियोग दोनो ही अवस्थाओ मे प्रकृति उद्दीपन का प्रमुख साधन थी। सेनापति जी पलाश-द्रुमो के पुष्पो को देख कर कविता लिखने की प्रेरणा पाते थे। देव की कविता मे वर्षाकालीन पक्षियो की बोली सुन-सुन कर कृष्ण मे अनुराग की उत्पत्ति होती थी—

> सुनिकै धुनि चातक मोरन की, चहु ओरन कोकिल कूकन सो।
> अनुराग भरे हरि बागन में, सखि रागत राग अचूकनि सो॥
> कवि देव छटा उनई जु नई, वन भूमि भई दल दूकनि सों।
> लहराती हरी ठहराती लता, झुकि जाती समीर के झूँकनि सो॥

इस पद मे वर्षा ऋतु मे वनस्थली का ही वर्णन है पर प्रकृति उद्दीपनार्थ ही है। लताए तक द्रुमो के ऊपर रति-भाव से झुकी पड़ रही हैं, इनके प्रभाव से ही कृष्ण भी रति-भाव के आवेश मे अचूक राग बांसुरी पर बजाते है। प्रकृति का ऐसा वर्णन, जब वही आलम्बन है, आधुनिक काल मे ही हुआ। श्रीधर पाठक की 'कश्मीर-सुषमा' इसी प्रकार की रचना है। 'प्रिय-प्रवास' के प्रत्येक सर्ग का प्रकृति वर्णन आलम्बन के रूप मे ही हुआ है। जैसे—

> दिवस का अवसान समीप था,
> गगन था कुछ लोहित हो चला।
> तरु शिखा पर थी अब राजती,
> कमलिनी-कुल-वल्लभ की प्रभा।

'प्रिय-प्रवास' का नवम सर्ग तो वृन्दावन का ही वर्णन करता है। अन्य महाकाव्यो में भी प्रकृति का प्रचुर वर्णन मिलता है। छायावादी कवियो के हाथो मे तो प्रकृति की प्रतिष्ठा बहुत हुई। यद्यपि कवियो का उद्देश्य अन्तस्तल की सूक्ष्म अनुभूतियो का व्यक्तीकरण भी था। इसका माध्यम प्रकृति ही बनी, अत छायावादी कविताधारा मे प्रकृति-चित्रण सबसे प्रधान वस्तु हो गया।

काव्य मे प्रकृति का चित्रण प्रधानतया दो दृष्टिकोणो से प्राप्त होता है। एक आलम्बन के रूप मे, दूसरा उद्दीपन के रूप मे। आलम्बन के रूप मे प्रकृति-चित्रण वह है जिस मे कवि की कविता का लक्ष्य प्रकृति ही हो, केवल प्रकृति के रूपो का उद्घाटन करने के लिए ही जब कविता की गई हो। उद्दीपन के रूप मे प्रकृति का चित्रण तो होता है पर प्रकृति प्रधान न होकर साधन मात्र है। प्रकृति को देखकर हृदय के मनोभाव किसी प्रकार की प्रेरणा पाते हैं। आलम्बन रूप का प्रकृति-चित्रण ही वास्तविक प्रकृति-चित्रण अनेक आलोचको के द्वारा माना जाता है। यह वर्णन भी दो प्रकार का होता है—एक मे बिम्ब-ग्रहण होता है दूसरे मे अर्थ-ग्रहण। बिम्ब-ग्रहण से तात्पर्य यह है कि जिस वस्तु का वर्णन हो, उसका वर्णन इतना सूक्ष्म और विशद हो कि पाठक की आँखो के सामने उसका साक्षात् चित्र उपस्थित हो जाय। आलम्बन के रूप मे जो प्रकृति के चित्र उपस्थित किये जाते है, अधिकांश अर्थ-ग्रहण मात्र कराते है। केवल वस्तुओ के नाम गिना देने से ही वस्तु का बिम्ब-ग्रहण नही हो जाता। 'प्रिय-प्रवास' का अधिकाश प्रकृति-चित्रण अर्थ-ग्रहण मात्र ही है। वृन्दावन मे कवि के द्वारा जाने हुए ससार के समस्त वृक्षो की नामावली गिनाना, जायसी के पद्मावत मे प्रत्येक प्रसग पर ससार भर के वृक्षो, लताओ, फलो और मेवो की लम्बी सूची प्रस्तुत करना इसी प्रकार का प्रकृति-चित्रण है। बिम्ब-ग्रहण के लिए लम्बी सूची की आवश्यकता नही है, उसमें तो प्रकृति पर्यवेक्षण होना चाहिए—कुछ ही वस्तुओ का नामोल्लेख कर जब कवि व्यजना से आलोच्य वस्तु का चित्र प्रस्तुत कर देता है। सूर, प्रसाद और पन्त के प्रकृति-चित्रण इसी प्रकार के हैं। पन्त निश्चय ही इस दृष्टि से सर्वश्रेष्ठ है। ऐसा प्रतीत होता है कि कवि ने प्रकृति की तस्वीर खींच दी है।

हिन्दी साहित्य मे प्रकृति-चित्रण के अनेक प्रकार हैं। सर्वप्रथम रूप तो वहीं होगा जिसमे कवि की कविता का मुख्य विषय प्रकृति ही है। महाकाव्यो मे कवियों ने सदा ही प्रकृति के किसी-न-किसी रूप को अपनी कथा के वातावरण के रूप में काव्य का विषय बनाया है। आधुनिक कालीन महाकाव्यो—प्रियप्रवास, साकेत और कामायनी—के सर्गों के आरम्भ प्राय प्रकृति-चित्रण से ही होते हैं। जैसा ऊपर लिखा जा चुका है कि कवि अपनी-अपनी प्रतिभा के अनुसार कभी तो केवल अर्थ-ग्रहण करा पाता है और कभी बिम्ब-ग्रहण करा देता है। महाकाव्य की रीति के अनुसार प्रकृति के विविध चित्रो का काव्य मे होना आवश्यक है, इसीलिए सरिता, सरोवर, वन, उपवन, गिरि, पशु-पक्षी आदि का यथावसर समावेश करना कवि के लिए आवश्यक होता है। अत प्रत्येक प्रबन्ध-काव्य मे इस प्रकार के प्रचुर वर्णन हिन्दी-काव्यो मे प्राप्त होते हैं। इतना अवश्य है कि सर्वत्र ही अधिकांश वर्णन अर्थ-ग्रहण कराने वाले ही है। मुक्तक-काव्यो मे प्राचीन काल मे सेनापति तथा आधुनिक काल मे श्रीधर पाठक, हरिश्चन्द्र, रामनरेश त्रिपाठी, मुकुटधर पांडेय, प्रसाद, पंत, रामकुमार वर्मा, महादेवी आदि ने सुन्दर चित्र प्रस्तुत किये है। इन सब मे प्रकृति का बिम्ब-ग्रहण अवश्य प्राप्त होता है।

सन्त कवियो ने प्रकृति को भी उपदेश का माध्यम बनाया। कबीर और तुलसी तो प्रधानतया इस प्रकार के प्रकृति-वर्णन के प्रतिनिधि है। कबीरदास जी का एक-आध उदाहरण प्रस्तुत करना आवश्यक है—

सिंहो के लहंडे नहीं, हंसन की नहिं पाति।
लालन की नहिं बोरियां, साधु न चलै जमाति॥
माली आवत देख करि, कलिया करीं पुकार।
फूली फूली चुनि लई, काल्हि हमारी बार॥

स्पष्ट है, कवि को प्रकृति-वर्णन इष्ट नही है, किसी तथ्य को प्रस्तुत करने का साधन उसने प्रकृति को बना रखा है। इसी प्रकार गोस्वामी तुलसीदास जी 'मानस' मे वर्षा और शरद का वर्णन महाकाव्य की परम्परा-पालन मे करते हैं पर उनकी उपदेशात्मक प्रवृत्ति प्रधान बन जाती है। जैसे—

"सरिता सर, निर्मल जल सोहा। संत हृदय जस गत मद मोहा।"

"रस रस सूखि सरित सर पानी। ममता त्याग करहिं जिमि ज्ञानी।"
"क्षुद्र नदी भरी चलि उतराई। जिमि थोरे धन खल बौराई।"

यहाँ भी प्रकृति का वर्णन केवल उपदेश देने का साधन मात्र है, प्रकृति का कोई संश्लिष्ट चित्र इसमे नही है।

भक्ति-काल और रीतिकाल मे प्रधानतया प्रकृति-वर्णन उद्दीपन के रूप मे ही किया गया। सूर की गोपियो को प्रकृति उद्दीपन का ही साधन है। गोपिया कहती हैं—

"ऊधौ कोकिल कूजत कानन।
तुम हमको उपदेस करत हो भस्म लगावन कारन।"

सेनापति के प्रकृति वर्णन मे भी उद्दीपन की ही प्रधानता है। अशोक और केतकी आदि के फूलो को देख कर वे कहते है कि—

"सांवरे की सुरति को, सुरति को सुरति कराइ करि डारत बिहाल है" तथा

"आयौ सखी सावन, मदन सरसावन,"
"घोर जलधर की, सुनत धुनि धरकी,
दरकी सुहागिनि की छोह भरी छतिया।"

केशव, देव, बिहारी, पद्माकर आदि कवि तो रीतिबद्ध कवि थे, उनमे तो उद्दीपन भाव की प्रधानता थी ही।

प्राचीन कवियो मे प्रकृति-वर्णन का चौथा रूप अलकार रूप था। अलकार के लिए ही उन्होंने प्रकृति-चित्रो का उपयोग किया था। गोस्वामी तुलसीदास मे कामधेनु कलिकामी, चित्रकूट-अहेरी, भरत-यश और चन्द्रमा आदि के रूपक तथा उपमा उत्प्रेक्षाओ आदि मे प्रकृति का उपयोग इसी प्रवृत्ति से है। केशवदास जी का समस्त प्रकृति-वर्णन केवल अलकारो के लिए हुआ है। सेनापति, देव, बिहारी आदि में प्रकृति-वर्णन केवल अलकारो के लिए हुआ है।

हिन्दी-काव्य मे प्रकृति-वर्णन का एक स्वरूप वह है, जहा वह प्रकृति को मानवीय मनोभावो के उद्गार के प्रकाशन का साधन बनाता है। कही वह प्रकृति में ईश्वर के अनिवार्य नियमो का स्वरूप देखता है और कही उसमे क्रूरता, असहिष्णुता आदि के दर्शन करता है। मनुष्य की भिन्न-भिन्न धार-

णाओ के अनुसार प्रकृति का रूप बदलता जाता है। जो प्रकृति कृष्ण की उपस्थिति में आनन्द का साधन थी, वही उसकी अनुपस्थिति मे शत्रु बन गयी है। रात काली नागिन बन जाती है, ज्योत्स्ना उसके डस लेने पर उसका उलटा सफ़ेद रूप प्रतीत होती है। रामचन्द्र जी सीता के वियोग मे चन्द्रमा को अग्नि समझते है। कृष्ण के मथुरा जाने पर 'प्रिय-प्रवास' मे यशोदा टूटते हुए तारे को देखकर कहती है—

अहह अहह ! देखो टूटता है सुतारा ।'
पतन दिल जले के गात का हो रहा है।"

'साकेत' की ऊर्मिला को समस्त प्रकृति उसके मनोभावो के अनुरूप ही प्रतीत होती है।

छायावादी कवियो के प्रकृति-वर्णन मे प्रकृति के उपादान से सूक्ष्म मनोभावो का चित्रांकन कियागया है। छायावादी कविता मे प्रकृति का वर्णन उतना अभीष्ट नही है, जितना प्रतीक के रूप मे अवचेतन मे स्थित दलित मनोभावो की व्यजना है। छायावादी कवियो की भाषा मे प्रकृति सजीव है, मानव की भाँति सवेदना से युक्त और सवेद्य है। प्रसाद की 'लहर' मे प्रकृति का ऐसा ही रूप है , पत की 'वीणा', 'ग्रन्थि', 'पल्लव' और 'गुंजन' मे इसी प्रकार का प्रकृति-वर्णन है। निराला की 'गीतिका' और 'परिमल' मे प्रकृति का यही रूप है। निराला की 'शेफालिका' निर्जीव न होकर साक्षात् मानवी है।

"बन्द कचुकी के सब खोल दिये प्यार से
यौवन उभार ने
पल्लव-पर्यङ्क पर सोती शेफालिके।"

उनकी 'जूही की कली' एक फूल नही तरुणी है—

"विजन वल्लरी पर
सोती थी सुहागभरी स्नेह-स्वप्न-मग्न—
अमल कोमल तनु तरुणी—जुही की कली।
दृग बन्द किए, शिथिल पत्रांक में
वासन्ती निशा थी।'

प्रगतिवादी और प्रयोगवादी काव्य-धारा मे भी प्रकृति-चित्रण का बाहुल्य

है। प्रगतिवादी और प्रयोगवादी प्रकृति के रम्य रूप मात्र से प्रभावित नहीं हैं, वे तो उसके भद्दे, निकृष्ट और गर्हित रूप से ही अधिक प्रभावित हैं। कमल, गुलाब, मालती और चम्पा के स्थान पर गुड़हल, कनेर, कांस, अमलतास और सहजन को स्थान मिला है। सुन्दर, महान् और श्रेय के स्थान पर उनकी दृष्टि कुदर्शन, निकृष्ट और हेय पर पड़ती है। इस प्रकार इस नवीन कविताधारा द्वारा प्रकृति का उपेक्षित क्षेत्र भी प्रकाशित होता चला जा रहा है।

कविता और प्रकृति मे अनेक साम्य हैं—दोनो ही स्वत उद्भूत हैं, दोनों मे सौंदर्य है, कल्पना है, रंगीनी है और भावोद्रेक करने की शक्ति है। विज्ञान प्रकृति पर विजय कर रहा है, प्रकृति का संहार कर रहा है—सौंदर्य, सुषमा और कल्पना की प्रेरक देवी को उपार्जन और उपयोग की वेदी पर बलि चढ़ा रहा है। जगत् का भौतिक दृष्टिकोण बढ़ता जा रहा है। वैज्ञानिक युग भौतिक धरातल को जितना ही विशाल करेगा, मानसिक धरातल उतना ही क्षीण हो जायगा। शान्ति, कला, और भावुकता का अन्त होता जायगा। कविता का क्षेत्र न मिलेगा। यही कारण है, आज समस्त विश्व मे कविताधारा दिन पर दिन सूखती जा रही है। जैसे नैसर्गिक प्रकृतिविज्ञान के द्वारा परिवर्तित होकर मानव की गुलाम हो रही है, मशीन बन कर प्राणहीन हो रही है, उसी क्रम मे कविता भी भौतिकवादी होकर राजनैतिक दाव-पेंचों का लाउडस्पीकर बन रही है। पर इतना अवश्य है कि दोनो शाश्वत और अमर हैं। विज्ञान मे यह शक्ति नहीं है कि जगद्व्यापिनी प्रकृति का नाश कर सके। राजनैतिक विचारधारायें कुछ समय तक कविता को पथ-भ्रष्ट भले ही किये रहें पर सच्ची कविता का स्रोत पुनः फूट निकलेगा और वैज्ञानिक आवरण को चीरकर कलकल ध्वनि में आगे बढ़ता जायेगा। कविता और प्रकृति गलबाहीं डाले आयी थी और सृष्टि के अन्तिम दिन भी इनका यही दर्शन रहेगा।

हिन्दी साहित्य-निर्माण में नारी

स्त्रियो ने जीवन के प्राय सभी क्षेत्रो मे पुरुषो का साथ दिया है। पर जहाँ तक साहित्य के क्षेत्र का सम्बन्ध है, वह तो स्त्री के लिए सुलभ-ग्राह्य है, क्योंकि प्राचीन काल मे नारी का क्षेत्र बाहिर का लोक नहीं अपितु घर ही था। वह घर की साम्राज्ञी थी अत भौतिक जगत् मे चाहे उसका अधिक महत्व न रहा हो किन्तु जहाँ तक साहित्य का क्षेत्र है, उसमे तो घर और बाहिर का कोई प्रश्न ही पैदा नही होता। यही कारण है कि समय के प्रबल चक्र में उसका सहयोग यथाकाल और यथादेश होता रहा है। हमारा प्राचीन सस्कृत साहित्य इस बात का साक्षी है कि भारत मे मैत्रेयी, भारती, मदालसा, लक्ष्मी, विज्जका, शिलाभट्टारिका आदि अनेको स्त्रियाँ हो गई हैं जिनमे कई तो वेदों की मन्त्रद्रष्टा ऋषिका भी है। संस्कृत साहित्य मे चाहे उनका प्रवेश व्यापक नहीं रहा है, किन्तु फिर भी स्तुत्य अवश्य है। जीवन के सग्राम से थके पथिक की सेवा से बचे समय का वे हमेशा से सद्व्यय ही करती रही हैं। जहाँ तक नारी के घरेलू जगत् का सम्बन्ध है, इसके लोकगीत सदा अमर रहेंगे। वस्तुतः नारी का जीवन ही गीतिमय है। नारी का सुख-दुख तो सदा से ही गीतों की मदाकिनी मे प्रवाहित होता चला आया है। पर साहित्यिक क्षेत्र मे जो उसकी स्वल्पता रही है, वह तत्कालीन परिस्थितियो के प्रभाववश ही। फिर भी उसने लिखा है और बहुत कुछ लिखा है।

हिन्दी साहित्य का आदि काल वीरगाथा काल है। उस मारकाट के युग में भी चाहे नारी को गाने का अवसर नही मिला, पर अपने जौहर की ज्वाला से उसने साहित्य-उपवन को कम नही भरा है। उसके बाद भक्तिकाल आया। निराश जनता ने सूर और तुलसी के गीतो को सुना और उसका मनमयूर नाच उठा। अन्धे सूर के तानपूरे से निकले स्वरो ने क्या स्त्री और क्या पुरुष—सभी के हृदय को निनादित कर दिया और उस समय नारी का स्वर भी ऐसे गीतों मे गूंजा, जिसने अपने प्रेम की अभिव्यक्ति सरस गीतों में करके सारे ससार को प्रतिध्वनित कर दिया। इनमें मीरा के गीत सर्वप्रथम हैं। मीरा प्रेम की दीवानी है। मीरा के गीत भक्ति और प्रेम के अनूठे गीत हैं। कृष्ण की भक्ति

मे सरावोर होकर उसने जो कुछ गाया, उससे हिन्दी साहित्य झूम उठा। उसके गीतो मे दर्द, विरह, कसक, पीडा, कचोट और सब से बढ़कर तल्लीनता है। उसने वियोग-शृङ्गार को लेकर ही अधिक पद रचे हैं। उन पदो में हृदय की मर्मस्पर्शी वेदना, वियोगिनी की अनुभूति और दिल की व्याकुलता ऐसे स्वाभाविक रूप मे वही है कि देखते ही बनता है। वह आपा खो कर कहती है—

हे री मैं तो भई हू दीवानी मेरा मर्म न जाणे कोय।
हे री मैं तो प्रेम दीवानी मेरा दरद न जाने कोय।
सूली ऊपर सेज हमारी किस विधि सोणा होय।
नभ मण्डल पै सेज पिया की किस विधि मिलणा होय।
घायल की गति घायल जाने और न जाने कोय।
जौहर की गति जौहर जाने की जाने जिन जौहर होय।
दरद की मारी वन वन डोलूं वैद मिल्या नाँहि कोय।
मीरा की प्रभु पीर मिटे जब वैद सांवलिया होय॥

भक्ति मे तल्लीन हो कर वह सब कुछ खो बैठी और अपने प्रिय से केवल यही मागने लगी कि—

म्हाने चाकर राखो जी गिरधारी लला चाकर राखो जी।
चाकर रहसू बाग लगासू नित उठ दरसन पासूं।

इसी कविता के प्रभाव ने रवीन्द्र बाबू को भी अछूता नही रखा और वे भी गा उठे—

Make me the gardener of Flower Garden

इसके बाद इस काल में बहुत-सी कवयित्रियाँ हुई जिन्होने अपने भाव-सुमनो से माँ भारती के चरणो को सुशोभित किया। इन कवयित्रियो में छत्रकुवरि, रसिक बिहारी, ब्रजदासी, रत्नकुवरि, बीबी सुन्दर कुंवर, प्रताप कुंवरि बाई, साई और प्रवीणराय को लिया जा सकता है। इन सबकी कविताओ को विस्तार से न लिख कर केवल दो-एक उदाहरण देना ही पर्याप्त होगा।

(१) निर्मोही ऐसो जिय तरसावे।

पहले झलक दिखाय हम कू अब क्यों वेग न आवे।
कब सो तलफत मैं री सजनी, वाको दरस न आवे।
'विष्णु कुंवरि' दिल में आ करके ऐसो पीर मिटावे।

—विष्णु कुंवरि

(२) रत्नाकर लालित सदा, परमानन्दहि लीन।
अमल कमल कमनीय कर, रमा कि राय प्रवीन॥

—प्रवीन राय

दयाबाई और सहजोबाई भी काव्य की गायिकाएं है। ये दोनो देविया सन्त चरणदास की शिष्या तथा उन्ही की जाति की थी। दयाबाई की वाणी 'दयाबोध' और 'विनय मालिका' तथा सहजो बाई के गीत 'सहजो प्रकाश' मे संगृहीत हैं। दयाबाई पर मीरा का रंग चढा दीखता है। वह भी अपने शब्दो मे मीरा की वाणी को प्रतिध्वनित करती है—

"कै मन जानत आपनो कै लागी जिहि पीर"

जिस प्रकार हिन्दू देवियो ने हिन्दी साहित्य की अभिवृद्धि की है; उसी प्रकार मुस्लिम कवयित्रियाँ भी उनसे पीछे नही रही। ताज और शेख दोनो की कविताए' प्रेम की पीर की अभिव्यक्ति मे बहुत ऊँची है। ताज के प्रेम मे भक्ति की पुट है और शेख रगरेजिन की कविता शृगारिकता मे अप्रमेय है। कही तो यह प्रेम विलासिता की भी चरम सीमा को छूता-सा प्रतीत होता है। रगरेजिन के ये यौवन के गीत उस काल मे बहुत ऊँचे थे, क्योकि उस समय किसी भी नारी ने ऐसे गीतो की रचना नही की थी इसलिए वह अपने गीतो मे अपने समान ही हैं। दोनो का एक-एक ही उदाहरण पर्याप्त रहेगा।

सुनो दिलजानी मेरे दिल की कहानी तुम,
दस्त ही बिकानी बदनामी भी सहूंगी मैं।
देव पूजा ठानी मैं निमाज हूं भुलानी,
तजे कलमा कुरान सारे गुनन गहूंगी मैं।
स्यामला सलोना सिरताज सिर कुल्ले दिये,
तेरे नेह दाग में निदाघ ह्वै दहूंगी मैं।
नन्द के कुमार कुरबान ताणी सूरत पे,
हौं तो तुरकानी हिन्दुवानी ह्वै रहूंगी मैं॥"

प्रश्न—"कनक छरी सी कामिनी, काहे को कटि छीन।

उत्तर—कटि को कचन काटि विधि, कुचन मध्य धरि दीन।" —शेख

इसके बाद रीतिकाल आया। भक्ति की सरिता सूख चली। विलासिता और शृंगार के स्रोत पहाडी झरने के समान सब बाधाओ को तोड़कर बहने लगे। काव्य लज्जा की नग्नता मे खुल कर वासना के गीत गाने लगा। भला शर्म का अवगुण्ठन ओढने वाली नारी पुरुष की निर्लज्जता मे क्या हाथ बटा सकती, इसीलिए रीतिकाल मे नारी को मौन ही साधना पडा।

धीरे-धीरे युग परिवर्तन हुआ, देशभक्ति की लहर उठी, आदर्श और मर्यादा की पुकार हुई, छायावाद और रहस्यवाद के गीत गाये जाने लगे। प्रगति की प्रगतिशीलता ने रीतिकाल की लज्जाशील नारी के अवगुण्ठन का निवारण कर डाला और हमे अनेक देवियों का सरस्वती की वरद पुत्रियो के रूप में हाथ मे वीणा उठाकर गाते हुए स्वर सुनाई पडा। ऐसी कवयित्रियो मे आधुनिक मीरा महादेवी का नाम सर्वप्रमुख है। उनकी कविताओ मे हृदय को पवित्र करने वाली करुणा की अपूर्व कलामयी अभिव्यक्ति है, जो-उन्हें किसी भी उच्च कवि के समकक्ष ला करके खडा कर देती है। उनका सुख और दुःख दार्शनिक की सीमाओ मे खेलता है। उनका प्रेम निष्काम है। वे युग-युग तक अपने प्रिय के विरह के तडपने मे ही आनन्द अनुभव करती हैं। वे उसे पा करके भी खो देना चाहती हैं। वे अमरता नही चाहती किन्तु केवल मर मिटने का ही अधिकार चाहती हैं।

क्या अमरों का लोक मिलेगा
तेरी करुणा का उपहार?
रहने दो हे देव! अरे यह
मेरा मिटने का अधिकार॥

उनका हृदय प्रतिक्षण एक अभाव का अनुभव करता है और उसकी खोज मे मग्न रहता है। वे सर्वदा एक शून्यता का अनुभव करती हैं। वे इस शून्यता के इस असीम राज्य की साम्राज्ञी हैं और प्राणो का दीप जलाकर दीपावली मनाती रहती हैं।

"अपने इस सूनेपन की मैं हूँ रानी मतवाली,
प्राणों का दीप जला करती रहती दीवाली।"

इनके बाद सुभद्रा कुमारी चौहान का नाम आता है, जिन्होंने मुख्य रूप से दो प्रकार की रचनाएँ की हैं। एक मे तो क्षत्राणी का वीर दर्प है और दूसरी में नारी-हृदय की कोमलता है। कुछ कविताओ मे भक्त की आत्म-समर्पण की भावना का भी सुन्दर समागम हुआ है। उनकी तीनो प्रकार की भावनाओ का दर्शन निम्न उदाहरणो मे किया जा सकता है—

"बुन्देले हरबोलों के मुख हमने सुनी कहानी थी,
खूब लड़ी मर्दानी वह तो झासी वाली रानी था।"

—झासी की रानी

मैं बचपन को बुला रही थी, बोल उठी बिटिया मेरी।
नन्दन वन सी फूल उठी, छोटी सी कुटिया मेरी।
पाया मैंने बचपन फिर से, बचपन बेटी बन आया,
उसकी मजुल मूर्ति देखकर, मुझ में नव जीवन आया॥

—मेरा बचपन

"देव तुम्हारे कई उपासक, कई ढग से आते हैं,
सेवा मे बहुमूल्य वस्तुएँ साथ वह अपने लाते हैं।
मैं हूँ एक गरीबनी ऐसी जो कुछ साथ नहीं लाई,
फिर भी साहस कर चरणों मे सेवा करने को आई।
चरणो में अर्पित है इसको चाहे तो स्वीकार करो,
यह तो वस्तु तुम्हारी है ठुकरा दो या प्यार करो॥

इसके अतिरिक्त और भी बहुत-सी कवयित्रियो ने जो अपने भाव-सुमन चढ़ाये हैं, वे भी कम सुगन्धित नही हैं। ऐसी कवयित्रियो मे तारा पाण्डेय, होमवती, सुभद्राकुमारी सिन्हा तथा विद्यावती 'कोकिला' आदि को लिया जा सकता है। कुमारी शैली रस्तोगी के गीत भी काफी सफल रहे हैं।

गीत-क्षेत्र के साथ-साथ गद्य-साहित्य में भी इनकी अनुपम देन है। महादेवी वर्मा सफल कवयित्री ही नही, उनकी गद्य रचनाएँ भी उच्च कोटि की हैं। "शृंखला की कड़ियाँ" उनकी नारी जागरण की भावनाओं

से ओत-प्रोत है, "अतीत के चलचित्र" उनके करुणार्द्र हृदय का परिचय देते हैं। उनके आलोचनात्मक गद्य मे भी उनकी प्रतिभा बौद्धिक स्तर को छूती है।

उपन्यास और कहानी-क्षेत्र में शिवरानी देवी, उमादेवी मित्रा, श्रीमती-होमवती देवी, सुमित्रा कुमारी सिन्हा और कमला देवी चौधरी का नाम अमर रहेगा। शिवरानी देवी में मुन्शी प्रेमचन्द का व्यक्तित्व प्रतिफलित होता है। उषा देवी मित्रा के उपन्यास 'प्रिया', 'पी कहाँ', 'व्यथा' आदि अधिक सफल हुए हैं। सत्यवती मलिक की कहानियो मे हृदय की पीडा और पारिवारिक जीवन के मार्मिक व्यग्य अधिक निखरे हैं। चन्द्रवती जैन तथा श्रीमती सोनरिक्सा 'छाया' की कहानियाँ भी उच्चकोटि की है। कुमारी कंचनलता सब्बरवाल तथा शकुन्तला अग्रवाल की साहित्यिक रचनाएं हिन्दी साहित्य का शृंगार हैं। श्रीमती चन्द्रावती लखनपाल एक आदर्श अध्यापिका होने के साथ-साथ उच्च कोटि की साहित्यिक भी हैं। उनका 'शिक्षा-मनोविज्ञान' हिन्दी साहित्य की अमूल्य और अभूतपूर्व निधि है, जिस पर आपको मगलाप्रसाद पुरस्कार भी प्राप्त हुआ है। सेक्सरिया पुरस्कार तो एक दर्जन से भी अधिक महिलाए प्राप्त कर चुकी हैं।

अन्त मे हमें, नारी-जागृति का सदा सम्मान करना चाहिए। जितना भी हम इन्हे स्वतन्त्रता और आवश्यक सामग्री जुटायेंगे, उतना ही ये निकट भविष्य में हिन्दी साहित्य को अधिक-से-अधिक दे सकेंगी। जहा तक नारी की प्रतिभा का प्रश्न है वे भी पुरुषो के समान उच्च शिक्षा की अधिकारिणी हैं। इनके साथ ही नारियो का कर्तव्य भी बढ जाता है। आज भारत स्वतन्त्र है। हिन्दी साहित्य की उन्नति मे ही भारतीय गौरव की उन्नति है। इसलिये दोनो की उन्नति करने के लिये नारी को कटिबद्ध हो जाना चाहिए और यह कार्य स्पर्द्धा की भावना को लेकर नहीं, अपितु इन साहित्य की अभिभाविका के रूप में ही करना चाहिए, क्योंकि ससार जानता है कि नारी की जागृति में ही किसी देश की जागृति और उन्नति निहित है।

———

राष्ट्रभाषा और मातृभाषा

भाषा-तत्वविज्ञो की धारणा के अनुसार, किसी भाषा के उत्थान और पतन मे राजनीतिक और धार्मिक उथल-पुथल ही कारण बनते हैं। भूतकाल का इतिहास तो उसे प्रभावित करता ही है, आज हमारी आँखो के सम्मुख भी वह दृश्य उपस्थित है। भारतीय सविधान मे हिन्दी को राष्ट्रभाषा का पद दिया गया और सम्पूर्ण भारत मे क्षेत्रीय भाषाओ के लिए एक नवीन समस्या पैदा हो गई। कही हिन्दी का राष्ट्रभाषा-पद पर आसीन होना, उन क्षेत्रीय भाषाओ के लिए तो हानिप्रद नही रहेगा। बगला, गुजराती, मराठी और तामिल-तेलगू भाषा-भाषी सबके सब इस समस्या पर सोचने को वाध्य हुए। सभी का मातृभाषा-प्रेम उफान लेने लगा। ऐसा होना स्वाभाविक भी है, कोई हृदय भूलकर भी ऐसा नही चाहेगा कि उसकी मातृभाषा अवनति की अवस्था प्राप्त करे।

तो हम अभी उसी समस्या पर विचार करना चाहेगे कि क्या हिन्दी का राष्ट्र-भाषा पद पर आसीन होना क्षेत्रीय भाषाओ के लिए अवनति का कारण हो सकता है ?

राष्ट्रभाषा का अर्थ राष्ट्र की वह काम-चलाऊ भाषा है, जिससे एक प्रान्त दूसरे प्रान्त से अपना सम्पर्क जोड सके। बगाल और मद्रास वाले विदेशी भाषाओ मे दक्षता अपना कर भी अपनी मातृभाषा बगला, किंवा तामिल-तेलगू का अहित न देख सके तो हिन्दी के प्रति उनकी आशका सर्वथा अनुचित है। राष्ट्रभाषा हिन्दी किसी प्रान्तीय भाषा से स्पर्द्धा की बात नही पालती। उल्टे वह प्रान्तीय भाषा का विकास चाहती है। भारत की जितनी भी प्रान्तीय भाषाएँ हैं—हिन्दी की सगी बहिनें ही कही जायेंगी। राष्ट्र-भाषा के रूप मे यदि उसकी पहुच उन प्रान्तो में होती है तो और भी कल्याण-प्रद अवसर सामने आता है। जहाँ राष्ट्र-भाषा का कोष प्रान्तीय भाषाओ से समृद्ध होगा, वहा प्रान्तीय भाषाए राष्ट्रभाषा से बहुत कुछ ग्रहण कर सकेंगी। कहना तो ऐसा चाहिए कि हिन्दी प्रारम्भ से ही इस दिशा में प्रयत्नशील रही है—बगला, गुजराती तथा अन्य कितनी ही प्रान्तीय भाषाओ के यशस्वी कृति-कारो को अखिल भारतीय रूप हिन्दी से ही मिला है। कवि-गुरु रवीन्द्रनाथ

तथा शरत् का परिचय भारत मे हिन्दी के सहारे ही व्यापक हुआ। हिन्दी में भी वे दोनो उतने ही मान्य हैं, जितना समान उन्हें बगला मे प्राप्त है। कन्हैयालाल माणिकलाल मुंशी जी को गुजरात से बाहर आलोकित करने का श्रेय हिन्दी को ही है।

राष्ट्रभाषा हिन्दी को विदेशी भाषा की सज्ञा देना और अपनी मातृभाषा की रक्षा के लिए आकुलता प्रदर्शित करना, आज के चिन्तन-युग मे हास्यास्पद प्रयास कहा जायगा और कुछ नही।

भारत को राष्ट्रव्यापी भाषा की आवश्यकता सदा से रही है। इसी के अभाव मे उसकी सार्वभौमता कई बार बनकर भी खण्डित हुई। विदेशी भाषा अंग्रेजी के विविध दुर्गुणो को दृष्टि से ओझल करते हुए, सरदार पणिक्कर जैसे विचारक, उसका आभारमात्र इसलिए मानते हैं कि उसने भारत को एक राष्ट्र का रूप प्रदान किया। वह विभिन्न प्रान्तो को मिलाने वाली एक कडी बनी।

प्रान्तो की भाषाए अपने स्थान पर वाछित विकास प्राप्त करती रहेंगी। राष्ट्रभाषा हिन्दी से उन्हें यह लाभ और मिलेगा कि अपनी छटा अपने प्रान्त से बाहर भी दिखा सकेंगी। एक तामिल किंवा तेलगू भाषी कवि यदि ब्रज-भाषा मे अपनी रचना सुनाने को उठेगा तो एक बिहारी कवि बगला और तेलगू में अपनी कृतियाँ सुनाकर परस्पर बन्धुत्व का परिचय देगा।

राष्ट्रभाषा हिन्दी आज भारत राष्ट्र की सास्कृतिक एकता का प्रतीक कही जा सकती है। उस प्रतीक को मान्यता देने के लिए प्रान्तीय भाषाओ के सेवकों को उदार हृदय अपनाना है।

राम ने चौदह वर्ष का वनवास कर जिस उत्तरीय सस्कृति का प्रचार दक्षिण मे किया, इतिहास साक्षी है, समय आने पर स्वामी वल्लभ जैसे दक्षिण सतों ने वही सस्कृति व्याज सहित सुप्त उत्तर को लौटा दी। सूर और तुलसी के उत्थान मे दक्षिण का ही ज्ञान काम कर रहा था। यदि उत्तर और दक्षिण के सांस्कृतिक मिलन मे राष्ट्रीय भाषा का अभाव नहीं होता तो कौन कह सकता है, ऋण लेने और चुकाने का प्रश्न ही नहीं उठता।

सन् १९५५ मे हिन्दी-साहित्यकार परिषद् की ओर से नैनीताल मे एक अन्तः

प्रांतीय लेखक शिविर का आयोजन किया गया था । इस शिविर के अध्यक्ष-पद पर मराठी कवि श्री बालकृष्ण बोरकर विराजमान थे । वहाँ विभिन्न भाषाओं के लेखकों ने जो विचार प्रकट किए, वे ध्यान देने योग्य है । बोरकर के शब्दों मे "भारत के साहित्यिक पुनरुत्थान और सांस्कृतिक एकता का सबसे आसान तरीका हिन्दी को अखिल भारतीय भाषा—राष्ट्र-भाषा—मान लेना है, जिससे भारतीय भाषाओं की सर्वोत्तम कृतिया, किसी एक भाषा मे उपलब्ध हो सकें। भारत को वर्तमान १४ संस्कृतियों के स्थान में, एक विभिन्न संस्कृति की आवश्यकता है। बंगला भाषा के यशस्वी उपन्यासकार 'वनफूल' ने कहा है कि प्रत्येक लेखक को अपनी भाषा के अतिरिक्त एक अन्य भाषा सीखनी ही चाहिए। तेलगू कवि श्री नारायणाचार्य ने तो यहाँ तक कहा है कि साहित्यिक संसार मे भाषा की बाधाएँ कृत्रिम हैं। देश के विभिन्न भागो को एक सूत्र में बाँधकर हिन्दी—राष्ट्रभाषा—हिन्दी ही रख सकती है। मातृभाषा और राष्ट्रभाषा परस्पर एक दूसरे की पूरक भाषा होगी।"

निश्चय ही ऐसी स्थिति मे अपनी मातृभाषा का उत्थान कोई भी प्रान्त राष्ट्रभाषा के उत्थान मे योग देकर ही कर सकता है। राष्ट्रभाषा के प्रश्न को लेकर किसी को भी अपना हृदय कलुषित नही करना चाहिए।

आदर्शवाद-यथार्थवाद

मानव-जीवन के दो पहलू हैं—एक वह जो हमे दिखाई पड़ता है और दूसरा वह जिसे हम चाहते हैं। जो वस्तुत हम देखते है, वह बहुत सुन्दर और श्रेष्ठ नहीं हैं। उसमे तो जहा फूल हैं वहा कांटा भी है, जहाँ मनुष्यता है वही घोर अन्याय, अत्याचार और नृशंसता है। जहाँ हम लज्जा और मर्यादा का मकड़ी का जाला तानते है, उसी के नीचे अश्लीलता, अनाचार, व्यभिचार और कामवासना का साम्राज्य छिपा होता है। ऐसा होने पर भी सत्य का रात-दिन साक्षात्कार करने पर भी हमारी आँखे और हमारा मन जन-जीवन का एक और स्वरूप देखते हैं। वह स्वरूप आनन्ददायक है, उसे कांटा नही दिखाई पड़ता, पुष्प ही पुष्प दिखाई पड़ता है। उसकी आशा के प्रकाश में वेदना और निराशा प्रत्यक्ष होते हुए भी दिखाई नही पडती। जो काल्पनिक है,

भविष्य के गर्भ मे है, वही मूर्तिमान् होता है। हमारी भावना मर्यादा, सुविचार और मानव-कल्याण को ही देखना चाहती है, उसी के उन्माद मे वह अन्याय को देखकर कहता है यह सत्य नही, सत्य तो न्याय है जो आने वाला है। मनोविज्ञान और अनुभव की कसौटी पर कसे हुए तथ्य को भी वह सत्य नही मानता, क्योकि उसकी दृष्टि तो उस लक्ष्य पर टिकी है जैसा कि उसकी कल्पना देखना चाहती है। इन दो रूपो मे से पहले का नाम यथार्थ है, दूसरे का आदर्श।

मानव-जीवन कण्टकाकीर्ण है, जन्म और मरण की दो चरम पीडाओ के बीच समग्र जीवन प्रायश्चित्त ही है। क्षुधा, रोग, काम, प्रपच तथा अन्य ईति-भीतियो के कारण मनुष्य जिस दिन से जन्म लेता है, मरण पर्यन्त आराम की सास नही लेने पाता। फिर भी वह अपने जीवन को शाप नही मानता, वरदान ही मानता है, दीर्घायु की ही कामना करता है। प्रसव-वेदना की अपार पीडा सहती हुई भी नारी हर्षोत्फुल्ल रहती है और पुत्र का मुख देखने के लिए लालायित रहती है। दु ख के बीच रहता हुआ, भयकरता का सामना करता हुआ मानव आनन्दित है, उसमे आशा का सचार है, जो कभी नही मिलता, उसी पर उसका दृष्टि लगी रहती है। इसका कारण यही है कि जो यथार्थ है, उससे परे जो आदर्श है, वही उसके मन मे रमा है। यदि आदर्श की मृगमरीचिका न होती तो क्या मनुष्य इस दु खमय ससार मे एक क्षण भी रह पाता? आदर्श कृत्रिम नही है, असत्य होते हुए भी सत्य है। असत्य का यही सत्य रूप रमणीयता का विधेयक है। काव्य की कल्पना, रमणीयता और रसात्मकता, उसके 'शिव और सुन्दर' का तथ्य आदर्श की ही नीव पर खडे हैं। साहित्य मे मानव-हित है, मानव के प्रबल मनोवेगो का समुच्छ्वसित उच्छ्वास ही काव्य है, रमणीयार्थ का प्रतिपादक या रसात्मक वाक्य ही काव्य है, ये सभी लक्षण आदर्शवाद की ओर ही इगित करते है।

भारतीय साहित्य आदर्शवादी रहा है। महाकाव्य, नाटक और कथासाहित्य सभी मे आदर्शवाद ही दृष्टिगोचर होता है। जीवन में यद्यपि विषाद, अन्याय और अशान्ति की प्रचुरता है, पर भारत का कोई भी महाकाव्य या नाटक दु खान्त नही मिलता। नायक धीरोदात्त ही मिलता है, ईश्वरीय न्याय ही

सर्वत्र मिलता है। भारतीय साहित्य मे दुःखान्त का सर्वथा अभाव इसी दृष्टि-कोण का परिणाम है। उदारता यहाँ की सास्कृतिक भावना का मेरुदण्ड है, त्याग, तपस्या और निष्काम कर्मयोग जो यहा के महाकाव्य और नाटको मे केन्द्रबिन्दु थे, आदर्शवादी प्रवृत्ति के परिणाम थे। शील का जैसा परिपाक भारतीय साहित्य में मिलता है, ससार के किसी साहित्य मे नही मिलता। शकुन्तला का प्रणय, सीता का त्याग, राम का आदर्श, राधा और मीरा की प्रेमभावना, प्रसाद की कामायनी, महादेवी की वेदना, प्रियप्रवास के कृष्ण, साकेत की ऊर्मिला, प्रसाद के नाटको के नायक, प्रेमचन्द के उपन्यास सब मे आदर्श ही हैं। यह सब कल्पना का विलास मात्र नही, सब मे जीवन की ठोस अनुभूति ही है।

यथार्थवाद की पुकार आधुनिक है। यथार्थ स्थूल को देखता है, सूक्ष्म को नही। आदर्श भारत की उपज है तो यथार्थ पश्चिम की। पश्चिम का दृष्टिकोण सदा ही भौतिक रहा है। इस जीवन की आवश्यकताओ को उसमे अधिक महत्व दिया जाता रहा है। इसी दृष्टिकोण ने वहाँ पर फ्रांस की राज्य-क्रान्ति, रूस की राज्य-क्रान्ति और इग्लैड की रक्तहीन क्रांति जैसी क्रांतियाँ की और अपने-अपने देश के राजाओ को प्रजा के हाथ मौत के घाट उतरवाया। उमर खय्याम की 'खाओ पीओ मौज करो' की भावना वहा पर खूब पनपी। इसी भावना ने राजनीति मे मार्क्स-दर्शन और मनोविज्ञान मे फ्रायडवाद को जन्म दिया। क्षुधा और काम ही सारी प्रवृत्तियो के मूल आधार बन बैठे। इन प्रवृत्तियो को मूलाधार मानकर जो नव-निर्माण का स्वप्न देखा जा रहा है, वही है यथार्थवाद। इसके अनुसार महाकाव्य का आदर्श, भीष्म का ब्रह्मचर्य, राम की मर्यादा, मीरा की प्रेमोन्मत्तता कपोल कल्पना है। यथार्थवादी समाज के कुत्सित, घृणित पर सत्य का उद्घाटन करेगा। वह भारतीय नारी के आदर्श को असत्य कहेगा, उसके साथ सहानुभूति रखेगा, पर वह सहानुभूति इस रूप में होगी कि उसे भी स्वतन्त्रता मिले, वह एक पुरुष के आधीन न रहे उसे मुक्ति मिलनी चाहिए—

मुक्त करो नारी को
चिरबंदिनी नारी को

युग युग की बर्बर कारा से
जननी सखी प्यारी को
युग युग से अवगुण्ठित गृहिणी सहती पशु के बन्धन ।
खोलो हे मेखला युगो की कटि-प्रदेश से तन से ॥
अंगों की अविकच इच्छाएं रहें न जीवन पातक ।
वे विकास में बनें सहायक, होवें प्रेम प्रकाशक ॥
क्षुधा-तृष्णा ही के समान युग्मेच्छा प्रकृति प्रवर्तित ।
कामेच्छा प्रेमेच्छा बनकर हो जाती मनुजोचित ॥ —पंत

इन पक्तियों से स्पष्ट है कि पत जी कामेच्छा को क्षुधा और तृष्णा के समान ही समझने और प्रेमेच्छा को मनुजोचित कह रहे हैं। सदियों से भारत की नारी प्रेम के क्षेत्र मे स्वेच्छाचारिणी न बन सकी, यही उसकी परतन्त्रता है, इससे स्वातन्त्र्य देने के लिए यथार्थवादी काव्यकार आतुर है।

भारतीय विचारधारा मे नारी का श्रेष्ठतम रूप माता है, जिसमे निस्स्वार्थ वात्सल्य और त्याग है। भगिनी भ्रातृप्रेम का नमूना और पत्नी सत् और पतिव्रत की देवी है। यथार्थवादी दृष्टिकोण मे नारी का दाम्पत्य भाव ही प्रधान है। कामवासना वैसी ही है जैसे क्षुधा। इस पर आदर्श और कर्त्तव्य का भार यथार्थवादी स्वीकार नहीं करता। सस्कृति और न्याय को वह सर्वथा ढोंग मानता है।

"सस्कृति और न्याय का जो ढोंग करते
पाप पुण्य मर्यादा शासन व्यवस्था के
नाम पर रचते प्रतिष्ठा की समीक्षा
शोषण कायम कर नाजायज सत्ता" —अंचल

इस प्रकार यथार्थवादी का मुख्य दृष्टिकोण शोषिता नारी की ओर गया। जो दासताएं युग-युग से नारी के मन और शरीर को बाँधे हुए थीं, उनसे उसे मुक्ति देना प्रमुख हो गया। प्रगतिवादी काव्य तथा कथा-साहित्य में लेखक यथार्थ-चित्रण मे प्रवृत्त हुए। एक ओर तो वे नारी को सब प्रकार की स्वतन्त्रता दे रहे थे, दूसरी ओर समाज-बन्धनों की आड मे जो विकृतावस्था थी, उसका नग्न चित्रण करने लगे। निराला की 'चमेली', साकृत्यायन का 'वोल्गा

से गङ्गा', यशपाल की 'दादा कामरेड', इलाचन्द्र जी की 'लज्जा' आदि में यथार्थ चित्रण चल निकला। जैनेन्द्र, भगवतीप्रसाद वाजपेजी, भगवतीचरण वर्मा, अज्ञेय सभी अपने उपन्यासो मे यथार्थ चित्र उपस्थित करने लगे। प्रेमचन्द्र के उपन्यासो का आदर्शवाद आउट-आफ-डेट बन गया। कहानियो मे भी यथार्थवादी प्रवृत्ति झलक उठी।

यथार्थ का दूसरा दृष्टिकोण अर्थ पर अवलम्बित है। सम्पूर्ण आदर्श, सभी प्रकार के उच्च भाव, सस्कृति, मर्यादा, सम्मान और महत्व का मान-दण्ड अर्थ है। भारत मे अर्थ की महत्ता कभी न थी। एक भिक्षु जिसके पास रहने को घर, तन पर वस्त्र और गाँठ में एक पैसा नही, सबसे बडे सम्मान का अधिकारी होता था। आज वह स्थिति नही रही। प्रत्येक व्यक्ति को अपनी भौतिक आवश्यकताओ की पूर्ति का अधिकार है। मानवता का माप-दण्ड साम्यभावना है। आर्थिक स्वतत्रता के बिना किसी उच्च भावना का विकास नहीं हो सकता। यथार्थवादी इसीलए आर्थिक दृष्टि से शोषित मजदूर और किसान को अपनी रचना का विषय बनाता है। काल्पनिक गगन से उतर कर वह पृथ्वी पर आता है और गरीब मजदूरो की झोपडियो और खडहरो में विचरण करता है।

"सिर से आंचल खिसका है, धूलभरा जूड़ा।
अधखुला वक्ष, ढोती तुम सिर पर धर कूड़ा॥
हंसती बतलाती, सहोदरा-सी जन-जन से।
यौवन का स्वास्थ्य झलकता आतप-सा तन से॥
तुमने निज तन की तुच्छ कचुकी को उतार।
जग के हित खोल दिये नारी के हृदय द्वार॥

—सुमित्रानन्दन पत

निश्चय ही यथार्थवाद ने साहित्य के एक आवश्यक अग की पूर्ति की। आदर्शवाद मे कल्पना की प्रधानता थी, यथार्थवाद ने ठोस जीवन का स्वरूप प्रस्तुत किया। इसमे मनोविज्ञान और सचाई अधिक है, इसने समाज के उपेक्षित अ श को उभारा और साहित्य को सम्पन्न किया।

यथार्थवादी दृष्टिकोण तार्किक है, मनोवैज्ञानिक है और जीवन के ठोस

तथ्यो पर आधारित है। मार्क्स और फ्रॉयड के सिद्धान्त स्वाभाविक हैं, उनमे चिरन्तन सत्य का अ कन है, फिर भी उसका सब कुछ ठीक नही है। क्षुधा और काम अत्यत महत्वपूर्ण प्रवृतिया हैं, पर ऐसी बात नही कि इनके क्षेत्रो से बाहर कुछ है ही नही, और यदि है तो सर्वथा असत्य और कल्पना का विलास। भारत का सम्पूर्ण प्राचीन साहित्य जिसमे यह सब दृष्टिकोण है, सर्वथा काल्पनिक नहीं माना जा सकता। फ्रॉयड के सिद्धान्त मान लेने पर सूरदास की राधा का कोई अस्तित्व न माना जायगा। कामेच्छा पर आधारित आकर्षण, विकर्षण, तृप्ति और अतृप्ति के सिद्धान्त प्रेम के मार्ग में नही टिक सकते। आदर्श प्रेम का आधार काम-वासना, उससे सम्बन्धित तृप्ति और अतृप्ति नही होतीं, ऐसी अवस्था मे वह प्रेम जिसका प्रसार कालिदास की शकुन्तला से लेकर मीरा तक मे हम पाते हैं, क्या सर्वथा मिथ्या है? इसी प्रकार आज के आर्थिक दर्शन के विपरीत भी जीवन का स्वरूप हो सकता था। गान्धीवाद की साम्य योजना यथार्थवादी साम्य-योजना का समुचित उत्तर है।

आदर्शवाद और यथार्थवाद के सम्बन्ध मे विद्वानो, कलाकारो और आलोचकों के भिन्न-भिन्न मत रहे हैं। प्रसाद जी समन्वयवादी थे अत. अपना मत व्यक्त करते हुए उन्होने लिखा है—"कुछ लोग कहते हैं कि साहित्यकार को आदर्शवादी होना चाहिए, सिद्धान्त से आदर्शवादी धार्मिक प्रवचनकर्त्ता बन जाता है और यथार्थवादी सिद्धान्त से इतिहासकार ही सिद्ध होता है, क्योकि वह चित्रित करता है कि समाज कैसा होता है और कैसा था। किन्तु साहित्यकार न तो इतिहासकार है और न धर्म-शास्त्रप्रणेता। दुःख-दग्ध जगत और आनन्दपूर्ण स्वर्ग का एकीकरण ही साहित्य है, इसलिए साहित्य मे यथार्थ और आदर्श घुले-मिले रहते हैं।"

प्रेमचन्द जी यद्यपि आदर्शवादी थे फिर भी यथार्थ को वे आदर्श का साधन मानते थे। उनके शब्दों मे—

"यथार्थ यदि हमारी आंखें खोल देता है तो आदर्शवाद हमें उठाकर किसी मनोरम स्थान मे पहुंचा देता है। लेकिन जहा आदर्शवाद में यह गुण है वहाँ इस बात की भी शका है कि हम ऐसे चित्रो को न चित्रित कर बैठें जो सिद्धातो

की मूर्तिमात्र हो, जिनमे जीवन न हो। किसी देवता की कामना करना मुश्किल नही है, लेकिन उस देवता मे प्राण-प्रतिष्ठा करनी मुश्किल है।" इस प्रकार प्रेमचन्द ने भी आदर्श का महल यथार्थ की नीव पर ही बना रखा है।

महादेवी जी ने इस समस्या पर अपना विचार व्यक्त करते हुए लिखा —"किसी युग में आदर्श और यथार्थ या स्वप्न और सत्य कुरुक्षेत्र के उन पक्षो में परिवर्तित करके नही खडे किये जा सकते जिनमे से एक युद्ध की आग में जल गया और दूसरे को पश्चात्ताप के हिम में गल जाना पड़ा। वे एक-दूसरे के पूरक रहकर जीवन को पूर्णता दे सकते हैं।"

यथार्थ के बिना साहित्य नही। साहित्य तो मानव चित्तवृत्तियो और अनुभूतियो को प्रतिबिम्बित करता है। सनातन मनोविकार यथार्थ ही हैं, उन्ही की अभिव्यक्ति साहित्य में होती आई है। पर आज का यथार्थवादी दृष्टिकोण जिसमे लघुता, अश्लीलता और क्रान्ति का उद्घाटन प्रधान है, और जिसमे आदर्श अस्वाभाविक, असत्य और अहितकर समझा जाता है, सत्साहित्य का सार्जन नही कर सकता। साहित्य जन-जीवन का प्रतिबिम्ब होते हुए भी समाज को शक्तिशाली, श्रेष्ठ और मर्यादित बनानेवाला है। यद्यपि उसमे निहित उपदेश कांता-सम्मत है, पर उसका लक्ष्य महान् है। मगल ही उसका साध्य है। लोक-मगल का लक्ष्य रखने वाला साहित्य निश्चय ही आदर्शवादी है, लोक-मगल स्वय एक आदर्श है। उच्च उद्देश्य रखने वाला तभी अपने उद्देश्य को प्राप्त करेगा जब वह ऊपर की ओर दृष्टि रखे, निम्न दृष्टि रख कर कोई ऊपर नही जा सकता। अत साहित्य मे आदर्शात्मक दृष्टिकोण आवश्यक है पर ऐसा आदर्श नही जो यथार्थ की हत्या कर दे। यथार्थ की ही आदर्शात्मक अभिव्यक्ति होनी चाहिए। आदर्श वह आवरण है जो यथार्थ को छिपाता नही वरन् उसकी रक्षा करता है, उसे और भी आकर्षक बनाता है। नग्न-सौन्दर्य जैसे आवरण के बिना कुरुचि उत्पन्न करता और सुन्दर को असुन्दर कर देता है उसी प्रकार नग्न यथार्थ असयमित होकर उपयोगिता खो देता है, उसके लिए आदर्श का कलात्मक परिच्छद अनिवार्य है।

———

९ मैथिलीशरण गुप्त और उनकी कला

आधुनिक हिन्दी साहित्य के सर्वश्रेष्ठ कलाकार, भारतीय संस्कृति के अमर वैतालिक, हिन्दी साहित्य क्रीडांगन के मजे खिलाडी, राष्ट्रीय चेतना के अग्रदूत, हिन्दुत्व के सच्चे आदर्श, प्राचीनता के मोही, नवीनता के प्रचारक, मा भारती के दिव्य मंदिर के पुरोहित, साहित्याकाश के ज्योतिर्मय नक्षत्र, सरस्वती के हृदयहार, वयोवृद्ध कविवर श्री मैथिलीशरण गुप्त का जन्म चिरगाव, जिला झांसी में आज से ६७ वर्ष पूर्व श्री रामचरण गुप्त के यहाँ हुआ था। यह जन्म क्या था, मानो स्वनामधन्य पिता के रूप मे राम के गुणो को गाने के लिए श्री तुलसी का आगमन हुआ हो। उच्च कुल मे जन्म लेने के साथ ही साथ पैतृक सम्पत्ति के रूप मे पिता की भारतीय संस्कृति के प्रति अनन्य श्रद्धा-भावना, माँ की वैष्णव धर्म मे अगाध प्रीति, और उस घर की सरलता, सादगी, उच्च विचारधारा, वहाँ पर इकट्ठे होने वाले कवियो की कर्ण-मधुर काव्य प्रतिभा प्राप्त हुई। उच्चकोटि की शिक्षा न मिलते हुए भी ये सभी गुण इतने प्रचुर परिमाण मे उन्हे प्राप्त हुए कि जिससे सरस्वती-साधना के सुपथ पर अग्रसर होने मे उन्हें किसी कठिनता का सामना न करना पडा। इस पथिक की इस अमर साधना के पथ पर बढने मे अन्य जिन वस्तुओ का भी सहयोग प्राप्त हुआ उनका भी कोई कम महत्व नहीं। सर्वप्रथम तो उनके पिता के कवि रूप ने ही उन्हे वह प्रेरणा प्रदान की कि जिससे वह इस मर्त्य लोक मे रहते हुए भी अमर लोक के कवि कहलाये। धार्मिक विश्वासो मे पनपने वाली गृहस्थ की चारदीवारी मे रहते हुए मीरा, सूर, तुलसी इत्यादि भक्त कवियो की कविताओ ने उनके हृदय मे धर्म की जिस प्राचीर को खडा कर दिया, उसे अर्ध शताब्दी बीत जाने पर भी पश्चिमी संस्कृति के अन्धड-झंझावात भी नहीं डिगा सके हैं। महात्मा गांधी के भव्य नव्य संदेशो ने भी उनके हृदय मे देशभक्ति की जो अमिट छाप अंकित कर दी है वह वर्षों बीत जाने पर भी स्पष्ट है। महावीरप्रसाद 'द्विवेदी' द्वारा संपादित 'सरस्वती' की छत्रछाया मे कवि को काव्य-विराग की जो प्रेरणा प्राप्त हुई थी, उसने भी कवि-शिरोमणि को

मूर्धन्य स्थान पर पहुँचा दिया है। रवीन्द्रनाथ 'टैगोर' की 'गीतांजली' और बगाल के भक्त कवियो की आध्यात्मिक विचारधारा ने उनमे छायावाद और रहस्यवाद की भावुकता भी उडेल दी है। इस प्रकार श्री गुप्त जी हिन्दी साहित्योपवन मे एक ऐसी कली के रूप मे विकसित हुए, जिसके पूर्णतया पुष्प बनने से पूर्व ही उनकी यशस्सुरभि दिग्दिगन्त मे व्याप्त हो गई।

गुप्त जी ने अभी तक तीन दर्जन से भी अधिक ग्रन्थो की रचना की है। ये ग्रन्थ अनेक भावनाओ को लेकर चले है। जहाँ विषय की विविधता इन मे पाई जाती है, वहाँ पर शैली की अनेकता भी इन मे लक्षित की जा सकती है। कलाकार कला की सीमाओ मे अपने आप को बाँधना नही चाहता। एक ओर यदि उनकी कविताओ मे प्राचीनता के प्रति मोह पाया जाता है, तो दूसरी ओर उसमे नवीनता के प्रति आकर्षण भी पाया जाता है। रामायण, महाभारत, बौद्ध साहित्य, मुस्लिम सस्कृति, सिख सस्कृति, राष्ट्रियता, पौराणिक और ऐतिहासिक सभी विषयो का सतरगी सगम उनके काव्य के सौन्दर्य को शतगुण कर रहा है। इन रचनाओ मे भारत-भारती, हिन्दू, पचवटी, रग में भंग, जयद्रथवध, शकुन्तला, वन-वैभव, वैतालिक, अनघ, साकेत, द्वापर, यशोधरा, जयभारत आदि को लिया जा सकता है। शैली के आधार पर इनके ग्रन्थों का विभाजन इस प्रकार होगा —

१. प्रबन्ध शैली=साकेत, पंचवटी और जयभारत।

२ वर्णन शैली=भारत-भारती, पचवटी, जयद्रथवध, वन वैभव, शकुन्तला आदि।

३. गीति नाट्य शैली=अनघ।

४ गीति शैली=झकार।

५. आत्मोद्गार शैली=द्वापर।

६ चपू शैली=यशोधरा।

नीचे की पक्तियो मे उनकी कतिपय साहित्यिक रचनाओ पर प्रकाश डाला गया है।

१. भारत-भारती —यह उनकी प्रथम अति प्रसिद्ध राष्ट्रीय रचना है, जिसके द्वारा उन्होने भारतीय जनता को नव जागरण का सदेश दिया है।

इसमे गुप्त जी का कवि रूप नही किन्तु सच्चा देशभक्त रूप पुकारता है। इसकी रचना किस उद्देश्य को लेकर की गई है—कवि के शब्दों मे उसे यों प्रकट किया जा सकता है—

" हम कौन थे, क्या हो गये, और क्या होंगे अभी।
आओ, विचारें बैठकर ये समस्याएं सभी॥"

"भारत-भारती" में लेखक का विश्वास अति विशाल है। उसके इस विश्वास की झाँकी पुस्तक की प्रथम पंक्तियों मे ही हमे मिल जाती है:—

"मानस भवन में आर्यजन, जिसकी उतारें आरती।
भगवान भारतवर्ष में गूंजे हमारी भारती॥"

अपने युग मे इस का प्रचार गीता से कम नही था। इस वर्णन प्रधान रचना ने कवि को एक दम सर्वोच्च कवियो की श्रेणी मे लाकर बैठा दिया।

२. पंचवटी—जहाँ प्राचीन रामायण सम्बन्धी ग्रन्थो मे लक्ष्मण को निष्ठुर कर्तव्यपरायण के रूप मे अंकित किया गया है, वहा लेखक ने इस में उसे कलात्मक रूप देकर सरस बना दिया है। इसे साकेत की भूमिका के रूप मे लिया जा सकता है। कवि को इस मे प्रकृति-चित्रण का सुअवसर भी पर्याप्त रूप में प्राप्त हुआ है।

३. अनघ—राष्ट्रीय विचारो की दृष्टि से इसका अधिक महत्व है। इस पर महात्मा गांधी के अछूतोद्धार और सत्याग्रह आदि का विशेष प्रभाव पाया जाता है। कई आलोचको का यह कथन है कि 'अनघ' गांधी जी का ही प्रतिरूप है। यहा पर 'भारत-भारती' की अपेक्षा राष्ट्रीय भावनाओ में भी विशालता पाई जाती है। वे कहते हैं —

"न तन सेवा, न मन सेवा,
न जीवन और धन सेवा।
मुझे है इष्ट जन सेवा,
सदा सच्ची भुवन सेवा॥"

४ यशोधरा—यह गुप्त जी का सर्वोच्च काव्य है। इसमे कवि का सच्चा और निखरा हुआ रूप दिखाई देता है। उसके गीत भी हृदय के मार्मिक चित्र उपस्थित करते हैं। इसमे हमे एक आदर्श और सच्ची नारी का,

रूप दिखाई देता है। 'यशोधरा' विरह की मूर्ति होते हुए भी हृदय में स्वाभिमान का सच्चा रूप उपस्थित करती है।

"अबला जीवन हाय तुम्हारी यही कहानी,
आँचल में है दूध और आँखों में पानी।"

यह पद्य भी 'यशोधरा' के एक व्यापक रूप की ओर संकेत करता है। गीतिकाव्य की कसौटी पर भी यह रचना खरी उतरती है। उनका निम्न गीत तो नारी के स्वाभिमान की अमर गाथा को गाता है:—

"स्वयं सुसज्जित कर के क्षण में,
प्रियतम को प्राणों के पण में।"
हमीं भेज देती हैं रण में,
क्षात्र-धर्म के नाते,
सखी वे मुझसे कहकर जाते।।"

५. साकेत—यह उनकी कुशल कला का एक सुन्दर प्रतीक है। इसकी कहानी ऊर्मिला के उस उपेक्षित विरह की कहानी है, जिसे आज तक किसी कवि ने भी काव्य का विषय नहीं बनाया था। द्विवेदी जी और रवीन्द्रनाथ ठाकुर के संकेत से उन्हें इसके लिखने की प्रेरणा प्राप्त हुई थी। इसमें लेखक ने अपनी कल्पना चातुरी से एक ऐसा उभार दे दिया है कि जिससे वह ससार-साहित्य मे अमर हो गई है। इसकी कहानी ऊर्मिला और लक्ष्मण के आलाप से प्रारम्भ होती है। धीरे-धीरे उसमे विरह की काली घटा उमड़ती है। जितना उन्हें मिलन में सुख था, उससे कही अधिक विरह में दुख की अनुभूति। फिर भी त्याग और वलिदान की मूर्ति वनकर ऊर्मिला पति के रास्ते मे बाधा नही पहुँचाना चाहती, और कहती है :—

"कहा ऊर्मिला ने, हे मन,
तू प्रिय-पथ का विघ्न न बन"

१४ वर्ष की कठिन यातना मे अश्रु हार पिरोती हुई ऊर्मिला अपने रोने को भी गाना समझ लेती है। उनके हृदय मे अधिक दुःख संतोष की सीमा में जा पहुँचता है और वह पुकार उठती है :—

"तुम याद करोगे मुझे कभी,
तो बस मैं फिर पा चुका सभी।"

ऊर्मिला के अतिरिक्त कैकयी का चरित्र भी इसमे अधिक निखरा है। वह इसमे प्रायश्चित की मूर्ति है। भरत-राम-मिलाप के समय वह सभी दोषो को अपने सिर पर लेती हुई कितने दर्द भरे स्वर मे पुकारती है —

"युग-युग तक चलती रहे कठोर कहानी,
रघुकुल में भी थी एक अभागिन रानी।
क्या कर सकती थी, मरी मन्थरा दासी;
मेरा मन ही रह न सका निज विश्वासी।"

राजा और प्रजा के आदर्शों के पालन मे भी साकेत बहुत आगे बढ गया है। चरखा और सत्याग्रह आदि का वर्णन कर कवि इसमे अपने आप को गान्धीवाद से भी नही बचा पाया है। कवि का दृष्टिकोण वहाँ तक आते-आते राष्ट्रीयता से अन्तर्राष्ट्रीयता की ओर चला गया है।

"मैं नहीं सन्देशा यहाँ स्वर्ग का लाया।
इस भूतल को ही स्वर्ग बनाने आया।"

इस प्रकार गुप्त-काव्य-कानन मे इसकी महक निराली ही है। यह तो रसाल है, जिसमे उपमा अपने आप मे ही पाई जाती है।

६. जयभारत—यह गुप्त जी का आधुनिकतम महा काव्य है। इसकी रचना महाभारत की आधार-शिला पर की गई है। जिस प्रकार तुलसी ने वाल्मीकि के आधार पर 'रामचरित-मानस' की रचना करके उसकी भावनाओ को अमर कर दिया था, उसी प्रकार महाभारत के रचयिता वेद-व्यास की भावनाओ को इस ग्रथ में अंकित करके गुप्त जी ने उसे हिन्दी साहित्य का ध्रुव नक्षत्र बना दिया है। हिन्दी साहित्य मे जिन ग्रन्थो को युगो तक मानवता भुला नही सकेगी, वह 'मानस' और 'कामायानी' के बाद 'जय-भारत' है। हिन्दी और हिन्दुत्व (मानवता) की भावनाएँ तुलसी से उठी थीं, प्रसाद में पनपी थीं, और गुप्त जी मे आकर अन्तर्लीन हो गई है। 'जय-भारत' सच्चे अर्थो मे भारतीय संस्कृति का जय-घोष है। जिसमे कला

और भावनाओ का सुन्दर सामजस्य हुआ है । गृहस्थ की समस्याएँ, मानवता का आदर्श और जीवन की सच्ची पुकार यदि एक साथ कही पर हमें सुनाई पडती है, तो वह है "जयभारत"। आधुनिक युद्ध की विभीषिकाओ से सत्रस्त मानवता को इसमे गाँधीवादी आदर्शों का सच्चा संदेश प्राप्त होता है।

इस प्रकार श्री गुप्त जी के साहित्यिक वैकासिक अध्ययन के पश्चात् हम इस निष्कर्ष पर पहुचते हैं कि वे युग के होते हुए भी युग-युग के कवि हैं। भावो की ऊँची उडान के साथ-साथ उनके साहित्य मे काव्य का जो कलात्मक रूप प्राप्त होता है, उसके भार से भी हिन्दी साहित्य कभी मुक्त नही हो सकता। भाषा के वे अमर मूर्तिकार हैं, जिन्होने भावो की छैनी से शब्दो को घड-घड करके उसे हीरे की कनी के रूप मे परिणत कर दिया है। कल्पना की खाद से उन्होने साहित्योपवन को पल्लवित, पुष्पित और सुरभित किया है, जो कभी भी कराल काल के तुषाराघात से झर नही सकेगा। उनका साहित्य अलकारो के लिए न लिखा जाकर भी अलकारमय है। स्थान-स्थान पर शब्दचित्र, भावचित्र और ध्वनिचित्र उसके सौंदर्य को त्रिगुणित करते है। शब्द-शक्ति मे भी उनकी कविता उत्तम कोटि के अन्तर्गत आती है। प्रकृति मे मानवीय, अप्रस्तुत मे प्रस्तुत और प्रस्तुत में अप्रस्तुत योजना, लाक्षणिकता, सगीतमयता और प्रतीकात्मकता मानो उनके साहित्य मे शत-जिह्वाओ से मुखरित हो उठे है। सगीत मानो उनकी आत्मा की पुकार है, जो कविता मे साक्षात् वीणा-वादिनी के रूप मे अवतरित हुआ है। उनके सगीत मे भी आधुनिक लीरिक (Lyric) के सभी गुण पाये जाते हैं। नीचे की पक्तियो मे उनकी आलकारिता के कुछ उदाहरण प्रस्तुत किये जाते हैं—

(क) "वह शर इधर गाँडीव गुण से भिन्न जैसे ही हुआ।
घड से जयद्रथ का उधर सिर छिन्न वैसे ही हुआ॥" "अक्रमातिशयोक्ति"

(ख) "नाक का मोती अधर की कांति से
बीज दाड़िम का समझकर भ्रान्ति से।" —'भ्रान्ति' और 'तद्गुण'

(ग) देखो दो-दो मेघ बरसते,
मैं प्यासी की प्यासी। —'रूपकातिशयोक्ति'

(थ) करुणे, क्यों रोती है ? "उत्तर" में और अधिक तू रोई—
"मेरी विभूति है, जो उसको 'भवभूति' क्यो कहे कोई ?" —'श्लेष'

इस प्रकार उपर्युक्त पंक्तियों के आधार पर हमे यह कहने में तनिक भी सकोच नहीं होता कि पिछले ३०-३५ वर्षों के साहित्यिक विकास की झाकी हमें गुप्त जी के साहित्य में झनकती है। उनके काव्य मे हिन्दी साहित्य के स्वर्णयुग का सगीत वजता है, अपने युग की भावनाएं मचलती हैं और नव-इतिहास निर्माण की प्रेरणा छलकती है। प्राचीनता और नवीनता के गंगा-यमुनी सगम में पाठक का हृदय उतरता और तैरता हुआ, आध्यात्मिक आनन्द का आस्वादन करता है। उनके साहित्य मे उसकी सार्थकता और जीवन की पुकार सुनी जा सकती है। उनका साहित्य प्राचीनता की सीढिया पार करके, नवीनता के आगन से गुजरता हुआ, भविष्य की विशाल अट्टालिकाओ के पथ पर अग्रसर हो रहा है। अन्त मे श्री शान्तिप्रिय द्विवेदी के शब्दो मे "जो स्थान माला में प्रथम पुष्प का और गगन मे प्रथम नक्षत्र का है, वही स्थान गुप्त जी का हिन्दी की वर्तमान कविता में है।"

---

१० तुलसी की सर्वांगीणता

संकेत—१ तुलसी का परिचय। २. सामयिक परिस्थितियाँ। ३. तुलसी की साहित्यिक देन। ४. तुलसी का सर्वाङ्गपूर्ण काव्य-सौन्दर्य तथा जीवन। ५. तुलसी ही सर्वाङ्गीण कवि क्यो है ?

भूमिका—राम-भक्ति शाखा के अन्तर्गत हिन्दी में तुलसी का स्थान सर्वोपरि है। हिन्दी मे इस कवि का प्रादुर्भाव एक दैवी घटना मानी जाती है। निर्धन ब्राह्मण कुल में जन्म पाकर तथा जन्म से ही माता-पिता के दुलार से वंचित होकर तुलसी ने जिस प्रतिभा का परिचय दिया, वह विरले मनुष्यों का ही कार्य है। तुलसी के इस व्यक्तित्व-निर्माण में उनके दीक्षा-गुरु नरहरिदास और शेषसनातन जी का महत्वपूर्ण हाथ था। तत्कालीन दिग्गज पंडित शेषसनातन जी ने तुलसी को धर्म, पुराण, शास्त्र, वेद, इतिहास

आदि के ज्ञान मे पारगत किया था तथा उनकी पत्नी ने अपने दिव्य प्रेम-प्रतारणा से उनमें कवि-हृदय की जागृति की। रत्ना की निम्न पंक्तियो से आहत होकर ही तुलसी काव्य की महान् भूमि पर अवतरित हुए—

लाज न आवत आपको, दौरे आयहु साथ।
धिक् धिक् ऐसे प्रेम को, कहा कहौं मैं नाथ॥
अस्थि चर्म मय देह मम, तामें जैसी प्रीति।
ऐसी जो श्री राम में, होति न तो भव भीति॥

पत्नी के इन शब्द-बाणो के मार्मिक आघात द्वारा ही तुलसी भगवत्-प्रेम में अनुरक्त हुए थे। तथा इस अनुरक्ति में उन्होने अपने 'मानस' की रचना की। तुलसी ने जब हिन्दी काव्य-क्षेत्र मे पदार्पण किया तो उन्हें अवधी और ब्रज भाषाएं साहित्यिक रूप लिये हुए मिली। उसके साथ ही दोहा-चौपाई लिखने की प्रबन्ध शैली, कवित्त-सवैये लिखने की मुक्तक शैली, भक्तिविषयक पद लिखने की गीत शैली, नीति के दोहे लिखने की और वीर रस के कवित्त, छप्पय लिखने की शैली के दर्शन हुए, तथा ब्रज और अवधी दोनों को तथा काव्य की समस्त शैलियो को उन्होने अपनाया है। कृष्ण गीतावली मे उनकी ब्रजभाषा का माधुर्य और विनयपत्रिका में भक्ति के पदो का सौन्दर्य देखा जा सकता है। दोहे-चौपाई की प्रबन्ध शैली और अवधी भाषा को उन्होने राम-चरित-मानस मे स्थान दिया। नीति के दोहे गीतावली में लिखे गये। वीर रस विषयक कवित्त और सवैये का प्रयोग राम और रावण का युद्ध वर्णन करने मे किया है।

सक्षेप में कहा जा सकता है कि तुलसी ने अपने समय की सभी काव्य-शैलियो का, दसो रसों का, काव्य के अन्तरंग और बहिरंग तत्वो का, कल्पना, भावना, बुद्धि तत्वों का और भाषा का सफलतापूर्वक निर्वाह किया है। काव्य के किसी भी अग की दृष्टि से उनका काव्य अपूर्ण नही।

विस्तार—जिन परिस्थितियो मे तुलसी का उदय हुआ था वे भक्ति-भावना प्रधान थी। हिन्दू-मुसलमानो के दीर्घकालीन संघर्षों का परिणाम राम नाम की आराधना पर पहुचना हुआ था। कबीर की झाड़-फटकार और जायसी के प्रेम तत्व ने हिन्दू-मुसलमान को इतने निकट सम्पर्क मे ला

दिया था कि अब किसी प्रकार के बाह्य संघर्ष का स्थान नहीं था। अकबर की उदार नीति का परिणाम भी यही हुआ कि हिन्दू स्वतन्त्रतापूर्वक राम नाम लेने लगे। परन्तु मुस्लिम अत्याचारों की कहानियां हिन्दू अभी भूल नहीं सके थे।

मुसलमानों का राज्य हिन्दुओं के लिए कितना संकटमय, आतंकपूर्ण और विनाशक सिद्ध हुआ था, यह बात तुलसी के मस्तिष्क में भी विद्यमान थी। तुलसी ने अपनी सामयिक परिस्थितियों का अध्ययन गहन दृष्टि से किया था। इसलिए उनका साहित्य जहाँ एक ओर भगवद्-भक्ति का आधार है, वहाँ दूसरी ओर लोकमंगल की भावना भी उसमें निहित है। तुलसी ने लोगों को तटस्थ रहकर नहीं देखा, अपितु जीवन की गहराई में प्रवेश किया था। उन्होंने अपने साहित्यिक कर्तव्य को प्रतिनिधि के रूप में निभाया है। अपने समय के पतित समाज, राष्ट्र, धर्म और राज्य सब के प्रति ही तुलसी जागरूक रहे। काव्य-साधना का लक्ष्य स्वान्त सुखाय रखते हुए भी उन्होंने लोक-मंगल की भावना को कभी नहीं भुलाया। इहलोक और परलोक दोनों का साधन तुलसी के साहित्य में देखने को मिलता है।

भक्ति विषयक सर्वाङ्गीणता के विषय में हम कह सकते हैं कि उन्होंने भक्ति, ज्ञान और कर्म तीनों का समन्वय किया है।

भक्तिहि ज्ञानहि नहि कछु भेदा, उभय हरहिं भव सम्भव खेदा।

× × ×

कर्म प्रधान विश्व रचि राखा, जो जस करहि सो तस फल चाखा।

तुलसी की पंक्तियों से भक्ति का उपर्युक्त समन्वय भली भाँति जाना जा सकता है। इस समन्वय के कारण ही राम भक्ति में आज तक कोई विकार उत्पन्न नहीं हुआ। राम की इस आदर्श भक्ति में न तो लोक-जीवन की अवहेलना की गई है और न अध्यात्म जीवन को ही सब कुछ कहा गया है।

जीवनविषयक सर्वाङ्गीणता के चित्र उतारने में भी तुलसी बहुत अधिक सफल हुए हैं। राम के गृहस्थ जीवन, सामाजिक जीवन, राष्ट्र जीवन को लेकर तुलसी ने वैसे आदर्श गृहस्थ, समाज और राज्य का चित्र खींचा है

वह अपनी विशेषता मे पूर्ण है। राम-सीता जैसे दम्पति, लक्ष्मण-भरत जैसे भाई, कौशल्या जैसी माताए, हनूमान जैसे सन्त, राम जैसा राजा, विभीषण सा मित्र जिस भी समाज मे रहेगा उसका रूप विकृत और पतित नही हो सकता। तुलसी द्वारा निर्मित जीवनादर्श कठिन भले ही हो परन्तु सर्वथा असाध्य नही हो सकता। व्यक्ति मात्र के लिए जैसे आचरण की आवश्यकता तुलसी ने बतलाई है, यदि इस प्रकार का आचरण लोग बना लें तो रामराज्य का स्वप्न पूर्ण हो सकता है।

कहा जाता है कि तुलसी ने नारी जाति की निंदा की है, जिसका आधार तुलसी का निम्न कथन माना जाता है—

ढोल, गंवार, शूद्र, पशु, नारी, ये सब ताड़न के अधिकारी।

परन्तु इस उक्ति मे जिस प्रकार की स्त्रियो को ताडना की अधिकारिणी कहा गया है वे मथरा, कैकेयी, शूर्पणखा जैसी स्त्रियाँ है। ऐसी स्त्रियो का किसी भी देश में अभाव नही है। इसके अतिरिक्त अनग के कुसुम बाण की प्रताडना प्रत्येक नारी को अपेक्षित है. जिसके बिना नारी का नारीत्व और पुरुष का पुरुषत्व सारहीन है। नारी-चरित्र के विषय मे—'स्वतन्त्रता पाय बिगरहिं नारी' आदि उक्तियाँ भी सारहीन नही हैं। अनावश्यक अत्यधिक स्वतन्त्रता नारी के लिए सर्वदा हानिकारक है। इस विषय मे तुलसी के लिए कहा जा सकता है कि उन्होने नारी जाति को लोक-लाज और कुल-मर्यादा की सीमा मे रहने का आदेश दिया है। तुलसी जैसे समाज सेवक व्यक्ति सदैव उच्च समाज निर्माण के लिए नारी जाति पर बन्धन लगाते आये हैं। वास्तव मे यदि किसी देश की नारियाँ चरित्रवान् और कर्त्तव्यपरायण होती हैं तो वह देश ऊंचा उठता है। तुलसी जिस प्रकार का समाज और राष्ट्र निर्माण करना चाहते थे उसकी पूर्ति नारी जाति के उन्नत हुए बिना असम्भव है। इसलिए तुलसी ने नारी जाति के लिए सीता जैसे चरित्र को अनुकरणीय कहा है। अनसूया के उपदेश मे तुलसी ने स्त्रियों को जो शिक्षा दी है वह स्त्री जाति के लिए ही नहीं अपितु विश्व के लिए वरदान है।

तुलसी के कलियुग-वर्णन मे जिन भावनाओं का चित्रण हुआ है वे उनके सामयिक समाज की द्योतक हैं। रावण का अत्याचारपूर्ण राज्य

तत्कालीन मुस्लिम राज्य का प्रतीक है तथा रामराज्य के रूप मे उन्होंने आदर्श हिन्दू राज्य की कल्पना की है। उनके राज्य का अभिप्राय सदैव यही रहा है कि उसमे जन-जाति सुखी हो, प्रकृति हरी-भरी और मंगलमय हो, तथा लोगो मे परस्पर द्वेष का भाव न हो परन्तु ऐसा राज्य तब तक प्रतिष्ठित नही हो सकता जब तक वहाँ का राजा राम की तरह न्यायप्रिय और सच्चरित्र नही होता। आज जो हमारे सामने प्रजातन्त्रात्मक राज्य अभिशाप रूप लिए हुए है, उसका एकमात्र कारण सत्ताधारियों का स्वार्थी, चरित्रहीन और लोभी होना है। 'यथा राजा तथा प्रजा' की उक्ति सर्वथा सत्य है। राम क्योंकि महान् थे इसलिए उनका राज्य भी महान् था। परन्तु रावण, कंस तथा मुस्लिम शासक पतित थे, इसलिए उनका राज्य भी अमंगलकारी ही रहा। इसलिए तुलसी ने जैसे रामराज्य का चित्र उपस्थित किया है, वह सर्वांगपूर्ण और मगलकारी है।

साहित्यिक सर्वाङ्गीणता भी तुलसी मे पूर्णतः मिलती है। साहित्य को समाज का दर्पण, निर्माता, व्याख्याता और स्रष्टा कहा गया है। इसके साथ ही साहित्य के अन्तर्गत उन रचनाओं की गणना की जाती है, जो जन-हित से ओत-प्रोत हों, या साहित्य को सचित ज्ञान राशि की सज्ञा दी गई है।

साहित्य में तुलसी ने कला पक्ष से लोक-कल्याण पक्ष को श्रेष्ठ माना है। वह साहित्य कभी सत्साहित्य की सीमा मे नहीं आ सकता, जिससे संसार का उपकार सभव न हो। यही कारण है कि तुलसी के रामचरित मानस में हम लोक-जीवन को ऊपर उठाने की भावना का प्राचुर्य पाते हैं। 'मानस' के प्रारंभ में ही वाणी और विनायक की वन्दना में तुलसी अपनी कविता का उद्देश्य स्पष्ट कर देते हैं :—

वर्णानामर्थसघानां रसानां छन्दसामपि ।
मंगलानां च कर्तारौ वन्दे वाणीविनायकौ ।।

तुलसी कविता की सार्थकता वर्ण और अर्थ के समूह में नहीं मानते। ललित वर्णों की योजना से ही कविता श्रेष्ठ नही हो सकती, भावपूर्ण अर्थावली भी उसे श्रेष्ठता प्रदान नहीं कर सकती। इतना ही क्यो रस और मनोहर पदों की उपलब्धि से भी उसकी पूर्णता नही मानी जा सकती। उसकी

पूर्णता तो मंगलकारी रूप में ही संभव है। यही कारण है कि तुलसी वर्ण, अर्थ, रस और छन्द की देवी वाणी के साथ मगल-भाव के देवता विनायक की वन्दना करते हैं। हिन्दी ही नहीं, सस्कृत के कवियो मे भी किसी कवि ने एक साथ सरस्वती और गणेश की वंदना नही की है। तुलसी-साहित्य के कीर्तिलब्ध विद्वान् मा० श्री सत्यनारायण सिंह जी रामचरितमानस को विश्व मे सर्वश्रेष्ठ ग्रंथ मानते हैं। सच तो यह है कि विश्व के साहित्य में जो कुछ उपलब्ध है वह सभी कुछ रामचरित मानस मे है और कला की सीमा वहीं तक है जहाँ तक तुलसी की दृष्टि गई है। एक सूत्र मे कहा जा सकता है :—

"कविता कर के तुलसी विलसे,
कविता लसी पा तुलसी की कला।"

तो सभी दृष्टियो से तुलसी का साहित्य महत्त्वपूर्ण है। तुलसी समाज के द्रष्टा, स्रष्टा और व्याख्याता सभी कुछ है, तथा उनका साहित्य भी इन विशेषताओ से परिपूर्ण है। साहित्य के अन्तरग और बहिरग पक्ष की दृष्टि से तुलसी महान् हैं। अन्तरग पक्ष के अन्तर्गत जो कल्पनाएँ, भावनाएँ और बुद्धि तत्व उसमे ओत-प्रोत हैं वे हमे अन्यत्र नही मिलते। तुलसी लोक-मगल की साधनावस्था के कवि हैं, पर साथ ही सिद्धावस्था का भी उनमे अभाव नही। साधनावस्था के अन्तर्गत यदि राम चरित मानस श्रेष्ठ है तो सिद्धावस्था की उनकी विनयपत्रिका, गीतावली, कृष्ण गीतावली आदि रचनाएं सर्वश्रेष्ठ है।

उपसंहार—इस प्रकार साहित्य, समाज, धर्म और जाति किसी भी दृष्टि से विचार करने पर तुलसी सर्वांगीण कवि सिद्ध होते है। सर्वांगीण कवि की विशेषता इसमें रहती है कि वह जिस विषय या भाव अथवा जीवन को लेता है उसे पूर्णरूप मे चित्रित कर देता है। क्योंकि तुलसी मे यह विशेषता सर्वाधिक है इसलिए तुलसी हिन्दी मे सर्वांगीण कवि का स्थान रखते हैं। तुलसी की सी यह सर्वांगीणता न तो हमें उनके समकालीन कवि सूर मे मिलती है और न किसी आधुनिक कवि मे। इसलिए इस दृष्टि से तुलसी अद्वितीय हैं।

११ हिंदी-साहित्य में मुसलमानों की देन

संकेत—१—हिन्दी भाषा और साहित्य का परिचय। २—मुसलमानों का उससे सम्बन्ध। ३—हिन्दी के मुसलमान कवि कौन-कौन ? ४—इन कवियों की साहित्यिक देन। ५—हिन्दी की अवहेलना मुसलमानो ने कब और क्यों की ? ६—हिन्दी के प्रति मुसलमानो का अब क्या कर्तव्य है ?

प्रत्येक देश अपनी कोई न कोई भाषा और साहित्य रखता है। जिस भाषा मे वहा का साहित्य लिखा जाता है वह उस देश की साहित्यिक भाषा कहलाती है, और जिस भाषा का वहाँ के निवासी बोल-चाल के रूप में प्रयोग करते हैं, वह जन-भाषा कहलाती है। जन भाषा का प्रयोग वही के समस्त निवासियो को अनिवार्य रूप से करना पडता है। क्योकि ऐसा किये बिना उनका कार्य नही चलता। पर साहित्यिक भाषा का प्रयोग साहित्यसेवियो द्वारा ही अधिक होता है। इस दृष्टि से जब हम हिन्दी भाषा पर विचार करते है तो हमे ज्ञात होता है कि हिन्दी भारत की जन-भाषा भी रही है और साहित्यिक भाषा भी। जन-भाषा के रूप मे हिन्दी को हिन्दू, मुसलमान एव अन्य सभी भारतीय एव अन्य सभी भारतीय जातिया जिनका सम्पर्क हिन्दी क्षेत्र मे रहा है, प्रयोग मे लाती रही हैं। हिन्दी क्षेत्र मे उत्तरप्रदेश, दिल्ली प्रांत, राजस्थान, मध्यप्रदेश, विहार आदि की गणना की जाती है। वही क्षेत्र मुसलमानो का निवास-स्थल भी उसी प्रकार रहा है जैसे कि हिन्दुओ का। इसलिए स्वभावत ही हिन्दी मुसलमानो की बोल-चाल की भाषा रही है। चाहे भले ही इस सम्प्रदाय मे उर्दू भाषा का आधिक्य रहा हो, पर बोल-चाल के रूप मे मुसलमान हिन्दी का व्यवहार करते रहे हैं।

जिस भाषा को आज हिन्दी कहा जाता है उसका अस्तित्व मुसलमानों के भारत में प्रवेश करने पर प्रकट हुआ था। नि सन्देह हिन्दी मूलत. भारतीय भाषा है और उसका सम्बन्ध सस्कृत भाषा से स्थापित किया गया है। पर इसके विकास और नामकरण मे मुसलमानो का पर्याप्त हाथ रहा है। नामकरण के लिए तो मुसलमानो को ही श्रेय दिया जाता है। मुसलमान इस भाषा को आरम्भ मे हिन्दवी या हिन्दुई कहा करते थे। सबसे पहले इस भाषा

का साहित्यिक प्रयोग भी सफलतापूर्वक मुसलमान कवि अमीर खुसरो के साहित्य मे ही मिलता है। इसलिए हिन्दी और हिन्दी-साहित्य, दोनो के निर्माण में मुसलमानो ने उस समय तक पूर्ण योग दिया जब तक कि अंग्रेज जाति भारत मे नही आई थी।

हिन्दी भाषा मे रचित साहित्य को वीर गाथाकाल, भक्तिकाल, रीतिकाल और आधुनिक काल नाम से चार भागो मे विभाजित किया गया है। इसमें से वीरगाथा काल सम्बन्धी साहित्य जिस समय रचा गया उस समय तक मुसलमान भारत मे पूर्णत स्थापित नही हो सके थे। इसलिए इस काल मे किसी मुसलमान कवि का न होना कोई आश्चर्य की बात नही। परन्तु इस काल की भाषा पर भी मुस्लिम भाषा का प्रभाव साहित्यिक रूप मे लक्षित होता है। इसके अतिरिक्त अमीर खुसरो का रचना काल सम्वत् १३४० के आस-पास का माना जाता है, जो वीरगाथा काल की समाप्ति का समय भी माना जाता है। इस प्रकार वीरगाथा काल के अन्त से लेकर भक्ति, रीति और आधुनिक तीनो युग के साहित्य मे मुसलमान कवियो और गद्यकारो ने हिन्दी की महत्वपूर्ण सेवा की है।

ऐतिहासिक दृष्टि से हिन्दी का सर्वप्रथम मुस्लिम कवि अमीर खुसरो ठहरता है। खुसरो ने 'खालिक बारी' नाम का एक शब्द कोष लिखा, जिसमें अरबी फारसी के शब्दो के अर्थ ब्रज भाषा मे लिखे। इसके इस प्रयत्न से सिद्ध होता है कि ये हिन्दू-मुसलमानो मे भाषा की समता चाहते थे। इसके अतिरिक्त खुसरो ने पहेली, मुकरियाँ और दो-सखुने लिखे हैं, जिनमे इन्होंने अपनी साहित्यिक प्रतिभा का अच्छा परिचय दिया है। इनकी कविता मे हास्य की प्रधानता है। हिन्दी का सर्वप्रथम हास्य लेखक इस कवि को कहा जा सकता है। निम्न पक्तियो में एक कह-मुकरी का परिचय प्राप्त करे।

वह आवे तब शादी होय, उस बिन दूजा और न कोय।
मीठे लागे वाके बोल, क्यों सखि साजन ? ना सखि ढोल॥

जायसी की 'पद्मावत' महत्वपूर्ण रचना है। इस कवि की प्रेम व्यंजना लौकिक धरातल से बहुत ऊंची उठी हुई है—

हाड भये सब किंगरी, नसें भई सब तांति।
रोव-रोव से धुनि उठै, कहीं बिथा केहि भाँति ॥

कबीर का लालन-पालन नीरू-नीमा नामक मुसलमान दम्पति के यहाँ होने के कारण कुछ विद्वान् कहते हैं कि कबीर की साहित्य-सेवा किसी मुस्लिम कवि की सेवा नहीं कही जा सकती। मुस्लिम कवियो मे आगे चलकर कृष्ण-भक्ति के अन्तर्गत रसखान, रहीम और बेगम ताज के नाम उल्लेखनीय हैं। रसखान कवि ने हिन्दी मे काव्य रस की जो धारा प्रवाहित की वह काव्यत्व की दृष्टि से इतनी महत्त्वपूर्ण है कि भारतेन्दु हरिश्चन्द्र ने इस अकेले कवि पर कोटि हिन्दू कवियो को न्यौछावर कर दिया है। सूर की तरह पद न लिखकर मुस्लिम रसखान ने कवित्त और सवैयो मे व्रजभूमि-प्रेम तथा कृष्ण की बाल छवि और यौवन छवि के बडे मार्मिक चित्र उतारे हैं। प्रेम की वह धुनाई जो तरुणावस्था में सर्वसाधारण के हृदय मे टीस बनकर उठा करती है, रसखान की कविता में भक्त कवियो की अपेक्षा अधिक मिलती है। साथ ही भक्तिभावना भी इनकी कविता में पाई जाती है। व्रज भाषा पर रसखान का जो अधिकार है, वह हिन्दू कृष्ण-भक्त कवियो का भी नही है। रसखान की कविता में ऐसे अनेक स्थल हैं जहाँ वे एक प्रेम तत्वदर्शी की भाति अपनी भावुकता का परिचय देते हैं—

ब्रह्म मैं ढूंढ्यो पुरानन गानन, वेद रिचा सुन्यो चौगुनो चायन।
देख्यो सुन्यो न कहूं कबहू, वह कैसो सरूप औ कैसो सुभायन॥
हेरत हेरत हारि परयो, रसखानि बतायो न लोग लुगायन।
देख्यो दुरयो वह कुंज कुटीर में, बैठ्यो पलोटत राधिका पायन॥

नीतिविषयक दोहे लिखने मे रहीम अद्वितीय माने जाते हैं। संसार की वास्तविक अनुभूति, सम्वेदना और जीवन की गहराइयों के बडे ही मार्मिक चित्र रहीम ने खींचे हैं। संसार की सच्ची अनुभूतियो मे इनका हृदय बहुत अधिक रमा है। इनके दोहे जीवन की उपयोगिता से परिपूर्ण हैं। भक्ति, नीति और लोकानुभूति इन तीनों दृष्टियो से रहीम की काव्य-कला महत्वपूर्ण है।

अब तक की खोज के अनुसार कुछ विद्वान् ताज को मुगल सम्राट् अकबर

की पत्नी मानते हैं। परन्तु इस विषय मे अभी तक कोई निर्णय नहीं हो सका। यह निश्चित है कि ताज मुगलानी थी तथा कृष्ण की अनन्य भक्ति मे मीरां की तरह ही तल्लीन रहती थी। ताँज की निम्न कविता इसकी प्रमाण है—

सुनो दिल जानी मेरे दिल की कहानी,
तव दस्त ही बिजानी बदनामी भी सहूंगी मैं।
देव पूजा ठानी, और निवाज हू भुलानी,
तज कलमा-कुरानी, सारे गुनन गहूंगी मैं॥
सांवला सलौना सिरताज सिर कुल्लेदार,
तेरे नेह-दाघ में निदाघ ह्वै दहूंगी मैं।
नन्द के कुमार! कुरबान तेरी सूरत पैं,
हौं तो मुगलानी, हिन्दवानी ह्वै रहूंगी मैं॥

रीतिकाल के कवियो मे रसलीन, आलम और कवयित्री शेख के नाम उल्लेखनीय हैं। इन कवियो ने राधा-कृष्ण प्रेम विषयक काव्य रीति-कालीन कवियो की शैली का लिखा है। रसलीन का निम्न दोहा देखिए—

अमी हलाहल मद भरे, श्वेत श्याम रतनार।
जियत, मरत, झुकि झुकि परत, जेहि चितवत इकबार॥

आधुनिक काल के कवियो मे मुन्शी मीर अली का नाम बड़े आदर से लिया जाता है। इन्होने खड़ी बोली में ताजमहल पर बहुत ही सुन्दर रचना की है। गद्य लेखको मे अख्तर हुसैन रायपुरी, जहूरबख्श, मीर अहमद आदि के नाम प्रसिद्ध हैं। हिन्दी का सब से प्रथम कहानी-लेखक इंशाअल्लाखा भी एक मुसलमान ही हुआ है।

इस प्रकार हिन्दी-साहित्य के किसी भी काल मे हम मुसलमानो को साहित्य सेवा से पिछड़ा हुआ नही पाते। जिन कवियो या गद्यकारो ने हिन्दी की सेवा की है उनका अध्ययन करने से यह भली भांति विदित होता है कि वे अपने को भारतीय समझते थे और हिन्दी भाषा को अपनी भाषा समझ कर उसमे साहित्य सर्जन का कार्य करते थे। परन्तु अंग्रेजो के शासन काल मे जब भेद नीति का प्रयोग होने लगा तथा भाषा और साहित्य की ओट मे राजनीतिक स्वार्थो की सिद्धि की जाने लगी, तो मुसलमानो के मन मे यह

बात प्रवेश कर गई कि हिन्दी उनकी भाषा नही। इसलिए हिंदी और उर्दू का संघर्ष उत्पन्न हो गया जो भारत की स्वतन्त्रता तक निरंतर चलता रहा। स्वतन्त्र होने पर भारत की राष्ट्र भाषा हिन्दी घोषित की गई। उर्दू भाषा को पाकिस्तान मे निर्वासित कर दिया गया। किसी भी प्रान्त में उर्दू को स्थान प्राप्त नही हुआ। जिस का कारण द्वेष की भावना न होकर सैद्धांतिक सत्य है। उर्दू भाषा का आकार-प्रकार एव प्राण तत्व सभी कुछ विदेशी है। इसलिए उसे भारतीय भाषा स्वीकार नही किया गया। हिन्दी को राष्ट्र-भाषा बनाने का कारण यह नही है कि वह हिन्दुओ की भाषा है अपितु हिन्दी की व्यापकता, सास्कृतिकता और भारतीयता के कारण उसे राष्ट्र-भाषा का पद दिया गया है। भारत की सभ्यता, सस्कृति आदि सभी कुछ हिन्दी मे निहित है। हिन्दी भाषा और साहित्य को जानने वाला कभी भी भारतीय विचारधारा के प्रतिकूल नही जा सकता। हमारी चिरसंचित अनुभूति, परम्पराएँ, अभिव्यक्ति और सस्कार सभी कुछ हिन्दी मे ओत-प्रोत हैं। इसलिए हिन्दी का अध्ययन, साहित्य चर्चन और प्रसार भारतीयता का प्रसार है। यदि हम विश्व मे भारतीयता की रक्षा करना चाहते हैं तो सर्वप्रथम हमे हिन्दी की रक्षा करनी होगी। इस नाते जो व्यक्ति हिन्दी का द्रोही है, वह उससे पूर्व देश-द्रोही है। ऐसे देश-द्रोही को भारत में स्थान नही दिया जा सकता, यह कथन आज के सभी भारतीय विचारशील व्यक्तियो का है। जो व्यक्ति अपने को जिस देश का निवासी मानता है उसे उस देश की भाषा को भी अपनी भाषा मानना चाहिए। इसलिए भारत के मुसलमानो का कर्तव्य है कि वे उर्दू का आग्रह न करके हिन्दी भाषा को अपनाएँ और उसकी श्रीवृद्धि में अपना पूर्ण योग दें। तभी वे सच्चे भारतीय नागरिक कहला सकते हैं।

१२ हिन्दी-साहित्य में शिशु-चित्रण

साहित्य मानव अनुभूतियो का दिग्दर्शक है तथा उसमे साहित्यकार अपने व्यक्तित्व के अनेकों भाव उपस्थित करता है परन्तु भाव अभिव्यक्ति करते समय वह निश्छल अभिव्यक्ति ही उपस्थित करता है। निश्छल अभिव्यक्ति के लिए

सबसे बड़ी आवश्यकता है कि वह पाठक के अन्तर्मन में सही रूप से आ जाने वाले चित्र उपस्थित करे। इन चित्रो के सहारे ही पाठक साहित्य मे आने वाले आदर्शों का ग्रहण करता है। ऐसे चित्रो से हिन्दी साहित्य-भवन सुशोभित है। कही प्रकृति-चित्रण है तो कही युद्ध-चित्रण। पर हिन्दी सहित्य में सबसे अपूर्व छटा तो शिशु-चित्रण की है।

शिशु-चित्रण की आलोचना के समय साहित्य को दो रूपो मे देखना होगा। एक में शिशु के हाव-भाव एव चेष्टायें, दूसरे मे माँ-पिता आदि के अनुभव। इनको भी अनेक रूपो मे विभाजित कर सकेंगे। जहाँ एक ओर शिशु की शारीरिक चेष्टाओ का वर्णन पायेंगे-वहाँ दूसरी ओर हम उन आन्तरिक मनोभावो का दर्शन पायेंगे जिन पर अवलम्बित होकर शिशु वाह्य चेष्टायें करता है। इसी प्रकार माँ के वर्णन मे भी जहाँ पुत्र के प्रति परिस्थिति-अनुकूल मनोदशा का वर्णन है वहाँ पुत्र को अ क मे लिये वह जिन शारीरिक चेष्टाओ को करती है, उनका भी वर्णन है। इन्हीं वर्णनो पर आधारित होकर हिन्दी साहित्य मे नव रस के स्थान पर दस रस हो गए हैं तथा जो रस वहाया गया है वह है वात्सल्य रस। वह वात्सल्य विश्व साहित्य मे हिन्दी ही में इतनी अपूर्व शोभा को लेकर उपस्थित हुआ है।

हिन्दी साहित्य के अन्तर्गत प्रारम्भ ही से हमें शिशु-चित्रण मिलता है। पृथ्वीराज रासो जिसे कि हम हिन्दी का विशाल काव्य मानते हैं वहाँ भी पृथ्वीराज का शिशु रूप में चित्रण उपस्थित है परन्तु उसके वीर रस प्रधान रचना होने के कारण यह चित्रण दब सा गया।

भक्ति काल के प्रारम्भ मे ही महात्मा कबीर ने स्वयं परम ब्रह्म को माँ मानकर अपने आपको पुत्र रूप मे उपस्थित किया। परमात्मा व आत्मा के अनेक सम्बन्ध बताए गए हैं परन्तु निश्छल सम्बन्ध माँ व पुत्र का ही है। तभी भक्त कबीर का हृदय बालक बनने को मचल उठा। उन्होंने अभिव्यक्त किया :—

"हरि जननी मैं बालक तोरा"

सूफी काव्य भला इन चित्रों को क्यों न उपस्थित करता। पद्मावत में बादल खान का बीड़ा खाता है कि वह राजा रत्नसेन को अलाउद्दीन से छुड़ा

लाएगा परन्तु उसकी माँ का पुत्र स्नेह तो देखिए कि अपने वीर पुत्र को अभी दूध-पीता बच्चा ही समझे बैठी है। वह बादल को रोककर कहती है कि —

बादल केरि जसोवै माया। आई गहेसि बादल कर पाया॥
बादल राय, मोर तुइ बारा। का जानसि कस होय जुझारा॥
बादल पहुमीपति राजा। सनमुख होइ न हमीरहि छाजा॥

मा के सामने पुत्र कितना ही बडा क्यो न हो जाय पर वह तो उसे छोटा नन्हा-मुन्हा ही मानती है।

कृष्ण-भक्ति-काव्य तो निस्सदेह अपने बाल-गोपाल के सौन्दर्य से ही जगमगा उठा है। कृष्ण-भक्ति-साहित्य के सम्राट् व हिन्दी काव्य के सूर्य सूरदास वात्सल्य के तो चक्रवर्ती सम्राट् है। उनका बालक कृष्ण का चित्रण विश्व के साहित्य मे अद्वितीय है। उसको अन्ध-भक्त कहने वाले पता नहीं अपने नेत्रो पर भी विश्वास करते हैं कि नही। बालक कृष्ण पालने मे झूल रहा है, मा झुला रही है, वह बालक को सुलाना चाहती है —

जसोदा हरि पालने झुलावै।
हलरावै मल्हाय दुलरावै जोइ सोइ कछु गावै।
मेरे लाल को आउ निंदरिया क्यो नहि आन सुवावै॥

ये तो रही माँ की चेष्टायें परन्तु, शिशु कृष्ण का तो बहुत ही सूक्ष्मातिसूक्ष्म चित्रण उपस्थित किया। मा सुला रही है, पुत्र सोना चाहता है। सूर ध्यान से देख रहे हैं। वे कह उठते हैं कि —

कबहु नयन हरि मू दि लेत हैं कबहु अधर फरकावै।

जसोदा समझ लेती है कि पुत्र सो गया, सकेत करती है कि कृष्ण सो गए। पर शिशु कृष्ण, वह तो

इहि अन्तर अकुलाय उठे हरि जसुदा मधुरे गावै॥

आखिर जसोदा को गाना पडा। कृष्ण वडा हुआ। वह घुटनो के बल चलने लगा।

सोभित कर नवनीत लिए।
घुटरन चलत रेनु तन मंडित, मुख दधि लेप किए॥

कितना सुन्दर शब्द-चित्र है। मा पुत्र को पैदल चलना सिखाती है, वह

चलना सीखता है।

सिखवत चलन जसोदा मैया।

अरबराय करि पानि गहावति, डगमगाय धरै पैया॥

वह चलना सीख भी जाता है तथा हमारे नेत्रो के सम्मुख ही चलता है।

कान्हा चलत पग द्वै द्वै धरनी।

जे मन में अभिलाष करत ही सो देखत नंद घरनी॥

रुनुक झुनुक नूपुर बाजत पग यह अति है मन हरनी।

बैठ जात पुनि उठत तुरत ही सो छवि जाय न बरनी॥

कृष्ण और बडे हुए, दूध नही पीते वह माखन मॉगते हैं। मा चाहती है वह दूध पीवे। वह बहलाती है कि "कजरी को पय पीवहु लाल तेरी चोटी बाढै।" भला चुटिया बढेगी तो कृष्ण दूध न पीवे, वे पीने लगते हैं। लेकिन चुटिया नही बढती। वे कहते हैं—

मैया कबहि बढ़ैगी चोटी।

किती बार मोहि दूध पियत भइ यह अजहूं है छोटी॥

तू जो कहति 'बल' की बेनी ज्यों ह्वै है लाम्बी मोटी।

काचौं दूध पियावत पचि पचि देत न माखन रोटी।

सूरदास ने बालक कृष्ण के सम्पूर्ण शिशुत्व का वर्णन कर डाला है। बालक कृष्ण बाहर जाता है। मा डरती है, न जाओ कृष्ण। बालक नही मानता। मां को कहना पडता है—

खेलन दूरि जात कित कान्हा।

आज सुन्यौ बन हाऊ आयो तुम नहि जानत नान्हा॥

वन में हाऊ आया है फिर कृष्ण कैसे जा सकते हैं। कृष्ण बडे होते ही माखन-चोरी करते हैं। बच्चो से लड़ते हैं। गेंद खेलते हैं। सभी का चित्रण तो सुन्दरता से किया है। फिर इतना ही बालक कृष्ण के सौदर्य का वर्णन भी अद्भुत रूप में किया। सूर का शिशु-चित्रण हिन्दी साहित्य का अमर भंडार है। विश्व साहित्य में एक बेजोड़ देन है। सूर हिन्दी साहित्य के वात्सल्य हैं।

राम काव्य भी शिशु-चित्रण में पीछे नहीं रहा। आलोचक तुलसी को भक्त, आदर्शवादी, कर्तव्यशील, न जाने किस-किस रूप में जानते हैं पर उनके

काव्य मे कहीं-कही शिशु-चित्रण भी इस प्रकार का है जो सूर की टक्कर लेता है। कृष्ण गीतावली में कृष्ण के बाल-चरित पर तुलसीदास ने जो कुछ लिखा है, वहा यह जानना कठिन है कि वह तुलसी का है या सूर का। माँ बालक कृष्ण को समझाती है —

छोड मेरे ललित ललन लरकाई।
ऐहैं देखु कालि तेरे बबै, ब्याह की बात चलाई॥
डरि है सासु ससुर चोरी सुनि हंसिहै नई दुलहिया सुनाई।
उबटि न्हाहु गुहो चुटिया बलि देखों, भलो बर करहि बड़ाई॥
मातु कह्यौ कर कहत बोलि दे भइ, बड़ बाट कालि तो न आई।
जबसोइवो तात यो हा कहि, नयन मींचि रहे पौढ़ि कन्हाई॥
उठि कह्यौ, भोर भयो भगुली दै, मुदित महर लखि आतुरताई।
बिहसी ग्वालि जाति तुलसी प्रभु सकुचि लगे जननि उर धाई॥

रामायण मे बालकाण्ड मे बालक राम-लक्ष्मण आदि के चित्रण की बात छोडिए वह तो भक्त हृदय के उद्गार है परन्तु कवितावली मे देखिए, जहाँ तुलसी ने "अवधेश के बालक चारि सदा तुलसी मन-मंदिर में बिहरें" लिखा है मानो कि सजीव चित्रण उपस्थित किया है।

कृष्ण भक्ति मे आगे चलकर रसखान ने बालक कृष्ण के रसयुक्त सवैयो में चित्र उपस्थित किए। जैसे कि —

आजु गई हुति भोरहि हौं रसखानि रई कहि नन्द के भौनहिं।
याको जियो जुग लाख करोर, जसोमति को सुख जाति कह्यो नहिं॥
तेल लगाई, लगाइ के आजन भौंह बनाइ, बनाई ढिठौनहिं।
डारि हमेल निहारति आनन, वारति ज्यों चुचकारति छौनहिं॥
आगे भी देखिए —
धूरि भरे अति सोभित स्याम जू तैसी बनी सिर सुन्दर चोटी।
खेलत खात फिरै अंगना, पग पैंजनियाँ कटि पीरी कछोटी॥
वा छवि को रसखान विलोकत, वारत काम कलानिधि कोटी।
काग के भाग बड़े सजनी, हरि हाथ सो लै गयो माखन रोटी॥
केशव ने 'रामचन्द्रिका' में भी शिशु-चित्रण उपस्थित किया परन्तु वा

इतना अनुभूतिपूर्ण तथा सुन्दर न बन पड़ा। रीति काल में यदा-कदा शिशु-चित्रण उपस्थित हुआ। पर आधुनिक काल मे तो बहुत सुन्दर मनोवैज्ञानिक चित्रण उपस्थित किया गया। भारतेन्दु बाबू हरिश्चन्द्र का वह पद्य जिसे उन्होंने कवि-गोष्ठी में कहा था, अभूतपूर्व है जिसमें 'टेसू मेरे घनश्याम के' आता है। अयोध्यासिंह उपाध्याय ने भी 'प्रिय प्रवास' में शिशु-चित्रण उपस्थित किया। ऊधो ब्रज मे आते हैं। मा जसोदा पूछती है:—

प्यारा खाता रुचिर नवनी को बड़े चाव से था।
खाता खाता पुलक उठता नाचता कूदता था॥

या

मेरे प्यारे सकुशल सुखी और सानन्द तो हैं।
कोई चिन्ता मलिन उनको, तो नहीं है बनाती॥

सुभद्राकुमारी चौहान का 'मेरा बचपन' अत्यन्त प्रसिद्ध है। उन्हें बचपन की याद आ रही थी, तभी उनकी बिटिया सामने आती है। वे कहती हैं :—

मैं बचपन को बुला रही थी—
बोल उठी बिटिया मेरी।
नंदन वन सी फूक उठी,
वो छोटी सी कुटिया मेरी।

वह मिट्टी खा कर आई थी तथा मा को खिलाना चाहती थी। सुभद्रा जी का बचपन लौट पड़ा।

'कामायनी' में भी 'स्वप्न' में बालक 'मानव' का चित्रण आता है। 'साकेत' मे भी शिशु राम व लक्ष्मण का चित्रण उपस्थित है।

इसमें संदेह नहीं कि हिन्दी साहित्य में शिशु-चित्रण भावपूर्ण, श्रेष्ठ, तथा बेजोड़ है। साहित्य की इस मार्मिक अनुभूति का चित्रण जितना इस साहित्य में हुआ है, उतना अन्यत्र नहीं।

---

१३ पंचशील

मनोविज्ञान-विशारदो का विचार है कि आत्म-विस्तार की भावना भी मनुष्य की शाश्वत भावनाओ मे से एक है। आत्म-विस्तार की इसी भावना ने मनुष्य को जल, थल तथा आकाश के अज्ञात प्रदेशो की खोज करने की प्रेरणा दी और उसे दर्शन, विज्ञान, कला एवं साहित्य के क्षेत्र मे नवीनतम अनुसंधानो की ओर प्रवृत्त किया। धर्म अथवा सभ्यता का आज जो स्वरूप है, समाज का आज जो सगठन है, विभिन्न देशो का आज जो राजनीतिक सीमा-विभाजन है, उसमे मानव की इस आत्म-विस्तार भावना का भाग अत्यन्त महत्वपूर्ण रहा है। 'एकोऽहं बहु स्याम्' के मूल मत्र का जाप करता हुआ मानव निरन्तर अपने क्षेत्र का—अपनी 'दुनिया' का—विस्तार करता रहा है—कभी एकान्त चिन्तन द्वारा और कभी सामूहिक आन्दोलनो द्वारा, कभी दूसरो के लिए बलिदान होकर, कभी दूसरो को पीछे छोड कर, कभी दूसरो के कधे से कधा मिला कर और कभी दूसरो को पादाक्रान्त करके। विस्तार का यह चक्र अनादि काल से चलता आ रहा है और सम्भवत अनन्त काल तक चलता भी रहेगा। संक्षेप मे यह कहा जा सकत है कि आत्म-विस्तार की इस भावना ने मानव का हित भी किया है और अहित भी। यह भावना यदि एक ओर देश-काल की दूरी लाँघ कर मानव को मानव के समीप लाने मे समर्थ हुई है तो दूसरी ओर इसने विश्व के भयकरतम युद्धो, नृशंसतम हत्याओ, अमानुषिक अत्याचारो, अकल्पनीय बर्बरताओ एवं अपरिमित लूट-पाट का भी पोषण किया है। मानव की इस भावना ने उसे मानवता की ओर भी बढाया है और दानवता की ओर भी।

परस्पर विरोधिनी जान पडने पर भी उपर्युक्त दोनों बातें सर्वथा सत्य हैं। विश्व के महायुद्ध और शान्ति-स्थापन के लिए किए जाने वाले भगीरथ प्रयत्न इनके प्रमाण हैं। मानव की विस्तार-भावना को सहार के स्थान पर निर्माण, बल-प्रदर्शन के स्थान पर हृदय-परिवर्तन, घृणा के स्थान पर सद्भाव और प्रतिद्वन्द्विता के स्थान पर सहयोग की ओर उन्मुख करने के प्रयत्न प्रत्येक देश-काल मे होते रहे हैं। 'पंचशील' (अथवा पचशिला) एक ऐसा ही महान प्रयत्न है।

विगत शताब्दियो मे होने वाले अनुसधान तथा गवेषणा-कार्यों ने मानव के भौतिक बल में अकल्पनीय वृद्धि कर दी है। इन अभिनव आविष्कारो ने मानो विश्व का काया-कल्प ही कर दिया है। निस्सन्देह, इन परिवर्तनो के फलस्वरूप मानव-जीवन की सुख-सुविधाओ मे सविशेष वृद्धि हुई है किन्तु इस प्रकार पारस्परिक भय एव सन्देह के अकुर भी फूट निकले हैं। इसीलिए मानव आज अपेक्षाकृत सम्पन्न होकर भी सत्रस्त है, प्रगति के पथ पर बढ कर भी उस निर्भयतापूर्ण सन्तोष से वचित है जो स्थायी सुख-शान्ति को जन्म देता है। विश्व में स्थायी सुख-शाति की स्थापना के लिए यह अनिवार्य है कि विश्व के विभिन्न देशो के वासी पारस्परिक भय-आशका से सर्वथा मुक्त होकर 'जिओ और जीने दो' के सिद्धान्त का पालन करते हुए अपने-अपने देश, प्रदेश, प्रान्त अथवा नगर-विशेष को विश्व-परिवार का एक सुखी एव सम्पन्न सदस्य बना सकें। 'पंचशील' उसी मगल-प्रभात का बाल-रवि है।

'पचशील' आज एक अन्तर्राष्ट्रीय शब्द बन गया है। इसकी चर्चा आज किसी एक देश की सीमाओ मे आबद्ध नही है। देश-देश, प्रान्त-प्रान्त, नगर-नगर और जन-जन के कर्ण-कुहरो मे इसका प्रवेश हो चुका है। राष्ट्रीय और अन्तर्राष्ट्रीय सम्मेलन, सन्धि अथवा करार-पत्र, भाषण अथवा सदेश, सर्वत्र और सर्वदा 'पचशील' का उल्लेख पढने-सुनने में आता है। विगत वर्षों में 'पचशील' ने सम्पूर्ण विश्व का ध्यान अपनी ओर जितना अधिक आकृष्ट किया है, उतना किसी अन्य शब्द ने नही किया।

'पचशील' एक सस्कृत शब्द है। 'पच' का अर्थ होता है 'पांच' और शील का अर्थ है—आचरण, चरित्र, स्वभाव, सद्वृत्ति आदि। अतः 'पंचशील' का अर्थ हुआ 'सदाचार' के पांच नियम अथवा सिद्धान्त। प्राचीन बौद्ध साहित्य मे इस शब्द का प्रयोग इसी अर्थ मे पाया जाता है। भगवान् बुद्ध के अनुसार सदाचार के पांच नियम अथवा सिद्धान्त ये थे :

१. जीवधारियों को कष्ट न देने का स्वभाव;

२. जो वस्तु दी न जाय उसे न लेने का स्वभाव;

३. स्त्री पुरुष के पारस्परिक सम्बन्धो मे दुराचार अथवा अनाचार से बचने का स्वभाव;

४. असत्य से बचने का स्वभाव, और

५. आलस्य का पोषण करने वाले मादक पदार्थों के सेवन से बचे रहने का स्वभाव।

राजनीति के क्षेत्र में आज जिस 'पचशील' की चर्चा सुनी जाती है उसका (नाम के अतिरिक्त) बौद्ध-धर्म में प्रतिपादित सदाचार के उपर्युक्त पाँच सिद्धान्तो के साथ कोई सम्बन्ध नहीं है। इस शब्द को सर्वप्रथम आधुनिक राजनीतिक क्षेत्र में प्रचलित करने का श्रेय इन्डोनेशिया के प्रधान, डा० सुकर्णो को प्राप्त है। १ जून १९४५ के दिन इन्डोनेशिया-गणतन्त्र के आधारभूत सिद्धान्तो पर प्रकाश डालते हुए उन्होंने उन्हें 'पज सिला' (Panja Sila) के नाम से अभिहित किया था।

"मैं आपके सम्मुख पहले ही राज्य के सिद्धान्तों का सुझाव रख चुका हूं। वे पाँच हैं। क्या यह 'पन्त्ज धर्म' (पंच दर्म) है? नहीं। 'पन्त्ज दर्म' नाम यहाँ उचित नहीं है। 'दर्म' का अर्थ होता है कर्तव्य किन्तु हम सिद्धान्तों की चर्चा कर रहे हैं। मुझे प्रतीक पसन्द है—संस्थाओ के प्रतीक भी पसन्द हैं। इस्लाम के धार्मिक कृत्य पाँच हैं। हमारी उंगलियाँ सख्या मे पांच-पांच हैं। पाण्डव भी पाँच प्राणी थे और अब हमारे सिद्धान्तो— राष्ट्रीयता, अन्तर्राष्ट्रीयता, विचार-विनिमय, सम्पन्नता और परमात्मा पर विश्वास—की सख्या भी पाच ही है। इनका नाम 'पन्त्ज दर्म' नही है, अपने एक भाषा-विद् मित्र के परामर्श के अनुसार मैं इन्हें 'पन्त्ज सिला' नाम से सम्बोधित करता हूँ 'सिला' का अर्थ है 'आधार' अथवा 'सिद्धान्त' और इन्ही पाँच सिद्धान्तो पर हम अपने स्वतन्त्र—स्थायी तथा शाश्वत—इन्डोनेशिया का निर्माण करेंगे।"

इस समय तक इस शब्द का महत्व एक देशीय अथवा राष्ट्रीय ही था; शब्द को अन्तर्राष्ट्रीय महत्व २९ अप्रैल १९५४ को प्राप्त हुआ। उस दिन तिब्बत के सम्बन्ध में किये जाने वाले भारत-चीन-करार, में सर्वप्रथम अन्तर्राष्ट्रीय आचरण के वे पांच सिद्धान्त निर्धारित किए गये जिन्हें आगे चल

कर 'पंचशील' (अथवा 'पंचशिला') के नाम से पुकारा गया। वे पाच सिद्धान्त निम्नलिखित हैं:—

१. परस्पर एक दूसरे देश की प्रादेशिक पूर्णता और प्रभु-सत्ता के प्रति आदर-भाव;

२. अनाक्रमण,

३. एक दूसरे देश के आन्तरिक मामलो मे हस्तक्षेप न करना,

४. समानता एव पारस्परिक हित; और

५. शान्तिपूर्ण सह-अस्तित्व।

१५ मई, १९५४ को प्रधान मन्त्री श्री जवाहरलाल नेहरू ने लोक-सभा में भाषण देते हुए चीन और भारत के बीच होने वाले उपर्युक्त करार को "एक अत्यन्त महत्वपूर्ण घटना" बतलाया और उसमे निहित पाँच सिद्धान्तों की ओर सदन का ध्यान आकृष्ट करते हुए कहा:

"ये सिद्धान्त केवल उसी नीति के सूचक मात्र नही हैं जिसका पालन हम चीन, इतना ही नही किसी भी पड़ौसी देश—यहाँ तक कि किसी भी अन्य देश के साथ सम्बद्ध बातो के लिए करना चाहते हैं, ये तो वस्तुतः सर्वव्यापी सिद्धान्त हैं और मैं समझता हूँ कि यदि विभिन्न देश अपने पारस्परिक सम्बन्धो के लिए इन सिद्धान्तो का पालन करने लगें तो कदाचित् आज की दुनिया की बहुत सी मुसीबतें दूर हो सकती हैं।"

२३ सितम्बर १९५४ को इन्डोनेशिया के प्रधान मन्त्री के सम्मान मे किये जाने वाले एक राजकीय समारोह में भाषण देते समय प्रधान मन्त्री श्री जवाहरलाल नेहरू ने उपर्युक्त पाँच सिद्धान्तो को 'पचशील' के नाम से अभिहित किया।

इसके उपरान्त तो अन्तर्राष्ट्रीय क्षेत्र मे 'पंचशिला' का महत्व अधिकाधिक स्वीकार किया जाने लगा। १७ अक्टूबर, १९५४ को वियटनाम के लोकतन्त्रात्मक गणतन्त्र के प्रधान श्री हो-ची-मिन ने श्री नेहरू को विश्वास दिलाया कि उन्हें उपर्युक्त पाँच सिद्धान्तों पर पूर्ण आस्था है और वह लाओस, कम्बोडिया तथा अन्य देशों के साथ स्थापित किये जाने वाले वियटनाम के सम्बन्धों में उक्त सिद्धान्तों का अवलम्बन करना चाहते हैं।

युगोस्लाविया वह प्रथम यूरोपीय देश था, जिसने पंचशील के घोषणा-पत्र पर हस्ताक्षर किये। २ अप्रैल १९५५ को लोक-सभा मे पूछे जाने वाले एक प्रश्न के उत्तर मे यह बताया कि ६ देशों—बर्मा, चीन, इण्डोनेशिया, नेपाल, वियटनाम, युगोस्लाविया और कम्बोडिया—ने 'पंचशील' का महत्व स्वीकार करके उनके प्रति अपनी निष्ठा की घोषणा कर दी है।

१० अप्रैल १९५५ को एक गैर-सरकारी एशियाई सम्मेलन का आयोजन किया गया। १४ देशो के २०० प्रतिनिधियो ने इसमे भाग लिया। प्रतिनिधियो ने एक स्वर से 'पचशील' के प्रति अनन्य श्रद्धा-भाव अभिव्यक्त किया और यह घोषणा की कि 'राष्ट्रो के बीच पारस्परिक बन्धु-भाव और शान्तिपूर्ण सह-अस्तित्व के लिए ये सिद्धान्त सुनिश्चित आधार हैं।"

१८ अप्रैल १९५५ को इण्डोनेशिया मे होने वाले बांडुंग सम्मेलन में एशिया और अफ्रीका के २९ देशो ने भाग लिया। सम्मेलन के अन्तिम प्रस्ताव मे केवल 'पचशील' के पांच सिद्धान्तो का समावेश ही नहीं किया गया अपितु उनके साथ ऐसे पांच अन्य सिद्धान्त और भी जोड दिये गये जिनसे 'पचशील' के पाच सिद्धान्तो का महत्व और भी बढ़ गया। जोड़े जाने वाले नये पाच सिद्धान्त निम्नलिखित थे—

६. (क) विश्व की बडी शक्तियो मे से किसी शक्ति के विशेष स्वार्थ-साधन के लिए सयुक्त सुरक्षा-व्यवस्था का प्रयोग न करना;

(ख) किसी एक देश द्वारा दूसरे देश पर किसी प्रकार का दबाव न डालना;

७. किसी देश की प्रादेशिक पूर्णता—अथवा राजनीतिक स्वतन्त्रता के विरुद्ध बल-प्रदर्शन अथवा आक्रमण की धमकी देने वाले कामो से दूर रहना;

८ अन्तर्राष्ट्रीय झगड़ों का समझौता, संयुक्त राष्ट्र सघ के चार्टर के अनुसार शान्तिपूर्ण तरीको, उदाहरणार्थ पत्र-व्यवहार, बातचीत, समझौता पच-फैसला अथवा सम्बद्ध पक्षो द्वारा निर्धारित शान्तिपूर्ण उपायों द्वारा करना;

९. पारस्परिक स्वार्थ और सहयोग की भावना बढ़ाना; और

१०. न्याय और अन्तर्राष्ट्रीय उत्तरदायित्वों के प्रति आदर-भाव।

बाँडुंग सम्मेलन मे कम्बोडिया के राजकुमार, मिश्र के प्रधान मन्त्री, चीन के प्रधान मन्त्री और उत्तरी वियटनाम, लाओस, बर्मा आदि देशो के प्रतिनिधियो ने मुक्त कण्ठ से 'पचशील' की सराहना की। एशियाई-अफ्रीकी सम्मेलन की समाप्ति पर चीन और इण्डोनेशिया के प्रधानमन्त्रियो ने एक संयुक्त विज्ञप्ति पर हस्ताक्षर किये जिसमें शान्ति और मित्रतापूर्ण सह-अस्तित्व के पाच सिद्धान्तो का पूर्णतः समर्थन किया गया।

श्री नेहरू की विदेश यात्रा के समय भारत द्वारा निर्धारित विश्व-शान्ति के इन पाच सिद्धान्तो का विस्तार विश्व के अन्य भागो तक भी हुआ। २२. जून सन् १९५५ को मास्को के प्रसिद्ध डायनेमो स्टेडियम मे भाषण देते समय श्री नेहरू ने लगभग ८०,००० स्त्री पुरुषो का ध्यान पचशील की ओर आकृष्ट किया। २३ जून १९५५ को जारी किये जाने वाले मार्शल बुलगानिन और श्री नेहरू के संयुक्त वक्तव्य मे 'पचशील' को अधिक प्रत्यक्ष स्थान दिया गया। इस वक्तव्य मे 'पंचशील' के तृतीय सिद्धान्त मे सशोधन करके उसे यह स्वरूप दे दिया गया :—

"आर्थिक, राजनीतिक अथवा सैद्धान्तिक ढग के किसी कारण से एक दूसरे देश के आन्तरिक मामलो मे हस्तक्षेप न करना।"

सयुक्त वक्तव्य मे रूस तथा भारत के प्रधानमन्त्रियो ने यह निश्चय प्रकट किया कि भारत और रूस के पारस्परिक मित्रतापूर्ण सम्बन्ध इन्ही पाच सिद्धान्तो द्वारा अनुप्राणित होते रहेगे।

पोलैण्ड की सरकार का निमन्त्रण-पत्र पाकर श्री नेहरू वहाँ गये और उन्होने वार्सा मे पोलैण्ड के प्रधानमन्त्री तथा अन्य सरकारी अफसरो के साथ बातचीत की। इस बातचीत द्वारा स्पष्ट हो गया कि दोनो देश शान्ति चाहते हैं और पंचशील' के आधार पर ही उस शान्ति की स्थापना करना चाहते है'।

नेहरू-टीटो वक्तव्य में भी 'पचशील' के प्रति विश्वास प्रकट किया गया और २ जून १९५५ के रूस तथा युगोस्लाविया के संयुक्त वक्तव्य मे भी पंचशील का समावेश किया गया। २९ अगस्त १९५५ को हेलसिन्की मे होने वाले अन्तर्राष्ट्रीय संघ के अधिवेशन मे स्वीकृत प्रस्ताव मे पंचशील के

सिद्धान्तो को स्थान दिया गया और अमरीका के भारतस्थित राजदूत श्री जान शेरमन कूपर ने तो यहाँ तक कह दिया कि "पचशील और वाशिंगटन सरकार की नीति मे परस्पर कोई विरोध नही है।"

अपनी प्रस्तुत (जून, जुलाई १६५६) विदेश-यात्रा की अवधि में भी हमारे प्रधानमन्त्री ने पचशील पर आधारित विश्व-बन्धुत्व के भारतीय सदेश का ही प्रचार देश-देश मे किया। अणु-बम-विस्फोट सम्बन्धी परीक्षणों पर रोक, नि शस्त्रीकरण और विचार-विनिमय द्वारा विश्व की जटिलतम समस्याओ को हल करने का जो शान्ति एव सद्भावनापूर्ण मार्ग भारत समस्त ससार को दिखा रहा है वह इस शताब्दी की कदाचित् महानतम देन है। आज के भयाक्रान्त एव विक्षुब्ध मानव को केवल सात्वना अथवा सहायता ही नहीं, आश्वासन एवं निर्भयता की भी आवश्यकता है। विद्वेष, प्रतिहिंसा, प्रतिशोध एव शत्रुता की सर्वनाशक प्रवृत्तियो मे जकडा मानव आज उन देशो की ओर दृष्टि लगाये हुए है जो उसे शान्ति की सजीवनी प्रदान कर सकते हैं। भारत इन देशो मे अग्रणी है। शताब्दियो से भारत के शान्ति-दूत वसुन्धरा के एक छोर से दूसरे छोर तक जाकर शान्तिपूर्ण सह-अस्तित्व और बन्धुभाव का उपदेश देते रहे हैं। इस शताब्दी मे भी भारत के विचार और विश्वास के प्रतीक, भारतीयो के हृदय-सम्राट्, प्रधानमन्त्री श्री जवाहरलाल नेहरू ने ही पचशील के रूप म वह आधार-शिला रखी जिस पर विश्व-शान्ति एव सद्भाव का पवित्र भवन स्थापित होता जा रहा है। यह अत्यन्त शुभ सकेत है। 'पचशील' आज एक 'अन्तर्राष्ट्रीय सिक्का' बन गया है और इस सिक्के के साथ भारत का नाम सदा के लिए जुड गया है। हमारे लिए यह अपार गौरव की बात है।

---

१४ भारत की सामुदायिक विकास योजनाएँ

श्री सुमित्रानन्दन पत ने अपनी एक कविता 'भारत माता'—के आरम्भ मे कहा है, "भारत माता ग्राम वासिनी......।" निसन्देह भारत की आत्मा इस देश के असंख्य गावों में ही निवास करती है। विदेशी शासन-काल में

गाँवों की अपेक्षा नगरो की ओर ही अधिक ध्यान दिया जाता रहा, अतः हमारे गाव आर्थिक एव सामाजिक दृष्टि से पिछड़े रहे किन्तु स्वाधीनता-सग्राम के दिनो से ही हमारे राष्ट्र-नायक इस बात का अनुभव करते रहे हैं कि जब तक इस देश के गाँवो का कायाकल्प न होगा, तब तक भारत की उन्नति का कार्यक्रम अपूर्ण ही माना जायगा। अशिक्षा, रोग, अज्ञान, अन्ध-विश्वास और आर्थिक विपन्नता के केन्द्र हमारे गांव विदेशी शासन के समय मे नवजीवन के आलोक से आलोकित न हो सके किन्तु स्वाधीनता का सूर्योदय होने पर उसके प्रकाश की उद्बोधक रश्मियो ने नगरो के साथ-साथ गाँवो मे भी प्रवेश किया। फलस्वरूप गाँवो में भी प्रगति के अ कुर फूटने लगे, विकास के चिह्न स्पष्टत दृष्टिगोचर होने लगे, समृद्धिजन्य उल्लास की झलक दिखाई देने लगी।

ग्राम-सुधार से सम्बद्ध कार्यो का श्री गणेश तो स्वाधीनता-सग्राम के दिनों में ही हो गया था किन्तु राष्ट्रीय स्तर पर ग्राम-सुधार का एक व्यापक कार्य-क्रम स्वाधीनता-प्राप्ति के उपरान्त ही बनाया गया। इस कार्यक्रम को सामुदायिक विकास कार्यक्रम कहकर पुकारा गया और इस प्रकार सामुदायिक विकास और राष्ट्रीय विस्तार-सेवा के माध्यम द्वारा हमारे गाँवो ने जीवन के एक नवीन अध्याय मे प्रवेश किया है।

आयोजना आयोग के शब्दो मे "सामुदायिक विकास वह प्रणाली है और ग्रामीण विस्तार वह माध्यम है जिसके द्वारा (प्रथम) पचवर्षीय योजना गाँवों के सामाजिक तथा आर्थिक जीवन मे आमूल परिवर्तन का समारम्भ करना चाहती है।"

सामुदायिक विस्तार कार्यक्रम ग्राम-जीवन के किसी पक्ष-विशेष मे प्रगति का सन्देश लेकर आने वाला एकागी कार्यक्रम नही है, इसमे तो ग्राम- जीवन के प्राय समस्त अ गो—उदाहरणार्थ कृषि, सिंचाई, सचार, शिक्षा, स्वास्थ्य, पूरक नियोजन (Supplementary employment), आवासन (Housing), प्रशिक्षण और सामाजिक कल्याण आदि—के विकास कार्यों का समावेश है। प्रस्तुत कार्यक्रम की यह एक महत्वपूर्ण विशेषता है। इससे पहले ग्राम-सुधार के जो कार्यक्रम बनाये जाते थे वे प्रायः जीवन के किसी एक अंग

अथवा पक्ष-विशेष से ही सम्बद्ध हो जाते थे। इसीलिए उनका क्षेत्र अत्यन्त संकुचित हो जाता था। इसके विपरीत प्रस्तुत सामुदायिक विकास कार्यक्रम का क्षेत्र अत्यन्त व्यापक है। कार्यक्रम के निम्नलिखित आधारभूत उद्देश्यो से ही यह स्पष्ट हो जायगा —

(१) प्रत्येक सम्भव उपाय से खेती की उपज मे वृद्धि करना ;

(२) ग्रामीण क्षेत्रो मे बेकारी की समस्या को हल करना ,

(४) गांवो मे प्रारम्भिक शिक्षा, सार्वजनिक स्वास्थ्य और मनोरंजन का प्रबन्ध करना ,

(५) रहने के मकानो की दशा सुधारना ; और

(६) स्थानीय हस्त-कौशल और लघु उद्योगो को प्रोत्साहन देना।

अपने वर्तमान रूप मे सामुदायिक विकास कार्यक्रम का आरम्भ २ अक्टूबर (राष्ट्रपिता महात्मा गाधी की जन्म तिथि) १९५२ को हुआ। उस दिन ५५ योजनाओ का श्रीगणेश किया गया। योजना-क्षेत्र निर्धारित करते समय ऐसे इलाको को प्राथमिकता दी गयी जहाँ वर्षा अथवा सिंचाई की सुविधाएँ पहले से ही उपलब्ध थी और जहाँ गांवो का भरपूर विकास सम्भव था। उपर्युक्त कार्यक्रम का विस्तार लगभग २,००,००० मनुष्यो की आबादी वाले और लगभग चार पांच सौ वर्ग मील मे फैले लगभग ३०० गाँवो तक था। योजना क्षेत्र को तीन विकास खण्डो में बाट दिया गया। प्रत्येक खण्ड के गाँव पांच-पांच के एकको मे वर्गीकृत कर दिये गये और प्रत्येक वर्ग का सेवा-भार एक ग्राम सेवक के कधो पर डाल दिया गया। इस प्रकार विकास कार्य का मुख्य सूत्रधार एक ऐसे व्यक्ति को बनाया गया जो सम्बद्ध गाँव की समस्याओं से परिचित था, जिसका उस गाव-विशेष के साथ घनिष्ठ एव प्रत्यक्ष सम्बन्ध था और जो एक केन्द्र-बिन्दु की भाति अपने चारो ओर ऐसे स्थानीय कार्यकर्ताओ को एकत्रित कर सकता था जो अपने गांव के सुधार और विकास में सक्रिय रूप से भाग लेने के लिए कटिबद्ध हैं। प्रस्तुत योजना की यह द्वितीय विशेषता है। पहले जो योजनाएं बनाई जाती थीं, वे प्राय. सरकारी तौर पर ही कार्यान्वित की जाती थी, उनमे जन-सहयोग के लिए कोई स्थान न होता था। प्रस्तुत योजना मूलत जन-सहयोग पर ही आधारित है।

जहाँ तक सामुदायिक विकास योजना के संगठनात्मक पक्ष का सम्बन्ध है। एक केन्द्रीय समिति मोटे तौर पर नीतियो और कार्यपद्धतियों का निर्धारण करती है, कार्यकर्त्ताओं के काम का निर्देशन करती है। केन्द्रीय समिति के अधीन एक अधिकारी होता है जिसे सामुदायिक योजना-प्रशासक कहकर पुकारा जाता है। सामान्यतः केन्द्रीय समिति की देख-रेख मे और विभिन्न राज्यों के अधिकारियो के परामर्श के अनुसार सम्पूर्ण भारत मे सामुदायिक योजनाओ का आयोजन, निर्देशन और एकीकरण करने का भार योजना-प्रशासक पर ही होता है। अनेक अधिकारी इस कार्य में उसका हाथ बटाते हैं।

राज्यीय स्तर पर एक राज्यीय विकास-समिति होती है, जिसमे उक्त राज्य के मुख्य मत्री तथा आवश्यक मत्रियों का समावेश होता है। उक्त समिति का सैक्रेटरी एक राज्यीय विकास कमिश्नर होता है जिस पर उस राज्य के सामुदायिक विकास-कार्यक्रम के निर्देशन का भार होता है।

जिले के स्तर पर सामुदायिक विकास-कार्य-क्रम का उत्तरदायित्व एक जिला विकास-अधिकारी पर होता है और योजना के स्तर पर प्रत्येक योजना का भार एक योजना-अधिकारी पर। योजना-अधिकारियो को चुनते समय उनके अनुभव, सामान्य दृष्टिकोण, सामुदायिक विकास के उपायो और आवश्यकताओं के सम्बन्ध मे उनकी जानकारी, नेतृत्व करने की क्षमता और सरकारी तथा गैर-सरकारी सहयोग प्राप्त कर सकने की सामर्थ्य पर विशेष रूप से ध्यान दिया जाता है। प्रत्येक योजना-अधिकारी के साथ लगभग १२५ निरीक्षक और ग्राम-सेवक कार्य करेंगे। स्थानीय आवश्यकताओ के अनुसार उपर्युक्त ढाँचे मे परिवर्तन भी किया जा सकता है।

उपर्युक्त अधिकारियो के होते हुए भी सामुदायिक विकास-कार्यक्रमो को कार्य-रूप मे परिणित करने का भार वस्तुतः ग्रामीण जनता पर ही है। इतना ही नही, सामुदायिक विकास-योजनाओ के निर्माण मे भी गाँव वालो को महत्वपूर्ण स्थान दिया गया है। सामुदायिक योजना तो वास्तव मे वह माध्यम है जिसके द्वारा आयोजन के स्तर से ही ग्रामवासियो का सहयोग प्राप्त करने का लक्ष्य रखा गया है। इसीलिए इसमें एक योजना-परामर्शदात्री समिति

की स्थापना की भी व्यवस्था कर दी गयी है। इस समिति मे योजना-क्षेत्र के अधिक से अधिक गैर-सरकारी तत्वो के प्रतिनिधियो का समावेश किया जायगा। योजनासम्बन्धी कार्यो मे गाँव वालो का सहयोग पाने के लिए स्थानीय गैर-सरकारी संस्थाओ—विशेषतः भारत सेवक समाज—से अधिकतम सहायता ली जा रही है। ग्रामवासी धन, श्रम और समय देकर इन विकास-कार्यों मे अपना योग प्रदान कर रहे हैं।

प्रत्येक कार्य के लिए धन की आवश्यकता होती है। सामुदायिक विकास-कार्यक्रम इस नियम का अपवाद नही है। अनुमान है कि बुनियादी ढग की एक ग्राम-सामुदायिक योजना पर ३ वर्ष की अवधि मे ६५ लाख रु० खर्च होगा। इस रकम मे से ५८·४७ लाख रुपयो के रूप मे व्यय होगा और ६·५३ लाख डालरो के रूप में। इस व्यय का भार केन्द्रीय सरकार पर भी पडेगा और राज्य-सरकारो पर भी। मोटे तौर पर यह कहा जा सकता है कि अनावर्तक खर्चो के सम्बन्ध मे ७५ प्रतिशत व्यय केन्द्र द्वारा होगा और २५ प्रतिशत राज्य सरकारो द्वारा। आवर्तक व्ययो का ५० प्रतिशत केन्द्रीय सरकार करेगी और ५० प्रतिशत राज्य सरकारें। यह बात 'सहायक अनुदानों' पर लागू है। आशा है कि तीन वर्ष की अवधि के उपरान्त सामुदायिक विकास-क्षेत्र विकास-खडो का रूप ले लेंगे। अनुमान है कि जहाँ तक सामुदायिक विकास-क्षेत्रों का सम्बन्ध है, तीसरे वर्ष के उपरान्त उन विकास-खण्डो का पूरा खर्च—जो लगभग ३० लाख रुपया प्रति योजना होगा—राज्य-सरकारे ही करगी।

ग्रामीण क्षेत्रो के इस कायाकल्प के भारत को अमेरिका और फोर्ड फाउण्डेशन का सक्रिय सहयोग प्राप्त हो रहा है। अमरीका ने १९५२ मे प्रारम्भ होने वाली ५५ योजनाओ के लिए लगभग ३·४२ करोड रु० के उपकरण तथा अन्य सामग्री दी। बाद में अमरीकी सरकार ने दो किश्तो मे लगभग २·६६ करोड रु० की सहायता और दी। आरम्भ से ही फोर्ड-फाउण्डेशन हमारे कार्यकर्ताओ को प्रशिक्षण की सुविधा देकर सामुदायिक विकास कार्यों मे भारत का हाथ बटा रहा है। ग्रामीण विकास की १५

प्रायोजिक योजनायें कार्यान्वित करने मे भी हमे फोर्ड फाउण्डेशन से पर्याप्त सहायता मिली है।

बुनियादी ढग की सामुदायिक योजनाओ के अतिरिक्त कुछ योजनाएँ मिश्रित (ग्राम-सह-नगर) ढग की भी हैं और कुछ का सम्बन्ध लघु उद्योगों तथा नगर आयोजन के साथ है। सामुदायिक योजना के साथ-साथ, २ अक्टूबर १९५३ को एक अपेक्षाकृत कम व्यापक कार्यक्रम—राष्ट्रीय विस्तार सेवा—का समारम्भ किया गया। उस समय से सामुदायिक विकास-योजनाएँ और राष्ट्रीय विस्तार सेवा परस्पर पूरक के रूप में कार्य कर रही है।

प्रथम पचवर्षीय योजना मे देश की लगभग चौथाई ग्रामीण जनता तक राष्ट्रीय विस्तार सेवा और सामुदायिक विकास योजनाओ का विस्तार कर देने का लक्ष्य निर्धारित किया गया था। अक्टूबर १९५५ तक १०६,०५७ गाँवो मे बसे लगभग ६ ८६ करोड मनुष्यो तक इन कार्यक्रमो का विस्तार हो गया था। ये १०६,०५७ गाँव ९५१ सामुदायिक योजना और राष्ट्रीय विस्तार सेवा-खण्डो मे विभाजित थे।

३० अक्टूबर १९५५ तक सामुदायिक विकास और राष्ट्रीय विस्तार सेवा-कार्यक्रमो की प्रगति का सिंहावलोकन करने से यह पता चलता है कि इस अवधि में १०१८ हजार कम्पोस्ट खाद के गड्ढे खोदे गये, ७०६१ हजार मन उर्वरक और ३११२ हजार मन बीज गाँवो वालो में बाँटे गये, किसानो मे श्रेष्ठतम किस्म के २३६ उपकरण वितरित किये गये। ग्रामीण क्षेत्रो मे ८९६ प्रदर्शन-फार्म खोले गये, ३९७,००० एकड भूमि पर फल तथा शाक-भाजियाँ बोयी गयी, किसानो को ६५४७ बैल दिये गये। ४१ लाख पशुओ की चिकित्सा की गई, १५,४२,००० एकड भूमि की सिंचाई की गयी, २७३,००० सोकपिट बनाये गये, ६६ हजार शौचालय बनाये गये, २८ हजार कुएँ खोदे गए, ४४ हजार कुएँ साफ किये गये गन्दा पानी ले जाने वाले ३६ लाख नल बिछाये गये, ११ हजार नये स्कूल खोले गये, ४२५४ स्कूलो को बुनियादी स्कूल बनाया गया, ३० हजार प्रौढ़ शिक्षा-केन्द्र खोले गये, ६३ हजार बिरादरी-घरो और २७ हजार नयी सहकारी समितियो का उद्घाटन किया गया, ७८४ हजार और मनुष्यों को सहकारी समितियो का

सदस्य बनाया गया, ३३०४ मील लम्बी पक्की और २५ हजार मील लम्बी कच्ची सड़कें बनायी गयी और ६८७ उत्पादन-सह-शिक्षण केन्द्रो की स्थापना की गयी।

यह महत्वपूर्ण कार्य जन-सहयोग के बल पर ही सम्पन्न हो सका है। जुलाई १९५५ तक जन-साधारण ने उक्त कार्यक्रमो मे भूमि, धन अथवा श्रम के रूप मे, जो योगदान किया था उसका मूल्य १५'२६ करोड़ रु० था जबकि इसी अवधि मे सरकार ने इन कार्यक्रमो पर २५०८' करोड़ रुपया व्यय किया। दूसरे शब्दो में जनता का भाग सरकारी व्यय के लगभग ६० प्रतिशत के बराबर था। यह उल्लेखनीय जन-सहयोग केवल हमारे देश के लिए ही नहीं समस्त विश्व के लिए गौरव की बात है।

सितम्बर १९५५ मे राष्ट्रीय विकास-परिषद् ने यह इच्छा प्रकट की थी कि द्वितीय पचवर्षीय योजनावधि में राष्ट्रीय विस्तार सेवा का प्रसार सम्पूर्ण देश मे हो जाना चाहिए और कम से कम ४० प्रतिशत राष्ट्रीय विस्तार-खण्डों को सामुदायिक विकास-खण्डों मे परिवर्तित कर दिया जाना चाहिए। द्वितीय पचवर्षीय योजना के अनुसार राष्ट्रीय विस्तार योजना के अन्तर्गत ३८०० अतिरिक्त विकास-खण्डो की स्थापना करने का विचार है। इसमे ११२० सामुदायिक विकास-खण्डो मे परिवर्तित हो जाने का अनुमान है। द्वितीय पचवर्षीय योजना में इस कार्यक्रम को कार्यान्वित करने के लिए २०० करोड़ रु० की व्यवस्था कर दी गई है।

यह अनुभव किया जा रहा है कि द्वितीय पचवर्षीय योजना मे निर्धारित कार्यक्रम को इस ढग से कार्यान्वित किया जाना चाहिए कि प्रत्येक ग्रामीण परिवार का सहयोग प्राप्त हो सके तथा प्रत्येक परिवार के जीवन-स्तर में सुधार लाने की दिशा मे कोई सुनिश्चित कदम उठाये जा सकें। अतः आशा की जा रही है कि द्वितीय योजनावधि मे राष्ट्रीय विस्तार-सेवा, सामुदायिक विकास तथा उनसे सम्बद्ध कार्यक्रमो द्वारा खेती की उपज मे उल्लेखनीय वृद्धि होने के साथ-साथ निम्नलिखित क्षेत्रो मे भी महत्वपूर्ण प्रगति होगी :—

(१) सहकारिता के आधार पर किये जाने वाले कार्यों, (जिनमे सहकारी खेती भी सम्मिलित है) का विकास ;

(२) ग्राम-विकास के मूल स्रोत के रूप मे पंचायतो का विकास ;

(३) चकबदी ;

(४) ग्राम्य तथा लघु उद्योगो का विकास ;

(५) ग्रामीण जनता के दुर्बलतर वर्गों विशेषतः छोटे किसानो, भूमिहीन किसानो, खेतो पर काम करने वाले श्रमिको और कारीगरो को सहायता देने के विचार से अनेक कार्यक्रमो का आयोजन ,

(६) युवको और स्त्रियों द्वारा अधिक भरपूर कार्य ;

(७) कबायली इलाको मे अधिक भरपूर कार्य ।

उपर्युक्त विवरण से प्रस्तुत कार्य की सत्ता और महत्ता का अनुभव सहज मे ही लगाया जा सकता है । जन-कल्याण के इस महान् कार्य में जन-सहयोग का महत्व भी भली भाति प्रतिपादित कर दिया गया है। यहाँ यह कह देना भी आवश्यक जान पडता है कि ग्रामीण क्षेत्रो में सामाजिक एवं आर्थिक जीवन का स्वरूप बदलने की समस्या मूलत एक मानवीय समस्या है । संक्षेप मे यह गांवो मे रहने वाले सात करोड़ परिवारों का दृष्टिकोण परिवर्तित कर देने, उन्हें नवीनतम ज्ञान और जीवनयापन के अभिनव तरीकों के प्रति आकर्षित करने और उनके हृदय मे एक श्रेष्ठतर जीवन तक पहुचने की लगन तथा उस लक्ष्य की प्राप्ति के लिए अभीष्ट उत्साह उत्पन्न करने की समस्या है। जनतन्त्रात्मक आयोजन मे विस्तार सेवाएं और समाज-संस्थाएं राष्ट्र की प्रधान शक्ति होती हैं और ग्रामीण विकास-योजनाओ की साधन होती हैं, जिनकी सहायता से सहकारितापूर्ण आत्मसाहाय्य और स्थानीय प्रयत्नो द्वारा गाँव सामाजिक प्रगति और आर्थिक उन्नति के पथ पर अग्रसर होने के साथ-साथ राष्ट्रीय आयोजन अथवा राष्ट्र-निर्माण मे भी भागीदार हो सकते हैं ।

६५ द्वितीय पंचवर्षीय योजना

राष्ट्रीय योजनाएं मील के उन पत्थरो के समान होते हैं जो उस पथ के पथिको को निरन्तर यह सूचना देते रहते हैं कि वे कितना रास्ता तय कर चुके है और कितना शेष है। भारत के प्रधान मन्त्री श्री जवाहरलाल नेहरू के शब्दो मे "एक पंचवर्षीय योजना के आरम्भ होने और एक पंचवर्षीय योजना के समाप्त होने की तिथिया राष्ट्र के इतिहास मे महत्त्वपूर्ण होती हैं, क्योकि उनसे प्रकट होता है कि हम क्या प्रमुख कदम उठा रहे हैं, हमने क्या लक्ष्य रखा था, उस तक हम पहुच सके या नहीं ? उसके बाद अगला कदम उठाने की सोची जाती है। इस प्रकार यह बराबर चलता रहने वाला सिलसिला है।"

स्वाधीन भारत अपनी सर्वतोमुखी प्रगति का जो स्वर्णिम इतिहास लिख रहा है, प्रथम पचवर्षीय योजना के रूप मे इसका एक अध्याय पूरा हो चुका है और द्वितीय अध्याय—द्वितीय पचवर्षीय योजना—का आरम्भ कर दिया गया है। प्रथम पचवर्षीय योजना का मुख्य उद्देश्य एक आधार तैयार करना था, जिस पर आगे चल कर एक अत्यन्त विकासोन्मुख एवं सर्वांगपूर्ण अर्थ-व्यवस्था का निर्माण किया जा सके। उस समय कच्चे माल एवं अनाज का अभाव और मुद्रा-बाहुल्य जैसी कुछ आवश्यक समस्याएं हमारे देश के सम्मुख थी किन्तु प्रथम पचवर्षीय योजना का इस देश की अर्थ-व्यवस्था पर बहुत अच्छा प्रभाव पडा। खेती की उपज और औद्योगिक उत्पादन, दोनो में उल्लेखनीय वृद्धि हुई। वस्तुओ की कीमतें भी अपेक्षाकृत मुनासिब हो गयी और विदेशों से भी हमारा लेन-देन अधिक सन्तुलित हो गया है। प्रथम योजना मे निर्धारित अधिकतर लक्ष्य पूरे हो चुके हैं और कुछ क्षेत्रो मे तो हम निर्धारित लक्ष्यो से काफी आगे बढ गये हैं। प्रथम योजना के पाँच वर्षों में इस देश की लगभग १ करोड़ ७० लाख एकड़ भूमि की सिचाई का प्रबन्ध किया गया और देश की बिजली बनाने की क्षमता भी ६३ लाख किलोवाट से बढकर ६५ लाख किलोवाट हो गयी। रेलो की दशा में उल्लेखनीय सुधार हुआ और सरकारी अथवा गैरसरकारी कारखाने खोले गये।

अनुमान है कि पिछले पांच वर्षों में राष्ट्रीय आय में लगभग १८ प्रतिशत वृद्धि हुई है। निजी क्षेत्र मे भी आशानुकूल धन लगाया गया। इस विकास के कारण किसी पर कोई खास बोझ नही पड़ा। योजना के फलस्वरूप लोगों मे परस्पर हिल-मिल कर काम करने की भावना को विशेष रूप से प्रोत्साहन प्राप्त हुआ, देश मे विश्वास का वातावरण उत्पन्न हुआ और देशवासियो को बहुत सी आशाएँ बंधी।

द्वितीय पंचवर्षीय योजना का मुख्य उद्देश्य राष्ट्रीय अर्थ-व्यवस्था का तेज़ी से विकास करना और देश की उत्पादन-क्षमता मे इस प्रकार वृद्धि करना है जिससे कि भावी योजनाओ मे विकास एवं निर्माण-कार्य और भी अधिक द्रुतगति से हो सके। अन्य देशो की अपेक्षा हमारे देश मे औद्योगीकरण का आरम्भ बाद मे हुआ है अत. हमारे लिए आवश्यक है कि दूसरे देशो ने जो प्रगति कई पीढ़ियो में की है हम उस स्तर तक थोड़े ही समय मे पहुच जाएं।

द्वितीय पंचवर्षीय योजना निम्नलिखित उद्देश्यो को सामने रखकर बनाई गयी है —

(१) देश के रहन-सहन का स्तर ऊँचा करने के लिए राष्ट्रीय आय मे पर्याप्त वृद्धि करना;

(२) देश मे तेज़ी से उद्योगो—विशेष रूप से भारी तथा मूल उद्योगो की वृद्धि करना;

(३) रोजगार की व्यापक वृद्धि करना;

(४) लोगो की आय और सम्पत्ति के भारी अन्तर को दूर करना तथा सम्पत्ति का समान वितरण करना।

ये सब बातें परस्पर सम्बद्ध हैं। इन उद्देश्यो की पूर्ति के लिए यह आवश्यक है कि देश की जनशक्ति और यहाँ के प्राकृतिक साधनो का समुचित रीति से उपयोग किया जाय। यहाँ की विशाल जनसख्या को देखते हुए रोजगार की सुविधाएं बढाना भी स्वतः एक उद्देश्य है। विकास-कार्य इस प्रकार किया जाना चाहिए जिससे आर्थिक और सामाजिक असमानता दूर

हो और इसके लिए जनतन्त्रीय मार्ग का अवलम्बन किया जाय। आर्थिक उद्देश्य सामाजिक उद्देश्यो से पूर्णत अलग नही होते।

उद्योग प्रगति के मूलाधार होते हैं। हमारी द्वितीय पचवर्षीय योजना में देश के औद्योगिक विकास को अत्यन्त महत्वपूर्ण स्थान दिया गया है। उद्योगों की सर्वतोमुखी प्रगति के लिए यह आवश्यक है कि सर्वप्रथम मशीनें तैयार करने वाले उद्योगो को प्रोत्साहन दिया जाय ताकि विभिन्न प्रकार की मशीने तथा मशीनी औजार शीघ्रातिशीघ्र देश मे ही तैयार होने लगें। इस कार्य के लिए लोहे इस्पात, अलौह धातुओ, कोयले, सीमेंट और रासायनिक पदार्थों आदि के उद्योगो मे उल्लेखनीय विस्तार आवश्यक है। इन उद्योगो के लिए अभीष्ट प्राकृतिक साधनो का हमारे देश मे अभाव नहीं है, आवश्यकता तो केवल इस बात की है एक सुनियोजित ढग से इन साधनों का उपयोग किया जाय। मूल और विशाल उद्योगों के साथ-साथ लघु, ग्राम और कुटीर उद्योगो के विकास का ध्यान रखना होगा। इस प्रकार देश से बेकारी की समस्या का उन्मूलन हो सकेगा। सक्षेप मे द्वितीय योजना में औद्योगिक उत्पादन-शक्ति की वृद्धि के लिए निम्नलिखित प्राथमिकताएं रखी गयी हैं—

(१) लोहे तथा इस्पात के उत्पादन, मशीनों के निर्माण, इजीनियरिंग के भारी यन्त्रो के निर्माण तथा नाइट्रोजनयुक्त रासायनिक खादों सहित भारी रसायनों के निर्माण का विकास,

(२) सीमेंट तथा फास्फेटयुक्त रासायनिक खादो जैसी विकासात्मक तथा उत्पादन सामग्री के उत्पादन का विस्तार;

(३) जूट, कपास तथा चीनी आदि पहले से स्थापित राष्ट्रीय उद्योगो में आधुनिक किस्म की मशीनें लगाना तथा टूटी-फूटी मशीनो के स्थान पर नयी मशीनें लगाना;

(४) जिन वर्तमान उद्योगों का उत्पादन निर्धारित क्षमता के बराबर नहीं हो रहा है, उनका उत्पादन बढ़ाकर पूर्ण उत्पादन क्षमता तक लाना;

(५) उपभोग्य वस्तुओं की उत्पादन-क्षमता बढ़ाना।

जहाँ तक उपर्युक्त (४) और (५) में वर्णित उद्योगों का सम्बन्ध है,

छोटे तथा ग्राम-उद्योगों के उत्पादन-कार्यक्रमों के लिए सहायता देने की आवश्यकता तथा उनसे सम्बद्ध बड़े तथा छोटे कारखानों के उत्पादन के सामान्य कार्यक्रमों की आवश्यकताओं पर पूरी तरह ध्यान देना आवश्यक है।

पूर्ण अथवा आंशिक बेकारी हमारे देश की एक अत्यन्त भयकर समस्या है। द्वितीय पचवर्षीय योजना मे इस बात का ध्यान विशेष रूप से रखा गया है कि अधिक से अधिक लोगो को काम पर लगाया जा सके। यह तो स्वाभाविक ही है कि योजना में जितनी अधिक पूँजी लगाने की व्यवस्था की जायगी, रोजगार की सम्भावनाए उतनी ही अधिक हो जायंगी। आयोजन आयोग इस परिणाम पर पहुँचता है कि दूसरी पचवर्षीय योजना कदाचित् पिछले बेकारो को काम देने में तो सफल न हो सके किन्तु इस योजना की अवधि मे मजदूरी चाहने वाले जो नये लोग पैदा होंगे उन्हें रोजगार मिल जायगा और गाँवो मे छोटे उद्योगो और खेतो के मजदूरो को पहले से अधिक काम मिल सकेगा। खानो, कारखानों, भवन-निर्माण-उद्योग, व्यापार और परिवहन में निस्सन्देह खेती के मुकाबिले अधिक लोगो की माँग होगी। सिचाई, जमीन के कटाव की रोक, पशु-धन के सुधार, कृषि और छोटे तथा ग्रामोद्योगो से गाँवो मे काफी हद तक बेकारी दूर होगी। योजना के अन्तर्गत बहुत अधिक संख्या मे जिन सरकारी तथा गैर सरकारी मकानो का निर्माण होगा उनसे भी बेकारी की समस्या हल करने मे सहायता मिलेगी।

आर्थिक दृष्टि से हमने समाजवादी व्यवस्था को अपना ध्येय मान लिया है। अत अब हमें निजी लाभ की भावना से नही, अपितु समाज के लाभ की भावना से प्रेरित होकर कार्य करना है। हम अपनी अर्थ-व्यवस्था को ऐसा स्वरूप देने के लिए कृतसकल्प हैं जिससे आर्थिक विकास का अधिकाधिक लाभ उन लोगो को मिले जो अभी तक उससे वचित रहे हैं, धन-दौलत और आर्थिक शक्ति थोड़े से लोगो के पास इकट्ठा न हो और अभी तक उपेक्षित वर्ग सगठित प्रयत्न से अपने और अपने देश को धन-धान्य से सफल बना सकें।

द्वितीय पंचवर्षीय योजना के अन्तर्गत केन्द्रीय तथा राज्य सरकारें कुल

४८०० करोड़ रुपया व्यय करेंगी। इसमें से सिंचाई तथा बिजली पर १६ प्रतिशत, सामूहिक तथा राष्ट्रीय विस्तार योजनाओं को मिलाकर कृषि पर ११ ८ प्रतिशत, उद्योगो और खनिजो पर १८'५ प्रतिशत, परिवहन तथा संचार पर २८'६ प्रतिशत तथा आवास और विस्थापितो के पुन. संस्थापन को मिलाकर समाज-सेवाओ पर १९'७ प्रतिशत धन व्यय किया जायगा। उपर्युक्त मदों के लिए की गई इन व्यवस्थाओ मे आवश्यकतानुसार परिवर्तन किया जा सकेगा। द्वितीय योजना मे औद्योगीकरण पर विशेष रूप से बल दिया गया है। उद्योग के क्षेत्र मे भी बुनियादी तथा बड़ी मशीनो के उद्योगो को उच्च प्राथमिकता दी गई है। इसीलिए परिवहन तथा सचार के लिए भी अधिक व्यवस्था करना अनिवार्य हो जाता है। सिंचाई तथा बिजली उत्पादन के विस्तार के लिए भी जिनका कृषि तथा उद्योग दोनों के लिए विशेष महत्त्व है, व्यवस्था की गई है। योजना के अन्तर्गत सामूहिक विकास तथा राष्ट्रीय विस्तार के कार्यक्रम को बढाने की ओर भी पर्याप्त ध्यान दिया गया है। देश की बहुत अधिक आबादी अर्थ-व्यवस्था के इस क्षेत्र पर निर्भर है तथा इस समय उनके रहन-सहन का स्तर बहुत नीचा है। अत. इस क्षेत्र की उन्नति का महत्व स्वय सिद्ध है। देश की आवश्यकताओ को ध्यान मे रखते हुए योजना मे समाज-सेवाओं के लिए १९ ७ प्रतिशत की व्यवस्था पर्याप्त नही है।

द्वितीय पचवर्षीय योजना मे केन्द्रीय तथा राज्य-सरकारें विशाल विकास-कार्य अपने हाथ मे लेंगी। योजना मे २ करोड १० लाख एकड अतिरिक्त जमीन के लिए सिंचाई की सुविधा उपलब्ध करने का विचार है। प्रथम योजना के अन्त मे पैदा की जाने वाली ३५ लाख किलोवाट बिजली के मुकाबले द्वितीय योजनावधि के अन्त मे ६८ लाख किलोवाट बिजली तैयार होने लगेगी। रेल द्वारा यात्रियो के यातायात मे तथा माल की ढुलाई मे ३४ प्रतिशत वृद्धि होने का अनुमान है, यद्यपि आवश्यकता यह होगी कि इससे भी अधिक वृद्धि की जाय। इस कार्य की पूर्ति के लिए यह आवश्यक है कि इन्जनो, सवारी-डिब्बो, और माल-डिब्बो की सख्या बढाई जाय, कुछ नयी पटरियां बिछाई जांय, लाइनो की सामर्थ्य मे वृद्धि की जाय, रेलो के कुछ

क्षेत्रो मे बिजली से चलने वाली गाड़ियाँ चलायी जाय तथा विभिन्न प्रकार के निर्माण-कार्यों का विस्तार किया जाय। सामुदायिक विकास कार्यक्रम के अन्तर्गत ३८०० राष्ट्रीय विस्तार खण्डों तथा ११२० सामुदायिक योजना-खण्डो मे भरपूर कार्य करने की व्यवस्था की गयी है। कुल मिलाकर इस कार्यक्रम को इतना बढाया जायगा कि १९६०—६१ तक ३२ करोड ५० लाख व्यक्ति इससे लाभ प्राप्त करने लग जाय, जबकि अब तक इनसे लगभग ८ करोड व्यक्तियो को लाभ पहुचा है। नये कार्यक्रमो का मुख्य दायित्व केन्द्रीय सरकार पर है। भारी उद्योगो, कोयला तथा तेल की खोज सम्बन्धी विकास-कार्यक्रम को बढाने तथा अणु-शक्ति के विकास की दिशा मे कार्य आरम्भ करने की भी व्यवस्था की गयी है।

किसी भी योजना की सफलता उसके लिए प्राप्त साधनों पर निर्भर रहती है। ये साधन मुख्यतया धन के रूप में ही जुटाये जा सकते हैं। स्वभावतः यह धन प्राप्त करने के लिये सरकार को अतिरिक्त कर लगाने पडेंगे, केन्द्र तथा राज्य सरकारो को अनेक प्रकार के ऋण लेने पडेंगे और घण्टे की अर्थ-व्यवस्था अपनाने के लिए अनेक उपायो का अवलम्बन करना पडेगा।

विकासोन्मुखी अर्थ-व्यवस्था मे आधारभूत सरकारी नीति निश्चित रूप से वित्त और मुद्रा मे विस्तार करने की होती है। कोई अन्य उपाय न रहने पर ही सरकारी व्यय मे कमी करने की बात सोचनी चाहिए। विदेशी मुद्रा का हम उतना ही सहारा ले सकते हैं जितनी कि वह हमारे पास है किन्तु कठिनाइयाँ आते ही विकास-कार्यक्रम बन्द नही किया जा सकता और उसका वेग भी धीमा नही किया जा सकता। कुछ न कुछ तो जोखम उठानी ही पड़ती है ऐसे कार्यो को सम्पन्न करने के लिए।

प्रजातन्त्रीय राज्य मे राष्ट्रीय योजनाओ की सफलता जनता के उत्साह पूर्ण और सक्रिय सहयोग पर निर्भर होती है। प्रथम योजना के लिए इस सहयोग की अपील की गयी थी और वह भली प्रकार मिला भी। इसी कारण द्वितीय योजना के निर्माताओ ने ठीक ही लिखा है कि इसे बनाने मे उन्हें जैसा व्यापक और उत्साहपूर्ण सहयोग मिला है वही इसकी सफलता का

शुभ लक्षण है। परन्तु द्वितीय योजना को सफल बनाने के लिए जनता के और भी अधिक सहयोग की आवश्यकता होगी। इसका खर्च निकालने के लिए यदि कोई नये कर लगाये जायं तो उन्हें सहर्ष स्वीकार किया जाना चाहिए। हमे समझ लेना चाहिए कि इस त्याग का फल हमारी ही समृद्धि के रूप में प्रकट होगा और वह भी किसी अगली पीढी मे नही वरन् हमारे सामने ही। हमारी आय का जो भाग खर्च से बचे उसे राष्ट्रीय योजना के लिए जारी किये जाने वाले ऋणो मे लगाया जाना चाहिए। जनता को सामुदायिक योजनाओ मे भी बड़े उत्साह के साथ भाग लेना चाहिए क्योकि उनके द्वारा हमारे गाँवो के सामाजिक और आर्थिक जीवन में क्रान्ति उत्पन्न हो जायगी, जो उन पर सुख और आनन्द की वर्षा करेगी। दूसरी योजना मे सामुदायिक तथा राष्ट्रीय विस्तार-सेवा-योजनाएँ इतनी अधिक आगे बढ़ेंगी कि उनके अन्तर्गत समस्त देश के ग्राम आ जाएगे। ग्राम-वासियों को भी हृदय से इनका स्वागत करना चाहिए और इनको सफल बनाने के लिए पूर्ण सहयोग देना चाहिए।

राष्ट्र-निर्माण के इस पावन पर्व में प्रत्येक व्यक्ति का कर्तव्य है कि वह अपने को समाज का तथा राष्ट्र का अनिवार्य अग समझे और राष्ट्र के विकास में अधिकाधिक योग प्रदान करे। भू-दान, धन-दान, श्रम-दान, विद्या-दान और समय-दान आदि ऐसे मार्ग हैं जिन पर चलकर कोई भी व्यक्ति राष्ट्र अथवा समाज के प्रति अपना कर्त्तव्य पूरा कर सकता है—राष्ट्र-ऋण से मुक्त हो सकता है। राष्ट्र आज नवयुग के दौरे में से गुजर रहा है, उसमे आज सर्वतो-मुखी प्रगति हो रही हैं। ऐसी दशा मे प्रत्येक व्यक्ति अत्यन्त सरलता-पूर्वक अपनी योग्यता और सामर्थ्य के अनुसार अपने लिए उचित सेवा-पथ का निर्धारण कर सकता है। उदाहरणार्थ यदि आप किसान हैं तो देश की उपज बढाने में सहयोग दे सकते हैं, यदि आप अध्यापक हैं तो देश से अज्ञान का अन्धकार दूर करने का कार्य अपने हाथ मे ले सकते हैं, यदि आप डाक्टर हैं तो देश को आरोग्य और स्वास्थ्य के पथ पर बढ़ाने के कार्य में, और एंजीनियर हैं तो राष्ट्र के निर्माण-कार्यों में महत्वपूर्ण भाग ले सकते हैं। प्रत्येक व्यक्ति यदि अपनी शक्ति, सामर्थ्य और योग्यता के अनुसार राष्ट्र

की सेवा मे संलग्न हो जाय तो वर्षों का काम महीनो मे, महीनों का काम दिनो में, दिनो का काम घटो मे और घंटो का काम क्षणो मे हो सकता है। करोड़ो मनुष्यो की आबादी वाले इस देश मे यदि प्रत्येक व्यक्ति एक क्षण भी सम्पूर्ण श्रद्धा, भक्ति और निष्काम सेवा-भावना से प्रेरित होकर अपने आप को देश की सेवा मे समर्पित कर दे तो वह एक क्षण मे देखते ही देखते करोड़ गुना होकर देश का कायाकल्प कर सकता है। हमारे देश और देशवासियों के जीवन का वह एक क्षण कितना महान्, कितना स्मरणीय और कितना सार्थक होगा, इसका अनुमान सहज ही में नही लगाया जा सकता है।

---

१६ भू-उपग्रह (स्पुतनिक)

आधुनिक सभ्यता वैज्ञानिक सभ्यता है। पिछले १५०–२०० वर्षों मे इस आधुनिक सभ्यता ने विज्ञान का सहारा लेकर नवीन-नवीन आविष्कारो के बल पर मनुष्य के ऐहिक सुखो के साधनो मे वृद्धि की है और उन्हे लोक-सुलभ कर दिया है। इन वर्षो मे आविष्कारो की सख्या प्रतिवर्ष शतश' रही है। इनके द्वारा जीवन-यापन के नये ढग खुले, आहार-विहार के नये मार्ग मिले, यातायात और आवागमन मे अत्यन्त चमत्कारिक सुविधा हुई। विज्ञान के महान् अवकाश को रेलो, तारो, वायुयानो और जलयानो के द्वारा बांध दिया है और काल पर नियन्त्रण किया है। एक देश दूसरे देश के निकट सम्पर्क में आ गया है और अब एक लोक को दूसरे लोक के निकट सम्पर्क मे लाने की बातें भी सोची जाने लगी हैं।

रामायण और पुराणो मे जो आख्यान आये हैं, उनमे नारद मुनि, हनुमान आदि के आकाश-चारी होने, देश-देशान्तरो और लोक-लोकान्तरो में भ्रमण कर आने की चर्चा है। लम्बे समय तक हम इन्हें गपोड़ मानते रहे, परन्तु आजके इस अणु-युग मे कुछ भी असम्भव नही रहा। पश्चिम के वैज्ञानिक अब अन्तरिक्ष मे घूमने वाले चन्द्र, मगल, शुक्र आदि दूसरे लोकों मे पहुचने के उपाय सोचने लगे हैं। रसायन शास्त्री, धातु-विद्या विशारद और अनेक दूसरे शिल्पी अन्तरिक्ष-यात्रा के प्रश्न पर गम्भीरतापूर्वक लगे हुये हैं। परमाणु शक्ति के आविष्कार से ही लोक लोकान्तर की यात्रा संभव जान पड़ने लगी है।

विज्ञान के द्वारा वरदान मे प्रदान किये हुए दूरदर्शी यन्त्रों से हमने चन्द्रमा एव नक्षत्रो के विषय मे जानकारी प्राप्त करने के प्रयत्न आरम्भ कर दिये और हमे यह विदित भी हो गया कि चन्द्रमा तथा अन्य अनेक नक्षत्रो मे पर्वत तथा समुद्र हैं। वे भी लगभग इसी पृथ्वी की भाँति हैं। दूसरे महायुद्ध की समाप्ति पर विश्व के वैज्ञानिको मे चन्द्र लोक की यात्रा करने के लिए राकेटो का आविष्कार करने के लिए प्रतिस्पर्धा आरम्भ हो गई। जहाँ तक शून्य मे उडने का सम्बन्ध है, चन्द्रमा की यात्रा एक छलाँग-मात्र है। यह लगभग दो लाख चालीस हजार मील का सफर है। हिसाब लगाया गया है कि इस यात्रा के लिए केवल ४८ घटे चाहिएँ। परन्तु जब परमाणु शक्ति हाथ आ जायेगी तो शून्य मे से चन्द्रमा तक पहुँचने मे केवल कुछ ही घटे लगेंगे। यह सब तो है, परन्तु हमे ऊपर शून्य के विषय में कोई निश्चित ज्ञान नही है। किस प्रकार मनुष्य वहाँ पर जीवित रह सकता है ? आदि अनेक प्रश्न वैज्ञानिको के सामने हैं। सर्वप्रथम उन्हे इन्ही प्रश्नो का उत्तर प्राप्त करना है। इसके लिए शून्य मे राकेटो को भेजना अत्यन्त आवश्यक समझा गया। रूस और अमेरिका के वैज्ञानिक इसमें सफलता प्राप्त करने के उद्देश्य से प्रयोगशालाओ मे कठिन परिश्रम करने लगे।

विश्व के वैज्ञानिक अपने-अपने प्रयासो मे लगे हुए थे कि ४ अक्टूबर सन् १९५७ ई० को रूसी वैज्ञानिको ने एक उपग्रह अन्तरिक्ष में छोडकर समस्त विश्व को चकित कर दिया, सबके नेत्र इस बाल-चन्द्रमा के लिए चकोर बन आकाश की ओर उठ गये। सभी देशो मे रेडियो-स्टेशनो पर इसके संकेतो को ग्रहण करने का प्रयत्न किया जाने लगा। जिस देश व नगर के ऊपर से होकर यह उपग्रह गुजरता था, वहीं के मनुष्य दूरदर्शी यन्त्रों से इसको देखते थे।

इस उपग्रह का व्यास ५८ सेंटीमीटर तथा भार ८३.६ किलोग्राम है। यह ऐलूमिनियम एलोजन का बना है। इसका धरातल बहुत चमकदार है। इसके अन्दर विभिन्न यंत्र हैं, जिनमे दो रेडियो-ट्रांसमीटर भी लगे हैं। ये दस हजार किलोमीटर तक की दूरी तक संकेत देते हैं। इसके बाहरी धरातल पर चार एरियल लगे हुए हैं। ये छडी की आकृति के हैं। इनकी लम्बाई २.४ से २.९ मीटर तक है। शून्य मे चक्कर लगाते समय उपग्रह को अधिक गर्मी और

सर्दी का सामना करना पड़ेगा। रूसी वैज्ञानिको ने उपग्रह का इस प्रकार निर्माण किया है कि उसका तापक्रम नार्मल रहे, जिससे कि यह अधिक अवधि तक चक्कर लगाता रहे। उन्होंने धातुओ का चुनाव और यत्रो का विभाजन ठीक इस प्रकार से किया है कि उन्हें अपने उक्त उद्देश्य मे सफलता मिले। छोडने के पूर्व इस उपग्रह को नाइट्रोजन गैस से भरा गया था।

प्रथम उपग्रह को अन्तरिक्ष मे ले जाने वाला राकेट एक दुर्बोध आविष्कार है। इसमे बहुत शक्तिशाली एजिन लगे हुए हैं, जो कि विभिन्न ताप-क्रमो पर एव विरल वायु मे कार्य करते हैं और जो राकेट को एक हजार किलोमीटर की ऊँचाई तक ले जाने मे सफल हुए हैं। उपग्रह को अन्तरिक्ष मे ले जाने वाले राकेट की नाक मे रखा गया और एक 'प्रोटैक्टिव कोन' के पीछे इसे बन्द कर दिया गया। राकेट के दूसरे भाग में विभिन्न यत्र तथा अन्य आवश्यक पदार्थ रखे गये। राकेट को लम्ब रूप मे ऊपर को छोडा गया। एक विशेष साधन की सहायता से राकेट अपनी कीली पर धीरे-धीरे झुकने लगा। कई सौ मील ऊपर जाकर राकेट ने पृथ्वी के समानान्तर चलना आरम्भ कर दिया। इस समय इसकी गति प्रति सेकेण्ड ८ हजार मीटर थी। जब एजिन ने कार्य करना बन्द कर दिया, तो 'प्रोटेक्टिव कोन' अपने आप ही पृथक् हो गया। इसके अलग होते ही उपग्रह भी राकेट से पृथक् होकर स्वतन्त्र रूप से पृथ्वी की परिक्रमा करने लगा। शून्य मे उपग्रह, राकेट एव 'प्रोटेक्टिव कोन' ये तीन वस्तुएँ दिखाई दी। आरम्भ मे तो इनमे परस्पर बहुत थोड़ा-सा अन्तर था, परन्तु धीरे धीरे यह अन्तर अधिक होता गया।

आरम्भ मे प्रथम उपग्रह को पृथ्वी का एक चक्कर लगाने मे लगभग ९६ मिनट लगते थे। तत्पश्चात् यह अनुमान लगाया गया कि २४ घंटो मे इसके समय मे ३ सेकेण्ड की कमी हो जाती है। इस प्रकार इसके समय में धीरे-धीरे कमी होने का यह अर्थ हुआ कि यह उपग्रह पर्याप्त समय तक पृथ्वी के चक्कर लगाता रहेगा और अन्त में सघन वायुमण्डल में उतर आने पर रगड़ से बहुत गर्मी उत्पन्न होगी और उस गर्मी से यह जल जायेगा।

अभी विश्व के वैज्ञानिक अपने विस्फारित नेत्रो से प्रथम उपग्रह को देख रहे थे कि ३ नवम्बर सन् १९५७ को रूसी वैज्ञानिकों ने एक और उपग्रह

अन्तरिक्ष मे छोड दिया । इस स्पुतनिक की सफलता ने ता समस्त विश्व को यह पूर्ण आशा दिला दी कि अवश्य ही निकट भविष्य मे ही एक-न-एक दिन मानव चन्द्र लोक मे पहुंचने मे सफल हो जायेगा । यह प्रथम उपग्रह की अपेक्षा ६ गुना भारी है । इसका भार ५०८३ किलोग्राम है । द्वितीय स्पुतनिक की ऊँचाई प्रथम की अपेक्षा बहुत अधिक है । यह लगभग ९३० मील की ऊँचाई पर पृथ्वी की परिक्रमा कर रहा है । उसे एक परिक्रमा में लगभग १०४ मिनट लगते हैं ।

द्वितीय स्पुतनिक मे अन्तरिक्ष के विषय में जानकारी प्राप्त करने के साधन के रूप मे कुछ वैज्ञानिक यत्र इत्यादि रखे गये हैं । इसके भीतर ऐसे यत्र भी लगाये गये हैं, जो कास्मिक रेडियेशन, अल्ट्रावायलेट तथा एक्स-रे के विषय में पृथ्वी पर बने हुए स्टेशनो को सकेत देते रहेंगे । इनके अतिरिक्त उसमें रेडियो, ट्रानमीटर एव आवश्यक सख्या मे बिजली की बैटरियाँ लगी हैं । द्वितीय उपग्रह मे बैठाकर 'लाइका' कुत्ता भी भेजा गया, जिसके विषय मे रूसी वैज्ञानिको का कहना है कि आक्सीजन गैस के अभाव मे उसका प्राणान्त हो गया ।

दो उपग्रहो के छोडने से विश्व को ऐसा आभास होने लगा था कि रूस विश्व के वैज्ञानिक जगत् मे उन्नति की स्पर्धा मे अन्य देशो को पछाड़ देगा और शून्य तथा नक्षत्रो पर एक मात्र रूस का ही अधिकार होगा । परन्तु इसी समय सहसा अमेरिका ने भी प्रयोग किया, यद्यपि उसका पहला उपग्रह तो पृथ्वी के निकट ही फट गया । परन्तु फर्वरी सन् १९५८ ई० मे अमेरिका के वैज्ञानिको ने अपना शक्तिशाली भू-उपग्रह अन्तरिक्ष में छोडकर विश्व का ध्यान अपनी ओर आकृष्ट किया । यह उपग्रह १०६ मिनट मे पृथ्वी का चक्कर लगा लेता है । इसकी गति का अनुमान १९ हजार ४ सौ मील प्रति घटा है । इसका भार ३० पौंड है । इनकी अधिक ऊँचाई दो हजार मील तथा न्यूनतम २३० मील हुआ है ।

अमेरिका के भू-उपग्रह में रखे गये यत्र उपग्रह के तल का तापमान, ब्रह्मांड धूलि तथा ब्रह्मांड किरणो के विषय में सूचनायें देंगे । इसमें दो रेडियो-ट्रांसमीटर हैं । एक ट्रांसमीटर १०८०३ मेगासाइक्स पर तथा दूसरा १०८ मेगा-

साइकल पर रेडियो सकेत भेजेगा। ये ट्रांसमीटर क्रमश दो से तीन सप्ताह तक तथा दो से तीन मास तक काम करेंगे। अमेरिका के वैज्ञानिको का कहना है कि १०८०३ मैगासाइकल पर ट्रासमीटर इस प्रकार के सकेत भेज रहा है कि जिनकी आवाज विमानो की भाँति है। रूसी उपग्रह से जो बीच-बीच में सकेत आये थे, उनसे इनका कोई साम्य नही है।

रूसी उपग्रहो के ट्रासमीटर खराब हो चुके है और अब प्रथम भू-उपग्रह का अन्तरिक्ष मे कोई पता नही है। ऐसा अनुमान है कि वह नष्ट हो चुका है, परन्तु दूसरे स्पुतनिक की कार्य-अवधि पहले से अधिक है। अमेरिका के वैज्ञानिकों का कहना है कि हमारा उपग्रह तो ढाई वष से लेकर दस वर्ष तक पृथ्वी की परिक्रमा लगा सकता है।

निकट भविष्य मे ही रूसी और अमेरिका के वैज्ञानिक अन्य भू-उपग्रह अन्तरिक्ष मे छोडने वाले हैं। तीसरे रूसी उपग्रह का भार लगभग डेढ टन होने का अनुमान है। यदि इन वैज्ञानिको को अपने प्रयोगो मे सफलता मिल जाती है तो वह दिन दूर नही, जब भू-मण्डल के नागरिक नारद और हनुमान् बने अन्तरिक्ष मे चक्कर लगाया करेंगे और समस्त भुवनो तथा लोकों के समाचार लाकर अपने-अपने राष्ट्रो को दिया करेंगे। यदि भगवान् कृष्ण एक बार फिर बाल कृष्ण लीला खेलने इस पृथ्वी पर आयें तो अब उन्हें माता यशोदा से 'चन्द्र-खिलौना' मांगने के लिए अधिक हठ नही करना पडेगा और न ही यशोदा को निराश होकर उन्हे बहलाना फुसलाना ही होगा।

यदि इसी गति से विज्ञान के क्षेत्र मे उन्नति होती रही तो वह दिन दूर नही जब मानव-निर्मित राकेट चन्द्रमा में जाकर उतरेगा, क्योकि अन्तरिक्ष और शून्य का पूर्ण ज्ञान तो वैज्ञानिको को इन छोटे-छोटे उपग्रहो के छोडने से होता ही जा रहा है। लगता है कि जिस विज्ञान ने पिछले महायुद्ध मे अपनी विभीषिका से मनुष्य का जीवन अभिशप्त कर दिया था, वही विज्ञान चन्द्र-लोक की यात्रा कराता हुआ मनुष्य के लिए वरदान सिद्ध होगा।

विज्ञान ने मनुष्य की भौतिक, आधिभौतिक और दैहिक दुख-शृङ्खला को बहुत कुछ शिथिल कर दिया है और सभव है कि भविष्य मे कभी वह समय भी आ जाये, जब न रोग शोक के ही दर्शन हों, न अकाल मृत्यु के!

और क्या आश्चर्य कि हमारे खोये हुए देवता ही हमें मिल जाएँ। न हो कुछ, परन्तु कल्पना का लोक भी क्या ही सुखद होता है और भी कुछ न हुआ तो या तो प्रलय होगी, या यह विज्ञान का भस्मासुर स्वयं विनष्ट होकर मनुष्य को अपने भीतर झाँकने का सुअवसर तो देगा ही।

१७ अनिवार्य सैनिक शिक्षा

आधुनिक सभ्यता का युग अथवा वैज्ञानिक सभ्यता का युग युद्धो का युग है। इस युग के युद्ध अपनी भयानकता मे मानवता को लीलते चले जाते हैं। प्राचीन युग की भाँति वर्तमान युद्ध केवल सशस्त्र सेनाओ तक ही सीमित नही रहते, वल्कि युद्ध के कष्ट नागरिको को भी सहन करने पडते हैं। नागरिको पर भी वम वरसाये जाते हैं। इस प्रकार प्रत्येक नागरिक के सामने, मनुष्य-मात्र के सामने आत्म-रक्षा का प्रश्न उपस्थित है। नये-नये वैज्ञानिक आविष्कार राष्ट्रो के वीच उग्र तनाव उपस्थित कर रहे है। राष्ट्रो का परस्पर-विरोधी व्यवहार कहने को तो शांति की चर्चा करता है, परन्तु भीतर-ही-भीतर युद्ध की तैयारियाँ करता है। इस व्यवहार के ज्वालामुखी पर खडी मानवता भविष्य के विषय मे सशक और चिन्तित है। इस समय यद्यपि वास्तविक आवश्यकता इस बात की है कि लोग मन, वचन, कर्म से युद्ध का परित्याग करके उससे हटने का यत्न करें, परन्तु ससार मे इसके विपरीत शस्त्रीकरण की जोरदार प्रतिस्पर्धा चल रही है। विश्व की सत्ता प्राप्त करने के लिए एक उन्मत्त प्रयत्न हो रहा है और स्वार्थो के कारण गुटवन्दी को मजबूत करने के लिए अनुचित प्रयत्न हो रहे है। ऐसी परिस्थिति में सैनिक-शिक्षा की अनिवार्यता स्वत सिद्ध है।

युद्धो की विभीपिका के इस आसुरी युग मे जव तक अन्तर्राष्ट्रीय सन्धि और नैतिक तकाजे के द्वारा युद्धो का एक दम वहिष्कार न कर दिया जाये, तव तक सब युवकों को अनिवार्य रूप से सैनिक शिक्षा दी जानी चाहिए। विश्व मे शाति शक्ति द्वारा ही स्थापित की जा सकती है। किसी भी देश का असगठित और दुर्बल होना अन्य सवल राष्ट्रो को आक्रमण का निमत्रण देने के समान है। इसलिए प्रत्येक देश को अपनी शक्ति यथा सभव अधिकतम

बढानी चाहिए।

अनिवार्य सैनिक शिक्षा पर शातिवादी लोग अनेक आपत्तियाँ करते है। उनका कथन है कि युद्ध अवाँछनीय वस्तु है। उसे समाप्त कर देना चाहिए। यह तभी सम्भव है, जब संसार मे शस्त्रीकरण की अच्छी दौड़ को रोक दिया जायेगा। अनिवार्य सैनिक शिक्षा शास्त्रीकरण का ही मुख्य अ ग है। शस्त्रीकरण का परिणाम सदा युद्ध ही होता है। युद्ध की तैयारियाँ करके युद्ध को रोक पाना सम्भव नही है। वास्तव मे सिद्धान्त और आवश्यकता दो भिन्न वस्तुएँ है।

सैनिक प्रशिक्षण के दो पक्ष हैं। एक अर्थ मे तो सैनिक-शिक्षा का अभिप्राय राष्ट्र मे पुरुषोचित गुणो का विकास हो सकता है। ये पुरुषोचित गुण मानवता की भलाई के लिए मृत्यु से निर्भयता, व्यक्तिगत और सामूहिक विपत्ति मे साहस और सहिष्णुता, अभिमान की भावना इत्यादि समझे जा सकते हैं। इसके अतिरिक्त अज्ञान, आलस्य, झूठ, स्वार्थ इत्यादि दोषो को, जो व्यक्ति और देश दोनो की ही आत्मा का हनन करने वाले है, दूर करने के लिए सदा उद्यत रहने की और खिलाडीपन की भावना को भी पुरुषोचित गुण कहा जा सकता है। इस अर्थ मे सैनिक प्रशिक्षण का उद्देश्य व्यक्तिगत तथा सामूहिक उत्कर्ष के लिए मानव-व्यक्तित्त्व को उच्चतम स्तर तक विकसित करना है। यह प्रशिक्षण व्यक्ति और राष्ट्र के उन सकटो और जीवन के प्रलोभनो का मुकाबला करने की शक्ति को जाग्रत करेगा, जो मानवीय प्रगति के मार्ग को अवरुद्ध किये हुए हैं। इस अर्थ मे सैनिक प्रशिक्षण मानव-जीवन के सर्वोत्तम स्वरूप को प्राप्त करने का एक साधन मात्र है।

दूसरे अर्थ मे सैनिक शिक्षा का उद्देश्य साम्राज्यवादी भावना से युद्ध की कला को पेशे के रूप मे ग्रहण करना है। इस दृष्टि से विचार करने पर सैनिक शिक्षण साधन न रहकर अपने आप मे साध्य बन जाता है। हिटलर और मुसोलिनी इसी अर्थ को लेकर चले थे।

विश्व का इतिहास इस बात का साक्षी है कि पहले अर्थ मे, सैनिक-प्रशिक्षण की संसार के सभी युगो के महापुरुषो ने अनिवार्यता स्वीकार की थी। इसी कारण वीर-सैनिको को सदा सम्मान की दृष्टि से देखा जाता रहा

है। वीर-पूजा का विधान, 'वीर-भोग्या वसुन्धरा' की उक्तियाँ और 'जिसकी लाठी उसकी भैंस' जैसी कहावतें इसका समर्थन करती हैं। भारतीय देववाद और अवतारवाद की कल्पना मे भी सैनिक सम्मान का नियोजन है। भगवान राम और कृष्ण शांति और उद्वेगशून्य पूर्णता के अवतार थे। वे सत्य, प्रेम और अहिंसा के आधार-स्तम्भ थे। फिर भी जब उन्हे पाप से लड़ना पड़ा, तो वे बिना किसी के प्रति मन मे द्वेष रखे और सबके प्रति, यहाँ तक कि अपने शत्रुओ के प्रति भी प्रेम रखते हुए साहस और वीरता के साथ लडे। उन्होंने जीवन की बुराइयो के विरुद्ध मनुष्य मे विद्रोही भावना को विकसित करने की दृष्टि से सैनिक-शिक्षा ग्रहण की थी। भारत का इतिहास इस बात का साक्षी है कि इस देश में आयु वर्ण, आश्रम, लिंग आदि के भेद का विचार न करते हुए व्यक्ति-मात्र को सैनिक शिक्षा दी जाती थी। विश्ववारा और विष्पला जैसी वैदिक वीरांगनायें, द्रोणाचार्य, एकलव्य, भीष्मपितामह, अभिमन्यु जैसे वीर इस बात की पुष्टि करते हैं।

समस्त--राजपूती इतिहास सैनिक जाति का ही इतिहास है। भारतीय समाज का सगठन तो सैनिक सगठन ही माना जा सकता है। बारातो मे, धार्मिक और सामाजिक उत्सवो में, सार्वजनिक मनोरंजन के लिए तलवार चलाने तथा अन्य सैनिक कलाओ के प्रदर्शन की प्रथा आज भी चली आ रही है। मुस्लिम काल में तो भारत में सैनिक शिक्षा को और भी अनिवार्यता दी गई। शारीरिक सामर्थ्य को बढाने की दृष्टि से विलासी कुलीन लोग भी सैनिक प्रशिक्षण की उपेक्षा नही करते थे। इस प्रसग मे भारतीय इतिहास के प्रसिद्ध नवाब वाजिदअली शाह का विशेष रूप से उल्लेख किया जा सकता है। वह इतिहास में सबसे अधिक विलासी नवाब के रूप मे प्रसिद्ध थे। फिर भी वह तलवार चलाने और घुड़सवारी के लिए अपने समय में बहुत प्रसिद्ध थे। सैनिक नायक की दृष्टि से उनमें अनुशासन, नियमितता और सदा तत्परता आदि दुर्लभ गुण विद्यमान थे।

आधुनिक भारत के इतिहास मे भी शांति और अहिंसा के महान् पुजारी राष्ट्र-पिता महात्मा गांधी को भी अंग्रेजी साम्राज्यवाद के विरुद्ध राष्ट्रीय संग्राम के लिए देश के प्रत्येक नागरिक वृद्ध या तरुण, स्त्री या पुरुष सभी को

अनिवार्य सैनिक प्रशिक्षण देना पड़ा था। यह तथ्य है कि आत्मा को अमरता का कवच पहनाने के लिए साधन के रूप में भारत के सभी महानतम नेताओं ने सैनिक प्रशिक्षण को एक साधन के रूप मे स्वीकार किया है।

पश्चिमी राष्ट्रो की कहानी इसके विपरीत है। पश्चिमी सभ्यता ने पौरुष के सामान्य विचार को युद्ध प्रियता का रूप दिया है। विज्ञान के मद से उत्पन्न आक्रमणशीलता और हिंसा के विचारो के कारण यूरोप में तरुणों को पेशे के रूप मे सैनिक-प्रशिक्षण देने की आवश्यकता का अनुभव हुआ। प्रथम विश्व युद्ध मे जर्मनी ससार के लगभग सभी देशो के विरुद्ध अकेला ही लड़ा। युद्ध मे विजय पाने के उद्देश्य से जर्मनी मे अनिवार्य सैनिक शिक्षा प्रारम्भ की गई। जर्मनी मे पेशे के रूप मे अनिवार्य सैनिक प्रशिक्षण का विचार फ्रैड्रिक महान् के पिता के पागलपन से प्रारम्भ हुआ। उस व्यक्ति को सम्पूर्ण राष्ट्र को स्थायी सेना के रूप मे परिवर्तित करने की सनक थी, क्योंकि उसे बडे पैमाने पर सैनिक परेड करवाने और उन्हें देखने मे आनन्द आता था। द्वितीय महायुद्ध के दिनो मे हिटलर के आक्रमण के विरुद्ध सेना मे भरती होने वाले स्वय सेवको की बहुत कमी अनुभव हुई। इसलिए अनेक मित्रराष्ट्रो मे अनिवार्य भरती आरम्भ की गई। राष्ट्रीय सकट के समय अनिवार्य भरती की आवश्यकता को अनुभव करके लोगो ने शिक्षा सस्थाओ मे अनिवार्य सैनिक प्रशिक्षण के सम्बन्ध मे सोचना आरम्भ किया।

लोगो को हिंसा और युद्ध के लिए उद्यत कर लेना एक बात है, परन्तु लोगो मे जीवन की प्रतिकूल परिस्थितियो का मुकाबला करने के लिए सदा उद्यत और सतर्क रहने की भावना को जगाना एक बिल्कुल दूसरी बात है। भारतवर्ष मे तो सैनिक प्रशिक्षण की अत्यधिक आवश्यकता है क्योंकि यहाँ के लोग दीर्घकाल से असैनिक कर दिये गये हैं और उनमे से अनेक पुरुषोचित गुण लुप्त हो गये हैं। यदि भारत मे सैनिक प्रशिक्षण अनिवार्य कर दिया जाये तो लोगो के शरीर सबल होगे, उनमें सचेष्टता और सशक्तता आयेगी। 'जीवेम शरद. शतम्' का महामन्त्र गूंजेगा। वे शरीर और मन से सचेत हो जायेंगे। उनमे आत्म-विश्वास और आत्मनिर्भरता उत्पन्न होगी, जो राष्ट्र की स्वतन्त्रता के लिए नितांत अनिवार्य है। भारतीय अनुशासन

तथा मिलकर काम करने की भावना ग्रहण करेंगे, जिसका देश मे नितान्त अभाव है। सामाजिक वर्ग भेद का अन्त होगा और वर्गहीन, भिन्नता की एक तीव्र भावना उत्पन्न हो जायेगी। उनके लिये भौतिकवादी आर्थिक विचारो के स्थान पर यश और प्रतिष्ठा के विचार अधिक महत्वपूर्ण हो जायेंगे। पुरुषोचित भद्रता और आत्म-सम्मान की भावना देश मे ऐसा रूपान्तर कर देगी कि भारत ससार का स्वर्ग बन जायेगा। अनेक सामाजिक दोष समाप्त हो जायेंगे।

लोगों के चरित्र मे अभिमान की भावना और सहजबुद्धि का विकास होगा, इससे भारत अपनी उन्नति के लिए ससार के राष्ट्रो का मुखापेक्षी न रहकर स्वावलम्बी बनेगा। भारतीयो के भीतर सैनिक भावना जाग उठेगा और वे स्वय ही रिश्वत, भ्रष्टाचार आदि सामाजिक और आर्थिक बुराइयो के विरुद्ध सघर्ष करना आरम्भ कर देंगे। जब भारतीयों मे सैनिक भावना के कारण राष्ट की स्थिति को सुदृढ बनाने का विचार जगेगा, तब भारत के पडौसी शरारती राष्ट्र उसकी राजनैतिक सुरक्षा और सम्पूर्णता की ओर आँख भी उठाने का साहस न करेंगे।

भारत को विशाल, स्थायी सेना रखने की आवश्यकता न रहेगी, क्योकि आवश्यकता के समय यथेष्ट सैनिक प्राप्त हो सकेंगे। भारत मे पेशेवर सैनिको की सेना बहुत छोटी-सी रहेगी। इससे राष्ट्रीय कोष मे बहुत बचत हो जायेगी। इस प्रकार बहुत बड़ी सख्या मे लोग सामाजिक जीवन के अनेक क्षेत्रो मे राष्ट्रोपयोगी कार्य करने के लिए प्राप्त हो सकेंगे। इससे समूचे रूप मे राष्ट्र की सम्पत्ति और समृद्धि मे वृद्धि होगी। जितना समय विलास और आमोद-प्रमोद के लिए व्यय होता है, वह जब सैनिक प्रशिक्षण मे लगेगा तो देश का चरित्र भी ऊपर उठेगा और समाज के आर्थिक ढाँचे पर भी इसका अच्छा प्रभाव पड़ेगा। स्वस्थ शरीर मे स्वस्थ मन का विचरण होकर हमारा नैतिक उत्थान होगा।

सैनिक प्रशिक्षण लिंग-भेद का परिहार करके ही होना चाहिए। समान रूप से स्त्री-पुरुष दोनो को ही सैनिक शिक्षा की आवश्यकता है। आज के युग में संसार के सभी प्रजातन्त्रात्मक विधानों मे स्त्रियो को पुरुषो के समान

अधिकार दिये गये हैं, इसलिए सिद्धान्तत भारत को भी अपने उस वचन का पालन करना ही चाहिए, जो उसने अपने सविधान मे स्त्रियो को दिया है। इसका एक लाभ यह होगा कि स्त्रियाँ युद्ध-काल में शस्त्रास्त्र-निर्माण के कारखानो का काम सभाल सकेंगी, पुरुषो को लडाई के लिए मोर्चे पर भेजा जा सकेगा, साथ ही अबला-वर्ग की सुरक्षा की चिन्ता कम हो जायेगी।

अनियार्य सैनिक प्रशिक्षण के विरोधियो के विचार से अनिवार्य सैनिक-प्रशिक्षण का कला और विज्ञान की उन्नति और विकास पर प्रतिकूल प्रभाव पडेगा, क्योकि ये दोनो ही वस्तुएँ शांतिकाल मे ही पनपती है। परन्तु इस आक्षेप के उत्तर मे पहली वात तो यह कही जा सकती है कि अनिवार्य सैनिक प्रशिक्षण अन्य उच्चतर लक्ष्यो को त्याग कर नही किया जायेगा। इसके समर्थको का सुझाव केवल इतना ही है कि निचली कक्षाओ से लेकर उच्चतम कक्षाओ तक सैनिक प्रशिक्षण भी सामान्य शिक्षा का एक अनिवार्य अग होगा। दूसरी वात यह है कि यदि अनिवार्य सैनिक शिक्षण को विदेशी आक्रमणो से बचाव के लिए सुरक्षात्मक उपाय के रूप में प्रचलित किया जाना हो तो सबसे अच्छा यह है कि इसे सबसे पहले सीमावर्ती गांवो और नगरो मे आरम्भ किया जाये। इसका प्रभाव सीमावर्ती प्रदेशो के निवासियो तथा सीमा के पार रहने वाले शरारती लोगो के मन पर वहुत अच्छा पडेगा।

कुछ लोग यह भी कहते हैं कि अणु और परमाणुओ के इस युग मे आकाशीय युद्धो की इस वैमानिक लडाई के संसार मे सैनिक-शिक्षा क्या करेगी ? इसका उत्तर यही दिया जा सकता है कि इस क्षेत्र का प्रशिक्षण भी शिक्षा का एक अंग होगा। वात केवल सैनिक प्रशिक्षण से लड़ाई-झगडे की ही नही है। आत्म-रक्षा सबसे वडा प्रश्न है, यह प्रकृति मानव और मानवेतर सभी जीवधारियो मे है। समर्थ ही आत्म-रक्षा कर सकता है। अतः सैनिक प्रशिक्षण मनुष्य में वह सामर्थ्य पैदा करेगा, जिससे उसकी आत्म-रक्षा होगी। सैनिक-शिक्षण का एक पहलू शारीरिक व्यायाम भी तो है। व्यायाम से शरीर पुष्ट होता है, वुद्धि, तेज और यश की वृद्धि होती है। शरीर का स्वास्थ्य मन-प्राण के स्वास्थ्य के लिए नितान्त आवश्यक है। मानव-मस्तिष्क के विकास, सभ्यता की उन्नति आदि के लिए स्वास्थ्य की सबसे पहले आवश्यकता

होती है। इसके अतिरिक्त मनुष्य में साहस, परोपकार, सरक्षण के भाव भी सैनिक शिक्षा से आयेंगे।

आत्मा के नैतिक शस्त्रीकरण तथा सैनिक अनुशासन के रूप में अनिवार्य सैनिक प्रशिक्षण मानवता के उच्चतम सिद्धान्तो के पूर्णतया अनुकूल हैं। न केवल पश्चिमी, बल्कि पूर्वीय नीति शास्त्र भी इसका समर्थन करता है। युद्ध के लिए सदा तैयार रहना शांति रखा पत रखने का सबसे अधिक प्रभावशाली उपाय है। इसलिए अनिवार्य सैनिक प्रशिक्षण न केवल भारत के लिए, बल्कि सारे विश्व के लिए एक वरदान सिद्ध होगा।

१८ विज्ञान अभिशाप है या वरदान ?

विज्ञान की उन्नति जिस युग मे, और जब कभी भी हुई, मानव-संहार का दृश्य सामने आया—फिर यदि मानव यह सोचने को बाध्य हो कि विज्ञान अभिशाप है या वरदान ? तो कुछ अस्वाभाविक नही। उपनिषदो के 'दत्त, दयध्वम्, दाम्यत, शाति शाति शाति' की भवना लेकर आधुनिक युग के विचारको ने भी विज्ञान के विरोध मे अपना मत प्रकट किया। इलियट तो 'Hiranyamaya is mad again, Datta, Dayadhvam, Damyata, Shantih, Shantih, Shantih, कहकर सभी प्रकार अपना सिर उपनिषद् के ऋषियो के चरणो में झुका देता है। गेटे भी जीव को मारकर जीवन की गति-विधि परखने का दोषी विज्ञान को बताता है। 'He who some living thing would study, drives first the spirit out of the body., की छाया मे उसके हृदय की घृणा ही विज्ञान को मिलती है।

वर्तमान समय मे तो विज्ञान के विरुद्ध कुछ कहने के लिए लोग सोचने-समझने का अवसर ही नहीं चाहते। अणु-शक्ति के आविष्कार ने विज्ञान को मनुष्य की दृष्टि मे सर्वथा संहारकारी सिद्ध कर दिया है तो क्या विज्ञान वास्तव मे अभिशाप ही है ?

हिरोशिमा और नागासाकी का प्रलयकर दृश्य विज्ञान के ही उपकरणों से उपस्थित किया जा सका—यह सही है; युद्ध मे प्रयुक्त अनेकानेक अत्यन्त

विनाशकारी यन्त्र भी विज्ञान की देन कहे जा सकते है। उसके पीछे युद्ध-पीडित मानव की दुखभरी आहो का उद्रेक भी असत्य नही है। देखने मे विज्ञान मनुष्य की समस्त कठिनाइयो का मूल कारण दिखाई पडता है, वह भविष्य के विनाश का अग्रदूत ही दर्शित है, किन्तु वास्तव मे यह अमगल रूप विज्ञान का नही है। विज्ञान के अनुचित उपयोग को लेकर विज्ञान को अमलकारी बताना उचित नही।

अणुशक्ति का मगल उपयोग यदि मानव-ससार नही करे तो इसमें विज्ञान का क्या दोष ! अमृत के समान दूध देने वाली गाय के स्तनो से जोक रक्त ही खीचती है, इसे सब जानते हैं। हम तो कहेगे, मानव-हृदय को जिस प्रकार कला आह्लाद और मगल-भावना प्रदान करती है, विज्ञान उससे बढकर हर्ष और उन्नति का उपचार प्रदान करने मे समर्थ है। विज्ञान की छाया मे ही मानव की सभ्यता और सस्कृति पलती है। वैज्ञानिक अनुसन्धानो के तामस रूप को लेकर हम विज्ञान के उज्ज्वल रूप को भुला नहीं सकते। आज की जितनी विभूतियाँ मानव-जीवन को समृद्ध बना रही हैं, सभी मे विज्ञान की प्रेरणा काम करती रहती है। विज्ञान कभी मानव के लिए कब्र खोदने का काम नही करता, न उसके लिए बन्दीगृह बनाता है, वह तो कला की भाति ही उसके सम्मुख सुन्दर की सृष्टि करता है और वह सुन्दर सत्य होता है। यह काम मानव जगत् का है कि वह सुन्दर और सत्य को शिव बनाए। पौराणिक उपाख्यानो को ही लीजिए—एक शिव का ही उपयोग हृदय की धारणा के अनुसार पृथक्-पृथक् शक्ति के लिए पृथक् पृथक् रहा है। शिव के मगल-रूप से किसी ने लाभ उठाया तो कोई उसकी तीसरी आँख में जल मरा। शिव का काम रहा है—अवढर दानी का—उससे मागने वाला जो मागे। विज्ञान सोलह आने शिव रूप है।

विश्व का वैज्ञानिक दृष्टिकोण, अनुभवो से प्रतिपादित मनुष्य भावुक विचारधारा को एक ठोस शक्ति का रूप देता है। इस दृष्टिकोण की सफलता इसमे है कि मनुष्य इन निर्माणकारी साधनो का प्रयोग मगल कार्य मे करे। वस्तुओ की निश्चयात्मिका शक्ति और व्यक्तित्व पर प्रकाश डालकर विज्ञान दोषो की सृष्टि नहीं करता है, कहना तो यह चाहिए कि इस ज्ञान के अभाव

मे मनुष्य कुछ कर ही नही सकता है। ललितकला-स्थापत्य, कविता, दर्शन सभी की नीव इसी भूमि पर सम्भव है। वैज्ञानिक आधार सभी के लिए अपेक्षित है। कला और विज्ञान के प्रश्न पर पिकासो का एक ही उत्तर है-"मैं अपनी कृतियो मे वैज्ञानिक सत्य की कितनी सहायता लेता हूँ, यह मेरी कृतियाँ ही बता सकेंगी, पर मुझसे पूछिए तो मैं कहूगा, विज्ञान का मेरी कला से उतना ही सम्बन्ध है, जितना सम्बन्ध कला से आत्मा का है।"

आज के महान् शिल्पकार मार्शल ब्रयूर ने 'सर्किल' नामक अपनी पुस्तक मे शिल्प-कला पर विज्ञान के प्रभाव का सुन्दर वर्णन देते हुए कहा है— "आधुनिक स्थापत्य का मूलाधार, उसके नवीनतम वस्तु-साधन नही हैं, बल्कि वह नई प्रवृत्ति, वह नई भावधारा और विज्ञान सम्मत प्रेरणाएँ हैं-जिनसे मनुष्य अपनी आवश्यकताओ की पूर्ति करता है। वैज्ञानिक साधन ही सर्जन कार्य की विशेषता है, सर्गनिर्माण मे विज्ञान का जबर्दस्त हाथ है।"

फिर भी जैसा कि लोकमत सामने है—हम विज्ञान के विपक्ष मे एक बडी सख्या को कटिबद्ध देख रहे हैं। विज्ञान के विपक्ष मे बड़ी भयंकर धारणाओ ने मनुष्य के हृदय में घर बना लिया है। आज के जैसा उन्नतिशाली वैज्ञानिक अनुसधान भी मनुष्य-हृदय का स्नेह क्यो नही अपना पा रहा है? इसका मूल कारण मनुष्य का विकृत हृदय है। विज्ञान की शक्तियो को नियन्त्रित एवं प्रयोग करने वाले स्वार्थी मनुष्यो, राजनीतिज्ञो ने ही विश्व मे विज्ञान के विरुद्ध कटुता का वीज बोया है। कभी-कभी तो ऐसा ज्ञात होता है कि यह राजनीतिज्ञ अपनी चालो से मनुष्य और विज्ञान के बीच की खाई कभी भरने न देंगे। यह तो कहना ही व्यर्थ है कि जबतक किसी कला, ज्ञान या आन्दोलन के लिए मनुष्य के हृदय मे घृणा है तब तक उसका विकास एव भविष्य अन्धकारमय है। सत्ता और शक्ति के पीछे पागल रहने वाले ये राजनीतिज्ञ अपने स्वार्थ के लिए विज्ञान की चामत्कारिक शक्तियो को जनता की दृष्टि में घृणास्पद बना रहे हैं। विज्ञान को जन-समुदाय के सम्मुख मुँह दिखाने लायक भी नही रहने देने की ठान चुके हैं।

विज्ञान का दुरुपयोग जब कभी भी हुआ है—सत्ता और शक्ति के मोह मे हुआ है। महाभारत की एक बडी मोहक कहानी का उद्धरण हम

यहा दे दें तो बुरा नही। महाभारत-युद्ध के अन्त मे अश्वत्थामा अपनी रक्षा के लिए भाग रहा है–भगा जा रहा है। द्रौपदी अर्जुन से कहती है, अश्वत्थामा के पास अमूल्य मणि है, आप हमें छीन कर ला दीजिये। अर्जुन उसके पीछे दौडने को विवश होते हैं। बहुत दूर जाकर एक बार फिर भयानक सघर्ष का अवसर आ जाता है। अश्वत्थामा मणि देना नहीं चाहता है, अर्जुन को मणि चाहिए ही—चाहे अश्वत्थामा जीवित अवस्था मे मणि दे, या मृत्यु की गोद मे सोकर अपनी मणि को अर्जुन के लिए अरक्षित छोड दे। फलतः अर्जुन के हाथो उसे प्राण-सकटकारी आघातो को सहना पडता है। जब वह देखता है कि अब किसी प्रकार मेरे प्राण बचने को नही, तो अन्त में ब्रह्मास्त्र का प्रयोग करता है। अर्जुन का हृदय उसके हाथो मे ब्रह्मास्त्र देखकर शंकित होता है। यदि अश्वत्थामा के ब्रह्मास्त्र की रोक वह भी ब्रह्मास्त्र से नही करता तो उसे अपने प्राणो से भी हाथ धोने पडते हैं, मणि-प्राप्ति की बात दूर रही, और यदि वह भी ब्रह्मास्त्र को चलाकर अश्वत्थामा के प्रयोग को निष्फल कर देता है तो उस श्यामल आर्यभूमि मे युगभर के लिए मरुस्थल का दृश्य लाने वाला वह बनता है। कुछ समय तक अर्जुन सोचता रहा, अन्त मे वह भी ब्रह्मास्त्र के प्रयोग पर आ गया। चारो ओर हा-हाकार मच गया। स्वय वेदव्यास दौडे आये, बोले, "यह क्या सर्वनाश ला रहे हो अर्जुन! विश्व-रक्षा को दृष्टि में रखते हुए ब्रह्मास्त्र का दुरुपयोग तो मत करो।" अश्वत्थामा से भी कहा "गुरु द्रोण का नाम कलकित मत करो। ब्रह्मास्त्र के प्रयोग से इस पवित्र भूमि को विनष्ट मत करो।" वेदव्यास की बातो को हृदय-गम कर अर्जुन तो अपना अस्त्र लौटाने को तैयार हुआ, किन्तु अश्वत्थामा ने बताया–उसे अस्त्र लौटाने की क्रिया का ज्ञान नही है वह क्या करे? ब्रह्मास्त्र तो बलि लेगा ही, जन-कल्याण से भीरु द्वापर के राज-सत्ता-लोभी ने हृदय-त्याग का परिचय दिया। अर्जुन को कहना पडा—अश्वत्थामा के ब्रह्मास्त्र से परीक्षित का विनाश मैं सह लूगा। परीक्षित उत्तरा के गर्भ मे जीवनहीन हो गया, जन-कल्याण पर छाई घटा दूर हो गई। शोक है कि आज का स्वार्थी राजनीतिज्ञ इतना त्याग को अपना नही सकता।

तो एक शब्द मे कहना पड़ेगा—आज के वैज्ञानिक अभिशाप के उत्तर-दायी राजनीतिज्ञ है। एक धार्मिक और निष्पक्ष विवेचना में यह बात अस्पष्ट नही रह जायगी कि आज भी वास्तविक दोष विज्ञान की अद्भुत शक्तियो के प्रयोग करने वाले कुटिलहृदय राजनीतिज्ञो का है, अनुसधानकर्त्ता वैज्ञानिको का नही। हिरोशिया और नागासाकी में प्रलय ढाने वाले अमेरिका के नर-राक्षस राजनीतिज्ञ ही कहे जायेंगे।

सन् १९५० के नोवल पुरस्कार विजेता और विश्व के महान् दार्शनिक वर-ट्रैण्ड रसल का अभिमत है कि मनुष्य अपनी कलुषता मे पवित्र को भी अपवित्र कर रहा है। जीवनदायिनी शक्ति को मनुष्य ही जीवननाशिनी बना रहा है। मनुष्य ही प्रधान कारण है कि विज्ञान ससार को सर्वनाश की ओर ले जा रहा है, अन्यथा यह आशा व्यर्थ नही कि विज्ञान इस कष्टपूर्ण ससार की काया पलट कर दे और सबके लिए एक नए सुखदायक और शक्तिशाली सर्ग को जन्म दे। यह भावना एक व्यर्थ का स्वप्न नही है, वास्तविकता-पूर्ण विचार है। यदि मनुष्य चाहे तो शाति स्थापना के बाद विश्व मे वैज्ञानिक अनुसधान का प्रभाव बौद्धिक कार्यक्रम का रूप ले सकता है।

निष्कर्ष रूप मे कोई भी विचारशील व्यक्ति यह स्वीकार करेगा कि विज्ञान मनुष्य-जगत् के लिए अभिशाप तो किसी अवस्था में नही है, मनुष्य चाहे तो वरदान रूप मे इसका प्रयोग कर सकता है। द्वितीय महायुद्ध की चिनगारी अभी बुझी नही है, फिर भी तृतीय महायुद्ध की गूज सुनाई पड रही है। आए दिन हाइड्रोजन और नाइट्रोजन बम की व्यवस्था सुनाई पड़ती है। अपने को सभ्यता का पुजारी बताने वाला अमेरिका हाइड्रोजन बम की भीषणता बताकर ससार को भयग्रस्त करने का प्रयोग चला रहा है—इसका दोष किसे दिया जाय?

शाति का कपोत विश्व व्योम मे निसवल उड रहा है, हमारे लिए जीवन का गाना प्रस्तुत करना उसका काम है। अपना कर्त्तव्य तो हमे सोचना है कि उसे मगल-गान के गायक रूप में विमुक्त उड़ने दें, या उसे पृथ्वी पर मार गिराए। विज्ञान हमे इसके लिए प्रेरित नही करता है कि हम अशाति के कारण बनें। वह तो उस बिन्दु पर हमें पहुचाता है, जहाँ हमारा मस्तिष्क विश्राम प्राप्त करता है।

रूप रेखायें

१. 'छायावाद युग के दो नक्षत्र पन्त और निराला'

भूमिका:—आचार्य-प्रवर प० महावीर प्रसाद द्विवेदी के द्वारा जो साहित्यिक क्रान्ति हुई, उसके फलस्वरूप खड़ी बोली को काव्य के क्षेत्र मे भी स्थान प्राप्त हुआ। आरम्भ मे खड़ी-बोली-काव्य मे इतिवृत्तात्मकता एव शुष्कता का होना स्वाभाविक ही था, परन्तु वह स्थिति अधिक समय तक न चल सकी। समय बदला। कविता कामिनी के सौभाग्य से महाकवि प्रसाद का आविर्भाव हुआ। प्रसाद ने उसे नया रूप प्रदान किया। उसमे भावुकता, कल्पना और सरसता का एक साथ सचार हुआ। इसका आरम्भ प्रसाद से माना जाता है। छायावाद को समझने के लिए हम कह सकते हैं कि प्रकृति का मानवीय-करण ही छायावाद है। छायावादी काव्य-धारा ने निराला और पन्त को जन्म दिया।

निराला—निराला का काव्य सचमुच निराला ही है। निराला जी के प्रमुख काव्य सग्रहो के नाम ये हैं—

अनामिका, परिमल, गीतिका, तुलसीदास, कुकुरमुत्ता, बेला नए पत्ते तथा अपरा। जुही की कली, सान्ध्यवेला, आपकी श्रेष्ठतम छायावादी कविताएँ हैं यथा:—

विजन वन वल्लरी पर सोती थी सुहाग भरी,
स्नेह स्वपन मग्न जुही की कली।

छायावादी काव्य की सभी प्रमुख विशेषताये आपके काव्य मे देखने को मिलती है। रहस्यवादी कवियों मे भी आप का प्रमुख स्थान है। आपकी कृतियो मे रामकृष्ण परमहस और स्वामी विवेकानन्द का प्रभाव देखने को मिलता है। तुम और मै, महाराज शिवाजी का पत्र, तुलसीदास, राम की शक्ति साधना, आदि कविताए आपके सास्कृतिक प्रेम एव आध्यात्म चेतना की प्रतीक हैं। भिक्षुक, विधवा, तोड़ती पत्थर, आप की प्रगतिवादी विचारो की कवितायें है। लाक्षणिक वैचित्र्य, अप्रस्तुत विधान और सगीत आप के काव्य की सबसे बड़ी विशेषता है।

पन्त:—पन्त का 'ग्राम्य' से पूर्व समग्र काव्य छायावादी युग की देन है,

वीना से पल्लव, पल्लव से गुजन, गुजन से युगान्त यह है पन्त के छायावादी काव्य के विकास की रेखाये। युगान्त, युगवाणी और ग्राम्य पन्त के प्रगतिवादी और मार्क्सवादी विचार धारा से प्रभावित होने का संकेत करती है। स्वर्ण किरण, स्वर्ण घूली उत्तरा का काव्य पत के अध्यात्मवादी दर्शन की ओर प्रभावित होने का सकेत करती है। पन्त प्रकृति के चतुर चितेरे माने जाते हैं। प्रकृति के प्रति अथाह मोह ही उन्हे छायावादी युग का श्रेष्ठ कवि प्रमाणित करता है यथा —

छोड द्रुमो की मधुछाया, तोड़ प्रकृति से भी माया
बोल ! तेरे बाल जाल में कैसे उलझा दूं लोचन ?

---

२. 'जयशंकर प्रसाद की साहित्य सेवा'

भूमिका.—प्रसाद जी हिन्दी के उन महानतम् लेखको मे से हैं जिन्होंने हिन्दी साहित्य की सर्वांगीण उन्नति मे पूर्ण सहयोग दिया। इन्होंने काव्य, उपन्याम, नाटक, एकाकी, कहानियाँ एव निवन्ध लिखे। वे सच्चे कवि थे, अनुकरण की प्रकृति उनमे नही थी। उनका अधिकार बौद्ध विचारधारा पर था, जिसकी स्पष्ट छाप उनकी रचनाओ मे है। उनका नियतिवाद भारतीय परम्परा के सर्वथा अनुकूल है।

प्रसाद के काव्य और नाटक—उनकी रचनाओ मे झरना-लहर, आँसू तथा कामायनी का विशिष्ट स्थान है। झरना और लहर गीति-काव्य है। आँसू मुक्तक रचना है तथा कामायनी एक महाकाव्य ग्रथ है। इस प्रकार वे एक महाकवि थे। दूसरी ओर एक महान् नाटककार के रूप मे हमारे सामने आए। उन्होंने अतीत के गर्भ से आधुनिक नाटको की सृष्टि की। चन्द्रगुप्त, स्कन्द-गुप्त, अजातशत्रु, ध्रुवस्वामिनी तथा जनमेजय का नागयज्ञ प्रमुख नाटक ग्रथ हैं। कुछ दिनो पूर्व इनके नाटको मे भाषा की क्लिष्टता तथा अनभिज्ञता आदि दोष देखे जाते थे। परन्तु यह भूल थी। यदि हम अभिनय नही कर सकते, अथवा हमारे पास वैसे रगमच नही हैं तो यह हमारा दोष है न कि प्रसाद का। दूसरी ओर प्रसाद की भाषा लोकप्रियता के लिए नहीं, वह तो हीरे की खान

है, जिस पर उच्च साहित्यिक-वर्ग का ही अधिकार रह सकता हो। इस प्रकार ये तो दोनो ही गुण है अवगुण नही। हिन्दी साहित्य मे उनकी यह देन अमूल्य है। इसमे भी अन्तर्द्वन्द्व अपना स्थान सर्वदा ऊ चा रखेगा।

प्रसाद का अन्य साहित्यः—प्रसाद जी सफल कवि-सफल नाटक कार होते हुए भी एक सिद्धहस्त, कहानीकार एव उपन्यासकार थे। उनकी यह दोनो प्रकार की रचनाऐ अपने दृष्टिकोण से बेजोड है। ककाल तथा तितली-दोनो मानव-हृदय की सूक्ष्म वस्तुओ (भावनाओ) के व्याख्यात्मक उपन्यास है। आकाश दीप तथा इन्द्रजाल की कहानियो का महत्व भी किसी अन्य कहानी से कम नही।

इस प्रकार हम देखते हैं कि प्रसाद जी की बहुमुखी प्रतिभा ने हिन्दी क्षेत्र मे सर्वत्र ही प्रकाश दिया है। उन्होने मानव हृदय की व्याख्या सभी दिशाओ मे की है।

अत प्रसाद जी मानव-हृदय के सफल कलाकार हैं।

३. 'खड़ी बोली के महाकाव्य'

भूमिकाः—महाकाव्य किसी भाषा के गौरव होते है। जीवन की सम्पूर्ण अभिव्यक्ति महाकाव्यो की निजी विशेषता है। शाश्वत, सत्यो को अभिव्यक्ति देना महाकाव्य का लक्ष्य होता है। महाकाव्य लिखने में ही कवि की सच्ची भावुकता का पता चलता है। महाकाव्यो के माध्यम से प्राय महान् कवि महान् सत्यो को उद्घाटित करते है। ससार के महाकाव्य इस बात के द्योतक और प्रतीक है, खड़ी बोली से पूर्व हिन्दी मे अनेक महाकाव्य लिखे गये। इधर पिछले सौ वर्षो मे खडी बोली में भी अनेक महाकाव्य लिखे गये। यद्यपि खड़ी बोली के महाकाव्यो का इतिहास बहुत पुराना है। श्री अयोध्यासिंह उपाध्याय हरिऔध का प्रिय-प्रवास हिन्दी का सर्व प्रथम महाकाव्य हैं। इसके अतिरिक्त साकेत, कामायनी, वैदेही वनवास, नूरजहा साकेत सन्त, अङ्गराज आदि महाकाव्य भी लिखे गये। इनमे से प्रथम चार का खडी बोली के साहित्याकाश में महत्वपूर्ण स्थान है।

प्रिय प्रवासः -हरिऔध जी ने 'प्रिय प्रवास' नामक महाकाव्य की रचना

करके हिन्दी के अमूल्य निधि के अभाव को पूरा किया । अक्रूर जी का कृष्ण को मथुरा ले जाना, कृष्ण के अभाव मे गोपियो का विलाप और उद्धव का व्रज आना आदि घटनाओ के आधार पर इस महाकाव्य का कथानक टिका हुआ है। प्रकृति चित्रण इस महाकाव्य की सबसे बडी विशेषता है। पवन को दूत बनाकर, राधा का भेजना इस काव्य की अपनी एक निजी विशेषता है। इस महाकाव्य के द्वारा हरिऔध जी कृष्ण के आदर्शरूप को हमारे सम्मुख रखकर समाज के नवीन मार्ग मे सहयोग देते हैं। प्रियप्रवास के सर्गों की संख्या सप्तदश है। प्रियप्रवास मे शृ गाररस में वियोग शृ गार की प्रधानता है।

साकेत —साकेत राष्ट्रीय कवि मैथिलीशरण गुप्त का महाकाव्य है। इस काव्य के निर्माण मे मूल प्रेरणा उर्मिला की रही। गुप्त जी ने राम की कथा का एक नवीन दिशा की ओर सकेत किया। साकेत मे करुण रस ही प्रधान है। शृ गार उसका उपकारक बन कर आया है। साकेत की सब से महान सफलता कैकेयी के चरित्र चित्रण मे है। साकेत का नव सर्ग डा० नगेन्द्र के अनुसार अपने मे एक स्वतन्त्र अस्तित्व रखता है। इस काव्य मे प्रकृति का तीनो रूपो मे प्रयोग किया गया है—आलम्बन रूप मे, उद्दीपन और अलकार रूप में। साकेत नामकरण के कारण सारी घटनाओ को कवि को अयोध्या मे ही दिखाना पडा है।

कामायनी.—यह छायावादी युग का और छायावादी महाकवि जयशकर प्रसाद का सर्वश्रेष्ठ महाकाव्य है। खण्ड प्रलय के उपरान्त बचे हुए मनु, श्रद्धा, आदि के जीवन से सम्बन्धित कथा ही इस महाकाव्य का आधार है। मनु अपनी पत्नी श्रद्धा को छोडकर सारस्वत प्रदेश की रानी इडा से बलात्कार करने की चेष्टा करता है। भयकर युद्ध होता है। श्रद्धा मानव सहित वहाँ पहुचती है। मानव को वहा छोडकर मनु को समरसता का ज्ञान देती है। कामायनी मे १५ सर्ग हैं। कामायनी में प्रधान रस शृ गार है। कामायनी में प्रकृति वर्णन बहुत सुन्दर तथा प्रचुर मात्रा मे मिलता है। कामायनी की कथा अधिकाश प्रकृति की गोद मे घटित हुई है। संक्षेप मे कामायनी की रचना प्रसाद जी ने एक महान् उद्देश्य की पूर्ति के लिए की है। वह महान् कार्य है मानव की आनन्द प्राप्ति का प्रयत्न।

४. भारतेन्दु हरिश्चन्द्र की हिन्दी सेवा

भूमिका:—भारतेन्दु जी आधुनिक हिन्दी के जन्मदाता कहलाते है। उन्होने अपनी अलौकिक प्रतिभा से हिन्दी को पूर्ण रूप से विकसित किया। सर्वप्रथम आपने 'कवि-वचन सुधा' नामक पत्रिका निकाली। आपने नाटक साहित्य की अमूल्य सेवा की। आपके नाट्य सहित्य पर बंगला नाट्य कला का प्रभाव स्पष्ट देखा जा सकता है। ब्रज और खडी दोनो बोलियो मे आपने काव्य का निर्माण किया।

भारतेन्दु की नाटक सेवा-नाट्य साहित्य:—गद्य रचना के अन्तर्गत भारतेन्दु का ध्यान पहले नाटको की ओर गया। वैदिक हिंसा हिंसा न भवति, चन्द्रावली विषस्य विष मौषधम्, भारत दुर्दशा, अन्धेर नगरी आदि आपके मौलिक नाटक हैं। सत्य हरिश्चन्द्र, मुद्राराक्षस, दुर्लभ बन्धु और कर्पूरमंजरी आप के अनूदित नाटक हैं। आपने उपन्यास लिखना भी प्रारम्भ किया था, परन्तु बीच मे ही चल बसे।

भारतेन्दु की अधिकाश रचना ब्रज भाषा मे है। उर्दू और खड़ी बोली की कविता नाममात्र को है। भारतेन्दु शब्द वैचित्र्य की ओर अधिक झुके हुए थे। उन्हे उर्दू के यौवन से भी प्यार था। 'वर्षा विनोद' और 'फूलो का गुच्छा' मे उर्दू के बहुत से गजल मिलते है। उनके काव्य पर यद्यपि रीतिकाल और भक्तिकाल का प्रभाव पड़ा है, तथापि उन्होने देश-भक्ति और समाज-सेवा का नया मार्ग खोला है।

भारतेन्दु के समय दोनो प्रकार की शैली प्रचलित थी, एक भावावेश की शैली तथा निरूपण की शैली। भावावेश की भाषा में गद्य छोटे और पदावली सरल होती थी, परन्तु चिन्तन इत्यादि के समय भाषा गम्भीर हो जाती थी। भारतेन्दु के लेखो मे भावो का मार्मिकता पाई जाती है, वाग्वैचित्र्य या चमत्कार की प्रवृति नही। इनकी भाषा साफ और व्यवस्थित है और वाक्य सुसम्बद्ध हैं।

—०—

५. हिन्दी उपन्यासों में मनोविश्लेषण

भूमिका--फ्रायडवादी विचारधारा का प्रभाव उपन्यास साहित्य पर सब से अधिक पड़ा। फ्रायड की विचारधारा से प्रभावित होकर यूरुप में अनेक लेखकों ने अनेक मनोविश्लेषणवादी उपन्यास लिखे। जेम्स जॉयस लारेंस आदि इस प्रकार के लेखक हैं। हिन्दी में मनोविश्लेषणवादी उपन्यासकारों में अज्ञेय और जोशी जी का प्रमुख स्थान है। वैसे तो प्रसाद और प्रेमचन्द जी के उपन्यासों में भी इस तत्व के दर्शन होते हैं। मनोविश्लेषणवादी उपन्यासकार व्यक्ति के मानस को प्रत्येक प्रकार के विचार के लिए जिम्मेदार ठहराते हैं। प्रतीक विधान द्वारा मानव मन के अनेक वासना जन्य सत्यों का उद्‌घाटन करते हैं। ऐसे उपन्यासकारों पर फ्रायड के सिद्धान्तों का गहरा प्रभाव देखने को मिलता है। सुनीता, त्यागपत्र, पर्दे के पीछे, 'प्रेत और छाया' और 'शेखर एक जीवनी' इस प्रकार के उपन्यास हैं।

मनोविश्लेषण वादी उपन्यासकारों में इलाचन्द्र जोशी जी का प्रमुख स्थान है। प्रेत और छाया, घृणामयी, निर्वासित, सन्यासी इस प्रकार के उपन्यास हैं। इन उपन्यासों द्वारा सामाजिक जीवन पर प्रकाश डाला गया है। नरोत्तम नागर का 'दिन के तारे' और भगवती प्रसाद वाजपेयी जी का 'दो बहिनें' इस प्रकार के उपन्यास कहे जा सकते हैं।

अज्ञेय का 'शेखर एक जीवनी' 'नदी के द्वीप' में मानव मन के मनोविकारों की बड़ी ही सुन्दर ढंग से व्याख्या की गई है। नलिन विलोचन शर्मा के शब्दों में अज्ञेय के उपन्यासों पर लारेंस जैसे महान मनोविश्लेषण वादी उपन्यासकारों का प्रभाव स्पष्ट देखने को मिलता है। इसके अतिरिक्त डा० धर्मवीर भारती का 'चान्दनी के खण्डहर' 'सोया हुआ जल' आदि इस प्रकार के उपन्यास हैं।

—o—

६ हिन्दी साहित्य में भ्रमर गीत परम्परा

भूमिका—श्री रामानुजाचार्य आदि वैष्णव आचार्यों ने शास्त्रीय दृष्टि से भक्ति मार्ग की दृढ़ स्थापना की। अब भक्ति के सिद्धान्तों को जनता तक पहुंचाने की आवश्यकता थी। इस कार्य का पूर्ण भार भक्त कवियों

ने अपने ऊपर लिया । भक्त कवियो ने इन उपदेशको के विनाशकारी स्वरूप की पहचान कर अपनी रचनाओ मे भक्ति के प्रचार के साथ ही साथ कोरे ज्ञान का खडन भी प्रारम्भ कर दिया । इसका सबसे सुन्दर अवसर कृष्णोपासक कवियो को मिला। गोपियो और उद्धव के सम्वाद द्वारा इन्होंने ज्ञान को अव्यवहारिक सम्बस्ता सिद्ध कर दिया । इन उद्धव गोपी संवाद विषयक रचनाओ का आधार श्री मद्भागवत तथा ब्रह्मवैवर्त पुरान है । भ्रमर गीत की परम्परा मे सूर, नन्ददास, रहीम, मतिराम, देव, घनानन्द, पद्माकर, सेनापति, भारतेन्दु, प्रमघन, सत्यनारायण, कविरत्न, हरिऔध, गुप्त, रत्नाकर और रसाल ने अपनी सुरीली तान सुनाई है ।

सूर और नन्द का भ्रमर गीतः—यद्यपि भ्रमर गीत का पहला चित्र सूर ने खीचा है, तत्पश्चात् नन्ददास का दर्शन मिलता है, पर दोनो के दृष्टिकोण नितान्त भिन्न हैं। सूर का चित्र विशाल है। उसने भ्रमर गीत की तीन धाराये भी बह चली है। उसमे कृष्ण और कुब्जा के सन्देश घोप के पश्चात् उद्धव-गोपी सम्वाद को स्थान मिला है। गोपियो की मनस्थिति का बहुत ही मार्मिक तथा सूक्ष्म विश्लेपण है। सूर का भ्रमर भी उद्धव आगमन के पूर्व ही आकर विवाद समिति मे सम्मिलित होने के लिए प्रस्तुत है । सूरदास की गोपियाँ केवल हृदय के कोमल भाग का मधुर स्पर्श करके ही ज्ञान पर भक्ति की श्रेष्ठता-सस्थ पन मे सचेष्ट हैं। परन्तु नन्ददास का चित्र विशाल नहीं है। उसमे ज्ञान और भक्ति की विवेचनात्मक रेखाए प्रधान बन बैठी हैं, तथा मनोवेगो को गौण स्थान मिला है। इनकी गोपियाँ भी अपनी बोध वृत्ति को जागृत करके तर्क जाल बिछाती हैं । इस प्रकार नन्ददास के उद्धव गोपी सम्वाद मे सगुण और निर्गुण के सापेक्ष्य की महत्व घोषणा की गई है।

उद्धव शतक का उद्धव भ्रमर गीत के नाम से प्रसिद्ध यही उद्धव-गोपी सम्वाद है। फिर भी यह कृष्ण भक्त कवियों से कई बातो मे भिन्न है। रत्नाकर जी ने 'उद्धव शतक' की रचना में कृष्ण भक्त कवियो की पदशैली को न अपना कर रीतिकालीन कवियो की कवित्त पद्धति को अपनाया है।

—०—

७. वर्तमान हिन्दी काव्य की प्रवृत्तियां

भूमिका—वर्तमान काव्य का प्रारम्भ भारतेन्दु हरिश्चन्द्र से होता है, परन्तु उसमे प्राचीनता की झलक भी दृष्टिगोचर होती है। वास्तव में वर्तमान हिन्दी काव्य की प्रवृत्तियो का आगमन प्रसाद, पन्त व निराला के आने के साथ-साथ हुआ है। इन तीनो महारथियो के द्वारा कला. पक्ष व भाव-पक्ष सभी मे परिवर्तन हुआ है। खडी बोली की मधुरता, लालित्य, संगीतात्मकता आदि प्रदान करने का श्रेय इन महारथियो को है। निराला ने मुक्तक कविता का प्रचार किया। अलंकारो मे भी महान परिवर्तन हुआ है। गीति-काव्य का प्रचार बहुत अधिक हुआ है। व्यक्तित्व की अभिव्यंजना की ओर विशेष रूप से ध्यान दिया जाने लगा है। विषय के आधार पर वर्तमान हिन्दी काव्य की प्रवृत्तियो को निम्नलिखित पांच भागो मे विभक्त किया जाता है—

स्वदेश प्रेम—साहित्य मे स्वदेश प्रेम की भावना विदेशी दासता से मुक्ति प्राप्त करने के लिये उत्पन्न हुई। इस भावना की झलक भारतेन्दु के काव्य-साहित्य मे भी उपलब्ध है। इस भावना की उत्तरोत्तर वृद्धि होती रही। वर्तमान युग के साहित्य मे स्वदेश-प्रेम की भावना गांधीवाद से प्रभावित है। स्वतन्त्रता प्राप्ति के पश्चात् तो यह भावना अन्तर्राष्ट्रीय प्रेम व समस्त मानव जाति के प्रेम की महान भावना में परिवर्तित होती जा रही है।

प्रकृति के प्रति नवीन दृष्टिकोण—वर्तमान युग में कवियो ने प्रकृति का मानवीकरण कर दिया है। वे प्रकृति की जड़ चेतन सभी वस्तुओ मे अपनी जैसी आत्मा के दर्शन करते हैं। प्रकृति के प्रति इस नवीन दृष्टिकोण ने ही छायावाद को जन्म दिया है।

दुखवाद.—आधुनिक साहित्य में दुख:वाद की प्रवृत्ति अधिक दिखाई देती है। इसी दुख वाद ने बच्चन के 'हालावाद' को जन्म दिया। निराला, नवीन आदि ने इनसे ही मुक्ति प्राप्त करने के लिये क्रान्तिकारी और प्रलय मचाने वाले गीतों का सृजन किया। प्रकृतिवाद के जन्म का

कारण भी दुखःवाद ही है। परन्तु महादेवी वर्मा ने दुखः मे भी सुख का अनुभव किया है।

आत्माभिव्यंजना—वर्तमान युग मे कवियो ने घटनाओ के वर्णन की अपेक्षा आन्तरिक भावो की अभिव्यक्ति पर अधिक बल देना आरम्भ कर दिया है। आज के कवि ने बाह्य की अपेक्षा अन्तर मे सुख और शान्ति की खोज के माध्यम को अपना लिया है। आत्माभिव्यंजना की प्रवृत्ति के कारण ये हैं।—(१) वर्तमान युग मे मानव को अपने जीवन के प्रति असन्तोष है। (२) आज स्वतन्त्रता के युग मे व्यक्तित्व की प्रधानता (३) आज का मानव बाह्य की अपेक्षा अन्तर मे सुख और शान्ति प्राप्त करना चाहता है।

मानव गौरव और व्यक्तिवाद.—आज व्यक्तिवाद को आश्रय मिला है। मानवता ऊपर उठ रही है और उसका महत्व बढ रहा है। आज मानवता धर्म और राजनीति के दबाव से मुक्त हो चुकी है। आज कवि का विषय केवल धनी एव राजा ही नही रहे हैं, बल्कि उसका ध्यान समाज मे विधवा, निर्धन मजदूर के हो रहे शोषण आदि पर जाता है। आज प्रगतिवाद के साथ-साथ मानवगौरव और व्यक्तिवाद को बहुत प्रोत्साहन प्राप्त हुआ है

उपसंहारः—उपर्युक्त विभिन्न प्रवृत्तियो के कारण आज हिन्दी साहित्य मे अनेक वादो का जन्म हुआ है।

—o—

८. भूदान-यज्ञ

भूमिकाः—भूदान-यज्ञ का अर्थ है कि भूमिपतियो से भूमि दान में प्राप्त करके भूमिहीन कृषको मे उसका वितरण करना। इस दान का महत्व अन्य प्रकार के सभी दानो से अधिक है। भारतवर्ष की वर्तमान आर्थिक और सामाजिक स्थिति मे तो इसका महत्व बहुत ही अधिक है। भारतवर्ष के लिए यह कोई नवीन वस्तु नही है।

वर्तमान भारत में भूदान-यज्ञ की आवश्यकताः—भारतवर्ष एक कृषि

प्रधान देश है। इसकी उन्नति व अवनति खेतिहरों पर ही निर्भर है। परन्तु हमारे देश में भूमि का विभाजन ठीक नहीं है। एक व्यक्ति के पास तो इतनी भूमि है कि वह उसे सम्भाल भी नहीं सकता और दूसरे के पास आवश्यकता के अनुसार बहुत ही कम भूमि है। बहुत से कृषक तो ऐसे हैं जिनके पास अपनी भूमि तो नाम मात्र को भी नहीं है। भूमि के इस अनुचित विभाजन के कारण ही यहाँ आर्थिक विषमता व दरिद्रता है अतः दरिद्रता को दूर करने के लिए यहां भी भूमि का सही ढग पर बटवारा होना अति आवश्यक है।

भूदान-यज्ञ का प्रारम्भ.—वैसे तो भूमि भूदान यज्ञ हमारे लिए कोई नवीन वस्तु नहीं है। हमारे पुराणों में भी इसके अनेक उदाहरण प्राप्त होते हैं। परन्तु आधुनिक युग में आचार्य विनोबा भावे ने १८ अप्रैल सन् १९५१ ई० को तेलंगाना (दक्षिण) में इस यज्ञ में प्रथम आहुति डाली। उन्होंने इसका उद्देश्य अहिंसात्मक साधनों से भूमिपतियों से भूमि प्राप्त कर भूमिहीन कृषकों को भूमि वितरण करना निश्चित किया। प्रथम दो माह में आशातीत सफलता प्राप्त करने पर विनोबा जी ने समस्त भारत में यह कल्याणकारी आंदोलन प्रारम्भ कर दिया।

भूदान यज्ञ पर आक्षेपः—साम्यवादियों ने विनोबा जी और उनके इस यज्ञ पर आक्षेप लगाये। उन्होंने तो विनोबा जी को पूंजीपतियों का दलाल बताया। विनोबा जी ने बताया था कि उनके यज्ञ का उद्देश्य देश में खूनी क्रांति की सम्भावना को रोकना है। उन्हें इस क्रांति का भय था, क्योंकि वे दक्षिण में साम्यवादियों के हिंसात्मक कार्यों को देख चुके थे। परन्तु उनका विश्वास तो अहिंसात्मक आंदोलनों पर है। इसपर साम्यवादियों ने उन पर यह आक्षेप लगाया कि वे तो क्रांति के ही विरुद्ध हैं। परन्तु बात ऐसी नहीं, वे तो रक्तहीन क्रांति के पक्ष में हैं। वे किसी पर दबाव डाल कर उससे भूमि दान में नहीं लेते, बल्कि भूमिपति स्वेच्छा से ही भूमि दान देते हैं। आन्दोलनकारी अर्थात् विनोबा जी के अनुयायी तो केवल उनके हृदय में निर्धनों के प्रति प्रेम और दया उत्पन्न करते हैं।

यज्ञ की सफलता—यह यज्ञ आज देशव्यापी हो गया है। वैसे तो आरम्भ से ही विनोबा जी को इसमें आशातीत सफलता प्राप्त हुई थी, परन्तु समाज-

वादी नेता श्री जयप्रकाश नारायण के इसमे सम्मिलित हो जाने से इसके वेग मे वृद्धि हो गई। विनोबा जी ने अपने साथ गत सात वर्षों मे भारत के अधिकाश भाग की पैदल यात्रा करके इस यज्ञ को चलाया है। प्रत्येक ग्राम में लोगो ने उनका हृदय से स्वागत किया है। अब तक विनोबा जी को लाखों एकड़ भूमि दान मे प्राप्त हो चुकी है।

उपसंहार:—वह दिन दूर नही जबकि भूदान-यज्ञ आदोलन देश की भूमि समस्या को सुलझा कर इसे नया रूप देने मे सर्व प्रकार समर्थ हो जायगा।

—०—

९. पंजाब की समस्या

भूमिका —पजाब का सन् १९४७ ई० मे विभाजन हुआ। पश्चिमी भाग पाकिस्तान के अधिकार में चला गया और पूर्वी भाग भारतवर्ष के अधिकार में रहा। उस समय भी सिक्खो के नेताओ ने अंग्रेजी सरकार से पजाब में सिक्खो के लिए एक पृथक प्रदेश बनाने की माँग की थी, परन्तु किसी भी जिले मे सिक्खों का बहुमत न होने के कारण अ ग्रेजी सरकार ने उसे स्वीकार नही किया। विभाजन के समय हुए साम्प्रदायिक रक्तपात को देखकर सिक्खो ने अपनी इस पृथक्कीकरण नीति को कुछ समय के लिए दबा लिया। परन्तु अब स्वतन्त्र भारत मे सिक्खो को फिर अवसर प्राप्त हुआ। आज पजाब की सरकार अकालियो के हाथ मे है और वे पंजाब के ७० प्रतिशत हिंदी-भाषी नागरिको पर हिन्दी का पूर्ण तरह से बहिष्कार कर जबरन गुरमुखी लिपि मे पजाबी भाषा लादने का प्रयत्न कर रहे हैं और आर्य-समाज तथा अन्य संस्थायें इसके विरुद्ध आदोलन कर रही हैं।

अकाली नीति:—स्वतन्त्र भारत में अकाली नेता ज्ञानी करतारसिंह प्रथम काँग्रेस मन्त्रिमंडल मे सम्मिलित हो गये। उसमे उन्हें पुनर्वास मंत्री बनाया गया। इस समय पंजाब काँग्रेस मे भी दो पार्टियाँ थी। एक के नेता श्री भीमसेन सच्चर थे और दूसरी के डा० गोपीनाथ भार्गव। दोनो ही में परस्पर मुख्य मंत्री बनने की होड़ लगी रहती थी। इस स्थिति से ज्ञानी करतार सिंह ने लाभ उठाया। वे धीरे-धीरे पश्चिमी पंजाब से आने वाले सिक्खो को इस

प्रकार बनाते रहे कि पजाब के एक भाग मे सिक्खो का बहुमत हो गया। इसके पश्चात् सच्चर फार्मूला आया जिसने पजाब को शिक्षा की दृष्टि से हिन्दी और पजाबी दो भागो मे कृत्रिम रूप से विभक्त कर दिया था। परन्तु गैर अकाली तथा अन्य विधायकों के विरोध के कारण यह फार्मूला विधान सभा मे प्रस्तुत न किया जा सका।

पजाबी राज्य की माग—सन् १९५५ ई० तक वैधानिक रूप से तो अकालियो को अपने उद्देश्य में कोई सफलता नहीं प्राप्त हुई, परतु इस समय तक उन्होंने अपनी पजाबी सूबे की माग को दृढ कर लिया। उन्होंने पजाबी भाषा केवल उसे ही माना जो गुरमुखी लिपि हो। अकालियो ने गैर अकालियो को अपने मे मिलाने के लिए सिक्ख प्रदेश की माग के स्थान पर पजाबी प्रदेश की भाषा के आधार पर माग रखनी आरम्भ की। इसी समय राज्य पुनर्गठन आयोग की नियुक्ति हुई। इस समय ऐसा प्रतीत हो रहा था कि पजाब की समस्या की समाप्ति हो जायगी।

राज्यपुनर्गठन आयोग की रिपोर्ट—आयोग ने सिक्खो की उपर्युक्त माँग का विरोध किया और बताया कि यदि उनकी माग स्वीकार कर ली गई तो गैर सिक्खो के द्वारा इनका बहुत विरोध होगा। आयोग ने पेप्सू के पंजाब मे विलय की और पंजाब को द्विभाषी घोषित करने की सिफारिश की।

काँग्रेस अकाली गठबन्धन.—यदि सरकार आयोग की सिफारिश को मान लेती तो इस समस्या का उसी समय अत हो जाता। परन्तु कांग्रेस के उच्च अधिकारियो व नेताओ ने इस भय से कि कही अकालियों के विरोधी बन जाने से पंजाब मे कांग्रेस की शक्ति क्षीण न हो जाय, आयोग की सिफारिश को नही माना। अकालियो को प्रसन्न करने के लिये अकाली नेता मास्टर तारा सिंह, पंडित नेहरू व पंडित गोविन्द वल्लभ पंत की गुप्त बातें हुई। इनके परिणाम स्वरूप कांग्रेस का साम्प्रदायिक अकाली दल के साथ गठबन्धन हो गया। अकाली जो चाहते थे उन्हें क्षेत्रीय योजना के रूप मे प्राप्त हो गया।

क्षेत्रीय योजना.—क्षेत्रीय योजना के अनुसार पंजाब को भाषा के आधार पर दो भागों मे विभाजित कर दिया गया। एक पंजाबी भाषा का

प्रदेश और दूसरा हिन्दी का। पंजाबी भाषा वाले प्रदेश में जिला स्तर तक सभी कार्य पंजाबी (गुरुमुखी लिपि) में होगा। विद्यालयों में भी गुरुमुखी लिपि में पंजाबी का अध्ययन अनिवार्य होगा। इस प्रदेश में ५५ प्रतिशत सिक्ख और ४५ प्रतिशत दूसरे व्यक्ति हैं। इस प्रकार उक्त कथित पंजाबी भाषा को ४५ प्रतिशत व्यक्ति पर जबरन लादा जायेगा। सन् १९५७ ई० में जो अकाली प्रभावित कांग्रेस मंत्री मंडल बना, उसने क्षेत्रीय योजना को लागू करने का प्रयत्न आरम्भ कर दिया। साथ ही हिन्दी पर अनावश्यक बंधन लगाने शुरु कर दिये।

आन्दोलन का मन्तव्य—अकालियों की यह नीति गैर सिक्खों और विशेष कर आर्यसमाज को बहुत बुरी लगी। उनके लिये यह असहनीय हो उठा। वास्तव में वे पंजाबी अथवा गुरुमुखी भाषा के विरोध में नहीं हैं, बल्कि इस भाषा के नाम में अकाली नेताओं की सिक्ख प्रदेश बनाने की नीति के वे कट्टर विरोधी हैं। अतः इसके विरोध में हिन्दी आन्दोलन आरम्भ हो गया।

आन्दोलन और पंजाब सरकार के अत्याचार—हिन्दी आन्दोलन बहुत वेग से आरम्भ हुआ। देश के कोने-कोने से आन्दोलनकारियों के जत्थे पंजाब में अहिंसात्मक प्रदर्शन करने के लिये आने लगे। पंजाब सरकार ने इन्हें जेल में ही बंद नहीं किया, बल्कि कारागार के अंदर इन पर घोर अत्याचार किया। इन्हें इतनी निर्दयता से पीटा गया कि कई की मृत्यु हो गई, अनेक व्यक्तियों के हाथ, टांग, पसलियां आदि टूट गये। अंग्रेजों ने भी सत्याग्रहियों पर कभी इतना घोर पाशविक व पैशाचिक अत्याचार नहीं किया था।

उपसंहार—अभी तक इस समस्या को नहीं सुलझाया गया है। [illegible] ऐसा यदि इस समस्या का शीघ्र ही कोई उचित हल नहीं निकला तो हो सकता है कि यह समस्या [illegible] नहीं।

—०—

१०. संयुक्त राष्ट्र-संघ

भूमिका—आदि काल से ही मानव एक दूसरे से युद्ध करता आया है। ज्यो ज्यो मानव की प्रगति होती गई, उसके युद्धो की भयंकरता भी बढती गई। यद्यपि आज हम विज्ञान के युग मे रह रहे हैं और अपने को हम अपने पूर्वजों की अपेक्षा बहुत अधिक सभ्य समझते हैं, परन्तु वास्तव मे देखा जाय तो आज हम राक्षसो से भी अधिक पतित हो चुके हैं। आज हमारे युद्ध बहुत ही विनाश-कारी एव अधर्म से परिपूर्ण होते हैं। वास्तव मे आज मानव को जीवित रहने के लिए सघ बनाकर रहने की आवश्यकता है।

स्थापना—शताब्दी के आरम्भ मे एक विश्व युद्ध हुआ। उसके परिणाम देखकर समस्त विश्व कांप उठा और युद्धो को रोकना अनिवार्य समझकर विश्व के महान राष्ट्रो ने 'लीग आॅफ नेशन्स' की स्थापना की। परन्तु यह लीग अपने उत्तरदायित्व को ठीक प्रकार से न सभाल सकी और अन्त मे सन् १६३६ मे द्वितीय विश्व युद्ध छिड गया। यह युद्ध सन् १६४५ में समाप्त हुआ। समस्त विश्व इस युद्ध मे भयभीत हो उठा। इसलिये सन् १६४५ के अप्रैल माह मे सानफ्रांसिस्को मे एक सम्मेलन हुआ और इसमे बड़े व छोटे अनेको देशों के प्रतिनिधि सम्मिलित हुए। इस सम्मेलन में एक चार्टर (मानव अधिकार पत्र) बनाया गया और सयुक्त राष्ट्र सघ की स्थापना की गई।

सघ और संगठन:—इसका सगठन इस प्रकार है:—

एक जनरल असेम्बली है। इसमे सघ के सभी सदस्यराष्ट्रो के प्रतिनिधि सम्मिलित होते हैं। इस का अधिवेशन वर्ष मे एक बार अवश्य होता है। सुरक्षा परिषद, सेक्रेटेरिएट, ट्रस्टीशिप कौन्सिल और अन्तर्राष्ट्रीय कोर्ट आफ जस्टिस ये सभी सघ की विभिन्न शाखायें हैं। इन सभी का अपना अपना कार्य क्षेत्र है।

उद्देश्य—संघ का प्रमुख उद्देश्य युद्धो का रोकना और विश्व मे शान्ति रखना है। यह सघ प्रत्येक राष्ट्र के हितो का पूर्ण ध्यान रखता है। अन्तर्राष्ट्रीय झगड़ो को सुलझाना, किसी भी राष्ट्र की आर्थिक सकट के समय सहायता करना, छोटे-बड़े राष्ट्रो को समानाधिकार देना, संधियों के प्रति आदर एवं उनकी सुरक्षा

परिष्कृत अन्तर्राष्ट्रीय नियम, सामाजिक प्रगति, जीवन स्तर में सुधार तथा विस्तृत स्वातन्त्र्य की प्राप्ति इस संघ के उद्देश्य हैं।

सफलता व असफलता—किसी भी संस्था के लिये सफलता प्राप्त करने के लिए उसका निष्पक्ष होना अति आवश्यक है। परन्तु संयुक्त राष्ट्र संघ आरम्भ से ही अमेरिका व ब्रिटेन के हाथ का खिलौना बना हुआ है। यही कारण है कि यह निष्पक्ष होकर कोई भी कार्य नही कर सकता। आरम्भ मे तो कोरिया आदि के झगडो की समाप्ति करने मे संघ को सफलता प्राप्त हुई थी, परन्तु आज हम देखते हैं कि इस पक्षपात के कारण ही काश्मीर के झगडे का गत दस वर्ष में कोई निर्णय नही हो सका। इसी प्रकार कई अन्य समस्यायें इस संघ के सामने हैं, परन्तु यह उन्हे सुलझाने में असफल है। आज विश्व के सम्मुख इस संघ का पक्षपाती होना इस तथ्य से स्पष्ट है कि छोटा सा द्वीप फारमोसा संघ का सदस्य ही नहीं, बल्कि सुरक्षा परिषद का स्थायी सदस्य भी है, परन्तु गणतंत्र चीन को जो एक बहुत विशाल देश है इसे संघ की सदस्यता भी प्राप्त नही है। आज चारो ओर आणविक परीक्षण हो रहे हैं, सैनिक सन्धियां हो रही हैं परन्तु संघ उन्हे रोकने मे असमर्थ है। इन सब बातो से यह स्पष्ट है भविष्य में संयुक्त राष्ट्र संघ के लक्षण शुभ नही हैं।

उपसंहार—यदि इस संस्था को अपने उद्देश्य मे सफल बनाना है तो सर्वप्रथम इसे निष्पक्ष होकर कार्य करना चाहिए वर्ना एक दिन यह भी लीग आफ नेशन्स की भाँति मुँह देखती रह जायगी और विश्व शान्ति खतरे मे पड़ जायगी।

—o—

११. ग्राम-सुधार

भूमिका—भारतवर्ष ग्रामो का देश है। यहा पर सात लाख ग्रामो के सामने दर्जन दो दर्जन नगरो व कस्बो का कोई विशेष महत्त्व नही हो सकता। हमारे देश की उन्नति व अवनति ग्रामो की दशा पर निर्भर करती है। भारतवर्ष मे ९० प्रतिशत मनुष्य ग्रामो में निवास करते हैं। इसलिए ९० प्रतिशत निवासियों का भाग्य ग्रामों की उन्नति व अवनति पर निर्भर है। आज हम

स्वतन्त्र है और हमारी अपनी सरकार है। अत हमे ग्रामो मे सुधार करने की ओर ध्यान देना चाहिए।

भाग्यवादी—आज ग्रामीण जनता मे सबसे बड़ा दोष यह है कि वे कट्टर भाग्यवादी हैं। दैवी प्रकोप जैसे दुर्भिक्ष, रोग, बेरोजगारी आदि को भाग्य मे लिखा समझकर सहन करते रहते हैं। इन दुःखों व आपत्तियो से मुक्ति पाने का प्रयत्न नही करते हैं। भाग्य को परिश्रम और तदबीर से बढकर समझते हैं। उनका विश्वास है कि जो कुछ भाग्य मे लिखा है वह मिट नही सकता (What is lotted can never be blotted.)। इस प्रकार के आज के वैज्ञानिक युग में पिछड़े हुए नारकीय जीवन भोग रहे हैं।

आर्थिक-सकट—बेचारा ग्रामीण कृषक हो या मजदूर प्रातः से सध्या तक कठिन परिश्रम करता है, परन्तु फिर भी वह पेटभर भोजन प्राप्त नहीं कर पाता है। उसको शरीर ढापने के लिए वस्त्र ठीक प्रकार से प्राप्त नहीं हो पाते हैं। सदा ऋण के नीचे दबा रहता है धनाभाव के कारण वह अपने बच्चो को शिक्षा भी नही दे पाता है।

शिक्षा का अभाव—शिक्षा के बिना मनुष्य बिना पूँछ का जानवर कहलाता है। परन्तु हमारे ग्रामो मे तो ९८% लोग अशिक्षित हैं। शिक्षा के अभाव के कारण न वे अपने कर्त्तव्य और अधिकारो को समझते है, न वे स्वास्थ्य आदि के महत्व को समझ पाते हैं। इसी कारण प्रत्येक स्थान पर कूडा करकट पड़ा रहता है और नाना प्रकार के रोग वहा फैलते रहते हैं। साधारण रोग भी शिक्षा और धन के अभाव में असाध्य हो जाते हैं। इसलिए यह नितान्त आवश्यक है कि प्रत्येक ग्राम मे स्कूल खोल कर ग्रामीणो को शिक्षा प्राप्त करने का अवसर दिया जाना चाहिए, जिससे पतन के गर्त से निकलकर ऊपर आ सकें।

गंदगी.—ग्रामो मे नालियाँ और गलियाँ बहुत गंदी रहती हैं। नाली में गंदी कीचड़ भरी रहती है जिससे बदबू आती रहती है। इसके कारण वहां अनेक रोग जैसे हैजा, प्लेग, मलेरिया आदि फैले रहते हैं। अत. ग्राम पचायतो के द्वारा वहां पर सफाई, रोशनी आदि का प्रबन्ध शीघ्र होना चाहिए।

ग्रामो मे अस्पतालो का भी अभाव है। रोगी को समय पर

औषधि नही मिल पाती, और समय से पूर्व ही मृत्यु का शिकार हो जाता है। सरकार को प्रत्येक ग्राम मे अस्पताल खोलने चाहिए।

पुस्तकालय—प्रत्येक ग्राम मे एक पुस्तकालय होना चाहिए, जहा शिक्षित व्यक्ति समाचार पत्र आदि पढ सकें। यह प्रबन्ध भी ग्राम पचायत के द्वारा ही सरलता से हो सकता है।

अन्ध-विश्वास—ग्रामीणो मे अन्ध विश्वास ने घर कर लिया है। वे भूत-प्रेत, जादू, टोना, टोटका आदि प्रपचो पर विश्वास करते है और इस अन्ध विश्वास के कारण सैकड़ो व्यक्ति अपने जीवन से हाथ धो बैठते हैं, परन्तु यह सब कुछ शिक्षा के प्रसार के साथ-साथ नष्ट हो जायेगा।

मनोरंजन के साधनो का अभाव—ग्रामो मे रेडियो, तमाशे आदि मनोरजन के साधनो का भी अभाव है। यही कारण है कि उनका जीवन नीरस होता है।

उपसंहार—सरकार को चाहिए कि ग्रामो मे सुधार करने का पूर्ण प्रयत्न करे। यदि निम्नलिखित सुधार ग्रामो मे हो जाये तो उनकी दशा सुधर सकती है —

(१) शिक्षा प्रचार और विद्यालयो की स्थापना, (२) प्रौढ-शिक्षा का प्रबन्ध, (३) सफाई का ठीक प्रबन्ध, (४) कृषको को खाद व ऋण की व्यवस्था (५) ट्यूबवैल की स्थापना, (६) ग्राम पंचायतो के द्वारा सुख एवं शान्ति का बीजारोपण करना, (७) ग्रामीण उद्योग-धन्धो का प्रचार, (८) सहकारिता तथा साख-समितिया खोलना, (९) पुस्तकालय व अस्पताल खोलना।

—o—

१२. कुटीर-उद्योग

भूमिका—'कुटीर उद्योग' से तात्पर्य छोटे-छोटे घरेलू कार्यो से है। इन कार्यों का भारतवर्ष मे बहुत महत्व है। यहां की जनसंख्या बहुत अधिक है। प्रत्येक परिवार मे एक या दो व्यक्ति धनोपार्जन करने वाले होते और शेष सब कुछ घरेलू कार्यो से निवृत्त हो अपना शेष समय बातें करने और गप्पें लड़ाने मे व्यर्थ नष्ट करते हैं। ऐसे व्यक्तियो के लिए कुटीर उद्योग बहुत सहायक सिद्ध

हो सकते हैं। इससे वे अपना समय व्यतीत कर सकते हैं और साथ ही धनो-पार्जन भी।

विभिन्न कुटीर उद्योग—घर पर रहकर रस्सी बटना, कुर्सी व मेज बनाना, खुर्पी व हंसिया आदि बनाना, कातना-बुनना व काढना आदि काम करना सभी कुटीर उद्योग मे सम्मिलित हैं। कपडा बुना जाय भी कुटीर उद्योग मे ही गिना जाता है। मिट्टी के बर्तन व खिलौने आदि बनाना तथा अन्य कोई भी कार्य घर पर ही बठे बैठे करना 'कुटीर उद्योग' है।

लाभ—बेरोजगारी कम होगी। मनुष्य भूखे नही मरेंगे और प्रत्येक परिवार को जो कि कुछ न कुछ कार्य करता रहता है नित्य प्रति कुछ न कुछ आय होगी, जिससे उनकी आर्थिक स्थिति में सुधार होगा। इससे मनुष्यो का जीवन सुखी और प्रसन्न बनेगा। मनुष्य आलसी नही बनेगा और उनमे स्फूर्ति उत्पन्न होगी। इसका सबसे बडा लाभ तो यह है कि प्रत्येक मनुष्य एक न एक आर्ट सीख लेगा और उसकी सहायता से वह किसी भी समय और कही पर भी अपनी जीविका उपार्जित कर सकता है। अन्धे, लगडे, गूंगे, बहरे अर्थात् अपाहिजो के लिए तो ये कार्य बहुत ही लाभदायक हैं। यदि वे ये कार्य करेंगे तो वे स्वावलम्बी हो जायेंगे। खुशामद करके भीख मागने की उन्हें आवश्यकता नही रहेगी। इससे एक लाभ यह भी है कि बाजार मे वस्तुयें सस्ती मिलेंगी।

उपसहार—सरकार को कुटीर उद्योगो की ओर विशेष ध्यान देना चाहिए। गाधी जी ने भी भारतवर्ष के लिए 'कुटीर उद्योगों' को बहुत आवश्यक बताया था। भारतवर्ष से बेरोजगारी, भुखमरी व भिखारियो की समस्या तभी दूर हो सकती है जबकि देश में कुटीर उद्योगो की उन्नति हो। इससे देश की आर्थिक दशा मे भी पर्याप्त सुधार होगा।

—o—

१३. आदर्श विद्यार्थी

भूमिका—आज का विद्यार्थी कल का नागरिक होगा और राष्ट्र के प्रति उनके ऊपर एक बहुत बडा उत्तरदायित्व आकर पडेगा। इसलिए किसी भी राष्ट्र की भावी प्रगति उसके विद्यार्थियों पर ही निर्भर होती है, परन्तु केवल वे

ही विद्यार्थी राष्ट्र का हित कर सकते हैं जो विद्यार्थी जीवन मे अपने कर्तव्यो का पालन करते हैं, अच्छी आदतो का निर्माण कर लेते हैं और अकर्मण्यता व शिथिलता को पास भी नही फटकने देते।

आदर्श विद्यार्थी के गुण—आदर्श विद्यार्थी मे अनेक विशेषताए होती हैं। कृत्रिम बनाव श्रृंगार मे अपना समय नष्ट नही करता है। उसका ध्येय Simple Living and High Thinking अर्थात् 'सादा जीवन उच्च विचार' होता है। वह अपने दैनिक जीवन को नियमित रूप से व्यतीत करता है। प्रात को ब्रह्म मुहूर्त मे उठता है और रात्रि को शीघ्र ही सो जाता है। प्रातः काल उठकर व शौच आदि से निवृत्त हो स्नान करता है और कुछ समय भगवान् का ध्यान भी करता है। इसके पश्चात् वह अपनी पुस्तको के अध्ययन मे लग जाता है। विद्यार्थी को अपनी शिक्षा पूर्ण करने के पूर्व किसी भी राजनैतिक, सामाजिक अथवा धार्मिक आन्दोलन मे सक्रिय भाग नही लेना चाहिए। उसका सर्व प्रथम कर्तव्य अपना अधिकाधिक समय अध्ययन करने मे व्यतीत करना है, परन्तु समाचार पत्र उसे नित्य प्रति नियमित रूप से पढना चाहिए। इससे उसे समस्त विश्व मे पर्याप्त जानकारी रहेगी और उसकी ज्ञान वृद्धि होगी। अवकाश के दिनो मे विद्यार्थियो को ग्रामो मे जाकर श्रम दान करना चाहिए। निरक्षरो को साक्षर बनाने का प्रयत्न करना चाहिए।

चरित्र और स्वास्थ्य—विद्यार्थी को पढ़ने के साथ-साथ अपने स्वास्थ्य और चरित्र का भी पूर्ण ध्यान रखना चाहिए। उसे नियमित रूप से प्रातः भ्रमण करना चाहिए तथा विद्यालय के खेलो मे भाग लेना चाहिए। यदि उसका स्वास्थ्य बिगड जाता है तो फिर भावी जीवन मे रुग्ण रहने अथवा अस्वस्थ होने के कारण वह राष्ट्र की सेवा तो क्या करेगा स्वय भी अपने लिए भार बन जाता है। विद्यार्थी को सिनेमा देखना, सिगरेट पीना तथा अन्य बुरे व्यसनो से दूर रहना चाहिए। जो विद्यार्थी इनके चक्कर मे पड जाता है वह फिर जीवन भर इनसे मुक्ति नही पा सकता।

अनुशासन—विद्यार्थी जीवन मे अनुशासन का बहुत महत्व है। विश्व के इतिहास को देखने से हमे यह विदित हो जाता है कि प्रत्येक महापुरुष अथवा किसी भी महान् नेता ने तभी उन्नति की है और वह महान् भी तभी बना है,

जबकि उसने अपने जीवन में अनुशासन का पालन किया है। मानव जीवन मे विद्यार्थी जीवन ही ऐसा समय है जबकि वह अपने को अनुशासन पालन करने के लिए विवश कर सकता है। ऐसा करने मे वह भविष्य में अनुशासन का आदी हो जाता है। अत प्रत्येक विद्यार्थी को अनुशासन का पालन करना चाहिए।

उपसहार—एक आदर्श विद्यार्थी को अपने बौद्धिक, चारित्रिक तथा शारीरिक विकास का विशेष रूप से ध्यान रखना चाहिए।

—०—

१४. हिन्दू समाज की कुप्रथायें

अथवा

अनमेल विवाह के दुष्परिणाम

भूमिका—भारतवर्ष एक बहुत विशाल देश है। यहा पर अनेको धर्मावलम्बी रहते हैं, परन्तु उनमे हिन्दुओ की सख्या सबसे अधिक है। हिन्दू जाति विश्व की प्राचीनतम जाति है। इस समाज मे समय-समय पर आवश्यकतानुसार अनेको प्रथाओ का प्रचार होता रहा। आज समय के परिवर्तन के साथ-साथ वे प्रथायें भी परिवर्तित हो जानी चाहिए थी, परन्तु ऐसा न होने के कारण उनमे से अनेक प्रथायें हिन्दू समाज के लिए अभिशाप सिद्ध हो रही हैं। उन कुप्रथाओ मे से जाति-पाति का भेद, पर्दा-प्रथा, अन्ध-विश्वास, अनमेल विवाह, दहेज प्रथा, बाल विवाह आदि मुख्य हैं।

जाति भेद—प्राचीन काल मे ऋषियो ने समस्त हिन्दू जाति को चार वर्णों में विभाजित किया था—(१) ब्राह्मण (२) वैश्य (३) क्षत्रिय (४) शूद्र। यह वर्ण विभाजन जन्म के आधार पर न होकर कर्म के आधार पर होता था। परन्तु अब समय बीत जाने पर यह विभाजन जन्म के आधार पर ही माना जाने लगा। ब्राह्मण के कुल मे उत्पन्न व्यक्ति ब्राह्मण ही कहलायेगा, चाहे उसके लिए काला अक्षर भैंस बराबर क्यो न हो। शूद्र के परिवार में जन्म लेने पर वह शूद्र ही कहलाता है चाहे वह कितना ही विद्वान् क्यो न हो जाय। आज तो इन जातियो की सख्या सैंकडो हो गई है और सब अपने को एक

दूसरे से भिन्न समझने लगे हैं। इस पारस्परिक भेदभाव के कारण हिन्दू जाति की एकता भंग हो रही है और इतना ही नही एक जाति के व्यक्ति दूसरी जाति वालो से घृणा करते हैं और लडते झगडते रहते हैं।

पर्दा प्रथा—हिन्दू महिलाओ मे पर्दा प्रथा का प्रचलन मुगल काल मे मुसलमानो से अपनी इज्जत की रक्षा करने के लिए किया गया था, परन्तु आज इसकी आवश्यकता न होने पर भी यह प्रचलित है। इससे महिला वर्ग के स्वास्थ्य पर बहुत बुरा प्रभाव पड रहा है। इतना ही नही उनके चरित्र के विकास में भी यह प्रथा बाधक है।

दहेज प्रथा—आज दहेज प्रथा ने तो हिन्दू समाज की जडो को हिला दिया है, उसे खोखला बना दिया है। निर्धन माता-पिता की सुन्दर और योग्य पुत्रियाँ धनाभाव मे योग्य वर प्राप्त नही कर पाती हैं और फिर जीवनपर्यन्त अपने भाग्य को कोसती रहती है। अनेक माता पिता अपनी पुत्रियो को योग्य वर प्राप्त करने के लिए ऋण ले लेते हैं और फिर जीवन भर उसमे दबे रहते है। इस प्रकार सैकडो परिवार आज नष्ट हो रहे हैं।

अनमेल विवाह—आज हिन्दू समाज मे अनमेल विवाह भी सहस्रो मासूम लडकियो के जीवन नष्ट कर रहा है। अनेक माता पिता धनाभाव मे अपनी पुत्रियो के लिए योग्य वर प्राप्त नही कर सकते। कभी कभी तो एक छोटी आयु की कन्या का विवाह अधेड अवस्था के पुरुष से कर दिया जाता है। जब तक वह भाग्यहीन लडकी युवा अवस्था को प्राप्त होती है, तब तक उसका पति वृद्ध हो जाता है या इस नश्वर ससार मे उसे अपने भाग्य को कोसने के लिए छोड़कर अनन्त निद्रा मे सो जाता है। यदि स्त्री और पुरुष के स्वभाव विपरीत हो अथवा दोनो मे से एक शिक्षित हो और दूसरा अशिक्षित, तो वे जीवन भर परस्पर झगडते रहते हैं और उनका जीवन नरक सदृश बन जाता है।

अन्ध विश्वास—हिन्दू समाज मे प्रचलित अनेक कुप्रथाओ मे अन्ध-विश्वास भी है। यह सब शिक्षा के अभाव के कारण हैं। अशिक्षित समाज वैद्य व डाक्टरो से औषधि लेकर रोग का उपचार करने के स्थान पर जादू, टोना, टोटका, भूत व प्रेत के चक्कर मे फस जाते हैं और रोगी को जान तक से हाथ धो लेना पड़ता है।

उपसंहार — हिन्दू समाज की उन्नति के लिए इन कुप्रथाओ को दूर करना अति आवश्यक है। यदि समाज सुधारको ने इस ओर ध्यान नही दिया, तो हिन्दू जाति दिन प्रतिदिन पतन के गर्त मे गिरती चली जायगी। इन सब बुराइयो को दूर करने के लिए शिक्षा का प्रसार अति आवश्यक है।

१५ समाचार पत्रों के लाभ तथा हानियां

भूमिका — आज हम विज्ञान के युग मे रह रहे हैं। चारो ओर विज्ञान के चमत्कार दिखाई देते हैं। विज्ञान ने गत एक शताब्दी मे मानव को वरदान के रूप मे अनेक वस्तुये प्रदान की हैं। इन वस्तुओ ने मनुष्य का जीवन अति सुखी बना दिया है और अपने पूर्वजो की अपेक्षा उसने बहुत प्रगति कर ली है। उन्हीं वरदानो मे 'मुद्रण कला' का आविष्कार भी एक है। इस मुद्रण कला की प्रगति होने पर ही समाचार पत्रो का जन्म हुआ।

लाभ — समाचार पत्रो से मानव जाति को बहुत लाभ हुआ है। आज हम प्रातःकाल के समय बिस्तर पर से उठने से पहले ही समाचार पत्र पढ़कर विश्व भर मे होने वाली सभी प्रमुख घटनाओ को जान लेते हैं। इसने समस्त विश्व को मिलाकर एक कर दिया है। सभी राष्ट्र अन्य सभी राष्ट्रो मे होने वाली घटनाओ व उथल-पुथल से इस प्रकार परिचित रहते हैं मानो वे घटना-स्थान पर रह रहे हो। बडे बडे नेताओ के विचारो को भी हम इसके द्वारा जानते रहते हैं। यदि आज कोई नेता राष्ट्र को कोई सदेश देना चाहता है अथवा किसी बात के लिए उनसे अपील करना चाहता है, तो उसके लिए सभी देशवासियो तक अपने इस सदेश को पहुचाने का सर्वोत्तम साधन समाचार पत्र ही है, क्योकि रेडियो को तो प्रत्येक मनुष्य नही सुन पाता है। हां समाचार पत्र पढ़ने के लिए प्रत्येक मनुष्य चार छः पैसे अवश्य व्यय कर सकता है। समाचार पत्र विज्ञापन का भी एक उत्तम साधन है। समाचार-पत्रो में यह शक्ति है कि वे सुप्तावस्था मे पड़ी जनता को जागृत कर सकते हैं। प्रजातन्त्र के युग मे तो समाचार पत्र बहुत ही बडी आवश्यकता हो गये हैं। ये मनुष्यो के सामने पाखण्डी व अवसरवादी नेताओ की पोल खोल कर रख देते हैं। इतना ही नही सरकार के द्वारा किये गये प्रत्येक उचित व अनुचित कार्यों

की आलोचना सहित प्रजा को सूचना देते हैं। इस प्रकार सरकार भी समाचार पत्रों से भयभीत रहती है और वह इनके भय से मनमानी नहीं कर पाती समाचार पत्रों में किसी किसी दिन कहानियाँ इत्यादि भी आती हैं जिनको पढ़कर मनुष्य अपना मनोरंजन कर लेता है। हमें आगामी २४ घंटों के मौसम का भी समाचार पत्र को पढ़कर ज्ञान हो जाता है। खेल के शौकीनों के लिए विश्व में होने वाले बड़े बड़े टूरनामेंट आदि विस्तृत समाचार भी उनके द्वारा प्राप्त होते रहते हैं।

हानियाँ—विश्व में प्रत्येक वस्तु से लाभ तथा हानियाँ दोनों ही होती हैं। जहाँ समाचार पत्रों से इतने लाभ हैं वहाँ इनमें हानियाँ भी अनेक हैं। समाचार पत्र कभी कभी विषैले सर्पों से भी अधिक भयानक हो जाते हैं जैसे भारत विभाजन के समय हुए साम्प्रदायिक दंगों का बहुत कुछ उत्तरदायित्व समाचार पत्रों पर है। कभी कभी कोई समाचार पत्र किसी विशेष व्यक्ति अथवा संस्था का पक्ष लेने लगता है और उसकी तथा उसके कार्यों की बढ़ा चढ़ाकर प्रशंसा करने लग जाता है। इस प्रकार कभी कभी एक अनुचित व्यक्ति को भी जनता की दृष्टि में ऊँचा उठा देना समाचार पत्र के लिए साधारण सी बात हो जाती है। बहुधा ऐसा देखा जाता है कि समाचार पत्र अपने सामाजिक उत्तरदायित्व की अपेक्षा अपने आर्थिक लाभ को ही अधिक प्रश्रय देते हैं। यदि समाचार पत्र असत्य समाचार अथवा झूठे विज्ञापन छापते हैं तो निस्सन्देह समाज पर उनका बहुत ही बुरा एवं संक्रामक प्रभाव पड़ता है। इस स्थिति में वे समाज के लिए वरदान की अपेक्षा अभिशाप बन जाते हैं। युद्ध काल में कभी कभी वे समाचार पत्र अन्तर्राष्ट्रीय सम्बन्धों में कटुता उत्पन्न कर देते हैं।

उपसंहार—समाचार-पत्रों की शक्ति, सामर्थ्य और दायित्व महान हैं। ये हमारे दैनिक जीवन के प्रत्येक क्षेत्र को प्रभावित करते हैं। इसलिए यह अति आवश्यक है कि समाचार पत्रों के संचालकों व सम्पादकों समाज तथा राष्ट्र के प्रति अपने कर्तव्यों को नहीं भूलना चाहिए

—o—

१६. सिनेमा के लाभ तथा हानियां

भूमिका—आधुनिक युग में विज्ञान के अनेकों महत्वपूर्ण आविष्कारों में सिनेमा (चलचित्र) का विशेष स्थान है। सिनेमा का आविष्कार और इसकी इतनी उन्नति गत तीस वर्ष में ही हुई है। सर्व प्रथम जो चलचित्र चित्रपट पर दिखाये जाते थे, वे केवल चित्र ही होते थे। परन्तु धीरे-धीरे इस क्षेत्र मे और अधिक उन्नति हुई और चित्रों के साथ-साथ हम उनकी आवाज को भी सुनने लगे। वर्तमान युग मे सिनेमा एक बहुत साधारण वस्तु हो गयी है। प्रत्येक नगर में एक दो सिनेमा घर अवश्य मिलेंगे।

लाभ—सिनेमा मनोरंजन का एक बहुत ही सस्ता व उत्तम साधन है। दिन भर परिश्रम करने के पश्चात् मनुष्य कुछ पैसे व्यय करके सिनेमा हाल मे जाकर बैठ जाता है और वहा पर वह सुन्दर दृश्य व विभिन्न प्रकार की घटनाये देखता है, मधुर व उत्साहित करने वाले गाने सुनता है। इस प्रकार वह अपने मस्तिष्क को ताजा बनाने और थकावट दूर करने के साथ-साथ कुछ नसीहत भी ग्रहण करता है। सिनेमा विद्यार्थियों को शिक्षा देने का भी एक प्रयोगात्मक (Practical) साधन है। ऐतिहासिक घटनाओं व देश व विदेश की प्रसिद्ध इमारतों, स्थानों व पर्वत इत्यादि को देखकर विद्यार्थी उसे अधिक अच्छी तरह समझ सकता है और अधिक समय तक उसे याद रख सकता है। 'एवरेस्ट का आरोहण' चित्र को देखकर देखने वाले के हृदय मे वीरता और साहस की भावनायें भर जाती हैं। वह भी कठिन से कठिन आपत्ति व बाधा टकराने के लिए तत्पर हो जाता है। धार्मिक चित्र दर्शकों पर अच्छा और पवित्र प्रभाव डालते हैं। 'सिनेमा शो' के आरम्भ मे 'संक्षिप्त समाचार' नामक रील दिखाते हैं। इससे हमे देश व विदेश की कुछ महत्वपूर्ण घटनाओं के विषय मे भी जानकारी प्राप्त हो जाती है।

हानियां—सिनेमा से कई हानियां भी हैं। एक तो कुछ लोग इसके इतने शौकीन हो जाते हैं कि वे व्यर्थ मे अपना समय व धन को नष्ट करते हैं। इसके अतिरिक्त अधिक सिनेमा देखने से नेत्रों पर भी बुरा प्रभाव पड़ता है। इससे सबसे बड़ी हानि यह है कि आजकल जो चित्र पर्दे पर दिखाये जाते हैं, उनमें अधिकतर समाज पर कुप्रभाव डालने वाले होते हैं। इनका छोटे छोटे

बच्चों पर युवकों व युवतियों पर जो प्रभाव-पडता है वह समाज के लिये बहुत ही हानिकारक है।

उपसंहार—सिनेमा नये समाज के लिए उपयोगी बनाने के लिए उसमें सुधार की आवश्यकता है। Film Producers का कर्त्तव्य है कि वे निजी, लाभ के साथ-साथ प्रजा के हित का भी ध्यान रखकर ऐसे चित्र बनायें जो शिक्षाप्रद हो और जिनसे समाज को अधिक से अधिक लाभ पहुंच सके।

—o—

१७. रेडियो के लाभ तथा हानियां

भूमिका—आधुनिक युग विज्ञान का युग है। विज्ञान ने जहाँ मानव को अनेको वस्तुयें वरदान के रूप में प्रदान की हैं, उनके साथ ही रेडियो भी विज्ञान की एक बहुत ही महत्वपूर्ण देन है। इसका आविष्कार मार्कोनी ने किया।

लाभ--रेडियो ने मानव जाति को बहुत लाभ पहुचाया है। इसके आविष्कार ने समस्त विश्व को मिला कर एक कर दिया है। प्राचीन काल की भाँति अब कोई भी राष्ट्र अन्य राष्ट्रों से पृथक् अथवा उनकी पहुंच से बाहर नहीं रह सकता। विश्व के किसी भी भाग मे जब कभी भी कोई विशेष महत्वपूर्ण घटना होती है, तो समस्त विश्व के कोने कोने में रेडियो, उस समाचार को उसी समय दे देता है। जिस प्रकार से महात्मा गाधी की मृत्यु का समाचार सभी राष्ट्रों ने उस समय रेडियो पर सुन लिया था। रेडियो नित्यप्रति हमे दिन में तीन बार विश्व भर के मुख्य-मुख्य समाचार देता है। इस प्रकार रेडियो मनुष्य को विश्व के नवीनतम समाचारो से परिचित रखता है। रेडियो से प्रतिदिन मनोरंजक रिकार्ड रूपक नाटक व कहानिया सुनाई जाती हैं और 'देहाती प्रोग्राम' भी प्रसारित होता है। इस प्रोग्राम मे एक तो सुनने वालों का मनोरंजन होता है, दूसरे कुछ बाजार के भाव आदि के विषय मे भी जानकारी हो जाती है। बड़े बडे नेता रेडियो पर राष्ट्र के नाम सदेश देते रहते हैं। इस प्रकार प्रजा उनके विचारों को प्रत्येक समय जानती रहती है। इन सब लाभो के अतिरिक्त रेडियो का एक लाभ यह भी है कि इसके द्वारा हमें आगामी २४ घटों के मौसम का पता रहता है। भूचाल आदि ऐसी दैविक

आपत्ति हमारे ऊपर किस समय आयेगी, यह भी रेडियो पर बता दिया जाता है और हम फिर सावधानी से काम लेते हैं।

हानियां—विज्ञान के आविष्कार जहा मानव को वरदान सिद्ध हुये हैं, वहाँ वे अभिशाप भी सिद्ध हो रहे हैं। निस्सदेह रेडियो से मानव को आशातीत लाभ हुये हैं, परन्तु इससे हानियाँ भी हुई हैं। कभी कभी रेडियो के कारण मानव जाति को बहुत हानि उठानी पड़ती है। विभाजन के समय पाकिस्तान मे साम्प्रदायिक उपद्रव हुये। मुसलमानो ने निर्दयता से हिन्दुओ का रक्त बहाया जब भारतवर्ष में राक्षसी कृत्य की अशुभ सूचना रेडियो पर हिन्दुओ ने सुनी, तो उनके हृदय में भी प्रतिक्रिया हुई जिसके परिणामस्वरूप भारतवर्ष मे निर्दोष मुसलमानो को सैकड़ो की सख्या मे मृत्यु का आलिगन करना पड़ा। समस्त देश मे हाहाकार मच गया। रेडियो से दूसरी हानि यह है कि कभी-कभी यह बड़े-बड़े नेताओ का Mouth Peice बन जाता है। वे अपने स्वार्थपूर्ण विचारो से समय समय पर प्रजा को प्रभावित करते रहते हैं ऐसे नेता राष्ट्र हित की चिंता नही करते। इससे समस्त राष्ट्र को बहुत हानि पहुँचती है।

उपसंहार—एक दो हानियो की अपेक्षा रेडियो से लाभ बहुत अधिक हैं। रेडियो आधुनिक जीवन में प्रत्येक परिवार के लिये अति आवश्यक हो गया है, परन्तु भारतवर्ष में अभी इसका मूल्य इतना अधिक है कि मध्यम श्रेणी के व्यक्ति इसको क्रय नही कर सकते। अतः इसका मूल्य न्यून होना चाहिये। परन्तु यह तभी सभव है जबकि हमारे अपने ही देश में इसका निर्माण ऊचे स्तर पर हो और सभी मनुष्य स्वदेशी रेडियो को महत्व दें, न कि विदेशी को।

—०—

१८. स्वास्थ्य ही जीवन का वास्तविक आनन्द है

भूमिका—मानव जीवन मे स्वास्थ्य का बहुत महत्त्व है। प्राचीन कहावत है कि 'प्रथम सुख निरोगी काया, दूजा सुख होय घर मे माया।' अंग्रेजी में भी एक कहावत है—"If wealth is lost, nothing is lost. If health is lost, something is lost. If character is lost, every thing is lost." इन दोनो कहावतो से यह स्पष्ट है कि धन आदि से भी बढ़कर मानव के लिए स्वास्थ्य है। संस्कृत में भी कहा गया है, "शरीरमाद्यम् खलु धर्म

साधनम्" अर्थात् धर्म (कत्तव्य) का पालन करने के लिए सर्वप्रथम साधन शरीर को स्वस्थ रखना है।

स्वास्थ्य के लाभ —जो मनुष्य स्वस्थ्य होगा उसका मन प्रत्येक कार्य करने मे लगेगा। स्वस्थ्य मनुष्य का मस्तिष्क भी उसके शरीर की भांति उत्तम होता है। जिस मनुष्य का शरीर स्वस्थ होता है वह प्राय. निरोगी रहता है। जो मनुष्य निरोगी रहता है वह ही ससार मे अपने लिये, समाज के लिए अथवा राष्ट्र के लिये कोई कार्य भी कर सकता है। उसका शरीर बलिष्ठ होता है। उसमे साहस और शौर्य होता है। वह कठिन से कठिन परिस्थितियो में भी परिश्रम करके सफलता प्राप्त कर सकता है। यदि मनुष्य का शरीर स्वस्थ व बलिष्ठ है तो वह कोई भी कार्य कर सकता है। एक बार तो समय पड़ने पर वह भाग्य से भी टक्कर ले सकता है। इस प्रकार एक स्वस्थ मनुष्य जीवन का सच्चा आनन्द लेता है। वह सदैव चिन्ता मुक्त रहता है।

स्वास्थ्य बिगड़ जाने से हानियाँ —अस्वस्थ मनुष्य प्रायः रोगी रहता है। उसे वैद्यो व डाक्टरो से ही अवकाश प्राप्त नही हो पाता। उसका शरीर निर्बल होता है। यह तो निश्चय ही है कि निर्बल शरीर मे मस्तिष्क उत्तम नही होता है। रोगी (अस्वस्थ) व्यक्ति का मस्तिष्क भी विकार ग्रस्त हो जाता है। जब उसका स्वास्थ्य ही ठीक नही है तो वह स्वयं तो अपना, समाज का अथवा राष्ट्र का भला क्या करेगा, वह तो दूसरो को भी अपनी सेवा मे रखकर उनके कार्यों मे हानि पहुँचाता है। देश के लिये एक भार बन जाता है। वह सदैव चिन्ता ग्रस्त रहता है। एक अस्वस्थ व्यक्ति के पास चाहे लाखों करोडों रुपया हो, परन्तु रोगी रहने के कारण वह उसका आनन्द नही ले सकता। न अच्छा खा पी सकता है और न अच्छा पहिन ओढ़ सकता है। उसके लिए वह अतुल धन राशि निरर्थक होती है। शारीरिक शक्ति के अभाव में उसमे साहस और शौर्य नाम मात्र को भी नही होते।

स्वास्थ्य रक्षा —अब यह स्पष्ट है कि एक निर्धन स्वस्थ व्यक्ति का जीवन एक धनवान् अस्वस्थ मनुष्य के जीवन से अधिक आनन्दमय होता है। अतः प्रत्येक व्यक्ति को स्वास्थ्य की रक्षा करने की ओर विशेष ध्यान रखना चाहिए। इसके लिए सर्वप्रथम तो यह आवश्यक है कि बाल्यकाल मे हमे बुरी संगत से

अपने को बचाना चाहिए जिसमे इस अज्ञानता की अवस्था में हम ऐसे कर्म न कर बैठें कि जीवन भर पश्चात्ताप करना पडे। स्वास्थ्य के लिये नित्य प्रति नियमानुसार व्यायाम करना भी अति आवश्यक है। जो व्यक्ति व्यायाम करते रहते हैं उनका शरीर निरोगी रहता है। इनके अतिरिक्त स्वास्थ्य के लियें प्रत्येक मनुष्य को अपने दैनिक जीवन को नियमानुसार व्यतीत करना चाहिए। नियम पालन जीवन को सुखी बनाने के लिए अनिवार्य है। रात्रि को सवेरे ही सोना और प्रात. को ब्रह्ममुहूर्त्त मे उठना चाहिए।

उपसंहार — यह निर्विवाद सत्य है कि 'स्वास्थ्य ही जीवन का वास्तविक आनन्द है।' इसलिए यदि हम जीवन का सच्चा सुख प्राप्त करना चाहते हैं और अपनी जाति, समाज तथा राष्ट्र की उन्नति करना चाहते हैं, तो हमे अपने को पूर्ण स्वस्थ रखना चाहिए। यह तभी सम्भव होगा जबकि हम स्वास्थ्य रक्षा के नियमो का कठोरता से पालन करें।

१९. नदी तट का प्रातःकालीन दृश्य

भूमिका — मनुष्य स्वभाव से ही सौन्दर्य प्रेमी है। मानव को यदि सब से अधिक कोई वस्तु सौन्दर्यमयी लगती है तो वह है प्राकृतिक शोभा। वही पर उसके नेत्रो की तृप्ति होती है और वही पर उसकी आत्मा को शान्ति प्राप्त होती है। प्रकृति की गोद मे वह चिन्ताओ को भूल जाता है।

नदी तट का सौंदर्य .— प्राकृतिक सौंदर्य मे नदी के तट पर प्रात.कालीन दृश्य का एक विशेष स्थान है। इस दृश्य को देखकर मन उल्लसित हो उठता है। वहाँ पर शान्ति का अनुभव होता है। सूर्योदय के समय पूर्व दिशा मे आसमान लाल रजित हो जाता है। बाल सूर्य का लाल रग जब नदी की लहरो पर पडता है तो ऐसा प्रतीत होता है मानो किसी ने नदी मे लाल रग घोल दिया हो। उस समय तो यही लगता है मानो नदी रूपी रमणी अपनी लहर रूपी माँगो मे सिंदूर भरकर अपने प्रियतम समुद्र से मिलने जा रही है।

चारो ओर पक्षियो की चहचहाने की आवाज कान पडी सुनाई नही देती। कहीं वे एक पक्ति मे आकाश में उडते दिखाई देते हैं तो कहीं वे एक साथ नदी मे डुबकी लगाकर उड़ते दिखाई देते हैं। बगुले मछली की ताक में तट पर बैठे ऐसे प्रतीत होते हैं मानो वे भगवान का ध्यान कर तपस्या मे रत हों।

शीतल, मन्द तथा सुखदाई वायु चलती है। वायु जल के साथ अठखेलियाँ करती हैं। जल में तरगे उठती हैं और तट से टकराकर टूट जाती हैं। उनका यह खेल कितना सुन्दर लगता है। जल प्रवाह की कलकल ध्वनि कर्णों को सुख देती है। इन सबसे अधिक सुन्दर और सुखद नदी तट पर खिले रंग विरंगे पुष्प होते है। इन रंग विरंगे पुष्पो पर मोती सदृश ओस बिन्दु को देखकर मन स्वाभाविक रूप से ही उनकी ओर आकर्षित हो जाता है। सूर्य की प्रथम रश्मियों मे वे ऐसे प्रतीत होते हैं मानो वास्तविक मोती ही उन पर लग आये हों।

उपसंहार.—प्राकृतिक सौंदर्य मानव को केवल प्रसन्नता ही प्रदान नही करता वरन् प्रकृति की गोद में प्रात काल कुछ समय व्यतीत करने से मनुष्य का मस्तिष्क ताजा हो जाता है। वह दिन भर समस्त कार्यों को भली-भाति और प्रसन्नता पूर्वक करता है। इससे स्वास्थ्य पर भी अच्छा प्रभाव पडता हैं। कभी कभी तो कोई प्राकृतिक सुन्दर दृश्य हमारे हृदय पटल पर अंकित हो जाता है। जब कभी हम एकान्त में बैठे हुये होते हैं तो वह दृश्य हमारे नेत्रो के सम्मुख घूमने लगता है और हमे चिन्ताओ से मुक्त कर प्रसन्नता प्रदान करता है।

२०. प्रजातन्त्र प्रणाली के गुण और दोष

प्रजातन्त्र की परिभाषा—प्रजातन्त्र शब्द प्रजा और तन्त्र दो शब्दो से मिलकर बना है। प्रजा का अर्थ जनता और तंत्र का अर्थ शासन है। अत. प्रजातन्त्र का अर्थ जनता का शासन होता है। अमरीका के राष्ट्रपति अब्राहम लिंकन के मतानुसार प्रजातन्त्र का अर्थ है—"वह सरकार जो जनता की हो, जनता के लिए हो और जनता के द्वारा चलाई जाती हो।"

प्रजातन्त्र के भेद—प्रजातन्त्र के मुख्यत दो भेद हैं—प्रत्यक्ष और अप्रत्यक्ष। प्राचीन काल मे एक दो ग्रामो को मिलाकर राज्य बनता है। इन छोटे छोटे राज्यो की सख्या हजारो मे होती थी। अत. राजा एक निश्चित स्थान पर समस्त जनता को एकत्रित कर लेता था और वे सब मिलकर 'कानून' बनाते थे। परन्तु आज तो एक राज्य मे करोड़ो व्यक्ति रहते हैं, इसलिए प्रत्यक्ष प्रजातन्त्र सम्भव नही। आज प्रजा के प्रतिनिधियो के द्वारा शासन होता है, इसलिये इसे अप्रत्यक्ष प्रजातन्त्र कहते हैं।

प्रजातन्त्र प्रणाली के गुण—प्रजातन्त्र में समस्त व्यक्तियों को स्वतन्त्रता होती है। प्रत्येक व्यक्ति स्वेच्छा से किसी भी धर्म को मान सकता है, किसी भी राजनैतिक संस्था का सदस्य हो सकता है, कोई भी व्यक्ति प्रमाण सहित सरकार की नीति की आलोचना कर सकता है और अपने सुझाव सरकार को दे सकता है। प्रजातन्त्र देश मे सरकार के विरोध मे कम से कम एक संस्था होती है। इस संस्था के विरोध के कारण सरकार सतर्क रहती है और प्रत्येक कार्य बहुत सावधानी से करती है। इस प्रणाली मे एक लाभ यह है कि सरकार चार या पाँच वर्ष (एक निश्चित समय) के लिए बनती है। निश्चित अवधि के समाप्त होने पर पुन निर्वाचन होता है, इसलिए प्रजा के प्रत्येक प्रतिनिधि को यह चिन्ता रहती है कि उन्हे फिर जनता से मत (Votes) प्राप्त करने हैं। इस कारण वे जनता के हित के लिये ही कार्य करते हैं, ताकि जनता उन्हें फिर निर्वाचित करे। प्रजातन्त्र मे रक व धनी, निर्बल व शक्तिशाली सबको समान अधिकार प्राप्त होते हैं। शासन की दृष्टि मे कोई भेद-भाव नहीं होता है। एकतन्त्र अथवा निरंकुश शासन मे तो सेना अर्थात् शक्ति के द्वारा शासन होता है। राजा अपने विरोधियों को कुचलने का निरन्तर प्रयत्न करता रहता है, परन्तु प्रजातन्त्र में ऐसा नहीं होता है।

प्रजातन्त्र शासन प्रणाली मे राज्य का प्रत्येक वयस्क बिना किसी भेद-भाव के सरकार के निर्माण मे योग देता है। इसमे व्यक्ति ही सर्वोपरि होता है। प्रत्येक व्यक्ति की बात का मूल्य होता है। व्यक्ति भी अपने कर्तव्य को समझता है और वह सरकार को सफल बनाने मे पूर्ण योग देता है। प्रजातन्त्र मे प्रत्येक व्यक्ति को अपने लाभ अथवा हानि के विषय मे सोचने का अधिकार है। जो कार्य होता है वह बहुमत के द्वारा होता है चाहे उसका परिणाम अच्छा हो या बुरा। इसलिए किसी भी कार्य का उत्तरदायित्व स्वय प्रजा पर होता है। उसे किसी व्यक्ति विशेष के प्रति कोई शिकायत नहीं होती है। प्रजातन्त्र के द्वारा जनता में देश भक्ति की भावना जागृत होती है।

प्रजातन्त्र प्रणाली के दोष—वास्तव मे देखा जाय तो प्रजातन्त्र सरकार मूर्खों की सरकार होती है, क्योंकि बहुत कम व्यक्ति ही राजनीति को समझ सकते हैं। जनता के अधिकांश व्यक्ति तो राजनीति के विषय मे कुछ नहीं

समझते, वे तो आख बद करके अपना मत देते हैं। वे उम्मीदवारो मे कौन योग्य है और कौन अयोग्य इसका निर्णय नही कर पाते। समस्त देश मे दल-बन्दी हो जाती है। प्रत्येक दल का व्यक्ति अपने दल के लाभ की ही सोचने लगता है। विरोधी दल सत्तारूढ दल की आलोचना उसके कार्य में बाधा डालने के लिए करते हैं। जनतन्त्र में योग्य व्यक्तियो की उपेक्षा होती है। बागडोर तो उन व्यक्तियो के हाथ मे होती है जो जनता को अपने वक्तव्यो से प्रभावित कर सकें, चाहे वे नितान्त अयोग्य ही क्यो न हो। जनतन्त्र प्रणाली अत्यन्त शिथिल व्यवस्था है। इसमे केवल राजनैतिक समानता ही है, आर्थिक नही। धनी व्यक्ति अपने धन के बल पर निर्धन व्यक्तियो से मत (Votes) प्राप्त कर लेते हैं।

उपसंहार—वास्तव मे प्रजातन्त्र-प्रणाली उन्ही व्यक्तियो के लिए लाभ-दायक है जो सुशिक्षित, कर्तव्यनिष्ठ एव स्वार्थहीन हो।

२१. नागरिकता

नागरिकता—जब कोई व्यक्ति किसी राज्य का नागरिक हो जाता है, तो हम कहते हैं कि उसे उस देश की नागरिकता प्राप्त हो गई है। नागरिकता मनुष्य की वह नियमित दशा है, जिसमे उसे राज्य की ओर से राजनीतिक तथा सामाजिक अधिकार प्राप्त होते हैं और जिनके बदले में वह राज्य की आज्ञाओ का पालन करता है।

नागरिकता के प्रकार—नागरिकता दो प्रकार की होती है—एक तो वह जन्म से प्राप्त होती है दूसरी वह जो किसी राज्य की कुछ शर्तों को पूर्ण करने पर प्राप्त हो जाती है।

नागरिकता किस प्रकार प्राप्त की जा सकती है—यदि किसी देश का कोई नागरिक किसी अन्य देश की नागरिकता प्राप्त करना चाहता है तो उसे उस देश की कुछ शर्तें पूर्ण करनी होती हैं। साधारणतया वे शर्तें निम्नलिखित होती हैं :—

(१) निवास-स्थान—एक निश्चित समय तक किसी देश मे रहने पर वह व्यक्ति वहाँ का नागरिक बन जाता है। समय की यह अवधि विभिन्न देशो में भिन्न-भिन्न है।

(२) विवाह—यदि कोई स्त्री किसी विदेशी से विवाह कर ले, तो वह स्त्री अपने पति के देश की नागरिक बन जाती है।

(३) सरकारी नौकरी—विदेश में नौकरी करने पर व्यक्ति उसी देश का नागरिक बन जाता है।

(४) यदि कोई व्यक्ति किसी अन्य देश मे अचल सम्पत्ति क्रय कर लेता है तो वह वहाँ का नागरिक बन जाता है। इसी प्रकार अन्य कई शर्तों के पूर्ण करने से कोई भी व्यक्ति किसी भी देश का नागरिक बन सकता है।

नागरिकता का छिन जाना—निम्नलिखित कारणों से नागरिकता छिन भी जाती है :—

(१) बहुत दिनों तक देश से अनुपस्थित रहने पर। (२) वे विदेशी जो राज्य की नौकरी प्राप्त करने के पश्चात् निकाल दिये जाते हैं। (३) देश द्रोही हो जाने पर। (४) स्त्री का प्रवासी के साथ विवाह करने पर।

उत्तम नागरिकता के मार्ग में बाधायें—मनुष्य के व्यक्तिगत स्वभाव मे तथा सामाजिक संगठन मे निम्नलिखित त्रुटियाँ नागरिकता के मार्ग मे बाधायें डालती हैं :—(१) प्राचीन प्रचलित प्रथायें। (२) मनुष्य की जन कार्यों में उपेक्षा। (३) व्यक्तिगत स्वार्थपरता। (४) निर्धनता तथा निरक्षरता के कारण मनुष्य कुछ ऐसे कार्य कर बैठता है कि उसकी नागरिकता छिन जाती है। (५) दलबदी मे पडकर व्यक्ति जनता के हित से अधिक दल के लाभ को महत्व देने लगता है।

नागरिक के अधिकार—(१) जीवन रक्षा का अधिकार (२) सम्पत्ति का अधिकार। (३) पारिवारिक जीवन का अधिकार। (४) सांस्कृतिक, आर्थिक, धार्मिक, व्यवसायिक अधिकार। (५) भाषण देने का अधिकार। (६) मत देने, निर्वाचित होने आदि राजनैतिक अधिकार।

नागरिक के राज्य के प्रति कर्तव्य—(१) राज्य भक्ति, (२) राज्य की आज्ञा तथा कानूनों का पालन करना, (३) राज्य द्वारा लगाया कर देना। (४) सरकारी कर्मचारियों की उनके कार्यों में सहायता करना। (५) बाह्य आक्रमणों से देश की रक्षा करने की भावना आदि।

—०—

विशेष ध्यान देने योग्य बातें

१. निबन्ध लिखने से पूर्व पाँच मिनट कम-से-कम अवश्य यह सोचना चाहिए कि आप किस विषय पर निबन्ध लिखना पसंद करते हैं ? कौन से विषय पर आप अच्छा और विस्तृत निबन्ध लिख सकते हैं ? उस विषय के लिए आपको कितने उदाहरण मिल सकते हैं ? उस विषय के समर्थन में आप को कितने हिन्दी, संस्कृत या अंग्रेजी के उद्धरण याद हैं ? यदि बिना सोचे-विचारे किसी भी निबन्ध पर आप लिखना आरम्भ कर देंगे, तो आगे जाकर व्यर्थ कठिनाइयों का सामना होगा। प्राय देखा जाता है कि विद्यार्थी पहले कोई एक निबन्ध लिखना आरम्भ कर देते हैं। जब दो-तीन पृष्ठ लिख चुकते हैं, तो सामग्री के अभाव मे या किसी और कारण से वे उसे छोडकर दूसरा विषय पसन्द करते हैं और इस प्रकार समय के थोडा रह जाने से चिंतित मन होने से वे दूसरा निबन्ध भी उतनी सफलता से नही लिख पाते, और परिणाम जो कुछ भी होता है, वह सभी जानते हैं। कभी-कभी विद्यार्थी एक विषय को कुछ लिखकर व्यर्थ दूसरे विषय को सोचते रहते है कि यदि हमने वह दूसरा विषय लिया होता, तो बड़ा अच्छा होता। इस प्रकार यद्यपि वे पहले विषय को छोड नही देते, तो भी अन्यमनस्कता के कारण उनका ध्यान उस विषय पर नही रहता और फलस्वरूप विषय की एकता और विचारसाम्य में विघ्न आता रहता है। इसलिए प्रत्येक विद्यार्थी को पहले ही कुछ देर तक सोचने के पश्चात् अपने विषय का निश्चित चुनाव कर लेना चाहिये ताकि मध्य मे किसी भी प्रकार की बाधा या संदेह का शिकार न बनना पडे।

२. निबन्ध लिखने से पूर्व उसके आरम्भ करने का मार्ग अवश्य सोच लेना चाहिए। संक्षेप से अपने मस्तिष्क मे सारे निबन्ध की रूप-रेखा बना लेनी चाहिए। यदि असुविधा हो, तो पत्र पर उसके संकेत लिख लेने चाहियें, ताकि विचारो में विशृंखलता उत्पन्न न होने पावे। भूमिका में लिखने का ढंग विशेष रूप से सोच कर ही तैयार करना चाहिये। कहाँ से और कैसे आरम्भ करके धीरे-धीरे विषय का नाम लिया जायेगा, कम से कम कितने स्थान तक भूमिका का वह अंश समाप्त हो जायेगा, इन बातो को अवश्य ध्यान मे रख लेना चाहिए। भूमिका का भाग न अधिक संक्षिप्त हो,

न अधिक विस्तृत। एक पृष्ठ तक तो निश्चित रूप से भूमिका सम्बन्धी विचार उपस्थित करते रहना चाहिए। किंतु भूमिका इतनी न बढानी चाहिए कि पाठक को प्रस्तुत विषय का ज्ञान ही बहुत देर तक न हो सके और वह भ्रम मे पड जाये कि लेखक कौनसा निबन्ध लिख रहा है। औचित्य का सदा ध्यान रहे।

३. भूमिका विस्तार, अन्त आदि शब्द नहीं लिखने चाहियें। भूमिका कहाँ समाप्त हुई और विस्तार कहाँ से आरम्भ हुआ, इसका भी स्पष्ट रूप से ज्ञान न होने देना ही लेखक की कला है। भूमिका के अन्त मे ही विस्तार का आरभ छुपा देना चाहिए और विस्तार के अन्त में ही उपसहार का आरम्भ निहित कर देना चाहिये।

४ काव्यात्मक या भावात्मक शैली केवल उन विद्यार्थियो को अपनानी चाहिये, जिनको यह पूर्ण विश्वास हो कि वे इनका सफल प्रयोग करना जानते हैं। यह साहित्यिक शैली भावुक, सहृदय, कविहृदय, छात्र-छात्राओ के लिए ही लाभप्रद हो सकती है। अधिक उनके लिए भी नहीं, क्योकि ऐसे रमणीय स्थल एक दो बार तो रखे जा सकते हैं, परतु निबन्ध में उस स्तर को बनाये रखना उनके लिए भी, विशेष रूप से परीक्षाभवन मे कठिन हो जाता है। इस-लिए भावात्मक या कल्पनाप्रधान जैसे मृत्यु, साध्य सौंदर्य, ताजमहल, आशा—जैसे विषयो के स्थान पर परीक्षोपयोगी दृष्टिकोण से सबसे प्राथमिकता 'साहित्यिक' निबन्धो को और वे भी इतिहास आदि मे सुने, लिखे या पढ़े निबन्धो को ही देनी चाहिये। अन्यथा राजनीतिक, सामाजिक, विशेष रूप से किसी व्यक्तिप्रधान निबन्धो को ही लेना चाहिये। क्योकि इन निबन्धो के लिए विद्यार्थियो को सामग्री जुटाने की आवश्यकता नहीं पडती, केवल उस सामग्री को सजाकर प्रस्तुत करने का ही यत्न करना होता है।

५. निबन्ध मे सुलेख का सबसे बडा महत्व है। किसी अन्य पत्र में सुलेख पर इतना ध्यान नहीं दिया जाता, जितना उसके विचारों या सिद्धांतो आदि पर। केवल इसी निबन्ध के पत्र में ही परीक्षक विद्यार्थियो के सुन्दर लेख, शब्दों की शुद्धियों, वाक्य-रचना, विराम-चिन्ह, शुद्धता, स्पष्टता, भाषा, शैली आदि पर विशेष दृष्टि रखते हैं और उसी क्रम से अक प्रदान करते हैं।

विद्यार्थियो को भी प्राय यह अनुभव हो चुका है कि इसी पत्र मे ही अधिक छात्रो को निराशा का मुख देखना पडता है । कभी-कभी तो अच्छे प्रतिभा-सम्पन्न और समझदार और खूब पढे-लिखे विद्यार्थी भी इस पत्र में असफल होते देखे गये हैं, इसका भी मुख्य कारण उनके लेखन और अभिव्यक्ति का त्रुटिपूर्ण होना ही समझना चाहिए।

६. शैली कृत्रिम न हो कर सहज स्वाभाविक होनी चाहिए। रटे-रटाये विचारो की अपेक्षा विद्यार्थी यदि अपने शब्दो मे खुलकर विचार प्रकट करे तो सरलता और सुविधा रहेगी। कही-कही अवश्य आलकारिक ढग से और लोकोक्ति तथा मुहावरो से भी काम लेते रहना चाहिए। सस्कृत के कठिन शब्दो से अपनी भाषा को लादने की कोई आवश्यकता नही। भाषा जितनी भी सरल हो उतनी ही अच्छी होती है। किन्तु अशुद्ध न होनी चाहिए।

७ निबन्ध लिखने का अभ्यास कभी नही छोडना चाहिए। परीक्षार्थी को यह कभी नही मान लेना चाहिए, कि अब तो उसे निबन्ध लिखना आता है, फिर विचार कर लिखने की क्या आवश्यकता है। ऐसी मनोवृत्ति हानिकारक है। अभ्यास से शैली निखर उठती है और 'अधिकस्याधिक फल' के अनुसार बडा लाभ होता है।

८. निबन्ध मे किसी पक्ष के खडन या मडन मे आवेशपूर्ण वाक्यों का यथाशक्ति बहिष्कार करना चाहिए। 'मैं' या 'मेरा विचार है' आदि शब्दों का प्रयोग भी अच्छा नही समझा जाता है। उत्तम पुरुष के स्थान पर प्रथम पुरुष का ही प्रयोग अच्छा माना जाता है। किसी व्यक्तिविशेष या सप्रदाय विशेष का भी अपमान करना आपत्तिजनक समझा जाता है। शैली मधुर और विधेयात्मक होनी चाहिए, कटु और निषेधात्मक नही।

सफल निबन्ध-लेखन के स्वर्ण सूत्र

जैसे पहले लिखा जा चुका है कि निबन्ध-लेखन की सफलता ही विद्यार्थी और गद्यकार की सफलता है, इसलिए उसमे पूर्णता पाने के लिए निम्नलिखित सूत्रो का ध्यान प्रत्येक विद्यार्थी को अवश्य रखना चाहिये।

(१) विचारो की एकता—जो कुछ तुम कहना चाहते हो, उस मे तारतम्य हो और पूर्वापर मे सम्बन्ध हो।

(२) विचारों की स्पष्टता—जो कुछ भी कहना चाहते हो, वह इतना

स्पष्ट और सत्यपूर्ण हो कि पाठक को उसका सही आभास होने लग जाये।

(३) निरीक्षण शक्ति का विकास—इसके लिए आपकी दृष्टि अधिक विस्तृत होनी चाहिए आप अपने पास एक Note book रखें और जहाँ पर भी कोई नवीन वस्तु देखें उसे उस पर अंकित करलें।

(४) अध्ययन की विशालता—आपका अध्ययन जितना विशाल होगा, उतना ही आपके विचारो मे भी गंभीरता और परिपक्वता आयेगी।

(५) सतत अभ्यास—कोई भी कार्य बिना अभ्यास के कभी भी सफल नही हो सकता और विशेषतया निबन्ध-लेखन, अतः इसके लिए जितना भी अभ्यास कर सकते हैं, करिये।

(६) सम्यक् निरीक्षण—केवल मात्र किसी वस्तु को बाहरी तौर पर देखने से ही कार्य नही चल सकता, उसके लिए तो विषय की गहराइयो मे घुसने की आवश्यकता होती है। कबीर के शब्दो मे—

"जिन खोजा तिन पाइया, गहरे पानी पैठ।
मैं बौरी डूबन डरी, रही किनारे बैठ॥

(७) स्वाभाविकता और सरलता—विचार जितने ऊंचे हो भाषा और शैली उतनी ही सुगम और ग्राह्य हो। आपका विषय विवेचन इतना पांडित्य-पूर्ण भी नही होना चाहिए जिससे कि वह अस्वाभाविक हो उठे। क्योंकि स्वाभाविकता ही पाठक को अपनी ओर आकर्षित करती है और उसे आपका निबन्ध पढ़ने को बाधित करती है।

(८) रूप-रेखा—किसी भी निबन्ध को लिखते समय उसका रूप-रेखा अवश्य ही निर्धारित कर लेनी चाहिए। इससे दो लाभ होते हैं, एक तो विषय का कोई भी आवश्यक अंग छूटने नही पाता और दूसरे विचारो मे एकता रहती है।

(९) मननशीलता—केवल मात्र विषय का ज्ञान प्राप्त कर लेना ही निबन्ध को सफल नहीं बनाता, अपितु उसके अंगो और उपांगो का मनन ही उस विषय को स्पष्ट और सरल बनाता है। आप विषय का जितना भी मनन करेंगे, उतना ही उसकी बारीकियों को सुलझाने मे सफल हो सकेंगे।

(१०) निश्चित मत—यह ध्यान रखिए निबंध उनके विचारो का संग्रह है। इन विचारो मे विविधता सम्भव हो सकती है अतः ऐसे ही विचारो को उसमें लिखिये, जिन पर आपका मत निश्चित है।

अनुच्छेद लेखन विधि

प्रभाकर परीक्षा के इस पत्र मे किसी भी निर्दिष्ट विषय पर विशुद्ध ललित भाषा मे १५ पंक्ति का भावपूर्ण संदर्भ लिखवाया जाता है। इसी को अनुच्छेद कहते है। वैसे तो अनुच्छेद २०-२५ पंक्तियो तक का हो सकता है, परन्तु प्रभाकर परीक्षा मे विद्यार्थियो को यह प्रयत्न करना चाहिए कि जहाँ तक उनका संदर्भ १५ ही पंक्तियो का हो। इसमे विद्यार्थियो को अधिक गहराई में नही जाना चाहिए, केवल कुछ मोटी-मोटी बातो का ही वर्णन करना चाहिए।

यह दो प्रकार का होता है—१. विवेचनात्मक २ वर्णनात्मक। विवेचात्मक संदर्भ गम्भीर विषयो पर लिखा जाता है। इसकी भाषा और गठन में गम्भीरता होती है। इसका एक-एक शब्द नपा-तुला तथा भावपूर्ण होता है। इसकी शैली पर लेखक के व्यक्तित्व की छाप स्पष्ट दिखाई देती है। वर्णनात्मक संदर्भ में तो किसी भी दृश्य अथवा वस्तु का वर्णन मात्र होता है। इसमे गम्भीरता न हो कर व्यंग्य, विनोद तथा चुलबुलापन होता है। इसकी भाषा सरल तथा सुन्दर हो। यह अधिकतर व्यास शैली मे लिखा जाता है। यदि बीच-बीच मे हास्य रस हो, तो इसका सौंदर्य और अधिक हो जाता है।

प्रभाकर परीक्षा में प्राय वर्णनात्मक संदर्भ ही लिखवाये जाते हैं। विद्यार्थियो को इस प्रश्न का उत्तर देते हुए निम्नलिखित बातो का ध्यान मे रखना चाहिए :—

१. इसमे निबन्ध की भाँति भूमिका बाँधने की आवश्यकता नही होती है। ऐसा करने पर संदर्भ बहुत विस्तृत हो जायेगा।

२. विद्यार्थियो को मुख्य विषय मे इधर-उधर नहीं भटकना चाहिए। उन्हें मुख्य विषय सम्बन्धित बातों का केवल उल्लेख मात्र ही करना चाहिए।

३ जहाँ तक हो सके उदाहरण से बचना चाहिए और यदि उदाहरण देना भी पड जाय, तो उदाहरण से सम्बन्धित व्यक्ति अथवा घटना का उल्लेख करना ही पर्याप्त होगा।

४. भाषा सरल, वाक्य छोटे किन्तु भावपूर्ण होने चाहिएँ। विचारों को

योजना एक क्रम मे होनी चाहिए। पाठक को ऐसा प्रतीत हो कि दूसरा वाक्य पूर्व वाक्य से स्वय ही निकल रहा है।

५. भावात्मक अनुच्छेद में प्रलाप शैली का प्रयोग करना चाहिए। इसमें हृदय और अनुभूति की प्रधानता होती है। इसमे हास्य के लिए कोई स्थान नही होता है।

६. इसके वाक्यो मे विशेष लालित्य की आवश्यकता रहती है, जिससे पाठको को सगीत जैसा आनन्द प्राप्त हो।

उदाहरण (१)

मच्छरों का प्रकोप (प्रभाकर, जून १९५२)

वर्षा ऋतु थी। निरन्तर कई दिन तक वर्षा होने के पश्चात् बन्द हो गई थी। चारो ओर कीचड और जल दृष्टिगोचर होता था। संध्या का समय था, हवा बन्द थी, दम घुटा जा रहा था। मैं अपनी खाट चौक मे बिछा कर सो गया। थोडी देर पश्चात् मेरे कानों में मच्छर की ध्वनि सुनाई दी। मेरा ध्यान उधर गया ही था कि मच्छर महाराज ने मेरे पैर मे बहुत जोर से डक मारा। डक का लगना था कि मैंने उधर अपना हाथ बढाया, परन्तु दूसरे ही क्षण मेरे हाथ मे भी बहुत जोर का डक लगा। बस फिर क्या था समस्त देह पर आक्रमण आरम्भ हो गया। मै व्याकुल हो कर उठ बैठा और पैरो तथा हाथो को खुजाना आरम्भ कर दिया। जहा खुजाता था वही पर दाद-मे पड जाते थे। मैंने खाट पर दरी बिछाई और बारीक चादर ओढ कर सो गया, परन्तु मच्छरो की सेना ने फिर भी मेरा पीछा नही छोड़ा। उसके मेरे ऊपर निरन्तर आक्रमण होते रहे। क्षण-भर भी सोना दुर्लभ हो गया। मुझे विवश हो कर खाट से खड़ा होना पड़ा। कमरे में जा कर मैंने अपने शरीर पर कडवा तेल लगाया और फिर अपनी खाट पर तथा आस-पास की भूमि पर डी० डी० टी० का छिडकाव किया। इसके पश्चात् मै शत्रु आक्रमण से निर्भय हो कर रात्रि-भर सोता रहा।

उदाहरण (२)

परिणाम घोषित होने का प्रातःकाल

(प्रभाकर, नवम्बर १९५५)

जीवन में ऐसे भी क्षण आते है, जिनका मनोविज्ञान के बडे-बडे पडित भी मनोविश्लेषण नही कर पाते है। ऐसा ही था वह प्रभात, जब मेरी समस्त चेतना बिना ही किसी कायिक या मानसिक प्रयत्न के एक ही बिन्दु पर अनायास केन्द्रित हो गई। वही प्रभात! परीक्षा-फल घोषित होने का प्रभात!

समस्त रात्रि करवटें बदलने के पश्चात प्रात. तीन वजे ही मेरी निन्द्रा भग हो गई। मैं खाट छोड कर सीधा 'हिन्दुस्तान टाइम्स' के कार्यालय में जा पहुँचा। इस समय सुधीन्द्र की पक्ति मेरी मन स्थिति मे साकार रूप बनी हुई थी—

"जागे आशा भय ह्रास रुदन, जय-अविजय के स्वर वीणा में।"

मेरे हृदय की वीणा मे यही स्पन्दन-क्रन्दन था। मैट्रिक की परीक्षा के परिणाम का मेरे लिए कुछ कम महत्व नही था। समाचार पत्र सामने आते ही सम्पूर्ण पृष्ठ पर एक साथ ही दृष्टि गई और पीछे अपने रोल नम्बर पर। प्रथम श्रेणी पढते ही एक बार तो मन मे आया उछल पडूँ, परन्तु अविलम्ब ही सभल गया और सोचा कि यह आवश्यक अभिनय तो घर पर ही शोभा देगा। बडी कठिनाई से अपने उल्लास को व्यक्त करने की उत्कठा को रोके हुए मैं घर पहुँचा। द्वार पर ही सभी घरवाले मेरे परिणाम को जानने के लिए उत्सुक खड थे। उन्हे देखते ही मैं दौड कर पिता जी के पास पहुँचा। वे मेरी मुख-मुद्रा से ही सब कुछ समझ गए। उन्होने मुझे गोदी मे उठा लिया। सबने मेरी भूरि-भूरि प्रशसा की।

उदाहरण (३)

नदी में बाढ़ (प्रभाकर, जून १९५६)

कैसा भयानक दृश्य था। यमुना मे भयानक बाढ आई हुई थी। चारो ओर जल ही जल दिखाई देता था। ऐसा प्रतीत होता था मानो यमु ा ने

समुद्र का रूप धारण कर लिया है। वहाँ पर जितने भी नदी, नाले व पोखर थे, वे सभी मिल कर एकाकार हो गये थे। बीच-बीच मे ऊँचे स्थानो पर खडे हुये वृक्षो का ऊपर का कुछ भाग जल के ऊपर दिखाई दे रहा था। कही पर कोई जानवर बहा जा रहा था तो कही पर कोई व्यक्ति। एक छप्पर पर बैठे हुये कुछ व्यक्ति चीखते-चिल्लाते जा रहे थे। पुल पर से लोगो ने नीचे को रस्से लटकाये हुए थे। कुछ भाग्यशाली तो उन रस्सो को पकड कर ऊपर चढने मे समर्थ हो सके और कुछ दुर्भाग्यशाली घबराहट मे रस्से न पकड सके और जल मे डूब गये। जल बहुत जोर से बह रहा था। बीच-बीच मे शक्तिशाली भँवर पड रही थी। दूरी पर दृष्टि डालने पर अनेक गाँव जल-मग्न दिखाई दे रहे थे। वहाँ पर सब लोग छतो पर चढे हुए सहायता के लिए चिल्ला रहे थे। 'हेलीकोप्टरो,' स्टीमरो तथा नावो से उन्हे बचाने तथा सहायता पहुँचाने का प्रयत्न किया जा रहा था। सडक पर बाढ-पीडित व्यक्तियो तथा जानवरो की भीड लगी हुई थी। उनका सामान इधर-उधर तितर-बितर पडा हुआ दिखाई दे रहा था। सभी लोग चिन्तित तथा उदास थे। पीडितो को भोजन तथा दूध दिया जा रहा था। बच्चो का क्रन्दन हृदय-विदारक था। इस दृश्य से दुःखी हो मै घर लौट आया।

उदाहरण (४)

किसी बड़े स्टेशन पर रेलगाड़ी के आने का दृश्य

(प्रभाकर, नवम्बर १९५६)

रेलगाडी के आने का समय हो गया है। प्लेटफार्म यात्रियो से खचाखच भरा हुआ है। सभी की दृष्टि गाडी की ओर लगी हुई है। सिगनल हो गया है। सभी यात्री सतर्क हो गये। सामने से आती हुई गाडी दिखाई दे रही है। देखते ही देखते वह प्लेटफार्म पर आ कर रुक गई। यात्रियो की मुख-मुद्राएँ दर्शनीय है—बडी आतुरता, आकुलता, दौड-धूप। रग-बिरगे वस्त्र पहने यात्री गाड़ी मे चढ और उतर रहे हैं। कुली सर पर सामान रखे इधर-उधर दौड़ रहे हैं। कोई सामान लिये गाडी मे सवारी को बैठाने के लिए दौडा चला आ रहा है। गाडी यात्रियो से ठसाठस भरी हुई है। खोमचे वालो, चाय वालों तथा समाचार पत्र बेचने वालो का शोर भी कान पडे सुनाई

नहीं देता है। 'पूरियाँ गरमागरम,' 'ताजे गरम समोसे', 'चाय वाला' आज की ताजा खबरें' आदि अनेक प्रकार के शब्द सुनाई पड रहे हैं। नीली वर्दी पहने हुए टिकट चेकर इधर-उधर घूम रहे है। देखते ही देखते प्लेटफार्म, यात्रियो से खाली हो गया। गाडी सीटी दे कर धीरे-धीरे चल दी और आन की आन में दृष्टि से ओझल हो गई। खोमचे वाले भी चले गये और प्लेट-फार्म सुनसान हो गया।

उदाहरण (५)

नाव दुर्घटना

(प्रभाकर, जून १९५७)

ग्रीष्म की सध्या थी। मैं, रमेश, सोहन तथा सरोज नाव मे बैठ गगा की सैर कर रहे थे। मौसम बहुत सुहावना था। शीतल, मद वायु चल रही थी। चन्द्रमा की चाँदनी मे गगा का दृश्य बहुत ही सुन्दर दिखाई दे रहा था। मछलियाँ उछल-कूद कर रही थी। अचानक ही हमारी नाव एक भँवर में फस गई। नाविक ने बहुत प्रयत्न किया कि नाव भवर से बाहर निकल जाय, परन्तु सब प्रयत्न निष्फल हो रहे थे। हम सबके मुँह का रग उडा हुआ था। मैं तो तैरना जानता था, परन्तु अन्य सभी इस कला से अनभिज्ञ थे। बार-बार नाव चक्कर काट जाती थी, परन्तु भँवर से बाहर निकलने का नाम नही लेती थी। इसी समय एक अन्य नाव वहाँ आ पहुँची। उसके नाविक ने हमारी नाव पर रस्सी फेंक कर उससे खीचने का प्रयत्न किया, परन्तु हाय दुर्भाग्य ! अचानक ही रस्सी टूट गई और हमारी नाव उलट गई। हम सब गगा माता की गोद में जा पहुँचे। किसी तरह मैं भँवर से बाहर निकल आया। दोनो मल्लाहो ने मेरे साथियो को बचाने के लिए अपनी जान की बाजी लडा दी। उन्होने भँवर मे घुस कर उन्हे बाहर निकालने का प्रयत्न किया। परन्तु होता वही है जो भाग मे लिखा होता है। वे मेरे एक भी साथी को न बचा सके। मै दूसरी नाव मे बैठ कर तट पर पहुँचा। दुःखी हृदय से मैं घर लौट आया।

उदाहरण (६)

पूर्णिमा की मनोमोहकता

(प्रभाकर, नवम्बर १९५७)

शरद पूर्णिमा की रात्रि का प्रथम पहर था। चारो ओर चादनी का

साम्राज्य था। मैं अपने मित्रों के साथ नदी तट पर घूमने के लिए गया। आसमान में नक्षत्र ऐसे दिखाई दे रहे थे जैसे छत में मोती जड़े हों। शीतल, मन्द, सुगन्धित वायु बह रही थी। नदी में उठती हुई लहरें बहुत ही मनोहारी थी। जल मे तारो तथा चन्द्रमा का प्रतिबिम्ब बहुत ही सुन्दर लग रहा था। चाँदनी मे हरे भरे खेत ऐसे प्रतीत होते मानो पृथ्वी पर हरी मखमल बिछी हो। वृक्ष दुग्धस्नात-से प्रतीत होते थे। मैदान ऐसे लगते थे मानो पृथ्वी पर श्वेत चादर बिछी हो। घूमते-घूमते हम एक उद्यान मे पहुचे। उद्यान को देख कर कवियो की कल्पना के नन्दन वन का स्मरण हो आया। ऐसा प्रतीत होता था मानो चन्द्रमा से अमृतवर्षा हो रही है। चारो ओर नीरवता थी। किसी प्रकार का शोर नही था। मन चाहता था कि सदा उसी स्थान पर रहूँ परन्तु अधिक रात्रि व्यतीत हो जाने के कारण हमें वहाँ से लौटना पडा। लौटते समय मेरे मन मे उन वृक्षो के प्रति ईर्ष्या थी कि वे उस अमृतवर्षा का आनन्द ले रहे हैं और मुझे विवश हो कर लौटना पड़ रहा है।

उदाहरण (७)

भूकम्प-प्रकोप

(प्रभाकर, जून १९५८)

जून का मध्याह्न था। सूर्य भगवान के प्रचड प्रकोप से पृथ्वी झुलस रही थी, हवा बन्द थी, नदी-नाले सब सूख चुके थे। चारो ओर आतप के कारण त्राहि-त्राहि मची हुई थी। सभी लोग अपने घरो मे थे, किसी को बाहर निकलने का साहस नहीं होता था। मै भी कमरे मे खटिया पर लेटा हुआ था कि अचानक ही बहुत वेग से मकान हिलने लगा, खिडकियाँ झनझनाने लगी, चारों ओर से बहुत जोर का शोर सुनाई दिया। मैं घबरा कर घर से बाहर भागा। देखा, सभी व्यक्ति रोते-चिल्लाते, घबराये हुए, घरो से निकल कर बाहर मैदान मे दौडे जा रहे हैं, मकान एक दूसरे से टकरा कर गिर रहे हैं। सभी लोग भय से थर-थर काप रहे थे। अचानक ही एक बहुत जोर का विस्फोट हुआ। पृथ्वी मे बहुत बडी दरार पड गई और सैकड़ों मकान धराशायी हो गये। दो मिनट के पश्चात् भूकम्प शान्त हुआ। सारा नगर ध्वस्त हो गया। सभी

व्यक्ति अपने-अपने सम्बन्धियो तथा घरवालो को तलाश करने लगे। सैकडो व्यक्ति मकानो में दब कर मर गए थे। उनके घरवाले फूट-फूट कर रोरहे थे। धनवान-निर्धन, शक्तिशाली-दुर्बल, सभी गृहहीन हो गये। सरकार ने तुरन्त ही उनकी सहायता का प्रबन्ध किया।

उदाहरण (८)

विमान दुर्घटना

(प्रभाकर, नवम्बर १६५८)

जनवरी का महीना था। कडाके की सर्दी पड रही थी। प्रात:काल का समय था। जोर की धुन्ध पड रही थी। मैं पास के गाव को जा रहा था। गाव से बाहर निकलने पर मैंने बहुत से आदमियो की एकत्रित भीड़ को देखा। मैं वहा गया तो देखा कि एक दुर्भाग्यशाली वायुयान ध्वस्तावस्था में वहाँ पर पडा हुआ है। ऐसा प्रतीत हो रहा था कि इजिन मे आग लग जाने से वह दुर्घटना का शिकार हुआ है। इस यान मे जितने व्यक्ति थे सभी काल का ग्रास बन चुके थे, एक भी व्यक्ति जीवित नही था। उनमें कई का शरीर तो इतनी बुरी तरह से कुचल गया था कि वे पहचाने भी नही जा सकते थे। सब का शरीर रक्त-प्लावित हो रहा था। उनके शरीर के विभिन्न अग कट-कट कर इधर-उधर बिखरे हुए पडे थे। बहुत हृदय विदारक दृश्य था। वहा पर एकत्रित सभी व्यक्तियो के नेत्र सजल थे। जो भी व्यक्ति उस दृश्य को देखता था वही जीवन की नश्वरता को सोच कर दुखी हो उठता था। मेरा हृदय दुख से बैठा जा रहा था। पता नही मैं शिकार हुए व्यक्तियो के घरवालो के विषय में क्या-क्या सोच रहा था कि इसी समय पुलिस की गाडियो वहाँ आ पहुची। उनके साथ रेडक्रास की भी दो गाड़ियां थीं। वे मृतकों को उठा कर नगर को ले गई। मैं भी व्यथित हृदय से आगे को बढा।

सार लेखन विधि

सार लेखन की दो शैलियाँ हैं—(१) व्यास शैली (२) समास शैली। व्यास शैली में किसी छोटे विषय को कुछ विस्तृत करके लिखना होता है,

परन्तु समास शैली मे उसे और भी सक्षिप्त करना होता है। किसी विषय को विस्तृत करके लिखना तो सरल होता है, परन्तु उसे सक्षिप्त करने के लिए विशेष कौशल तथा सावधानी की आवश्यकता होती है। इसमे 'गागर मे सागर' भरना होता है। सार लिखते समय विद्यार्थियो को निम्नलिखित बातो का ध्यान रखना चाहिए—

१ सार लिखते समय विद्यार्थी को संदर्भ में दिये गए भावो का स्पष्टीकरण करना चाहिए, न कि कठिन शब्दो का।

२ भाव स्पष्ट करने के लिए कम-से-कम शब्दो का प्रयोग करना चाहिए।

३ इस बात का विशेष ध्यान रखना चाहिए कि जो भाव मूल सदर्भ में नही आये है, वे सार मे न आ जाएं और मूल सदर्भ मे आये हुए भावो मे से कोई छूटने न पाए।

४ सार का कलेवर मूल सदर्भ का लगभग एक-तिहाई होना चाहिए।

प्रभाकर परीक्षा मे एक सदर्भ दिया होता है और उसमे से परीक्षक तीन प्रकार के प्रश्न पूछता है १. उपयुक्त शीर्षक २. कठिन शब्दो के अर्थ ३. सदर्भ का सार।

१ उपयुक्त शीर्षक—शीर्षक एक ऐसा छोटा वाक्याश (दो-तीन शब्दो का) होता है, जिसमे सदर्भ का सम्पूर्ण भाव सन्निहित रहता है। शीर्षक छाटने के लिए विद्यार्थियो को चाहिए कि पहले वे समस्त सदर्भ को पढें और फिर जो भाव मुख्य जान पडे, उसे ही लेख का शीर्षक लिखें। ध्यानपूर्वक पढने पर शीर्षक प्राय सदर्भ के आदि मे या अन्त मे मिल जाता है। कभी-कभी सदर्भ के मध्य मे भी होता है और यदि शीर्षक सदर्भ के किसी भी भाग मे से प्राप्त न हो, तो फिर सम्पूर्ण सदर्भ को पढ कर उसके भाव को समावेशित करने वाला शीर्षक बनाना चाहिए।

२ कठिन शब्दो के अर्थ—प्रश्नपत्र मे दिए सदर्भ में या तो कुछ शब्द मोटे काले टाइप मे छपे होते है, या वे रेखाकित होते हैं। परीक्षक इन्ही शब्दो के अर्थ लिखवाता है। प्राय एक शब्द के अनेक अर्थ हुआ करते है। विद्यार्थियो को केवल उन्ही अर्थों को लिखना चाहिए जो उस सदर्भ मे उन

शब्दो के लिए ठीक लगें। इसके लिए मूल सदर्भ का भली-भाँति ध्यानपूर्वक पढ़ना अति आवश्यक है।

संदर्भ का सार—इसके उत्तर के लिए विद्यार्थियो को सार लेखन विधि में दी गई उपर्युक्त सावधानियो को ध्यान मे रखना चाहिए।

उदाहरण (१)

(प्रभाकर, जून १६५५)

भारतीय सस्कृति मे आर्षज्ञान सर्वोच्च है। इस ज्ञान का प्रादुर्भाव सृष्टि के आरम्भ मे हुआ था। ऋषिगण रज और तप के स्पर्श से रहित थे। अतः उनकी बुद्धि देश और काल की सीमाओ से परे का ज्ञान भी स्वायत्त करती थी, वे थे भी दीर्घायु। फलत जिस प्रकार पार्वत्य-निर्झर की वारि-धारा अपने उद्गम स्थान मे पवित्र और निर्मल होती है, उसी प्रकार यह असाधारण बहुविध ज्ञान स्वच्छ एव शुभ्र था, आज का मानव रज और तप से अभिभूत है। वह अधिक से अधिक शतवर्ष जीवी है। उसका भोजन उतना शुद्ध नही। ससार का वायुमडल भी स्वार्थ, धोखा, असत्य भाषण और मार-काट के कलुषित भावो से ओत-प्रोत है। अत. वतमान मानव का बुद्धिस्तर उच्च नही इतिहास इसका साक्षी है। इस अवस्था मे युग-युग मे मानव का विकास हुआ या ह्रास, यह प्रश्न गम्भीर विचार योग्य है। इस सिद्धात पर पाश्चात्य ज्ञान और आर्षज्ञान की टक्कर अवश्यंभावी है।

शीर्षक आर्षज्ञान बनाम पाश्चात्य ज्ञान।

शब्दार्थ—आर्षज्ञान=ऋषियो द्वारा प्राप्त ज्ञान। स्वायत्त=प्राप्त। शुभ्र=उज्ज्वल। अभिभूत =दबा हुआ। कलुषित=मलिन। ओत-प्रोत= भरा हुआ। बुद्धिस्तर=समझ की कोटि। अवश्यभावी=आवश्यक, अवश्य होने वाली।

सार –भारतीय सस्कृति के आधार वेदो का ज्ञान हमारे प्राचीन ऋषियो द्वारा प्राप्त है। ये ऋषि विकाररहित तथा दीर्घायु थे। अत यह ज्ञान मूल से ही निर्दोष एव उज्ज्वल है। आज का मानव अल्पायु, विकार-ग्रस्त तथा राग-द्वेष से भरा हुआ है। ऐसे मलिन वातावरण में रहने के कारण उसका ज्ञान भी उच्च नही हो सकता। अत मानव के विकास और पतन के प्रश्न

पर पाश्चात्य और भारतीय मत एक-दूसरे के विपरीत है।

उदाहरण (२)

(प्रभाकर, नवम्बर १६५५)

अंग्रेजो ने भारत पर अपना आधिपत्य स्थापित कर लिया। उनके कूट-राजनीतिज्ञो ने अनुभव किया कि यहाँ के आर्यों को अपने ज्ञान की उत्कृष्टता का, अपने चरित्र की निर्मलता का अपने जीवन की स्वच्छता का तथा अपने देश की पुनीतता का महान् गर्व है। उन्होने हृदयगम कर लिया कि ऐसी जाति पर शासन करना कठिन नही असम्भव भी है। उन्होने शिक्षा प्रसार के क्रम को बदला। भारतीय परम्परागत सद्विचारो के स्थान मे अनेक प्रसिद्ध और कल्पित पश्चिमी विचार पढाए जाने लगे। अबोध जनता की मनोवृत्ति वैसी ही बनने लगी। आज इस मनोवृत्ति के ये लोग है, जो पुरातन इतिहास, विज्ञान, वास्तुशास्त्र, सामाजिक प्रथाओ और राजनीतिक आदर्शों पर उपहास करते है। अंग्रेजो ने भारतीय रगमंच से अपना प्रस्थान कर लिया, पर उसके प्रतिनिधि आज भी यहाँ विराजमान है।

शीर्षक—भारत पर अंग्रेजी राज्य का दुष्परिणाम।

शब्दार्थ—कूटराजनीतिज्ञो=छलपूर्ण राजनीति को जानने वाले पुनीतता = पवित्रता। हृदयगम = मन मे बैठा हुआ, अनुभव किया हुआ भारतीय परम्परागत = भारतवर्ष मे प्राचीनकाल से निरन्तर चले आते हुए वास्तुशास्त्र = भवन निर्माण विद्या। उपहास=मजाक। रगमच=नट मडप क्रीडाभूमि, तात्पर्य क्षेत्र।

सार—अंग्रेज राजनीतिज्ञों ने भारत का शिक्षा क्रम बदल कर, उच्च ज्ञान और चरित्र से सम्पन्न आर्यों पर भी अपना शासन सभव बनाया। फलत अंग्रेजों के चले जाने पर भी उनसे प्रभावित भारतीय अपने प्राचीन ज्ञान विज्ञान तथा आदर्शों का मजाक उडाते हैं। अंग्रेजी शासन का भारत पर या विषैना प्रभाव पडा है।

उदाहरण (३)

(प्रभाकर, जून १६५६)

यह सर्व निगमागम-निष्णात त्रिकालज्ञ महर्षि व्यास की कृति है। वे सम्पूर्ण शास्त्रों के पारग थे। अत सस्कृत भाषा पर उनका असाधारण

अधिकार था। ग्रथान्तर्गत प्रत्येक नये विषय के साथ बदलती हुई शब्द राशि इसका प्रत्यक्ष प्रमाण है। इस बृहतकाय ग्रथ मे, इस मनोरम काव्य में प्राचीन इतिहास-पुराण की विपुल सामग्री विद्यमान है, अस्त्र-विद्या की बातें सन्निहित हैं, मन्त्रो का उल्लेख है और उद्भिज्ज शास्त्र का निदर्शन है। वर्णाश्रम मर्यादा की प्रशस्त व्याख्यान और भ रतीय राजशास्त्र अथवा दण्ड नीति आदि की मार्मिक व्याख्या इसी मे उपलब्ध है। भारतीय जीवन की झाँकी, ऋषि आश्रमो का वर्णन, प्राचीन विद्या महारथियो के सम्वाद इसमे यत्र-तत्र समाविष्ट हैं। सबसे बढ कर इसमे वृष्णि-पुंगव, भारत हृदय सम्राट्, वेद-वेदान्त का विज्ञान जानने वाले, महाबल योगेश्वर वासुदेव श्री कृष्ण का पुनीत चरित्र सुरक्षित है। ससार-भर मे इसकी तुलना का दूसरा शिक्षाप्रद, परम रोचक इतिहास ग्रथ दिखाई नही देगा।

शीर्षक—महाभारत।

शब्दार्थ—निगमागम निष्णात=(निगम=वेद, आगम=शास्त्र) वेदों और शास्त्रो का पूर्ण ज्ञानी। पारग=पूर्ण विद्वान। विपुल=बहुत अधिक मात्रा मे। प्रशस्त=विस्तृत। मार्मिक=हृदय को प्रभावित करने वाली। वृष्णि-पुगव=वृष्णि वश में श्रेष्ठ अर्थात् श्री कृष्ण।

सार—महाभारत समस्त वेदो तथा शास्त्रो के पारगत महर्षि व्यास की की रचना है। इसमे विषय के अनुसार शब्दो का प्रयोग किया गया है। इस मे प्राचीन इतिहास-पुराण, अस्त्र-विद्या, उद्भिज्ज शास्त्र का निदर्शन तथा मन्त्रो का उल्लेख है। वर्णाश्रम की व्यवस्था, भारतीय राजनीति का विवेचन, ऋषि-आश्रमो का वर्णन तथा भारतीय जीवन की झाकी के साथ योगेश्वर वासुदेव श्रीकृष्ण के पवित्र चरित्र का भी इसमे वर्णन है। यह ससार का अद्वितीय ग्रन्थ है।

उदाहरण (४)

(प्रभाकर, नवम्बर १९५६)

समाज मे पुरोहित, अध्यपक, लेखक, सैनिक, वणिक, कृषक, शिल्पी और मजदूर का अपना-अपना स्थान है। इसमे से पहले तीन जाति के निर्माता, पथ-प्रदर्शक और चरित्र रक्षक होते है। सैनिक निर्भयता का अवतार धर्म सस्थापक और दुष्ट-दस्यु, राक्षसो का सहार-कर्त्ता होता है। वणिक, और

कृषक पर उदरपूर्ति और जीवन यात्रा आश्रित है। शिल्पी और मजदूर के बिना वास्तुकला, स्थापत्यकला, यान्त्रिक उन्नति और यन्त्र सचालन असभव हो जाता है। पर इन सब के कार्य मे मस्तिष्क ब्राह्मण अथवा अध्यापक का काम करता है। उसका दिया अन्न सब ससार खाता है। उसी की प्रदर्शित व्यवस्था मे राजनियम और व्यापार आदि निरवरोध चलते हैं। उसी की दी हुई मशीनो से मजदूर की लोकयात्रा सम्पन्न होती है। पर आज मजदूर का ही बोलबाला है। मजदूर ही माईबाप है। मजदूर ही सर्वेसर्वा है। मजदूर ससार पर छा जाना चाहता है। ब्राह्मण की कोई पूछ नही। धनी हो या मजदूर, दोनो अपने जीवनदाता ब्राह्मण का निरादर करने में सन्नद्ध है। सब दुख पायेंगे। पर इसका औषध भारत के पास है। भारतीय वर्ण व्यवस्था का सूक्ष्म पर्यालोचन कर्म-विभाजन का यथार्थ रहस्योद्घाटन करता है।

शीर्षक ब्राह्मणत्व का महत्त्व और उस पर साम्यवाद का प्रभाव।

शब्दार्थ—वणिक=व्यापारी। पथ-प्रदर्शन=मार्ग दर्शन करना। उदर-पूर्ति=पेट का पालन-पोषण करना। वास्तुकला=भवन-निर्माण कला। स्थापत्यकला=शिल्पकला। यान्त्रिक=यन्त्र सम्बन्धी। सम्पन्न=भली-भाँति सचलन। सन्नद्ध=तत्पर। पर्यालोचन=भली भाति देखना। रहस्यो-द्घाटन=रहस्य का प्रकट होना।

सार—समाज मे वणिक, सैनिक तथा श्रमिक क्रमश उदर-पालन, रक्षा, भवन निर्माण आदि कार्यो को करते है, परन्तु इनको इनके कार्यों में कुशल बनाने का कार्य ब्राह्मणो अथवा अध्यापको का है। अत ब्राह्मण का ही परोक्ष रूप मे सब के मूल मे अस्तित्व है। परन्तु आज कृषक तथा मजदूर ससार पर छा जाना चाहते है। वे सर्वेसर्वा बने हुए हैं। वे शिक्षक का अपमान करने पर तुले हुए हैं। केवल भारतीय वर्ण-व्यवस्था में ही इस समस्या का समाधान निहित है।

उदाहरण (५)

(प्रभाकर, जून १९५७)

"जब आर्य धर्म, आर्य जाति और आर्यावर्त इस्लामी झझावत से समाक्रान्त थे —जब महा महिमामयी भारत वसुन्धरा आततायियों के पदाघात से पीड़ित हो कर कातर ध्वनि से हाहाकार कर रही थी—जब हिन्दुओ के अन्त:-

पुर की दिव्य विभूति उत्पीडिकों के पाप-पंकिल पैरों से कलुषित हो रही थी। जब असूर्यम्पश्या हिन्दू महिलाएँ अतर्क्य पैशाचिक उपायों द्वारा लुण्ठित हो रही थी—और देश की मान मर्यादा विप्लव की महानदी में वही जा रही थी, उस समय भारत माता के भूषण, देश के आकुल सेवक शूर शिवाजी के भावनामय रूप महाकवि भूषण ने जन्म लिया। उनके अन्तस्तल की अरुन्तुद मर्मवाणी ने आहतों के मृत्याप्राय जातीय कलेवर में चैतन्य का सचार किया।"

(क) लेख का शीर्षक क्या हो सकता है ?

(ख) इस सदर्भ के मोटे टाइप के पदों का अर्थ लिखो।

(ग) सरल हिन्दी मे लेख का सक्षेप लिखो।

उत्तर—(क) इस्लाम का अत्याचार और भूषण का आविर्भाव।

(ख) आर्यावर्त्त = भारतवर्ष (यह हमारे देश का प्राचीन नाम है)। समाक्रान्त=पराभूत। वसुन्धरा = भूमि। आततायियों = अत्याचार करने वाले। पदाघात=पैर से ठोकर मारना, अत्याचार रूपी ठोकर मारना। कातर=भयाक्रान्त। पकिल=कीचड मे लिपटा हुआ। कलुषित=मलिन, दूषित। असूर्यम्पश्या=जिनको सूर्य की किरणें भी स्पर्श न कर पायें। विभूति =वैभव। अतर्क्य=जिसके विरोध मे कोई तर्क न दिया जा सके। लुण्ठित =उपेक्षित अवस्था मे। विप्लव=विद्रोह। आकुल=व्याकुल। भावनामय= भावयुक्त। अरुन्तुद=प्रखर, तीक्ष्ण। आहतों=पीडितों। मृत्याप्राय= मृत्यु शय्या पर पडे हुए। कलेवर=शरीर। चैतन्य =सजीव।

(ग) जिस समय इस्लाम के अनुयायियों के अत्याचारों से हिन्दू महिलायें, आर्य धर्म, समस्त देश और हिन्दू जाति पीडित हो कर भयाक्रान्त ध्वनि से हाहाकार कर उठी थी और देश की मान मर्यादा नष्ट हो रही थी, उस समय शिवाजी की भावनाओं के साकार रूप महाकवि भूषण का आविर्भाव हुआ। भूषण की तीक्ष्ण वाणी ने अचेत हिन्दू जनता को सचेत किया।

उदाहरण (६)

(प्रभाकर, नवम्बर १९५७)

"ज्येष्ठ पूर्णिमा की रम्य रजनी मे सजल जलदमाला से नभो मण्डल की धवलिमा समाच्छन्न थी। गाढ तमिस्रा का साम्राज्य था। रह-रह कर

तड़ित् विद्योतित हो रही थी। मराल, मयूर और चकोर मानो स्वागतार्थ कलरव कर रहे थे। विकसे सरोज के ऊपर काशी अंक-स्थित लहरतारा तालाब की तरग तति को झिलमिल करता हुआ एक दिव्य आलोक गगन से अवतरित हुआ। यह तेजोमय महापुरुष ही बालक कबीर था।

यह कथा भावुक भक्तो को भले ही रुचिकर हो परन्तु प्रमाणापेक्षी तत्व-दर्शिओ के लिए ग्राह्य नही। प्रत्येक सम्प्रदाय अपने प्रवर्त्तक की दिव्यता दर्शाने का आयास करता है। ईसा को साक्षात् भगवत् प्रसूत बताया गया है। इस्लाम के प्रवर्त्तक को देवदूत कहा गया। वेदान्त के सस्थापक शकर को शंकरावतार घोषित किया गया। अत कबीर को भी कबीर पन्थियों ने दिव्याशता दे दी।'।

(क) इस लेख का उपयुक्त शीर्षक लिखिए।

(ख) काले टाइप वाले शब्दो के अर्थ लिखिए।

(ग) सरल हिन्दी मे सारांश लिखिए।

उत्तर—(क) महापुरुष कबीर का आविर्भाव।

(ख) जलदमाला=मेघमाला। नभो=आकाश। धवलिमा=श्वेत चाँदनी। समाच्छन्न=ढकी हुई, आच्छादित। तमिस्रा=अन्धकार। तडित्=बिजली। मराल=हस। कलरव=शोर। सरोज=कमल का फूल। अक-स्थित=गोदी मे स्थित। तति=पक्ति। आलोक=रोशनी। अवतरित=उत्पन्न हुआ, उतरा। प्रमाणपेक्षी=वे व्यक्ति जो प्रमाण होने पर ही किसी बात को सत्य मानते है। प्रवर्तक=चलाने वाला। आयास=कोशिश। प्रसूत=उत्पन्न। सस्थापक=स्थापित करने वाला।

(ग) ज्येष्ठ पूर्णिमा की रात्रि थी। आकाश मे काली-काली घटायें घिरी हुई थीं, तडित् चमक रही थी। चारो ओर गहन अन्धकार था। हस, चकोर और मयूर शोर मचा रहे थे। ऐसे समय मे काशी मे लहरतारा तालाब की लहरो को झिलमिल करते हुए तेजस्वी महापुरुष बालक कबीर रूपी दिव्य प्रकाश उत्पन्न हुआ। कबीर के जन्म की इस कथा को प्रमाणपेक्षी तत्वदर्शी सत्य नही मानते। यह तो केवल भावुक भक्तो के लिए ही ठीक है। अन्य सम्प्रदायो की भाति ही कबीर पथियो ने अपने प्रवर्तक को दिव्यांश ही माना है।

उदाहरण (७)

(प्रभाकर, जून १६५८)

"सर्वतन्त्र स्वतन्त्र, निगमागम-निष्णात श्री वेदव्यास की यह उदात्त कृति महाभारत है। वे विद्या-महोदधि के पारग थे। अत. सस्कृत वाङ्मय पर उनका असाधारण आधिपत्य था। प्रतिपाद्य विषय के अनुसार उनकी पदावली परिवर्तनशील थी। इस बृहत्काय ग्रथ रत्न मे ऐतिहासिक विपुल सामग्री विद्यमान है। अस्त्र विद्या, सृष्टि विकास और उदभिज्जशास्त्र का प्रतिपादन है। वर्णाश्रम व्यवस्था का प्रशस्त प्रवचन है। भारतीय राजनीति एव दण्ड-विधान का मार्मिक विश्लेषण है। आर्य जीवन का ज्वलन्त चित्रण, पुनीत गगाजल से परिप्लावित ऋषि-आश्रमो का स्वान्त स्पर्शी वर्णन है। सबसे बढ कर इसमे वृष्णि पुंगव, भारत हृदय-सम्राट्, अतुल पराक्रमी भगवान् वासुदेव की विश्वमोहिनी कर्मठता का सजीव वर्णन है। विश्व साहित्य मे यह ग्रन्थ अनुपम है।"

(क) लेख का शीर्षक क्या हो सकता है ?

(ख) इस सदर्भ के काले टाइप के शब्दो का अर्थ लिखो।

(ग) सरल हिन्दी मे लेख का सार लिखिए।

उत्तर :—(क) महाभारत

(ख) सर्वतन्त्र स्वतन्त्र=सब शास्त्रो का पूर्ण जानकार। निगमागम-निष्णात=वेदो तथा शास्त्रो का पूर्ण ज्ञानी। उदात्त=महान्। महोदधि= महासागर। वाङ्मय =साहित्य। प्रतिपाद्य =लिखा गया विषय। बृहत्काय= विशाल आकार वाला। विपुल=बहुत अधिक। उद्भिज्जशास्त्र=वह शास्त्र जिसमे भूगर्भ से उत्पन्न होने वाले चराचर का वर्णन हो। प्रवचन=उपदेश। दण्डविधान=न्याय का विधान। विश्लेषण=अग-प्रत्यग रूप मे वर्णन करना। चित्रण =अंकित करना। परिप्लावित=सिक्त। स्वान्त· स्पर्शी=मार्मिक। वृष्णि-पुगव=वृष्णि जाति मे श्रेष्ठ अर्थात श्री कृष्ण। कर्मठता= कर्मशीलता।

(ग) समस्त वेदो तथा शास्त्रो के पूर्णज्ञाता श्री वेदव्यास ने महान् ग्रंथ महाभारत की रचना की। इसमे उन्होने विषयानुसार भाषा का प्रयोग किया है। इस विशाल ग्रन्थ मे वर्णाश्रम व्यवस्था, अस्त्र विद्या, सृष्टि विकास और उद्भिज्जशास्त्र का प्रतिपादन है। इसमे भारतीय दण्डविधान तथा राजनीति का प्रतिपादन है। इसमे ऋषि आश्रमो का तथा योगेश्वर महापुरुष श्री कृष्ण की कर्मठता का सजीव वर्णन है।

उदाहरण (८)

(प्रभाकर, नवम्बर १९५८)

"अज्ञान की गाढ तमिस्रा ने जब भुवन-दीपक भारत को समाच्छन्न कर दिया था, अन्त पुर की प्रखर शालीनता को जब द्यूत का पण समझा जाने लगा, नयन-विहीन की धृतराष्ट्र की जुगुप्सित अनैतिकता का गगन-भेदी भैरव भेरी घोष जब अजात शत्रु की कोमल ध्वनि को अभिभूत कर चुका था, कुटिल कंस की क्लेशमयी कलुषता ने जब शस्य श्यामला भारत वसुन्धरा को मरुभूमि मे परिवर्तित कर दिया था, आर्य-धर्म जब आर्यावर्त्त से विस्थापित हो चुका था, निरीह, अकिंचन मानवता जब "त्राहि-त्राहि" के अवसादमय करुण क्रन्दन मे आत्म-विमूढ थी, और जब अखण्डव्रती भीष्म भी अनाचार की विध्वंसमयी भीषण ज्वालाओ की दारुण वेदनाओ की लपेट में पडे अर्धदग्ध हो चुके थे, उस समय करुणा वरुणालय, अशरण-शरण, वीर-पुंगव महायोगेश्वर उदात्त-कीर्ति श्री कृष्ण का धराधाम पर पुण्य सलिला भागीरथी के समान अवतरण हुआ।"

(क) उपयुक्त शीर्षक भी लिखिये।
(ख) काले टाईप मे लिखे शब्दो का अर्थ लिखिए।
(ग) इस गद्य का सरल हिन्दी मे सार लिखिए।

उत्तर—(क) महायोगेश्वर श्री कृष्ण का आविर्भाव।

(ख) तमिस्रा=रात्रि। समाच्छन्न=ढका हुआ। प्रखर=तीक्ष्ण। शालीनता=शिष्टता। द्यूत=जुआ। पण=जुए मे दाव पर लगाया हुआ धन। जुगुप्सित=बुरी, घृणित। भेरी-घोष=नगाडे की ध्वनि। अभिभूत=दबाना, पराजित करना। कलुषता=मलीनता, दोष। विस्थापित=जो भली भांति स्थापित न हो। अकिंचन=निर्धन। अवसादमय=दुखमय। विमूढ=मूर्ख। अर्धदग्ध=आधा जला हुआ। वरुणालय=(वरुण+आलय) सागर। अशरण-शरण=निस्सहायो तथा अनाथो को शरण देने वाला। वीर-पुंगव=वीर-शिरोमणी। उदात्त-कीर्ति=महान यशस्वी।

(घ) जिस समय अज्ञान की गहन रात्रि भारतवर्ष पर छा गई थी और राजमहलो मे रहने वाली द्रौपदी को भी जुए पर लगाई जाने वाली सम्पत्ति समझा जाने लगा था, नेत्रविहीन धृतराष्ट्र तथा दुष्ट कंस की दुष्टता ने शस्य-श्यामला भारत भूमि को उजाड डाला था और आर्य धर्म अन्तिम सांसें ले रहा था, उस समय दया के सागर, अनाथो को शरण देने वाले तथा वीर-शिरोमणि महायोगेश्वर श्री कृष्ण का आविर्भाव हुआ।

सांस्कृति-इतिहास

प्रश्न १—सिद्ध कीजिए 'भारतवर्ष की भौगोलिक स्थिति भारतीय संस्कृति के निर्माण की मूलभित्ति है।'

उत्तर—भारतवर्ष की भौगोलिक स्थिति इतनी सुन्दर तथा आकर्षक है कि विदेशी सदा ही इसकी ओर आकर्षित होते रहे है। काश्मीर की घाटी 'भारत का स्वर्ग" या "एशिया का स्विटजरलैंड" कहा जाता है। दक्षिण कोकण तथा केरल यहाँ के सुन्दर उद्यान कहे जाते है। यहाँ की प्रकृति उपवन, नदियाँ, रेगिस्तान, झील, आदि) दर्शको के मन को हरते रहे हैं। इस प्राकृतिक सौंदर्य तथा आकर्षक के अतिरिक्त भारत की भूमि इतिहास के रहस्यो से रगी हुई है। यहाँ के तपोवन तथा आश्रमो मे से सस्कृति तथा सभ्यता का विकास होता है। औद्योगिक दृष्टि से भी भारत का महत्त्व कम नही है। यहाँ से गर्म मसाले, नारियल और अनन्नास योरोप को जाते रहे है।

(१) मानचित्र—भारतवर्ष के उत्तर मे लगभग २००० मील लम्बी हिमालय की शृंखलाएँ फैली हुई है। इसके उत्तर-पश्चिम मे हिन्दुकुश पर्वत-माला है। पूर्व, दक्षिण और पश्चिम मे महासागर है। परन्तु सन् १९४७ के विभाजन के पश्चात्पश्चिमी पजाव पाकिस्तान मे चला गया है। इस कारण अब भारत की पश्चिमी सीमा पर पाकिस्तान स्थित है।

(२) सीमान्त के पर्वत प्रदेश—उत्तर मे स्थित हिमालय पर्वत के प्रदेशो मे ऋषियो और तपस्वियो ने दर्शन, उपनिषद, धर्म, ज्ञान और विज्ञान का विकास किया था। इस विस्तृत पर्वतमाला मे अनेक सुन्दर प्रदेश है। काश्मीर भारतीय सस्कृति का केन्द्र रहा है। यहाँ पर मार्तण्ड-मन्दिर और अमरनाथ का मन्दिर प्राचीन सस्कृति के स्तम्भ माने जाते है। वर्तमान जम्मू प्रान्त प्राचीन काल मे दार्वदेश कहलाता था और कागडा को त्रिगर्त देश कहते थे। कुल्लू को कुलूत कहते थे और शिमला का निकटवर्ती प्रदेश 'किन्नर'

कहलाता था। इसके पूर्व मे गढदेश और कूर्माचल (कुमायूँ) स्थित है। इनके पूर्व में नैपाल, सिक्कम, भूटान और उत्तर आसाम है। आसाम भारत का पूर्वी द्वार कहलाता है। आसाम की सीमा वर्मा तथा तिव्वत से मिलती है। हिमालय के पश्चिमी सीमान्त पर स्वात, पजकोर, कुनार, कावुल नदियो से सिंचित प्रदेश गाधार है। हिन्दूकुश पर्वत के साथ वाला प्रदेश 'कपिश' कहलाता था। इसके उत्तर मे वाल्हीक तथा कम्बोज देश स्थित थे। चन्द्रगुप्त मौर्य तथा चन्द्रगुप्त (विक्रमादित्य) ने वक्षु (वर्तमान आमू) नदी के तट पर विजय प्राप्त की थी। हिन्दूकुश पर्वत मे खैबर, बोलन, गिलगित आदि प्रसिद्ध दर्रे है। इन्हे दर्रों के द्वारा प्राचीन काल में विदेशियो के भारतवर्ष पर आक्रमण होते रहे है। इन दर्रों के द्वारा भारतवर्ष का इतिहास, सस्कृति और सभ्यता वहुत अधिक प्रभावित होते रहे है। अव पाकिस्तान के बन जाने से भारतवर्ष का इन दर्रों से सीधा सम्वन्ध नही रहा है।

(३) उत्तर भारत का मैदान—यह मैदान हिमालय और विन्ध्यमेखला के मध्य फैला हुआ है। इसकी लम्बाई लगभग १६०० मील है। इस मैदान में सिन्धु, गगा, यमुना, ब्रह्मपुत्र आदि बडी नदिया है। इन नदियो से सींचे जाने के कारण यह भाग वहुत उपजाऊ है। इसी भाग मे भारतीय सस्कृति और सभ्यता का विशेष विकास हुआ है। सिन्ध प्रान्त भारतवर्ष का पिछला गुप्त द्वार है। कुरुक्षेत्र का बागर भारतवर्ष का महत्त्वपूर्ण नाका है। इस प्रदेश मे महाभारत से लेकर पानीपत के युद्ध तक अनेक बार रक्तपात हुआ है। सिन्ध के साथ मिला हुआ बिलोचिस्तान नाम का एक शुष्क तथा पथरीला प्रदेश है। सिन्ध तथा बिलोचिस्तान विभाजन के समय पाकिस्तान के अधिकार मे चले गये है। अब ये भारतवर्ष में सम्मिलित नही है।

(४) विन्ध्यमेखला—विध्याचल पर्वत उत्तरी तथा दक्षिणी भारत को पृथक करता है। इसके चार मुख्य भाग है—अरावली, महादेव, सतपुडा, तथा विंध्य। इसका उत्तरी भाग बनास, चम्बल, बेतवा, केन तथा सोन नदियो से सींचा जाता है। इसमें घने वन हैं और अनेक खनिज पदार्थ पाये जाते है। यहाँ पर गुजरात तथा आबू के प्राचीन मन्दिर हैं।

(५) दक्षिण भारत—दक्षिणी भारत की आकृति त्रिकोण के समान है।

इसके उत्तर में मलय तथा महेन्द्र पर्वत, पश्चिमी घाट में सह्य पर्वत-माला है। पूर्वी घाट तथा समुद्र के मध्य कलिंग, मध्य भाग आन्ध्र तथा दक्षिण का चोल मण्डल है। यह भाग बहुत ही सुन्दर तथा हरा-भरा है। मलय पर्वत मे चन्दन तथा कपूर के वन हैं। इन पर्वतो के कारण ही उत्तरी भारत के शासको को दक्षिण में बहुत कम सफलता प्राप्त हुई है।

(६) समुद्र—भारत तीन ओर समुद्र से घिरा हुआ है। विशाल समुद्रो के द्वारा ही प्राचीनकाल से भारतवर्ष के ईराक, मिश्र, रोम, यूनान आदि से व्यापारिक सम्बन्ध रहे है। इन समुद्रो के कारण ही यहाँ के आचार-विचार, धर्म और दर्शन पर बहुत प्रभाव पड़ा है। भारतीय समुद्र तट पर रहने वालो ने विदेशो मे अपने उपनिवेश बसाये तथा वहाँ पर भारतीय सभ्यता का प्रचार किया।

(७) प्रसिद्ध मार्ग—किसी भी देश के यातायात के मार्ग वहाँ की भौगोलिक स्थिति पर ही निर्भर करते है। इन्ही मार्गों से विदेशो से सास्कृतिक सम्बन्ध स्थापित होते हैं। आर्य लोग अपना व्यापार अधिकतर जलमार्गो से करते थे। प्राचीन काल मे सबसे बडा राजपथ तक्षशिला से लाहौर, दिल्ली, मथुरा, आगरा, बनारस, पटना आदि नगरो से होता हुआ बगाल के बदरगाहो तक जाता था। दूसरा राजमार्ग ईरान की खाडी से होता हुआ बसरा तक जाता था। एक स्थलमार्ग तुर्किस्तान होता हुआ योरोप जाता था। हिन्दूकुश के द्वारा भी विदेशो से भारतवर्ष के सास्कृतिक सबन्ध थे।

(८) भारत के निवासी—यहाँ पर आर्य, द्रविड, मुण्ड और किरात जातियाँ रहती थी। भारतीय सस्कृति तथा सभ्यता पर आर्य लोगो का विशेष प्रभाव पड़ा। आर्य जाति एशिया तथा योरोप मे फैली हुई थी। यही कारण है कि वहाँ की भाषा से भारतीय भाषा बहुत कुछ मिलती-जुलती है। द्राविड़ जाति की सभ्यता आर्य लोगो से बहुत कुछ मिलती-जुलती है। ये लोग बहुत परिश्रमी तथा बुद्धिमान थे। वर्तमान भारत मे ७६ प्रतिशत जनता आर्य-भाषा-भाषी तथा २१ प्रतिशत द्राविड भाषी हैं। शेष ३ प्रतिशत व्यक्ति अन्य भाषाएँ बोलते हैं। किरात तथा मुण्ड जातियो के मूल स्थान तिब्बत और बर्मा है।

(९) आंतरिक एकता—भारतवर्ष में अनेक प्रकार की बोलियाँ बोली

जाती है तथा अनेक मतमतांतर है। यहाँ पर वैष्णव, शैव, क्षण्य आदि अनेक सम्प्रदाय है। यहाँ पर विभिन्न वेशभूषा तथा विभिन्न रंग-रूप वाले व्यक्ति रहते हैं। परन्तु यह सब कुछ होते हुए भी, यहाँ पर आतरिक एकता है। यहाँ के सभी निवासी भारतवर्ष को पुण्य स्थान तथा स्वर्ग सदृश मानते है। सभी यहाँ के तीर्थ-स्थानो को श्रद्धा की दृष्टि से देखते है। यहाँ पर महेन्द्र, मलय, सह्य, ऋक्ष, शक्तिमान, विन्ध्य तथा परियात्र, ये सातो पर्वत पवित्र माने जाते है। शकराचार्य तथा रामानुजाचार्य दोनो ही दक्षिण भारत मे उत्पन्न हुए थे परन्तु समस्त भारत मे उनका सम्मान होता है। शकर के चारो मठो को समस्त हिन्दू समाज श्रद्धा की दृष्टि से देखता है। विवेकानन्द बगाली थे, परन्तु समस्त भारत उनका आदर करता था। इस प्रकार भारतीय सस्कृति ने सभी को एकता के सूत्र मे बाध रखा है।

भारतवर्ष की एक विशेषता यहाँ की सास्कृतिक एकता है। यहाँ पर सभी विदेशी जातियाँ मूलनिवासियो मे मिलती चली गई। जायसी, रसखान, कबीर, रहीम की सूक्ति-सुधा का रसपान सब उसी प्रकार करते हैं जिस प्रकार कि सूर तथा मीरा के पदो का। गुरु नानक को सभी पूज्य मानते है।

चक्रवर्ती शासको ने भी समस्त देश को राजनैतिक एकता के सूत्र मे बाँधे रक्खा। धर्म-प्रचारको ने देश को धार्मिक एकता के सूत्र मे बाँधा। यहाँ के प्रसिद्ध विद्या-केन्द्रो (तक्षशिला, नालन्दा आदि) ने समस्त देश को ज्ञान के आलोक से प्रकाशित किया। शकर, चैतन्य महाप्रभु तथा अगस्त्य मुनि ने समस्त भारत को भक्ति तथा ज्ञान का पीयूष पिलाकर उसकी एकता की शृखला को दृढ किया।

उपरोक्त विवेचन के पश्चात् अब हम कह सकते है कि भारतवर्ष की भौगोलिक स्थिति भारतीय सस्कृति के निर्माण की मूलभित्ति है।

प्रश्न २—संस्कृति के स्वरूप पर प्रकाश डालते हुए संस्कृति और सभ्यता का अन्तर स्पष्ट करें।

उत्तर—शाब्दिक दृष्टि से सस्कृति का अभिप्राय है—सस्कार की गई या श्रेष्ठ सुधरी हुई अवस्था। दूसरे शब्दो मे हम यह कह सकते है कि किसी राष्ट्र के लोगो के मनोभावो की अवस्था, विचारो की पावनता, रहन-सहन की

शुद्धता और उत्तम व्यावहारकता ही किसी देश की संस्कृति है। संस्कृति का ध्येय महान् है। उसका ध्येय है, ज्ञान-विज्ञान का विस्तार, आध्यात्मिकता का उत्थान और मानव-धर्म की उन्नति।

मनुष्य प्रगतिशील बनना चाहता है। उसकी यह हार्दिक इच्छा रही है कि वह उन्नति के पथ पर अग्रसर हो। जिस स्थिति मे वह होता है उससे ऊपर की स्थिति मे आना चाहता है। मानव ने अपनी उन्नति पृथक्-पृथक् कालो में की। सर्वप्रथम उसने अपने जीवनोपयोगी साधनो की ओर अपना ध्यान आकृष्ट किया। वर्षा, धूप, शीत, बर्फ आदि से सुरक्षित होने के लिए वह पर्वतो की कन्दराओ में निवास करने लगा। शनैः-शनैः अपने निवास-स्थान का निर्माण कर डाला। वह हाथ पर हाथ रखे नही बैठा रहा। उसने कई वैज्ञानिक आविष्कारों को ढूंढ निकाला। कन्दमूलो को छोड विभिन्न प्रकार के भोजन का आविष्कार किया। आज तो मनुष्य ने प्रकृति पर भी विजय प्राप्त कर ली है। वह चन्द्रमण्डल पर घूमना चाहता है, यहाँ तक कि विज्ञान मृत्यु पर भी अधिकार करना चाहता है। आज के मानव ने भौतिक सुखो को प्राप्त कर लिया है। इस भौतिक प्रगति को ही सभ्यता का नाम दिया गया।

परन्तु भौतिक सुखो की प्राप्ति मे मानव-जीवन की पूर्णता नही होती। भौतिक सुखो से मनुष्य सुख अनुभव करता है किन्तु मानसिक और आत्मिक संतोष नही हुआ करता है। मनुष्य ने अपने शरीर के लिए सुखो के साधन खोजे, उसी भाँति आत्मा की उन्नति के कुछ उपाय ढूंढ निकाले। इन्ही उपायो को संस्कृति के नाम से पुकारा जाता है। संस्कृति मे धर्म, दर्शन, कला, सामाजिक तथा राजनीतिक परिस्थितियो का समावेश है।

अन्तर—प्रायः यह देखा जाता है कि संस्कृति और सभ्यता को पर्यायवाची कहा जाता है किन्तु ये दोनो शब्द पर्यायवाची नही है। तात्पर्य की दृष्टि से दोनो पृथक्-पृथक् है। मनुष्य जो भी भौतिक प्रगति करता है उसका सम्बन्ध 'सभ्यता' से है। एक समय था जब वह वन मे फिरता-घूमता था। एक जंगली पशु के समान वह भी जंगल मे विचरण करता था। धीरे-धीरे वह अपनी प्रगति करने लगा। उसने परिवार, समाज, नगर, राज्य आदि का निर्माण किया। आवागमन, परिवहन, उत्पादन और व्यापार और जीवन में

उपयोगी वस्तुओ का निर्माण किया। एक समय वह जंगली था, अब वैज्ञानिक है। आज विज्ञान का पीठ पर बैठकर मनुष्य ने इस ससार को दूसरा रूप दे दिया। आज का मनुष्य अच्छा लगता है। सुन्दर स्वच्छ चत्मकारयुक्त वस्त्र पहनता है। उसकी वार्तालाप की भाषा, ऊँचा रहन-सहन इस बात का द्योतक है कि आज का मनुष्य सभ्यता के झूले मे झूल रहा है।

ठीक इसके विपरीत सस्कृति का क्षेत्र भिन्न है। सस्कृति का सम्बन्ध मानव की मानसिक और आत्मिक उन्नति एव सस्कारो से है। यदि यह कह दिया जाय कि सभ्यता मनुष्य की शारीरिक क्षुधा को दूर करती है तो कोई अतिशयोक्ति नही। मनुष्य ने अपने सुखो के लिए जितनी सामग्री एकत्र की उसमे वह वृद्धि करना चाहता है, इसको उसकी मानसिक क्षुधा कहा जाता है। सौन्दर्य की जिज्ञासा मानव मन में आन्दोलित होने लगी, तो अपनी जिज्ञासा और भूख को मिटाने के लिए मानव ने साहित्य, सगीत, चित्र, मूर्ति आदि नानाविध कलाओ का प्रादुर्भाव किया।

सस्कृति की अवस्था बहुत लम्बी होती है। इसका आविर्भाव होने मे शताब्दियाँ व्यतीत हो जाती हैं, इसी भाँति ह्रास होने में, परन्तु सभ्यता समय-समय पर अपना रग परिवर्तित करती रहती है। आज के भारतवासी नर-नारी सभ्यता के पीछे बड़ी तीव्र गति से भाग रहे है। वह सभ्यता भी पाश्चात्य सभ्यता है, जिसमे आज के नर-नारी पाश्चात्य सभ्यता के अनुगामी बन गये हैं। किन्तु सस्कृति अभी भी जीवित है। उनके मुख पर कभी-न-कभी श्रीराम और कृष्ण का नाम आ ही जाता है, यह सस्कृति के दीर्घजीवी होने का प्रतीक है। ज्ञान की लालसा में रहकर मानव जब तथा जितनी उन्नति करता है, उसे सस्कृति कहा जाता है। इससे सभ्यता और सस्कृति का अन्तर स्पष्ट है।

प्रश्न ३—भारतीय सस्कृति के विकास की परम्परा को कितने भागों में विभाजित किया जा सकता है ?

उत्तर—(१) वैदिक युग—यह ईसा से ६००० वर्ष पूर्व से लेकर ४५०० वर्ष पूर्व पर्यन्त माना जाता है। इस काल मे भारतीय सस्कृति का विस्तार सर्वाधिक हुआ। वेदो, ब्राह्मणो, आरण्यको तथा उपनिषदो की रचना की गई।

वैदिककालीन साहित्य से ज्ञात होता है कि इस युग के लोग सभ्य और सुसस्कृत थे। भौतिक वस्तुओ की चिन्ता नही थी। पारलौकिक चिन्तन को इस युग मे प्रधान विषय बनाया। तात्कालिक सामाजिक, राजनैतिक और धार्मिक एव व्यापारिक अवस्था समुन्नत थी। पश्चात् वेदो की विविध शाखाएँ निकल पडी। इस काल के उपलब्ध साहित्य के अनुसार इस युग की भारतीय सस्कृति का पूर्ण विकसित युग कहा जाता है।

(२) **रामायण और महाभारत काल**—इस काल का भारतीय सस्कृति मे विशेष महत्व है। इसका प्रारम्भ ईसा से १००० वर्ष पूर्व गिना जाता है। रामायण और महाभारत, इन दोनो ग्रथो ने भारत के सामाजिक एव धार्मिक जीवन को स्थिर एव आदर्शमय बना कर भारतीय सस्कृति के विकास तथा निर्माण मे प्रमुख काम किया है। महाभारत के भयङ्कर युद्ध से भारतीय सस्कृति को गहरा धक्का लगा। वर्ण-व्यवस्था का ह्रास होने लगा। कर्मकाण्ड मे जटिलता आने लगी। जाति-पाति का भेद होने लगा। याज्ञिक विधान विकृत हो गये। इस युग को हम वैदिक युग की श्रेणी मे नही रख सकते। इस युग में भारतीय सस्कृति व्यवस्थित न थी।

(३) **जैन और बौद्धकाल**—इस काल का आरम्भ ईसा से ६०० वर्ष पूर्व माना जाता हैं। वैदिक कर्मकाण्ड यज्ञो में पशुवलि के फलस्वरूप जैन और बौद्धधर्म का प्रादुर्भाव हुआ। इस काल मे सस्कृतियो मे परस्पर सघर्ष होते रहे। अत यह काल हमारी सस्कृति का सघर्ष काल कहलाता है। इन दोनो धर्मो ने यथाशक्ति हिन्दू धर्म में प्रचलित कुरीतियो और आडम्बरो का विरोध किया। वैदिक सस्कृति का नवीन सस्करण ब्राह्मण सस्कृति के रूप में हुआ। जैन और बौद्ध सम्प्रदाय के साहित्य, दर्शन आदि ने पर्याप्त सहायता भारतीय साहित्य और कला के विकास में की। इस धर्म ने अशोक के काल मे विशेष उन्नति की जिससे वैदिक सस्कृति की प्रगति मे बाधा उपस्थित हो गई।

(४) **पौराणिक काल**—प्रथम शताब्दी से १० वी शताब्दी तक के काल को पौराणिक काल कहते है।

१८ पुराणो के इस काल मे वैदिक सस्कृति का पुनरुत्थान हुआ। जैन और बौद्ध धर्म का प्रभाव क्षीण होने लगा और गुप्तवशीय सम्राटो के प्रयास से

वैदिक संस्कृति की पावन ध्वजा पुन फहराने लगी। साकार भगवान् की पूजा होने लगी। अवतारवाद की कल्पना की गई। सगुण भक्ति की धारा प्रवाहित हो गई। तीर्थों के माहात्म्य पर बल दिया जाने लगा। कला, साहित्य, राजनैतिक, सामाजिक और व्यापारिक दृष्टि से यह काल पूर्ण उन्नति के शिखर पर था। चहुँ ओर सुख और समृद्धि का राज्य था। अतएव इस काल को भारतीय मस्कृति का स्वर्णकाल कहा जाता है।

(५) राजपूत काल—इस काल मे हमारे देश की अवस्था क्षीण हो गयी। देश छोटे-छोटे भागो या राज्यो मे विभाजित हो गया। राजा लोग परस्पर लडने लगे। पूर्णरूपेण बौद्ध धर्म का पतन हो गया था। राजनैतिक, धार्मिक, सामाजिक, कलात्मक और साहित्यिक दृष्टि से देश की अवनति होने लगी। भारत निर्बल हो गया। ऐसे समय में विदेशी आक्रमण करने लगें। भारतीय राजाओ की आन्तरिक तथा पारस्परिक फूट से लाभ उठा कर बाह्य आक्रमणकारी यहाँ राज्य स्थापित करने मे सफल हो गए।

(६) मुस्लिम काल—राजपूतो के गृह-कलह के कारण विदेशियो को भारत पर आक्रण करने का सुअवसर प्राप्त हुआ। ईसा की आठवी शताब्दी से ही मुसलमान भारत पर आक्रमण करने लग गए थे और ११ वी शताब्दी तक आक्रमण करते रहे। शनै-शनै देश को हस्तान्तरित करने मे उन्हे सफलता प्राप्त हुई। मुसलमानो का आधिपत्य भारत पर हो गया। परिणामस्वरूप उनका प्रभाव भारतीय जीवन पर पडा। इनसे पूर्व भी अनेक जातियाँ भारत मे आई थी किन्तु वे सब भारतीय सस्कृति और समाज मे विलीन हो गई। मुसलमान जाति धार्मिकता की दृष्टि से इतनी कट्टर सिद्ध हुई कि उसने हिन्दू धर्म अपनाने की बात दूर रही उसके रूप मे परिवर्तन ले आई। उनके साहित्य कला-कौशल और रहन-सहन का प्रभाव हमारी भारतीय सस्कृति पर पड़ा। अंग्रेजो के भारत मे आगमन के पश्चात् भी मुसलमानो ने अपनी कट्टर धर्मान्धता का त्याग न किया, जिसका दुष्परिणाम यह हुआ कि आज हमारा भारत दो भागो मे विभक्त हो गया।

(७) वर्तमान काल—मुसलमानो के शासन का अन्त होने के अनन्तर अंग्रेजों ने अपना पदार्पण भारत मे किया। १९ वी शताब्दी से भारतीय

संस्कृति के इतिहास में एक नवयुग का श्रीगणेश हुआ। ज्यो ही हम ईसाई संस्कृति के सम्पर्क में आए हमने इस सस्कृति को अपनाना प्रारम्भ कर दिया। अग्रेजो ने शिक्षा मे परिवर्तन किए जिससे हमारी विचारधारा मे परिवर्तन होना स्वाभाविक था। हमारी कला उनसे प्रभावित हुई। हमने उनकी सभ्यता को नमस्कार कर उसको ग्रहण किया। १८५७ से ही अग्रेजो के विरुद्ध विरोध की प्रज्वलित अग्नि भड़कने लगी और अन्त तक यह ज्वाला बुझी नही अपितु और अधिक प्रज्वलित हो गई। राजनैतिक चेतना ने स्वतन्त्रता की दुन्दुभि बजाई। अनेक आन्दोलनो और त्याग-तपस्या के पश्चात् स्वतत्रता देवी के दर्शन हुए। ब्राह्मसमाज, आर्यसमाज, रामकृष्ण मिशन आदि ने भारतीयता की जागृति उत्पन्न करने मे योग दिया। देश अपनी प्राचीन सस्कृति का पुजारी बनने लगा है। आज हमारा भारत स्वतत्र है। प्रत्येक भारतीयता का पुजारी अपनी चिर पुरातन भारतीय सस्कृति मे पूर्णरूप से आस्था रखता है। प्रत्येक भारतीय का कर्तव्य है कि वह अपनी प्राचीन सस्कृति को अपनाकर राष्ट्र को शक्तिशाली बनाकर सास्कृतिक दृष्टि से भी उन्नत करने में सहयोग दे तभी स्वतत्रता की रक्षा हो सकेगी। हमारी भारतीय सस्कृति की विजय पताका दिग्-दिगन्तरो मे बड़ी शान से फहराये और विश्व की पथ-प्रदर्शक बन जाये।

प्रश्न ४—भारतीय सस्कृति की मुख्य विशेषताओ को बताओ।

(प्रभाकर, जून, १९५३)

अथवा

"भारतीय संस्कृति की एक अद्भुत विशेषता है उसकी स्वीकरण शक्ति।" इस कथन में कहाँ तक सत्य है? विवेचन करो।

(प्रभाकर, जून, १९५३)

उत्तर—विश्व मे आदि काल से अब तक अनेको सस्कृतिया उन्नति की चरमसीमा पर पहुँचकर नष्ट हो चुकी है और अब उनके केवल कुछ चिन्ह ही मिल पाते है, परन्तु भारतीय सस्कृति प्राचीनतम होते हुए भी अभी तक जीवित है—

"यूनान मिश्र रोमां सब मिट गये जहाँ से,
कुछ बात है कि हस्ती मिटती नहीं हमारी।"

इससे स्पष्ट है कि हमारी सस्कृति में अवश्य ही कुछ विशेषतायें ऐसी है जो इसको नष्ट होने से बचाये हुए है। विश्व इस बात को जानता है कि यहाँ पर सदियो से विदेशी आक्रमणकारियो का ताँता लगा रहा है। अनेको विजयी होकर यही पर निवास कर गये। उन्होने अपनी नीति, प्रलोभनो तथा तलवार की शक्ति से हमारी सस्कृति को नष्ट करके अपनी सस्कृति का प्रचार करने का प्रयत्न किया। परन्तु अन्त में यही देखा गया कि उनकी अपनी सस्कृति ही हमारी सस्कृति में लीन हो गई। उन्होंने अपना निज अस्तित्व खोकर भारतीयता के रग में अपने को रग दिया। भारतीय सस्कृति की सर्वश्रेष्ठता और इसके अब तक जीवित रहने के निम्नलिखित कारण हैं जो इसकी विशेषतायें है—

(१) आध्यात्मिक भावना—भारतीय सस्कृति की अभिव्यक्ति का आधार आध्यात्मिक भावना रही है। आध्यात्मिकता ही हमारे जीवन की कसौटी है। भौतिकता में भारतीयो की रुचि कम है। अध्यात्मिकता में सत्य, अहिंसा, ब्रह्मचर्य, त्याग और ईश्वर-चिन्तन की प्रधानता होती है। भारतवर्ष में सभी साम्प्रदायो (बौद्ध, जैन, ब्राह्मसमाज, आर्यसमाज आदि) ने इनका समर्थन किया है। कभी भी इस भावना का यहाँ पर विरोध नही हुआ। यहाँ तक कि विदेशी आक्रमणकारियो ने भी यहाँ पर आबाद होने के पश्चात् इस भावना का समर्थन किया है। किन्तु हमें इसका अर्थ यह नही लगाना चाहिए कि भारतीय अर्थ और काम से विमुख रहे हैं। भारतवर्ष के राजाओ ने भी विदेशो में जाकर विजय प्राप्त की है।

(२) प्राचीनता—चीन की सस्कृति के अतिरिक्त विश्व में भारतीय सस्कृति सबसे अधिक प्राचीन है। मिश्र, रोम आदि देशो की सस्कृतियो का उत्थान-पतन इसने अपनी आँखो से देखा है।

(३) सर्वांगीणता—पाश्चात्य देशो में मानव के शारीरिक और मानसिक विकास की ओर ध्यान दिया गया है और उन्होंने इस जीवन को आनन्दमय, उन्नत और सुखपूर्ण बनाने का प्रयत्न किया है। उन्हें परलोक की तनिक भी चिन्ता नहीं है। उसकी ओर उनका ध्यान ही नही गया है। परन्तु भारतवर्ष में तो शारीरिक और मानसिक विकास के साथ-साथ आत्मिक विकास

पर भी समान बल दिया गया है। इस लोक के साथ-साथ परलोक की भी चिंता है। भारतीय संस्कृति में मनुष्य का उद्देश्य धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष चारो की प्राप्ति है। मानव जीवन को चार आश्रमो (ब्रह्मचर्य, गृहस्थ, वानप्रस्थ और संयास) मे विभाजित किया गया है। प्रथम दो आश्रमो में मनुष्य धर्म, अर्थ और काम की प्राप्ति मे लगा रहता है, परन्तु अन्तिम दो आश्रमो में उसका उद्देश्य मोक्ष प्राप्ति ही रहता है।

(४) उदारता—उदारता भारतीय सस्कृति की विशेषता है। भारतवर्ष के इतिहास को पढने से पता लगता है कि भारतीय कितने उदार रहे हैं। ऐसी उदारता का प्रमाण जैसी कि भारतीय सस्कृति मे है, अन्यत्र कही नहीं मिलता। हमने विदेशियों को अपने देश मे प्रविष्ट होने दिया। उनके साथ हमने कभी भी कोई दुर्व्यवहार नही किया जिससे उनका हृदय आहत हो। विदेशियो ने यहा आकर हमारे देवालयों को लूटा और उनको नष्ट किया, परन्तु हमने कभी मस्जिद अथवा चर्च पर हाथ नही उठाया। हमने सदा शरणागत को शरण दी। यही कारण है कि जो भी जाति यहाँ आई, वह भारतीयो मे दूध-पानी की तरह घुल-मिल गई।

(५) सहिष्णुता – भारतीय-सस्कृति की यह एक प्रमुख विशेषता है। योरप के इतिहास मे यह स्पष्ट हो जाता है कि धर्म के नाम पर कितना रक्तपात हुआ। इग्लैंड मे मेरी ट्यूडर ने तीन सौ व्यक्तियो को जीवित ही अग्नि मे जलवा दिया था। एक धर्म वालो ने दूसरे धर्म वालो को कभी स्वतन्त्रता नही दी, बल्कि सदैव उनको नष्ट करने का प्रयत्न किया। परन्तु भारत में ऐसा नही है। यहा सबको धर्म और पूजा-विधि की पूर्ण स्वतन्त्रता रही है। यहाँ सदैव एक धर्म को मानने वालो ने दूसरे धर्म वालो के साथ सम्बन्ध बनाये रखा। एक विशाल कुटुम्ब की भाँति परस्पर [illegible] बने रहे। सहिष्णुता की भावना के कारण ही यवन, शक, हूण, कुषाण आदि जातियाँ भारतीय समाज का अंग बन गईं।

(६) ग्रहणशीलता—सहिष्णुता ने ग्रहणशीलता को जन्म दिया। भारतवर्ष में जो भी विदेशी समय-समय पर आये, उनको और उनकी संस्कृति को भारतवर्ष और भारतीय संस्कृति ने अपने में मिला लिया। [illegible]

देखते हैं कि यवन, शक, यूनानी, हूण, कुषाण आदि जो जातियां यहाँ आई वे सब भारतीयता के रंग में रंग गई। विदेशी संस्कृति की समस्त विशेषताओ और अच्छी बातो को नि सकोच भारतीय संस्कृति ने ग्रहण किया। यूनान से ज्योतिष की अनेको विशेष बातें सीखी और ईरान की कला से भारतीय कलाकारों ने बहुत कुछ सीखा और आज इंगलैण्ड आदि योरोपीय देशो से हम बहुत कुछ सीख रहे है।

(७) वर्णाश्रम व्यवस्था—भारतीय संस्कृति की सातवी विशेषता है वर्णाश्रम व्यवस्था, वर्ण एव आश्रम व्यवस्था ऐहिक तथा पारलौकिक सुखार्थ प्रतिपादित की गई थी। आश्रम व्यवस्था ने व्यक्तिगत जीवन को सुरम्य ढाँचे में ढाल दिया है। हिन्दू का प्रारम्भिक जीवन ब्रह्मचर्य आश्रम होता है। सन्तानोत्पत्ति के लिए वह ग्रहस्थ आश्रम में प्रविष्ट होता है। ग्रहस्थाश्रम के पश्चात् वानप्रस्थाश्रम और इसके पश्चात् सन्यास आश्रम ग्रहण करता है। चारों आश्रम उत्तरोत्तर त्याग की स्थिति मे ले जाने वाले हैं। वर्ण व्यवस्था ने भारतीय संस्कृति में समाज को सुनियन्त्रित रखा है। समाज का कार्य सफलतापूर्वक चलाने के लिए मानव समाज को चार वर्णों में विभाजित किया गया है। जो यज्ञ करता है, विद्या दान करता है और उपदेश देता है, वह ब्राह्मण। जो कृषि तथा व्यापार करता है वह वैश्य है। जो देश की रक्षा करता है वह क्षत्रिय है और सेवा करने वाला व्यक्ति शूद्र कहलाता है।

(८) आशावाद —भारतवासी बड़ी से बड़ी विपत्ति में निराश नहीं होते है। उन्हें ईश्वर पर पूर्ण विश्वास है। अन्तिम समय तक उन्हे सफलता की आशा रहती है। आशावाद भारतीय संस्कृति का आधार स्तम्भ है।

(९) प्रगतिशीलता—यह भी भारतीय संस्कृति की मुख्य विशेषता है। भारतीयो में सदैव अपनी वर्तमान स्थिति से ऊँचा उठने की भावना विद्यमान रही है। उनका मंत्र है 'आगे बढो'। वे कभी भी किसी प्राकृतिक या मानवी बाधा के सम्मुख नतमस्तक होने को तैयार नही।

भारतीय संस्कृति सब के कल्याण की कामना करती है। सब सुखी हो, सब स्वस्थ रहें, सब एक दूसरे की भलाई करें, किसी को कोई दुख न हो।

यही कारण है कि भारतीय संस्कृति आदि काल से बडे-बड़े तूफानो से

टकराती हुई, बड़े-बड़े उथल-पुथलो से अपनी रक्षा करती हुई अभी तक जीवित रही है। वह अक्षुण्ण है और अक्षुण्ण रहेगी। जिस प्रकार अब तक वह विश्व को सत-सदेश देती रही है और मार्ग-प्रदर्शन करती रही है उसी प्रकार भविष्य में भी वह विश्व को सन्मार्ग पर चलाने मे सफल होगी।

प्रश्न ५—वैदिककालीन संस्कृति का संक्षिप्त परिचय दीजिए।

अथवा

वेदांग एवं उनके प्रतिपाद्य विषय का विवेचन कीजिए।

(प्रभाकर, जून, १६५५)

अथवा

संहिता-साहित्य और उसके प्रतिपाद्य विषय पर प्रकाश डालिए।

(प्रभाकर, जून, १६५६)

उत्तर—प्राचीनतम काल मे भारतीय सस्कृति ही 'वैदिक सस्कृति' कहलाती थी। उसका साहित्य 'वैदिक साहित्य' कहलाता था। इसमें प्रमुख स्थान वेदो का है। वेद शब्द का अर्थ ज्ञान सत्ता है अर्थात् जो ज्ञान सदा से वर्तमान है, जिसमे किसी प्रकार की विकृति नही, निर्भ्रान्त है, उसे ईश्वरीय ज्ञान अर्थात् वेद कहा जाता है। अर्वाचीन युग के इतिहासकार वेदो के आर्य पुरुषो के सिद्धान्तानुसार ईश्वरीय नही मानते, वे इन्हे लौकिक पुरुषो द्वारा रचित मानते है, परन्तु यह तो सब ही स्वीकार करते है कि वेद विश्व का प्राचीन ग्रन्थ है। प्राचीन काल में वेद-ऋचायें श्रवण-परम्परा द्वारा सुरक्षित रही, इसीलिए इन्हें (वेदो को) श्रुति भी कहा गया है। वेदों का सग्रह किसी एक ऋषि कुल से नही हुआ था। अनेकों ऋषि कुलों मे इन मन्त्रों का सग्रह हुआ था, इसीलिए ये सहिता कहलाये। वैदिक साहित्य को भी इन चार भागो मे विभक्त किया गया है—(१) सहिता, (२) ब्राह्मण, (३) आरण्यक, (४) उपनिषद्। वेदाग और सूत्र की गणना भी इसी मे होती है।

सहितायें चार है—(१) ऋग् सहिता, (२) यजुर्वेद (३) सामवेद, (४) अथर्ववेद।

ऋक् संहिता—ऋक् सहिता मे प्राय देवताओ की स्तुतियाँ है। ऋग्वेद की ग्यारह शाखायें बताई जाती है, परन्तु 'चरणव्यूह' मे शाकल, वाष्कल, आश्वलायन, शाखायन तथा माण्डूक्य इन पाच शाखाओ का ही सकेत पाया जाता है। आजकल शाकल शाखा ही उपलब्ध है, जो दस मडलो मे समन्वित है, इसमें १०२८ सूक्त तथा १०६०० मत्र है। सूक्त अपने उद्देश्य मे पूर्ण है। जिस मत्र मे जो विषय प्रधान है वही उसका देवता कहलाता है और उसका दर्शन अर्थात् ज्ञान करने वाला ऋषि होता है। मन्त्र पद्यात्मक है। लगभग साठ प्रकार के छन्दो का भी प्रयोग पाया जाता है।

ऋग्वेद मे तत्कालीन समाजिक, गोत्र, गोष्ठी, जनपद, आदि का वर्णन, जातीय व्यवस्था तथा जीवन के अनेको कला-पक्षो का वर्णन भी मिलता है।

यजुर्वेद—इस सहिता की १०१ शाखायें है, परन्तु अब वे सब उपलब्ध नही है। इस वेद के शुक्ल और कृष्ण दो भेद मिलते है। कृष्ण यजुर्वेद मे केवल मत्रो का सग्रह है और शुक्ल मे गद्यात्मक भाग भी है। कृष्ण यजुर्वेद की ये चार शाखायें है—तैत्तिरीय, काठक, मैत्रायणी और कापिष्ठला। शुक्ल यजुर्वेद की काण्ड और माध्यन्दिनी दो शाखायें है। यजुर्वेद मे ४० अध्याय और १९९० मन्त्र है। यजुष् शब्द का अर्थ 'यज्ञ करना' होता है। इसीलिए इस सहिता मे यज्ञ के मन्त्रो की ही प्रधानता है। इसमे धार्मिक, सामाजिक और राजनैतिक विषयो का भी पर्याप्त ज्ञान मिलता है।

सामवेद—साम का अर्थ है गीति। इस सहिता मे यज्ञ के अवसर पर गाये जाने वाले मन्त्रो का सग्रह है। सामवेद के दो भाग है—पूर्वाचिक तथा उत्तराचिक। दोनो भागो मे मन्त्रो की सख्या १८१० है। २६१ मन्त्र तो ऐसे है जो दोनो मे उपलब्ध हैं। इसलिए कुल मन्त्र-सख्या १५४९ है। इसके ७५ मंत्रो के अतिरिक्त शेष सभी मत्र ऋग्वेद के ८ वें तथा ९ वें मन्डलो के हैं। पूर्वाचिक के भी ये दो भाग है—(१) ग्रामगेयमान (२) आरण्यमान। इसी प्रकार उत्तराचिक के भी दो ही भाग है—(१) ऊहमान (२) उह्यमान। संगीत के सात स्वर है और इस सहिता मे एक से सात तक के अको द्वारा संकेत भी

किये गये है। जो अपने हाथ और अंगुलियो के सकेतो द्वारा विभिन्न स्वरो का वोध कराता है उसे 'उद्गाता' कहते है। इस वेद का प्रतिपाद्य विषय देवस्तुति है, परन्तु इसमे तत्कालीन सामाजिक आमोद-प्रमोद का भी अच्छा परिचय प्राप्त होता है।

अथर्ववेद—इस वेद के द्रष्टा अथर्वन् ऋषि थे, इसी कारण इसका नाम उनके नाम पर अथर्ववेद पढा। इसकी ९ शाखाये हैं, परन्तु उपलब्ध केवल दो ही है। यह २० काण्डो ४८ प्रपाठको और १११ अनुवादको मे विभाजित है, इसमे मन्त्रो की सख्या ५, ८३९ है। वीसवे काण्ड के लगभग सभी मन्त्र ऋग्वेद से लिए हुए है। इसमें भिन्न-भिन्न प्रकार की चिकित्साओ के विषय में लिखा हुआ है। सर्प, बिच्छू आदि के विष को नष्ट करने वाले मन्त्र, भी इसमे दिए हुए हैं। इसमे सासारिक सिद्धियो का भी विशेष वर्णन है। सामाजिक, राजनैतिक, शिल्प, चित्र, कला एव रहस्यवाद सम्बन्धी विषयो का भी इसमे उल्लेख है। काव्य कला की दृष्टि से भी इसमे पर्याप्त सरसता है, परन्तु ऋग्वेद के समान सरसता इसमे नही है।

ब्राह्मण ग्रन्थ—वेदो के पश्चात् वैदिक साहित्य मे ब्राह्मण ग्रन्थो का स्थान है। ये ग्रन्थ एक प्रकार से चारो वेदो के विशद भाष्य है। इन ग्रन्थो मे यज्ञ सम्बन्धी कर्मकाण्ड का विशद वर्णन है। प्रत्येक वेद के कई-कई ब्राह्मण ग्रन्थ है। ऋग्वेद के ऐतरेय और कौपीतकी। यजुर्वेद के शतपथ और तैत्तिरीय सामवेद के अनेक ब्राह्मणो में तांड्य सवसे प्रसिद्ध ग्रन्थ है। अथर्ववेद का ग्रन्थ गोपथ है। गोपथ मे विधि और अथर्ववेद पर वहुत वल दिया गया है। विधि मे यज्ञ-सम्बन्धी नियम है और—अर्थवाद में यज्ञ की विधियो की पुष्टि के लिए व्याख्या दी गई है। इतिहास, आख्यान और पुराण अर्थवाद के महत्वपूर्ण अग है।

आरण्यक—ब्राह्मण ग्रन्थो मे कुछ ऐसे अध्याय जुड़े है जिनकी रचना जगलो में हुई। उनको जगलो मे ही पढा जाता था। इन्ही को आरण्यक कहते है। इनमे यज्ञों के रहस्यो और दार्शनिक तत्वो का विवेचन किया गया है। गृहस्थ जीवन व्यतीत करने वाले व्यक्तियो के लिए ब्राह्मण ग्रन्थो और जंगलों

मे निवास करने वाले ऋषि-मुनियो के लिए आरण्यक ग्रन्थो को पढने की आवश्यकता समझी जाती थी।

उपनिषद्—आरण्यको में ब्रह्म, विश्व और मानव सम्बन्धी चिन्तन है जिन्हे 'उपनिषद्' कहते है। वे ग्रन्थ जिनमे ब्रह्म के पास पहुँचने के साधनों का वर्णन है, उपनिषद् कहलाते हैं। उपनिषद् और आरण्यक वैदिक साहित्य के अन्तिम भाग होने के कारण वेदान्त भी कहलाते हैं। कहा जाता है कि उपनिषदो की सख्या २०० थी। मुक्तिकोपनिषद मे १०२ उपनिषदो का उल्लेख है, परन्तु वर्तमान काल मे केवल ११ उपनिषद् ही प्रसिद्ध है। उपनिषदो से ही दर्शनो का विकास हुआ। इनमें ज्ञान की चर्चा है और तद्विषयक आख्यान है।

सूत्र—वैदिक-साहित्य की रक्षार्थ सूत्र-साहित्य का निर्माण हुआ। वे छोटे-छोटे वाक्य जिनमे कम-से-कम शब्दो के द्वारा अधिक से अधिक अर्थ बताया जाता है, सूत्र कहलाते है। इनकी सख्या चार है—गृह्यसूत्र, धर्म सूत्र, शूल्व सूत्र और श्रौतसूत्र। इन सूत्रो मे प्राचीन भारत के सामाजिक जीवन और उसके नियमो का अत्यन्त सुन्दर वर्णन किया गया है।

वेदांग—वैदिक-साहित्य प्राचीनतम साहित्य है। यह उत्तरोत्तर बहुत ही जटिल एव दुर्बोध होता गया। इसकी जटिलता को सुगम करने के लिए वेदागो का निर्माण किया गया। इनकी सख्या छ है—

१ शिक्षा—शिक्षा के अन्तर्गत वे ग्रन्थ है जिनकी सहायता से वेदो के उच्चारण का भली-भाँति ज्ञान हो जावे।

२ छन्द—इन ग्रन्थो मे वैदिक छन्दो का विवेचन है। वेद-ज्ञान प्राप्त करने के लिए छन्दो का ज्ञान बहुत ही उपयोगी है। अनेक छन्द-ग्रन्थ बने परन्तु उनमे पिगल सबसे प्रसिद्ध है।

३ निरुक्त—इसमे शब्दो की व्युत्पत्ति दिखाई जाती है। निरुक्त पर आजकल केवल एक ही ग्रन्थ उपलब्ध है। इसके रचयिता महर्षि यास्क थे। वैदिक साहित्य के कठिन शब्दो के कोष निघण्टु कहलाते थे और निरुक्त में उनकी व्याख्या की जाती थी।

४ व्याकरण—अर्थ की सुगमता के लिये व्याकरण की रचना हुई। व्याकरण पर पाणिनि का अष्टाध्यायी सर्वश्रेष्ठ ग्रन्थ है।

५ ज्योतिष—काल का ज्ञान करने के लिए ज्योतिष ग्रन्थो की रचना हुई। वैदिक काल के कई ज्योतिष ग्रन्थ आज भी उपलब्ध है। इसका प्राचीनतम ग्रन्थ लगधमुनि कृत वेदाग ज्योतिष है।

६ कल्प—गृह, श्रोत एव धर्मसूत्रो का नाम ही कल्प है। इन ग्रन्थो में यज्ञ सम्बन्धी नियमो का वर्णन हुआ है।

इन छ वेदागो के अतिरिक्त चार उपवेद भी है—

(१) आयुर्वेद, (२) धनुर्वेद, (३) शिल्पवेद, (४) गान्धर्ववेद।

राजनीतिक स्थिति—वैदिक काल मे आर्य लोग अनेक छोटे-छोटे समूह में विभाजित थे। इनको जन कहते थे। जन के सभी सदस्य विश कहलाते थे। एक जन के सब मनुष्य सजाति अथवा एक ही वश के होते थे। जन-समूह को ग्राम कहते थे। ग्राम का नेता 'ग्रामीण' कहलाता था। कई ग्रामो को मिलाकर जनपद अथवा राष्ट्र बनता था। प्रत्येक राष्ट्र का नेता राष्ट्रपति कहलाता था। राजा प्रजा के द्वारा निर्वाचित होता था। वश के आधार पर भी 'राजा' का पद दिया जाता था। राज्य-अभिषेक के समय राजा को प्रजा के हित की रक्षा करने की शपथ लेनी पडती थी। राजा की सहायता के लिए समिति और सभा नाम की दो सस्थाये होती थी। ये राज्यकार्य के लिए पूर्ण उत्तरदायी होती थी। निरकुश और स्वेच्छाचारी राजा को गद्दी से उतार भी दिया जाता था। न्याय का पूर्ण ध्यान रखा जाता था। राज्य के उच्च अधिकारी पुरोहित, सेनापति और ग्रामणी होते थे।

इस समय राजा समेत १२ रत्नी या राज्य अधिकारी होते थे—(१) सेनानी, (२) पुरोहित, (३) राजा, (४) महिषी, (पटरानी), (५) सूत (राज्य का वृत्तान्त रखने वाला), (६) ग्रामणी (गाँव का, राजधानी का या राज्य के गाँवो का नेता), (७) क्षता (राजकीय कुटुम्ब का निरीक्षक), (८) सग्रहीता (कोषाध्यक्ष), (९) भागदुघ (कर एकत्र करने वाला मुख्य अधिकारी), (१०) अक्षवाप (हिसाब रखने वाला मुख्य अधिकारी), (११) गोविकर्ता (जगलात का निरीक्षक), (१२) पालागल (सदेशहर)। सौ गाँवो का अफसर

'पति' तथा सीमान्त का शासक 'स्थपति' कहलाता था। पुलिस के अधिकारियों को इस समय उग्र या जीवग्रम कहते थे। राजा का कार्य पूर्ववत् विदेशी शत्रुओ से रक्षा करना, शासन और न्याय का प्रबन्ध करना था। न्याय कार्य 'अध्यक्ष' तथा पूर्व वैदिक काल की सभायें करती थी। गाँवो के छोटे मामलो का निर्णय गाँव की सभा और 'ग्राम्यवादी' (गाँव का गन्ज) करता था।

सामाजिक जीवन—वैदिक काल मे मनुष्यो का जीवन बहुत ही सरल तथा उच्च था। स्त्रियो को पुरुषो के समान अधिकार प्राप्त किए थे। वे सार्वजनिक कार्यो में भाग लेती थी। स्त्रियाँ शिक्षा भी प्राप्त करती थी। उस काल में गार्गी, मैत्रेयी जैसी विदुषी देवियाँ हुई थी। स्त्रियो को अपना पति चुनने का अधिकार था। राजवशो मे स्वयवर होते थे। विवाह युवावस्था मे होता था। विधवा-विवाह भी प्रचलित था। बाल-विवाह की प्रथा उस काल में नही थी। इस प्रकार स्त्रियाँ पूर्ण स्वतत्र थी। सब मनुष्य आर्य और दास दो भागो में विभक्त थे। आर्यो मे भी कर्मकाण्ड के आधार पर ब्राह्मण, वैश्य और क्षत्रिय तीन वर्ण थे, परन्तु ये केवल कर्म करने के लिये थे। वैसे इनमें कोई भेदभाव नही था और यह विभाजन आजकल की भांति जन्म के आधार पर भी नही था। मनुष्य का समस्त जीवन चार आश्रमो (ब्रह्मचर्य, गृहस्थ, वानप्रस्थ, सन्यास) मे विभाजित था, उसी के अनुसार सब आचरण करते थे।

धार्मिक दशा—धार्मिक दृष्टि से वैदिककाल बहुत उन्नत था। सामाजिक, राजनीतिक एव आर्थिक जीवन के प्रत्येक क्षेत्र में धर्म की प्रधानता थी। एक ही ईश्वर की कल्पना की जाती थी। परन्तु साथ ही इन्द्र, सूर्य, वरुण, अग्नि आदि अनेको देवी-देवताओ में आर्यो की आस्था थी और वे उनकी उपासना भी करते थे। इन समय उपासना, कर्मकाण्ड और ज्ञान तीन प्रवृत्तियो मे धार्मिक भावना प्रचलित थी। उत्तर-वैदिककाल मे यज्ञो की बहुत अधिक प्रधानता हो गई। इस समय अश्वमेध, वाजपेय, राजसूय आदि बड़े-बड़े यज्ञ किये जाते थे। धीरे-धीरे यज्ञों में पशुबलि दी जाने लगी, परन्तु शीघ्र ही इसका विरोध भी होने लगा। स्वर्ग की कल्पना भी इसी काल मे हुई। इस काल मे मूर्तिपूजा नही होती थी। धार्मिक दृष्टि से आर्यों की ये प्रार्थनायें थीं—हम अपने कानो से केवल कल्याण की बात सुन सकें। हम अपनी आँखो से केवल कल्याण की

बाते ही देखें। हमारा समस्त जीवन देवो के हित मे ही व्यतीत हो।

आर्थिक-दशा—वैदिक काल मे आर्यो का आर्थिक जीवन कृषि और पशु-पालन पर ही निर्भर था। आर्य गायो को अधिक महत्त्व देते थे। कृषक जिस भूमि को जोतता था, वह स्वयं ही उसका स्वामी होता था। भूमि का क्रय-विक्रय बहुत ही कम होता था जो भूमि युद्ध मे जीती जाती थी उसे उनमे विभाजित कर दिया जाता था। कृषि के अतिरिक्त कई प्रकार के शिल्पी भी थे। सुनार, लुहार, जुलाहा, बढई, रथकार आदि शिल्पियो को इस काल के साहित्य मे उल्लेख मिलता है। कपडे और चमडे को रगने की कला का भी विकास हो चुका था। जल और थल दोनो मार्गो से व्यापार होता था। स्थल मे व्यापार पशुओ और गाड़ियो के द्वारा होता था और समुद्र और नदियो में नावो के द्वारा। वस्तुओ के परस्पर विनिमय के लिए उस समय निष्क नाम का सोने का सिक्का भी प्रचलित था।

प्रश्न ६—वैदिक विवाहों का वर्णन और विवेचन करें। तथा इसका भी उल्लेख करें कि वैदिक समय में स्त्रियों की स्थिति कैसी थी ?

(प्रभाकर, नवम्बर १६५८)

उत्तर—प्रश्न (४) के उत्तर मे दिए गए 'सामाजिक जीवन' को पढिये।

प्रश्न ७—वैदिक शासन-पद्धति का वर्णन करें।

उत्तर—प्रश्न (४) के उत्तर मे दी गई 'राजनीतिक स्थिति' को पढिए।

प्रश्न ८—वैदिक काल में धार्मिक स्थिति का वर्णन करें।

उत्तर—प्रश्न (४) के उत्तर मे दी गई 'धार्मिक स्थिति' का अध्ययन करे।

प्रश्न ६—रामायण और महाभारत का परिचय देकर इस काल की सामाजिक, राजनैतिक व धार्मिक अवस्था को स्पष्ट करें।

(प्रभाकर, जून १६५६)

अथवा

रामायण और महाभारत का रचना काल बताते हुए भारतीय साहित्य में उनका स्थान निर्धारित कर तत्कालीन संस्कृति का संक्षिप्त परिचय दीजिये।

(प्रभाकर, नवम्बर १६५४, जून १६५५

उत्तर—रामायण—इस ग्रन्थ के रचना-काल के विषय में विद्वानो के अनेको मत है। कई इसका रचना काल केवल ६०० ईसवी पूर्व मानते है और कई विद्वान् सहस्रो वर्ष ईसवी पूर्व की रचना मानते है। इसके रचियता संस्कृत के आदि कवि महर्षि वाल्मीकि थे। इसमें इक्ष्वाकुवंश के राजा रामचन्द्र की कथा है। इसमे चित्रित राम का चरित्र एक बहुत ही महान् चरित्र है। रामायण का प्रत्येक चरित्र ही आदर्श है। इसमें आर्यो की अनार्यों पर विजय का उद्‌घोष है। यद्यपि इसकी कथा बहुत प्राचीन है, परन्तु यह सदा नव आनन्द प्रदान करती है। भारतीय दर्शन और संस्कृति का यह प्रामाणिक ग्रन्थ है।

महाभारत—इस ग्रन्थ के रचना काल के विषय मे भी विद्वानो के भिन्न-भिन्न मत हैं। परन्तु अधिकतर विद्वान् इसका रचना काल ३०० ईसवी पूर्व मानते है। यह एक बहुत ही विशाल ग्रन्थ है। इसके प्रणेता वेदव्यास जी थे। इसमें कौरवों-पाण्डवो के महायुद्ध का वर्णन है। ऐतिहासिक गाथाओ का संकलन इस ग्रन्थ मे बहुत ही सुन्दर रूप मे हुआ है। आज महाभारत का जो ग्रन्थ उपलब्ध है, उसमे श्लोको की संख्या एक लाख से भी अधिक है, जब कि मूल ग्रन्थ मे इसकी अपेक्षा कम श्लोक थे। इसमे प्रसंगवश भारत की प्राचीन अनुश्रुति, राजधर्म, मोक्ष शास्त्र का भी विशद रूप मे समावेश है। श्रीमद्-भगवदगीता महाभारत का ही एक अंग है। गीता तत्व ज्ञान की दृष्टि से संसार की सब से उच्च और अद्‌भुत पुस्तक है।

सामाजिक व्यवस्था—रामायण और महाभारत का अध्ययन करने से इस काल की सामाजिक अवस्था का पूर्ण ज्ञान हो जाता है। उस समय वर्णाश्रम व्यवस्था प्रचलित थी। यद्यपि किसी भी व्यक्ति की जाति उसके कर्म के आधार पर ही होती थी, जन्म के आधार पर नही परन्तु उसमें संकीर्णता आ गई थी। अन्तर्जातीय विवाह प्रचलित थे। स्त्रियो की दशा वैदिककालीन स्त्रियो की अपेक्षा हीन थी। राजा दशरथ की तीन रानियाँ थी और द्रोपदी के पाँच पति थे, इससे यह स्पष्ट है कि एक पुरुष कई स्त्रियाँ और एक नारी कई पति रख सकती थी। स्वयंवर की प्रथा थी। सती प्रथा का प्रचलन भी इसी काल मे हुआ था। युधिष्ठिर जैसे धर्मावतार भी जुआ खेलते थे और जुए मे स्त्री तक को दाव पर लगाते थे। स्त्रियो का चीर हरण कर उनको अपमानित किया जाता

था। इस काल मे ब्रह्म, प्राजापात्य, आर्ष, दैव, आसुर, [गान्धर्व, राक्षस और पैशाच आठ प्रकार की विवाह पद्धतिया-प्रचलित थी।

धार्मिक अवस्था—इस काल की धार्मिक अवस्था वैदिककालीन धार्मिक अवस्था से भिन्न थी। यज्ञ का स्वरूप बहुत परिवर्तित हो गया था। पशु-बलि की प्रथा समाप्त हो गई थी। राजा लोग राज्याभिषेक के समय राजसूय यज्ञ करते थे। साम्राज्य विस्तार के लिये अश्वमेघ यज्ञ किया जाता था। गृहस्थियो को प्रतिदिन करने के लिये पाँच प्रकार के यज्ञ प्रचलित थे—(१) देवयज्ञ, (२) ऋषियज्ञ, (३) पितृयज्ञ, (४) नृयज्ञ, (५) भूतयज्ञ। विशेष अवसरो पर मनुष्य अष्टका, श्रावणी, आग्रहायणी, चैत्तिरी और अश्वपुत्री यज्ञ करते थे। यज्ञो के अतिरिक्त अध्यात्म-चिन्तन की ओर भी लोगो का विशेष ध्यान था। परलोक तथा मोक्ष की कल्पना भी इस समय थी।

रामायण और महाभारत काल मे भक्ति की भावना भी प्रवल होने लगी थी। प्राकृतिक शक्तियो के स्थान पर देवत्रयी की स्थापना हो चुकी थी। वीर पूजा होने लगी थी। श्रीराम और श्रीकृष्ण को सर्वप्रथम इस रूप मे स्वीकार किया गया। धीरे-धीरे अवतारवाद की भावना पनप रही थी। भगवान् के प्रसन्न करने और उसे प्राप्त करने का साधन भक्ति को ही माना जाने लगा था। 'गीता' से इस युग की धार्मिक स्थिति पर पूर्ण प्रकाश पड़ता है।

राजनीतिक स्थिति—इस समय अधिकाश भारत में राजतन्त्रात्मक शासन प्रणाली प्रचलित थी। राजा कुल-क्रमागत थे। राजा की शक्ति या उसके अधिकार निरकुश नहीं थे। राजा राजकीय कार्य 'सभा' की सहायता से करता था। इसमे या तो राज्य के सब क्षत्रिय योद्धा होते थे, या यह एक प्रकार की वृद्ध परिषद होती थी। इसमे राज्य परिवार के व्यक्ति सेनापति तथा अन्य उच्च सैनिक पदो पर होते थे। परामर्शदाताओ मे जनता के निम्न वर्ग के प्रतिनिधि भी हो सकते थे। राजा के परामर्शदाता उसकी गलतियो को पकड़ते तथा उसकी भर्त्सना करते थे। राजा जनता तथा ब्राह्मण की इच्छा का आदर करता था। अत्याचारी राजा के विरुद्ध विद्रोह करके उसे पदच्युत कर दिया जाता था।

उस समय राजा अपने इन कर्त्तव्यो का ध्यान रखता था—निर्बलो पर

किसी प्रकार से भी अत्याचार न हो। मन, वचन और शरीर से न्यायाचरण करते हुए 'अपने पुत्र का भी अपराध् क्षमा नही करना चाहिये।' राजा का धर्म है कि साधारण प्रजा को सुखी करने के साथ-साथ अभागे, अनाथ और बूढो के आँसू भी पोछे। विद्वानो के उपदेशो का पालन करना, सेवा, कोष और व्यापार को बढाना; प्रजा के कष्ट निवारण करना, बेकार, निर्धन, अपाहिजो का पालन-पोषण करना भी राजा का कर्त्तव्य था। रिश्वतखोर तथा लूटने वाले अफसरो से प्रजा की रक्षा करना राजा का कर्त्तव्य था।

राज्य की आय के प्रधान स्रोत भूमि की उपज,व्यापार, खानो, समुद्रो तथा वनो की उत्पत्ति पर लगाये गये कर थे। कर वसूल करने के लिये एक, दस, बीस, सौ और हजार ग्रामो के अधिकारी नियुक्त किये हुए थे। ये अपने क्षेत्र से कर राजा के कोष मे पहुँचाते थे। राजा को इस बात का विशेष ध्यान रखना पडता था कि किसी पर कर का व्यर्थ भार न पडे और कोई कर देने से वंचित न रह जाय। कर अधिक न हो जाय इस बात का भी राजा को ध्यान रखना पडता था—"कर बहुत बढा देने वाले राजा से प्रजा द्वेष करती है। इसलिये राजा को सदा राज जाने का भय बना रहता है। राष्ट्र को बछडा समझकर प्रजा पर कर लगाना चाहिये। गौ को अधिक दुह लेने से बछडा भी काम का नही रहता। इसी प्रकार प्रजा पर अत्यधिक कर लगा देने से राष्ट्र की आय बहुत कम हो जाती है। राजा को चाहिए कि वह प्रत्येक नागरिक, राष्ट्रवासी, उपनिवेश तथा आधीन देशवासियो से अनुकम्पापूर्वक यथाशक्ति सब उचित करो को प्राप्त कर ले।"

विदेशी आक्रमणो से रक्षा करने के लिए राजा विशाल सेना रखता था। सेना स्थायी तथा स्वय सेवक दोनो प्रकार की होती थी। सेना के चार अंग होते थे—(१) पदाति, (२) अश्व, (३) हाथी, (४) रथ। सेना के इन चार अंगो के अतिरिक्त यातायात, नौ-सेना, गुप्तचर आदि कई आवश्यक तथा सहायक विभाग होते थे। तलवार और ढाल पदातियो के मुख्य हथियार थे। अश्वारोही तलवार तथा भाले का प्रयोग करते थे। द्वन्द्व युद्ध मे गदा का प्रयोग होता था। रथ पर बैठकर युद्ध करने वाले सैनिक धनुष-बाण का प्रयोग करते थे। सब सैनिक कवच पहनते थे। युद्ध मे चक्रव्यूह बनाये जाते थे।

आर्थिक दशा—इस युग के मुख्य व्यवसाय कृषि, पशुपालन और शिल्प-कला थे। खानो से बहुमूल्य धातुएँ तथा समुद्र से मोती भी निकाले जाते थे। कपडे का व्यवसाय बहुत उन्नत था। इस काल में सूती, रेशमी तथा ऊनी कपड़ा पर्याप्त मात्रा में तैयार होता था। इस प्रकार मनुष्यो की आर्थिक दशा अच्छी थी।

प्रश्न १०—'महाकाव्य युग' में राजा के कर्त्तव्यों को बताकर उस काल की शासन-पद्धति का वर्णन करो।

उत्तर—उपर्युक्त प्रश्न में दी गई 'राजनीतिक स्थिति' पढिए।

प्रश्न ११—'महाकाव्य' युग में स्त्रियों की कैसी स्थिति थी।

(प्रभाकर, नवम्बर १९५८)

उत्तर—उपर्युक्त प्रश्न मे दी गई 'सामाजिक स्थिति' को पढिए।

प्रश्न १२—पुराण साहित्य का परिचय देकर इस काल की सस्कृति को स्पष्ट करो।

अथवा

पुराण-साहित्य का परिचय देते हुए ऐतिहासिक एव सांस्कृतिक दृष्टि से उनका महत्व प्रतिपादित करते हुए तत्कालीन सामाजिक, धार्मिक तथा राजनैतिक परिस्थितियों पर प्रकाश डालिए। (प्रभाकर, जून १९५५)

उत्तर—भारतीय साहित्य मे पुराणो का बहुत अधिक महत्व है। पुराणो की सख्या अठारह है। इनमे छ पुराण विष्णु से सम्बन्धित, छ. ब्रह्मा से और छ शिव से।

वैष्णव-पुराण	ब्रह्म-पुराण	शिव-पुराण
(१) विष्णु	ब्रह्म	शिव
(२) भागवत	ब्रह्माण्ड	लिंग
(३) नारदीय	ब्रह्मवैवर्त	स्कन्द
(४) गरुड	मार्कण्डेय	अग्नि
(५) पद्म	वामन	कूर्म
(६) वराह	भविष्य	मत्स्य

पुराणो के विषय पाँच है ·

(१) सर्ग—सृष्टि की उत्पत्ति ।

(२) प्रतिसर्ग—सृष्टि का विस्तार, लय और पुन उत्पत्ति ।

(३) वश—विविध राजाओ और ऋषियो के वश का उल्लेख ।

(४) मन्वन्तर—ससार का काल-विभाग और प्रमुख घटनाएँ ।

(५) विविध राजाओ की कृतियाँ व चरित्र-चित्रण ।

पुराण शब्द का अर्थ पुराना है । इन ग्रथो मे वे प्राचीन आख्यान सकलित है, जो गुरु-शिष्य परम्परा से चले आते थे । ऐतिहासिक दृष्टिकोण से पुराणो का महत्व रामायण और महाभारत से अधिक है । अठारहो पुराणों के सकलन कर्ता महर्षि वेदव्यास जी थे । वह महाभारत काल मे उत्पन्न हुए थे । वेदव्यास जी ने उन समस्त कथाओ का सग्रह किया, जो कौरव-पाँडवो के समय तक चली आती थी । पुराणो मे महाभारत के युद्ध तक की घटनाएं भूतकाल मे, महाभारत युद्ध से राजा जनमेजय तक की घटनाएँ वर्तमान काल मे और उसके पश्चात् की घटनाएँ भविष्यवाणी के रूप में भविष्य काल मे लिखी गई है । उपपुराणो में ब्रिटिश काल तक की घटनाओ को भविष्य रूप में दिया गया है । पुराणो में प्राचीन काल की सामाजिक, सास्कृतिक, राजनीतिक आदि अवस्थाओ का सुन्दर प्रतिविम्ब दिखाई देता है । बौद्ध-धर्म से पूर्व के भारत को जानने के लिए पुराण सर्वोत्तम ग्रन्थ हैं ।

सामाजिक परिस्थिति—वर्णभेद या जातिभेद का विकास पौराणिक युग मे जोरो पर था । ब्राह्मण को सर्वश्रेष्ठ मान लिया गया था । अस्पृश्यता की भावना मनुष्यो मे घर कर चुकी थी । विधवा-विवाह का निषेध था । जातियाँ जन्म के आधार पर स्वीकार की जाने लगी थी । गृहस्थधर्म की महत्ता स्वीकार की जा चुकी थी । इस युग मे सत्य, दान, तीर्थ-महिमा का बखान किया गया । स्त्रियो की दशा वैदिककाल की अपेक्षा बहुत हीन थी ।

राजनैतिक-स्थिति—इस युग मे साम्राज्यवाद की भावना प्रबल थी । शक्तिशाली राजा अपने पडोसी निर्बल राजाओ को आधीन करने के लिए उन पर आक्रमण करते थे । इस प्रकार युद्धो की अधिकता थी । प्रजातन्त्र

शासन प्रणाली लुप्त हो चुकी थी और राजतन्त्र का बोल-बाला था। राजा अपने अधिकारो को दैवी अधिकार मानता था। राजा की आज्ञा का उल्लघन करना ईश्वर का विरोध करना माना जाता था। प्रजा राजा का निर्वाचन नही करती थी। राजा अपने बाहुबल से यह पद प्राप्त करता था। परन्तु कही-कही पर गणतन्त्र शासन प्रणाली भी थी। इन गणतन्त्र राज्यो की स्थिति भी उस समय के महत्त्वाकांक्षी वीर राजाओ के सम्मुख डाँवा-डोल होती जाती थी।

धार्मिक-स्थिति—भारत के पुराने धर्म मे कर्मकाण्ड की प्रधानता थी। पौराणिक युग मे भी इसी वृत्ति का विकास हुआ। पितरो की पूजा का विचार बहुत प्राचीन है। पुराण युग मे इसका स्वरूप अधिक से अधिक जटिल हो गया। पितरो की तृप्ति के लिए यज्ञ मे पशु-बलि तथा विविध अनुष्ठानो का प्रचार हुआ। श्राद्ध का महत्व भी इस समय स्वीकार किया गया। तीर्थ-स्थानो को उच्च स्थान भी इस समय मे ही प्राप्त हुआ।

इस युग मे सर्वप्रधान भागवत धर्म का भी विकास हुआ। इसके प्रवर्तक वासुदेव कृष्ण थे। योगिराज कृष्ण के इस धार्मिक आन्दोलन की यह एक विशेषता थी कि वह प्राचीन आर्य परम्परा के अधिक अनुकूल था। भागवत धर्म वेदो और उपनिषदो पर विश्वास रखता था। यह यज्ञो का विरोध नही करता था और वर्णाश्रम धर्म का समर्थक था।

प्रश्न १३— दर्शन से क्या अभिप्राय है? भारत के छः आस्तिक दर्शनों का सक्षेप मे वर्णन करो।

अथवा

भारतीय संस्कृति के इतिहास में दर्शन-साहित्य का क्या महत्व है? संक्षेपतः उनका परिचय दीजिए। (प्रभाकर नवम्बर, १९५४, नवम्बर १९५५)

उत्तर—दर्शन शब्द का साधारण अर्थ है देखना। किसी वस्तु को सूक्ष्म दृष्टि से देखने का नाम दर्शन है। हमारे ऋषियो ने आध्यात्म चिन्तन से परे प्रकृति और परमात्मा के गूढ रहस्यो का सूक्ष्म विवेचन किया। ईश्वर क्या है? जीव क्या है? सृष्टि की उत्पत्ति तथा विकास कैसे हुआ? इत्यादि विषयो का विवेचन ही दर्शनो का विषय है। भारतीय दर्शन दो प्रकार के है।

आस्तिक तथा नास्तिक। वेद के निन्दकों को नास्तिक कहा जाता है। नास्तिक दर्शन तीन हैं।

१ चार्वाक-दर्शन—इस दर्शन के अनुसार जब तक जीओ सुख से जीओ। ऋण लेकर घी पीओ का उपदेश है। काम और अर्थ दो ही पुरुषार्थ हैं। दुःखों से छुटकारा पाना ही स्वर्ग है इत्यादि।

२ बौद्ध-दर्शन—बौद्धदर्शन के दो सिद्धान्त सघातवाद और सन्तानवाद हैं। सघातवाद मे आत्मा पृथक वस्तु नहीं, ऐसा माना गया है और सन्तानवाद मे आत्मा और ससार को परिवर्तनशील माना गया है।

३ जैन दर्शन—जैन दर्शन ने स्याद्वाद के सिद्धान्त को स्वीकार कर मोक्ष के तीन साधनो पर बल दिया है—सम्यक् ज्ञान, सम्यक् चरित्र, सम्यक् दर्शन। आस्तिक दर्शन संख्या में छः हैं :

(१) न्याय दर्शन—न्याय दर्शन के अनुसार प्रमाण चार हैं—प्रत्यक्ष, अनुमान, उपमान, शब्द। जिस बात को हम स्वय साक्षात् रूप मे जाने, वह प्रत्यक्ष है। जब किसी वस्तु को हम प्रत्यक्ष रूप से नही जानते, अपितु किसी हेतु द्वारा उसे जानते है तो वह ज्ञान हमे अनुमान द्वारा होता है। जब किसी जानी हुई वस्तु के सादृश्य से हम जानी हुई वस्तु को जानते हैं तो उसे उपमान कहते हैं। बहुत सी वस्तुएँ ऐसी है, जिन्हे हम प्रत्यक्ष, अनुमान अथवा उपमान द्वारा नही जान सकते। उन्हें जानने का साधन केवल शब्द है। भूमण्डल के उत्तरी भाग मे उत्तरी ध्रुव है, यह बात हम केवल शब्द द्वारा जान पाते है।

न्यायदर्शन मे ज्ञान के इन साधनो के विवेचन के साथ ससार के विविध तत्वो का प्रदर्शन कराने का प्रयत्न किया गया है। मूल पदार्थ तीन स्वीकार किए गए हैं—ईश्वर, जीव और प्रकृति। न्याय के अनुसार जीवात्मा की सत्ता शरीर से भिन्न है।

न्यायदर्शन के प्रवर्तक महर्षि गौतम थे। उन्होने सूत्र रूप से न्यायदर्शन की रचना की। निरन्तर न्यायदर्शन का विकास होता रहा। वात्स्यायन, उद्योतकर, वाचस्पति मिश्र तथा उदयनाचार्य आदि विद्वज्जनो ने न्यायदर्शन की व्याख्या और तत्त्व का विश्लेषण किया।

(२) वैशेषिक दर्शन—वैशेषिक दर्शन के अनुसार ज्ञान के चार साधन हैं।

(प्रत्यक्ष, लैङ्गिक अनुमान) स्मृति और आर्य ज्ञान। ज्ञानेन्द्रियो, मन और आत्मा द्वारा जो ज्ञान होता है, उसे प्रत्यक्ष कहते है। लैङ्गिक ज्ञान चार प्रकार से होता है—अनुमान, उपमान, शब्द तथा ऐतिह्य (अनुश्रुति) से पहली जानी हुई वस्तु की याद से जो ज्ञान होता है उसे स्मृति कहते है। आर्षज्ञान वह है जो ऋषियो ने अपनी अन्तर्दृष्टि से प्राप्त किया था।

वैशेपिक के अनुसार कुछ पदार्थ सात भागो में बाटे जा सकते है— द्रव्य, गुण, कर्म, विशेप, सामान्य, समवाय और अभाव।

१. द्रव्य—नौ प्रकार के होते हैं—पृथ्वी, जल, तेज, वायु, आकाश, काल, दिक्, आत्मा और मन।

२ गुण:—चौबीस प्रकार के होते है—रूप, रस, गध, स्पर्श, सुख दु.ख आदि।

३ कर्म—पाँच प्रकार के होते है—(१) उत्क्षेपण (ऊपर फेंकना), (२) अवक्षेपण (नीचे फेकना), (३) आकुंचन (सिकोडना), (४) प्रसारण (फैलाना), (५) गमन (गति करना)।

४. विशेष—वह पदार्थ है, जो सत्ताओं में पार्थक्य करता है।

५. सामान्य—वह पदार्थ है, जो दो या अधिक सत्ताओ मे समानरूप से रहे।

६ समवाय—वस्तुओ व सत्ताओ के नित्य सबन्ध को समवाय कहते हैं।

७ अभाव—का अभिप्राय किसी वस्तु का न रहना है।

वैशेपिक दर्शन के प्रवर्तक कणाद मुनि थे। बाद में वैशेषिक सबधी अन्य पुस्तकें लिखी गईं।

(३) सांख्य दर्शन—साख्य दर्शन का मुख्य सिद्धान्त है सत्कार्यवाद। इसके अनुसार असत् से सत् की उत्पत्ति नही हो सकती। किसी विद्यमान सत्ता का सर्वथा विनाश नही हो सकता वह केवल अपने कारण मे लय हो जाती है।

इसी सत्कार्यवाद के अनुवाद का अनुसरण करके सांख्य-शास्त्र में ससार का कारण प्रकृति को माना गया है। ससार प्रकृति का ही रूपान्तर है। प्रकृति अनादि और अनित्य है। सृष्टि के आधारभूत गुण तीन है—सतोगुण, रजो-

गुण, तमोगुण। इन तीनो की साम्यावस्था का नाम ही प्रकृति है। जब इन गुणो की साम्यावस्था नही रहती, तब किसी एक गुण के प्रधान होने से ससार के विविध पदार्थो का निर्माण होता है। पर प्रकृति पुरुष के सयोग के बिना सृष्टि का निर्माण नही कर सकती, इन दोनो की अवस्था अन्धे तथा लगडे की है। प्रकृति जब ससार के रूप में व्यक्त होने लगती है तो उसे अनेक दशाओ मे से गुजरना पडता है—महत्, अहकार आदि।

साख्य के अनुसार पुरुष का स्वरूप केवल चेतन और सदा प्रकाश स्वरूप है। पुरुष वस्तुत. कर्त्ता नही। जब पुरुष भली भाँति समझ लेता है कि करने वाला वह नही अपितु प्रकृति है, तब वह अहकार से मुक्त हो जाता है। इसी का नाम मोक्ष है।

साख्य दर्शन ने मूल तत्वो मे ईश्वर की गणना नही की। पर साँख्य लोग ईश्वर का खण्डन भी नही करते है।

साख्य दर्शन के प्रवर्तक कपिल मुनि थे, उन्होने साख्य सूत्रो की रचना की थी। साख्य दर्शन पर अनेक टीकाएँ तथा भाष्य लिखे गये।

(४) योग दर्शन—योग और साँख्य मे भेद बहुत कम है। साख्य के समान योग भी प्रकृति से ससार की उत्पत्ति स्वीकार करता है। इन दर्शनो मे मुख्य भेद ईश्वर की सत्ता के सम्बन्ध मे है। योग दर्शन ईश्वर की सत्ता को स्वीकार करता है। योग के अनुसार पुरुष की उपासना से प्रसन्न होकर ईश्वर उसका उद्धार कर देता है। चित्तवृत्तियो के निरोध का नाम ही योग है। इस योग के आठ अङ्ग है.

१. यम, २ नियम, ३ आसन, ४ प्राणायाम, ५ प्रत्याहार, ६ धारणा, ७ ध्यान, ८ समाधि।

योग दर्शन के आदि प्रवर्तक महर्षि पतजलि थे। उन्होने योग सूत्रो की रचना की। व्यास ऋषि का भाष्य योग दर्शन की दृष्टि से महत्वपूर्ण ग्रन्थ है।

(५) मीमांसा दर्शन—मीमासा दर्शन धर्म के नियमो की ठीक-ठीक मीमासा करता है। इस दर्शन के अनुसार वेद द्वारा कथित कर्म ही धर्म है। प्रत्येक मनुष्य अपने कर्मो द्वारा अपने प्रारब्ध का निर्माण करता है। कर्मकाण्ड द्वारा

अपूर्व (प्रारब्ध) उत्पन्न होता है जो मनुष्य के साथ सदैव रहता है। मीमासक लोग वेद को नित्य एव अपौरषेय मानते है।

मीमासा के प्रवर्तक आचार्य जैमिनि थे। उन्होने मीमासा सूत्र की रचना की। कुमारिल भट्ट, शवर आदि मीमासा दर्शन के प्रकाण्ड विद्वान् थे।

(६) वेदांत दर्शन—वेदान्त दर्शन के अनुसार विश्व की वास्तविक सत्ता ब्रह्म है। वस्तुत ब्रह्म ही सत्य है अन्य कोई सत्ता सत्य नही है। जीव की ब्रह्म से पृथक् कोई सत्ता नही है। ब्रह्म चेतन स्वरूप है। ब्रह्म का स्वरूप निर्विशेष चिन्मात्र है।

वेदान्त दर्शन के प्रवर्तक वादरायण व्यास थे। उन्होने वेदान्त सूत्रो की रचना की। इन सूत्रो पर विविध आचार्यो ने अपने-अपने मत के अनुसार अनेक भाष्य लिखा। इनमे शकराचार्य का 'ब्रह्मसूत्र शाकर भाष्य' सवसे प्रसिद्ध है। शङ्कराचार्य ने अद्वैतवाद का प्रतिपादन किया। उनका सूत्र है, "ब्रह्म सत्य जगन्मिथ्या"। माया आत्म-परमात्मा के बीच अन्तर डालती है। माया के नाश होने से जीवात्मा और परमात्मा फिर से एकरूप हो जाते है।

वेदान्त सूत्रो पर रामानुजाचार्य, मध्वाचार्य निम्वाकाचार्य और वल्लभाचार्य ने भी भाष्य लिखे है। वेदान्त के अन्तर्गत अनेक वादो का समावेश है—अद्वैतवाद, द्वैतवाद, विशिष्टाद्वैतवाद आदि।

प्रश्न १४—बौद्ध और जैन धर्म की पृष्ठभूमि पर प्रकाश डालकर संक्षेप में वौद्ध तथा जैन धर्मों का स्वरूप प्रगट करें।

उत्तर—वैदिक काल से ही यज्ञ और अनुष्ठानो का धुर्वांवार वोलवाला हो गया। कर्मकाण्ड जटिल हो गए। पशुहिंसा होने लगी। किसी-किसी स्थान पर तो मनुष्य की वलि भी दी जाने लगी। पाखण्ड का प्रचार वढने लगा। ब्राह्मणो को अत्यधिक मान्यता दी जाने लगी। उन्होने अपने को उच्च पदासीन जानकर समाज की वागडोर को अपने हाथो मे ले लिया। यज्ञ का वास्तविक महत्व एव विधान भी भुला दिया गया। आडम्वरपूर्ण यज्ञ होने लगे। वर्ण व्यवस्था मे सकुचित भावना आ गई। ब्राह्मण, क्षत्रिय अपने से निम्न वर्ण को नीचे समझने लगे। शूद्रो की दुर्दशा का कोई अन्त न रहा। चारो ओर असन्तोष की लहरें

दौड पडी। जिसके परिणामस्वरूप समाज मे एक क्राति लाने वाले सम्प्रदाय का आविर्भाव हुआ जो कि जैन तथा बौद्ध धर्म कहलाया। जैन धर्म के प्रवर्तक श्री महावीर स्वामी और बौद्ध धर्म के सस्थापक भगवान् गौतम बुद्ध थे।

१ जैन-धर्म—जैनधर्म के प्रणेता वर्द्धमान थे। इस धर्म के २४ तीर्थङ्कर माने जाते है। सर्वप्रथम तीर्थङ्कर का नाम ऋषभदेव था। वर्द्धमान सबसे अन्तिम तीर्थङ्कर थे। यद्यपि वर्द्धमान का लालन-पालन राजघराने मे वडे ठाट-वाट से हुआ, किन्तु ३० वर्ष की आयु मे ससार के सुख और ऐश्वर्य पर ठोकर मारकर १२ वर्षों तक घोर तपस्या करते रहे। इस घोर तपस्या करने के पश्चात् केवलिन् पद की प्राप्ति कर महावीर के नाम से प्रसिद्ध हुए। इन्होंने एक निग्रन्थ नामक धर्मसघ की स्थापना की। बिम्बसार की राजधानी मगध में गए। राजा ने उनका सादर अभिवादन किया और इसी मगध मे प्रचार करते रहे। ७२ वर्ष की आयु में आप निर्वाण को प्राप्त हुए।

इसमे जीव और ससार को अनादि और अनत माना गया है। फल भोगता जीव ही है। उसे सासारिक बन्धनो से मोक्ष प्राप्ति के लिए सदा प्रयास एव उपाय करना चाहिए। केवली पद पाना इसका ध्येय है। जीव को सम्यक् ज्ञान, सम्यक् दर्शन, सम्यक् चरित्र द्वारा कर्म बन्धनो से मुक्ति प्राप्त होती है। ईश्वर की सत्ता को यह अस्वीकार करते है। गृहस्थियो के लिए सत्य, अहिंसा अस्तेय, अपरिग्रह और ब्रह्मचर्य इन अणुव्रतो का यथासम्भव आचरण करना आवश्यक बताया है।

सन्यासियो को चाहिए कि वे पचमहाव्रतो का सूक्ष्म रूप से पालन करे। श्वेताम्बर और दिगम्बर दो सम्प्रदाय जैन धर्म मे प्रचलित है। श्वेताम्बर तीर्थङ्करो की मूर्ति को लगोट पहिनाते है और दिगम्बर नग्न मूर्ति की पूजा करते हैं। दोनो के सिद्धान्त समान हैं। इसके ग्रन्थ प्राकृत भाषा मे लिखे गए है।

२ बौद्धधर्म—बौद्धधर्म के प्रवर्तक महात्मा बुद्ध का जन्म कपिलवस्तु के महाराजा शुद्धोदन के गृह में हुआ। स्वभावत ये वैरागी प्रकृति के थे। सांसारिक ऐश्वर्यों से उनकी प्यास न बुझी। पत्नी और पुत्र का प्यार इन्हे आकृष्ट न कर सका। अन्त मे वे अधेरी रात्रि मे, पत्नी-पुत्र, को निद्रित अवस्था मे छोड़ सत्य ज्ञान की प्राप्ति के लिए घर से बाहर चले गए। ७ वर्षों तक

वनो की खाक छानी, अनेक कठोर व्रत करने पर भी कोई ज्ञान प्राप्त न हुआ, अन्तत. बोध गया के निकट एक वट वृक्ष के नीचे समाधिस्थ हो बोध (ज्ञान) की प्राप्ति की, तभी से इनका नाम बुद्ध पडा। इसका आधार सत्य और अहिंसा है। वासना, अज्ञान और मोह दुःख के कारण है। आत्म-सयम से ही ज्ञान प्राप्त होता है। ससार के पदार्थ क्षणिक है। यह ससार परिवर्तित होता रहता है। जीवन का ध्येय निर्वाण प्राप्त करना है। तपस्या को ये निर्वाण प्राप्ति के लिए अनिवार्य नही मानते, ऐसा इनका विचार है। वेदो में अविश्वास प्रकट किया है। इसमें जाति-पाति का भेदभाव नही माना जाता। महात्मा बुद्ध ने बौद्धधर्म प्रचारार्थ भिक्षुसघ स्थापित किया। निम्नलिखित प्रतिज्ञाएँ है—

(१) बुद्ध सरण गच्छामि
(२) धम्म सरण गच्छामि
(३) सघ सरण गच्छामि

ईश्वर नाम की कोई वस्तु नही। इस मत की दो शाखाएँ है—

१. हीनयान, २ महायान। हीनयान शाखा बौद्धमत का प्राचीन स्वरूप है। ये लोग अपना साहित्य पालि भाषा मे लिखते थे। बुद्ध के उपदेशो का अनुकरण करना ही इस शाखा का ध्येय है।

महायान शाखा बौद्ध धर्म का विकृत स्वरूप है। इन लोगो ने साहित्य को सस्कृत मे लिखा। इस मत के अनुयायी नाना देवताओ की उपासना करते है और बुद्ध को भगवान् मान कर उनकी मूर्ति की पूजा करते है।

प्रश्न १५—जैन और बौद्ध धर्म की शिक्षाओं का उल्लेख करे।

(प्रभाकर, नवम्बर, १९५३)

उत्तर—बौद्ध शिक्षाएँ—इस धर्म में सयम पर जोर दिया गया है। सद् आचरण को धर्म मानते है। जीवन को विशुद्ध बनाने के लिए उन्होने ८ मार्ग निर्देशित किये—(१) सत्य चिन्तन, (२) सत्य-सकल्प, (३) सत्य बोलना, (४) सत्य आचरण, (५) सत्य निवास, (६) सत्य प्रयत्न, (७) सत्य ध्यान, (८) सत्य आनन्द। इन पर आदमी तभी चल सकता है जब वह विलासिता और तपस्या से दूर रहे। वे हिंसा के विरुद्ध थे। ऊंच-नीच, जाति-पांति के भेदभाव को नहीं मानते थे। कर्म मे आस्था थी। इनके उपदेशों

को दो प्रकार से सग्रहीत किया गया — (१) धम्म, (२) विनय । इन्ही से बौद्ध साहित्य का प्रारम्भ होता है । आपने धर्म-प्रचारार्थ सघ स्थापित किए। प्रत्येक भिक्षुक को सघ के प्रति श्रद्धा रखनी होती थी । नियमो का पालन प्रत्येक भिक्षुक के लिए अनिवार्य था ।

जैन शिक्षाएँ—जैन सम्प्रदाय मे 'केवली' पद प्राप्त करना ही मुख्य उद्देश्य है । गृहस्थियो के लिए अणुव्रतो का विधान बनाया ।

(१) अहिंसाणुव्रत—मन, वचन और शरीर से हिंसा न करना । (२) सत्याणुव्रत-द्वेष, प्रेम आदि वृत्तियो को दबाकर सदैव सत्य भाषण करना । (३) अचौर्याणुव्रत, चोरी न करना, खोई हुई वस्तु को यथायोग्य स्थान में पहुँचा देना । (४) ब्रह्मचर्याणुव्रत—अपने पति या पत्नी से विलास अर्थात् समागम करना । (५) परिग्रह-परिमाणुव्रत, अपनी आवश्यकता से अधिक धन न कमाना । अहिंसा, सत्य, ब्रह्मचर्य, अपरिग्रह, अस्तेय, इन पाँच व्रतो का पालन गृहस्थी को करना चाहिए । भिक्षु को ये सूक्ष्मरूप से अपनाने चाहिएँ ।

प्रश्न १६—बौद्ध धर्म तथा जैन धर्म की समानताओं और विषमताओं को स्पष्ट करें ।

समानताएँ—(१) दोनो सम्प्रदायो के प्रणेताओ ने तात्कालिक ब्राह्मणो के प्रभुत्व, यज्ञ, कर्मकाण्ड की जटिलता, वर्णाश्रम की सकीर्णता के प्रति विद्रोह किया । धार्मिक दृष्टि से अपना धर्म उन्होने स्थापित नही किया ।

(२) दोनो अहिंसा पर आधारित है ।

(३) दोनो ईश्वर मे अविश्वास प्रकट करते है ।

(४) निर्वाण प्राप्त करना ही जीवन का मुख्य ध्येय दोनो मानते है ।

(५) दोनो आवागमन के चक्र मे आस्था नही रखते ।

(६) दोनो वेदो को नही मानते ।

(७) दोनो मे सघ की व्यवस्था है ।

(८) दोनो अपने प्रणेताओ की मूर्ति की पूजा करते हैं ।

अन्तर—(१) निर्वाण प्राप्ति के लिए अपनी आत्मा को कष्ट देना चाहिए, ऐसा जैन धर्म मानता है । बौद्ध धर्म ऐसा नही मानता ।

(२) अहिंसा को अपना आधार जितना जैन धर्म ने बनाया, उतना बौद्ध धर्म ने नही।

(३) बौद्ध धर्म मे सघ को अधिक महत्त्व प्राप्त है। जैन धर्म मे कम।

प्रश्न १६—बौद्ध तथा जैन धर्म की संस्कृति पर प्रकाश डालें।

उत्तर—(१) राजनैतिक स्थिति—राजनैतिक स्थिति पर यदि दृष्टि डाले तो विदित होता है कि जनता सुखमय थी। शान्ति का वातावरण था। बौद्ध-साहित्य के अनुसार उस समय मगध, कौशल, काशी, पाचाल, मल्ल, चेदि आदि १६ महाजनपद थे। ये जनपद सुव्यवस्थित तथा सुसचालित थे। राज्य-प्रणाली राजतन्त्रात्मक थी। राजा प्रजा के सुखो का हितेच्छुक था। वह प्रजा को हार्दिक प्यार करता था।

(२) सामाजिक—समाज सगठन का आधार वर्णाश्रम व्यवस्था थी। ब्राह्मणो को उच्च पद प्राप्त था। शूद्रो के प्रति दुर्व्यवहार होता था। अन्त-र्जातीय विवाह होने लगे थे। ऊँच-नीच के भेदभाव उत्पन्न हो गए थे। मास, मदिरा का अधिक प्रयोग न होता था, विद्या का प्रचार था।

(३) धार्मिक—वैदिक धर्म मे सकुचित भावना आ गयी थी। जिसके फलस्वरूप जैन और बुद्ध धर्म का आविर्भाव हुआ। वैदिक धर्म के [illegible] सिद्धान्तों को ये धर्म भी मानते थे। ये [illegible] संकीर्णता को दूर करना चाहते थे। यज्ञ, कर्मकाण्ड आदि का प्रचलन कम होने लग गया था।

(४) कलात्मक—महाराज अशोक ने अनेक बौद्ध विहार तथा स्तूप निर्मित कराए। [illegible] विहार और स्तूपों का [illegible] है। अशोक का राजप्रासाद कला की दृष्टि से [illegible] है। इस [illegible] प्रासाद को देखकर चीनी यात्री ने कहा है कि ऐसे प्रासाद मनुष्य नहीं निर्माण कर सकते, यह तो किसी दैवी शक्ति द्वारा निर्मित है। [illegible] तत्कालीन कला का महत्त्वपूर्ण नमूना है। [illegible] स्तूपों का निर्माण इसी काल मे हुआ।

(५) साहित्यिक—इस काल मे बौद्ध और जैन साहित्य के [illegible]

अत्यधिक वृद्धि हुई। जैन धर्म के तीर्थङ्करो ने जो उपदेश दिए उनके आधार पर द्वादशाङ्गो की रचना की गई। इनमे से केवल ११ ही प्राप्त है। ये प्राकृत भाषा मे लिखे गये है। कहा जाता है कि इनकी रचना २०२२ वर्ष पहले हुई। जैन धर्म का सुविस्तृत उल्लेख इनमें हुआ है। इन ग्रंथो का विषय स्वच्छ है। ये ग्रन्थ जीव-वाद से सम्बन्धित है।

बौद्ध साहित्य—भगवान् बुद्ध जब निर्वाण को प्राप्त हुए तत्पश्चात् उनके सुमधुर उपदेशो को उनके अनुयायी शिष्यो ने लेखबद्ध किया। इन शिक्षाओं को तीन भागो मे विभक्त कर दिया। उन शिक्षाओ को त्रिपिटक की संज्ञा दी गई। वे हैं—(१) विनयपिटक, (२) सुत्तपिटक, (३) अभिधम्म पिटक। बौद्ध नियमो का वर्णन विनयपिटक मे है। सुत्तपिटक में धार्मिक उपदेश मिलते है और अध्यात्मसम्बन्धी विषयो का उल्लेख अभिधम्म पिटक में है।

सुप्रसिद्ध आचार्य चाणक्य का विश्वविख्यात "कौटिलीय अर्थशास्त्र" भी इस काल की कृति है, ऐसा कहा जाता है। संस्कृत के प्रसिद्ध ग्रंथ "अष्टाध्यायी" तथा कात्यायन के वार्तिको की रचना इसी समय हुई।

प्रश्न १७—भक्ति-प्रधान पौराणिक धर्म के विकास पर दृष्टिपात करो।

उत्तर—वैदिक काल मे यज्ञ और कर्मकाण्ड का विकास पर्याप्त मात्रा में हो रहा था। कुछ लोग इस प्रथा मे अरुचि लेने लगे। वे इस प्रथा से उदास होकर सासारिक वातावरण से दूर निर्जन वन मे रहने लगे। वहाँ आरण्यक और उपनिषदो को रच रहे थे। जब पौराणिक युग आया तो कर्मकाण्ड जटिल होने लगे। पशु-बलि दी जाने लगी। नाना प्रकार के आडम्बर समाज मे रचे जाने लगे। ब्रह्मज्ञान सर्वसाधारण की वस्तु न होने के कारण लोग उसको अधिक न अपना सके। वैदिक काल मे इस ब्रह्मज्ञान तथा पाखण्डो से लोग घबरा गए। ऐसे समय मे भागवत धर्म की उत्पत्ति हुई। इसका दूसरा नाम वासुदेव धर्म भी कहा जाता है। भगवान श्रीकृष्ण इस सम्प्रदाय के प्रवर्त्तक हैं। कुरुक्षेत्र की युद्ध-भूमि मे श्रीकृष्ण जी ने अर्जुन को गीता का सदुपदेश दिया था। यही इस धर्म का प्रधान आधार है।

इस धर्म में ज्ञान मार्ग की अपेक्षा कर्म पर जोर दिया गया है। इस भक्ति

की धारा मे वैष्णव, शैव, पाशुपत आदि धर्मों का आविर्भाव होता रहा। इसी समय बुद्ध-धर्म का उदय हुआ और महात्मा बुद्ध ने अपने इस धर्म का प्रचार किया, जिससे वासुदेव धर्म अधिक पनप न सका। परन्तु कुछ शताब्दियो के अनन्तर बौद्धधर्म अवनत हो गया। अशोक के पश्चात् मौर्य साम्राज्य क्षीण होने लगा। भिक्षु पाखण्डी बन गए। बौद्ध धर्म नास्तिक था। यह वेदो पर आस्था नही रखता था। इस धर्म का प्रचार भी अति न्यून हो गया। जनता को चारो ओर से अरुचि हो गई। ऐसे समय में उसका भागवत धर्म की ओर आकर्षित होना स्वाभाविक था।

वासुदेव धर्म पशु-बलि के विरुद्ध था। वेदो पर अटूट श्रद्धा थी जिसके फलस्वरूप भागवत धर्म का एक बार फिर उत्थान हुआ। राम और कृष्ण की पूजा कुछ समय के पश्चात् सम्पूर्ण भारत मे हो गई। मन्दिरो की स्थापना की जाने लगी। साहित्य मे भक्तिरस की धारा प्रवाहित होने लगी।

भागवत धर्म—इसके जन्मदाता श्रीकृष्ण थे। शनैः शनैः श्रीकृष्ण की पूजा का प्रचलन जनता मे होने लगा। विदेशी आक्रमणकारी हेलियोडोरस भी इस धर्म से प्रभावित था। इस धर्म का द्वार सब मतावलम्बियो के लिए खुला था। चतुर्थ शताब्दी के अनन्तर गुप्तवंशीय सम्राटो ने भागवत धर्म के अनुयायी बनकर भारत को सुख और समृद्धियुक्त कर दिया। बुद्ध धर्म के अवनत हो जाने पर भी उसका प्रभाव यहाँ के लोगो पर पडता रहा। हमारा भारत धार्मिकता प्रधान देश है, अत. यहाँ के निवासियो के लिए वह आदर्श का केन्द्र बना। श्रीकृष्ण का पूर्णस्वरूप जनता के सम्मुख विद्यमान था। वह सुन्दर [illegible], मुकुट-मण्डित, वैजयन्तीमाला सुशोभित, [illegible], दीनो के नाथ, सुदर्शन-चक्रधारी, गीता के प्रवक्ता, साक्षात् विष्णु की प्रतिमूर्ति थे। [illegible] यह निकला कि कृष्णोपासना इस धर्म का [illegible] बन गई।

शैव धर्म—वासुदेव धर्म की उन्नति के समय में ही [illegible] धर्म का प्रादुर्भाव हो गया था। इसके संस्थापक 'लकुलीश' थे। ऐसा कहा जाता है कि ये शिवजी के अवतार थे। [illegible] वैदिक [illegible]। [illegible] है। ये सृष्टि के संहारक है।

वैमकडाफिसस विदेशी भी इस मत का अनुयायी बना। सर्वप्रथम मन्दिरो में शिव की प्रतिमा विराजमान रहती थी, किन्तु कुछ समय के पश्चात् मूर्ति के स्थान पर शिवलिंग की स्थापना की जाने लगी।

सूर्य पूजा—उक्त धर्मो के प्रचलन के साथ-साथ सूर्योपासना भी आरम्भ हो गई थी। सूर्य को भी वैदिक देवता माना जाता है। सूर्योपासना के हेतु मन्दिरो की स्थापना की गई। वह प्रथा सम्भवत ईरान से भारत मे भी प्रचलित हो गई। ईरानियो को भी आर्य जाति कुलोत्पन्न माना जाता है। कनिष्क के सिक्को पर सूर्य की प्रतिमा का होना इसका ज्वलन्त उदाहरण है। सूर्य कुण्ड का मन्दिर मुलतान मे स्थित है। कहते है कि यह मन्दिर बहुत प्राचीन है।

प्रश्न १८—भगवान धर्म की कृष्ण परम्परा का वर्णन करें।

(प्रभाकर, जून '१९५८)

उत्तर—उपर्युक्त प्रश्न मे दिए गए 'भागवत धर्म, को पढ़िये।

प्रश्न १९—भारत में वर्ण-व्यवस्था तथा जाति-भेद के उदय तथा विकास पर विचार प्रस्तुत करते हुए जाति-विकास के कारणो की गणना करें।

उत्तर—प्राचीन वैदिक काल मे आर्य लोग अनेक 'जनो' मे विभक्त थे। इन जनो के सब व्यक्ति परस्पर समान व 'सजात' थे। छोटे-बडे का भेद उस समय उत्पन्न नही हुआ था। एक परिवार के विविध सदस्य भिन्न-भिन्न पेशो का अनुसरण कर सकते थे।

वैदिक काल मे जनो की यह स्थिति देर तक नही रही, धीरे-धीरे उनमे वर्ण भेद प्रारम्भ हो गया। आर्य लोग भारत मे अपना विस्तार करने की दृष्टि से आगे बढे। उन्होंने अनेक जातियो को जीत लिया, जो बाद में दस्यु कहलाने लगे। आर्य लोग इनसे हीन कार्य लेते थे। इन दासो की पृथक श्रेणी बन गई। इसी आधार पर वैदिक कालीन समाज मे दो वर्ण बने।

आर्यों मे धीरे-धीरे भेद आरम्भ हुए। आर्यों की आवश्यकताएँ बढने लगी। कुछ लोग जनपद की रक्षा के लिए तैयार हुए। आगे चलकर यह लोग योद्धा का पेशा करने के लिए अग्रसर हुए। ये लोग 'क्षत्रिय' कहलाने लगे।

प्रत्येक आर्यजन के लिए यह सम्भव नही रह गया कि वह याज्ञिक कर्मकाण्ड की सूक्ष्मताओ को समझ सके, इनके लिए जिन लोगो ने विशेषता प्राप्त की, वे ब्राह्मण कहलाए। वैदिक काल के अन्त तक वर्णों का यह विभाग विकसित होता गया। आगे चलकर वैश्य और शूद्र दो और वर्णों का स्थान बना।

वैदिक काल मे ब्राह्मण आदि विभिन्न वर्ण मुख्यतया मनुष्यो के गुण व कर्म आदि पर आश्रित थे। विभिन्न वर्णों के लोगो मे विवाह-सम्बन्ध भी उस समय हो सकते थे।

आर्यो का यह वर्णभेद निरन्तर अधिक दृढ होता गया। आर्यो में जनपदो के विस्तार की प्रवृति ने क्षत्रियो की महत्ता बढा दी। ब्राह्मणो के सम्मुख क्षत्रिय भी सिर झुकाते थे।

बौद्ध धर्म के प्रारम्भ होने तक आर्यो के विविध जनपदो मे यह वर्णभेद भली-भाँति विकसित होता गया।

आर्यो के समय मे जनपद थे, वे दो प्रकार के थे—राजतन्त्र, गणतन्त्र। जब भारत मे साम्राज्यवाद का विकास हुआ तो जनपदो का स्थान महाजनपद लेने लगे और इन महाजनपदो मे अपनी नीति व धर्म का प्रसार हुआ तथा सब अपने स्वधर्म पर दृढ रहे। भारत के सम्राटो की असहिष्णुता के कारण गणराज्य आगे चलकर जातियो के रूप मे परिवर्तित होते गए। इन सब जातियो की पृथक् रूप से सत्ता थी। इससे जातिभेद को प्रोत्साहन मिला।

जाति-भेद का विकास एक अन्य प्रकार से भी हुआ। वैदिक काल के पश्चात् भारत के जनपदो मे अनेक शिल्पो का विशेष रूप से विकास हुआ। विभिन्न व्यवसायो ने विभिन्न जातियो को जन्म दिया। लोहार, सुनार, तन्तुवाय (जुलाहे), वर्धकि (बढई) आदि जातियाँ विकसित हुई।

आर्यो के समय जिनको दस्यु कहा जाता था, वह अछूत जातियो के रूप मे परिवर्तित होने लगे जिन्हे हम चमार, भगी, आदि के रूप मे अब तक पाते है।

भारतवर्ष मे जातियो की सख्या के बढ जाने के अनेक कारण है—

१. भारतवर्ष की मूल जातियो ने हिन्दू-धर्म में प्रवेश करके पृथक्-पृथक्

जातियाँ वना ली-। जैसे—मध्यभारत के गोड तथा वगाल के राजवशी।

२ विदेशी आक्रमणकारियो ने भी इसी प्रकार अलग-अलग जातियाँ वना ली। जैसे—गुज्जर और हूण।

३ विरादरी से पृथक् हुए लोगो की अलग जातियाँ वन गईं।

४ एक जाति के लोगो के भिन्न-भिन्न स्थानो पर निवास करने से उनके रहन-सहन मे भेद पड गया। उन्होने एक दूसरे से विवाह तथा खानपान का सम्बन्ध तोड दिया और अलग जातियाँ वन गईं। जैसे—काश्मीरी ब्राह्मण, गुजराती ब्राह्मण इत्यादि।

५ कई लोगो ने भिन्न-भिन्न व्यवसाय ग्रहण करने से नई जातियाँ वना ली। जैसे—लोहार, तरखान, मोची, धोवी आदि।

प्रश्न २० – जाति-पाँति के गुण व दोषों को स्पष्ट करें ? (जून १९५३, ५५)

उत्तर—जाँति-पाति के अनेक लाभ तथा हानियाँ है।

गुण—१ कला-कौशल में उन्नति—जाति-पाति का एक लाभ यह हुआ कि प्रत्येक मनुष्य अपने वाप-दादा का पेशा ग्रहण करने लगा। अत वहुत सारे कला-कौशल विशेष-विशेष वशो और जातियो के आधार में आ गए, जिससे कला-कौशल ने वडी उन्नति की।

२ शुद्ध-चरित्र—जाति-पाति के कारण लोगो का आचार-व्यवहार और चाल-चलन विशेषकर ऊँची जातियो का वहुत कुछ सुधरा रहा, क्योकि उन्हें भय था कि कही वुरे कर्मो के कारण वे विरादरी से न निकाल दिए जाये या विरादरी की दृष्टि से न गिर जाये।

३ विरादरी का अनुभव—एक ही जाति के लोगो मे घनिष्ट प्रेम और सहानुभूति हो गई और विरादरी का अनुभव भी हो गया, जिससे धनाढ्य लोगो ने निर्धनो की सहायता करनी आरम्भ कर दी।

४ रक्त की पवित्रता—अपनी-अपनी जाति मे रहने के कारण रक्त की पवित्रता वनी रह सकी।

दोष—१ जातीय उन्नति मे वाधा—जातियो के कारण हिन्दू सोसाइटी असख्य भागो मे वट गई है, जो परस्पर ईर्ष्या-द्वेष रखते है। यही कारण है कि

हिन्दू एक सुदृढ तथा संगठित जाति नही बन सके है।

२ व्यक्तिगत उन्नति में बाधा—जो मनुष्य जिस जाति मे उत्पन्न हुआ है वह उस जाति के बन्धनो में बंधा है और यह बात व्यक्तिगत उन्नति के मार्ग मे एक बाधा है।

३ छूत-छात का आरम्भ—ऊँची जाति के लोगो का बर्ताव शूद्रो और नीची जातियो के लोगो से अच्छा नही था, वे इन लोगो को पतित मानते थे और उनसे छूना पाप समझते थे। उनके इस व्यवहार से छूत-छात की समस्या खडी होगई और यह हिन्दू सोसाइटी को रोग की भाति अन्दर ही अन्दर खाये जा रही थी। परन्तु अब स्वतन्त्र भारत में हमारी सरकार ने छूत-छात को समाप्त कर दिया है।

४ विवाह में बाधा—जाति-पाँति की व्यवस्था ने हिन्दुओ मे विवाह के क्षेत्र को बहुत ही सकुचित कर रखा है और कई हिन्दू विवाह न होने के कारण दूसरे धर्म को ग्रहण कर लेते है।

५. उच्च शिक्षा में बाधा—बहुत से लोग जाति के नियमो के बन्धन के कारण दूसरे देशो मे नाना प्रकार की विद्याओ को प्राप्त करने के लिए नहीं जा सकते थे।

६ हिन्दू धर्म की उन्नति मे बाधा—वर्तमान समय मे जाति व्यवस्था मे यह भी बुराई उत्पन्न होगई है कि अन्य लोगो के लिए हिन्दू धर्म मे सम्मिलित होना कठिन हो जाता है, क्योकि उन्हे किसी जाति मे भी बराबरी का दर्जा नही दिया जाता।

७. ऊँची जातियों को हानि—ऊँची जातियो के लोग अत्यन्त निर्धन होने पर भी अन्य जातियो के धन्धे ग्रहण नही कर सकते थे, क्योकि वे इसे अपना अपमान समझते थे।

प्रश्न २१—भारतीय सभ्यता का विदेशो में कहाँ-कहाँ प्रचार हुआ? प्रचारो के प्रमुख केन्द्रो का परिचय दें।

अथवा

वृहत्तर भारत से क्या अभिप्राय है? बाहर देशों में भारतीय सभ्यता का प्रचार किस प्रकार हुआ?

उत्तर—प्राचीन काल मे भारतीय लोग समुद्र यात्रा या विदेश जाने में पाप नही समझते थे। लाखो भारतीय पुराने समय में भारत से बाहर गये और उन्होंने अपनी सभ्यता का प्रसार किया। लङ्का, ब्रह्मा, आसाम, नैपाल, तिब्बत, मध्य एशिया, मंगोलिया और चीन मे भारत के प्रचारको ने न केवल भारतीय धर्म का प्रचार किया, अपितु वहाँ के लोगो को भारतीय सभ्यता और सस्कृति की दीक्षा भी दी। कम्बोडिया, जावा, सुमात्रा, बाली, स्याम आदि देशो ने भारतीयो ने उपनिवेश बसाए। सक्षेप मे निम्नलिखित वृहत्तर भारत का दिग्दर्शन इस प्रकार है.

१ खोतान—मध्य एशिया भारत का ही एक उपनिवेश था। वहाँ विशेषतया खोतान मे बौद्ध धर्म और भारतीय सस्कृति का प्रचार था। वहाँ खोज करने पर अनेक मूर्तियाँ व स्तूप उपलब्ध हुए है। सस्कृत के लेख भी इस प्रदेश से मिले है। फाहियान और ह्वेनसांग के वर्णनो से भी सूचित होता है कि सारा खोतान बौद्धधर्म का अनुयायी था। तिब्बत की एक अनुश्रुति के अनुसार अशोक के अन्यतम पुत्र कुस्तन और अन्यतम मत्री यश ने खोतान के प्रदेश मे जाकर उसे आबाद किया था। सम्भवत खोतान भारत का पहला उपनिवेश था।

२. सुवर्ण-भूमि—सुवर्ण भूमि का अभिप्राय दक्षिणी बर्मा से है। प्राचीन भारतीय को बर्मा के दक्षिणी प्रायद्वीप का परिचय छठी सदी ई० पू० से था। धीरे-धीरे वे व्यापार के लिए वहाँ आने जाने लगे। वहाँ सोने की खानें मिलने के कारण इस प्रदेश का नाम उन्होंने स्वर्ण-भूमि रखा। सम्पूर्ण सुवर्ण भूमि मे भारतीयो ने अनेक राज्य कायम किये। वहा अपने नये नगर कायम किये, उन्हे भारतीय नाम दिये गये। आधुनिक चीन के युङ नामक प्रदेश का नाम गान्धार था। इस तरह आजकल जिस प्रदेश को लओ कहते है, उसका पुराना भारतीय नाम मालवा था।

३ यूनान—जिन राज्य को आजकल इण्डोचायना कहते है। कौठार और पाण्डुरग के छोटे-छोटे राज्य उसी के अन्तर्गत प्रदेश मे स्थापित हुए। कोचीन, [illegible], कम्बुज, स्याम और मलाया प्रायद्वीप का बडा भाग यहाँ स्थापित

आर्य राज्य मे सम्मिलित थे। चीनी लोग इस राज्य को युन्नान कहते है। युन्नान की स्थापना एक ब्राह्मण द्वारा हुई थी।

४ चम्पा—इण्डोचायना के पूर्वी भाग मे चम्पा नाम के एक नए राज्य की स्थापना ई० की दूसरी सदी के लगभग हुई थी। भारत मे अग महाजनपद की राजधानी का नाम चम्पा था। भारत के चम्पा के ही कुछ साहसी महत्वाकाक्षी व्यक्ति इण्डोचायना मे जाकर वस गए थे और उन्होंने अपनी मातृभूमि की प्रसिद्ध नगरी चम्पा के नाम से ही इस सुदूरवर्ती विदेश मे एक उपनिवेश की स्थापना की थी। चम्पा का राज्य वडा उन्नत और समृद्ध था। वहाँ के भारतीय आर्य राजा वडे शक्तिशाली थे। उनकी भाषा सस्कृत थी। चम्पा का राज्य दस शताब्दी तक वडी शान के साथ स्थिर रहा। भद्रवर्मा, विक्रान्त वर्मा, इन्द्रवर्मन आदि अनेक राजाओ ने वहाँ राज्य किया।

५ कम्बुज—जिस प्रदेश को आजकल कम्बोडिया कहते हैं उसका प्राचीन नाम कम्बुज था। ईसा की पहली शताब्दी मे भारत के लोग वहाँ गये और अपना उपनिवेश वसाया। कम्वोज नाम का गणराज्य भारत मे ही विद्यमान था। सम्भवत यहाँ के कुछ साहसी युवको ने अपनी मातृभूमि की स्मृति मे यह उपनिवेश स्थापित किया। कम्वोज के प्राचीन नगरो के नाम भारतीय थे। यशोधरपुर, अमरेन्द्रपुर, भवपुर आदि अनेक नाम वहाँ विद्यमान थे। वारहवी सदी के प्रारम्भ मे वहाँ अकोरवाट नाम का एक भव्य विशाल मन्दिर वनवाया गया। यह मन्दिर एक मील लम्बा तथा एक मील चौडा है। मन्दिर का सब क्षेत्र विशाल इमारतो, स्तम्भो व मूर्तियो से परिपूर्ण है।

६. यवद्वीप के विविध राज्य—वर्तमान समय मे सुमात्रा और जावा के प्रदेश प्राचीन समय मे सुवर्ण द्वीप और यवद्वीप कहलाते थे। पाँचवी सदी मे वहाँ एक शक्तिशाली राज्य स्थापित हुआ। सातवी शताब्दी मे राजा शैलेन्द्र के परिश्रम मे सुमात्रा और जावा मे वौद्धधर्म ने वहुत उन्नति की। बोरोबुदुर का एक प्रधान मन्दिर वनवाया गया। इस मन्दिर की महत्ता उसकी प्रतिमाओं मे है जो कि मन्दिर की दीवारो पर अकित हैं। नवीं शताब्दी में जावा का राज्य स्वतन्त्र हो गया। वहाँ राजा दक्ष ने सुन्दर मन्दिर वनवाये, जिन पर

रामायण की सारी कहानी मूर्तियो मे चित्रित है।

७ बोर्नियो और बाली—इन द्वीपो मे भी भारतीय लोग बहुत पुराने जमाने मे जाकर बसे थे। बोर्नियो का भारतीय उपनिवेश बहुत देर तक फलता-फूलता रहा। राजा मूलवर्मा के शासनकाल मे यहाँ अनेको सस्कृत के शिला-लेख बनवाये गये।

बाली द्वीप जावा के समीप ही है, वहाँ अब तक भी हिन्दु मन्दिर विद्यमान है। बाली के प्राचीन निवासी पच कन्याओ—अहिल्या, द्रोपदी, सीता, तारी, मन्दोदरी की पूजा करते थे।

दक्षिण-पूर्वी एशिया के इन सब प्रदेशो मे सदियो तक भारतीय सभ्यता का प्रचार रहा है। जावा, सुमात्रा, बाली, कम्बोडिया, अनाम, स्याम आदि विविध प्रदेश वृहत्तर भारत के अग मात्र थे, जिनमे भारतीयो ने अपने उप-निवेश बसाये थे।

प्रश्न २२—विदेशों में भारतीय प्रचारकों के कार्य का उल्लेख करें।

उत्तर—अशोक के समय मे भारत से जो प्रचारक विदेशो में बौद्ध धर्म का प्रचार करने के लिये गये उनमे आचार्य उपगुप्त का नाम प्रसिद्ध है। विदेश में प्रचार की दृष्टि से एक महायोजना बनाई गई और उसको कार्यान्वित करने के लिये देश-देशान्तर मे भिक्षुओ की विविध मण्डलियाँ भेजी गईं। महामहीन्द्र, थेर रक्षित, महादेव आदि का इस समय के प्रधान भिक्षु दूसरे देशो मे धर्म का प्रचार करने की दृष्टि से गए।

कनिष्क ने भारतीय सभ्यता और सस्कृति को अपनाकर बौद्ध धर्म का प्रचार किया। अश्वघोष नाम के प्रसिद्ध बौद्ध विद्वान् को उसने पाटलिपुत्र से लाकर पेशावर मे बसाया। कनिष्क के समय मे बौद्ध धर्म का प्रचार चीन की ओर हुआ। इसी काल मे खोतान से धर्मरत्न और काश्यप मातग नामक दो भिक्षु पहले-पहल चीन में बौद्ध धर्म का प्रचार करने के लिए गए।

पाँचवी सदी ई० पू० मे कुमारजीव नाम का प्रसिद्ध बौद्ध विद्वान चीन में धर्म-प्रचार के लिए गया। चीन रहते हुए उसने अश्वघोष, नागार्जुन आदि बौद्ध विद्वानो के ग्रन्थो का चीनी भाषा मे अनुवाद किया। इसी सदी में

गुणवर्मा नाम का एक अन्य बौद्ध विद्वान् जावा के रास्ते से चीन गया और वहाँ बौद्ध धर्म की उन्नति की।

भारतीय प्रचारक चौथी सदी में कोरिया जा पहुँचे। वहाँ बौद्ध धर्म के प्रचार के साथ ब्राह्मी लिपि का भी प्रवेश हुआ। छठी सदी मे भारतीय प्रचारको द्वारा जापान को भी बौद्ध धर्म मे दीक्षित किया गया। पाँचवी सदी मे बुद्धघोष नाम के प्रसिद्ध आचार्य ने लका जाकर अपने धर्म का प्रचार किया।

तिब्वत मे बौद्ध धर्म के प्रचार का श्रेय भी भारतवर्ष को है। अशोक के समय मे आचार्य "हैमवत" ने तिब्वत को अपना कार्य-क्षेत्र बनाया। नालदा महाविहार के शान्तरक्षित आचार्य निमत्रण पाकर तिब्वत गये। ग्यारहवी सदी में आचार्य अतिश भी वहाँ पहुचे।

तिब्वत भाषा में बौद्ध ग्रन्थो का अनुवाद किया गया। इस कार्य को करने के लिए ७५ पण्डितो ने सहयोग दिया। इनमे से कुछ के नाम ये है—बौद्धश्री दीपकर, पदमाकर वर्मा, कुरुभद्र आदि। इन पण्डितो ने तिब्वत जैसे देश में जाकर वहाँ धर्म तथा ज्ञान का प्रचार कर महत्वपूर्ण कार्य किया।

प्रश्न २३—दक्षिण पूर्वी एशिया में भारत का क्या सास्कृतिक प्रभाव पड़ा ?

उत्तर—जिस समय भारतवासियो ने दक्षिण-पूर्वी एशिया मे प्रवेश करके अपने उपनिवेश और राज्य स्थापित किए, उस समय यह भूखण्ड बर्बर जातियों द्वारा आवासित था। यहाँ के रहने वाले असभ्य और बहुत ही खूँख्वार थे। हिन्दू आवासको ने इन्हे विभिन्न प्रकार की शिक्षा देकर सभ्य बनाया। सुवर्ण द्वीप के आवागमन का श्रेय हिन्दू राजकुमारो और ब्राह्मणो को है। इसी कारण से यहाँ शैव और वैष्णव धर्मो की प्रधानता रही। बोर्नियो तथा जावा से सैकडो हिन्दू देवी-देवताओ की मूर्तिया प्राप्त हुई है। क्राफोर्ड ने तो यहाँ तक लिखा है कि पुराणो का शायद ही कोई ऐसा देवता हो, जिसकी प्रतिमा जावा में न पाई गई हो। बालि के शिल्पी तो इस समय भी इन्द्र, विष्णु, कृष्ण की मूर्तियाँ बनाते है। यहाँ के निवासी भारतीय विधि से दुर्गा

तथा शिव की पूजा करते है। उनके कर्मकाण्ड तथा पूजा-पद्धति बिल्कुल हिन्दू हैं। वे पूजा मे जल-पात्र, माला, कुशा, तिल, घृत, मधु, अक्षत, धूप, दीप घण्टी तथा मन्त्रो का प्रयोग करते है। जातकर्म, नामकरण, विवाह, अन्त्येष्टि आदि हिन्दू-संस्कारो का प्रचार है। वर्ण व्यवस्था, सवर्ण विवाह तथा सती प्रथा की पद्धति प्रचलित है। वर्तमान समय मे बालि में दिखाई देने वाला यह हिन्दू प्रभाव प्राचीन काल में समस्त सुवर्ण द्वीप में विस्तीर्ण था।

दक्षिण पूर्वी एशिया मे भारतीय साहित्य और कला का भी प्रभाव पड़ा। सुवर्णद्वीप मे सर्वत्र ब्राह्मी वर्णमाला और संस्कृत भाषा का प्रसार था। चम्पा तथा कम्बुज से प्राप्त शिलालेख संस्कृत काव्यो की शैली का अनुसरण करते हुए निर्दोष, ललित, प्रौढ तथा प्राजल भाषा मे लिखे हुए है। इससे स्पष्ट है कि इन शिलालेखो के लेखको का संस्कृत भाषा, व्याकरण, पुराणो तथा काव्यो से प्रगाढ परिचय था। यहाँ मन्दिरो मे प्रतिदिन रामायण, महाभारत तथा पुराणो की अखण्ड कथाएँ होती थी। धार्मिक साहित्य के साथ-साथ लौकिक साहित्य का भी अनुशीलन होता था। कम्बुज के राजा ने पतजल महाभाष्य पर टीका लिखी थी।

कम्बुज की मूर्तिकला गुप्तयुगीन कला से प्रादुर्भूत हुई थी। धीरे-धीरे शिल्पी इतने प्रवीण हो गए कि उन्होंने पाषाणो मे ही अमर काव्यो की रचना कर डाली। कम्बोडिया तथा जावा के मन्दिरो में इसके प्रमाण है। वास्तु-कला का उच्चतम विकास अङ्कोर तथा बरबुडुर के अद्वितीय मन्दिरो में मिलता है। इस प्रकार के देवालय न भारत मे पाये जाते है और न किसी दूसरे देश मे। वे विश्व की अद्भुत वस्तुओ मे गिने जाते है तथा इन प्रदेशो मे भारतीय संस्कृति के अमर स्मारक है।

प्रश्न १४—पश्चिमी जगत् पर भारतीय संस्कृति का क्या प्रभाव पड़ा ?

उत्तर—पश्चिमी देशो के साथ भारत का व्यापारिक सम्बन्ध बहुत प्राचीन था। मोहिनजोदडो तथा हड़प्पा मे जो खुदाई हुई है, वहाँ से प्राप्त वस्तुओं से यह स्पष्ट है कि आज से ५००० वर्ष पूर्व भारत का मेसोपोटामिया तथा मिश्र के साथ सम्बन्ध था। सिकन्दर महान् के भारत पर आक्रमण

करने के पश्चात् तो भारत का पश्चिमी जगत् से सम्बन्ध बहुत अधिक बढ गया। सम्राट् अशोक ने पश्चिमी एशिया, योरोप तथा अफ्रीका मे अपने धर्म प्रचारक भेजे, इसकी पुष्टि उसके शिलालेखो से होती है। पश्चिम के धार्मिक विकास तथा ईसाई मत पर बौद्ध धर्म का पर्याप्त प्रभाव था। ईसाई धर्म के प्रादुर्भाव से पहले सीरिया में बैराग्य और समाधि पर बल देने वाले ऐसनीज़ तथा थेराप्यूट सम्प्रदायो पर पर्याप्त बौद्ध प्रभाव था। ईसा और बुद्ध के चरित्र तथा उपदेशो में विलक्षण समानता का कारण कुछ विद्वान् बौद्ध धर्म का प्रभाव ही मानते है। ईसा की पहली शतियो में सिकन्दरिया मे विकसित होने वाली दार्शनिक विचारधाराओ पर भारतीय दर्शनो का कुछ प्रभाव पडा था। इस्लाम के सूफीवाद बौद्धधर्म तथा वेदान्त के विचारो से कुछ प्रभावित है।

मध्य युग में अरब का भारत के साथ व्यापारिक सम्बन्ध होने के साथ-साथ घनिष्ठ सास्कृतिक सम्बन्ध भी था। बगदाद मे खलीफाओ का राज्य था। उनके मत्री बरमका वश के थे। ये मुसलमान होने से पहले बौद्ध धर्म को मानते थे। इन्होने खलिफाओ के दरबार मे भारतीय पडितो को बुलवाया था। इस युग मे सस्कृत ग्रन्थो का अरबी भाषा में अनुवाद भी करवाया गया था। अरब वालो ने भारतवर्ष से गणित, ज्योतिष, आयुर्वेद आदि की विद्यायें ग्रहण कर योरोप वालो को सिखाया। विभिन्न कालो मे पश्चिमी जगत पर जो भारतीय सस्कृति के प्रभाव पडे, उनका वर्णन नीचे दिया दिया गया है.

(१) धार्मिक प्रभाव—सम्राट् अशोक ने बौद्ध धर्म के प्रचार के लिए अपने धर्मदूतों को सीरिया, मिश्र, यूनान आदि पश्चिमी देशो मे भेजा था, इसीलिए बौद्ध धर्म का ईसाई मत पर प्रभाव पड़ा। ईसा की शिक्षाओं तथा बुद्ध के उपदेशो में पायी जाने वाली समानता का एक कारण अनेक विद्वानो की सम्मति मे यही है कि ईसा के जन्म से पहले पश्चिमी एशिया मे बौद्ध धर्म के सिद्धांत पहुँच चुके थे।

(२) दार्शनिक प्रभाव—ईसा की पहली सदी में मिश्र की राजधानी

सिकन्दरिया पश्चिमी जगत् की संस्कृति का एक महत्त्वपूर्ण केन्द्र था, इसका भारत के साथ व्यापारिक सम्बन्ध था। इस सम्बंध से वहाँ पर्याप्त भारतीय विचार पहुँचे। यहाँ विकसित होने वाली दार्शनिक विचार धाराओं में नव-प्लेटोवाद पर योग का प्रभाव है, हर्मीवाद में वेदान्त के विचार हैं और अभिज्ञानवाद पर साँख्य दर्शन का प्रभाव है।

(३) वैज्ञानिक प्रभाव—बगदाद के अब्बासी खलीफाओं ने आयुर्वेद, गणित, ज्योतिष आदि विविध विज्ञानों के संस्कृत ग्रंथों का अरबी अनुवाद कराया। इस समय अरबों ने भारतीयों से अनेक नवीन बातें सीखीं और उन्हें योरोप वालों को सिखाया। भारत की सबसे बड़ी देन दशगुणोत्तर अंक लेखन पद्धति थी। इसमें एक से नौ तक के अंक तथा शून्य से सब संख्याएँ प्रकट की जाती हैं, पहले विभिन्न संख्याओं को अक्षरों द्वारा लिखा जाता था। योरोप में १२वीं शताब्दी तक अंक इसी प्रकार लिखे जाते थे, अरबी के माध्यम से भारत का यह आविष्कार योरोप पहुँचा, योरोप वाले इन अंकों को अरबों से ग्रहण करने के कारण इन्हें अरबी अंक कहते हैं। अरब वालों ने इन्हें भारत या हिन्द से ग्रहण किया। अतः अरब इन्हें हिन्दसा कहते हैं। शतरंज और चौसर के खेल भी भारत में आविष्कृत हुए और अरबों ने इनका पश्चिमी जगत् में प्रसार किया। डा० मैकडानल्ड के अनुसार शल्य-कर्म की बहुत सी बातों के लिए पश्चिमी जगत भारत का ऋणी है। वर्तमान युग में भी महात्मा गाँधी की अहिंसात्मक विचारधारा और जवाहरलाल नेहरू का पंचशील का सिद्धांत महायुद्धों की विभीषिका से संत्रस्त समस्त मानव जाति के लिए आशा की एकमात्र किरण है।

प्रश्न २४—सिद्ध कीजिये कि गुप्तकाल भारत के इतिहास का स्वर्ण-युग है। (प्रभाकर, जून १९५४)

अथवा

गुप्तकाल के प्रमुख साहित्यकारों तथा वैज्ञानिकों का उल्लेख करते हुये उस समय के समाज का वर्णन करो। (प्रभाकर, जनवरी १९५३)

अथवा

गुप्त युग की सामाजिक अवस्था तथा साहित्यिक उन्नति पर अपने विचार प्रगट करो। (प्रभाकर, जून १९५३)

अथवा

गुप्तकाल की सर्वतोमुखी उन्नति का परिचय देकर सिद्ध करें कि गुप्तकाल भारतीय संस्कृति का उज्ज्वल काल है।

उत्तर—मौर्य वश के पतन के पश्चात् भारतवर्ष के अधिकतर प्रदेशो में शक, हूण, कुषाण आदि विदेशी जातियो का लगभग पाच सौ वर्ष तक शासन रहा। गुप्त राजाओ ने इस विदेशी शासन को समाप्त कर गुप्त साम्राज्य की स्थापना की। इस वश का राज्य लगभग डेढ शताब्दी तक रहा। इस काल मे भारतवर्ष की चहुँमुखी उन्नति हुई। देश में पूर्ण शान्ति रही। प्रजा प्रत्येक प्रकार से पूर्ण सुखी थी। इस समय मे जैसी उन्नति हुई ऐसी न पहले कभी हुई और न उसके पश्चात् ही हो पाई। इसी कारण से गुप्तकाल भारतवर्ष के इतिहास में स्वर्णकाल कहलाता है। इस काल मे हुई साहित्यिक, राजनैतिक वैज्ञानिक, कलात्मक आदि उन्नति इस प्रकार है .

(१) साहित्यिक उन्नति—सम्राट् चन्द्रगुप्त द्वितीय वहुत ही कला और साहित्य प्रेमी था। उसके राज्यकाल मे साहित्य की वहुत ही अधिक उन्नति हुई। वह विद्वानो का आदर करता था। उसके दरवार मे नौ वडे-वडे विद्वान् रहते थे, जो नवरत्न कहलाते थे। सस्कृत का महान् पडित और सर्वश्रेष्ठ कवि एव नाटककार कालिदास इन्ही नवरत्नो मे एक था। सस्कृत के श्रेष्ठ महाकाव्य रघुवश की रचना कालिदास के द्वारा इसी समय हुई। इनके अतिरिक्त 'कुमारसभव' और 'मेघदूत' दो काव्य-ग्रंथ एव अभिज्ञान-शाकुन्तल, विक्रमोर्वशीय और मालविकाग्निमित्र तीन नाटक भी उन्होंने लिखे। इनमें शकुन्तला नाटक सर्वश्रेष्ठ है। इसके विषय मे कहा गया है—"काव्येषु नाटकं रम्य तत्र रम्य शकुन्तला" वास्तव में कालिदास के विषय में यह कहावत ठीक ही है —Kalidas is the Shakespear of India

कालिदास के अतिरिक्त गुप्त काल मे अश्वघोष ने बुद्ध चरित और सौन्दरानन्द दो महाकाव्यो की रचना की। हरिषेण ने समुद्रगुप्त के शासन काल में साहित्य सर्जन किया। काव्य-कला की दृष्टि से उनका स्थान कालिदास के समान ही उच्च समझना चाहिए। सुबन्धु ने 'वासवदत्ता' गद्य काव्य लिखा

जो कला की दृष्टि से बहुत ही सुन्दर है। विष्णुशर्मा का पचतन्त्र संस्कृत साहित्य का एक अमूल्य रत्न है। विश्व की लगभग पचास भाषाओ में इसके दो सौ से अधिक अनुवाद हो चुके है। विशाखदत्त द्वारा लिखित 'मुद्राराक्षस' और शूद्रक द्वारा लिखित 'मृच्छकटिक' सस्कृत के प्रसिद्ध नाटक है। इनके अतिरिक्त अन्य भी अनेको उच्च कोटि की रचनाएँ इस काल मे हुई। कई बौद्ध ग्रथो की रचना भी इस समय हुई। इस काल की प्रमुख काव्य-भाषा सस्कृत रही। पाली और प्राकृत का स्थान गौण था। केवल गुप्त युग मे ही सस्कृत राष्ट्रभाषा के पद पर आसीन रही है। अन्य किसी भी काल मे सस्कृत को सम्मान प्राप्त नही हुआ। इस प्रकार साहित्यिक दृष्टि से गुप्तकाल एक महान् युग है।

विज्ञान—गुप्तकाल मे विज्ञान की भी बहुत उन्नति हुई। गणित, ज्योतिष और आयुर्वेद के कई नए आविष्कार हुए और इन विषयो पर उच्च कोटि के ग्रथ लिखे गये। इस काल मे सर्वप्रथम आर्यभट्ट ने इस तथ्य की खोज की कि पृथ्वी गोल है और वह सूर्य के चारो ओर घूमती है। ज्योतिष और गणित के बहुत बडे विद्वान् आचार्य वराहमिहिर भी इसी समय हुए। गणित क्षेत्र मे अङ्को की "दशगुणोत्तर" अक लेखन पद्धति का आविष्कार भी इसी समय हुआ।

आयुर्वेद के प्रसिद्ध आचार्य 'चरक' और 'सुश्रुत' भी इसी युग मे हुए। उन्होंने वैद्यक के कई उच्चकोटि के ग्रथ लिखे। 'चरक सहिता' आयुर्वेद का एक बहुत ही प्रसिद्ध ग्रथ है। शल्य-चिकित्सा भी इसी युग की देन है।

गुप्तकाल मे दिल्ली के समीप महरौली मे एक लोह स्तम्भ बनाया गया, जो इस काल की वैज्ञानिक उन्नति का एक प्रत्यक्ष प्रमाण है। आज सहस्रो वर्ष व्यतीत हो जाने पर भी यह स्तम्भ उसी प्रकार खडा हुआ है। वर्षा, गर्मी सर्दी का इस पर कोई प्रभाव अभी तक नही हुआ। यद्यपि आज विज्ञान बहुत उन्नति कर चुका है परन्तु आज के वैज्ञानिक भी अभी तक यह पता नही लगा सके है कि यह किस धातु का बना है और किस प्रकार इतने बडे स्तम्भ को ढाला गया है कि इसमे एक भी जोड़ नही है।

कला—कला की दृष्टि से भी इस युग का बहुत अधिक महत्त्व है। इस काल में मूर्तिकला और वास्तु-कला की अत्यधिक उन्नति हुई। देवताओं की अनेकों मूर्तियों, मन्दिरों और भवनों का निर्माण इसी युग में हुआ। इस समय कला के मुख्य केन्द्र सारनाथ और नालन्दा थे। सारनाथ और मदुरा की बुद्ध मूर्तियों तथा देवगढ की देवताओं की मूर्तियों से इस युग की कला की उन्नति का पता चलता है। ये मूर्तियाँ सजीव प्रतीत होती हैं। इस युग की निर्मित अजन्ता की गुफाओं की दीवारों पर अंकित चित्रों को देखकर विदेशी कलाकार भी दाँतों तले अँगुली दबा जाते हैं। आज इन चित्रों की गणना विश्व के सर्वोत्तम चित्रों में होती है।

दर्शन-ज्ञान और शिक्षा—इस काल में आचार्य वसुबन्धु और दिङ्नाग बहुत ही प्रसिद्ध दार्शनिक हुए हैं। आचार्य वसुबधु बौद्ध दार्शनिक और दिङ्नाग एक उच्च कोटि का तार्किक था। बौद्ध धर्म पर जो दोषारोपण किये गए उन सब का उन्होंने तर्क सहित उत्तर दिया। शिक्षा का भी गुप्तकाल में अच्छा प्रबन्ध किया गया। सम्राट् कुमारगुप्त ने राजगृह के समीप नालन्दा महाविहार की स्थापना की जो आगे चल कर नालन्दा विश्वविद्यालय के नाम से प्रसिद्ध हुआ और यह शिक्षा का एक महान् केन्द्र बन गया। यहाँ पर विदेशों से भी सहस्रों विद्यार्थी शिक्षा ग्रहण करने के लिए आते थे।

सामाजिक स्थिति—इस काल की सामाजिक उन्नति का पता विदेशी यात्री फाहियान के लेखों से पूरी तरह चलता है। उसने लिखा है "भारत-वर्ष संसार में सबसे अधिक सभ्य देश है। यहाँ पूर्ण शान्ति है। चोर-डाकुओं का जंगल में भी भय नहीं है। लोग अपराध बहुत कम करते हैं। नशीली वस्तुएँ शराब आदि का प्रयोग नहीं किया जाता है। चांडाल लोग नगर से बाहर रहते हैं। जनता सभ्य, धनसम्पन्न और सदाचारी है। अनाथ और विधवायें दानगृहों से लाभ उठाती हैं।" इस प्रकार उस समय सामाजिक स्थिति भी बहुत अच्छी थी। इस युग में समाज की पाचन-शक्ति भी बहुत ही अच्छी थी। विदेशी जातियों जैसे हूण, शक, कुषाण आदि को इस समय हिन्दुओं ने ग्रहण कर लिया अर्थात् उनको हिन्दू समाज में स्थान दे दिया। इन लोगों के साथ हिन्दुओं ने वैवाहिक सम्बन्ध भी स्थापित कर लिए जिसका परिणाम यह हुआ कि समय बीतने पर ये लोग हिन्दुओं में पूर्णरूप से घुल-मिल गये और कोई विभिन्नता

या भेद-भाव नही रहा और फिर ये भी अपने आप को हिन्दू कहने लगे। यद्यपि अस्पृश्यता की बुराई बहुत प्रचलित हो चुकी थी, परन्तु फिर भी योग्य शूद्रो को भी उच्च पद दिए जाते थे।

राजनीतिक अवस्था—राजनैतिक दृष्टि से भी शूद्र काल एक महान् युग था। राजा ही को सेना और न्याय के समस्त अधिकार प्राप्त थे। मत्री-परिषद तो केवल उसे परामर्श देने के लिए होती थी। राजा न्यायी और निष्पक्ष थे। राजा प्रजा की रक्षा और सुख का जिम्मेदार था। देश की आर्थिक स्थिति भी बहुत अच्छी थी। विदेशो से व्यापार होता था। विदेशो मे भारतीय उपनिवेश स्थापित किए गये थे जहाँ धर्म का प्रचार भी किया जाता था।

इसमे सदेह नही कि गुप्तकाल भारतीय इतिहास का स्वर्ण युग है।

प्रश्न २६—राजपूत काल की परिस्थितियो का उल्लेख करते हुए इस काल की सामाजिक, राजनैतिक, धार्मिक अवस्था का चित्र खींचें।

उत्तर—गुप्त साम्राज्य जब प्रगति की ओर अग्रसर हो रहा था तब हूणो ने भारतवर्ष पर आक्रमण करने प्रारम्भ कर दिए थे। परन्तु शक्तिशाली, प्रतापी, चक्रवर्ती सम्राट स्कन्दगुप्त बडी वीरता से उक्त बाह्य आक्रमणो का प्रबल विरोध करने मे सलग्न रहे। जिसका यह परिणाम हुआ कि हूणो को मुँह की खानी पडी और वे उलटे पाव वापिस चले गए। गुप्तकाल का पतन होने लगा तो हूणो ने पुन आक्रमण किये। देश मे राजा लोग पृथक्-पृथक् यथाशक्ति इन आक्रमणो को रोकते रहे किन्तु हूण येन-केन प्रकार से यत्र-तत्र भारत मे प्रविष्ट हो गए। इस प्रकार हूणो के आक्रमणो से देश की शक्ति छिन्न-भिन्न हो गई। राष्ट्रीय एकता का ह्रास हो गया। भारत नानाविध टुकडो मे बट गया। इतिहासकारो का कथन है कि तत्कालीन शासन-सूत्र का सचालन करने वाले राजपूत जाति के थे। यह कौन थे, इस सम्बन्ध मे विविध धारणाएँ है। कई विद्वानो का विचार है कि जो लोग आक्रमण कर यहाँ प्रविष्ट हो गए थे जैसे हूण, ये ही आकर यहाँ के सामाजिक जीवन मे घुल-मिल गए जिन्हे राजपूत कहा गया। मि० टाड आदि विद्वानो के मतो मे भी इसी प्रकार की धारणाएँ है। इनका कथन है कि जो उच्च जातियो से सम्बन्धित थे उन्हे ही राजपूत की सज्ञा दी गई तथा निम्न जातियो को अहीर, जाट आदि से पुकारा गया। पृथ्वीराज के मित्र कवि चन्दबरदाई का मत है कि कुछ

राजपूतो का जन्म यज्ञकुण्ड से हुआ था। जिसे देवताओ ने आबू-पर्वत पर किया था। उन्होने परमार, सोलङ्की, चौहान आदि जातियो से सम्बन्धित राजपूतो के विषय में वर्णन किया है। पडित गौरीशकर हीराचन्द ओझा के मतानुसार क्षत्रियो की सन्तान है, विदेश के नही।

(१) राजनैतिक—इस समय की राजनैतिक स्थिति पतनावस्था में थी। राष्ट्रीय एकता का अभाव था। नरेश परस्पर युद्ध करते रहते थे। कभी भी मिलकर रहना नही जानते थे। परस्पर लडाई-झगडे के कारण राजाओ की शक्ति क्षीण हो गई। उन्होने मिलकर आक्रमण का मुकावला नही किया। जिसके फलस्वरूप मुसलमानो ने भारत मे प्रवेश किया और भारतीय राजाओ की महान् गलती एव मूर्खता के कारण वे भारत मे अपना साम्राज्य स्थापित करने मे सफल हो गए, और १२ वी शताब्दी पर्यन्त लोग राजपूत भारत के भिन्न-भिन्न राज्यो मे शासन करते रहे।

(२) सामाजिक—इस काल की सामाजिक स्थिति अवनति की ओर थी। वर्ण-व्यवस्था का प्रभुत्व होने लगा। विभिन्न उपजातियो का आविर्भाव हो गया। समाज का ढाचा ढीला हो गया। जातीयता का वोलवाला होने लगा। स्त्रियो की अवस्था अच्छी नही थी। विधवाएँ या तो सती हो जाती थी अथवा सन्यासिनी वनकर अपना जीवन व्यतीत करती थी। किन्तु विदुषी नारियो का प्रादुर्भाव भी इस काल मे हुआ। शकराचार्य को निरुत्तर कर देने वाली विदुषी महिला मडनमिश्र की पत्नी लक्ष्मी तथा गणितज्ञा लीलावती इसी काल की देन है।

(३) धार्मिक—इस समय मे पौराणिक धर्म की प्रधानता थी। विविध पौराणिक मत-मतान्तर चल पडे। मूर्तिपूजा का प्रचलन हुआ। वौद्ध धर्म का पतन इसी समय मे हुआ। इस काल मे शाक्त तथा वाम सम्प्रदाय की उत्पत्ति हुई। सीता, राम, कृष्ण, के मन्दिरो की स्थापना की जाने लगी। समाज की नौका डगमगाने लगी। भारत की इस डूवती नौका को वचाने वाले शकराचार्य और कुमारिल भट्ट ने कमर कस समाजोद्धार का वीडा अपने कन्धो पर लिया।

प्रश्न २७—इस्लाम का भारत में प्रवेश किस प्रकार हुआ ?

उत्तर—सातवी सदी मे, जव उत्तरी भारत पर सम्राट् हर्ष-वर्धन को

शासन था, अरब मे एक महापुरुष का जन्म हुआ, जिसका नाम मुहम्मद है। मुहम्मद से पूर्व अरब मे राजनैतिक दृष्टि से एकता का अभाव तथा सामाजिक दृष्टि से पतन था। स्त्रियो की दशा शोचनीय थी। मुहम्मद ने अरब की दशा मे अनेक सुधार किए। मुहम्मद ने मूर्ति-पूजा का खण्डन किया, मनुष्य-मनुष्य समान है, यह उनका प्रचार था। मुहम्मद के धर्म को इस्लाम कहते है। मुहम्मद ने राजनैतिक क्षेत्र मे भी प्रशमनीय कार्य किया। अरब के लोगो में सजीवनी का सचार कर मुहम्मद ने सब को एक सूत्र मे बाध दिया।

अरब की इस नई शक्ति का उपयोग साम्राज्य के विस्तार के लिए किया गया। अरबो की बढती हुई आधी भारत तक भी आ पहुँची। खलीफा उमर के समय मे पहले-पहल भारत के पश्चिमी तट पर अरबो ने आकर आक्रमण किया, परन्तु वह परास्त हुए। ७१० मे सिन्ध पर आक्रमण कर उस पर उन्होने अपना अधिकार जमा लिया।

अरबो का यह विशाल साम्राज्य देर तक स्थित न रहा। वह विलासी और निर्बल बन गए। इस दशा का लाभ उठा कर तुर्क लोगो ने अरब पर आक्रमण किए। अलप्तगीन ने गजनी मे तुर्क राज्य की स्थापना की। अलप्तगीन की मृत्यु के पश्चात् सुबुक्तगीन गजनी का राजा बना, उसने भारत पर आक्रमण किया। सुबुक्तगीन मार्ग में विजय प्राप्त करता हुआ सिन्धु तक पहुँचा और अन्त मे सिन्ध को भी अपने राज्य मे शामिल कर लिया। सुबुक्तगीन के पश्चात् उसका लडका महमूद गजनी का सुल्तान बना।

इसने भारत पर अनेक आक्रमण किए। महमूद अपने प्रयास से सिन्ध के अतिरिक्त उत्तर-पश्चिमी पजाब को हस्तगत कर सका। भारत पर इस्लाम का शासन वास्तविक रूप मे अफगान लोगो ने स्थापित किया। बारहवी सदी के अन्त मे मोहम्मद गौरी ने भारत पर आक्रमण कर उत्तरी भारत के बड़े भाग पर अपना अधिकार कर लिया। तेरहवी सदी से भारत में इस्लाम धर्म के अनुयायी इन अफगानो की शक्ति निरन्तर बढती गई।

प्रश्न २८—इस्लाम के हिन्दू धर्म से सम्पर्क के कारण दोनो के जीवन पर क्या प्रभाव पडा? (प्रभाकर, नवम्बर १९५३)

उत्तर— मुसलमानो से पहले भी भारतपर अनेक विदेशी-जातियो के आक्रमण हुए थे। राजनीतिक दृष्टि से इन जातियो ने चाहे भारत पर विजय पाई

हो, पर धर्म और सस्कृति की दृष्टि से ये सदा आर्यो से परास्त हुई। शक, युइची, कुशाण व हूण सभी भारत मे आकर भारतीय धर्मो के अनुयायी बन गये। इन्होने यहाँ की भाषा, साहित्य व सस्कृति को भी अपनाया और यह सब जातियाँ पूरी तरह से भारतीय समाज का एक पूरा अग बन गई। परन्तु अरबो, तुर्को और अफगानो ने भारत मे अपने को विलीन नही किया। इनके अनेक कारण है

(१) इस्लाम मे असाधारण जीवनशक्ति थी उसका उद्देश्य सारे ससार को अपनी सीमा मे लाने का था। भारत को वे अपने में लीन करना चाहते थे। वे भारत लीन नही हुए।

(२) भारत मे जाति-भेद तथा कट्टरता सीमा तक पहुँच चुकी थी। इस्लाम धर्म में जाति-भेद को कोई महत्व नही था। इस रूप मे मुसलमानो को यहाँ अपने धर्म का विस्तार करने का अच्छा अवसर मिल गया।

(३) भारत के धर्म मे इस समय आन्तरिक ह्रास हो चुका था। हमारी पाचन-शक्ति समाप्त हो चुकी थी। इस कारण मुसलमान हिन्दू-समाज में अपने को लीन नही कर सका।

धर्म के सम्बन्ध मे जो बात हुई वही भाषा और सस्कृति के क्षेत्र मे भी हुई। शुरू मे तुर्को ने जब भारत पर आक्रमण किया तो उन्होने अपने सिक्को पर सस्कृत मे लेख अकित करवाये। परन्तु यह प्रवृत्ति बहुत देर नही चली। उन्होने पर्शियन भाषा तथा लिपि का भारत मे प्रवेश कराया। हिन्दू, मुसलमानो की दुनिया एक-दूसरे से अलग हो गई।

इस्लाम के सम्पर्क से हिन्दुओ के जीवन पर अनेक प्रभाव पडे।

मुसलमानो का मुख्य सिद्धान्त ईश्वर का एक होना था, हिन्दुओ के लिए यह कोई नई बात नही थी। 'ईश्वर एक है' यह विचार वेदो के समय से भारत मे चला आता था। हिन्दुओ ने शीघ्र ही यह समझ लिया कि ब्रह्म और अल्लाह भिन्न नही है। हिन्दुओ ने अल्लाह के नाम को भी मान्यता दी।

(४) इसी समय हिन्दूधर्म मे एक नई लहर चली जिसका श्रेय प्रधानतया वैष्णव सन्तो को है। हिन्दुओ मे व्रतो और अनुकरणो का बडा महत्व है। परन्तु चौदहवी सदी मे एक नई धार्मिक लहर आरम्भ हुई। रामानन्द ने इस लहर मे सर्वप्रथम सबसे अधिक योग दिया। रामानन्द ने वैष्णव धर्म मे भारी

आन्तरिक परिवर्तन किया। रीति-रिवाज, रूढियो के विरुद्ध आवाज उठाकर भक्ति की ओर ध्यान दिया गया। भक्ति के लिये ब्राह्मण, शूद्र, पुरुष, स्त्री, हिन्दू व मुसलमान का भेद नही। रामानन्द ने सब जातियो के लोगो को अपना शिष्य बनाया। रामानन्दजी के प्रचार की मूल भावना का मुसलमानो से साम्य है।

रामानन्द के शिष्यों मे कबीर और रविदास का नाम उल्लेखनीय है। कबीर ने हिन्दू-मुसलमानो दोनो के अन्ध-विश्वासो का विरोध कर कहा—

अरे इन दोऊन राह न पाई
हिन्दुअन की हिंदुवाई देखी
तुरकन की तुरकाई

कबीर ने भेदभाव का विरोध करते हुए कहा—"जाति पाँति पूछे न कोई हरि को भजे सो हरि का होई।" कबीर ने मानवता की भूमि पर स्थित होकर हिन्दुओ और मुसलमानो दोनो को एक अलौकिक आराध्य देव के दर्शन कराये।

रामदास और कबीर के बाद पन्द्रहवी सदी मे गुरु नानक हुए। हिन्दू और मुसलमान दोनो ही उनके शिष्य बने। गुरु नानक के समय मे ही बङ्गाल में चैतन्य महाप्रभु हुए। महाप्रभु ने भी जात-पात का विरोध किया। इनके भी शिष्यो मे हिन्दू-मुस्लिम दोनो मिलते हैं।

जिस समय उत्तरी भारत मे स्वामी रामानन्द नई धार्मिकता चला रहे थे उस समय महाराष्ट्र मे विसोवातखेचर नामक एक सन्त हुए। इनके शिष्य नामदेव ने महाराष्ट्र में धार्मिक सुधार की उसी लहर को प्रारम्भ किया, जिसने आगे चलकर ज्ञानदेव, तुकाराम, रामदास आदि सन्तो को जन्म दिया।

स्वामी रामानन्द ने यह रामभक्ति की जो लहर दी थी उसे तुलसीदास ने बहुत विकसित किया। उन्होने रामचरितमानस लिखकर भारत की जनता के लिए आशाकेन्द्र निर्माण किया।

स्वामी रामानन्द द्वारा चलाई गई धार्मिक लहर पर इस्लाम का प्रभाव था। मुसलमानो के सम्पर्क मे आने से हिन्दू समाज मे एक नई अनुभूति उत्पन्न हुई थी। उन्हें यह समझ आने लगा था कि जात-पात से कोई काम नही चल सकता। धर्मकाण्ड के जटिल नियम जनता के लिए उपयोगी नहीं।

इस्लाम पर भी भारत के वैष्णवधर्म के सम्पर्क का महत्त्वपूर्ण प्रभाव हुआ। उसमे नये सम्प्रदाय का आरम्भ हुआ जिसे सूफीमत कहते हैं। सूफी लोग धार्मिक दृष्टि से बड़े उदार थे और उन्होने भारतीय अद्वैतवाद, रहस्यवाद के अनेक तत्वो को अपने मन्तव्यो मे शामिल कर लिया था। भारतीय विचारो का प्रभाव न केवल मुसलमानो के धर्म पर पड़ा, अपितु उनके कला और जीवन के अन्य अङ्ग भी भारतीय प्रभाव से अछूते नही रह सके। अफगान शासको ने जो बहुत से भवन बनवाये उन सब पर भारतीय कला की स्पष्ट छाप है। बगाल के मालदा जिले मे एक सुप्रसिद्ध अदीना मस्जिद है जिसे सिकन्दरशाह ने बनवाया था। वह पुराने बौद्धस्तूप की सामग्री से तैयार की गई थी। इसी प्रकार जौनपुर, मालवा, गुजरात आदि मस्जिदो पर भी भारतीय कला की छाप स्पष्ट है। इस समय के कला-विकास को हम भारतीय कला का मुस्लिम सस्करण मात्र कह सकते हैं।

मुसलमानो ने भारत के जनसाधारण की भाषा को अपनाया। मलिक-खुसरो का नाम इस दृष्टि से उल्लेखनीय है। खुसरो खड़ी बोली के प्रथम कवि है। पर्शियन और हिन्दी के सम्पर्क से इस समय एक नई भाषा का विकास आरम्भ हुआ जो आगे चलकर उर्दू कहलाई।

अनेक अफगान-राजा भारत के पुराने साहित्य के भी बड़े प्रेमी थे। इनके प्रोत्साहन से सस्कृत की अनेक पुस्तको का अनुवाद पर्शियन भाषा मे हुआ। लोक-भाषाओ को भी प्रोत्साहन दिया गया।

इसमे सन्देह नही कि धर्म और सस्कृति के क्षेत्र मे एक-दूसरे से बहुत भिन्न होते हुए भी हिन्दू और मुसलमान एक-दूसरे के समीप आने लगे थे। यदि हिन्दुओ की सामाजिक पद्धति कुछ अधिक उदार होती तो ये जातियाँ एक दूसरे के और भी अधिक समीप आ सकती थी।

प्रश्न २१—प्राचीन भारतीय शासन,प्रणाली का पूर्ण परिचय दीजिए।

उत्तर—आरम्भ मे ही भारतवर्ष मे दो प्रकार की शासन-प्रणालियो के दर्शन होते है—(१) राजतन्त्र, (२) प्रजातन्त्र। राजतन्त्र मे राज्य राजा की सम्पत्ति माना जाता है। राजपद उत्तराधिकार मे प्राप्त होता है। राजा परामर्श करने के लिए मन्त्रियो की नियुक्ति कर लेता है, परन्तु उसकी इच्छा ही सर्वोपरि होती है। राजा का विरोध करने का किसी को भी अधिकार नही

होता है। राजा अपने अधिकारो को दैवी समझता है। परतु प्रजातंत्र मे राजा प्रजा के द्वारा निर्वाचित होता है। प्रजा को अधिकार होता है कि वह स्वेच्छाचारी निरकुश शासक को पदच्युत कर दे। राजा को परामर्श देने के लिए और देश के लिए कानून बनाने के लिए एक सभा होती है जिसके समस्त सदस्य प्रजा निर्वाचित प्रतिनिधि होते है। भारतवर्ष मे गुप्त-युग से पहले ही प्रजातन्त्र शासन-प्रणाली के दर्शन होते है। उसके पश्चात् तो राजतन्त्र शासन-प्रणाली ही दिखाई देती है।

राजतन्त्र—विशाल मौर्य साम्राज्य को पाच चक्रो मे बाँटा गया था। इन चक्रो का शासन करने के लिए राजा अपने ही व्यक्तियो को नियुक्त करता था। इन्हे कुमार कहते थे। चक्रो को मण्डलो से बाटा गया था और मण्डलो को जनपदो से। जनपदो को ग्रामो मे विभाजित किया जाता था। ग्राम ही राज्य की सबसे छोटी इकाई होती थी। सम्राट् राज्य का स्वामी होता था जो पाटलिपुत्र मे रहता था। सम्राट् को शासन कार्य मे सहायता करने के लिए एक मन्त्रि-परिषद् होती थी। राज्य को अठारह भागो मे विभाजित किया गया था। प्रत्येक भाग को तीर्थ कहते थे। प्रत्येक तीर्थ का शासन करने के लिए एक अधिकारी होता था जिसको महामात्य कहते थे।

मौर्य-युग मे राज्य का कर्त्तव्य देश की बाह्य और आन्तरिक उपद्रवो से रक्षा करने के साथ-साथ प्रजा की सर्वाङ्गीण उन्नति करना भी समझा जाता था। सम्राट् जनता को हर तरह से सुखी बनाने का प्रयत्न करता था। राज्य की ओर से दीन-दुखियो की सहायता की जाती थी। लोगो को रोजगार देने के लिए नए-नए धन्धे खोले गए। कुरीतियो और व्यसनो को नष्ट करने के लिए सरकार प्रत्येक समय कटिबद्ध रहती थी। धर्म, सदाचार आदि के विस्तार के लिए प्रयत्न किए गए।

इस राजतन्त्र की एक विशेषता यह है कि बडे-बडे नगरो का शासन बहुत ही अच्छे ढंग से होता था। मैगस्थनीज ने पाटलिपुत्र नगर के शासन प्रबन्ध के विषय मे लिखा है कि पाटलीपुत्र की शासन-व्यवस्था के लिए ३० व्यक्तियों की एक नगरसभा थी। यह नगरसभा छ उपसमितियो मे विभाजित थी—(१) शिल्प समिति, (२) वाणिज्य समिति, (३) वैदेशिक समिति, (४) वस्तु-निरीक्षण समिति, (५) कर-संग्रह समिति, (६) जनगणना समिति। प्रत्येक समिति के कार्य पृथक्-पृथक् थे। ये सब मिलकर सामूहिक दृष्टि से नगर की व्यवस्था सुन्दर बनाती थी। मौर्यकाल के शासन के इस ढांचे से वह भली

भाँति समझा जा सकता है कि प्राचीन भारत भारत मे शासन व्यवस्था का क्या स्वरूप था।

भारत के प्राचीन ग्रामो की शासन-व्यवस्था से यह स्पष्ट है कि प्रत्येक ग्राम अपना पृथक् अस्तित्व रखता था। ग्राम के सर्वोच्च अधिकारी को ग्रामिक कहते थे। ग्राम की अपनी सार्वजनिक निधि भी होती थी। ग्राम सभायें सार्वजनिक हित के अनेक कार्य करती थी। ये न्याय भी करती थी। इन ग्राम सभाओ के कारण ही भारतवर्ष के निवासियो की स्वतन्त्रता सदा सुरक्षित रही है।

प्रजातन्त्र शासन प्रणाली—प्राचीन भारत की शासन व्यवस्था मे प्रजातन्त्र शासन-प्रणाली का भी प्रचलन था। गणतत्रो मे यह प्रणाली प्रचलित थी। इस प्रणाली मे कोई भी व्यक्तिविशेष राजा नही होता था। प्रजा जिस व्यक्ति को निर्वाचित करती थी वही राजा बनता था। सिहासनारूढ होते समय राजा प्रजा के हित और कल्याण के कार्य करने की प्रतिज्ञा करता था। राजा सर्वेसर्वा नही होता था। देश के लिए विधान बनाने के लिए समितियाँ होती थी। इन समितियो के सदस्य प्रजा के प्रतिनिधि होते थे। इनकी सख्या कभी-कभी तो एक हजार से भी अधिक होती थी। जब कभी भी कोई कानून बनता था तो उस पर समिति के सदस्य आपस मे बहस करते थे और अन्त मे वोटो के द्वारा बहुमत के पक्ष मे कानून पास कर दिया जाता था। आजकल की भाँति इन गणतत्रो की समितियो मे कोई कानून तीन बार पास होने के पश्चात् ही कानून बनता था। इस प्रकार हम देखते है कि प्राचीन भारत की प्रजातत्र शासन-प्रणाली ही वर्तमान गणतत्र का आधार है। प्राचीन भारत मे इन गणतत्रो के मुख्य केन्द्र उत्तरी बिहार, पजाब और सिंध रहे है।

भारतवर्ष मे गणतत्र बहुत समय तक फलते-फूलते रहे। कई-कई गणतत्रों ने मिलकर अपने सयुक्त-राज्य भी बनाये जिन्हे सघ कहते थे। परतु साम्राज्य-वाद के विकास के साथ ये सघ भी नष्ट हो गए।

प्रश्न ३१—भारतीय कला का दिग्दर्शन करते हुए इसकी विशेषताओं पर प्रकाश डालिए। (प्रभाकर, अगस्त, १६५२)

उत्तर—भारतीय सस्कृति बहुत ही प्राचीन है, अत भारतीय कला के भी बहुत प्राचीन होने मे कोई सन्देह नही रह जाता। बहुत प्रयत्न करने पर भी अभी तक वैदिक कालीन कला के विषय मे तो कोई जानकारी प्राप्त नहीं हो सकी है, क्योकि उस काल के भग्नावशेष अब उपलब्ध नही है। मोहनजो-

दड़ो और हडप्पा की खुदाई से जो मूर्तियाँ, चित्रो और भवनो के खण्डहर प्राप्त हुए है वे ही भारतीय कला के सर्वाधिक प्राचीन रूप है। भारतीय कला के विकास काल को हम पाँच भागो मे विभक्त करते हैं—(१) प्रागैतिहासिक-काल, (२) मौर्ययुग, (३) सातवाहनयुग, (४) गुप्त-युग, (५) राजपूतयुग।

(१) *प्रागैतिहासिक काल*—मोहनजोदडो और हडप्पा की खुदाइयो से जो मूर्तियाँ, चित्र और भवन खण्डहरावस्था मे प्राप्त हुए है वे ही भारतीय कला के सबसे प्राचीन रूप हैं। इनका समय लगभग पाँच सहस्र पूर्व माना गया है। मोहनजोदडो मे एक ऊँचे कद वाले बैल और दूसरे कई पशुओ की मूर्तियाँ प्राप्त हुई है। ये मूर्तियाँ बहुत ही सुन्दर हैं और हडप्पा मे जो मूर्तियाँ प्राप्त हुई है वे तो और भी अधिक सुन्दर हैं। इन मूर्तियो की कला और सौन्दर्य को देखकर इन्हे प्रागैतिहासिक कहने मे सकोच होता है।

(२) *मौर्य-युग*—इस युग मे कला का बहुत ही परिष्कृत रूप दिखाई देता है। सम्राट् अशोक के समय मे कला की बहुत उन्नति हुई। अशोक के समय की कला को हम तीन रूपो में विभक्त कर सकते है—(१) गुहामन्दिर, (२) स्तूप, (३) स्तम्भ। गुहामदिर बनाने की प्रथा अशोक के समय मे ही आरम्भ हुई। ये गुहामद्रिर किसी पहाड अथवा बडी चट्टान को काट कर उसमे विशाल भवनो के रूप में बनवाये जाते थे। अशोक के पश्चात् जो गुहामदिर बने वे कलात्मक दृष्टि से अधिक उच्चकोटि के हैं। 'गोपिका-भवन' नामक गुहामदिर मौर्य-काल मे सबसे बडा माना जाता है। इसकी लम्बाई ४६½ फीट, चौडाई १६,फीट और ऊँचाई १०½ फीट है। सम्राट् अशोक ने अनेको स्तूप भी बनवाये। वे इमारतें जिनमें किसी शरीर, धातु (अस्थि आदि) की पूजा के लिए स्थापना की गई हो स्तूप कहलाते है। आज भी साँची, सारनाथ, भरहुत आदि स्थानो पर अनेको स्तूप खडहर अवस्था में वर्तमान है। अशोक के समय मे स्थापित किए गए स्तम्भ भी अभी मौजूद हैं। ये बलुये पत्थर के बने हुए हैं और इन पर वज्रलेप किया गया है। यह वज्रलेप बहुत ही सुन्दर और चिकना है। आज के कलाकार भी वज्रलेप की चिकनाई और सौन्दर्य को देखकर दग रह जाते हैं। इन स्तम्भो पर सिहो, हाथियो और अश्वो की मूर्तियाँ बनाई गई है। इन मूर्तियो को देखकर इस काल की मूर्ति-कला अद्वितीय-सी प्रतीत होती है। स्वतन्त्र भारत का राष्ट्रीय चिन्ह शेर और धर्मचक्र यहाँ से ही अपनाया गया है। अशोक ने बिहार मे गया से कुछ दूर बौद्ध भिक्षुओ के रहने के लिए गुफायें बनवाईं। इन गुफाओ का कला की दृष्टि से बहुत महत्व

है। अशोक ने पाटलिपुत्र मे बहुत ही सुन्दर महल भी बनवाये थे। इन महलों के खण्डहरो को ही देखकर विदेशी यात्री फाहियान न उन्हे देवताओ द्वारा निर्मित बताया था।

(३) सातवाहन युग—मौर्य और गुप्त-काल के बीच का समय सातवाहन कहलाता है। इस काल का भी कला की दृष्टि से बहुत महत्त्व है। इस काल मे देश मे कई प्रसिद्ध कला-केन्द्र रहे। इन केन्द्रो में से कुछ का सम्बन्ध शुंग-काल से रहा और कुछ का सातवाहन युग से। इन कला केन्द्रो मे भिन्न-भिन्न प्रकार की कला-शैलियो का विकास हुआ। इस काल मे अधिकतर बुद्ध की मूर्तियो का निर्माण हुआ। शुंगकाल मे महात्मा बुद्ध की मूर्तियाँ न बनाकर चरण, कमल, छत्र आदि उनके प्रतीक बनवाये जाते थे, परन्तु सातवाहनयुग मे मूर्तियाँ बनाई गई।

(४) गुप्त-युग—यह युग भारतीय इतिहास का स्वर्णकाल है। इस काल मे भारतवर्ष की राजनीतिक, सामाजिक, आर्थिक और धार्मिक अवस्था की उन्नति करने के साथ-साथ विज्ञान और कला भी उन्नति की पराकाष्ठा तक पहुँच गए थे। इस काल मे भारतीय कला का सर्वश्रेष्ठ रूप दिखाई देता है। इस काल में मूर्ति-कला की जितनी उन्नति हुई इतनी उन्नति वास्तु-कला आदि अन्य कलाओं की नही हुई। परन्तु इसका अर्थ यह नही लगा लेना चाहिए कि किसी अन्य प्रकार की कला की उन्नति हुई ही नही। इस काल मे महात्मा बुद्ध की जो मूर्तियाँ निर्मित हुई वे अद्वितीय हैं। उनकी सजीवता और भावाभिव्यक्ति इस युग की मूर्ति-कला की विशेषतायें है। इस काल की कला का सर्वोत्तम उदाहरण अजन्ता की गुफाएँ है। सहस्रो वर्ष व्यतीत होने के पश्चात् भी गुफाओ की दीवारो पर बने चित्रो की सजीवता और सौंदर्य मे कोई अन्तर नही आया है। आज के ससार के बडे से-बडे कलाकार भी इन चित्रो को देखकर दाँतो तले अँगुली दबाते हैं।

(५) राजपूत-युग—इस युग मे वास्तु-कला की विशेष उन्नति हुई। इस युग मे कलाकारो ने देवी-देवताओ की पाषाण मूर्तिया न बनाकर अथवा उनके चित्र दीवारो पर अंकित न कर बडे-बडे दृश्यों को अंकित करने का प्रयत्न किया और इसमें इन्हे बहुत सफलता प्राप्त हुई। उन्होने केवल छेनी की सहायता से बड़ी-बडी चट्टानों और बडे-बडे पर्वतो को काट-छाँटकर उन्हे विशाल और सुन्दरतम दृश्यो का रूप दे दिया, जैसे रावण द्वारा कैलाश पर्वत को उठाने का दृश्य अथवा किसी युद्ध इत्यादि का दृश्य। इन दृश्यो मे सजीवता

थी और था अनुपम सौंदर्य। किसी भी दर्शक के हृदय में इन्हें देखकर स्वाभाविक ही वे भाव उत्पन्न हो जाते है जिन भावो को अपने हृदय मे रखकर कलाकारो ने इनका निर्माण किया था। ऐलौरा का कैलाश-मदिर पर्वत को काटकर बनाया गया है। यद्यपि यह एक बहुत विशाल मदिर है, परन्तु इसमे कही भी कोई जोड अथवा मसाला नही लगाया गया है। कितनी महान् थी उन कलाकारो की कला जिन्होने ऐसे अनेको मन्दिरो का निर्माण किया। जगन्नाथपुरी का मन्दिर, कोणार्क का सूर्यमन्दिर आदि इस युग के महान् कलाकारो की कला का अपने मुख से बखान कर रहे हैं।

राजपूत-युग के पश्चात् भारतवर्ष पर सैकडो वर्ष तक मुसलमानो का एक छत्र शासन रहा। हिन्दुओ और मुसलमानो के एक-दूसरे के सम्पर्क मे आने पर कला के क्षेत्र मे बहुत परिवर्तन हुए। मुसलमान बादशाहो का झुकाव अधिकतर वास्तुकला की ओर ही रहा। इस काल मे बडे-बडे भवन निर्मित हुए। दिल्ली का लालकिला और जामामस्जिद, आगरे मे लालकिला और ताजमहल आदि इमारतें इस युग में बनी। ताजमहल की गणना ससार के सात आश्चर्यों मे होती है। मुगल बादशाहो को बागवानी का भी बहुत शौक था। काश्मीर का शालीमार गार्डन इसी युग की देन है। इस काल मे सगीत कला की भी पर्याप्त उन्नति हुई। अकबर के दरबार के नवरत्नो में सर्वश्रेष्ठ सगीतज्ञ तानसेन भी था।

भारतीय कला की विशेषताएँ :

(१) भावव्यजन की प्रधानता—भारतवर्ष मे अभिव्यक्ति-प्रधान कला को महत्व दिया गया। इसी कारण भारतीय कला में रसात्मकता और सजीवता है।

(२) धार्मिकता की प्रधानता—भारतीय कला मे धर्म की प्रधानता रही है। यहा कला द्वारा धार्मिक तत्वो का विकास किया गया है। भारतीय कलाकार केवल मात्र कलाकार ही नही बल्कि धर्मवेत्ता भी थे।

(३) विज्ञापन वृत्ति का अभाव—भारतीय कलाकारो ने अपना नाम अमर करने के लिये अथवा प्रसिद्धि प्राप्त करने के लिए अपनी कला का उपयोग नहीं किया। वे तो अपनी कला को अमर बनाना चाहते थे। उनकी कला किसी व्यक्ति विशेष को प्रसन्न करने के लिए न होकर स्वत सुखाय थी।

(४) सात्विक भावना—प्राचीन भारत मे कला की असाधारण उन्नति होते हुए भी उसकी भावना सदा सात्विक ही रही, यह भारतीय कला की

प्रमुख विशेषता है।

प्रश्न ३१—प्राचीन शिक्षा-पद्धति पर विहंगम दृष्टि डालते हुए प्रसिद्ध प्राचीन विद्यापीठ केन्द्रों का परिचय दें।

उत्तर—प्राचीन काल में भारत मे शिक्षण का कार्य ब्राह्मण लोग करते थे। नगरो के बाहर जगलो में अनेक विद्वान् ऋषियो ने ऐसे आश्रम स्थापित किए थे, जहाँ विद्यार्थी लोग जाकर शिक्षा प्राप्त करते थे। इन आश्रमो का बहुत ही आदर था। राजा लोग साधारण वेश में इन आश्रमो मे प्रवेश करते थे। आश्रम, ज्ञान और अध्यात्मचिन्तन के केन्द्र थे। केवल विद्यार्थी शास्त्रो का ज्ञान ही नही अपितु शस्त्रो का भी ज्ञान प्राप्त करते थे।

इन आश्रमो को गुरुकुल भी कहते थे। गुरुकुल मे सब विद्यार्थियो के साथ एक समान व्यवहार किया जाता था। समाज विद्यार्थी का बडा मान करता था। स्नातक जब विद्या समाप्त कर घर लौटते थे, तो गुरु उन्हे आदेश देते थे—सदा सत्य भाषण करो, सत्य धर्म के अनुसार आचरण करो। विद्वानो और माता-पिता की सेवा करो। उत्तम वस्तुओ का अनुसरण करो, आदि।

प्रमुख शिक्षा केन्द्र

(१) तक्षशिला—मौर्यवश के उत्कर्ष से पूर्व बौद्धकाल मे सबसे बडा शिक्षाकेन्द्र तक्षशिला था। यहाँ अनेक ससार प्रसिद्ध आचार्यो के शिक्षणालय थे, जिनके पास विद्या पढने के लिए दूर-दूर से विद्यार्थी आते थे। राजकुमार एव सेठो के लडके और जनसाधारण के पुत्र सभी तक्षशिला पढने के लिए जाते थे। यहाँ दिशामुख (आचार्य) तीन वेद और आठारह विद्याओ की शिक्षा देते थे। विद्यार्थी समुचित शुल्क देकर शिक्षा ग्रहण करते थे। निर्धन विद्यार्थियो की व्यवस्था राज्य की ओर से थी।

अत्रि तक्षशिला में चिकित्सा शास्त्र की शिक्षा देते थे। व्याकरण के प्रसिद्ध पण्डित पाणिनि भी तक्षशिला के आचार्यो मे से थे। अर्थशास्त्र के लोकोत्तर विद्वान् चाणक्य का गुरुकुल भी तक्षशिला था।

(२) मादुरा का सगम—प्राचीन काल मे सुदूर दक्षिण मे मदुरा नगरी में भी एक विद्यापीठ था, जिसका नाम सगम था। यहाँ प्राचीन तामिल साहित्य का विकास हुआ। उत्कृष्ट साहित्य रचना पर अधिक बल दिया जाता था। तामिल साहित्य मे 'तिरुवल्लुवर' का 'कुरल' सबसे प्रसिद्ध रचना है। इसके अतिरिक्त तामिल भाषा मे 'मणि-मेखला' और 'शीलप्पधिकारम' ग्रन्थो का उल्लेख यहाँ आवश्यक है। यह दोनो तामिल साहित्य के सुन्दर महाकाव्य हैं।

(३) नालन्दा महाविहार—मगध मे नालन्दा का महाविहार शिक्षा का वडा केन्द्र था। इसकी स्थापना गुप्तवशी कुमारगुप्त ने की। गुप्तवश के राजाओ ने इस शिक्षा-केन्द्र पर बहुत सी जायदाद लगा दी। नालन्दा की ख्याति दूर तक फैली हुई थी। प्रसिद्ध चीनी यात्री ह्युएत्साग ने नालन्दा का विवरण लिखा है। विद्यार्थियो की सख्या मिला कर दस हजार से भी अधिक थी। नालन्दा के शिक्षक अपने ज्ञान और विद्वत्ता के लिए प्रसिद्ध थे।

नालन्दा महाविहार मे प्रवेश करने के लिए परीक्षा मे उत्तीर्ण होना आवश्यक था। यह परीक्षा 'द्वार पण्डित' लेता था।

इत्सिग नाम का एक अन्य चीनी यात्री सातवी सदी में भारत आया। उसने नालन्दा का निरीक्षण किया। इस चीनी यात्री के विवरण के अनुसार विद्यार्थियो को न केवल बौद्ध धर्म के विशाल साहित्य का अध्ययन करना होता था, अपितु शब्द, चिकित्सा, साख्य, तत्र, वेद आदि की पढाई भी करनी पडती थी।

नालन्दा का पुस्तकालय वडा विशाल था। इसकी तीन विशाल इमारते थी, जिनके नाम थे रत्नसागर, रत्नोदधि और रत्नरजक।

ह्युएत्साग और इत्सिग के अतिरिक्त अन्य भी कई यात्री नालन्दा को देखने आए। शान्तिरक्षित, कमलशील एव अतीश आदि प्रमुख आचार्यो ने तिब्वत के राजा के विशेष निमत्रण पर वहा बौद्धधर्म की स्थापना की।

(४) विक्रमशिला—विक्रमशिला का महाविहार भी मगध मे था, राजा धर्मपाल ने विक्रमशिला मे एक डाक वनवा कर वहाँ अध्ययन के लिए १०८ आचार्यों की नियुक्ति की। इसकी व्यवस्था के लिए अतुल धन राशि राज्य की ओर सी दी जाती थी।

नालन्दा के समान यहाँ भी द्वार-पण्डित होते थे। तिब्बती लेखक तारानाथ ने लिखा है कि प्रत्येक कालिज मे शिक्षको की सख्या १०८ रखी जाती थी। विक्रमशिला मे कुल शिक्षको की सख्या ६४८ थी। महाविहार का भाग अत्यन्त सुन्दर तथा भव्य था। विक्रमशिला मे बौद्ध-साहित्य, वैदिक साहित्य व अन्य ज्ञान-विज्ञान की पढाई होती थी। यह महाविहार बौद्धो के वज्रयान सम्प्रदाय के अध्ययन का सवमे प्रामाणिक केन्द्र था। विक्रमशिला में विद्या प्राप्त करने वाले अनेक विद्यार्थियो ने विद्वत्ता के क्षेत्र मे ख्याति पाई। इनमे रत्नवज्र, आचार्य जेनाद्रि, रत्नकीर्ति प्रसिद्ध है।

(५) उदण्डपुर—यह महाविहार भी मगध मे था। इसकी स्थापना पाल-वश के प्रवर्त्तक राजा गोपाल द्वारा हुई। वारहवी सदी मे यह शिक्षा का वडा केन्द्र हो गया था। इसमे हजारो आचार्य व विद्यार्थी निवास करते थे।

१२ वी सदी के अन्त में मुहम्मद विनवख्तार खिलजी ने उदण्डपुर पर आक्रमण किया। यहाँ के विद्यार्थियो ने शस्त्र उठाए और डटकर मुकावला

किया। विद्यार्थी लडते-लडते मारे गए। मुहम्मद ने यहाँ के पुस्तकालय को अधिकार मे करके जला दिया।

(६) शिक्षा के अन्य केन्द्र—प्राचीन काल मे वाराणसी भी शिक्षा का वडा केन्द्र था। इसके अतिरिक्त पुरुषपुर (पेशावर), श्रीनगर, कन्नौज आदि स्थानो पर भी शिक्षा केन्द्र थे। राजपूत काल मे मालवा की धारा नगरी और उज्जयिनी भी शिक्षा के वडे केन्द्र रहे।

प्रश्न ३२—निम्नलिखित पर टिप्पणी लिखो :

यौधेय, कुणिन्द, आर्जुनावन, मालव और क्षुद्रक, शिवि और अम्वष्ठ।

उत्तर—यौधेय .—अव से लगभग दो-ढाई हजार वर्ष पूर्व यौधेय पजाव में तीन गणतन्त्रो का शक्तिशाली सघ था। इसका विस्तार पूर्व मे सहारनपुर से लेकर पश्चिम मे वहावलपुर तक, उत्तर-पश्चिम मे लुधियाना से दक्षिण में दिल्ली तक था। यौधेय उस समय के उत्कृष्ट योद्धा थे। देवताओ के सेनापति कार्त्तिकेय को वे अपना कुल देवता मानते थे। कुशाणो ने इन्हे जीता था, परन्तु कुशाण इन्हे अधिक दिन अपने आधीन नही रख सके। इन वीरो ने ऐसा सिर उठाया कि इन्होने केवल अपनी खोई हुई स्वतन्त्रता ही पुन प्राप्त नहीं की, अपितु कुशाण साम्राज्य को ऐसा धक्का लगा कि वह फिर न सभल सका।

कुणिन्द —सभवत यह जालन्धर द्वावे मे था। प्राचीन काल मे इसे त्रिगर्त्त जनपद कहते थे, परन्तु वाद मे यह 'कुणिन्द' कहलाने लगे। इस राज्य के वीरो ने कुशाणो को भारत से भागने में यौधेयो की वहुत सहायता की थी। यह राज्य सिकन्दर के सम्मुख नत मस्तक नही हुआ। इनकी राजधानी स्यालकोट थी।

आर्जुनायन —आधुनिक आगरा-जयपुर प्रदेश मे २०० ई० पू० से ४०० ई० तक यह गणतन्त्र विद्यमान था। इसकी मुद्राओ पर 'आर्जुनायनो की जय' का लेख प्राप्त होता है। ये अपना उद्भव सभवत महाभारत के प्रसिद्ध पाण्डव अर्जुन से मानते थे।

मालव और क्षुद्रक—जेहलम और रावी के सगम के नीचे रावी के दोनों तटो पर मालव सघ का राज्य था। मालव के पूर्व मे इनके साथ मिला हुआ क्षुद्रको का सघ राष्ट्र था। ये दोनो ही राष्ट्र वहुत ही स्वतन्त्रता प्रेमी तथा लडाकू थे। दोनो ने मिलकर सिकन्दर से लड़ने की योजना वनाई थी, परन्तु दोनो सेनाओ के मिलने से पहले ही सिकन्दर की सेना मालवो पर टूट पडी थी। मालवो ने यूनानियो से जमकर लोहा लिया और सिकन्दर एक वर्छे के घाव से मरते-मरते वचा। मालव तथा क्षुद्रक सघ की एकता कई शताब्दियों तक वनी रही। १०० ई० पू० के लगभग मालव पजाव से निकल कर अजमेर, चित्तौड, टोंक के प्रदेश मे वसे और वहाँ से आगे वढते हुए मध्य भारत के उस प्रदेश मे पहुँचे, जिसे उनके नाम पर मालवा कहा जाता है। १५० ई०

के लगभग शको ने इन्हें परास्त किया परन्तु २२५ ई० तक वे पुन. स्वतन्त्र हो गये।

शिवि और अम्बष्ट—मालवो के पडौस मे वर्तमान शोरकोट (पश्चिमी पजाव) के पास शिवि गणतन्त्र था और क्षुद्रको के पडोस में अम्बष्ठ। इन दोनों ने विना युद्ध किये ही सिकन्दर की आधीनता स्वीकार कर ली थी। शिवि १०० ई० पू० तक राजपूताने के पास माध्यमिका नगरी मे जा बसे।

प्रश्न ३३—निम्नलिखित प्रतिपाद्य विषयो पर संक्षिप्त टिप्पणी दें—

मामल्लपुरम्, एलोरा, घारापुरी (एलिफैन्ट)।

उत्तर—मामल्लपुरम्—मामल्लपुरम् के रथ (मन्दिर) द्रविड शैली के कई खण्डो मे ऊपर उठते हुए मन्दिर के प्राचीनतम उदाहरण हैं। मामल्ल-पुरम् की मूर्तियो में महिषासुर से युद्ध करती दुर्गा की प्रतिमा में बड़ी गति और सजीवता है। सबसे आश्चर्यजनक मूर्ति भागीरथ की तपस्या का दृश्य है। यह ९८ फुट लम्बी ४३ फुटी चौडी विशाल खड़ी चट्टान पर काटी गई है। ककाल मात्रावशिष्ट भागीरथ गगा के भूतल पर· अवतारण के लिए तपस्या मग्न है, सारा दिव्य और पार्थिक यहाँ तक कि जन्तु जगत उनका साथ दे रहा है। यह विशाल प्रभावोत्पादक दृश्य बहुत ही भावपूर्ण तथा वास्तविक है।

एलोरा (वेरुल)—औरंगाबाद से १६ मील की दूरी पर एक पूरी की पूरी पहाडी को काटकर मन्दिरो मे परिवर्तन कर दिया गया है। इसमे तीस हिन्दू, बौद्ध तथा जैन मन्दिर हैं। इनमे कैलाश मन्दिर सबसे विशाल तथा भव्य है। यह १६० फुट ऊँचा, १४२ फुट लम्बा, ६२ फुट चौडा द्वारो, झरोखो, सीढियो, सुन्दर स्तम्भ पंक्तियो से युक्त यह विशाल मन्दिर एक ही पत्थर का बना हुआ है। इसमे कही जोड, चूना-मसाला या कील-काँटा नहीं है। इसे बनाते समय पहले पहाड काटकर उस स्थान को खोखला बनाया गया। यह २५० फुट गहरे और १५०·फुट चौडे खाली स्थान से आस-पास के पहाड से पृथक है। इसके मध्य मे मन्दिर बनाया गया है। यह मन्दिर मनुष्य के धैर्य, अध्यवसाय और कला का एक श्रेष्ठात्मक उदाहरण है। कैलाश मन्दिर को काटते हुए कारीगरो ने ४२ पौराणिक दृश्य भी अंकित किये हैं।

धारापुरी (एलिफैन्ट)—बम्बई से ६ मील दूर धारापुरी नामक घाटी मे दो बडे पर्वतो के ऊपरी भाग को काटकर मन्दिर और मूर्तियाँ बनाई हैं। इन प्रतिमाओ मे महेश्वर की त्रिमूर्ति शिवताण्डव तथा शिव-पार्वती-विवाह का दृश्य बहुत ही भव्य है। पहली के मुख मण्डल पर अपूर्व प्रशान्त गम्भीरता है। दूसरी 'यथो दीपो निवातस्थो' की आदर्श समाधि अवस्था की भव्यतम अभिव्यक्ति है। तीसरी मे पार्वती के आत्म-समर्पण का भाव बडी सफलता से दिखाया गया है।

देववाणी-विलास

सोमशर्म-पिता-कथा

किसी नगर में स्वभावकृपण नामक ब्राह्मण रहता था। उसने भिक्षा से लाये हुए सत्तू से एक घडा भर लिया। उस घडे को खूटी पर लटकाकर उसके नीचे खाट विछाकर (उस पर लेटकर) हमेशा एक नजर से उस घडे को देखता रहता था। एक रात सोते हुए उसने सोचा कि "यह घडा सत्तू से भरा हुआ है, जब अकाल पड़ेगा तब इससे सैकडो रुपये पैदा होगे। उन रुपयो से मै दो बकरियाँ खरीदूंगा। उन बकरियो के छै-छै महीने वाद मेमने पैदा होने से उनसे झुण्ड बन जायगा। फिर उस बकरियो के झुण्ड से मै गौएँ खरीदूंगा, फिर गौओ से भैसें और भैसो से घोडियाँ। घोडियो के प्रसव से बहुत से घोड़े हो जायेंगे। उनको बेचने से बहुत सा सोना हो जायगा। उस सुवर्ण से एक वडा भारी घर वनेगा। इसके अनन्तर कोई ब्राह्मण मुझे अपनी जवान लडकी दे देगा। उससे मेरा पुत्र पैदा होगा। मै उसका नाम 'सोमशर्मा' रखूंगा। जब वह घुटनो के बल चलने योग्य हो जायगा तो मै पुस्तक लेकर घुडसाल के पीछे बैठकर उसके आने की प्रतीक्षा करूगा। तब सोमशर्मा मुझे देखकर मा की गोद से निकल घुटनो के बल चलता हुआ घोडो के खुरो के पास से होता हुआ मेरे पास आयेगा। तब मै उसे आता हुआ देखकर अपनी पत्नी ब्राह्मणी पर क्रुद्ध होकर कहूँगा—लडके को पकड! वह भी घर के काम में लीन होने से मेरी बात नही सुनेगी तो मै उठकर उसे लात मारूंगा।" इस प्रकार सोचते हुए उसने वैसी ही लात मारी जिससे वह घडा टूट गया और सत्तू उसके ऊपर आ गिरा। जिससे वह सारा सफद सफेद हो गया। इसलिये "जो मनुष्य न आई हुई और असम्भव बात की चिन्ता करता है वह सोमशर्मा के पिता के समान सफेद हो जाता है।"

बनिये का पुत्र जीर्णधन

किसी स्थान पर जीर्णधन नामक बनिये का पुत्र रहता था। धन नष्ट हो जाने से वह दूसरे देश जाने का विचार कर सोचने लगा—

"जिस देश में अथवा स्थान पर अपने धन आदि बल से सुख (भोग) भोगा गया हो वहा धनहीन होकर रहना नीचों का काम है।" उसके घर एक लोहे की बनी तराजू थी जिसे उसके पुरखाओ ने बनाया था। उस तराजू को किसी सेठ के पास धरोहर रखकर दूसरे देश चला गया। वहाँ काफी समय तक इच्छा-पूर्वक घूमकर फिर वह अपने नगर में आकर उस सेठ से बोला—'सेठ जी मेरी धरोहर तराजू दे दीजिये।' वह बोला —'तुम्हारी तराजू तो चूहो ने खा ली है।' जीर्णधन ने कहा—'सेठ जी ! इसमें आपका कोई दोष नही यदि चूहो ने तराजू खा ली है। यह ससार ही ऐसा है। यहा कोई वस्तु स्थायी नही है। खैर, मै नदी पर स्नान करने जाता हू इसलिए अपने पुत्र धनदेव को मेरे साथ स्नान की वस्तुए (तेल, साबुन, तौलिया आदि) लिये भेज दीजिए।' उस सेठ ने भी चोरी के डर से उससे शकित होकर अपने पुत्र से कहा—'बेटा ! यह तेरा चाचा स्नान के लिए नदी पर जा रहा है, इसलिये इसके साथ स्नान की सामग्री लिये जाओ। तदनन्तर वह बनिये का पुत्र स्नान की वस्तुएँ (तेल, साबुन, तौलिया आदि) लेकर प्रसन्न हो उस अतिथि के साथ चल दिया। बनिया जीर्णधन स्नान करके उस बालक को नदी के किनारे की एक गुफा में छिपाकर उसके दरवाजे को एक बड़ी शिला से ढककर शीघ्र ही घर आ गया। बनिये सेठ ने उससे पूछा—'अरे अतिथि महोदय ! कहो, मेरा पुत्र कहाँ है जो तुम्हारे साथ नदी पर गया था ?' वह बोला—'उसे तो नदी के किनारे से बाज़ उठा कर ले गया।' सेठ ने कहा—'झूठे ! क्या कही बाज भी बालक को उठाकर ले जा सकता है। इसलिये मेरा लडका लाओ, नहीं तो मैं राजदरबार में कह दूँगा।' उसने उत्तर दिया—'ओ. सत्यवादी जी ! जैसे बाज बालक को नहीं ले जा सकता वैसे ही चूहे भी लोहे की बनी तराजू को नही खा सकते। इसलिये यदि आप लडके को चाहते हो तो मेरी तराजू दे दो।' इस प्रकार झगडते हुए दोनो राजदरबार में गये। वहा सेठ ने ज़ोर से कहा—'अन्याय हो गया, जुल्म हो गया कि इस चोर ने मेरे लडके को चुरा

लिया है।' मजिस्ट्रेट या जजो ने उससे कहा—'अरे इस सेठ के पुत्र को दे दो।' वह बोला—'मैं क्या करूँ, क्योंकि मेरे देखते देखते नदी के किनारे से बाज इसके पुत्र को उठा ले गया है।' यह सुनकर उन्होंने कहा—'आप सच नही बोल रहे हैं। क्या बाज भी बच्चे को उठाकर ले जा सकता है।' वह बोला—'ओ महाशय ! मेरी बात सुनिए—

जहा चूहे लोहे की तराजू खा जायें वहा हे राजन् ! यदि बाज बालक को उठा ले जाय तो इसमें क्या सन्देह है।' वे बोले—'यह कैसे ?' तब उस सेठ ने सभासदो के आगे शुरू से सब हाल निवेदन किया।' तब उन्होंने हँसकर दोनो को आपस में समझा बुझाकर, तराजू और बालक दिलाकर सन्तुष्ट किया।

ईश्वर की समालोचना

एक बार कोई दलीलबाज जवान आदमी, किसी यात्रा में जाते हुए दोपहर के समय सूर्य की तेज गर्मी से पीडित होकर विश्राम के लिये रास्ते के किनारे एक बडे वट के पेड के नीचे बैठ गया। छाया में बैठे, थकावट दूर होने पर उसने चारो ओर नजर दौडाई तो पास ही रास्ते के एक ओर खेत में एक काशीफल की बेल देखी। काशीफलो के भार को न सहती हुई लता ज़मीन से ऊपर उठ भी नही सकती थी। थोडी देर बाद उस जवान की नजर खेत से हटकर छाया में अपने सामने पडे हुए बहुत छोटे-छोटे वट के फलो पर पडी। तब उस काशीफल को और वट के फल को देखकर हैरान होकर जवान सोचने लगा—'ईश्वर ससार का कारण है और वह परम न्यायवान् तथा बडा विवेकी है—ऐसा जो मानते हैं वे मूर्ख हैं। यदि ईश्वर है तो न तो वह न्यायकारी है, न विवेकी है। जो इस विशाल वट पर तो इतने छोटे-छोटे फल लगाता है और लता पर वैसे बडे-बड काशीफलो को पैदा करता है। वह विवेकी कैसे हो सकता है ?' वास्तव में यह विशाल वट वृक्ष काशीफल के योग्य और वह छोटी लता वट के फलो के समान फलो को धारण करने योग्य है। 'उचित को उचित के साथ जोडे।' यही बडा न्याय है और विवेक है।' इसी बीच में जोर की हवा चली। ऊपर का सारा वट का पेड़ हिला। एक-

दम एक टहनी से छोटा-सा फल टूट कर उस जवान के माथे में आ लगा। वह उसे हाथ से उठाकर फिर सोचने लगा—'अहो! मैं कितना मूर्ख हूँ कि कठिनता से जानने योग्य इस ईश्वर की सृष्टि की आलोचना करने लगा हूँ। यदि सचमुच ही इस वट के वृक्ष पर काशीफल-जैसा फल लगा होता तो उससे चोट खाकर मेरा माथा ही फूट गया होता।' ईश्वर बड़ा कठिनता से जानने का विषय है और उसकी सृष्टि भी वैसी ही है। यह सत्य है।

आयोदधौम्य और उपमन्यु

पुराने जमाने में आयोदधौम्य नामक ऋषि ब्रह्मचारियों को पढ़ाते हुए बीच बीच में सदाचार की शिक्षा देते थे और शिष्यों की परीक्षा लेते थे। एक बार उपमन्यु को गुरुजी ने कहा—'बेटा उपमन्यु! पढ़ाई के बाद गौएँ चराया करो।' वह गुरुजी की आज्ञा से गौएँ चराता था। दिन भर गौएँ चराकर शाम को गुरु जी के पास आकर गुरु जी को प्रणाम करता था। उसे गुरु जी ने मोटा देखकर पूछा— 'बेटा उपमन्यु! खूब मोटे हो, क्या खाते हो?' उसने उत्तर दिया—श्रीमान्! भिक्षा का अन्न खाता हूँ।' उसे गुरुजी ने कहा—'बिना मुझे दिये भिक्षा मत खाया करो।' 'अच्छा जी' कहकर भिक्षा लाकर गुरु जी को दे देता था। गुरुजी उससे सारी भिक्षा का अन्न ले लेते थे। वह दुबारा भिक्षा लाकर (उसे खाकर) 'गौएँ' चराता था। शाम को गुरु जी ने जब उसे फिर वैसा ही मोटा देखा तो उसे दुबारा भिक्षा लाने से रोक दिया। एक दिन फिर जब शाम को उसे आया हुआ वैसा ही मोटा देखा तो पूछा—'क्या क्या खाता है?' उसने कहा—'गौओं का दूध पीता हूँ।' गुरु जी ने वह भी रोक दिया। इसी तरह एक दिन फिर सायं समय उसे वैसा ही स्थूल देखा तो कहा—अब क्या खाते हो तो उसने कहा—बछड़ों की झाग, जो स्तनों से दूध पीते हुए निकलती है, वही खा लेता हूँ। गुरु जी ने उसे भी मना कर दिया कि झाग भी मत खाया करो। इस प्रकार उपमन्यु न तो भिक्षा खाता है, न दूध पीता है, न झाग ही खाता है। एक दिन भूख से व्याकुल हो कर उसने आक के पत्ते खा लिये जिससे वह अन्धा हो गया और वन में घूमता हुआ एक कुएँ में गिर गया।

सूर्य अस्त होने पर और उपमन्यु के न आने पर गुरु जी ने शिष्यो से कहा—'आज अभी तक उपमन्यु नही आया।' उन्होंने कहा—'वन में गौएँ चराने गया था।' गुरु जी ने उन्हे कहा—'मैंने उसे सब ओर से मना कर दिया है इसलिए वह गुस्से हो गया होगा और नही आया, चलो, उसे ढूढें।' ऐसा कहकर शिष्यो के साथ वह वन में गये और उसे बुलाने को आवाज लगाई—'हे उपमन्यु ! कहाँ हो ? आओ।' उसने गुरु जी की आवाज सुनकर उत्तर दिया—'मैं यहाँ कुएँ मे गिरा पडा हूँ।' 'तुम कुए में कैसे गिर गये।' गुरु जी ने पूछा। उसने कहा कि 'मै आक के पत्ते खाने से अन्धा हो गया हूँ। इसलिये कुए में गिर पडा हूँ।' उपाध्याय ने कहा—बेटा ! अश्विनीकुमारो की प्रार्थना करो, वे देववैद्य तुम्हें आँखो से युक्त कर देंगे।' तदनन्तर उपमन्यु गुरु जी की आज्ञा से अश्विनीकुमारो की स्तुति करने लगा। उससे प्रसन्न हुए अश्विनीकुमार आ गये और बोले—'हम प्रसन्न हैं, यह पूडा लो, इसे खा लो।' उसने कहा—'मै तो बिना गुरु जी को भेंट किये नही खाऊँगा।' तब अश्विनीकुमारो ने कहा कि 'एक बार पहले कभी तेरे गुरु जी को पूडा दिया था, उन्होंने तो अपने गुरु को दिये बिना ही खा लिया था। तुम भी खा लो।' किन्तु उपमन्यु ने खाने से इन्कार कर दिया। तब अश्विनीकुमारो ने कहा—'हम तेरी गुरुभक्ति मे प्रसन्न है, तुम आखो से युक्त हो जाओ और कल्याण प्राप्त करोगे।' तब वह चक्षुष्मान् हो गया और सारी बात गुरु जीके पास आकर प्रणाम करके उसने कही। गुरु जी प्रसन्न हो गये और बोले—'बेटा ! तुझे सब वेद, धर्मशास्त्र स्वय भासित हो जायें।' इस प्रकार गुरु के आशीर्वाद से उपमन्यु सर्व-शास्त्रो में बडा धुरन्धर विद्वान् हो गया।

राजपुत्र वीरवर

कोई शूद्रक राजा था। उसके दरबार में वीरवर नामक कोई राजकुमार आकर बोला—महाराज ! मैं सेवक हूँ यदि मुझसे आपका कोई प्रयोजन हो तो मेरा वेतन निश्चित कर लीजिए।' शूद्रक ने कहा—'तुम्हारा क्या वेतन है?' तो उसने कहा—'पाँच सौ सुवर्ण मुद्राएँ।' राजा ने कहा—'तुम्हारे पास क्या सामान है ?' वीरवर ने कहा—'दो बाहें और तीसरी तलवार।' राजा ने कहा—

तब तो मैं तुम्हें सेवक नही रख सकता।' यह सुनकर वीरवर चल पड़ा तो मन्त्रियो ने कहा—'महाराज ! चार दिन का वेतन देकर स्वरूप तो देखिए कि क्या यह उचित वेतन माँगता है या नही।'

मन्त्रियो के कहने से वीरवर को पान देकर और पाच सौ सुवर्ण मुद्राएं देकर, उन मुद्राओ का खर्च राजा छिपकर देखने लगा। वीरवर ने आधी सुवर्ण मुद्रायें तो देवताओ और ब्राह्मणो को दे दी। आधी में से आधी दुखियो को और उससे आधी खाने-पीने और आराम में खर्च की। यह सब नित्यकृत्य करके हाथ में तलवार ले वीरवर राजा के द्वार पर रात-दिन उपस्थित रहता था। जब राजा स्वयं आज्ञा देता था तब वह जाता था।

एक बार कृष्ण चतुर्दशी की रात को राजा ने दयाभरी रोने की आवाज सुनी। शूद्रक ने कहा—'अरे द्वार पर कौन है ?' उसने कहा—'महाराज मैं वीरवर हूँ।' राजा ने कहा—'देखो, कौन रो रहा है ?' वीरवर 'जैसी महाराज की आज्ञा' कहकर चल पड़ा। राजा ने सोचा—'यह ठीक नही कि इसको अकेला मैंने घने अन्धेरे में भेज दिया। इसलिए इसके पीछे जाकर स्वय भी देखता हूँ।' तदनन्तर राजा भी तलवार उठाकर उसके पीछे-पीछे नगर से बाहर चला गया। वीरवर ने जाकर रोती हुई, सुन्दरता और यौवन से भरपूर तथा बहुत से अलकार धारण किये एक स्त्री को देखा और पूछा—'तुम कौन हो ? और क्यो रो रही हो ?' स्त्री ने कहा—'मैं इस शूद्रक की राजलक्ष्मी हूँ। चिरकाल से इसकी छत्रछाया में बड़े सुख से रही हूँ। अब मैं अन्यत्र जा रही हूँ।' वीरवीर ने कहा—'जहा विघ्न या दोष होते हैं वहा उनका उपाय भी अवश्य होता है, इसलिए कहो, यहाँ फिर तुम्हारा वास कैसे हो सकता है ?' लक्ष्मी ने कहा—'यदि तुम अपने पुत्र शक्तिधर को, जो ३२ लक्षणो से युक्त है, भगवती सर्वमगला की भेंट करो तो मैं फिर यहा चिरकाल तक रह सकती हूँ।' यह कहकर वह लुप्त हो गई।

तब वीरवर ने अपने घर जाकर सोती हुई अपनी पत्नी और पुत्र को जगाया। दोनो नीद छोड़कर उठ बैठे। वीरवर ने लक्ष्मी की सारी बात कही। यह सुन शक्तिधर बोला—'मैं धन्य हूँ जिसका अपने स्वामी के राज्य की रक्षा के लिये उपयोग होगा। पिता जी ! तब फिर देर का क्या कारण है ?

ऐसे काम में तो शरीर का उपयोग प्रशसा के योग्य होता है।'

बुद्धिमान पुरुष धन और जीवन दोनो को दूसरे के लिये त्याग दे। अच्छी बात के लिये इनका छोड़ना ही अच्छा है क्योंकि इनका एक दिन नाश होना तो अवश्य सिद्ध ही है।

शक्तिधर की माता ने कहा—'यदि यह नही करोगे तो और किस दूसरे कार्य से इतने बड़े-बड़े वेतन का बदला चुकाओगे?' इस प्रकार सोचकर सभी सर्वमगला देवी के मन्दिर को चले गये। वहाँ सर्वमगला देवी की पूजा करके वीरवीर ने कहा—'देवि! प्रसन्न होओ! महाराज शूद्रक की जय हो।' यह भेंट स्वीकार करो। यह कहकर उसने अपने पुत्र का सिर काट डाला (और देवी पर चढा दिया) तदनन्तर वीरवर ने सोचा—'मैंने तो राजा से ग्रहण किये हुए बड़े भारी सुवर्ण-मुद्रारूप वेतन का बदला चुका दिया।' अब बिना पुत्र के जीना व्यर्थ है। यह सोचकर अपना सिर भी उसने काट दिया। तदनन्तर उसकी स्त्री ने स्वामी और पुत्र के शोक से व्याकुल हो वैसा ही किया। यह सब देखकर राजा ने आश्चर्य से सोचा—

मेरे जैसे क्षुद्र जीव ससार में पैदा होते हैं और मर जाते है किन्तु ससार में इस वीरवर जैसा न तो हुआ है और न होगा।

इसलिये इससे हीन राज्य से मुझे क्या लाभ? तब शूद्रक ने भी अपना सिर काटने के लिये तलवार उठाई तो भगवती सर्वमगला ने राजा का हाथ पकड लिया और कहा—'पुत्र! मै तुम पर प्रसन्न हूँ। इतना साहस मत करो! तेरे मरने के बाद भी तेरा राज्य नष्ट नही होगा।' राजा ने प्रणाम कर के कहा—'देवी! मुझे राज्य से क्या प्रयोजन? अथवा जीवन से भी। यदि आप मुझ पर दया करती है तो मेरी शेष आयु से यह स्त्री-पुत्र-सहित वीरवर जी जाये। नही तो मै उसी अवस्था को प्राप्त करता हूँ।' भगवती ने कहा—'पुत्र! मै तेरे इस उत्कृष्ट नौकरो के प्रति प्रेम से प्रसन्न हूँ, जाओ, विजयी होवो। और यह राजपुत्र वीरवर भी परिवार सहित जी उठे।' यह कहकर देवी अन्तर्धान हो गई। तब वीरवर पुत्र-स्त्री-सहित घर गया। राजा भी उनसे न देखा गया हो शीघ्र अपने रनिवास की ओर चला गया।

प्रात.काल वीरवर द्वार पर खडा था। राजा से पूछे जाने पर उसने

कहा —'महाराज ! वह रोती हुई स्त्री मुझे देखकर अदृष्ट हो गई और कोई बात नही हुई ।' उसकी बात सुनकर राजा ने सोचा—यह कितना वीर व्यक्ति है । क्योकि—

जो कजूस न हो अर्थात् उदार (दानी) हो उसे मीठा बोलना चाहिए और शूरवीर को अपनी प्रशसा करने वाला नही होना चाहिए । दानी को कुपात्र मे दान देने वाला नही होना चाहिए और बलवान् को निष्ठुर (कठोर) नही होना चाहिए ।

महापुरुष के ये सब लक्षण इसमें हैं ।' तब राजा ने प्रात काल सभासदो की सभा बुलाकर सारी बात कहकर प्रसन्नतापूर्वक उसे कर्णाटक का राज्य दे दिया ।

शतबुद्धि और सहस्रबुद्धि

किसी तालाब में शतबुद्धि और सहस्रबुद्धि नामक दो मछलिया रहती थी । उन दोनो की एक मेढक के साथ मित्रता हो गई । इस प्रकार वे तीनो तालाब के किनारे कुछ देर बातचीत का आनन्द लेकर फिर तालाब में घुस जाते थे । एक दिन जब वे बैठे थे तो हाथो में जाल उठाये, धीवर (मछिहारे) बहुत-सी मरी हुई मछलियो को सिर पर उठाये शाम के समय उस तालाब पर आ गये । और उस तालाब को देखकर आपस में कहने लगे—'अहा ! यह तालाब तो खूब मछलियो वाला और कम पानी वाला दिखाई देता है । इस लिये सवेरे यहा आयेंगे ।' यह कहकर वे अपने घरो को चले गये । मछलियाँ खिन्नमुख होकर आपस में सलाह करने लगी । तब मेढक ने कहा—'अरी शतबुद्धि ! तुमने मछिहारो की बात सुनी ? अब क्या करना चाहिए ? भाग जाना चाहिए, या यहीं रहना चाहिए ? जो उचित हो वह कहो ।' यह सुनकर सहस्रबुद्धि ने हँसकर कहा—मित्र ! मत डरो, क्योकि किसी की बात सुनने मात्र से डरना नहीं चाहिए ! क्योकि—

साँपो की और सभी दुष्ट चित्त वाले दुर्जनो के मनोरथ सिद्ध नहीं होते । इसी से तो यह संसार स्थिर है । अन्यथा उनकी मर्जी पूरी होने लगे तो ससार ही नष्ट हो जाय ।

इसलिये उनका यहा आना नहीं होगा । यदि होगा तो मैं अपने सहित तुम्हें

अपने बुद्धि के प्रभाव से बचा लूंगी। क्योकि मैं जल में विचरण करने के अनेक तरीके जानती हूँ।'

यह सुनकर शतबुद्धि ने कहा—'तुमने ठीक कहा क्योकि तुम हजार प्रकार की बुद्धि वाली 'सहस्रबुद्धि' हो। ठीक ही कहा है—

जहाँ हवा की गति नही, जहा सूर्य की किरणें नही जा सकती वहा भी बुद्धिमानो की बुद्धि शीघ्र प्रवेश कर जाती है।

इसलिये वचन सुनने मात्र मे ही पिता-पितामह से चले आते हुए इस जन्म-स्थान तालाव को कभी नही छोडना चाहिए और कही नही जाना चाहिए। मैं तुम्हें अपनी बुद्धि के प्रभाव से बचा लूंगा।' मेढक ने कहा—'सौम्य-मछलियो! मेरी तो एक ही भागने वाली बुद्धि है इसलिए मैं तो आज ही पत्नी सहित दूसरे तालाव को चला जाऊंगा।' यह कहकर मेंढक तो रात को ही दूसरे तालाव को चला गया। मछिहारो ने सवेरे आकर छोटी, विचली, वडी मछलियाँ, कछुए, मेंढक और केंकडो को पकड लिया। वे दोनो शतबुद्धि और सहस्र-बुद्धि भी स्त्री सहित इधर से उधर भागते हुए, काफी देर तक अपने को अपनी चालो से और टेढी-मेढी गति से बचाते हुए जाल में फँस गये और मर गये।

तदनन्तर दोपहर के वाद वे प्रसन्न धीवर घरो को चल दिये। वहुत भारी होने से एक ने शतबुद्धि को तो कन्धे पर उठा लिया और सहस्रबुद्धि को लटका कर ही ले चला। तदनन्तर तालाव के किनारे पर आये हुए मेंढक ने उनको ले जाते हुए देखकर अपनी पत्नी से कहा—'प्रिये! देखो!

शतबुद्धि तो सिर पर उठाकर ले जाई जा रही है और सहस्रबुद्धि लटकाई हुई ही। सौम्ये! मैं एक वुद्धि इस स्वच्छ जल में खेल रहा हूँ।'

ठीक ही है—'एकल में बुद्धि भी काम नही करती, साथ नही देती।'

पतिभक्ति की महिमा

एक वार राजा भोज धारानगर में अकेले रात में घूमते हुए किसी श्रेष्ठ ब्राह्मण के घर जाकर वहाँ पतिव्रता स्त्री को, जिसकी गोद में सिर रखकर सोते हुए पति को, देखा। उसका पुत्र सोकर उठा और आग की लपट के पास गया, पतिधर्म में लीन उस स्त्री ने अपने पति को नही जगाया। वालक को आग में

गिरते हुए देखकर भी नहीं पकडा। राजा उस आश्चर्यजनक कार्य को देखकर वही बैठ गया।

तदनन्तर वह पतिव्रता अग्नि की प्रार्थना करने लगी—'हे यज्ञ के स्वामी ! तुम सब कर्मो के साक्षी हो और सब धर्मो को जानते हो, इसलिये मेरे बच्चे पर कृपा करो और इसे मत जलाओ।' बालक आग की लपटो से खेलता हुआ आधा घण्टा वही बैठा रहा। बच्चा प्रसन्नमुख था और वह ध्यान में लीन थी। तब अपनी इच्छा से पति के उठने पर उसने झट से अपने पुत्र को उठा लिया।

तब राजा उस श्रेष्ठ धर्मव्रत को देखकर आश्चर्यचकित होकर बोला—'अहो ! मेरे समान किसका भाग्य है जिसके राज्य में ऐसी पुण्यात्मा स्त्रियाँ भी रहती हैं।' और वह लौट गया।

प्रात काल सभा में आकर सिंहासन पर बैठकर राजा ने कालिदास से कहा—'सुकवे ! मैंने पिछली रात बडा आश्चर्य देखा है कि—'आग चन्दन से भी शीतल थी।'

तब कालिदास ने झट से तीन चरण (श्लोक के तीन पाद) पढ़कर समस्या पूरी कर दी—

'आग में पुत्र को गिरता हुआ देखकर भी पतिव्रता स्त्री ने पति को नही जगाया। उस समय उसकी पतिभक्ति के प्रभाव से अग्नि भी चन्दन के लेप के समान शीतल हो गई।'

राजा अपने अभिप्राय को समझकर विस्मित हो कालिदास का आलिगन कर उसके पैरो पर गिर गया।

गधा और कुत्ता

बनारस में कर्पूरपटक नामक एक धोबी था। एक बार रात को उसके सो जाने पर उसके घर की वस्तुएँ चुराने के लिये कोई चोर घुसा। उसके आगन में गधा बधा था और कुत्ता भी बैठा था। तब गधे ने कुत्ते से कहा—'मित्र ! यह तुम्हारा काम है। तो तुम ज़ोर से भौंक कर मालिक को क्यो नही जगा देते !' कुत्ते ने कहा—'भद्र ! मेरे कार्य की तुझे चर्चा नही करनी चाहिए। क्या तू नहीं जानता कि मैं रात-दिन उसके घर की रखवाली करता हूँ तो भी

यह बहुत दिनो से मेरी परवा न करता हुआ मेरी उपयोगिता को नही समझता। इसलिये आज भी मुझे भोजन देने में लापरवाह है। स्वामी बिना कष्ट देखे नौकरो का सम्मान करने वाले नही रहते।' गधे ने कहा—'सुन रे बकवासी! जो काम के वक्त मांगता है वह नीच नौकर और नीच मित्र होता है।

कुत्ते ने कहा—'जो काम के वक्त नौकरो के साथ बहस करता है वह मालिक भी नीच होता है।'

तदनन्तर गधे ने क्रोध से कहा—'ओ दुष्ट बुद्धि ! तू पापी है जो कि मुसीबत के समय भी मालिक के काम की उपेक्षा करता है। खैर, जिससे स्वामी जाग जायगा वैसा मैं करता हूँ। क्योकि—

पीठ से धूप सेंके, पेट से आग सेके, स्वामी की सब प्रकार से सेवा करे और माया छोडकर परलोक को चाहे।'

यह कह कर उसने जोर से रेंकना शुरू कर दिया। तदनन्तर वह धोबी उसके चीत्कारो से जग गया और नीद टूट जाने के क्रोध से उठ कर उस गधे को लाठी से खूब पीटा।

जो व्यक्ति स्वामी के हित की इच्छा से दूसरे के अधिकार की चर्चा करता है वह चीत्कार करने वाले गधे की तरह पीटा जाकर दुःख प्राप्त करता है।

गीध और बिलाव

गगा के किनारे गृद्धकूट नामक पहाड पर एक बडा भारी पिलखन का पेड था। उसके खोखल में भाग्य के दुष्परिणाम से, नाखून और आँखो से रहित जरद्गव नामक एक गीध रहता था। उस पेड पर रहने वाले पक्षी उसपर कृपा कर उसके जीवन के लिए अपने भोजन में से कुछ-कुछ निकाल कर उसे देते थे। उससे वह जीता था और पक्षियो के बच्चो की रक्षा करता था। इसके बाद कभी दीर्घकर्ण नामक एक बिलाव पक्षियो के बच्चो को खाने के लिए वहाँ आया। तब उसे आते देखकर पक्षियो के बच्चो ने डर कर कोलाहल करना शुरू कर दिया। यह सुन कर जरद्गव ने कहा—'अरे यह कौन आ रहा है?' दीर्घकर्ण ने गीध को देख कर डर से कहा—'ओह मैं मारा गया। अब इसके पास से भागने में असमर्थ हूँ। इसलिये जैसा होगा वैसा ही सही। अच्छा तो

मैं विश्वास पैदा करके पास जाता हूँ।' यह सोचकर उसके पास जाकर बोला—'श्रीमन्! आपको प्रणाम करता हूँ।' गीध ने कहा—'तू कौन है?' बिलाव ने कहा—'मैं दीर्घकर्ण नामक बिलाव हूँ।' गीध बोला—'दूर हट! नहीं तो मैं तुझे मार डालूँगा।' बिलाव ने कहा—'पहले मेरी बात सुनिए। उसके बाद यदि मैं मारने योग्य होऊँ तो मार डालिए।

कोई व्यक्ति केवल जाति के कारण क्या कहीं मारा जाता है या पूजा जाता है। व्यवहार को जान कर ही वध्य अथवा पूज्य होता है।'

गीध ने पूछा—'कहो, किस लिये आये हो?' वह बोला—'मैं यहाँ गंगा के किनारे, नित्य स्नान करने वाला, ब्रह्मचारी, चान्द्रायण व्रत करता हुआ रहता हूँ। आप धर्मज्ञान में लीन हैं ऐसा विश्वासपात्र सभी पक्षी सदा मेरे आगे प्रशंसा करते रहते हैं। इसलिये आप विद्या और उम्र में बड़ों से धर्म सुनने के लिये यहाँ आया हूँ। और आप ऐसे धर्मज्ञाता हैं कि मुझ अतिथि को मारने को तैयार हैं। यदि आपके पास अन्न नहीं है तो भी प्रेम के वचनों से तो अतिथि की पूजा करनी ही चाहिए। क्योंकि—

- आसन, भूमि, पानी और मीठी तथा प्यारी वाणी-ये चार चीजें तो सज्जनों के घर में कभी कम नहीं होतीं।

और भी—यदि कोई नीच भी उत्तम जाति के घर में आ जाये तो भी उस की पूजा करनी चाहिए उसका सम्मान करना चाहिए क्योंकि अतिथि सब देवताओं का रूप होता है।'

गीध ने कहा—बिलाव तो मांस में रुचि रखने वाला होता है और यहाँ पक्षियों के बच्चे रहते हैं। इसलिये मैं ऐसा कहता हूं।' यह सुनकर बिलाव ने पृथ्वी को छूकर कानों को छुआ और बोला—'मैंने धर्मशास्त्र पढ़कर संसार से विरक्त होकर यह कठोर चान्द्रायण व्रत लिया है। आपस में विवाद करने वाले (भिन्न भिन्न नियमों वाले) धर्मशास्त्रों की 'अहिंसा परम धर्म है' इसमें एक ही राय है।

क्योंकि—जो लोग सब हिंसाओं से दूर हो गये हैं, जो सब कुछ सह लेते हैं और जो सबके आश्रय रूप हैं वे स्वर्ग जाने के अधिकारी हैं।

और सुनो—यह पेट तो स्वच्छन्द वन में उत्पन्न हुए साग से भी भर जाता

है, इस मुए पेट के लिये कौन बडे भारी पाप (हिंसा) को करे।'

इस प्रकार विश्वास पैदा करके वह विलाव पेड के खोखल में बैठ गया। तदनन्तर कुछ दिन बीतने पर वह पक्षियो के बच्चो पर झपटा मार कर खोखल में लाकर रोजाना खाता था। जिनके बच्चे खाये गये उन्होंने शोक से व्याकुल हो रोते हुए इधर-उधर जानना शुरू कर दिया। यह देखकर विलाव कोटर से निकल कर बाहर आ गया। बाद में पक्षियो ने इधर-उधर खोजते हुए वहाँ पेड की खोखल में बच्चो की हड्डियाँ प्राप्त कर ली। तब उन्होंने कहा—'इसी जरद्गव गीध ने ही हमारे बच्चे खाये है।' इस प्रकार निश्चित करके पक्षियो ने गीध को मार डाला।

जिसका कुल और स्वभाव ज्ञात न हो उसे निवास-स्थान नहीं देना चाहिए। देखो, विलाव के दोष से बेचारा जरद्गव गीध मारा गया।

महात्मा गाँधी

कौन ऐसा भारतवासी बालक होगा जो महात्मा गाधी के नाम को न जानता हो? इस महापुरुष ने न केवल अपने भारतवर्ष का अपितु सारे संसार का जो उपकार किया उसे याद कर करके सभी लोग आज भी इनके नाम के आगे श्रद्धा से मस्तक झुकाते हैं और अपने मन-मन्दिर में इनकी पूजा करते हैं। यद्यपि महात्मा गाँधी अब हमारे बीच नहीं हैं तो भी आदर्शस्वरूप इस नवरत्न का जीवन आज भी करोडो भारतवासियो के ही नहीं बल्कि अज्ञान के अन्धेरे में पड़े हुए ससार के सभी मनुष्यो को रास्ता दिखाने वाले दीपक के खम्बे के समान है।

सत्य, अहिंसा और लोकसेवा का अवतारस्वरूप महात्मा गाँधी बचपन में एक आदर्श छात्र था। उनके अपने जीवनचरित्र में लिखा है कि बचपन की और छात्रावस्था की छोटी-से-छोटी बात को पढ़कर बड़ा आश्चर्य होता है कि कितनी बड़ी बुद्धि और स्मरणशक्ति थी उन महापुरुष की। ६ वर्ष का यह बालक गाँधी जब राजकोट नगर में प्रारम्भिक पाठशाला में पढ़ता था उस समय के विषय में यह लिखते हैं—"मुझे उन दिनों के, अध्यापक और उनके नाम तथा उनसे बातचीत अच्छी तरह याद है।'

आजकल के युग में छात्र जिस-जिस बात को तुच्छ समझकर और परवा न करते हुए दिखाई देते हैं उसी को मोहनदास गाँधी बडी विशेषता देते थे। वास्तव में बचपन ही मनुष्य के आगामी जीवन की आधारशिला होता है। १२ वर्ष की उम्र मे जब गाँधी हाई स्कूल मे प्रविष्ट हुए तब यह लिखते है— एक बार पाठशाला के इन्स्पैक्टर ने स्कूल में आकर विद्यार्थियो की परीक्षा ली। उनके द्वारा पूछे गये अंग्रेजी भाषा के कैटल शब्द की स्पैलिंग शुद्ध लिखने में मैं असमर्थ रहा। मेरे अध्यापक मेरे पास मे बैठे हुए विद्यार्थी की स्लेट को देखकर लिखने के लिये मुझे बार-बार कहते रहे किन्तु मैंने नकल नही की। नतीजा यह हुआ कि मुझे छोडकर सभी छात्रो की स्पैलिंग शुद्ध निकली केवल मैं ही मूर्ख रहा। बाद में मेरे अध्यापक ने इस मूर्खता को दूर करने के लिये बहुत कुछ कहा किन्तु मैंने कभी नकल की बुरी आदत को स्वीकार नही किया। उन्ही दिनों बालक गाँधी ने कभी 'हरिश्चन्द्र' नाटक को खेला जाता हुआ देखा। उससे अत्यधिक प्रभावित होकर उन्होंमे मन में सोचा—सभी लोग हरिश्चन्द्र के समान सत्यवादी क्यो नही हो जाते। स्वय हरिश्चन्द्र के समान सदा सत्यव्रत (सत्यवक्ता) रहे।

बालक गाँधी स्वभाव से परमसरल, बहुत लज्जाशील, और दृढ़व्रती थे। स्कूल की पढाई समाप्त होने के बाद वह सीधे घर जाते थे, किसी साथी के साथ खेलते नही थे। और घर से भी स्वयं अकेले ही घूमने के लिए निकलते थे। यह घूमने की आदत उनमे जीवन भर रही। ये सत्य, सरलता आदि गुण ही मिल कर 'चरित्र नाम को धारण करते हैं। इस बारे में गाँधी जी खुद लिखते हैं—"अपने चाल-चलन को ठीक रखने मे मैं स्वयं बडा सावधान रहा।" वास्तव में छात्रावस्था रूपी दीवार में लगाये गये इन गुणो ने ही इस बालक को बाद में बडी भारी पदवी दिलाई। सच है अंग्रेजी भाषा की यह कहावत कि— बालक मनुष्य का पिता होता है अर्थात् बाल्यावस्था ही मनुष्य के आगामी जीवन को बनाती है।

मुनि और चूही

गा के किनारे तपस्वियो से युक्त एक आश्रम था। वहाँ याज्ञवल्क्य

नामक कुलपति था। (एक वार) गंगा में स्नान करके आचमन के लिये जल लेते हुए उसके हाथ में बाज के मु ह से छूटी हुई कोई चूही आ गिरी। उसे देखकर वड के पत्ते पर रख कर फिर स्नान करके, आचमन करके और प्रायश्चित्त आदि कर्म करके, उस मूपिका को अपने बल से लडकी बना कर उसे अपने आश्रम में ले आये और अपनी सन्तानहीन पत्नी से बोले—'सौम्ये ! लो, इस अपनी लडकी को। इसकी कोशिश से रक्षा करना।'

तदनन्तर मुनि की पत्नी से लालित और पालित और सवर्द्धित वह जब १२ वर्ष की हो गई तो उसे विवाह योग्य देखकर वह पत्नी अपने पति से कहने लगी—'स्वामिन् ! क्या आपको नही मालूम कि इस तुम्हारी पुत्री के विवाह का समय बीता जा रहा है।' वह बोला—'ठीक कहा। मैं इसे इसके समान (योग्य) पति को दूंगा, किसी दूसरे को नही। इसलिए यदि यह चाहे तो मैं भगवान सूर्यदेव को बुलाकर इसको उसे दे दूं।' वह बोली—'इसमे क्या हर्ज है ? यही करिए।'

तदनन्तर मुनि ने सूर्य को बुलाया। मन्त्रो के प्रभाव से उसी समय सूर्य ने उपस्थित होकर कहा—'भगवन् ! मुझे किस लिये बुलाया है ? वह बोला—'यह मेरी पुत्री है। यदि यह तुम्हे वरे तो इसे स्वीकार करो।' यह कहकर मुनि ने अपनी पुत्री से कहा—'पुत्रि ! क्या तुझे तीनो लोको को प्रकाशित करने वाले ये सूर्यदेव अच्छे लगते हैं।' बेटी ने कहा—'पिताजी ! यह बहुत गर्म (जलाने वाला) है। मैं इसे नही चाहती। इसलिये इससे भी अधिक कोई श्रेष्ठ व्यक्ति बुलाइये।'

तब उसकी यह बात सुनकर मुनि ने सूर्य से कहा—'भगवन् ! तुमसे कोई श्रेष्ठ है ?' सूर्य ने कहा—'मेरे से भी बडा बादल है जिससे ढका जाकर मैं अदृश्य हो जाता हूँ।' तब मुनि ने बादल को बुलाकर कन्या से कहा—'पुत्रि ! क्या इसे तुम्हे दे दूं।' वह बोली—'यह काले रंग का है और जड है, इसलिये इससे भी बढकर किसी दूसरे को मुझे दीजिए।' मुनि ने मेघ से पूछा—'ओ मेघ, तुम से भी कोई बडा है ?' मेघ ने कहा—मेरे से बडा वायु है। वायु से उडाया जाकर मेरे हजारो टुकड़े हो जाते हैं।' यह सुनकर मुनि ने वायु को बुलाया और कहा—'बेटी ! क्या यह वायु तेरे विवाह के लिये ठीक रहेगा ?' उसने

कहा पिता जी ! यह बहुत चंचल है, इसलिये इससे भी अधिक कोई बुलाओ।' मुनि ने कहा—'वायुदेव ! तुमसे भी अधिक है कोई?' वायु ने कहा—'मेरे से बढ़कर पर्वत है जिससे रोका जाकर मेरा कुछ वस नही चलता।'

तब मुनि ने पर्वत को बुलाकर कन्या से कहा—'पुत्रि ! क्या तुझे इसे दू ।' वह बोली—'यह बडा सख्त है और जड़ है, अतः मुझे किसी दूसरे को दीजिए।' मुनि ने पर्वत से पूछा—'अरे पर्वतराज ! तुमसे भी श्रेष्ठ है कोई ?' पहाड ने कहा—'मेरे से भी बडे चूहे है जो मेरे शरीर को भी बल से चीर डालते है ।' तब मुनि ने चूहे को बुलाकर उसे दिखाया और कहा—'बेटी ! क्या तुझे इसे देदूं । क्या तुझे चूहो का राजा अच्छा लगता है ?' वह भी उसे देखकर 'यह अपनी जाति का ही है'—यह समझती हुई प्रसन्नता से रोमांचित होकर बोली—'पिता जी ! मुझे चूही बनाकर इसे दे दीजिए जिससे अपनी जाति के अनुकूल गृहस्थ धर्म को पूरा करू ।' तब मुनि ने अपने तपोबल से उसे चूही बनाकर उस चूहे को दे दिया।

सूर्य, मेघ, वायु और पर्वत को पति न मानकर चूही ने अपनी जाति को प्राप्त कर लिया, इसलिये कहते है कि अपनी जाति नही छोड़ी जा सकती।

ब्राह्मण और धूर्त

किसी स्थान पर अग्निहोत्र करने का व्रत लिये हुए मित्र शर्मा नामक ब्राह्मण रहता था, उसने कभी माघ महीने में मनोहर वायु चलने पर, आकाश के बादलो से घिर जाने पर, और धीरे धीरे बादल के बरसने पर पशु को माग कर लाने के लिये दूसरे गाव में जाकर किसी यजमान से कहा—'हे यजमान ! अगली अमावस को मै यज्ञ करूँगा। इसलिये मुझे एक यज्ञ के लिये पशु दीजिये।' तब उसने उसे शास्त्रानुकूल हृष्टपुष्ट बकरा दिया। वह भी उस स्वस्थ बकरे को इधर उधर जाता देख कन्धे पर उठा कर जल्दी-जल्दी अपने गाव की ओर चल पडा।

ब्राह्मण को जाता हुआ रास्ते में तीन धूर्तो ने भूख से व्याकुल होकर देखा। वे ऐसे स्वस्थ शरीर वाले बकरे को कन्धे पर उठाये देख कर आपस में कहने लगे—'अहा ! इस बकरे के खाने से आज का जाडा क्यो न दूर किया

जाय ? इसलिये इसे ठगकर बकरा लेकर जाड़े से बचाव करते है ।' तदनन्तर उनमें से एक ने वेष- बदल कर दूसरे रास्ते से सामने आकर उस यज्ञव्रती से बोले—'अरे अग्निहोत्री जी ! क्यो ऐसा लोकविरुद्ध हास्य का कार्य कर रहे हो कि इस अपवित्र कुत्ते को कन्धे पर उठाये हो । तब उसने गुस्से होकर कहा—'अरे ! क्या अन्धा है जो बकरे को कुत्ता कह रहा है ।' वह बोला—'ब्राह्मण देव ! तुम्हे क्रोध नही करना चाहिये । अपनी इच्छानुसार जाइए ।'

जब वह कुछ और रास्ता तय करके जाता है तो दूसरा धूर्त सामने आकर बोला—'ओ ब्राह्मण देवता जी ! अनर्थ की बात है कि यद्यपि यह मरा हुआ बछडा तुझे प्यारा है तो भी कन्धे पर उठाना उचित नही ।' तब वह क्रोध से बोला—'अरे क्या तू अन्धा है जो बकरे को मरा हुआ बछडा बता रहा है ।' वह बोला—'भगवन् ! गुस्सा न कीजिए । मैने अज्ञान से ऐसा कह दिया, आप अपनी इच्छानुकूल कीजिए ।'

तदनन्तर ज्योही थोडा रास्ता वह पार करता है त्योही तीसरा धूर्त वेष बदल कर सामने आकर उससे बोला—'अरे ! यह ठीक नही है कि तुम गधे को कन्धे पर उठाये हुए हो । इसलिये इसे पटक दो जब तक कोई दूसरा नही देखता ।' तब वह उस बकरे को गधा समझता हुआ डर से पृथ्वी पर पटक कर अपने घर की ओर चला गया । तब उन तीनो ने मिलकर उस पशु को लेकर अपनी इच्छानुसार खूब खाया ।

कविसम्राट् कालिदास

संस्कृत पढने वाले सभी कालिदास के नाम को जानते ही है । इस महोदय की विचित्र कल्पनाशक्ति, सर्वतोमुखी प्रतिभा और उत्कृष्ट नाटक-निर्माण की कुशलता थी । कहा जाता है कि यह साक्षात् सरस्वती का अवतार था । इसलिये प्राचीनकाल से ही वह 'कविशिरोमणि', 'कवि-कुलगुरु' इत्यादि अनेक उपाधियो से सुशोभित होकर सभी विद्वानो का आदरपात्र है । उसके ग्रन्थो के अनुवाद पढ़ पढ़ कर काव्यामृत रस से पाश्चात्य विद्वान् आनन्द-मुग्ध होकर उसे 'भारतवर्ष का शेक्सपीयर' इस पदवी से सम्मानित करते हैं । जर्मन देश का प्रसिद्ध कवि गेटे महोदय तो कालिदास के शकुन्तला नाटक को पढकर इस

प्रकार आनन्द में सराबोर हो गया कि उसने ससार के सभी मनुष्यो को संबोधन करके कहा—'हे मनुष्यो ! यदि तुम मन की असली रसायन और प्रसन्न करने वाले, मन को हरने वाले, पृथ्वी और स्वर्ग के सम्मिलित विचित्र ऐश्वर्य को चाहते हो तो कालिदास के शकुन्तला नाटक का सेवन करो।'

कालिदास ने बहुत से ग्रन्थ बनाये हैं जो इस समय परम प्रसिद्ध हैं—कुमारसंभव, रघुवंश—ये दो महाकाव्य, ऋतुसहार, मेघदूत—ये दो गीतिकाव्य; और मालविकाग्निमित्र, विक्रमोर्वशीय और अभिज्ञान शाकुन्तल ये—तीन नाटक हैं। इन सब ग्रन्थो में हमारे कलाकार ने मनुष्यो के स्वभाव का विशेषकर भारतीय आदर्श जीवन का परम सुन्दर चित्रण किया है।

'कालिदास कब कहाँ पैदा हुए!' इत्यादि विषयो में विद्वानों के भिन्न-भिन्न विचार हैं। यह कविसम्राट् ऐसा अभिमानहीन था कि उसनें अपने ग्रन्थो में अपने जीवन के विषय में अपने आप कही भी कुछ भी हाल या संकेत नही लिखा। इसके ग्रन्थो से केवल यही प्राप्त होता है कि यह किसी विक्रमादित्य राजा की राजसभा में कवि था। 'यह विक्रमादित्य कौन था ?' इसमें भी विद्वान् लोग अनेक प्रकार का विवाद करते हैं।

कालिदास के जीवन के हाल को लेकर सब जगह यह किंवदन्ती प्रचलित है कि कालिदास पहले महामूर्ख था। उसका विवाह विद्योत्तमा नामक एक राजकन्या से हुआ। विद्योत्तमा परम विदुषी थी। उसने राज्य में सब जगह यह ढिंढोरा फिरवा दिया था कि 'जो मुझे शास्त्रार्थ में जीतेगा उसी के साथ मैं विवाह करूंगी।' यह सुन विवाह के इच्छुक अनेक राजकुमार और विद्वान् आये किन्तु उसने उन सबको शास्त्रार्थ में हरा दिया। तदनन्तर अपमान से लज्जित विद्वानो और मन्त्रियो ने उससे बदला लेने के लिये ऐसा निश्चय किया जिससे विद्योत्तमा का किसी महामूर्ख के साथ विवाह हो। उन्होने चारों ओर अपने दूत भेज दिये।

तब महामूर्ख को ढूंढने के लिये दूत कहीं वन में वृक्ष की शाखा के ऊपर के भाग में अपने आप बैठकर नीचे के भाग को कुल्हाडे से काटते हुए किसी पुरुष को देखा। 'यह परम मूर्ख है जो इतना भी नही जानता कि कटी हुई टहनी से मैं भी गिर जाऊंगा।' यह देख कर उसे बुला कर कहा कि 'तेरा

विवाह राजकुमारी से करा देंगे।' यह लोभ देकर नगर में उसे ले आये। तदनन्तर उसे स्नान करा और पण्डितो का वेष धारण करा पण्डितो ने उससे कहा—'हे पण्डितरूप ! तू राजसभा में मौन रहना।' तब उसे राजदरबार में ले गये और राजकुमारी को भी कह दिया कि यह महापण्डित आजकल मौन-व्रत धारण किये हैं।' सभा में मूर्ख को लक्ष्य करके विद्योत्तमा ने एक उगली उठाकर अपने अभिप्राय को प्रकट किया कि 'ससार में केवल एक ईश्वर ही है।' मूर्ख ने उस इशारे से समझा कि वह मेरी एक आँख फोडना चाहती है।' इसलिये क्रुद्ध होकर 'मैं तेरी दोनो आँखें फोड दूँगा' इस अभिप्राय से दो उगली उठा दी। पण्डितो ने विद्योत्तमा से कहा कि 'केवल एक ईश्वर ही नही है अपितु ईश्वर और प्रकृति ये दो तत्व हैं।' विद्योत्तमा ने सन्तुष्ट होकर तीन उगलियाँ उठाकर यह अभिप्राय प्रकट किया कि 'प्रकृति तीन गुणो वाली है।' मूर्ख ने समझा कि वह अगुलियो से मारेगी' इस मतलब से 'चपेटा लगाऊगा। इस अभिप्राय से उसने पाँचो उगलिया उठाकर चपेट दिखाई। विद्योत्तमा ने' समझा कि 'तीन गुणो से ही नही अपितु पाँच तत्त्वो—पृथ्वी, जल, तेज, वायु, आकाश—से सृष्टि हुई है।' इस अभिप्राय से उसने भी पाँचो उगलिआँ दिखाई। मूर्ख ने समझा कि यह चाँटे से डरा रही है, इसलिये मुक्का बाँधा कि मैं चाँटे के बदले मुक्का मारूगा।' राजकुमारी ने समझा कि 'पाँच इन्द्रियो को मुट्ठी में कर लेने से अर्थात् सयम से ही मनुष्य वास्तव में मनुष्यता को प्राप्त करता है अन्यथा पशु ही है।' अब बेचारी राजपुत्री अपने को हारा हुआ मानकर अपनी घोषणा के अनुसार उस मूर्ख के साथ विवाह कर लिय।

तदनन्तर रात को एकान्त म बैठे हुए दोनो पति पत्नी ने कही से कोई शब्द आता हुआ सुना। विद्योत्तमा ने डर कर अपने पति से कहा—'यह किस की आवाज है।' मूर्ख ने बाहर जाकर पास ही ऊट को देखकर लौट कर थथलाती बोली में कहा—'ऊट रो रहा है।' यह सुनकर राजकुमारी ने सोचा—'ओहो ! यह मेरा पति तो महामूर्ख है जो 'उष्ट्र रौति' यह भी शुद्ध नही कह सकता। यह पण्डितो का जाल है जिसने मेरा विवाह निरक्षर भट्टाचार्य से हो गया है।' फिर अत्यन्त क्रुद्ध हो उसे धक्के देकर उसी समय घर से बाहर

निकाल दिया।

वह मूर्ख पत्नी से बेइज्जत हो बडा दुखी हुआ। 'अब मुझे इस अपमान का निवारण कैसे करना चाहिये।' यह सोच वह बनारस चला गया। वहां उसने बडे परिश्रम से और प्रेम से अनेक विद्याएं पढनी शुरू की। समय समय पर वह कालीस्वरूपा भगवती सरस्वती के मन्दिर में जाकर पूजा-पाठ भी करता था। इसी कारण वह 'कालिदास' नाम से प्रसिद्ध हुआ। कुछ समय में उसने सब विद्याए पढ ली और महान् पण्डित बन कर फिर अपनी पत्नी विद्योत्तमा के पास आया। घर में दरवाजा बन्द देखकर खटखट करके जोर से बोला—'प्रिये, दरवाजा खोलो।' यह सुनकर विद्योत्तमा परम विस्मित होकर सोचने लगी 'कोई विद्वान् है।' वह दरवाजा खोलकर पति को घर में लाई। उसकी विद्वत्ता से अत्यन्त प्रसन्न होकर बाकी जीवन उसी के साथ बिताया।

तब कालिदास ने अपनी पत्नी के 'अस्ति, कश्चित्, वाग्विशेष:' इन तीन पदो में से प्रत्येक पर तीन काव्य बनाये। 'अस्ति' पद से 'अस्त्युत्तरस्या दिशि देवतात्मा' देकर कुमारसभव 'कश्चित्' पद से 'कश्चित्कान्ता-विरह-गुरुणा' देकर मेघदूत और 'वाग्' पद से 'वागार्थाविव सपृक्तौ' देकर रघुवश शुरू किया।

यह कहावत सच हो या झूठ हो किन्तु यह सत्य ही है कि परिश्रम से और लगन से सब कुछ हो सकता है।

पेट का और बांबी का साँप

किसी नगर में देवशक्ति नामक राजा था। उसका पुत्र पेट के साँप से प्रतिदिन कमजोर होता जाता था। अनेक दवाइयो और अच्छे-अच्छे वैद्यो तथा अच्छे शास्त्रो से बताई हुई औषधियो की युक्तिओ से इलाज कराने पर भी स्वस्थ नही हुआ। इस लिये खिन्न होकर वह राजकुमार दूसरे देश में चला गया। किसी शहर में भिक्षा माँग खाकर एक बडे मन्दिर में वक्त काटने लगा। उस शहर मे बलि नामक राजा था। उसकी दो पुत्रियाँ थी। वे प्रतिदिन सूर्योदय के समय पिता के चरणो में आकर नमस्कार करती थी। उनमें से एक कहती थी—'महाराज की जय हो जिस की कृपा से सब सुख है और दूसरी कहती थी कि महाराज! सब कर्म का फल ही भोगा जाता है।' यह

सुनकर क्रुद्ध होकर राजा बोला—'हे मन्त्री जी ! इस कठोरभाषिणी कुमारी को किसी विदेशी को दे दो जिससे यह अपने किये को भोगे ।' तब मन्त्रियो ने 'अच्छा' कहकर उसे मन्दिर में ठहरे हुए राजकुमार को उसे दे दिया । वह भी प्रसन्नमन हो उस पति को देवता के समान समझ कर उसके साथ दूसरे देश को चल दी ।

तदानन्तर किसी दूर तालाब के किनारे राजकुमारी ने राजकुमार को अपने स्थान की रक्षा के लिये कहकर स्वय घी, तेल, नमक, चावल आदि खरीदने के लिये चली गई । खरीदो-फरोख्त करके जब आई तो राजकुमार बाँबी पर मुँह रखे सो रहा था । उसके मुँह से साँप फण निकालकर हवा खा रहा था और उस बाबी से दूसरा साँप भी निकला हुआ था । उन दोनो को एक दूसरे को देख कर क्रोध हो आया । तब बाबी के साँप ने कहा—'अरे दुष्ट, क्यो इस सुन्दर राजकुमार को तग कर रखा है ।' तब मुँह के साप ने कहा—'अरे तू दुष्ट भी तो बाबी के अन्दर सुवर्ण से भरे हुए दो कलशो को दबाये दूषित किये बैठा है ।' इस प्रकार, एक दूसरे के भेदो को प्रकट कर रहे थे । बाँबी के साप ने फिर कहा—'अरे दुष्ट क्या तेरी कोई दवाई नही जानता कि तू जीरा और राई से बनी काँजी से नष्ट हो सकता है ।' तब पेट वाले साप ने कहा—'क्या तेरी कोई दवा नही जानता कि गर्म तेल अथवा उबलते हुये पानी डालने से तेरा भी नाश हो सकता है ।'

इस प्रकार उस राजकुमारी ने पेड की आड में हो उन दोनो की आपस की बातचीत और गुप्त भेदो को सुनकर वैसा ही किया । और अपने पति को रोगहीन करके और वह खजाना प्राप्त कर अपने देश को चली गई । पिता माता और कुटम्बियो से सम्मानित हो अनेक प्रकार के सुखोपभोग प्राप्त करके रहने लगी ।

'जो जन्तु एक दूसरे के भेदो को नही छिपाते वे वल्मीक और पेट के सापों के समान मृत्यु को प्राप्त होते है ।'

अकबर और बीरबल

एक बार सम्राट् अकबर मन्त्री बीरबल के साथ किसी राजनीतिक विषय

पर विचार करते हुए उसका निर्णय नही प्राप्त कर सका। उसने व्यग्य से वीरवल से कहा—'हे वीरवल ! मेरे एक प्रश्न का उत्तर दो।' वीरवल ने पूछा—'महाराज का क्या प्रश्न है ?' अकवर ने कहा—'कि मूर्ख के साथ मेल होने पर बुद्धिमान को क्या करना चाहिए ?' वीरवल ने सोचा कि महाराज का यह व्यग्य मेरे प्रति है।' इसलिये कुछ दु खित होकर बोला—'महाराज का यह प्रश्न बडा कठिन है। इसलिये विचार कर कल उत्तर दू गा।' यह कह कर वीरवल राजदरवार से अपने घर चला गया।

रास्ते मे जाते हुए वीरवल ने एक गँवार को देखा और उसे अपने पास वुला कर कहा—'अरे देहाती, तू बडा गरीव है। कल तू मेरे साथ राजदरवार चलना, मैं तुझे वहाँ से बहुत-सा धन दिलाऊ गा।' तव उसे रात को अपने घर ले आया और सवेरे स्नान कराके साफ बनाकर पण्डित का वेष धारण कराके वीरवल ने कहा—'अरे ग्रामीण ! तू राजदरवार मे महाराजा के पूछने पर कुछ भी उत्तर न देना, चुप रहना।' तव वे दोनो राजदरवार में गये।

राजदरवार में पहुंचकर अकवर ने वीरवल से पूछा—'वीरवल ! कल के प्रश्न का उत्तर दो कि मूर्ख के साथ वास्ता पडने पर बुद्धिमान् को क्या करना चाहिये ?' वीरवल ने कहा—'महाराज ! यह मेरा जाति भाई वडा पडित है, यही महाराज के प्रश्न का उत्तर देगा।' तव महाराज ने महापण्डित से पूछा—'अरे महापण्डित उत्तर दो।' वह गँवार कुछ नही वोला—'महाराज ने फिर पूछा किन्तु वह फिर भी मौन ही रहा। तव अकवर मन में हैरान हो क्रुद्ध होकर वीरवल से पूछने लगा—'मन्त्रिवर ! यह तुम्हारा भाई तो कुछ भी उत्तर नही देता, चुप ही वैठा है। क्या कारण है ?' वीरवल ने उठकर कहा—'महाराज ! यह मौन रहकर ही महाराज के प्रश्न का उत्तर दे रहा है कि 'मूर्ख के साथ वास्ता पडने पर बुद्धिमान को चुप ही रहना चाहिए।'

अकवर 'वीरवल ने मुझे ही मूर्खों में गिना है।' समझ कर कुछ शर्मिन्दा होकर मन मे वीरवल की उत्कृष्ट बुद्धि की प्रशसा करने लगा।

राजा भोज की बीमारी

एक वार राजा भोज नगर से वाहर गया। उसने कही नये तालाव के जल से

(नाक से पानी चढाकर) कपालशोधन किया। उस पानी में कोई जोक उसके कपाल में घुस गई। राजा अपनी नगरी में आ गया। तब से लेकर राजा के कपाल में दर्द रहने लगा। वहाँ के श्रेष्ठ वैद्यो से अच्छी प्रकार इलाज किये जाने पर भी वह अच्छा नही हुआ। इस प्रकार मनुष्यो से न जानने योग्य उस भयकर बीमारी से वह रात-दिन अस्वस्थ रहने लगा और एक साल बीत गया किन्तु वह रोग दूर नही हुआ। तब भोज ने अनेक प्रकार की औषधियो के खाने से तग आकर अपने शोकाकुल मन्त्री बुद्धिसागर से कहा—'मेरे लिये कोई वैद्य महल में न आवे। सब दवाइयो को नदी के बहाव मे फेंक दो क्योकि मेरा मरने का समय आ गया है।' यह सुनकर सभी नगरवासी, कवि और रानिया आँसू बहाने लगे।

तदनन्तर कभी देवताओ की सभा मे इन्द्र ने सब मुनियो में बैठे नारद से पूछा—'हे मुनि जी! इस समय पृथ्वी पर क्या हाल है?' तब नारद ने कहा—'देवराज! कोई खास बात नही किन्तु धारा नगरी का राजा भोज रोग से पीडित होकर अत्यन्त अस्वस्थ है। उसका रोग किसी ने भी दूर नही किया—इसलिये उसने सब वैद्यो को अपने देश से निकाल दिया है। वैद्यक शास्त्र भी झूठे हैं—यह बात फैला दी है।' यह सुनकर इन्द्र ने पास बैठे अश्विनीकुमारो को कहा—'यह कौन-सी बीमारी है जो दूर नही हो सकती। क्या आप दोनो को मालूम है?'

तब उन्होने कहा—'देव! कपाल-शोधन करते हुए उसके कपाल में जोक प्रविष्ट हो गई है।' तब इन्द्र ने मुस्कराते हुए कहा—'तो तुम दोनो अभी जाओ, नही तो आज के बाद भूमि पर वैद्यक की निन्दा होगी। भोज विद्या-विलास का स्थान है और शास्त्रो का उद्धार करने वाला है।' इन्द्र की आज्ञा से वे दोनो, ब्राह्मण का वेष धारण कर धारा नगर में आकर द्वारपाल से बोले—'अरे द्वारपाल! हम दोनो वैद्य हैं। काशी से आये हैं—यह बात राजा भोज से कहो। उसने वैद्य-शास्त्र को झूठा माना है इसे सुनकर उसकी पुन. स्थापना करने के लिए और उसका रोग दूर करने के लिये हम दोनो आये हैं।' 'तब द्वारपाल ने कहा—'ब्राह्मणो! किसी वैद्य को अन्दर मत आने दो-महाराजा की आज्ञा है। राजा अधिक अस्वस्थ है, इसलिये यह मौका सूचना देने का नही है।' उसी

समय किसी कार्य से बुद्धिसागर मन्त्री बाहर आया और उन्हें देखकर उसने पूछा—'आप कौन है ?' तब उन्होंने वैसा ही कहा। बुद्धिसागर उन दोनो को राजा के पास ले गया। राजा उनको देख कर मुख की कान्ति से उनको देवता जान कर 'इन दोनो से रोग दूर किया जा सकता है' यह निश्चय कर उनका बडा मान किया। तब उन्होंने कहा—'राजन्, डरो मत ! रोग को अब समाप्त समझो, कहीं एकान्त मे हो जाओ।' राजा ने वैसा ही किया। उन दोनो ने राजा को बेहोश कर सिर के कपाल का आपरेशन कर वहा से जोको के झुण्ड को लेकर किसी बर्तन में रखकर सुई से फिर सी कर संजीवनी से फिर होश दिला कर उसे दिखाया। तब उसे देखकर राजा चकित हुआ 'यह क्या' कहकर पूछने लगा। तब उन्होंने कहा—'राजन् ! तुमने कपाल शोधन से यह पाया है।' तब राजा ने उन्हें अश्विनीकुमार मान कर फिर भी निश्चय करने के लिये पूछा—'हमारा पथ्य क्या है ?' तब उन्होंने कहा—'गर्म जल से स्नान करना, दूध पीना और परिश्रम करना—मनुष्यो ये तुम्हारा मनुष्य पथ्य है।' इसी बीच में राजा ने 'मनुष्य' संबोधन सुनकर यदि हम मनुष्य है तो तुम कौन हो—यह सोच उनके हाथ झट से अपने हाथो से पकड किया। उसी समय वे दोनो 'कालिदास से पूरा होने योग्य चौथा चरण कह कर अन्तर्धान हो गये। तब राजा ने विस्मित सबको बुलाकर यह बात कही। सुनकर सभी चकित हो गये। कालिदास ने चौथा चरण पूरा कर दिया है 'चिकना और गर्म भोजन खाना।'

तदनन्तर भोज ने कालिदास को भी दिव्य मनुष्य समझ कर बड़ा सम्मान किया। राजा भोज भी प्रतिदिन शुक्ल पक्ष में चन्द्रमा के समान बल और कान्ति से बढने लगा।

मूर्ख पण्डित

किसी स्थान पर चार ब्राह्मण आपस में मित्र बनकर रहते थे। बचपन में उनका विचार हुआ कि दूसरे देश जाकर विद्या पढें। दूसरे दिन वे ब्राह्मण विद्योपार्जन के लिये कन्नौज चले गये। वहाँ विद्यालय में १२ वर्ष तक एकाग्र चित्त से पढते हुए वे परम विद्वान हो गये। तब उन चारो ने मिलकर कहा कि हम सब अब विद्या-पारंगत हो गये हैं अब गुरुजी से आज्ञा लेकर अपने

देश को जायें। यह कहकर वे गुरु जी से आज्ञा लेकर पुस्तकें उठाकर चल दिये। जब वे थोडी दूर पहुंचे तो वहाँ पर दो रास्ते आ गये। सभी वही बैठ गये। उनमें से एक बोला—'किस रास्ते से चलें।' उसी समय उस नगर में किसी बनिये का पुत्र मरा था उसे जलाने के लिये बहुत से लोग ले जा रहे थे।' तब चारो में से एक ने पुस्तक खोल कर देखा—'महाजन जिस रास्ते से जाये वही रास्ता ठीक है।' इसलिये हमें भी इसी रास्ते से जाना चाहिये।' वे पण्डित जब उस महाजनो के पीछे-पीछे जा रहे थे तो श्मशान मे पहुच गये। वहाँ उन्होंने एक गधे को देखा। तब दूसरे ने पुस्तक खोल कर देखा—'उत्सव में, मुसीबत में, अकाल में, शत्रु से सकट पडने पर, कचहरी में और श्मशान में जो होता है वह बन्धु होता है। इसलिये अहा यह हमारा बन्धु है।' तब कोई उस के गले लगता है, कोई उसके पैर धोता है।

तदनन्तर उन्होने इधर उधर देखते हुए जल्दी-जल्दी जाते हुए कोई ऊँठ देखा और कहा—'यह क्या है?' तब तीसरे ने पुस्तक खोलकर कहा—'धर्म की तेज चाल है।' इस लिए यह तो धर्म है।' चौथे ने कहा—'प्रियबन्धु को धर्म के साथ जोडे।' तब उन्होने उस गधे को ऊंठ की गर्दन में बाँध दिया। इतने में किसीने जाकर धोवी को कह दिया। धोवी उन मूर्खो को पीटने को ज्यो ही आया त्योंही वे भाग गये। इसके बाद वे ज्यो ही थोडा रास्ता चले कि उन्हें एक नदी मिल गई। उसके पानी में ढाक का एक पत्ता बहता हुआ आ रहा था, उसे देखकर एक पण्डित ने कहा—'जो पत्र आयेगा वह हमें तारेगा।' यह कहकर उस पत्ते के ऊपर कूदा कि नदी में बहने लगा। उसको बहता देख दूसरे पण्डित ने उसे बालो से पकड कर कहा—'सम्पूर्ण का नाश हो रहा हो तो पण्डित आधा छोड दे आधे से ही कार्य करे, क्योकि सारे का नाश तो असह्य होता है।' यह कहकर उसका सिर काट लिया।

तदनन्तर आगे जाते हुये एक गाँव में पहुँचे। वहा ग्रामवालो ने उन्हें अलग अलग घरो में भोजन करने का निमन्त्रण दिया। वहाँ एक को घी चीनी से मिली सेवैंयाँ भोजन में मिली तो उस पण्डित ने कहा—'दीर्घसूत्री (लम्बे सूत्र—धागों वाला) नष्ट हो जाता है।' यह कहकर भोजन छोड कर वह चला गया। दूसरे को चौडी-चौडी रोटिया दी गईं। उसने भी कहा—'जो बहुत लम्बा

चौडा हो वह उम्र को लम्बा करने के लिये नही होता' इसलिये वह भोजन छोड कर चला गया। तीसरे को वाटियाँ भोजन में दी गईं तो उस पण्डित ने कहा—'छिद्रो में तो बडे अनर्थ होते हैं। (इसलिए उसने भी भोजन छोड दिया)। इस प्रकार वे तीनो पण्डित भूख से पीडित हुए लोगो से हसी किये गये अपने देश को चले गये।

'पण्डित भले ही शास्त्र मे चतुर हो यदि लोक-व्यवहार मे वे निपुण नही तो वे संसार में हँसी को प्राप्त होते हैं जैसे उन मूर्ख पण्डितो ने हंसी कराई।'

खरगोश और गजराज

कभी वर्षा ऋतु में वृष्टि के अभाव से प्यासे हाथियो का झुंड अपने यूथ-पति से बोला—'स्वामिन्! हमारे जीवन का क्या साधन है? अब तो छोटे-छोटे जीवो के भी स्नान का स्थान नही रहा। हम स्नान-स्थान के न होने से मरे हुए जैसे क्या करें। कहा जायें?' तब गजराज ने पास ही जाकर एक स्वच्छ तालाब दिखाया। जहा वे नित्य जाकर स्नान पान करने लगे। कुछ दिन बीतने पर उस तालाब के किनारे रहने वाले छोटे-छोटे खरगोश हाथियो के पैरो के नीचे दबकर मर गये। तदनन्तर शिलीमुख नामक खरगोश ने सोचा—'यह हाथियो का झुण्ड प्यास से व्याकुल होकर प्रतिदिन आया करेगा तब तो हमारा खानदान तबाह हो जायगा।' तब विजय नामक बूढे खरगोश ने कहा—'दुखी मत होओ। मैं इसका निवारण करूँगा।' यह कह कर वह चल दिया। जाते हुए उसने सोचा—'उस गजराज के पास जाकर क्या कहना चाहिए। क्योकि—हाथी तो छूते ही मार डालता है, साँप सूंघते ही तथा राजा पालन करता हुआ भी मार देता है और दुष्ट हँसते हुए। इसलिए मैं पर्वत की चोटी पर चढकर गजराज से बातें करूँगा।' ऐसा करने पर गजराज बोला—'तू कौन है और कहाँ से आया है?' वह बोला—'मैं खरगोश हूँ, मुझे भगवान् चन्द्रमा ने आपके पास भेजा है।' गजराज ने कहा—'क्या कार्य है, कहो।' विजय बोला—'सुनो, चन्द्रमा ने कहा है कि ये जो चन्द्रसरोवर के रक्षक खरगोश तुमने मार डाले है यह अच्छा नही किया। उन खरगोशो की मैं चिरकाल से रक्षा कर रहा हूँ, इसलिए मेरा नाम 'शशाङ्क'

प्रसिद्ध है।' उसके ऐसा कहने पर गजराज ने डर से कहा—'हे दूत! यह हमने अज्ञान से किया है, फिर मैं वहा नही जाऊँगा।' दूत बोला—'यदि ऐसा है तो इस तालाब में क्रोध से काँपते हुए चन्द्रमा को प्रणाम करो, प्रसन्न करके जाओ।' तब रात को गजराज को ले जाकर जल मे चचल चन्द्रमा की परछाई दिखा कर उससे प्रणाम करवाया। उस गजराज ने कहा—'महाराज, अज्ञान से हमने अपराध किया है। इसलिए क्षमा करे, फिर ऐसा नही होगा।' यह कहकर वह चला गया। इसलिये सच कहा है कि 'नाम के बहाने से भी काम सिद्ध हो जाते हैं।'

लोकोक्तियां

१. स्वभाव छोडना कठिन है।
२. गुण सब जगह अपना स्थान बना लेते हैं।
३. चोट पर चोट लगती है। कष्ट पर ही कष्ट आते हैं।
४. पर्वत दूर से ही सुन्दर दिखाई देते हैं। All glittening is not gold. दूर के ढोल सुहावने।
५. धोबी का कुत्ता घर का न घाट का।
६. सभी अपनी मर्जी के मालिक हैं।
७. ज्यादती नही करनी चाहिए।
८. रिश्वत से कौन काबू मे नही हो जाता।
९. हर एक के मुख से कोई-न-कोई नई बात ही निकलती है।
१०. थोथा चना बजे घना।
११. बूँद बूँद से घट भरे।
१२. दूसरे को नसीहत, खुद मियाँ फजीहत।
१३ ज्यादा वाकफीयत से इज्जत कम हो जाती है।
१४. रत्न पारखी को खोजने नहीं जाता बल्कि पारखी रत्नो को खोजते हैं।
१५. बुद्धिमान् बिना कही बात को भी समझ जाता है।
१६. भाग्य की लकीर नही मिटाई जा सकती।

१७. सबै सहायक सबल के, कोऊ न निबल सहाय ।
पवन जगावत आगि कौ, दीपहिं देत बुझाय ॥
१८. सभी अपना मतलब ही सिद्ध करना चाहते हैं ।
१९. नौ नकद न तेरह उधार ।
२०. सभी अपनी वस्तु की प्रशसा करते हैं ।
२१. जिसके पास पैसा है उसी के सब मित्र हैं ।
२२ न करने से कुछ करना अच्छा है, Some thing is better than nothing
२३. एक पन्थ दो काज ।
२४. विना मतलब के मूर्ख भी किसी काम को नही करता ।
२५. त्रिशकु के समान वीच मे अड जाना—न इधर का न उधर का ।

प्रष्टव्य श्लोक अर्थ सहित

लोभश्चेदगुणेन किं ? पिशुनता यद्यस्ति, किं पातकैः ?
सत्यं चेत् तपसा च किं, शुचि मनो यद्यस्ति तीर्थेन किम् ।
सौजन्यं यदि किं गुणै. ? सुमहिमा यद्यस्ति किं मण्डनै. ?
यद्विद्या यदि किं धनैः ? अपयशो यद्यस्ति किं मृत्युना ? ॥

अर्थ—यदि मनुष्य में लोभ है तो बाकी दुर्गुणो का होना न होना बराबर है, क्योंकि लोभ ही स्वय एक बडा दुर्गुण है । चुगली करने की आदत है तो दूसरे पापो का क्या काम ? सत्य है तो तपस्या से कोई लाभ नही और मन पवित्र है तो तीर्थ जाना व्यर्थ है । सज्जनता है तो दूसरे गुण हो या न हो कोई अन्तर नही । बडाई है तो अलंकार पहनने से कोई लाभ नही । विद्या है तो धन की क्या आवश्यकता और यदि वदनामी है तो मौत की क्या आवश्यकता क्योंकि वदनामी मौत से बढकर होती है ।

क्षान्तिश्चेत् कवचेन किं, किमरिभि क्रोधोऽस्ति चेद्देहिनाम् ?
ज्ञातिश्चेदनलेन किं, यदि सुहृद् दिव्यौषधैः किं फलम् ?
किं सर्पैर्यदि दुर्जना· ? किमु धनैर्विद्यानवद्या यदि ?
व्रीडा चेत् किमु भूषणैः ? सुकविता यद्यस्ति राज्येन किम् ?

अर्थ—क्षमा हो तो कवच से क्या काम ? यदि क्रोध है तो शत्रुओं का क्या काम ? यदि जलाने वाले जाति के लिए हैं तो आग से क्या प्रयोजन ? क्योंकि ईर्ष्या वाले जाति के लोग आग से बढ़कर दुखदायी होते हैं। यदि मित्र हैं तो महान् औषधियों से क्या काम और यदि दुर्जन हैं तो साँपों का क्या प्रयोजन ? यदि विद्या है तो धन की क्या आवश्यकता है ? लज्जा है तो अलकारो का क्या काम ? और यदि अच्छी कविता करनी आती है तो राज्य-प्राप्ति से क्या लाभ ?

प्राण्याघाताद् निवृत्तिः, परधनहरणे संयम , सत्यवाक्यम् ।
काले शक्त्या प्रदानं, युवतिजनकथामूकभाव परेषाम् ।
तृष्णास्रोतो-विभंग', गुरुषु च विनय , सर्वभूतानुकम्पा,
सामान्यं सर्वशास्त्रेष्वनुपहतविधि. श्रेयसामेष पन्था' ।

अर्थ—हिंसा से दूर रहना, दूसरे के धन को हरण न करना, सच बोलना, मौके पर यथाशक्ति दान देना, दूसरे की स्त्रियों के विषय में बातें न करना, तृष्णा को रोकना, बड़ों के आगे नम्र रहना, सब प्राणियों पर दया करना और सब शास्त्रों में निःशक प्रवेश अर्थात् विद्वत्ता प्राप्त करना—ये कल्याण के रास्ते हैं।

पद्माकरं दिनकरो विकचं करोति,
चन्द्रो विकासयति कैरवचक्रवालम् ।
नाभ्यर्थितो जलधरोऽपि जलं ददाति,
सन्त स्वयं परहिते विहिताभियोगा. ॥

अर्थ—सूर्य कमलों को खिलाता है, चन्द्रमा कमलिनियों के झुण्ड को विकसित करता है, बिना माँगे बादल जल देता है। कहते हैं ठीक ही है कि सज्जन लोगों ने तो दूसरों का भला करने का जिम्मा ही उठा रखा है।

परोक्षे कार्यहन्तारं प्रत्यक्षे प्रियवादिनम् ।
वर्जयेत् तादृशं मित्रं विषकुम्भं पयोमुखम् ॥

अर्थ—पीठ पीछे काम को खराब करने वाले और सामने मीठी-मीठी बातें बनाने वाले मित्र को छोड़ दो, क्योंकि वह मित्र जहर के घड़े के समान है जिसके मुँह पर अमृत लगा हो।

प्रियवाक्यप्रदानेन सर्वे तुष्यन्ति जन्तव. ।
तस्मात् तदेव वक्तव्यं वचने का दरिद्रता ।।

अर्थ—मीठा बोलने से सभी प्राणी प्रसन्न होते हैं। इसलिये सबके साथ प्रिय और मधुर बोले। अरे भाई, मीठा बोलने में क्या कजूसी।

सेवा श्ववृत्तिराख्याता यैमिथ्या तत्प्रजल्पितम् ।
स्वच्छन्दं चरति श्वात्र सेवक. परशासनात् ।।

अर्थ—सेवा को जो लोग कुत्ते की जीविका के समान कहते हैं वे झूठ बोलते हैं क्योकि कुत्ता तो कभी-कभी आजादी से घूम लेता है किन्तु नौकर तो एक कदम भी मालिक की आज्ञा के बिना नही जा सकता।

जीवन्तोऽपि मृता पंच श्रूयन्ते किल भारते ।
दरिद्रो व्याधितो मूर्ख प्रवासी नित्यसेवकः ।।

अर्थ—इस ससार में पाँच प्रकार के मनुष्य जीते हुए भी मरे हुए के समान है—गरीब, बीमार, मूर्ख, नित्य सेवा करने वाला और सदा परदेस में रहने वाला।

विष्णुना सदृशो वीर्ये सोमवत् प्रियदर्शन ।
कालाग्नि-सदृश क्रोधे क्षमया पृथिवीसम. ।।

अर्थ—भगवान राम बल में विष्णु के समान, प्रिय दर्शन में चन्द्रमा के, समान, क्रोध में यमराज के समान और क्षमा मे पृथ्वी के समान हैं।

भर्तुर्भाग्यं तु नार्येका, प्राप्नोति पुरुषर्षभ ।
अतश्चैवाहमादिष्टा वने वस्तव्यमित्यपि ।।

अर्थ—हे राम जी ! स्त्री तो एकमात्र पति के ही भाग्य को प्राप्त करती है इसलिये वन में रहने के लिये मुझे भी आज्ञा दीजिए सीता ने कहा।

न देवि ! तव दु खेन स्वर्गमप्यभिरोचये ।
नहि मेऽस्ति भय किंचित् स्वयम्भोरिव सर्वत ।।

अर्थ—जब सीता ने राम से वन जाने की आज्ञा प्राप्त करने की प्रार्थना की तो राम ने कहा—हे देवि सीते ! तेरे दु ख से तो मुझे स्वर्ग भी अच्छा नहीं लगता। मुझे तो ब्रह्मा से भी कुछ भय नही है।

क्लैब्यं मा स्म गमः पार्थ ! नैतत्त्वय्युपपद्यते ।
क्षुद्रं हृदयदौर्बल्यं त्यक्त्वोत्तिष्ठ परंतप ॥

अर्थ—श्री भगवान् कृष्ण अर्जुन से कहते हैं—हे अर्जुन ! तू नपुंसक-स्वभाव को मत प्राप्त कर, यह तेरे लिये उचित नहीं, हे शत्रुओं को कष्टदाता ! तू तुच्छ हृदय की कमजोरी को छोड़कर उठ खड़ा हो और युद्ध के लिये तैयार हो।

हतो वा प्राप्स्यसि स्वर्गं जित्वा वा भोक्ष्यसे महीम् ।
तस्मादुत्तिष्ठ कौन्तेय ! युद्धाय कृतनिश्चय ॥

अर्थ—हे अर्जुन ! यदि तू युद्ध-भूमि में मर गया तो स्वर्ग को प्राप्त करेगा और युद्ध को जीत गया तो भूमि का सुख भोगेगा (शासन करेगा)। इसलिये युद्ध का निश्चय कर उठ तैयार हो।

कर्मण्येवाधिकारस्ते मा फलेषु कदाचन ।
मा कर्मफलहेतुर्भूर्मा ते सङ्गोऽस्त्वकर्मणि ॥

अर्थ—हे अर्जुन ! और संसार के मानव कर्म के करने में ही तेरा अधिकार है फल में नहीं, इसलिये तू निष्काम भाव से काम करना हुआ कर्म के फल का कारण मत बन, और कर्म करने से विमुख भी मत हो।

यादृशं वपते बीजं क्षेत्रमासाद्य कर्षकः ।
सुकृते दुष्कृते वापि तादृशं लभते फलम् ॥

अर्थ—इस संसार में मनुष्य पुण्य या पाप जैसा भी कर्म करता है वैसा ही फल प्राप्त करता है, जैसे कोई किसान खेत में जैसा बीज बोता है वैसा ही काटता है।

आत्मैव ह्यात्मनो बन्धुरात्मैव रिपुरात्मनः ।
आत्मैव ह्यात्मनः साक्षी कृतस्याप्यकृतस्य च ॥

अर्थ—यह मनुष्य स्वयं ही अपना बन्धु है और स्वयं ही अपना शत्रु है। यह आत्मा स्वयं ही अपने अच्छे किये या बुरे किये का साक्षी है अर्थात् मनुष्य अच्छा या बुरा जैसा भी काम करता है वैसा ही उसके अनुसार फल प्राप्त करता है। इसलिये मनुष्य को अपनी भलाई के लिये अच्छे कर्म करने चाहिएं।

प्रष्टव्य गद्य भाग अर्थ सहित

पाठ ५—एकदा कोऽपि तर्कप्रवणस्तरुण क्वचित् यात्रायां गच्छन् मध्यान्ह-सूर्यस्य प्रचण्डातपेन पीडितो विश्रामाय पथि एकस्य विशाल-वटतरोरधस्तल-मुपजगाम। तत्र छायामधिश्रित· अपगताध्वश्रमश्च यावद् दिक्षु दृष्टि पातयति तावन्नातिदूरे पारेमार्गं क्षेत्रे एकां कूष्माण्डलतां पश्यति। कूष्माण्डाना भारम् असहमाना लता भूतलात् उत्थातुमपि न शक्नोति। क्षणान्तरे एव तरुणस्य क्षेत्रात् परावृता दृष्टिः छायायां स्वमुखाग्रपतितेषु वटफलेषु गच्छति।

अर्थ—एक वार कोई दलीलवाज जवान किसी यात्रा मे जाते हुए दोपहर के समय तेज गर्मी से घवरा कर विश्राम के लिये मार्ग मे एक बड़े भारी वट के वृक्ष के नीचे गया। वहाँ छाया में वैठकर थकावट दूर कर जब उसने इधर उधर नजर डाली तो रास्ते के पास ही खेत में एक काशीफल की वेल देखी। जो वेल काशीफलो के भार को न सहती हुई पृथ्वी से भी नहीं उठ-सकती थी। दूसरे ही मिनट उस जवान की नजर हटकर छाया में सामने पड़े हुए वहुत छोटे-छोटे वट के फलो पर पड़ी।

अत्रान्तरे वेगाद् वायुर्ववौ। उपरितन. सर्वोऽपि वटवृक्ष प्रकम्पित सहसा एकशाखातो लघुवटफलं पतित्वा तस्य तरुणस्य मस्तके अलगत्। स च तम् करेण गृहीत्वा पुनश्चिन्तयति—'अहो ! अहं कियान्मूर्ख. ; यत् दुरूहप्रयोजनाम् इमाम् ईश्वरस्य सृष्टिम् एवम् आलोचयामि। यदि सत्यमेतस्मिन् वट-वृक्षे कूष्माण्डनिभं फलम् अभविष्यत् तर्हि तेनाहतम् एतन्मे मस्तकं भग्नमभविष्यत्। दुरूह खलु ईश्वर, दुरूहा चैव ईश्वरस्य सृष्टि, इति सत्यम्।

अर्थ—इसी वीच जोर से हवा चली। ऊपर का सारा वट वृक्ष हिला। एक-दम एक शाखा से १ छोटा सा वट का फल गिरकर उसके सिर पर लगा। उसे हाथ में लेकर वह सोचने लगा—'ओह ! मैं कितना मूर्ख हूं कि कठिनता से जानने योग्य इस ईश्वर की सृष्टि की आलोचना करता हूं। अगर सचमुच ही वट के पेड पर काशीफल के समान फल होते तो उससे चोट खाकर मेरा सिर ही फूट जाता। वह ईश्वर दुर्वोध है और उस ईश्वर की सृष्टि भी दुर्वोध है। यह सत्य है।

पाठ ९—शूद्रकेणापि स्वशिरश्छेत्तुं खड्गः समुत्थापितः। अथ भगवत्या सर्वमंगलया राजा हस्ते धृत उक्तश्च—पुत्र प्रसन्नास्मि ते। एतावता साहसेनालम्। जीवनान्तेऽपि तव राज्यभंगो नास्ति।' राजा च साष्टांगपातं प्रणम्योवाच—'देवि! किं मे राज्येन, जीवितेन वा किं प्रयोजनम्? यदहमनुकम्पनीयस्तदा ममायुःशेषेणाप्ययं सदारपुत्रो वीरवरो जीवतु। अन्यथाहं यथा, प्राप्तं गतिं गच्छामि।' भगवत्युवाच—पुत्र! अनेन ते सत्वोत्कर्षेण भृत्यवात्सल्येन च तुष्टास्मि, गच्छ विजयी भव। अयमपि वीरो राजपुत्रो जीवतु। इत्युक्त्वा देव्यदृश्याभवत्।

अर्थ—(राजा शूद्रक ने वीरवर की परीक्षा ली जिसमें उस वीरवर ने अपना, अपने पुत्र का सिर देवी की भेंट कर दिया। उसकी स्त्री ने भी अपना सिर देवी को चढा दिया—यह सब देखकर राजा ने सोचा कि ऐसे भक्त भृत्यो के अभाव में मेरा जीना भी व्यर्थ है इसलिये) शूद्रक ने भी अपना सिर काटने के लिये तलवार उठाई। तब भगवती सर्वमगला ने राजा का हाथ पकड लिया और कहा—'पुत्र! मैं तुझ पर प्रसन्न हूँ। इतना साहस मत करो। अब तुम्हारे जीवन के बाद भी तुम्हारे राज्य का नाश नही होगा।' राजा ने साष्टाग प्रणाम करके कहा—'देवि! मुझे राज्य मे और जीवन से क्या लाभ? यदि आप मुझ पर कृपा करती हैं तो मेरी बाकी आयु से यह स्त्री पुत्र सहित वीरवर जी जाय। नही तो मैं भी उन्ही की अवस्था को प्राप्त होता हूँ।' भगवती ने कहा—'पुत्र! इस तेरी बहादुरी के प्रभाव से और भृत्यो के प्रति प्रेम से मै प्रसन्न हूँ, जाओ विजयी होओ और यह राजपुत्र वीरवर भी परिवार सहित जीवित हो जाय।' यह कहकर देवी अन्तर्धान हो गई।

पाठ १२—ततः सा पतिधर्मपरायणा वैश्वानरम् प्रार्थयत-'यज्ञेश्वर! त्वं सर्वकर्मसाक्षी सर्वधर्मान् जानासि, तद्मदीय शिशुम् अनुगृह्य त्व मा दह।' शिशु यज्ञेश्वरस्य ज्वालाभि क्रीडन् अर्धघटिका-पर्यन्तं तत्रं वातिष्ठत्। शिशुश्च प्रसन्नमुख सा च ध्यानारूढातिष्ठत्। ततो यदृच्छया समुत्थिते भर्तरि सा झटिति शिशुं जग्राह।

अर्थ—(राजा भोज ने एक रात प्रजा में घूमते हुए देखा कि स्त्री के घुटने पर सिर रखकर पति सो रहा था और उसका पुत्र उठकर अग्नि से

खेला रहा था) तदनन्तर वह पतिव्रता स्त्री अग्नि से प्रार्थना करने लगी--'हे यज्ञ के देवरूप अग्ने ! तुम सब कामो के साक्षी हो और सबके धर्मों को जानते हो इसलिए मेरे पुत्र पर कृपा करके तुम इसे मत जलाना।' बच्चा अग्नि-देव की ज्वालाओ के साथ खेलता हुआ आधे घण्टे तक वही बैठा रहा। बालक प्रसन्नमुख था और वह ध्यान में मग्न रही। तदनन्तर अपनी इच्छानुसार पति के जग जाने पर उसने झट से बच्चे को उठा लिया।

सम्बद्ध—सुतं पतन्तं प्रसमीक्ष्य पावके, न बोधयामास पतिं पतिव्रता।
तदाभवत् तत्पतिभक्तिगौरवात्, हुताशनश्चन्दनपंकशीतल.॥

अर्थ—पुत्र को आग में गिरता हुआ देखकर भी पतिव्रता ने पति को नही जगाया। तब उसकी पतिभक्ति के प्रभाव से अग्नि भी चन्दनलेप के समान शीतल हो गई।

पाठ १७—अस्ति भागीरथीतीरे गृध्रकूटनाम्नि पर्वते महा-पर्कटीवृक्ष। तस्य कोटरे दैवदुर्विपाकात् गलितनखनयनो जरद्गवनामा गृध्र वसति स्म। अथ कृपया तज्जीवनाय तद्वृक्षवासिन पक्षिण स्वाहारात् किंचित् किंचिदुद्धृत्य तस्मै ददति। तेनासौ जीवति। पक्षिशावकाना रक्षण च करोति। अथ कदाचिद्दीर्घ-कर्णनामा मार्जार पक्षिशावकान् भक्षयितुं तत्रागत। ततस्तमायान्त दृष्ट्वा पक्षिशावकैर्भयार्तै कोलाहल कृत। तच्छ्रुत्वा जरद्गवेनोक्तम्--कोऽयमायाति? दीर्घकर्णो गृध्रमवलोक्य सभयमाह—हा हतोस्मि।

अर्थ—गगाजी के किनारे गृध्रकूट नामक पर्वत पर एक बडा पिलखन का पेड था। उसके खोखल में बदनसीबी से नाखून और आँखो से हीन जरद्गव नामक गीध रहता था। उसके जीवन के लिए उस पेड के रहने वाले पक्षी कृपा करके अपने भोजन मे से कुछ-कुछ निकाल कर उसे देते थे। उससे वह जीता था और पक्षियो के बच्चो की रक्षा करता था। कभी दीर्घकर्ण नामक एक बिलाव पक्षियो के चूजो को खाने के लिए वहाँ आया। उसे आता देख-कर पक्षिशावको ने डर से व्याकुल हो शोर किया। उसे सुनकर जरद्गव ने कहा—'यह कौन आता है।' दीर्घकर्ण ने गीध को देखकर डर कर कहा—"ओह मैं मारा गया।"

१८. को नाम भारतीयो बालः प्रात स्मरणीयस्य महात्मगान्धिनो

नाम न जानाति ? अनेन खलु महापुरुषेण न केवलमस्माकं भारतस्यैव, अपितु निखिलस्यापि विश्वस्य यद्यदुपकृतं, तत्सर्वं स्मृत्वा स्मृत्वा सर्वोऽपि लोकोऽद्यतस्य नामाग्रे श्रद्धयावनतमूर्धा भवति मनोमन्दिरेऽर्चति चैनम् । यद्यपि महात्मा गांधी सम्प्रत्यस्माकं मध्ये नास्ति, तथाप्यादर्श-भूतमेतस्य नररत्नस्य जीवनमद्यापि कोटिशो भारतीयानामेव न, प्रत्युत अज्ञानान्धकारावृतस्य जगतः सर्वेषामपि मानवानां पथप्रदर्शनाय दीपस्तम्भायते ।

अर्थ—ऐसा कौन हिन्दुस्तानी बच्चा है जो महात्मा गाधी के नाम को नही जानता । इस महापुरुष ने केवल हमारे भारतवर्ष का नही बल्कि सारे संसार का जो जो उपकार किया उसे याद कर करके सभी लोग अब भी इसके नाम के आगे श्रद्धा से मस्तक झुकाते है और अपने मन-मन्दिर में इसे पूजते है । यद्यपि महात्मा गांधी अब हम में नही है तो भी आदर्श रूप इस नररत्न पुरुष का जीवन करोडो भारतवासियो को ही नही प्रत्युत अज्ञान के अन्धकार से घिरे हुए ससार के सभी मनुष्यो को रास्ता दिखाने के लिये बिजली के खम्बे के समान काम कर रहा है ।

महात्मा गांधी लिखति—एकदा पाठशाला-निरीक्षकः पाठशालायामागत्य छात्रान् परीक्षते स्म । तेन निर्दिष्टं पृष्टस्यांगलभाषाया केतल (Kettle) शब्दस्याक्षराणि शुद्धानि लेखितु नाहमशक्नवम् । ममाध्यापको मत्समीपवर्तिच्छात्रस्य शिलापट्ट दृष्ट्वा लेखितु मां मुहुर्मुहु प्रेरयति स्म । परम्मयाऽनुकरणं नैव कृतम् । परिणाम एषोऽभूत् यत् मा विहाय सर्वेषामेव छात्राणां शब्दाक्षराणि शुद्धानि निर्गतानि, केवलमहमेव मूर्खोऽभवम् । इत्थम् अह कदापि अनुकरण-दुर्व्यसनं न स्वीकृतवान् ।

अर्थ—महात्मा गाँधी लिखते है—एक बार पाठशाला का इंस्पैक्टर आकर छात्रो की परीक्षा ले रहा था । उससे लिखाये गये अग्रेजी भाषा के केतल (Kettle) शब्द के अक्षरो को मै शुद्ध नही लिख सका । मेरे अध्यापक ने मेरे पास बैठे हुए छात्र की स्लेट को देखकर लिखने के लिये मुझे बार बार इशारा किया परन्तु मैने नकल नही की । नतीजा यह हुआ कि मुझे छोडकर सभी विद्यार्थियो के शब्द की स्पैलिंग शुद्ध निकली, केवल मै ही मूर्ख रहा । किन्तु इस प्रकार मैने कभी नकल करना रूपी बुरी आदत स्वीकार नही की ।

पाठ २२. संस्कृतम् अधीयाना सर्वे एव कालिदासस्य नाम जानन्ति एव। एतस्य खलु महाभागस्य अद्भुता कल्पनाशक्ति सर्वतोमुखी प्रतिभा, उत्कृष्टं नाटक निर्माण-कौशलं चासीत्। कथ्यते यत् असौ साक्षात् वाग्देव्या. अवतारोभूत्। अतएव प्राचीनकालाद् एव स कविशिरोमणि, कविकुलगुरुः इत्यादिभिः विविधविरुदैर्भूषितो भूत्वा सर्वेषाम् एव विदुषाम् आदरपात्रम् विद्यते। तस्य ग्रन्थानाम् अनुवादं पठित्वा पठित्वा काव्यामृतरसेन आनन्दमुग्धा पश्चात्या विद्वांसोऽपि तम् 'भारतस्य शेक्सपीयर.' इति पदव्या सम्मानयन्ति।

अर्थ—संस्कृत को पढने वाले सभी कालिदास के नाम को जानते हैं। इस महापुरुष की अद्भुत कल्पनाशक्ति और सब ओर जाने वाली प्रतिभा तथा श्रेष्ठ नाटक बनाने की कुशलता थी। कहा जाता है कि यह साक्षात् सरस्वती के अवतार थे। इसीलिए प्राचीन काल से ही वह 'कविशिरोमणि' और 'कविकुल-गुरु' आदि अनेक नाम से सुशोभित होते थे। और सब विद्वानो में सम्मान प्राप्त करते थे। उनकी पुस्तको के अनुवाद पढ पढकर काव्यामृत रस के आनन्द में मुग्ध हो यूरोप के विद्वान् भी उसे 'भारत का शेक्सपीयर' नाम से सम्मानित करते हैं।

व्याकरण और अनुवाद-विधि

हिन्दी का संस्कृत में अनुवाद करने के लिये आवश्यक नियम समझ लेने से सुगमता होगी। प्रधान प्रधान नियम नीचे दिये जाते हैं।

प्रत्येक संज्ञा या सर्वनाम के तीन वचन होते हैं—एकवचन, द्विवचन, बहुवचन। और तीन ही पुरुष होते हैं—प्रथमपुरुष, मध्यमपुरुष और उत्तमपुरुष। इसी प्रकार धातु के क्रियारूपो के भी तीन पुरुष और तीन वचन होते हैं। इस तरह संज्ञा या सर्वनाम के प्रथमपुरुष के वचनो को प्रथमपुरुष की क्रिया के साथ, मध्यमपुरुष के वचनो को मध्यमपुरुष की क्रिया के साथ और उत्तमपुरुष के वचनो को उत्तमपुरुष की क्रिया के साथ लगाने से ही शुद्ध रूप समझा जाता है तभी शुद्ध अर्थ भी होता है अन्यथा प्रथमपुरुष के संज्ञा के शब्दो के साथ मध्यमपुरुष की क्रिया, मध्यमपुरुष के साथ भिन्नपुरुषो या वचनो की क्रिया लगाने से अशुद्ध हो जाता है। अब संज्ञा और सर्वनाम के प्रत्येक पुरुष के वचन और क्रियाओ का मेल देखिए।

संज्ञा और सर्वनाम के रूप

	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
प्रथम पुरुष	स, बाल:	तौ, बालौ	ते, बाला
मध्यम पुरुष	त्वम्	युवाम्	यूयम्
उत्तम पुरुष	अहम्	आवाम्	वयम्

पठ् धातु (पढना के रूप (चिन्ह सहित)

	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
प्रथम पुरुष	(ति) पठति	(त) पठत:	(अन्ति) पठन्ति
मध्यम पुरुष	(सि) पठसि	(थ) पठथ	(थ) पठथ
उत्तम पुरुष	(मि) पठामि	(व) पठाव	(म.) पठाम:

संज्ञा और सर्वनाम का क्रिया के साथ मेल अर्थ सहित

	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
प्रथम पुरुष	स पठति (वह पढता है)	तौ पठत: (वे दो पढते हैं)	ते पठन्ति (वे सब पढते है)
„	बाल पठति (एक बालक पढता है)	बालौ पठत (दो बालक पढते हैं)	बाला पठन्ति (सब बालक पढते है)
मध्यम पुरुष	त्वम् पठसि (तू पढता है)	युवाम् पठथ: (तुम दो पढते हो)	यूयम् पठथ (तुम सब पढते हो)
उत्तम पुरुष	अहम् पठामि (मैं पढ़ता हूँ)	आवाम् पठाव: (हम दो पढते हैं)	वयम् पठाम (हम सब पढते है)

इसी प्रकार उक्त बाल शब्द के समान नर, जन, मनुष्य, छात्र आदि अकारान्त शब्दो के प्रथम पुरुष में रूप होंगे और अन्य धातुओ के प्रथम पुरुष की क्रिया के साथ वचनानुसार लगेंगे। तथा मध्यम पुरुष के और उत्तम पुरुष के त्वम् युवाम् यूयम्, अहम् आवाम् वयम् शब्द अन्य धातुओ की क्रियाओ के साथ वचनानुसार लगेंगे। एक उदाहरण और देखिये—

गम्-गच्छ—जाना

	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
प्रथम पुरुष	छात्र. गच्छति (एक विद्यार्थी जाता है)	छात्रौ गच्छत. (दो विद्यार्थी जाते हैं)	छात्रा. गच्छन्ति (सब विद्यार्थी जाते हैं)
मध्यम पुरुष	त्वम् गच्छसि (तू जाता है)	युवाम् गच्छथ. (तुम दो जाते हो)	यूयं गच्छथ (तुम सब जाते हो)
उत्तम पुरुष	अहम् गच्छामि (मैं जाता हूं)	आवाम् गच्छाव (हम दो जाते हैं)	वयं गच्छाम. (हम सब जाते हैं)

इसी प्रकार अन्य शब्दो को अन्य धातुयो के साथ भी लगाकर अभ्यास करना चाहिए।

नोट—स्त्रीलिंग में मध्यम पुरुष और उत्तम पुरुष के सर्वनाम के रूप और क्रिया के रूपो में कोई अन्तर नही। त्वम् गच्छसि=तू जाती है। अहम् गच्छामि=मैं जाती हूँ आदि किन्तु 'स. तौ ते' के स्थान पर स्त्रीलिंग में 'सा ते ता.' हो जाते हैं। सा गच्छति=वह जाती है, ते गच्छतः=वे दो जाती है। ता गच्छन्ति=वे सब जाती हैं।

पठ् के समान रूपों वाली कुछ धातु		नर के समान शब्द	
क्रीड्. खेलना	जि (जय) जीतना	छात्रः	विद्यार्थी
नम् झुकना, नमस्कार करना	स्मृ (स्मर) याद करना	नापितः	नाई
धाव् दौड़ना	ज्वल् जलना	पादः	पैर
भ्रम् घूमना	पा (पिब) पीना	सूद	रसोइया
वस् रहना	घ्रा (जिघ्र) सघना	रजक.	धोबी
पच् पकाना	दृश् (पश्य) देखना	दर्पण.	शीशा
पत् गिरना	हृ (हर) चुराना	मार्जार.	बिल्ली
हस् हँसना	नी (नय) ले जाना	मशक'	मच्छर
भक्ष् खाना	स्था (तिष्ठ) ठहरना	अनल.	आग
वद् बोलना	तृ (तर) तैरना	खग.	पक्षी
त्यज् छोडना	इष् (इच्छ) चाहना	शरः	बाण
	दह् जलाना	कूप.	कुआँ

आदर्श अनुवाद (वर्तमान काल का)

१ राम जाता है।	रामः गच्छति
२ वे दो बालक पढते है।	तौ बालौ पठत.
३ वे सब नमस्कार करते हैं।	ते नमन्ति
४ वह खेलता है।	सः क्रीडति
५ तू याद करता है (करती है)।	त्वम् स्मरसि
६ तुम दो घूमते हो (घूमती हो)।	युवाम् भ्रमथ·
७ तुम सब छोडते हो (छोडती हो)।	यूयम् त्यजथ
८ मै पकाता हूँ (पकाती हूँ)।	अहम् पचामि
९ हम दो सूघते है (सूघती है)।	आवाम् जिघ्राव.
१० हम सब दौडते हैं (दौडती हैं)	वयम् धावामः
११ वह (लडकी) गिरती है।	सा पतति
१२ वे दो (लडकियां) पीती है।	ते पिबत
१३ वे सब (लडकिया) देखती है।	ता. पश्यन्ति

इसी प्रकार ऊपर दी गई किसी भी धातु के रूपो के साथ उसी पुरुष का शब्द लगाकर अनुवाद किया जा सकता है।

ऊपर पाचवे वाक्य तक पुंलिग और स्त्रीलिग मे समान जाने वाले मध्यम पुरुष और उत्तम पुरुष के प्रयोग दिखाये गये है। इन्हे भविष्य में भी सदा स्मरण रखें कि प्रत्येक काल में दोनो लिंगो में इनका प्रयोग समान होता है।

सस्कृत में प्राय चार काल प्रयोग में आते है—(१) वर्तमान काल, (२) भूतकाल, (३) भविष्यत् काल, (४) आज्ञाकाल। पठ् धातु के पीछे जो रूप दिये हैं वे वर्तमानकाल के थे। अब भविष्यत् काल के रूप कर्ता सहित दिये जाते है—इसमें धातु के साथ 'स्य' या 'इष्य' लगता है।

	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
प्रथम पुरुष	सः पठिष्यति (वह पढेगा)	तौ पठिष्यतः	ते पठिष्यन्ति
मध्यम पुरुष	त्वम् पठिष्यसि	युवाम् पठिष्यथ.	यूयम् पठिष्यथ
उत्तम पुरुष	अहम् पठिष्यामि	आवाम् पठिष्यावः	वयम् पठिष्याम.

इनके अर्थ स्वय लिखकर अभ्यास करो। -

आदर्श अनुवाद (भविष्यत् काल का)

सब विद्यार्थी पढ़ेंगे।	छात्रा॰ पठिष्यन्ति।
रसोइया पकायेगा।	सूद पक्ष्यति।
रमा नमस्कार करेगी।	रमा नस्यति।
तू हँसेगा (हँसेगी)।	त्वम् हसिष्यसि।
तुम दो सूँघोगे (सूँघोगी)।	युवाम् घ्रास्यथः।
तुम सब देखोगे (देखोगी)।	यूयम् द्रक्ष्यथ।
मैं ठहरूँगा (ठहरूँगी)।	अहम् स्थास्यामि।
हम दो ले जायेंगे (ले जायेंगी)।	आवाम् नष्याव।
हम सब जीतेंगे (जीतेंगी)।	वयम् जेष्याम.।
वह खेलेगा।	स. क्रीडिष्यति।
वह लडकी याद करेगी।	सा कन्या स्मरिष्यति।
वे दो छोडेंगे।	तौ त्यक्ष्यत।
वे दो लडकियाँ पीयेंगी।	ते पास्यत.।
वे सब चुरायेंगे।	ते हरिष्यति।
वे सब लडकियाँ खायेंगी।	ता. भक्षिष्यन्ति

ऊपर धातुओ के भविष्यत्काल के एक-एक रूप का नमूना दिया है। शेष रूप स्वय चलाने का अभ्यास करना चाहिए।

भूतकाल के रूप कर्ताओ सहित

	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
प्रथम पुरुष	स अपठत् (उसने पढा)	तौ अपठताम्	ते अपठन्
मध्यम पुरुष	त्वम् अपठ	युवाम् अपठतम्	यूयम् अपठत
उत्तम पुरुष	अहं अपठम्	आवाम् अपठाव	वयम् अपठाम

इनके अर्थ स्वय लिखकर अभ्यास करो।

आदर्श अनुवाद (भूतकाल का)

वह राम गया।	स. राम: अगच्छत्।
उन दो बालकों ने रक्षा की।	तौ बालौ अरक्षाम्।
वे सब मनुष्य हँसे।	ते नरा. अहसन्।
तू ने देखा (पुं० स्त्री)।	त्वम् अपश्य:।
तुम दो ने नमस्कार किया (पुं० स्त्री)।	युवाम् अनमतम्।
तुम सबने सूँघा (पुं० स्त्री०)।	यूयम् अजिघ्रत।
मैं गिरा (गिरी)।	अहम् अपतम्।
हम दो ले गये (ले गईं)।	आवाम् अनयाव।
हम सब ने पीया (पुं० स्त्री)।	वयम् अपिबाम।
उस लड़की ने पकाया।	सा अपचत्।
वे दो (लड़कियाँ) दौड़ीं।	ते अधावताम्।
उन सब (लड़कियों) ने खाया।	ता अभक्षन्।

आज्ञाकाल के रूप कर्ताओं सहित

	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
प्रथम पुरुष	स. पठतु (वह पढे)	तौ पठताम्	ते पठन्तु
मध्यम पुरुष	त्वम् पठ	युवाम् पठतम्	यूयम् पठत
उत्तम पुरुष	अहम् पठानि	आवाम् पठाव	वयम् पठाम

पूरे [illegible] लिखकर अभ्यास करें। एवं अन्य धातुओं के रूप भी [illegible] इसी प्रकार लिखकर उनके साथ कर्ता लगाकर अर्थ लिखें।

संस्कृत में शब्दों की आठ विभक्तियाँ और आठ ही कारक भी होते हैं। एक शब्द के रूप कारकों के अर्थ सहित दिये जाते हैं।

नर. (मनुष्य)

विभक्ति	कारक	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
प्रथमा	कर्ता	नर: (एक मनुष्य)	नरौ (दो मनुष्य)	नरा. (बहुत मनुष्य)
द्वितीया	कर्म	नरम् (एक मनुष्य को)	नरौ (दो मनुष्यों को)	नरान् (बहुत मनुष्यों को)

तृतीया करण	नरेण (एक मनुष्य के द्वारा)	नराभ्याम्	नरैः
चतुर्थी संप्रदान	नराय (एक मनुष्य के लिये)	,,	नरेभ्यः
पंचमी अपादान	नरात् (एक मनुष्य से)	,,	,,
षष्ठी सबन्ध	नरस्य (एक मनुष्य का)	नरयो	नराणाम्
सप्तमी अधिकरण	नरे (एक मनुष्य में)	,,	नरेषु
सम्बोधन	हे नर ! (अरे मनुष्य)	हे नरौ !	हे नरा. !

इसी प्रकार अन्य बाल, छात्र, मनुष्य आदि शब्दो के रूप भी स्वयं लि कर अर्थ लिखे। तभी ये अनुवाद में प्रयोग करने आयेंगे।

आदर्श अनुवाद (कर्त्ता आदि कारक विभक्तियों का)

विद्यार्थी पुस्तको को पढते है।	छात्रा· पुस्तकानि पठन्ति।
दो घोडे रथ को ले जाते हैं।	अश्वौ रथम् नयत।
राम गाँव को जाता है।	राम ग्रामम् गच्छति।
मैं मोहन के लिए फल लाता हूँ।	अहम् मोहनाय फलम् आनयामि।
राजा का नौकर रक्षा करते हैं।	नृपस्य भृत्या. रक्षन्ति।
आकाश में हवा चलती है।	आकाशे अनिल· वहति।
मोहन गेंद से खेलता है।	मोहन कन्दुकेन क्रीडति।
चोर मकान से गिरा।	चौरः भवनात् अपतत्।
तू स्कूल कब छोड़ेगा।	त्वम् विद्यालयं कदा त्यक्ष्यसि।
हम सब मोरो को देखेंगे।	वयम् मयूरान् द्रक्ष्यामः।
तुम सब गणेश पर क्यों हँसे ?	यूयम् गणेशे कथम् अहसत।
हम दोनो नुमायश को देखेंगे।	आवाम् प्रदर्शिनी द्रक्ष्यावः।
तुम दोनो दूध पिओ।	युवाम् दुग्ध पिबतम्।

इसी प्रकार प्रत्येक विभक्ति के अर्थ का ध्यान रखते हुए शब्दो के साथ संस्कृत की उस विभक्ति को लगाकर प्रयोग करना चाहिए।

अभ्यास—अनुवाद स्वयं करके अपने अध्यापक को दिखायें—

१. मैं बाग में (उद्याने) घूमता हूँ। २. तुम सब पुस्तकें पढो। ३. वे (लडकियाँ) मैदान में (क्षेत्रे) खेलती है। ४. सोहन मोहन के लिए पुष्प लायेगा। ५. कृष्ण का नौकर गाँव को जायेगा और घी (घृतं च) लायेगा। ६. मोर वन में नाचते हैं। ७. रसोइया भोजन पकाता है। ८. लड़के दूध पीते हैं। ९. हम सब दिल्ली नगर में रहते हैं। १०. तू क्या (किम्) चाहता है। ११. श्याम ने देव को नमस्कार किया। १२. वे हँसते हैं। १३. आग लकडियों को (काष्ठानि) जलाती है। १४. हम दोनो सिनेमा (चलचित्रं). देखेंगे। १५. मनुष्य जल में तैरते हैं।

परमावश्यक सन्धि-ज्ञान

सन्धि—दो वर्णों के मेल से होने वाले विकार (परिवर्तन) को स्वर-सन्धि (अच्सन्धि) और व्यजनो के मेल से होने वाले परिवर्तन को व्यजन-सन्धि (हल्सन्धि) एव विसर्ग के परिवर्तन को विसर्ग-सन्धि कहते है।

स्वर सन्धि—ये सात हैं, जो क्रम से दी जाती हैं।

१. दीर्घ सन्धि—ह्रस्व या दीर्घ अ, इ, उ, ऋ से परे यही वर्ण हो तो दोनो को मिला कर दीर्घ हो जाता है। जैसे—

अ+अ=आ। धर्म+अर्थ=धर्मार्थ। हिम+आलयः=हिमालयः।

विद्या+अर्थी=विद्यार्थी। दया+आनन्द=दयानन्दः।

इ+इ=ई—कवि+ईशः=कवीश। मुनि+इन्द्र=मुनीन्द्र।

उ+उ=ऊ—भानु+उदयः=भानूदय.। सिन्धु+ऊर्मिः=सिन्धूर्मिः।

ऋ+ऋ=ॠ—पितृ+ऋणम्=पितॄणम्। भ्रातृ+ऋणम्=भ्रातॄणम्। आदि।

२. गुण सन्धि—अ आ से परे इ ई, उ ऊ, ऋ ॠ आ जायें तो अ+इ=ए अ+उ=ओ, अ+ऋ=अर् गुण हो जाता है। जैसे—

अ+इ=ए—नर+ईश.=नरेशः। महा+इन्द्र=महेन्द्रः।